अकशेरुकी प्राणि-विज्ञान

लेखक
ई० एल० जॉर्डन
लखनऊ क्रिश्चियन कॉलिज
लखनऊ

1973

[illegible]० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-55

एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०
रामनगर, नई दिल्ली-55
शोरूम : 16 B/4 आसफअली रोड, नई दिल्ली
शाखाएँ :
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ ।
32, गणेशचन्द्र एवेन्यू, कलकत्ता-13 ।
सुल्तान बाजार, हैदराबाद ।
माई हीरां गेट, जालन्धर ।
102, प्रसाद चैम्बर्स, रौक्सी सिनेमा के पीछे, बम्बई-4 ।
35, माउण्ट रोड, मद्रास-2 ।
खजांची रोड, पटना-4 ।

प्रथम हिन्दी संस्करण 1971
पुनः मुद्रित 1973

मूल्य : 20.00
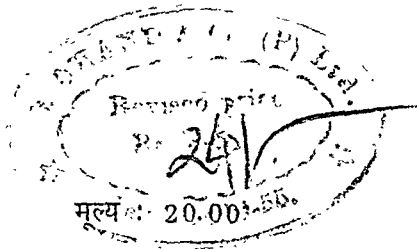
एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-55 द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिन्टर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-55 में मुद्रित ।

प्रथम हिन्दी संस्करण

विद्यार्थियों की सुविधा और समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए स्वर्गीय प्रोफेसर ई० एल० जॉर्डन की बी० एस-सी० के लिए "इन्वर्टीब्रेट जूलौजी" का हिन्दी संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस लोकप्रिय पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० एच० एस० विश्नोई ने किया है जो न केवल एक अनुभवी अध्यापक ही हैं वरन् हिन्दी में प्राणि-विज्ञान शब्दावली के विशेषज्ञ भी हैं। डा० विश्नोई की यह दृढ़ धारणा है कि हिन्दी में विज्ञान के क्षेत्र में अन्त में वही शब्दावली अधिक सफल हो सकेगी जो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के निकट होगी, यही दृष्टिकोण इस पुस्तक में अपनाया गया है।

प्रकाशक

चौथे अंग्रेजी संस्करण का आमुख

इस पुस्तक का संशोधन करते समय इस बात का प्रयत्न किया गया है कि कुछ नई विचारधाराओं को इसमें शामिल कर लिया जाए, विशेषतः कोशिका जीव-विज्ञान में होने वाली प्रगतियों को—इन प्रगतियों का प्राणि-संघटना से संबंधित विविध अध्ययनों पर भारी प्रभाव पड़ रहा है। इस संस्करण की अधिकतर सामग्री वही है जो पिछले संस्करण की थी किंतु आधुनिक खोजों और ज्ञान के विस्तार के संदर्भ में अनेक छोटे-बड़े तथ्य लगभग हर अध्याय में जहाँ-तहाँ जोड़ दिए गए हैं। इसमें प्राणि-विज्ञान के प्रमुख सिद्धांतों का इस प्रकार समेकन किया गया है कि जंतु-जीवन की विविधता अधिक बोधगम्य बन सके और ऐसा सम्पूर्ण जन्तु को एक *क्रियात्मक व्यष्टि के रूप में* रखने पर बल देते हुए किया गया है जो कि *क्रम विकास*-व्यवस्था में ठीक बैठ जाता है।

लखनऊ
जनवरी, 1969

—ई० एल० जॉर्डन

प्रथम अंग्रेजी संस्करण का आमुख

अकशेरुकी प्राणि-विज्ञान बी० एस-सी० के छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिखी गई है। यह उन लोगों के लिए है जिन्होंने प्राणि-विज्ञान का एक प्रारम्भिक पाठ्यक्रम पहले से ही पूरा कर रखा हो। इस पुस्तक में पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों को ले लिया गया है। इन विश्वविद्यालयों में इस्तेमाल होने वाली बहुत-सी पुस्तकें हैं लेकिन इनमें से अधिकतर पुस्तकें या तो पुरानी हो चुकी हैं या अक्सर गलतियों से भरी होती हैं या फिर उनमें चुने हुए प्राणि-प्ररूपों का वर्णन नहीं होता।

पिछले कुछ वर्षों में प्राणि-विज्ञान में बहुत अधिक खोजें हुई हैं। इस पुस्तक में हाल की सभी खोजों में से सामग्री ली गई है और हर फ़ाइलम में से एक या कई जंतु-प्ररूप का वर्णन किया गया है, ऐसा करने में जंतु की न केवल शरीर-रचना और क्रियाओं को ही ध्यान में रखा गया है वरन् वातावरण की दृष्टि से क्रियात्मक आवश्यकताओं के साथ शरीर-रचना के संबंध को भी ध्यान में रखा गया है। चुने हुए प्ररूपों के परिशुद्ध एवं नवीनतम वर्णनों के अतिरिक्त इस पुस्तक की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं : 1. इसमें काफ़ी अच्छे विस्तार से उन जंतुओं का वर्णन भी किया गया है जो व्यावहारिक पाठ्यक्रमों के अंतर्गत आते हैं। 2. चित्रों की भरपूर संख्या दी गई है जिनमें नामांकन आरेखों के ऊपर ही हैं ताकि उनसे न केवल वर्णन की ही संपूर्ति होती है वरन् विद्यार्थी को मूल पाठ के समझने में भी सुविधा हो। 3. हर फ़ाइलम में अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का अलग से विवेचन किया गया है जिन्हें एक

ही स्थान पर या एक किताब में एक साथ पा सकना कठिन है। आशा है कि इन विशेषताओं से परिपूर्ण यह पुस्तक विद्यार्थी की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी।

अतिरिक्त पाठ्य-सामग्री और संदर्भ के लिए निम्नलिखित पुस्तकों के पढ़ने की सिफारिश की जा सकती है :

1. Borradaile, Potts, Eastham and Saunders—The Invertebrata. 4th ed. revised by G. A. Kerkut.
2. L. H. Hyman—The Invertebrates
   - Vol. 1. Protozoa through Ctenophora
   - Vol. 2. Platyhelminthes and Rhynchocoela
   - Vol. 3. Acanthocephala, Aschelminthes and Entoprocta
   - Vol. 4. Echinodermata
   - Vol. 5. Chaetognatna, Hemichordata, Pogonophora, Phoronidia, Ectoprocta, Brachiopoda and Sipunculida
   - Vol. 6. Mollusca
3. E. Ayyar—Manual of Zoology (Part I).
4. T. J. Parker and W. A. Haswell—A Text-book of Zoology, Vol. 1, revised by O. Lowenstein.
5. R. W. Hegner—Invertebrate Zoology.
6. F. A. Brown—Selected Invertebrate Types.
7. A. Sedgwick—A Student Text-book of Zoology, 3 Vols.
8. W. S. Bullough—Practical Invertebrate Anatomy, 2nd ed.
9. A. D. Imms—A General Text-book of Entomology, 8th ed.
10. A. C. Chandler—Introduction to Parasitology, 9th ed.
11. R. R. Kudo—Protozoology.
12. R. D. Barnes—Invertebrate Zoology.
13. The Indian Zoological Memoirs.
    1. K. N. Bahl—*Pheretima.*
    2. B. Prasad—*Pila.*
    3. S. S. Patwardhan—*Palaemon.*
    4. M. L. Bhatia—*Hirudinaria.*

लखनऊ
1 जनवरी, 1963

ई० एल० जॉर्डन

विषय-सूची

प्रोटोप्लाज़्म और कोशिका
(PROTOPLASM AND CELLS)

प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm)

जीवन के सजीव भौतिक आधार को प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं। प्रत्येक सप्राण जीव का शरीर इसी पदार्थ का बना होता है। 1835 में दुजार्डिन (Dujardin) ने कोशिकाओं के भीतरी पदार्थ का अध्ययन किया और उसने इस पदार्थ को एक ऐसा समांग, जिलेटिनी पदार्थ बताया जिसमें संघटना का अभाव था। पुर्किजे (Purkinje) तथा वान मोह्ल (von Mohl) ने 1840 में इस पदार्थ को प्रोटोप्लाज़्म का नाम दिया। शूल्ट्ज़े (Schultze) ने 1861 में जंतुओं एवं पौधों की कोशिकाओं में विद्यमान समानता स्थापित की और इस प्रकार एक सिद्धान्त सामने रखा जिसे बाद में "प्रोटोप्लाज़्म सिद्धांत" कहा गया। इस सिद्धांत में यह बताया गया है कि कोशिका सजीव पदार्थों का ऐसा संचय है जिसके भीतर एक केन्द्रक (न्यूक्लियस) होता है जिसे बाहर से एक कोशिका झिल्ली घेरे रहती है। अलग-अलग जंतुओं के प्रोटोप्लाज़्म में अलग-अलग रचना पाई जाती है यहां तक कि एक ही जंतु के विभिन्न अंगों में भी प्रोटोप्लाज़्म में अंतर पाया जाता है। फिर भी हर प्रोटोप्लाज़्म में अनेक समान लक्षण पाए जाते हैं और कुछ विशिष्ट पदार्थ हर कोशिका में मिलेंगे। प्रोटोप्लाज़्म में विभिन्न चयापचयी (metabolic) कार्यों के करने की क्षमता होती है।

भौतिक-रसायन गुण—प्रोटोप्लाज़्म एक चिपचिपा, जिलेटिनी, अर्ध-तरल पदार्थ होता है जो जल से भारी होता है। किंतु इसकी श्यानता (विस्कॉसिटी) सदा एक जैसी नहीं रहती—अलग-अलग परिस्थितियों में बदलती रहती है। प्रोटोप्लाज़्म एक रंगहीन, पारभासी, जेली-सदृश पदार्थ होता है जिसमें सूक्ष्म आणविक निलंबन पाए जाते हैं। प्रोटोप्लाज़्म कोई अकेला रासायनिक यौगिक नहीं है बल्कि अनेक यौगिकों का मिश्रण है। यदि विभिन्न जंतुओं के प्रोटोप्लाज़्म का परीक्षण किया जाए तो उसमें 34 तत्त्व मिलेंगे जिनमें से 12 तत्त्व हर प्रोटोप्लाज़्म में पाए जाएंगे जो इस प्रकार हैं : कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फॉस्फोरस, कैल्सियम, सोडियम, पोटैशियम, आइरन,

Semi-Liq

Protoplasm metabolism

मैग्नीशियम और क्लोरीन। इन 12 तत्वों में से कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन प्रोटोप्लाज़्म का 98 प्रतिशत भाग बनाते हैं; शेष तत्त्व बहुत थोड़ी मात्राओं में पाए जाते हैं। ये चारों मुख्य तत्त्व प्रोटोप्लाज़्म में अपने कार्यों के लिए विशिष्टतः उपयुक्त होते हैं। जीवित वस्तुएं केवल तभी उत्पन्न हो सकती हैं जब कि ये चारों पदार्थ प्रचुर मात्रा में हों। देखा जाए तो ये ही चारों पदार्थ तमाम कार्बनिक यौगिकों के आधार-स्तम्भ हैं हालांकि वे अकार्बनिक यौगिकों में भी पाए जाते हैं। किसी तत्त्व की मात्रा चाहे कितनी भी कम क्यों न हो मगर उसकी अनिवार्यता जरा भी कम नहीं होती जैसे कि लाल रुधिर कोशिकाओं में लोहा, या तंत्रिका ऊतक एवं जनन कोशिकाओं में फास्फोरस। तत्त्व परस्पर मिलकर प्रोटोप्लाज़्म में कार्बनिक एवं अकार्बनिक दोनों प्रकार के यौगिकों का निर्माण करते हैं। लगभग 35 प्रकार के मुख्य कार्बनिक अणु पाए जाते हैं जो यौगिकों को बनाते हैं। कार्बनिक यौगिक इस प्रकार हैं: विभिन्न प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, न्यूक्लिइक अम्ल, एन्जाइम, हार्मोन एवं विटामिन। प्रोटोप्लाज़्म के अकार्बनिक पदार्थ हैं: जल विभिन्न खनिज लवण तथा गैसें। कार्बनिक यौगिकों का अंश विभिन्न ऊतकों के प्रोटोप्लाज़्म का 4% से 30% तक होता है और उसका शेष 70% से 96% भाग अकार्बनिक यौगिकों का होता है। सामान्य तौर पर हम कह सकते हैं कि प्रोटोप्लाज़्म में 85% से 90% तक जल, 7% से 10% तक विभिन्न प्रोटीन, 1% से 2% तक लिपिड होते हैं, कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य कार्बनिक पदार्थ 1 से 1·5% तक होते हैं और अकार्बनिक सामग्री 1 से 1.5% तक होती है।

प्रोटीन केवल प्रोटोप्लाज़्म में पाए जाते हैं, इसके अलावा वे प्रकृति में और कहीं नहीं पाए जाते। ये कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन से तथा फॉस्फोरस, सलफर, मैग्नीशियम और आयरन के लेशों से बने होते हैं। प्रोटीनों की अद्वितीय विशेषता मुख्यतः उनकी नाइट्रोजन से संबंधित होती है। विभिन्न प्रोटीन प्रोटोप्लाज़्म का ढांचा हैं; उनके अणु बहुत बड़े होते हैं और प्रत्येक अणु हजारों परमाणुओं से मिलकर बना होता है। प्रोटीन कोलॉयडीय अवस्था में होते हैं, विघटन होने पर इनसे ऐमीनो अम्ल बनते हैं। ऐमीनो अम्लों को प्रोटोप्लाज़्म के निर्माण खण्ड भी कहा जाता है। गर्म करने पर प्रोटीनों में स्कंदन (coagulation) हो जाता है। जंतुओं के ऊतकों में अनेक प्रोटीन पाए जाते हैं और जंतुओं की अलग-अलग जातियों में अलग-अलग प्रकार के प्रोटीन पाए जाते हैं। किसी कोशिका की संरचना क्या होगी और उस कोशिका का कार्य क्या होगा, यह उसमें विद्यमान प्रोटीनों की किस्म पर निर्भर होता है। प्रोटोप्लाज़्म और कोशिका की झिल्लियों के सबसे महत्त्वपूण रचक प्रोटीन ही होते हैं। इनके बिना कोशिका की अत्यावश्यक अथवा मार्मिक क्रियाएं चलती नहीं रह सकतीं। प्रत्येक कोशिका निरंतर ऐमीनो अम्लों से बने हजारों विभिन्न प्रकार के प्रोटीनों का निर्माण करती रहती है। अभी तक लगभग 25 प्रकार के ऐमीनो अम्लों की जानकारी है और हर प्रोटीन इन्हीं निर्माण खण्डों में से कुछ का सम्मिश्र संयोजन होता है। शायद ही कोई ऐसे प्रोटीन हों जिनमें सभी ऐमीनो अम्ल मौजूद हों, किंतु ऐमीनो अम्लों के विविध संयोजन के द्वारा असंख्य प्रकार के प्रोटीन

बन सकते हैं। कोशिकाओं की अधिकांश रचनाओं के निर्माण में प्रोटीनों का योगदान होता है, वे उन तमाम एन्जाइमों में भी पाए जाते हैं जिनके द्वारा कोशिकाओं की रासायनिक क्रियाएं सम्पन्न होती हैं, उनके द्वारा यह भी निर्धारित होता है कि कोशिका में किस-किस वस्तु का निर्माण होगा और वह क्या कार्य करेगी। प्रोटीन तीन प्रकार के होते हैं: सरल, संयुग्मित (conjugated) और व्युत्पन्न (derived) प्रोटीन। **सरल प्रोटीन** वे होते हैं जिनमें जल-अपघटन (हाइड्रोलिसिस) होने पर केवल ऐमीनो अम्ल प्राप्त होते हैं, जैसे विभिन्न ऐल्बुमिन, ग्लोबुलिन, हिस्टोन तथा प्रोटैमीन। **संयुग्मित** अथवा **यौगिक प्रोटीन** वे होते हैं जिनमें एक सरल प्रोटीन किसी एक अप्रोटीन पदार्थ, जिसे प्रोस्थेटिक (prosthetic) समूह कहते हैं, से जुड़ा होता है, उदाहरणतः विभिन्न न्यूक्लियोप्रोटीन जिनका प्रोस्थेटिक समूह न्यूक्लिइक अम्ल होता है, ग्लाइकोप्रोटीन जिनमें एक सरल प्रोटीन एक कार्बोहाइड्रेट से जुड़ा होता है, फॉस्फोप्रोटीन जिनमें प्रोटीन फॉस्फोरस के साथ जुड़ा होता है, लाइपोप्रोटीन जिनमें प्रोटीन लाइपिडों के साथ जुड़ा होता है, लेसिथो-प्रोटीन जिनका प्रोस्थेटिक समूह लेसिथिन होता है जैसे रुधिर में पाया जाने वाला फाइ-ब्रिनोजन, और क्रोमोप्रोटीन जिसमें ग्लोबिन का संयोजन आयरन-पोरफाइरिन से होता है जैसे हीमोग्लोबिन। कुछ श्वसन एन्जाइम भी संयुग्मित प्रोटीन होते हैं जैसे कि साइटोक्रोम और फ्लैवोप्रोटीन। **व्युत्पन्न प्रोटीनों** में स्कंदित प्रोटीन और अंशतः जल अपघटित प्रोटीन शामिल हैं जैसे कि विभिन्न प्रोटियोज, पेप्टोन तथा पॉलीपेप्टाइड जो कि प्रोटीनों के विघटन एवं पाचन के द्वारा बनते हैं।

सभी प्रोटीन ऐमीनो अम्लों के बने होते हैं और ये अम्ल ऐलिफैटिक अम्लों से व्युत्पन्न होते हैं। ऊतकों में मिलने वाले मुक्त ऐमीनो अम्ल प्रोटीनों के लगातार विघटन के द्वारा बने होते हैं और कोशिका के भीतर होने वाले संश्लेषण द्वारा भी। ऐमीनो अम्लों में परस्पर जुड़कर लंबी-लंबी शृंखलाएं बना लेने की क्षमता होती है। कोशिकाओं और अंतराकोशिक पदार्थों में प्रोटीनों के अतिरिक्त विभिन्न म्यूकोपॉलीसैकेराइड, म्यूकोप्रो-टीन, तथा ग्लाइकोप्रोटीन जैसे यौगिक पाए जाते हैं। **म्यूकोपॉलीसैकेरोइड** (muco-polysaccharides) उच्च अणु-भार वाले बहुलक (polymer) होते हैं जिनमें ऐसिटिलित हेक्सोसैमीन होता है, वे या तो मुक्त रूप में पाए जाते हैं या अकार्बनिक बेसों के साथ संयोजित रूप में या प्रोटीनों के साथ संयोजित रूप में जैसे कि गैलेक्टोज और हीपैरिन। **म्यूकोप्रोटीन** (mucoprotein) जिन्हें म्यूकॉयड भी कहते हैं तथा विभिन्न **ग्लाइको-प्रोटीन** (glycoprotein) प्रोटीनों के साथ हाइड्रोकार्बनों के सम्मिश्र होते हैं जैसे कि लार में स्रावित होने वाले पदार्थ एवं अण्डाणुओं का ऐल्बुमिन। विभिन्न म्यूकोपॉली-सैकेराइड, म्यूकोप्रोटीन और ग्लाइकोप्रोटीन संयोजी ऊतक के मैट्रिक्स में पाए जाते हैं जहां वे बंधन एवं सुरक्षा प्रदान करने वाले साधनों के रूप में कार्य करते हैं।

कार्बोहाइड्रेटों की रचना कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से होती है और उनमें हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन 2 और 1 के अनुपात में होती हैं। कार्बोहाइड्रेटों का मुख्य कार्य प्रोटोप्लाज़्म में रासायनिक ऊर्जा प्रदान करना होता है। कार्बोहाइड्रेटों के

विघटन पर उनसे ग्लूकोज बनता है जो कि ऊर्जा प्रदान करता है और साथ ही संचय के वास्ते ग्लाइकोजन का निर्माण करता है। आवश्यकता पड़ने पर ग्लाइकोजन को पुनः ग्लूकोज में बदला जा सकता है। अधिकतर पौधों में कार्बोहाइड्रेट कोशिका-भित्तियों के आवश्यक अंश होते हैं और कोशिका अथवा सम्पूर्ण पौधों के लिए एक दृढ़ता-आधार प्रदान करते हैं। पौधे प्रकाश की मौजूदगी में सीधे कार्बन-डाइऑक्साइड और जल से अनेक कार्बोहाइड्रेटों का संश्लेषण कर सकते हैं। जंतु-कोशिकाओं में अपेक्षाकृत थोड़ी संख्या में कार्बोहाइड्रेट पाए जाते हैं, ये हैं गैलेक्टोज, ग्लूकोज, ग्लाइकोजन, तथा एमीनो शर्कराएं। जैविक महत्त्व के कार्बोहाइड्रेट तीन वर्गों में आते हैं जो इस प्रकार हैं : मॉनोसैकेराइड, डाइसैकेराइड तथा पॉलीसैकेराइड। इनमें से पहले दो वर्गों को आमतौर से शर्कराएं कहते हैं क्योंकि स्वाद में वे मीठे होते हैं, वे पानी में घुल सकते हैं और अपोहक (डायलिसिस करने वाली) झिल्ली में से सरलता से गुजर सकते हैं, उनके क्रिस्टल भी सरलता से बन सकते हैं। पॉलीसैकेराइड जल के साथ मिलकर कोलॉयडीय घोल बनाते हैं; वे झिल्लियों में से होकर नहीं गुजर सकते और न ही उनके क्रिस्टल बन सकते हैं। मॉनोसक्रेराइड साधारण शर्कराएं होती हैं जैसे कि पेंटोज, ट्रायोज, एवं हेक्सोज; पेंटोज और हेक्सोज प्रोटोप्लाज्म के बहुत महत्त्वपूर्ण रचक होते हैं और न्यूक्लिइक अम्लों में पाए जाते हैं। पेंटोजों में पांच कार्बन परमाणु पाए जाते हैं जैसे कि राइबोज और डेजॉक्सीराइबोज नामक दो पेंटोज न्यूक्लिइक अम्लों में पाए जाते हैं। ग्लूकोज, गैलेक्टोज तथा फ्रक्टोज सामान्य हेक्सोज हैं, इनमें 6 कार्बन परमाणु पाए जाते हैं। ग्लूकोज ($C_6H_2O_6$) एक हेक्सोज है जो कोशिकाओं के ऊर्जा परिवर्तनों में काम आता है। यह वह कच्चा पदार्थ भी है जिससे कोशिका में अन्य कार्बोहाइड्रेटों का निर्माण होता है। **डाइसैकेराइड** दोहरी शर्कराएं होते हैं जो कि मॉनोसैकेराइडों के दो अणुओं के संघनन (कण्डन्सेशन) से होता है जिसमें जल के एक अणु की हानि होती है; इनमें सुक्रोज, माल्टोज तथा लेक्टोज आते हैं। ये तीनों शर्कराएं हेक्सोजों से व्युत्पन्न होती हैं। **पॉलीसैकेराइड** जटिल शर्कराएं होती हैं जो कि मॉनोसैकेराइडों के अनेक अणुओं के संघनन द्वारा बनते हैं जिसके अंतर्गत जल अणुओं की हानि हो जाती है; जल-अपघटन होने पर पॉलीसैकेराइडों से सरल शर्कराओं के अणु प्राप्त होते हैं। मुख्य पॉलीसैकेराइडों में सेलुलोज, स्टार्च, और ग्लाइकोजन आते हैं, जिनमें से अंतिम दो पदार्थ कोशिकाओं के आरक्षित पदार्थ होते हैं। लिग्निन के साथ मिलकर सेलुलोज पौधों में न केवल कोशिका-भित्तियों का ही वरन् पौधे को दृढ़ता प्रदान करने वाले कंकाल का भी निर्माण करते हैं। जल-अपघटन होने पर सेलुलोज से ग्लूकोज बनता है। अधिकतर प्राणियों में सेलुलोज का पाचन नहीं हो पाता किंतु कुछ शाकाहारी प्राणियों में बैक्टीरिया की सहायता से और दीमकों में कशाभिकों (फ्लैजेलेट-प्राणियों) की सहायता से ऐसा हो सकता है। स्टार्च कोशिकाओं में अंतःस्थ (inclusion) पिंड के रूप में पाया जाता है जबकि ग्लाइकोजन मुक्त रूप में अथवा प्रोटोप्लाज्म में घुला हुआ पाया जा सकता है। स्टार्च का संश्लेषण क्लोरोफिल द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल से होता है। ग्लाइकोजन को जंतु-कोशिकाओं का स्टार्च माना जा सकता है; यह ऊर्जा का एक मुख्य स्रोत है और अनेक अंगों में पाया जाता है किंतु इसका सबसे अधिक

महत्त्व जिगर (यकृत) तथा पेशियों में है। आवश्यकता पड़ने पर जिगर और पेशियों का ग्लाइकोजन ग्लूकोज में बदल जाता है।

लाइपिड—वसाओं और वसा जैसे पदार्थों को लाइपिड कहते हैं। ये कार्बन हाइड्रोजन, तथा ऑक्सीजन के बने होते हैं और जल में अघुलनशील होते हैं। लाइपिड संचित खाद्य-पदार्थ के रूप में पाए जाते हैं और प्रोटोप्लाज़्म के अंश के रूप में भी। ये ऊर्जा सप्लाई करते हैं हालांकि उतनी जल्दी नहीं जितनी कि ग्लूकोज। लाइपिडों में ऐसे बहुत से यौगिक शामिल हैं जो जल में अघुलनशील होते हुए भी बेन्जीन, पेट्रोल, ईथर तथा क्लोरोफॉर्म जैसे कार्बनिक विलायकों में घुल सकते हैं। लाइपिडो को इन वर्गों में विभाजित किया जाता है: सरल लाइपिड, स्टेरॉयड, सम्मिश्र लाइपिड, तथा कैरोटिनॉयड। सरल लाइपिड वसा अम्लों (फैटी एसिडों) के ऐल्कोहॉल एस्टर होते हैं, जैसे कि विभिन्न ग्लीसेराइड जो कि वसा अम्लों और ग्लीसेरॉल के बने होते हैं; इन्हें वसाओं और तेलों में विभाजित किया जा सकता है। वसाएं 20°C पर ठोस होती हैं जबकि तेल इस ताप पर तरल अवस्था में होते हैं। जल-अपघटन होने पर वसा के प्रत्येक अणु से एक अणु ग्लीसेरॉल (ग्लीसेरीन) का तथा तीन अणु वसा अम्लों के प्राप्त होते हैं। सामान्यतः मिलने वाली चर्बियां पशुवसा (टैलो) तथा सूअर की चर्बी (लार्ड) होती हैं। सामान्य मिलने वाले तेल ये हैं—अरंडी का तेल, सरसों का तेल और जैतून का तेल। सरल लाइपिडों में मोम भी आता है जो कि ग्लीसेरॉल को छोड़कर वसा तेलों के ऐल्कोहॉल के साथ एस्टर होते हैं, जैसे कि शहद की मक्खी का मोम। **स्टेरॉयडों** में एक ऐलिफैटिक वलय नाभिक होता है जिसमें संतृप्त हाइड्रोकार्बन होते हैं। स्टेरॉयडों से शरीर में महत्त्वपूर्ण पदार्थ बनते हैं जैसे कि पित्त के अम्ल, विटामिन D और गोनडों तथा ऐड्रीनल कार्टेक्स के हार्मोन। जिन स्टेरॉयडों में एक समूह विद्यमान होता है उन्हें स्टेरॉल कहते हैं जैसे कोलेस्ट्रोल जो कि पित्त, मस्तिष्क और ऐड्रीनल ग्रंथियों में पाया जाता है। **सम्मिश्र लाइपिड** वे होते हैं जो जल-अपघटन होने पर न केवल ऐल्कोहॉल तथा अम्ल प्रदान करते हैं बल्कि अन्य यौगिक भी उदाहरणतः लेसिथिन (lecithin) और नर्वोन (nervone)। नर्वोन वह पदार्थ है जो तंत्रिकाओं के मायेलिन आवरण में पाया जाता है। **कैरोटिनॉयड** कोशिकाओं में पाए जाने वाले लाल अथवा नारंगी वर्णक (पिग्मेंट) होते हैं। ये जल में अघुलनशील किंतु कार्बनिक विलायकों में घुलनशील होते हैं, उदाहरणतः विटामिन A, अंडे का पीतक वर्णक और कैरोटीन जो कि गाजर और घास में पाया जाता है।

न्यूक्लिइक अम्ल—न्यूक्लिइक अम्लों में सम्मिश्र रासायनिक रचना वाले अणु बहुत बड़े-बड़े होते हैं, फिर भी वे कुछ थोड़े ही प्रकार के छोटे अणुओं के बने होते हैं। न्यूक्लिइक अम्ल के अणुओं में ये आते हैं: एक पेंटोज शर्करा, फॉस्फोरिक अम्ल जिसे रासायनिक संयोजन की दशा में प्रायः फॉस्फेट कहते हैं, तथा हाइड्रोजन बंधनों (बॉन्डों) द्वारा जुड़े हुए प्यूरीनों (purines) एवं पाइरिमिडीनों (pyrimidines) के नाइट्रोजन-युक्त बेस। पाइरिमिडीनों में चार परमाणु कार्बन के और दो परमाणु नाइट्रोजन के होते हैं जो कि एक षट्कोण के रूप में व्यवस्थित होते हैं। परंतु प्यूरीनों में वैसे ही षट्कोण

के साथ-साथ एक कार्बन और दो नाइट्रोजन परमाणुओं के पार्श्व वलय (साइड रिंग) भी होते हैं। न्यूक्लिइक अम्ल कोशिकाओं के आधारभूत पदार्थ होते हैं और केन्द्रक, केन्द्रिका (न्यूक्लियोलस), क्रोमोसोम तथा उनके जीनों का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश होते हैं। कुछ न्यूक्लिइक अम्ल कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) में भी पाए जाते हैं। न्यूक्लिइक अम्ल हर जीवित वस्तु की विशेषता है और उनके बिना जीवन का अस्तित्व असम्भव है। सबसे महत्त्वपूर्ण न्यूक्लिइक अम्ल हैं **डेसॉक्सीराइबोन्यूक्लिइक एसिड** (desoxyribonucleic acid) जिसे सामान्यतः DNA कहा जाता है और राइबोन्यूक्लिइक एसिड (ribo-nucleic acid) जिसे RNA कहा जाता है। इन दोनों की संरचना एक ही होती है, अंतर बस इतना है कि DNA की शर्करा में RNA की शर्करा की अपेक्षा एक ऑक्सीजन-परमाण कम होता है।

DNA केवल केन्द्रक में ही पाया जाता है जहां से वह कोशिका की क्रियाओं का नियंत्रण एवं उनका दिशा-दर्शन करता रहता है। DNA एक बहुत अधिक अणु-भार वाला यौगिक होता है (10 लाख से ऊपर)। इसमें परस्पर जुड़े हुए छोटे अणुओं का बना एक अति विशाल अणु होता है, किंतु इसके अणु-भार में घट-बढ़ हो सकती है। DNA अणु में डेसॉक्सीराइबोज नामक एक पेंटोज शर्करा होती है और फॉस्फोरिक अम्ल होता है जिसके साथ पाइरिमिडीनों एवं प्यूरीनों के चार बेस जुड़े होते हैं। प्यूरीनों के बेस हैं **ऐडेनीन** (A) तथा **ग्वानीन** (G)), और पाइरिमिडीनों के बेस हैं **साइटोसीन** (C) तथा **थाइमीन** (T)। बेस सदैव दो-दो के जोड़ों में पाए जाते हैं, G का जोड़ा सदैव C के साथ बराबर मात्रा में बनता है, और A बराबर मात्रा में हमेशा T के साथ जोड़ा बनाता है। ये जोड़े एक दूसरे से हाइड्रोजन बंधकों द्वारा जकड़े होते हैं। जब कोई शर्करा अणु किसी फॉस्फेट से जुड़ा होता है और इस शर्करा के साथ कोई पाइरि-मिडीन अथवा प्यूरीन बेस लगा होता है तब तीन भागों से बने इस नये अणु को **न्यूक्लि-योटाइड** (nucleotide) कहते हैं। न्यूक्लियोटाइड नामक रचना न्यूक्लिइक अम्ल की एक अकेली संरचनात्मक इकाई होती है जो कि एक पेंटोज शर्करा, एक नाइट्रोजनी बेस तथा फॉस्फोरिक अम्ल की बनी होती है। DNA में केवल चार प्रकार के न्यूक्लियो-टाइड हो सकते हैं, क्योंकि बेस भी चार ही प्रकार के पाए जाते हैं (A,C,G, और T)। चारों न्यूक्लियोटाइड एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते होते हैं, उनमें पाया जाने वाला अंतर केवल उनके भीतर स्थित प्यूरीन अथवा पाइरिमिडीन की किस्म में होता है। किंतु DNA अणु न्यूक्लियोटाइडों की बहुत बड़ी संख्या से बना होता है जो कि क्रमवत् परस्पर जुड़कर दो शृंखलाएं बनाते हैं। न्यूक्लिइक अम्ल के शर्करा एवं फॉस्फेट रचकों में शायद ही कभी अंतर पाया जाता हो, लेकिन प्यूरीन तथा पाइरिमिडीन के चार बेसों की व्यवस्था, क्रम और उनकी संभावित विभिन्नता में बहुत ज्यादा अंतर पाए जाते हैं। अलग-अलग जीवों में इन चार बेसों के अनुपात में बहुत अंतर पाया जाता है। किंतु साइटोसीन और ग्वानीन की, तथा एडेनीन और थाइमीन की परस्पर मात्राएं सदैव समान होती हैं।

1953 में वाट्सन और क्रिक नेDNAके अणु का एक मॉडल प्रस्तुत किया। उनके इस मॉडल के अनुसार लंबेDNA अणु की तमाम इकाइयाँ अथवा न्यूक्लियोटाइड फॉस्फेटों के द्वारा जुड़े होते हैं और दो ऐसी एकल शृंखलाओं में व्यवस्थित होते हैं जो एक कुंडलित
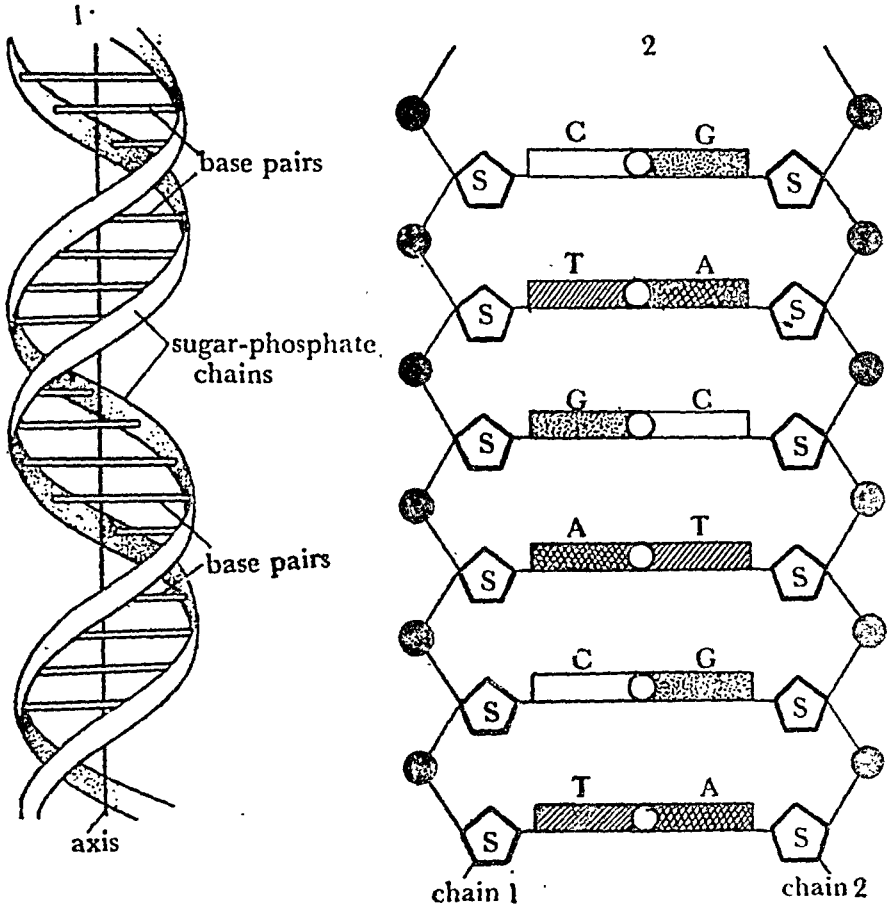
चित्र 1—DNA अणु। 1. दो शृंखलाओं की सर्पिल व्यवस्था। 2. दो शृंखलाएं जिनमें न्यूक्लियोटाइड दर्शाए गए हैं। काले गोले=फॉस्फेट; S=डेसाक्सीराइबोज शर्करा; A=ऐडेनीन; C=साइटोसीन; G=ग्वानीन; T=थाइमीन। सफेद गोले=हाइड्रोजन बन्ध।

कुंडलिनी (हेलिक्स) के रूप में एक-दूसरे में लिपटी होती हैं और उनमें बेसों के द्वारा अगल-बगल फैले हुए संयोजन बने होते हैं। इस प्रकार यह अणु एक सर्पिल सीढ़ी के रूप में होता है। सीढ़ी का प्रत्येक सीधा खड़ा खंड फॉस्फेटों और शर्कराओं की शृंखला का बना होता है और सीढ़ी के डंडे हाइड्रोजन द्वारा जुड़े प्यूरीनों एवं पाइरिमिडीनों के बेस-जोड़े होते हैं। हर डंडे में या तो थाइमीन के साथ जोड़ा बनाते हुए ऐडेनीन होता है या ग्वानीन के

साथ जोड़ा बनाते हुए साइटोसीन। DNA के एक अणु में इस प्रकार के प्यूरीन-पाइरिमिडीन बेस जोड़े 20,000 तक की संख्या में हो सकते हैं। DNA की दोनों शृंखलाएं एक-दूसरे की पूरक होती हैं और प्रत्येक शृंखला में बेस-जोड़ों की संख्याओं और व्यवस्थाओं के कारण भारी विविधता पाई जा सकती है। इन दो शृंखलाओं द्वारा कुंडलिनी में हजारों लपेट बने हो सकते हैं। दोनों शृंखलाओं पर बने बेस-जोड़ों के क्रम में ही संकेत-सूचना निहित होती है।

केन्द्रक में DNA की मात्रा लगभग हर परिस्थिति में एक ही बनी रहती है। DNA केन्द्रक से बाहर कभी नहीं आता, यह केन्द्रक के भीतर से ही कोशिका की क्रियाओं का संचालन करता रहता है। इसमें आत्म-अनुलिपिकरण (self-duplication) की शक्ति होती है—ऐसा करने में वह अपने हाइड्रोजन बन्धों के सहारे लम्बाई में चिरता जाता हुआ दो शृंखलाएं बना लेता है, दोनों शृंखलाएं पृथक् हो जाती हैं और उनमें से प्रत्येक शृंखला ठीक उस अपने साथ वाले प्रकार की एक और नयी शृंखला का निर्माण कर लेती है जैसी से वह पृथक् हुई थी। इस प्रकार वह अपनी एक प्रतिलिपि बना सकता है जिसके कारण कोई एक कोशिका विभाजित होकर दो कोशिकाओं को जन्म दे सकती हैं। DNA के अणुओं में एक विचित्र लक्षण यह है कि वे परस्पर चिपकते जाते हुए एक योजना-बद्ध संरचनात्मक ढेर या पुंज बना सकते हैं। जब ये अणु साथ-साथ आते हैं तब ये अपने पर्यावरण (environment) में विद्यमान अन्य अणुओं को प्रभावित करते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे अन्य अणु एक "टेम्प्लेट" अथवा सांचे के रूप में इस प्रकार व्यवस्थित हो जाते हैं कि छोटे कार्बनिक अणुओं में एक निश्चित व्यवस्था आ जाती है।

RNA में भी वही रचक पाए जाते हैं जो DNA में होते हैं, अंतर बस इतना है कि RNA में **राइबोज शर्करा** होती है जिसमें DNA की डेसॉक्सीराइबोज शर्करा की अपेक्षा ऑक्सीजन का एक परमाणु अधिक होता है तथा इसके बेस ऐडेनीन, साइटोसीन, ग्वानीन तथा **यूरैसिल** (uracil) होते हैं (थाइमीन के स्थान पर इसका पाइरिमिडीन बेस यूरैसिल होता है)। RNA में चार प्रकार के न्यूक्लियोटाइड होते हैं क्योंकि केवल चार प्रकार के बेस होते हैं (A,C,G, और U)। वर्तमान प्रमाणों के अनुसार RNA न्यूक्लियोटाइडों की बनी केवल एक ही शृंखला के रूप में होता है न कि DNA की तरह दोहरी शृंखला के रूप में। RNA पहले केन्द्रक में DNA के द्वारा बनता है जहां हो सकता है वह केन्द्रिका (न्यूक्लियोलस) में संचित हो जाता हो किंतु इसका अधिकतर भाग या तो सीधे ही या केन्द्रिका में संचित हो जाने के बाद साइटोप्लाज्म में पहुंच जाता है। यह कणों के भीतर रहता है जो या तो साइटोप्लाज्म में स्वच्छन्द तिरते रहते हैं या कोशिका की झिल्लियों का अस्तर बनाते हैं, यह राइबोसोमों (ribosomes) तथा माइक्रोसोमों (microsomes) में सक्रिय रहता है। कुछ RNA को संदेशवाहक (messenger) माना जाता है जो कि DNA से सूचना को लेकर साइटोप्लाज्म में प्रोटीन-निर्माण के स्थानों तक पहुंचाता है। कुछ अन्य प्रकार के RNA विशिष्ट प्रकार के ऐमीनो अम्लों को लेकर प्रोटीनों के अणुओं का निर्माण करते हैं। RNA की मात्रा कोशिका की पोषण-संबंधी दशा के अनुसार कम या ज्यादा होती रहती है।

प्रोटोप्लाज्म की विविध क्रियाओं में न्यूक्लिइक अम्लों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रोटीनों के साथ मिलकर ये न्यूक्लिइक अम्ल ही जीवन-संबंधी तमाम घटनाओं का आधार होते हैं। ये एक कोशिका से दूसरी कोशिका को सूचना प्रेषित करते हैं, कोशिका-विभाजन सम्पन्न कराते हैं, वाइरसों का सार-भाग ये ही होते हैं क्योंकि किसी भी वाइरस का कण DNA के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़ा हुआ एक प्रोटीन होता है, और न्यूक्लिइक अम्लों पर किए गए अध्ययनों से वाइरसों के कार्य करने की विधि की जानकारी मिली है। राइबोसोमों के साथ कार्य करते हुए विविध प्रकार के RNA के माध्यम से DNA साइटोप्लाज्म में प्रोटीनों के संश्लेषण का नियंत्रण एवं संचालन करता है। प्रोटीनों के इस संश्लेषण में केन्द्रक-स्थित DNA विशिष्ट RNA के निर्माण का संचालन करता है— दूसरे शब्दों में DNA एक ऐसे सांचे का काम करता है जिसमें RNA ढलता जाता है। इस RNA को **संदेशवाहक** RNA (messenger RNA) कहते हैं, जो केन्द्रक झिल्ली के छिद्रों से होकर बाहर निकल आता है और राइबोसोमों के साथ आ जाता है, उसके बाद से यह संदेशवाहक RNA भी स्वयं एक ढांचा बन जाता है। अन्य प्रकार के RNA जिन्हें **अंतरण** अथवा **ट्रांसफर** RNA (transfer RNA) कहते हैं और जो पहले से ही साइटोप्लाज्म में मौजूद होते हैं अब अलग-अलग ऐमीनो अम्ल को अपने साथ लेकर उन्हें राइबोसोमों में ले जाते हैं। अपने ऐमीनो अम्लों के साथ-साथ विभिन्न ट्रांसफर RNA राइबोसोमों के RNA के ऊपर आकर एक विशिष्ट क्रम में जुड़ जाते हैं और इस प्रकार एक नई पॉलीपेप्टाइड शृंखला को जन्म देते हैं जो कि प्रोटीन अणु का अंश होती है। यह प्रक्रम तब तक दोहराया जाता रहता है जब तक कि प्रोटीन का संश्लेषण सम्पूर्ण नहीं हो जाता। इस प्रकार बनने वाले प्रोटीन की कौन-सी किस्म होगी यह ऐमीनो अम्लों के विशिष्ट क्रम पर निर्भर होता है। ट्रांसफर RNA के अणु अब मुक्त हो जाते हैं और उनमें से हरएक विशिष्ट प्रकार के किसी एक ऐमीनो अम्ल को चुन लेने के लिए पुनः उपलब्ध हो जाता है। प्रोटीनों के संश्लेषण पर इस प्रकार का न्यूक्लिइक अम्लों का नियंत्रण कोशिका में होने वाली तमाम रासायनिक क्रियाओं का परोक्ष नियंत्रण है। कुछ प्रोटीन कोशिकाओं के अंशों के निर्माण में सीधे ही प्रयोग में आ जाते हैं जबकि अन्य प्रोटीन एन्जाइमों के रूप में कार्य करते हैं जो कोशिकाओं में हो सकने वाली रासायनिक क्रियाओं के प्रकारों का नियंत्रण करते हैं। अनेक एन्जाइमों में भी न्यूक्लिइक अम्ल होते हैं जैसे कि ऊर्जा-वाहक **ऐडेनोसीन ट्राइफॉस्फेट** (adenosine triphosphate) में जो तमाम जीवधारियों में पाया जाता है और ऊर्जा के संचय एवं उसकी सप्लाई का कार्य करता है। न्यूक्लिइक अम्ल क्रोमोसोम के जीनों का नियंत्रण करते हैं और ये जीन DNA के बने होते हैं। वंशागति-लक्षणों के निर्धारण का उत्तरदायित्व इन्हीं जीनों पर होता है। कोशिका की DNA मात्रा स्थिर होती है और वह सम्पूर्ण रूप में जनक कोशिका से संतति कोशिकाओं में पहुंच जाती है। माइटोसिस में DNA की मात्रा दुगुनी हो जाती है जिससे कि प्रत्येक संतति कोशिका में जनक कोशिका के बिलकुल एक समान DNA पहुंच जाता है। कोशिका के भीतर DNA प्रोटीनों के साथ परिक्षेपित (dispersed) या

संघनित (condensed)) होकर विभिन्न न्यूक्लियोप्रोटीन बनाता है—ये न्यूक्लियो-प्रोटीन क्रोमोसोमों एवं जीनों के घटक होते हैं। DNA अंश का सीधा संबंध क्रोमोसोमों और जीनों से होता है, अर्थात् कोशिका की वंशागति-संबंधी अंतर्वस्तु से। क्रोमोसोमों का क्रोमेटिन चार मुख्य अणुओं में विभाजित होता है जो इस प्रकार हैं—हिस्टोन (histone) एक प्रोटैमीन (protamin), DNA और RNA, किंतु मूल महत्त्व का अणु DNA ही है क्योंकि यह वंशागति का रासायनिक आधार है और DNA के एक अणु में अनेक जीन निहित हो सकते हैं, हर जीन वंशागति की सूचना का स्रोत होता है। DNA वंशानुगत जीनों का मुख्य भाग होता है और वास्तव में कुछ विशेषज्ञों का मत है कि प्रत्येक जीन न्यूक्लियोप्रोटीन का एक अणु होता है। मूल युग्मनज (zygote) से अवतरित होते हुए ये जीन देह की प्रत्येक कोशिका में ठीक अपने जैसी प्रतिकृति पहुंचा देते हैं; दूसरे, जीन जीवधारी के परिवर्धन के हर एक-एक चरण का नियंत्रण करते हैं और इस प्रकार वंशागति एवं परिवर्धन का नियंत्रण तथा दिशा-दर्शन DNA ही करता है।

एन्जाइम ((Enzymes) सम्मिश्र प्रोटीन होते हैं जो घोले जाने पर कोलॉय-डीय घोल बनाते हैं। ये प्रोटोप्लाज्म, रुधिर और पाचन तंत्र में पाए जाते हैं। एंजाइम सूक्ष्म मात्राओं में पाए जाने वाले कार्बनिक उत्प्रेरण कारक होते हैं, ये चयापचय की रासायनिक क्रियाओं को तीव्र गति से सम्पन्न कराते हैं। अकेली कोशिका में दो से तीन हजार तक विभिन्न एन्जाइम पाए जाते हैं। कुछ एन्जाइम पूर्णतः प्रोटीन होते हैं (ट्रिप्सिन, पेप्सिन), जब कि अन्य में कुछ अंश प्रोटीन का और कुछ अंश अप्रोटीन का होता है (विभिन्न विटामिन, साइटोक्रोम), अनिवार्य प्रोटीन के बिना एंजाइम की उत्प्रेरण शक्ति जाती रहती है। लाइपोप्रोटीन से युक्त एंजाइमों को छोड़कर शेष सभी एंजाइम जल में घुलनशील होते हैं। एन्जाइमों का निर्माण केवल सजीव जीवधारी ही कर सकते हैं, और प्रयोगशाला में अभी तक कोई भी ऐन्जाइम नहीं बनाया जा सका है। ऐन्जाइमों द्वारा ऊतकों में ऑक्सी-करण, जलअपघटन और पदार्थों का संश्लेषण होता है। वे अंतःस्राव ग्रंथियों में हार्मोनों का निर्माण कराते हैं, और स्वेद-ग्रंथियों से पसीने का स्राव कराते हैं। कोशिका एक सूक्ष्म प्रयोगशाला के समान है जिसमें सामान्य देह-ताप पर विविध पदार्थों का संश्लेषण एवं अपघटन होता रहता है, और तमाम निहित रासायनिक क्रियाएं उन एन्जाइमों की ही मध्यस्थता के द्वारा सम्पन्न होती हैं जो जैव क्रियाओं के लिए आवश्यक रासायनिक क्रियाओं को तीव्रता से चलाने के वास्ते जैविक उत्प्रेरक हैं। एन्जाइम कोशिकाओं में उत्पन्न होते और उनमें से अधिकतर वहीं काम करते हैं, किंतु पाचन-एंजाइम कोशिकाओं के बाहर स्रावित होते हैं जहां वे आहार पर क्रिया करते हैं। प्रायः एन्जाइमी क्रिया विशिष्ट अथवा सीमित होती है और प्रत्येक एन्जाइम एक विशेष सब्स्ट्रेट पर ही क्रिया कर सकता है, लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि कोई विशेष एन्जाइम एक समय में जलअप-घटनी एन्जाइम के रूप में कार्य कर सकता है और दूसरे समय वही एन्जाइम संश्लेषी क्रिया भी दर्शा सकता है। एन्जाइम अस्थिर पदार्थ हैं और उच्च तापपर (65°C से ऊपर)

अथवा अनेक विविध रासायनिक पदार्थों से वे सरलता से नष्ट अथवा निष्क्रिय हो जाते हैं। प्रत्येक चयापचयी प्रतिक्रिया में स्वयं एन्जाइम अपरिवर्तित बना रहता है किंतु ऐसी संभावना है कि वे धीरे-धीरे अपघटित होते जाते हैं और उनका पुनः संश्लेषण आवश्यक हो जाता है। एन्जाइम किसी पदार्थ पर उससे संयोजित होकर तथा किसी अज्ञात विधि से उसे इस प्रकार सक्रिय बनाकर कार्य करता है कि उस पदार्थ में और आगे रासायनिक परिवर्तन होता है, और साथ ही साथ वह अपने एन्जाइम से पृथक् भी हो जाता है, तथा एन्जाइम समाप्त नहीं हो जाता बल्कि उसी पदार्थ की और अधिक मात्रा को प्रभावित करने के लिए मुक्त हो जाता है। एन्जाइम की अत्यन्त थोड़ी सी ही मात्रा बहुत बड़ा प्रभाव उत्पन्न करती रह सकती है। एन्जाइमों को नाम देने के लिए जिस पदार्थ पर वे क्रिया करते हैं उसके नाम के आगे "एज" ("ase") जोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए प्रोटीनों का विघटन करने वाले एन्जाइमों को **प्रोटीनेजों** (proteinases) का नाम दिया जाता है, जो एन्जाइम विभिन्न सब्स्ट्रेटों (कार्यद्रव्यों) से हाइड्रोजन को पृथक् करते हैं उन्हें डीहाइड्रोजीनेज (dehydrogenase) कहा जाता है। कुछ एन्जाइम जिन्हें जाइमोजेन (zymogens) कहते हैं कोशिकाओं में निष्क्रिय अवस्था में पाए जाते हैं। ये जाइमोजेन बाद में काइनेज नामक पदार्थों के द्वारा सक्रिय बना दिए जाते हैं, जैसे अग्न्याशय (pancreas) में उत्पन्न होने वाला ट्रिप्सिनोजेन आंत्र के एन्टेरोकाइनेज के द्वारा सक्रिय होकर ट्रिप्सिन बन जाता है। कोशिका में पाए जाने वाले एन्जाइमों की संख्या अलग-अलग ऊतक में भिन्न होती है लेकिन अकेली कोशिका में कम-से-कम एक हजार प्रकार के विभिन्न एन्जाइम पाए जाते हैं।

हार्मोन (Hormones) अंतःस्रावी ग्रंथियों के प्रोटोप्लाज्म के कार्बनिक रासायनिक स्राव होते हैं। हार्मोन जीव के किसी एक भाग में अत्यंत अल्प मात्रा में बनते हैं और रक्त द्वारा अन्य भागों में पहुंचाए जाते हैं जहां पर वह कोई भारी असर पैदा करते हैं। हार्मोनों के द्वारा अंगों के कार्यों तथा चयापचयी क्रियाओं पर बहुत तीव्रता से प्रभाव पड़ता है। जंतु की विभिन्न अंतःस्रावी ग्रंथियों से अलग-अलग संघटना एवं क्रियाओं वाले विविध हार्मोन निकलते हैं। थाइरॉइड ग्रंथि से थाइरॉक्सिन (thyroxin) निकलता है जो ऊर्जा का विमोचन करता है। ऐड्रीनल कॉर्टेक्स से कॉर्टिन (cortin) का स्राव होता है जो रक्त और हड्डियों में लवणों का संतुलन बनाए रखता है। ऐड्रीनल कॉर्टेक्स से ही स्रावित होने वाला एक अन्य हार्मोन कॉर्टिसोन (cortisone) प्रोटीनों तथा कार्बोहाइड्रेटों के चयापचय से संबंधित है।

ऐड्रीनल मेडुला से उत्पन्न होने वाला ऐड्रीनेलीन (adrenalin) अनैच्छिक पेशियों की तान (tonus) बनाए रखता है। पीयूष ग्रंथि (pituitary gland) से अनेक महत्त्वपूर्ण हार्मोन निकलते हैं, प्रोलैक्टिन से दूध का स्राव प्रारंभ होता और जारी बना रहता है; इंटरमिडिन वर्णकों के प्रसार का नियंत्रण करता है, और ऑक्सीटोसिन शिशु-जन्म में सहायता करता है। अग्न्याशय से उत्पन्न होने वाला इन्सुलिन जिगर और

पेशियों को ऊर्जा-उत्पादन के वास्ते ग्लाइकोजेन संचित करने के लिए प्रेरित करता है। गोनडों (जनन ग्रंथियों) से ऐंड्रोजन (androgens) तथा एस्ट्रोजन (estrogens) उत्पन्न होते हैं जो लैंगिक अंगों तथा द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के परिवर्धन का नियंत्रण करते हैं। हार्मोनों का अधिकतर कशेरुकियों में अध्ययन किया गया है किन्तु कीटों के सिर में कार्पोरा ऐलैटा (corpora allata) नामक एक जोड़ी छोटी अंतःस्रावी ग्रंथियां पाई जाती हैं जिनसे कायांतरण, निर्मोचन और अंड-निर्माण का नियंत्रण होता है।

विटामिन (Vitamins) सम्मिश्र कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो प्रोटोप्लाज्म में मौजूद होते हुए भी जीव में उसके वातावरण से प्राप्त होते हैं। जंतु में विटामिन खाने के साथ-साथ शरीर में पहुंचते हैं और अंततः हरे पौधों से ही उपलब्ध होते हैं। वृद्धि, उपापचय तथा स्वास्थ्य बनाए रखने के वास्ते विटामिन अनिवार्य हैं, विटामिनों के बिना जंतु अपने खाए जाने वाले आहार का पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाता। कदाचित् विटामिन एन्जाइम-तंत्र का अंश होते हैं, और जीव के लिए आवश्यक प्रत्येक विटामिन का संश्लेषण अन्य जीवों के द्वारा होता है। इस प्रकार विटामिनों की लगातार सप्लाई मात्र आहार द्वारा ही हो सकनी है। चयापचय में विटामिनों का विघटन होता और उनका लोप हो जाता है। जंतु में विटामिन की क्षति-पूर्ति संश्लेषण द्वारा नहीं हो सकती, उन्हें बाहर से ही ग्रहण करना होगा। विटामिनों के अभाव से उपापचय की दर घट जाती है और उससे अभाव रोग उत्पन्न हो सकता है तथा अपरिपक्व जंतुओं की बढ़वार रुक जाती है।

विटामिन A (ऐक्जेरापटाल, axerophtol) वसा-घुलनशील है, यह यकृत में जमा किया जाता है और रेटिना के विजुअल पर्पल के निर्माण में काम आता है। यह आंख के एपिथीलियम, श्वसन मार्गों तथा आहार तंत्र को संक्रमणों के प्रतिरोधी बनाता है। इसके अभाव में वृद्धि में कमी आ जाती है और मनुष्य में कॉर्निया में कड़ापन आ जाता तथा रतौंधी हो जाती है। जंतुओं के लिए विटामिन A का प्रधान स्रोत कैरोटीन है जो हरे पौधों में संश्लिष्ट होता है। विटामिन B अनेक विटामिनों का सम्मिश्र है। विटामिन B_1 (थायमीन अथवा ऐन्युरिन) जल-घुलनशील होता है, यह एन्जाइमों के साथ कोशिकाओं में पाया जाता है तथा ऊतक-श्वसन एवं कार्बोहाइड्रेटों के चयापचय में एक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है; यह वृद्धि को भी उन्नत करता है, इसके अभाव में भूख घट जाती और बेरीबेरी हो जाती है जो तंत्रिकाओं का एक रोग है। विटामिन B_2 (राइबोफ्लैविन तथा निकोटिनिक अम्ल) एन्जाइमों के साथ कोशिकाओं में पाया जाता है। राइबोफ्लैविन ऊतक श्वसन तथा वृद्धि के लिए अनिवार्य है क्योंकि इससे अनेक एन्जाइम बनते हैं, इसके अभाव में मुख के कोनों में शोथ और चटखना आ जाता है। निकोटिनिक अम्ल कोशिकीय क्रिया के वास्ते आवश्यक है, इसके न होने पर पेलाग्रा नामक त्वचा संक्रमण पैदा हो जाता है। विटामिन B_6 (पाइरिडॉक्सिन) जलघुलनशील होता है और उसमें निकोटिनिक अम्ल के लिए आकर्षण होता है; इसके द्वारा ऐमीनो अम्लों के उपयोग में सहायता मिलती है तथा इसके न होने पर अरक्तता आ जाती है। विटामिन B_{12} जल-घुलनशील होता है लेकिन इसकी रासायनिक प्रकृति नहीं मालूम है, मनुष्य में

लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के वास्ते आवश्यक है, इसके अभाव में आमाशयी स्राव में परिवर्तन हो जाने के कारण प्रणाशी अरक्तता (pernicious anaemia) हो जाती है, तथा वृद्धि धीमी हो जाती है। B_{12} फोलिक अम्ल के साथ मिलकर DNA के निर्माण में सहायता करता है। विटामिन C (ऐस्कार्बिक एसिड) जल-घुलनशील है, इसका संबंध कोशिकाओं की दीवारों की सम्पूर्णता को कायम रखना, ऊतक श्वसन, तथा हड्डियों एवं दांतों की सामान्य वृद्धि से है; इसके अभाव में स्कर्वी रोग हो जाता है जिसमें दांत, मसूढ़ों और त्वचा में असर आ जाता है, तथा हड्डियां कमजोर हो जाती और श्लेष्म-झिल्ली से रक्त-स्राव होने लगता है। विटामिन D (प्रतिरिकेटी) वसा-घुलनशील होता है, यह यकृत में संचित होता है और कैल्सियम तथा फॉस्फोरस के अवशोषण के लिए आवश्यक है ताकि सामान्य वृद्धि और हड्डी-निर्माण होता रह सके, सूर्य के प्रकाश को पराबैंगनी किरणों की क्रिया के द्वारा इसका संश्लेषण हो सकता है, इसके अभाव में दन्त क्षरण और रिकेट्स पैदा हो जाता है जिनमें हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। विटामिन E (टोकोफेरॉल) वसा-घुलनशील होता है, कुछ स्तनियों में इसकी आवश्यकता होती है जिनमें इसके द्वारा तीव्र कोशिका प्रफलन (proliferation) होता है; इसके अभाव से भ्रूणों की मृत्यु हो जाती है, तथा नर में वंध्यता आ जाती है। विटामिन K रक्तस्रावरोधी होता है, यह यकृत में प्रोथ्रॉम्बिन के निर्माण में सहायता करता है तथा मनुष्य में यह अंशतः आंत्र में वास करने वाले बैक्टीरिया से प्राप्त होता है, इसके अभाव में रक्तस्राव समर्थक स्थिति बन जाती है क्योंकि रक्त में स्कंदन नहीं हो पाता।

जल की अधिकतम मात्रा ऊतकों में पायी जाती है, यह खनिज आयनों तथा अन्य कई पदार्थों के लिए प्राकृतिक विलायक का काम करता है ताकि रासायनिक क्रियाएं सम्पन्न हो सकती हैं, प्रोटोप्लाज़्म के कोलॉयडों के लिए परिक्षेपण का यह एक माध्यम है। चयापचयी प्रक्रम जल के बिना चल ही नहीं सकते क्योंकि एन्जाइमी क्रिया केवल जल की उपस्थिति में ही सम्पन्न हो सकती है। जल के उच्च पृष्ठ-तनाव (surface tension) से प्रोटोप्लाज्म को गाढ़ापन मिलता है और अकस्मात् ताप परिवर्तनों से यह सुरक्षा प्रदान करता है। अलग-अलग ऊतकों में जल की मात्रा अलग-अलग होती है, डेन्टीन में केवल 10% जल होता है जबकि पेशियों में 75%। और तो और एक ही ऊतक में भी जल की मात्रा बदलती रहती है, मस्तिष्क के श्वेत द्रव्य (white matter) में 68% जल होता है जबकि धूसर द्रव्य (grey matter) में 84%। ऊतक की चयापचय क्रिया और जल-मात्रा में कुछ संबंध पाया जाता है। जल जीव के शरीर में मुक्त और बंधी, दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है, मुक्त जल प्रोटोप्लाज्म में मिश्रणशील होता है, जिसमें चयापचयी प्रक्रियाओं के लिए यह मुख्य विलायक है। बद्धजल के अणु हाइड्रोजन बंधों के द्वारा प्रोटीनों के साथ जुड़े होते हैं, जैसे जीलेटिन में ऐमीनो अम्ल के प्रत्येक अणु में जल के 2·6 अणुओं को जोड़े रख सकने की क्षमता होती है, किंतु किसी ऊतक में बंधे हुए जल की मात्रा का हिसाब लगाना बहुत कठिन होता है।

अकार्बनिक लवण प्रोटोप्लाज्म के एक प्रतिशत भाग से भी कम होतेहैं। फिर भी वे चयापचय के नियमन तथा प्रोटीनों को घोलों में बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। सोडियम, मैग्नीशियम, सल्फर तथा आयरन के खनिज आयन प्रोटोप्लाज्म में पाए जाते हैं, इनके द्वारा विभिन्न क्लोराइड, फॉस्फेट, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट तथा सल्फेट बनते हैं प्रोटोप्लाज्म में मौजूद गैसें ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड हैं जो श्वसन में काम आती हैं। प्रोटोप्लाज्म के अकार्बनिक रचक या तो लवणों के रूप में पाए जाते हैं या प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेटों अथवा लाइपिडों के साथ संयोजनों के रूप में। कुछ मामलों में वे एमीनो अम्लों के साथ मिलकर हार्मोन बनाते हैं जैसे कि थाइरॉक्सिन, अथवा प्रोटीनों के साथ मिलकर महत्त्वपूर्ण यौगिक बनाते हैं जैसे कि हीमोग्लोबिन (आयरन), हीमोसाएनिन (कॉपर), तथा साइटोक्रोम (आयरन)। सामान्य रूप में अकार्बनिक यौगिक अम्ल-क्षार संतुलन बनाए रखते हैं तथा परासरण दाब (osmotic pressure) का नियमन करते हैं। ATP का फॉस्फेट बंधन ऊर्जा के स्रोत के रूप में एक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। प्रोटोप्लाज्म के अकार्बनिक रचक ऊतकों में समान रूप में वितरित नहीं होते, बल्कि कुछ भागों में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक संकेंद्रित होते हैं।

प्रोटोप्लाज्म की संरचना—पिछली शताब्दी के अध्येताओं के अनुसार प्रोटोप्लाज्म में अलग-अलग समय पर अलग-अलग संरचना दिखाई पड़ती थी। इसकी रचना **कूपिकीय** ((alveolar) हो सकती है जिसमें एक गाढ़े माध्यम में गड़े हुए बुद्बुदों की झाग-संहति होती है। या प्रोटोप्लाज्म **जालकीय** (reticular) हो सकता है जिसमें एक तरल माध्यम में निहित तंतुकों का जालक हो। या वह **तंतुकीय** (fibrillar) हो सकता है जिसमें एक तरल माध्यम में अनेक छोटे-छोटे तंतु हों। अंत में प्रोटोप्लाज्म **कणिकीय** (granular) हो सकता है जिसमें एक तरल माध्यम में समान रूप में वितरित अनेक सूक्ष्म-कण होते हैं। किंतु प्रोटोप्लाज्म की संरचना के विषय में इन धारणाओं का केवल ऐतिहासिक महत्त्व है। कोशिका-विज्ञान के इतिहास में एक ऐसा युग आया जिसमें प्रोटोप्लाज्म के इस प्रकार के अंगकों को मात्र शिल्प-तथ्य कहकर अस्वीकार कर दिया गया, क्योंकि निर्जीव कोलॉयडों में इन्हें कृत्रिम तरीके से बनाया जा सकता है और इन्हें मृत स्कंदित प्रोटोप्लाज्म में भी देखा जा सकता है, अतः वे जीवित प्रोटोप्लाज्म की संरचना को नहीं दर्शाते। चिंतन के उस युग में प्रोटोप्लाज्म को प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेटों तथा लाइपिडों के उन कोलॉयडीय घोलों से बना एक समाँग तरल समझा जाता था जिनके साथ-साथ क्रिस्टलीय पदार्थों का एक आणविक घोल भी होता था, और यह भी समझा जाता था कि इसमें कोई दृश्यमान संरचना नहीं होती।

हाल के वर्षों में इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप और उन्नत तकनीकों की सहायता से प्रोटोप्लाज्म की संरचना को पुनः मान्यता दी जाने लगी है। प्रोटोप्लाज्म अनेक प्रकार की आकृतियों एवं साइजों के कणों का बना होता है। ये कण मात्र अणुओं से लेकर अणुओं के बड़े-बड़े समूहों तक के रूप में हो सकते हैं। इन अणुओं में अनेक छोटे कणों द्वारा बड़े कणों पर बौछार होते रहने के कारण एक ब्राऊनी गति होती दीख पड़ती है। प्रोटोप्लाज्म

को एक ऐसा विषमांग तरल समझा जाता है जो कि निम्न श्यानता (viscosity) वाले प्रोटीनों के एक सॉल (sol) के रूप में होता है, हालांकि यह जेल (gel) अवस्था में भी आ सकता है। यह तंतुक, कणिकाएं तथा झिल्लियां भी बना सकता है। इसमें दोहरी झिल्लियों का एक जटिल किंतु अत्यन्त सुव्यवस्थित तंत्र पाया जाता है-- ये झिल्लियां विविध आकृतियों और साइजों के थैलों के रूप में होती हैं और उनमें सूक्ष्म कण भरे होते हैं। ये झिल्लियां तथा कणिकाएं विविध प्रकार के अंगकों को जन्म देती हैं जो कोशिका को अनेक स्वतःपूर्ण कक्षों में विभाजित कर देते हैं। किंतु कोशिका की संरचना कोशिका की क्रियाओं के कारण स्थिर नहीं है। यह अपनी संरचना बिना रुके बदलती रहती है, यह कोलॉयडीय हो सकती है, क्रिस्टलीय हो सकती है अथवा घोलों, इमल्शनों और निलम्बनों के एक स्थूल परिक्षेपण के रूप में हो सकती है।

जन्तु-कोशिका (Animal Cell)

अधिकांश जीवित पदार्थ की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई कोशिका है। तमाम कोशिकाएं पूर्व-विद्यमान कोशिकाओं से ही उत्पन्न होती हैं और संतति कोशिकाओं में वही संरचना होती है जो उनकी जनक-कोशिका में होती है। कोशिका केंद्रक (न्यूक्लियस) को घेरे हुए साइटोप्लाज्म की एक सीमायुक्त संहति होती है। कोशिकाएं प्रोटोप्लाज्म की संघटित इकाइयां होती हैं, इन इकाइयों के लिए कोशिका की अपेक्षा **प्रोटोप्लास्ट** (protoplast) नाम अधिक उपयुक्त है, लेकिन कोशिका नाम अधिक सुविधाजनक है और चलता आ रहा है। 1839 में श्लाइडेन और श्वान्न ने एक **कोशिका सिद्धांत** (cell theory) का प्रतिपादन किया जिसमें कहा गया कि तमाम जंतु और पौधे कोशिकाओं एवं उनके उत्पादों के बने होते हैं और यह कि वृद्धि और जनन आधारतः कोशिकाओं के विभाजन के ही कारण है। लेकिन कोशिका-सिद्धांत के भी कुछ अपवाद हैं; वाइरस (virus) सजीव जीवधारी हैं किंतु उनमें कोशिका के समान कोई भीतरी संघटना नहीं होती; कुछ विशिष्ट शैवाल (algae), कवक (fungi) और प्रोटोजोआ प्राणी भी इस संकल्पना के कि जीवन की आधारभूत इकाई कोशिका है, अपवाद हैं, क्योंकि उन्होंने जीवन की इकाई के रूप में कोशिका का परित्याग कर दिया है। कोशिका एक अत्यधिक सुसंघटित समुदाय के रूप में है जिसमें एक फैक्ट्री की तरह काम होता है, उसमें भारी संख्या में विविध अणु पाए जाते हैं जो असंख्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं में अपना कार्य करते रहते हैं। बहुकोशिक जंतु में अनेक विभिन्न प्रकार की कोशिकाएं पाई जाती हैं जो देह के विभिन्न भागों में उनके द्वारा सम्पन्न होने वाले किसी खास कार्य के लिए अनुकूलित होती हैं। अधिकतर कोशिकाएं 10 और 100 μ के बीच व्यास वाली होती है, हालांकि कुछ अंडे बहुत बड़े आकार के होते हैं क्योंकि उनमें संचित आहार के रूप में बहुत अधिक मात्रा में योक (पीतक) जमा रहता है। तंत्रिका-कोशिका में उसका अक्ष-तंतु लगभग एक मीटर तक लंबा हो सकता है। लेकिन अधिकतर कोशिकाएं छोटी होती हैं; छोटा आकार लाभप्रद होता है क्योंकि आहार तथा ऑक्सीजन के अणुओं का विसरण एवं वहन थोड़े फासले में अधिक सुविधापूर्वक हो सकता है। दूसरे, छोटी कोशिका में केन्द्रक

एवं साइटोप्लाज्म के बीच एक संतुलित संबंध बना रहता है क्योंकि वे थोड़े फासले पर एक-दूसरे को आवश्यक पदार्थ आसानी से सप्लाई कर सकते हैं। कोशिकाओं की आकृतियां बहुत विविध होती हैं जैसे कि तंत्रिका कोशिकाएं (nerve cells), वर्णधर कोशिकाएं (chromatophores), अथवा अमीबाभ कोशिकाएं जिनकी कोई निश्चित आकृति नहीं होती, लेकिन कोशिकाओं की सब से ज्यादा आम मिलने वाली आकृति गोल होती है जिसका कारण पृष्ठ-तनाव है। किंतु कोशिका की आकृति का संबंध उसके कार्य एवं उसे घेरे रहने वाली अन्य कोशिकाओं के यांत्रिकीय दबाव के साथ भी है।

कोशिकाओं पर आधारभूत नियम भी लागू होते हैं। उन्हें कच्ची सामग्री एवं ऊर्जा प्राप्त होनी ही चाहिए ताकि वे अपने अवयवों का निर्माण कर सकें और उन्हें क्रियारत रख सकें। कोशिकाएं अपनी विस्तृत तथा सुव्यवस्थित रचना को केवल बाहर से पदार्थ और ऊर्जा को उपयोग करके ही उत्पन्न कर सकती हैं। कोशिकाओं में साइज, आकृति तथा भीतरी संरचना में बहुत भारी विविधता पाई जाती है और एक ही जंतु के विभिन्न भागों
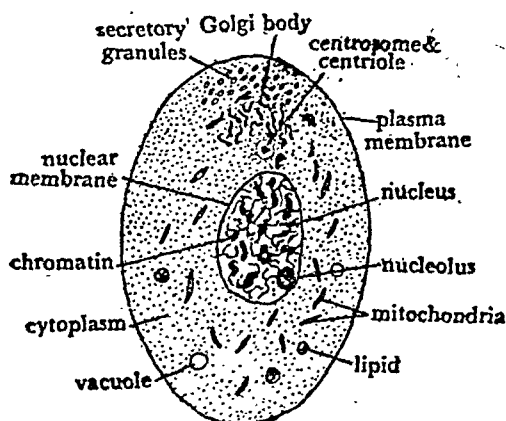
चित्र 2—प्रकाश माइक्रोस्कोप के नीचे दीख पड़ने पर जन्तु-कोशिका। Secretory granules, स्रावक कणिकाएं, Golgi body, गॉल्जी काय; centrosome and centriole, सेन्ट्रोसोम तथा सेंट्रियोल; plasma membrane, प्लाज़्मा झिल्ली; nucleus, केन्द्रक; nucleolus, न्यूक्लियोलस; mitochondria, माइटोकॉण्ड्रिया; lipid, लाइपिड; vacuole, रिक्तिका; cytoplasm कोशिकाद्रव्य; chromatin, क्रोमैटिन; nuclear membrane, केन्द्रक झिल्ली।

की कोशिकाओं में भारी अंतर पाया जाता है और वास्तव में ये अंतर इतने ज्यादा होते हैं कि किसी प्रतिरूपी कोशिका को ढूंढ़ सकना सरल नहीं है, तिस पर भी जीव की तमाम कोशिकाओं में कुछ विशेष समान लक्षण पाए जाते हैं। एक सामान्यीकृत जंतु-कोशिका प्रोटोप्लाज्म का एक पारभासी बिंदुक होता है जिसके भीतर एक आंतरिक केन्द्रक और एक बाहरी **साइटोप्लाज्म** होता है जो कि एक बाहरी **प्लाज्मा-झिल्ली** द्वारा घिरा रहता है। केन्द्रक तथा साइटोप्लाज्म एक-दूसरे के पूरक और परस्पर-निर्भर भाग होते हैं, दोनों के प्रोटोप्लाज्म में अनिवार्यतः समान रासायनिक संरचना होती है,

बस इतना अंतर होता है कि केन्द्रक में कुछ DNA न्यूक्लियोप्रोटीन होते हैं जो उससे बाहर अन्य भागों में नहीं पाए जाते। केन्द्रक मुख्यतः वंशागति से तथा प्रोटीन-निर्माण के दिशा-दर्शन से संबंधित होता है जबकि साइटोप्लाज़्म में कोशिका की रासायनिक क्रियाएं होती हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के आ जाने से और कोशिका के अवयवों के विश्लेषण के वास्ते नई जैविकीय तकनीकों के इस्तेमाल से कोशिका की संरचना-संबंधी सूक्ष्म बारीकियों, उसके गुणों तथा कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है।

प्लाज्मा-झिल्ली (Plasma membrane)—साइटोप्लाज़्म के चारों ओर एक महीन परत ढकी रहती है जिसे प्लाज़्मा झिल्ली अथवा कोशिका-झिल्ली कहते हैं। यह झिल्ली कोशिका का एक सजीव भाग होती है और कोशिका के भीतर प्रवेश करने वाले अथवा कोशिका से बाहर आने वाले प्रत्येक पदार्थ को इसमें से होकर गुजरना होता है। इस झिल्ली में अत्यंत सूक्ष्म छिद्र बने होते हैं। शायद पदार्थ इन्हीं छिद्रों में से होकर कोशिका के भीतर आ-जा सकते हैं। प्लाज़्मा-झिल्ली न केवल साइटोप्लाज़्म को अपने भीतर बंद ही रखती है बल्कि यह साइटोप्लाज़्म के भीतर के अंगकों का निर्माण भी करती है। प्लाज़्मा-झिल्ली को एक बाहरी पेलिकल (pellicle) द्वारा दृढ़ता भी प्रदान हो सकती है (पौधों की कोशिकाओं में यह दृढ़ता कोशिका-दीवार द्वारा प्रदान होती है)। यह लगभग 1 से 2 μ मोटी होती है और यह एक सघन दोहरी परत वाली झिल्ली होती है जिसमें लंबे-लंबे अणुओं को बनाने वाले बड़ी मात्रा में फॉस्फोलिपायड पाए जाते हैं। इसमें प्रोटीन-अणुओं की दो परतों के बीच में लाइपिड अणुओं की दो परतें होती हैं। लाइपिड अणु लंबे होते हैं और उनमें एक अंश जल में अघुलनशील होने के वसीय गुण वाला होता है, और एक सिरे पर एक समूह ध्रुवी गुणों वाला अर्थात् जल में घुल जाने वाली प्रवृत्ति का होता है। इन अणुओं में लाइपिड अंश भीतर की ओर मुड़ा होता है और ध्रुवी समूह विपरीत दिशाओं में होते हैं। प्लाज्मा झिल्ली में वास्तविक पृष्ठ-तनाव (surface tension) गुण पाए जाते हैं, लाइपिड अणु एक फिल्म बनाते हैं जो पृष्ठ तनाव को कम कर देती है और प्रोटीन परत लचीली होती है। प्लाज़्मा झिल्ली एक परदे की दीवार जैसा कार्य करती है जिससे कि कोशिका एक ऐसा स्वतःपूर्ण कक्ष बन जाती है जिसमें जीवरसायन प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं। यह झिल्ली कोशिका के अंतःकोशिकीय द्रवों को चारों ओर घेरे रहने वाले द्रवों से मिलने से रोकती है। इस प्रकार यह कोशिका की स्थायी अवस्था कायम रखती है जिसका एक स्थिर भीतरी वातावरण और एक स्थिर संघटना होती है। लेकिन प्लाज्मा-झिल्ली अर्ध-पारगम्य (semi-permeable) अथवा विभेदतः पारगम्य (differentially permeable) होती है जिसके कारण कुछ अणु तो कोशिका के भीतर जा सकते और उससे बाहर आ सकते हैं, कुछ अणु केवल एक ही दिशा में जा सकते हैं, और कुछ अणु इसमें से होकर कतई गुजर ही नहीं सकते। ग्लूकोज, ऐमीनो अम्ल, हार्मोन, विटामिन, जल, ऑक्सीजन तथा कार्बनडाइऑक्साइड इसमें से सरलता से गुजर जाते हैं, पोटैशियम तीव्रता से गुजर जाता है किंतु सोडियम नहीं गुजर सकता। यूरिया, वसीय अम्ल, तथा ग्लीसेरॉल कम आसानी से गुजरते हैं। अकार्बनिक लवण, प्रोटीन, वसाएं, तथा कार्बोहाइड्रेट नहीं गुजर सकते। लवण घुला हुआ

कुछ जल निश्चय ही लाइपिड श्रृंखलाओं में से होकर कोशिकाओं के अंदर-बाहर आता-जाता रहता है। किंतु प्लाज़्मा-झिल्ली किस प्रकार आचरण करेगी यह कोशिका ही
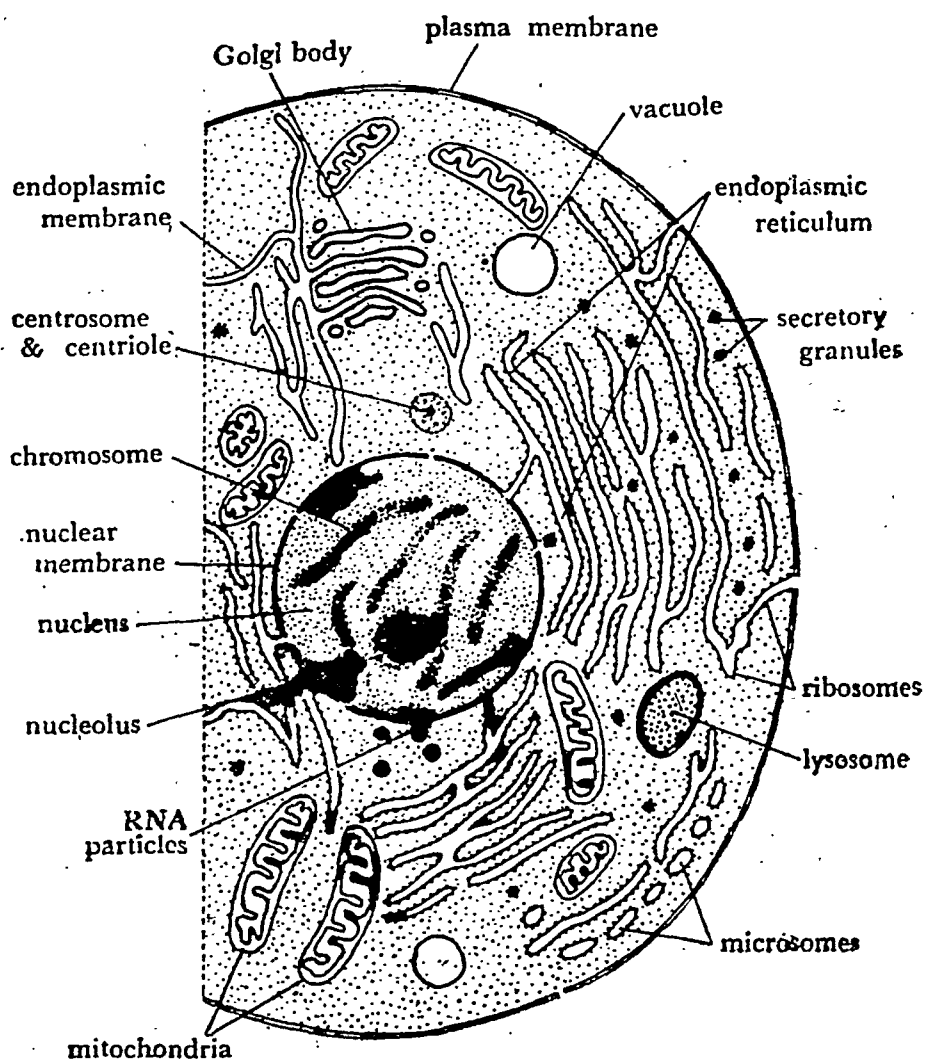
चित्र 3—इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप में दीख पड़ने वाली कोशिका का पतला सेक्शन। Golgi body, गौल्जी काय; plasma membrane, प्लाज़्मा झिल्ली; vacuole, रिक्तिका; endoplasmic reticulum, एंडोप्लाज्मी जालक; secretory granules स्रावक कणिकाएं; ribosomes, राइबोसोम; lysosome, लाइसोसोम; microsomes, माइक्रोसोम; mitochondria, माइटोकॉण्ड्रिया; RNA particles, RNA कण; nucleolus, न्यूक्लियोलस; nuclear membrane, केन्द्रक झिल्ली; chromosome, क्रोमोसोम, centrosome and centriole, सेंट्रोसोम तथा सेंट्रियोल; endoplasmic membrane, एंडोप्लाज्मी झिल्ली।

नर्धारित करती है। अनेक कोशिकाओं में प्लाज़्मा-झिल्ली छोटी-छोटी अस्थायी थैलियां अथवा नलिकाएं वना सकती है जो सतह से भीतर की ओर को चलती जाती हैं, यह निर्माण कुछ प्रोटीनों द्वारा प्रेरित होता है। ये नलिकाएं बाहर से घेरने वाले माध्यम में से घोल की बुंदकों को भीतर ले जाती हैं, बुंदकें नलिकाओं के आधार पर सूक्ष्म कोशिपायनी (pinocytic) पुटिकाओं के रूप में टूट कर अलग हो जातीं और साइटोप्लाज्म में पहुंच जाती हैं। इस घटना को **कोशिपायन** या **पाइनोसाइटोसिस** (pinocytosis) कहते हैं। उन आयनों तथा कणों को जिनके लिए प्लाज़्मा-झिल्ली अपारगम्य होती है भीतर ग्रहण करने का यही सामान्य तरीका है। कुछ पदार्थ कोशिका में पाइनोसाइटोसिस द्वारा और कुछ विसरण द्वारा भीतर पहुंचते हैं। ऐमीनो अम्ल, सरल शर्कराएं, वसीय अम्ल ग्लीसेरॉल, विटामिन, अकार्वनिक लवण, तथा ऑक्सीजन कोशिका के भीतर पहुंच जाते हैं और जीवित पदार्थ के निर्माण में काम आ जाते हैं। प्लाज़्मा-झिल्ली स्थायी तौर पर कम या ज्यादा जेल अवस्था में रहती है। कुछ अंडों में ग्लाइकोप्रोटीन प्रकृति का जिलेटिनी म्यूसिन भी होता है, और क्रस्टेशियनों में इसमें काइटिन भी मौजूद होता है।

केन्द्रक (Nucleus)—कोशिका में एक गोल, अंडाकार या डिस्क की आकृति का केन्द्रक होता है. जो केन्द्रक झिल्ली में वंद रहता है। प्रोटोजोआ के केन्द्रक में मेटाजोआ के केन्द्रक की अपेक्षा आकृतियों और संरचना में कहीं ज्यादा विविधता पाई जाती है। केन्द्रक कोशिका का नियंत्रणकारी केन्द्र होता है, इसमें एक तरल न्यूक्लियोप्लाज़्म (nucleoplasm) और विभिन्न आकृतियों के कुछ ठोस क्रोमोसोम होते हैं, लेकिन अविभाजनशील कोशिका में ये नजर नहीं आते। अधिकतर कोशिकाओं में किसी एक क्रोमोसोम से चिपका हुआ एक गहरा रंगने वाला न्यूक्लियोलस होता है। केन्द्रक का रूप सदैव एक-सा नहीं बना रहता क्योंकि यह भारी परिवर्तनों के चक्र से गुजरता है। केन्द्रक-झिल्ली प्रोटीनों और लाइपिडों की बनी दो परतों वाली संरचना होने के रूप में प्लाज्मा-झिल्ली के समान होती है, इसमें अत्यधिक सूक्ष्म गोल छिद्र बने होते हैं। यह अर्धपारगम्य होती है और जीन-क्रिया से संबंधित कुछ पदार्थ इसमें से होकर आ-जा सकते हैं। कोशिका-विभाजन के समय केन्द्रक-झिल्ली विलीन हो जाती है लेकिन प्रोटोजोआ में यह सम्पूर्ण बनी रहती है। न्यूक्लियोप्लाज़्म निम्न श्यानता वाला एक प्रोटीन सॉल होता है, लेकिन यह कभी-कभी जेल अवस्था में आ सकता है, यह केन्द्रक को पूरी तरह भरे रहता है। इसमें प्रोटीनों का उच्च अनुपात, अधिक मात्रा में फॉस्फोरस और कुछ न्यूक्लिइक अम्ल पाए जाते हैं। अभिरंजित कोशिका में केन्द्रक की मुख्य संहति में मणिकाकार कणों से युक्त धागों का एक महीन जाल नजर आता है। धागे और कणिकाएं **क्रोमैटिन** (chromatin) के बने होते हैं। यह क्रोमैटिन DNA तथा प्रोटीनों का बना होता है, और जीवित कोशिका में दिखाई नहीं पड़ता। क्रोमैटिन के अधिक अभिरंजित होने वाले कणों को **क्रोमोसेन्टर** (chromocentre) कहते हैं। कोशिका-विभाजन के दौरान क्रोमैटिन अधिक ठोस और एक निश्चित संख्या में क्रोमोसोमों के रूप में स्पष्ट दीखने वाले बन जाते हैं। **क्रोमोसोम** (chromosome) कोशिका की अंतरावस्था में दिखाई नहीं पड़ते लेकिन जब कोशिका-विभाजन शुरू होने लगता है तब वे स्पष्ट दीखने लगते हैं, उस

समय वे वेसिक रंगों द्वारा गाढ़े रंगे जाते हैं जिसका यह अर्थ है कि उनमें एक तीव्र अम्लता वाला पदार्थ होता है। केन्द्रक से निकाले गए पदार्थ के रासायनिक विश्लेपण से पता चलता है कि इसमें अत्यधिक उच्च आणविक भारवाला एक बहु-अम्ल (polyacid) होता है। क्रोमोसोमों का गाढ़ा रंग लेना दो बातों के कारण है, एक तो यह कि वे कुछ जल खो देते हैं और दूसरे यह कि वे DNA की कुछ मात्रा प्राप्त कर लेते हैं जो कि प्रोटीनों के साथ संघनित हो जाता है, फिर वे स्पष्ट दीख पड़ने वाले और कुंडलित वन जाते हैं, उसके वाद वे धीरे-धीरे छोटे और मोटे होते जाते हैं। DNA क्रोमोसोमों में एक समान रूप में नहीं जुड़ता जाता वल्कि उनकी लंबाई में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर जुड़ता जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि गहरे रंगे जाने वाले भागों और हल्के रंगे जाने वाले भागों में एकांतर क्रम वन जाता है। गहरे रंगे जाने वाले भागों को **क्रोमोमीयर** (chromomeres) कहते हैं और प्राय: जीनों के स्थान में ये ही होते हैं। जीनों में वंशागति-संवंधी शक्ति होती है। हल्के रंगे जाने वाले भाग प्रोटीनों के वने होते हैं। इन्हीं में से हल्का रंगा जाने वाला एक भाग **सेन्ट्रोमीयर** (centromere) कहलाता है जिसके द्वारा क्रोमोसोम कोशिका-विभाजन के दौरान स्पिडल से जुड़ जाएगा। इस प्रकार केन्द्रक में कोशिका का आनुवंशिक उपकरण पाया जाता है जिसके द्वारा यह सुनिश्चित हो जाता है कि विभाजन होने पर प्रत्येक संतति-कोशिका में वह सब आवश्यक सूचना भरी होनी है जिसके द्वारा जनक कोशिका की सही-सही प्रतिकृति वन जाएगी। क्रोमोसोम और उनके जीन प्रत्येक कोशिका के लक्षण, उसकी क्रियाओं और नियति का दिशा-दर्शन एवं निर्धारण करते हैं। केन्द्रक दो महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, एक तो यह वंशागति-सूचना को संचित करता एवं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचाता है और दूसरे यह वंशागति-सूचना को उस विशिष्ट प्रकार के प्रोटीन में परिणत करता है जो उस कोशिका की विशेषता है, इस प्रकार यह कोशिका के सुनिश्चित कार्य का निर्धारण करता है। प्रत्येक केन्द्रक में एक या अधिक न्यूक्लियोलस भी पाए जाते हैं, और किसी कोशिका में न्यूक्लियोलसों की संख्या निश्चित होती है। **न्यूक्लियोलस** मुख्यत: RNA का वना होता है। न्यूक्लियोलस का कार्य प्रोटीनों का निर्माण करना है और क्रोमोसोमों के कोड तथा साइटोप्लाज़्म में उस कोड के कार्यान्वित होने के वीच का मध्य साधन है। चूंकि कोशिका-विभाजन के समय यह विलीन हो जाता है इसलिए हो सकता है कि यह वंशागति सूचना और पदार्थों को केन्द्रक से साइटोप्लाज़्म में पहुंचाने का साधन हो।

साइटोप्लाज्म (Cytoplasm)—कोशिका के केन्द्रक से वाहर पाए जाने वाले प्रोटोप्लाज़्म को साइटोप्लाज़्म कहते हैं। सजीव कोशिका में यह एक संरचना-विहीन संहति जैसा दिखाई पड़ता है, अभिरंजित (stained) किये जाने पर यह एक स्वच्छ तरल जैसा दिखाई पड़ता है जिसमें छोटे-छोटे कण तिरते रहते हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से साइटोप्लाज़्म झिल्लियों का एक जाल जैसा दिखाई पड़ता है जो मुड़ी-तुड़ी और परस्पर-संयोजित होनी हैं, इस जाल को **एंडोप्लाज्मी जालक** (endoplasmic reticulum) या **एर्गेस्टोप्लाज्म** (ergastoplasm) कहते हैं। इन झिल्लियों की रचना प्लाज़्मा-झिल्ली के समान होनी है; वास्तव में कोशिका में पाई जाने वाली

तमाम झिल्लियों की रचना एक ही सी होती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि विभिन्न झिल्लियां या तो प्लाज़्मा से जुड़ी होती हैं या उससे व्युत्पन्न होती हैं। झिल्लियां दोहरी होती हैं, जिनके बीच में से कोशिका के पदार्थ बाहर आ सकते हैं। एंडोप्लाज़्मी जालक की कुछ झिल्लियां प्लाज़्मा झिल्ली की सतह पर खुलती हैं और कुछ केन्द्रक-झिल्ली के साथ जुड़ी रहती हैं। झिल्लियों के इस तंत्र का संबंध कोशिकीय उत्पादों के संचय तथा परिवहन से है; झिल्लियां एक अंतःकोशिकीय परिवहन तंत्र के रूप में कार्य करती हैं। ये झिल्लियां विस्तृत सतहें प्रदान करती हैं जिन पर विविध एंजाइम क्रमबद्ध रूप में स्थित हो जाते हैं। अनुमान है कि केन्द्रक झिल्ली एंडोप्लाज़्मी जालक से बनती है, और केन्द्रक-झिल्ली में बने छिद्रों द्वारा साइटोप्लाज़्म तथा केन्द्रक के बीच सीधा संबंध स्थापित होता है। केन्द्रक से प्राप्त RNA के प्रभाव के अधीन एंडोप्लाज़्मी जालक ऐमीनो अम्लों को प्रोटीनों के रूप में जोड़ते जाने में सक्रिय रहता है। इस जालक में एंजाइम भी होते हैं जो कुछ प्रोटीन से अलग पदार्थों का भी निर्माण करते हैं। एंडोप्लाज़्मी जालक की झिल्लियों के बीच में साइटोप्लाज़्म का द्रव मैट्रिक्स होता है। साइटोप्लाज़्म का कार्य अधिकतर कोशिका और उसके वातावरण के संबंधों से संबंधित है। साइटोप्लाज़्म मुख्य संयोजन संयंत्र है और कोशिका का उत्पादन केन्द्र है जिसके वास्ते इसे कच्ची सामग्री तथा ऊर्जा की आवश्यकता होती है, और एंडोप्लाज़्मी जालक प्रोटीन संश्लेषण का स्थान है। साइटोप्लाज़्म का संबंध आहार प्राप्त करने तथा उसे कोशिका के अंशों में परिणत करने से है, यह वसाओं और शर्कराओं से रासायनिक ऊर्जा निकालता है जिसे यह ऊर्जा से भरे उन विशिष्ट अणुओं को दे देता है जो कोशिका में घूमते रहते हैं; और यह या तो कोशिका के लिए आवश्यक या कोशिका से बाहर भेजे जाने के लिए बड़े अणुओं का संश्लेषण करता है। यद्यपि सिद्ध नहीं हुआ है लेकिन ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्लाज़्मा झिल्ली और केन्द्रक-झिल्ली दोनों ही एंडोप्लाज़्मी जालक की झिल्लियों के ही प्रसार हैं, जिससे कि कोशिका के बाहर से लेकर उसके भीतर तक एक निरंतरता बनी रह सकती है। कोशिका में साइटोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्मी जालक की गुहाएं एंडोप्लाज़्मी झिल्लियों द्वारा पृथक् होती हैं।

साइटोप्लाज़्म में बहुत-सी वस्तुएं पाई जाती है जिन्हें अंगक अथवा **साइटोप्लाज़्मी अंतस्थ** (cytoplasmic inclusions) कहते हैं जो कोशिका के विशिष्ट कार्यों के लिए उत्तरदायी होते हैं। लगभग सभी कोशिकाओं में आमतौर से पाए जाने वाले मुख्य साइटोप्लाज़्मी अंतस्थ ये हैं : सेंट्रोसोम, माइटोकॉण्ड्रिया, गौल्जी काय, राइबोसोम, माइक्रोसोम, तथा लाइसोसोम। ये सभी अंतस्थ दोहरी झिल्लियां होते हैं और कोशिका को स्वतःपूर्ण उपकक्षों में विभाजित करने वाली विभाजन-दीवारों का कार्य करते हैं, इन्हीं उपकक्षों में अकेले में रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती हैं।

सेंट्रोसोम (Centrosome) **अथवा कोशिका-केन्द्र**—साइटोप्लाज़्म में केन्द्रक के समीप स्थित एक स्वच्छ कणिकारहित क्षेत्र सेंट्रोसोम अथवा सेंट्रोस्फीयर होता है जिसमें एक सूक्ष्म और अधिक गहरा रंगा जाने वाला **सेंट्रियोल** (centriole) होता है। मेटाजोआ में सेंट्रोसोम केन्द्रक के बाहर होता है जबकि प्रोटोजोआ में यह प्रायः केन्द्रक के

भीतर रहता है। जंतुओं की अविभाजनशील कोशिका में प्राय: एक सेंट्रियोल होता है किंतु कभी-कभी दो भी हो सकते हैं। कोशिका के विभाजन शुरू होने के पहले सेंट्रियोल में विभाजन होकर उसके दो सेंट्रियोल बन जाते हैं। ये सेंट्रियोल कोशिका-विभाजन के समतल का निर्धारण करते हैं, कदाचित् कशाभों (flagella) और सिलिया (cilia) की आधार कणिकाएं प्रदान करते हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप में सेंट्रियोल की संरचना सिलियम जैसी दिखाई पड़ती है, यह एक ढोलाकार सिलिंडर जैसा होता है जिसकी दीवार में एक वृत्त में व्यवस्थित नौ अनुदैर्घ्य तंतुक होते हैं, ये तंतुक अक्सर दोहरे होते हैं; तथा कुछ कोशिकाओं में इसमें दो केन्द्रीय तंतुक भी होते हैं, तमाम तंतुक दो मेखलाओं द्वारा घिरे रहते हैं, प्रत्येक मेखला में नौ गोल गोले अथवा वृहत्-अणु होते हैं जो पतले धागों द्वारा तंतुकों मे जुड़े होते हैं। लगता है कि कोशिका-विभाजन का प्रारंभ सेंट्रोसोम से होता है और यह स्पिंडल बनने तथा प्रोटीनों से ऐस्टरों के बनने में शामिल होता है। जिन कोशिकाओं में सिलिया अथवा कशाभ होते हैं उनमें सेंट्रियोल बार-बार विभाजित होकर आधार-कणिकाएं अथवा काइनेटोसोम बनाता है।

माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria) अथवा कॉण्ड्रियोसोम (chondriosome) साइटोप्लाज़्म में स्थित सैकड़ों तंतु, शलाकाएं या गोले हैं जो सदैव गति करते रहते हैं। एक माइटोकॉण्ड्रियान 0·2 से 0·3 μ के साइज का होता है। माइटोकॉण्ड्रिया की संख्या उन कोशिकाओं में अधिक होती है जिनकी क्रिया अधिक तीव्र हो जैसे ग्रंथि कोशिकाओं और पेशी तंतुओं में। माइटोकॉण्ड्रिया में लाइपिड का बना एक बाहरी कॉर्टेक्स तथा प्रोटीन का बना एक भीतरी भाग होता है। प्रत्येक माइटोकॉण्ड्रियान एक थैला होता है जिसकी दीवार लाइपो-प्रोटीन की दो झिल्लियों की बनी होती है, बाहरी झिल्ली लचीली होती है और उस पर बाहर से छोटे-छोटे कण लगे होते हैं, भीतरी झिल्ली पर वृंतों पर लगे कण बने होते हैं, इसी भीतरी झिल्ली में वलन पड़े होते हैं जिन्हें क्रिस्टी (cristae) कहते हैं और जो माइटोकॉण्ड्रियान की अवकाशिका में को उभरे होते तथा सतह क्षेत्रफल को बढ़ाते हैं। माइटोकॉण्ड्रियान की भीतरी गुहा को अंतर्रचना गुहा (intrastructure space) कहते हैं और उसमें एक समांग द्रव भरा रहता है। माइटोकॉण्ड्रिया में बहुत से एन्जाइम भरे होते हैं जो या तो भीतरी झिल्ली के क्रिस्टी पर होते हैं या अंतर्रचना गुहा के द्रव में घुले होते हैं। माइटोकॉण्ड्रिया मुख्यत: विघटन प्रक्रियाओं के केन्द्र होते हैं, कोशिका में होते रहने वाले ऊतक श्वसन की विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं के लिए यही उत्तरदायी हैं। ये और दो अन्य कार्य भी करते हैं, एक तो अनेक चरणों में ये वसाओं, प्रोटीनों और कार्बोहाइड्रेटों को छोटे-छोटे अणुओं में तोड़ते हुए ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, और दूसरे ये अपनी रासायनिक ऊर्जा को सम्मिश्र अणुओं में हस्तान्तरित कर देते हैं, इन अणुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण उच्च-ऊर्जा **ऐडेनोसीन ट्राइफॉस्फेट** अथवा ATP होता है। ATP रासायनिक ऊर्जा का वाहक होता है और इसका अधिकतर भाग माइटोकॉण्ड्रियान के भीतर बनता है। तब ATP अणुओं का माइटोकॉण्ड्रिया स्राव करते हैं, जो कि कोशिका में जहां भी ऊर्जा की आवश्यकता हो वहीं इस्तेमाल हो जाते हैं। इस प्रकार माइटोकॉण्ड्रिया कोशिका के मानो पावर-हाऊस होते हैं क्योंकि इस्तेमाल होने वाली अधिकतर ऊर्जा इन्हीं में बनती है। इनमें आहार के

अणु जल कर CO_2 तथा जल बनाते और ऊर्जा का विमोचन होता है। कोशिका में ऊर्जा गर्मी के रूप में बाहर नहीं निकल जाती बल्कि सीधे ATP के संश्लेषण में इस्तेमाल हो जाती है जो कि ऊर्जा का संचय-गृह होता है।
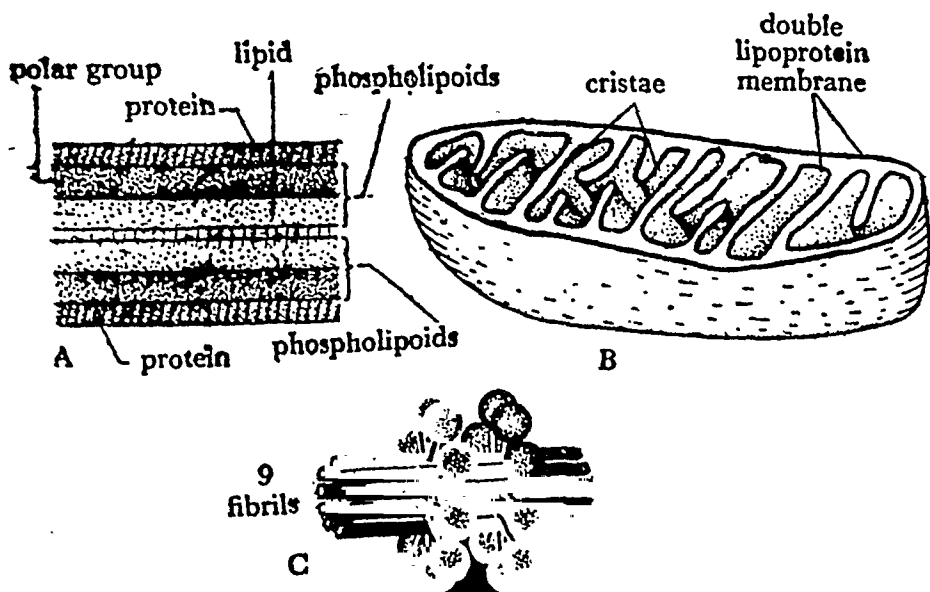
चित्र 4—A—प्लाज़्मा झिल्ली। B—आड़ा काटा हुआ माइटोकॉण्ड्रियान। C—सेंट्रियोल। Polar group, ध्रुवी समूह; protein, प्रोटीन; lipid, लाइपिड; phospholipoid, फॉस्फोलाइपॉइड; cristae, क्रिस्टी; double lipoprotein membrane, दोहरी लाइपोप्रोटीन झिल्ली; fibrils तंतुक।

गौल्जी काय (Golgi bodies) **अथवा लाइपोकॉण्ड्रिया** (Lipochondria)—साइटोप्लाज़्म में गौल्जी काय का स्थान अलग-अलग हो सकता है, यह विशेषतः स्रावक ग्रंथि कोशिकाओं में अधिक सुविकसित होती है। गौल्जी काय की संरचना में बहुत ज्यादा अंतर पाया जाता है। इसमें विभिन्न आकृतियों की तथा रिक्तिकाओं से घिरी हुई सघन, कुंडलित एवं चपटी दोहरी झिल्लियों का एक क्रम होता है। यह लाइपिड तथा प्रोटीन पदार्थ का बना होता है। हो सकता है कि गौल्जी काय का कार्य किसी प्रकार के कोशिकीय संश्लेषण में हो लेकिन इसके कार्य का सही-सही ज्ञान नहीं है। शायद यह जाइमोजन कणों का निर्माण करता है जो एंजाइमों के पूर्वगामी होते हैं। कुछ ऐसा प्रमाण मिलता है कि गौल्जी काय का संबंध स्रावों के संचय अथवा कोशिका के भीतर पदार्थों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन के कार्य से है। हो सकता है कि यह लाइपॉइडों के रूपांतरण में और प्रोटोप्लाज़्म में जल के सांद्रण को बनाए रखने में कार्य करता हो। गौल्जी कायों के क्षेत्र में एंडोप्लाज़्मी जालक की चिकनी, अकणिकीय झिल्लियां पहुंचती हैं जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि गौल्जी काय एंडोप्लाज़्मी जालक की झिल्लियों को जन्म देते हैं, ये झिल्लियां चिकनी होती हैं क्योंकि ये उस अवस्था पर होती हैं जो इन पर राइबोसोम चिपकने से पहले की होती है।

राइबोसोम (Ribosomes)—एंडोप्लाज़्मी जालक की झिल्लियों पर बहुत ज्यादा संख्या में चिपके हुए अथवा साइटोप्लाज़्म में छितराई हुई छोटी-छोटी कणिकाएं होती हैं जिन्हें राइबोसोम कहते हैं। ऐमीनो अम्लों से प्रोटीनों के संश्लेषण में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। राइबोसोमों में प्रोटीन होते हैं और उनकी बाहरी सतहों पर RNA के छोटे-छोटे कण लगे होते हैं, किसी स्थान पर इन कणों की संख्या वहां हो रहे प्रोटीनों और एंजाइमों के संश्लेषण की मात्रा से संबंधित होती है।

माइक्रोसोम (Microsomes) एंडोप्लाज़्मी जालक की झिल्लियों के टूटने से बनते हैं। ये कण-आच्छादित झिल्लियों के बने होते हैं और या तो साइटो-प्लाज़्म में पड़े रहते हैं या एंडोप्लाज़्मी झिल्लियों से लगे रहते हैं। इनमें फॉस्फोलाइपॉयड प्रोटीन और अधिक मात्राओं में RNA होते हैं। ये मुख्यत: प्रोटीन संश्लेषण में सक्रिय रहते हैं। माइटोकॉण्ड्रिया की अपेक्षा माइक्रोसोम ज्यादा छोटे और ज्यादा हल्के होते हैं। माइटोकॉण्ड्रिया के विपरीत जो कि मुख्यत: अपघटन प्रक्रिया के स्थान होते हैं, ये माइक्रोसोम (जैसे कि राइबोसोम भी) प्रोटीनों के निर्माण प्रक्रम से संबंधित होते हैं।

लाइसोसोम (Lysosome) दो झिल्लियों से घिरी हुई एक गोल पुटिका होता है जिसके भीतर जलअपघटनी पाचन एन्जाइम होता है, ये अनेक कोशिकाओं में पाए जाते हैं हालांकि हर कोशिका में नहीं होते। यदि किसी लाइसोसोम को फोड़ दिया जाए तो कोशिका का आत्म-पाचन हो जाता है क्योंकि वे प्रोटीनों को तथा अन्य बड़े कार्बनिक अणुओं को तोड़ देते हैं। लेकिन लाइसोसोम में पाए जाने वाले पाचन-एन्जाइम कोशिका में पुनर्निर्माण के लिए अनिवार्य होते हैं, और झिल्लियों में बंद रहने के कारण कोशिका का विनाश नहीं हो पाता।

कोशिका अंतस्थ (Cell inclusions)—साइटोप्लाज़्म में पाए जाने वाले सजीव अंगकों के अतिरिक्त उसमें कुछ निर्जीव पदार्थ भी पाए जाते हैं जैसे कि स्राव कणिकाएं, उत्सर्जन उत्पाद, पीतक, वर्णक कणिकाएं, रिक्तिकाएं, वसा, तथा प्लास्टिड। **पीतक** (yolk) छोटी या बड़ी बुंदकों के रूप में पाया जाता है, और सामान्यत: केवल अंडों में ही होता है, यह एक सुरक्षित आहार पदार्थ है और या तो प्रोटीन या वसा की प्रकृति का होता है। **वर्णक** (pigment) कणिकाओं के रूप में केवल कुछ विशिष्ट कोशिकाओं में पाया जाता है, रंग का होना अथवा रंगों का परिवर्तन इसी के कारण होता है। विविध प्रकार के **प्लास्टिड** (plastids) वर्णकों के स्थानीकरण के लिए रूपान्तरित संरचनाएं होती हैं, इनका कार्य सरल पदार्थों से सम्मिश्र कार्बोहाइड्रेटों अथवा प्रोटीनों के संश्लेषण से संबंधित होता है। प्लास्टिड पादप-कोशिकाओं में पाए जाते हैं, जंतुओं में वे केवल कुछ फ्लैजेलैटा-प्राणियों तक ही सीमित हैं। **वसाएं** (fats) अथवा तेल सभी कोशिकाओं के साइटोप्लाज़्म में छितराई हुई बुन्दकों के रूप में पाए जाते हैं, ये कोशिका के ऊर्जा-भण्डार होते हैं जिनका आवश्यकता पड़ने पर उपयोग किया जाता है। **रिक्तिकाएं** (vacuoles) छोटी अथवा बड़ी तरल से भरी गुहिकाएं होती हैं, प्रत्येक गुहा एक झिल्ली द्वारा घिरी होती है। जलघुलनशील पदार्थ जिनमें शर्कराएं और वर्णक शामिल हैं रिक्तिकाओं में पाए जाते हैं। ये कोशिका के भीतर वसा और जल

को संचित करती, तथा उसके भीतर उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले भी जाती हैं। इनका मुख्य कार्य कोशिकाओं में एक उचित भीतरी परासरण दाव (osmotic pressure) बनाए रखना है। प्रोटोजोआ में संकुचनशील रिक्तिकाएं (contractile vacuoles) तथा आहार रिक्तिकाएं (food vacuoles) पाई जाती हैं; संकुचनशील रिक्तिकाएं जल को बाहर निकालती हैं जबकि आहार रिक्तिकाओं में आहार भरा रहता है तथा वे पाचन में सहायता करती है।

इनवर्टीब्रेटा (Invertebrata)

वर्टीब्रेटा अर्थात् कशेरुकियों के विपरीत जिनमें कशेरुकों के एक क्रम से बनी एक रीढ़ होती है, इनवर्टीब्रेटा अर्थात् अकशेरुकी प्राणी-वर्ग में वे तमाम जंतु आते हैं जिनमें रीढ़ नहीं होती। किंतु जंतु-जगत् का कशेरुकियों और अकशेरुकियों में किया जाने वाला यह विभाजन एक सुविधा मात्र ही है। अकशेरुकी तमाम ज्ञात जंतुओं का लगभग 95% अंश हैं, और कुल ज्ञात जंतुओं की संख्या दस लाख से ऊपर है। अकशेरुकियों में बहुत बड़े-बड़े और विषमांग समूह रखे गए हैं। ऐसा एक भी सकारात्मक लक्षण नहीं पाया जाता जो तमाम अकशेरुकियों में समान रूप में पाया जाता हो, और विभिन्न समूहों में बहुत बड़े अंतर पाए जाते हैं। अकशेरुकियों के प्रत्येक समूह में कुछ विशिष्ट संरचनात्मक विशेषताएं, एक विशिष्ट शब्दावली और एक अलग वर्गीकरण होता है। अधिक तर्कसंगत रूप में जंतु-जगत् को दो उपजगतों में विभाजित किया जाता है: प्रोटोज़ोआ (Protozoa) और मेटाजोआ (Metazoa) में। **प्रोटोजोआ** छोटे एककोशिकीय जंतु होते हैं या जैसा कहना अधिक ठीक होगा कि वे अकोशिकीय जंतु हैं क्योंकि उनके शरीर कोशिकाओं में विभेदित नहीं होते। प्रोटोजोआ आकार में सूक्ष्मदर्शी होते हैं तथा अक्सर सरल संरचना वाले होते हैं, फिर भी उनके शरीर के अलग-अलग भाग विभिन्न कार्यों के वास्ते विशेषित होते हैं, और उनमें विभिन्न आवासों में रहने के लिए बहुत ज्यादा मात्रा में अनुकूलन (adaptation) पाए जाते हैं। कुछ प्रोटोजोआ अनेक समान सदस्यों की कॉलोनियां (colonies) बनाते हैं; लेकिन किसी प्रोटोजोआ की कॉलोनी के सदस्य कार्यात्मक दृष्टि से एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं।

मेटाजोआ बहुकोशिकीय जंतु होते हैं जिनमें ऊतकीय विभेदन हो गया है। इनमें से अनेक प्राणी बहुत बड़े आकार के हो जाते हैं क्योंकि साइज़ की सीमाएं इन पर से हट गईं। इनमें शरीर के भागों में बहुत ज्यादा आकारिकीय विभेदन पाए जाते हैं और इन विभेदनों के साथ कार्यों का भी अनुरूप विभाजन हो गया है। फिर भी इनके विभिन्न भाग स्थायी तौर पर एक-दूसरे से संबंधित रहते और परस्पर निर्भर रहते हैं। मेटाजोआ को और आगे पैराजोआ तथा एंटेरोजोआ में विभाजित किया जाता है।

पैराजोआ (Parazoa) अथवा पोरिफेरा (Porifera) में स्पंज आते हैं जो कि बहुकोशिकीय जंतु हैं लेकिन शेष मेटाजोआ से ये इस बात में भिन्न हैं कि इनमें कॉलर-युक्त कशाभी कोशिकाएं पाई जाती हैं जो कुछ प्रोटोजोआ जैसी दीखती हैं किंतु जो अन्य मेटाजोआ में कभी नहीं पाई जाती। **एंटेरोजोआ** (Enterozoa) में स्पंजों को छोड़कर शेष सभी मेटाजोआ आ जाते हैं, इनमें दो और विभाजन बन जाते हैं:

डिप्लोब्लास्टिका तथा ट्रिप्लोब्लास्टिका। **डिप्लोब्लास्टिका** (Diploblastica) में नाइडेरिया और टीनोफोरा आते हैं, इनकी देह-संघटना केवल दो कोशिका-परतों, अर्थात् एक्टोडर्म और एंडोडर्म की होती है, और इनमें अरीय (radial) अथवा द्विअरीय (biradial) सममिति पाई जाती है। **ट्रिप्लोब्लास्टिका** (Triploblastica) तीन कोशिका-परतों के बने होते हैं. तीसरी परत को मीज़ोडर्म कहते हैं जो एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच में बनती है, इन जंतुओं में द्विपार्श्वीय (bilateral) सममिति पाई जाती है।

ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं को कई फाइलमों में रखा जाता है जिनमें एक-दूसरे से काफी बड़ी मात्रा में अंतर मिलते हैं। इन्हें दो समूहों में रखा जाता है: एसीलोमेटा और सीलोमेटा। **एसीलोमेटा** (Acoelomata) अपेक्षाकृत सरल ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतु हैं जिनमें परिअांतरांग (periviscoral) देहगुहा अथवा सीलोम नहीं होती। **सीलोमेटा** (coelomata) उच्च ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतु होते हैं जिनमें द्रव से भरी एक विस्तृत परिअांतरांग गुहा अथवा सीलोम होती है। सीलोम होने के कारण देह के भीतरी अंग बड़े हो जाते हैं। सीलोम निम्नलिखित किसी एक विधि द्वारा उत्पन्न होती है: 1. आद्य-आंत्र (archenteron) से युग्मित कोष्ठ अथवा बहिर्वृद्धियां निकलती हैं जो परस्पर जुड़कर एक **आंत्रसीलोमी सीलोम** (enterocoelic coelom) बनाती हैं जैसे कि इकाइनोडर्मेटा में। 2. भ्रूण के मेसोडर्म में विपाटन होकर एक बाहरी भित्तीय परत और एक भीतरी आंतरांग परत बन जाती है, मेसोडर्म की इन दो परतों के बीच की जगह **दीर्गसीलोमी सीलोम** (schizocoelic coelom) होती है जैसे कि ऐनेलिडा में। इनवर्टीब्रेटा के उपविभाजनों एवं मुख्य फाइलमों की एक मोटी रूपरेखा अगले पृष्ठ पर दी गई है।

इनवर्टीब्रेट फ़ाइलम

- इनवर्टिब्रेटा
  - प्रोटोज़ोआ
  - मेटाज़ोआ
    - पैराज़ोआ
    - एंटेरोज़ोआ

फ़ाइलम		
फ़ाइलम प्रोटोज़ोआ	डिप्लोब्लास्टिका	एसीलोमेटा
,, पोरिफ़ेरा		
,, नांइडेरिया		
,, टीनोफ़ोरा		
,, प्लैटीहेल्मिथीज़	ट्रिप्लोब्लास्टिका	
,, एकैन्थोसेफ़ेला		
,, ऐस्कहेल्मिथीज़		
,, एंटीप्रोक्टा		सीलोमेटा
,, कीटोग्नैथा		
,, पोगोनोफ़ोरा		
,, फोरोनिडा		
,, एक्टोप्रोक्टा		
,, ब्रैकियोपोडा		
,, एक्यूरिडा		
,, साइपनक्यूलिड		
,, ऐनेलिडा		
,, ओनाइकोफ़ोरा		
,, आर्थ्रोपोडा		
,, मोलस्का		
,, एकाइनोडर्मेटा		
,, हेमिकॉर्डेटा		

2

फ़ाइलम प्रोटोज़ोग्रा
(PHYLUM PROTOZOA)

प्रोटोजोग्रा सूक्ष्मदर्शी ग्राकार के होते हैं। इनके शरीर ग्रकेली कोशिका के बने होते हैं जो कोशिकाग्रों में विभाजित नहीं होता, ग्रतः उन्हें ग्रकोशिकीय कहा जा सकता है। यद्यपि वे ग्रकेली कोशिकाग्रों के बने होते हैं फिर भी वे संरचना ग्रथवा कार्य की दृष्टि से ग्रकेली मेटाजोग्रा कोशिका के समान नहीं होते, वे सम्पूर्ण जीव होते हैं ग्रौर उच्चतर प्राणियों की तमाम क्रियाग्रों को करते हैं। उनकी देह के विभिन्न ग्रंश ग्रंगक नामक विशेपित भागों में विभेदित हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप श्रम-विभाजन हो जाता है। प्रोटोजोग्रा केवल वहीं पाए जाते हैं जहां नमी हो, वे ग्रलवण जल (मीठे जल), नमके पानी, नम मिट्टी में पाए जाते हैं ग्रौर कुछ परजीवी होते हैं। ऐसे कोई लक्षण नहीं हैं जिनके द्वारा प्रोटोजोग्रा को एककोशिकीय पौधों से स्पष्ट पृथक् पहचाना जा सके, बस यही एक ग्रंतर है कि उनमें सामान्य पोषण विधि प्राणिसम (holozoic) होनी है। प्रोटोजोग्रा की 30,000 से ऊपर जातियां ज्ञात हैं, ग्रौर इस फाइलम को इन चार उप-फाइलमों में विभाजित किया जाता है: सार्कोमैस्टिगोफोरा (sarcomastigophora), स्पोरोजोग्रा (sporozoa), नाइडोस्पोरा (Cnidospora) तथा सिलियोफोरा (Ciliophora)।

I. ग्रमीबा प्रोटियस (*Amoeba proteus*)

अधिक्लास सार्कोडाइना (Superclass Sarcodina) में वे प्रोटोजोग्रन ग्राते हैं जिनमें वयस्क में कूटपाद (pseudopodia) पाये जाते हैं; इन कूटपादों का काम ग्राहार पकड़ना होता है ग्रौर कुछ में ये चलने के ग्रंगकों के रूप में भी काम ग्राते हैं। इनमें ग्रपेक्षाकृत थोड़े ग्रंगक होते हैं ग्रौर ये शायद सबसे सरल प्रोटोजोग्रन हैं, किंतु इनमें से ग्रधिकतर में कंकाली रचनाएं पाई जानी हैं जो जटिल होती हैं। सार्कोडाइना में विभिन्न ग्रमीबा ग्रौर ग्रनेक समुद्री, ग्रलवण जलीय तथा स्थलीय प्राणी ग्राते हैं।

अमीबा प्रोटियस तालाबों और नालियों की श्लेष्मी तली में व्यापक रूप में पाया जाता है। इन स्थानों में यह अक्सर जलीय पौधों की निचली सतह पर पाया जाता है। यह एक सरलतम जंतु माना जा सकता है क्योंकि इसका शरीर प्रोटोप्लाज्म की एक सूक्ष्म, पारदर्शी, असममित बुंदक के रूप में होता है, यह 0.25 mm. साइज का होता है। इसका जातीय नाम **प्रोटियस** यूनान के एक समुद्र के देवता के नाम पर है जो सदैव अपनी शक्ल बदलता रहता था। **अमीबा प्रोटियस** अपने शरीर से बहिर्वृद्धियां निकाल-निकाल कर सतत शक्ल बदलता रहता है, फिर भी यह एक स्पष्ट बाह्य रेखा बनाए रखता है। इसका प्रोटोप्लाज्म एक रंगहीन जेली होता है जो **कूटपाद** (pseudopodia) नामक अनेक कुंद उंगली जैसी अस्थायी बहिर्वृद्धियां बनाता है जिनके कारण शरीर की आकृति बदलती रहती है। इसका प्रोटोप्लाज्म दो क्षेत्रों बाहरी एक्टोप्लाज्म तथा भीतरी एंडोप्लाज्म में विभाजित रहता है। एक्टोप्लाज्म (ectoplasm) में अनेक सुव्यक्त अनुदैर्ध्य कटक (ridges) बने होते हैं, यह अकणिकीय, समांग, लचीला तथा पारभासी होता है। एंडोप्लाज्म (endoplasm) एक कणिकीय विषमांग तरल होता है जिसके भीतर द्विपिरैमिडी क्रिस्टल होते हैं, यह अपेक्षाकृत अधिक तरल होता है और इसमें धारा-गतियां दिखाई देती हैं। एक्टोप्लाज्म तथा एंडोप्लाज्म के बीच कोई
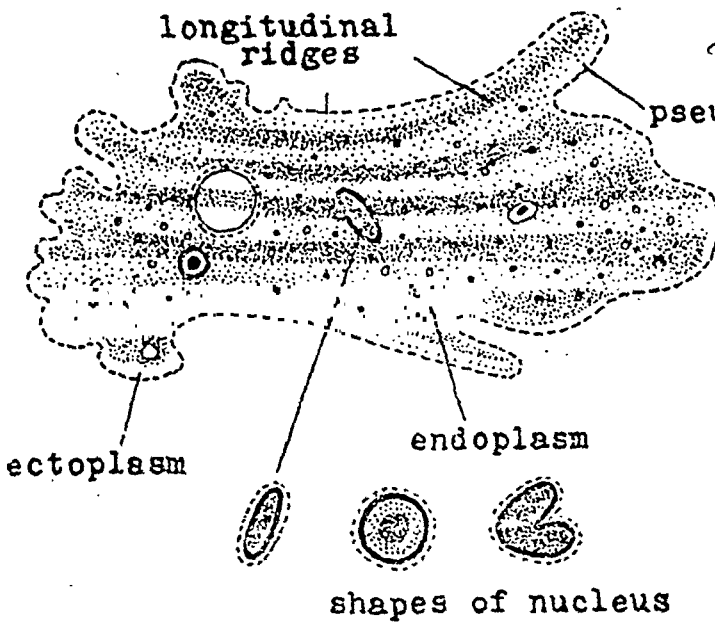
चित्र 5—अमीबा प्रोटियस (*Amoeba proteus*)

Longitudinal ridges, अनुदैर्ध्य कटक; pseudopod, कूटपाद; endoplasm; एंडोप्लाज्म; ectoplasm, एक्टोप्लाज्म; shapes of nucleus, केन्द्रक की आकृतियां; bipyramidal crystal, द्विपिरैमिडी क्रिस्टल।

स्पष्ट विभेद रेखा नहीं होती। एक्टोप्लाज्म के अनुदैर्ध्य कटक तथा एंडोप्लाज्म के द्विपिरैमिडी क्रिस्टल **अ० प्रोटियस** की विशेषताएं हैं।

एक्टोप्लाज्म की बाहरी सतह पर एक अदृश्य झिल्ली, **प्लाज्मालेमा** (plasmalemma) बनी होती है जो लाइपॉयड तथा प्रोटीन अणुओं की एक दोहरी परत की बनी होती है, और प्लाज्मालेमा की बाहरी सतह पर अत्यन्त सूक्ष्म तंतु बने होते हैं जिनके कार्य के बारे में जानकारी नहीं है। टूट जाने पर प्लाज़्मालेमा में पुनरुद्भवन (regeneration) हो सकता है, यह अर्धपारगम्य होती है और प्राणी एवं उसके बाहरी जल के बीच पदार्थों के आदान-प्रदान का नियमन करती है। प्लाज़्मालेमा के नीचे एक्टोप्लाज़्म एक स्वच्छ **काचाभ परत** (hyaline layer) बनाता है जो आगे बढ़ते हुए कूटपाद के ऊपर **काचाभ टोपी** (hyaline cap) के रूप में मोटी हो जाती है।
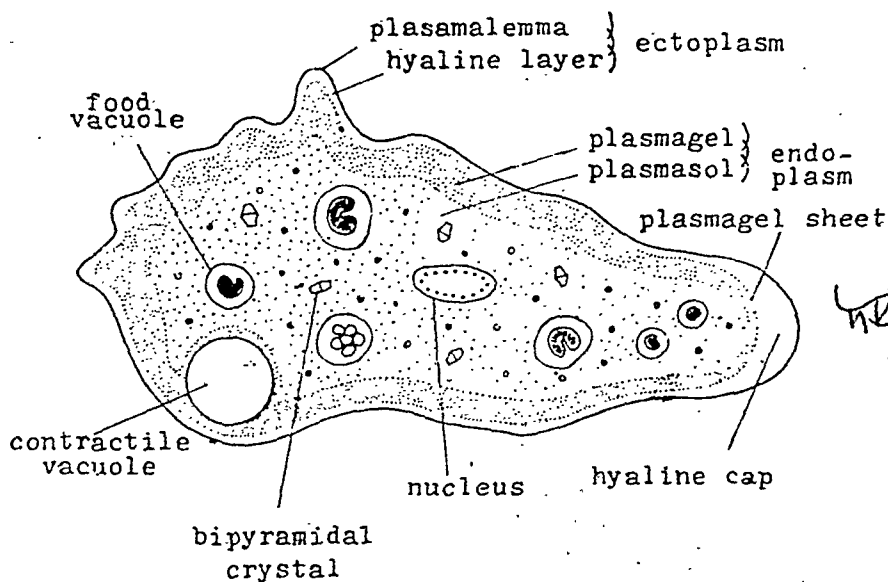
चित्र 6—**अमीबा प्रोटियस**—प्रकाशिकीय सेक्शन।

Food vacuole, आहार रिक्तिका; plasmalemma; प्लाज्मालेमा; hyaline layer, काचाभ परत; ectoplasm, एक्टोप्लाज्म; plasmagel, प्लाज्माजेल; plasmasol, प्लाज्मासॉल; endoplasm, एंडोप्लाज्म; plasmagel sheet, प्लाज्माजेल चादर; hyaline cap, काचाभ टोपी; nucleus, केन्द्रक; bipyramidal crystal, द्विपिरैमिडी क्रिस्टल; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका।

एंडोप्लाज्म में एक बाहरी **प्लाज्माजेल** (plasmagel) होता है जो कणिकीय और अधिक ठोस होता है लेकिन इसकी कणिकाओं में कोई गति होती नहीं दिखाई पड़ती। मुख्य भीतरी एंडोप्लाजम **प्लाज्मासॉल** (plasmasol) होता है जो कि अधिक कणिका-युक्त तरल होता है जिसमें विविध प्रकार के अंतस्थ पाए जाते हैं जैसे माइटोकॉण्ड्रिया, वसा गोलिकाएं, प्लेट-नुमा अथवा द्विपिरैमिडी क्रिस्टल और अनेक प्रकार के अंगक; इसमें धारा-गतियां दिखाई पड़ती हैं, प्लेटों तथा क्रिस्टलों के कार्य की जानकारी नहीं है। बीच में एक केन्द्रक होता है जो अल्पायु अमीबा में डिस्कनुमा होता है और थोड़ा-

थोड़ा उभयावतल (biconcave) भी, लेकिन अधिक आयु वाले अमीबा में यह वृत्ताकार अथवा वलन पड़ा हुआ हो जाया करता है। केन्द्रक में एक दृढ़ केन्द्रक-झिल्ली होती है और इसके तुरंत भीतर अपवर्तनी कणिकाओं का एक अस्तर. होता है, क्रोमैटिन या तो बराबर-बराबर छितराये हुई कणिकाओं के रूप में हो सकता है या इसका एक जाल-सा बना हो सकता है, अवर्णी (achromatic) भाग गाढ़ा होता है, न्यूक्लियोप्लाज्म कम मात्रा में होता है। इस प्रकार के केन्द्रक को **संहित** (massive) अथवा **कणिकीय** (granular) केन्द्रक कहते हैं। केन्द्रक की स्थिति प्लाज़्मासॉल की गति के साथ-साथ बदलती रहती है। कूटपाद अनेक होते हैं, वे चौड़े से लेकर कुंद गोल सिरों से युक्त सिलिंडराकार तक हो सकते हैं, वे एक्टोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्म दोनों के बने होते हैं, इस प्रकार के कूटपादों को **पालिपाद** (lobopodia) कहते हैं। अमीबा की विभिन्न जातियों में कूटपाद भी अलग-अलग प्रकार के हो सकते हैं जैसे (क) **पालिरूपी** (lobose) (उंगली की शक्ल के और कुंद), (ख) **तारारूपी** (stellate) अथवा **अररूपी** (radiose) (लम्बे, पतले और नुकीले), (ग) **स्लगरूपी** (limax) (अकेला चौड़ा कूटपाद), (घ) **बुंदाकार** (guttula) (चौड़े गोल, प्लाज्मालेमा के टूटने से बनते हैं जिसमें से एक्टोप्लाज्म और एंडोप्लाज्म दोनों ही बाहर आ जाते हैं),
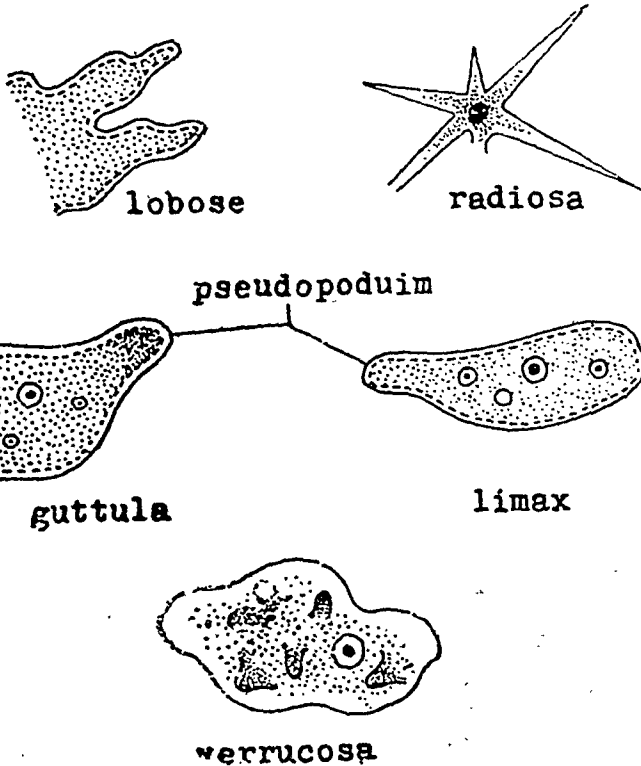
चित्र 7—अमीबाओं के कूटपाद।
Lobose, पालिरूपी; radiosa, अररूपी; pseudopodium, कूटपाद; guttula, बूंदाकार; limax, स्लगरूपी; verru-ccsa, मस्साकार ।

(ङ) मस्साकार (verrucosa) (सख्त पेलिकल-आवरण केवल धीरे-धीरे बदलने वाले उभार बनने देता है)। कूटपाद चलने में सहायता देने वाले तथा आहार पकड़ने वाले अंगक हैं।

संकुचनशील रिक्तिका (Contractile vacuole) एक बड़े आकार की स्वच्छ तरल से भरी गुहा होती है जो पश्च दिशा की ओर पड़ी रहती है। इसका स्थान स्थिर नहीं होता बल्कि यह एंडोप्लाज़्म में चक्कर लगाती रहती है। यह जंतु के पिछले सिरे के पास बनना शुरू होती है और कदाचित अनेक छोटी-छोटी रिक्तिकाओं के इसके साथ जुड़ते जाने से यह आकार में बड़ी होती जाती है। जैसे-जैसे यह बढ़ती जाती है यह बाहरी प्लाज़्माजेल में आती जाती है जहां यह रुक जाती है और उसी दौरान एंडोप्लाज़्म बहकर आगे पहुंच जाता है जिसके फलस्वरूप यह पश्च सिरे पर रह जाती है जहां यह अपनी दीवारों के सिकुड़ने के कारण फूट जाती है और इसके भीतरी पदार्थ बाहर फेंक दिए जाते हैं, इस बाहर फेंके जाने के स्थान पर कोई दृश्यमान छिद्र नहीं होता। जहां यह विलीन हुई थी वहीं पुनः बनने लगती है और उसके बाद केन्द्रक की ओर बढ़ती जाती और अंत में पीछे की ओर आ जाती है। रिक्तिका तालबद्ध रूप में तरल से भरती जाती और उसी तरल को बाहर की ओर निकालती जाती है। प्रोटोजोअनों में संकुचनशील रिक्तिका को चारों ओर से भारी संख्या में माइटोकॉण्ड्रिया घेरे रहते हैं, जिनके समीप जल की रिक्तिकाएं प्रकट होती हैं जो फिर परस्पर जुड़कर एक बड़ी रिक्तिका बनाती हैं। माइटोकॉण्ड्रिया रिक्तिका के वास्तविक निर्माण और क्रिया के वास्ते ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह जंतु की CO_2 और अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालती है, यह न केवल उत्सर्गी और श्वसनीय है बल्कि अधिकतर यह एक द्रवस्थैतिक (hyrdostatic) अंग होती है क्योंकि यह निरंतर उस जल को बाहर निकालती जाती है जिसे अमीबा सोखता है; इस प्रकार यह परासरणी दाब (osmotic pressure) का नियमन करती है और प्रोटोप्लाज़्म तथा चारों ओर के पानी के बीच के तनाव का ताल-मेल बनाती है, फलतः यह जंतु के भार का भी नियमन करती है। अनेक समुद्री एवं परजीवी अमीबाओं में कोई संकुचनशील रिक्तिका नहीं होती, ऐसा इसलिए क्योंकि इनके प्रोटोप्लाज़्म की परासरण दाब लगभग उतनी ही होती है जितनी कि उनके चारों ओर के माध्यम की। एंडोप्लाज़्म में अनेक छोटी-बड़ी **आहार-रिक्तिकाएं** (food vacuoles) होती हैं, जिनमें से प्रत्येक में जल से घिरा एक भोजन-ग्रास होता है। एंडोप्लाज़्म की गतियों के साथ-साथ आहार रिक्तिकाएं भी घूमती जाती हैं। एंडोप्लाज्म में कुछ अपशिष्ट पदार्थ और बालू के कण भी होते हैं। **अमीबा** में प्रोटोप्लाज़्म के गुणों का प्रदर्शन मिलता है और वह जैव क्रियाएं सम्पन्न करता है।

चलन (Locomotion)—एक्टोप्लाज़्म एक कुंद प्रवर्ध निकालता है जिसमें एंडोप्लाज़्म बहकर एक कूटपाद बनाता है, कूटपाद का यह बनना आगे बढ़ते हुए सिरे पर होता है जिसे उस स्थिति में अग्र सिरा कहा जाता है। प्रायः शुरू में छोटे-छोटे अनेक कूटपाद बनते हैं, इनमें से एक कूटपाद बड़ा होता जाता है और शेष गायब हो जाते हैं। कूटपादों में जो प्रोटोप्लाज़्म पहुंचता है वह स्वाभाविकतः अन्य भागों से ही आया हुआ

होता है, जिसके कारण जंतु की न केवल आकृति ही बदल जाती है वरन् उसकी स्थिति भी; इस प्रकार कूटपाद जंतु की आकृति और स्थिति दोनों को ही बदलते हैं। इन गतियों को अमीबीय गतियां कहते हैं जो न केवल अमीबा में ही पायी जाती हैं बल्कि अन्य प्रोटोजोआ में और मेटाजोआ की कुछ अमीबीय कोशिकाओं में भी पायी जाती हैं। कूटपादों के निर्माण और उनके द्वारा गति सम्पन्न होने के विषय में अनेक सिद्धांत प्रचलित हैं।

1. **संकुचन सिद्धांत** (Contraction Theory) (Jennings)— जेनिंग्ज ने **अमीबा वेरुकोसा** (*Amoeba verrucosa*) का अध्ययन किया था जिसमें लगभग कोई कूटपाद नहीं होते। यदि किसी गतिशील **अ० वेरुकोसा** की ऊपरी सतह पर कार्मीन का एक कण रख दिया जाए तब यह देखा जाता है, कि वह कण आगे की ओर चलता जाता और अगले सिरे पर घूम जाता है, उसके बाद वह आधार-सतह पर तब तक रुक जाता है जब तक कि सारा जंतु उसके ऊपर से होकर नहीं जाता, उसके बाद कण
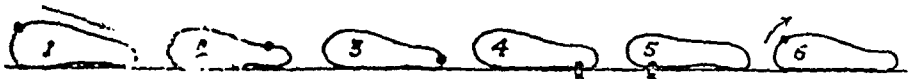
चित्र 8.

अमीबा वेरुकोसा में चलन (जेनिंग्ज)। कार्मीन का कण प्रोटोप्लाज़्म के लुढ़कते जाने से 1, 2 और 3 में आगे की ओर बढ़ता जाता है। 4 और 5 में यह "×" के चिन्ह पर तब तक रुक जाता है जब तक कि सारा जंतु उसके ऊपर से नहीं निकल जाता। 6 में कण पिछले सिरे के ऊपर की ओर उठता जाता है।

पश्च सिरे के ऊपर की ओर उठता जाता है और उपरी सतह में आकार आगे को बढ़ता जाता है। कण की स्थिति का यह परिवर्तन जंतु के प्रोटोप्लाज़्म की गति के कारण है जिसके साथ-साथ शरीर की लुढ़कने की गति भी होती जाती है, और इन्हीं दोनों प्रक्रियाओं के द्वारा चलन सम्पन्न होता है।

2. **संकुचन सिद्धांत** (Dellinger)—डेलिंजर ने **अमीबा प्रोटियस** को
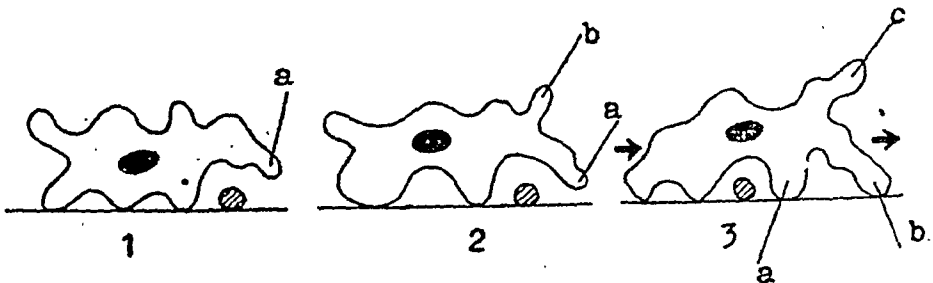
चित्र 9.

अमीबा प्रोटियस में चलन (डेलिंजर)— 1. *a* पर कूटपाद बन रहा है। 2. कूटपाद *a* एक जड वस्तु के ऊपर से उठाया जा रहा है और कूटपाद *b* बन रहा है। 3. कूटपाद *a* और *b* आधार सतह से चिपक गये हैं और संकुचन के द्वारा जंतु आगे की ओर खिंच रहा है, एक और कूटपाद *c* पर बन रहा है।

ऊपर से न देखकर पार्श्व से देखा, ठीक प्रेक्षक के सामने से। **अमीबा** अपना अग्र सिरा एक कूटपाद के रूप में बढ़ाता है, फिर वह उसे ऊपर उठाता हुआ आगे आधार-सतह पर जमाता है, तब वह इस कूटपाद को सिकोड़ता है जिसके कारण शरीर आगे की ओर खिच आता है। यही प्रक्रिया वह बार-बार दोहराता है। इस प्रकार एंडोप्लाज़्म में एक स्थूल जालक के रूप में स्थित संकुचनशील पदार्थ के संकुचन द्वारा जंतु सामने की ओर से खिचता चला आता और पिछली ओर से धिकलता जाता है। इस विधि द्वारा **अमीबा** वास्तव में एक-एक कदम रखता हुआ चलता जाता है। डेलिजर के अनुसार कूटपादों का निर्माण एक्टोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्म के बीच जल के आदान-प्रदान के द्वारा होता है। इसी आदान-प्रदान के द्वारा एकांतर क्रम में संकुचन और प्रसार होते जाते हैं। संकुचन सिद्धांतों को अब मान्यता नहीं दी जाती।

3. **जेल-सॉल सिद्धांत** ((Gel-sol theory) (Pantin):—पैंटिन ने समुद्री **अमीबा लाइमैक्स** का अध्ययन किया। इसमें अम्ल के स्राव और उसी स्थान पर पानी के अवशोषण से प्रोटोप्लाज़्म में उत्फूलन पैदा होकर कूटपाद बनता है। जैसे-जैसे कूटपाद
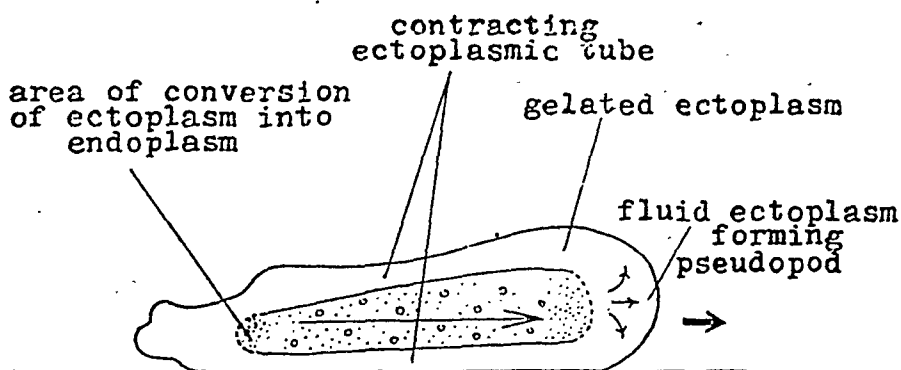
चित्र 10.

अमीबा लाइमैक्स में चलन (पैंटिन)—एक अकेला कूटपाद बनता है, एक्टोप्लाज़्मी नली एंडोप्लाज़्म को बलपूर्वक आगे बढ़ा देती है। Area of conversion of ectoplasm into endoplasm, एक्टोप्लाज़्म को एंडोप्लाज़्म में बदलने वाला क्षेत्र; contracting octoplasmic tubo, संकुचित होती हुई एक्टोप्लाज़्मी नली; gelated, ectoplasm, जेलीकृत एक्टोप्लाज़्म; fluid ectoplasm forming pseudopod, कूटपाद बनाता हुआ तरल एक्टोप्लाज़्म।

बनता और आगे को बढ़ता है वैसे-वैसे एक जिलेटिनी नली बनती जाती है। पश्च सिरे पर यह एक्टोप्लाज़्मी नली एंडोप्लाज़्म में बदलती जाती है। एक्टोप्लाज़्मी नली सिकुड़ती है और एंडोप्लाज़्म के ऊपर दबाव डालते हुए उसे आगे की ओर प्रवाहित करता है, इसके द्वारा चलन सम्पन्न होता है।

4. **श्यानता-परिवर्तन सिद्धांत** (Change of viscosity theory) (Mast)—मास्ट ने **अमीबा प्रोटियस** का अध्ययन किया और उसका सिद्धांत प्रोटोप्लाज़्म के सॉल से जेल अवस्था में पलटवाँ-परिवर्तन पर आधारित है। उसके अनुसार अमीबी गतियां चार प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होती हैं, (क) **अमीबा** का

आधार-सतह से चिपकना; (ख) आगे बढ़ते जाते अग्र कूटपादों पर प्लाज़्मोसॉल का जेलीकरण, (ग) पश्च सिरे पर तथा घटते जाते कूटपादों पर प्लाज़्माजेल का सॉलीकरण, (घ) पश्च सिरे पर प्लाज़्माजेल-नली का संकुचन ताकि प्लाज़्मासॉल आगे की ओर खिसकता जाय। जैसे ही अग्र सिरे पर प्लाज़्मासॉल प्लाज़्माजेल में बदलता है वैसे ही प्लाज़्माजेल नली और आगे बढ़ जाती है तथा पश्च सिरे पर प्लाज़्मासॉल में बदल जाती है, प्लाज़्माजेल नली प्लाज़्मासॉल को आगे की ओर बढ़ाती है जिससे कूटपाद बन जाता है। एक पतली प्लाज़्माजेल चादर अग्र सिरे पर सम्पूर्ण बनी रहती है और प्लाज़्मासॉल को प्लाज़्माजेल तक पहुंचने से रोकती है, लेकिन कभी-कभी यह चादर टूट जा सकती है जिसके कारण प्लाज़्मासॉल वहां से बहकर काचाभ टोपी में भर जाता है, लेकिन शीघ्र ही प्लाज़्मासॉल में जेलीकरण होकर एक नयी प्लाज़्माजेल चादर बन जाती है।
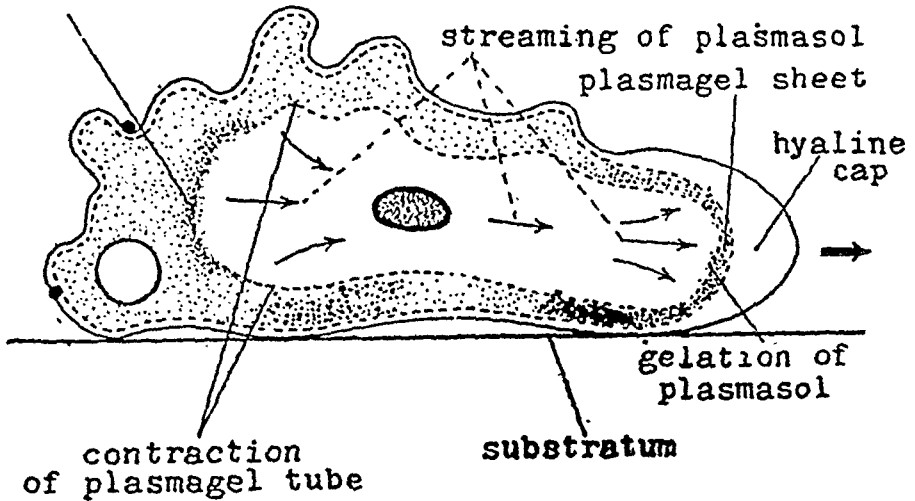
चित्र 11. **अमीबा प्रोटियस का चलन (मास्ट)**

Solation of plasmagel, प्लाज्माजेल का सॉलीकरण; streaming of plasmasol, प्लाज्मासॉल का प्रवाह; plasmagel sheet, प्लाज्माजेल चादर; hyaline cap, काचाभ टोपी; gelation of plasmasol, प्लाज्मासॉल का जेलीकरण; substratum, आधार-सतह; contraction of plasmagel tube, प्लाज्माजेल नली का संकुचन।

कूटपाद इसलिए बनते हैं क्योंकि प्लाज़्माजेल लचीला होता है और उस पर तनाव होता है, जहां भी लचीली शक्ति सबसे कम होती है वहीं पर यह बाहर को उठ आता है। अमीबा की गति के दौरान प्लाज़्माजेल की लचीली शक्ति सबसे ज्यादा पार्श्वों में होती है, उससे कम पश्च सिरे पर और सबसे कम अग्र सिरे पर; इसके फलस्वरूप जंतु की शक्ल लंबी हो जाती है और अग्र सिरा आगे को बढ़ जाता है जिससे गति सम्पन्न होती है। मास्ट के इन प्रेक्षणों को उससे बहुत पहले हाइमन ने भी किया था, ये पैंटिन के प्रेक्षणों से मेल खाते हैं और इनमें चलन का एक अच्छा स्पष्टीकरण मिलता है।

5. गोल्डैकर (Goldacre) तथा लौर्च (Lorch) के अनुसार प्लाज़्माजेल नली का संकुचन जंतु को चलाने के लिए आवश्यक तमाम वल प्रदान नहीं कर सकता। उनका कहना है कि तमाम प्रोटीन जव उनके अणु खुल जाते हैं तो जेल में बदल जाते हैं और जव उनके अणु वलित हो जाते हैं तो वे सॉल में बदल जाते हैं। तरल एंडोप्लाज्म में प्रोटीन अणु पास-पास सटे हुए वलित रहते हैं, ये अणु अग्रगामी कूटपादों के सिरों पर खुलते जाते हैं जिससे कि सीधे हो गए और चिपके अणुओं की एक परत वन जाती है। पश्च दिशा में प्रोटीन अणु फिर से वलित होने लगते हैं और वे एक संकुचन वल पैदा करते हैं। अमीवा में संकुचन पश्च दिशा में सीमित होता है जिसके कारण संकुचित प्रोटीन अग्र सिरे की ओर वलपूर्वक बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे जंतु चलता जाता है वैसे-वैसे पश्च सिरे पर प्लाज़्माजेल सिकुड़ता जाता है, यह प्लाज़्मासॉल में वदल जाता है जो आगे को वह जाता है और तव जेलीकरण के द्वारा यह आगे की ओर अग्रगामी कूटपाद वनाता जाता है। वलनों के और आगे खुलते जाने से ये पश्च अणु सांलीकृत हो जाते तथा आगे एंडोप्लाज़्म में पहुंच जाते हैं। इस प्रकार के अणु अमीवा के पार्श्वों से पदार्थों को खींचते जाते हैं और जव वे पुनः वलित होते जाते तो जंतु की पश्च दिशा में उन्हें छोड़ते जाते हैं जिससे और अधिक संकुचन वल उत्पन्न होता है। कोशिका का पिछला भाग मानो उसी तरह भिचता जाता है जैसे कि टूथ-पेस्ट की ट्यूव, इससे प्लाज़्मासॉल वलपूर्वक अगले सिरे पर पहुंच जाता है जहां पर यह एक कूटपाद वाहर को निकाल देता है। गति के लिए जंतु का आधार-सतह से चिपका होना आवश्यक है। ऐसा अनुमान है कि अमीवा को चलाने के लिए आवश्यक ऊर्जा तव सप्लाई होती है जव **ऐडेनोसीन ट्राइफॉस्फेट** के प्रभाव के अंतर्गत प्रोटीन-अणु सिकुड़ते हैं, जो एक ऐसा पदार्थ है जिसमें रासायनिक ऊर्जा संचित रहती है और जिसके वारे में यह ज्ञात है कि वह मेटाजोआ में पेशियों के संकुचन के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। चलन की यह व्याख्या संतोषप्रद जान पड़ती है क्योंकि इससे प्रकट हो जाता है कि कूटपाद-निर्माण की क्रियाविधि और पेशी-संकुचन समान हैं।

6. **फव्वारा क्षेत्र सिद्धांत** ((Fountain zone theory) (Allen)— ऐलेन के आधुनिकतम सिद्धांत में कहा गया है कि अमीवी गति अणुओं का धीमा संकुचन होती है। यह सिद्धांत इस प्रेक्षण पर आधारित है कि अगले सिरे के समीप के एंडोप्लाज़्मी अणु पश्च सिरे के एंडोप्लाज़्मी अणुओं से पहले चलना शुरू कर देते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि चलन पीछे से आगे की ओर भिचते जाने के कारण नहीं हो सकता जैसा कि अन्य सिद्धांतों में दावा किया गया है। एंडोप्लाज़्म में लंवी प्रोटीन शृंखलाएं होती हैं जो अग्र सिरे पर संकुचित होती जाती हैं और यहीं पर प्लाज़्मासॉल प्लाज़्माजेल में वदलता जाता है। इस प्लाज़्माजेल में प्रोटीन शृंखलाएं वलित होती जाती हैं जिससे जेल अवस्था वनती है। विश्वास किया जाता है कि निर्माणशील कूटपाद के सिरे के समीप वाले क्षेत्र में उभर कर वाहर आता हुआ प्लाज़्मोसॉल प्लाज़्माजेल में वदलता जाता है जिससे एक दोदार या फव्वारा क्षेत्र वन जाता है और इस अग्र क्षेत्र में तनाव उत्पन्न होता है जो एंडोप्लाज़्म के पिछले सिरे की ओर संचरित हो जाता है। पश्च सिरे पर प्रोटीन शृंखलाएं खुलती जाती हैं जिसके कारण प्लाज़्माजेल परिवर्तित होकर प्लाज़्मासॉल वनता जाता है। इस प्रकार जंतु अग्र सिरे पर होने वाले संकुचन अथवा तनाव के कारण आगे

की ओर खिचता जाता है। यह आवश्यक है कि अमीबा की सतह अस्थायी तौर पर आधार-सतह से चिपक जाए क्योंकि मात्र भीतरी धारागति से चलन सम्पन्न नहीं हो सकता।

इन सब बातों को देखते हुए अभी तक इनमें से किसी भी सिद्धांत के द्वारा अमीबीय गति का कोई सम्पूर्ण स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

चयापचय (Metabolism)—अमीबा आहार और O_2 ग्रहण करता है जिनसे वह प्रोटोप्लाज्म बनाता है, उसके बाद प्रोटोप्लाज्म को अपशिष्ट उत्पादों में तोड़ा जाता है जिससे गतिज-ऊर्जा उत्पन्न होती है। इन प्रक्रियाओं में अनेक सम्मिश्र रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती हैं जिनको कुल मिलाकर चयापचय कहा जाता है। जिन प्रक्रियाओं में ऊर्जा इस्तेमाल होकर प्रोटोप्लाज़्म बनता है उन्हें उपचय (anabolism) कहते हैं और जो ऊर्जा के विमोचन के लिए प्रोटोप्लाज्म को तोड़ते और अपशिष्ट पदार्थों को बनाते हैं उन्हें अपचय (katabolism) कहते हैं। अपचय के अपशिष्ट पदार्थ हैं यूरिया, CO_2, H_2O तथा खनिज। चयापचय में केन्द्रक आहार के स्वांगीकरण (assimilation) का नियंत्रण करता है तथा साइटोप्लाज़्म अपचयी प्रावस्था को चलाता है। अमीबा में होने वाली चयापचयी प्रक्रियाएं ये हैं: अंतर्ग्रहण (ingestion), पाचन (digestion), बहिःक्षेपण (egestion), अवशोषण (absorption) परिसंचरण (circulation), स्वांगीकरण, विस्वांगीकरण (dissimilation), स्राव (secretion), उत्सर्जन (excretion) तथा श्वसन।
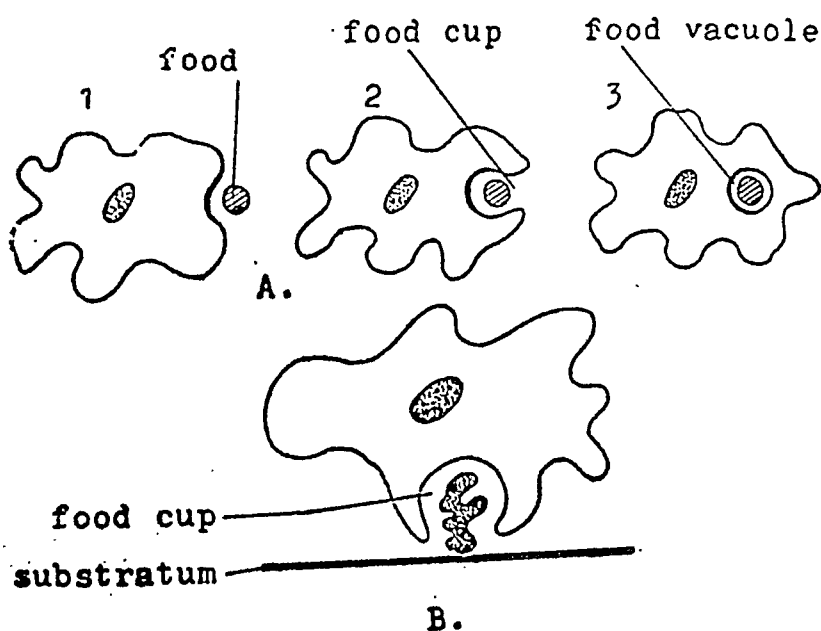
चित्र 12—अंतर्ग्रहण। A. परिभित्ति (Circumvallation) (1-3); B—परिप्रवाह (Circumfluence).

Food, आहार; food cup, आहार कप; food vacuole, आहार रिक्तिका; substratum, आधार-सतह।

आहार और अंतर्ग्रहण—अमीबा सरल पदार्थों से अपना आहार नहीं बना सकता, इसे आहार के वास्ते पूर्वनिर्मित कार्बनिक पदार्थ चाहिए। इस प्रकार की पोषण-विधि को जिसमें ठोस कार्बनिक कणों का अंतर्ग्रहण होता है **प्राणिपोषी** (zootrophic) अथवा **प्राणिसमभोजी** (holozoic) कहते हैं। अमीबा के आहार में बैक्टीरिया, जलीय पौधे, प्रोटोजोआ तथा कार्बनिक पदार्थ शामिल हैं। **अमीबा प्रोटियस** डायटमों का आहार नहीं करता जैसा कि प्रायः अन्यथा कहा जाता है। **अमीबा** में आहार की ओर पसंद-नापसंद होती दिखाई पड़ती है और यह अकार्बनिक तथा कार्बनिक आहार में भेद कर सकता है। यदि आहार में कार्बन का कण लगा दिया जाए तो यह जंतु आहार को भीतर ले लेगा और कार्बन के कण को बाहर ही छोड़ देगा। कोई मुख नहीं होता लेकिन किसी भी बिंदु पर आहार अंतर्ग्रहीत कर लिया जाता है, यह बिंदु सामान्यतः आगे बढ़ता जाता हुआ अग्र सिरा होता है। अंतर्ग्रहण के निम्नलिखित तरीके अपनाए जाते हैं। (क) **परिभित्ति** (Circumvallation)—जब कोई अमीबा अपने आहार के पास आता है तो ठीक उसके सामने वाला भाग आगे चलना रुक जाता है, और आहार के ऊपर, नीचे तथा पार्श्वों में कूटपाद बनते जाते हैं जिससे एक आहार कप बन जाता है। यह आहार कप भोजन को छूता नहीं है बल्कि कप के किनारे आहार के चारों ओर फैलकर इस तरह जुड़ जाते हैं कि आहार के साथ-साथ कुछ पानी भी भीतर बंद हो जाता है और इस तरह एक आहार रिक्तिका बन जाती है। आहार रिक्तिका की दीवारें एक्टोप्लाज़्म की बनी होती हैं जो अब भीतरी बन जाती तथा एंडोप्लाज़्म में बदल जाती हैं। अंतर्ग्रहण की यह विधि जीवित शिकार को पकड़ने के लिए इस्तेमाल की जाती है। (ख) **परिप्रवाह** (Circumfluence)—जब आहार अचल होता है तो एक कूटपाद आहार के सम्पर्क में आता है और उसके ऊपर आहार-कप बनाता हुआ आहार को आधार-सतह पर गड़ा लेता है, तब कप को नीचे से पूरा कर लिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप भोजन एक आहार-रिक्तिका में बंद हो जाता है। इस प्रक्रिया को बार-बार करके अमीबा शैवालों के लंबे-लंबे सूत्रों को लपेट लेता है। **अमीबा** की अन्य जातियों में भोजन का अंतर्ग्रहण आयात और अंतर्वलन के द्वारा होता है। (ग) **आयात** (Import)—**अ० वेरुकोसा** में भोजन जंतु के सम्पर्क में आता है और उसकी देह में निष्क्रिय रूप में भीतर समाता जाता है। (घ) **अंतर्वलन** (Invagination) —**अ० वेरुकोसा** भोजन के सम्पर्क में आता है और उससे चिपक जाता है, भोजन के साथ-साथ एक्टोप्लाज़्म एक नलिका के रूप में एंडोप्लाज़्म में अंतर्वलित हो जाता है, और आहार-कण भीतर को चूस लिया जाता है, प्लाज़्मालेमा विलीन हो जाती और एक्टोप्लाज़्म एंडोप्लाज़्म में बदल जाता है।

नया-नया अंतर्ग्रहीत जीव कुछ समय तक बड़ी प्राथमिक आहार रिक्तिका में सक्रिय बना रह सकता है। एक घंटे के भीतर प्राथमिक आहार-रिक्तिकाएं टूटकर छोटी द्वितीयक रिक्तिकाएं बनाती हैं, ये पुनः और छोटी-छोटी रिक्तिकाओं में विभाजित हो जाती हैं जो एंडोप्लाज़्म का एक बड़ा अंश बनाती है।

पाचन (Digestion)—प्राथमिक आहार रिक्तिका के एंडोप्लाज़्म में गड़ जाने के बाद उसमें पाचन होता है। आहार रिक्तिका के भीतरी अंश पहले HCl

के कारण अम्लीय हो जाते हैं लेकिन बाद में वे क्षारीय हो जाते हैं, जीवित भोजन अम्लीय प्रावस्था में मर जाता है। प्रोटोप्लाज्म रिक्तिका के भीतर एंजाइमों का स्राव करता है जो प्रोटीनों को ऐमीनो अम्लों में, स्टार्च को घुलनशील शर्करा में, और वसाओं को वसा-अम्लों तथा ग्लीसरीन में बदल देते हैं। जब पचा हुआ भोजन आणविक रूप में आ जाता है तब आहार-रिक्तिका में से अधिकाधिक छोटी द्वितीयक रिक्तिकाएं निकल आती हैं जो अपने साथ पचे हुए भोजन को ले जाती हैं।

अमीबा न केवल खाता ही है वरन पीता भी है, जिस प्रक्रिया द्वारा यह ऐसा करता है उसे **कोशिपायन** (pinocytosis) कहते हैं अर्थात् कोशिका द्वारा पीना। कोशिपायन कुछ लवणों और कुछ प्रोटीनों की उपस्थिति में ही होता है। जब किसी अनुकूल घोल में रखा जाता है तो **अमीबा** सिकुड़ जाता है और उसकी सतह पर वलनों तथा दरारों के पड़ जाने के कारण झुर्रियां दीखने लगती हैं। वलनों से छोटे-छोटे कोष्ठ अथवा नलिकाएं बन जाती हैं जो सतह से भीतर की ओर जाती हैं, प्रत्येक नलिका विलीन होने से पहले कई मिनट तक बनी रहती है। अपने अस्तित्व के दौरान नलिकाएं घोल की बुन्दकों को भीतर सटकती जाती हैं, ये बुन्दकें नलिकाओं के आधार पर रिक्तिकाओं के रूप में टूट कर अलग हो जाती और एंडोप्लाज्म में प्रविष्ट हो जाती हैं। कोशिपायन एक ऐसी घटना है जो बीच-बीच में रुक जाती है, सक्रिय प्रावस्था लगभग एक घंटा तक चलती रहती है जिसके दौरान नलिका में एक-एक करके बुन्दकों को भीतर ले जाने के लिए पीने और सटकने का अस्थिर क्रम चलता रहता है। एक **अमीबा** 3 घंटे में अपने आयतन का गलभग 30% पी जाता है। कोशिपायन कुछ प्रोटीनों द्वारा प्रेरित होता है अन्य के द्वारा नहीं होता। यह प्रायः अनेक प्रकार की कोशिकाओं में होता है। यह एक सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोशिका उन आयनों तथा अन्य प्रकार के कणों को प्राप्त करती है जिनके प्रति प्लाज़्मा-झिल्ली अपारगम्य होती है, और जो अणु प्लाज़्मा-झिल्ली में से होकर गुजरने के लिए बहुत बड़े होते हैं वे कोशिका में घोल की दशा में पहुंच सकते हैं।

बहिःक्षेपण (Egestion)—आहार रिक्तिकाओं में बिना पच सका भोजन अपशिष्ट होता है जो प्रोटोप्लाज़्म से अधिक भारी होता है अतः यह गुरुत्व के प्रभाव के कारण पश्च सिरे पर पहुंचता जाता है जहां से **अमीबा** इसे पीछे गिरा कर आगे बढ़ जाता है। बिना पचे कणों का बहिःक्षेपण किसी नियत बिंदु पर नहीं होता, ये बिना किसी विशिष्ट छिद्र के सतह पर किसी भी स्थान से बाहर निकल जाते हैं।

स्वांगीकरण (Assimilation)—पचा हुआ खाना, जल और खनिज प्रोटोप्लाज्म द्वारा अवशोषित हो जाते और उसके भीतर संचरित होते जाते हैं। इनके द्वारा ऐमीनो अम्लों का निर्माण होता है जिससे जीवित प्रोटोप्लाज्म बनता है। शर्करा, वसा-अम्ल तथा ग्लीसरीन ऊर्जा प्रदान करते हैं। सरल पदार्थों से जीवित प्रोटोप्लाज्म बनाने की यह क्षमता जीवित पदार्थ का आधारभूत गुणधर्म है।

विषमीकरण (Dissimilation)—ऑक्सीकरण के द्वारा जीवित प्रोटोप्लाज्म लगातार विघटित होता रहता है जिससे ऊष्मा, गतिज-ऊर्जा और अपशिष्ट उत्पाद

उत्पन्न होते हैं। प्रोटोप्लाज़्म के सम्मिश्र अणु विषमीकरण के द्वारा जंतु की विभिन्न क्रियाओं के वास्ते ऊर्जा प्रदान करते हैं।

उत्सर्जन (Excretion)—अपचय के उत्पाद उत्सर्ग होते हैं। ये हैं CO_2, H_2O तथा ऐमोनिया के यौगिक; यूरिया प्रायः कम होता है। ये सब अंशतः संकुचनशील रिक्तिका द्वारा और अधिकांशतः देह की सतह द्वारा बाहर निकल फेंक दिए जाते हैं।

श्वसन (Respiration)—प्रोटोप्लाज़्म जल से ऑक्सीजन सोखता है, ऑक्सीकरण के द्वारा ऊर्जा तथा अपशिष्ट CO_2 बनते हैं। CO_2 संकुचनशील रिक्तिका के द्वारा और देह की सतह से भी बाहर निकल जाती है। यदि O_2 के स्थान पर हाइड्रोजन रखी जाए तो गतियां रुक जाती हैं और प्राणी मर जाता है। यदि O_2 के स्थान पर CO_2 डाली जाए तो पहले तो अमीबा का पुटीभवन (encystment) हो जाता लेकिन अंत में मृत्यु हो जाती है।

जनन (Reproduction)—**अमीबा** में निम्न विधियों द्वारा जनन होता है:—

1. **पुनरुत्पादन** (Regeneration)—**अमीबा** का कोई भी काटा हुआ टुकड़ा जिसमें केन्द्रक या उसका कुछ अंश हो एक नये अमीबा का पुनरुत्पादन कर देता है। हानि हुए भागों की पूर्ति की यह क्षमता अनेक निम्नतर जंतुओं में सुविकसित होती है। यदि किसी काटे गए भाग में केन्द्रक नहीं होता तो वह कुछ देर तक जीवित रह सकता है लेकिन अंत में वह मर जाएगा क्योंकि जीवन के लिए केन्द्रक का होना अनिवार्य है।

2. **द्विविभजन** (Binary fission)—प्रचुर आहार और उच्च ताप पर अमीबा में द्विविभजन होता है। यह द्विविभजन तब होता है जब जंतु अपने साइज की अधिकतम सीमा पर पहुंच जाता है। तब वह सुस्त हो जाता और गोल बन जाता है, तथा उसकी सतह पर अरीय रूप में छोटे-छोटे कूटपाद बन जाते हैं। द्विविभजन में संकुचनशील रिक्तिका काम करना बंद कर देती है, केन्द्रक में माइटोसिस प्रकार का विभाजन होता है, और तब कोशिका के बीच में संकीर्णन होकर उससे दो संतति कोशि-

चित्र 13—द्विविभजन। Hyaline area, काचाभ क्षेत्र; prophase, प्रोफेज; anaphase, ऐनाफेज; telophase, टीलोफेज।
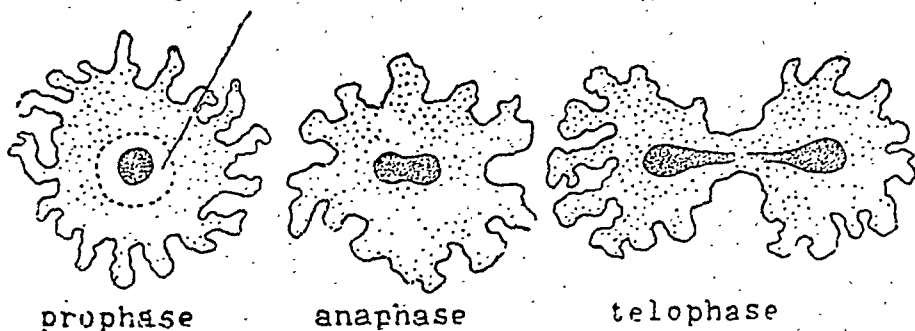
काएं बन जाती हैं। केन्द्रकीय विभाजन तथा बाहरी लक्षणों में होनेवाले परिवर्तनों के बीच एक सहसंबंध होता है। प्रोफेज में केन्द्रक गोल हो जाता है और छोटे-छोटे बहुत से कूटपाद निकल आते हैं जो हर दिशा में अरीय रूप में निकले होते हैं, तथा बीचों-बीच एक स्वच्छ काचाभ क्षेत्र प्रकट हो जाता है जो केन्द्रक की स्थिति को दर्शाता है। मेटाफेज में काचाभ क्षेत्र समाप्त हो जाता है तथा कूटपाद मोटे होने लगते हैं। ऐनाफेज में कूटपाद मोटे और स्थूल होते हैं तथा केन्द्रक लंबा हो जाता है। टीलोफेज में केन्द्रक दो में विभाजित हो जाता है, कोशिका अनुप्रस्थ दिशा में लंबी हो जाती है और एक संकीर्णन उत्पन्न होता है जो इसे दो संतति-कोशिकाओं में विभाजित कर देता है, कूटपाद सामान्य हो जाते हैं, और फिर प्रत्येक संतति-कोशिका में एक संकुचनशील रिक्तिका बन जाती है और वह कोशिका बढ़ने लगती है। लगभग 24°C पर इस प्रक्रिया में लगभग 20 से 30 मिनट लगते हैं।

3. पुटीभवन (Encystment)—जब आहार और तापमान की परिस्थितियां प्रतिकूल हो जाती हैं तब जंतु पुटी अवस्था में चला जाता है। कूटपाद सिमेट लिए जाते हैं, जंतु गोल हो जाता है, एंडोप्लाज़्म की प्रवाह गतियां बंद हो जाती हैं, बड़ी कणिकाएं घुल जाती हैं तथा प्रोटोप्लाज़्म में सूक्ष्म कणिकाएं ही कणिकाएं नजर आने लगती हैं, एक्टोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्म का अंतर समाप्त हो जाता है। जंतु में घूर्णन गति होने लगती है और वह एक पुटी का स्राव करता है जिसके भीतर दो और परतें बन जाती हैं जिनके फलस्वरूप तीन-परतों वाली पुटी बन जाती है, और तब जंतु का चक्कर खाना बंद हो जाता है। पुटी एक विश्रान्ति अवस्था होती है और वह जंतु की सुरक्षा करती है।
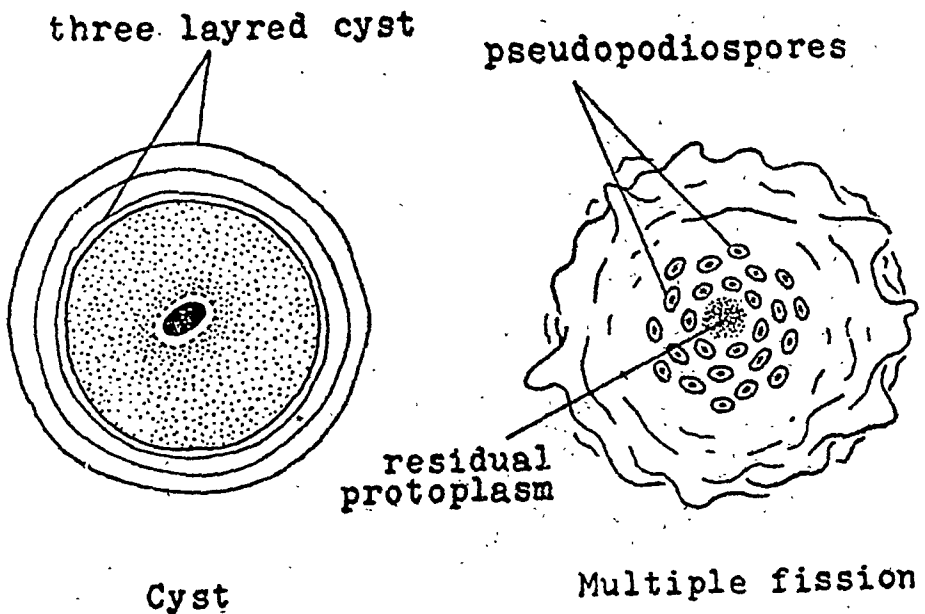
चित्र 14—पुटी बनना और बहुविभजन

Three-layered cyst, तीन परत वाली पुटी; pseudopodiospores, कूटपाद-बीजाणु; residual protoplasm, अवशेषी प्रोटोप्लाज़्म; cyst, पुटी; multiple fission, बहुविभजन।

जब तालाब सूख जाता है उस समय यह जंतु के प्रकीर्णन में भी सहायता करती है। पुनः अनुकूल परिस्थितियां आ जाने पर या हवा द्वारा उड़कर पुटियों के किसी दूसरे तालाब में पहुंच जाने पर पुटी फूट जाती है और प्रोटोप्लाज़्म बाहर आकर फिर से एक नए **अमीबा** का सृजन कर देता है। ऐसा कहा गया है कि पुटी के भीतर जनन बहुविभजन के द्वारा होता है। केन्द्रक में अमाइटोसिस विधि से विभाजन होकर 500 से 600 केन्द्रक बन जाते हैं जो कोशिका की परिधि की ओर चले जाते हैं। प्रत्येक केन्द्रक अपने चारों ओर थोड़ा-सा साइटोप्लाज़्म एकत्र कर लेता और **कूटपादस्पोर** (pseudopodiospores) या **अमीबक** (amoebulae) बना लेता है। उपयुक्त परिस्थितियां आ जाने पर पुटी की दीवार जल सोख लेती और फूट जाती है, तब कूटपादस्पोर बाहर निकल आते हैं और अलग-अलग बढ़कर अमीबा बन जाते हैं। साइटोप्लाज्म का विखंडन पुटी के केन्द्र तक नहीं पहुंचता और कुछ अवशेषी साइटोप्लाज़्म बचा रह जाता है। पुटी में बहुविभजन का उल्लेख तो किया गया है किंतु अभी उसकी पूरी तरह पुष्टि नहीं हो पाई है। आधुनिक मत के अनुसार पुटी में कोई बहुविभजन नहीं होता, वास्तव में केवल पुटी निर्माण ही होता है।

4. **स्पोर-जनन** (Sporulation)—अ० **प्रोटियस** में स्पोर बिना पुटी बनी अवस्था में भीतर बनते हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में केन्द्रकीय झिल्ली फट जाती है,
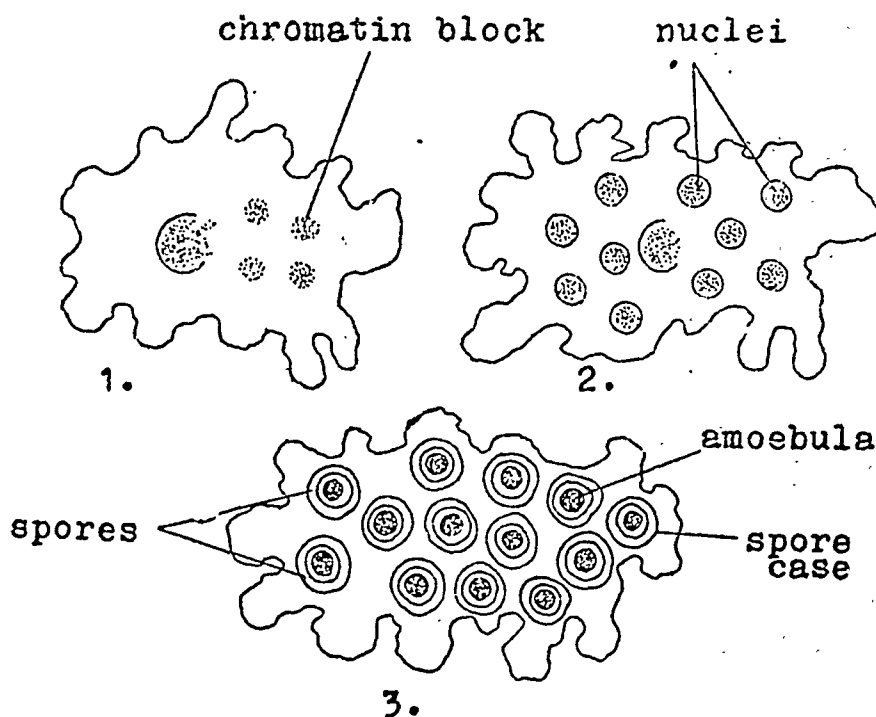
चित्र 15—स्पोर-जनन

Chromatin block, क्रोमैटिन खण्ड; nuclei, केन्द्रक; amoebulae अमीबक; spore-case स्पोर-केस; spores, स्पोर।

और क्रोमैटिन के खंड साइटोप्लाज़्म में पहुंच जाते हैं। प्रत्येक क्रोमैटिन खण्ड अपने ऊपर एक केन्द्रक झिल्ली ग्रहण करके एक नया केन्द्रक बन जाता है। नए केन्द्रक कुछ साइटोप्लाज़्म द्वारा घिर-घिर कर जनक देह में **अमीबक** बना लेते हैं। प्रत्येक अमीबक एक स्पोर-केस में बन्द हो जाता और इस प्रकार एक **स्पोर** उत्पन्न करता है, उसके बाद जनक प्राणी की मृत्यु हो जाती है। उपयुक्त परिस्थितियां लौट आने पर प्रत्येक स्पोर से एक नया **अमीबा** बन जाता है।

अमीबा का संवर्धन (culture) तैयार करने के लिए तालाब का कुछ जल, कीचड़ और पत्तियों को 100 c.c. जल में डाल दीजिए जिसमें गेहूं के दो दाने भी डाल दिए गए हों। कुछ ही दिन में **अमीबा** प्रकट हो जाएंगे। इससे सिद्ध हो जाता है कि तालाब के जल में पुटियां पाई जाती हैं। शुद्ध संवर्धन प्राप्त करने के वास्ते 100 c.c. आसुत जल में गेहूं के चार दाने डालकर उबालिए; इसमें पहले संवर्धन से निकाले गए कुछ अमीबा डाल दीजिए और ऊपर से कांच की प्लेट ढक दीजिए। दस दिन में शुद्ध संवर्धन में अनेक अमीबा प्रकट हो जाएंगे।

2. यूग्लीना विरिडिस (*Euglena viridis*)

अधिक्लास मैस्टिगोफोरा (Superclass Mastigophora) में वे प्रोटोजोअन आते हैं जिनमें प्रौढ़ चलन अंगकों के रूप में कशाभ पाए जाते हैं। फलतः इन प्राणियों को कशाभी कहते हैं। इन्हें सबसे आदिम प्रोटोज़ोअन माना जाता है।

यूग्लीना की अनेक जातियां पाई जाती हैं जिनमें से **यू० विरिडिस** (*E. viridis*), **यू० ऐजिलिस** (*E. agilis*), **यू० ओरिएन्टैलिस** (*E. orientalis*), तथा **यू० ग्रैसिलिस** (*E. gracilis*) भारत में आम पाई जाती हैं। **यू० विरिडिस** अलवण-जलीय तालाबों में पाया जाता है किंतु यह रुके हुए जल के उन तालाबों या गढ़ों में अधिक प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिनमें सड़ने वाला जैव पदार्थ ज्यादा होता है। इस जाति के साथ-साथ सामान्यतः इसी वंश की अन्य जातियां भी पाई जाती हैं। इन सबके अधिक संख्या में पाए जाने के कारण तालाब का रंग हरा हो जाया करता है। यह एक लंबा-लंबा, स्पिंडल की आकृति का, 0·1 mm लंबा प्राणी होता है; इसका अगला सिरा गोलाई लिए हुए और पश्च सिरा नुकीला होता है। देह के ऊपर प्रोटीन का बना पतला किंतु दोहरा **पेलिकल** पाया जाता है, इसमें पूरी गोलाई में फैली हुई समानांतर रेखाएं होती हैं। पेलिकल के कारण देह की एक निश्चित आकृति बनी रहती है, फिर भी यह इतनी लचीली तो होती ही है कि देह की शक्ल में कुछ अस्थायी परिवर्तन आ सकें। आकृति के इन परिवर्तनों को **मेटाबोली** (metaboly) अथवा **यूग्लीनीय गतियां** (euglenoid movements) कहते हैं। एक्टोप्लाज़म सघन होता है और इसके भीतर एंडोप्लाज़्म तरल और कणिकीय होता है। अग्र सिरे पर केन्द्र से जरा एक ओर झुका हुआ एक **कोशिकामुख** (cytostome) होता है जिससे भीतर की ओर एक **कोशिका ग्रसनी** (cytopharynx) अथवा **ग्रसिका** (gullet) निकलती है जो एक बड़े आशय, आगार (reservoir) से आकर जुड़ जाती है। कोशिकामुख तथा कोशिका-

ग्रसनी का इस्तेमाल आहार के ग्रहण करने में नहीं होता बल्कि एक नाल के रूप में होता है जिसमें से होकर आगार का तरल बाहर निकल जाता है। आगार के समीप एक संकुचन-

चित्र 16—यूग्लीना विरिडिस
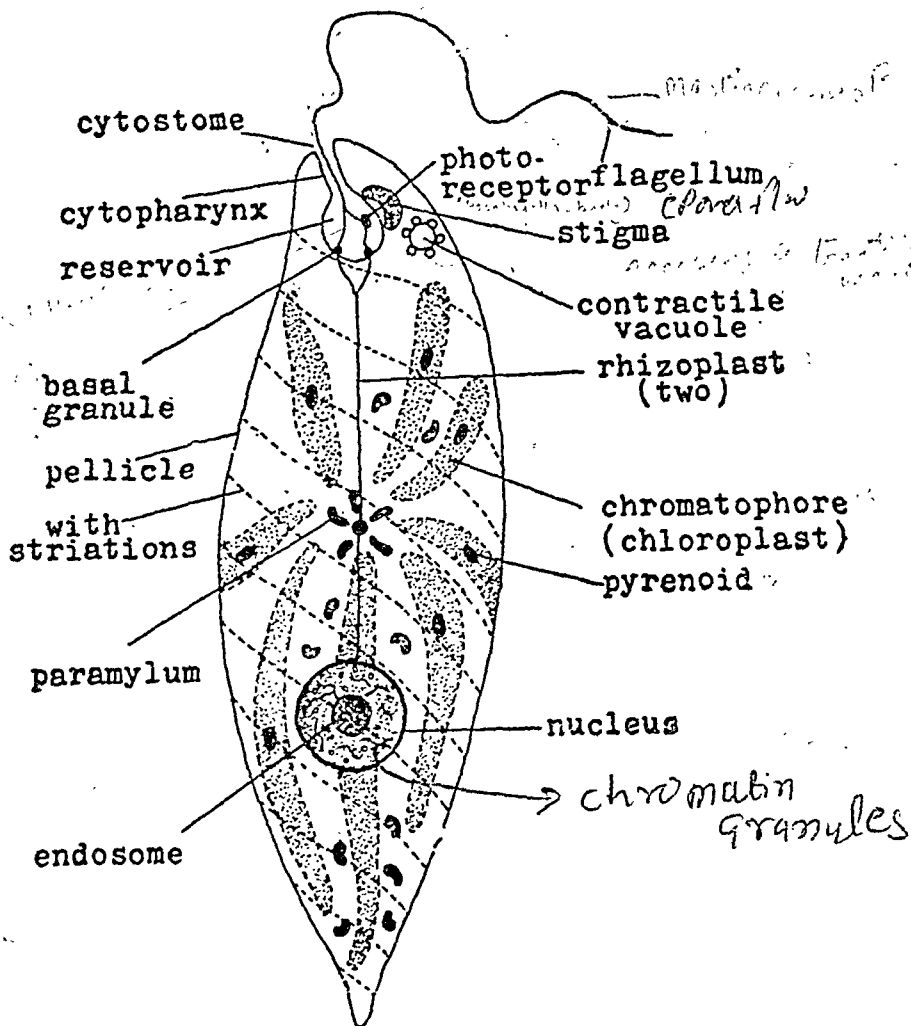
Cytostome, कोशिकामुख; photoreceptor प्रकाशग्राही; flagellum कशाभ; stigma, दृक्-बिंदु; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; rhizoplast (two,) राइजोप्लास्ट (दो); chromatophore (chloroplast), वर्णधरकोशिका (क्लोरोप्लास्ट); pyrenoid, पाइरिनायड; nucleus, केन्द्रक; endosome, एंडोसोम; paramylum, पैरामाइलम; pellicle, पेलिकल; with striations, रेखांकन; basal granule, आधारीय कणिका; reservoir, आगार; cytopharynx, कोशिका-ग्रसनी।

शील रिक्तिका होती है जो एक घेरे में बनी अनेक छोटी-छोटी रिक्तिकाओं के परस्पर एक साथ द्रव छोड़ने के कारण बन जाती है। संकुचनशील रिक्तिका अपने द्रव को आगार

में छोड़ देती है जहां से वह कोशिकामुख में से होता हुआ बाहर निकल जाता है, इस प्रकार यहां आगार का वही कार्य है जो प्रोटोज़ोआ में संकुचनशील रिक्तिका का है। अधिकतर पुस्तकों में यह दावा किया गया है कि **कशाभ** आगार में दो जड़ों द्वारा निकलता
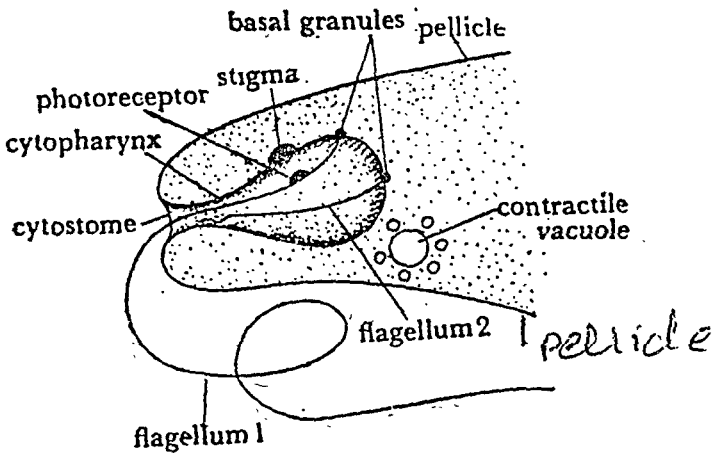
चित्र 17—**यूग्लीना** का अग्र सिरा।

Basal granules, आधार कणिकाएं; pellicle, पेलिकल; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; flagellum 1, कशाभ संख्या 1; flagellum 2, कशाभ संख्या 2; cytostome, कोशिकामुख; cytopharynx, कोशिकाग्रसनी; photoreceptor, प्रकाशग्राही; stigma, दृक्-बिन्दु।

है और कोशिकामुख में से होता हुआ बाहर आता है, यह कोशिका की लंबाई के बराबर लंबा होता है। लेकिन वास्तव में कशाभ एक नहीं बल्कि दो होते हैं, एक लंबा और दूसरा छोटा, जिनमें से प्रत्येक कशाभ आगार के आधार पर साइटोप्लाज़्म में स्थित एक आधारीय
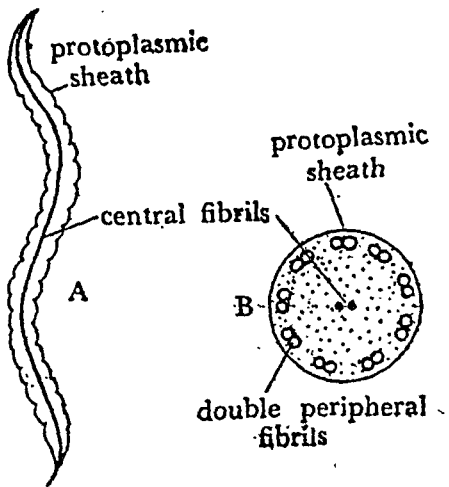
चित्र 18—A. कशाभ। B. कशाभ का अनुप्रस्थ सेक्शन

Protoplasmic sheath, प्रोटोप्लाज़्मी आवरण; central fibrils, केन्द्रीय तंतुक; double peripheral fibrils, दोहरे परिधीय तंतुक।

कणिका से निकलता है। छोटा कशाभ आगार की गर्दन तक ही आकर रुक जाता है और अक्सर यह लंबे कशाभ से चिपका रहता है जिसके कारण द्विशाखित स्वरूप का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इस लंबे कशाभ का मुक्त भाग ऐंठा हुआ और रिबन-सरीखा होता है। कशाभ एक चलन अंगक है। यह दो केन्द्रीय अनुदैर्ध्य तंतुकों (fibrils) का बना होता है जिनको घेरे हुए नौ दोहरे नतुक एक वृत्त के रूप में व्यवस्थित होते हैं; सारे तंतुक एक प्रोटोप्लाज़्मी आवरण में बंद होते हैं, और यह आवरण कोशिका झिल्ली के साथ अनवरत रहती है; इसके सारे ग्यारह तंतुक एक साथ समेकित होकर आधारीय कणिका के साथ जुड़ जाते हैं।

आगार से सटा हुआ एक **दृक्-बिन्दु** (stigma) होता है जिसमें हीमैटोक्रोम की लाल कणिकाओं के रूप में एक कैरोटीनाभ वर्णक होता है। दृक्-बिन्दु एक कटोरी जैसी शक्ल का होता है जिसकी अवतलता में तेलीय बुन्दकों की एक रंगविहीन संहति पाई जाती है जो एक लेन्स की तरह कार्य करती है। लंबे कशाभ के भीतर बन्द वाले अंश में एक फूला हुआ **प्रकाश-ग्राही** (photoreceptor) होता है जो प्रकाश के प्रति संवेदी होता है। जब भी प्रकाशग्राही पर दृक्-बिन्दु की छाया पड़ती होती है तो यूग्लीना अपने आपको प्रकाश किरणों के समानान्तर स्थिति में ले आता है, प्रकाशग्राही और दृक्-बिन्दु दोनों एक साथ मिलकर एक प्रकाशग्राही उपकरण के रूप में कार्य करते हैं क्योंकि ये दोनों ही प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं। प्रकाश की ओर अथवा उससे विमुख दिशा में मुड़ते हुए जंतु अपनी स्थिति को ठीक करता है। जब जंतु चक्कर खाता है तो दृक्-बिन्दु एक स्क्रीन की तरह काम करता है। जब उस पर पार्श्व से प्रकाश पड़ रहा होता है तो प्रकाशग्राही एकांतर क्रम में प्रकाशित अथवा छायित होता रहता है। जंतु अपनी स्थिति को तब तक ठीक करता जाता है जब तक उसका प्रकाशग्राही लगातार प्रकाशित न होता रहे, ऐसा उस समय होता है जब प्रकाश का स्रोत या तो ठीक सीधे सामने हो या ठीक पीछे। जंतु मध्यम प्रकाश की ओर बढ़ता है लेकिन तेज प्रकाश से दूर हटता है। यदि **यूग्लीना** को अंधेरे में रखा जाए तो इसके दृक्-बिन्दु से ही मैटोक्रोम वर्णक समाप्त हो जाता है। कोशिका के केन्द्र से कुछ नीचे एक स्वच्छ केन्द्रकीय झिल्ली से युक्त गोल केन्द्रक होता है, इसके क्रोमैटिन की छोटी-छोटी कणिकाएं होती हैं तथा एक बड़ा गोल पिंड केन्द्रक के बीच होता है जिसे एंडोसोम (endosome) अथवा कैरियोसोम (karyosome) कहते हैं—इसका काम माइटोसिस के दौरान एक विभाजन केन्द्र के रूप में होता है; केन्द्रक में केन्द्रक द्रव्य अर्थात् न्यूक्लियोप्लाज्म की तथा तरल एक्रोमैटिन की बड़ी मात्रा होती है। इस प्रकार के केन्द्रक को **आशयी केन्द्रक** (vesicular nucleus) कहते हैं। दो कोमल तंतु जिन्हें राइजोप्लास्ट कहते हैं कशाभों की आधारीय कणिकाओं को केन्द्रक के साथ जोड़ते हैं। कोशिका के बीचों-बीच से अनेक पतले लंबे क्लोरोफिल-युक्त **वर्णकधर** (क्रोमैटोफोर) अरीय रूप में व्यवस्थित रहते हैं। हरे रंग के वर्णकधरों को **क्लोरोप्लास्ट** भी कहते हैं। क्लोरोप्लास्ट दो दीवारों वाले थैले होते हैं जिनके भीतर प्लेटों अथवा पटलिकाओं का एक क्रम बना होता है जिनके ऊपर क्लोरोफिल कणिकाएं लगी होती हैं। प्रत्येक क्लोरोप्लास्ट के बीचों-बीच और कोशिका के साइटोप्लाज्म में स्वच्छन्द रूप में भी पड़ा हुआ एक प्रोटीन पाया

जाता है जिसे **पाइरिनॉयड** (pyrenoid) कहते हैं जो एक गोल पारदर्शक पिंड और **पैरामाइलम** (paramylum) का निर्माण केन्द्र है; पैरामाइलम एक पॉली-सैकेराइड स्टार्च है जो आयोडीन के साथ रंग-प्रतिक्रिया नहीं देता। पाइरिनॉयड दोहरी डिस्क होती हैं जिनके बीच में प्लास्टिक की एक पतली परत होती है, और इस सब के ऊपर से पैरामाइलम की टोपी मढ़ी होती है। पैरामाइलम कोशिका में कणिकाओं
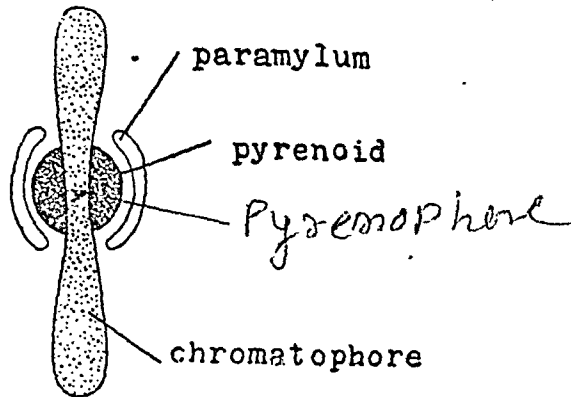
चित्र 19. वर्णकधर।

Paramylum, पैरामाइलम; *pyrenoid*, पाइरिनॉयड; *chromatophore*, वर्णकधर

के रूप में और पाइरिनॉयड के अगल-बगल एक गोलाईदार छड़ के रूप में पाया जाता है। वर्णकधर **प्रकाश संश्लेषण** (photosynthesis) की क्रिया के द्वारा अपना कार्बनिक पैरामाइलम स्वयं निर्माण करते हैं। प्रकाश की उपस्थिति में क्लोरोफिल CO_2 को कार्बन और ऑक्सीजन में तोड़ देता है, जिसके बाद ऑक्सीजन निकलती है और कार्बन को जल के साथ जोड़कर कार्बनिक पैरामाइलम बना लिया जाता है। इस प्रकार की पोषण विधि को पादपसम (holophytic) पोषण कहते हैं और यह अधिकतर पौधों में होता है।

पोषण—1. **प्राणिपोषी** (Zootrophic) अथवा **प्राणिसम** (holozoic) पोषण जंतुओं की आम पोषण विधि है जिसमें ठोस जैव कणों का अंतर्ग्रहण होता है और यह अंतर्ग्रहण सामान्यतः मुख के द्वारा होता है। पोषण की इस विधि में एमीनो अम्लों के प्रकार के कार्बनिक वृद्धि कारकों की आवश्यकता होती है। कदाचित् **यूग्लीना** में इस विधि से कभी भी पोषण नहीं होता हालांकि कशाभियों की कुछ जातियों में ऐसा होने का दावा किया गया है। एक संबंधित कशाभी **पेरानेमा** (*Peranema*) प्राणिसम भोजी है, यह ठोस जैव कणों को अपनी कोशिकाग्रसनी की दीवार में पड़ी तीन शलाकाओं में से ग्रहण करता है।

2. **स्वपोषी** (Autotrophic) अथवा **पादपसम** पोषण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रकाश की मौजूदगी में क्लोरोफिल CO_2 से कार्बन बनाता है और इस कार्बन को जल तथा अकार्बनिक लवणों के साथ मिलाकर कार्बनिक स्टार्च बनाता है जो भोजन के रूप में इस्तेमाल होता है। इस प्रक्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं जिसमें जीवों को अपनी नाइट्रोजन आवश्यकता के लिए नाइट्रेटों की जरूरत होती है।
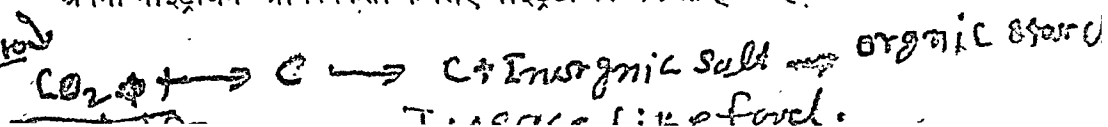
3. **मृतजीवी** (Saprophytic अथवा Saprozoic)—इस विधि में जंतु अपनी देह की सतह से अपने पर्यावरण में पाए जाने वाले क्षय होते हुए पदार्थ से कुछ कार्बनिक पदार्थ घोल के रूप में भीतर सोखता है। इन जंतुओं को अपनी नाइट्रोजन के साधन के रूप में नाइट्रेटों की बजाए एमोनियम लवणों की आवश्यकता होती है। *यूग्लीना* पूर्ण अंधेरे में अपने क्लोरोप्लास्टों की हानि के बाद मृतजीवी विधि में पोषण प्राप्त करता रह सकता है। लेकिन अनेक कशाभी न तो पूरी तरह पादपसम-भोजी होते हैं और न ही पूरी तरह मृतजीवी; ये इन दोनों पोषण विधियों के बीच की स्थिति में होते हैं क्योंकि इनमें से अनेक को अपने प्रकाश-संश्लेषण के लिए जैव कार्बन साधन (जैसे वसीय अम्लों और एसीटेटों) की आवश्यकता होती है।

4. **मिश्रपोषी** (Mixotrophic) पोषण आहार की वह विधि है जिसमें एक ही समय पर सबसे अधिक विधियों द्वारा अथवा विभिन्न समयों पर वातावरणी परिस्थितियों के बदलने के कारण विभिन्न विधियों द्वारा पोषण प्राप्त किया जाता है। *यूग्लीना ग्रेसिलिस* का क्लोरोफिल प्रकाश में भी उस स्थिति में समाप्त हो जा सकता है जिसमें उसके वातावरण में नाइट्रोजन से युक्त विघटित जैव पदार्थ की प्रचुर मात्रा पाई जाती हो। तब इसमें पादपसम और प्राणिसम दोनों प्रकार के पोषण होते रहते हैं। लेकिन कदाचित् तीनों प्रकार की पोषण विधियां *यूग्लीना* की किसी भी एक जाति में नहीं पाई जातीं, हालांकि उनमें पहली तीन पोषण विधियों में से कोई सी दो विधियां साथ-साथ पाई जा सकती हैं।

चलन— *यूग्लीना* में चलन की दो विधियां पाई जा हैं।

1. **कशाभी गति** (Flagellar movement)—लंबा कशाभ एक चाबुक की तरह विस्पंदन करता है जिसमें वह आधार से अंतिम सिरे की ओर एक वृत्त

चित्र 20—कशाभी चलन

बनाता है और इसके कारण एक सर्पिल मार्ग में जंतु आगे तैरता जाता है। साथ ही जंतु अपने लंबे अक्ष पर भी चक्कर खाता जाता है लेकिन ऐसा करते समय वह सर्पिल के अक्ष की ओर सदैव एक ही सतह बनाए रखता है। इसके द्वारा जंतु सर्पिल रूप में आगे बढ़ता जाता है। चलन की मुख्य विधि यही है। जाति और परिस्थिति के आधार पर कशाभी विस्पंदन की दर अलग-अलग होती है। **यूग्लीना विरिडिस** में कशाभी विस्पंदन की दर, वातावरण में सामान्य परिस्थितियां होने पर, 67 बार प्रति मिनट है।

2. **यूग्लीनीय गति** (Euglenoid movement) अथवा **मेटाबोली** (metaboly)—संकुचन और प्रसार की एक क्रमाकुंचनी लहर अग्र सिरे से लेकर पश्च सिरे तक पूरे शरीर पर से होकर गुजरती है, इसी को यूग्लीनीय गति कहते हैं जिसके द्वारा धीमी और सीमित गतियां होती हैं। यह गति प्रोटोप्लाज़्म के संकुचनों के कारण

होती है। इन गतियों में देह की आकृति में अस्थायी परिवर्तन आ जाते हैं, इसे मेटाबोली भी कहा जाता है।
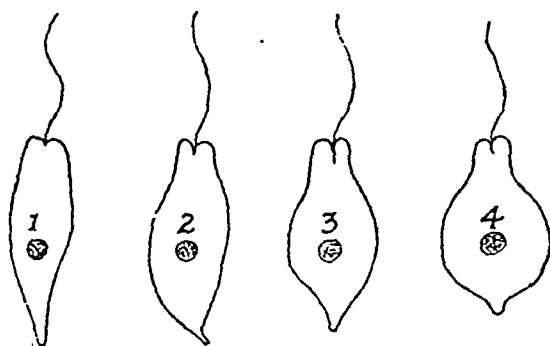
चित्र 21—यूग्लीनीय गतियां

जनन:—1. अनुदैर्ध्य द्विविभजन (Binary longitudinal fission):—हरी जातियों में, लेकिन अन्य रंगीन जातियों में नहीं, द्विविभजन केवल अंधेरे में होता है और अंधेरा शुरू हो जाने के एक या दो घंटे के बाद प्रारम्भ होता है। केन्द्रक आगे की ओर खिसकता हुआ आगार के पास पहुंच जाता है। एंडोसोम अनुप्रस्थ दिशा में लंबा हो जाता है। क्रोमोसोम और एंडोसोम केन्द्रक झिल्ली के भीतर अनुदैर्ध्य दिशा में विभाजित हो जाते हैं। आधार-कणिकाएं कोशिका-विभाजन में कोई कार्य नहीं करतीं, वे कभी भी विभाजन केन्द्र नहीं बनतीं, हालांकि अक्सर ऐसा दावा किया
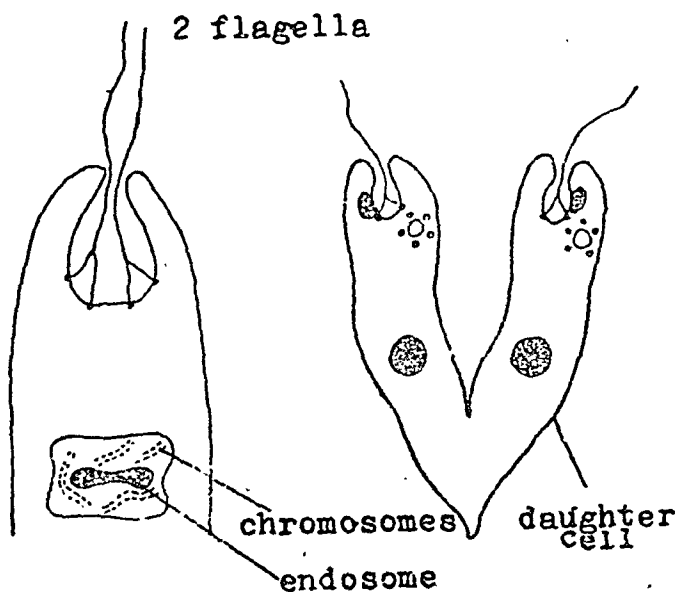
चित्र 22—अनुदैर्ध्य द्विविभजन।

Flagella, कशाभ; chromosomes, क्रोमोसोम; endosome, एंडोसोम, daughter cell, संतति कोशिका; division, विभाजन।

जाता है। शरीर लंबाई में अग्र सिरे से चिरता हुआ नीचे की ओर को विभाजित होना शुरू होता है और इसके साथ-साथ वर्णकधर, पाइरिनॉयड, कोशिकाग्रसनी, दृक्-विन्दु और आगार भी विभाजित हो जाते हैं। संकुचनशील रिक्तिका तथा प्रकाशग्राही में विभाजन नहीं होता लेकिन वे विलीन हो जाते हैं और संतति-कोशिकाओं में पुनः नए सिरे से उत्पन्न हो जाते हैं। जब लंबे और छोटे कशाभ की आधार-कणिकाएं विभाजित होती हैं, तो वे प्रोफेज के दौरान दो लंबे और दो छोटे कशाभों को जन्म देते हैं। संतति-कोशिकाएं प्रतिकृतियां नहीं होतीं बल्कि एक-दूसरे की दर्पण-प्रतिविम्ब होती हैं। इस प्रकार के विभाजन को **सममितिजनी** (symmetrigenic) कोशिका-विभाजन कहते हैं।

2. **पुटीभवन** (Encystment)—प्रतिकूल परिस्थितियों में **यूग्लीना** गोल और अगतिशील बन जाता है। यह अपने चारों ओर दो से चार परतों वाली एक पतली पुटी का स्राव करता है। पुटी के भीतर कोशिका के एक या अधिक विभाजन होते हैं जिससे दो या अधिक संतति कोशिकाएं बन जाती हैं जो पुनः अनुकूल परिस्थितियां लौट आने पर सक्रिय हो जातीं और पुटी से बाहर आ जाती हैं। पुटी के भीतर बहुविभजन को, जिसके द्वारा पुटी में बन्द चार या अधिक संतति कोशिकाएं बन जाती हैं, **पामेला** (palmella) अवस्था कहते हैं।
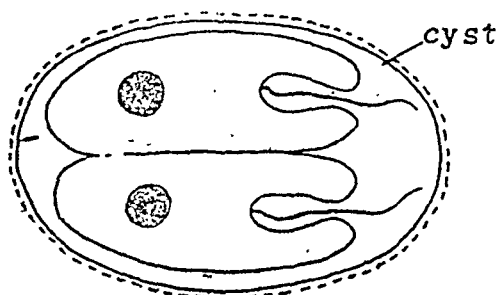
चित्र 23—पुटी में विभजन
Cyst, पुटी

यूग्लीना में पौधों के अनेक लक्षण पाए जाते हैं जैसे क्लोरोफिल से युक्त क्लोरोप्लास्टों और पादपसम पोषण का पाया जाना लेकिन निम्न तथ्यों के आधार पर इसे जन्तु माना जाता है: (क) इसका पेलिकल प्रोटीनों का बना होता है न कि पौधों की तरह सेल्युलोज का; (ख) इसमें एक संकुचनशील रिक्तिका होती है जो पौधों में नहीं पाई जाती; (ग) इसका पोषण यद्यपि पादपसम है किंतु वह मृतजीवी भी होता है; (घ) अनुदैर्ध्य द्विविभजन होता है जो कि पौधों में होता नहीं पाया जाता।

संवर्धन :—थोड़े से गोबर या घोड़े की लीद को आसुत जल में उबालिए और दो दिन तक उसे ठंडा रहने दीजिए, उसके बाद किसी तालाब से लाई गई घास को उसमें डाल दीजिए और फिर जार को एक अच्छी तरह प्रकाशयुक्त खिड़की में रख दीजिए। कुछ दिन में इस नाइट्रोजनी आधान (infusion) में यूग्लीना प्रकट हो जाएंगे।

3. मॉनोसिस्टिस (*Monocystis*)

उपफाइलम **स्पोरोजोआ** में पूर्णतः परजीवी उदाहरण आते हैं। इस वर्ग का नाम इस आधार पर पड़ा है कि अनेक उदाहरणों की अपरिपक्व अवस्थाओं में स्पोर बनते हैं जो एक परपोषी से दूसरे परपोषी में संचरित होते हैं। स्पोरोजोअनों की संरचना सरल होती है, उनमें बहुत ही कम अंगक होते हैं। वयस्कों में चलन-अंगक नहीं होते, लेकिन अपरिपक्व अवस्थाओं में या तो कूटपाद होते हैं या कशाभ। ये अंतःपरजीवी होते

हैं और आहार को अपनी देह की सामान्य सतह से सोखते हैं। इनके सम्मिश्र जीवन-चक्र में अलैंगिक (asexual) और लैंगिक (sexual) पीढ़ियों का एकांतर क्रम होता है।

मॉनोसिस्टिड-प्राणी केंचुओं में बहुत आम पाए जाते हैं, विशेषकर उनके शुक्राशयों (seminal vesicles) में, हालांकि कुछ जातियां परिआंतरांग गुहा (perivisceral cavity) में केंचुए के पिछले सिरे में किसी पट (septum) अथवा नेफ्रिडियम के साथ हल्के से चिपकी होती हैं किंतु सबसे ज्यादा वे शुक्राशयों में ही पाई जाती हैं। इनकी अनेक जातियां हैं और लगभग हर वंश के केंचुओं में इनका संक्रमण पाया जाता है। **मॉनोसिस्टिस एजिलिस** (*Monocystis agilis*) तथा **नेमैटोसिस्टिस मैग्ना** (*Nematocystis magna*), ये दो जातियां **फेरेटिमा, यूटाइफीयस** तथा **लम्ब्रिकस** में अक्सर पाई जाती हैं हालांकि मिश्रित संक्रमण भी आम पाए जाते हैं जिनमें मोनोसिस्टिस तथा उससे संबंधित वंशों की अनेक जातियां एक ही कृमि में साथ-साथ पाई जा सकती हैं।

मॉनोसिस्टिस का वयस्क **ट्रोफोजोआइट** (trophozoite) अवस्था होता है। यह एक स्पिंडल की आकृति की कोशिका होती है, इसके अग्र सिरे पर पेलिकल का बना एक छोटा पारदर्शी प्रवर्ध होता है जिसे **मक्रॉन** (mucron) कहते हैं—इसकी
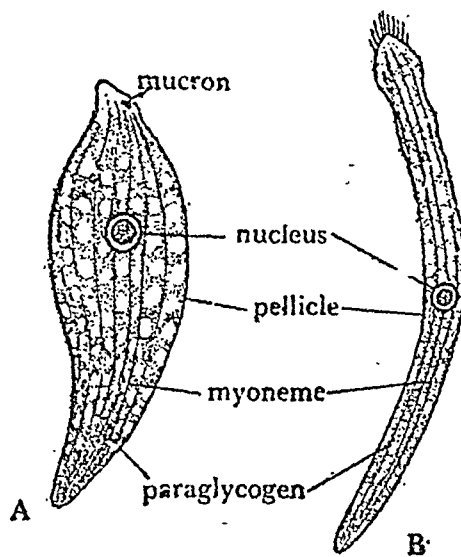
चित्र 24—मॉनोसिस्टिड-प्राणी। A. मॉनोसिस्टिस। B नेमैटोसिस्टिस। mucron, मक्रॉन; nucleus, केन्द्रक; pellicle, पेलिकल; myoneme, मायोनीम paraglycogen, पैराग्लाइकोजन।

शक्ल कांटे जैसी होती है और कभी-कभी स्थिरीकरण के काम आता है। ट्रोफोजोआइट पर बाहर से एक झिल्लीनुमा पेलिकल मढ़ा होता है जो नाइट्रोजनी होता है और जिसमें अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, इसमें अनुदैर्ध्य रेखांकन पाए जाते हैं। साइटोप्लाज्म में एक बाहरी स्वच्छ सघन एक्टोप्लाज्म अथवा **कार्टेक्स** (cortex) और एक भीतरी कणिकामय तरल एंडोप्लाज्म अथवा **मेडुला** (medulla) पाया जाता है। मेडुला

में सुरक्षित आहार के रूप में एक स्टार्च पैराग्लाइकोजन की कणिकाएं होती हैं। एक्टो-प्लाज्म में रूपान्तरण होकर अनुदैर्घ्य संकुचनशील तंतुक वन जाते हैं जिन्हें **मायोनीम** (myoneme) कहते हैं। इनसे ज्यादा कोमल अनुप्रस्थ मायोनीम भी होते हैं। प्रत्येक मायोनीम एक महीन नलिका के भीतर वन्द होता है। अनुदैर्घ्य मायोनीमों का और अधिक आभास वाहर पेलिकल में वने अनुदैर्घ्य रेखनों के द्वारा होता है जो मायोनीमों के वाहर होते हैं। मायोनीमों के दोनों सेटों की क्रिया समन्वित होनी है। मायोनीम पेशियों की तरह काम करते हैं और अपने संकुचनों के द्वारा धीमी विसर्पण गतियां तथा मेटावोली उत्पन्न करते हैं। इन धीमी गतियों को **ग्रेगैराइन गतियां** (gregarine movements) कहते हैं जो यूग्लीनीय गतियों की तरह होती हैं और इनके होते रहने के साथ-साथ भीतरी एंडोप्लाज्म का स्पष्ट परिसंचरण होता रहता है। अगले आधे भाग में एक वड़ा पुटिकाकार केन्द्रक होता है। संकुचनशील रिक्तिका, मुख और चलन अंगक परजीवी जीवन के कारण नहीं पाए जाते। **नेमैटोसिस्टिस** साइज में वड़ा लेकिन अधिक संकीर्ण होता है, इसके एक या दोनों सिरों पर महीन जड़ों की तरह के साइटोप्लाज्मी प्रवर्ध वने हो सकते हैं।

पोषण—मॉनोसिस्टस अपनी देह से विभिन्न एंजाइम निकालता है जो शुक्राशयों के साइटोप्लाज्म और परिवर्धनशील शुक्राणुओं (sperms) को पचा लेते हैं। पचे हुए पदार्थ पेलिकल में से परासरण के द्वारा अवशोषित हो जाते हैं। आवश्यकता से अधिक भोजन सुरक्षित पैराग्लाइकोजन के रूप में संचित कर लिया जाता है।

जीवन-चक्र (Life-cycle)—दो वयस्क अथवा ट्रोफोजोआइट शुक्राशयों की गुहा में अपने अग्र सिरों के सहारे साथ आ जाते हैं या कुछ जातियों में पार्श्वों के सहारे-सहारे साथ आ जाते हैं। तव उनके लंवे शरीर गोल वन जाते हैं और वे दो-परत वाली एक पुटी का स्राव करते हैं। पुटी की वाहरी परत एक अधिक मोटी दृढ़ **वाह्यपुटी** (epicyst) और भीतरी पतली कोमल परत **अंतःपुटी** (endocyst) होती है। पुटी के भीतर के दो **मॉनोसिस्टिसों** को अव **युग्मककोशिकाएं** (gametocytes) कहते हैं और उन दोनों के परस्पर साथ आ जाने को **सिजिगी** (syzygy) कहते हैं। जिस पुटी के भीतर युग्मककोशिकाएं हों उसे **युग्मकपुटी** (gamocyst या gametocyst) कहते हैं। प्रत्येक युग्मक कोशिका के केन्द्रक में अनेक वार विभाजन होता है जिनमें से कोई एक विभाजन ह्रास-विभाजन होता है। युग्मककोशिका के केन्द्रक चलकर कोशिका की सतह पर आ जाते हैं और वाहर को उभर आते हैं जिसके फलस्वरूप युग्मककोशिकाएं शहतूत जैसी दीखने लगती हैं जिनमें एंडोप्लाज्म घना और अपारदर्शी होता है और सतही प्रवर्ध पारदर्शी होते हैं। केन्द्रकों के चारों ओर थोड़ा-थोड़ा साइटो-प्लाज्म एकत्रित हो जाता है और इस तरह **युग्मक** (gametes) वन जाते हैं लेकिन कुछ अवशेषी साइटोप्लाज्म विना खण्डों में वदले वीचों-वीच वचा रह जाता है और इसमें रिक्तिकाएं तथा पैराग्लाइकोजन होते हैं। दो युग्मककोशिकाओं के वीच की दीवारें टूट जाती हैं और वे दोनों जुड़कर एक हो जाते हैं। सभी युग्मक आकारिकीय दृष्टि से समान होते हैं और इन्हें **समयुग्मक** (isogametes) कहते हैं, ये घूमते-फिरते और फिर

परस्पर जोड़े बांध लेते हैं। एक जोड़े के दोनों समयुग्मक परस्पर समेकित होकर एक (**युग्मनज**, zygote) का निर्माण करते हैं। यह आवश्यक है कि भिन्न युग्मक कोशिकाओं से आने वाले युग्मकों में ही समेकन हो। एक ही स्पीशीज या जाति के दो युग्मकों का संयोजन एवं समेकन **युग्मकसंलयन** (**सिनगैमी**) (syngamy) कहलाता है। यदि दो समेकनशील युग्मक समयुग्मक हों तो उनके युग्मक संलयन को **समयुग्मन**(isogamy) कहते हैं। प्रत्येक युग्मनज के चारों ओर **स्पोरपुटी** (sporocyst) नामक एक आवरण का स्राव हो जाता है, तब इसे **स्पोर** (spore) कहते हैं। पुटी के प्रत्येक सिरे
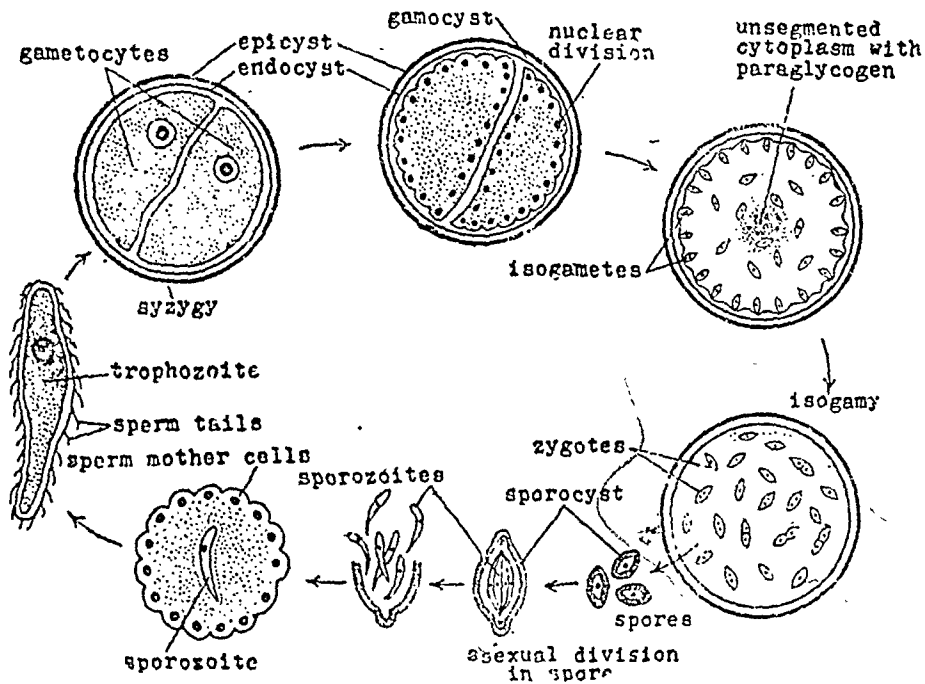
चित्र 25.—मॉनोसिस्टिस का जीवन-चक्र।

Trophozoite, ट्रोफोजोआइट; sperm tails, शुक्राणु-पूंछें; gametocytes, युग्मककोशिकाएं; epicyst, बाह्यपुटी; endocyst, अंतःपुटी; syzygy, सिजिगी; gamocyst, युग्मकपुटी; nuclear division, केन्द्रकीय विभाजन; unsegmented cytoplasm with paraglycogen; पैराग्लाइकोजन से युक्त बिना खण्डों में बदला साइटोप्लाज्म; isogametes समयुग्मक; isogamy, समयुग्मन; zygotes, युग्मनज; sporocyst, स्पोरपुटी; spores,, स्पोर; asexual division in spore, स्पोर में अलैंगिक ,जनन; sporozoite स्पोरोजोआइट; sperm mother cells, शुक्र-मातृ कोशिका।

पर एक श्लेष्मी प्लग बन जाता, और वह स्पिंडल की आकृति की हो जाती है। इस स्पोर की आकृति एक डायटम नैविसेला से मिलती-जुलती होती है, और इसलिए इसे अक्सर **कूटनैविसेला** (pseudonavicella) कहते हैं। स्पोर के केन्द्रक और साइटोप्लाज्म में तीन बार विभाजन होकर स्पिंडल की आकृति के आठ **स्पोरोजोआइट** (sporozoite) बन जाते हैं जो संतरे की फांक की तरह अवशेषी साइटोप्लाज्म

को बीच में घेरे हुए व्यवस्थित रहते हैं। ये स्पोरोजोआइट अलैंगिक विभाजन द्वारा उत्पन्न हुए होते हैं इसलिए ये अलैंगिक पीढ़ी की अवस्थाएं हैं।

स्पोरोजोआइट और आगे केवल तभी वृद्धि कर सकते हैं जब उन्हें धारण करने वाले स्पोर उस परपोषी में से किसी दूसरे केंचुए में मुख-संक्रमण के द्वारा पहुंच जाएं। स्पोर किस प्रकार शरीर से वाहर पहुंच जाते हैं इस विषय में जानकारी नहीं है, हो सकता है यह इन तीन में से किसी एक तरीके द्वारा सम्पन्न होता हो:—(क) स्पोर केंचुए के शुक्राणुओं के साथ-साथ उसकी शुक्रवाहिकाओं (vasa deferentia) से होकर वाहर निकल जाते और अन्य केंचुवे द्वारा खा लिए जाते हैं। (ख) परपोषी केंचुए सहित वे किसी पक्षी द्वारा खा लिए जाते और पक्षी की विष्ठा में धरती पर आ गिरते हैं, और मिट्टी के साथ-साथ केंचुवे द्वारा खा लिए जाते हैं। (ग) सबसे अधिक संभावना यह है कि परपोषी केंचुए की मृत्यु के बाद उसके स्पोर मिट्टी में मिल जाते और अन्य केंचुओं द्वारा खा लिए जाते हैं। यह सुविदित है कि स्पोर विभिन्न जंतुओं के आहार-नाल से विना पचे हुए सम्पूर्ण रूप में वाहर निकल आ सकते हैं। जब स्पोर किसी नए केंचुए की अंतड़ियों में पहुंचते हैं तो स्पोरपुटी का पाचन हो जाता और स्पोरोजोआइट मुक्त हो जाते हैं। कदाचित् स्पोरोजोआइट अंतड़ियों की दीवार को वेध कर देहगुहा में आ जाते जहां से वे शुक्राशयों की शुक्र-मातृ-कोशिकाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं। लेकिन आहार-नाल से शुक्राशयों तक के मार्ग ढूंढ लेने की इनकी विधि के बारे में कोई जानकारी नहीं है। शुक्राशयों में **मॉनोसिस्टिस एजिलिस** का स्पोरोजोआइट किसी एक साइटोफोर (cytophore) (साइटोफ़ोर एक साइटोप्लाज़मी पिंड होता है जिसके चारों ओर परिवर्धनशील शुक्राणु व्यवस्थित हो जाते हैं) में घुस कर अपनी अंत:कोशिकीय प्रावस्था प्रारम्भ करता है। साइटोफोर में परजीवी शुक्राणुजनों (spormatogonia) की वृद्धि को रोक देता है जो परिपक्व नहीं हो पाते किंतु वृषण (testes) अप्रभावित वने रहते हैं। **नेमैटोसिस्टिस मैग्ना** में स्पोरोजोआइट शुक्र अपवाहिनियों (vasa offerentia) की रोमकित कोष की एक एपिथीलियम-कोशिका में घुस जाता है। कुछ जातियों में परिवर्धन शुक्राशयों की गुहा में पूर्णत: वाह्य कोशिकीय रूप में होता है। स्पोरोजोआइट वढ़कर एक वयस्क पोषाणु वन जाता है जो हंसियाकार या मुड़ी हुई स्पिंडल की शक्ल का होता है, यह शुक्राणुओं और साइटोप्लाज़्म का आहार करता है, और अपविकसित शुक्राणु उसकी सतह पर चिपके हुए दिखाई पड़ते हैं, तब वह वढ़ता जाता और एक वयस्क ट्रोफोजोआइट वन जाता है जो अव शुक्राशयों की गुहा में स्वच्छन्द रहने लगता है।

मॉनोसिस्टिस का जीवन-चक्र **मॉनोजेनेटिक** (monogenetic) या एकपीढ़ीय जान पड़ता है यानी इसमें केवल एक पीढ़ी मालूम पड़ती है लेकिन वास्तव में यह द्विपीढ़ीय (digenetic) है क्योंकि इसमें युग्मककोशिकाओं की लैंगिक पीढ़ी का स्पोरोजोआइटों की अलैंगिक पीढ़ी के साथ एकांतर क्रम पाया जाता है।

4. प्लाज्मोडियम वाइवैक्स (*Plasmodium Vivax*)

उपफाइलम स्पोरोजोआ में परजीवी प्राणी आते हैं, इनमें वयस्कों की अवस्था

में कोई चलन-अंगक नहीं होते। इनके जीवन-वृत्त में अनेक सरल स्पोर (spore) बनते हैं, प्रत्येक स्पोर में स्पोरोजोआइट होते हैं जो परपोषी की ऊतक कोशिकाओं में संख्या में बढ़ते जाते हैं।

मलेरिया परजीवी की अनेक जातियों में से एक जाति **प्लाज्मोडियम वाइवैक्स** है। इसके जीवन-चक्र में दो परपोषी होते हैं—मनुष्य **प्राथमिक परपोषी** (primary host) है जिसमें अलैंगिक जनन होता है और परजीवी मलेरिया रोग उत्पन्न करता है, तथा **ऐनॉफिलीस** वंश का मच्छर **मध्यस्थ परपोषी** (intermediate host) है जिसमें लैंगिक जनन होता है। ऐनॉफिलीस एक रोगवाही (vector) के रूप में कार्य करता है क्योंकि यह परजीवी को एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में पहुंचाता है। दो परपोषियों का होना परजीवी के हित में है क्योंकि इसके द्वारा उस स्थिति में भी **प्लाज्मोडियम** का सतत जारी रहना सुनिश्चित हो जाता है जब किसी भी एक परपोषी की मृत्यु हो गई हो। बन्दरों को भी मलेरिया का रोग हो जाता है, और उनके शरीर में परजीवी मौजूद होता है। मच्छर उनमें से **प्लाज्मोडियम** को लेकर मनुष्य में पहुंचा देता है, अतः बन्दर **प्लाज्मोडियम** के **आगार परपोषियों** (reservoir hosts) के रूप में कार्य करते हैं।

जीवन-चक्र—जब कोई मादा **एनॉफिलीस** रक्त चूसने के लिए मनुष्य को काटता है तो वह अपनी लार के साथ-साथ **प्लाज्मोडियम** की **स्पोरोजोआइट** अवस्था को मनुष्य के रक्त में पहुंचा देता है। परजीवी सदैव दो परपोषियों में से किसी एक न एक के शरीर में जरूर रहता है, इसलिए स्पोरोजोआइटों के ऊपर कोई संरक्षी आवरण नहीं पाया जाता। स्पोरोजोआइट एक सूक्ष्म हंसिका-नुमा कोशिका होती है जिसके भीतर एक अंडाकार केन्द्रक होता है। मच्छर एक ही बार में हजारों स्पोरोजोआइट शरीर में छोड़ देता है। स्पोरोजोआइटों में कुछ मामूली सी विसर्पण गति संभव है। भारत में मलेरिया पैदा करने वाली **ऐनाफिलीस** की आम जातियां ये हैं: **ए० मैक्युलैटस, ए० स्टीफेन्साई, ए० फ्लुविऐटिलिस** तथा **ए० क्यूलिफेसीज**। लगभग आधा घंटे में ही स्पोरोजोआइट रक्त-धारा में से विलीन हो जाते तथा जिगर की पैरेंकाइमी कोशिकाओं में घुस जाते हैं जहां पर उनमें कम-से-कम दो शाइजोगोनीय चक्र पूरे होते हैं।

शाइजोगोनी (Schizogony)—जिगर की कोशिकाओं में स्पोरोजोआइटों में वृद्धि होकर वे एक बड़ा, गोल **शाइजॉन्ट** (schizont) बनाते हैं। बहुविभजन के द्वारा शाइजॉन्ट में विभाजन होकर लगभग 1000 छोटी-छोटी स्पिंडल-नुमा कोशिकाएं बन जाती हैं जिन्हें **मीरोजोआइट** (merozoite) कहते हैं; इस बहुविभजन को शाइजोगोनी कहते हैं। शाइजॉन्ट फूट जाता और मीरोजोआइट जिगर के साइनुसॉयडों अथवा शिरा मार्गों में छोड़ दिए जाते हैं। अलैंगिक प्रगुणन की इस प्रावस्था को लालकोशिकापूर्वीय **शाइजोगोनी** (pre-erythrocytic schizogony) कहते हैं और इसके द्वारा पैदा होने वाले मीरोजोआइटों को **क्रिप्टोजोआइट** (cryptozoite) भी कहते हैं। इन क्रिप्टोजोआइटों पर न तो दवाइयों का असर होता है और न ही परपोषी की प्रतिरक्षा शक्ति का। अलैंगिक जनन की एक दूसरी प्रावस्था

जिसे **लालकोशिका बाह्य शाइजोगोनी** (exo-erythrocytic schizogony) कहते हैं जिगर की कोशिकाओं में चलती है, इसमें क्रिप्टोजोआइट नई जिगर-कोशिकाओं में घुस जाते और बढ़ कर शाइजॉन्ट बन जाते हैं, शाइजॉन्ट में विभाजन होकर मीरोजोआइट बन जाते हैं; दूसरी पीढ़ी के इन मीरोजोआइटों को **पश्चक्रिप्टोजोआइट** (metacryptozoites) कहते हैं। लालकोशिका बाह्य शाइजोगोनी हो सकता है और अधिक जिगर-कोशिकाओं में जारी रहे, जिससे कि मीरोजोआइटों का एक आगार बन जाता है, और कुछ मीरोजोआइट जो कि कम-से कम दो शाइजोगोनी चक्र पूरे कर चुके हों द्वारा रक्त-धारा में प्रविष्ट हो जा सकते हैं जहां वे लालकोशिकाओं में घुस जाते हैं। मीरोजोआइट केवल नई-नई और अपरिपक्व लालकोशिकाओं पर ही आक्रमण करते हैं, (**प्ला० मैलेरी** के मीरोजोआइट केवल पुरानी अर्थात् वृद्ध रक्त कणिकाओं पर आक्रमण करते हैं, जबकि **प्ला० फैल्सीपैरम** के मीरोजोआइट बिना किसी भेद-भाव के हर प्रकार की रक्त कणिकाओं पर आक्रमण करते हैं)। स्पोरोजोआइटों द्वारा मानव में संक्रमण होने से लेकर रक्त में मीरोजोआइटों के पहुंचने तक दस दिन का समय लग जाता है, और इसे **उद्भवन काल** (incubation period) कहते हैं। उद्भवन-काल के दौरान परपोषी में मलेरिया के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते।

लालकोशिकाओं में शाइजोगोनी की एक तीसरी प्रगुणन प्रावस्था आती है जिसे **लालकोशिकीय शाइजोगोनी** (erythrocytic schizogony) कहते हैं। मीरोजोआइट लालकोशिका को खाते हैं, मीरोजोआइट में एक रिक्तिका उत्पन्न हो जाती है, केन्द्रक एक ओर को खिसक जाता है, और अब मीरोजोआइट उस अवस्था में आ जाता है जिसे अंगूठी-आकृतिक ट्रोफोजोआइट (ring-shaped trophozoite) कहते हैं जो लालकोशिका के साइज का $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{3}$ होता है। ट्रोफोजोआइट में वृद्धि होकर वह गोल और अमीबीय हो जाता है, यही पूर्ण विकसित पोषाणु होता है और इसे **शाइजॉन्ट** कहते हैं। बड़ा शाइजॉन्ट लालकोशिका को बहुत बड़ा बना देता है। शाइजॉन्ट में **हीमोजोइन** (haemozoin) की पीलापन लिए हुए भूरी वर्णक कणिकाएं दिखाई पड़ती हैं, यह वर्णक लालकोशिका के हीमोग्लोबिन के लोहे से व्युत्पन्न होता है। बड़े आकार की बन गई लालकोशिका में कणिकाएं बन जाती हैं जिन्हें **शुफ्नेर-डाट** (Schuffner's dots) कहते हैं। अब शाइजॉन्ट में बहुविभजन होकर 12 से 21 मीरोजोआइट बन जाते हैं। अलैंगिक प्रगुणन की इस प्रावस्था को लालकोशिकीय शाइजोगोनी कहते हैं। अत्यधिक कमजोर हो चुकी लाल-कोशिका अब फूट जाती है और मीरोजोआइट प्लाज्मा में मुक्त हो जाते हैं जहां से वे और नई लालकोशिकाओं में घुस जाते हैं। उसके बाद वे हर 48 घंटे में लालकोशिकीय शाइजोगोनी को दोहराते रहते हैं।

मीरोजोआइटों के साथ-साथ टॉक्सिन भी निकलते हैं जो रक्त में फैलकर तिल्ली में, जिगर में और त्वचा के नीचे जमा हो जाते हैं जिसके कारण परपोषी का रंग पीला-पीला हो जाता है। एकत्रित हुए टॉक्सिनों से मलेरिया ज्वर उत्पन्न होता है जिसमें रोगी को कंपकंपी चढ़ती है, जाड़ा लगता है और अकड़ाहट के साथ उच्च ज्वर हो जाता

है जिसके उपरांत खूब पसीना आता है। ज्वर छ: से दस घंटे तक बना रहता है, और उसके बाद यह हर 48 घंटे के बाद बार-बार आता है—यह अवधि मीरोजोआइटों की नई पीढ़ी के निकलने के समय से मेल खाती है। **प्ला० वाइवैक्स** द्वारा पैदा होने वाले मलेरिया को **बीनाइन टर्शियन** (benign tertian) मलेरिया कहते हैं। बार-बार और साथ-साथ एक ही समय पर शाइजोगोनी होने के कारण 48 घंटों के अंतरालों पर लालकोशिकाएं बहुत बड़ी संख्या में नष्ट होती जाती हैं जिसके साथ-साथ बड़ी मात्रा में टॉक्सिन रक्त में पहुंच जाते हैं—यही वह कारण है जिससे कि हर तीसरे दिन मलेरिया का वह विशिष्ट प्रवेग (paroxysm) उत्पन्न होता है। प्रवेग को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है, कंपकंपी, उच्च ताप वाली सज्वर अवस्था जिसमें ज्वर 104° F से भी ऊपर पहुंच जाता है, और ज्वरमोक्ष (defervescent) अथवा पसीना आने की अवस्था। मीरोजोआइट पुन: रक्त में से जिगर-कोशिकाओं में पहुंच जा सकते हैं जहां पर वे अलैंगिक प्रगुणन के एक और दौर से गुजर सकते हैं—इस प्रावस्था को **लालकोशिकापश्चीय शाइजोगोनी** (post-erythrocytic schizogony) कहते हैं।

लैंगिक चक्र—रक्त में शाइजोगोनी की अनेक पीढ़ियां बीत चुकने पर, कुछ मीरोजोआइट धीरे-धीरे अधिक बड़े होते जाते हैं और ज्यादा मात्रा में हीमोजोइन बनाते हैं, ये लालकोशिकाओं के भीतर होते हैं तथा बढ़कर दो प्रकार की युग्मककोशिकाओं का निर्माण करते हैं जिन्हें **गुरुयुग्मककोशिकाएं** (macrogametocyte) और **लघुयुग्मककोशिकाएं** (microgametocytes) कहते हैं। वह कौन-सी दशा है जिसके द्वारा युग्मककोशिकाओं के निर्माण का प्रारम्भ होता है, इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। ज्वर प्रारम्भ हो जाने के बाद युग्मककोशिकाएं विभिन्न अंतरालों पर सतही रक्त में पहुंच जाती हैं, जब तक वे मनुष्य के रक्त में रहती हैं निष्क्रिय बनी रहती हैं। गुरुयुग्मककोशिकाएं मादा होती है, ये साइटोप्लाज्म में आहार लदे होने के कारण गोल होती हैं और इनमें एक छोटा केन्द्रक होता है जो बीचों-बीच न होकर एक किनारे पर होता है। लघुयुग्मककोशिकाएं नर होती हैं, उनमें एक स्वच्छ साइटोप्लाज्म तथा एक बड़ा केन्द्रीय केन्द्रक होता है। दोनों युग्मककोशिकाओं में हीमोजोइन की बड़ी मात्रा पाई जाती है। इनके कारण लालकोशिका का आकार बड़ा हो जाता है। युग्मककोशिकाएं मनुष्य के रक्त में अनेक सप्ताह तक बनी रहती हैं लेकिन उनका और आगे परिवर्धन तभी हो सकता है जब वे किसी **ऐनाफिलीस** मच्छर के शरीर में पहुंच जाएं; यदि ऐसा नहीं होता तो वे अपविकसित होकर मर जाती हैं। यदि मादा **ऐनॉफिलिस** के द्वारा मानव रक्त चूसे जाने के साथ-साथ ये युग्मककोशिकाएं उसके शरीर में पहुंच जाती हैं तो वे उसके आमाशय में पहुंच जाती हैं जहां पर रक्त-कणिकाएं घुल जाती हैं। लघुयुग्मककोशिका विभाजित होकर 4 से 8 लंबे कशाभयुक्त **लघुयुग्मक** (microgametes) बनाती है जो वृद्धि करते जाते और मच्छर के आमाशय में तैरना शुरू कर देते हैं। गुरुयुग्मक-कोशिका में कुछ साइटोप्लाज्म के साथ-साथ केन्द्रक बाहर को उभर आता है, इसके द्वारा यह गुरुयुग्मक बन जाता है। गुरुयुग्मक पर अनेक लघुयुग्मक आ चिपकते हैं लेकिन कोई एक लघुयुग्मक गुरुयुग्मक के उभरे हुए भाग पर ही चिपक जाता है। ये दोनों
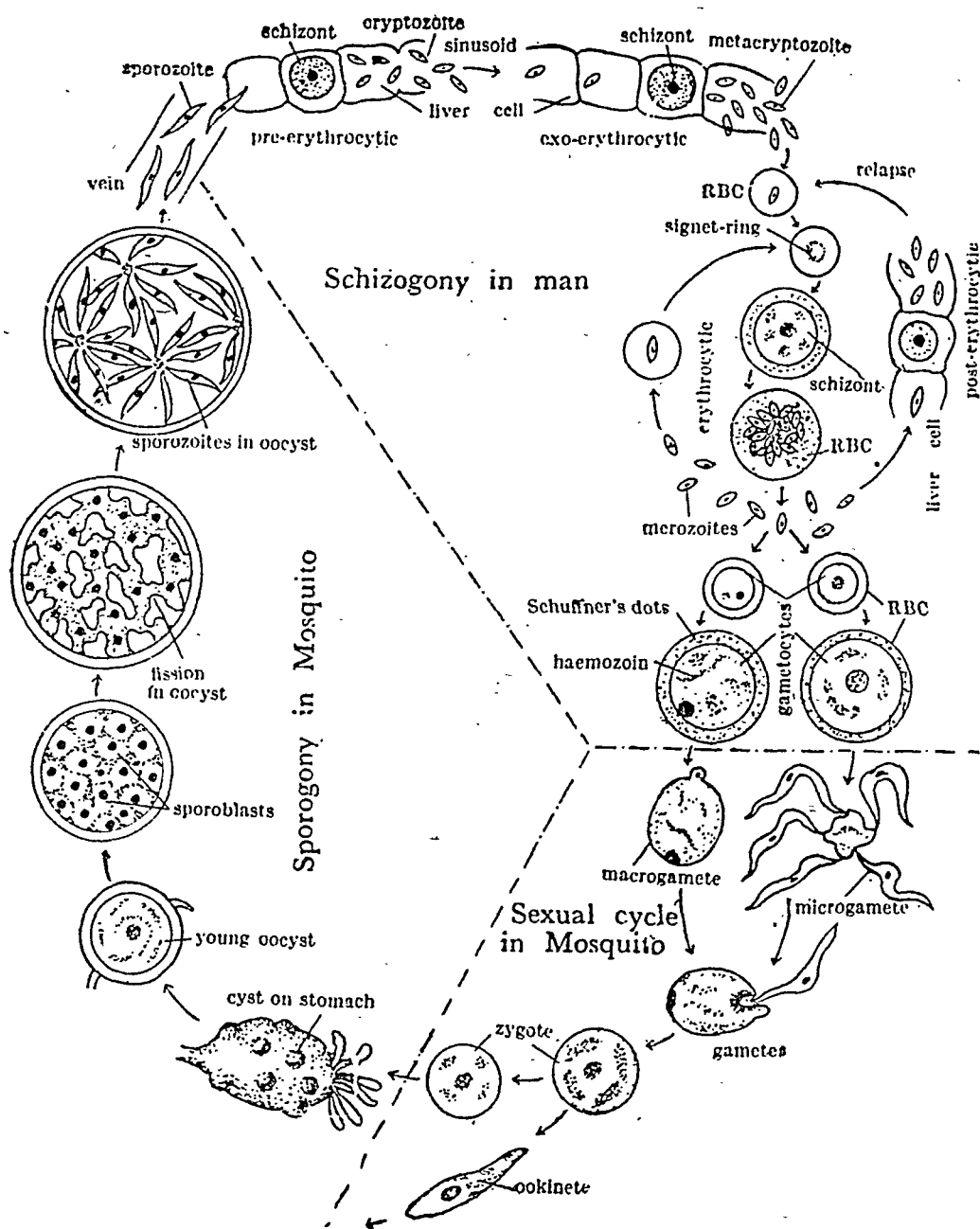
चित्र 26—**प्लाज्मोडियम वाइवैक्स** का जीवन-चक्र।

Vein, शिरा; sporozoite, स्पोरोजोआइट; schizont, शाइजॉन्ट; cryptozoite क्रिप्टोजोआइट; sinusoid, साइनुसॉइड; liver cell, जिगर कोशिका; pre-erythrocytic, लालकोशिकापूर्वीय; exoerythrocytic, लालकोशिकावाह्य; metacryptozoite, पश्चक्रिप्टोजोआइट; RBC, लाल रक्त कोशिका; relapse, आवृत्ति; signet ring, मुद्रिका अवस्था, schizogony in man मानव में शाइजोगोनी; erythrocytic, लालकोशिकीय; merozoite, मीरोजोआइट; post-erythrocytic, लालकोशिकापश्चीय; Schuffner's dots, शुफनेर डॉट; gametocytes, युग्मककोशिकाएं; haemozoin, हीमोजोइन; macrogamete, गुरुयुग्मक; microgamete, लघुयुग्मक; sexual cycle in mosquito, मच्छर में लैंगिक प्रावस्था; gametes, युग्मक; zygote, युग्मनज; ookinete, ऊकाइनेट; cyst on stomach, आमाशय के ऊपर पुटी; young oocyst, नई-नई अंडपुटी; sporoblasts, स्पोरोब्लास्ट; fission in oocyst, अंडपुटी में विभाजन; sporozoites in oocyst, अंडपुटी में स्पोरोजोआइट; sporogony in mosquito, मच्छर में स्पोरोगोनी।

समेकित होकर एक गोल **युग्मनज** (zygote) बनाते हैं, अन्य लघुयुग्मक गिर जाते हैं। दो असमान युग्मकों के इस प्रकार के समेकन को **असमयुग्मन** (anisogamy) कहते हैं।

स्पोरोगोनी (Sporogony)—गोल युग्मनज मच्छर के आमाशय की कोशिकाओं के बीच में आकर स्थित हो जा सकते हैं, लेकिन जो युग्मनज आमाशय की दीवार में नहीं पहुंच पाते वे लंबे क्रमि-सदृश शरीर वाले **ऊकाइनेट** (ookinetes) बन जाते हैं। शुरू में ऊकाइनेट को आक्रमणकारी रूप समझा जाता था लेकिन अब यह मालूम है कि यह अवस्था मरणासन्न अवस्था होती है जो मच्छर की विष्ठा के साथ शरीर से बाहर निकल जाती है। गोल युग्मनज आमाशय की दीवार को वेधता है और उसकी बाहरी एपिथीलियमी परत के नीचे आकर स्थित हो जाता है, और फिर वहां पर उसके ऊपर एक पुटी बन जाती है, इस पुटी का निर्माण अंशतः युग्मनज द्वारा और अंशतः मच्छर के आमाशय द्वारा होता है, आमाशय कोशिकाएं घनाकार और अंततः लंबी हो जाती हैं। एक मच्छर के आमाशय पर 50 तक की संख्या में पुटियां पाई जा सकती हैं। इस पुटी को अब **अंडपुटी** (oocyst) कहते हैं जो आमाशय की सतह से बाहर को उभरी रहती है। अंडपुटी पोषण को सोखती जाती है और आकार में लगभग पांच गुना अधिक बड़ी हो जाती है। इसके केन्द्रक में अनेक बार विभाजन होता है और साइटोप्लाज्म में रिक्तिकाएं बन जाती हैं जिससे हल्की-हल्की सीमाओं वाली कोशिकाएं बन जाती हैं जिन्हें **स्पोरोब्लास्ट** (sporoblast) कहते हैं। क्रोमैटिन के कण प्रत्येक स्पोरोब्लास्ट की सतह के नीचे-नीचे चारों ओर व्यवस्थित हो जाते हैं। तब साइटोप्लाज्म से पतली-पतली स्पिंडल की आकृति की कोशिकाएं बन जाती हैं जिन्हें **स्पोरोजोआइट** (sporozoite) कहते हैं। प्रत्येक स्पोरोजोआइट में केन्द्रक के रूप में एक क्रोमैटिन कण होता है। प्रत्येक अंडपुटी में दस हजार तक स्पोरोजोआइट हो सकते हैं, और अनेक समूह बनाकर स्पोरोजोआइट रिक्तिकाओं के चारों ओर व्यवस्थित हो जाते हैं। अलैंगिक प्रगुणन के इस दौर को **स्पोरोगोनी** (sporogony) कहते हैं जो युग्मक-कोशिकाओं के मच्छर में पहुंचने के समय से लेकर 10 दिन से 3 सप्ताह तक के काल में सम्पूर्ण होता है; यह समय ताप पर निर्भर करता है। अंडपुटी फूट जाती है और स्पोरोजोआइट मच्छर की रुधिर-लसीका (haemoloymph) में स्वच्छन्द हो जाते हैं, जहां से वे उसकी लार-ग्रंथियों में पहुंच जाते और हाइपोफेरिंक्स की वाहिनी में घुस जाते हैं। मच्छर के काटने के द्वारा स्पोरोजोआइट मनुष्य परपोषी में पहुंच जाते हैं।

प्लाज्मोडियम के जीवन-चक्र में तीन प्रावस्थाएं दृष्टिगोचर होती हैं: (1) एक अलैंगिक प्रगुणन प्रावस्था अथवा शाइजोगोनी जो मनुष्य के जिगर और रुधिर में पाई जाती है। (2) एक लैंगिक प्रावस्था जो अंशतः मनुष्य में और अंशतः मादा मच्छर में पाई जाती है। (3) अलैंगिक प्रगुणन प्रावस्था अथवा स्पोरोगोनी जो मच्छर के आमाशय के ऊपर पाई जाती है।

मलेरिया **प्लाज्मोडियम** की चार जातियों के कारण होता है, लेकिन उनकी

आकारिकी (मॉर्फालाजी) तथा जीवन-चक्र लगभग समान होते हैं, फिर भी उनमें कुछ विभेदक लक्षण पाए जाते हैं।

1. **प्लाज्मोडियम वाइवैक्स** का उष्णकटिबंधीय तथा शीतोष्ण प्रदेशों में व्यापक वितरण पाया जाता है। इसका उद्भवन काल (incubation period) 10 दिन होता है। अंगूठीं-नुमा पोषाणु लालकोशिका के साइज का $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{3}$ होता है। वड़ी हो गई लालकोशिका शाइजॉन्ट से भर जानी है और शाइजॉन्ट में पीला-भूरा हीमोजोइन होता है। वड़ी हो गई लालकोशिका में शुफ्नेर-डॉट होते हैं। रक्त में शाइजॉन्ट से 12 से 24 मीरोजोआइट वन जाते हैं। युग्मककोशिकाएं वड़ी हो गई लालकोशिकाओं को भीतर से भर लेनी हैं। यह वीनाइन टर्शियन मलेरिया पैदा करता है जो हर 48 घंटे वाद आता है।

2. **प्लाजमोडियम मैलेरी** (*Plasmodium malariae*) उष्णकटिबंधीय और शीनोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। उद्भवन काल 27 से 37 दिन होता है। छल्लानुमा ट्रोफोजोआइट का साइज लालकोशिका का $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ होता है। शाइजॉन्ट लाल-कोशिका को भरे रहता है, जो वड़ी नहीं हो गई होनी। हीमोजोइन गहरा भूरा होता है। लालकोशिका में शुफ्नेर डॉट नहीं होते। रक्त में शाइजॉन्ट 6 से 12 मीरोजोआइट
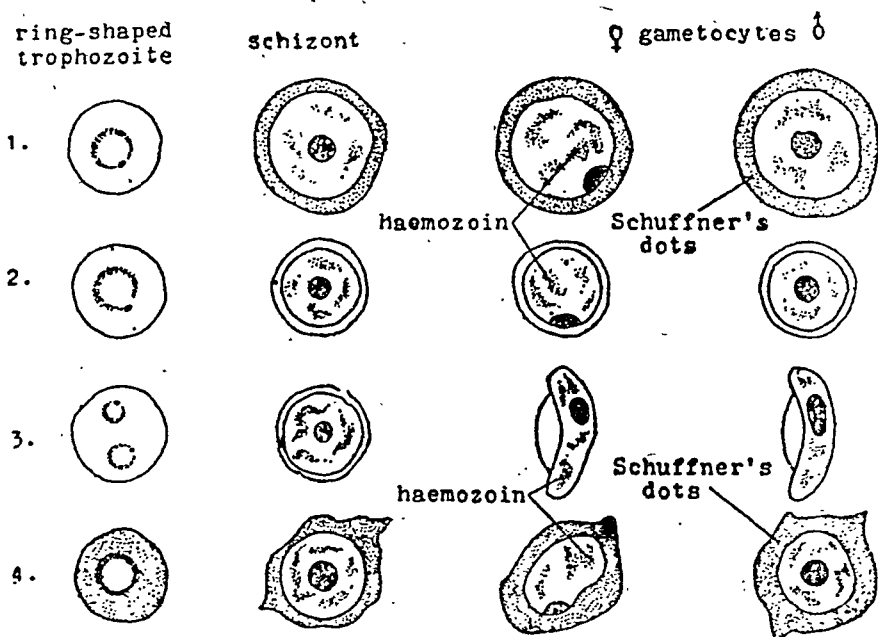
चित्र 27—**प्लाज्मोडियम** की विभिन्न जातियां। 1. **प्ला० वाइवैक्स** 2. **प्ला० मैलेरी** । 3. प्ला० **फैल्सीपैरम** । 4. प्ला० ओवेल

Haemozoin, हीमोजोइन; ring-shaped trophozoite, अंगूठीनुमा ट्रोफोजोआइट; schizont, शाइजॉन्ट; gametocytes, युग्मककोशिकाएं; schuffner's dot, शुफ्नेर डाट।

वनाता है। युग्मककोशिकाएं गोल होती हैं, वे लालकोशिकाओं को भरे रहती हैं जो कि वड़ी नहीं हो गई होती। यह हर 72 घंटों वाद आने वाला चतुर्थक मलेरिया पैदा करता है।

3. **प्लाज्मोडियम फैल्सीपरम** (*Plasmodium falciparum*)—उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों में बहुत आम पाया जाता है। उद्भवन काल 10 दिन है। अंगूठीनुमा ट्रोफोजोआइट लालकोशिका का $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{5}$ होता है, और अक्सर एक ही रक्त कोशिका में दो पोषाणु होते हैं। शाइजॉन्ट बिना बढ़ी हुई लालकोशिका का $\frac{2}{3}$ से $\frac{3}{4}$ होता है। हीमोजोइन काला होता है। लालकोशिकाएं आकार में बढ़ी हुई नहीं होतीं, यहां तक कि वे सिकुड़ी हुई हो सकती हैं और हरी हो जाती हैं, उनमें शुफ्नेर डॉट नहीं होते। रक्त में शाइजॉन्ट से 8 से 36 मीरोजोइट बनते हैं जो परिधीय परिसंचरण में नहीं पाए जाते। युग्मककोशिकाएं बालचंद्राकार होती हैं जो लालकोशिका के एक पार्श्व में पड़ी रहती हैं। यह दुर्दम टर्शियन मलेरिया ज्वर पैदा करता है जो लगभग लगातार 24 से 28 घंटे तक चलता रहता है।

4. **प्लाज्मोडियम ओवेल** (*Plasmodium ovale*) छुटपुट रूप में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। उद्भवन काल 14 दिन होता है। अंगूठीनुमा ट्रोफोजोआइट लालकोशिका का $\frac{1}{2}$ से $\frac{}{3}$ तक होता है। शाइजॉन्ट लालकोशिका का $\frac{3}{4}$ भाग भरे रहता है जो बड़े और अनियमित आकार की हो जाती है। हीमोजोइन गहरी भूरी होती हैं, बड़ी हो गई लालकोशिका में शुफनेर डॉट होते हैं। रक्त में शॉइ-जॉन्ट से 6 से 12 मीरोजोआइट बनते हैं। युग्मककोशिकाएं गोल होती हैं जो बड़ी हो गई और अनियमित आकृति की लालकोशिकाओं को लगभग पूरी तरह भरे रहती हैं। यह ओवेल अथवा मध्यम टर्शियन मलेरिया पैदा करता है जो हर 48 घंटे के बाद आता है।

मलेरिया का नियंत्रण—मानव रोगों में मलेरिया का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसके कारण न केवल हर वर्ष लाखों लोगों की मृत्यु ही होती है बल्कि इसके कारण पृथ्वी के सबसे अधिक उपजाऊ प्रदेश मानव वास के लिए असुरक्षित बन जाते हैं।

1. मलेरिया के विरुद्ध सबसे प्राचीन औषधि क्विनीन है जो कि शाइजॉन्ट अवस्थाओं को मारने में बहुत कारगर है, लेकिन युग्मककोशिकाओं तथा लालकोशिका-बाह्य अवस्थाओं के लिए कारगर नहीं है। मेपैक्रीन मीरोजोआइटो को मार देती है, लेकिन पैल्युड्रीन इन दोनों से श्रेष्ठ है क्योंकि केवल जिगर में पाई जाने वाली अवस्थाओं को छोड़कर शेष लगभग सभी अवस्थाओं को मार देती है। मलेरिया के नियंत्रण में निम्नलिखित उपाय प्रभावशील होते हैं।

2. रोगी का मलेरियानाशी औषधों के द्वारा उपचार करना चाहिए। लेकिन रोगी को पृथक् करके संक्रमण के फैलना को रोकना महत्त्वपूर्ण है। रोगी को मच्छरदानी में रखना चाहिए ताकि उसे मच्छर न काट सकें और अन्य व्यक्तियों तक संक्रमण न पहुंच सके।

3. यदि कोई व्यक्ति मच्छरदानी में सोता हो और क्विनीन की थोड़ी-सी खूराक रोज ले लेता हो तो उसे मलेरिया होने की संभावना नहीं होती।

4. मलेरिया की रोकथाम के लिए मच्छरों का नियंत्रण बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे इन उपायों द्वारा किया जा सकता है: (क) मनुष्य के आवासों में D.D.T. स्प्रे करके जो कई महीनों तक मच्छरों के लिए विषैला बना रहता है, मच्छरों को मारना चाहिए; (ख) उन गढ़ों और नालियों को भर देना चाहिए जहां मच्छर अंडे देते हों, और दलदली

जगहों का पानी निकाल देना चाहिए ताकि मच्छरों को प्रजनन स्थान न मिल सके। भारत में वर्षा के पांच दिनों के बाद दो या तीन सूखे दिन आ जाएं तो यह स्थिति मच्छरों के नियंत्रण के लिए बहुत कारगर पाई गई है, तब (ग) तालाबों की सतह पर मिट्टी का तेल अथवा कीटनाशक दवाइएं छिड़कनी चाहिए जो मच्छरों के लार्वो तथा प्यूपों को मार देती हैं। वयस्क मच्छरों की अपेक्षा उनके लार्वों को मारना अधिक आसान और अधिक कारगर होता है। इन्हें कुछ खास मछलियों के द्वारा भी नष्ट कराया जा सकता है जैसे मिनो, **गम्बूजिया**, **लेबिस्टीज** मछलियों को जल में छोड़कर जो कि मच्छरों की प्राकृतिक शत्रु हैं क्योंकि वे इनके लार्वो और प्यूपों को खा जाती हैं।

5. पैरामीशियम कॉडेटम (*Paramecium caudatum*)

उपफाइलम **सिलियोफोरा** प्रोटोजोआ के विभिन्न क्लासों में सबसे बड़ा और सबसे अधिक समांग है। इसमें 6,000 से भी अधिक ज्ञात जातियां पाई जाती हैं। इनमें सिलिया पाए जाते हैं जो चलन तथा आहार पकड़ने के अंगकों का कार्य करते हैं। साथ ही इनमें कोशिकाओं की सतह के नीचे एक अधः सिलियरी (infraciliary) तंत्र पाया जाता है जो जीवन-चक्र की तमाम अवस्थाओं में पाया जाता है। दो प्रकार के केन्द्रक पाया जाना इनकी विशेषता है। द्विविभजन अनुप्रस्थ होता है, और लैंगिक जनन में मुक्त युग्मक नहीं पाए जाते। इसमें केवल एक ही क्लास सिलिएटीया (Ciliatea) आता है।

पैरामीशियम की अनेक जातियां हैं जो दो वर्गों में आती हैं। एक वर्ग **औरीलिया** (aurelia) वर्ग है जो लंबे, अनुप्रस्थ सेक्शन में गोल, और जिनकी कोशिकागुदा (cytoproct) पार्श्व में होती है, इस वर्ग के सामान्य सदस्य **पै० औरीलिया** (*P. aurelia*) तथा **पै० कॉडेटम** (*P. caudatum*) हैं। दूसरा वर्ग **बर्सेरिया** (*bursaria*) वर्ग है जो छोटे और चौड़े होते हैं, वे अनुप्रस्थ सेक्शन में चपटे होते हैं, पश्च सिरा कुछ-कुछ चौड़ा होता है तथा कोशिकागुदा उपांतिम होती है, इस वर्ग के सामान्य सदस्य हैं **पै० बर्सेरिया** (*P. bursaria,*) **पै० कैल्किसाई** (*P. calkinsi*), तथा **पै० वुडरफाई** (*P. woodruffi*)।

पैरामीशियम उन तलावों में पाया जाता है जिनमें सड़ता हुआ जैव पदार्थ प्रचुर मात्रा में होता है, तथा कार्बनिक आधानों (infusions) में और वाहितमल (sewage) के जल में होता है। **पैरामीशियम कॉडेटम** लगभग 0·3 mm. लंबा होता है, देह असममित होता है और लंबा होता है जो देखने में जूते के तले सरीखा दीखता है अतः इस जंतु को आम भाषा में "स्लीपर जंतुक" कहते हैं (देखो चित्र 28, अगला पृष्ठ)। जिसे अग्रसिरा कहते हैं वह कुन्द होता है और पिछला सिरा अधिक नुकीला होता है। सबसे ज्यादा चौड़ाई बीच के स्थान से तुरंत पीछे होती है। बाहर से देह के ऊपर एक पतला, दो परत वाला जीलेटिन का बना दृढ़ **पेलिकल** होता है। यही पेलिकल जंतु को उसकी शक्ल प्रदान करता है परंतु साथ ही वह इतना लचीला भी होता है कि देह में संकुचन हो सकते हैं। बाहरी प्रोटोप्लाजम एक दृढ़, स्वच्छ तथा घने एक्टोप्लाजम अथवा कार्टेक्स के रूप में होता है। भीतरी प्रोटोप्लाजम एक अर्धतरल, कणिकीय एंडोप्लाजम अथवा मैडुला होता है। एक्टोप्लाजम बहुत रूपांतरित हो गया है—इसमें अनुदैर्ध्य संकुचनशील मायोनीम

होते हैं। अधरपार्श्व दिशा पर एक बड़ा, आड़ा, उथला गढ़ा होता है जिसे **मुख खांच** (oral groove) अथवा परिमुख (peristome) कहते हैं और जो जंतु को एक असममित रूप प्रदान करता है। मुख खांच एक छोटे शंक्वाकार कीपनुमा गढ़े में
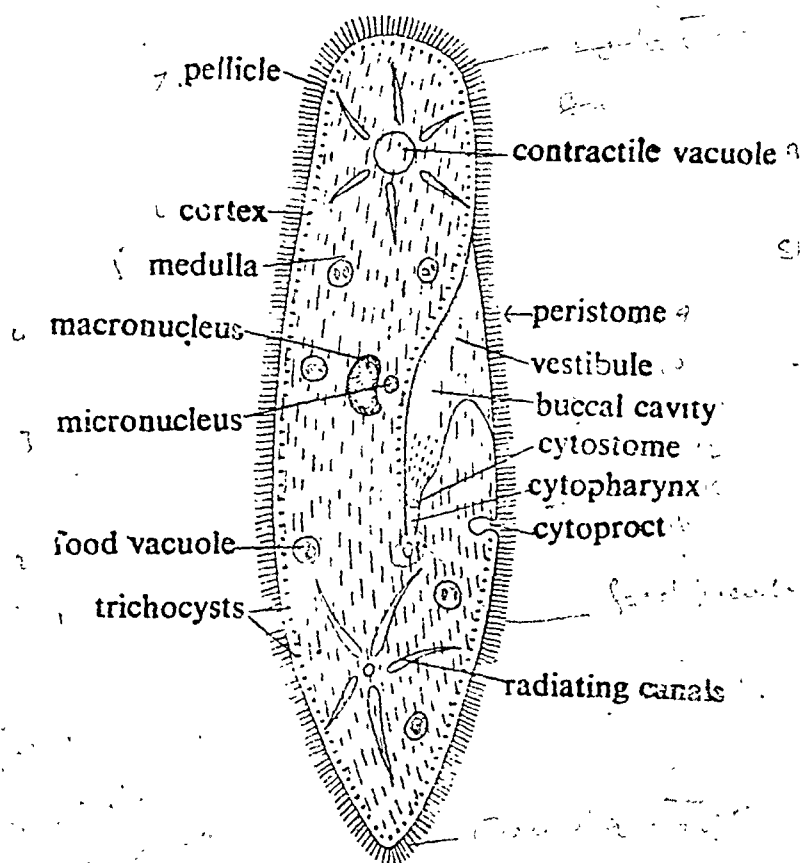
चित्र 28—**पैरामीशियम कॉडेटम**

Pellicle, पेलिकल; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; peristome, परिमुख; vestibule, वेस्टिब्यूल; buccal cavity, मुख गुहा; cytostome, कोशिकामुख; cytopharynx, कोशिकाग्रसनी; cytoproct, कोशिका-गुदा; radiating canals, अरीय नलिकाएं; trichocysts, ट्राइकोसिस्ट; food vacuole, आहार-रिक्तिका; micronucleus, सूक्ष्मकेन्द्रक; macronucleus, गुरुकेन्द्रक; medulla, मेडुला; cortex कार्टेक्स।

खुलती है जिसे **वेस्टिब्यूल** (vestibule) कहते हैं। वेस्टिब्यूल एक नलिकाकार **मुख गुहा** (buccal cavity) में खुलता है, यह गुहा दो बार मुड़कर एंडोप्लाज्म में पार्श्व दिशा में खुलती है। मुख गुहा के नीचे बिना सिलिया वाला एक छोटा भाग होता है जिसे **कोशिकाग्रसनी** (cytopharynx) कहते हैं। **कोशिकामुख** (cytostome) अथवा मुख मुख-गुहा एवं कोशिकाग्रसनी के जोड़ पर होता है। संपूर्ण शरीर महीन सिलिया से ढका होता है। सिलिया चलन और आहार पकड़ने वाले अंगक होते हैं, ये संवेदग्राहियों के रूप में भी भी कार्य करते हैं और अपने बाहरी वातावरण

के उद्दीपनों का पता लगाते हैं। सिलिया अनुदैर्ध्य पंक्तियों में व्यवस्थित तमाम देह के ऊपर पाए जाते हैं, इस प्रकार की दशा को होलोट्राइकस दशा कहते हैं जिसमें देह के
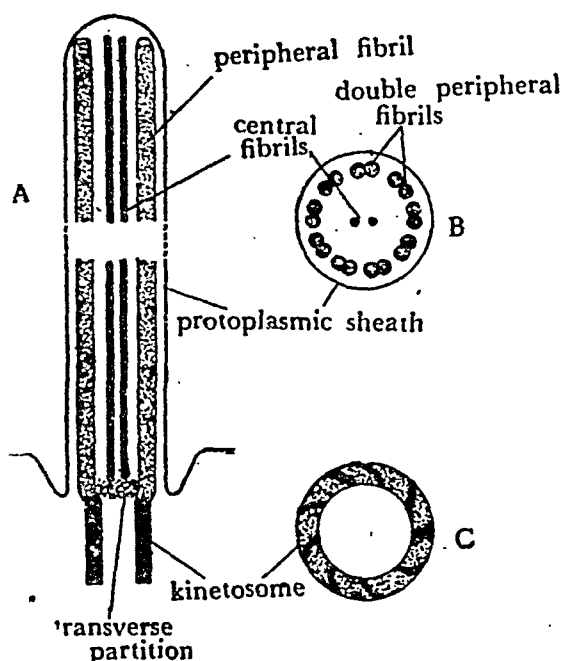
चित्र 29. A—पैरामीशियम के सिलियम का L.S. (अनुदैर्ध्य सेक्शन)।
B—सिलियम का T.S. (अनुप्रस्थ सेक्शन)।
C—काइनेटोसोम का T.S.

Peripheral fibril, परिधीय तंतु; central fibrils, केन्द्रीय तंतु; double peripheral fibrils, दोहरे परिधीय तंतु; protoplasmic sheath, प्रोटोप्लाज्मी आवरण; kinetosome, काइनेटोसोम; transverse partition, अनुप्रस्थ विभाजक।

सिलिया एक बराबर होते हैं। सिलिया की संरचना वही होती है जो कशाभों की होती है, उनमें एक बाहरी प्रोटोप्लाज्मी आवरण अथवा प्लाज्मा झिल्ली होती है और एक परिधीय वलय में व्यवस्थित नौ दोहरे अनुदैर्ध्य तंतु होते हैं, कुछ सिलियों में ये नौ बाहरी तंतु दोहरे नहीं होते; दो केन्द्रीय अनुदैर्ध्य तंतु होते हैं जो बाहरी तंतुओं की अपेक्षा पतले होते हैं। प्रत्येक सिलियम एक **आधार-कणिका** (basal granule) अथवा **काइनेटोसोम** (kinetosome) से निकलता है, परिधीय तंतुओं के नौ जोड़े एक साथ जुड़कर काइनेटोसोम की दीवार बनाते हैं, इस प्रकार काइनेटोसोम एक नलिका बन जाता है जो अपने निचले सिरे पर या तो खुला होता है या बंद, अधिकतर सिलिएटों में दोनों केन्द्रीय तंतु पेलिकल के स्तर पर ही रुक जाते हैं। काइनेटोसोम से एक पतला **राइजोप्लास्ट** (rhizoplast) निकलता है जो केन्द्रक से नहीं जा मिलता। अनेक मेटाजोआ में भी सिलिया होते हैं, उनकी संरचना एक सी ही होती है, अंतर केवल इतना है कि

आधार कणिका अलग प्रकार की होनी है और इसमें महीन सूत्र अथवा मूल-तंतु होते हैं जो कि गहरे साइटोप्लाज्म में को फैले होते हैं। लेकिन सिलिया कशाभों से इस बात में भिन्न
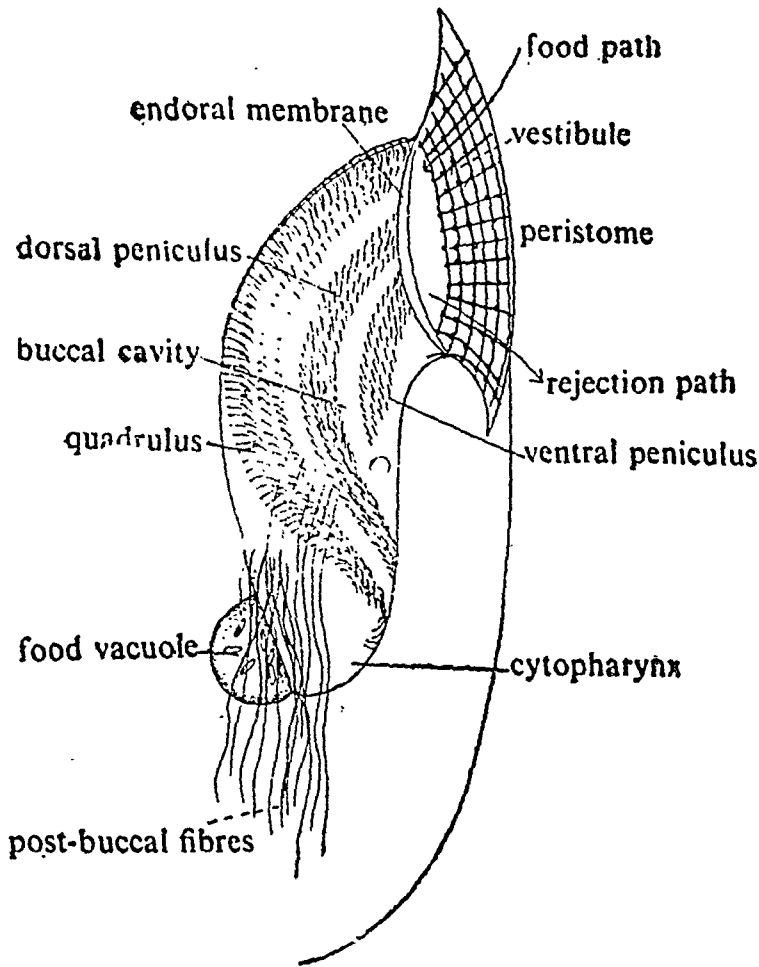
चित्र 30—**पैरामीशियम** का अशन उपकरण।

Food path, आहार पथ; vestibule, वेस्टिब्यूल; peristome, परिमुख; rejection path, अस्वीकार पथ; ventral peniculus, अधर पेनिकुलस; cytopharynx, कोशिकाग्रसनी; post-buccal fibres, मुख-पश्च तंतु; food vacuole, आहार रिक्तिका; quadrulus क्वाड्रलस; buccal cavity, मुख गुहा; dorsal peniculus, पृष्ठ पेनिकुलस; endoral membrane, अंतःमुख झिल्ली।

हैं कि ये सामान्यतः अधिक बहुसंख्यक और आकार में छोटे होते हैं। सिलिया-व्यवस्था को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है : एक तो दैहिक सिलिया जो कि देह की सतह पर पाए जाते हैं और दूसरे मुख-सिलिया जो कि मुख प्रदेश से संबंधित होते हैं। दैहिक सिलिया सभी बराबर लंबाई वाले होते हैं किन्तु पिछले सिरे पर पाए जाने वाले सिलिया अपेक्षाकृत अधिक लंबे होते हैं, इसीलिए इसका नाम **कॉडेटम** (caudatum) पड़ा है। मुख सिलिया-व्यवस्था में लंबे दृढ़ सिलिया होते हैं। मुख-गुहा में विशेषित सिलिया

होते हैं जो अशन से संबंधित चार अंगक बनाते हैं—ये हैं एक अंतःमुख झिल्ली (endoral membrane), एक पृष्टीय पेनिकुलस (dorsal peniculus), एक अधर पेनिकुलस (ventral peniculus) तथा एक क्वाड्रुलस (quadrulus)। **अंतःमुख** झिल्ली अथवा तरंगित झिल्ली एक अकेली सिलिया-पंक्ति होती है जो एक चाप (आर्क) के रूप में वेस्टिब्यूल और मुख-गुहा के जोड़ पर स्थित रहती है। **पृष्ठीय पेनिकुलस** में भारी सिलिया की चार पंक्तियां होती हैं जो मुख गुहा के बाईं ओर एक सर्पिल के रूप में होते हैं और यह सर्पिल कोशिकामुख के समीप समाप्त होता है। अधर पेनिकुलस में भारी सिलिया की पंक्तियाँ होती हैं, यह छोटा होता है और मुख गुहा की बाईं दिशा में केवल थोड़ी ही दूर तक एक वक्र के रूप में बना होता है। कुछ अध्येताओं ने इन पेनिकुलसों को गलती से तरंगित झिल्ली कहा है। **क्वाड्रुलस** में भी लंबे सिलिया की 4 पंक्तियाँ होती हैं जो कि पेनिकुलसों की अपेक्षा कम सटे हुए होते हैं, यह सर्पिल रूप में मुख-गुहा की पृष्ठ दीवार में पीछे को चलता जाता है और पृष्ठ पेनिकुलस के समीप समाप्त हो जाता है। क्वाड्रुलस और पेनिकुलस आहार के मार्ग का नियंत्रण करते है। सिलिया किस प्रकार कार्य करते हैं इस बारे में जानकारी नहीं है, शायद उनके तंतु एक तालबद्ध रूप में संकुचित होते हैं जिसके द्वारा वे झुकते जाते हैं। छोटी कोशिकाग्रसनी में कोई सिलिया नहीं होते। कोशिकाग्रसनी के अंतिम सिरे से पीछे की ओर निकलते हुए लंबे सिलिया होते हैं जिन्हें **पश्चमुख तंतु** (post-buccal fibres) कहते हैं।

एक्टोप्लाज़्म में उच्च विभेदन होकर कुछ अंगक बन गए हैं। इसमें एक बाहरी पेलिकल होता है जो कि एक दोहरी झिल्ली होती है, बाहरी झिल्ली सिलिया के प्रोटो-

चित्र 31—पेलिकल (सतही दृश्य)।
Cilia insertions, सिलिया गड़े होने के स्थान; trichocyst pores, ट्राइकोसिस्ट छिद्र, hexagonal ridges, षट्कोणीय कटक।
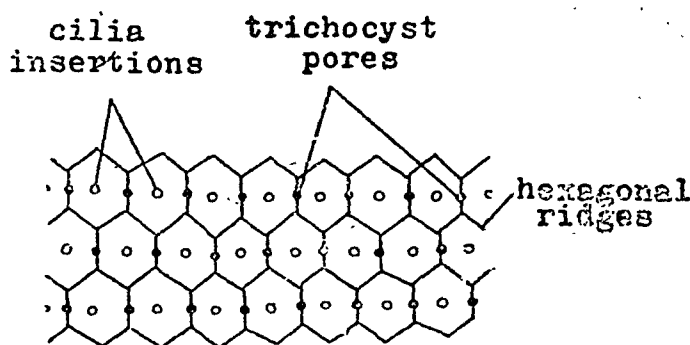
प्लाज़्मी आवरणों के साथ और भीतरी झिल्ली कार्टेक्स के साथ अविच्छिन्न रहती है। पेलिकल की सतह पर आयताकार अथवा षट्कोणीय कटक बने होते हैं, यह व्यवस्था पृष्ठ सतह पर ऐसी ही बनी रहती है लेकिन अधर सतह पर वेस्टिब्यूल के आगे और पीछे एक मुखपूर्व और एक मुखपश्चीय सीवन (सूचर) की ओर अभिकेन्द्रित हो जाती है। प्रत्येक षट्कोण एक्टोप्लाज़्म में हल्का-सा धंसा होता है, प्रत्येक षट्कोण के बीच से एक सिलियम निकलता है। छोटे-छोटे स्पिंडल की आकृति के थैलानुमा

ट्राइकोसिस्ट (trichocyst) सतह से समकोण बनाते हुए कार्टेक्स में गड़े होते हैं। षट्कोण के प्रत्येक अग्र और पश्च सीमांत पर एक छोटा-सा चिन्ह ट्राइकोसिस्ट की स्थिति
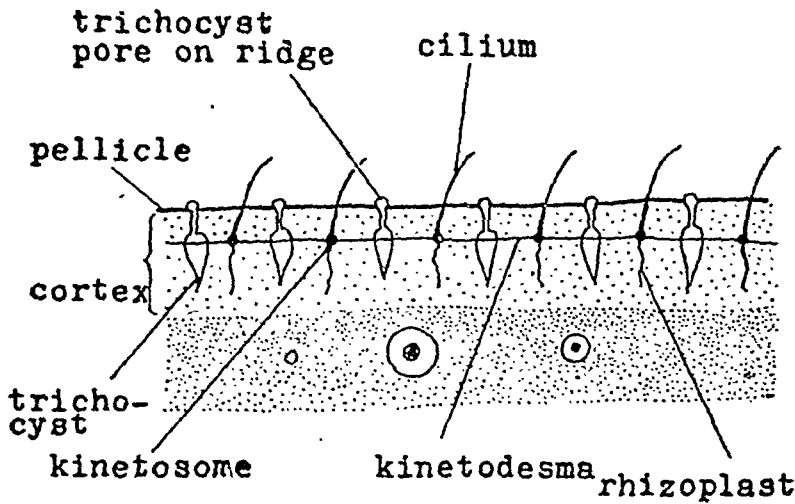
चित्र 32—पैरामीशियम के किनारे का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Trichocyst pore on ridge, कटक पर ट्राइकोसिस्ट का छिद्र; cilium, सिलियम; pellicle, पेलिकल; cortex, कार्टेक्स; *trichocyst* ट्राइकोसिस्ट; kinetosome,, काइनेटोसोम; kinetodesma, काइनेटोडेस्मा; rhizoplast, राइजोप्लास्ट।

दर्शाता है। इन ट्राइकोसिस्टों के भीतर एक अपवर्तनी (refractive) सघन द्रव भरा होता है जिसमें एक फूल सकने वाला पदार्थ होता है; इनके बाहरी सिरे पर एक शंक्वाकार शीर्ष अथवा स्पाइक (spike) होता है। ट्राइकोसिस्ट कार्टेक्स में लंबवत् (perpendicular) पड़े रहते हैं, वे पेलिकल के षट्कोणीय क्षेत्रों के कटकों पर छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा बाहर खुलते हैं। ये सिलिया के काइनेटोसोमों से निकलते हैं, फिर वहाँ से स्थानांतरित होकर कार्टेक्स में समान दूरियों पर आकर स्थित हो जाते हैं। जब जंतु क्षोभित होता है तो ये ट्राइकोसिस्ट लंबे-लंबे चिपचिपे धागों के रूप में विस्फोटित होते हैं। विस्फोटित ट्राइकोसिस्ट में एक उल्टे नाखून की आकृति का अपारदर्शी स्पाइक होता है और एक लंबा रेखित शैफ्ट होता है लेकिन बिना विस्फोटित अवस्था में शैफ्ट नहीं दिखाई पड़ता और वह शायद विस्फोट के दौरान बनता है। ट्राइकोसिस्ट के कार्य के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है, लेकिन वे किसी स्थानीय स्पर्श और आघात के कारण प्रतिक्रिया के रूप में विस्फोटित होते हैं, हो सकता है वे रक्षा अंगकों के रूप में कार्य करते हों लेकिन यह कार्य अनिश्चित है क्योंकि डाइडिनियम (*Didinium*) के प्रति, जो कि पैरामीशियम का मुख्य परभक्षी है, इनमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, हो सकता है खाने के दौरान किसी स्थल पर अपने आपको जमाए रखने में यह जंतु इनका प्रयोग करता हो। कुछ सिलिएटों में ट्राइकोसिस्ट रक्षा-अंगकों के रूप में कार्य करते हैं। विस्फोटित हो चुकने पर ट्राइकोसिस्ट शरीर से निकाल दिए जाते हैं और उनके स्थान पर काइनेटोसोमों से और नए ट्राइकोसिस्ट बन जाते हैं।

एंडोप्लाज़्म में कोशिकामुख के समीप दो केन्द्रक होते हैं—एक बड़ा दीर्घ-वृत्तज एवं कणिकीय **गुरुकेन्द्रक** (macronucleus) होता है जिसमें **ट्रोफोक्रोमैटिन** (trophochromatin) होता है और जो जंतु के पोषण संबंधी एवं वर्धी कार्यों का नियंत्रण करता है, कोशिका-विभाजन के दौरान यह अमाइटोसिस विधि से विभाजित होता है। दूसरा केन्द्रक एक छोटा, संहत **सूक्ष्मकेन्द्रक** (micronucleus) होता है जिसमें **इडियोक्रोमैटिन** (idiochromatin) होता है, कोशिका-विभाजन के दौरान यह माइटोसिस विधि से विभाजित होता है। इसमें एक नया गुरुकेन्द्रक बनाने की क्षमता भी होती है। अधिकतर प्रोटोज़ोआ में ये दोनों प्रकार के क्रोमैटिन एक ही केन्द्रक में होते हैं।

संकुचनशील रिक्तिकाएं (contractile vacuoles) संख्या में दो, और बड़ी-बड़ी एवं द्रव से भरी हुई होती हैं। इनमें से एक रिक्तिका देह के अग्र सिरे के समीप और दूसरी पिछले सिरे के समीप होती है तथा दोनों ही पृष्ठ सतह के पास होती हैं। इनकी स्थिति स्थिर होती है (**अमीबा** से भिन्न), ये कार्टेक्स और मेडुला के बीच में होती हैं लेकिन ये अस्थायी अंगक होते हैं जो बीच-बीच में विलीन होते जाते हैं। कुछ
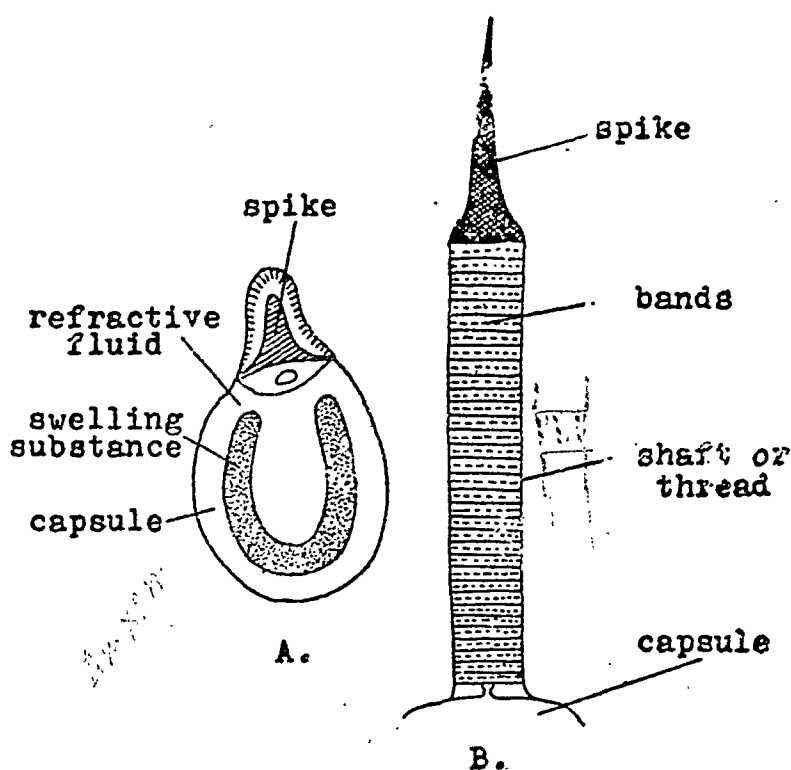
चित्र 33—A. ट्राइकोसिस्ट. B. विस्फोटित ट्राइकोसिस्ट ।
Spike, स्पाइक; bands, पट्टियां; shaft or thread, शैफ्ट अथवा सूत्र; capsule, कैप्सूल; refractive fluid, अपवर्तनी द्रव; swelling substance, फूलने वाला पदार्थ ।

जातियों में उनमें एक **अस्तरी झिल्ली** (lining membrane) होती जान पड़ती है और फिर उस स्थिति में वे सिस्टोल के दौरान पूरी तरह विलीन नहीं हो जातीं। प्रत्येक संकुचनशील रिक्तिका से जुड़ी हुई पांच से सात नली-जैसी **अरीय नलिकाएं** (radiating canals) होती हैं जिनमें से प्रत्येक में एक लंबा अंतस्थ **ऐम्पुला** (ampulla) होता है जो खाली हो जाने पर पिचक जाता है और एक छोटा **इन्जेक्टर** (injector) होता है जहां से वे द्रवों को अपने भीतर लेकर फिर उन्हें रिक्तिका में छोड़ देती हैं और इस प्रकार यह रिक्तिका पुनर्निर्मित होती और आकार में बढ़ती जाती है। जब रिक्तिका अधिकतम आकार की हो जाती है तब वह अचानक सिकुड़ जाती है (सिस्टोल) और अपने भीतर के पदार्थ को पेलिकल में बने एक स्थायी छिद्र के द्वारा बाहर निकाल देती है। उसके बाद नलिकाएं संकुचनशील रिक्तिकाओं को पुनः बना देती हैं। नलिकाएं पूरी तरह विलीन नहीं होतीं क्योंकि वे स्थायी संरचनाएं होती हैं। दोनों संकुचनशील रिक्तिकाओं में अनियमित रूप से विसर्जन होता है, पश्च रिक्तिका में अधिक तीव्रता से संकुचन होता है क्योंकि यह कोशिकाग्रसनी के समीप होती है और इसमें अधिक मात्रा में जल आता है। नलिकाओं और रिक्तिकाओं का मुख्य कार्य द्रवस्थैतिक (hydrostatic) होता है। वे
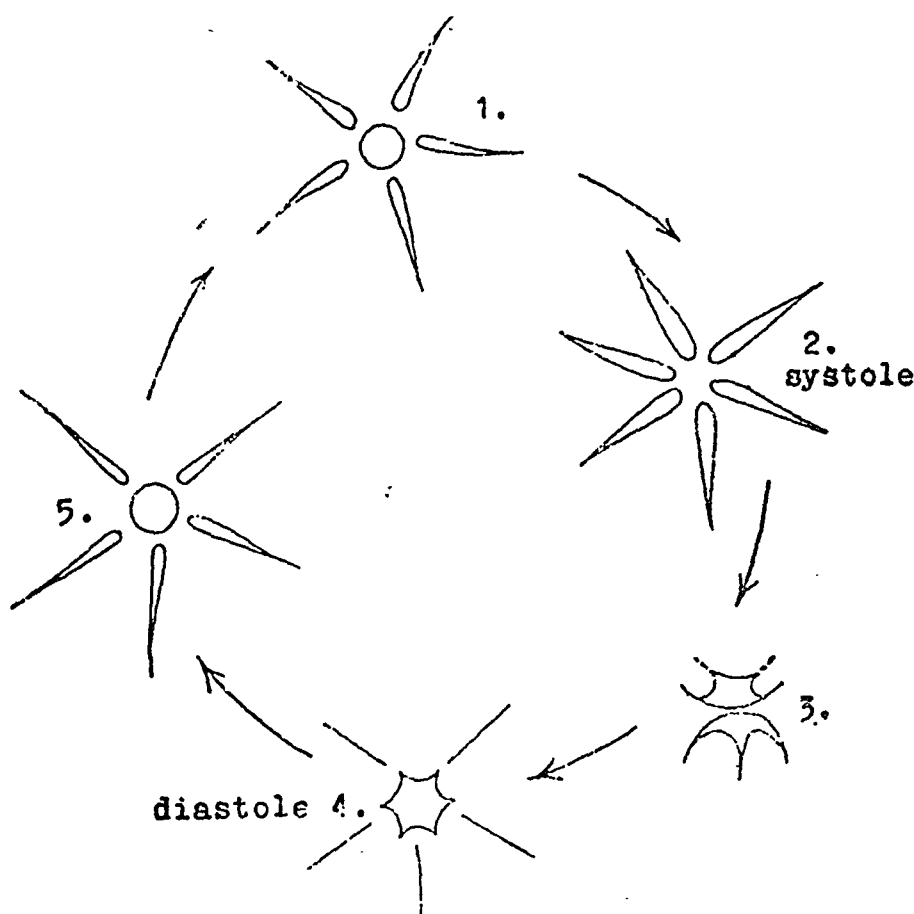
चित्र 34—संकुचनशील रिक्तिका और नलिकाएं।
Systole सिस्टोल; diastole, डायस्टोल।

प्रोटोप्लाज़्म में से आवश्यकता से अधिक जल को बाहर निकालती हैं—यह जल अंशतः अवशोषित जल होता है और अंशतः भोजन ग्रहण के दौरान प्राप्त हुआ होता है। रिक्तिकाएं शायद श्वसनी एवं उत्सर्गी भी होती हैं। नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थ ऐमोनिया यौगिक और कुछ यूरेट होते हैं जो CO_2 के साथ-साथ रिक्तिकाओं से बाहर निकाल दिये जाते हैं लेकिन ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि प्रोटोप्लाज़्म नलिकाओं तथा रिक्तिकाओं में उत्सर्गी पदार्थ का स्रवण करता हो। एक स्थिर स्थायी कोशिकागुदा (cytoproct) अथवा गुदा होती है जो कोशिकाग्रसनी के एक पार्श्व में परिमुख के पीछे स्थित होती है, बिना पचा हुआ भोजन और यूरेट इसमें से होकर बाहर निकाल दिए जाते हैं।

अधःसिलियरी तंत्र (Infraciliary system)—सिलिया काइनेटोसोमों में से निकलते हैं और प्रत्येक काइनेटोसोम में से **काइनेटोडेस्मा** (kinetodesma)
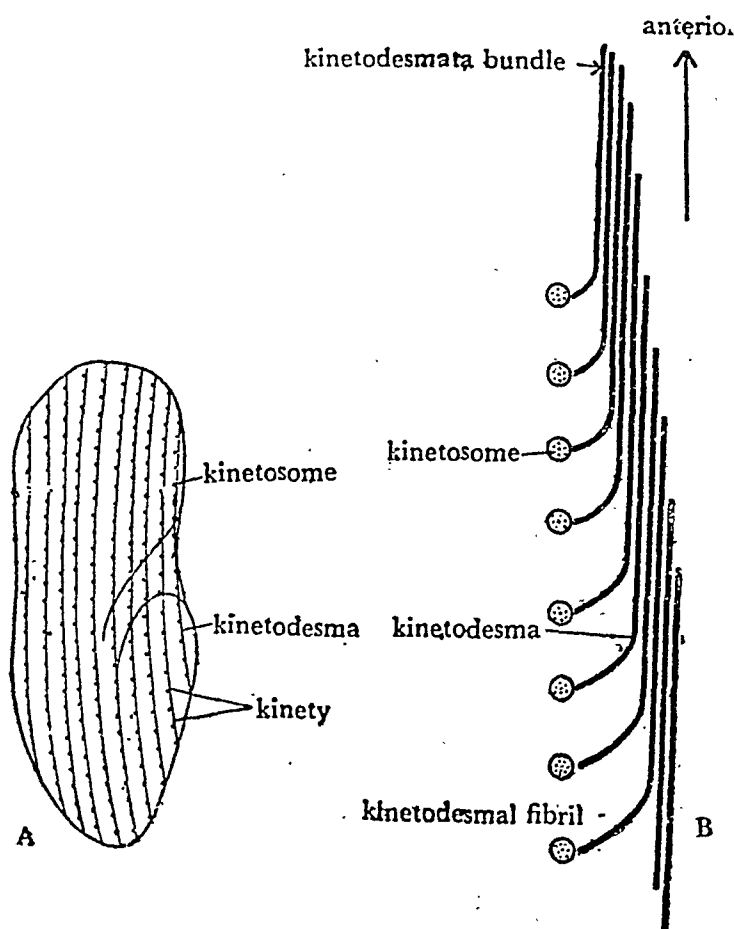
चित्र 35—A—अधःसिलियरी तंत्र। B—काइनेटोसोम और काइनेटोडेस्माओं का एक पुंज।

Kinetodesmata bundle, काइनेटोडेस्मा-पुंज; anterior, अग्र; kinetosome, काइनेटोसोम; kinetodesma, काइनेटोडेस्मा; kinety, काइनेटी; kinetodesmal fibril, काइनेटोडेस्मी तंतु।

नामक एक कोमल तंतु निकलता है। पेलिकल के नीचे और कुछ-कुछ दाहिनी ओर को स्थित किंतु एक अनुदैर्ध्य पंक्ति के तमाम काइनेटोसोमों से जुड़ा हुआ अनेक काइनेटोडेस्माओं का एक अनुदैर्ध्य पुंज बना होता है, प्रत्येक काइनेटोसोम का काइनेटोडेस्मा थोड़ी सी दूर आगे की ओर चलता हुआ काइनेटोडेस्माओं के अपने ही पुंज में जा मिलता है। एक पंक्ति के काइनेटोसोम और उनके साथ के काइनेटोडेस्मा मिलकर एक अनुदैर्ध्य इकाई बनाते हैं जिसे **काइनेटी** (kinety) कहते हैं। तमाम काइनेटी मिलकर सिलिएट-प्राणी का अधःसिलियरी तंत्र बनाते हैं। काइनेटी कार्टेक्स में पेलिकल के नीचे स्थित रहते हैं, और प्रत्येक सीलिएट-प्राणी में उनकी संख्या काफी हद तक स्थिर रहती है। अधःसिलियरी तंत्र सिलियाओं की गतियों का नियंत्रण एवं समन्वय करता है, और कोशिका-विभाजन के दौरान इसी से अंगकों का निर्माण होता है जैसे कुछ काइनेटी मुख का निर्माण करते हैं, सिलिएटों के द्विविभाजन में काइनेटी दो भागों में कट जाते हैं, एक अर्धभाग एक संतति कोशिका में और दूसरा अर्धभाग दूसरी संतति कोशिका में पहुंच जाता है, इसे **काइनेटीशः** (perkinetal) विभाजन कहते हैं।
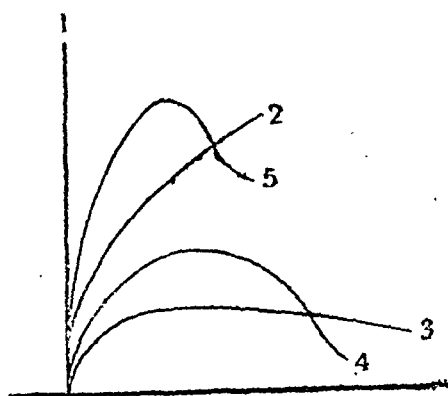
चित्र 36—सिलियरी स्पन्द; 1, 2, 3 प्रभावी चाल; 4, 5, 1 पूर्वस्थिति चाल।

चलन (Locomotion). 1. **मेटाबोली** (Metaboly)—**पैरामीशियम** की देह में लचीलापन होता है, यह एक ऐसे मार्ग में से भी अपने आपको भींचकर निकाल सकता है जो इसके अपने ही शरीर से भी संकीर्ण हो, उसमें से निकल जाने के बाद इसका शरीर पुनः अपनी सामान्य आकृति में आ जाता है। देह की आकृति में होने वाले इस अस्थायी परिवर्तन को मेटाबोली कहते हैं। यह मेटाबोली **पैरामीशियम** में उसके प्रोटोप्लाज़्म द्वारा सम्पन्न होती है। **मॉनोसिस्टिस** में यह मायोनीमों द्वारा सम्पन्न होती है। 2. **सिलियरी चलन**—सिलिया द्वारा सम्पन्न होने वाला चलन इस जंतु में चलन की मुख्य विधि है। सिलिया आगे को या पीछे को, दोनों दिशाओं में, स्पंदन कर सकते हैं जिसके कारण जंतु आगे की ओर अथवा पीछे की ओर तैर सकता है। सामान्यतः जंतु आगे की ओर तैरता है, सिलिया पीछे की ओर किंतु आड़े स्पंदन करते हैं, इसमें सिलिया कड़े होकर तेजी से पीछे की ओर मुड़ जाते हैं यहां तक कि देह की सतह से लगभग छू जाते हैं। सिलिया की इस चाल को प्रभावी चाल (effective stroke) कहा जाता है। उसके बाद

सिलिया कुछ ढीले पड़ जाते हैं और धीमी गति से अपनी पूर्व खड़ी स्थिति में आ जाते हैं, इसे पूर्वस्थिति चाल (recovery stroke) कहते हैं। एक अनुप्रस्थ पंक्ति के सिलिया एक साथ स्पंदन करते जाते हैं और एक अनुदैर्ध्य पंक्ति के सिलिया आगे से पीछे की ओर मुड़ते जाते हुए एक के बाद एक स्पंदन करते जाते हैं। सिलिया की इस समन्वित गति को **समयांतरणी ताल** (metachronal rhythm) कहते हैं जो कि अधःसिलियरी तंत्र के कारण होती है। इस गति के द्वारा जंतु आगे की ओर तैरता जाता है। लेकिन जब देह के सिलिया आड़े रूप में पीछे की ओर स्पंदन करते हैं तो उसी समय परिमुख के अधिक लंबे सिलिया अधिक ताकत से स्पंदन करते हैं जिसके कारण जंतु का अगला सिरा बाईं ओर को झुक जाता है, इस प्रकार परिमुखी और देह-सिलिया की क्रिया के द्वारा जंतु अपने लंबे अक्ष पर चक्कर खाता जाता है। यह चक्कर खाना सदैव बाईं ओर को होता है (केवल **पै० कैल्किन्साई** एक अपवाद है जो दाहिनी ओर को सर्पिल बनाता हुआ चक्कर खाता है)। आगे बढ़ने वाली गति, एक ओर झुक जाना और चक्कर खाना, ये सब मिलकर जंतु को घड़ी की सुइयों की उल्टी दिशा में चलते हुए सर्पिल मार्ग में आगे की ओर बढ़ाते जाते हैं। इस मार्ग का एक सीधा अक्ष होता है और जंतु के देह की लगातार एक ही सतह सर्पिल मार्ग के अक्ष की ओर बनी रहती है। लेकिन उल्टे पीछे की ओर तैरने में तमाम जातियां दाहिनी ओर को चक्कर खाती जाती हैं। सिलियरी स्पंदन उल्टा होने लग सकता है ताकि सिलिया आड़े आगे की ओर को गति करते हैं जिसके कारण जंतु पीछे की ओर तैरता है।
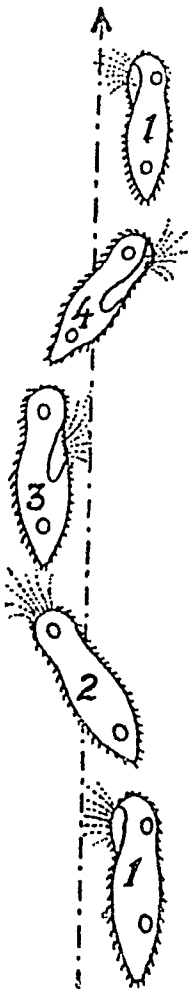
चित्र 37. पैरामीशियम का चलन

पोषण (Nutrition)—**पैरामीशियम** अपने भोजन की प्रतीक्षा नहीं करता बल्कि उसे सक्रिय रूप में ढूंढ निकालता है। यह पूर्णतः प्राणिसम-भोजी है और इसके आहार में बैक्टीरिया तथा सूक्ष्म प्रोटोज़ोआ आते हैं। ऐसा दावा किया गया है कि **पैरामीशियम** अपने खाने के बारे में पसंद-नापसंद दर्शाता है लेकिन इस धारणा का कोई आधार नहीं जान पड़ता हालांकि यह कुछ खास किस्म के बैक्टीरिया को ही अपने भीतर ले जाता है। जब यह प्रचुर आहार वाले किसी क्षेत्र में पहुंच जाता है तो चलना बंद करके वहीं रुक जाता है। यह केवल इस रुकी हुई अवस्था में ही अथवा बहुत धीमी गति से तैरते हुए ही खाता है, तेजी से तैरते हुए यह कभी नहीं खाता। परिमुख के सिलिया के स्पंदन से आहार-भरे जल का एक शंक्वाकार आवर्त बन जाता है जो अग्र सिरे के आगे बढ़ते जाने के साथ-साथ परिमुख के भीतर की ओर को धकेलता चला जाता है। तब आहार के कण वेस्टीब्यूल में पहुंच जाते हैं जहां पर कुछ आहार कण अस्वीकार कर

दिए जाते और बाहर फेंक दिए जाते हैं, लेकिन अन्य कण मुख-गुहा के भीतर पहुंच जाते हैं। कोशिकाग्रसनी के अंत में एक आहार रिक्तिका बन जाती है जिसमें आहार-कण भरते जाते हैं। क्वाड्रुलस तथा विभिन्न पेनिकुलस आहार के आहार-रिक्तिका में पहुंचते
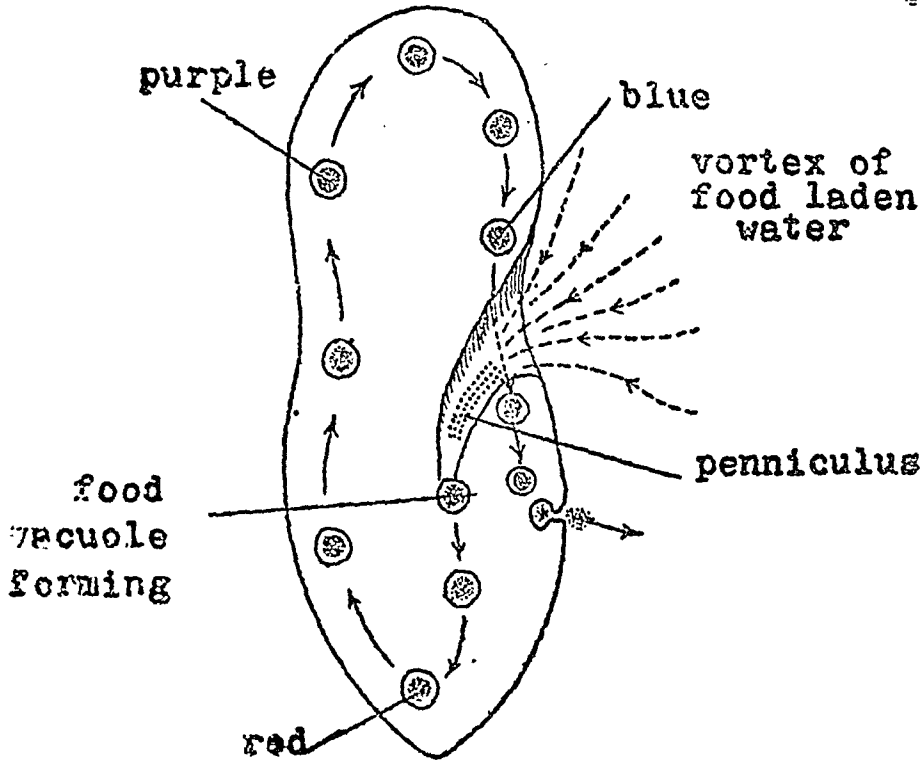
चित्र 38—साइक्लोसिस

Purple, बैंगनी; blue, नीला; vortex of food laden water, आहार से लदा आवर्त; *penniculus*, पेनिकुलस; *food vacuole forming*, बनती हुई आहार रिक्तिका; red, लाल।

जाने के मार्ग का नियंत्रण करते हैं, आहार-रिक्तिका पार्श्व में बनती जाती है। जब आहार-रिक्तिका एक विशिष्ट साइज की हो जाती है तो पश्च मुखगुहा-तंतु इस आहार-रिक्तिका को दबोच लेते हैं और वे इसे इसके निर्माण-स्थल से तोड़ लेते हैं, उसके बाद से यह रिक्तिका अपने मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। रिक्तिका में आहार के अतिरिक्त कुछ जल भी होता है। एंडोप्लाज़्म की चक्र-प्रवाह गति, जिसे साइक्लोसिस कहते हैं, के साथ-साथ आहार-रिक्तिकाएं भी एक निश्चित मार्ग में चलती जाती हैं, कार्य की दृष्टि से यह मार्ग एक पाचन पथ के तुल्य होता है। यह प्रथ कोशिकाग्रसनी के अंतिम सिरे से प्रारंभ होता है, उसके बाद पश्च दिशा में पहुंचता है, फिर सामने की ओर को मुड़कर एंडोप्लाज़्म के साथ-साथ घूमता जाता है, फिर पृष्ठ सतह पर आ जाता है, उसके बाद अग्र सिरे पर पहुंच जाता और फिर नीचे की ओर को चलता हुआ कोशिकागुदा तक पहुंच जाता है। अपनी यात्रा के आरम्भ में आहार-रिक्तिका आकार में छोटी हो जाती और फिर पुनः बड़ी हो जाती है। साइक्लोसिस के दौरान प्रोटोप्लाज़्म में से स्रवित होने वाले

एन्ज़ाइम रिक्तिकाओं में पहुंचते जाते हैं जिनके द्वारा पाचन सम्पन्न होता जाता है। पाचन में प्रोटीनों का परिवर्तन एमीनो अम्लों में, कार्बोहाइड्रेटों का घुलनशील शर्कराओं और ग्लाइकोजन में हो जाता और कदाचित् वसाओं का भी पाचन हो जाता है। आहार रिक्तिकाओं के भीतरी पदार्थ पहले अम्लीय होते हैं और उसके बाद क्षारीय, अधिकतर पाचन इस क्षारीय अवस्था में ही होता है। अनपचा पदार्थ कोशिकागुदा के द्वारा कुछ बल के साथ बाहर निकाल फेंक दिया जाता है।

साइक्लोसिस को प्रयोग द्वारा दर्शाया जा सकता है। यदि कॉन्गो रेड से रंगा दूध **पैरामीशियम** को खिलाया जाए तो आहार-रिक्तिकाओं में दूध की वसा बूंदकें पहले लाल हो जाएंगी जो कि एन्ज़ाइमों की अम्लीय प्रतिक्रिया के कारण होता है। उसके बाद वे रंग बदलती हुई बैंगनी की झलक और अंत में नीले रंग में आ जाती है जो कि क्षारीय प्रतिक्रिया के कारण होता है। रिक्तिकाओं से साइक्लोसिस का मार्ग दिखाई दे जाता है।

जनन (Reproduction)—जीवन-चक्र में वृद्धि अवस्थाओं और द्विविभजन का एकांतर क्रम बना रहता है। यह द्विविभजन ही जनन की मुख्य विधि है। समय-समय के बाद संयुग्मन (कॉन्जुगेशन), ऑटोगेमी, तथा साइटोगेमी की विचित्र लैंगिक प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं।

द्विविभजन (Binary fission)—**पैरामीशियम** आहार करना बंद कर देता है, देह लंबा हो जाता है और उसकी मुख-खांच विलीन हो जाती है। सूक्ष्मकेन्द्रक अपने स्थान से हट जाता, उसमें एक स्पिंडल बन जाती तथा उसमें एक लंबे प्रकार का माइटोसिस होता है जिसमें केन्द्रक झिल्ली टूट नहीं जाती है, यह केन्द्रक दो सूक्ष्मकेन्द्रकों में विभाजित हो जाता है। गुरुकेन्द्रक हटकर अलग हो जाता है और लंबा होता है, और उसके बाद यह अमाइटोसिस (amitosis) विधि द्वारा अनुप्रस्थ रूप में संकीर्ण होकर दो भागों में बंट जाता है; चूंकि यह अमाइटोसिस प्रकार से विभाजित होता है इसलिए इसके क्रोमोसोम बराबर संख्या में नहीं पहुंच पाते बरन् यों ही बेहिसाब संतति कोशिकाओं में वितरित हो जाते हैं। काइनेटोसोमों में आनुवंशिक अविच्छिनता बनी रहती है, वे विभाजन द्वारा जनन करते हैं तथा उनसे अन्य अंगकों का भी निर्माण होता है। प्रत्येक अर्धांश में एक विशिष्ट काइनेटी से नई मुख खांच बन जाती है। वेस्टीब्यूल, मुख गुहा और उसके अवयवों का बना हुआ मुख-उपकरण जंतु के अगले अर्धांश में कायम बना रहता है, इस अगले अर्धांश को **अग्रक** (अथवा प्रोटर, proter) कहते हैं। पिछले अर्धांश में, जिसे **पश्चक** (ओपिस्थे, opistho) कहते हैं, एक नया मुख उपकरण बन जाता है। काइनेटोसोमों से एक नई संकुचनशील रिक्तिका अग्र सिरे पर और एक दूसरी रिक्तिका मध्य रेखा के पीछे बन जाती है। कोशिका के मध्य में एक संकीर्णन उत्पन्न होता है जो गहरा होता जाता है और जंतु को अनुप्रस्थ रूप में दो **संतति कोशिकाओं** में विभाजित कर देता है। काइनेटी भी आधे-आधे भागों में कट जाते हैं, जिससे कि द्विविभजन काइनेटीशः होता है। अग्रक और पश्चक में वृद्धि होती जाती है और उनकी आकृति बदलकर अपने जनक के समान हो जाती है। द्विविभजन लगभग 30 मिनट में पूरा हो जाता है और हर 24 घंटे में दो या तीन बार दोहराया जाता है। द्विविभजन अच्छी तरह

खाए-पिए पैरामीशियमों में ही होता है, उनका जो वंशज क्रम उत्पन्न होता है उसे **क्लोन**
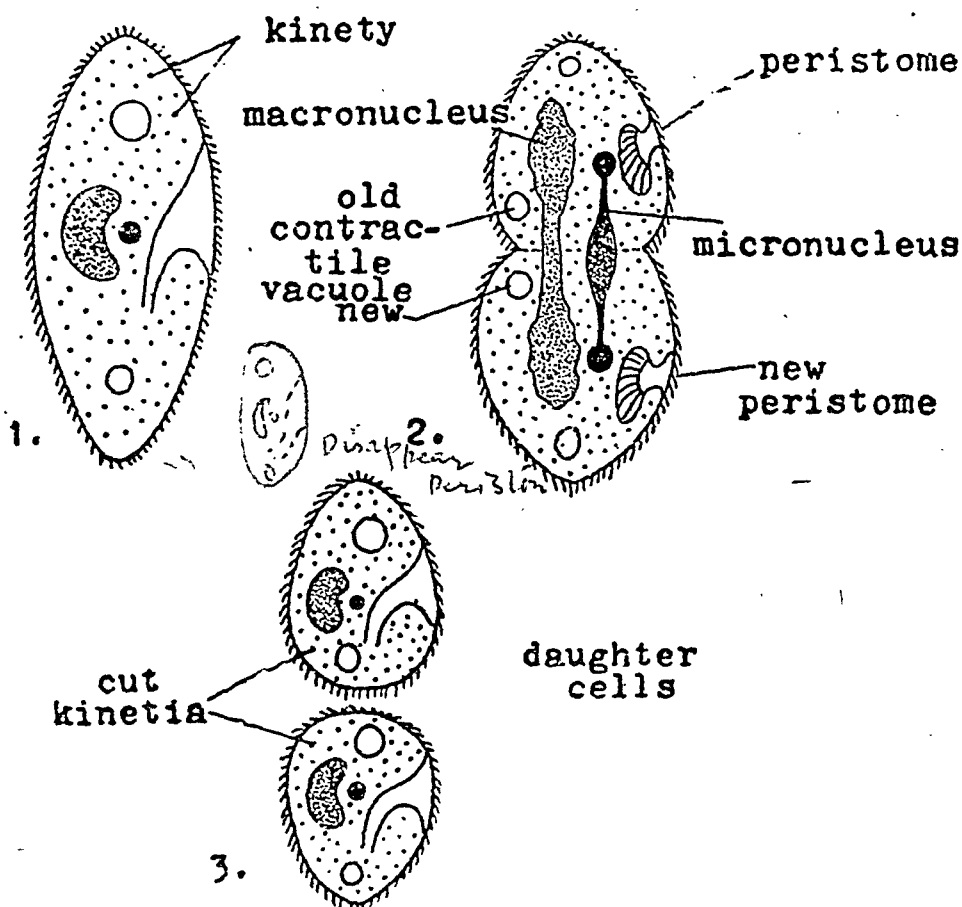
चित्र 39—द्विविभजन।

Kinety, काइनेटी; micronucleus, सूक्ष्मकेन्द्रक; macronucleus, गुरु-केन्द्रक; peristome, परिमुख; old contractile vacuole पुरानी संकुचनशील रिक्तिका; new peristome, नया परिमुख; cut kinetia कटे हुए काइनेटी; daughter cells, संतति कोशिकाएं।

(clone) कहते हैं। लेकिन कुछ समय बाद द्विविभजन मंद पड़ जाता और अंततः रुक जाता है। ऐसा होने के परिणामस्वरूप क्लोन का अंत हो जाता है।

संयुग्मन (Conjugation)—क्लोन का तभी अंत होता है जबकि उसमें केन्द्रकीय पुनर्गठन नहीं हो पाता। लेकिन केन्द्रकीय पुनर्व्यवस्था के द्वारा इसमें वही पहले जैसी शक्ति आकर इसका काया-कल्प हो सकता है। यह केन्द्रकीय पुनर्गठन संयुग्मन द्वारा सम्पन्न होता है और इस प्रकार द्विविभजन जारी रह सकने के लिए संयुग्मन अनिवार्य है। संयुग्मन एक ही जाति के दो प्राणियों के बीच होने वाला एक अस्थायी जुड़ना है जिसमें केवल केन्द्रकीय पदार्थ का एक आदान-प्रदान होता है। संयुग्मन के लिए निम्नलिखित परिस्थितियां आवश्यक हैं—(1) लगभग 300 अलैंगिक पीढ़ियों तक

द्विविभजन होने के वाद संयुग्मन होता है, अथवा मरणासन्न क्लोन को नवजीवन देने के लिए लंबी-लंबी अवधि के वाद द्विविभजन के साथ एकांतर क्रम में आता है; (2) संयुग्मन तव होता है जब पैरामीशियमों की शरीर-क्रिया की दशा में कोई परिवर्तन आ जाता है, तव यह ऐसे दो प्राणियों के वीच सम्पन्न होता है जो साइज में कुछ छोटे होते हैं और वे एक ऐसी अवस्था में होते हैं जिसे अस्वास्थ्यकर वृद्धावस्था कहा जा सकता है, यदि संयुग्मन नहीं होने दिया जाए तो इस अवस्था के पैरामीशियम मर जाते हैं; (3) ऐसी अनेक जातियां है जिनमें द्विविभजन अनिश्चित काल तक चलता रह सकता है और संयुग्मन आवश्यक नहीं है, पैरामीशियम की कुछ विशिष्ट जातियों में ही संयुग्मन होता है और अन्य जातियों में नहीं होता, उदाहरणत: **पैरामीशियम कॉडेटम** में संयुग्मन होता है जिसमें "लैंगिक दृष्टि से" भिन्न पांच "सिन्जेन (syngen)" अथवा "किस्में" पाई जाती हैं जो देखने में तो एक सी दिखाई पड़ती हैं लेकिन शरीर-क्रिया की दृष्टि से अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक किस्म में सामान्यत: दो **मैथुनी प्रकार** (mating types) होते हैं। **पैरामीशियम औरीलिया** में आठ किस्में होती हैं, और हर किस्म में दो-दो मैथुनी प्रकार होते हैं। उन पैरामीशियमों में संयुग्मन कभी नहीं होगा जिनके सदस्य एक ही मैथुनी प्रकार के हों, और न ही अन्य किस्मों के सदस्यों के साथ होगा—यह सदा एक ही किस्म के दूसरे मैथुनी प्रकार के साथ होता है।

1. संयुग्मन में एक ही किस्म के विपरीत मैथुनी प्रकारों के दो **पैरामीशियम** कॉडेटम अपनी अधर सतहों के सहारे एक साथ आ जाते हैं, उनके सिलिया देह की सतह पर एक पदार्थ वनाते हैं जिसके कारण दो संयुग्मनशील पैरामीशियम परस्पर चिपक जाते हैं। चिपकने वाली सतह पर उन दोनों के पेलिकल और एक्टोप्लाज्म विघटित हो जाते हैं और दोनों जंतुओं के वीच एक **एंडोप्लाज्मी सेतु** (endoplasmic bridge) वन जाता है। 2. प्रत्येक संयुग्मी (conjugant) का सूक्ष्मकेन्द्रक वहुत ज्यादा वड़ा हो जाता और पृथक् आ जाता है, यह माइटोसिस विधि द्वारा दो में विभाजित हो जाता है, गुरुकेन्द्रक विघटित होने लगता है, उसका गठन ढीला पड़ जाता है और एक सम्मिश्र ऐंठा हुआ धागा या स्काइन वन जाता है, संयुग्मन के वाद के आधे काल के दौरान यह प्रोटोप्लाज्म में जज्ब होकर अंतत: विलीन हो जाएगा। 3. विना किसी विरामावस्था के ये दो सूक्ष्मकेन्द्रक दुवारा विभाजित होकर प्रत्येक प्राणी में चार-चार सूक्ष्म केन्द्रक वना देते हैं, केन्द्रकों के इन विभाजनों में क्रोमोसोमों की संख्या आधी अथवा अगुणित (haploid) हो जाती है; प्रत्येक प्राणी में इनमें से तीन सूक्ष्मकेन्द्रक नष्ट हो जाते हैं जिससे कि केवल एक वाकी वचा रह जाता है (4)। 5. प्रत्येक संयुग्मी का वचा हुआ सूक्ष्मकेन्द्रक दो असमान भागों अथवा युग्मकी केन्द्रकों में विभाजित हो जाता है जिससे एक वड़ा स्थिर सूक्ष्मकेन्द्रक (stationary micronucleus) अथवा **मादा प्राक्केन्द्रक** (female pronucleus) और एक छोटा सक्रिय प्रवासी सूक्ष्मकेन्द्रक (migratory micronucleus) अथवा **नर प्राक्केन्द्रक** (male pronucleus) वन जाते हैं। प्रवासी सूक्ष्मकेन्द्रक एंडोप्लाज्मी सेतु पर होकर दूसरे प्राणी में चला जाता है और उस दूसरे संयुग्मी के स्थिर सूक्ष्मकेन्द्रक

के साथ समेकित होकर एक **संकेन्द्रक** अथवा **सिनकरियॉन** (synkaryon) या संयुग्मन केन्द्रक बनाता है जिसमें क्रोमोसोमों की द्विगुणित संख्या पुनः स्थापित हो जाती है और साथ ही साथ वंशागति पदार्थ का आदान-प्रदान भी हो चुका होता है। (6)। इस प्रक्रिया की तुलना उच्चतर जंतुओं में होने वाले निषेचन (fertilization) से की गई है, लेकिन यह निषेचन नहीं है क्योंकि इसमें युग्मकों का हाथ नहीं होता। 7. संयुग्मी अब एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और उन्हें **विसंयुग्मी** (exconjugants) कहते हैं। 7-9 संकेन्द्रक में तीन बार विभाजन होकर प्रत्येक विसंयुग्मी में आठ-आठ सूक्ष्मकेन्द्रक बन जाते हैं। 9. आठ में से चार सूक्ष्मकेन्द्रक आकार में बढ़कर
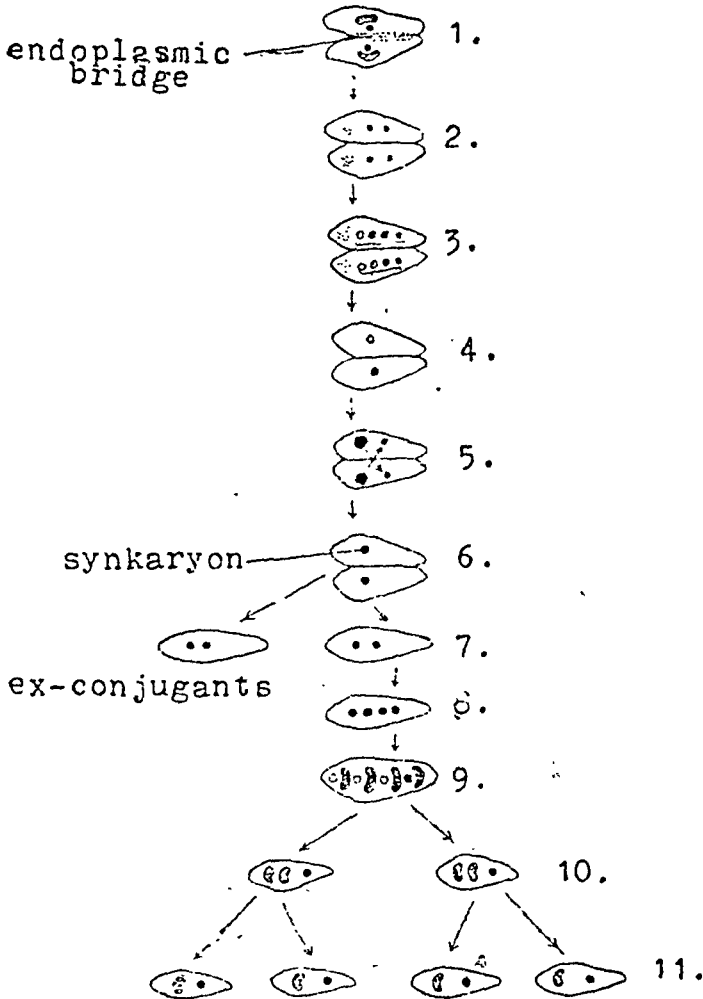
चित्र 40—**पै० कॉडेटम** की संयुग्मन अवस्थाएं।

Endoplasmic bridge, एंडोप्लाज्मी सेतु; synkaryon, संकेन्द्रक; exconjugants, विसंयुग्मी।

गुरुकेन्द्रक बन जाते हैं, और शेष चार सूक्ष्मकेन्द्रकों में से तीन विलीन हो जाते हैं। 10. शेष बच रहे सूक्ष्मकेन्द्रक में विभाजन होता है और उसके साथ ही साथ विसंयुग्मी द्विविभाजन द्वारा दो कोशिकाओं में बँट जाता है जिनमें से प्रत्येक में दो-दो गुरुकेन्द्रक और एक-एक सूक्ष्मकेन्द्रक होते हैं। 11. कोशिकाओं और उनके सूक्ष्मकेन्द्रकों में एक बार फिर से विभाजन होता है और इस प्रकार प्रत्येक विसंयुग्मी से चार पैरामीशियम बन जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक-एक गुरुकेन्द्रक और एक-एक सूक्ष्मकेन्द्रक होते हैं। नया गुरुकेन्द्रक और साथ ही साथ नया सूक्ष्मकेन्द्रक, इस प्रकार ये दोनों ही नये पदार्थ के बने होते हैं। इन नए केन्द्रकों में शायद नई और भिन्न क्षमता आ जाती है जो कि स्वस्थ प्राणियों के रूप में झलकती है।

संयुग्मन का महत्त्व—(1) संयुग्मन एक नवस्फूर्तिदायी और पुनर्गठन प्रक्रिया के रूप में है जिसके द्वारा उस प्रजाति को पुनः शक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि लंबे अरसे तक संयुग्मन नहीं होता तो पैरामीशियम दुर्बल हो जाते और मर जाते हैं। (वुडरफ का यह दावा कि उसने 22,000 पीढ़ियों तक बिना संयुग्मन हुए पैरामीशियमों को स्वस्थ बनाए रखा, सोनेबोर्न ने गलत साबित कर दिया है, क्योंकि उसने यह सिद्ध कर दिया कि वुडरफ के तमाम पैरामीशियम एक ही मैथुनी प्रकार के सदस्य थे।) (2) संयुग्मियों
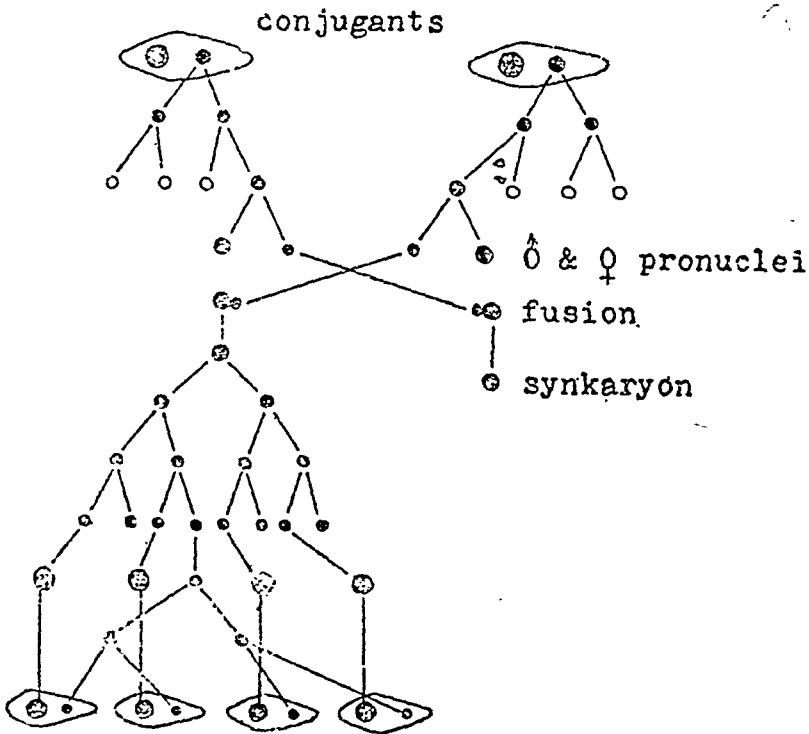
चित्र 41—पै० काडटेम में संयुग्मन।

Conjugants, संयुग्मी; pronuclei, प्राक्केन्द्रक; fusion, समेकन; synkaryor, संकेन्द्रक।

में लिंग का कोई भेद नहीं पाया जाता हालांकि संयुग्मन एक ही किस्म के दो अलग-अलग मैथुन प्रकारों में ही सम्पन्न हो सकता है। (3) लिंग का कोई अंतर न होते हुए भी सक्रिय प्रवासी सूक्ष्मकेन्द्रक को नर और स्थिर सूक्ष्मकेन्द्रक को मादा माना जाता है। (4) संयुग्मन केवल एक अस्थायी जुड़ जाना है, इसमें साइटोप्लाज्म का कोई समेकन नहीं होता और न ही कोई युग्मनज (zygote) ही बनता है, लेकिन प्रत्येक विसंयुग्मी के केन्द्रक में दो संयुग्मनशील प्राणियों का वंशागति पदार्थ होता है। (5) संयुग्मन के द्वारा संकेन्द्रक के पदार्थ से गुरुकेन्द्रक की प्रतिस्थापना हो जाती है, इस घटना का एक आधारभूत महत्त्व है। द्विविभजन के दौरान गुरुकेन्द्रक के क्रोमोसोम संतति कोशिकाओं में यों ही बेतरतीब वितरित हो गए थे, और जारी रहने वाले द्विविभजन ने कुछ संरचनात्मक अपसामान्यताएं बन जाने के साथ-साथ क्लोन को दुर्बल बना दिया था। संयुग्मन के द्वारा गुरुकेन्द्रक के क्रोमोसोमों की संख्या ठीक-ठीक स्थापित हो जाती है जिसके प्रभावस्वरूप प्रजाति में फिर से नई शक्ति आ जाती है। सूक्ष्मकेन्द्रक का कार्य एक संतुलित क्रोमोसोम एवं जीन सम्मिश्र को फिर से स्थापित कर देना है।
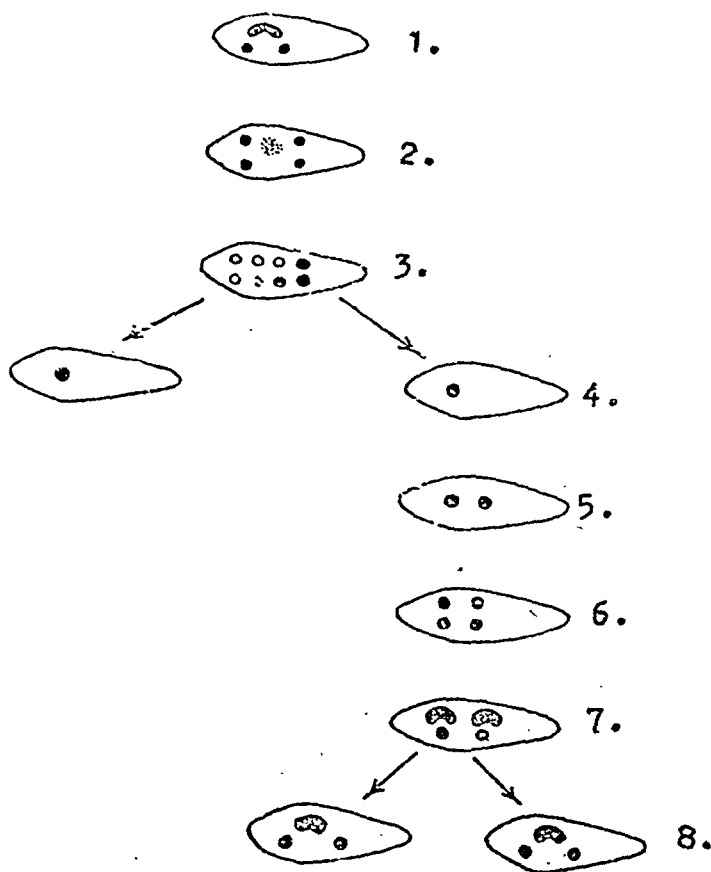
चित्र 42—पै० औरीलिया में एंडोमिक्सिस।

जनन में विपथी व्यवहार—द्विविभजन और संयुग्मन के दौरान पैरामीशियम के केन्द्रकीय व्यवहार में कुछ विभेद देखने को मिलते हैं। ये विचलन हैं एंडोमिक्सिस,

ऑटोगेमी, साइटोगेमी, तथा हेमिक्सिस। तीन पहली प्रक्रियाओं में आनुवंशिक पुनस्संयोजन होता है और सूक्ष्मकेन्द्रक से एक नया गुरुकेन्द्रक वन जाता है।

एंडोमिक्सिस (Endomixis)—एंडोमिक्सिस संयुग्मन के समान है बस अंतर इतना है कि यह अकेले एक ही प्राणी में सम्पन्न होता है। यह **पै० औरीलिया** में होता हुआ देखा गया है। 1. **पै० औरीलिया** में एक गुरुकेन्द्रक और दो सूक्ष्मकेन्द्रक होते हैं। एंडोमिक्सिस होने में गुरुकेन्द्रक का विघटन हो जाता है और सूक्ष्मकेन्द्रक में दो वार विभाजन होकर आठ सूक्ष्मकेन्द्रक वन जाते हैं। 3. छह सूक्ष्मकेन्द्रक विघटित हो जाते और दो शेष रह जाते हैं। [illegible] जंतु दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है जिनमें से प्रत्येक में एक-एक सूक्ष्मकेन्द्रक पहुंच जाता है। 5. प्रत्येक कोशिका के सूक्ष्मकेन्द्रक में दो वार विभाजन होकर सूक्ष्मकेन्द्रक वन जाते हैं। [illegible] दो सूक्ष्मकेन्द्रक वड़े होकर गुरुकेन्द्रक वन जाते हैं। [illegible] जंतु और उसके सूक्ष्मकेन्द्रक इस प्रकार विभाजित हो जाते हैं कि उससे वनने वाली दो कोशिकाओं में से प्रत्येक में एक गुरुकेन्द्रक और दो सूक्ष्मकेन्द्रक वन जाते हैं। एंडोमिक्सिस **पै० औरीलिया** की उस किस्म में होता है जिसमें संयुग्मन नहीं होता; इसलिए हो सकता है कि एंडोमिक्सिस का भी वही प्रभाव होता हो जो संयुग्मन का होता है क्योंकि इन दोनों ही में गुरुकेन्द्रक का प्रतिस्थापन सूक्ष्मकेन्द्रक से प्राप्त होनेवाले पदार्थ द्वारा होता है और दोनों प्रक्रमों से प्रजाति की शक्ति का पुनर्विकास हो जाता है। लेकिन इन दोनों में अंतर भी है क्योंकि एंडोमिक्सिस में प्राक्केन्द्रकों का समेकन नहीं होता। एंडोमिक्सिस की अनिषेकजनन (parthenogenesis) से तुलना की जा सकती है। फिर भी कुछ अध्येताओं ने काफी तर्क के साथ यह दावा किया है कि एंडोमिक्सिस सचमुच में नहीं होता और त्रुटिपूर्ण प्रेक्षणों के कारण ही इसका वर्णन किया गया है। ऐसी पूरी संभावना है कि एंडोमिक्सिस नहीं होता और यह केवल एक विशेष प्रकार की ऑटोगेमी ही है।

ऑटोगेमी (Autogamy)—जव किसी प्रोटोजोअन का केन्द्रक दो केन्द्रकों में विभाजित हो जाता है और उन दोनों में पुनः समेकन हो जाता हो, तो उसे **ऑटोमिक्सिस** (automixis) कहते हैं। यदि समेकन होने वाले दोनों केन्द्रक एक ही कोशिका में हों उस ऑटोमिक्सिस को ऑटोगेमी कहा जाता है। ऑटोगेमी एक केन्द्रकीय पुनर्गठन है और वार-वार होने वाले द्विविभजन पर इसका वही प्रभाव पड़ता है जो संयुग्मन का। ऑटोगेमी **पै० औरीलिया** के उन क्लोनों में होता है जिनमें संयुग्मन नहीं होता। 1-2. गुरुकेन्द्रक विघटित हो जाता है और दो सूक्ष्मकेन्द्रक दो वार विभाजित होकर आठ सूक्ष्मकेन्द्रक वनाते हैं, जिनमें से छह विघटित हो जाते हैं। 3. शेष दो सूक्ष्मकेन्द्रकों में क्रोमोसोमों की अगुणित संख्या होती है, वे परस्पर समेकित होकर एक संकेन्द्रक वनाते हैं। 4. संकेन्द्रक में दो वार विभाजन होकर चार सूक्ष्मकेन्द्रक वन जाते हैं। 5. दो सूक्ष्मकेन्द्रक परिवर्तित होकर गुरुकेन्द्रक वन जाते हैं। 6. जंतु और उसके सूक्ष्मकेन्द्रक विभाजित होकर दो संतति कोशिकाएं वनाते हैं जिनमें से प्रत्येक मे एक गुरुकेन्द्रक और दो सूक्ष्मकेन्द्रक होते हैं। ऑटोगेमी के द्वारा प्रजाति में नवस्फूर्ति आ जाती है, यह इस वात में भी संयुग्मन के समान है कि नए गुरुकेन्द्रक का निर्माण

सूक्ष्मकेन्द्रक के पदार्थ से होता है। नये गुरुकेन्द्रक में पुन: क्रोमोसोमों की सही संख्या स्थापित हो जानी है। साथ ही ये दोनों इस बात में भी समान हैं कि इनमें दो प्राक्केन्द्रकों का
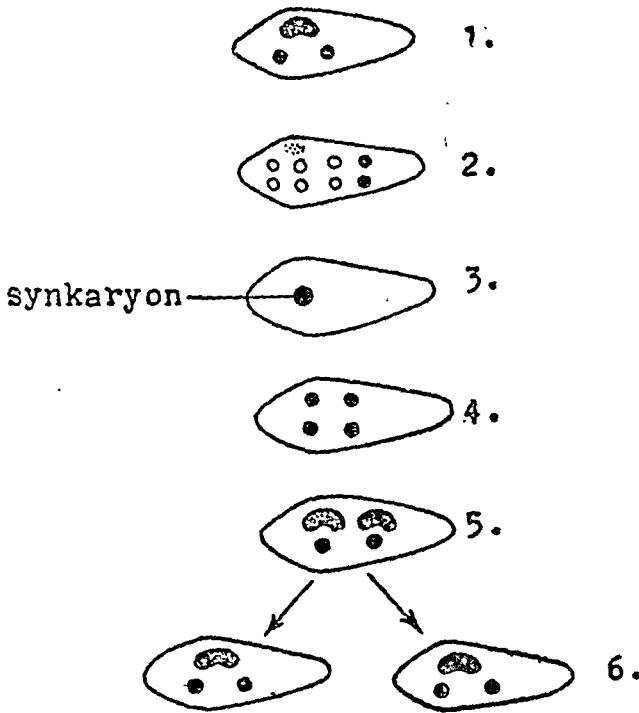
चित्र 43. पैं० औरीलिया में ऑटोगेमी । Synkaryon संकेन्द्रक ।

समेकन एक ही प्राणी में होता है किन्तु संयुग्मन से ऑटोगेमी इस बात में भिन्न है कि ऑटोगेमी में एक ही प्राणी में सब कुछ होता है, और दोनों प्राक्केन्द्रक इसी से प्राप्त होते हैं, यह एक प्रकार का स्वनिषेचन (self-fertilization) है।

साइटोगेमी (Cytogamy)—1. दो **पैरामीशियम कॉडेटम** अपनी अधर सतहों के सहारे साथ-साथ आ जाते हैं, लेकिन इन दोनों जंतुओं के पेलिकल टूटते नहीं और समूचे बने रहते हैं। 2. प्रत्येक कोशिका का सूक्ष्मकेन्द्रक तीन बार विभाजित होकर आठ सूक्ष्मकेन्द्रक बनाता है, जिनमें से प्रत्येक प्राणी में छह विघटित हो जाते हैं। 3. शेष दो सूक्ष्मकेन्द्रक प्रत्येक कोशिका में समेकित होकर एक-एक संकेन्द्रक बना लेते हैं। 4. उसके बाद जंतु पृथक् हो जाते हैं।

साइटोगेमी और ऑटोगेमी में यह अंतर है कि साइटोगेमी में दो जंतु एक दूसरे के सम्पर्क में बने रहते हैं, लेकिन यह ऑटोगेमी और संयुग्मन से इस बात में मिलते जुलते हैं कि इसमें भी दो प्राक्केन्द्रकों का समेकन होता है। साइटोगेमी संयुग्मन से इस बात में भिन्न है कि इसमें परस्पर साथ-साथ आने वाले दो जंतुओं के बीच कोई केन्द्रकीय आदान-प्रदान नहीं होता।

हेमिक्सिस (Hemixis)—यह **पै० कौडेटम** और **पै० ऑरीलिया** में होता है। गुरुकेन्द्रक विभाजित हो जाता है जिससे कि कुछ काल के लिए एक ही जंतु
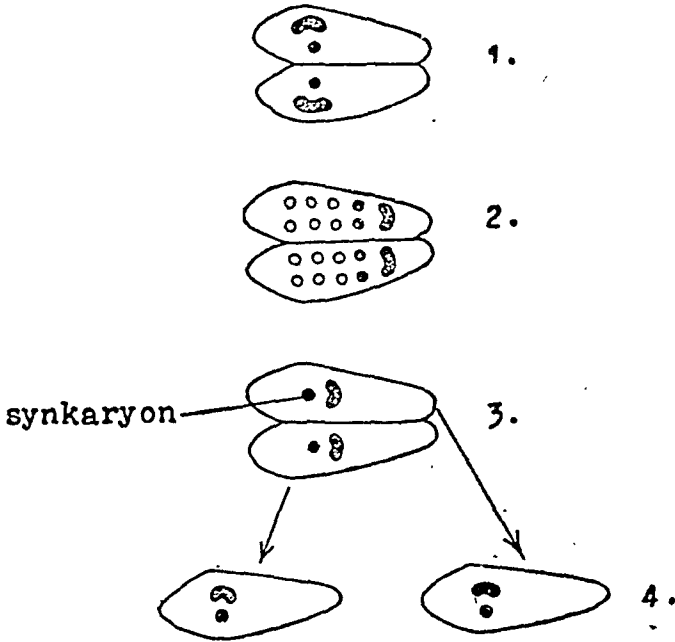
चित्र 44. **पै० कौडेटम** में साइटोगेमी। Synkaryon, संकेन्द्रक।

में दो गुरुकेन्द्रक बन जाते हैं। या फिर यह हो सकता है कि गुरुकेन्द्रक में से पदार्थ के पिंड कोशिका में निकलते जाते हैं जो कि साइटोप्लाज्म में घुल जाते हैं। जैसा भी हो, दोनों स्थितियों में कुछ समय के बाद केवल एक ही गुरुकेन्द्रक शेष रह जाता है।

संयुग्मन और ऑटोगेमी में गुरुकेन्द्रक का निर्माण सूक्ष्मकेन्द्रक में होता है, लेकिन हेमिक्सिस में गुरुकेन्द्रक के पुनर्गठन का यही परिणाम बिना सूक्ष्मकेन्द्रक को बीच में लिये स्वयं गुरुकेन्द्रक द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है। साथ ही इस प्रक्रम का कोशिका विभाजन से कोई संबंध नहीं होता। इसका महत्त्व निश्चित रूप में मालूम नहीं है।

संवर्धन (Culture)—किसी तालाब में से जल में डूबी हुई घास-पात ले लीजिए और उसे आसुत जल के एक जार में रख दीजिए। जार को ऊपर से ढककर उसे सड़ने के लिए छोड़ दीजिए। कुछ ही दिनों में पैरामीशियमों के दल के दल प्रकट हो जाएंगे। अब सूखी घास को पानी में उबालिए, फॉन्ट (इन्फ्यूज़न) को नितारिए और उसमें गेहूं के कुछ दाने डाल दीजिए और उसे तब तक इसी तरह खड़ा रहने दीजिए जब तक कि उसमें बैक्टीरिया बन जाने के कारण धुंधलापन नहीं आ जाता। अब पहले जार में से पैरामीशियमों को इस तरल में पहुंचाइए जहां वे तेजी से वंश-वृद्धि करते जाएंगे। मात्र घास के फॉन्टों से भी पैरामीशियम उत्पन्न हो सकते हैं जिससे सिस्टों का मौजूद होना दर्शाया जाता है, और बालू के कणों के समान पुटियों का वर्णन किया भी

गया है, लेकिन पैरामीशियमों में पुटी बनती हैं इसका कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि इनके होने की कभी भी पुष्टि नहीं की गई है।

6. वॉर्टिसेला कैम्पेनुला (*Vorticella campanula*)

वॉर्टिसेला उपफ़ाइलम सिलियोफ़ोरा के अंतर्गत आता है। इसकी 200 से अधिक जातियां हैं जिनमें से अधिकतर उन अलवणजलीय तालाबों में पाई जाती हैं जो खनिजों से सम्पन्न हों लेकिन जिनमें पूतीभवन (putrefaction) नहीं हो रहा हो। कुछ जातियाँ समुद्र में पाई जाती हैं, कुछ अधिजंतुकी (epizoic) होती हैं, और कुछ अपने परपोषियों के भीतर पायी जाती हैं। सबसे आम मिलने वाली जाति **वॉर्टिसेला कैम्पेनुला** (*Vorticella campanula*) है लेकिन **वॉ० पिक्टा** (*V. picta*) **वॉ० मोनिलेटा** (*V. monilata*) तथा **वॉ० माइक्रोस्टोमा** (*V. microstoma*) भी काफी आम मिलती हैं। वॉर्टिसेला एकाकी होता है किंतु प्रायः सामाजिक होता है क्योंकि अनेक प्राणी एक साथ रहते पाये गये हैं। यह एक लंबे वृंत के द्वारा किसी जलीय पौधे पर चिपका रहता है। वयस्कों में देह के सिलिया समाप्त हो जाते हैं, मुख सिलिय
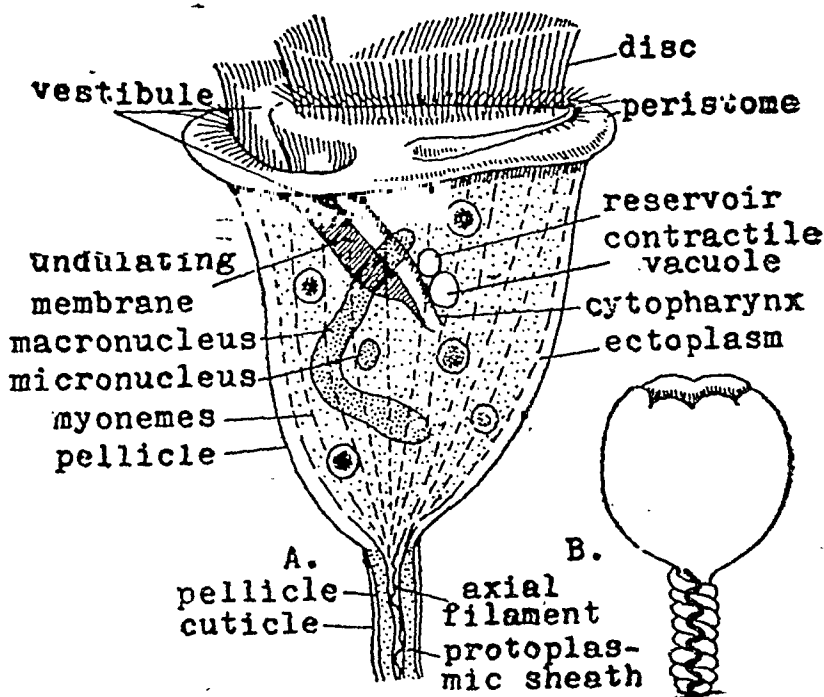
चित्र 45. A. वॉर्टिसेला कैम्पेनुला । B. संकुचित

Vestibule, वेस्टिब्यूल; disc, डिस्क; peristome, परिमुख; reservoir आगार; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; cytopharynx, कोशिकाग्रसनी; ectoplasm, एक्टोप्लाज़्म; undulating membrane, तरंगित झिल्ली; macronucleus, गुरुकेन्द्रक; micronucleus, सूक्ष्मकेन्द्रक; myonemes, मायोनीम; pellicle, पेलिकल; cuticle, क्यूटिकल; axial filament, अक्ष-सूत्र; protoplasmic sheath, प्रोटोप्लाज़्मी आवरण।

घड़ी की सुइयों की विपरीत दिशा में घूमते जाते हैं। देह एक सफेद उल्टी घंटी के रूप में होता है जिसका एक मोटा सीमांत अथवा **परिमुख** (peristome) होता है। घंटी का मुख एक उभरी हुई गोल **डिस्क** (disc) से बंद हुआ रहता है। परिमुख और डिस्क के बीच में एक स्थायी खुली गहरी जगह बाईं ओर बनी होती है जिसे **वेस्टिब्यूल** (vestibule) अथवा **इंफंडिबुलम** (infundibulum) कहते हैं। वेस्टिब्यूल से निकलकर एक संकरी कोशिकाग्रसनी भीतर की ओर चलती है, कोशिकाग्रसनी में कोई सिलिया नहीं होते और यह एंडोप्लाज़्म में खुलती है। वेस्टिब्यूल और कोशिकाग्रसनी के बीच एक **कोशिकामुख** (cytostome) होता है जो खुल सकता और बंद हो सकता है। डिस्क परिमुख के ऊपर की ओर को उभर सकती है या वह भीतर सिकोड़ी जा सकती है और वैसा होने पर परिमुख संकुचित होकर उसको ऊपर से ढक ले सकता है। डिस्क के ऊपर सिलिया के दो वृत्त होते हैं जो एक-दूसरे के बहुत निकट होकर एक दोहरी पंक्ति बना लेते हैं। सिलिया का एक तीसरा वृत्त परिमुख पर होता है। सिलिया का प्रत्येक वृत्त पूरा वलय बनाकर और भी आगे निकल जाता है और इस प्रकार एक अतिव्याप्ति प्रकट होती है। तमाम सिलिया वामावर्त्त (anticlockwise) रूप में व्यवस्थित होते हैं, उनके आधार जुड़े होते हैं किंतु सिरे मुक्त होते हैं। डिस्क के सीमांत पर सिलिया के वृत्त घूम जाते हैं और वामावर्त्त दिशा में वेस्टिब्यूल में को जारी रहते हैं। वेस्टिब्यूल में बाहरी वृत्त के सिलिया लंबे हो जाते और परस्पर समेकित
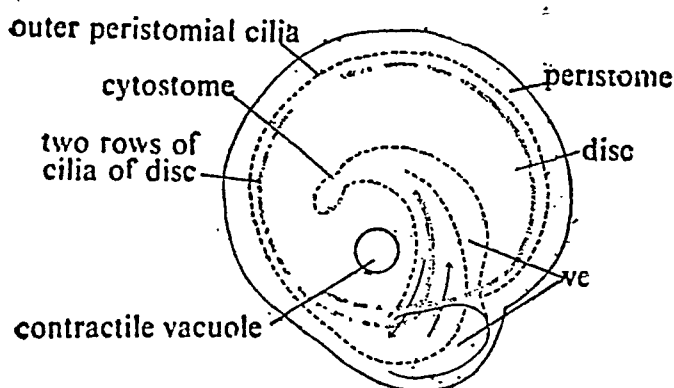
चित्र 46. **वॉर्टिसेला** की घंटी, ऊपर से देखने पर (आरेखीय)।

होकर उसकी बाहरी दीवार में एक तिकोनी **तरंगित झिल्ली** (undulating membrane) बनाते हैं। उधर दो भीतरी वृत्तों के सिलिया वेस्टिब्यूल की भीतरी दीवार के सहारे लगे होते हैं। आहार करने के दौरान आहार कण बाहरी सिलिया के साथ-साथ चलते जाते हैं और सिलिया की दो भीतरी पंक्तियों के तरंगन के द्वारा नीचे को धकेले जाते रहते हैं। देह और वृत्त पर सिलिया नहीं होते लेकिन उनके काइनेटोसोम वृत्तों में मौजूद होते हैं जिससे यह पता चलता है कि उनके सिलिया विलीन हो चुके हैं, इन्हीं काइनेटोसोमों के अतिरिक्त देह पर वृत्ताकार रेखांकन होते हैं जहां पर हो सकता सिलिया मौजूद रहे हों। समूचा जंतु पेलिकल से ढका रहता है जिसमें समानांतर रेखाओं के अनुप्रस्थ वलय बने होते हैं। घंटी के आधार पर यह पॅलिकल बहुत मोटा होता है। **वॉ०**

मोनिलेटा के पेलिकल में पैराग्लाइकोजन के गांठदार मस्से बने होते हैं। वृंत में पेलिकल के ऊपर एक बाहरी **क्यूटिकल** (cuticle) चढ़ा होता है। एक बाहरी **एक्टोप्लाज्म** अथवा **कॉर्टेक्स** होता है जो कि दृढ़ होता है, और उसके नीचे एक तरल एवं कणिकीय **एंडोप्लाज्म** अथवा **मेडुला** होता है। कार्टेक्स में रूपान्तरण होकर एक **मायोनीम तंत्र** बन जाता है जिसमें अनुदैर्ध्य, तिरछे तथा वृत्ताकार मायोनीम होते हैं। ये मायोनीम घंटी के आधार की ओर अधिक स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। अनुदैर्ध्य मायोनीम शरीर को लंबाई में छोटा कर देते हैं, तिरछे मायोनीम डिस्क को भीतर की ओर खींच लेते हैं और वृत्ताकार मायोनीम परिमुख को संकुचित कर उसे डिस्क के ऊपर बंद कर देते हैं। देह के मायोनीम एक साथ आकर वृंत के केन्द्र में एक ढीले सर्पिल के रूप में चलते जाते हैं, इस सर्पिल को **अक्ष-सूत्र** (axial filament) अथवा **स्पंज्मोनीम** (spasmoneme) कहते हैं। **वॉ० कम्पेनुला** में स्पैज़्मोनीम के ऊपर थीकोप्लास्टिक कणिकाएं बनी होती हैं। वृत के संकुचित होने पर सर्पिल स्पैज्मोनीम कसकर कुंडलित हो जाता और एक स्प्रिंग जैसा दिखायी पड़ने लगता है। स्पैज्मोनीम के ऊपर से एक **प्रोटोप्लाज्मी आवरण** मढ़ा होता है जिसके बाहर पेलिकल और फिर एक बाहरी क्यूटिकल बने होते हैं। **वॉर्टिसेला** किसी भी यांत्रिकीय उद्दीपन के लिए बहुत ज्यादा संवेदनशील होता है। धीमे से धीमे स्पर्श द्वारा भी इसका वृंत तुरंत एक जकड़े सर्पिल के रूप में कुंडलित हो जाता है, शरीर गोल हो जाता, डिस्क भीतर को खिंच जानी तथा परिमुख उसका ऊपर से बंद कर लेता है। कोशिकाग्रसनी के पास एक कुछ गुहा होती है जिसे **आगार** (reservoir) कहते हैं और जो एक बारीक नलिका द्वारा कोशिकाग्रसनी से जुड़ा रहता है। आगार के समीप एक **संकुचनशील रिक्तिका** होती है जिसमें एक अस्तर-झिल्ली बनी होती है जिसके कारण यह रिक्तिका एक स्थायी रचना बन जाती है; यह रचना **परासरण-नियामक** (osmoregulatory) है और अपने भीतर के पदार्थ को प्रत्येक सिस्टोल पर आगार में पहुंचा देती है जहां से ये पदार्थ वेस्टिब्यूल में से होकर बाहर पहुंच जाते हैं। (**वॉ० पिक्टा** तथा **वॉ० मोनिलेटा** में दो संकुचनशील रिक्तिकाएं होती हैं)। आगार के समीप एक कोशिकागुदा होती है जो वेस्टिब्यूल में को खुलती है, यह अलग-अलग जातियों में स्थायी अथवा अस्थायी होती है।

गुरुकेन्द्रक बड़ा, लंबा और घोड़े की नाल की सी शक्ल का होता है, और एक छोटा सूक्ष्मकेन्द्रक होता है, ये दोनों ही एंडोप्लाज़्म में होते हैं।

पोषण (Nutrition)—पोषण **पैरामीशियम** के समान प्राणिसम होता है; परिमुख और डिस्क के सिलिया एक जलधारा उत्पन्न करते हैं जिसके द्वारा छोटे छोटे जैव कण डिस्क पर आकर गिरते हैं जहां से फिर वे वेस्टिब्यूल में को पहुंच जाते हैं। उसके बाद तरंगित झिल्ली उन्हें कोशिकाग्रसनी में को ले जाती है। सिलिया की दो भीतरी पंक्तियों के तरंगणों से आहार की गति में मदद पहुंचती है। कोशिकाग्रसनी की जड़ में कुछ जल के साथ आहार-कण एक के बाद एक **आहार रिक्तिकाएं** बनाते जाते हैं। एंडोप्लाजम में आहार रिक्तिकाओं की गति एक अनियमित साइक्लोसिस के रूप में होती है (जो कि **पैरामीशियम** से भिन्न है)। पाचन उसी प्रकार होता है जैसे **पैरा-**

मीशियम में, और अतिशेष पचा भोजन एंडोप्लाज़म में अपवर्तनी ग्लाइकोजन कणिकाएं वन जाता है।

जनन (Reproduction)—वॉर्टिसेला सामान्यतः अनुदैर्ध्य द्विविभजन द्वारा जनन करता है, लेकिन वीच-वीच में संयुग्मन भी होता रहता है।
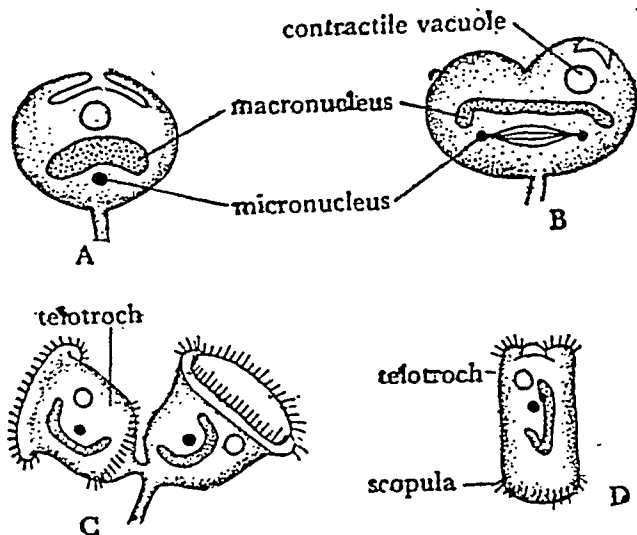
चित्र 47. अनुदैर्ध्य द्विविभजन

Contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; macronucleus, गुरुकेन्द्रक; micronucleus, सूक्ष्मकेन्द्रक; tolotroch, टीलोट्रॉक; scopula, स्कोपुला।

अनुदैर्ध्य द्विविभजन—पेरिट्राइका का द्विविभजन अन्य सिलिएटों से इस वात में भिन्न है कि यह सामान्यतः वरावर नहीं होता और उस समतल में होता है जो मुख-अपमुख के सहारे-सहारे अथवा लगभग इसी दिशा में चलता है। **वार्टिसेला** अपना परिमुख डिस्क के ऊपर वंद कर लेता है, शरीर चपटा सा होकर अनुप्रस्थ दिशा में लंवा हो जाता है। एंडोप्लाज़्मी परिसंचरण होता रहता है और संकुचनशील रिक्तिका सम्पूर्ण विभाजन के दौरान स्पंदन करनी रहती है। लंवा गुरुकेन्द्रक संघनित और छोटा हो जाता है, उसके वाद वह सीधा होकर अनुप्रस्थ रूप में वीच में स्थिति ले लेता है, और फिर उसमें अमाइटोसिस विधि से दो में विभाजन हो जाता है। अग्र सिरे के वीच में एक संकीर्णन शुरू होता है जो परिमुख को विभाजित करता हुआ कोशिका की लंवाई में नीचे को वृंत के ठीक एक पार्श्व में पहुंच जाता है। इस संकीर्णन से जंतु दो असमान भागों में वंट जाता है, मामूली से छोटे भाग में वृंत नहीं होता, इसमें मुख सिलिया का एक वलय होता है और एक संकुचनशील रिक्तिका वन जाती है, तथा पश्च सिरे पर सिलिया का एक अपमुख वलय वन जाता है, अव यह सिलिंडराकार होकर टूटकर अलग हो जाता है और इस स्थिति में इसे टीलोट्रॉक (telotroch) कहते हैं। यह टीलोट्रॉक अलग होकर अपने अपमुख ध्रुव को सामने रखता हुआ तैरता जाता है और अपमुख

सिरे के द्वारा जिस पर एक छोटा **स्कोपुला** (scopula) बना होता है कहीं पर आ टिकता है। स्कोपुला सिलिया से व्युत्पन्न दृढ़ प्रोटोप्लाज़्मी प्रवर्धों का वृत्तक होता है, इससे एक वृंत का स्राव हो जाता है जिसके द्वारा टीलोट्रॉक चिपक जाता है। उसके बाद इसका स्कोपुला समाप्त हो जाता है, घंटी फैल जाती है, एक नयी डिस्क बन जानी है और कायांतरण होकर यह एक पूर्ण वयस्क प्राणी बन जाता है। द्विविभजन में 20 से 30 मिनट तक का समय लगता है। विभाजन में जो उत्पाद बड़े आकार की थी उसमें पुरानी डिस्क और पुराना वृंत मौजूद रहते हैं और उसे जनक (parent) कहा जा सकता है, इसके विपरीत छोटे आकार वाले टीलोट्रॉक को **संतति** कहा जा सकता है। अन्य प्रोटोज़ोआ में इस प्रकार का विभेद देखने में नहीं आता। प्रतिकूल परिस्थितियों में सामान्य **वॉर्टिसेला** में भी सिलिया का पश्च वलय बन जाता है और इस प्रकार यह प्राणी एक टीलोट्रॉक का रूप लेकर वृंत से टूटकर अलग हो जाता और तैरकर किसी अनुकूल स्थान पर पहुंच जाता जहां वह एक नया वृंत बना लेता है। कभी-कभी **वॉर्टिसेला** दो परत वाली पुटी भी बना लेता है, और ऐसा वह वृंत पर जुड़े-जुड़े ही कर लेता है, तब पुटी वृंत पर से झड़ जाती है और पुटी से बाहर निकलने पर यह एक टीलोट्रॉक के रूप में इधर-उधर तैरने लग जाता है।

विभजन तथा **संयुग्मन**—लैंगिक जनन में **वॉर्टिसेला** द्विविभजन द्वारा दो बहुत ही असमान भागों में बंट जाता है, बड़ी कोशिका सामान्य प्राणी होता है और
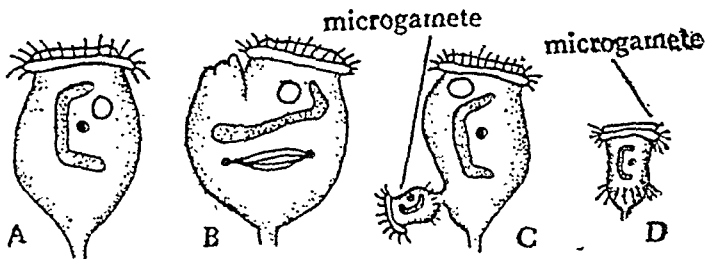
चित्र 48. **वॉर्टिसेला**। सूक्ष्मयुग्मक का निर्माण। Microgamete, सूक्ष्मयुग्मक।

छोटी कोशिका को **सूक्ष्मयुग्मक** (microgamete) कहते हैं। कुछ जातियों में बारंबार विभाजन के द्वारा एक से अधिक सूक्ष्मयुग्मक बन जाते हैं। प्रत्येक सूक्ष्मयुग्मक में उसके पश्च सिरे पर सिलिया का एक घेरा बन जाता है। सूक्ष्मयुग्मक अलग हो जाते और तैरने लगते हैं। इनका तैरना अचल जातियों में संयुग्मन हो सकने की दिशा में एक अनुकूलन (adaptation) है। सूक्ष्मयुग्मक और टीलोट्रॉक में यह अंतर है कि सूक्ष्मयुग्मक आकार में छोटे होते हैं और वास्तव में वे कभी भी कायांतरण होकर वयस्क नहीं बनते और न ही उनमें कोई वृंत बनते हैं। सूक्ष्मयुग्मक कभी आहार नहीं करते और न ही कभी सिस्ट बनाते हैं, वे लगभग 24 घंटे तक जीवित रहते हैं जिसके बाद वे मर जाते हैं। किसी वृंतयुक्त **वॉर्टिसेला** में केन्द्रकीय रूपांतरण होते हैं हालांकि बाहर से वह बिलकुल सामान्य जान पड़ता है, इसे तब **गुरुयुग्मक** (macrogamete) कहते हैं। गुरुयुग्मक आकारिकीय दृष्टि से बिलकुल वैसा ही होता है जैसा कि सामान्य खाते-

पीते रहने वाला प्राणी लेकिन शरीरक्रिया की दृष्टि से यह विशेषित होता है और लगभग दो घंटे तक सूक्ष्मयुग्मकों को अपनी ओर आकर्षित करता रह सकता है। 1. सूक्ष्मयुग्मक तैरता हुआ आता है और गुरुयुग्मक की देह से निचले तिहाई भाग में उससे समेकित हो जाता है, इस क्रिया में सूक्ष्मयुग्मक गुरुयुग्मक के वृंत के समीप वाले पिछले सिरे से आकर चिपकता है। 2. सूक्ष्मयुग्मक के सिलिया गिर जाते हैं और पेलिकल उतार फेंक दिया जाता है, इसका सूक्ष्मकेन्द्रक दो में विभाजित हो जाता है। 3. दोनों युग्मकों के गुरुकेन्द्रक टूट-टूट कर टुकड़े हो जाते और अंत में विलीन हो जाते हैं। सूक्ष्मकेन्द्रक दोनों युग्मकों में माइटोसिस विधि से विभाजित हो जाते और स्पिंडल की आकृति के बन जाते हैं। ये सूक्ष्मकेन्द्रक अब एक बार फिर से विभाजित होकर उस सूक्ष्मयुग्मक में आठ सूक्ष्मकेन्द्रक तथा गुरुयुग्मक में चार सूक्ष्मकेन्द्रक बना देते हैं।
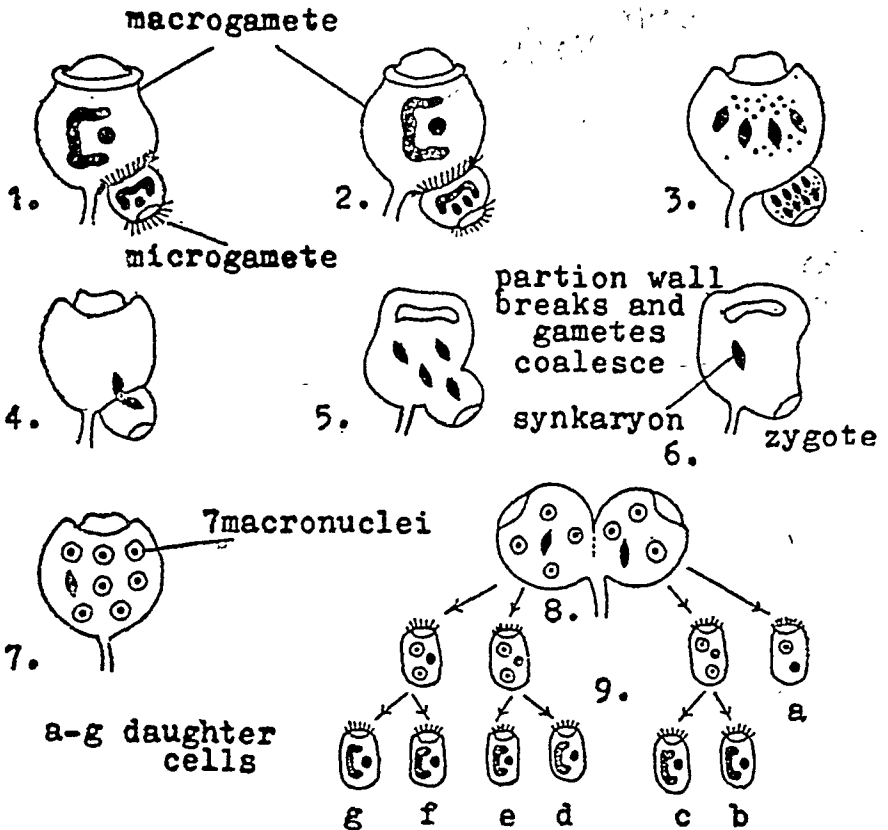
चित्र 49. वॉ० नेबुलिफेरा (*V. nebulifera*) में संयुग्मन अवस्थाएं।

Macrogamete, गुरुयुग्मक; microgamete, सूक्ष्मयुग्मक; partition wall breaks and gametes coalesce, बीच की दीवार घुल जाती है और युग्मक जुड़ जाते हैं; synkaryon, संकेन्द्रक; zygote युग्मनज; macronuclei, गुरुकेन्द्रक; daughter cells, संतति कोशिकाएं।

4. सूक्ष्मयुग्मक के सात और गुरुयुग्मक के तीन सूक्ष्मकेन्द्रक विघटित होकर विलीन हो जाते हैं जिससे कि प्रत्येक युग्मक में अब केवल एक सूक्ष्मकेन्द्रक बच रहता है; ये दोनों सूक्ष्मकेन्द्रक बीच की दीवार की तरफ बढ़ते हैं। 5. बीच की दीवार घुल जाती और दोनों युग्मकों के भीतरी पदार्थ एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। प्रत्येक सूक्ष्मकेन्द्रक अब दो में विभाजित होता है जिनमें से एक-एक विलीन हो जाते हैं, शेष दो सूक्ष्मकेन्द्रक गुरुयुग्मक के भीतर की ओर धिकल जाते हैं। 6. इन दो सूक्ष्मकेन्द्रकों में एक **नर प्राक्केन्द्रक** अथवा **प्रवासी सूक्ष्मकेन्द्रक** होता है जो कि सूक्ष्मयुग्मक में से आता है और दूसरा मादा **प्राक्केन्द्रक** अथवा **निष्क्रिय सूक्ष्मकेन्द्रक** होता है जो गुरुयुग्मक का होता है। नर और मादा प्राक्केन्द्रक समेकित होकर एक **संकेन्द्रक** अथवा **संयुग्मन केन्द्रक** बनाते हैं। मूल सूक्ष्मयुग्मक झड़ जाता है क्योंकि उसका भीतरी पदार्थ गुरुयुग्मक में चूस लिया गया होता है। निषेचित गुरुयुग्मक अब एक युग्मनज होता है। 7. संकेन्द्रक तीन बार माइटोसिस विधि से विभाजित होकर आठ सूक्ष्मकेन्द्रक बनाता है, जिनमें से सात बड़े होकर गुरुकेन्द्रक बन जाते हैं। 8. युग्मनज और शेष सूक्ष्मयुग्मक विभाजित होकर दो संतति कोशिकाएं बनाते हैं, प्रत्येक संतति कोशिका में एक सूक्ष्मकेन्द्रक लेकिन गुरुकेन्द्रकों में से चार एक संतति-कोशिका में और तीन दूसरी संतति-कोशिका में पहुंच जाते हैं। 9. प्रत्येक संतति-कोशिका और उसका सूक्ष्मकेन्द्रक फिर से दो बार विभाजित होते हैं। चार गुरुकेन्द्रक से युक्त
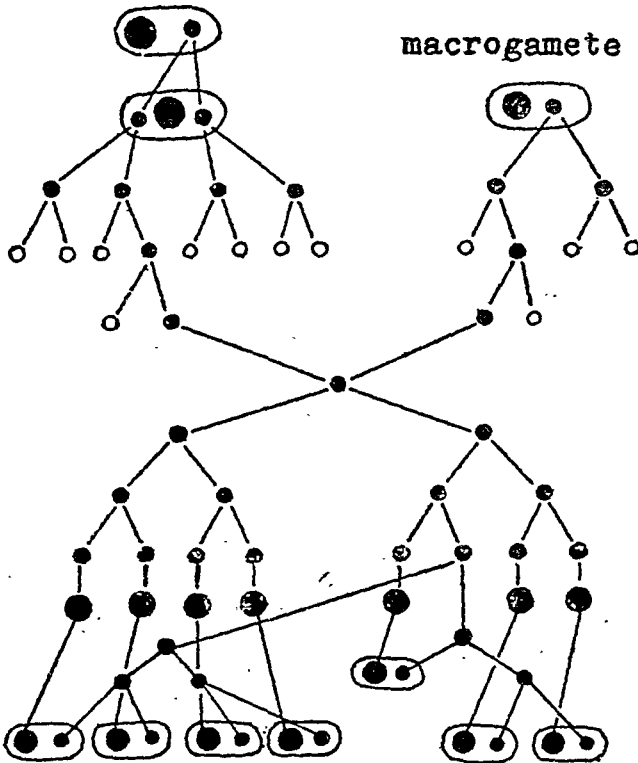
चित्र 50. वॉर्टिसेला में संयुग्मन।

Microgamete, सूक्ष्मयुग्मक; macro-gamete, गुरुयुग्मक।

संतति-कोशिका से चार संतति-कोशिकाएं वनती हैं जिनमें से प्रत्येक में एक-एक सूक्ष्म-केन्द्रक और एक-एक गुरुकेन्द्रक होता है। तीन गुरुकेन्द्रकों से युक्त संतति-कोशिका में दो विभाजन होकर तीन कोशिकाएं वनती हैं जिनमें से हर एक में एक सूक्ष्मकेन्द्रक और एक गुरुकेन्द्रक होते हैं। इस प्रकार उत्पन्न हुई कुल सात संतति-कोशिकाएं वृद्धि करने लगती हैं, उनमें वृंत वन जाते और वे वयस्क हो जाती हैं।

वॉर्टिसेला में होने वाला संयुग्मन **पैरामीशियम** में होने वाले सयुग्मन से अधिक उन्नत है। **पैरामीशियम** में संयुग्मी समान होते हैं, संयुग्मन दो प्राणियों का एक अस्थायी सम्मिलन होता है जिसके दौरान उनके केन्द्रकीय पदार्थ का आदान-प्रदान होता है, किंतु साइटोप्लाज़्म का समेकन नहीं होता, और दोनों विसंयुग्मी विभजन द्वारा जनन करते हैं। **वार्टिसेला** में संयुग्मनकारी युग्मक असमरूप **असमयुग्मक** (anisogametes) होते हैं, संयुग्मन स्थायी होता है जिसमें दोनों साइटोप्लाज़्म और दोनों युग्मकों के केन्द्रक समेकित हो जाते और फिर इस प्रकार वने युग्मनज में विभाजन द्वारा जनन होता है। **वार्टिसेला** में इसके द्विरूपी युग्मकों में लिंग का विभेदन भी दिखाई पड़ता है, अतः **वार्टिसेला** में होने वाली लैंगिक प्रक्रिया संयुग्मन (**पैरामीशियम** में) और युग्मकसंलयन (सिगनेमी) (**प्लाज्मोडियम** में) के कुछ-कुछ बीच की है।

संवर्धन——अपेक्षाकृत गर्म महीनों में **वॉर्टिसेला** अलवणजलीय पौधों के तनों पर पाया जाता है। सूखी घास और मृत पत्तियों का वर्षा-जल अथवा आसुत जल में एक फॉन्ट (इन्फ्यूज़न) तैयार कीजिए, इसे कुछ दिन पड़ा रहने दीजिए, सतह के ऊपर एक भूरी सी पपड़ी जम जाएगी, जिसके नीचे बहुत से **वार्टिसेला** मिलेंगे; इससे **वार्टिसेला** में पुटियों का पाया जाना सिद्ध हो जाता है।

फ़ाइलम प्रोटोज़ोआ का वर्गीकरण

प्रोटोजोआ सामान्यतः सूक्ष्मदर्शी आकार के होते हैं, वे अलवण जल, लवण-जल और नम मिट्टी में पाए जाते हैं, और कुछ परजीवी, सहजीवी (symbiotic) अथवा सहभोजी (commensal) रूप में भी पाए जाते हैं। इन्हें **अकोशिकीय** कहा जाता है क्योंकि इनका देह कोशिकाओं में विभाजित नहीं होता; इनके शरीर के भाग अलग-अलग कार्यों के लिए विशेषित होते हैं, इन भागों को अंगक कहते हैं जो कि मेटाज़ोआ के अंगों से भिन्न हैं। इस प्रकार प्रोटोजोआ प्राणी को एक समूचे मेटाज़ोअन के तुल्य माना जा सकता है न कि मेटाजोअन कोशिका के तुल्य। प्रोटोज़ोआ में कोशिकीय विभेदन हो चुका है, जब कि मेटाज़ोआ में विकास-क्रम के दौरान ऊतकीय (histological) विभेदन हो चुका है। अतः प्रोटोज़ोआ के लिए "एककोशिकीय" शब्द का प्रयोग बहुत सुखद नहीं है। प्रोटोज़ोआ एक विषम वर्ग है जिसके सदस्यों में संरचना, सममिति के विभिन्न प्रकार, और विविध परिस्थितियों के लिए अनुकूलनों की दृष्टि से एक भारी विविधता मिलती है। अनेक प्रोटोज़ोआ की संरचना अत्यधिक जटिल होती है। कुछ प्रोटोजोआ कॉलोनियां वनाते हैं। **कॉलोनी** (colony) में अनेक प्राणी या तो एक-दूसरे से चिपके रहते हैं या एक जिलेटिनी आवरण के भीतर वंद होते और प्रोटोप्लाज़्मी

संयोजनों द्वारा जुड़े रहते हैं। मेटाज़ोआ-प्राणी से कॉलोनी इस बात में भिन्न है कि इसमें कार्य की दृष्टि से तमाम कोशिकाएं एक-दूसरे से स्वतंत्र होनी हैं। प्रोटोज़ोआ के शरीर की आकृति और उनके चलन अंगकों की प्रकृति को वर्गीकरण के आधार लक्षणों के रूप में लिया जाता है। इस फ़ाइलम को चार उपफ़ाइलमों में विभाजित किया जाता है।

उपफ़ाइलम I. सार्कोमैस्टिगोफ़ोरा (Sarcomastigophora)—चलन अंगक कूटपाद अथवा कशाभ होते हैं, केन्द्रक एक ही प्रकार का होता है (एकरूपी), स्पोर निर्माण नहीं होता, जनन में युग्मक संलयन होता है।

अधिक्लास A. मैस्टिगोफ़ोरा (Mastigophora)—इन्हें आम तौर से कशाभी-प्राणी (फ़्लैजेलेट) कहा जाता है। वयस्क में चलन अंगक कशाभ होते हैं, देह पर पेलिकल चढ़ा होता है। द्विविभजन अनुदैर्ध्य होता है। ये अधिकतर स्वच्छंदजीवी होते हैं हालांकि कुछ परजीवी भी होते हैं।

क्लास 1. **फ़ाइटोमैस्टिगोफ़ोरीया** (Phytomastigophorea) अथवा फाइटोमैस्टिजाइना (Phytomastigina)—इनमें आम तौर से वर्णकधर पाए जाते हैं, अतः इनमें से अधिकतर पादपसमभोजी (holophytic) होते हैं। प्रायः एक या दो कशाभ होते हैं, केन्द्रक थैलानुमा (vesicular) होता है।

आर्डर (A) **क्रिप्टोमोनेडाइडा** (Cryptomonadida)—इनमें हरे, पीले, भूरे, अथवा रंगहीन वर्णकधर होते हैं जिनमें स्टार्च बनता है, दो कशाभ होते हैं, एक ग्रसिका (*gullet*) होती है; उदाहरणतः **काइलोमोनस** (*Chilomonas*), **क्रिप्टोमोनस** (*Cryptomonas*)।

आर्डर (B) **यूग्लीनाइडा** (Euglenida)—इनमें एक या दो कशाभ होते हैं, पेलिकल मोटा होता है, एक मुख और एक आगार होता है जिसके भीतर कशाभों के मूल होते हैं और जिसमें संकुचनशील रिक्तिका के भीतरी पदार्थ आकर गिरते हैं, इनमें अक्सर एक दृक्-बिंदु होता है, सुरक्षित भोजन पैरामाइलम और तेल होते हैं, उदाहरणतः **यूग्लीना**, **पेरानीमा** (*Peranema*)।

आर्डर (C) **वॉल्वोसिडा** (Volvocida) अथवा फ़ाइटोमोनेडाइना (Phytomonadina)। देह सेलुलोज़ से ढका होता है, दो कशाभ होते हैं, एक मुख या ग्रसिका होती है, सामान्यतः एक दृक्-बिंदु होता है, वर्णकधर हरे होते हैं, सुरक्षित भोजन स्टार्च होता है, इनमें युग्मकसंलयन होता है, उदाहरणतः **वॉल्वाक्स** (*Volvox*), **यूडोराइना** (*Eudorina*)।

आर्डर (D) **डाइनोफ्लेजेलिडा** (Dinoflagellida)—कशाभ दो होते हैं, एक अनुप्रस्थ होता है और दूसरे की पीछे की ओर को दिशा होती है, देह मोटे सेलुलोज से ढकी होती है जिसमें एक मध्यवृत्तीय खांच बनी हो सकती है। वर्णकधर हरे, पीले या भूरे होते हैं, सुरक्षित भोजन स्टार्च अथवा तेल होता है। सम्मिश्र रिक्तिकाएं होती हैं जो संकुचनशील नहीं होतीं, उदाहरणतः **नॉक्टील्यूका** (*Noctiluca*), **सेरेशियम** (*Ceratium*)।

क्लास 2. ज़ूओमैस्टिगोफ़ोरीया (Zoomastigophorea) अथवा ज़ूओमैस्टि-जाइना (Zoomastigina)—इनमें वर्णकधर नहीं होते, कशाभ एक से लेकर अनेक तक होते हैं, प्राय: एक तरंगित झिल्ली होती है। इनमें से अधिकतर परजीवी होते हैं।

आर्डर (a) **कोयनोफ्लैजेलिडा** (Choanoflagellida)—एक ही अग्र कशाभ होता है जिसका आधार एक नाजुक कॉलर द्वारा घिरा होता है। ये एकल अथवा निवह-प्राणी होते हैं और लवण-जल अथवा अलवण-जल में स्वच्छंद रहते हैं, उदाहरणत: **प्रोटेरोस्पॉन्जिया** (*Proterospongia*)।

आर्डर (b) **राइज़ोमैस्टिजाइडा** (Rhizomastigida)—इनमें कूटपाद होते हैं और एक से चार कशाभ होते हैं, ये अधिकतर स्वच्छंदजीवी होते हैं, उदाहरणत: **मैस्टिगअमीवा** (*Mastigamoeba*)।

आर्डर (c) **हाइपरमैस्टिजाइडा** (Hypermastigida)—इनमें बहुसंख्यक कशाभ होते हैं, पराधारीय उपकरण अनेक होते हैं, केन्द्रक अकेला होता है, उदाहरणत: **ट्राइकोनिम्फ़ा** (*Trichonympha*), **लेप्टोमोनस** (*Leptomonas*)।

आर्डर (d) **डिप्लोमोनेडाइडा** (Diplomonadida)—ये द्विकेन्द्रकीय कशाभी होते हैं जिनमें द्विपार्श्विक सममिति पायी जाती है, कशाभ दो से चार तक होते हैं, सहायक अंगकों का एक सेट होता है। परजीवी अथवा अलवण जल में रहने वाले स्वच्छंदजीवी, उदाहरणत: **जियार्डिया** (*Giardia*)।

आर्डर (e) काइनेटोप्लास्टिडा (Kinetoplastida)—एक से चार कशाभ होते हैं, काइनेटोप्लास्ट एक स्व-उत्पादन अंगक के रूप में होता है, ये अधिकतर परजीवी होते हैं।

उपआर्डर (क) **बोडोनाइना** (Bodonina)—इनमें नियमत: दो असमान कशाभ होते हैं, एक आगे की ओर उन्मुख और दूसरा पीछे की ओर, तरंगित झिल्ली नहीं होती, कुछ में काइनेटोप्लास्ट परवर्ती रूप में अविद्यमान हो सकता है, ये स्वच्छंद जीवी तथा परजीवी दोनों प्रकार के होते हैं, उदाहरणत: **बोडो** (*Bodo*)।

उप आर्डर (ख) **ट्रिपैनोसोमैटाइना** (Trypanosomatina)—इनमें केवल एक ही कशाभ होता है जो या तो मुक्त होता है या एक तरंगित झिल्ली द्वारा देह से जुड़ा होता है, सभी परजीवी, उदाहरणत: **ट्रिपैनोसोमा** (*Trypanosoma*), **लीश्मानिया** (*Leishmania*)।

अधिक्लास B. **ओपैलाइनैटा** (Opalinata)—इनमें तिरछी पंक्तियों में व्यवस्थित बहुसंख्यक सिलिया-जैसे अंगक पूरी देह पर बने होते हैं, कोशिकामुख नहीं होता, दो या अधिक एकरूपी केन्द्रक होते हैं, द्विविभजन अंतराकाइनेटीय होता है, युग्मक-संलयन होता है जिसमें कशाभयुक्त असमयुग्मक (anisogametes) होते हैं, सभी परजीवी होते हैं।

आर्डर (a) **ओपलाइनिडा** (Opalinida)—इसके वही लक्षण हैं जो अधिक्लास के हैं, उदाहरणत: **ओपैलाइना** (*Opalina*)।

अधिक्लास C. सार्कोडाइना (Sarcodina)——इनके चलन अंगक कूटपाद होते हैं। अमीबीय आकृति प्रधान होती है। कुछ में एक सख्त कवच होता है। इनमें आम तौर पर स्पोर नहीं बनते। युग्मकों और कशाभयुक्त शिशुओं का बनना आम पाया जाता है।

क्लास 1. **राइज़ोपोडिया** (Rhizopodea)——इनके चलन अंगक पालिपाद (lobopodia) अथवा सूत्रपाद (filopodia) होते हैं, किंतु अक्षपाद (axopodia) कभी नहीं होते। ये सामान्यतः रेंगने वाले प्राणी होते हैं।

उपक्लास (i) **लोबोसिया** (Lobosia)——कूटपाद नियमतः पालिरूपी होते हैं, सूत्राकार अथवा संशाखित (anastamosing) शायद ही कभी।

आर्डर (a) **अमीबाइडा** (Amoebida) नियमतः एककेन्द्रकी होते हैं, एक्टोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्म में स्पष्ट विभेद होता है, एक्टोप्लाज़्म रिक्तिकीय कभी नहीं होता, अधिकतर स्वच्छंदजीवी होते हैं किंतु अनेक परजीवी प्राणी भी हैं, उदाहरणतः **अमीबा**, **पीलोमिक्सा** (*Pelomyxa*), **एंटअमीबा** (*Entamoeba*)।

आर्डर (b) **आर्सेलाइनिडा** (Arcellinida)——देह एक चोल (टेस्ट) अथवा दृढ़ बाह्य झिल्ली में बंद रहता है, कूटपाद एक निश्चित छिद्र में से बाहर को निकला रहता है, ये स्वच्छंदजीवी होते हैं और अधिकतर अलवण जल में रहते हैं, उदाहरणतः **आर्सेला** (*Arcella*), **डिफ्लूजिया** (*Difflugia*)।

उपक्लास (ii) **फ़ाइलोसिया** (Filosia) में क्रमशः पतले होते जाते और विशाखित सूत्रपाद होते हैं, संशाखित शायद ही कभी, उदाहरणतः **ग्रोमिया** (*Gromia*)।

उपक्लास (iii) **ग्रैनुलोरेटिकुलोसिया** (Granuloreticulosia)। इनमें बारीक कणिकीय एवं जालकीय मूलपाद (rhizopods) होते हैं जिन्हें जालकपाद (reticulopod) भी कहते हैं।

आर्डर (a) **फ़ोरेमिनिफ़ेराइडा** (Foraminiferida) में एक चोल होता है जिसमें एक से लेकर अनेक कक्ष बने होते हैं, चोल मूलतः काइटिनी होता है, कूटपाद सूराख में से अथवा दीवारों से बने छिद्रों में से अथवा इन दोनों में से बाहर निकले होते हैं, जनन में लैंगिक और अलैंगिक पीढ़ियों का एकांतरण होता है, युग्मक प्रायः कशाभयुक्त होते हैं; केन्द्रकीय द्विरूपता कुछ जातियों की परिवर्धन अवस्थाओं में मिलती है, उदाहरणतः **ग्लोबिजेराइना** (*Globigerina*), **एल्फ़िडियम** (*Elphidium*)।

उपक्लास (iv) **माइसेटोज़ोइया** (Mycetozoia)——अमीबीय पोषणी अवस्था परिवर्धन के द्वारा या तो एक बहुकोशिकी समुच्चय बन जाती है अथवा एक वास्तविक बहुकेन्द्रकी प्लाज़्मोडियम, सम्मिश्र जीवन-चक्र में लैंगिक जनन आता है, प्रायः स्पोरैंजिया बनते हैं जिनमें से स्पोर बाहर निकलते हैं, पोषण भक्षिकोशिकीय (phagocytic) होता है, उदाहरणतः **प्लाज़्मोडियोफोरा** (*Plasmodiophora*)।

क्लास 2. **ऐक्टिनोपोडीया** (Actinopodea)——इनके चलन अंगक कोमल अरीय अक्षपाद होते हैं, ये मूलतः अचल होते अथवा तिरने वाले प्राणी होते हैं, चोल

होता है अथवा नहीं भी होता, युग्मक प्रायः कशाभयुक्त होते हैं, जनन लैंगिक और अलैंगिक दोनों प्रकार का होता है।

उपक्लास (i) **हीलियोज़ोइया** (Heliozoia)—केन्द्रीय कैप्सूल नहीं होता, शरीर गोल और अरीय अक्षपादों से युक्त, प्रायः आवरणरहित, कंकाल यदि हुआ तो वह सिलिकामय शल्कों तथा शूलों (spines) का बना होता है, इनमें अक्षपाद अथवा सूत्रपाद होते हैं, केन्द्रक एक से अधिक हो सकते हैं, अधिकतर अलवण जल में पाए जाते हैं, उदाहरणतः **ऐक्टिनोफ्रिस** (*Actinophrys*), **ऐक्टिनोस्फ़ारियम** (*Actinosphaerium*)।

उपक्लास (ii) **रेडियोलेरिया** (Radiolaria)—केन्द्रीय कैप्सूल में एक से लेकर अनेक छिद्र बने होते हैं, इनमें शूल होते हैं अथवा एक सिलिकामय कंकाल होता है, सूत्रपाद अथवा अक्षपाद होते हैं, कैप्सूल प्रोटोप्लाज़्म को एक्टोप्लाज़्म और एंडोप्लाज़्म में विभाजित करता है, सभी प्राणी समुद्र में पाए जाते हैं, उदाहरणतः, **थैलैसिकोला** (*Thalassicolla*), **कॉलोज़ोअम** (*Collozoum*), **एकेन्थोमीट्रा** (*Acaathometra*)।

उपफ़ाइलम II. **स्पोरोज़ोआ** (Sporozoa)—वयस्क में कोई भी बाह्य चलन अंगक नहीं होता, ये सभी परजीवी होते हैं और अपने परपोषियों के शरीर से बाहर । सक्रिय जीवन नहीं बिता सकते। सिलिया तथा कशाभ युग्मकों में हो सकते हैं। युग्मक-संलयन होता है जिसके बाद अनेक स्पोर बनते हैं, स्पोर सरल होते हैं और उनमें एक से लेकर अनेक स्पोरोज़ोआइट बन जाते हैं, स्पोरोज़ोआइट संक्रमणकारी अवस्थाएं होती हैं, केन्द्रक एक ही प्रकार का होता है।

क्लास 1. **टीलोस्पोरिया** (Telosporea)—कूटपाद सामान्यतः नहीं होते और चलन या तो विसर्पण (gliding) द्वारा या देह के ऐंठनों द्वारा होता है। स्पोर बनते हैं और कुछ में कशाभयुक्त सूक्ष्मयुग्मक होते हैं। जनन लैंगिक और अलैंगिक दोनों प्रकार का होता है।

उपक्लास (i) **ग्रीगैराइना** (Gregarina)—परिपक्व ट्रोफ़ोज़ोआइट बड़े और बाह्यकोशिकीय होते हैं। जनन स्पोरजनन से युक्त पूर्णतः लैंगिक होता है, स्पोरों में आठ स्पोरोज़ोआइट होते हैं। ये अकशेरुकियों के पाचनमार्ग और देहगुहा में परजीवी होते हैं, उदाहरणतः **ग्रीगैराइना** (*Gregarina*), **मॉनोसिस्टिस** (*Monocystis*), **नीमैटोसिस्टिस** (*Nematocystis*)।

उपक्लास (ii) **कॉक्सीडिया** (Coccidia)—परिपक्व ट्रोफ़ोज़ोआइट पाचन मार्ग अथवा रक्त में परजीवी रूप में रहते हुए परिपक्व ट्रोफोज़ोआइट छोटा और नियमतः अंतःकोशिक होता है। युग्मक कोशिकाएं द्विरूपी होती हैं। स्पोरोज़ोआइटों में ऊतकों में शाइज़ोगोनी द्वारा संख्यावृद्धि होती है।

आर्डर (a) **यूकॉक्सिडा** (Eucoccidia)—शाइज़ोगोनी होती है, जीवन-चक्र में लैंगिक और अलैंगिक दोनों अवस्थाएं आती हैं। ये अकशेरुकियों तथा कशेरुकियों की एपिथीलियमी एवं रक्त कोशिकाओं में परजीवी रूप में पाए जाते हैं।

उपआर्डर (क) **आइमेराइना** (Eimerina)—गुरुयुग्मक तथा सूक्ष्म-युग्मककोशिका अलग-अलग बनते हैं, सिजिगी नहीं होती, सूक्ष्मयुग्मककोशिका से बहुत से सूक्ष्मयुग्मक बनते हैं, युग्मनज गतिहीन होता है, स्पोरोगोनी के दौरान अंडपुटी का आकार नहीं बढ़ता, स्पोरोज़ोआइट एक स्पोरपुटी में बंद होते हैं, उदाहरणत: : **आइमेरिया** (*Eimeria*)।

उपआर्डर (ख) **हीमोस्पोराइना** (Haemosporina) —गुरुयुग्मक तथा सूक्ष्मयुग्मककोशिकाएं स्वतंत्र रूप में बनती हैं, सिजिगी नहीं होती, सूक्ष्मयुग्मक कोशिका से केवल थोड़े से ही सूक्ष्मयुग्मक बनते हैं, युग्मनज प्रायः गतिशील होता है, स्पोरोगोनी के दौरान अंडपुटी आकार में बढ़ती जाती है, स्पोरोजोआइट ढके नहीं होते, शाइज़ोगोनी कशेरुकी परपोषी में तथा स्पोरोगोनी अकशेरुकी परपोषी में होती हैं, परपोषी कोशिकाओं के हीमोग्लोबिन से वर्णक बन जाता है, उदाहरणतः **प्लाज्मोडियम** (*Plasmodium*)।

क्लास 2. **टॉक्सोप्लाज्मीया** (Toxoplasmea)—स्पोर नहीं होते, किसी भी अवस्था में कशाभ या कूटपाद नहीं होते, जनन द्विविभजन द्वारा होता है, पुटियां बनती हैं जिनमें अनेक बिना आवरणयुक्त स्पोरोज़ोआइट होते हैं, उदाहरणतः **सार्कोसिस्टिस** (*Sarcocystis*), **टॉक्सोप्लाज्मा** (*Toxoplasma*)।

क्लास 3. **हैप्लोस्पोरीया** (Haplosporea)—स्पोर नहीं होते, कूटपाद हो सकते हैं लेकिन कशाभ नहीं होते, जनन केवल अलैंगिक होता है और शाइज़ोगोनी होती है, उदाहरणतः **सीलोस्पोरीडियम** (*Coelosporidivm*), **इक्थियोस्पोरीडियम** (*Ichthyosporidium*)।

उपफाइलम III नाइडोस्पोरा (Cnidospora)—स्पोरों में अनेक कोशिकाएं होती हैं जिनमें एक या अधिक ध्रुवी सूत्र होते हैं जो कुंडलित धागे होते हैं और बाहर को निकाले जा सकते हैं, और एक या अधिक सार्कोप्लाज़्म (sarcoplasms) अथवा स्पोरोप्लाज़्म (sporoplasms) होते हैं (जो स्पोरोआज़ोइटों के समान होते हैं), सभी परजीवी होते हैं। युग्मनज से बिना स्पोरोगोनी हुए एक या अधिक पोषाणु बन सकते हैं।

क्लास 1. **मिक्सोस्पोरीडिया** (Myxosporidea)—स्पोर बहुकोशिक उद्भव वाले होते हैं; एक या अधिक स्पोरोप्लाज़्म होते हैं, दो या तीन वाल्व से युक्त, ये मछलियों के परजीवी होते हैं, उदाहरणतः **मिक्सोबोलस** (*Myxobolus*), **सेरेटोमिक्सा** (*Ceratomyxa*).

क्लास 2. **माइक्रोस्पोरीडिया** (Microsporidea)—स्पोर एककोशिक उद्भव वाले होते हैं, एक लंबा नलिकाकार ध्रुवी सूत्र होता है जिसमें से स्पोरोप्लाज़्म बाहर आ जाता है, केवल एक वाल्व होता है, ये कोशिकाजंतुक (अंतःकोशिक परजीवी) रूप में आर्थ्रोपोडों तथा कशेरुकियों में पाए जाते हैं; उदाहरणतः **नोसीमा**।

उपफाइलम IV. सिलियोफोरा (Ciliophora)—इनमें चलन के लिए सरल सिलिया अथवा यौगिक सिलियरी अंगक होते हैं, अधःसिलियरी तंत्र पेलिकल के

नीचे होता है, इनमें दो केन्द्रक होते हैं, एक पोषण-केन्द्रक और दूसरा जनन केन्द्रक, द्विविभजन काइनेटीश: होता है। संयुग्मन केन्द्रकों के समेकन के साथ होता है, ऑटोगेमी और साइटोगेमी भी होती हैं, मुक्त युग्मक कभी नहीं होते। पोषण मिश्रपोषी mixotrophic) या विषमपोषी (heterotrophic) होता है। इनमें प्राय: एक कोशिकामुख होता है।

क्लास 1. **सिलिएटीया** (Ciliatea) में उपफाइलम के ही लक्षण होते हैं।

उपक्लास (i) **होलोट्राइकिया** (Holotrichia)—देह की सिलिया-व्यवस्था सरल और एकसमान होती है अस्पष्ट मुख सिलिया व्यवस्था केवल कुछ ही उदाहरणों में होती है, उदाहरणत: **पैरामीशियम, कॉल्पीडियम** (*Colpidium*), **डाइडिनियम, वैलेंटिडियम** (*Balantidium*)।

उपक्लास (ii) **पेरिट्राइकिया** (Peritrichia)—परिपक्व देहाकृति में देह सिलिया नहीं होते, शीर्षस्थ मुख सिलिया-व्यवस्था स्पष्ट और वामावर्त्त होती है, शरीर प्राय: वृंत अथवा आधारीय डिस्क द्वारा चिपका रहता है, निवह-प्राणी आम मिलते हैं, उदाहरणत: **वॉर्टिसेला, कार्कीसियम** (*Carchesium*)।

उपक्लास (iii) **सक्टोरिया** (Suctoria)—परिपक्व अवस्था में बाहरी सिलिया नहीं होते, ये नियमत: अचल होते और एक वृंत द्वारा चिपके रहते हैं, भोजन का अंतर्ग्रहण चूषणी स्पर्शकों के द्वारा होता है, लार्वा रूप में कुछ देह सिलिया होते हैं, उदाहरणत: **एफ़ेलोटा** (*Ephelota*)।

उपक्लास (iv) **स्पाइरोट्राइकिया** (Spirotrichia)—देह-सिलिया प्राय: बहुत कम कहीं-कहीं होते हैं, मुख सिलिया बड़े होते हैं, सिरस मौजूद हो सकते हैं, मुख सिलिया-व्यवस्था सुव्यक्त होती है और उसमें घड़ी की सुई की दिशा में घूमती जाती हुई अनेक झिल्लिकाएं (membranelles) होती हैं, देह प्राय: बड़ा होता है, उदाहरण, **निक्टोथीरस** (*Nyctotherus*) **स्टाइलोनिकिया** (*Stylonychia*), **स्टेंटर** (*Stentor*)।

प्रोटोज़ोआ के प्ररूप

1. **वॉल्वाक्स** एक निवह-कशाभी है। **वॉ० ग्लोवेटर** (*V. globator*) तथा **वॉ० ऑरियस** (*V. aureus*) अलवण जल में सारे विश्व में पाए जाते हैं। निवह में एक जिलेटिनी मैट्रिक्स होता है जो तरल से भरी एक गोल खोखली गेंद के रूप में बना होता है, इसे **सीनोबियम** (coenobium) कहते हैं। मैट्रिक्स में अनेक **द्विकशाभी जीवकों** (biflagellate zooids) की एक अकेली परत होती है जो कि **प्रोटोप्लाज्मी सेतुओं** द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। निवह में दो प्रकार के जीवक होते हैं, दैहिक (somatic) अथवा वर्धी जीवक बहुसंख्यक और छोटे होते हैं, तथा जनन जीवक जो कि संख्या में थोड़े और आकार में बड़े होते हैं। जीवक एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं फिर भी अपने कशाभों द्वारा सम्पन्न होने वाले चलन में सब के सब योग देते हैं। जीवक में कोशिका-झिल्ली के बाहर सेलुलोज की एक दीवार होती है, क्लोरोफिल तथा पाइरिनायडों से युक्त एक वक्र क्लोरोप्लास्ट होता है, प्रकाश-संश्लेषण का उत्पाद स्टार्च होता है; दो या अधिक संकुचनशील रिक्तिकाएं होती हैं, एक लाल दृक्-बिंदु

होता है और दो बाहर को उभरे हुए कशाभ होते हैं। **वॉल्वॉक्स** एक विशेष महत्त्व का ज़ीव है क्योंकि इसमें एककोशिक और बहुकोशिक जीवों के बीच की संक्रामेक अवस्था
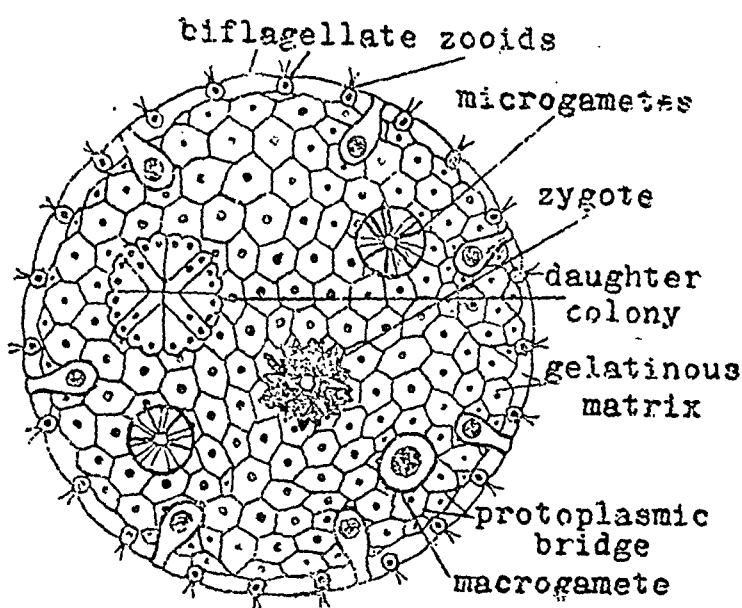
चित्र 51. वॉल्वॉक्स ग्लोबेटर।

Biflagellate zooids, द्विकशाभी जीवक; microgamete, सूक्ष्मयुग्मक; macrogametes, गुरुयुग्मक; zygote, युग्मनज; daughter colony, संतति निवह; gelatinous matrix, जिलेटिनी मैट्रिक्स; protoplasmic bridge, प्रोटोप्लाज़्मी सेतु।

दीख पड़ती है; इसमें विभेदन होकर दो प्रकार की कोशिकाएं पायी जाती हैं, एक तो दैहिक कोशिकाएं जो पोषणी होती हैं, किंतु जनन नहीं कर सकतीं और दूसरी जननशील कोशिकाएं; दैहिक कोशिकाएं मर जाती हैं लेकिन जनन कोशिकाएं उसी प्रकार जीवित बनी रहती हैं जैसे कि मेटाज़ोआ में; इसमें वह अवस्था भी परिलक्षित होती है जिसमें से क्रम-विकास के दौरान मेटाज़ोआ के पूर्वज गुजरे होंगे।

जनन (Reproduction)—1. **अलैंगिक जनन**—निवह की पिछली दिशा के जनन-जीवक बढ़कर **पार्थेनोगोनीडिया** (parthenogonidia) बनाते हैं जो कि अनुदैर्घ्य द्विविभजन द्वारा बार-बार विभाजित होकर एक संतति निवह बना लेते हैं। संतति-निवह की कोशिकाएं एक खोखली गेंद के रूप में व्यवस्थित हो जाती हैं जिसे प्लेकिया (plakea) कहते हैं। इसमें कोशिकाओं के कशाभी सिरे भीतर की ओर उन्मुख होते हैं, उसके बाद प्लेकिया उलटकर अंदर के बाहर पलट जाते हैं जिसके फलस्वरूप कोशिकाओं के कशाभी सिरे बाहर की ओर आ जाते हैं। ये संतति-निवह गतिमान बन जाते हैं लेकिन जनक सीनोबियम के भीतर बने रहते हैं, अंत में जनक की दीवार फट जाने पर या जनक के खंडित हो जाने पर वे बाहर निकल आते हैं। 2. **लैंगिक जनन**—**वॉल्वॉक्स ग्लोबेटर** द्विलिंगी होता है जब कि **वॉ० औरियस** एकलिंगी। द्विलिंगी उदाहरणों में पुंपूर्वता (protandry) पायी जाती है। वास्तविक अंडे या शुक्राणु

जनन-जीवकों से उत्पन्न होते हैं। जनन जीवक सीनीवियम के खोखले में गिर जाते हैं और विभाजित होकर सोलह-सोलह के गुणजों सूक्ष्मयुग्मकों (शुक्राणुओं) के वंडल वना
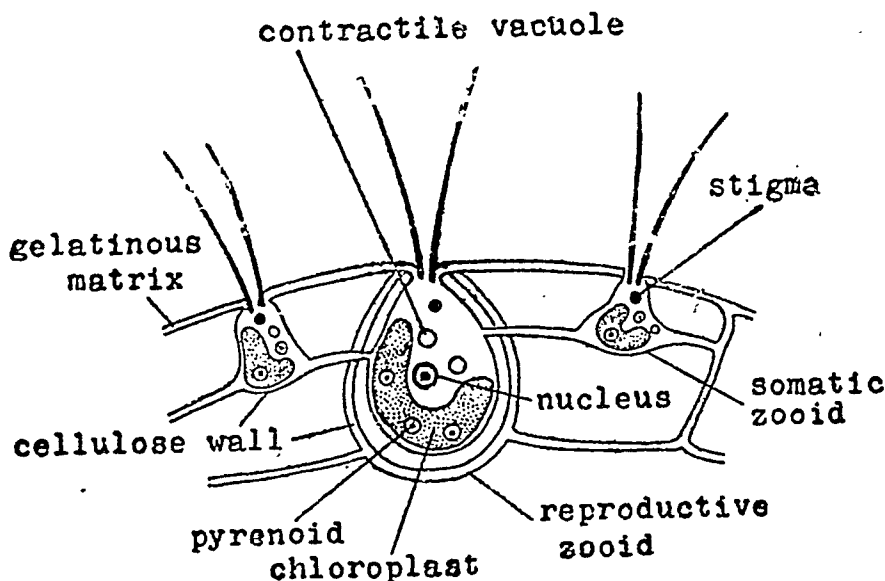
चित्र 52. वॉल्वॉक्स के जीवक। Contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; stigma, दृक्-विंदु; somatic zooid, दैहिक जीवक, nucleus, केन्द्रक; reproductive zooid, जनन जीवक; chloroplast, क्लोरोप्लास्ट; pyrenoid, पाइरिनॉयड; cellulose wall, सेलुलोज-दीवार; gelatinous matrix, जिलेटिनी मैट्रिक्स।

देते हैं, हर सूक्ष्मयुग्मक में दो कशाभ होते हैं। वाद में कुछ अन्य जनन जीवक वड़े होकर **गुरुयुग्मक** (अंडे) वनाते हैं जो निवह में ही रहते हैं। सूक्ष्मयुग्मक निवह में से वाहर निकल जाते हैं और परनिषेचन करके **युग्मनज** वनाते हैं; युग्मनजों के ऊपर एक मोटा भूरा कँटीला कवच वन जाता है। अगले वसंत में युग्मनज वार-वार विभाजित होकर एक नया निवह वना देता है। पुराना निवह मर जाता और नये निवह वाहर निकल आते हैं। (यह प्रोटोजोआ में प्राकृतिक मृत्यु का एक उदाहरण है।)युग्मक अगुणित होते हैं और युग्मनज द्विगुणित. मीयोसिस युग्मनज में होता है। इस प्रकार मीयोसिस युग्मनज वनने के वाद सम्पन्न होता है और युग्मनजपश्चीय होता है (मेटाज़ोआ में युग्मनजपूर्वी होता है)। लैंगिक और अलैंगिक दोनों प्रकार के जनन में शिशु निवहों के जीवकों में उनके कशाभ भीतर को उन्मुख होते हैं लेकिन नये निवह के पूरा होने से पहले ही अंदर से वाहर उलटना पूरा हो जाता है। 3. कुछ गुरुयुग्मक अनिषेकजनन विधि से नये निवहों में परिवर्धित हो जाते हैं।

2. **सेरैशियम** (*Ceratium*)—देह सेलुलोज़ के एक मोटे पेलिकल में वंद होता है जिसे **लोरिका** (lorica) कहते हैं, यह लोरिका पास-पास फिट हुई छोटी-छोटी प्लेटों का वना होता है। दो से पांच, किंतु प्रायः तीन, कवचयुक्त शूल वने होते हैं,

एक आगे का और दो पीछे के। देह से दो कशाभ निकलते हैं, एक अनुप्रस्थ खांच अथवा **वलयक** में पड़ा रहता है जो कि देह को घेरे रहता है, और दूसरा एक अनुदैर्ध्य खांच अथवा **सल्कस** में पड़ा रहता है जो पीछे की ओर को चलता है। वलयक में अधर दिशा पर एक बड़ी **झिल्लीदार प्लेट** बीच में आ जाती है। शलाकाकार वर्णकधर होते हैं जो पांच स्पष्ट समूहों में वितरित होते हैं, इनमें क्लोरोफिल होता है, पोषण पादपसमभोजी होता है। वर्णकधर अलवणजलीय उदाहरणों में हरे होते हैं, किंतु समुद्री उदाहरणों में वे पीले-भूरे रंग के होते हैं। स्टार्च, ग्लाइकोजन और वसा बूंदकों का सुरक्षित भण्डार बन जाता है। साइटोप्लाज़्म में बाहरी पदार्थ होते हैं जैसे बैक्टीरिया, कशाभी और डायटम। रंगहीन उदाहरणों में आहार करने में सूराखों में से साइटोप्लाज़्म का एक अकेला बड़ा अथवा अनेक छोटे-छोटे भाग बाहर निकालकर आहार पकड़ा जाता है, जब छोटे-छोटे अनेक
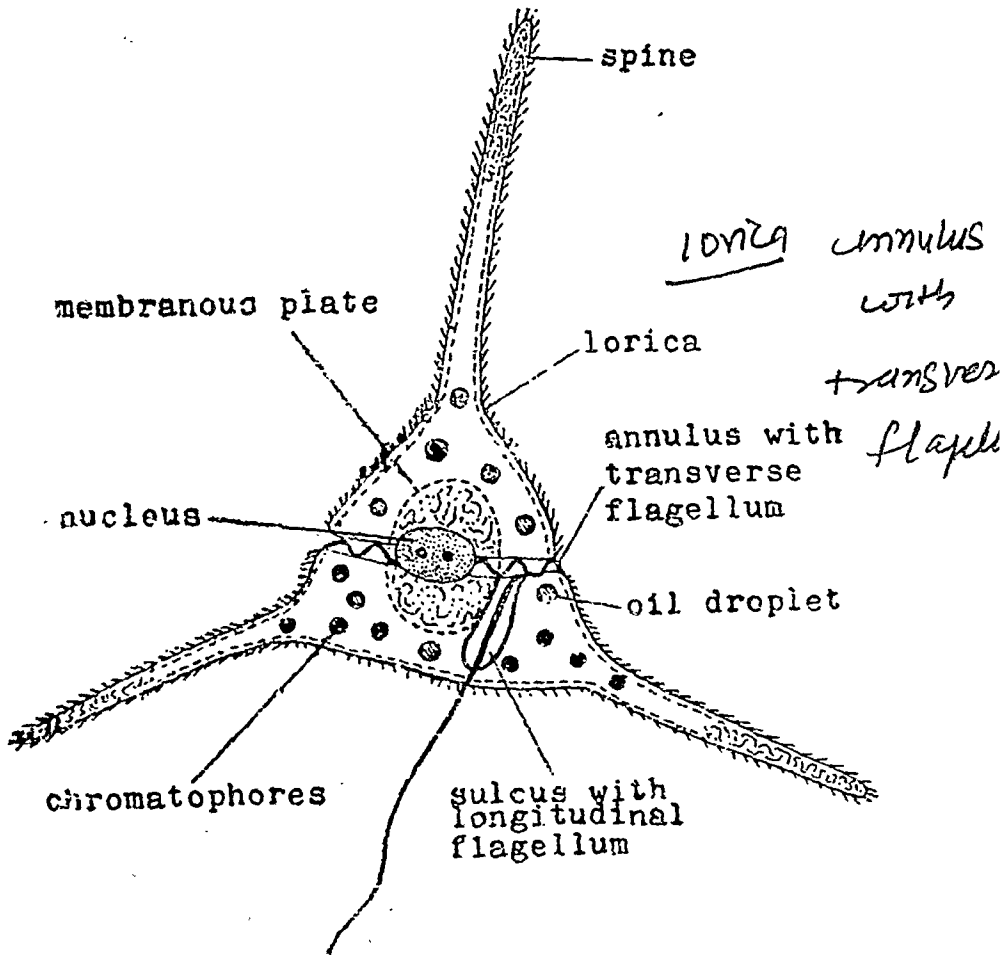
चित्र 53. **सेरैशियम।** Spine, शूल; lorica, लोरिका; annulus with transverse flagellum, अनुप्रस्थ कशाभ से युक्त वलयक; oil, droplet, तेल बूंदक; sulcus with longitudinal flagellum, अनुदैर्ध्य कशाभ से युक्त सल्कस; chromatophores, वर्णकधर; nucleus, केन्द्रक; membraneous plate, झिल्लीदार प्लेट।

भाग निकले होते हैं तो वे देह के ऊपर एक संशाखित जाल बना लेते हैं जिसमें आखेट फँस जाता है और इस प्रकार प्राणिसमभोजी पोषण होता है, अंशतः पचा हुआ भोजन साइटोप्लाज़्म के साथ-साथ देह में सिकोड़ लिया जाता है। और तो और रंगदार उदाहरण भी इसी विधि को अपनाते हैं और पोषण के लिए पूर्णतः प्रकाश-संश्लेषण पर ही निर्भर नहीं रहते । सेरैशियम हिरुडिनेला (*Ceratium hirudinella*) अलवण जल और समुद्र दोनों में पाया जाता है, अन्य स्पीशीज़ पूरे विश्व में झीलों और समुद्रों में पायी जाती हैं। जनन द्विविभजन द्वारा होता है ।

3. नॉक्टीलूका (*Noctiluca*)—देह गोलाकार होता है, लगभग 1·5 mm. व्यास, यह जिलेटिनी और पारदर्शक होता है, इस पर मोटा पेलिकल मढ़ा होता है, प्रोटोप्लाज़्म में बहुत ज्यादा रिक्तिकाएं बनी होती हैं और उसमें कोमल सूत्रक बने होते हैं। पेलिकल में एक खांच होती है जो तैरते हुए सबसे ऊपर की ओर होती है, किंतु आकारिकीय दृष्टि से यह अधर सतह होनी है। खांच में एक लंबा मुख और एक कोमल फ्लैप बना होता है जिसे गलती से **दांत** (tooth) कहा जाता है, यह फ्लैप अनुप्रस्थ कशाभ का द्योतक है। खांच के समीप केन्द्रक, कशाभों और मुख का एक समूहन बन जाता है, इन सबको एक साथ मिलाकर **ध्रुवी संहति** (polar mass) कहते हैं। ध्रुवी संहति से प्रोटोप्लाज़्म के विशाखित और परस्पर जुड़ते जाते हुए सूत्र निकलते हैं जो भीतर की ओर जाते हैं। केन्द्रीय कॉर्टेक्स स्फुरदीप्त (phosphorescent) होता है जिसमें से रात के समय नीली-हरी रोशनी निकलती है, इसी आधार पर इस प्राणी का यह नाम पड़ा है। असंख्य नॉक्टीलूका समुद्र की सतह को जगमगा देते हैं। दो
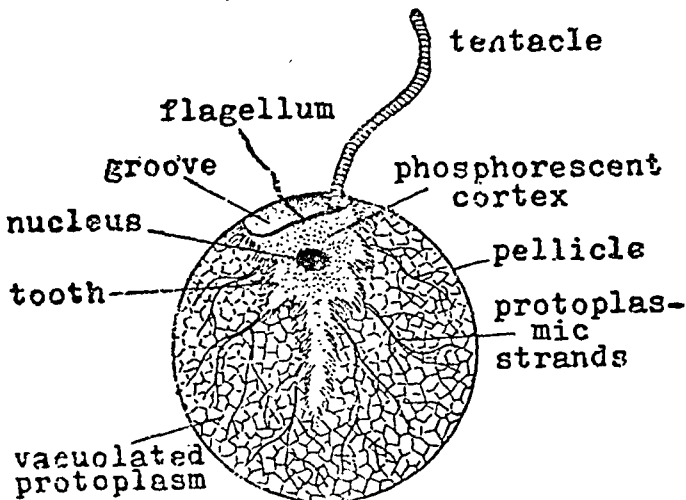
चित्र 54. नॉक्टीलूका सिंटिलेन्स (*Noctiluca scintillans*)। Tentacle, स्पर्शक; phosphorescent cortex, स्फुरदीप्त कार्टेक्स; pellicle, पेलिकल; protoplasmic strands, प्रोटोप्लाज़्मी सूत्रक; vacuolated protoplasm, रिक्तिकायुक्त प्रोटोप्लाज़्म; tooth, दांत; nucleus, केन्द्रक; groove, खांच; flagellum, कशाभ ।

कशाभ खांच में से निकलते हैं, एक छोटा कशाभ और एक बड़ा कशाभ जो कि मजबूत रेखित स्पर्शक के रूप में रूपांतरित होता है। यह समुद्री है, वेलापवर्ती (pelagic) है और पोषण प्राणिसमभोजी होता है। यह द्विविभजन द्वारा और बहुविभजन के बाद स्पोर निर्माण के द्वारा जनन करता है। वयस्क की अपेक्षा स्पोर अधिक डाइनो-फ्लैजेलेटों की तरह होते हैं।

4. **जियार्डिया इन्टेस्टाइनेलिस** (*Giardia intestinalis*) जिसे **जि० लम्ब्लिया** (*G. lamblia*) (पुराना नाम **लैम्ब्लिया**) भी कहते हैं मनुष्य की छोटी आंत और कोलन में रहने वाला परजीवी है जहां वह श्लेष्म झिल्ली के साथ कई-कई के समूहों में चिपका रहता है और वहाँ से अपना भोजन सोखता रहता है, इसके भोजन में मुख्यत: श्लेष्म शामिल है।
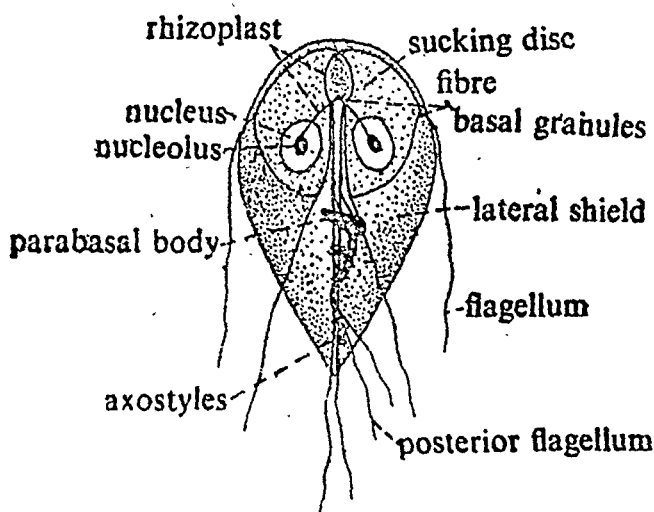
चित्र 55. **जियार्डिया इन्टेस्टाइनेलिस**। Sucking disc, चूषण डिस्क; fibre, तंतु; basal granules, आधार कणिकाएं; lateral shield, पार्श्व शील्ड; flagellum, कशाभ; posterior flagellum, पश्च कशाभ; axostyles, अक्षदण्ड; parabasal body, पराधारीय पिण्ड; nucleolus, न्यूक्लियोलस; nucleus, केन्द्रक; rhizoplast, राइज़ोप्लास्ट।

कभी कभी यह परजीवी यकृत वाहिनियों (bile ducts) तथा पित्ताशय (gall bladder) तक में पहुंच जाता है। **जियार्डिया** की अन्य स्पीशीज़ कशेरुकियों की आंत्र में परजीवी होती हैं। **जियार्डिया** का शरीर दीर्घवृत्ताकार होता है जो द्विपार्श्व-सममित (bilaterally symmetrical) होता है। पृष्ठ दिशा उत्तल होती है, किंतु अधर सतह चपटी अथवा उत्तल हो सकती है। अग्र सिरा गोल होता है और पश्च सिरा क्रमशः पतला होता जाता है। अधर सतह के अगले आधे भाग में परपोषी से चिपके रहने के वास्ते एक अवतल **चूषण डिस्क** (sucking disc) होती है। दो थैलीनुमा केन्द्रक होते हैं और चार जोड़ी लंबे कशाभ होते हैं। पूरे साइटोप्लाज़्म में से

अग्र सिरे से पश्च सिरे तक गुजरते हुए दो समानांतर, लचीले, सुई-जैसे अक्षदण्ड (axostyle) होते हैं जो देह को अवलंबन देते हैं, केन्द्रक नंतुकों के द्वारा अक्षदण्डों से जुड़े होते हैं। चूषण डिस्क के तुरंत पीछे एक गहरा स्टेन होने वाला पराधारीय पिण्ड होता है। जियार्डिया के कारण परपोषी में वसाओं का अवशोषण रुक जाता है, अनवशोषित वसाओं के कारण दस्त आने लगते हैं। यह मोटी दीवार वाली पुटियां बनाता है, विभाजन पुटियों के भीतर होता है, जिससे पुटी में चार केन्द्रक बन जाते हैं, पुटियां मल के साथ बाहर निकल जाती हैं और 10 अथवा उससे ज्यादा दिनों तक संक्रामक बनी रहती हैं। मलेरियानाशी औषधियां जैसे कि ऐटेब्रिन और क्लोरोक्विन इन परजीवियों से छुटकारा दिलाने में कारगर होती हैं।

5. ओपैलाइना (*Opalina*)—यह मेंढकों और टोडों के मलाशय में रहने वाला परजीवी है। देह अण्डाकार और चपटा होता है तथा उसके ऊपर अनुदैर्ध्य
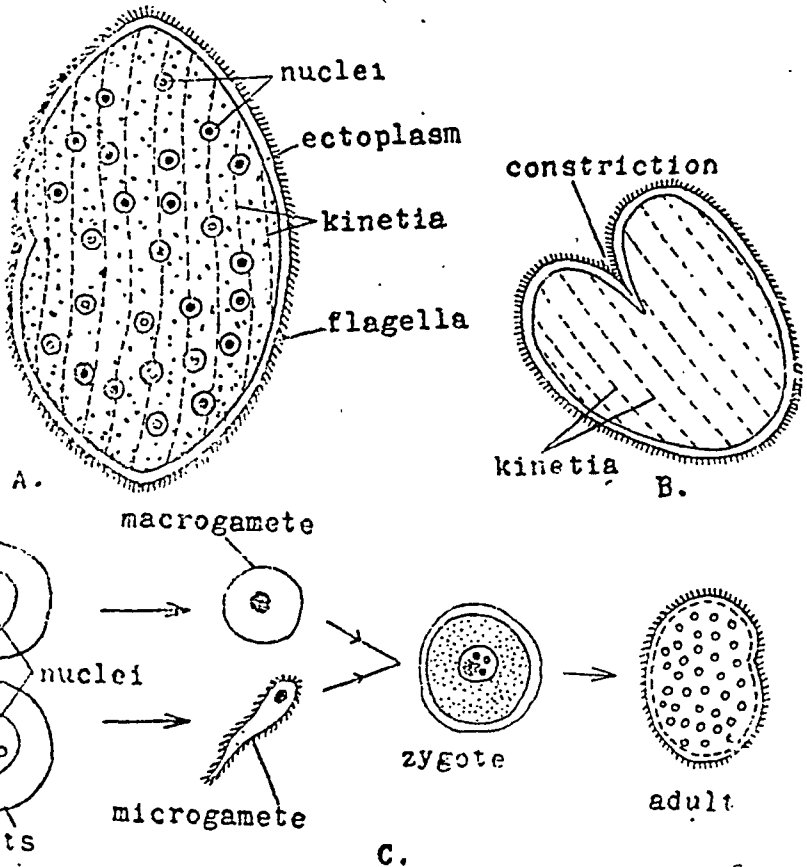
चित्र 56. A. ओपैलाइना रैनेरम (*Opalina ranarum*)। B. द्विविभजन। C. प्लाज़्मोटोमी। Nuclei, केन्द्रक; ectoplasm, एक्टोप्लाज़्म; kinetia, काइनेटी; flagella, कशाभ; constriction, संकीर्णन, adult, वयस्क; zygote, युग्मनज; microgamete, सूक्ष्मयुग्मक; macrogamete, गुरुयुग्मक; cysts, पुटियां।

पंक्तियों में अनेक बराबर-बराबर साइज वाले सिलिया-जैसे चलन-अंगक बने होते हैं। कोशिकामुख नहीं होता और न ही कोई संकुचनशील रिक्तिका। परजीवी अपने परपोषी का पचा हुआ भोजन अवशोषित करता रहता है। **जनन** वर्ष में अधिकांश समय अनुदैर्ध्य द्विविभजन द्वारा होता है, विभजन में काइनेटी नहीं कटते बल्कि दोनों संतति-कोशिकाओं में बराबर-बराबर बँट जाते हैं, यह काइनेटियों का अंतराकाइनेटीय विभाजन है। वसंत में जनन द्विविभाजी **प्लाज्मोटोमी** (plasmotomy) द्वारा होता है जिसमें केन्द्रकों के विभाजन के बिना कोशिका-विभाजन बार-बार होता रहता है जिसके फलस्वरूप थोड़े-थोड़े प्रायः तीन से छह, केन्द्रकों से युक्त अनेक संतति-कोशिकाएं बन जाती हैं। संतति-कोशिकाओं की पुटियां बन जाती हैं और परपोषी के शरीर से निकलकर बाहर जल में आ जाती हैं जहां से वे टैडपोलों द्वारा खा ली जाती हैं। टैडपोलों की अंतड़ियों में पुटियां घुल जाती हैं और कोशिकाएं विभाजित होकर एक-एक केन्द्रक वाले सूक्ष्मयुग्मक अथवा गुरुयुग्मक बना लेती हैं। ये युग्मक **असमयुग्मक** (anisogametes) होते हैं। नर और मादा असमयुग्मक समेकित होकर **युग्मनज** बनाते हैं। युग्मनज पुटी अवस्था में आ जाता है और फिर वृद्धि तथा केन्द्रकीय विभाजन के द्वारा यह एक वयस्क बन जाता है जो कि पुटी में से निकलकर आहार नाल में आ जाता है।

अब से पहले **ओपैलाइना** को सिलियोफोरा में रखा जाता था, उसके बाद उसे फ़्लैजेलेटा में रखा गया और अब इसे एक पृथक् अधिक्लास **ओपैलाइनैटा** में रखा गया है क्योंकि निम्नलिखित कारणों के आधार पर यह न तो सिलिएट है और न ही कशाभी प्राणी। 1. इसके बहुसंख्यक केन्द्रक समरूप अथवा **एकरूपी** (monomorphic) होते हैं जबकि सिलिएटों में केन्द्रक द्विरूपी होते हैं। 2. द्विविभजन में **विदलन** (cleavage) अनुदैर्ध्य और काइनेटियों के समानांतर होता है और ये काइनेटी संतति-कोशिकाओं में बराबर-बराबर पहुंच जाते हैं और इनकी संख्या पूरी होने के लिए पुराने काइनेटियों से और नए काइनेटी बन जाते हैं; सिलिएटों में द्विविभजन आम तौर से अनुप्रस्थ होता है, विदलन काइनेटियों को बीच से काट देता है जिससे कि प्रत्येक संतति-कोशिका में हर एक काइनेटी का आधा-आधा भाग पहुंच जाता है जिनमें इस प्रकार आनुवंशिक अविच्छिन्नता बनी रहती है। 3. **ओपैलाइना** में संयुग्मन नहीं होता जो कि सिलिएटों में आम होता है। 4. **ओपैलाइना** में असमयुग्मक बनते हैं और लैंगिक जनन युग्मकसंलयन द्वारा होता है जब कि सिलिएटों में लैंगिक जनन या तो संयुग्मन द्वारा या ऑटोगेमी द्वारा होता है और कोई युग्मक नहीं बनते। इसमें कशाभियों के समान वर्णक-धर, संकुचनशील रिक्तिका और ग्रसिका नहीं होतीं।

6. **प्रोटेरोस्पांजिया** (*Proterospongia*) एक स्वच्छंदजीवी कशाभी है। इसमें एक अनियमित आकृति का जिलेटिनी मैट्रिक्स होता है जिसमें गड़े हुए अनेक जीवक एक निवह बनाते हैं। जीवक एक अण्डाकार कोशिका होता है जिसमें एक सिरे पर एक पारदर्शक कॉलर होता है और इस कॉलर के बीच में से एक कशाभ बाहर निकला होता है, ये कॉलरयुक्त जीवक बाहर की सतह पर गड़े होते हैं। मैट्रिक्स के

भीतर कुछ अमीवाभ जीवक भी होते हैं। प्रोटेरोस्पांजिया स्पंजों से बहुत मिलता-जुलता है।
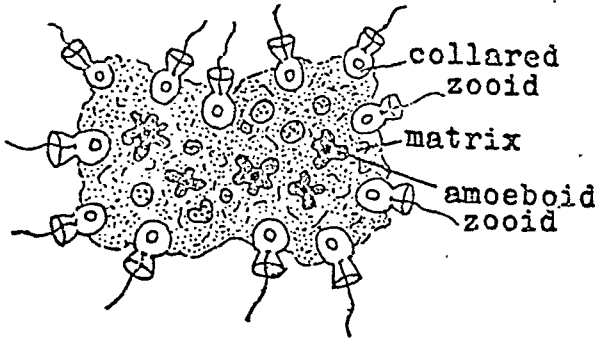
चित्र 57. प्रोटेरोस्पांजिया; Collared zooid, कॉलरयुक्त जीवक; matrix, मैट्रिक्स; amoeboid zooid, अमीवाभ जीवक ।

7. ट्राइकोनिम्फ़ा (*Trichonympha*) कशाभियों के उन अनेक वंशों (जीनसों) में से एक है जो दीमकों के आहार नाल में पाए जाते हैं। इनकी देह जटिल संरचना वाली होती है और सम्पूर्ण कोशिका की सतह के ऊपर समूहों में स्थित बहुत
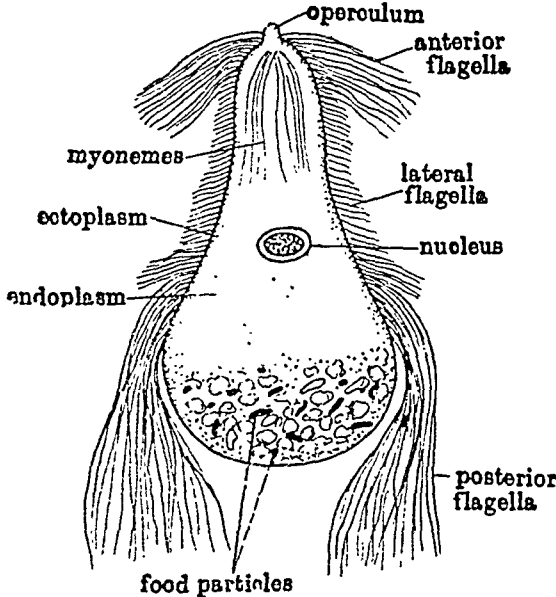
चित्र 58. ट्राइकोनिम्फ़ा कैम्पेनुला (*Trichonympha campanula*)। Operculum, ऑपरकुलम; anterior flagella, अग्र-कशाभ; lateral flagella, पार्श्व-कशाभ; nucleus, केन्द्रक; posterior flagella, पश्च-कशाभ; food particles, आहार-कण; endoplasm, एंडोप्लाज्म; ectoplasm, एक्टोप्लाज्म; myonemes, मायोनीम ।

ज्यादा संख्या में पाए जाते हैं। एक्टोप्लाज्म में तिरछे तंतु बने होते हैं, एक कोष्ठक (alveolar) परत, और अनुप्रस्थ मायोनीम पाए जाते हैं; एंडोप्लाज्म में अनुदैर्ध्य मायोनीम पाए जाते हैं। **ट्राइकोनिम्फा** और इसके परपोषी में एक सहजीवन (symbiotic) संबंध पाया जाता है, यह दीमक द्वारा खायी गयी लकड़ी के सेलुलोज को उसके लिए पाचनशील बना देता है। बिना इन कशाभियों के दीमक लकड़ी नहीं पचा सकती। यह कशाभी दीमक के भीतर रहता और वहीं से अपना भोजन प्राप्त करता है।

चित्र 59. ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्जी (*Trypanosoma gambiense*) Flagellum, कशाभ; axoneme, अक्षसूत्र; undulating membrane, तरंगित झिल्ली; nucleus, केन्द्रक; rhizoplast, राइजोप्लास्ट; metachromatic granules, मेटाक्रोमैटिक कणिकाएं; basal granule, आधार कणिका; kinetonucleus, गति-केन्द्रक; kinetoplast, काइनेटोप्लास्ट ।

8. **ट्रिपैनोसोमा** (*Trypanosoma*) मनुष्य तथा हर क्लास के कशेरुकियों के रक्त प्लाज़्मा का परजीवी है। वयस्क एक पतली, चपटी तथा सिरों पर नुकीली कोशिका होता है और उसका एक सीमांत उत्तल होता है, देह लचीला होता है और गति के दौरान बड़ी शान के साथ मुड़ता हुआ चलता है, इस पर बाहर से एक दृढ़ पेलिकल चढ़ा होता है। उत्तल दिशा पर एक नाजुक **तरंगित झिल्ली** (undulating membrane) होती है जो कि एक रूपांतरित कशाभ होता है। तरंगित झिल्ली के बाहरी सीमांत पर एक कशाभ चलता जाता है जो तरंगित झिल्ली का **अक्षसूत्र** (axoneme) बनाता है, यह देह के सामने की ओर को निकला रहता है। कशाभ एक आधार कोशिका से निकलता है जो कि देह के पिछले सिरे में स्थित रहती है। आधार कणिका के समीप केन्द्रक से व्युत्पन्न एक **गतिकेन्द्रक** अर्थात् **काइनेटोन्यूक्लियस** (kinetonucleus) होता है जो कि चलन अंगकों का नियंत्रण करता है। आधार कणिका और काइनेटोन्यूक्लियस को एक साथ मिलाकर **काइनेटोप्लास्ट** (kinetoplast) कहते हैं। कोशिका के बीच में एक बड़ा केन्द्रक होता है जो कि पोषणी होता है। एक बारीक **राइजोप्लास्ट** (rhizoplast) केन्द्रक को काइनेटोन्यूक्लियस एवं आधार कणिका के साथ जोड़ता है। साइटोप्लाज्म में सुरक्षित आहार के रूप में **मेटाक्रोमैटिक कणिकाएं** (metachromatic granules) होती हैं। परजीवी जीवन के कारण कोई मुख अथवा संकुचनशील रिक्तिका नहीं होती।

जीवन-इतिहास के दौरान आकृति बदलती रहती है, अतः यह बहुरूपी (polymorphic) है, इसमें चार विभिन्न आकारिकीय प्ररूप पाए जाते हैं जो इस

प्रकार हैं : **ट्रिपैनोसोमा** (*Trypanosoma*), **क्राइथीडिया** (*Crithidia*), **लेप्टोमोनस** (*Leptomonas*) और **लीश्मानिया** (*Leishmania*) रूप संबंधित जीनसों की विशिष्टताएं हैं।

(1) ट्रिपैनोसोमा को वयस्क अवस्था माना जाता है। काइनेटोप्लास्ट पश्च सिरे की ओर स्थित होता है और कशाभ अपनी अधिकांश लंबाई में देह से जुड़ा होता है।

(2) क्राइथीडिया में काइनेटोप्लास्ट केन्द्रक के थोड़ा सा आगे स्थित रहता है, एक तरंगित झिल्ली द्वारा देह के केवल अगले भाग से जुड़ा होता है।
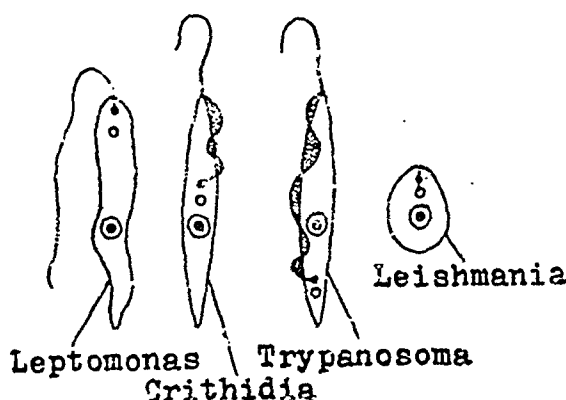
चित्र 60. ट्रिपैनोसोमा के आकारिकीय प्ररूप।
Leptomonas, लेप्टोमोनस; Crithida, क्राइथीडिया; Trypanosoma, ट्रिपैनोसोमा; Leishmania, लीश्मानिया।

(3) लेप्टोमोनस अथवा **हरपीटोमोनस** (*Herpetomonas*)। काइनेटोप्लास्ट अग्र सिरे पर होता है जहां से कशाभ निकलता है और वह देह के पार्श्व से नहीं जुड़ा होता, तरंगित झिल्ली नहीं होनी।

(4) **लीश्मानिया**। आकृति गोल होती है, काइनेटोप्लास्ट होता है किंतु न तो कशाभ होता है और न ही तरंगित झिल्ली।

ये तमाम चारों प्ररूप द्वितीयक परपोषी के देह में जीवन-चक्र के दौरान पाए जा सकते हैं, यह द्वितीयक परपोषी या तो कोई कीट होता है या जोंक, किन्तु कशेरुकियों के रक्त में केवल **ट्रिपैनोसोमा** और **लीश्मानिया** प्ररूप ही होते हैं।

जीवन-चक्र (**ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्जी में**)—**ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्जी** का संक्रमण कुरंगों (मृगों) अथवा संक्रमित व्यक्ति से अन्य मानव परपोषी में सेट्सी मक्खी **ग्लौसाइना पैल्पैलिस** (*Glossina palpalis*) के द्वारा पहुंचता है जो प्राथमिक परपोषी में से रक्त चूसते समय परजीवी को भी भीतर ले लेती है। मक्खी के आमाशय में ट्रिपैनोसोमाओं में अनुदैर्घ्य द्विविभजन होता है; आधार कणिका और काइनेटोन्यूक्लियस दोनों दो-दो में विभाजित हो जाते हैं, और फिर उसके बाद केन्द्रक का विभाजन होता

है। कोशिका लंबाई में अग्र सिरे से पश्च सिरे तक विभाजित हो जाती है, कशाभ एक अर्धांश में पहुंच जाता है और दूसरे अर्धांश में आधार कणिका से एक नया कशाभ उत्पन्न हो जाता है। उसके बाद कोशिका दो पृथक् संतति कोशिकाओं में टूट जाती है। इस संख्या वृद्धि के दौरान "पतले और लंबे प्ररूप" वाले ट्रिपैनोसोम प्रकट होते हैं जो मक्खी के प्रोवेंट्रिकुलस में पहुंच जाते हैं जहां से फिर वे लार ग्रंथियों में पहुंच जाते हैं। लार ग्रंथियों में वे कोशिकाओं में चिपक जाते हैं और उनमें अनुदैर्ध्य द्विविभजन का एक और क्रम पूरा होता है, इस द्विविभजन के दौरान उनमें क्राइथीडिया अवस्थाएं बन जाती हैं जो आगे चलकर ट्रिपैनोसोम प्ररूप में बदल जाती हैं। अब **ग्लौसाइना** संक्रामक हो जाती है और वह काटते समय **ट्रिपैनोसोमा** को मानव रक्त में छोड़ देती है। मानव रक्त में पहुंचने पर परजीवी ट्रिपैनोसोम-ज्वर पैदा करते हैं, फिर वे अनुदैर्ध्य द्विविभजन के एक और दौर में से गुजरते हैं, जिसके बाद वे प्रमस्तिष्क-मेरु (cerebro-spinal) तरल में पहुंच जाते हैं और **निद्रालु रोग** पैदा कर देते हैं जो घातक सिद्ध होता है।

अपने प्राकृतिक कशेरुकी परपोषियों को जिनमें कुरंग शामिल हैं ट्रिपैनोसोम कोई हानि नहीं पहुंचाते, अतः ये आगार परपोषियों के रूप में कार्य करते हैं जिनसे रोग-वाहकों (वेक्टरों) द्वारा संक्रमण फैलता है। मनुष्यों और पालतू ज़ानवरों में ट्रिपैनोसोमाओं द्वारा अनेक भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं (देखिए प्रोटोजोआ और रोग)। ट्रिपैनोसोम संक्रमण में ऐंट्रिसाइड, ऐंटिमनी यौगिक और ट्रिपैन रंजक इस्तेमाल किए जाते हैं।

9. **पीलोमिक्सा** (*Pelomyxa*) जिसे **कैऔस** (*Chaos*) भी कहते हैं लगभग 2.5 mm. लंबा एक बड़े आकार का अमीबा होता है। देह असममित होता है और देह की आकृति सतत बदलती रहती है। इसमें केवल एक ही बड़ा, काचाभ (hyaline) और कुंद पादाभ होता है, साइटोप्लाज़्म में ये सब पाए जाते हैं: अनेक छोटे केन्द्रक, आहार रिक्तिकाएं, शलाकाकार बैक्टीरिया, रेत के कण और ग्लाइकोजन
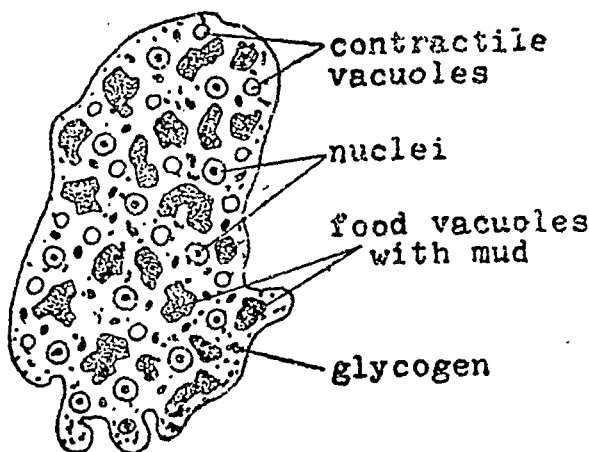
चित्र 61. **पीलोमिक्सा पैलुस्ट्रिस** (*Pelomyxa palustris*)। Contractile vacuoles, संकुचनशील रिक्तिकाएं; nuclei, केन्द्रक; food vacuoles with mud, कीचड़ से भरी आहार रिक्तिकाएं; glycogen, ग्लाइकोजन।

कणिकाओं के रूप में सुरक्षित खाद्य पदार्थ। तरल से भरी अनेक रिक्तिकाएं होती तो हैं लेकिन उनमें से संकुचनशील कोई भी नहीं होती। यह वनस्पति पदार्थ से सम्पन्न तालाबों की कीचड़ में होता है, यह कीचड़ का अंतर्ग्रहण करके आहार करता है।

जनन—(1) प्लाज्मोटोमी होती है जिसमें बहुकेन्द्रकी कोशिका द्विविभजन द्वारा दो या अधिक संतति कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है लेकिन केन्द्रक विभाजित नहीं होते, वे संतति कोशिकाओं में बंट जाते हैं। बाद में केन्द्रकीय विभाजन द्वारा हर संतति कोशिका में केन्द्रकों की सामान्य संख्या बन जाती है। (2) युग्मकों के निर्माण के द्वारा भी जनन होता है।

10. डिफ्लूजिया (*Difflugia*) अलवण जल में पाया जाने वाला एक कवचयुक्त अमीबा है। इसमें एक अण्डाकार शरीर होता है जिस पर बाहर से कण चिपक कर एक गोल अथवा अण्डाकार कवच बन जाता है। चलन के दौरान कूटपाद कवच में
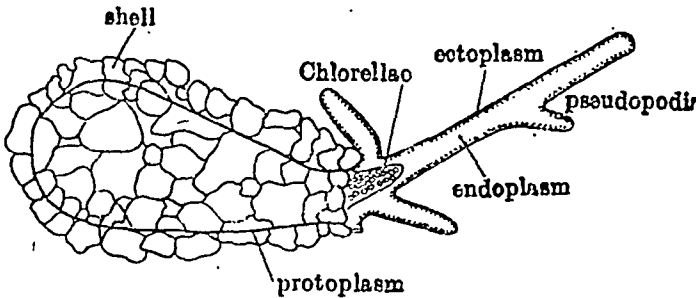
चित्र 62. डिफ्लूजिया (*Difflugia*)। Shell, कवच, Chlorella, क्लोरेला; ectoplasm, एक्टोप्लाज़्म; pseudopodia, कूटपाद; endoplasm, एंडोप्लाज़्म; protoplasm, प्रोटोप्लाज़्म।

बने एक सूराख में से एक के बाद एक बाहर को फैलते जाते हैं, उनके अंतिम सिरे अधार-स्थल पर चिपक जाते हैं, फिर कूटपाद सिकुड़ते हैं और देह समेत कवच को सामने को खींच लेते हैं। कूटपादों का संकुचन अमीबा में होने वाले संकुचन से कहीं ज्यादा होता है।

11. एंटअमीबा हिस्टोलिटिका (*Entamoeba histolytica*)—देखने में अमीबा जैसा होता है लेकिन एक तो परजीवी होने और दूसरे कोई संकुचनशील रिक्तिका के न होने में उससे भिन्न होता है। यह मनुष्य की बृहदांत्र का परजीवी है और समस्त विश्व में पाया जाता है। बाहरी एक्टोप्लाज़्म स्वच्छ होता है और भीतरी एंडो-प्लाज़्म कणिकीय होता है और उसमें एक बड़ा गोल थैलानुमा केन्द्रक होता है जिसकी परिधि पर क्रोमैटिन कणिकाएं होती हैं। आगे बढ़ते हुए सिरे पर अकेला एक बड़ा कूटपाद होता है। एंटअमीबा लाल रक्त कणिकाओं को खाता है जो कि एंडोप्लाज़्म में देखी जा सकती हैं—इन कणिकाओं की संख्या लगभग एक दर्जन तक हो सकती है। जनन सामान्यत: द्विविभजन द्वारा होता है, किंतु यह पुटी भी बनाता और अंतड़ियों की

अवकाशिका (lumen) में आ जाता है, पुटी में केन्द्रक दो बार विभाजित होकर चार केन्द्रक बना देता है, पुटियों में ग्लाइकोजन तथा अपवर्तनी क्रोमैटॉयड पिंड भी होते हैं, लेकिन
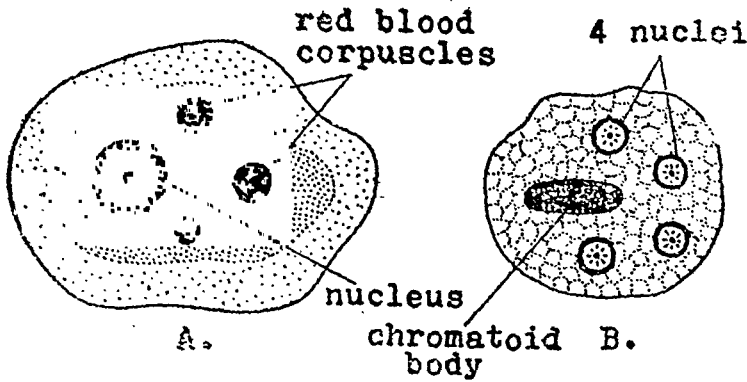
चित्र 63. A—एंटअमीबा हिस्टोलिटिका (*Entamoeba histolytica*)। B—पुटी। Red blood corpuscles, लाल रक्त कणिकाएं; nuclei, केन्द्रक; chromatoid body, क्रोमैटॉयड पिंड।

पुटियों के परिपक्व हो जाने के बाद ये समाप्त हो जाते हैं; इस रूप में पुटी संक्रामक होती है। पुटियां परपोषी की विष्ठा के साथ बाहर आ जाती हैं, और यदि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा खा ली जाती हैं तो उसकी अंतड़ियों में फूटकर उनमें से प्रत्येक में से चार शिशु **एंटअमीबा** निकल आते हैं।

एंटअमीबा हिस्टोलिटिका आंत की ऊतक कोशिकाओं में पहुंच जाता और उनका आहार करता है जिसके कारण आंत में व्रण (ulcer) पैदा हो जाते हैं, तब वह अव-म्यूकोसा (submucosa) में पहुंच कर अमीबीय पेचिश पैदा कर देता है। अमीबीय पेचिश में टट्टी अम्लीय होती है और उसमें रक्त तथा श्लेष्म होते हैं, ऐंठन भरी दर्द होती है; बाद में परजीवी अन्य अंगों में भी पहुंच जाते हैं जैसे जिगर, फेफड़े और दिमाग में जहां पर वे फोड़े बना देते हैं जिनका भीषण परिणाम निकलता है। लेकिन अनेक संक्रमणों में परजीवी कोई हानि नहीं पहुंचाता। अमीबीय पेचिश के इलाज में इमेटिन, वायोफार्म तथा कारबरसोन इस्तेमाल किए जाते हैं।

मनुष्य में परजीवी रूप में पाए जाने वाले अन्य **एंटअमीबा** ये हैं—मुंह में पाया जाने वाला **एंटअमीबा जिंजिवैलिस** (*Entamoeba gingivalis*), बड़ी अंतड़ी में पाया जाने वाला **एंटअमीबा कोलाई** (*Entamoeba coli*)। इनमें से पहला पायोरिया पैदा करता है, किंतु दूसरा अहानिकर है और हो सकता है कि लाभप्रद भी हो क्योंकि यह बैक्टीरिया को खाता है।

12. **आर्सेला** (*Arcella*) एक आम अलवणजलीय अमीबा है जो घास-पात से युक्त अलवणजलीय तालाबों में पाया जाता है। अमीबीय देह असममित होता है, यह भूरे अथवा पीले रंग का एक कूटकाइटिनी **कवच** का स्राव करता है, कवच एक खाने वाला अर्थात् एककोष्ठकी (unilocular) होता है; यह एक अर्ध-ग्लोब जैसा होता है और हो सकता है कि उसके ऊपर कुछ चित्रकारी सी हो। कवच सिलिकामय

प्रिज्मों का वना होता है जो कि टैक्टिन (tectin) नामक एक काइटिनी पदार्थ में गड़े होते हैं। साइटोप्लाज्म कवच से एक्टोप्लाज़्मी सूत्रकों द्वारा जुड़ा होता है। अधर दिशा में कवच में एक छिद्र होता है जिसे **पाइलोम** (pylome) कहते हैं, जिसमें से
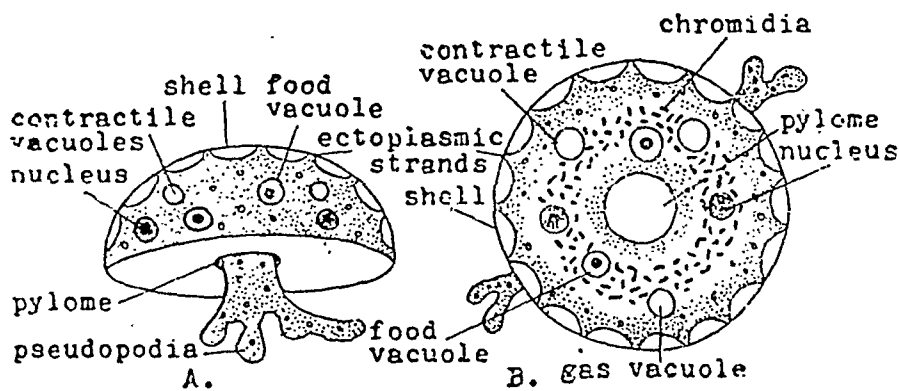
चित्र 61. आर्सेला वल्गैरिस (*Arcella vulgaris*)। A—पार्श्व। B—अधर। Chromidia, क्रोमीडिया; pylome, पाइलोम; nucleus, केन्द्रक; gas vacuole, गैस रिक्तिका; food vacuole आहार रिक्तिका; contractile vacuolo, संकुचनशील रिक्तिका; shell, कवच; endoplasmic strands, एंडोप्लाज़्मी सूत्रक; pseudopodia, कूटपाद।

3 या 4 कूटपाद वाहर को निकले होते हैं। साइटोप्लाज़्म में दो या ज्यादा थैलीनुमा केन्द्रक और क्रोमीडिया नामक कणिकाओं का एक वलय बना होता है, अब यह सिद्ध हो चुका है कि जैसा कि पहले सोचा जाता था क्रोमीडिया क्रोमैटिन के नहीं वने होते वल्कि वे स्रावक कणिकाएं होती हैं। अनेक संकुचनशील रिक्तिकाएं, आहार रिक्तिकाएं, और ऑक्सीजन से भरी कुछ **गैस रिक्तिकाएं** पाई जाती हैं। **जनन**—दो केन्द्रक विभाजित होकर चार केन्द्रक वनाते हैं, जिनमें से दो केन्द्रक कुछ साइटोप्लाज़्म के साथ पाइलोम में से होकर वाहर निकल जाते हैं, यह वाहर निकली हुई संहति एक नए कवच का स्राव करती है, दोहरे कवच वाला जंतु दो संतति-कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है जिनमें से प्रत्येक कोशिका में एक-एक कवच पहुंच जाता है, उसके वाद वे संतति-कोशिकाएं एक दूसरे से पृथक् हो जाती हैं।

13. **ऐक्टिनोफ़िस सॉल** (*Actinophrys sol*) (सूर्यजंतुक) अलवण जल और समुद्री जल दोनों में पाया जाता है जहां वह कशाभियों और शैवालों को खाता रहता है। शरीर गोल होता है जिसमें से पतले, लंवे कूटपाद अरीय रूप में निकले होते हैं, हर कूटपाद में एक केन्द्रीय अक्ष सूत्र होता है जिस पर एक चिपकने वाला, कणिकीय एक्टोप्लाज़्म मढ़ा होता है, इस प्रकार के कूटपादों को **अक्षपाद** (axopodia) कहते हैं। अक्षपादों के अक्ष सूत्र केन्द्रकीय झिल्ली से जुड़ होते हैं लेकिन वहुकेन्द्रकी **ऐक्टिनोस्फ़ीरियम** (*Actinosphaerium*) में वे केन्द्रकों से नहीं जुड़े होते वल्कि मेडुला की परिधि से निकलते हैं। अनेक रिक्तिकाओं के होने के कारण एक्टोप्लाज़्म

झागदार बन जाता है, एक ही स्थान पर बनी रहने वाली एक या दो संकुचनशील रिक्तिकाएं होती हैं, वे बहुत तेज झटके के साथ संकुचित होती हैं। इसमें एक बड़ा केन्द्रक और अनेक आहार रिक्तिकाएं होती हैं। इस जंतु में पानी के ऊपर उठते आने और नीचे डूबते जाने की क्षमता होती है। जनन द्विविभजन द्वारा होता है और साथ ही **पीडोगेमी** (paedogamy) द्वारा भी जिसमें जंतु अपने अक्षपाद सिकोड़ लेता है, ज्यादा से
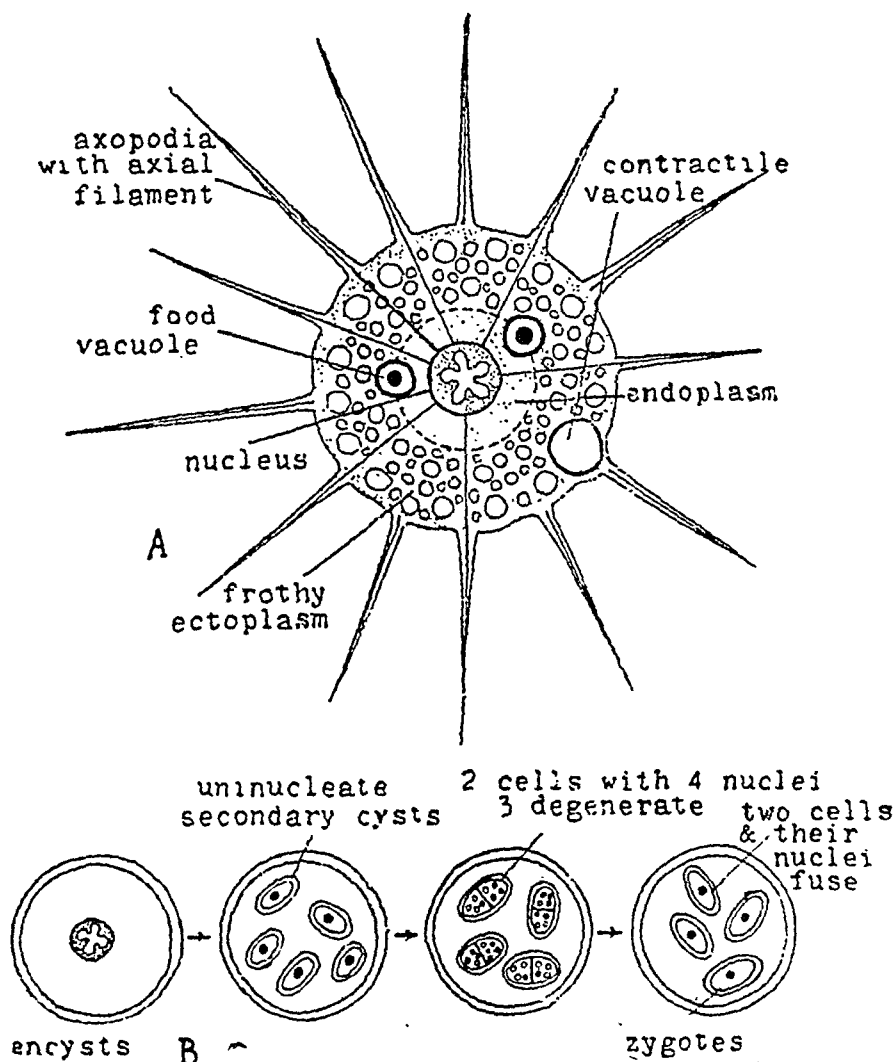
चित्र 65. A—ऐक्टिनोफ्रिस सॉल (*Actinophrys sol*)। B—पीडोगेमी। Contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; endoplasm, एंडोप्लाज़्म; frothy ectoplasm, झागदार एक्टोप्लाज़्म; nucleus, केन्द्रक; food vacuole, आहार रिक्तिका; axopodia with axial filament, अक्ष-सूत्र से युक्त अक्षपाद; encysts, पुटी बनती है; uninucleate secondary cysts, एककेन्द्रकी द्वितीयक पुटियां; 2 cells with 4 nuclei 3 degenerate, चार केन्द्रकों से युक्त दो कोशिकाएं, तीन केन्द्रक विघटित हो जाते हैं; two cells and their nuclei fuse, दो कोशिकाएं और उनके केन्द्रक समेकित हो जाते हैं; zygotes, युग्मनज।

ज्यादा संख्या में कशाभियों को खा जाता और फिर पुटी अवस्था में पहुंच जाता है, पुटी एक दोहरा आवरण होती है बाहर से जिलेटिनी और भीतर से झिल्लीदार। उसके बाद वह अनेक एककेन्द्रकी द्वितीयक पुटियों में विभाजित हो जाती है। प्रत्येक द्वितीयक पुटी में विभाजन होकर उसी पुटी में बंद दो कोशिकाएं बनती हैं, प्रत्येक कोशिका के केन्द्रक में दो बार विभाजन होने से चार केन्द्रक बन जाते हैं और क्रोमोसोमों की संख्या का ह्रास हो जाता है, चार में से तीन केन्द्रकों का विघटन हो जाता है। एक पुटी की दो कोशिकाओं और उनके केन्द्रकों में समेकन होकर एक द्विगुणित युग्मनज बन जाता है। युग्मनज में द्विविभाजन होता है और संतति-कोशिकाएं पुटी में से बाहर निकल आती हैं और वृद्धि के बाद वे वयस्क बन जाती हैं।

14. ग्लोबिजेराइना (*Globigerina*) समुद्री जीव है जो सतह पर तिरता रहता है। जंतु एक कैल्सियमी कवच का स्राव करता है जिसमें कुछ थोड़े से गोल कोष्ठ होते हैं जो कि ऊपर उठती जाती हुई एक कुंडलिनीय (helicoid) व्यवस्था में रहते हैं, कुछ स्पीशीज़ में कवच के ऊपर लंबे शूल बने होते हैं। जब कवच का कोष्ठ जंतु के लिए छोटा पड़ने लगता है तो वह एक नया अधिक बड़ा कोष्ठ स्रावित कर लेता
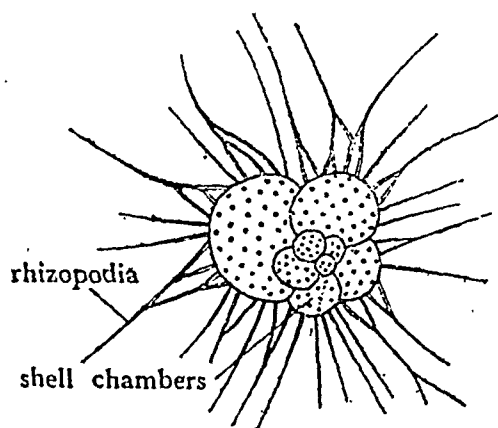
चित्र 66. ग्लोबिजेराइना बुलॉयडीज (*Globigerina bulloides*)
Rhizopodia, मूलपाद; *Shell chambers*, कवच कोष्ठ।

है, इस अनेक खानों वाले कवच को बहुकोष्ठीय कवच कहते हैं जिसके तमाम खाने एक दूसरे से संबंध बनाए रखते हैं। कवच कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है जिसमें कुछ मैग्नीशियम सल्फ़ेट और सिलिका भी होता है। कवच में छिद्र बने होते हैं जिनमें से बारीक विशाखित और संशाखित कूटपाद जिन्हें मूलपाद (rhizopodia) अथवा जालपाद (reticulopodia) कहते हैं, बाहर को निकलते हैं। जब जंतु मर जाते हैं तो उनके कवच अटलांटिक महासागर की तली में बैठते जाते हैं जहां पर वे एक भूरी "ग्लोबिजेरॉइनॉ सिंधुपंक' (*Globigerina ooze*) बनाते हैं जो चूने और सिलिका में बहुत सम्पन्न होती है, यह 2 करोड़ वर्गमील का क्षेत्र ढके हुए है। इस सिंधुपंक से चाक बनाई जाती है।

15. **एल्फ़िडियम** (Elphidium) (पुराना नाम **पॉलिस्टोमेला,** *Polystomella*) समुद्री और नुनखरे (brackish) जल में पाया जाता है जहाँ वह 30 फैदम
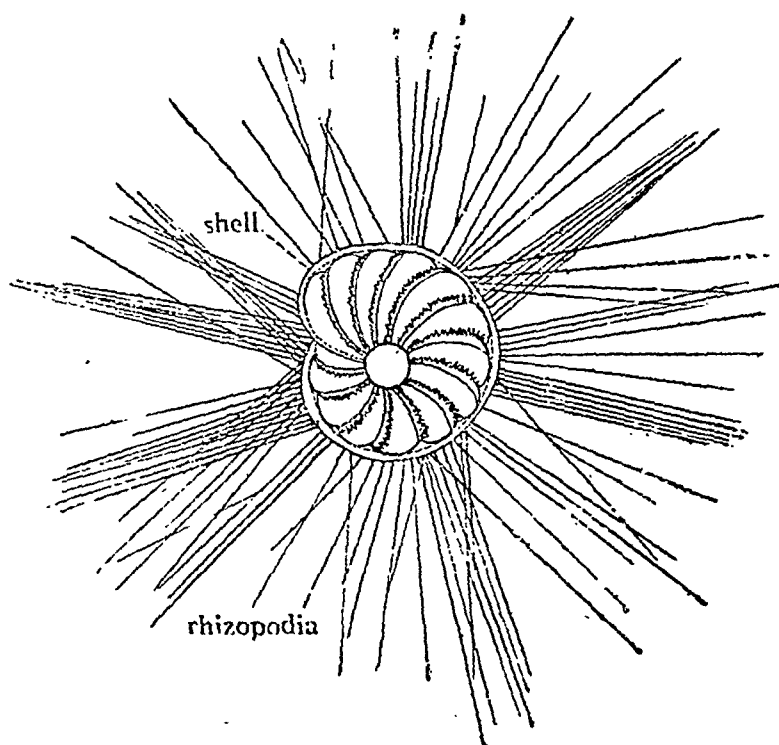
चित्र 67. एल्फ़िडियम (*Elphidium*)।
Shell, कवच; rhizopodia, मूलपाद।

तक की गहराई पर समुद्री घास-पात पर रेंगता रहता है। जंतु अनेक खानों वाला एक बहुकोष्ठीय कैल्शियमी कवच का स्राव करता है, ये खाने क्रमवत बनते और एक चपटे सर्पिल में बनते जाते हैं जिसमें खानों का हर चक्र पुराने चक्र को ढकता चला आता है, अतिव्यापी भाग **पक्षाभ प्रवर्ध** (alar processes) होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ के पिछले सीमांत पर प्रोटोप्लाज्म से भरे **पश्चोन्मुख प्रवर्धों** (retral processes) की एक पंक्ति बनी होती है। मुख का स्थान बड़े आकार के छिद्रों की एक पंक्ति ने ले लिया है। साइटोप्लाज्म कवच के सभी खानों में भरा रहता है और साइटोप्लाज्म की एक पतली परत कवच के ऊपर से होती है, इस बाहरी परत से पतले, लंबे और संशाखनशील मूलपाद निकले होते हैं जो कि चलन में योग देते हैं और डायटमों को पकड़ने के लिए एक अशन जाल (feeding net) बनाते हैं, इन्हीं डायटमों पर जन्तु आहार करता है। **एल्फ़िडियम प्राणी द्विरूपी** (dimo'phic) होता है, एक प्राणी **बृहतगोलकी** युग्मकजनक होता है जिसमें एक केन्द्रक और एक बड़ा केन्द्रीय खाना **प्राक्कोष्ठ** (proloculum) होता है, दूसरा प्राणी एक **सूक्ष्मगोलकी** अयुग्मकजनक (agamont) होता हैं जिसमें अनेक केन्द्रक और एक छोटा प्राक्कोष्ठ होता है। प्राक्कोष्ठ कवच का बनने वाला सबसे पहला खाना होता है और नन्हा जीव इसी में जीवन शुरू करता

है। जैसे-जैसे जंतु में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उसका प्रोटोप्लाज्म वहकर वाहर आता जाता है और कवच के अन्य खानों का स्राव करता जाता है, हर नया खाना
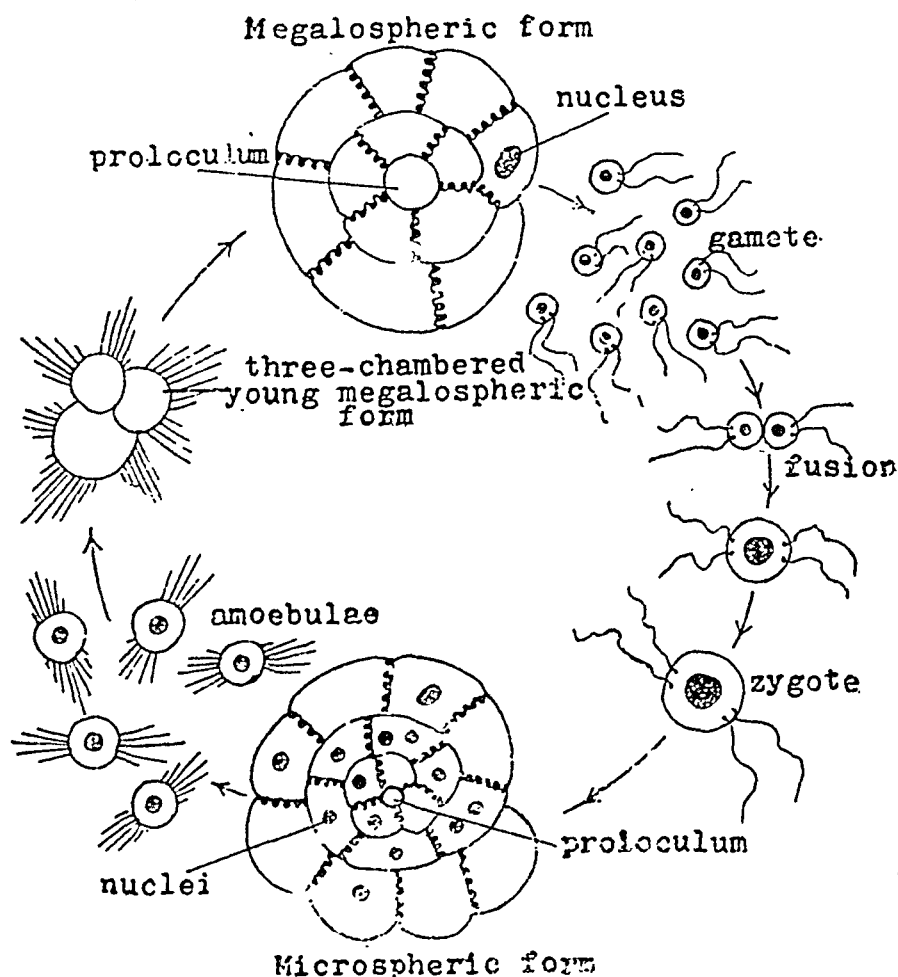
चित्र 68. एल्फ़िडियम (*Elphidium*) और इसका जीवन-चक्र।
Megalospheric form, वृहतगोलकी प्ररूप; nucleus, केन्द्रक; proloculum, प्राक्कोष्ठ; gamete, युग्मक; fusion, समेकन; zygote, युग्मनज; microspheric form, सूक्ष्मगोलकी प्ररूप; amoebulae, अमीवक; three-chambered young megalospheric form, तीन खानों वाला शिशु वृहतगोलकी प्ररूप।

अपने से पहले खाने से अधिक वड़ा होता है। वृहतगोलकी प्ररूप में विभाजन होकर अनेक द्विकशाभी **समयुग्मक** (isogametes) वन जाते हैं। दो विभिन्न जंतुओं के समयुग्मक समेकित होकर युग्मनजों का निर्माण करते हैं। युग्मनज एक सूक्ष्मगोलकी प्ररूप में विकसित हो जाता है। सूक्ष्मगोलकी प्ररूप में वहुविभजन होकर वहुत से अमीवक (amoebulae) वन जाते हैं। प्रत्येक अमीवक मूलपादों को वना लेता और

प्राक्कोष्ठ का स्राव कर लेता है, तब वह विकसित होता और कवच के अन्य खानों को बनाते हुए वृहतगोलकी प्ररूप बन जाता है। इस प्रकार **एल्फ़िडियम** में लैंगिक और अलैंगिक पीढ़ियों का एकांतरण पाया जाता है।

16. **थैलेसिकोला** (*Thalassicola*) समुद्री और वेलापवर्ती जीव है; इसमें एक छिद्रिल एवं झिल्लीदार **केन्द्रीय कैप्सूल** (central capsule) होता है जो प्रोटोप्लाज्म को दो हिस्सों में बांट देता है, एक तो कैप्सूल के भीतर वाला एंडोप्लाज्म जिसमें वर्णक कणिकाएँ, क्रिस्टल तेल बुन्दकें और क्रोमोसोमों के कई सेटों वाला एक **पॉलिएनर्जिड केन्द्रक** (polyenergid nucleus) होता है, और दूसरा भाग कैप्सूल के ठीक बाहर का तरल एक्टोप्लाज्म जिसमें आहार रिक्तिकाएँ रहती हैं। एक्टोप्लाज्म की एक वैसी ही तरल परत बाहरी सतह पर फैली होती है और इसमें से नाजुक धागे जैसे कूटपाद निकले होते हैं जिन्हें **सूत्रपाद** (filopodium) कहते हैं।
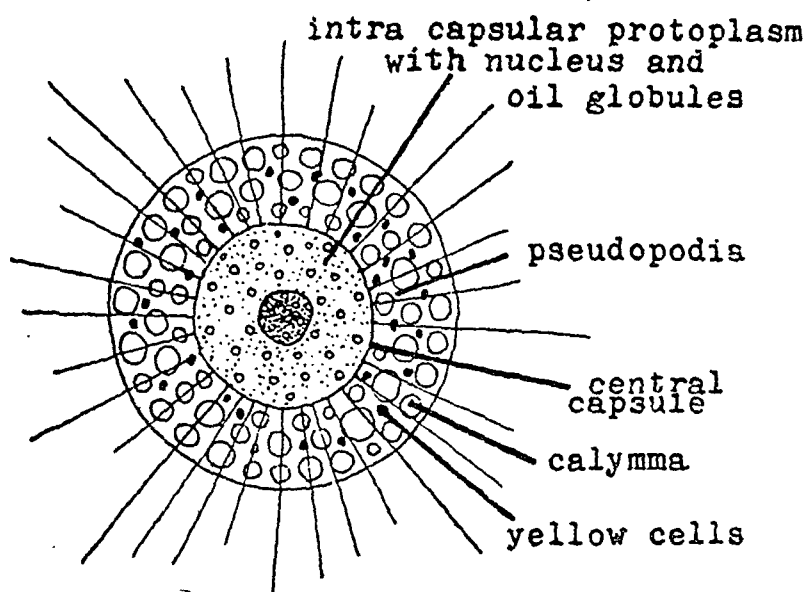
चित्र 69. थैलेसिकोला पोलैजिका (*Thalassicola pelagica*) (बिना कंकाल वाला रेडियोलेरियन)। Intracapsular protoplasm with nucleus and oil globules, केन्द्रक एवं तेल बुन्दकों से युक्त अंत: कैप्सूली प्रोटोप्लाज्म; pseudopodia, कूटपाद; central capsule, केन्द्रीय कैप्सूल; *calymma*, कैलिमा; yellow cells; पीली कोशिकाएं।

एक्टोप्लाज्म के भीतरी और बाहरी क्षेत्रों के बीच में एक गाढ़ा बहुत ज्यादा रिक्तिकामय जिलेटिनी पदार्थ होता है जिसे **कैलिमा** (calymma) कहते हैं। कैलिमा तिरने में सहायता देने वाला उपकरण होता है, जब यह पटक जाता है तो जंतु नीचे डूबता जाता है, जब इसमें पुन: बुदबुदे बन जाते हैं तो जंतु ऊपर को उठता चला आता है। कैलिमा में अनेक आहार रिक्तिकाएँ तथा पीली कोशिकाएँ (yellow cells) नामक बहुसंख्यक सहजीवी जूओजैन्थेला (Zooxanthella) होते हैं। जूओजैन्थेला सहजीवी

शेवाल अथवा कशाभी हैं जो कि पामेला अवस्था में होते हैं। संकुचनशील रिक्तिका नहीं होती। अन्य अधिकतर रेडियोलेरिया में एक केन्द्रीय कैप्सूल तथा एक सिलिकामय कंकाल होता है, यह कंकाल **थैलेसिकोला** में नहीं होता। रेडियोलेरिया का कंकाल लंबे शूलों तथा सुइयों का बना हो सकता है जो केन्द्रीय कैप्सूल में से अरीय रूप में निकले होते और देह के बाहर को फैले होते हैं (जैसे कि **एकैन्थोमीट्रा**, *Acanthometra* में), या हो सकता है कि यह कंकाल जालकनुमा ऐसे गोलों का बना हो जो संकेन्द्रीय अर्थात् एक के भीतर एक के रूप में व्यवस्थित हों। रेडियोलेरिया के सिलिकामय कंकाल एक "रेडियोलेरियन सिंधुपंक" बनाते हैं जो हिन्द और प्रशांत महासागरों के तल में तीस लाख वर्ग मील के क्षेत्र में फैला हुआ है। जनन द्विभजन एवं बहुविभजन द्वारा होता है। **थैलेसिकोला** में केन्द्रीय कैप्सूल जंतु से पृथक् होकर समुद्र में नीचे बैठता जाता है, उसका केन्द्रक और साइटोप्लाज्म विभाजित होकर अनेक छोटी-छोटी कोशिकाएँ बना लेता है जिन्हें **समस्पोर** (isospore) कहते हैं, प्रत्येक समस्पोर में दो छोटे-बड़े कशाभ बन जाते हैं, समस्पोर कैप्सूल में से मुक्त हो जाते और विकसित होकर वयस्क बन जाते हैं।
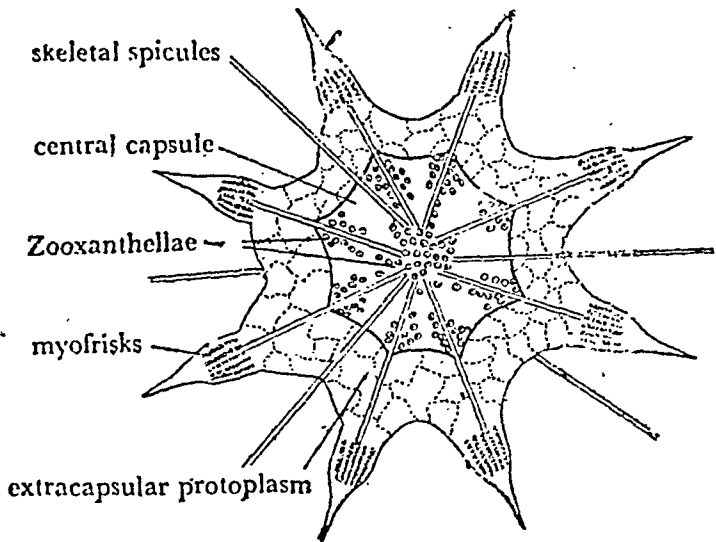
चित्र 70. एकैन्थोमीट्रा (*Acanthometra*) (कंकाल से युक्त एक रेडियोलेरियन)। Skeletal spicules, कंकाली कंटिकाएँ; central capsule, केन्द्रीय कैप्सूल; zooxanthellae, ज़ूओज़ैन्थेला; myofrisks, मायोफ्रिस्क; extracapsular protoplasm, कैप्सूलबाह्य प्रोटोप्लाज्म।

17. **आइमेरिया** (*Eimeria*)—**आइमेरिया** में अनेक स्पीशीज आती हैं जो ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा, मोलस्का और कशेरुकियों में परजीवी रूप में पायी जाती हैं। **आइमीरिया शुबर्जाई** (*Eimeria schubergi*) जो कि कनखजूरे **लिथोबियस** (*Lithobius*) का परजीवी है उपआर्डर आइमेराइना उपआर्डर का एक प्रतिरूपी उदाहरण

माना जा सकता है। यह इस कनखजूरे के आहार-नाल की एपिथीलियम-कोशिकाओं का अंतःकोशिकीय परजीवी है। एक हंसियाकार स्पोरोजोआइट परपोषी के आहार-नाल की किसी एपिथीलियम-कोशिका में घुस जाता है जहाँ पर वह विकसित होकर गोल वयस्क ट्रोफोजोआइट बन जाता है जिसमें कणिकीय प्रोटोप्लाज़्म होता है। ट्रोफोजोआइट में बहुविभजन होता है और तब उसे **शाइजॉन्ट** (schizont) कहते हैं, और शाइजॉन्ट के विभजन को **शाइजोगोनी** (schizogony) कहा जाता है। शाइजॉन्ट का केन्द्रक अनेक केन्द्रकों में विभाजित हो जाता है जो सतह पर खिसक आते हैं, प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर थोड़ा-सा प्रोटोप्लाज़्म घिर जाता है और इस प्रकार बड़ी संख्या में मुद्गराकार **शाइजोजोआइट** (schizozoite) अथवा **मीरोजोआइट** (merozoite) बन जाते हैं। मीरोजोआइट एपिथीलियम कोशिका में से बाहर आ जाते हैं, विकसित होकर पोषाणु बन जाते और उनमें पुनः शाइजोगोनी होती है, कुछ पीढ़ियों तक यही क्रम चलता रहता है।

स्पोरोगोनी—बार-बार अलैंगिक प्रफलन के अनेक चक्र हो चुकने के बाद, कुछ मीरोजोआइट पोषाणु न बनकर परपोषी की कोशिका में घुस जाते हैं, वे धीरे-धीरे विकसित होते जाते और दो प्रकार की कोशिकाओं का निर्माण करते हैं: **सूक्ष्मयुग्मककोशिका** और **गुरुयुग्मककोशिका**। सूक्ष्मयुग्मककोशिका बड़ी और गोल होती है, यह विभाजित होकर बहुसंख्यक संकीर्ण, द्विकशाभी **सूक्ष्मयुग्मक** अथवा **अंशयुग्मक** (merogametes) बनाती है। गुरुयुग्मककोशिका गोल किन्तु छोटी होती है, इसमें गहरा स्टेन लेने वाली अपवर्तनी कणिकाएँ होती हैं, यह अपने केन्द्रक में से क्रोमैटिन बाहर निकाल देती है और एक अकेला **गुरुयुग्मक** अथवा **पूर्णयुग्मक** (hologamete) बनाती है। युग्मक निकल कर आहार-नाल की अवकाशिका में आ जाते हैं जहाँ पर असमयुग्मनन (anisogamy) की विधि द्वारा एक सूक्ष्मयुग्मक गुरुयुग्मक का निषेचन करके **युग्मनज** बना देता है, निषेचन के दौरान सूक्ष्मयुग्मक के कशाभ गिरा दिये जाते हैं। युग्मनज के चारों तरफ एक कड़ी प्रतिरोधी पुटी बन जाती है और इस प्रकार एक गोल **अंडपुटी** का निर्माण हो जाता है जिसमें एक सूराख अथवा **माइक्रोपाइल** (micropyle) होता है। अंडपुटी आकार में नहीं बढ़ती, यह दो बार विभाजित होकर चार **स्पोरपुटियाँ** (sporocysts) बनाती है जिनमें से प्रत्येक के चारों तरफ एक काइटिनी द्वितीयक पुटी बन कर एक **स्पोर** बन जाता है, **अंडपुटी को चतुष्स्पोरी** (tetrasporous) कहते हैं क्योंकि इसमें चार स्पोर होते हैं। प्रत्येक स्पोर में विभाजन होकर दो **स्पोरोजोआइट** बन जाते हैं। स्पोरों को **द्विप्राणिक** (dizoic) कहते हैं क्योंकि हर एक में दो-दो स्पोरोजोआइट होते हैं। इस प्रकार स्पोरोगोनी में एक अतिरिक्त पीढ़ी होती है जिसके द्वारा प्रत्येक स्पोर से दो स्पोरोजोआइट बन जाते हैं। चार स्पोरों से युक्त अंडपुटी आहार-नाल की अवकाशिका में मुक्त पड़ी रहती है, यह परपोषी की विष्ठा के साथ बाहर निकल जाती है। यदि अंडपुटी को कोई और कनखजूरा खा लेता है तो पुटी की दीवारें घुल जाती हैं और आठ स्पोरोजोआइट माइक्रोपाइल में से होकर बाहर आ जाते हैं और वे एपिथीलियमी कोशिकाओं

में घुस जाते हैं। अंडपुटी और स्पोरोजोआइट के विभाजन में कुछ अवशेषी प्रोटोप्लाज़्म बच रह जाता है।
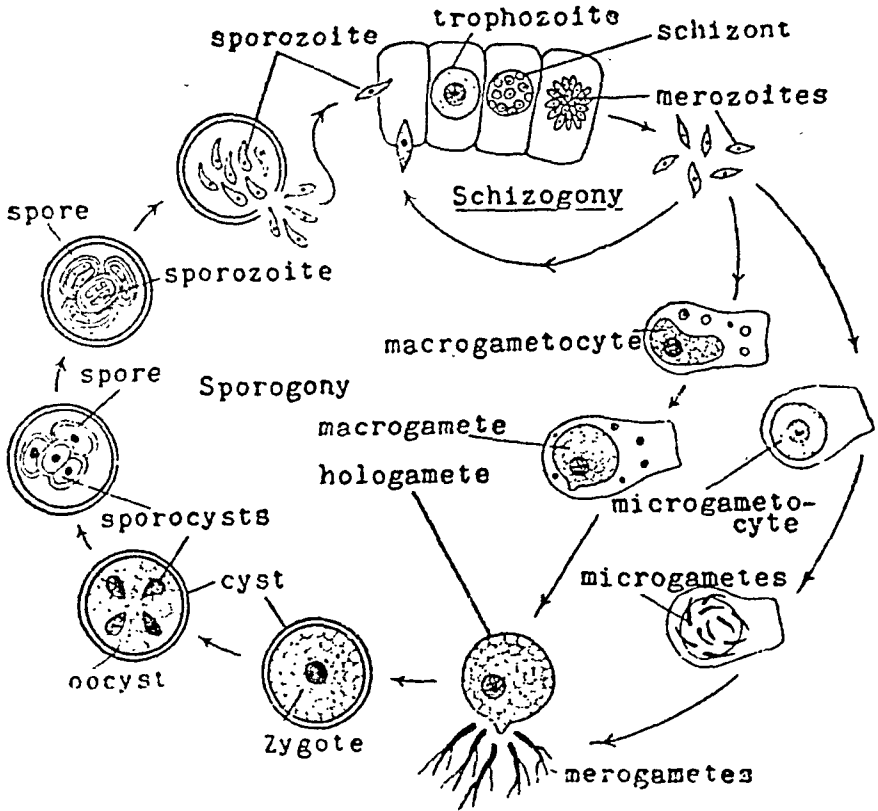
चित्र 71. आइमेरिया शुबर्जाई (*Eimeria schubergi*) का जीवन-चक्र। Sporozoite, स्पोरोजोआइट; trophozoite, ट्रोफोजोआइट; schizont, शाइजॉन्ट; merozoite, मीरोजोआइट; schizogony, शाइजोगोनी; macrogametocyte, गुरुयुग्मककोशिका; macrogamete, गुरुयुग्मक; hologamete, पूर्णयुग्मक; microgametocyte, सूक्ष्मयुग्मककोशिका; microgametes, सूक्ष्मयुग्मक; merogametes, अंशयुग्मक; zygote, युग्मनज; cyst, पुटी; oocyst, अंडपुटी; sporocysts, स्पोरपुटियां; spore, स्पोर; sporogony, स्पोरोगोनी।

आइमेरिया की विभिन्न स्पीशीज कशेरुकी और अकशेरुकी दोनों परपोषियों में पायी जाती हैं। **आइमेरिया परफोरेन्स** (*E. perforans*) खरगोश की छोटी अंतड़ी में पाया जाता है, **आ० स्टाईडी** (*E. steidae*) खरगोश की पित्त वाहिनी में, **आ० बोविस** (*E. bovis*) मवेशियों के आहार-नाल में और **आ० टेनेला** (*E. tenella*) मुर्गियों के सीकम में। ये शीतोष्ण प्रदेशों के खरगोशों, मवेशियों और कुक्कुटों में भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं।

18. **ग्रीगैराइना** (*Gregarina*) एक स्पोरोजोअन परजीवी है जो कीटों और ऐनेलिडों की आंत्र अथवा देह-गुहा में पाया जाता है। वयस्क अथवा ट्रोफ़ोजोआइट कोशिकाबाह्य होता है, इसमें एक मोटा क्यूटिकल होता है, एक्टोप्लाज़्म में मायोनीम होते हैं जो भीतर की ओर विकसित होते जाते और देह को दो भागों में विभाजित कर देते हैं—एक अग्र **प्रोटोमेराइट** (protomerite) और एक पश्च **ड्यूटोमेराइट** (deutomerite) जिसमें केन्द्रक होता है। जब ट्रोफोजोआइट आहार नाल से चिपकता है
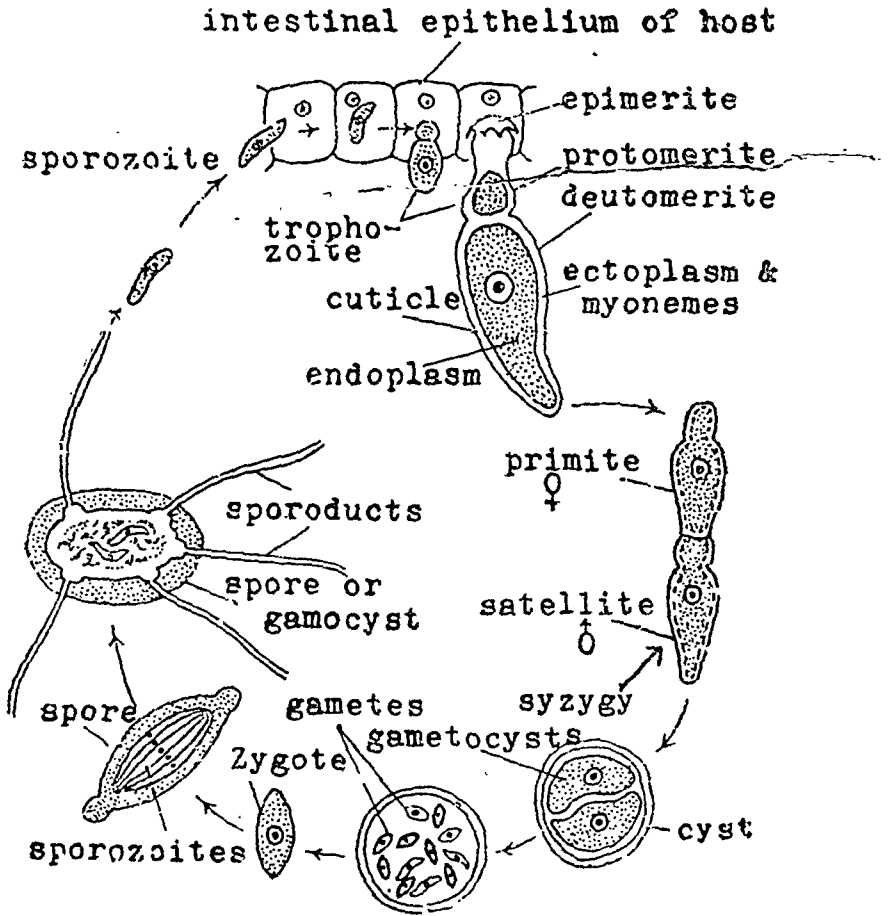
चित्र 72. ग्रीगैराइना ब्लैटेरम और उसका जीवन-चक्र। sporozoite, स्पोरोजोआइट; intestinal epithelium of host, परपोषी का आंत्र एपिथीलियम; epimerite, एपिमेराइट; protomerite, प्रोटोमेराइट; deutomerite, ड्यूटोमेराइट; trophozoite, ट्रोफोजोआइट; ectoplasm & myoneme, एक्टोप्लाज़्म एवं मायोनीम; cuticle, क्यूटिकल, endoplasm, एंडोप्लाज्म; primite, प्राइमाइट; satellite, सेटेलाइट; syzygy, सिजिगी; cyst, पुटी; gametocysts, युग्मकपुटियां; gametes, युग्मक; zygote, युग्मनज; sporozoite, स्पोरोजोआइट; spore, स्पोर; gamocyst, गैमोसिस्ट; sporoducts, स्पोरवाहिनियां।

तो यह एक अग्र **एपिमेराइट** (epimerite) प्राप्त कर लेता है जिसमें अरीय शूल बने होते हैं, यह एपिमेराइट द्वारा चिपका रहता है लेकिन जब पोषाणु आहार के नाल की अवकाशिका में निकल आता है तब यह एपिमेराइट समाप्त हो जाता है।

जीवन-चक्र—दो ट्रोफोजोआइट एक के पीछे एक की दशा में पास-पास आते हैं, इसे सिजिगी कहते हैं, श्रृंखला में आगे वाला सदस्य **प्राइमाइट** (primite) अथवा मादा होता है और पीछे वाला सदस्य **सैटेलाइट** (satellite) अथवा नर। ट्रोफोजोआइट गोल बन जाते हैं और तब उन्हें **युग्मककोशिकाएं** कहते हैं जो एक पुटी का स्राव करते हैं। युग्मककोशिकाएँ बहुविभजन के द्वारा **युग्मकों** को जन्म देती हैं जो कुछ स्पीशीज में समयुग्मक और कुछ में असमयुग्मक होते हैं। अलग-अलग युग्मककोशिकाओं के युग्मक समेकित होकर युग्मनज बनाते हैं। युग्मनज एक **स्पोरपुटी** का स्राव करके स्पोर बनाते हैं। स्पोर में अलैंगिक विधि से विभाजन होकर आठ **स्पोरोजोआइट** बनते हैं। स्पोर में **स्पोरवाहिनियाँ** (sporoducts) नामक अनेक नलिकाएँ बनकर जटिल व्यवस्था बन जाती है। स्पोरवाहिनियों में से स्पोरोजोआइट बाहर आ जाते और परपोषी की विष्ठा के साथ-साथ बाहर निकल जाते हैं जहाँ से कीटों में संक्रमण पहुँच जाता है, इन कीटों में ये आंत्र-एपिथीलियम की कोशिकाओं में घुस जाते और अंतःकोशिकीय बन जाते हैं। स्पोरोजोआइट विकसित होकर ट्रोफोजोआइट बन जाते हैं जो चिपके रहते हैं लेकिन आंत्र कोशिकाओं से बाहर को निकले होते हैं, बाद में ट्रोफोजोआइट आंत्र की अवकाशिका में आ जाते हैं।

19. **निक्टोथीरस** (*Nyctotherus*) एक परजीवी सिलिएट है जो मेंढकों के
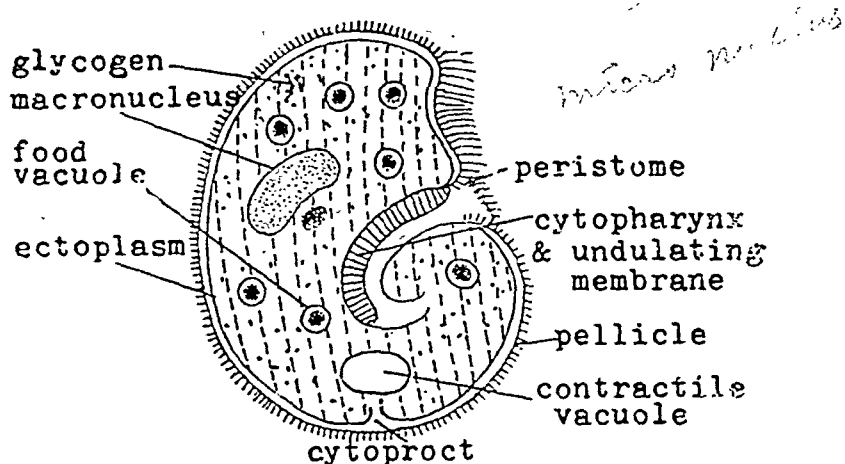
चित्र 73. निक्टोथीरस कॉर्डिफार्मिस (*Nyctotherus cordiformis*)
Peristome, परिमुख; cytopharynx and undulating membrane, कोशिकाग्रसनी एवम् तरंगित झिल्ली; pellicle, पेलिकल; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका; cytoproct, कोशिकागुदा; ectoplasm, एक्टोप्लाज्म; food vacuole, आहार रिक्तिका; macronucleus, गुरुकेन्द्रक; glycogen, ग्लाइकोजन।

मलाशय और काकरोचों की अंतड़ी में रहता है। इसका शरीर गुर्दे की आकृति का होता है जिसमें बराबर आकार के सिलिया की अनुदैर्ध्य पंक्तियाँ बनी होती हैं, तथा परिमुख पर बड़े अधिमुख सिलिया की एक पंक्ति होती है। बड़ा परिमुख एक लम्बी घुमावदार कोशिकाग्रसनी में खुलता है जिसमें सिलिया बड़े और घड़ी की सुइयों की दिशा में चक्कर खाते जाते हैं। देह के अगले अर्धभाग में एक बड़ा गुर्दे की आकृति का गुरुकेन्द्रक तथा एक छोटा सूक्ष्मकेन्द्रक होता है। पश्च सिरे के समीप एक अकेली संकुचनशील रिक्तिका होती है और पश्च सिरे पर एक स्थायी **कोशिका-गुदा** होती है।

जनन—दो जन्तुओं में केन्द्रकीय पदार्थ के आदान-प्रदान के साथ संयुग्मन होता है। संयुग्मी पृथक् हो जाने पर उनमें द्विविभजन होता है। ये संततिकोशिकाएँ पुटी अवस्था में आ जातीं और विष्ठा के साथ बाहर निकल जाती हैं। इन पुटियों को टेडपोल खा जाते हैं जिनमें वे स्फोटित (hatch) होतीं और वयस्कों के रूप में विकसित होकर मलाशय में पहुँच जाती हैं।

20. **बलेंटिडियम** (*Balantidium*) एक सिलिएट परजीवी है जो सूअरों, बन्दरों और मानव की बड़ी अन्तड़ियों में पाया जाता है। कुछ स्पीशीज मेंढक, मछली, काकरोच तथा घोड़े में परजीवी होती हैं। यह अण्डे की आकृति का जन्तु है जो अगले सिरे पर नुकीला तथा पिछले सिरे पर गोल होता है। देह पर छोटे
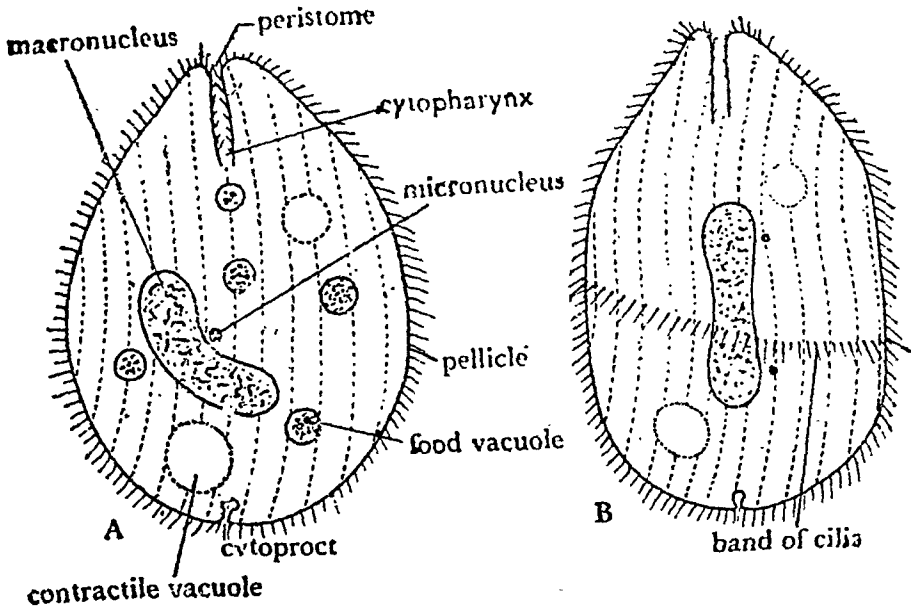
चित्र 74. A--**बैलेंटिडियम कोलाई** (*Balantidium coli*) B-द्विविभजन। Macronucleus, गुरुकेन्द्रक; peristome, परिमुख; cytopharynx, कोशिकाग्रसनी; micronucleus, सूक्ष्मकेन्द्रक; pellicle, पेलिकल; food vacuole, आहार रिक्तिका; cytoproct, कोशिकागुदा; contractile vacuole, संकुचनशील रिक्तिका, band of cilia, सिलिया की पट्टी।

सिलिया की अनुदैर्ध्य पंक्तियाँ बनी होती हैं। अगले सिरे पर लम्बे सिलिया से युक्त एक परिमुख होता है, परिमुख के नीचे एक मुख होता है जो बिना सिलिया वाली एक छोटी कोशिकाग्रसनी में खुलता है। (मेंढक के परजीवी **बै० एंटोज़ूआॅन**, *B. entozoon* में एक शंक्वाकार गढ़ा होता है।) इसमें एक बड़ा सौसेज की आकृति का गुरुकेन्द्रक होता है जो शरीर के बीच में तिरछा पड़ा होता है और इसी की अवतलता में इसके समीप एक छोटा सूक्ष्मकेन्द्रक होता है। अधिकतर प्रोटोजोआ से भिन्न इसमें दो संकुचनशील रिक्तिकाएँ होती हैं, एक मध्य के समीप और दूसरी अधिक बड़ी रिक्तिका पश्च सिरे पर होती है। आहार रिक्तिकाएँ अनेक होती हैं जिनमें मानवीय लाल रक्त कोशिकाएँ तथा कोशिका खण्ड भरे होते हैं, यह अपने परपोषी की कोलन से स्टार्च और यीस्ट भी खाता रहता है। पश्च सिरे पर एक स्थायी कोशिकागुदा होती है। **जनन** अनुप्रस्थ द्विविभजन द्वारा होता है और कभी-कभी संयुग्मन द्वारा जिसमें केन्द्रकीय पदार्थ का आदान-प्रदान और गुरुकेन्द्रक का पुनर्गठन होता है, उसके बाद द्विविभजन होता है। परजीवी मोटी दीवार वाली पुटियाँ भी बनाता है, लेकिन पुटी के भीतर प्रगुणन नहीं होता। मनुष्यों में **बैलेंटिडियम कोलाई** से कोलन तथा सीकम में अल्सर बन जाते हैं और रक्तस्राव होता है, जिसके कारण पुरानी पेचिश हो जाती है। 10 से 15 दिन तक औरियोमाइसिन तथा टेरामाइसिन देकर इन परजीवियों को समाप्त किया जा सकता है।

बैलेंटिडियम को अब उपक्लास होलोट्राइका, आर्डर ट्राइकोस्टोमैटाइडा में रखा जाता है न कि स्पाइरोट्राइकिया में क्योंकि : 1. इसके परिमुखीय सिलिया देह के काइनेटियों से बनते हैं जिनसे द्विविभजन के दौरान देह के मध्य के नीचे अधिक शक्तिशाली और लम्बे सिलिया की एक असम्पूर्ण पट्टी बन जाती है, इसके विपरीत स्पाइरोट्राइकिया में परिमुखी सिलिया या तो पहले के मुख-काइनेटोसोमों से या स्टोमेटोजेनिक काइनेटियों से विकसित होते हैं। 2. इसमें कोई मुख-झिल्लिका अथवा मुख-सिलिया नहीं होते जो स्पाइरोट्राइकिया में सुव्यक्त होते हैं।

प्रोटोजोआ पर टिप्पणियाँ

केन्द्रक—प्रोटोजोआ के केन्द्रकों में मेटाजोआ के केन्द्रकों की अपेक्षा साइज, रूप तथा संरचना में कहीं ज्यादा विविधता देखने को मिलती है। प्रोटोजोआ के केन्द्रक में केन्द्रक झिल्ली, न्यूक्लियोप्लाज्म, ऑक्सीक्रोमैटिन, बेसिक्रोमैटिन होते हैं तथा एक न्यूक्लियोलस भी हो सकता है। केन्द्रक झिल्ली कोशिका विभाजन में भी समूची बनी रहती है; प्रोटोजोआ में विभिन्न प्रकार के केन्द्रक पाये जाते हैं। 1. **आशयी केन्द्रक** (vesicular nucleus) में न्यूक्लियोप्लाज्म की मात्रा अधिक होती है, क्रोमैटिन थोड़ा होता है और यह छोटी-छोटी कणिकाओं के रूप में होता है, एक्रोमैटिन (ऑक्सीक्रोमैटिन) अधिक तरल होता है और उसका जालक, यदि मौजूद हुआ तो मोटा होता है; बेसिक्रोमैटिन अथवा ऑक्सीक्रोमैटिन अथवा इन दोनों का बना एक गोल एण्डोसोम होता है, उदाहरण **यूग्लीना, आर्सेला**। 2. **संहत केन्द्रक**

(massive या compact nucleus) में न्यूक्लियोप्लाज्म की मात्रा कम होती है, क्रोमैटिन अधिक होता है जो इकसार छितराई हुई कणिकाओं के रूप में होता है, अक्रोमैटिन गाढ़ा और एक महीन जाल बनाता हुआ होता है, उदाहरण **अमीबा**।
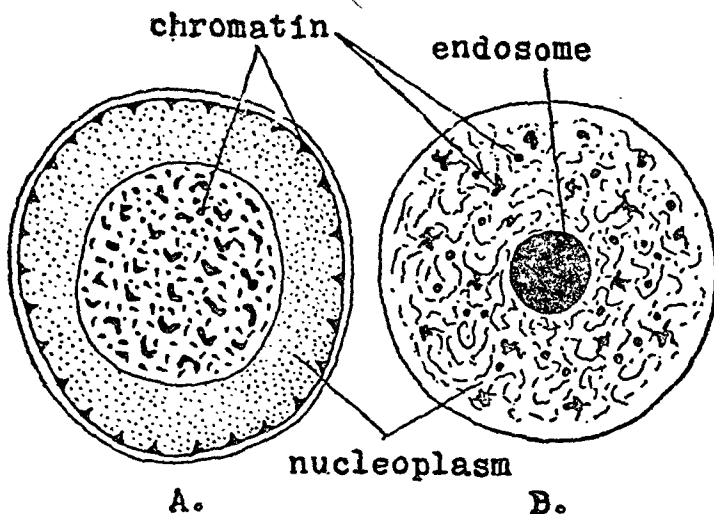
चित्र 75. दो केन्द्रक। A—संहत B—आशयी
Chromatin, क्रोमैटिन; endosome, एंडोसोम; nucleoplasm, न्यूक्लियोप्लाज्म।

अधिकतर प्रोटोजोआ में केन्द्रकों की संरचना आशयी और संहत केन्द्रकों के बीच की होती है। 3. **पॉलीएनर्जिड केन्द्रक** (polyenergid nucleus) में केन्द्रक झिल्ली के भीतर एक क्रोमोसोम-सेट होने के बजाए कई क्रोमोसोम-सेट होते हैं, ऐसा केन्द्रक झिल्ली के अन्दर-अन्दर बार-बार माइटोसिस होते रहने के कारण होता है। लेकिन अन्त में क्रोमोसोम-सेट बाहर निकल आते हैं और प्रत्येक से एक नया केन्द्रक बन जाता है। पॉलीएनर्जिड दशा स्पोर निर्माण के लिए व्यवस्था पैदा करना है, उदाहरण रेडियोलेरिया।

प्रायः प्रोटोजोआ में अकेला एक ही केन्द्रक होता है, लेकिन अनेक उदाहरणों में एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। जब केन्द्रक एक से ज्यादा होते हैं तो वे या तो समान हो सकते हैं या असमान। सार्कोडाइना में अनेक समरूप केन्द्रक होते हैं जैसे **आर्सेला** में दो और **पीलोमिक्सा** में सैकड़ों। **ट्रिपैनोसोमा** में दो असमरूप केन्द्रक होते हैं जिनमें से प्रधान केन्द्रक एक **पोषकेन्द्रक** (trophonucleus) होता है जो चयापचय तथा पोषण क्रियाओं का नियन्त्रण करता है, दूसरा **गतिकेन्द्रक** (kinetonucleus) होता है जो चलन अंगकों का नियमन करता है, इनमें से पहला केन्द्रक आशयी प्रकार का होता है और दूसरा संहत प्रकार का। 4. **द्विरूपी केन्द्रक** (dimorphic nuclei) सिलियोफोरा में पाये जाते हैं, इनमें से बड़ा वाला गुरु-केन्द्रक होता है जिसमें ट्रोफोक्रोमैटिन भरा होता है, यह प्राणी के कायिक कार्यों का नियन्त्रण करता है; यह अमाइटोसिस विधि से विभाजन करता है और संयुग्मन में

विलीन होकर संकेन्द्रक के पदार्थ से पुनः बनता है। गुरुकेन्द्रक के स्वरूप में बहुत विविधता पायी जाती हैं। दूसरा केन्द्रक एक छोटा गोल **सूक्ष्मकेन्द्रक** होता है, सूक्ष्म-केन्द्रक एक या अधिक हो सकते हैं। इसमें इडिओक्रोमैटिन होता है और यह जनन का नियन्त्रण करता है। यह माइटोसिस विधि से द्विविभजन होता है। गुरुकेन्द्रक अशक्त और विघटित हो जाने पर इसी में से बनता है।

पोषण

प्रोटोजोआ में पोषण निम्नलिखित प्रकार का होता है। 1. **स्वपोषण** (autotrophic nutrition)—क्लोरोफिल अथवा किसी अन्य सम्बन्धित वर्णक से युक्त प्रोटोजोआ सरल अकार्बनिक पदार्थों से सम्मिश्र कार्बनिक भोजन का निर्माण कर सकते हैं, जैसे **यूग्लीना, नाक्टीलूका**। अक्सर वे प्रोटीन पिंड भी हो सकते हैं जिन्हें पाइरिनॉयड कहते हैं और जो प्रकाश-संश्लेषण के केन्द्र होते हैं। कुछ प्रोटोजोआ में वर्णकधर नहीं होते वल्कि उनमें क्लोरोफिल-धारक शैवाल **जूओजैन्थेला** अथवा **जूओक्लोरेला** होते हैं जो परपोषी के वास्ते प्रकाश-संश्लेषण द्वारा कार्बनिक भोजन का निर्माण करते हैं, जैसे **स्टेन्टर, थैलेसिकोला**। स्वपोषी उदाहरणों में नाइट्रोजन के स्रोत के रूप में विभिन्न नाइट्रेट और ऐमोनियम यौगिक पर्याप्त होते हैं। 2. **प्राणिपोषण** (Zootrophic nutrition)—कुछ प्रोटोजोआ को अपने आहार के रूप में पूर्वनिर्मित प्रोटीन की आवश्यकता होती है, उनमें अपना भोजन बनाने के लिये सरल पदार्थों के इस्तेमाल कर सकने की क्षमता नहीं होती, इस प्रकार के प्रोटोजोआ को प्राणिपोषी कहते हैं जैसे **अमीबा**। जटिल भोजन किसी अस्थायी छिद्र अथवा स्थायी मुख द्वारा भोजन भीतर ग्रहण किया जाता है, यह भोजन आहार रिक्तिकाओं में बन्द हो जाता है जो अपने भीतर द्रव भी ले जाती हैं। प्राणिपोषी प्रोटोजोआ प्रोटीनों, वसाओं और स्टार्चों का पाचन कर सकते हैं। आहार-रिक्तिकाएँ **प्रवाह गतियों (अमीबा)** अथवा **क्रमाकुंचन** (peristalsis) **(वार्टिसेला)** द्वारा एण्डोप्लाज्म में घूमती जाती हैं। बिना पचा हुआ पदार्थ यदि पेलिकल नहीं हुआ तो किसी भी स्थान पर से **(अमीबा)** और यदि पेलिकल हुआ तो अस्थायी अथवा अस्थायी कोशिका गुदा में से **(पैरामिशियम)** निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता है। 3. **मृतजीवी पोषण** (saprozoic अथवा saprophytic nutrition)—कुछ प्रोटोजोआ अपने शरीर की सतह से घुली आकृति में जटिल कार्बनिक पदार्थों को अपने भीतर सोख लेते हैं, इन्हें मृतजीवी कहते हैं। मृतजीवी प्राणियों को अपनी पोषण आवश्यकताओं के लिए ऐमोनियम लवणों, ऐमिनो अम्लों अथवा पेप्टोनों की आवश्यकता पड़ती है। जन्तुओं और पौधों के जल में क्षय हो जाने के द्वारा प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेटों का निर्माण होता है। मृतजीवी प्रोटोजोआ स्वच्छन्दजीवी हो सकते हैं **(यूग्लीना)** अथवा परजीवी **(मॉनोसिस्टिस)**। कुछ मृतजीवी प्रोटोजोआ ठोस आहार को भी ग्रहण कर सकते हैं **(वैलेंटिडियम)**। 4. **मिश्रपोषण** (mixtrophic nutrition)—कुछ प्रोटोजोआ अपना पोषण एक ही समय पर एक से अधिक पोषण विधियों द्वारा अथवा परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण अलग-अलग समय पर

अलग-अलग विधियों द्वारा करते हैं। इसे मिश्रपोषण कहते हैं, उदाहरण, **यूग्लीना ग्रैसिलिस** अपने पोषण में मृतजीवी भी है और स्वपोषी भी, तथा कुछ कशाभी स्वपोषी और प्राणिपोषी दोनों ही होते हैं।

जो प्रोटोज़ोआ अधिक विविध जीवों का आहार करते है उन्हें **विविधाहारी** (ouryphagors) कहते हैं और वे जो कुछ थोड़े से ही प्रकार का भोजन करते हैं। **संकीर्णाहारी** (stenophagcus) कहलाते हैं। आहार की प्रकृति तथा खाने की विधि के आधार पर प्रोटोजोआ को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है। (1) **वृहतभोजी आहारक** (macrophagous feeders) वे हैं जो भोजन के बड़े-बड़े टुकड़ों का आहार करते हैं (**अमीबा**)। (2) **सूक्ष्मभोजी आहारक** (microphagous feeders) वे हैं जो बहुत छोटे कणों को खाते हैं, वे शायद ही कभी खाना बन्द करते हों और उनका खाना एक जलधारा के द्वारा शरीर के भीतर पहुँचता है (**पैरामीशियम**)। (3) **तरलभोजी आहारकों** (fluid feeders) में मृतभोजी और परजीवी प्रोटोजोआ आते हैं जो अपनी सतह के द्वारा तरल भोजन ग्रहण करते हैं (**मॉनोसिस्टिस**)।

प्रोटोजोआ में पाचन अन्तः कोशिकीय विधि से आहार रिक्तिकाओं के भीतर सम्पन्न होता है। आहार-रिक्तिकाओं में पाचन के दौरान p^H तथा उनके साइज दोनों ही में परिवर्तन होता जाता है। आरम्भ में आहार-रिक्तिकाओं के भीतरी पदार्थ अम्लीय होते और उनका साइज घटता जाता है, इस प्रावस्था में शिकार मर जाता है। प्रारम्भिक अम्लीय प्रावस्था के बाद प्रोटोजोअन का साइटोप्लाज्म एक क्षारीय माध्यम में एन्जाइम बनाता है, ये एन्जाइम आहार रिक्तिकाओं में पहुँच जाते हैं और रिक्तिकाएँ साइज में बड़ी और क्षारीय हो जाती हैं। उसके बाद रिक्तिकाओं के भीतरी पदार्थ पच जाते और बिना पचा हुआ भाग बाहर निकाल फेंक दिया जाता है।

चलन-अंगक

चलन-क्षमता एक्टोप्लाज्म में निहित होती है, क्योंकि चलन-अंगक या तो इसी में से निकलते हैं या इसमें विद्यमान होते हैं। 1. **कूटपाद** सामान्यतः शरीर के किसी भी भाग से निकली हुई प्रोटोप्लाज्म की बहिर्वृद्धियाँ होते हैं, ये उन प्रोटोजोआ में पाये जाते हैं जो "नंगे" होते हैं अथवा जिनमें बहुत पतला पेलिकल होता है। कूटपाद एक्टोप्लाज्म के बने हो सकते हैं या हो सकता है कि उनमें एण्डोप्लाज्म का एक केन्द्रभाग भी बना हो। कूटपाद निम्नलिखित प्रकारें के पाये जाते हैं:— (क) **पालिपाद** (lobopodia), कुन्द, छोटे उँगली-जैसे होते है, ये एक्टोप्लाज्म के बने होते हैं और केन्द्र में तरल एंडोप्लाज्म भरा होता है (**आर्सेला, अमीबा**)। (ख) **सूत्रपाद** (filopodia) पतले, लम्बे सूत्र होते हैं, इनके सिरे अक्सर गोल होते हैं, कभी-कभी ये विशाखित भी हो सकते हैं, ये केवल काचाभ एक्टोप्लाज्म के ही बने होते हैं (**अ० रेडियोसा, रेडियोलेरिया**)। (ग) **मूलपाद** (rhizopodia) अथवा

जालकपाद (reticulopod) लम्बे, पतले और विशाखित होते हैं, पड़ोसी कूटपादों की शाखाएँ एक दूसरे से जुड़ती जाती हुई एक जाल बना लेती हैं जिसमें आहार फांसा जा सकता है (**एलिफडियम**)। (घ) **अक्षपाद** (axopodium) एक्टोप्लाज्म के बने लम्बे, दृढ़ सूत्र होते हैं जिनमें एंडोप्लाज्म का बना एक कड़ा केन्द्रीय अक्ष होता है, अन्य कूटपादों से भिन्न ये अर्ध-स्थायी होते हैं (**ऐक्टिनोफ्रिस**)। अक्षपाद चलन-अंगक नहीं होते बल्कि केवल आहार पकड़ने के लिये होते हैं।

2. **कशाभ** अत्यधिक बारीक तन्तु होते हैं जिनमें दो अनुदैर्घ्य तन्तुओं का बना एक केन्द्रीय ऐक्सोनीम होता है और एक बाहर से मढ़ा हुआ प्राटोप्लाज्मी आवरण होता है जिसमें एक वलय में व्यवस्थित नौ दोहरे अनुदैर्घ्य तन्तु बने होते हैं। ये सभी 20 तन्तु सघन साइटोप्लाज्म के मैट्रिक्स में पड़े रहते हैं और वे अपने आधार पर समेकित होकर एक आधारीय कणिका अथवा **काइनेटोसोम** से जुड़ जाते हैं। काइनेटोसोम एक राइजोप्लास्ट द्वारा केन्द्रक से जुड़ा हो सकता है। आधार कणिका कभी-कभी **सेन्ट्रियोल** का ही दूसरा नाम बन जाती है क्योंकि यह केन्द्रकीय विभाजनों का आरम्भ करती है, यदि यह सेन्ट्रियोल के रूप में कार्य नहीं करती तो तब यह राइजोप्लास्ट द्वारा या तो एक सेन्ट्रियोल से या केन्द्रक से जुड़ी होती है। कशाभ अनेक प्रकार के होते हैं, मुख्य कशाभ के अन्तिम सिरे पर एक बहुत बारीक अन्तिम खण्ड अथवा मैस्टिगोनीम (mastigoneme) होता है, या कशाभ के प्रधान अक्ष पर एक या दोनों पार्श्वों में सूक्ष्म, लचीले पार्श्व प्रवर्ध अथवा मैस्टिगोनीम बने हो सकते हैं। मैस्टिगोनीम तथाकथित "**फ्लिमर** (flimmer)" या सिलियरी कशाभ बनाते हैं। कशाभों में या तो खेने के प्रभाव वाली कोड़ामार गति होती है या तरंग गति। खेने वाली गति में कशाभ को कड़ा रखा जाता है लेकिन मार वाली दिशा में थोड़ा-सा अवतल होता है, पूर्व-स्थिति में आने में यह मुड़ता है और वापिस खींच लिया जाता है। तरंग-गति में यह तिरछा होकर स्पंदन करता है और तरंगें आधार से सिरे की ओर को चलती जाती हैं जिसके कारण जन्तु चक्कर खाने लगता है। संख्या में या तो कशाभ एक हो सकता है जो कि अग्र सिरे में बने एक छिद्र में से निकला होता है या दो बराबर के कशाभ हो सकते हैं (**काइलोमोनस**), या एक कशाभ छोटा और दूसरा मोटा व लम्बा हो सकता है (**नॉक्टीलयूका**), या अनेक कशाभ हो सकते हैं (**ओपैलाइना**), लेकिन अधिकतर प्रोटोजोआ में चार से अधिक कशाभ नहीं होते। कशाभ का मूल कार्य चलन में योग देना होता है, आहार पकड़ना इनका बदला हुआ कार्य है।

3. सिलिया संरचना की दृष्टि से ठीक कशाभों के जैसे होते हैं, और इन दोनों के बीच कोई वास्तविक अंतर नहीं है, सिर्फ कार्यविधि में अंतर है। आदिम उदाहरणों में सिलिया सारे शरीर पर होते हैं लेकिन अधिक विशेषित उदाहरणों में सिलिया केवल कुछ खास क्षेत्रों तक ही सीमित रहते हैं। सिलिया काइनेटोसोमों से निकलते हैं, प्रत्येक काइनेटोसोम से एक राइजोप्लास्ट निकलता है जो केन्द्रक से नहीं जुड़ा होता और न ही उसमें कोई मैस्टिगोनीम होते हैं। काइनेटोसोमों की एक अनुदैर्घ्य पंक्ति की तनिक-सी दाहिनी ओर एक कोमल धागे-जैसा काइनेटाडेस्मा होता है।

अपने काइनेटोडेस्माओं के समेत काइनेटोसोमों की एक अनुदैर्घ्य इकाई बन जाती है जिसे काइनेटी कहते हैं; जन्तु की तमाम काइनेटियों को एक साथ मिलाकर अधःसिलियरी तंत्र कहते हैं। अधःसिलियरी तंत्र तमाम सिलिएटों की विशेषता है, यहां तक कि उन प्राणियों में भी जिनमें वयस्कों में सिलिया समाप्त हो चुके हैं अधःसिलियरी तंत्र मौजूद रहता है। सिलिया सीधी अथवा सर्पिल पंक्तियों में व्यवस्थित रहते हैं, वे एकांतर क्रम में संकुचित और ढीले होते रहते हैं, पहले एक मामूली-सी सर्पिल ऐंठन के साथ झुकते हैं, फिर सीधे हो जाते हैं। इनका स्पंदन पीछे की ओर को बढ़ते हुए ताल में होता है। सिलिया की गतियों के कारण जन्तु का तरल माध्यम में चलना प्रारम्भ हो जाता है और उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली धाराएँ आहार प्राप्त करने में उपयोग होती हैं।

सिलिएटों का अधःसिलियरी तंत्र फ्लैजेलेटों के इसी प्रकार के तंत्र से इन बातों में भिन्न होता है। (क) सिलिया सामान्यतः कशाभों की अपेक्षा छोटे और अधिक बहुसंख्यक होते हैं। (ख) सिलिएटों में अधःसिलिया तंत्र केन्द्रक से नहीं जुड़ा होता, और न ही काइनेटी परस्पर जुड़े होते हैं; राइजोप्लास्ट काइनेटोसोमों को केन्द्रक से
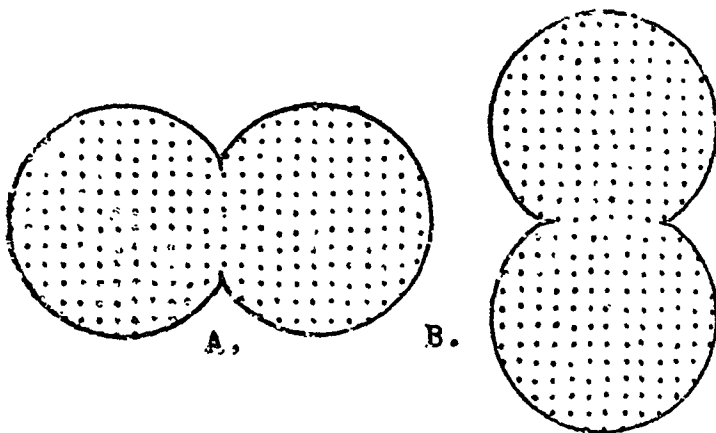
चित्र 76. विभाजनशील काइनेटी। A—कशाभी. B—सिलिएट।

जोड़ते हैं और काइनेटी परस्पर-संयोजित हो सकते हैं। (ग) सिलिएटों के कोशिका-विभाजन में विदलन काइनेटीतः होता है क्योंकि यह सभी काइनेटियों को बीच से काट देता है, अगले अर्धांश एक संतति कोशिका में और पिछले अर्धांश दूसरी संतति कोशिका में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार के विभाजन को **समस्थितिजनी** (homothetigenic) कहते हैं जिनमें संतति-कोशिकाएँ एक-दूसरे की प्रतिकृतियां होती हैं। कशाभियों के कोशिका-विभाजन में विदलन अंतराकाइनेटीय होता है क्योंकि यह अनुदैर्घ्य और काइनेटियों के समानांतर होता है जिसके फलस्वरूप काइनेटी कटते नहीं बल्कि संतति-कोशिकाओं में बराबर-बराबर बँट जाते हैं। इस प्रकार के विभाजन को **सममितिजनी** (symmetrigenic) कहते हैं जिसमें संतति-कोशिकाएँ प्रतिकृतियां न होकर एक दूसरे की दर्पण-प्रतिच्छायाएँ होती हैं। जन्तु के काइनेटियों की सामान्य संख्या

काइनेटोसोमों के विभाजन द्वारा पुनः प्राप्त हो जाती है। (घ) सिलिया में कशाभों की तरह के मैस्टिगोनीम नहीं होते।

सिलिया द्वारा निम्नलिखित मिश्र गति अंगक बन जा सकते हैं : (क) **झिल्लिकाएं** (membranelles) छोटे सिलिया की दो या अधिक संलग्न अनुप्रस्थ पंक्तियों के समेकन के द्वारा बनती हैं, ये परिमुख में पायी जाती हैं जहां वे शक्ति के साथ धक्का देती जाती हैं। (ख) **तरंगित झिल्लियां** (undulating membranes) सिलिया की एक या अधिक अनुदैर्घ्य पंक्तियों के परस्पर समेकित हो जाने से बनती हैं, ये परिमुख अथवा कोशिकाग्रसनी में पायी जाती हैं और आहार संचय में इस्तेमाल होती हैं (**वॉर्टिसेला**)। **ट्रिपैनोसोमा** की तरंगित झिल्ली एक्टोप्लाज्म की झिल्ली मात्र होती है, यह सिलिया की नहीं बनी होती और यह चलन में योग देती है। (ग) **सिरस** (cirrus) कुछ सिलिएटों की अधर दिशा में सिलिया की दो या तीन पंक्तियों के समेकन से बन जाते हैं, ये संचलनी होते हैं और स्पर्शीय भी हो सकते हैं (**स्टाइलोनिकिया**)।

4. **मायोनीम** (myoneme) एक्टोप्लाज्म में बने संकुचनशील तंतुक होते हैं, हो सकता है वे एक नलिका में घिरे हुए हों; वे सीधे हो सकते हैं अथवा एक जालक बनाए हो सकते हैं। मायोनीमों में फीके और गहरे पदार्थ की एकांतर पंक्तियां होती हैं (**स्टेन्टर**)। ये कशाभियों, सिलिएटों तथा स्पोरोजोअनों में पाये जाते हैं। ये मूलतः मेटाबोली के अंगक है (**पैरामीशियम**) और परवर्ती रूप में पेशी-जैसे संकुचनों के द्वारा चलन-अंगक हैं (**मॉनोसिस्टिस**)।

प्रोटोज़ोआ में व्यवहार

किसी जंतु में उसकी संवेदनशीलता के कारण, वातावरण (environment) में होने वाले परिवर्तनों की अनुक्रिया (response) के रूप में, जो गतियां या प्रतिक्रियाएं होती हैं उन्हें उस जंतु का व्यवहार (behaviour) कहते हैं। वातावरणी परिवर्तनों के प्रति जंतु में जो-जो अनुक्रियाएँ होती हैं वे उस जंतु में सदैव एक से ही नमूने की होती हैं। किसी भी वातावरणी परिवर्तन को जिसके प्रति जंतु में अनुक्रिया उत्पन्न होती है **उद्दीपन** (stimulus) कहते हैं। उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया में जंतु में जो गतियाँ होती हैं वे सकारात्मक (positive) हो सकती हैं या नकारात्मक (negative)। यदि जंतु किसी उद्दीपन की ओर आकृष्ट होता है और उसी ओर घूम जाता है तो वह अनुक्रिया **सकारात्मक** है, और यदि वह उस उद्दीपन से विकर्षित होकर उससे दूर हटता है तब वह अनुक्रिया **नकारात्मक** कहलाती है। उद्दीपनों के प्रति होने वाली प्रतिक्रियाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है काइनेसिस और टैक्सिस। **काइनेसिस** (kinesis) अथवा गतिवर्धन वह प्रतिक्रिया है जिसमें उद्दीपन के कारण जंतु में गतियाँ बढ़ जाती हैं। टैक्सिस (taxis) अथवा अनुचलन वह प्रतिक्रिया है जिसमें उद्दीपन की दिशा से संबंध होता है, इस प्रकार की गति किसी न किसी संवेदी अंग के मौजूद पर निर्भर होती है। जंतु में इन सब के प्रति प्रतिक्रिया हो सकती है : प्रकाश,

स्पर्श, ताप, गुरुत्व, रसायन अथवा विद्युत्-धारा। प्रोटोजोआ में सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ दुर्लभ अपवाद मात्र पायी जाती हैं, अधिकतर उनकी प्रतिक्रियाएँ नकारात्मक होती हैं। उद्दीपन के प्रति जंतु में होने वाली अनुक्रिया न केवल उद्दीपन की प्रकृति पर ही निर्भर होती है वरन् उस क्षण जंतु की दशा पर भी निर्भर होती है। **अमीबा** में उद्दीपनों को ग्रहण करने वाली कोई रचना नहीं होती लेकिन उद्दीपनों के प्रति इसकी अनुक्रियाएँ प्रोटोप्लाज्म की उत्तेजनशीलता के कारण होती हैं। धीमे स्पर्श के लिए **अमीबा** में सकारात्मक प्रतिक्रिया होती है और वह एक आहार-कप बना लेता है लेकिन जोर से लगाए गये स्पर्श के प्रति उसमें नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है, तब वह पहले रुक जाता फिर नये कूटपाद बनाता और समकोण पर अथवा उल्टी दिशा में हट कर चला जाता है। यदि बाहरी जल को आसूत जल से बदल दिया जाए या उस बाहरी जल में शर्करा अथवा नमक अथवा हल्का अम्ल मिला दिया जाए तो कूटपाद सिकोड़ लिये जाते और देह गोल हो जाता है जिसके बाद एक अकेला कूटपाद बनता और उनके द्वारा जंतु हटकर चला जाता है। यदि कोई रसायन देह के छोटे से क्षेत्र पर लगाया जाए तो जंतु हटकर विपरीत दिशा में चला जाता है। यदि वातावरण का ताप बढ़ाकर 30° तथा 35°C. के बीच में कर दिया जाए तो तमाम गतियाँ रुक जाती हैं, 40°C. पर जंतु मर जाता है, लेकिन जंतु में सबसे ज्यादा सक्रियता 20° तथा 25°C. के बीच के ताप पर होती है। तीव्र प्रकाश के कारण प्रकाशित दिशा में प्लाज्मासॉल का जेलीकरण हो जाता है; लेकिन उसकी विपरीत दिशा में कूटपाद बन जाते हैं और जंतु हट जाता है। **अमीबा** अंधेरे से बचता है, मध्यम प्रकाश सबसे ज्यादा अनुकूल होता है जिसे **अनुकूलतम** (optimum) कहते हैं। प्रकाश में तीव्र और सहसा वृद्धि के कारण तमाम गतियाँ रुक जाती हैं और देह गोल हो जाता है, लेकिन यदि तीव्र प्रकाश बना रहता है तो गतियाँ दोबारा शुरू हो जाती हैं, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि **अमीबा** अपने आपको नयी परिस्थितियों के लिए अनुकूलित कर सकता है। **अमीबा** में विभिन्न उद्दीपनों के प्रति होने वाली अनुक्रिया उद्दीपन की शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

यूग्लीना—यदि **यूग्लीनाओं** से युक्त जल की एक बूँद को सीधे धूप में रखा जाए और बूंद के आधे भाग में छाया हो तो देखने को मिलेगा कि ये जंतु प्रकाशित और छायायुक्त दोनों ही भागों से बचते हैं और माध्यमिक प्रकाश के बीच वाले क्षेत्र में जोकि अनुकूलतम होता है एकत्रित हो जाते हैं। क्लोरोफिल युक्त अधिकतर जीवों की तरह **यूग्लीना** में भी प्रकाश के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया होती है, यह अपने को प्रकाश की किरणों के समानांतर स्थिति में ले आता है और प्रकाश के स्रोत की ओर बढ़ता जाता है। लेकिन बहुत ज्यादा तेज

shaded lighted
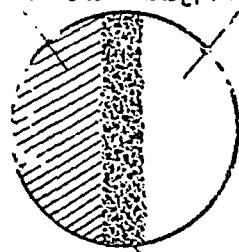
optimum area

चित्र 77. **यूग्लीना** का प्रकाश में व्यवहार। Shaded, छायायुक्त; lighted, प्रकाशित; optimum area, अनुकूलतम क्षेत्र।

प्रकाश होने पर यूग्लीना रुक जाता है, फिर पीछे हटता और अपने पश्च सिरे पर घूम जाता है जिसके साथ-साथ अग्र सिरा एक बड़ा घेरा बनाता हुआ घूमता है; इस व्यवहार को **परिहार प्रतिक्रिया** (avoiding reaction) कहते हैं। **यूग्लीना** का अग्र सिरा प्रकाश के लिए संवेदनशील होता है और जैसे-जैसे प्राणी आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे यह अग्र सिरा अपने अक्ष पर चक्कर खाता जाता है लेकिन जब प्रकाश इसके ऊपर केवल एक तरफ से पड़ता हो तो यह एकदम से घूम जाता है और जब भी प्रकाशग्राही पर दृक्-बिन्दु की छाया पड़ती है तो यह अपने आपको प्रकाश की किरणों के समानांतर ले आता है। प्रकाश के अतिरिक्त अन्य उद्दीपनों के लिए **यूग्लीना** में लगभग उसी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है जैसी कि अन्य प्रोटोज़ोआ में, और वह वातावरण में किसी भी अप्रिय परिवर्तन के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया करता है।

पैरामीशियम—**पैरामीशियम** का व्यवहार रूढ़ (stereotyped) होता है, लेकिन एक सामान्यतः अनुकूल वातावरण की सीमाओं में इसे सुरक्षित और कायम बनाये रखने के लिए यह पर्याप्ततः अनुकूलित है। उद्दीपनों के अवबोध के वास्ते विशेष अंगक नहीं होते, लेकिन अग्र सिरा देह के शेष भागों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता जान पड़ता है। जब **पैरामीशियम** का किसी ठोस वस्तु के साथ जोर से स्पर्श
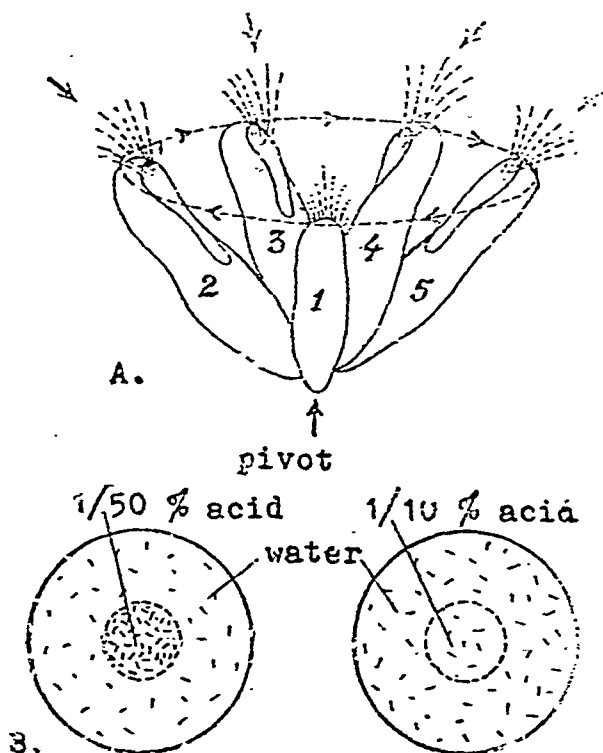
चित्र 78. पैरामीशियम का व्यवहार। A. परिहार प्रतिक्रिया; B. अम्लों में। Pivot, धुरी; acid, अम्ल; water, जल।

होता है तो उसमें नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है, सिलियरी स्पंदन उलट जाता है जिसके कारण वह पीछे को हट जाता है और अपने पश्च सिरे पर घूम जाता है जब कि अगला सिरा एक वृत्त बनाता हुआ घूमता है, यह व्यवहार एक **परिहार प्रतिक्रिया** है जिसके द्वारा बाहरी माध्यम के अलग-अलग नमूने परिमुख में लाये जाते हैं, यदि कोई नमूना अनुकूल हुआ तो जंतु उसी नमूने की दिशा में आगे को बढ़ता है, लेकिन यदि नमूना प्रतिकूल हुआ तो वह कोण बनाकर वहाँ से चला जाता है। बाहरी वातावरण की पहचान कदाचित सिलिया द्वारा होती है, शायद सभी सिलिया संवेदनशील ग्राही होते हैं, लेकिन कुछ लंबे, दृढ़ सिलिया होते हैं जो चलन में कोई योग नहीं देते और कदाचित पूर्णत: संवेदी होते हैं। बाहरी माध्यम में खड़खड़ाहट करने से जंतु नीचे की ओर को तैरने लगता है। हर स्पर्श के प्रति यह परिहार प्रतिक्रिया करता है, लेकिन जब इसे स्पर्श अथवा रसायनों द्वारा उग्र रूप में उत्तेजित किया जाता है तो यह अपने ट्राइकोसिस्टों के विस्फोट के रूप में अनुक्रिया करता है। यदि **पैरामीशियमों** से युक्त जल की एक बड़ी बूंद में 1/50% ऐसिटिक अम्ल की छोटी बूंद डाली जाती है तो वे अम्ल की बूंद में एकत्रित हो जाते हैं; लेकिन यदि अम्ल की शक्ति बढ़ाकर 1/10% कर दी जाए तो वे अम्ल की बूंद से दूर चले जाते हैं। अत: वे हल्के रसायनों में तैर कर पहुँच जाते हैं लेकिन जब वे बूंद की सीमा के साथ संपर्क में आते हैं तो परिहार प्रतिक्रिया पैदा करते हैं, इसी चीज के कारण उनका समुच्चय बन जाया करता है। इसके विपरीत, अधिक शक्तिशाली रसायन में जब वे अम्ल की बूंद को बाहरी सीमा से आकर मिलते हैं तो उनमें परिहार प्रतिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप वे उसमें प्रविष्ट नहीं हो पाते। प्रकाश का **पैरामीशियम** पर कोई प्रभाव नहीं होता, लेकिन तेज रोशनी और परा-बैंगनी किरणों के प्रति उसमें परिहार प्रतिक्रियाएं होती हैं। **पैरामीशियम** के लिए अनुकूलतम ताप 24° और 28°C के बीच होता है, और एक सीमा तक अधिक ताप के साथ-साथ यह अधिक सक्रिय होता जाता तथा निम्न ताप के साथ-साथ कम सक्रिय होता जाता है, लेकिन सहसा ताप परिवर्तनों के प्रति इसमें परिहार प्रतिक्रियाएँ होती हैं। **पैरामीशियम** में गुरुत्व के प्रति धीमी नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है। यदि पैरामीशियमों से युक्त माध्यम में एक कमजोर विद्युत्धारा चलायी जाए तो जंतुओं को कैथोड की तरफ तैरते जाते हुए देखा जाएगा, विद्युत्धारा के कारण सिलिया का स्पंदन अंशत: उल्टा हो जाता है। विद्युत्धारा के अधिक शक्तिशाली होने पर अधिकतर सिलिया आगे की ओर स्पंदन न करके पीछे की ओर स्पंदन करते हैं जिसके फलस्वरूप जंतु एनोड की ओर तैरता जाता है।

प्रोटोज़ोआ में पायी जाने वाली प्रतिक्रियाओं का अनेक तफसीलों में उच्चतर जंतुओं में पायी जाने वाली प्रतिक्रियाओं से मेल खाता है, और उन्हें अपने सामान्य वातावरण में बनाए रखने के वास्ते उनकी प्रतिक्रियाएं काफी पर्याप्त होती हैं। प्रोटोज़ोआ के व्यवहार का कुछ सिद्धांतों के द्वारा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। 1. लीब (Loeb) के **अनुवर्तन सिद्धान्त** (tropism theory) में कहा गया है कि प्रोटोज़ोआ विभिन्न उद्दीपनों के प्रति एक लादी गयी मजबूरी के रूप में अनुक्रिया

करता है, अपनी इच्छा के द्वारा नहीं बल्कि इसलिए वे किसी अन्य रूप में व्यवहार कर ही नहीं सकते; वे मानो पूर्णतः बाहरी उद्दीपनों से चलायी जाने वाली कोई स्वचालित मशीनें हों। 2. जेनिंग्स (Jennings) के **परीक्षण और भूल सिद्धान्त** (trial and error theory) में कहा गया है कि प्रोटोज़ोआ प्रतिकूल परिस्थितियों से भागते हैं और बार-बार परिहार प्रतिक्रियाओं के द्वारा अधिक अनुकूल परिस्थितियां ढूंढ़ते जाते हैं और यह सब कुल मिलाकर परीक्षण और भूल बन जाता है। जंतु प्रतिकूल क्षेत्रों के भीतर को अथवा उससे दूर स्वचालित मशीन के रूप में नहीं जाते बल्कि वे अपनी क्रियाओं पर नियंत्रण रखते और अपने मार्ग को दिशा देते चलते हैं। परीक्षण और भूल या परिहार प्रतिक्रियाओं को अब एक-दूसरे शब्द **क्लाइनोकाइनेसिस** (klinokinesis) से व्यक्त किया जाता है।

प्रोटोज़ोआ और रोग

प्रोटोजोआ मनुष्य और जानवरों में अनेक रोग उत्पन्न करते हैं, इनमें से अधिकतर रोग उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ज्यादा प्रचलित हैं। इन रोगों के पाये जाने के कारण पृथ्वी के बहुत से क्षेत्र मनुष्य के लिए बसने योग्य नहीं हो पाये हैं। प्रोटोज़ोआ के हर क्लास में रोगजनक सदस्य पाए जाते हैं लेकिन उनकी अधिकतर संख्या फ्लैजेलेटा तथा स्पोरोज़ोआ में आती है। केवल मनुष्य में ही परजीवी प्रोटोज़ोआ की दो दर्जन से ज्यादा स्पीशीज़ पायी जाती हैं, जिनमें विभिन्न अमीबा, कशाभी, सिलिएट तथा स्पोरोज़ोअन शामिल हैं, इनमें से कुछ अहानिकर है लेकिन अन्य के कारण कुछ घातक बीमारियां पैदा हो जाती हैं। मानवीय परजीवी प्रोटोज़ोआ अपने संपूर्ण जीवन-चक्रों अथवा उनके कुछ भागों को अपने परपोषी के शरीर के ऊतकों, आहार-नाल अथवा रक्त में बिताते हैं।

सार्कोसिस्टिस (*Sarcocystis*) एक स्पोरोज़ोअन है जो मानव-ऊतकों का परजीवी है; यह ग्रसिका (oesophagus), जीभ, डायफ्राम तथा हृदय की पेशियों में पाया जाता है; यह मवेशियों और घोड़ों की पेशियों में भी पाया जाता है; इससे सार्कोसिस्टिन (sarcocystin) नामक एक टॉक्सिन पैदा होता है जो बहुत शक्तिशाली होता है। कुछ परजीवी प्रोटोज़ोआ कम से कम कुछ समय तक मानव ऊतकों में जरूर पाये जाते हैं (**एण्टअमीबा**)।

मनुष्य के आहार नाल में पाये जाने वाले परजीवी प्रोटोज़ोआ में **एन्टअमीबा जिंजिवैलिस** तथा **ट्राइकोमोनस इलॉगैन्टा** (*Trichomonas elongata*) शामिल हैं, इनमें से पहला परजीवी पायोरिया पैदा करता है और दूसरा मुख, आंत्र तथा योनि-मार्ग में पाया जाता है और अपेक्षाकृत अहानिकर है; इन दोनों का संचरण स्पर्श द्वारा होता है। छोटी अंतड़ी में एक कशाभी **जियार्डिया (लैम्ब्लिया)** और एक स्पोरोजोअन **आइसोस्पोरा** होते हैं जो दोनों ही दस्त पैदा करते हैं। बड़ी अंतड़ी में अमीबा की चार स्पीशीज, कशाभियों की दो और एक सिलिएटा की होती हैं। एन्टअमीबा **हिस्टोलिटिका** मनुष्य में सारी दुनिया में पाया जाता है, इसका संक्रमण पुटियों से युक्त जल को पीने से होता है। यह कोलन की दीवारों में वेधकर पहुँच जाता है

और वहाँ पर व्रण (अल्सर) पैदा कर देता है जिसके कारण अमीबीय पेचिश पैदा हो जाती है। यदि संक्रमण को जारी रहने दिया जाता है तो परजीवी जिगर, फेफड़ों या मस्तिष्क तक पहुँच जाता है जहाँ वह फोड़े बना देता है और घातक सिद्ध होता है। सिलिएट **बैलेंटिडियम कोलाई** कोलन और सीकम में परजीवी होता है, यह वेधकर अन्तड़ियों के ऊतकों में पहुँच जाता है जिसके कारण पेचिश और दस्त आने लगते हैं, जो कि घातक सिद्ध हो सकते हैं। इसका संक्रमण परजीवी की पुटियाँ मुँह के द्वारा भीतर पहुँच जाने के कारण होता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण और भयंकर प्रोटोज़ोआ वे हैं जो मनुष्य के रक्त में परजीवी पाये जाते हैं, ये हैं **प्लाज्मोडियम** जो कि एक स्पोरोज़ोअन है और दो कशाभी **ट्रिपैनोसोमा** तथा **लीश्मानिया**। **प्लाज्मोडियम** की चार स्पीशीज़ मनुष्य में मलेरिया पैदा करती हैं। **प्लाज्मोडियम वाइवैक्स** सुदम्य तृतीयक मलेरिया पैदा करती है जिसमें ज्वर हर 48 घण्टे के बाद चढ़ता है; **प्लाज्मोडियम मैलेरी** से चतुर्थक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर हर 72 घण्टे के बाद आता है; **प्लाज्मोडियम फैल्सीपैरम** के द्वारा दुर्दम उपतृतीयक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर लगभग लगातार चढ़ा रहता है; **प्लाज्मोडियम ओवेल** के कारण हलका तृतीयक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर हर 48 घण्टे पर आता है। ये चारों स्पीशीज़ मनुष्य के जिगर और लाल कोशिकाओं में अलैंगिक रूप में प्रगुणन करती जाती हैं। मलेरिया में तिल्ली बढ़ जाती है, लाल कोशिकाएँ कम हो जाती हैं, रक्त पतला पड़ जाता है, वर्णक कणिकाएँ तिल्ली में इकट्ठी हो जाती हैं और ठण्ड एवम् कंपकंपी के साथ ऊँचा ज्वर चढ़ जाता है। उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में मलेरिया से हर साल न केवल लाखों लोगों की मृत्यु ही होती है बल्कि पृथ्वी के सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्रों में खेती भी नहीं हो पाती है।

ट्रिपैनोसोमा मनुष्य के रक्त प्लाज्मा का परजीवी है, यह स्तनियों, पक्षियों, सरीसृपों, ऐम्फिबियनों तथा मछलियों के रक्त में भी परजीवी रूप में पाया जाता है। **ट्रिपैनोसोमा** सामान्यतः रक्त चूसने वाले कीटों के द्वारा फैलता है। मनुष्य में निद्रालु रोग पैदा करने वाली तीन स्पीशीज़ हैं। (क) **ट्रि० गैम्बिएन्ज़ी** (*T. gambiense*) का संचरण सेट्सी मक्खियों की दो स्पीशीज़ **ग्लौसाइना पैल्पैलिस** तथा **ग्लौसाइना मॉर्सिटेन्स** (*G. morsitans*) के द्वारा होता है, इसके कारण गैम्बियन अथवा मध्य अफ्रीकी निद्रालु रोग होता है। (ख) **ट्रि० रोडेज़िएन्ज़ी** (*T. rhodesiense*) का संक्रमण सेट्सी मक्खी **ग्लौ० मॉर्सिटेन्स** द्वारा होता है, इसके कारण रोडेशियन अथवा पूर्वी अफ्रीकी निद्रालु रोग पैदा होता है। इस परजीवी की ये दोनों स्पीशीज़ अफ्रीका के उन भागों तक सीमित रहती हैं जहाँ इनके रोगवाहक अर्थात् ये सेट्सी मक्खियाँ पायी जाती हैं। परजीवी ट्रिपैनोसोम के संक्रमण होने पर ज्वर हो जाता है जिसके दौरान परजीवी रक्त में स्वच्छन्द रूप में पाये जाते हैं, उसके बाद परजीवी लसीका ग्रंथियों (lymph glands), तिल्ली और जिगर में पहुँचकर उन्हें बढ़ा देते हैं और अन्त में वे प्रमस्तिष्क-मेरु द्रव में पहुँच जाते तथा निद्रालु रोग पैदा करते हैं जिसके कारण मूर्च्छा (कोमा) आ जाती है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

(ग) ट्रि० क्रूजाई (*T. cruzi*) का संचरण एक मत्कुण (वग) **ट्राएटोमा मेजिस्टा** (*Triatoma megista*) द्वारा फैलता है, इसमें दक्षिण और मध्य अमेरिका में चगास-रोग पैदा हो जाता है। चगास-रोग निद्रालु रोग के समान होता है, इससे लगातार होने वाला ज्वर पैदा हो जाता है, लसीका ग्रंथियाँ, तिल्ली और जिगर फूल जाते हैं जिनमें संक्रमित कोशिकाएं विघटित हो जाती हैं और तंत्रिका तन्त्र में गड़बड़ी हो जाती है। चगास-रोग कुत्तों, बन्दरों और आर्मेडिलों में भी होता है। **ट्रिपैनोसोमा** से घरेलू जानवरों में भी बीमारियाँ हो जाती हैं। (क) **ट्रि० ब्रूसियाई** (*T. brucei*) से अफ्रीका के पालतू जानवरों में नगाना रोग हो जाता है; नगाना रोग निद्रालु रोग के समान है, इसका रोगवाहक **ग्लौसाइना मार्सिटेन्स** है। (ख) **ट्रि० ईवेन्साई** (*T. evansi*) के कारण घोड़ों, ऊँटों, कुत्तों, खच्चरों तथा मवेशियों में सूरा (surra) रोग पैदा करता है, इसके वाहक दो मक्खियाँ **टैबनस** (*Tabanus*) तथा **स्टोमॉक्सिस** (*Stomoxys*) हैं; सूरा भारत तथा अन्य कई क्षेत्रों में होता है और यह विशेषत: घोड़ों में बहुत भयंकर होता है। (ग) **ट्रि० ईक्विपर्डम** (*T. equiperdum*) डूरीन रोग पैदा करता है जो घोड़ों के जनन-अंशों का रोग है, इसका संचरण मैथुन के दौरान सीधे स्पर्श से होता है, इसका कोई रोग-वाहक नहीं होता।

ट्रिपैनोसोमा की अनेक स्पीशीज़ का जंगली परपोषी हुआ करता है जो संक्रमित तो होता है लेकिन रोग से प्रतिरक्षित (immune) रहता और परजीवी के साथ एक संतुलन बनाये रहता है जिसके कारण इन परपोषियों में परजीवी अरोगजनक (non-pathogenic) रहता है। इस प्रकार के जंगली जानवरों को **आगार परपोषी** (reservoir hosts) कहते हैं जैसे **ट्रि० ल्यूसियाई** (*T. lewsi*) चूहे में अरोगजनक होता है, **ट्रि० क्रूजाई** आर्मेडिलों में अरोगजनक होता है; **ट्रि० ब्रूसियाई** बारहसिंगों में अरोगजनक होता है तथा **ट्रि० गैम्बिएन्जी** एवं **ट्रि० रोडेजिएन्जी** भी बारहसिंगों में अरोगजनक होते हैं। इस प्रकार के मामलों में ट्रिपैनोसोमों के विरुद्ध नियंत्रण उपाय करने कठिन हो जाते हैं।

लीश्मानिया मानव रक्त में पाया जाने वाला एक कशाभी परजीवी है। **ली० डोनोवनाई** (*L. donovani*) यूरोप, अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमेरिका में व्यापक रूप में पाये जाने वाला कालाजार रोग पैदा करता है, इसका रोगवाहक एक सैंड-फ्लाई **फ्लेबोटोमस** (*Phlebotomas*) है। कालाजार में परजीवी एण्डोथीलियमी कोशिकाओं, अस्थि-मज्जा (bone marrow), जिगर, लसीका ग्रंथियों तथा तिल्ली की रक्त वाहिनियों में आक्रमण करता है, ये अंग बढ़ जाते और रक्तक्षीणता तथा उच्च ज्वर की शिकायत हो जाती है। **ली० ट्रॉपिका** (*L. tropica*) एशिया, अफ्रीका, यूरोप तथा आस्ट्रेलिया में मानव रक्त का परजीवी है, इससे खाल में ओरियंटल सोर नामक रोग हो जाता है जिससे व्रणशील घाव बन जाते हैं, इसका रोगवाहक **फ्लेबोटोमस** है।

बैबेसिया बाइजेमिना (*Babesia bigemina*)—मवेशियों की लाल केशिकाओं में पाया जाने वाला एक स्पोरोज़ोअन परजीवी है, इसका रोगवाहक एक चिचड़ी

(tick) बूफिलस (*Boophilus*) है। यह परजीवी टेक्सस ज्वर पैदा करता है जो लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट करता रहता है। टेक्सस ज्वर अमेरिका और आस्ट्रेलिया में व्यापक रूप में पाया जाता है जहाँ इसके कारण अनेक मवेशियों की मृत्यु हो जाया करती है।

प्रोटोज़ोआ में परजीविता
(Parasitism in Protozoa)

दो जीवों के बीच का सम्बन्ध तीन प्रकार का हो सकता है, सहजीवी, सहभोजी और परजीवी। **सहजीवन** (symbiosis) वह सम्बन्ध है जिसमें उस एक जीव जिसे सहजीवी कहते हैं और उस दूसरे जीव जिसे परपोषी कहते हैं, के बीच एक परस्पर-लाभ का सम्बन्ध होता है, सहजीवी अपने परपोषी के शरीर में रहता है, जैसे दीमकों के आहार नाल में एक सहजीवी सम्बन्ध के साथ रहने वाला **ट्राइकोनिम्फा** (*Trichonympha*), **ट्राइकोनिम्फा** को आहार और शरण मिलती है, उसके बदले में यह दीमक द्वारा खायी गयी लकड़ी को पचाता है, दीमकें स्वयं लकड़ी पचाने में असमर्थ होती हैं।

Commensalism

सहभोजिता (Commensalism) एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें सहभोजी (commensal) कहलाने वाला एक जीव लाभ प्राप्त करता है जबकि परपोषी को न तो हानि होती है और न ही लाभ, जैसे कॉकरोच में रहने वाला निक्टोथीरस अपने परपोषी से आहार प्राप्त करता है, लेकिन परपोषी को किसी भी तरह की हानि नहीं पहुँचती। सहजीवन और सहभोजिता में बहुत स्पष्ट अन्तर नहीं है; मनुष्य में पाया जाने वाला **एण्टअमीबा कोलाई** प्रायः एक सहभोजी होता है, किन्तु उस समय जब कि यह मनुष्य के लिए हानिकर बैक्टीरिया को खाने लगता है तब यह सहजीवी बन जा सकता है।

Nepho thens

परजीविता (Parasitism) वह सम्बन्ध है जिसमें परजीवी कहलाने वाला एक जीव परपोषी कहलाने वाले दूसरे जीव के शरीर के बाहर या शरीर के भीतर रहते हुए उसी के ऊपर पलता है। परजीवी जीवन एक परवर्ती अवस्था है, जिसमें परजीवी यदाकदा और स्वतन्त्र रूप में स्वच्छन्द जीवी पूर्वजों से उत्पन्न होते रहे हैं। परजीवी और उसके परपोषी के बीच के सम्बन्ध में पायी जाने वाली निकटता के अनेक स्तर मिलते हैं, परजीवी **अधिजन्तुक** (epizoic) अथवा **बाह्यपरजीवी** (ectoparasitic) जो अपने परपोषी की बाहरी सतह पर रहता हैं हालाँकि हो सकता है कि वह चलकर मुख-गुहा या मलाशय में पहुँच जाए जैसे **केरोना** (*Kerona*) जो कि हाइड्राओं पर पाया जाने वाला एक सिलिएट बाह्यपरजीवी है, एक अन्य बाह्यपरजीवी **ऊओडिनियम** (*Oodinium*) है जो **ओइकोप्ल्यूरा** (*Oikopleura*) के शरीर पर पाया जाने वाला एक कशाभी है; लेकिन प्रोटोजोआ में बाह्यपरजीवी दुर्लभ होते हैं। परजीवी **अन्तःजन्तुक** (entozoic) अथवा **अन्तःपरजीवी** (endoparasitic) हो सकता है जो कि परपोषी के शरीर के भीतर रहता है। अन्तःपरजीवी

भीतरी गुहाओं में पाये जा सकते हैं (**बैलेंटिडियम**), या वे अन्त:कोशिकीय हो सकते हैं (**प्लाज्मोडियम**) या वे परपोषी के ऊतकों में पाये जा सकते हैं (**एण्टअमीबा**). अन्त:परजीवी परपोषी के आहार को खा ले सकते हैं (**ग्रीगैराइना**) या परपोषी के शरीर-द्रवों पर आहार कर सकते हैं (**ट्रिपैनोसोमा**) या परपोषी की ऊतक-कोशिकाओं पर (**प्लाज्मोडियम**)।

परजीवियों पर परजीवी जीवन के प्रभाव—आरम्भिक परजीविता में परजीवी में कोई आकारिकीय परिवर्तन नहीं होता हालांकि शरीर-क्रियात्मक अनुकूलन होते हैं, बाद में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं। (क) चलन-अंगकों में ह्रास हो जाता है, क्योंकि परजीवियों का परिवहन परपोषियों द्वारा होने लगता है, जिसके फलस्वरूप चलन अंगक सरल हो जात और अंततः समाप्त हो जाते हैं। कुछ आंत्र स्पोरोज़ोआ में (**ग्रीगैराइना**) केवल मेटाबोली ही होती है, लेकिन अंत:कोशिकीय परजीवियों में (**प्लाज्मोडियम**) कोई चलन-गति नहीं होती। (ख) देह का रूप और आकृति बहुत सरल हो जाती है और जटिल अंगक नहीं होते (**प्लाज्मोडियम**)। (ग) कुछ आंत्र परजीवियों में चिपकाने वाले अंगक प्रकट हो जाते हैं (**ग्रीगैराइना**)। (घ) पोषण अंगक सरल हो जाते (**बैलेंटिडियम**) अथवा समाप्त तक हो जाते हैं (**प्लाज्मोडियम**) क्योंकि आहार देह की सतह के द्वारा अवशोषित होता है। (ङ) परजीवियों में तीव्र जनन-वृद्धि की क्षमता आ जाती है जिससे बहुसंख्यक नव जंतु बन जाते हैं, इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि कम-से-कम कुछ संततियां तो उपयुक्त परपोषी को ढूंढ़ ही सकेंगी और स्पीशीज़ को आगे चला सकेंगी (**प्लाज्मोडियम**)। (च) अनेक परजीवियों के जीवन-चक्र में दो परपोषी होते हैं, और उनमें से एक परपोषी परजीवियों को फैलाने के लिए रोगवाहक का भी कार्य करता है (मनुष्य और सेट्सी-मक्खी में पाया जाने वाला **ट्रिपैनोसोमा**)।

परपोषी वैशिष्ट्य (Host specificity)—कुछ परजीवी केवल कुछ थोड़े से ही परपोषियों तक सीमित होते हैं, जैसे थोड़े से ही कीटों में पाया जाने वाला **ग्रीगैराइना**, या केवल ऐन्यूरा में ही पाया जाने वाला **ओपैलाइना**, लेकिन कुछ परजीवी अधिक विविध प्रकार के परपोषियों में रहने के लिए अनुकूलित हो गये हैं, जैसे **ट्रिपैनोसोमा** कशेरुकी क्लासों में पाया जाता है जिनमें यह लगभग पाँच सौ स्पीशीज में परजीवी होता है। इस प्रकार परपोषी संबंध के विकास में ऊपर बताई गयी दोनों प्रवृत्तियां पायी जाती हैं, ऐसा एक तो अंशतः परजीवी की संक्रामक शक्तियों के कारण और दूसरे अंशतः परपोषी की प्रभाववश्यता के कारण होता है।

परपोषी पर परजीविता के प्रभाव—परजीवियों द्वारा उनके परपोषियों में निम्नलिखित रोग दशाएँ पैदा हो सकती हैं। (क) परजीवी की गति अथवा आहार करने की क्रियाओं से परपोषी की कोशिकाओं तथा ऊतकों का विनाश, जैसे **एंटअमीबा हिस्टोलिटिका** अपने परपोषी के कोलन की ऊतक कोशिकाओं और लाल रक्त कोशिकाओं को खाता है, **प्लाज्मोडियम** जिगर-कोशिकाओं और लाल रक्त कोशिकाओं को खाता है। (ख) परजीवियों के द्वारा लसीका ग्रंथियों, तिल्ली तथा जिगर का बढ़

जाना और उनमें गड़बड़ी पैदा हो जाना हो जाता है, जैसे **लीशमानिया**; या परजीवी अंतड़ी, जिगर तथा मस्तिष्क में अलसर पैदा कर सकते हैं, जैसे **एंटअमीबा**; (ग) परजीवी ऐसे विषैले टॉक्सिनों का स्राव कर सकते हैं जो परपोषी में कोई रोग पैदा कर देते हैं, जैसे **प्लाज्मोडियम** मलेरिया पैदा करता है।

लेकिन परजीविता के अधिकतर उदाहरणों में परपोषी और परजीवी के बीच एक परस्पर अनुकूलन बना होता है, परजीवी बिना किसी प्रकट क्षति के पहुँचे जीवित रह सकता और जनन करता रह सकता है, और परपोषी एक प्रतिरोध करता है अथवा परजीवी के प्रति एक प्रतिरक्षा उत्पन्न करता है। यह प्रतिरोध या प्रतिरक्षा कई प्रकार हो सकती है—ऐसे ऐंटिबॉडी पैदा करके जो परजीवी के प्रभावों का निराकरण कर देते हैं, या पहले के संक्रमण के कारण प्रतिरक्षित होकर, या क्षतिग्रस्त ऊतक कोशिकाओं की मरम्मत एवं उनका पुनरुद्भवन करने की क्षमताओं को बढ़ा कर। कभी-कभी परपोषी कोशिकभक्षण के द्वारा जो कि श्वेताणुओं (leucocytes) अथवा तिल्ली, अस्थिमज्जा और जिगर की कोशिकाओं की सहायता द्वारा सम्पन्न होता है परजीवी को नष्ट कर देता है। परपोषी परजीवी को नष्ट करने में सफल हो सकता है या हो सकता है कि वह संक्रमित बना रहे लेकिन प्रतिरक्षित हो जाता है जिससे कि वह परजीवी का वाहक बन जाता है। सामान्यतः परजीवी और परपोषी के बीच एक नाजुक संतुलन बना होता है और दोनों में एक विस्तृत समझौते की स्थिति आ जाती है, यदि यह परस्पर संतुलन नहीं होता तब या तो परजीवी मर जाता है या परपोषी समाप्त हो जाता है।

प्रोटोज़ोआ में जनन

प्रोटोज़ोआ में अलैंगिक और लैंगिक दोनों प्रकार का जनन होता है। (क) **अलैंगिक जनन** निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है। 1. **समान विभजन** अथवा **द्विविभजन** (Equal या binary fission) जनन के लिए और साथ ही युग्मक निर्माण के लिए भी होता है। प्रायः केन्द्रक के बीच एक सेंट्रियोल होता है लेकिन मेटाज़ोआ से भिन्न इसमें ऐस्टर नहीं बनते, और यहां तक कि अधिकतर प्रोटोज़ोआ में विभाजन के दौरान केन्द्रक झिल्ली समूची कायम बनी रहती है। केन्द्रक लंबा हो जाता और अमाइटोसिस विधि से विभाजित होकर दो भागों में बँट जाता है जो एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं, उसके बाद कोशिका के मध्य में संकीर्णन होकर दो संतति कोशिकाएँ बन जाती हैं। सिलिएटों के गुरु-केन्द्रक अमाइटोसिस विधि से विभाजित होते हैं। द्विविभजन प्रायः अनुप्रस्थ होता है, किन्तु अधिकतर कशाभियों में यह अनुदैर्ध्य होता है जिसमें केन्द्रक अनुप्रस्थ रूप में लंबा हो जाता है, लेकिन कोशिका लंबाई में विभाजित होती है। द्विविभजन में अकेला कशाभ प्रायः एक संतति-कोशिका में बना रहता है, और आधारीय कणिका दो में विभक्त हो जाती है, नयी आधारीय कणिका दूसरी संतति-कोशिका में कशाभ का निर्माण करती है। जब अनेक कशाभ होते हैं तब वे संतति-कोशिकाओं में वितरित हो जाते हैं और ये संतति-कोशिकाएं नये कशाभों को जन्म देकर उनकी संख्या पूरी कर लेती हैं। सिलिया संतति-कोशिकाओं में बँट जाते हैं

और काइनेटोसोमों द्वारा नये सिलिया बनकर संख्या पूरी हो जाती है। वर्णकधरों में प्राय: विभाजन होता है, लेकिन संकुचनशील रिक्तिकाओं में विभाजन विरल होता है, वे या तो बँट जाती हैं या नये सिरे से बन जाती हैं। जटिल अंगक नष्ट हो जाते हैं और फिर संतति-कोशिकाओं में पुनः निर्मित हो जाते हैं।

2. **बहुविभजन** (Multiple fission)—साइटोप्लाज्म का विभाजन हुए बिना केन्द्रक में बराबर विभाजन होता है, बाद में साइटोप्लाज्म भी उतने ही टुकड़ों में टूट जाता है जितने कि केन्द्रक होते हैं, प्राय: कुछ अवशेषी साइटोप्लाज्म बिना खण्ड बने बाकी रह जाता है। यदि बहुविभजन से समान कोशिका-विभाजन के द्वारा चार या अधिक शिशु प्राणी बनते हैं तो शिशुप्राणी तब तक अलग-अलग नहीं होते जब तक कि यह प्रक्रिया संपूर्ण नहीं हो जाती, तब इस प्रकार के कोशिका-विभाजन को **पुनरावर्तित विभजन** (repeated fission) कहते हैं जैसे **वॉर्टिसेला**। बहुविभजन द्वारा छोटी कोशिकाएं बनती हैं जिन्हें परिवर्धित होने से पहले निषेचन (fertilization) की आवश्यकता होती है। कुछ में बहुविभजन निषेचन के बाद होता है और उससे स्पोरोज़ोआइट बनते हैं (**प्लाज्मोडियम**)। बहुविभजन के बाद अलैंगिक या लैंगिक दोनों में से कोई सा भी हो सकता है।

युग्मनज के बहुविभजन से बनने वाली अवस्थाओं को **स्पोर** कहते हैं। कभी-कभी किसी भी बहुविभजन के उत्पादों को स्पोर कहा जाता है। स्पोर या तो किसी स्पोर आवरण में बन्द हो सकता है (**मॉनोसिस्टिस**) या फिर खुले हो सकते हैं। खुले स्पोरों की आकृति या तो अमीबीय होती है। (**अंटअमीबा**) या कशाभित (**क्लैमिडोमोनस**) या सिलियायुक्त (**सक्टोरिया**)। स्पोर या तो युग्मक हो सकते हैं या स्पीशीज़ के वितरण के लिए होते हैं। पुटी के भीतर अथवा पुटी बनने के बिना ही सभी प्रकार का विभजन होता पाया जाता है। **पुटी**-निर्माण अलवणजलीय और परजीवी प्रोटोज़ोआ में आमतौर से होता पाया जाता है, हालांकि सभी प्रोटोज़ोआ में पुटियाँ नहीं बनतीं। पुटी-निर्माण में जंतु गोल हो जाता, अपने चलन-अंगकों से रहित हो जाता, उसकी आहार-रिक्तिकाएँ बाहर निकल जातीं और संकुचनशील रिक्तिकाएं विलीन हो जाती हैं। तब फिर जंतु एक जिलेटिनी आवरण का स्राव करता है जो सख्त होकर एक काइटिनी **बाह्यपुटी** बन जाता है, इसके भीतर एक झिल्लीनुमा **अन्त:पुटी** स्रावित हो जाती है; पुटी में दो से अधिक परतें हो सकती हैं। पुटी का कार्य या तो वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों से जंतु को सुरक्षा प्रदान करना होता है या फिर जनन करना। पुटियाँ हवा द्वारा या किसी अन्य साधन के द्वारा ले जाई जा सकती हैं और इस प्रकार फैलाव में इनका महत्त्व होता है। प्रोटोज़ोआ में निम्नलिखित प्रकार की पुटियाँ पाई जाती हैं। (क) **विश्रामी पुटियों** (resting-cysts) के द्वारा जंतु बिना गड़बड़ी हुए अपनी सामान्य क्रियाओं को करते रह सकता है (**यूग्लीना**), (ख) **प्रतिरोधी पुटियां** (resistant cysts) वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति बनती हैं (**अमीबा**); (ग) **युग्मपुटियाँ** (gamocysts) वे होती हैं जिनमें जनन के वास्ते युग्मकों का सम्मिलन होता है (**ग्रीगैराइना**); (घ) **अंडपुटियों**

(oocysts) में एक युग्मनज होता है (**प्लाज्मोडियम**) (ङ) **स्पोरपुटियां** (sporocysts) वे होती हैं जिनमें बहुविभजन होकर स्पोरोज़ोआइट बनते हैं (**मॉनोसिस्टिस**)। अंत में अनुकूल परिस्थितियां लौट आने पर **पुटीस्फोटन** (excystment) हो जाता है, लेकिन पुटी से बाहर आने वाला जंतु कभी भी वही नहीं होता जिसमें पुटीभवन (encystment) हुआ था, अब इसमें नये अंगक होते हैं और एक नयी स्फूर्ति। पुटीस्फोटन पुटी में बने एक बारीक छिद्र के द्वारा हो सकता है, लेकिन जैसा कि प्रायः अधिकतर होता है यह प्रोटीजोआ द्वारा स्रावित किन्हीं एन्जाइमों की सहायता से होता है जो पुटी की दीवार को फोड़ देते हैं।

3. **प्लाज्मोटोमी** (Plasmotomy)— बहुकेंन्द्रकी जंतु के उस अलैंगिक विभाजन को जिसमें साइटोप्लाज्म का विभाजन तो होता है लेकिन केन्द्रकों का नहीं होता प्लाज्मोटोमी कहते हैं (**ओपैलाइना, पीलोमिक्सा**)। बाद में प्रत्येक संतति-कोशिका में केन्द्रकीय विभाजन द्वारा केन्द्रकों की सामान्य संख्या पुनः प्राप्त हो जाती है।

4. **मुकुलन** (Budding) अथवा **जेमा-निर्माण** (Gemmation)—जनक शरीर के असमान विभाजन से एक या अधिक मुकुल बन जाते हैं जो जनक से पृथक् हो जा सकते हैं, मुकुल का केन्द्रक जनक के केन्द्रक का एक अंश होता है; जैसे **आर्सेला**। मुकुल आकार में जनक से छोटा होता है; मुकुल या तो वयस्कों के रूप में विकसित होते हैं या वे युग्मक बन जा सकते हैं। जब मुकुल अपने जनक की सतह पर बनते हैं तब इसे **बहिर्जात मुकुलन** (exogenous budding) कहते हैं, जैसे **नॉक्टिल्यूका** अपनी सतह पर छोटे-छोटे प्रवर्धों के रूप में सैकड़ों मुकुल बना देता है। जब मुकुल साइटोप्लाज्म के अंदर बनते हैं और जनक प्राणी के भीतर ही रहते हैं तब इस प्रक्रिया को **अंतर्जात मुकुलन** कहते हैं, जैसे **आर्सेला**। अंतर्जात मुकुलन या तो अलैंगिक जनन की एक विधि होती है या उसके द्वारा युग्मकों का निर्माण हो सकता है, जैसे **आर्सेला** बहुकेन्द्रकी हो जाता, केन्द्रकों के चारों ओर प्रोटोप्लाज्म इकट्ठा हो जाता और अनेक अमीबकों का निर्माण करता है जो जनक में से बाहर चले जाते और बढ़कर वयस्क बन जाते हैं।

5. **अनिषेचकजनन** (Parthenogenesis) युग्मकों की उस क्षमता को कहते हैं जिसके द्वारा विपरीत लिंग के युग्मकों द्वारा निषेचन हुए बिना ही उनमें परिवर्धन होकर वयस्क अवस्था प्राप्त हो जाती है, इस क्षमता वाला युग्मक लगभग सदैव मादा युग्मक ही होता है, जैसे **ऐक्टिनोफ्रिस** में दो प्राणी एक ही पुटी के भीतर बन्द हो जाते हैं, प्रत्येक प्राणी में विभाजन होकर दो युग्मक बन जाते हैं, एक प्राणी का एक युग्मक दूसरे प्राणी के एक युग्मक से जुड़ जाता है, दोनों प्राणियों का एक-एक शेष युग्मक अनिषेकजनन विधि द्वारा परिवर्धित होकर वयस्क बन जाता है। इस प्रकार जिन युग्मकों में परनिषेचन (cross fertilization) नहीं हो पाता वे अनिषेचकजनन द्वारा परिवर्धित हो जाते हैं। **क्लैमिडोमोनस** के सक्षम युग्मकों में यदि युग्मकसंलयन नहीं हो पाया तो उनमें वृद्धि होकर विभाजन होता है और फिर उनकी ये संततियाँ वयस्क बन जाती हैं। सिलिएटों का एंडोमिक्सिस भी एक **अनिषेचकजनन** घटना है।

ऐसी आशा होगी कि अनिषेचकजनन में क्रोमोसोम संख्या अगुणित होनी चाहिए क्योंकि निषेचन नहीं हुआ है, लेकिन यह सामान्यतः द्विगुणित होती है।

6. **पुनरुद्भवन** (Regeneration) उस क्षमता को कहते हैं जिसके द्वारा किसी टूट कर अलग हो गये भाग के स्थान पर नये ऊतक बन जाते हैं, यह क्षमता कम या ज्यादा होती है जो जीव की जटिलता से विपरीत चलती है अर्थात् जो जीव जितना अधिक जटिल होगा उसमें यह क्षमता उतनी ही कम होगी। प्रोटोजोआ में केन्द्रकयुक्त किसी भी अंश में पुनरुद्भवन हो सकता है जबकि केन्द्रकरहित अंशों में नहीं हो सकता, जैसे **स्टेन्टर** (*Stentor*) में लम्बा शृंखला जैसा केन्द्रक होता है, यदि जंतु को अनुप्रस्थ रूप में मान लिया तीन भाग में काटा जाए तब उस प्रत्येक टुकड़े में जिसमें केन्द्रक का अंश होगा अविद्यमान भागों का पुनरुद्भवन हो जाएगा और तीन **स्टेन्टर** बन जाएंगे।

(ख) **लैंगिक जनन** प्रोटोज़ोआ में निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है :—

1. **युग्मकसंलयन** (Syngamy) अथवा **मैथुन** (Copulation)—युग्मकसंलयन एक ही स्पीशीज़ के दो युग्मकों के सम्पूर्ण समेकन को कहते हैं। यदि दोनों युग्मक शरीर-क्रिया की दृष्टि से विभिन्न होते हुए भी आकारिकीय दृष्टि से समरूप हुए तो उन्हें समयुग्मक (isogamete) कहते हैं और उनके युग्मकसंलयन को **समयुग्मन** (isogamy) (**मॉनोसिस्टिस**)। यदि युग्मकों में साइज और आकारिकी का अंतर पाया जाता है तो उन्हें असमयुग्मक (anisogametes) कहते हैं और उनके युग्मकसंलयन को **असमयुग्मन** (anisogamy) कहा जाता है (**प्लाजमोडियम**)। उनमें से छोटे, जो प्रायः बहुसंख्यक और गतिशील युग्मक होते हैं, नर अथवा सूक्ष्मयुग्मक होते हैं; और बड़े वाले जो कि प्रायः थोड़े और निष्क्रिय युग्मक होते हैं मादा अथवा गुरुयुग्मक होते हैं। मीयोसिस (meiosis) अथवा ह्रासी विभाजन प्रायः युग्मकों के निर्माण के दौरान होता है, लेकिन अनेक कशाभियों में मीयोसिस युग्मनजपश्चीय (post-zygotic) अर्थात् युग्मनज बनने के बाद होने वाला होता है। दो युग्मकों के समेकन से युग्मनज बनता है, इसका केन्द्रक युग्मकों के केन्द्रकों के समेकन से बनता है और उसे संकेन्द्रक (synkaryon) कहते हैं। युग्मनज या तो सीधा वयस्क बन जाता है या उसकी पुटी अवस्था बनकर उसके भीतर बहुविभजन होता है। युग्मकसंलयन चाहे समयुग्मन प्रकार का हो या असमयुग्मन प्रकार का वह सदैव **बाह्ययुग्मनी** (exogamous) होता है अर्थात् समेकित होने वाले युग्मक अलग-अलग जनकों से आते हैं, अतः प्रोटोज़ोआ में लिंग विभेद का पाया जाना कहा जा सकता है हालांकि नर-मादा में भेद नहीं किया जा सकता।

2. **संयुग्मन** (Conjugation) एक ही स्पीशीज़ के दो प्रोटोज़ोआ के अस्थायी सम्मिलन को कहते हैं जिसमें उनके साइटोप्लाज्म के समेकन के बिना ही उनके केन्द्रकीय पदार्थ का आदान-प्रदान हो जाता है, जैसे **पैरामीशियम कॉडेटम** में (चित्र 40)। सिलिएटों में स्पष्ट युग्मकों का निर्माण नहीं होता।

युग्मकसंलयन और संयुग्मन के कुछ-कुछ बीच की लैंगिक प्रक्रिया **वॉर्टिसेला** (चित्र 48) में, होती है। जिसमें एक प्राणी से पुनरावर्तित विभाजन द्वारा एक से चार की संख्या में सूक्ष्मयुग्मक बन जाते हैं और दूसरे प्राणी में केन्द्रकीय रूपांतरण होकर एक गुरुयुग्मक बन जाता है, यह गुरुयुग्मक पूर्णयुग्मक होता है क्योंकि यह विभाजन द्वारा नहीं बनता। इस प्रकार **वॉर्टिसेला** के युग्मकों में **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) पायी जाती है। सूक्ष्मयुग्मक गुरुयुग्मक से समेकित होकर एक युग्मनज बनाता है। युग्मनज में तीन विभाजन होकर सात कोशिकाएँ बनती हैं जो विकसित होकर उतनी ही संख्या में वयस्क बन जाती हैं।

युग्मकसंलयन और संयुग्मन दोनों ही में जंतु का काया-कल्प हो जाता है जो कि संकेन्द्रक से प्राप्त होने वाले पदार्थ से एक नये गुरुकेन्द्रक के प्रतिस्थापन के द्वारा होता है। इन दोनों प्रक्रियाओं से जीवों के संयोजन द्वारा नये प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं, अतः इनके द्वारा वंश की उत्तरजीविता (survival) की संभावनाएँ ज्यादा अच्छी हो जाती हैं।

3. **ऑटोमिक्सिस** (Automixis) अर्थात् **स्वमिश्रण**—कुछ प्रोटोज़ोआ में केन्द्रक दो भागों में विभाजित हो जाता है, दोनों केन्द्रक परस्पर समेकित हो जाते हैं, इसी प्रक्रिया को स्वमिश्रण (ऑटोमिक्सिस) कहते हैं। यदि दो केन्द्रक एक ही कोशिका में मौजूद हुए तब इस प्रक्रिया को **ऑटोगेमी** (autogamy) अर्थात् स्वकयुग्मन कहते हैं लेकिन यदि दो समेकनशील केन्द्रक दो कोशिकाओं में हुए तो इस प्रक्रम को **पीडोगेमी** (paedogamy) अर्थात् बालयुग्मन कहते हैं। ऑटोगेमी **पैरामीशियम ऑरीलिया** के एक ही प्राणी में होती है जिसमें युग्मनज बनाने वाले दोनों केन्द्रक उसी प्राणी में बनते हैं (चित्र 43)। पीडोगेमी **ऐक्टिनोस्फ़ीरियम** और **ऐक्टिनोफ्रिस** में होती है जिसमें एक द्वितीयक पुटी की दो कोशिकाएँ और उनमें दो शेष केन्द्रकों में समेकन होकर एक युग्मनज बनता है जिनमें द्विविभजन द्वारा जनन होता है (चित्र 63)।

प्रोटोज़ोआ का लैंगिक जनन मेटाज़ोआ के लैंगिक जनन से इस बात में भिन्न होता है कि प्रोटोज़ोअन प्राणी दैहिक और युग्मकी दोनों ही प्रकार का है। अनेक पीढ़ियों तक एक दैहिक प्रावस्था चलती रहती है जिसमें द्विविभजन होता रहता है, फिर एक पीढ़ी युग्मकी होती है जिसमें युग्मकसंलयन अथवा संयुग्मन होता है। द्विविभजन का कार्य जनन करना अर्थात् प्राणियों की संख्या बढ़ाना है; और युग्मकसंलयन अथवा संयुग्मन का कार्य काया-कल्प करना है लेकिन जनन करना नहीं हालाँकि इसे 'लैंगिक जनन' कहा गया है। कुछ प्रोटोज़ोआ के जीवन-चक्र में द्विविभजन और युग्मकसंलयन में एकांतर क्रम पाया जाता है, इस एकाँतरण में लैंगिक और अलैंगिक पीढ़ियां नियमित रूप में होती रह सकती हैं (**एलिफ़डियम**), लेकिन जैसा कि अधिकतर होता है द्विविभजन लगातार अनेक पीढ़ियों तक बार-बार होता रहता है और केवल यदाकदा युग्मकसंलयन या संयुग्मन द्वारा भंग हो जाता है। शायद अनियमित संयुग्मन केवल तभी होता है जबकि जन्तु की शरीर-क्रियात्मक दशा सामान्य से भिन्न हो जाती है (**पैरामीशियम**)।

3

फाइलम पोरिफेरा
(PHYLUM PORIFERA)

पोरिफेरा के अंतर्गत स्पंज आते हैं जो बहुकोशिक जंतुओं में सबसे आदिम हैं। ये स्थानबद्ध पेड़-सरीखे जंतु होते हैं जो किसी निमग्न ठोस चट्टान अथवा कवच पर चिपके होते हैं, और इनमें किसी भी गति की क्षमता नहीं होती। इनमें से अधिकतर समुद्री होते हैं। इनकी शक्ल सिलिंडराकार, विशाखित, फूलदान सरीखी अथवा गोलाकार होती है, कुछ का रंग फीका-फीका लेकिन अधिकतर का चटकीला होता है, इनका रंग लाल, नारंगी, जामनी, हरा या पीला होता है। देह में छिद्र और नलिकाएँ बनी होती हैं लेकिन मुख अथवा तंत्रिका-तंत्र जैसे कोई अंग नही होते। हालांकि स्पंज बहुकोशिक जंतु होते हैं लेकिन उनकी कोशिकाएँ ऊतकों के रूप में संघटित नहीं होतीं। इनमें प्राय: विलग कंटिकाओं (spicules) का एक अंत कंकाल (endoskeleton) होता है। पाचन कोशिकाओं के भीतर होता है। अंत:कंकाल और घिनावने किण्वों (ferments) के कारण अन्य जंतु प्राय: इन्हें नहीं खाते। व्यापारिक उद्देश्य के लिए स्पंजों की खेती की जाती है। आज स्पंजों की लगभग 5000 स्पीशीज़ मालूम हैं, और फाइलम को कंकाल की प्रकृति के अनुसार तीन वर्गों में बाँटा जाता है।

1. ल्यूकोसॉलीनिया (*Leucosolenia*)

क्लास **कैल्किस्पंजी** (Calcispongiae) में छोटे आकार के मरे हुए रंगों वाले वे स्पंज होते हैं जो कि उथले समुद्रों में पाये जाते हैं। इनमें पृथक् कैल्सियमी कंटिकाओं का कंकाल पाया जाता है, इनमें अनेक प्रकार का नाल-तंत्र (canal system) पाया जाता है।

ल्यूकोसॉलीनिया एक सरल प्रकार का स्पंज होता है, इसमें समुद्रतटीय जल में उगने वाली बहुसंख्यक स्पीशीज़ होती हैं। इसमें अनेक सरल फूलदान-जैसी सिलिंडराकार इकाइयों की कॉलोनियाँ अथवा समूह होते हैं, और ये इकाइयाँ या तो अपने आधारों पर अथवा अपने अक्षों के सहारे एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। नलिकाएँ विशाखित होती है और शाखाओं का पुन: संयोजन होते-जाते एक जाल-सा बन जाता है। हर मुख्य नलिका अपने अंतिम सिरे पर एक छिद्र द्वारा बाहर खुलती है, इस छिद्र को **ऑस्कुलम** (osculum) कहते हैं, नलिका की गुहा को **स्पंजोसील** (spongocoel) अथवा **जठराभ गुहा** (paragastric cavity) कहते हैं, नलिका की दीवार

पतली होती है । निवह के हर भाग में एक बाहरी एपिडर्मिस होता है जो **पिनैकोसाइट** (pinacocytes) नामक पतली शल्क-जैसी कोशिकाओं का बना होता है, ये कोशिकाएँ अपने सीमांतों को परस्पर छूते हुए व्यवस्थित रहती हैं और केवल एकमात्र कोशिका-परत बनाती हैं । स्पंजोसील का अस्तर **कोऐनोसाइट** (choanocyte) नामक कोशिकाओं की एक सम्पूर्ण परत का बना होता है । कोऐनोसाइट एक अंडाकार कोशिका होती है जिसमें एक कशाभ होता है और यह कशाभ अपने आधार पर एक पारदर्शी कॉलर से घिरा रहता है । कोऐनोसाइटों के केन्द्रक कोशिकाओं के आधार होते हैं । पिनैकोसाइटों तथा कोऐनोसाइटों के बीच में जेली-सदृश रचनाविहीन **मीजॉग्लीया** (mesogloea) की एक पतली परत
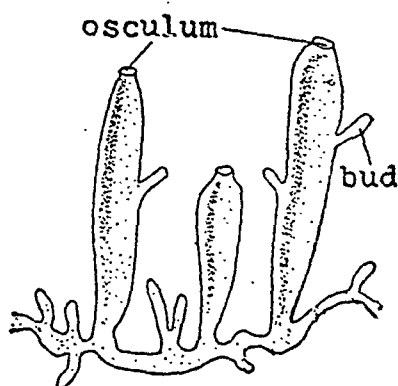
चित्र 79. ल्यूकोसॉलोनिया की कॉलोनी । Osculum, ऑस्कुलम; bud, मुकुल ।
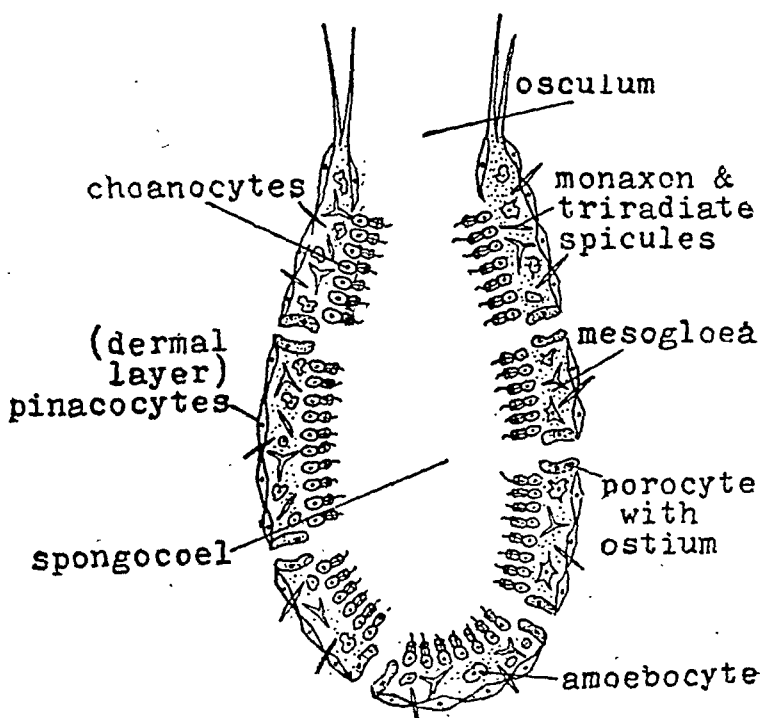
चित्र 80. ल्यूकोसॉलोनिया का अनुदैर्ध्य सेक्शन (L. S.) ।
Osculum, ऑस्कुलम; monaxon & triradiate spicules, एकाक्ष तथा त्रिअरीय कंटिकाएँ; mesogloea, मीजॉग्लीया; porocyte with ostium, ऑस्टियम से युक्त पोरोसाइट; amoebocyte, अमीबोसाइट; spongocoel, स्पंजोसील; (dermal layer) pinacocytes, (त्वचीय परत) पिनैकोसाइट; choanocytes, कोऐनोसाइट ।

होती है। मीजॉग्लीया एक जेल के रूप में होता है, इसका स्राव कोऐनोसाइटों द्वारा होता है और यह कंटिकाओं को जमाये रखती है। **मीजॉग्लीया** में कुछ **अमीबोसाइट** (amoebocytes) होते हैं जिनकी आकृति अमीबा जैसी होती है, ये कोशिकाएँ स्वच्छंद रूप में घूमती-फिरती हैं। मीजॉग्लीया में त्रिअरीय (triradiate) तथा चतुररीय (quadriradiate) कैल्सियमी **कंटिकाएँ** पायी जाती हैं। कुछ कंटिकाएँ एक-अरवाली अथवा एकाक्ष (monaxon) होती हैं जो दीवार में से बाहर को उभरी होती हैं। कुछ थोड़ी-सी एकाक्ष-कंटिकाएँ ऑस्कुलम को घेरती हुई एक अल्प झब्बा (fringe) बना लेती हैं। हर नलिका की दीवार में **ऑस्टियम** (ostium) नामक अनेक छिद्र होते हैं जो **पोरोसाइट** (porocyte) नामक कोशिकाओं में बनी गुहाओं अथवा अवकाशिका के रूप में आर-पार बने होते हैं, और इस प्रकार ऑस्टियम अंत:कोशिक होते हैं।

स्पंजोसील के कोऐनोसाइटों के कशाभों के स्पंदन से एक जलधारा उत्पन्न होती है जो ऑस्टियमों में से होकर भीतर आती है और इस प्रकार ऑस्टियम अंतर्वाही छिद्र (incurrent pores) होते हैं, उसके बाद जल स्पंजोसील में पहुँचता है और फिर ऑस्कुलम से होकर बाहर चला जाता है। इस जलधारा के द्वारा जंतु को आहार और ऑक्सीजन प्राप्त होती है तथा अपशिष्ट पदार्थ बाहर निकल जाते हैं।

स्पंज कोशिकाएं—स्पंजों में अनेक प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं जो सुस्पष्ट ऊतकों के रूप में गठित नहीं होतीं, इन कोशिकाओं के अबद्ध समूह बने होते हैं और वे एक-दूसरे से न्यूनाधिक स्वतंत्र रूप में कार्य करती हैं। ये स्पंज कोशिकाएँ इस प्रकार हैं:—

1 **पिनैकोसाइट** (Pinacocytes) पतली शल्क-सरीखी कोशिकाएँ होती हैं, ये बड़े और चपटे तथा एक केन्द्रीय केन्द्रक से युक्त होते हैं। इनके सीमांत परस्पर छूते रहते हैं और इनमें उच्च संकुचनशीलता पायी जाती है। पिनैकोसाइटों के सीमांतों के संकुचनों अथवा प्रसारों के द्वारा पूरे स्पंज के साइज में थोड़ी-सी कमी या वृद्धि हो सकती है। पिनैकोसाइट बाह्य त्वचीय परत बनाते हैं, ये अंतर्वाही नालों का अस्तर और कुछ स्पंजों में स्पंजोसील का भी अस्तर बनाते हैं। बाह्य पिनैकोसाइटों को "एक्टोडर्म" तथा स्पंजोसील का अस्तर बनाने वाले पिनैकोसाइटों को "एंडोडर्म" कहते हैं।

2. **पोरोसाइट** (Porocytes) अथवा छिद्र-कोशिकाएँ रूपांतरित पिनैकोसाइट होती हैं, ये बड़े आकार की संकुचनशील कोशिकाएँ होती हैं; पोरोसाइट के बीच से एक बड़ा सूराख निकलता है जिसे **प्रोजोपाइल** (prosopyle) कहते हैं जो एक अंतर्वाही नलिका को अरीय नाल अथवा कशाभी कक्ष के साथ जोड़ता है।

3. **कोऐनोसाइट** (Choanocytes) अथवा कशाभयुक्त एंडोडर्म कोशिका बड़ी अण्डाकार केन्द्रकयुक्त कोशिकाएँ होती हैं जिनमें से प्रत्येक में एक संकुचनशील

रिक्तिका और कुछ आहार रिक्तिकाएँ होती हैं, इनके एक सिरे पर एक लम्बा कशाभ होता है जो कि एक आधार कणिका से निकलता है, आधार कणिका एक
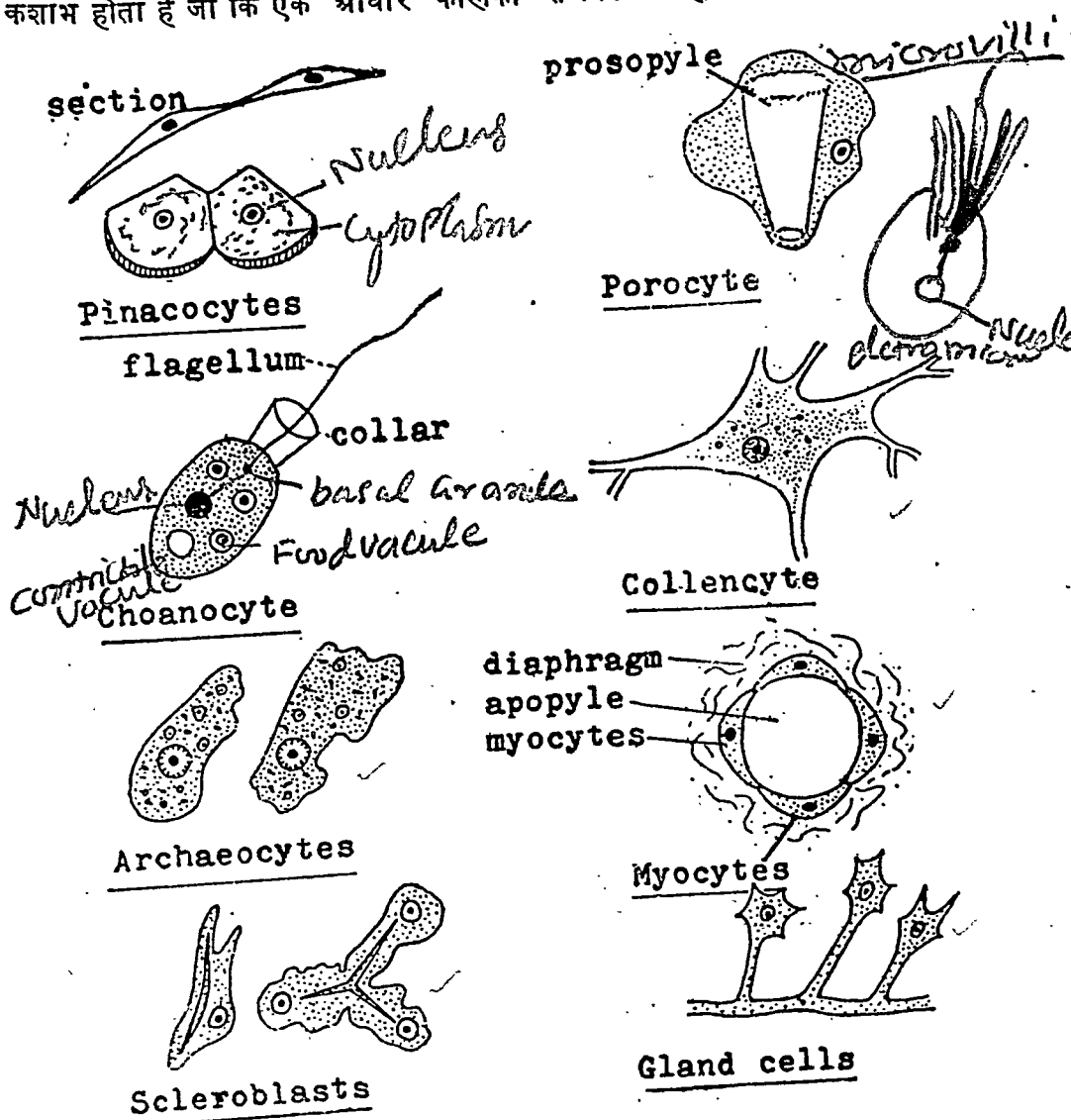
चित्र 81. स्पंज-कोशिकाओं के प्रकार

Section, सेक्शन; pinacocyte, पिनैकोसाइट; prosopyle, प्रोजोपाइल; porocyte, पोरोसाइट; flagellum, कशाभ; collar, कॉलर; choanocyte, कोऐनोसाइट; collencyte, कॉलेनसाइट; archeocytes, आर्कियोसाइट; diaphragm, डायफ्राम; apopyle, ऐपोपाइल; myocytes, मायोसाइट; scleroblasts, स्क्लेरोब्लास्ट; gland cells, ग्रंथि कोशिकाएँ।

सेंट्रियोल से जुड़ी होती है तथा इन दोनों को एक साथ मिलाकर सेंट्रोब्लेफैरोप्लास्ट (centroblepharoplast) कहते हैं जो कशाभ की गतियों का नियन्त्रण करता है। इसके पीछे एक **पराधारीय** (parabasal) पिंड होता है जो एक तन्तुक द्वारा

सेंट्रोब्लेफैरोप्लास्ट तथा केन्द्रक से जुड़ा होता है। कशाभ में दो केन्द्रीय तन्तुक तथा नौ दोहरे परिधीय तन्तुक होते हैं, इसके आधार पर इसे घेरता हुआ एक पारदर्शी संकुचनशील कॉलर बना होता है और यह कॉलर सीधे और पास-पास सटे हुए उन सूक्ष्मउद्वर्धों (microvilli) का बना होता है जो कोशिका से बाहर को निकले होते हैं। ये कोऐनोसाइट स्पंज के अरीय नालों तथा कशाभी कक्षों में संलग्न कोशिकाओं की एक परत बना लेते हैं, इनके कशाभों की गति से एक जल धारा उत्पन्न होती है। कोऐनोसाइट एंडोडर्म से उत्पन्न हुए होते हैं।

4. **अमीबोसाइट** (Amoebocytes) कूटपादों से युक्त अमीबीय कोशिकाएँ होती हैं, ये मीजॉग्लीया में स्वच्छन्द घूमते फिरते हैं। इनमें रूपांतरण होकर निम्न-लिखित प्रकार की कोशिकाएँ बन जाती हैं।

(क) **कॉलेनसाइटों** (Collencytes) में पतले, लम्बे विशाखित कूटपाद होते हैं, कूटपादों की शाखाएँ संशाखित होकर जाल के रूप में बनी हो सकती हैं। मीजॉग्लीया में कॉलेनसाइट मानो संयोजी ऊतक कोशिकाओं के समान होते हैं।

(ख) **आर्कियोसाइट** (Archeocytes) बड़े आकार के अमीबोसाइट होते हैं, जिनमें कुछ थोड़े से कुन्द कूटपाद होते हैं, केन्द्रक बड़े होते हैं, ये सामान्यीकृत कोशिकाएँ हैं जो आहार एवं अपशिष्ट पदार्थों को लाती ले जाती हैं। ये अन्य प्रकार के अमीबोसाइटों को जन्म दे सकती हैं और इनसे शुक्राणु, अण्डे तथा जेम्यूल (gemmule) नामक अलैंगिक जनन पिंड बनते हैं; इस प्रकार की कोशिकाओं को जो कि जन्तु के भीतर किसी भी अन्य प्रकार की कोशिका के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं, **पूर्णसमर्थ** (totipotent) कहते हैं।

(ग) **मायोसाइट** (myocytes) तर्कुरूपी संकुचनशील कोशिकाएँ होती हैं, ये छिद्रों के चारों ओर एक संवरणी (sphincter) बनाती हैं जैसे ऑस्कुलमों और ऐपोपाइलों के चारों ओर जहाँ वे इन छिद्रों को खोलने व बन्द करने वाली पेशियों के रूप में कार्य करती हैं। रूप और संकुचनशीलता में इनमें अनैच्छिक पेशियों से कुछ समानता दीख पड़ती है।

(घ) **स्क्लेरोब्लास्ट** (Scleroblasts) वे अमीबोसाइट होते हैं जो स्पंज के कंकाल का स्राव कर रहे होते हैं। इन्हें अलग-अलग नाम दिए जाते हैं—जब सिलिकामय कंटिकाओं का स्राव करते हों तो **सिलिकोब्लास्ट** (Silicoblasts) और जब स्पंजिन तन्तुओं का स्राव करते हों तो **स्पंजिओब्लास्ट** (Spongioblasts) कहते हैं।

(ङ) **ग्रन्थि-कोशिकाएँ** (Gland-cells) अमीबाकार होती हैं जिनके एक सिरे पर एक लम्बा सूत्र बना होता है, ये अपने सूत्रों द्वारा स्पंज की सतह से चिपकी हुई पायी जाती हैं, ये चूने का स्राव करती हैं।

2. **साइकॉन जिलेटिनोसम** (*Sycon gelatinosum*)

साइकॉन एक आम मिलने वाला एकल स्पंज है, इसमें अनेक सिलिंडर होते

हैं जो 2 से 8 cm. लम्बे होते हैं, और ये सारे सिलिंडर आधार पर एक दूसरे से जुड़े होते हैं और इसी आधार द्वारा समुद्र में निमग्न किसी ठोस वस्तु के साथ एक चिपकाने वाले स्राव की सहायता से चिपका रहता है। यह धूसर अथवा हल्के भूरे रंग का होता है और उथले जल से लेकर 100 मीटर तक की गहराई में पाया जाता है जहाँ पर धाराओं द्वारा जन्तु को प्रचुर आहार और अच्छी तरह ऑक्सीजनयुक्त जल मिलता रहता है।
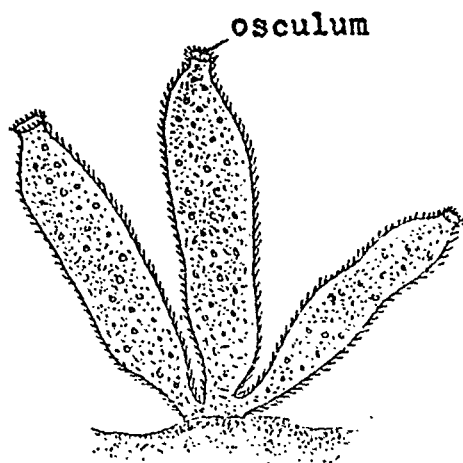
चित्र 82. साइकॉन जिलेटिनोसम।
Osculum, ऑस्कुलम।

प्रत्येक सिलिंडर के मुक्त सिरे पर अकेला बड़ा ऑस्कुलम होता है जो कि बहिर्वाही (exhalant) छिद्र होता है, इसके चारों ओर विशाल एकाक्ष कंटिकाएँ होती हैं जो अन्य जन्तुओं को भीतर जाने से रोकती हैं। ऑस्कुलम के नीचे एक छोटा, संकीर्ण कॉलर प्रदेश होता है। सिलिंडर की सतह पर बहुभुजी उभार बने होते हैं और इन उभारों के बीच-बीच में भीतर को दबी रेखाएँ होती हैं, इन रेखाओं में **ऑस्टियमों** के समूह होते हैं जो कि अन्तर्वाही छिद्र होते हैं। प्रत्येक सिलिंडर के भीतर एक **जठराभ गुहा** अथवा **स्पंजोसील** होती है जो कि पाचन गुहा नहीं होती। सिलिंडर की दीवार मीज़ॉग्लीया की मात्रा में वृद्धि हो जाने के कारण मोटी हो जाती है, इस दीवार में इस ढंग से वलन पड़ चुके हैं कि दो प्रकार के नाल बन गये हैं, एक तो अन्तर्वाही नाल (incurrent canals) और दूसरे **अरीय नाल** (radiating canals) ये एकान्तर क्रम और अरीय रूप में स्पंजोसील को घेरते हुए बने होते हैं, लेकिन कॉलर वाले तथा आधार-क्षेत्रों में न तो ऑस्टियम होते हैं और न ही नाल।

ऊतकी संरचना (Histological structure)—स्पंज को बाहर से ढकने वाली त्वचीय परत पतले, शल्क-सरीखे पिनैकोसाइटों की बनी होती है, ये कोशिकाएँ एक्टोडर्म से उत्पन्न हुई होती हैं, पिनैकोसाइट अपने सीमांतों को छूते हुए व्यवस्थित रहते हैं और इस प्रकार वे एक अदृढ़ परत बनाते हैं, वे अन्तर्वाही नालों का अस्तर भी बनाते हैं। **अन्तर्वाही नाल** संकीर्ण मार्ग होते हैं जो सेक्शन में कुछ-कुछ वर्गाकार होते हैं। बाहर से अन्तर्वाही नाल के ऊपर एक **छिद्र-झिल्ली** (pore membrane) होती है जिसमें 3 या 4 अन्तराकोशिक ऑस्टियम होते हैं। **ल्यूकोसॉलीनियम** में ये ऑस्टियम अन्तःकोशिक होते हैं। अन्तर्वाही नाल अपने भीतरी सिरों पर बन्द रूप में समाप्त होते हैं और स्पंजोसील तक नहीं पहुँचते। अरीय अथवा कशाभी नाल चौड़े अष्टभुजी मार्ग होते हैं, वे अपने बाहरी सिरों पर बन्द होते हैं, लेकिन भीतरी सिरों पर उनमें से हर एक नाल एक छोटे, चौड़े **बहिर्वाही नाल** के साथ जुड़ा होता है जो पुनः स्पंजोसील के साथ जुड़ा होता है। अरीय नाल तथा बहिर्वाही नाल के बीच में
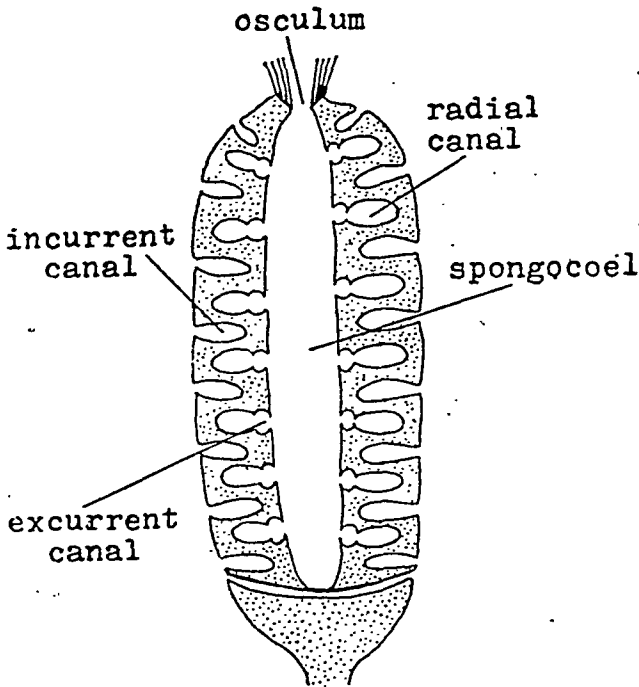
चित्र 83. साइकॉन के एक सिलिंडर का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L. S.) जिसमें मोटी-मोटी संरचना दिखायी गयी है।
Osculum, ऑस्कुलम; radial canal, अरीय नाल; spongocoel, स्पंजोसील; incurrent canal, अन्तर्वाही नाल; excurrent canal, वहिर्वाही नाल।
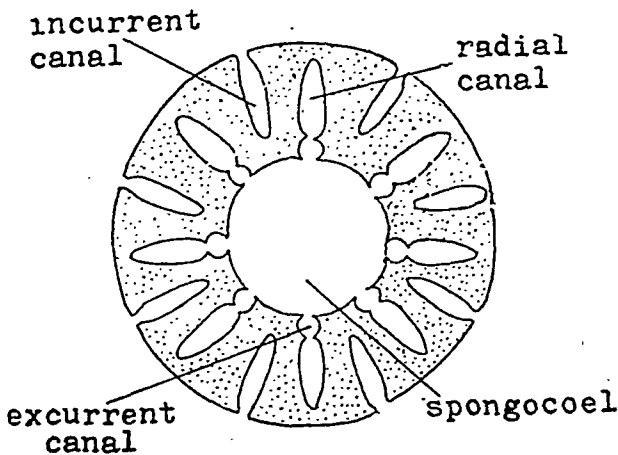
चित्र 84. एक सिलिंडर का अनुप्रस्थ सेक्शन (मोटा-मोटा)
Incurrent canal, अन्तर्वाही नाल; radial canal अरीय नाल; spongocoel, स्पंजोसील; excurrent canal, वहिर्वाही नाल।

एक पतला **डायफ्राम** होता है जिसके बीच में **ऐपोपाइल** नामक एक बड़ा छिद्र बना होता है, ऐपोपाइल के गिर्द संकुचनशील मायोसाइट होते हैं जिनके कारण यह सिकुड़ या फैल सकता है। बहिर्वाही नाल तथा स्पंजोसील के बीच का चौड़ा संयोजन **जठरीय ऑस्टियम** (gastric ostium) कहलाता है।

अरीय नाल, बहिर्वाही नाल तथा स्पंजोसील का अस्तर "एण्डोडर्म" का बना होता है, लेकिन यह तथाकथित एण्डोडर्म दो प्रकार का होता है। जो एण्डोडर्म कोशिकाएँ बहिर्वाही नालों तथा स्पंजोसील का अस्तर बनाती हैं वे पतली और चपटी पिनैकोसाइटों से मिलती-जुलती कोशिकाएँ होती हैं। अरीय नालों का अस्तर बनाने वाली एण्डोडर्म कोशिकाओं को **कोऐनोसाइट** कहते हैं जो संलग्न कोशिकाओं की अदृढ़ रूप में व्यवस्थित अकेली परत होते हैं। कोऐनोसाइट एक अण्डाकार केन्द्रकित कोशिका होती है जिसके भीतर एक संकुचनशील रिक्तिका, आहार रिक्तिकाएँ और आधार पर पारदर्शी कॉलर से घिरा हुआ एक लम्बा कशाभ होता है।
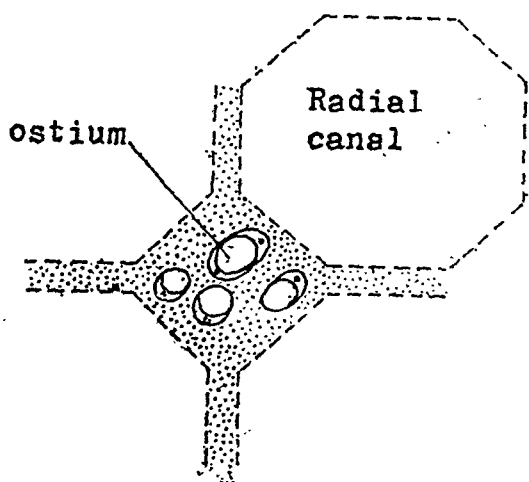
चित्र 85. छिद्र-झिल्ली। Ostium, ऑस्टियम; radial canal, अरीय नाल।

अन्तर्वाही और अरीय नाल एक दूसरे के अगल-बगल होते हैं और उन दोनों के बीच **प्रोजोपाइल** नामक अनेक छोटे छिद्रों द्वारा सम्बन्ध बना रहता है। प्रोजोपाइल **पोरोसाइटों** में बने छिद्र होते हैं, पोरोसाइट रूपान्तरित पिनैकोसाइटों से बनी नलिकाकार, संकुचनशील कोशिकाएँ होती हैं। एक्टोडर्म और एण्डोडर्म कोशिकाओं के बीच में एक पारदर्शी जेली-जैसा **मीजॉग्लीया** अथवा **मीजेन्काइम** (mesenchyme) होता है; यह एक जेल के समान है और कंटिकाओं को अपने स्थान पर बनाये रखता है। जब मीजेन्काइम में अमीबोसाइटों की संख्या थोड़ी होती है तब इसे **कॉलेन्काइमा** (collenchyma) कहते हैं, लेकिन जब इन कोशिकाओं की संख्या अधिक होती है तब इसे **पैरेन्काइमा** (parenchyma) कहते हैं। मीजॉग्लीया में स्वच्छन्द घूमती-फिरती हुई अनेक प्रकार की अमीबाकार कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **अमीबोसाइट** कहते हैं। अमीबोसाइट आहार और मल पदार्थ के लाने-ले जाने का काम करते हैं, ये लैंगिक कोशिकाओं और जेम्यूलों का निर्माण कर सकते हैं।

कंटिकाएँ (Spicules)—मीजॉग्लीया में कैल्सियमी कंटिकाओं का एक कंकाल पाया जाता है। ये कंटिकाएँ अमीबोसाइटों से बनती हैं जिन्हें **स्क्लेरोब्लास्ट**

कहते हैं। साइकॉन में एकाक्ष तथा त्रिअरीय कंटिकाएँ होती हैं। एकाक्ष कंटिकाएँ एक अकेले स्क्लेरोब्लास्ट से वनती हैं और त्रिअरीय कंटिकाएँ एक साथ आए हुए
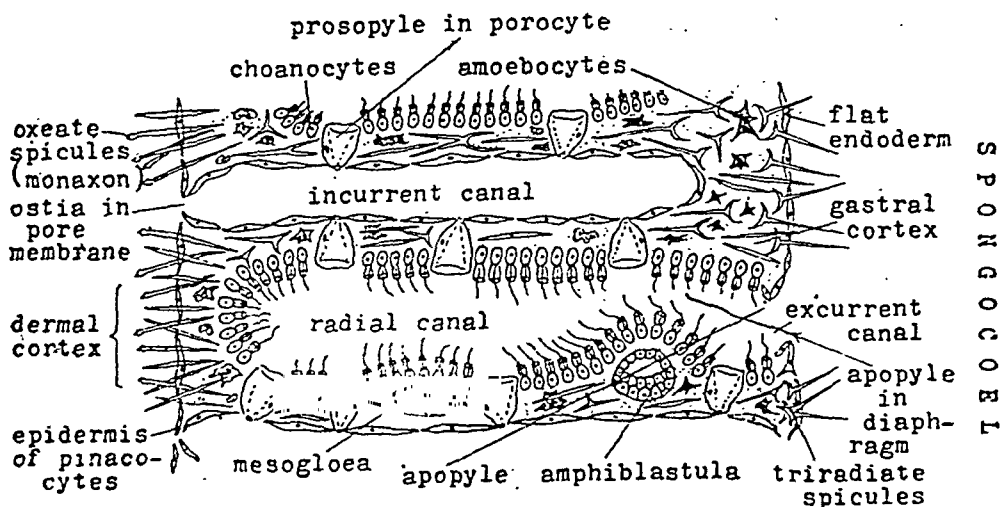
चित्र 86. साइकॉन की दीवार का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L. S.) नालों के समानान्तर।

Prosopyle in porocyte, पोरोसाइट में वना प्रोजोपाइल; choanocytes, कोऐनोसाइट; amoebocytes, अमीवोसाइट; flat endoderm, चपटा एण्डोडर्म; gastral cortex, जठरीय कॉर्टेक्स; excurrent canal, बहिर्वाही नाल; apopyle in diaphragm, डायफ्राम में वना ऐपोपाइल; tri-radiate spicules, त्रिअरीय कंटिकाएं; amphiblastula, ऐम्फिब्लास्टुला; apopyle, ऐपोपाइल; mesogloea, मीजॉग्लीया; epidermis of pinacocytes, पिनैकोसाइटों का एपिडर्मिस; dermal cortex, त्वचीय कॉर्टेक्स; ostia in pore membrane, छिद्र झिल्ली में वने ऑस्टियम; oxeate spicules (monaxon), ऑक्सिया कंटिकाएँ (एकाक्ष); incurrent canal, अन्तर्वाही नाल; radial canal, अरीय नाल; spongocoel पंजोसील।

radius

तीन स्क्लेरोब्लास्टों से वनती हैं जिनमें से प्रत्येक स्क्लेरोब्लास्ट से एक अर वनता है। त्रिअरीय कंटिकाएँ एक जाल वनाते हुए भीतर गड़ी रहती हैं लेकिन एकाक्ष कंटिकाएँ सतह से बाहर को उभरी रहती हैं, वे सुई-जैसी हो सकती हैं अथवा वर्छी-जैसी। वाहरी सतह पर एकाक्ष कंटिकाएँ वहुभुजी उभारों पर से समूह वनाते हुए वाहर को उठी होती हैं, इन उभारों पर वे ऑस्टियमों को अंशतः छिपाये रखतीं और उनकी रक्षा करती हैं, इन कंटिकाओं के प्रत्येक समूह को सामूहिक रूप में ऑक्सियोट कंटिकाएँ कहते हैं।

प्रत्येक कैल्सियमी स्पंज में कैल्सियमी कंटिकाएँ होती हैं, लेकिन अन्य में सिलिका की कंटिकाएँ हो सकती हैं जो त्रि-अक्षीय अथवा छह किरणों वाली अथवा
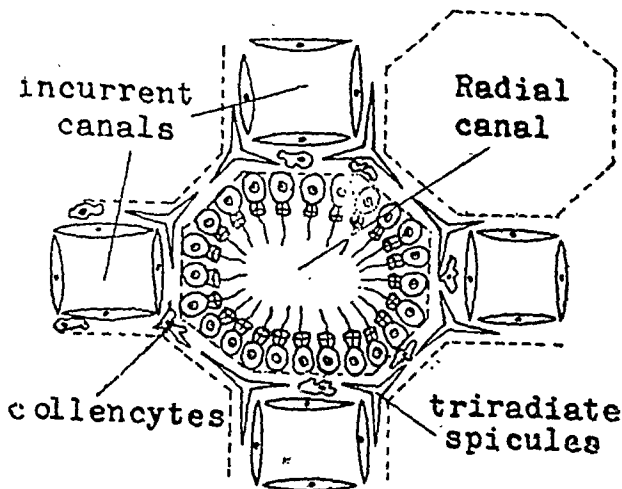
चित्र 87. साइकॉन की दीवार का अनुदैर्ध्य सेक्शन (L. S.) (नालों के साथ समकोण बनाते हुए)।
Incurrent canals, अन्तर्वाही नाल; radial canal, अरीय नाल; tri-radiate spicule, त्रिअरीय कंटिका; collencytes, कॉलेन्साइट।
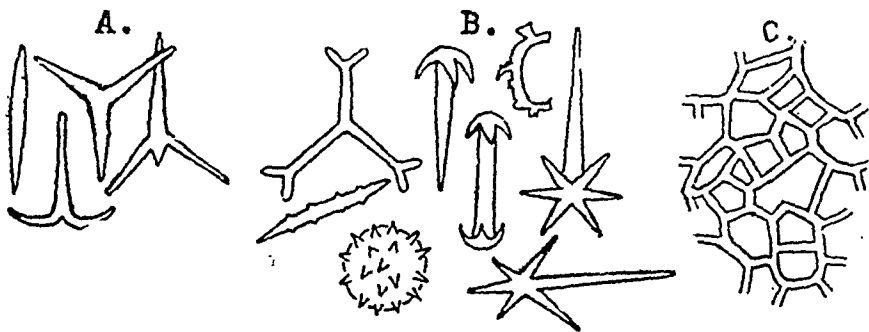
चित्र 88. A—कैल्सियमी कंटिकाएँ, B—सिलिकामय कंटिकाएँ, C—स्पंजिन तन्तु।

जटिल आकृतियों वाली हो सकती हैं और एक जाल बना लेती हैं। कुछ स्पंजों में स्पंजिन तन्तुओं का कंकाल होता है जिनके साथ-साथ कंटिकाएँ हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकतीं, स्पंजिन एक जाल-जैसा होता है, यह सिल्क जैसी संघटना का होता है और इसमें आयोडीन होता है।

अरीय नालों के बाहर के मोटे उभारों को **त्वचीय कॉर्टेक्स** कहते हैं और अन्तर्वाही नालों के भीतर के मोटे बन गये भागों को **जठरीय कॉर्टेक्स** कहा जाता है।

जल-धारा (Water current)—स्पंज के अरीय नालों के कोऐनोसाइटों के कशाभों के असमन्वित स्पंदन से एक जलधारा पैदा होती है जो उनके ऑस्टियमों में से प्रविष्ट होकर अंतर्वाही नालों में पहुँच जाती है, उसके बाद प्रोजोपाइलों में से होकर यह अरीय नालों में पहुँचती है, उसके बाद ऐपोपाइलों में से होकर बहिर्वाही नालों में, जहाँ से वह जठरीय ऑस्टियमों में से होती हुई जठरीय गुहा (स्पंजोसील) में पहुँच जाती है, और फिर यह जल-धारा ऑस्कुलम में से होकर बाहर चली जाती है। इस प्रकार पोरिफेरा में सूक्ष्म ऑस्टियम जल को भीतर लेने के लिए हैं और बड़े ऑस्कुलम बाहर निकालने वाले हैं। जल की धारा आहार और ऑक्सीजन को भीतर लाती है तथा मल पदार्थों को बाहर निकाल ले जाती है।

पोषण (Nutrition)—स्पंज जैव पदार्थ के कणों का और छोटे-छोटे जीवों का आहार करता है जैसे कि बैक्टीरिया, डायटम और प्रोटोजोआ, ये जल-धारा के साथ भीतर पहुँच जाते हैं। आहार का अंतर्ग्रहण कुछ तो पोरोसाइटों के द्वारा होता है, लेकिन मुख्यतः कोऐनोसाइटों के द्वारा कोशिका के पार्श्व पर से या उसके कॉलर में से होता है। कोशिका में एक आहार रिक्तिका बन जाती है जिसके भीतर पाचन सम्पन्न होता है। पाचन पूरी तरह अंतःकोशिकीय होता है, जैसे कि प्रोटोज़ोआ में; आहार रिक्तिकाओं के अंतःपदार्थ पहले तो अम्लीय होते हैं और फिर बाद में क्षारीय हो जाते हैं। अंशतः पचे भोजन को अमीबोसाइट अपने अंदर ले लेते हैं, ये अमीबो-साइट पचे हुए आहार को देह के समस्त भागों तक पहुँचाते और सप्लाई करते हैं। आहार के बिना पचे हुए शेष भाग काऐनोसाइटों के कॉलरों में से होकर बाहर निकलते हैं जहाँ से फिर वे जलधारा के द्वारा देह के बाहर पहुँच जाते हैं। लेकिन अकैल्सियमी स्पंजों में आहार कोऐनोसाइटों से अमीबोसाइटों में पहुँच जाता है, या सीधे अमीबो-साइट आहार को अपने भीतर समेट लेते हैं, पाचन केवल अमीबोसाइटों में होता है जो बिना पचे भोजन को भी बाहर निकाल फेंकते हैं।

बहिःक्षेपित मल और उत्सर्गी पदार्थ (अधिकतर अमोनिया) जलधारा के साथ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। गैसीय आदान-प्रदान स्पंज की कोशिकाओं और जलधारा के बीच साधारण विसरण द्वारा होता है।

नाल-तंत्र (Canal system)—1. **ऐस्कॉन-प्रकार** (Ascon type)—देह-भित्ति पतली और ऑस्टियमों द्वारा छिद्रित होती है और ये ऑस्टियम स्पंजोसील में खुलते हैं जो पूरी तरह कोऐनोसाइटों के अस्तर की बनी होती है, जैसे **ल्यूकोसॉलेनिया**। जल-धारा का मार्ग इस प्रकार होता है, ऑस्टियम → प्रोजोपाइल → स्पंजोसील → ऑस्कुलम। ऐस्कॉन प्रकार के स्पंजों में अरीय सममिति (radial symmetry) पाई जाती है। ऐस्कॉन-प्रकार की संरचना से साइज की सीमा बन जाती है जिससे कि इस प्रकार के स्पंज हमेशा छोटे होते हैं। इनमें जल-प्रवाह की गति बहुत धीमी होती है, इस धीरेपन का कारण यह है कि स्पंजोसील में जल की वह मात्रा बहुत ज्यादा होती है जिसे ऑस्कुलम में से तेजी से बाहर निकालना होता है।

2. साइकॉन प्रकार (Sycon type)—मीज़ॉग्लीया की मात्रा बढ़ जाने से देह-भित्ति मोटी हो जाती है, साथ ही यह भित्ति भीतर को और बाहर को मुड़-मुड़कर वलनयुक्त हो जाती है, और इससे दो प्रकार के नाल बनते हैं, भीतर को मुड़े हुए हिस्से अंतर्वाही नाल बन जाते हैं जिनका भीतरी अस्तर एपिडर्मल एपिथीलियम का बना होता है और जो ऑस्टियमों के द्वारा बाहर को खुलते हैं, ये नाल प्रोजोपाइलों के द्वारा अरीय नाल नामक दूसरे प्रकार के नालों में खुलते हैं, ये अरीय नाल बाहर को मुड़े हुए भाग होते हैं जो बाहर तक पहुँच जाते हैं, इनका भीतरी अस्तर कोऐनोसाइटों
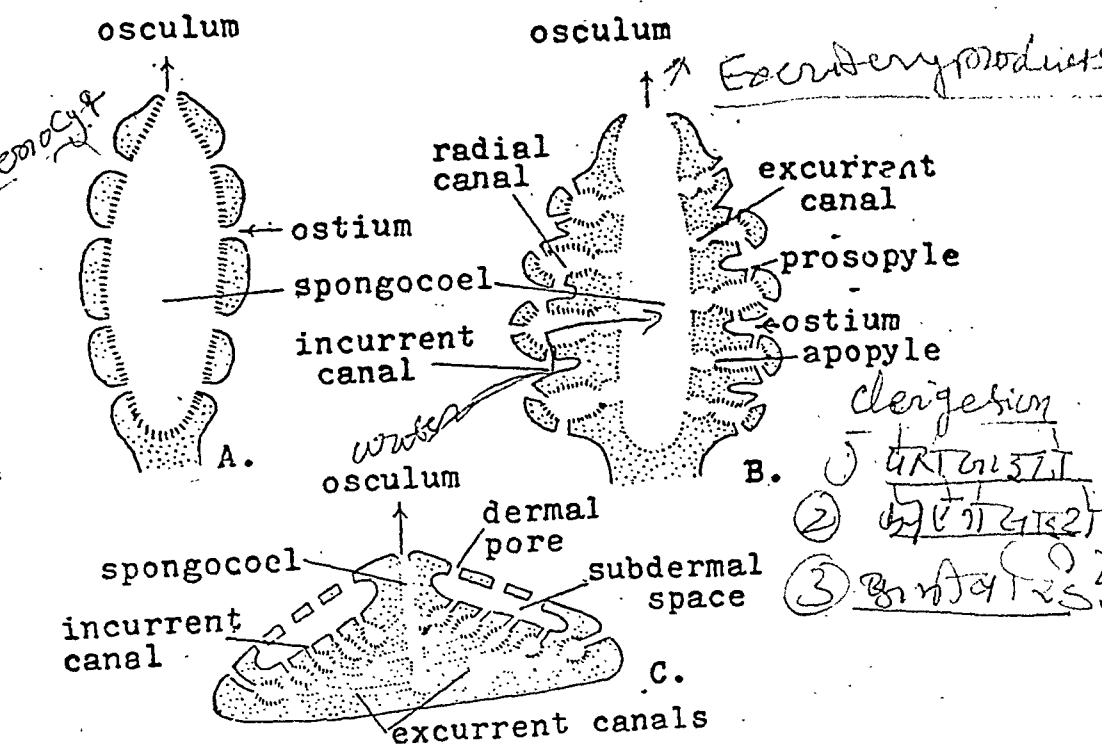
चित्र 89. स्पंजों का नाल-तंत्र : A—ऐस्कॉन प्रकार। B—साइकॉन प्रकार। C—रैगॉन प्रकार। समूची रेखा=एक्टोडर्मी एपिथीलियम; बिन्दु रेखा=चपटा एंडोडर्मी एपिथीलियम; छोटे समानांतर डैश=कशाभयुक्त कोऐनोसाइट।

Osculum, ऑस्कुलम; ostium, ऑस्टियम; spongocoel, स्पंजोसील; radial canal, अरीय नाल; excurrent canal, वहिर्वाही नाल; prosopyle, प्रोजोपाइल; apopyle, ऐपोपाइल; incurrent canal, अंतर्वाही नाल; dermal pore, त्वचीय छिद्र; subdermal space, अधःत्वचीय गुहा।

का बना होता है। स्पंजोसील का अस्तर कोऐनोसाइटों का न बना होकर चपटी एंडोडर्म कोशिकाओं का बना होता है. कोऐनोसाइट केवल अरीय नालों तक ही सीमित रहते हैं, उदाहरण **साइकॉन**। जलधारा का मार्ग इस प्रकार होता है : ऑस्टियम→अंतर्वाही नाल→प्रोजोपाइल→अरीय नाल→ऐपोपाइल→वहिर्वाही

नाल→जठर ऑस्टियम→स्पंजोसील→ऑस्कुलम । देह-भित्ति के वलित हो जाने के बावजूद साइकनाभ स्पंजों की अरीय सममिति कायम बनी रहती है ।

3. **रैगॉन प्रकार** (Rhagon type)—रैगॉन प्रकार के स्पंज में एक चौड़ा आधार होता है और आकृति में यह शंक्वाकार होता है जिसके अंतिम सिरे पर एक अकेला ऑस्कुलम होता है। इसमें मीजॉग्लीया की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है जिसके कारण अधःत्वचीय गुहाएँ (subdermal spaces) बन जाती हैं । अंतर्वाही छिद्र अथवा ऑस्टियम इन अधःत्वचीय गुहाओं में खुलते हैं जो देह की पूरी सतह के नीचे फैली होती हैं । विशाखित अंतर्वाही नाल अधःत्वचीय गुहाओं से चलकर छोटे कशाभी खानों में खुलते हैं, ये कशाभी खाने अरीय नालों के खंडित हो जाने से बने होते हैं, कोऐनोसाइटों का अस्तर केवल इन कशाभी खानों में ही होता है । बहिर्वाही नाल कशाभी खानों से निकल कर स्पंजोसील में मिल जाते हैं। अंतर्वाही और बहिर्वाही नाल जटिल और विशाखित हो सकते हैं, स्पंजोसील केवल एक ऑस्कुलम द्वारा बाहर खुलती है, उदाहरण **स्पंजिला** (*spongilla*) । जल-धारा का मार्ग इस प्रकार होता है : ऑस्टियम→अधःत्वचीय गुहाएँ→अंतर्वाही नाल→प्रोजोपाइल→कशाभी खाने→ऐपोपाइल→बहिर्वाही नाल→स्पंजोसील→ऑस्कुलम ।

4 **ल्यूकॉन प्रकार** (Leucon type)—मीजॉग्लीया का विकास बहुत ज्यादा हो गया होता है जिसके कारण स्पंज बड़ा हो जाता और अनिश्चित आकृति का बन जाता है जिसमें स्पंजोसील पूरी तरह समाप्त हो जाती है । वलन बनने की सर्वोच्च सीमा पहुँच जाती है, अरीय सममिति समाप्त हो जाती है, और तंत्र अनियमित बन जाता है । अरीय नालों में वलन होकर अनेक छोटे-छोटे गोल अथवा अंडाकार खाते बन जाते हैं और केवल इन्हीं खानों में कोऐनोसाइट होते हैं, यह स्थिति कोऐनोसाइट परत के बाहर को मुड़ते जाने और वहिर्वृद्धि के कारण उत्पन्न होती है । कशाभी खानों के बाहर-बाहर की जगह में मीजॉग्लीया भर जाता है । स्पंज के भीतरी भाग में अनेक अंतर्वाही और वहिर्वाही नाल फैले होते हैं जो अनेक शाखाओं के होने के कारण बहुत जटिल हो जाते हैं, और बहिर्वाही नाल संयोजित होकर बड़े वहिर्वाही नाल एवं गुहाएँ बनाते हैं जो ऑस्कुलमों तक पहुँचती हैं । सतह पर एपिडर्मिसी एपिथीलियम मढ़ा होता है और उसमें अनेक ऑस्टियम तथा ऑस्कुलम बने होते हैं । कुछ ल्यूकॉन-प्रकार के स्पंजों में ऐपोपाइल चौड़े-चौड़े मुखों द्वारा वहिर्वाही नालों में पीछे खुलते हैं, इस तंत्र को **यूरीपाइलस** (eurypylous) अर्थात् अधिद्वारीय कहा जाता है (चित्र 90 D) । अन्य में **ऐफोडस** (aphodus) नामक एक संकीर्ण नाल कशाभी खाने और वहिर्वाही नाल के बीच में पाया जा सकता है, तब इस तंत्र को **ऐफ़ोडल** (aphodal) कहते हैं । कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अंतर्वाही नाल और कशाभी खाने के बीच में **प्रोजोडस** (prosodus) नामक एक संकीर्ण नलिका बनी हो सकती है (चित्र 90 E) । इस प्रकार ल्यूकॉन प्रकार का नाल-तंत्र जटिल होता है और इसमें विभेद मिलते हैं, जैसे **ऑस्केरेला** (*Oscarella*) । जलधारा का मार्ग इस प्रकार होता है : ऑस्टियम→अंतर्वाही नाल→प्रोजोडस (यदि हुआ)→

प्रोजोपाइल→कशाभी खानें→ऐपोपाइल→ऐफोडस (यदि हुआ)→बहिर्वाही नाल→
बहिर्वाही नलिकाएँ एवं बहिर्वाही गुहाएँ→ऑस्कुलम। ल्यूकॉन प्रकार का नाल-तंत्र
बहुत कारगर होता है और अधिकतर स्पंज ल्यूकॉन-प्रकार की योजना पर निर्मित
होते हैं और वे काफी बड़ा-बड़ा साइज प्राप्त कर लेते हैं। वे सदैव अनियमित संरचना
वाले होते हैं लेकिन जलधारा का प्रवाह काफी तीव्र और कारगर होता है।

स्पंजों के क्रम-विकास में जल-प्रवाह और सतही क्षेत्रफल की समस्याओं का
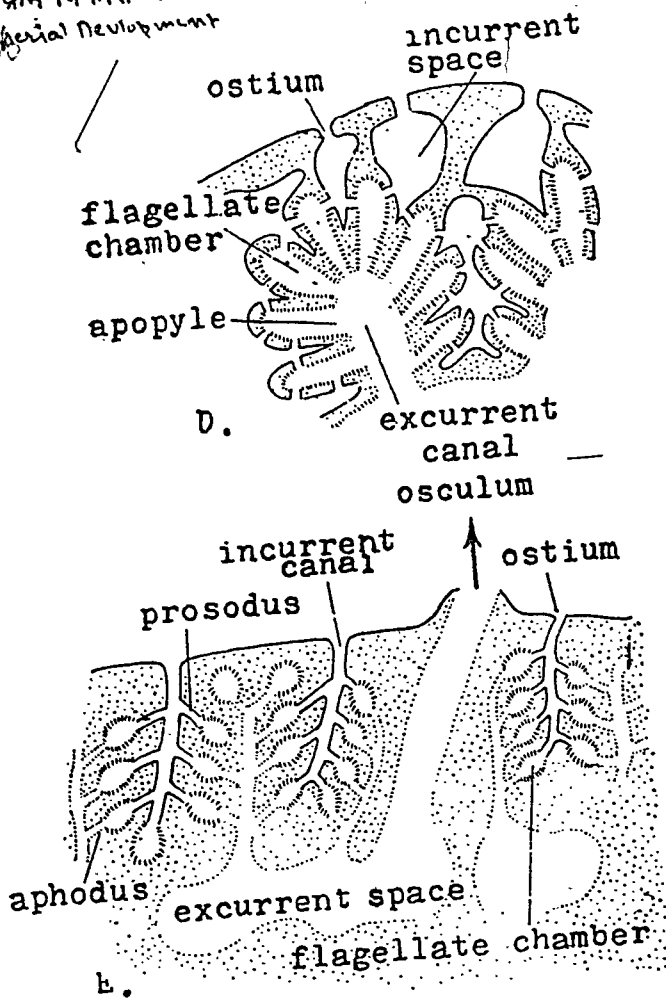
चित्र 90 D एवं E—ल्यूकॉन प्रकार के नाल तंत्र।
समूची रेखा=एक्टोडर्मी एपिथीलियम; बिन्दु रेखा=चपटा एण्डोडर्मी एपि-
थीलियम; छोटे समानांतर डैश=कशाभी कोऐनोसाइट।
Ostium, ऑस्टियम; incurrent space, अंतर्वाही गुहा; flagellate
chamber, कशाभी खाना; apopyle, ऐपोपाइल; excurrent canal,
बहिर्वाही नाल; osculum, ऑस्कुलम; incurrent canal, अंतर्वाही नाल;
prosodus, प्रोजोडस; aphodus, ऐफोडस; excurrent space,
बहिर्वाही गुहा।

समाधान देह-भित्ति के वलनित होने तथा स्पंजोसील के ह्रास के द्वारा हुआ है। स्पंजों के नाल-तन्त्र का क्रम-विकास सरल से जटिल प्राणियों की दिशा में हुआ है जैसे ऐस्कॉन→साइकॉन→ल्यूकॉन। 1. सरल ऐस्कॉन प्रकार में स्पंजोसील का अस्तर कोऐनोसाइट बनाते हैं। 2. देह भित्ति में भीतर को दबने और वलन पड़ते जाने से ऐस्कॉन प्रकार से साइकॉन प्रकार बन गया है, इससे सतही क्षेत्रफल बढ़ गया है और एकाँतर क्रम में व्यवस्थित अंतर्वाही एवं अरीय नाल बन गये हैं, कोयनोसाइट केवल अरीय नालों में ही सीमित होते हैं। 3. दीवारों में और आगे वलन पड़ते जाने, मीजॉग्लीया की मात्रा में वृद्धि होने तथा ऑस्कुलमों की संख्या में वृद्धि होने से ल्यूकॉन प्रकार बन गया है जिसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं: (क) साइकॉन प्रकार के अरीय नाल अनेक कशाभी खानों में टूट चुके हैं, केवल इन्हीं खानों में कोऐनोसाइट होते हैं। (ख) अंतर्वाही नालों में एक-एक प्रोज़ोडस हो सकता है जो उन्हें कशाभी खानों से जोड़ता हो, साथ ही कशाभी खाने को बहिर्वाही नाल से जोड़ने वाला एक ऐफ़ोडस भी हो सकता है। (ग) बहिर्वाही नाल संयुक्त होकर बड़ी बहिर्वाही गुहाएं बना सकते हैं, जिनमें से सबसे बड़ी गुहा ऑस्कुलमों के द्वारा बाहर को खुलती है। (घ) मीजॉग्लीया की वृद्धि से स्पंजोसील समाप्त हो गयी है।

ल्यूकॉन प्रकार की उत्पत्ति ऐस्कॉन प्रकार से अथवा साइकॉन प्रकार से हो सकती है, और तो और यह रैगॉन प्रकार से भी उत्पन्न हो सकता है किन्तु जैसा कि प्रायः अधिकतर हुआ है यह स्पंजों में स्वतंत्र रूप में बार-बार उत्पन्न हुआ है। ल्यूकॉन प्रकार से स्पंज का साइज बड़ा हो सकना सम्भव होता है जिसमें जलधारा के लिए एक कारगर नाल-तंत्र होता है। रैगॉन प्रकार का नाल-तंत्र सीधे लार्वा की कोशिकाओं की पुनर्व्यवस्था द्वारा उत्पन्न हुआ है। विविध नाल-तंत्रों से ये सब कार्य सम्पन्न होते हैं—पोषण, परिसंचरण, श्वसन तथा उत्सर्जन, जलधारा आहार एवं ऑक्सीजन को भीतर लाती तथा उत्सर्गी पदार्थों को बाहर ले जाती है।

जनन—स्पंज में अलैंगिक तथा लैंगिक दोनों प्रकार से जनन होता है।

1. **अलैंगिक जनन** (क) **पुनरुद्भवन**—स्पंजों में पुनरुद्भवन की क्षमता बहुत ज्यादा होती है, किसी भी कटे हुए टुकड़े से एक पूरा स्पंज बन सकता है। यदि स्पंज को मसल-मसल कर किसी बारीक कपड़े में से भींच कर छाना जाए तो उसकी कोशिकाएं एवं कोशिका समूह बाहर निकल आते हैं और फिर उनमें पुनरुद्भवन होकर नये स्पंज बन सकते हैं। इस पुनरुद्भवन क्षमता का उपयोग औद्योगिक रूप में स्नान-स्पंज की खेती में किया जाता है। (ख) **बहिर्जात मुकुलन**—स्पंज में उसकी शाखाओं के आधार पर कायिक रूप में बाहरी मुकुल बन जाते हैं और इस प्रकार इकाइयों का एक समूह बन जाता है। अंततः मुकुल अपने जनक से संकुचित होकर अलग हो जाते और उनमें से प्रत्येक एक नया स्पंज बना लेता है। (ग) **अन्तःजात मुकुलन**—हर अलवणजलीय स्पंज और कुछ समुद्री स्पंजों में जेम्यूल (gemmule) नामक अलैंगिक जनन पिंड स्पंज-शरीर के भीतर बनते हैं। आर्कियोसाइट समूहों में आकर मीजॉग्लीया में एकत्रित होते जाते हैं, उसके बाद वे बहुकेन्द्रकी बन जाते हैं,

उनमें सुरक्षित खाद्य पदार्थ के रूप में प्रोटीन भर जाते हैं और आर्कियोसाइटों में यह पदार्थ विशिष्ट पोषक कोशिकाओं जिन्हें **ट्रोफोसाइट** (trophocyte) कहते हैं, द्वारा प्रदान किया जाता है। खाद्य से भरे आर्कियोसाइटों के इस समूह को बाहर से कुछ अमीबोसाइट घेर लेते हैं और एक कड़े दो-परत वाले **कवच** का स्राव करते हैं, इस कवच में एक छोटा-सा द्वार होता है जिसे **माइक्रोपाइल** (micropyle) कहते हैं। फिर उसके बाद कुछ स्क्लेरोब्लास्ट कंटिकाओं का स्राव करते हैं, ये कंटिकाएं कवच की दो परतों के बीच अरीय रूप में व्यवस्थित की जाती हैं, कुछ कंटिकाएं कवच के बाहर को उभरी रहती हैं, **स्पंजिला** (*Spongilla*) की कंटिकाएं एकाक्ष होती हैं लेकिन अन्य में ये **ऐम्फिडिस्क** (amphidisc) होती हैं। ऐम्फिडिस्क कंटिकाएं काँटेदार बाजुओं वाली सीधी छड़ें होती हैं और उनके हर सिरे पर हुकों का बना एक घेरा होता है। इस प्रकार एक जेम्यूल बन जाता है जिसके बाद बाहर से घेरने वाले अमीबोसाइट स्क्लेरोब्लास्ट और ट्रोफोसाइट हट जाते हैं। जेम्यूल शरदऋतु में बहुत ज्यादा संख्या में बनते हैं जिसके बाद स्पंज विघटित हो जाता है, वे या तो स्पंज के अवशेषों में पड़े रहते हैं या मुक्त हो जाते हैं। जो भी हो, ये तली में पहुँच जाते हैं। जेम्यूल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर सकते हैं और वसंत आने पर उनमें स्फोटन हो जाता है। स्फोटन होने में आर्कियोसाइट माइक्रोपाइल में से बाहर आ जाते हैं, और फिर ये बहुकेन्द्रकी आर्कियोसाइट विभाजित होकर एककेन्द्रकी आर्कियोसाइट तथा **हिस्टोब्लास्ट** (histoblast) नामक बन जाते हैं। हिस्टोब्लास्टों में विभेदन और
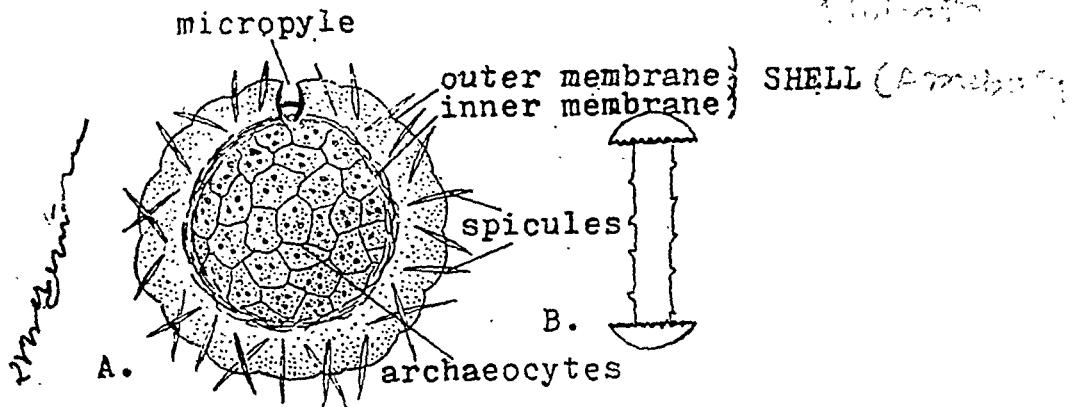
चित्र 91. A—स्पंजिला का जेम्यूल। B—एम्फिडिस्क कंटिका।

Micropyle, माइक्रोपाइल; outer membrane, बाहरी झिल्ली; inner membrane, भीतरी झिल्ली; shell, कवच; spicules, कंटिकाएं; archeocytes, आर्कियोसाइट।

पुनर्व्यवस्था होकर एपिडर्मिस, पोरोसाइट, कोऐनोसाइट तथा भीतरी एंडोडर्म अस्तर बन जाते हैं; रूपांतरित आर्कियोसाइटों से स्क्लेरोब्लास्ट बनते हैं जिनसे कंटिकाओं का स्राव होता है। स्फोटन के बाद से लगभग एक सप्ताह के समय में एक नन्हा स्पंज खाली जेम्यूल कवच को घेर लेता है। एककेन्द्रकी आर्कियोसाइट भ्रूणीय अवस्था में बने रहते हैं।

2. **लैंगिक जनन**—स्पंजों में लैंगिक अंश नहीं होते लेकिन अमीबोसाइटों से मीजेन्काइम में लैंगिक कोशिकाएं बन जाती हैं। पहले अंडे बनते हैं और बाद में शुक्राणु, अतः स्पंज **स्त्रीपूर्वी** (protogynous) होता है जिसमें परनिषेचन होता है। अमीबोसाइट आहार से भर जाते और बड़े आकार के बन जाते हैं, वे गोल हो जाते और अंडे बन जाते हैं। अन्य अमीबोसाइट विभाजित होकर बड़ी संख्या में शुक्राणु बनते हैं। हर शुक्राणु में एक अंडाकार शीर्ष होता है और एक लंबी लगातार पतली होती जाती पूंछ होती है। कुछ अध्येताओं का कहना है कि लैंगिक कोशिकाओं का निर्माण आर्कियोसाइटों से या यहाँ तक कि कोऐनोसाइटों से होता है। एक स्पंज के अंडों का दूसरे स्पंज के शुक्राणुओं से निषेचन होकर युग्मनज बनते हैं। पर-निषेचन होने में शुक्राणु कदाचित् किसी एक कोऐनोसाइट में घुस जाता है और फिर यह कोयनो-साइट अंडे के साथ समेकित हो जाता है, अंडे में वह शुक्राणु को मुक्त कर देता है और तब यह शुक्राणु अंडे के साथ समेकित हो जाता है। युग्मनज अपने ऊपर एक आवरण स्रावित कर लेता है जिसे **प्रजनन कैप्सूल** (breeding capsule) कहते हैं जिसमें युग्मनज बन्द हो जाता है।

परिवर्धन (Development)—युग्मनज में पूर्णभंजी (holoblastic) किन्तु असमान (unequal) विदलन होता है, पूर्णभंजी विदलन में युग्मनज पूरा-पूरा विभाजित होता जाता है। पहले तीन विभाजन खड़े अर्थात् उदग्र (vertical) होते हैं जिनके द्वारा आठ पिरैमिडी कोशिकाएं बन जाती हैं, उसके बाद एक पड़ा अर्थात् क्षैतिज (horizontal) विभाजन होता है जिसके द्वारा जीव-ध्रुव (animal pole) पर आठ छोटी ऊपरी कोशिकाएँ और वर्धी ध्रुव (vegetal pole) पर आठ बड़ी निचली कोशिकाएँ बन जाती हैं। ऊपरी छोटी कोशिकाओं में तीव्रता से विभाजन होता जाता है, वे स्वच्छ बन जातीं और उनमें कशाभ उत्पन्न हो जाते हैं; निचली कोशिकाएँ धीरे-धीरे विभाजित होतीं और वे कणिकामय बन जाती हैं। इस प्रकार एक **ब्लास्टुला** (blastula) बन जाता है जिसके भीतर **ब्लास्टोसील** (blastocoel) नामक एक गुहा होती है। कशाभ बन जाने के बाद से ब्लास्टुला को ऐम्फिब्लास्टुला कहते हैं। इस अवस्था तक परिवर्धन स्पंज के शरीर में ही होता है, लेकिन इसके बाद ऐम्फिब्लास्टुला बहिर्वाही नालों में पहुँच जाता और वहाँ से ऑस्कुलम में होता हुआ जनक स्पंज के शरीर से बाहर पहुँच जाता है। कुछ घण्टों तक ऐम्फिब्लास्टुला स्वच्छन्द रूप में तैरता फिरता है। उसके बाद ऊपरी कशाभी कोशिकाएँ ब्लाटोसील में अंतर्वलित हो जाती हैं और निचली कणिकीय कोशिकाएँ विकसित होकर उन्हें घेर लेती हैं, अब यह एक **गैस्ट्रुला** (gastrula) बन गया होता है जो एक कप जैसा होता है जिसमें कणिकामय कोशिकाओं की एक बाहरी परत (एक्टोडर्म, ectoderm) होती है, इसमें एक बड़ा छिद्र **ब्लास्टोपोर** (blastopore) होता है। यह भ्रूण (embryo) अपने ब्लास्टोपोर वाले सिरे से किसी ठोस वस्तु पर चिपक जाता है और विकसित होने लगता है। एक्टोडर्म और एण्डोडर्म दोनों से मीजॉग्लीया और उसके अमीबोसाइटों का स्राव होता है। कुछ व्यक्तियों के अनुसार मीजॉग्लीया का

स्राव केवल कोऐनोसाइटों (एण्डोडर्म) द्वारा होता है। दीवार मोटी हो जाती है और उसमें वलन बनकर नाल बन जाते हैं, छिद्र प्रकट होकर ऑस्टिया तथा ऑस्कुलम बन जाते हैं।
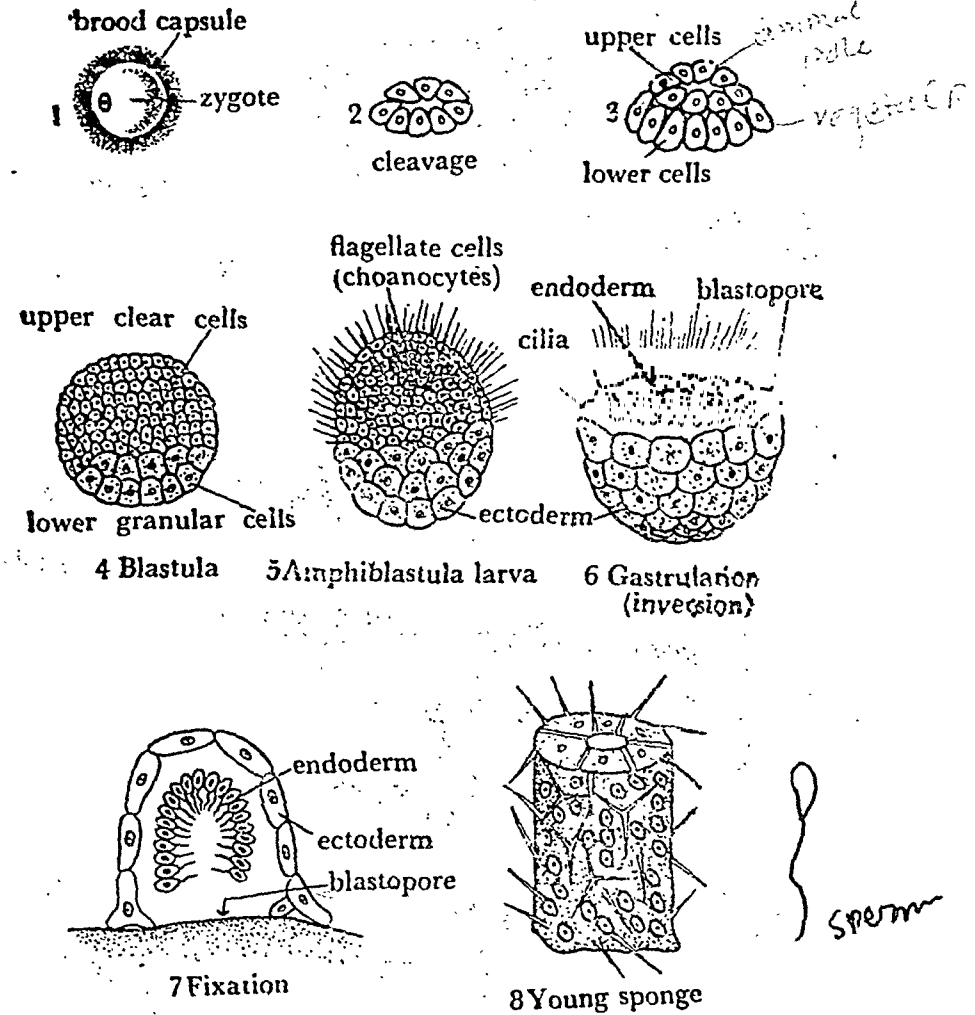
चित्र 92. साइकॉन का परिवर्धन

1. brood capsule, प्रजनन कैप्सूल; zygote, युग्मनज; 2. cleavage, विदलन; 3. upper cells, ऊपरी कोशिकाएँ; lower cells, निचली कोशिकाएँ; 4. blastula, ब्लास्टुला; upper clear cells, ऊपरी स्वच्छ कोशिकाएँ; lower granular cells, निचली कणिकीय कोशिकाएँ; 5. amphiblastula larva, ऐम्फिब्लास्टुला लार्वा; flagellated cells (choanocytes), कशाभी कोशिकाएँ (कोऐनोसाइट); ectoderm, एक्टोडर्म; cilia, सिलिया; 6. gastrulation (inversion) गैस्ट्रुला-निर्माण (अन्तर्वलन); endoderm, एण्डोडर्म; blastopore, ब्लास्टोपोर, 7. fixation, चिपक जाना; 8. young sponge, नन्हा स्पंज।

स्पंजों के भ्रूण-स्तर (germ layers) मेटाजोआ के एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के तुल्य नहीं हैं क्योंकि स्पंजों के बाहरी एक्टोडर्म का निर्माण वर्धी-ध्रुव की निचली कणिकामय कोशिकाओं से हुआ है और एण्डोडर्म जीव-ध्रुव की ऊपरी कशाभी कोशिकाओं से बना है। मेटाजोआ में जीव-ध्रुव की कोशिकाएँ एक्टोडर्म बन जाती हैं और वर्धी ध्रुव की एण्डोडर्म।

पोरिफेरा के सम्बन्ध (Affinities of Porifera)—स्पंजों को उनकी बहुकोशिक दशा तथा परिवर्धन विधि के आधार पर मेटाजोआ माना जाता है लेकिन सभी मेटाजोआ से वे इन बातों में भिन्न हैं। 1. स्पंजों में कोऐनोसाइट पाए जाते हैं जो कि किसी भी मेटाजोआ में नहीं पाए जाते। 2. इनके परिवर्धन में जीव-ध्रुव की कशाभी ऊपरी कोशिकाएँ एण्डोडर्मी अस्तर बनाती हैं, और वर्धी-ध्रुव की कणिकामय कोशिकाओं से एक्टोडर्म बनता है, किसी भी मेटाजोअन में परिवर्धन के दौरान इस प्रकार का उलटना नहीं होता। 3. स्पंजों की कोशिकाएँ अदृढ़ समुच्चयों के रूप में होती हैं, वे निश्चित ऊतकों में नहीं बनी होतीं, वे मेटाजोअन कोशिकाओं की अपेक्षा एक दूसरे पर कम निर्भर होती हैं। 4. स्पंजों में उनकी क्रियाओं के लिए कोई तन्त्रिका ऊतक नहीं होता। 5. इनमें अनेक छोटे अन्तर्वाही छिद्र होते हैं और मुख्य छिद्र ऑस्कुलम बहिर्वाही होता है तथा सम्पूर्ण शरीर-रचना एक विलक्षण जल नाल-तन्त्र के ऊपर बनी होती है। 6. पाचन गुहा का सम्पूर्ण अभाव होता है। 7. स्पंजों में अधिक संख्या में वसाएँ और वसा अम्ल होते हैं जिनका अणु-भार मेटाजोआ में पाई जाने वाली वसाओं और वसा अम्लों के अणु-भार से ज्यादा होता है। स्पंज प्रोटोजोआ के ज्यादा निकट हैं हालाँकि बहुकोशिक होने के आधार पर वे उनसे भिन्न हैं। पोरिफेरा का उद्भव कदाचित् मैस्टिगोफोरन प्रोटोजोआ से हुआ है, और वे **प्रोटेरोस्पंजिया** (*Proterospongia*) (चित्र 57) से मिलते-जुलते होते हैं; यह प्रोटोजोअन एक कॉलोनीय कशाभी है जिसमें कॉलोनी में अमीबोसाइट युक्त एक जिलेटिनी मैट्रिक्स होता है और इस मैट्रिक्स में कॉलर युक्त कशाभी कोशिकाएं गड़ी होती हैं। ये कोशिकाएँ स्पंजों के कोयनोसाइटों एवं अमीबोसाइटों के समान होती हैं। लेकिन स्पंजों के उद्भव के विषय में निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता; इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि स्पंज मेटाजोआ की प्रधान विकास रेखा से बहुत दूर जा चुके हैं और उन्होंने जन्तु-जगत् के किसी भी अन्य सदस्य को जन्म नहीं दिया है, यह एक चरमान्त (dead-end) फाइलम है। लेकिन स्पंज प्रोटोजोआ और मेटाजोआ दोनों ही से भिन्न हैं और उनका जाति-वृत्तीय (phylogenetic) स्थान अलग-अलग है। इसी कारण से स्पंजों को अन्य बहुकोशिक जन्तुओं से पृथक् करके एक अलग वर्ग **पैराजोआ** (Parazoa) में रखा जाता है जबकि शेष मेटाजोआ को **एंटेरोजोआ** (Enterozoa) अथवा **यूमेटाजोआ** (Eumetazoa) कहा जाता है।

फाइलम पोरिफेरा का वर्गीकरण

सभी पोरिफेरा जलीय होते हैं, ये स्थानबद्ध होते और पौधों की तरह बढ़ते हैं। केवल एक फैमिली स्पंजिलिडी को छोड़कर जो अलवण जल में पायी जाती है

इनमें से अधिकतर समुद्र वाली हैं। ये **डिप्लोब्लास्टिक** (Diploblastic) जन्तु होते हैं लेकिन इनके एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म में एक विचित्र उल्टा क्रम देखने को मिलता है, ये मेटाजोआ की भ्रूण परतों के विपरीत होते हैं। कोशिकाएँ अदृढ़ होती हैं और निश्चित ऊतक नहीं बनातीं, कोशिकाएँ न्यूनाधिक रूप में एक दूसरे से स्वतंत्र कार्य करती हैं। स्पञ्जों में छिद्र और नलिकाएँ बनी होती हैं, अंतर्वाही छिद्र छोटे आकार के ऑस्टिया होते हैं और बहिर्वाही ऑस्कुलम बड़े होते हैं। इनमें एक ही देह गुहा होती है जिसे जठराभ गुहा कहते हैं। इनमें अंग नहीं होते, दैहिक कार्य कोशिकाओं द्वारा ही पूरे होते हैं। तंत्रिका ऊतक नहीं होता लेकिन कोशिकाओं में एपीथीलियमी, पेशीय तथा ग्रंथिल कोशिकाओं का विभेदन पाया जाता है। मीजोग्लीया में कैल्सियमी अथवा सिलिकामय कंटिकाओं का अथवा लचीले स्पंजिन तन्तुओं का एक भीतरी कंकाल होता है, स्पंजिन तन्तुओं के साथ-साथ सिलिकायम कंटिकाएँ हो भी सकती हैं और नहीं भी। कुछ भीतरी गुहाओं का अस्तर एण्डोडर्मी कोऐनोसाइटों का बना होता है। एक स्वच्छन्द तैरने वाला सिलियायुक्त ऐम्फिब्लास्टुला लार्वा होता है। वर्गीकरण इनमें पाए जाने वाले कंकाल पर आधारित है।

क्लास 1. **कैल्किस्पञ्जी** (Calcispongiae) अथवा **कैल्केरिया** (Calcarea)–इनमें अलग-अलग कैल्सियमी कंटिकाओं का कंकाल होता है जो या तो एकाक्षिकाएँ (monaxon) या चतुरक्षिकाएँ (tetraxon) होती हैं, चतुराक्ष कंटिकाओं में एक किरण टूट कर वे त्रिअरीय (triradiate) बन जाती हैं। इनमें ऐस्कॉनी, साइकॉनी अथवा ल्यूकानी संरचना पाई जाती है। ये मरे रंगों वाले स्पंज होते हैं जिनका साइज छह इंच से कम होता है। ये सभी महासागरों में उथले जल में पाए जाते हैं।

आर्डर (*a*) **होमोसीला** (Homocoela) अथवा **ऐस्कोनोसा** (Asconosa)—देह-भित्ति पतली और अवलित होती है, स्पञ्जोसील में कोऐनोसाइटों का अस्तर बना होता है, उदाहरण **ल्यूकोसॉलीनिया**।

आर्डर (*b*) **हेटेरोसीला** (Heterocoela) अथवा **साइकोनोसा** (Syconosa)—देह-भित्ति मोटी और वलनयुक्त होती है, कोऐनोसाइट केवल अरीय नालों का ही अस्तर बनाते हैं, स्पंजोसील का अस्तर चपटी एण्डोडर्म कोशिकाओं का बना होता है, उदाहरण **साइकॉन, साइफा** (Scypha)।

क्लास 2. **हाऐलोस्पंजी** (Hyalospongiae) अथवा **हेक्सैक्टिनेलिडा** (Hexactinellida)। इन्हें काँच स्पंज कहते हैं, कंकाल सिलिकामय कंटिकाओं का बना होता है जो छह किरणों से युक्त त्रिअक्षिकाएँ (triaxons) होती हैं। कुछ उदाहरणों में ये कंटिकाएँ समेकित होकर एक जालकी कंकाल बना लेती हैं। एपिडर्मिसी एपिथीलियम नहीं होता। कोऐनोसाइट उँगली-जैसे खानों में अस्तर बनाते हैं। ये स्पंज सिलिंडराकार अथवा कीप (फ़नेल) की आकृति के होते हैं और गहरे उष्णकटिबन्धीय सागरों में पाए जाते हैं। ये तीन फ़ुट तक की गहराई में पाए जाते हैं। उदाहरण **यूप्लेक्टेला** (*Euplectella*), **हाऐलोनीमा** (*Hyalonema*)।

क्लास 3. **डीमोस्पंजी** (Demospongiae) में स्पंजों की सबसे अधिक संख्या में स्पीशीज पाई जाती हैं। कंकाल या तो स्पंजिन तंतुओं का बना हो सकता है या स्पंजिन तंतुओं के साथ-साथ सिलिकायम कंटिकाओं को मिलाकर, या फिर कंकाल नहीं भी हो सकता है। कंटिकाएँ कभी भी छह किरणों वाली नहीं होतीं, वे या तो एकाक्षिकाएँ होती हैं या चतुरक्षिकाएँ, और इनमें बड़ी गुरुकंटिकाओं (megascleres) तथा छोटी सूक्ष्मकंटिकाओं (microscleres) में विभेद हो गया होता है। देह की आकृति अनियमित होती है और नाल-तंत्र ल्यूकॉन प्रकार का होता है।

आर्डर (*a*) **एपिपोलैसिडा** (Epipolasida) में कुछ-कुछ गोल शक्ल होती है, एकाक्षिका कंटिकाएँ स्पंज के केन्द्र से अरीय रूप में बनी होती हैं। उदाहरण **स्पंजिला** (*Spongilla*)।

आर्डर (*b*) **हैड्रोमेराइना** (Hadromerina) में पिन की शक्ल की कंटिकाएँ होती हैं, स्पंजिन नहीं होता, कुछ सदस्य चट्टानों अथवा कवचों में सूराख करते चलते है। उदाहरण **क्लायोना** (*cliona*)।

आर्डर (*c*) **कीरैटोसा** (Keratosa) में शृंगीय (horny) स्पंज आते हैं, कंकाल कंटिकाओं से रहित स्पंजिन तंतुओं का होता है; ये स्पंज बड़े और गोल होते हैं। उदाहरण **यूस्पंजिया** (*Euspongia*)।

आर्डर (*d*) **मिक्सोस्पंजी** (Myxospongiae)—इनमें कंकाल नहीं होता। उदाहरण **ऑस्केरेला** (*Oscarella*)।

पोरीफेरा के प्ररूप
(Types of Porifera)

1. **हाऐलोनीमा** (*Hyalonema*) को ग्लास-रोप स्पंज (glass-rope sponge) कहते हैं। यह समुद्र में पाया जाता है और लगभग 15 इंच लंबा होता है। देह गोल अथवा अंडाकार होता है जिसके नीचे लंबी कंटिकाओं का एक बंडल जड़-गुच्छे के रूप में बाहर निकला होता है। यह गुच्छा प्रायः सर्पिल रूप में ऐंठा हुआ होता है, जड़-गुच्छा एक वृंत्त जैसा दीखता है। कंटिकाओं का बंडल उस स्तंभिका (columella) के रूप में एक अक्ष भी बनाता है जो देह में से होकर गुजरता है, कंटिकाएँ एक सिलिकामय संयोजक के द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं। **हाऐलोनीमा** के साथ एक जोऐंथिड **पैलियोआ** (*Palythoa*) के अथवा एक ऐनीमोन **एपिज़ोएंथस** (*Epizoanthus*) के अनेक पॉलिप नियमित रूप में सहजीवी संबंध बनाते हुए उगे होते हैं।

2. **यूप्लेक्टेला एस्परजिलम** (*Euplectella aspergillum*) (वीनस-फ़्लावर वास्केट)। यह एक कांच स्पंज है। शरीर सिलिंडराकार और घुमावदार होता है, दीवारें पतली होती हैं, ऊपरी सिरा एक **ऑस्कुलमी छलनी** (oscular sieve) द्वारा बंद होता है जो कि समेकित कंटिकाओं की बनी होती है। निचले सिरे पर गड़ाए रखने वाली सिलिकामय मूल-कंटिकाएं होती हैं। भीतर एक स्पंजोसील होती है। पिनैकोसाइटों का बना कोई एपिडर्मिस नहीं होता। सिलिंडर को घेरते हुए

कंटिकाओं के बने उभरे हुए कगर (ledges) होते हैं जिनमें कंटिकाओं के जाल में बने अनेक सूराख अथवा भित्तीय दरारें होती हैं, ये सूराख स्पंजोसील से जुड़े होते हैं लेकिन नाल-तंत्र के भाग नहीं होते। कशाभी खाने अरीय रूप में स्पंज की दीवार में व्यवस्थित रहते हैं। कंकाल चार अथवा छह किरणों वाली सिलिकामय कंटिकाओं का बना होता है जो एक सिलिकामय सीमेंट द्वारा परस्पर जुड़ी रहती हैं जिसके फलस्वरूप उनके द्वारा एक अत्यधिक जटिलता से युक्त जाल बन जाता है लेकिन नाल-तंत्र सरल ऐस्कॉन प्रकार का होता है।
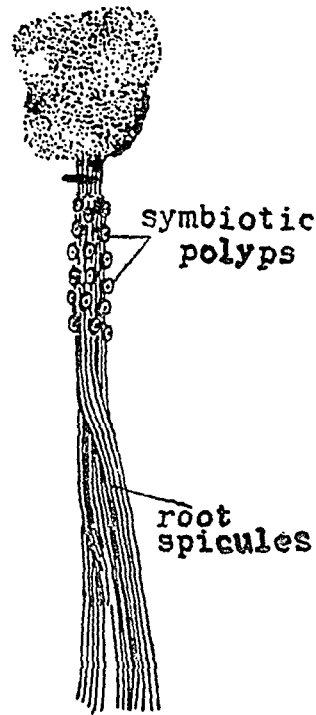
बहुधा इसकी स्पंजोसील में **स्पंजीकोला वीनस्टा** (*Spongicola venusta*) नामक क्रस्टेशियनों की एक जोड़ी सहजीवी संबंध में भीतर रहती हुई पाई जाती है, ये क्रस्टेशियन उस प्लवक का आहार करते हैं जो जलधारा के साथ भीतर पहुँचता है।

चित्र 93. हाएलोनीमा।
symbiotic polyps, सह-जीवी पॉलिप; root spicules, मूल-कंटिकाएँ।
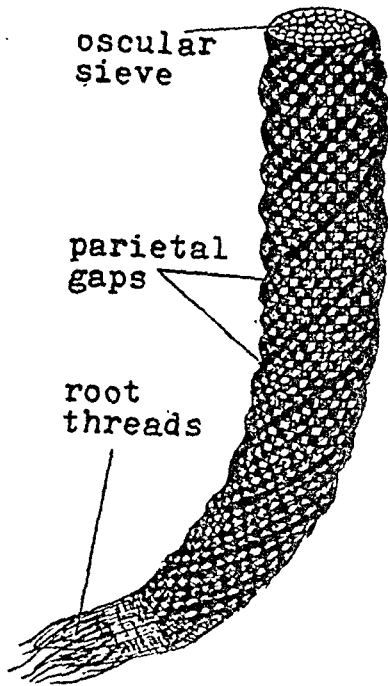
चित्र 94. यूप्लेक्टेला ऐस्परजिलम।
Root threads, मूल-सूत्र; parietal gaps, भित्तीय दरारें; oscular sieve, ऑस्कुलमी छलनी।

यूप्लेक्टेला फिलिपीन द्वीपसमूह के पास अपनी सिलिकामय जड़ों द्वारा गहरे समुद्र की तली में चिपका रहता है। इसकी घुमावदार बनावट समुद्र की अधिक गहराई पर पाई जाने वाली धीमी, सतत जलधारा के प्रति एक अनुकूलन है।

3. **क्लायोना** (*Cliona*) (वेधक स्पंज, boring sponge)—यह एक गंधकी पीला अथवा हरे रंग का स्पंज होता है जिसकी सतह पर छोटे-छोटे उभार बने होते हैं, कंकाल स्पंजिन तन्तुओं और सिलिकायम कंटिकाओं का बना होता है। इसमें ल्यूकॉन-प्रकार का नाल-तंत्र पाया जाता है। यह एक अम्ल की नन्ही-नन्हीं

बूँदों का स्राव करता है जो चट्टानों अथवा जीवित या मृत मौलस्कों के कवचों को घुलाता हुआ उनमें नलिकाएँ बनाता जाता है और इस तरह उन्हें छलनी-छलनी कर
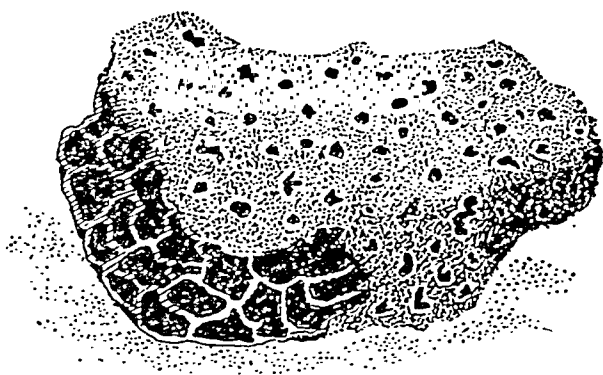
चित्र 95. एक चट्टान के ऊपर परत बनाता हुआ क्लायोना।

डालता और नष्ट कर देता है। फिर यह सूराखों में विकसित होता जाता है और साथ ही इन वस्तुओं के ऊपर भी जिन पर वह 15 से 20 cm. चौड़ा एक पिंड बना लेता है। इस वेधन का कार्य लार्वा शुरू करता है। यह दुनिया भर में हर समुद्र में पाया जाता है, विशेषकर अटलांटिक के समुद्र-तट के सहारे-सहारे।

4. **स्पंजिला** (*Spongilla*) (अलवणजलीय स्पंज) स्पंजिलिडी फैमिली में आता है, स्पंजों की यही एकमात्र फैमिली है जो अलवणजल में पाई जाती है। इसका एक अनियमित देह पिंड होता है जिसमें से उभरी हुई शाखाएँ निकली होती हैं, यह नदियों, तालावों और झीलों में लकड़ियों, पौधों या चट्टानों के ऊपर उगता रहता है। यह पूरे विश्व में पाया जाता है। इसका रंग पीला, भूरा या हरा होता है। हरे नमूनों में सहजीवी जूओक्लोरेली होते हैं जो कि अमीबोसाइटों में रहते हैं। कंकाल एकाक्षिका सिलिकामय सूक्ष्म कंटिकाओं एवं गुरुकंटिकाओं का बना होता है। नाल-तंत्र रैगॉन प्रकार का होता है। इसमें लैंगिक जनन भी होता है और जेम्यूलों के बनने के द्वारा अलैंगिक जनन भी, इन जेम्यूलों में दोहरी परत वाला कवच होता है और अरीय रूप में व्यवस्थित एकाक्षिका कंटिकाएँ होती हैं। यह विश्व भर में झीलों, तालावों और नदियों में, जहाँ कहीं भी जल स्वच्छ हो, पाया जाता है।
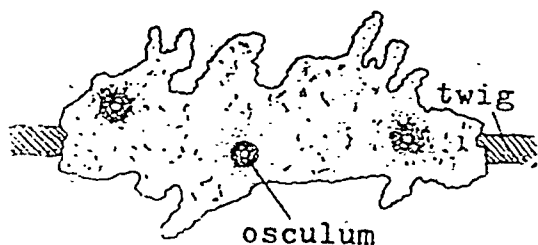
चित्र 96. **स्पंजिला लैकस्ट्रिस** (*Spongilla lacustris*)। Twig, टहनी; osculum, ऑस्कुलम।

5. **यूस्पंजिया** (*Euspongia*) (स्नान-स्पंज)—देह गोल और बड़ा होता है, यह हल्के भूरे रंग का होता है। इसके छोटे-बड़े बहुत से ऑस्कुलम होते हैं।

शरीर में **कॉन्युलाई** (conuli) नामक छोटे-छोटे उभार बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, ये उभार स्पंजिन तन्तुओं के सूत्रों के कारण होते हैं। स्पंज के भीतर बहुसंख्यक अंतर्वाही नाल, कशाभी खाने और बहिर्वाही नालें एवं गुहाएँ होती हैं।
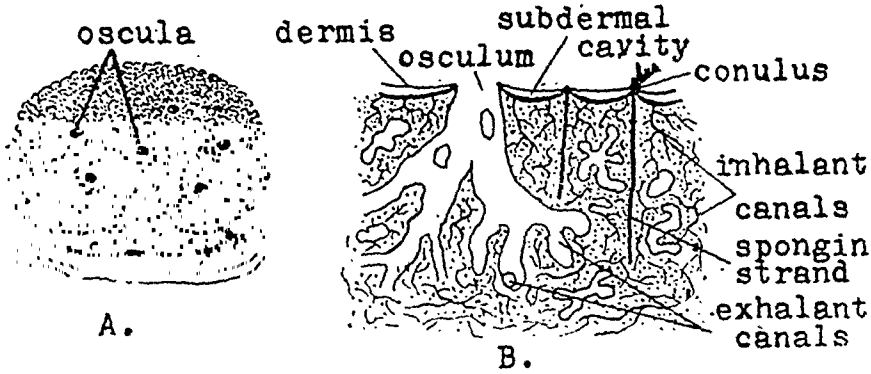
चित्र 97. A. **यूस्पंजिया**। B. भीतरी संरचना

Oscula, ऑस्कुलम; dermis, त्वचा; subdermal cavity, अधःत्वचीय गुहा; conulus, कॉन्युलस; inhalant canals, अंतर्वाही नालें; spongin strand. स्पंजिन सूत्र; exhalant canals, बहिर्वाही नालें।

कंकाल केवल स्पंजिन तन्तुओं का बना होता है जो एक जाल बनाते हैं, सबसे मोटे सूत्र अरीय रूप में फैले होते हैं जिनमें से प्रत्येक सूत्र एक कॉन्युलस में समाप्त होता है। **यूस्पंजिया** को एक कॉलोनी माना जाता है लेकिन कॉलोनी का प्रत्येक व्यक्तिगत प्राणी स्पष्ट नहीं पहचाना जा सकता। लिंग अलग-अलग होते हैं, लेकिन नर कॉलोनियाँ कम होती हैं।

इसका साफ किया हुआ स्पंजिन कंकाल व्यापारिक स्नान-स्पंज (यानी बाथ-स्पंज) होता है। **यू० आफिसिनैलिस** (*E. officinalis*) भूमध्यसागर, पश्चिमी द्वीप समूह और ऑस्ट्रेलिया में 180 मीटर की गहराई तक पाया जाता है। **यू० मालिसिमा** (*E. mollisima*) सबसे अधिक मूल्यवान स्नान-स्पंज है, यह प्यालानुमा एवं हल्का पीला होता है और एशिया माइनर के समीप पाया जाता है।

4

मेटाज़ोआ
(METAZOA)

प्रोटोज़ोआ छोटे साइज़ के अकोशिकीय जंतु होते हैं, इनमें एक पारगम्य सीमांत झिल्ली होती है जो जंतु को एक निश्चित साइज़ से अधिक बढ़ने से रोकती है और यह उन रचनाओं का निर्माण नहीं होने देती जो बड़े साइज़ के लिए आवश्यक शक्ति और दृढ़ता प्रदान करती हैं। लेकिन शक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रोटोज़ोआ की क्रियाओं में उनके प्रोटोप्लाज़्म तथा बाहरी तरल माध्यम के बीच पदार्थों का आदान-प्रदान शामिल है, ये प्रक्रियाएं इन जंतुओं के सतही क्षेत्रफल और आयतन के बीच पाये जाने वाले अनुपात द्वारा नियंत्रित होती हैं। जंतु जितना ज्यादा छोटा होगा उसका सतही क्षेत्रफल अपेक्षाकृत उतना ही अधिक होगा, यही अनुपात साइज़ पर सीमा लगाता है। प्रोटोज़ोआ में छोटा अकोशिकीय देह सभी जैव क्रियाओं को करता है और कोई भी एक कार्य किसी दूसरे कार्य पर अधिक प्रभावी नहीं होता।

बहुकोशिक सरचना की प्राप्ति की पूर्वझलक कॉलोनियों की व्यवस्था में रहने वाले प्रोटोज़ोआ में मिलती है, इनमें अनेक प्राणियों के समूह पाये जाते हैं जो या तो एक दूसरे से चिपके होते हैं, या प्रोटोप्लाज़्मी सूत्रों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं, या एक निर्जीव पदार्थ के सम्मिलित मैट्रिक्स में गड़े होते हैं। लेकिन कॉलोनियाँ बहुकोशिक जंतुओं से भिन्न होती हैं क्योंकि इनकी कोशिकाएँ कार्य की दृष्टि से एक दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं।

अधिक बड़े बहुकोशिक जंतुओं को, जिनमें साइज़ की सीमाएं समाप्त हो चुकी हैं, **मेटाज़ोआ** (Metazoa) कहते हैं, इनकी कोशिकाओं में प्रत्येक अनिवार्य जैव क्रिया को कर सकने की निहित क्षमता होती है, लेकिन ये कोशिकाएं एक दूसरे पर निर्भर होती हैं और वे सब समरूप नहीं होतीं क्योंकि विशेषीकरण हो चुका है, ऐसा होने से आकृति और संरचना में अधिक जटिलता आ सकने की सम्भावनाओं का द्वार खुल गया है। और पुनः कोशिका-विशेषीकरण के कारण **ऊतकों** (tissues)

का विकास सम्भव हो सका है जिनमें एक-सी कोशिकाओं के समूह परतों या चादरों के रूप में संघटित हो जाते हैं। निम्नतर मेटाज़ोअनों में ऊतकों की आदिम व्यवस्था पाई जाती है और कोशिकाएं परतों के रूप में व्यवस्थित होती हैं, लेकिन उच्चतर प्राणियों में ऊतक अंगों एवं अंग-तन्त्रों के रूप में गठित हो जाते हैं। मेटाज़ोआ बहुकोशिक जंतु होते हैं जिनको न केवल बड़े आकार के द्वारा ही पृथक् पहचाना जाता है बल्कि उनके अवयवों में उच्च स्तर का विभेदन एवं विशेषीकरण पाया जाता है, इस विभेदन को **आकारिकीय विभेदन** (morphological differentiation) कहा जाता है। संरचना के इस आकारिकीय विभेदन के साथ-साथ जंतु के स्थायी तौर पर सम्बन्धित एवं परस्पर-निर्भर अवयवों के बीच एक **क्रियात्मक श्रम-विभाजन** (physiological division of labour) पाया जाता है। इसका यह मतलब हुआ कि देह के विभिन्न अवयव सम्पूर्ण जंतु के लिए निश्चित कार्यों क करने के वास्ते विशेषित हो गए हैं। संरचना का विभेदन अनेक प्रोटोज़ोआ में भी देखने को मिलता है लेकिन मेटाज़ोआ में इसकी जटिलता का काफी ऊंचा स्तर हो जाता है।

मेटाज़ोआ में अलग-अलग कार्यों के लिए देह के अलग-अलग विशिष्ट भाग निश्चित हो गए हैं। मेटाज़ोआ में दो प्रकार के युग्मक बनते हैं, नर युग्मक शुक्राणु होते हैं और मादा युग्मक अंडे। शुक्राणु अंडे का निषेचन करता है जिससे एक युग्मनज बनता है। और इस युग्मनज में माइटोसिस विधि से कोशिका-विभाजनों का एक क्रम चलता है जिससे कोशिकाओं की एक खोखली गेंद बन जाती है—इस अवस्था को **ब्लास्टुला** (blastula) कहते हैं, इसके भीतर ब्लास्टोसील नामक एक गुहा होती है। ब्लास्टुला की कोशिकाओं में और आगे संख्या-वृद्धि के कारण उसकी दीवार की एक दिशा में एक अंतर्वलन बन जाता है, और विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा अंततः कोशिकाएं दो परतों के रूप में व्यवस्थित हो जाती हैं—एक बाहरी **एक्टोडर्म** की परत और एक भीतरी **एंडोडर्म** की परत, ब्लास्टोसील समाप्त हो जाती है; अंतर्वलन का मुख **ब्लास्टोपोर** होता है जो एक नई गुहा **आद्यांत्र** (archenteron) में खुलता है; दो परत वाली इस थैलीनुमा अवस्था को **गैस्ट्रुला** कहते हैं।

कुछ मेटाज़ोआ का परिवर्धन गैस्ट्रुला अवस्था पर ही रुक जाता है; इस प्रकार दो-स्तरी मेटाज़ोआ को **डिप्लोब्लास्टिका** (diploblastica) कहते हैं, जैसे नाइडेरिया (Cnidaria) और टीनोफ़ोरा (Ctenophora)। अन्य सभी मेटाज़ोअन फ़ाइलमों में **मीज़ोडर्म** नामक एक तीसरी कोशिका-परत एक्टोडर्म के बीच में बन जाती है। तीन परतों वाले फ़ाइलम **ट्रिप्लोब्लास्टिका** (triploblastica) होते हैं और उनके मीज़ोडर्म से साइज़ एवं जटिलता की संभावनाएं और भी अधिक बढ़ जाती हैं। ट्रिप्लोब्लास्टिक फ़ाइलमों में एक्टोडर्म और एंडोडर्म के वे अधिकतर कार्य मौजूद बने रहते हैं जो कि वे डिप्लोब्लास्टिका जंतुओं में करते हैं। एक्टोडर्म से ये भाग बनते हैं; बाहरी संरक्षी एपिडर्मिस, बाह्य संवेदी अंग, नेफ्रीडिया तथा तंत्रिका-तंत्र, लेकिन इकाइनोडर्मेटा में तंत्रिका-तंत्र का कुछ अंश मीज़ोडर्म से बना होता है। एंडोडर्म से आहार-नाल का अस्तर तथा पाचन एवं श्वसन से संबंधित अंग बनते हैं।

मीज़ोडर्म अपने आप में कोई अकेली वस्तु नहीं है लेकिन इसमें ऐसे अंश हैं जो दो विधियों से उत्पन्न होते हैं। एक तो वे कोशिकाएं हैं जो एक्टोडर्म अथवा एंडोडर्म से निकल कर आती हैं और एक अदृश्य कोशिकीय ऊतक को जन्म देती हैं जो अन्य परतों के बीच की जगह को भर लेता है, इस ऊतक को **मीज़ेन्काइम** कहते हैं, इसकी तुलना उन कोशिकाओं से की जा सकती है जो नाइडेरिया के मीज़ोग्लीया में पाई जाती हैं। दूसरे प्रकार की कोशिकाएं जो कि देह गुहा की दीवार बनाती हैं **मीज़ोथीलियम** (mesothelium) अथवा वास्तविक मीज़ोडर्म कहलाती हैं, इन्हीं से संयोजी ऊतक, पेशियां, कंकाल, रुधिर, परिसंचरण तंत्र, उत्सर्गी तंत्र तथा जनन-तंत्र बनते हैं। निम्नतर ट्रिप्लोब्लास्टिक फ़ाइलमों (प्लैटीहेल्मिथीज़ तथा ऐस्क्हेल्मिथीज़) में मीज़ोथीलियम नहीं होता, कीटोग्नैथा में मीज़ेन्काइम नहीं होता, लेकिन अन्य फ़ाइलमों में दोनों प्रकार के मीज़ोडर्म पाए जाते हैं। ट्रिप्लोब्लास्टिक असीलोमी जंतुओं में डिप्लोब्लास्टिक जंतुओं की अपेक्षा अधिक जटिलता पाई जा सकती है हालांकि कुछ ट्रिप्लोब्लास्टिक असीलोमी जंतुओं की आहार नली में केवल एक ही छिद्र, मुख, पाया जाता है, जो अंतर्ग्रहण एवं बहि:क्षेपण दोनों के लिए है। डिप्लोब्लास्टिक जंतु निस्संदेह अपेक्षाकृत सरल होते हैं, लेकिन उच्चतर डिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में एक ऐसी दशा पहुँच जाती है जो निम्नतर ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में पाई जाती है; यह दशा ऐसी है जिसे एक तीसरी कोशिका परत बनना कहा जा सकता है अर्थात् मीज़ोग्लीया में कोशिकाओं का पाया जाना; इस प्रकार डिप्लोब्लास्टिक तथा ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं बनाई जा सकती।

मेटाज़ोआ में कोशिकाओं में निकट का संबंध होकर ऊतक बन जाते हैं जो कुछ कार्यों को करने के लिए विशेषित होते हैं। नाइडेरिया में कोई संघटित ऊतक नहीं होते, लेकिन ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में ऊतकों के संयोग से अंग बन जाते हैं, और फिर अंग परस्पर मिलकर तंत्र बनाते हैं, जिसमें से प्रत्येक तंत्र का कोई महत्त्व-पूर्ण सामान्य कार्य होता है हालांकि कुछ थोड़ी-सी अतिव्याप्ति हो सकती है। एपिडर्मिस और उसके साथ-साथ का नीचे वाला मीज़ोडर्मी ऊतक जिसे डर्मिस कहते हैं त्वचा बनाता है; अकशेरुकियों में यह या तो स्तम्भाकार (columnar) होता है या सिन्सिशियमी (syncytial); कशेरुकियों में यह स्तरित (stratified) होता है। निम्नतर अकशेरुकियों में "त्वचा" की कोशिकाएं सिलियायुक्त होती हैं, जब सिलिया नहीं होते तो संरक्षी क्यूटिकल बन जाता है।

आहार को निबटाने के वास्ते देह का एक विशिष्ट भाग अलग से नियुक्त होता है, यह एक मामूली थैला जैसा हो सकता है या जटिल आहार-नाल हो सकता है जिनके भीतर आहार बन्द हो जाता है और पाचन एन्ज़ाइमों का स्राव होता है। पाचन एंडोडर्मी कोशिकाओं में मूलत: पूरी तरह अंत:कोशिकीय होता है, इस प्रकार के पाचन के पहले हो सकता है बाह्यकोशिक पाचन हो, लेकिन उच्चतर फ़ाइलमों (ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा, कुछ मौलस्का और कॉर्डेटा) में यह पूरी तरह बाह्यकोशिक

होता है। जंतु से स्रावित होने वाले एन्ज़ाइम आहार के अधिकतर भाग को घुलनशील और उसे अवशोषण एवं स्वांगीकरण (assimilation) के योग्य बना देते हैं। इस प्रकार के पाचन-तंत्र का होना बड़े आकार के जंतुओं के लिए अनिवार्य है क्योंकि उन्हें अपनी जैव क्रियाओं के लिए आहार की इतनी अधिक मात्रा की जरूरत होती है कि वह आहार रिक्तिकाओं के भीतर ग्रहण नहीं की जा सकती। बड़े मेटाज़ोआ में देह के कुछ भाग पाचन-तंत्र से कुछ दूरी पर होते हैं जिसके कारण मात्र विसरण द्वारा वे पोषण प्राप्त नहीं कर सकते जैसा कि निम्नतर मेटाज़ोआ में होता है, अतः उन्हें नलिकाओं के बने एक परिवहन तंत्र अथवा रुधिर संवहन-तंत्र (blood vascular system) (जैसा कि अधिकतर उच्चतर जंतुओं में पाया जाता है) की आवश्यकता होती है जो कि पचे हुए भोजन को ला-ले जा सके।

प्रारंभिक अवस्थाओं में उद्दीपन संवेदी कोशिकाओं अथवा **ग्राहियों** (receptors) से पेशियों या अन्य कोशिकाओं में, जिन्हें **प्रभावक** (effectors) कहते हैं, पहुंचता है और ये प्रभावक कार्य करने लग जाते हैं। लेकिन अपेक्षाकृत बड़े मेटाज़ोआ में जिनमें प्रभावकों का स्थान ग्राहियों के स्थानों से कुछ दूर हो सकता है, यह आवश्यक हो गया कि उनमें एक चालनी तथा समन्वयकारी तंत्र बन जाए और इस प्रकार एक तंत्रिका-संवेदी तंत्र की उत्पत्ति हुई। इस उत्पत्ति में तंत्रिका-कोशिकाओं अथवा **न्यूरानों** (neurons) का निर्माण हुआ जिनमें कई विशाखित साइटोप्लाज़्मी प्रवर्ध **तंत्रिका-तंतु** (nerve fibres) होते हैं। अपने सरलतम रूप में तंत्रिका-संवेदी तंत्र में देह की सतह पर ग्राहियों की एक शृंखला होगी जिनमें से तंत्रिका तंतु निकल कर प्रभावकों तक पहुंचते होंगे। लेकिन इस प्रकार का सरल तंत्र नहीं पाया जाता, ग्राहियों तथा प्रभावकों के बीच कोई सीधा संबंध नहीं होता बल्कि यह चालन न्यूरॉनों की एक शृंखला के द्वारा होता है; न्यूरॉन एक दूसरे से जुड़े नहीं होते लेकिन प्रत्येक ऐक्सॉन के अंत में सूक्ष्म अंत्य बटन होते हैं जो अगले न्यूरॉन के डेन्ड्राइटों के साथ सम्पर्क बनाये रहते हैं, इन जोड़ों को **साइनैप्स** (synapse) कहते हैं। निम्नतर मेटाज़ोआ में तंत्रिक तंतु एक-दूसरे से मिलते जाते हुए एक जाल बना लेते हैं जो सतही स्थिति में होता है और इसे **तंत्रिका जाल** (nerve net) कहते हैं। उच्चतर मेटाज़ोआ में न्यूरॉन के तंत्रिका-तंतु हर दिशा में समान लम्बाई वाले नहीं होते, उनमें से एक या ज़्यादा तंतु अधिक लम्बे होते हैं, और तंतु एक साथ बंध कर **तंत्रिकाएं** (nerves) बनाते हैं, और न्यूरॉनों के कोशिका-गात्र एक साथ एकत्रित होकर **केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र** (central nervous system) बनाते हैं। केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को ग्राहियों एवं प्रभावकों से जोड़ने वाली तंत्रिकाएं **एक परिधीय तंत्रिका तंत्र** (peripheral nervous system) बनाती हैं। इस प्रकार आवेगों (impulses) का चालन ग्राहियों से निश्चित मार्गों में से होता है न कि वे किसी भी दिशा में चलने लग जाते हैं जैसा कि तंत्रिका जाल में होता है।

अधिकतर छोटे मेटाज़ोआ जलीय होते हैं, उनकी अपेक्षाकृत अधिक बड़ी सतह श्वसन के लिए आवश्यक गैसों के आदान-प्रदान के वास्ते पर्याप्त क्षेत्रफल प्रदान

करती है, और इस सतह के द्वारा नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थ विसरित होकर तीव्रता से वाहर निकल जाते हैं। बृहत्तर मेटाज़ोआ में अपेक्षाकृत कम सतही क्षेत्रफल होता है और उनमें एक वाहरी आवरण पाया जा सकता है अतः उनमें **श्वसन अंग** वने होते हैं। ये श्वसन-अंग या तो एक्टोडर्म से ढके होते हैं या एक्टोडर्म का एक अस्तर वना हो सकता है (क्रस्टेशियनों तथा ऐनेलिडों के गिल, टेडपोलों के वाहरी गिल और घोंघों के फेफड़े) ; या फिर वे एंडोडर्म से मढ़े हो सकते हैं (मछलियों के गिल तथा कशेरुकियों के फेफड़े)। त्वचा अनेक छोटे और वड़े जंतुओं में श्वसनीय होती है। जलीय श्वसन जल की ऑक्सीजन के दवाव परिवर्तनों के द्वारा प्रभावित होता है, वायु श्वसन कार्वन डाइऑक्साइड के दवाव परिवर्तनों के द्वारा प्रभावित होता है, गंदे पानी में मुक्त कार्वन डाइऑक्साइड की मात्रा इतनी ज्यादा हो जाती है कि वह एक महत्त्वपूर्ण कारक वन जाती है।

उत्सर्जन (Excretion) से संवंधित अंगों में वहुत विविधता पाई जाती है। इनकी आवश्यकता कार्वन डाइऑक्साइड, जल और ठोस नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थों को वाहर निकाल फेंकने के लिए ही होती है। उत्सर्जन देह की सतह में एक्टोडर्म के और कदाचित एंडोडर्म के भी द्वारा सम्पन्न होते हैं (नाइडेरिया), अथवा ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में या तो एक्टोडर्मी नेफ्रीडिया वनाने वाली सूक्ष्म विशाखित नलिकाओं के जटिल तंत्र के भीतर या मीज़ोडर्मी मूत्रजन वृक्क नलिकाओं (uriniferous kidney tubules) के भीतर एक वड़ी उत्सर्गी सतह के द्वारा होता है, ये दोनों प्रकार की रचनाएं सीधे अथवा परोक्ष रूप में वाहर को खुलती हैं।

ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में एक दृढ़ **कंकाल** होता है जो देह को भीतर से सहारा देने और शरीर की पेशियों के जुड़ने के लिए स्थान प्रदान करने का कार्य करता है। आर्थ्रोपोडा में एक्टोडर्म द्वारा स्रावित क्यूटिकल का वना एक वाह्य-कंकाल होता है, हालांकि इससे निकली हुई कुछ अंतर्वृद्धियां एक प्रकार का अंतः-कंकाल भी वना देती हैं जिस पर पेशियां जुड़ती हैं। लेकिन इकाइनोडर्मेटा और वर्टीव्रेटा में मीज़ोडर्म का वना एक अंतःकंकाल होता है जो वहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

सरलतर ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में मीज़ेन्काइम से एक विचित्र कोशिकीय ऊतक पैरेन्काइमा वन जाता है जो तमाम अंगों के गिर्द एक पैकिंग वनाने का सा काम करता है और उसी के द्वारा आहार नाल से प्राप्त हुआ पोषण देह के तमाम अंगों तक पहुंचा दिया जाता है तथा गैसें एवं अपशिष्ट नाइट्रोजनी पदार्थ उत्सर्गी अंगों तक पहुंचा दिए जाते हैं। अपेक्षाकृत सरल ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में देह-गुहा अथवा सीलोम नहीं होता, इन्हें **असीलोमी** (acoelomate) जंतु कहते हैं (प्लैटिहेल्मिथीज़, ऐस्क्हेल्मिथीज़, ऐकेन्थोसेफ़ेला तथा एंटोप्रोक्टा)। कुछ उच्चतर ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में या तो मीज़ोडर्म दो परतों में चिर जाता है जिनमें से एक वाहरी भित्तिक (parietal) अथवा **कायिक मीज़ोडर्म** (somatic mesoderm)

होता है और एक भीतरी अंतरांग (visceral) अथवा **आशयिक** (splanchnic mesoderm) होता है, इन दोनों परतों के बीच की गुहा के रूप में एक बड़ा, तरल से भरा, परिअंतरांग (perivisceral) सीलोम होता है जिसे दीर्णसीलोमी सीलोम (schizocoelous coelom) कहते हैं। अन्य ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में आद्यांत्र से
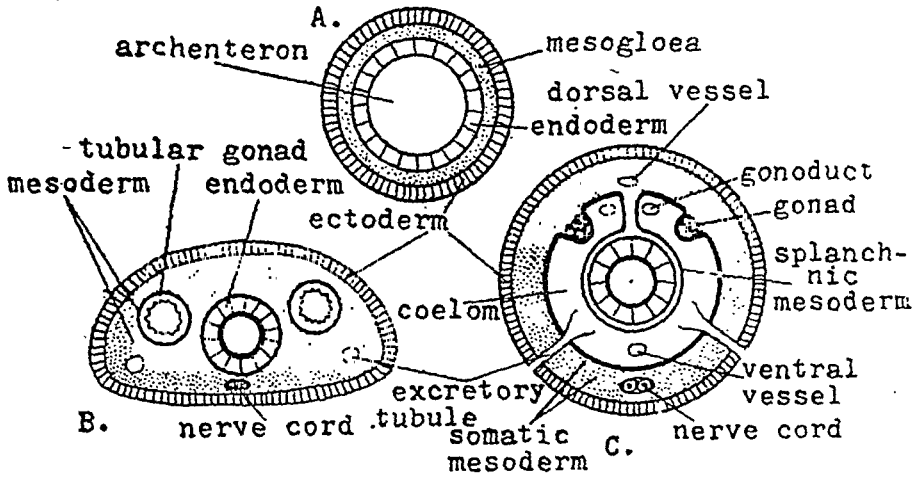
चित्र 98—आड़े सेक्शन A. डिप्लोब्लास्टिक जंतु ; B. असीलोमी ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतु ; C. सीलोमी ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतु। Archenteron, आद्यांत्र (आर्केन्टेरॉन) ; mesogloea, मीज़ोग्लीया ; endoderm, एंडोडर्म ; vessel, वाहिका ; gonoduct, जनन-वाहिनी ; gonad, गोनड ; splanchnic mesoderm, आशयिक मीज़ोडर्म ; ventral vessel, अधर वाहिका ; somatic mesoderm, कायिक मीज़ोडर्म ; excretory tubule, उत्सर्गी नलिका ; coelom, सीलोम ; ectoderm, एक्टोडर्म ; tubular gonad, नलिकाकार गोनड; mesoderm, मीज़ोडर्म; nerve cord, तंत्रिका रज्जु।

कोष्ठ निकल आते हैं, ये कोष्ठ परस्पर समेकित होकर एक सीलोम बनाते हैं जिसे आंत्रसीलोमी सीलोम (enterocoelous coelom) कहते हैं। सीलोम सभी उच्चतर ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं में पाया जाता है जिन्हें एक साथ मिलाकर सीलोमी फ़ाइलमों में रखा जाता है (कीटोग्नैथा, पोगोनोफ़ोरा, फोरोनिडा, एक्टोप्रौक्टा, ब्रैकियोपोडा, साइपनकुलिडा, ऐनेलिडा, आर्थ्रोपोडा, मौलस्का, इकाइनोडर्मेटा, हेमिकॉर्डेटा, तथा कॉर्डेटा)। सीलोम हृदय, आहार-नाल तथा अन्य अंगों के गिर्द एक या अधिक परिअंतरांग गुहाएँ बनाता है, इसमें एक सीलोमी द्रव पाया जाता है। ट्रिप्लोब्लास्टिक जंतुओं के सीलोम के आंतरिक अंग बड़े हो जाते हैं और उन पर देह-भित्ति की गतियों का प्रभाव नहीं पड़ता, और उनमें अपनी स्वतंत्र गतियां होती रह सकती हैं। सीलोमी जंतुओं में गोनड सीलोम की दीवार से उत्पन्न होते हैं और जनन-कोशिकाएं या तो परिअंतरांग सीलोम में छोड़ी जाती हैं या स्वयं गोनड में सीलोम का एक

पृथक् भाग मौजूद होता है। सीलोम का बाहर से संबंध या तो पृष्ठीय छिद्रों (dorsal pores) (जैसे केंचुओं में) या नेफ्रीडिया तथा सीलोमवाहिनियों (coelomoducts) नामक दो प्रकार की वाहिनियों द्वारा होता है। नेफ्रीडिया अंतःकोशिक एक्टोडर्मी नलिकाएं होती हैं जो जल और उत्सर्गी पदार्थ को बाहर निकालती हैं। सीलोमवाहिनियां मीज़ोडर्मी नलिकाएं होती हैं जो प्रायः एक सिरे पर सीलोम में को खुलती हैं और दूसरे सिरे पर बाहर को, वे या तो केवल उत्सर्जन का कार्य करती हैं या केवल जनन कोशिकाओं को बाहर पहुँचाने का या फिर हो सकता है कि दोनों ही कार्य करती हों।

कुछ सीलोमेटों में रक्त और लिम्फ़ (लसीका) से भरी एक गुहा होती है, यह गुहा प्रायः नलिकाओं के एक विशाखित तंत्र के रूप में होती है जिनमें एक पेशीय हृदय के द्वारा एक तरल को परिसंचरित किया जाता है, इस गुहा को **हीमोसील** (haemocoele) कहते हैं। कुछ सीलोमेटों में (आर्थ्रोपोडा तथा मौलस्का) हीमोसील भीतरी अंगों के इर्द-गिर्द बड़े परिअंतरांग साइनस बना लेता है लेकिन इसमें जनन कोशिकाएं कभी नहीं होतीं और न ही यह बाहर को खुलता है। बड़े हो गए हीमोसील के कारण सीलोम छोटी-छोटी गुहाओं के रूप में उत्सर्गी और जनन अंगों में सीमित रहता है। इस प्रकार के जंतुओं में हीमोसील को प्राथमिक देह गुहा कहा जाता है और सीलोम को द्वितीयक देह गुदा।

ट्रिप्लोब्लास्टिक सीलोमी जंतु के भ्रूण अथवा वयस्क का शरीर न्यूनाधिक रूप में समरूप खण्डों की एक अनुदैर्ध्य शृंखला का बना होता है, इस प्रकार के जंतु को विखंडशः सखंड (metamerically segmented) कहा जाता है या कह सकते हैं कि उस जंतु में विखंडता (metamerism) पाई जाती है। विखंडता में समजात (homologous) भागों का एक क्रमिक पुनरावर्तन होता है, ये भाग कुल मिलाकर सम्पूर्ण देह के हित में अन्य भागों के साथ सहकारी रूप में कार्य करते हैं, ये देह-खंड समन्वित और परस्पर निर्भर होते हैं। अनेक सीलोमेटों में अधिकतर अंग पूरे देह में एक सिरे से दूसरे सिरे तक विखंडशः व्यवस्थित रहते हैं और स्वयं यह देह भी खण्डों में विभाजित होता है (ऐनेलिडा), पेशियां, ग्रंथियां, नेफ्रीडिया, गुच्छिकाएं (गैंग्लिया), तंत्रिकाएं, रुधिर वाहिनियां तथा सीलोमी कक्ष देह-खंडों में पुनरावर्तित होते हैं। कशेरुकियों के भ्रूणों में बहुत स्पष्ट विखंडता पाई जाती है जो कि वयस्कों में संरचनात्मक प्रगति के कारण छिपी रहती है, जिसके फलस्वरूप वयस्कों के देह में विखंडता कभी एकरूप नहीं दिखाई देती। विखंडता को अगोचर बना देने वाला एक कारक शरीर के अगले सिरे का विशेषीकरण है जिसके अंतर्गत शीर्ष का निर्माण होता है, इसे शिरोभवन (cephalization) कहते हैं और इसका कारण होता है अग्र सिरे पर संवेदी अंगों का केन्द्रित हो जाना जिसके साथ-साथ मस्तिष्क का निर्माण भी होता है। पादों के बनने और आंतरिक अंगों के कुछ विशिष्ट खंडों तक ही सीमित रहने से भी विखंडता अदृश्य हो जाती है।

भ्रूण-परिवर्धन के आधार पर मेटाज़ोआ को दो मुख्य क्रम विकासी शाखाओं में विभाजित किया जाता है। एक शाखा वह है जिसमें चपटे-कृमि, ऐनेलिड, मौलस्क, आर्थ्रोपोड, तथा कई छोटे-छोटे फ़ाइलम आते हैं, ये सब मिलकर **प्रोटोस्टोमिया** (Protostomia) विभाजन बनाते हैं। दूसरी दिशा में इकाइनोडर्म, कॉर्डेट तथा अन्य छोटे फ़ाइलम बनते हैं, इन्हें **ड्यूटेरोस्टोमिया** (Deuterostomia) कहते हैं। प्रत्येक दिशा में दूसरी दिशा से पृथक् परिवर्धन योजना दृष्टिगोचर होती है, हालांकि प्रत्येक विभाजन के हर एक सदस्य में बिलकुल एक समान परिवर्धन नहीं पाया जाता, और हर फ़ाइलम में अनेक रूपांतरण मिलते हैं जो कि मुख्यत: अंडे में मौजूद पीतक (yolk) की मात्रा पर निर्भर होते हैं।

प्रोटोस्टोम-प्राणियों में मुख प्राय: ब्लास्टोपोर से बनता है, सीलोम दीर्ण-सीलोमी होता है और ब्लास्टोमियरों की नियति परिवर्धन की बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में स्थिर हो जाती है। यदि किसी समुद्री ऐनेलिड के अंडे में दो विदलन होकर चार ब्लास्टोमियर बन जाते हैं और इन ब्लास्टोमियरों को अलग कर दिया जाए तो उनमें से प्रत्येक से गैस्ट्रुला अथवा लार्वा का केवल एक निश्चित चौथाई भाग ही बनेगा। अत: प्रत्येक ब्लास्टोमियर की एक स्थिर और पूर्वनिर्धारित नियति होती है जो किसी भी स्थिति में बदल नहीं सकती यहां तक कि अगर कोशिका को उसकी मूल स्थिति से हटा दिया जाए तब भी नहीं बदल सकती। स्थिर नियति वाले ब्लास्टोमियरों के निर्माण को **निर्धारी विदलन** (determinate cleavage) कहते हैं। इसके अलावा प्रोटोस्टोमों में विदलन सम्पूर्ण होता है और विदलन समतलों के अक्ष ध्रुवी अक्ष (अर्थात् जीव ध्रुव और वर्धी को जोड़ने वाले अक्ष) के तिर्यक् (oblique) होते हैं। इस प्रकार के विदलन के द्वारा बनने वाले ब्लास्टोमियरों में सर्पिल व्यवस्था होती है जिसमें कोई भी एक ब्लास्टोमियर अपने से ऊपर या अपने से नीचे स्थित दो कोशिकाओं के बीच में व्यवस्थित होता है, और कोशिकाओं का प्रत्येक टीयर (tier) हर अगले टीयर से एकांतर क्रम बनाता है। इस प्रकार के विदलन नमूने को **सर्पिल विदलन** (spiral cleavage) कहते हैं। अत: निर्धारी तथा सर्पिल विदलन प्रोटोस्टोमों की विशेषताएं हैं।

ड्यूटेरोस्टोमों में ब्लास्टोपोर गुदा बन जाता है, सीलोम आंत्रसीलोमी होता है, ब्लास्टोमियरों की नियति स्थिर नहीं होती। यदि स्टार-फ़िश के अंडे में दो बार विभाजन होकर चार ब्लास्टोमियर बन चुके हों और उन्हें अलग-अलग कर दिया जाए तो प्रत्येक ब्लास्टोमियर से एक सम्पूर्ण गैस्ट्रुला और उसके बाद एक लार्वा बन जाएगा। मेंढक भ्रूण में मध्य-पृष्ठीय दिशा की एक्टोडर्म कोशिकाओं से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र उत्पन्न होता है। फिर भी, यदि शुरु के गैस्ट्रुला के पार्श्वों की एक्टोडर्मी कोशिकाएं लेकर पृष्ठ सतह पर नोटोकार्ड के ऊपर उपरोपित की जाएं तो इन कोशिकाओं से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र बन जाएगा। इस प्रकार ड्यूटेरोस्टोमों में ब्लास्टोमियरों की अंतिम नियति पूर्णत: स्थिर नहीं होती और उनमें विभिन्न दिशाओं में परिवर्धन हो सकता है। बिना स्थिर हुई नियति वाले इस प्रकार के

ब्लास्टोमियरों के निर्माण को **अनिर्धारी विदलन** (indeterminate cleavage) कहते हैं। इसके अतिरिक्त विदलन का ढंग भी अलग होता है। प्रारंभिक विदलन समतलों के क्षेत्र या तो ध्रुवी अक्ष के समानांतर या उसके समकोण बनाते हुए होते हैं और इस प्रकार बनने वाले ब्लास्टोमियर या तो ठीक एक दूसरे के ऊपर या नीचे स्थित होते हैं, इस प्रकार के विदलन नमूने को **अरीय विदलन** (radial cleavage) कहते हैं। अतः अनिर्धारी और अरीय विदलन ड्यूटेरोस्टोमों की विशेषताएं होते हैं।

5

फाइलम नाइडेरिया
(PHYLUM CNIDARIA)

नाइडेरिया अरीय सममिति वाले और एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म से युक्त डिप्लोब्लास्टिक जंतु होते हैं, इन दो परतों के बीच में एक जेली जैसा मीज़ोग्लीया होता है जो मूलतः रचनाविहीन होता है लेकिन उच्चतर प्राणियों में यह तंतुमय और भ्रमणशील अमीबोसाइटों से युक्त हो जाता है। एक्टोडर्म और एंडोडर्म दो परतों में होते हैं जिनमें से हर एक परत श्रम विभाजन दर्शाने वाली विविध कोशिकाओं की बनी होती है, कोशिकाएँ देह-ऊतकों के रूप में संघटित तो होती हैं लेकिन अच्छी तरह संघटित नहीं होतीं। शरीर के तमाम कार्य ऊतकों द्वारा सम्पन्न होते हैं, अंगों द्वारा कभी नहीं। अरीय सममित में देह में एक मुख-अपमुख अक्ष होता है, एक अकेला सीलेन्टेरॉन (coelenteron) अथवा जठर-वाही गुहा (gastrovascular cavity) होती है जिसमें मुख नामक केवल एक छिद्र होता है। मुख अंतर्ग्रहण तथा बहिःक्षेपण दोनों कार्य में इस्तेमाल होता है। सीलोम नहीं होता। इनमें स्पर्शक (tentacles) तथा नीमैटोसिस्ट (nematocysts) होते हैं। तंत्रिका तंत्र एक आदिम तंत्रिका जाल के रूप में होता है। इनमें एक बाह्यकंकाल हो सकता है या कुछ में एक अंतःकंकाल होता है। परिवर्धन के दौरान एक अंडाकार सिलियायुक्त प्लैनुला (planula) लार्वा होता है। नाइडेरिया में लगभग 9000 जीवित स्पीशीज पाई जाती हैं और अनेक फ़ॉसिल-प्राणी ज्ञात हैं जो ऑर्डोवीशियन कल्प (Ordovician period) तक के पुराने हैं। केवल कुछ थोड़ी-सी अलवणजलीय स्पीशीज़ को छोड़कर लगभग सभी स्पीशीज समुद्र में पाई जाती हैं। इनमें ये सब शामिल हैं विभिन्न हाइड्रा, जेलीफ़िशें, समुद्री-एनीमोन तथा प्रवाल (corals)। इस फ़ाइलम को तीन क्लासों में विभाजित किया जाता है जो इस प्रकार हैं हाइड्रोज़ोआ, साइफ़ोज़ोआ, तथा ऐन्थोज़ोआ।

1. हाइड्रा ओलाइगैक्टिस (*Hydra oligactis*)

क्लास हाइड्रोज़ोआ में कुछ थोड़े से अलवणजलीय और अनेकों की संख्या में समुद्री प्राणी आते हैं जो चट्टानों, कवचों, जहाज-घाटों अथवा पौधों पर चिपके रहते हैं। इनमें एकल (solitary) और कॉलोनीय (colonial) दोनों प्रकार के

प्राणी पाये जाते हैं। इनमें या तो पौलिपी या मेडुसाई संरचना होती पाई जाती है, लेकिन अनेक स्पीशीज़ में जीवन-चक्र के दौरान पौलिपी और मेडुसाई दोनों प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। इस क्लास की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं, इनका मीज़ोग्लिया कभी भी कोशिकीय नहीं होता, एंडोडर्म में नीटोमैसिस्ट नहीं होते, और इनके गोनड प्रायः एक्टोडर्मी होते हैं जो अपनी जनन-कोशिकाओं को सीधे बाहर निकाल फेंकते हैं।
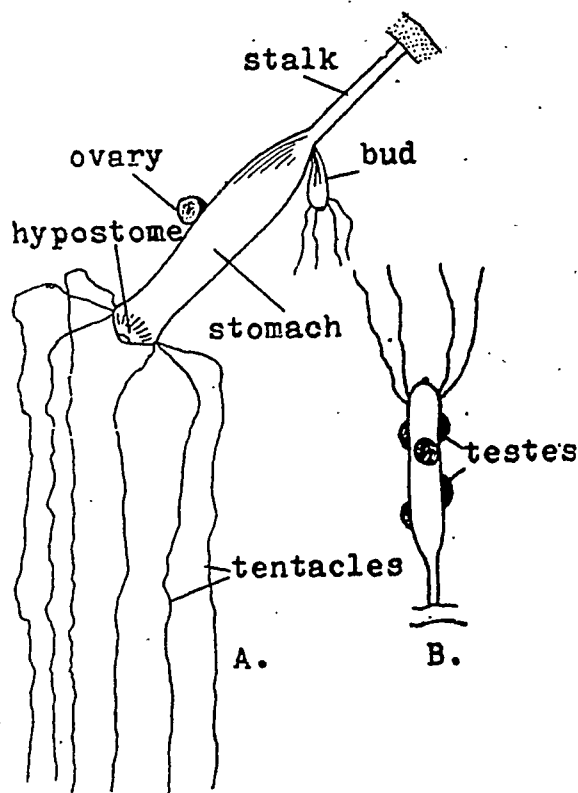
चित्र 99. **हाइड्रा ओलाइगैक्टिस**। A—मादा; B—नर

Stalk, वृंत; bud, मुकुल; ovary, अंडाशय; hypostome, हाइपोस्टोम; stomach. जठर; tentacles, स्पर्शक; testes, वृषण।

हाइड्रा ओलाइगैक्टिस को शुरू-शुरू में **हाइड्रा फ़स्का** (*Hydra fusca*) कहा जाता था, उसके बाद इसे **पेल्मैटोहाइड्रा ओलाइगैक्टिस** (*Polmatohydra oligactis*) का नाम दिया गया। यह अलवणजलीय तालाबों तथा सरिताओं में पाया जाता है, संकुचन और प्रसार की अद्‌भुत क्षमता के कारण इसका साइज़ 2 से 20 mm. तक होता है। इसे **पौलिप** कहा जाता है जो एकल होता है और कॉलोनियाँ कभी नहीं बनाता, इसमें अलैंगिक और लैंगिक दोनों प्रकार का जनन होता है। इसमें मैडुसाई अवस्था न पाए जाने की विचित्रता पाई जाती है। पौलिप अथवा हॉइड्राइड में एक

सिलिंडराकार देह होता है, ऊपरी अधिक चौड़ा भाग **जठर** (stomach) होता है और निचला संकरा **वृंत** (stalk) होता है, कुछ स्पीशीज़ में यह अंतर स्पष्ट नहीं होता, जैसे गंगा के पास-पास पाए जाने वाले तालाबों में रहने वाले **हाइड्रा गैन्जेटिका** (*Hydra gangetica*) में। दूरस्थ (distal) सिरे पर एक **हाइपोस्टोम** (hypostome) अथवा मुख-शंकु होता है जिस पर तारे की आकृति वाला एक अत्यधिक प्रसारशील मुख बना होता है। हाइपोस्टोम के नीचे 6 से 10 स्पर्शकों का एक घेरा होता है, इनकी संख्या जंतु की आयु के साथ-साथ बढ़ती जाती है, स्पर्शक चौड़े और अत्यधिक लचीले होते हैं। **हाइड्रा** स्थानबद्ध होता और अपने सिरे द्वारा जिसे **आधार-डिस्क** (basal disc) अथवा पाद कहते हैं, किसी पौधे पर चिपका रहता है।

सम्पूर्ण शरीर पर एक पतला पारदर्शी **क्यूटिकल** (cuticle) होता है, सिर्फ़ आधार-डिस्क पर नहीं होता। देह में कोशिकाओं की दो परतें पाई जाती हैं, एक बाहरी एक्टोडर्म और दूसरा भीतरी एंडोडर्म; इन परतों से घिरी हुई एक भीतरी केन्द्रीय पाचन गुहा होती है जिसे **अंत्र** (enteron) अथवा जठरवाही गुहा कहते हैं। एक्टोडर्म और एंडोडर्म के बीच में एक जेली जैसा मीज़ोग्लीया होता है जो कि पतला और अकोशिकीय होता है।

ऊतक-रचना (हिस्टोलॉजी)—**एक्टोडर्म** अथवा **एपिडर्मिस** एक पतली परत के रूप में होता है जो देह-भित्ति की मोटाई का एक-तिहाई होता है। एक्टोडर्म में सात विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं, एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ, ग्रंथि-कोशिकाएँ, अंतराली (interstitial) कोशिकाएँ, नाइडोब्लास्ट (cnidoblasts), संवेदी कोशिकाएँ, तंत्रिका कोशिकाएँ और जनन कोशिकाएँ।

एंडोडर्म अथवा **गैस्ट्रोडर्मिस** (gastrodermis) देह-भित्ति का लगभग दो-तिहाई भाग बनाता है, एंडोडर्म में ये कोशिकाएँ पाई जाती हैं—एपिथीलियम पेशी कोशिकाएँ, ग्रंथि कोशिकाएँ, अंतराली कोशिकाएँ, संवेदी कोशिकाएँ और तंत्रिका कोशिकाएँ। एक्टोडर्म संरक्षी, पेशीय तथा संवेदी होता है और एंडोडर्म स्रावी, पाचक, पेशीय तथा संवेदी होता है।

ऐपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ—एपिथीलियम-पेशी कोशिकाओं में ऐपिथीलियमी और पेशीय दोनों भाग एक ही कोशिका में होते हैं। एक्टोडर्म की एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ सिलिंडराकार होती हैं, उनके भीतरी सिरे दो या अधिक प्रवर्धों में को निकले होते हैं जिनमें **मायोनीम** (myonemes) अथवा अरेखित (unstriped) पेशी तंतु होते हैं, इन तंतुओं में शाखाएँ बनी होती हैं जिनका सम्मिलन होता जाता है। एक्टोडर्मी मायोनीम देह और स्पर्शकों के लम्बे अक्ष के समानांतर चलते हैं, इनके द्वारा अनुदैर्घ्य पेशियाँ बनी होती हैं जो देह का संकुचन करती हैं। एपिथीलियम-पेशी कोशिका में एक बड़ा केन्द्रक होता है और बाहरी सीमांत के सहारे-सहारे **कणिकाओं** (granules) की एक पंक्ति होती है जो क्यूटिकल का स्राव करती हैं। आधार डिस्क की एक्टोडर्म कोशिकाएँ कणिकीय होती हैं और वे हाइड्रा के चिपकाने के वास्ते श्लेषमा (mucus) का स्राव करती हैं; आधारीय एक्टोडर्म कोशिकाएँ कूटपाद भी

बना ले सकती हैं जिनके द्वारा जंतु अपने चिपकने वाले स्थान पर विसर्पण (glide) भी कर सकता है। आधार-डिस्क की कुछ एक्टोडर्म कोशिकाएँ एक गैस का स्राव भी कर सकती हैं जो एक बुदबुदा बन जाती है, इस बुदबुदे के द्वारा हाइड्रा अपने चिपके हुए स्थान से छूटकर अलग हो जाता और ऊपर उठता चला आता है।
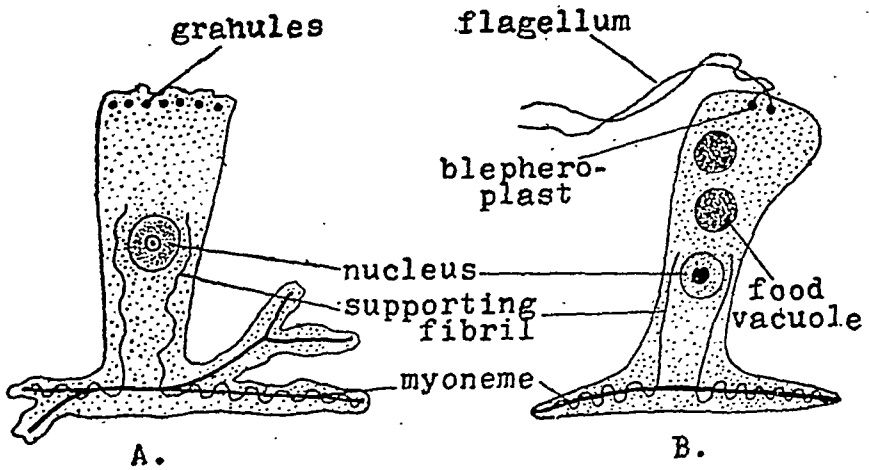
चित्र 100. एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ। A—एक्टोडर्मी, B—एंडोडर्मी। Granules, कणिकाएँ; flagellum, कशाभ; blepharoplast, ब्लेफ़ेरोप्लास्ट; nucleus, केन्द्रक; supporting fibril, आलंबी तंतुक; myoneme, मायोनीम; food vacuole, आहार रिक्तिका।

एंडोडर्म की एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ लंबी और मुद्गराकार होती हैं, इनके बाहरी सिरों में दो प्रवर्ध होते हैं जिनमें एक अविशाखित मायोनीम होता है।
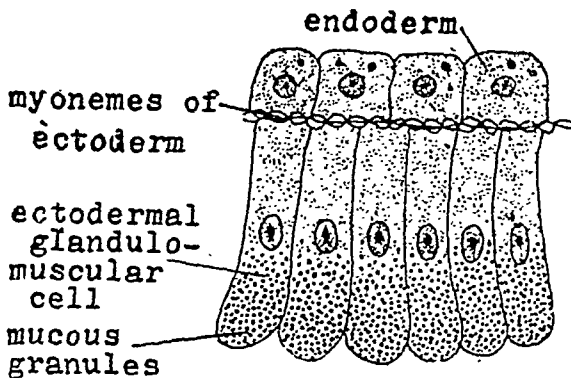
चित्र 101. आधार-डिस्क का खड़ा सेक्शन (V. S.)

Endoderm, एंडोडर्म; myonemes of ectoderm, एक्टोडर्म के मायोनीम; ectodermal granulo-muscular cell, एक्टोडर्म कणिक-पेशीय कोशिका; mucous granules, श्लेष्मा कोशिकाएं।

ये मायोनीम देह के लंबे अक्ष से समकोण बनाते हुए रहते हैं, ये एक वृत्ताकार पेशीय परत बनाते हैं जिसके द्वारा जंतु संकुचित होकर धीरे-धीरे देह को लंबा करता जाता है। अपने संकुचन के द्वारा एंडोडर्म-कोशिकाएँ मुख और स्पर्शकों की गुहा को बन्द कर देती हैं क्योंकि एंडोडर्मी मायोनीम हाइपोस्टोम पर तथा स्पर्शकों के आधार पर सबसे अधिक विकसित होते हैं। एंडोडर्म कोशिकाओं में 1 से 5 लंबे कशाभ होते हैं जिनमें से हर कशाभ एक आधार कणिका से निकलता है। वही एंडोडर्म कोशिका आहार के परिग्रहण के लिए कूटपाद भी बना लेती है। एंडोडर्म कोशिकाओं में आहार रिक्तिकाएँ होती हैं, इनमें बड़ी आकार की रिक्तिकाएँ भी हो सकती हैं जिसके कारण प्रोटोप्लाज़्म परिधीय रूप में व्यवस्थित हो जाता है, लेकिन अच्छी तरह खाए हुए **हाइड्रा** में रिक्तिकाएँ नहीं होतीं। एंडोडर्म कोशिकाएं देह में एक्टोडर्म कोशिकाओं से बड़ी होती हैं लेकिन आधार-डिस्क में वे बहुत ज्यादा छोटी होती हैं।

अंतराली कोशिकाएँ (Interstitial cells)—एक्टोडर्म कोशिकाओं के भीतरी सिरों तथा एंडोडर्म कोशिकाओं के बाहरी सिरों के बीच की जगह में समूहों में स्थित अंतराली कोशिकाएँ पड़ी रहती हैं। ये छोटी, अंडाकार अथवा गोल कोशिकाएँ होती हैं जिनका केन्द्रक बड़े आकार का होता है। अंतराली कोशिकाएँ भ्रूण अवस्था
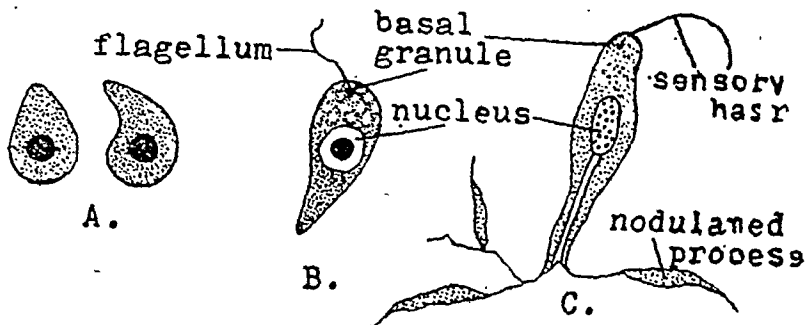
चित्र 102. A—अंतराली कोशिकाएँ; B—gland cell, ग्रंथि कोशिका ; C—संवेदी कोशिका; flagellum, कशाभ; basal granule, आधारीय कणिका ; nucleus, केन्द्रक ; sensory hair संवेदी रोम; nodulated process, गांठयुक्त प्रवर्ध ।

में ही बनी रहने वाली कोशिकाएँ होती हैं, ये स्पर्शकों के ठीक नीचे एक **वृद्धि क्षेत्र** (growth zone) बनाती हैं, इस क्षेत्र में से अन्य सभी प्रकार की कोशिकाएँ निकलती हैं जो पुरानी घिसी-पिटी कोशिकाओं को धक्का देकर हटाती जाती हैं और वे घिसी-पिटी कोशिकाएँ समीपस्थ तथा दूरस्थ सिरों पर शरीर से गिरा दी जाती हैं। अंतराली कोशिकाओं से नीमैटोसिस्ट और जनन-कोशिकाएँ बनती हैं, एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाएँ भी उनसे बन सकती हैं, वे हर 45 दिन में जंतु की तमाम

कोशिकाओं का नवीकरण कर देती हैं, इस प्रकार वे पूर्णशक्त (totipotent) होती हैं।

ग्रंथि कोशिकाएं (Gland cells) ग्रंथि कोशिकाएं मुद्गराकार होती हैं जिनके पतले आधार मीज़ोग्लीया तक पहुँच जाते हैं; वे कणिकीय हो सकते हैं अथवा रिक्तिकायुक्त, इनमें एक बड़ा केन्द्रक और प्रायः एक कशाभ होता है। एक्टोडर्म परत में ग्रंथि कोशिकाएँ केवल मुख और आधारीय डिस्क के समीप पाई जाती हैं, लेकिन एंडोडर्म परत में वे प्रचुर संख्या में होती हैं जहाँ वे दो प्रकार की मिलती हैं : (क) **श्लेष्मा ग्रंथि कोशिकाएं** (mucous gland cells) मुख और हाइपोस्टोम में पाई जाती हैं, इनसे श्लेष्मा का स्राव होता है जो ठोस आहार को निगलने में मदद देता है, (ख) **एन्ज़ाइमी ग्रंथि कोशिकाएं** (enzymatic gland cells) जठर में पाई जाती हैं जहां वे पाचक एन्ज़ाइमों का स्राव करती हैं। वृंत और स्पर्शकों के एंडोडर्म में ग्रंथि कोशिकाएँ नहीं होतीं। ग्रंथि कोशिकाएँ अपना स्राव आंत्र में छोड़ती जाती हैं जिससे कोशिकाबाह्य पाचन होता है। ग्रंथि कोशिकाओं पर तंत्रिका-तंत्र का नियंत्रण नहीं होता, ये स्वतंत्र कार्यकारी हैं।

संवेदी कोशिकाएँ (Sensory cells)—ये लंबी एवं संकीर्ण कोशिकाएँ होती हैं जिनमें एक बड़ा केन्द्रक होता है और एक बाहर को निकला हुआ कशाभ अथवा **संवेदी रोम** (sensory hair) होता है, इनके आधार में से गाँठ बने हुए प्रवर्ध निकले होते हैं जो तंत्रिका-तंत्र से जुड़े होते हैं। संवेदी कोशिकाएँ दोनों भ्रूणीय स्तरों में पाई जाती हैं लेकिन वे एक्टोडर्म में ज़्यादा प्रचुर संख्या में होती हैं, उनमें इन सबके प्रति संवेदन पाया जाता है : स्पर्श, प्रकाश, ताप परिवर्तन और रसायन। संवेदी कोशिका एक ग्राही और एक संवेदी तंत्रिका दोनों ही रूप में कार्य करती है अर्थात् यह **आवेगों** (impulses) को ग्रहण भी करती है और उनका संचरण भी। स्पर्शकों में ग्रंथि कोशिकाएं और संवेदी कोशिकाएं नहीं होतीं और उनकी एंडोडर्म कोशिकाओं में पेशी-प्रवर्ध नहीं होते।

नाइडोब्लास्ट (Cnidoblasts)—एक्टोडर्म की कुछ अंतराल कोशिकाओं से नाइडोब्लास्ट नामक अत्यधिक विशेषित कोशिकाएँ बनती हैं। नाइडोब्लास्ट एक गोल या अंडाकार कोशिका होता है जिसका केन्द्रक एक पार्श्व में पड़ा रहता है, उसके एक सिरे पर एक रोम जैसा प्रवर्ध **नाइडोसिल** (cnidocil) होता है, नाइडोसिल में शलाकाओं का आलंबन बना होता है। नाइडोब्लास्ट अपने भीतर एक **नीमैटोसिस्ट** (nematocyst) अथवा दंश-कोशिका का निर्माण करता है। हाइड्राओं में नीमैटोसिस्ट केवल एक्टोडर्म में ही पाए जाते हैं।

नीमैटोसिस्ट (Nematocysts)—नीमैटोसिस्ट कोई कोशिका नहीं होता क्योंकि यह काइटिनी तथा निर्जीव होता है। नाइडोब्लास्ट के भीतर एक स्वच्छ गुहा उत्पन्न होती है, यह गुहा बढ़ती जाती है और कोशिका द्वारा दो दीवारों वाले एक काइटिनी **कैप्सूल** का स्राव होता है जिसमें एक ढक्कन अथवा **आपर्कुलम** (operculum) होता है। कैप्सूल के एक सिरे से एक **नलिका** (tube) बनती जाती है जो कैप्सूल के

भीतर एक कुंडलित अवस्था में पड़ी रहती है, इस नलिका के आधार पर एक उत्फूलन बना हो सकता है जिसे **हत्था** (butt) कहते हैं और एक लंबा कुंडलित **धागा** (thread) होता है जो अंतिम सिरे पर या तो खुला हो सकता है या बंद, नलिका के भीतर कुछ **कांटे** बने हो सकते हैं। नाइडोब्लास्ट द्वारा स्रावित यह रचना नीमैटोसिस्ट होती है। नीमैटोसिस्ट के भीतर प्रोटीनों तथा फ़ीनॉलों के मिश्रण का बना एक विषैला टॉक्सिन होता है। कैप्सूल के दीवार पर संकुचनशील तंतु होते हैं जो नाइडोब्लास्ट में को चलते चले जाते हैं। कुछ प्रकार के नीमैटोसिस्टों में
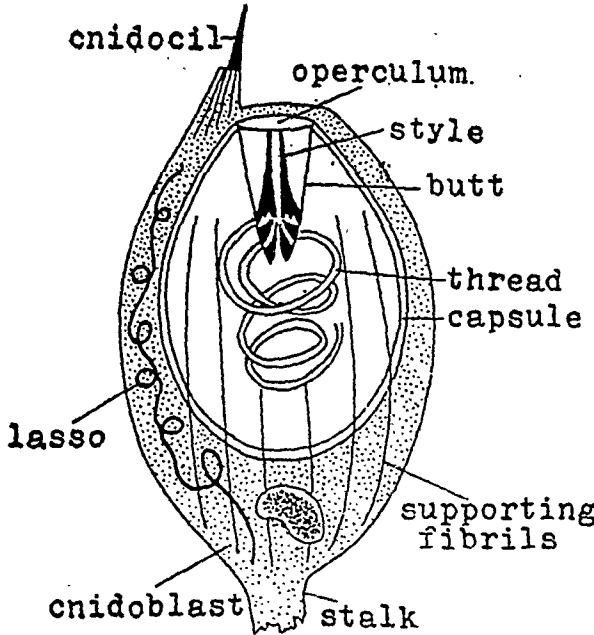
चित्र 103. नीमैटोसिस्ट से युक्त नाइडोब्लास्ट।

Cnidocil, नाइडोसिल; operculum, ढक्कन; style, शूक; butt, हत्था; thread, धागा; capsule, कैप्सूल; supporting fibrils, आलंबी तंतुक; stalk, वृंत; cnidoblast, नाइडोब्लास्ट; lasso, पाश-बंध।

नाइडोब्लास्ट के साइटोप्लाज़म में संकुचनशील **पेशी-तंतु** बने होते हैं। कुछ नीमैटोसिस्टों में एक **पाश-बंध** (lasso) होता है जो नाइडोब्लास्ट के आधार से जुड़ा हुआ एक रोकने वाला धागा होता है। यह पाश-बंध कुछ विशिष्ट प्रकार के नीमैटोसिस्टों को जंतु के देह से वाहर फेंक दिए जाने से रोकता है।

नीमैटोसिस्ट केवल जठर पर उत्पन्न होते हैं, परिवर्धनशील नीमैटोसिस्टों से युक्त नाइडोब्लास्ट देह-भित्ति में से होते हुए चलते जाते हैं या आंत में पहुँच जाते हैं जहाँ से एंडोडर्म-कोशिकाओं के कूटपाद उन्हें उठा लेते और मीज़ोग्लीया में पहुँचा देते हैं, इस मीज़ोग्लीया में यात्रा करते हुए वे देहभित्ति में से गुज़र कर पुनः वाहर

की ओर आकर अपनी अंतिम स्थिति में आ जाते हैं जहाँ पर उनका शेष परिवर्धन पूरा हो जाता है। नाइडोब्लास्ट अपने आधार द्वारा जोकि मीज़ोग्लीया तक पहुँच जाता है एक्टोडर्म में जम जाता है, उसका नाइडोसिल क्यूटिकल को वेध कर बाहर को उभर आता है। हाइड्रा में चार प्रकार के नीमैटोसिस्ट होते हैं जो केवल एक्टोडर्म में ही पाए जाते हैं।

1. **स्टेनोटीलों** (Stenoteles) अथवा **वेधकों** (penetrants) में एक बड़ा कैप्सूल होता है, हत्था मज़बूत होता है जिसके ऊपर दूरस्थ आधे भाग में कांटों की तीन सर्पिल पंक्तियाँ बनी होती हैं, प्रत्येक पंक्ति का सबसे निचला कांटा एक बड़ी **शूकिका** (stylet) के रूप में होता है। धागे के ऊपर छोटे शूकों के सर्पिल बने होते हैं, और अंतिम सिरे पर धागा खुला होता है। स्टेनोटील सुरक्षा एवं आक्रमण के शस्त्र होते हैं, इनका धागा शिकार के शरीर में घुस जाता है, ये आहार प्राप्त करने में भी काम आते हैं।

2. **पूर्णशूकी आइसोराइज़ा** (Holotrichous isorhizas) अथवा बड़े **आसंजियों** (glutinants) में एक अंडाकार कैप्सूल होता है, हत्था संकीर्ण होता है और धागा अन्तिम सिरे पर खुला होता है। हत्थे और धागे पर छोटे शूक बने होते हैं। इनका कार्य ठीक से पता नहीं है लेकिन ये शिकार की सतह से चिपक जाते हैं।
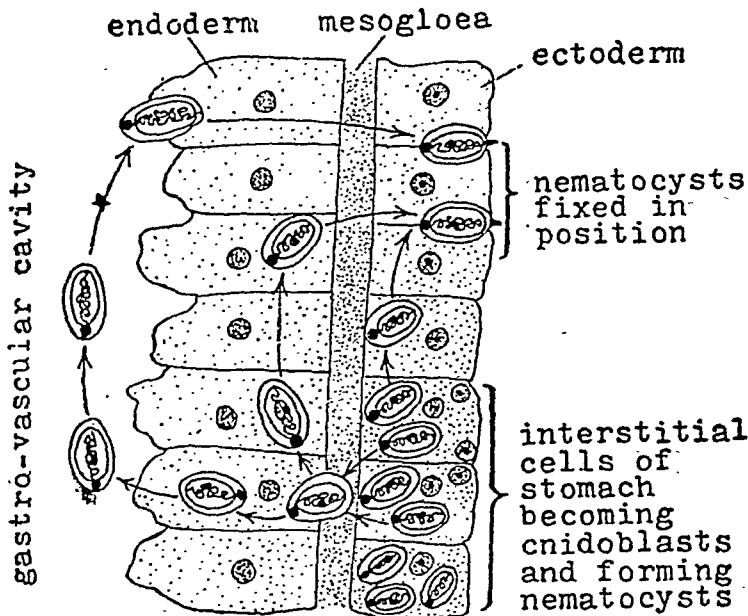
चित्र 104. नीमैटोसिस्टों का प्रवास :

Endoderm, एंडोडर्म; mesoglea, मीज़ोग्लीया; ectoderm, एक्टोडर्म; nematocysts fixed in position, स्थान पर जम चुके नीमैटोसिस्ट; interstitial cells......, जठर की अंतराल कोशिकाएँ नाइडोब्लास्ट बन रही हैं और उनसे नीमैटोसिस्टों का निर्माण हो रहा है; gastro-vascular cavity, जठरवाही गुहा।

3. **अशूकी आइसोराइज़ा** (Atrichous isorhiza) अथवा छोटे **आसंजियों** में एक लंबा कैप्सूल होता है, धागा सिरे पर खुला होता है, कोई कांटा नहीं होता। ये स्पर्शकों को वस्तुओं से उस समय चिपकाते जाते हैं जब कि जंतु अपने स्पर्शकों के बल चल रहा होता है।

4. **बंधसूत्र** (Desmonemes) अथवा **वॉल्वेन्ट** (volvents) में एक छोटा अंडाकार कैप्सूल होता है, हत्था नहीं होता, धागा मोटा और बिना कांटों वाला होता है, यह सिरे पर बंद होता है, यह कैप्सूल के भीतर एक अकेले चक्कर के रूप में बना होता है। विस्फोट होने पर वॉल्वेन्ट देह से बाहर निकलते और धागा शिकार के रोमों में लिपट जाता है; ये आहार प्राप्त करने में इस्तेमाल होते हैं।

नीमैटोसिस्ट स्पर्शकों और देह पर बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, लेकिन
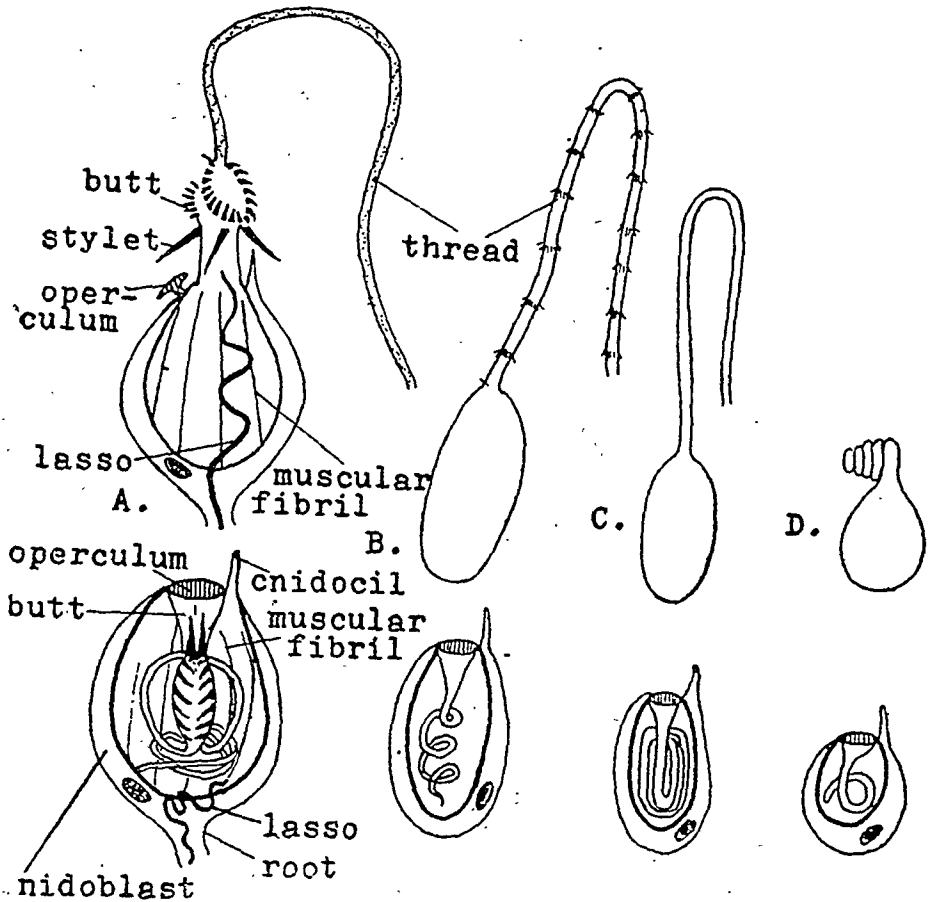
चित्र 105. हाइड्रा के नीमैटोसिस्ट (ऊपर के चित्र, विस्फोटित दशा; नीचे के चित्र, अविस्फोटित)। A—स्टेनोटील; B—पूर्णशूकी आइसोराइज़ा; C—अशूकी आइसोराइज़ा; D—वाल्वेंट।
Butt, हत्था; Stylet, शूकिका; operculum, ढक्कन; thread, धागा; lasso, पाश-बंध; muscular fibril, पेशीय तंतुक; cnidocil, नाइडोसिल; cnidoblast, नाइडोब्लास्ट; root, जड़।

आधारीय डिस्क पर नहीं होते। चारों प्रकार के नीमैटोसिस्ट स्पर्शकों पर काफी संख्या में पाए जाते हैं, हाइपोस्टोम पर केवल पूर्णशूकी आइसोराइज़ा होते हैं, देह पर अधिकतर स्टेनोटील और कुछ पूर्णशूकी आइसोराइज़ा होते हैं। नीमैटोसिस्टों का केवल एक बार विस्फोट होता है, विस्फोट के बाद नीमैटोसिस्ट शरीर से झड़ जाते हैं, हालांकि वाल्वेन्ट विस्फोट के समय ही झड़ जाते हैं, नए नीमैटोसिस्ट हर समय बनते रहते हैं। नीमैटोसिस्टों के विस्फोट की विधि का स्पष्ट ज्ञान नहीं है, लेकिन यह निश्चित है कि उन पर तंत्रिका-तंत्र का नियंत्रण नहीं होता, अतः वे
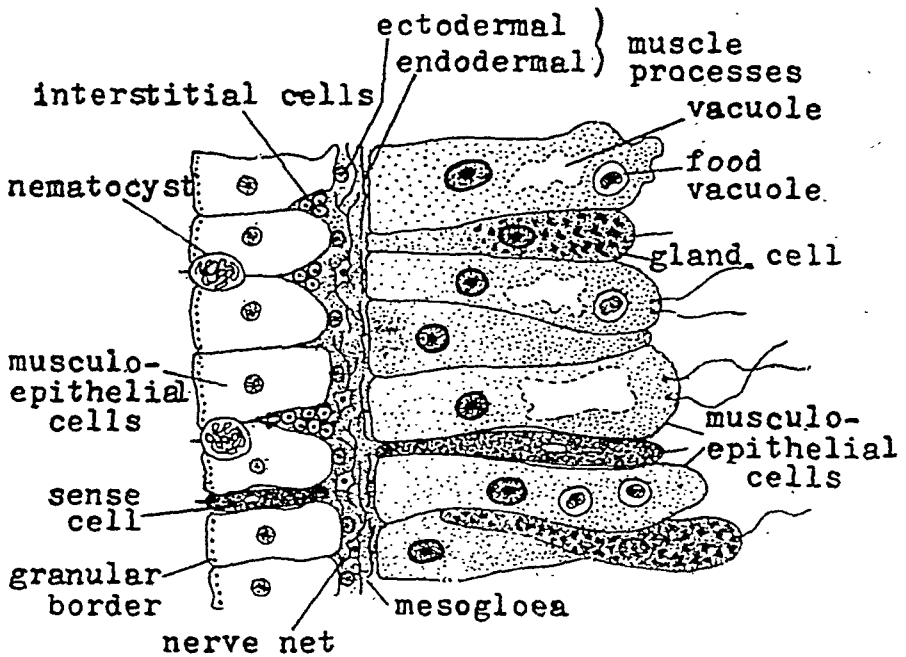
चित्र 106. हाइड्रा की देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)

Interstitial cells, अंतराली कोशिकाएँ; ectodermal, एक्टोडर्मी; endodermal, एंडोडर्मी; muscle processes, पेशी प्रवर्ध; vacuole, रिक्तिका; food vacuole, आहार रिक्तिका; gland cell, ग्रंथि कोशिका; musculo-epithelial cells, पेशी-एपिथीलियम कोशिकाएँ; mesogloea, मीज़ोग्लीया; nerve net, तंत्रिका जाल; nematocyst, नीमैटोसिस्ट; sense cell, संवेदी कोशिका; granular border, कणिकीय सीमांत ।

स्वतन्त्र कार्यकारी होते हैं। और तो और अन्य जंतुओं के शरीर में भी वे कार्यशील बने रहते हैं। बेहोश किए हुए हाइड्रा में उत्तेजना देने पर नीमैटोसिस्टों का विस्फोट सामान्य ढंग से होता रहता है; यहाँ तक कि देह से पृथक् किए गए नीमैटोसिस्टों में भी पर्याप्त उद्दीपन मिलने पर धागा फूट कर बाहर आ जाता है। कुछ जंतु यदि हाइड्रा के समीप तैर रहे हों तो उनके कारण हाइड्रा के नीमैटोसिस्ट फूट पड़ते हैं,

लेकिन कुछ ऐसे जंतु भी हैं जो **हाइड्रा** के शरीर के ऊपर चल सकते हैं और नीमैटोसिस्टों का विस्फोट नहीं होता। नीमैटोसिस्टों की विस्फोट विधि का एक स्पष्टीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है : (क) विस्फोट के लिए दो कारक जिम्मेदार हैं, एक तो जल में तरल जैसे रसायनों का पाया जाना और दूसरे किसी खाद्य-जंतु अथवा शिकार के द्वारा नाइडोसिल तथा नाइडोब्लास्ट का यांत्रिकीय स्पर्श; यदि रसायन और स्पर्श दोनों ही उद्दीपन मौजूद हों तो नीमैटोसिस्ट का विस्फोट हो जाता है। (ख) कैप्सूल के भीतर का धगा जिलेटिनी होता है, उचित उद्दीपन मिलने पर ढक्कन खुल जाता और कैप्सूल में जल भर जाता है, और तब धागे का द्रवीकरण होता है जो बल पड़ने के कारण एक पतली धार के रूप में बाहर को फूट पड़ता है, लेकिन बाहर आते ही द्रव की धार ठोस बनकर नीमैटोसिस्ट का बाहरी धागा बन जाती है। (ग) नाइडोब्लास्ट में एक ऐसी क्रियाविधि होती है जिसमें संवेदग्राही और कार्यकारी भाग दोनों ही मौजूद होते हैं जो नाइडोसिल द्वारा प्राप्त यांत्रिकीय एवं रसायन उद्दीपनों और नाइडोब्लास्ट तक उनके वहन के संयुक्त प्रभाव के कारण नाइडोब्लास्ट के उद्दीपित होने पर नीमैटोसिस्ट का विस्फोट करते हैं। नीमैटोसिस्ट के विस्फोट में ढक्कन खुल जाता है, कैप्सूल में पानी पहुँच जाता है, नलिका एक बल के साथ भीतर से बाहर पलट जाती है, इस अंतर्वर्तन से कांटे नली की बाहरी सतह पर आ जाते हैं। यह धागा या तो शिकार पर चिपक जाता है (आसंजी नीमैटोसिस्ट) या उसके रोमों पर लिपट जाता है (वाल्वेंटों में), या उसकी देह के भीतर वेध कर घुस जाता है (वेधक), या एक शक्तिशाली टॉक्सिन को भीतर प्रविष्ट करा देता है जो जल-पिस्सू अथवा छोटे कृमियों के समान बड़े जंतुओं तक को अशक्त बना देता है।

पोषण (Nutrition)—इसके आहार में छोटे क्रस्टेशियन, छोटे ऐनेलिड और कीट-लार्वा शामिल हैं। शिकार के स्पर्शक से छू जाने पर स्टेनोटील उसमें घुस जाते हैं और उसमें एक विषैले टॉक्सिन को इन्जेक्ट करके उसे अशक्त कर देते हैं, वाल्वेंट रोमों पर लिपट कर आहार को जकड़ लेते हैं। पकड़े गए शिकार को जकड़े-जकड़े स्पर्शक सिकुड़ कर मुंह के ऊपर मुड़ जाता है, बाकी स्पर्शक भी मुड़कर इस आहार को मुंह के भीतर धकेलने में सहायता करते हैं, मुंह और हाइपोस्टोम की गतियों से आहार भीतर पहुँच जाता है; देह-भित्ति के क्रमाकुंचनी (peristaltic) संकुचन इसे आंत्र के भीतर धक्का दे देते हैं। **हाइड्रा** सामान्यत: केवल जीवित शिकार को ही खाता है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि **हाइड्रा** केवल उन्हीं जंतुओं को खाता है जिनमें **ग्लूटैथियोन** (glutathione) नामक एक रसायन पाया जाता है, यह रसायन अधिकतर जंतुओं के ऊतक द्रव में पाया जाता है और स्टेनोटीलों द्वारा देह का वेधन होने पर यह रसायन बाहर निकलता है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आहार करने की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने के वास्ते ग्लूटैथियोन का होना अनिवार्य है।

पाचन (Digestion)—हाइपोस्टोम की श्लेष्मा ग्रंथि कोशिकाएँ परिग्रहीत भोजन को श्लेष्मा से ढक देती हैं, उसके बाद एन्ज़ाइमी ग्रंथि कोशिकाओं से एक

प्रोटीन-अपघटक (proteolytic) एन्ज़ाइम निकलता है जो आंत्र में एक क्षारीय माध्यम में प्रोटीनों का आंशिक पाचन कर देता है; यह पाचन **कोशिकावाह्य** होता है। कुछ एंडोडर्म कोशिकाएँ कूटपाद बनाकर छोटे आकार के अंशतः पचे आहार कणों को भीतर आहार रिक्तिकाओं में समेट लेती हैं। आहार रिक्तिकाओं का अंतः-पदार्थ पहले अम्लीय होता है और बाद में क्षारीय, शेष पाचन रिक्तिकाओं में पूरा होता है, और इसे **अंतःकोशिक** पाचन कहते हैं। अतः हाइड्रा में प्रोटोज़ोआ के अंतःकोशिक पाचन और उच्चतर जंतुओं के कोशिकवाह्य पाचन का जोड़ मिलता है। कुछ एण्डोडर्मी कोशिकाएँ आहार को आहार-रिक्तिकाओं में पहुँचा कर देह-भित्ति से पृथक् हो जाती और आंत्र में चक्कर लगाते हुए उन-उन भागों तक पहुँचती जाती हैं जिन्हें पचे हुए भोजन की आवश्यकता होती है। पचा हुआ भोजन एंडोडर्म कोशिकाओं में स्वांगीकृत होता है और फिर वहाँ से एक्टोडर्म में अथवा आंत्र में पहुंचा दिया जाता है जहाँ से फिर वह सभी भागों तक वितरित हो जाता है। इस प्रकार आंत्र-गुहा एक दोहरा कार्य करती है—पाचन और परिसंचरण का। हाइड्रा में प्रोटीनों, वसाओं और कुछ कार्बोहाइड्रेटों का पाचन हो सकता है लेकिन यह स्टार्च को नहीं पचा पाता। पचा हुआ कुछ भोजन तेल गोलकों का रूप लेकर एक्टोडर्म में जमा कर लिया जाता है।

तंत्रिका-तंत्र (Nervous system)—तंत्रिका-कोशिकाएँ बहुत-सी होती हैं,
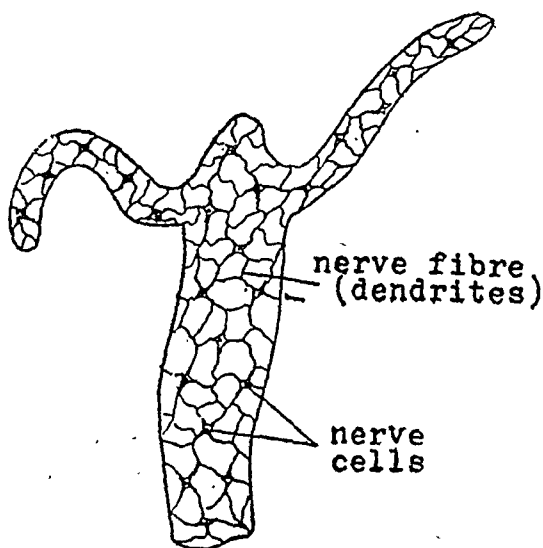
चित्र 107. **तंत्रिका-तंत्र**।

Nerve fibre (dendrites), तंत्रिका तंतु (डेंड्राइट); nerve cells, तंत्रिका-कोशिकाएँ।

प्रत्येक कोशिका में 2 से 4 विशाखित तंत्रिका-तंतु होते हैं, तंत्रिका-तंतु आदिम होते हैं क्योंकि इनमें ऐक्सॉन (axons) अथवा डेंड्राइट (dendrites) नहीं बने होते,

और साथ ही ये तंत्रिका-तंतु अन्य तंत्रिका-कोशिकाओं के तंतुओं से वास्तविक स्पर्श-संयोजन बनाते हैं; हाल ही में पता चला है कि साइनैप्स (synapses) नहीं पाए जाते और इस प्रकार एक अविच्छिन्न **तंत्रिका जाल** (nerve net) बन जाता है। **हाइड्रा** में दो तंत्रिका-जाल होते हैं जिनमें से एक जाल एक्टोडर्म से जुड़ा होता और अधिक विकसित होता है तथा दूसरा तंत्रिका जाल एंडोडर्म के समीप होता है। दोनों जाल मीज़ोग्लीया में और उसके दोनों पार्श्वों पर स्थित होते हैं। लेकिन एक्टोडर्मी जाल अधिक विकसित होता और मुख के चारों ओर खास तौर से संकेन्द्रित होता है। दोनों तंत्रिका जाल एक-दूसरे से तथा एक्टोडर्म और एंडोडर्म दोनों की संवेदी
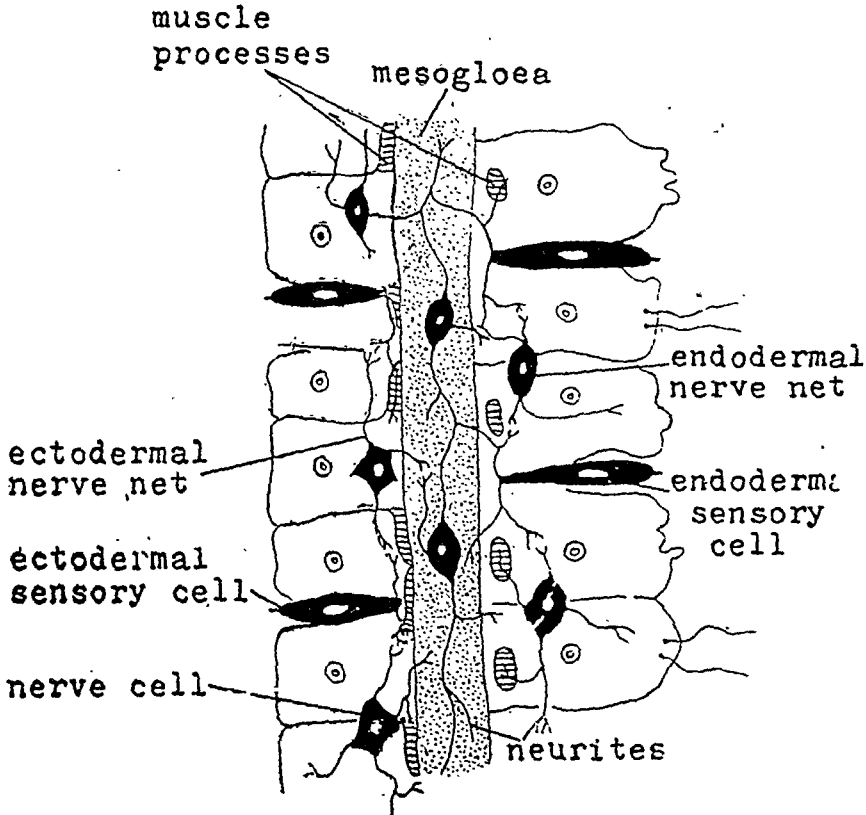
चित्र 108. **हाइड्रा के तंत्रिका-जाल।**

Muscle processes, पेशी प्रवर्ध; mesogloea, मीज़ोग्लीया; endodermal nerve net, एण्डोडर्मी तंत्रिका जाल; endodermal sensory cell, एण्डोडर्मी संवेदी कोशिका; neurites, न्यूराइट; ectodermal nerve net, एक्टोडर्मी तंत्रिका जाल; ectodermal sensory cell, एक्टोडर्मी संवेदी कोशिका; nerve cell, तंत्रिका-कोशिका।

कोशिकाओं से जुड़े होते हैं, वे एपिथीलियम-पेशी कोशिकाओं के साथ भी जुड़े होते हैं। दोनों तंत्रिका-जालों के तंतु एक दूसरे में जारी रहते हैं और साइनैप्स नहीं पाए जाते। संवेदी कोशिकाएँ स्पर्श, प्रकाश और रसायनों के लिए ग्राही होती हैं और

उद्दीपन उनमें से चलकर तंत्रिका जाल में से होते हुए पेशी प्रवर्धों तक पहुँच जाते हैं, ये पेशी प्रवर्ध ही कार्यकारी होते हैं। यह विसरित प्रकार का तंत्रिका-तंत्र होता है जो ग्राही→संवाहक→कार्यकारी तंत्र के रूप में कार्य करता है, तंत्रिका कोशिकाएँ ग्राहियों और कार्यकारियों के वीच में संवहनी शृंखलाओं का कार्य करती हैं, उद्दीपन वाले एक स्थान से चलने वाले संदेश हर दिशा में फैल जाते हैं, लेकिन कोई समन्वय नहीं होता क्योंकि संदेशों से तमाम कार्यकारियों में वरावर अनुक्रिया उत्पन्न नहीं होती।

चलन (Locomotion)—हाइड्रा सामान्यत: अपनी आधारीय डिस्क के द्वारा स्थानवद्ध रहता है लेकिन यह निम्नलिखित विधियों द्वारा चल-फिर सकता है। 1. यह कलैया खाकर चल फिर सकता है, देह लंवा होकर एक ओर को झुक जाता और अपने स्पर्शकों को आधार-स्थल पर टिका लेता है, अशूक आइसोराइज़ा नीमैटोसिस्ट स्पर्शकों के चिपकने में मदद देते हैं, आधारीय डिस्क अपने पुराने चिपके हुए स्थान से छूट जाती है, और जंतु अपने स्पर्शकों के वल उल्टा खड़ा हो जाता है, तव देह तेजी से इतना सिकुड़ जाती है कि समूचा जंतु एक छोटी गोली सा नज़र आता है। उसके वाद देह को फिर से फैलाया जाता और मोड़कर आधारीय डिस्क को आधार-स्थल पर जमा दिया जाता है, स्पर्शक अपनी पकड़ ढीली कर देते हैं और जंतु फिर से अपनी सीधी खड़ी स्थिति में आ जाता है। ये गतियाँ वारंवार होती जाती हैं और **हाइड्रा** एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचता जाता है। चलन की सामान्य विधि यही है। 2. **हाइड्रा** अपने चिपके रहने वाले स्थान के सहारे-सहारे विसर्पण कर सकता है और यह विसर्पण आधारीय डिस्क कोशिकाओं के कूट पादों द्वारा सम्पन्न होता है। 3. ऊपर से नीचे उल्टी स्थिति में रहते हुए **हाइड्रा** अपने स्पर्शकों के वल चल सकता है और इस प्रकार चलते जाने के दौरान देह संकुचित
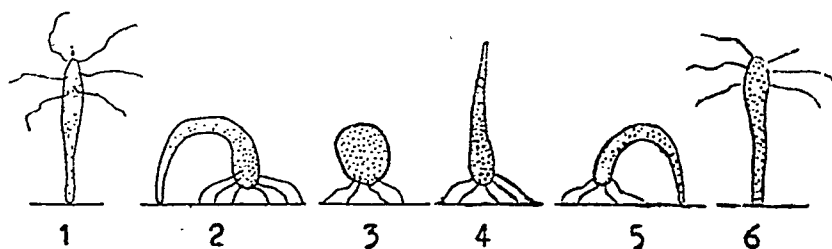
चित्र 109. **हाइड्रा** में चलन

होकर एक घुंडी सी वना लेता है (चित्र 109-3)। 4. यदाकदा **हाइड्रा** अपनी आधारीय डिस्क को छुड़ा लेता है, इस छुड़ाने में यह उस गैस के एक वुदवुदे का सहारा लेता है जो आधारीय डिस्क की कुछ एक्टोडर्मी कोशिकाओं से स्रावित होती है। आधारीय डिस्क जल की सतह पर आ जाती है और जंतु सतह से नीचे को लटके हुए की स्थिति में गैस के वुदवुदे की सहायता से तिरता रहता है; इस स्थिति में यह जल धाराओं द्वारा निष्क्रिय रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचता रहता है।

व्यवहार (Behaviour)—**हाइड्रा** की आहार करने से संबंधित गतियाँ स्वचालित होती हैं, उनपर बाहरी वातावरण का नियंत्रण होता है। प्राणी में स्पर्श के लिए अनुक्रिया होती है, यदि स्पर्शक को छुआ जाए तो अन्य स्पर्शक और यहाँ तक कि शरीर में भी संकुचन होता है। इससे पता चलता है कि उद्दीपन का संचरण होता है, और यह उद्दीपन तंत्रिका जालों के द्वारा हर दिशा में पहुँच जाता है। उद्दीपन लगने के स्थान के समीप अनुक्रिया सबसे ज्यादा होती है और जैसे-जैसे क्षेत्र दूर होता जाता है वैसे-वैसे यह कम होती जाती है क्योंकि प्रत्येक तंत्रिका जाल आवेगों के वहन में कुछ प्रतिरोध डालता है, यह प्रतिरोध बहुसंख्यक तंत्रिका कोशिकाओं में पड़ता जाता है। **हाइड्रा** तालाब की अधिक गहराइयों की अपेक्षा ऊपरी भाग में अधिक पाये जाते हैं, इस प्रकार वे अधिक ऑक्सीजन प्राप्त कर सकते हैं। यदि **हाइड्रा** तली के समीप चिपका हुआ हो तो शरीर सीधा खड़ा रहता है, लेकिन औसत गहराई पर यह क्षैतिज रहता है और इसका हाइपोस्टोम पाद के समतल से नीचा रहता है। यह जल की सतह से अपने पाद द्वारा सिर नीचा किए हुए उल्टा भी लटका रह सकता है, इस प्रकार की स्थिति में यह गैस के एक बुदबुदे का सहारा लेता है। यह अपने शरीर की आकृति को बदल सकता है, कभी लंबा और पतला हो जाता है और कभी छोटा और सिकुड़ कर एक ढोल जैसा बन सकता है। इसमें प्रकाश के लिए कोई अनुक्रिया नहीं होती, लेकिन यह तालाब के अधिक प्रकाशयुक्त भागों में पहुंच जाता है, यह तेज़ रोशनी से बचता है। अंधेरे में यह बेचैन-सा हो जाता और अनेक दिशाओं में घूमता-फिरता है। **हाइड्रा** का व्यवहार उसकी शरीर-क्रियात्मक अवस्था पर निर्भर होता है, अच्छी तरह पेट-भरे हाइड्रा में उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया धीमी होती है, लेकिन उन्हीं उद्दीपनों के लिए भूखे हाइड्रा में तीव्रता से अनुक्रिया होती है।

श्वसन या उत्सर्गी अंग नहीं होते लेकिन ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान देह की सतह पर होता है। अपशिष्ट नाइट्रोजनी पदार्थ का उत्सर्जन, जिसमें मुख्यतः ऐमोनिया होती है, देह की सामान्य सतह से होता है। कहा जाता है कि आधारीय डिस्क के एण्डोडर्म में अपशिष्ट पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं जो एक छिद्र में से बाहर को विसर्जित हो जा सकते हैं।

जनन (Reproduction)—1. **पुनरुद्भवन** (Regeneration) : यदि **हाइड्रा** को दो भागों में काट दिया जाए तो प्रत्येक भाग में शीघ्र वृद्धि होकर कमी वाले अवयव दुबारा बन जाते हैं, यहाँ तक कि काफ़ी छोटे टुकड़ों से भी पूरा जंतु बन सकता है बशर्ते कि टुकड़े में एक्टोडर्म और एण्डोडर्म दोनों मौजूद हों, जंतु के इस गुणधर्म को पुनरुद्भवन कहते हैं। यदि सिर काट दिया जाए तो शीघ्र ही एक नया सिर उत्पन्न हो जाता है।

2. **अलैंगिक मुकुलन** (Asexual budding) : किसी एक स्थान पर एक्टोडर्म कोशिकाओं में संख्या-वृद्धि होकर एक उभार बन जाता है जिसके नीचे एंडोडर्म कोशिकाओं में खाद्य भण्डार बन जाता है। उसके बाद एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म दोनों

एक मुकुल के रूप में उठ आते हैं जिसके भीतर आंत्र की एक विपुटी बन जाती है। मुकुल उस स्थान पर बनता है जहाँ जठर और वृंत जुड़ते हैं, और एक ही समय में अनेक मुकुल बन सकते हैं। मुकुल में दूरस्थ सिरे पर एक-एक करके स्पर्शक बनते जाते हैं और एक मुख प्रकट हो जाता है। जनक प्राणी के साथ मुकुल के जोड़ पर संकुचन होता है जिससे मुकुल पृथक् हो जाता है, लेकिन ऐसा होने से पूर्व आधार पर बनी एण्डोडर्म कोशिकाएँ संयुक्त हो जाती हैं, संकीर्णन के बाद एक्टोडर्म पाद के ऊपर से बढ़ता जाता हुआ एण्डोडर्म को ढक लेता है। मुकुल एक नए **हाइड्रा** में विकसित हो जाता और प्रकीर्णन के उद्देश्य से जल की सतह की ओर पहुंच जाता है, लेकिन अंततः यह अपने आधारीय डिस्क के द्वारा स्थानबद्ध हो जाता और इस तरह एक एकल प्राणी बन जाता है। मुकुलन अपेक्षाकृत गर्म महीनों में होता है जबकि आहार प्रचुर मात्रा में मिलता है।

3. **लैंगिक जनन** (Sexual reproduction) : अधिकतर हाइड्रा पृथक्लिंगी होते हैं लेकिन कुछ स्पीशीज़ उभयलिंगी होती हैं जिनमें शुक्राणु पहले परिपक्व हो जाते हैं और अंडे बाद में। इस प्रकार की व्यवस्था से स्वनिषेचन नहीं हो पाता। **हाइड्रा ओलाइगैक्टिस** पृथक्लिंगी होता है, मादा में एक या दो अंडाशय होते हैं लेकिन नर में, जो कि आकार में कहीं अधिक छोटा होता है, एक से आठ गोल वृषण पाए जाते
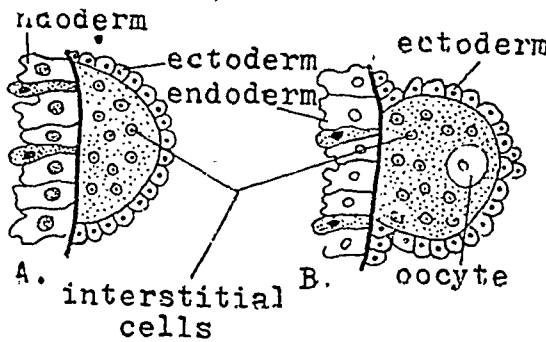
चित्र 110. **हाइड्रा ओलाइगैक्टिस** का A—वृषण और B—अंडाशय। Endoderm, एण्डोडर्म; ectoderm, एक्टोडर्म; oocyte, अंडाणुकोशिका; interstitial cells, अंतराली कोशिकाएँ।

हैं। गोनड जठर प्रदेश पर बने होते हैं, वे स्थायी अंग नहीं होते और केवल प्रजनन काल में जो कि शुरू जाड़े में होता है बनते हैं। उभयलिंगी हाइड्राओं में वृषण जठर के दूरस्थ सिरे की ओर और अंडाशय उसके समीपस्थ सिरे की ओर होते हैं। **हाइड्रा** जिस पानी में रह रहा हो उसके ताप में कमी हो जाने अथवा उसमें मुक्त कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने पर गोनडों के निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

वृषण एक्टोडर्मी अंतराली कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं, इन कोशिकाओं में प्रगुणन होकर **शुक्राणुजन** (spermatogonia) बन जाते हैं, इनमें अनेक युग्मकजनी माइटोसिस-विभाजन होते हैं जिनमें से एक ह्रास-विभाजन होता है, और इस तरह

अनेक शुक्राणु बन जाते हैं जो वृषणों में से बाहर आ जाते और फुर्ती से तैरते जाते हैं। अंडाशय भी अंतराली कोशिकाओं से बनते हैं, इनमें से एक अंतराली कोशिका बड़ी हो जाती है, शेष कोशिकाएँ पोषण में पीतक के निर्माण में इस्तेमाल हो जाती हैं। बड़ी कोशिका **अंडाणुकोशिका** (oocyte) होती है, इनमें दो परिपक्वन विभाजन होकर एक विशाल पीतक-परिपूर्ण अंडाणु और दो ध्रुवी पिंड बन जाते हैं। अंडाणु
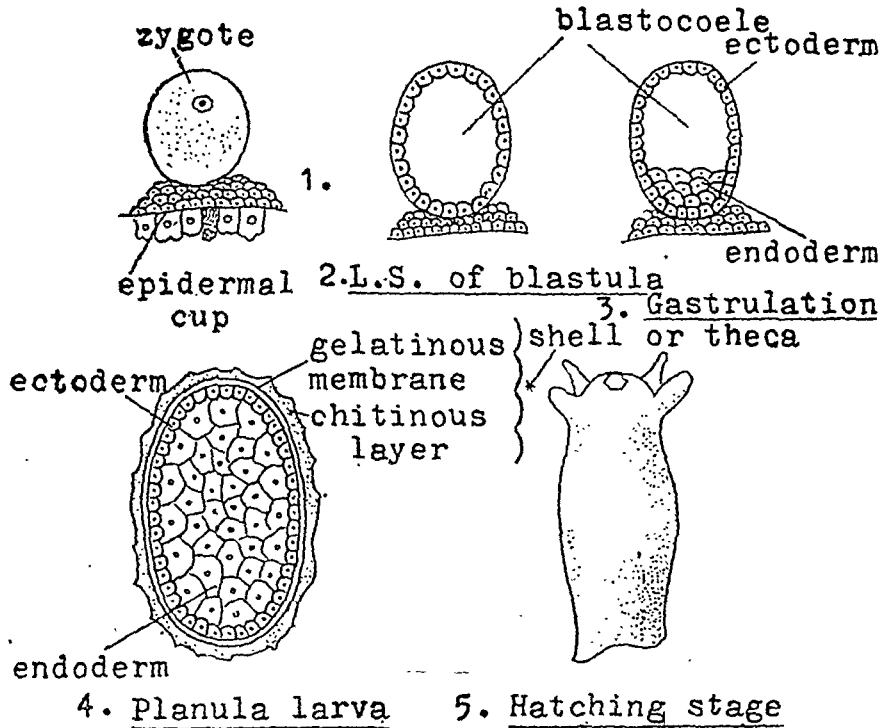
चित्र 111. **हाइड्रा** का परिवर्धन।

Zygote, युग्मनज; blastocoele, ब्लास्टोसील; ectoderm, एक्टोडर्म; endoderm, एण्डोडर्म; epidermal cup, एपिडर्मिसी कप; L.S. of blastula, ब्लास्टुला का अनुदैर्घ्य सेक्शन; Gastrulation, गैस्ट्रुला-निर्माण; planula larva, प्लैनुला लार्वा; gelationous membrame, जिलेटिनी झिल्ली; chitinous layer, काइटिनी परत; shell or theca, कवच अथवा थीका; hatching stage, स्फोटन अवस्था।

पर पहले एक्टोडर्म घिरा होता है लेकिन यह टूट जाता है और अंडाणु सब दिशाओं में खुल जाता है, केवल वह दिशा रह जाती है जहाँ पर वह एक एपिडर्मिसी कप के द्वारा **हाइड्रा** से जुड़ा रहता है। प्रत्येक अंडाशय से एक बार में एक-एक अंडाणु करके अंडाणुओं की एक क्रमिक उत्पत्ति होती जाती है। प्रत्येक अगुणित युग्मक में 15 क्रोमोसोम होते हैं। शुक्राणु द्वारा अंडाणु का निषेचन होकर एक द्विगुणित युग्मक बन जाता है जिसमें 30 क्रोमोसोम होते हैं।

परिवर्धन (Development)—परिवर्धन कुछ काल तक जनक के शरीर के

ऊपर ही होता रहता है। युग्मनज में पूर्णभंजी अथवा सम्पूर्ण विदलन होता है जिसके फलस्वरूप समान साइज वाली कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं। शीघ्र ही एक **ब्लास्टुला** बन जाता है जिसमें कोशिकाओं की एकल परत होती है और ब्लास्टोसील नामक एक केन्द्रीय गुहा बनी होती है। कोशिकाओं में विभाजन द्वारा प्रगुणन होता जाता है और उनमें से कुछ कोशिकाएँ अपना स्थान छोड़कर ब्लास्टोसील में पहुंच जाती हैं जिसके कारण ब्लास्टोसील पूरी तरह समाप्त हो जाती है। यह अवस्था एक **गैस्ट्रुला** होती है जिसमें एक बाहरी कोशिका-स्तर एक्टोडर्म होता है और कोशिकाओं का बना एक ठोस अंतःभाग होता है जिसे एण्डोडर्म कहते हैं। गैस्ट्रुला स्वच्छंद तैरने वाला नहीं होता और उसका एक्टोडर्म सिलियायुक्त नहीं होता, इसे **प्लैनुला** (planula) **लार्वा** अथवा **स्टीरियोगैस्ट्रुला** (stereogastrula) कहते हैं। एक्टोडर्म से एक तो जिलेटिनी झिल्ली का स्राव होता है और दूसरे एक काइटिनी परत का जो कड़ी हो जाती है। ये दो परतें एक कवच अथवा **थीका** बनाती हैं। यह थीका चिकनी हो सकती है (**हाइड्रा ओलाइगैक्टिस**) अथवा काँटेदार, यह अंडाकार अथवा गोल हो सकती है। अब भ्रूण अपने जनक के शरीर से टूटकर अलग हो जाता और तालाब की तली में आ गिरता है जहाँ पर यह कई सप्ताह तक बिना किसी परिवर्तन के हुए इसी प्रकार पड़ा रहता है। तब अंतराली कोशिकाएँ बनती हैं और उसके बाद एक बार फिर से विश्राम अवस्था आती है। अगली वसंत ऋतु में थीका फूट जाती और भ्रूण स्फोटित होकर बाहर आ जाता है, इसमें एण्डोडर्म कोशिकाओं में एक आंत्र गुहा पहले से ही बन गई होती है। दोनों परतें मिलकर एक मीज़ोग्लीया का स्राव करती हैं। एक सिरे पर छिद्र बनकर मुख बन जाता है और स्पर्शक प्रकट हो जाते हैं। यह लार्वा एक नन्हा **हाइड्रा** होता है, यह लंबा हो जाता और अपने अपमुख सिरे के द्वारा चिपक कर एक वयस्क के रूप में विकसित हो जाता है।

हरे रंग के **क्लोरोहाइड्रा विरिडिसिमा** (*Chlorohydra virridissima*) की एण्डोडर्म कोशिकाओं में सहजीवी शैवाल एक पामेला (palmella) अवस्था में रहते हैं जिन्हें **ज़ूओक्लोरेली** (Zoochlorellae) कहते हैं। ये शैवाल **हाइड्रा** की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अंडों के द्वारा चलते जाते हैं। शैवालों में क्लोरोफ़िल होता है लेकिन वे नाइट्रोजन को तथा प्रकाशसंश्लेषण द्वारा खाद्य-निर्माण के लिए आवश्यक कार्बन डाइऑक्साइड को **हाइड्रा** से प्राप्त करते हैं। बदले में ये शैवाल जंतु को श्वसन के वास्ते ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, और कदाचित् जंतु मृत शैवालों को आहार के रूप में भी इस्तेमाल कर लेता है। इस सहजीवी संबंध में परपोषी तथा सहजीवी दोनों ही को लाभ पहुंचता है। **केरोना** (*Kerona*) जो कि एक सिलिएट-प्राणी है हाइड्रा पर एक बाह्यपरजीवी के रूप में पाया जाता है।

हाइड्रा में एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म की अविच्छिन्न परतें बनी होती हैं और उन्हें एपिथीलियम माना जा सकता है, लेकिन ऊतकों में विभेदन बहुत ही निम्न स्तर पर है। विभिन्न कोशिकाएँ अलग-अलग विशिष्ट कार्य करती हैं इसलिए श्रम-विभाजन की व्यवस्था मौजूद है। एक्टोडर्म संरक्षी, पेशीय और संवेदी है, इसके

नीमैटोसिस्ट सुरक्षा के लिए तथा आहार प्राप्ति के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं, कुछ नीमैटोसिस्ट चलने में भी मदद देते हैं। आधारीय डिस्क का एक्टोडर्म ग्रंथिल होता है और उसके केन्द्रीय भाग से गैस उत्पन्न हो सकती है। एक्टोडर्म में स्रावक, पाचक, वाही, पेशीय, और संवेदी ये अनेक कार्य प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। अंतराली कोशिकाओं से गोनड (जनन ग्रंथियाँ) उत्पन्न होते हैं, और एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म दोनों की कोशिकाओं का नवीकरण होता है। आंत्र में पाचन और परिसंचरण होता है। मुख के द्वारा आहार का अंतर्ग्रहण और बिना पचे भोजन का बहिष्कार होता है। संस्पर्शकों को आहार प्राप्त करने तथा चलने में इस्तेमाल किया जाता है। यह तमाम श्रम-विभाजन इसलिए संभव है क्योंकि **हाइड्रा** के अवयवों का विभेदन प्रारम्भ हो गया है। **हाइड्रा** में इस सिद्धान्त का प्रदर्शन मिलता है कि कार्यात्मक श्रम-विभाजन संरचना के आकारिकीय विभेदन के साथ संबंधित होता है।

हाइड्रा का क्रम-विकास—हाइड्रा एक पौलिप है और इसमें कोई मेडुसा अवस्था नहीं होती। लेकिन पूर्वजी नाइडेरियन मेडुसाई था और हाइड्रोज़ोअनों में मेडुसा अवस्था के दमन होने की प्रवृत्ति रही है। इनके पौलिप में लार्वाई अथवा बाल अवस्था का परिवर्धन एवं उसके क्रम-विकासीय रूप में कायम रहने का परिचय मिलता है, मेडुसा का जो कि मूलतः स्वच्छंद तैरने वाला था धीरे-धीरे दमन होता गया और अंत में वह पूरी तरह समाप्त हो गया। हाइड्रा में उस अंतिम अवस्था का चित्र मिलता है जिसमें मेडुसाई अवस्था पूरी तरह समाप्त हो चुकी है, और लैंगिक जनन के वास्ते युग्मक पौलिप के एक्टोडर्म में उत्पन्न होते हैं, यह लैंगिक जनन का कार्य पौलिप ने अपने ऊपर ले लिया है। लेकिन हाइड्रा कॉलोनियों से विकसित नहीं हुए हैं, ये उन हाइड्रोज़ोअनों से उत्पन्न हुए हैं जिनमें पौलिप एकल हुआ करते थे और मूलतः उनसे स्वच्छंद-तैरने वाले मेडुसा उत्पन्न हुआ करते थे।

2. ओबीलिया जेनिकुलैटा

(Obelia geniculata)

ओबीलिया हाइड्रोज़ोआ क्लास में आता है। **हाइड्रा** एक एकाकी अवस्था बनाए रखने के लक्षण में विचित्र है, लेकिन **ओबीलिया** में एक छोटी विशाखित कॉलोनी होती है, यह विशाखित व्यवस्था मुकुलों के बनने से पैदा होती है जो टूट कर अलग नहीं होते जाते, यह कॉलोनी समुद्री घासपात, पत्थरों और लकड़ी के पोतघाटों की सतह पर चिपकी रहती है। **ओबीलिया** संसार के सभी समुद्रों में पाया जाता है और एक हल्की-भूरी पौधे-जैसी फ़र बनाता है। प्रत्येक कॉलोनी में एक क्षैतिज धागे-जैसी जड़ होती है जिसे **हाइड्रोराइज़ा** (hydrorhiza) कहते हैं, यह किसी घासपात से चिपकी रहती है, इसमें से लगभग एक इंच लंबी एक खड़ी विशाखित तने-जैसी रचना निकली होती है जिसे **हाइड्रोकौलस** (hydrocaulus) कहते हैं। हाइड्रोराइज़ा और हाइड्रोकौलस खोखली नलिकाएं होती हैं।

हाइड्रोकौलस पर ज़ूऑइड अथवा **पौलिप** दोनों पार्श्वों पर एक साइमोज़ (cymose) व्यवस्था में निकले होते हैं। मुख्य शाखाओं के वृद्धिशील सिरों पर अपरिपक्व मुद्गराकार पौलिप होते हैं। प्रत्येक पौलिप का एक वृंत और एक अंतिम शीर्ष होता है जिसे **हाइड्रैंथ** (hydranth) कहते हैं। हाइड्रैंथ अशन (आहार ग्रहण) करने वाले पौलिप होते हैं। ये सूक्ष्म जंतुओं और लार्वाओं को पकड़ कर
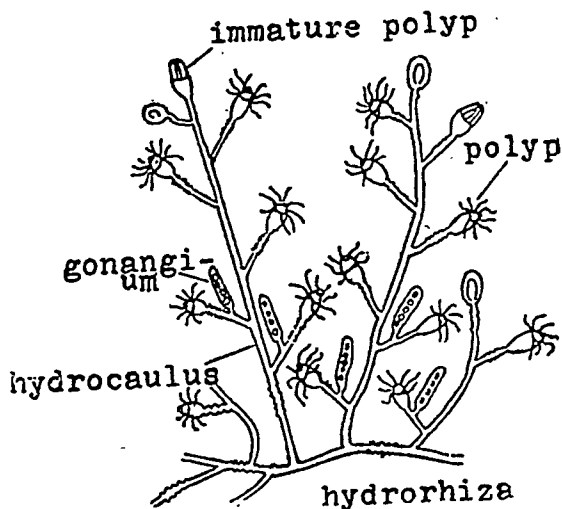
चित्र 112—**ओबीलिया जेनिकुलैटा** की कॉलोनी।

Immature, अपरिपक्व ; polyp, पौलिप ; gonangium, गोनैंजियम ; hydrocaulus, हाइड्रोकौलस ; hydrorhiza, हाइड्रोराइज़ा।

खाते हैं। हाइड्रोकौलस के आधार की ओर पौलिपों के कक्षों (axils) में जनन-पौलिप होते हैं जिन्हें **ब्लास्टोस्टाइल** (blastostyle) कहते हैं। पौलिप, उनके नलिकाकार संयोजन तथा ब्लास्टोस्टाइल तीन परतों एक्टोडर्म, मीज़ोग्लीया तथा एंडोडर्म के बने होते हैं, इन परतों को एक साथ मिलाकर **सीनोसार्क** (coenosarc) कहते हैं। इसके भीतर की गुहा को **आंत्र** (enteron) कहते हैं जो सभी सदस्यों में अविच्छिन्न और समान होती है, इस आंत्र के ही द्वारा भोजन, जो कि घोल की अवस्था में होता है, वितरित होता है। पूरी कॉलोनी पर बाहर एक एक्टोडर्म द्वारा स्रावित दृढ़, पीला काइटिन होता है, इस आवरण को **पेरिसार्क** (perisarc) कहते हैं। यह पेरिसार्क बाह्यकंकाल है जो हाइड्रोराइज़ा, हाइड्रोकौलसों तथा उनकी शाखाओं को ढके रहता है और प्रत्येक पौलिप के आधार पर यह एक स्वच्छ वाइन-ग्लास की आकृति का **हाइड्रोथीका** (hydrotheca) बनाता है। हाइड्रोथीका में उसके आधार पर एक आर-पार बना हुआ शेल्फ़ होता है जो हाइड्रैंथ को अपने ऊपर टिकाए रखता है, और वह हाइड्रैंथ सिकुड़ कर हाइड्रोथीका के भीतर सिमट सकता है। ब्लास्टोस्टाइल के इर्द-गिर्द बाहर के पेरिसार्क को **गोनोथीका** (gonotheca) कहते हैं, ब्लास्टोस्टाइल और गोनोथीका **दोनों को** मिलाकर **गोनैंजियम** (gonan-

gium) कहते हैं। पेरिसार्क एक बाह्यकंकाल है, शुरू में यह सीनोसार्क के साथ मिला रहता है लेकिन मोटा होने पर यह पृथक् हो जाता है और सीनोसार्क के साथ केवल
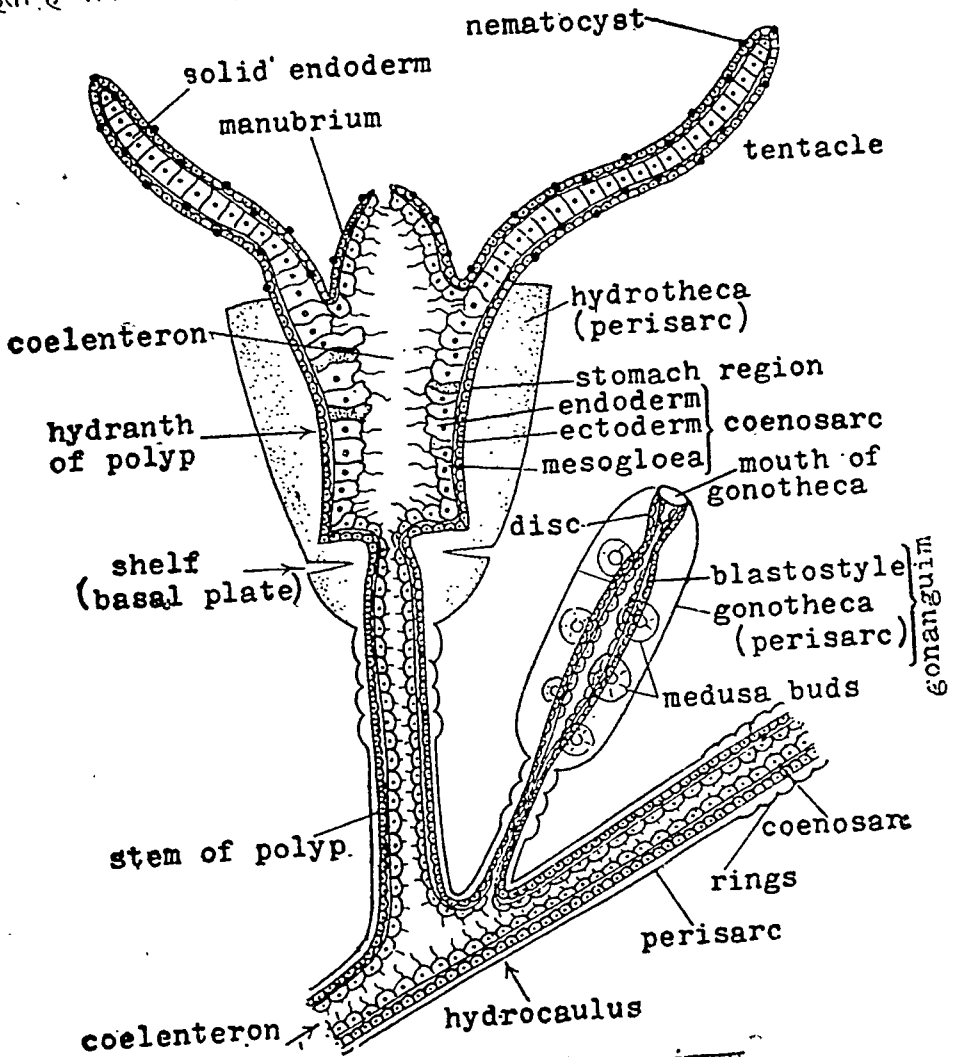
चित्र 113—**ओबीलिया** की ऊतक-संरचना

Solid endoderm, ठोस एंडोडर्म ; nematocyst, नीमैटोसिस्ट ; manubrium, मैनुब्रियम; tentacle, स्पर्शक; coelenteron, सीलेंटेरॉन ; hydrotheca (perisarc), हाइड्रोथीका (पेरिसार्क) ; stomach region, जठर प्रदेश ; endoderm, एंडोडर्म ; ectoderm, एक्टोडर्म ; mesogloea मीजोग्लीया ; coenosarc, सीनोसार्क ; mouth of gonotheca, गोनोथीका का मुंह ; disc, डिस्क ; blastostyle, ब्लास्टोस्टाइल ; gonotheca (perisarc), गोनोथीका (पेरिसार्क) ; gonangium, गोनैंजियम ; medusa buds, मेडुसा मुकुल ; rings, वलय ; hydrocaulus, हाइड्रोकौलस ; stem of polyp, पौलिप का वृंत ; shelf (basal plate), शेल्फ़ (आधारीय प्लेट) ; hydranth of polyp, पौलिप का हाइड्रैंथ ।

थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोड़कर सूक्ष्म प्रवर्धों द्वारा जुड़ा रहता है और इन स्थानों पर इसमें वलय पड़ जाते हैं जिसके कारण मुड़ सकना संभव हो जाता है। पौलिप हाइड्रा-जैसे होते हैं, मुक्त सिरे पर एक मुख होता है जो एक शंक्वाकार **मैनुब्रियम** (manubrium) अथवा हाइपोस्टोम के ऊपर बना होता है, यह हाइपोस्टोम हाइड्रैंथ की लम्बाई का लगभग एक-तिहाई होता है, मैनुब्रियम के आधार पर 24 से 30 ठोस स्पर्शकों का एक घेरा बना होता है, मैनुब्रियम के नीचे पौलिप का जठर प्रदेश होता है। मुद्गराकार ब्लास्टोस्टाइल भी सीनोसार्क का बना होता है, इसमें न कोई मुख होता है और न कोई स्पर्शक लेकिन इसका अंतिम सिरा एक फूली हुई **डिस्क** के रूप में बना होता है, ब्लास्टोस्टाइल के इर्द-गिर्द बने गोनोथीका में एक अंतस्थ मुख होता है। ब्लास्टोस्टाइल पर अनेक मुकुल होते हैं जिन्हें **मेडुसा मुकुल** (medusa buds) कहते हैं अथवा **गोनोफोर** (gonophore) कहते हैं। यही मुकुल अथवा गोनोफ़ोर अन्त में **मेडुसा** बन जाते हैं जो गोनोथीका के मुख में से होकर बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार **ओबीलिया** एक **त्रिरूपी कालोनी** (trimorphic colony) है जिसमें पोषण-पौलिप अर्थात गैस्ट्रोज़ुऑइड, ब्लास्टोस्टाइल और मेडुसा मुकुल होते हैं।

ऊतक-संरचना (Histology)—पौलिपों, ब्लास्टोस्टाइलों, मेडुसा-मुकुलों, हाइड्रोकौलसों तथा हाइड्रोराइज़ा में एक बाहरी परत एक्टोडर्म की तथा एक भीतरी परत एंडोडर्म की होती है, इन दोनों के बीच में एक पतला पारदर्शक मीज़ोग्लीया होता है, ये सब परतें मिलकर **सीनोसार्क** बनाती हैं। यह सीनोसार्क नरम और नलिकाकार होता है, अविच्छिन्न गुदा आंत्र अथवा जठर वाही गुहा होती है। आंत्र में एक तरल होता है और उसका अस्तर कशाभयुक्त होता है। हाइड्रैंथों के तालबद्ध संकुचनों से एक धारा उत्पन्न होती है जो कुछ पौलिपों द्वारा प्राप्त भोजन का कॉलोनी के उन भागों तक वितरण करती है जिनमें अशन (आहार ग्रहण) नहीं हो रहा होता। पौलिपों के स्पर्शक़ आंत्रविहीन और ठोस होते हैं, उनमें एक्टोडर्म की परत के भीतर मोटी दीवारों वाली रिक्तिकामय एंडोडर्म कोशिकाओं का एक एक-स्तरी केन्द्र भाग होता है।

एक्टोडर्म में लम्बी शंक्वाकार एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाएं होती हैं, इनके भीतरी सिरे पेशीय प्रवर्धों के रूप में निकले होते हैं जो अनुदैर्घ्य रूप में फैले होते हैं। एक्टोडर्म की परत में बहुत थोड़ी **अंतराली कोशिकाएं**, कुछ विशाखित **तंत्रिका कोशिकाएं** और **नीमैटोसिस्टों** से युक्त **नाइडोब्लास्ट** होते हैं। नीमैटोसिस्ट केवल स्पर्शकों और मैनुब्रियम पर ही प्रचुर होते हैं। नाइडोब्लास्ट हाइड्रैंथ के आधारीय भाग में और सीनोसार्क में पाए जाते हैं, इनमें नीमैटोसिस्टों का निर्माण होता है और ये सक्रिय रूप में चलकर अपनी अंतिम स्थिति में पहुंच जाते हैं। **ओबीलिया** में केवल एक प्रकार के नीमैटोसिस्ट पाए जाते हैं जिन्हें **आधारशूकी आइसोराइज़ा** (basitrichous isorhiza) कहते हैं, इनमें कैप्सूल अंडाकार होता है, हत्था नहीं होता, धागा सिरे पर खुला होता है और आधार पर कांटे बने होते हैं।

एंडोडर्म में लम्बी करिगकीय एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाएं होती हैं, इनके पेशीय पदार्थ बाहर को रुख किये रहते हैं और वृत्ताकार होते हैं। एंडोडर्म कोशिकाओं में कशाभ होते हैं जो आंत्र में एक धारा पैदा कर देते हैं, इनमें आहार के परिग्रहण के वास्ते कूटपाद भी बन सकते हैं। स्पर्शकों के एंडोडर्म में मोटी दीवारों से युक्त घनाकार रिक्तिकायुक्त कोशिकाएं होती हैं। एंडोडर्म परत में **तंत्रिका कोशिकाएं** तथा मुद्गराकार **ग्रंथि कोशिकाएं** होती हैं जिनसे पाचन एन्ज़ाइम निकलते हैं। **मीज़ोग्लीया** एक पतला जेली-जैसा पदार्थ होता है जिसमें कोई संरचना अथवा कोशिकाएं नहीं पाई जातीं। ब्लास्टोस्टाइल में उसी प्रकार की कोशिकाएं पाई जाती हैं जैसी हाइड्रैंथ में। मीज़ोग्लीया की दोनों दिशाओं में एक-एक **तंत्रिका-जाल** होता है जो तंत्रिका-कोशिकाओं और उनके तंतुओं का बना होता है, दोनों तंत्रिका-जाल परस्पर संयोजित होते हैं।
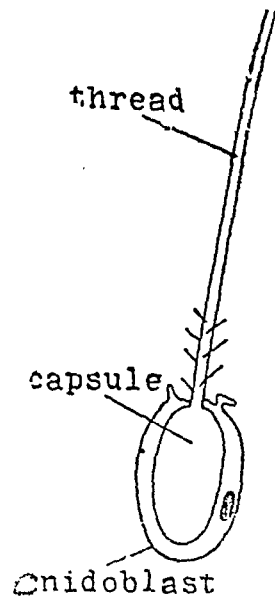
चित्र 114—आधारशूकी आइसोराइज़ा। Thread, धागा; capsule, कैप्सूल; cnidoblast, नाइडोब्लास्ट।

मेडुसा (Medusa)[1]—मेडुसा एक रूपांतरित ज़ूऑइड होता है जो ब्लास्टोस्टाइल के सीनोसार्क से एक खोखले मुकुल के रूप में निकलता है। मेडुसा वसंत और ग्रीष्म में बनते हैं। मेडुसा स्वच्छंद रूप में सतही जल में तैरता रहता है, यह तश्तरी की आकार का होता है, यह अपनी उत्तल सतह के मध्य के द्वारा ब्लास्टोस्टाइल से जुड़ा होता है, पूर्ण विकसित हो जाने के बाद यह टूट कर मुक्त हो जाता है और गोनोथीका के मुख में बाहर निकल आता है।[2] मेडुसा वृत्ताकार होता है, इसकी उत्तल बाहरी सतह **बाह्यछत्र** (exumbrella) दिशा होती है और भीतरी अवतल सतह को **उपछत्र** (sub-umbrella) कहते हैं।[3] उपछत्र के केन्द्र से एक छोटा उभरा हुआ **मैनुब्रियम** निकला होता है, इसके सिरे पर एक वर्गाकार मुख होता है जिसके चारों ओर चार **मुख पालि** (oral lobe) होते हैं। मुख मैनुब्रियम के भीतर एक आंत्र-गुहा में खुलता है। आंत्र गुहा से चार **अरीय नालें** (radial canals) निकलती हैं जो कि कोमल और सिलियायुक्त नलिकाएं होती हैं, ये **घंटिका** (bell) के सीमांत तक पहुंचतीं और सीमांत के पास-पास चलते जाने वाली एक सिलियायुक्त **वृत्ताकार नाल** में आ मिलती हैं। आंत्र गुहा और नाल **आंत्र** का प्रतिदर्श हैं जो आहार का वितरण करती है। अरीय नालों के मध्य से बाहर को उभरे हुए चार **गोनड** होते हैं। चूंकि नर-मादा अलग-अलग होते हैं इसलिए ये या तो चार वृषण होते हैं या चार अंडाशय, ये रूपांतरित उपछत्र एक्टोडर्म के क्षेत्रांश होते हैं। गोनोथीका में से मेडुसा के बाहर निकल जाने के बाद गोनड परिपक्व होते हैं।

घंटिका का सीमांत भीतर की ओर को एक पतले वलन के रूप में निकला होता है जिसे **वीलम** (velum) कहते हैं। वीलम हाइड्रोज़ोअन मेडुसाओं की विशिष्टता है लेकिन **ओबीलिया** में यह अस्पष्ट होता है। वीलम से युक्त मेडुसाओं को **क्रैस्पीडोट** (craspedote) कहते हैं, और जिनमें वीलम नहीं होता उन्हें **एक्रैस्पीडोट** (acraspedote) कहते हैं (साइफ़ोज़ोआ)। घंटिका के सीमांत से निकले हुए छोटे-

चित्र 115—**ओबीलिया** का मेडुसा (उपछत्र दृश्य), *B*—**मैनुब्रियम**। vesicle, आशय ; tentacles, स्पर्शक ; statocyst, स्टैटोसिस्ट ; velum, वीलम ; radial canal, अरीय नाल ; circular canal, वृत्ताकार नाल ; ocelli, नेत्रक ; mouth and manubrium, मुख तथा मैनुब्रियम ; oral lobe, मुख पालि।
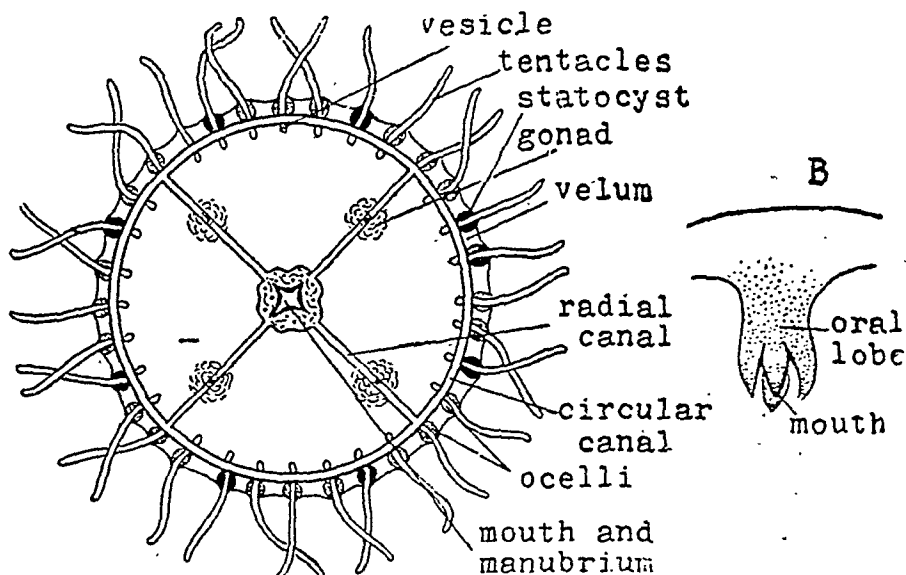
छोटे बहुसंख्यक ठोस स्पर्शक नीचे को लटके रहते हैं। स्पर्शकों के आधार फूले हुए होते हैं जिसका कारण वहां पर अंतराली कोशिकाओं का एकत्रित हो जाना है, ये अंतराली कोशिकाएं अन्य स्थानों पर लगभग अविद्यमान होती हैं। स्पर्शकों के आधारीय उत्फूलनों को **आशय** (vesicles) अथवा बल्ब कहते हैं, इन बल्बों में नीमैटोसिस्टों का लगातार निर्माण होता ही रहता है जहां से वे स्पर्शकों में पहुँचते हैं। पाचन-एन्ज़ाइमों का स्राव बल्बों के एंडोडर्म से होता है। बल्बों के समीप एक्टोडर्म में वर्णक कणिकाएं और तंत्रिका-कोशिकाएं होती हैं। इन्हें **नेत्रक** (ocelli) कहा जाता है, कुछ लोग इन्हें प्रकाश के प्रति संवेदी बताते हैं लेकिन अधिक संभावना उनके नेत्रक न होने की है, वर्णक-कोशिकाएं इकट्ठा हो गया उत्सर्गी पदार्थ होती हैं। प्रत्येक स्पर्शक के बल्ब के ऊपर तरल से भरा एक छोटा **आशय** (vesicle) होता है। नीमैटोसिस्ट केवल मैनुब्रियम और स्पर्शकों तक सीमित होते हैं, लेकिन थोड़ी संख्या में घंटिका के सीमांत पर भी पाए जा सकते हैं। आठ सीमांतीय संवेदी अंग

होते हैं जिन्हें **स्टैटोसिस्ट** (statocyst) अथवा अश्मपुटियां (lithocysts) कहते हैं, ये नियमित दूरियों पर बने होते हैं और आठ स्पर्शकों के बल्बों की उपछत्र दिशा से जुड़े होते हैं, इनकी उत्पत्ति चलन स्वभाव के प्रतिक्रिया स्वरूप होती है। स्टैटोसिस्ट एक छोटा, गोल, बंद आशय होता है, जिसका अस्तर एक्टोडर्म का बना होता है, उसके भीतर एक तरल होता है, तरल में कैल्सियमी कण पाए जाते हैं जिन्हें **ऑटोलिथ** (otolith) कहते हैं। ये एक विशिष्ट कोशिका में पड़े होते हैं जिसे **अश्मकोशिका** (lithocyte) का नाम दिया जाता है। अस्तर में कुछ संवेदी कोशिकाएं होती हैं जिनमें से पतले संवेदी प्रवर्ध निकले होते हैं, इन प्रवर्धों पर ऑटोलिथ एक उद्दीपन पैदा करते हैं जो तंत्रिकाओं द्वारा पेशियों तक संचरित हो जाता है ; पेशियां मेडुसा की सर्प-जैसी तैरने वाली गतियों का समन्वय करती हैं, और अगर कभी मेडुसा एक ओर को झुक जाता है तो पेशियों में संकुचित होकर मेडुसा घंटिका सीधी स्थिति में आ जाती है। इस प्रकार स्टैटोसिस्टों का कार्य संतुलन प्रदान करना है।

एक्टोडर्म घंटिका को चारों ओर ढके रहता है, इसकी एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाओं में से पेशी प्रवर्ध निकले होते हैं जो अनुदैर्ध्य रूप में मैनुब्रियम तथा स्पर्शकों में फैले होते हैं। उपछत्र में एक्टोडर्म के पेशीय प्रवर्ध एपिथीलियमी भाग के अनुपात में इतने ज्यादा बड़े होते हैं कि वे लगभग पेशियों का ही रूप ले लेते हैं। पेशी प्रवर्ध उपछत्र में एक रेखित वृत्ताकार पेशी और कुछ अरीय पेशियां बनाते हैं; इनसे चलन गतियां उत्पन्न होती हैं। बाह्यछत्र के एक्टोडर्म में पेशियायन (musculature) नहीं होता।
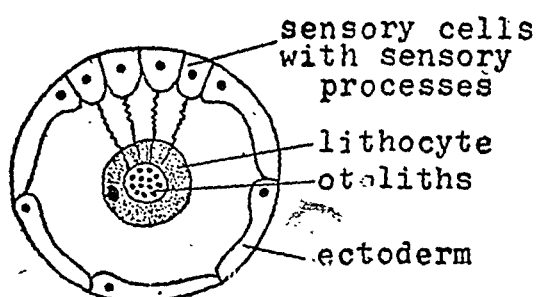
चित्र 116—मेडुसा का स्टैटोसिस्ट। Sensory cells with sensory processes, संवेदी प्रवर्धों से युक्त संवेदी कोशिकाएं ; lithocyte, अश्मकोशिका ; otoliths, ऑटोलिथ ; ectoderm, एक्टोडर्म।

एंडोडर्म का अस्तर आंत्र गुहा तथा अरीय एवं वृत्ताकार नालों में पाया जाता है। एण्डोडर्म कोशिकाओं में पेशी प्रवर्ध नहीं होते, वे सिलियायुक्त एपिथीलियमी कोशिकाएं होती हैं, वे पाचन का कार्य करती हैं। घंटिका की दो एक्टोडर्म परतों के बीच में **एंडोडर्म पटलिका** (endoderm lamella) होती है, केवल वही स्थान इससे रहित होता है जहां आंत्र मौजूद होता है। एंडोडर्म पटलिका की उत्पत्ति ऊपरी एवं निचली एंडोडर्म परतों के समेकन के कारण होती है, यह समेकन

केवल आंत्र के प्रदेश को छोड़कर अन्यत्र हर स्थान पर हो गया होता है। एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच में एक मोटा **मीज़ोग्लीया** होता है जो मेडुसा की घंटिका, मैनुब्रियम तथा स्पर्शकों का अधिकतर भाग बनाता है। वीलम में एक्टोडर्म की दोहरी परत और उनके बीच में एक मोटा मीज़ोग्लीया होता है, एंडोडर्म नहीं होता।
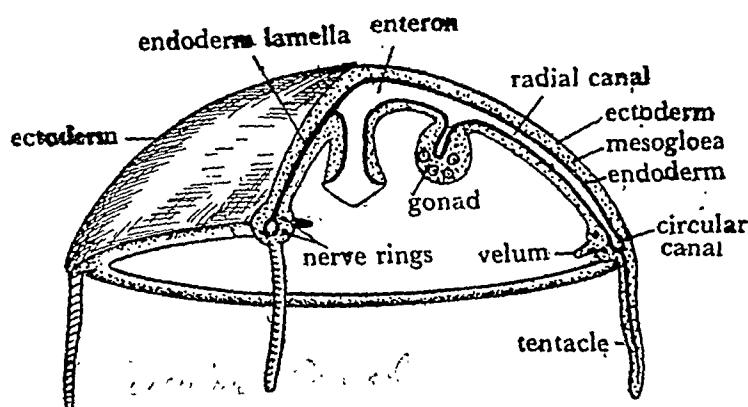
चित्र 117—मेडुसा (छत्र तथा मैनुब्रियम को अंशतः काट दिया गया है) Ectoderm, एक्टोडर्म ; endoderm lamella, एंडोडर्म पटलिका ; enteron, आंत्र ; radial canal, अरीय नाल ; mesogloea, मीज़ोग्लीया; circular canal, वृत्ताकार नाल ; velum, वीलम ; gonad गोनड ; nerve rings, तंत्रिका वलय ; tentacles, स्पर्शक ।

तंत्रिका-तंत्र—मीज़ोग्लीया के दोनों ओर तंत्रिका कोशिकाएं और उनके तंतु एक **तंत्रिका-जाल** बनाते हैं। लेकिन तंत्रिका कोशिकाओं और तंतुओं का विशिष्ट संकेन्द्रण घंटिका के सीमांत पर होता है जहां उनसे दो **तंत्रिका वलय** (nerve ring) बने होते हैं, एक वलय के आधार के ऊपर और दूसरा आधार के नीचे होता है। ऊपर का तंत्रिका वलय उपछत्र के पेशियायन का नियंत्रण करता है।

पौलिप और मेडुसा—पौलिप पोषणी रूप है, यह स्थानबद्ध होता है, कुछ-कुछ सिलिंडराकार और इसकी दोनों परतों के बीच में एक पतला मीज़ोग्लीया होता है, एक मुख होता है जिसके नीचे एक मैनुब्रियम होता है, अनेक ठोस स्पर्शक होते हैं। मेडुसा एक जननिक रूप है, यह एक स्वच्छंद तैरने वाला लैंगिक रूप है जिसका देह गोल तश्तरी जैसा है, जिलेटिनी मीज़ोग्लीया की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि एंडोडर्म परतें खिसक कर एक साथ दो-स्तरी एण्डोडर्म पटलिका के रूप में आ गई हैं, यह व्यवस्था सिर्फ़ आंत्र गुहाओं को छोड़कर शेष सारे शरीर में आ गई है, ठोस स्पर्शक घंटिका के सीमांत पर होते हैं, इसके पेशीय तथा तंत्रिका-तंत्र अधिक विकसित होते हैं और आठ संवेदी अंग होते हैं। लेकिन इन अंतरों के बावजूद पौलिप और मेडुसा समजात होते हैं। यदि पौलिप को मुख-अपमुख अक्ष में छोटा कर दिया जाए और अरीय रूप में उसे फैला कर स्पर्शक क्षेत्र को बाहर की ओर खींचते हुए

एक डिस्क बनाकर उसे उल्टा कर दिया जाए तो एक मेडुसा-जैसा शरीर बन जाएगा (चित्र 118)।
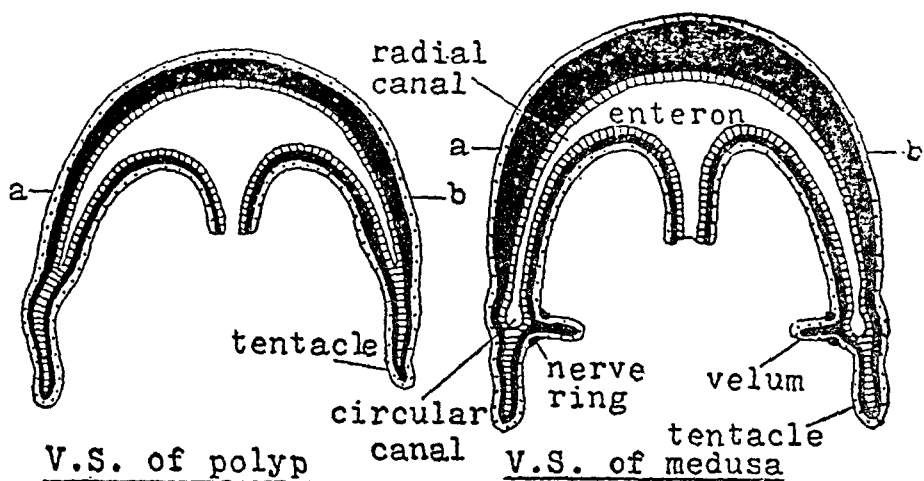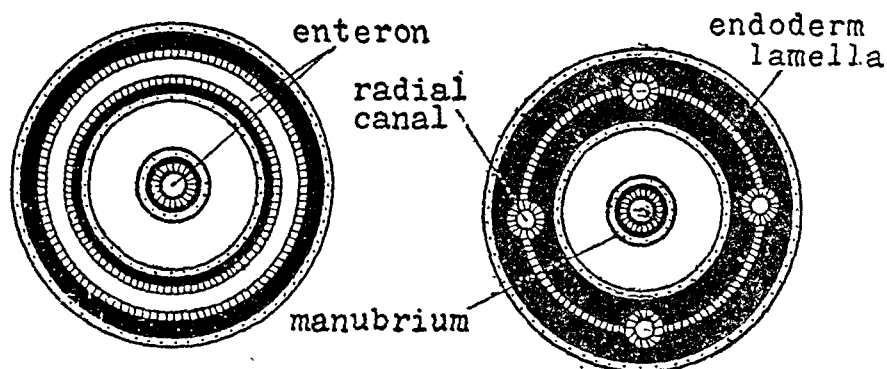
चित्र 118—पौलिप और मेडुसा की तुलना। बिंदुकित भाग=एक्टोडर्म ; रेखित भाग=एंडोडर्म ; काले भाग=मीज़ोग्लीया। V. S. of polyp ; पौलिप का खड़ा सेक्शन ; V. S. of medusa, मेडुसा का खड़ा सेक्शन ; T. S. of polyp along a-b, समतल a-b पर लिया गया पौलिप का सेक्शन ; T.S. medusa along a-b, समतल a-b पर लिया गया मेडुसा का सेक्शन। Radial canal, अरीय नाल ; enteron, आंत्र ; tentacle, स्पर्शक ; circular canal, वृत्ताकार नाल ; nerve ring, तंत्रिका वलय ; velum, वीलम ; endoderm lamella एण्डोडर्म पटलिका ; manubrium, मैनुब्रियम।

हाइड्रा और ओबीलिया—1. हाइड्रा एक एकाकी पौलिप है जब कि ओबीलिया एक त्रिरूपी कॉलोनी है। 2. हाइड्रा में कोई स्वच्छंद तैरने वाली अवस्था नहीं होती, यहां तक कि लार्वा अवस्था भी भ्रूणीय थीका के भीतर बीतती है, जब

कि **ओबीलिया** में स्वच्छंद तैरने वाला मेडुसा होता है। 3. **हाइड्रा** में थोड़ी-सी संख्या में कुछ खोखले स्पर्शक होते हैं और देह के ऊपर एक नरम क्यूटिकल चढ़ा होता है, **ओबीलिया** में अनेक ठोस स्पर्शक होते हैं और देह पर कड़े काइटिनी क्यूटिकल का बाह्यकंकाल बना होता है। 4. **हाइड्रा** में नीमैटोसिस्ट पूरे शरीर पर होते हैं, **ओबीलिया** में वे पौलिप और मेडुसा दोनों में केवल मैनुब्रियम तथा स्पर्शकों पर होते हैं। 5. **हाइड्रा** में अस्थायी गोनड पौलिप पर होते हैं, लेकिन **ओबीलिया** में स्थायी गोनड मेडुसा पर होते हैं।

जनन—1. **अलैंगिक जनन :** जब जल का ताप 20°C से ऊपर होता है तब वे मुकुल जो कॉलोनी में सामान्यत: गोनैंजियमों को बनाते हैं, कॉलोनी से टूटकर स्वच्छंद हो जाते और कहीं पर टिक जाते हैं, मुकुल के निचले सिरे से एक स्टोलन निकल आता है जिससे अलैंगिक विधि द्वारा एक नई कॉलोनी बन जाती है।

2. **अलैंगिक मुकुलन :** ब्लास्टोस्टाइल में से मुकुलन द्वारा बड़ी संख्या में मेडुसा बन जाते हैं (चित्र 119)। ब्लास्टोस्टाइड की गुदा सीनोसार्क को बाहर को
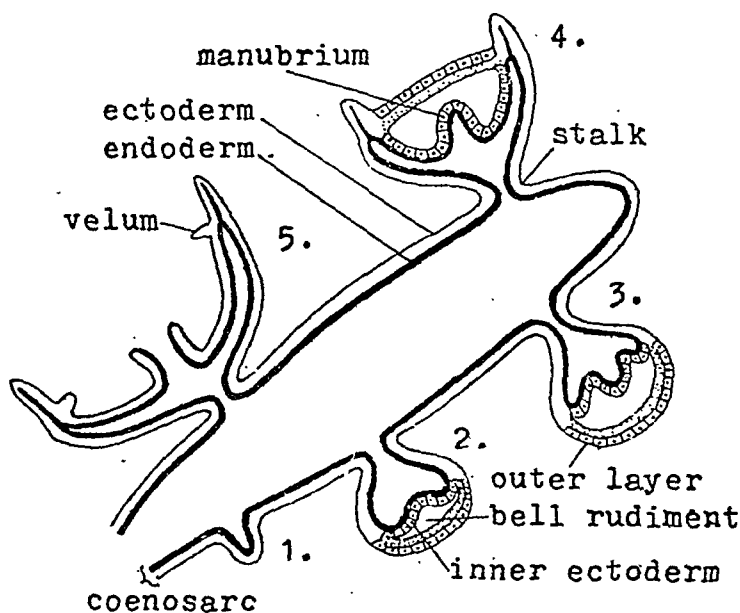
चित्र 119—मेडुसा का परिवर्धन। (1—5 अवस्थाएं हैं)
Manubrium, मैनुब्रियम ; ectoderm, एक्टोडर्म ; endoderm, एंडोडर्म ; stalk, वृंत ; velum, वीलम ; outer layer, बाहरी परत ; bell rudiment, घंटिका-आद्यांग ; inner ectoderm, भीतरी एक्टोडर्म ; coenosarc, सीनोसार्क।

धक्का देती है जिससे एक छोटा उभार अथवा मुकुल बन जाता है। मुकुल बड़ा होता जाता है और उसका सीनोसार्क एक आशय का रूप ले लेता है जो एक संकीर्ण वृंत

के द्वारा ब्लास्टोस्टाइल से जुड़ा रहता है। आशय की गुदा ब्लास्टोस्टाइल के आंत्र के साथ जारी रहती है। आशय का दूरस्थ एक्टोडर्म दो परतों में टूट जाता है, उसके बाद एक्टोडर्म की भीतरी परत में विपाटन होता है जिससे एक गुहा बन जाती है, यह गुहा **घंटिका आद्यांग** (bell rudiment) कहलाती है। इस प्रकार अब एक्टोडर्म की दो परतें घंटिका-आद्यांग के बाहर और एक परत उनके भीतर होती है। घंटिका-आद्यांग की गुहा उपछत्र की आकृति प्राप्त कर लेती है और केन्द्र में एक मैनुब्रियम बन जाता है। घंटिका-आद्यांग को बाहर से घेरने वाली दो एक्टोडर्म परतें अब फूट जातीं और एक सीमांतीय तथा वृत्ताकार शेल्फ़ शेष रह जाते हैं जिसे वीलम कहते हैं। अधिकतर हाइड्रोज़ोअन मेडुसाओं में वीलम में वृद्धि होकर वह बड़ा हो जाता है, लेकिन **ओबीलिया** में यह आकार में घट जाता और अस्पष्ट हो जाता है। मैनुब्रियम में एक मुख बन जाता है, सीमांतीय स्पर्शक बन जाते हैं, वृंत टूट जाता और उसका सूराख बंद हो जाता है, इस प्रकार एक मेडुसा बन जाता और मुक्त हो जाता है, यह गोनोथीका से बाहर निकल जाता है और बाद में उसमें गोनड परिपक्व हो जाते हैं।

3. **लैंगिक जनन :** मेडुसा पृथक् लिंगी होते हैं, उनमें या तो चार वृषण होते हैं या चार अंडाशय जो कि उपछत्र में ठीक अरीय नालों के नीचे स्थित होते हैं। गोनड में एक बाहरी एक्टोडर्म और एक भीतरी एंडोडर्म होता है और इन दोनों परतों के बीच में मीज़ोग्लीया होता है, गोनड में अरीय नाल की एक छोटी विपुटी (diverticulum) होती है। **ओबीलिया** की जनन-कोशिकाएं गोनडों में नहीं उत्पन्न होतीं, वे ब्लास्टोस्टाइल के एक्टोडर्म की अंतराली कोशिकाओं से बनती हैं जहां उन्हें विभिन्न परिपक्व अवस्थाओं में देखा जा सकता है। उसके बाद वे अरीय नालों में होकर गोनडों के एक्टोडर्म में अपनी स्थिति ग्रहण कर लेती हैं। जनन कोशिकाओं के परिपक्व हो जाने पर गोनड फूट जाते हैं और शुक्राणु तथा अंडाणु बाहर जल में को निकल जाते हैं जहां पर निषेचन होता है।

परिवर्धन—युग्मनज में पूर्णभंजी तथा समान विदलन होकर एक एक-स्तरी ब्लास्टुला बन जाता है जिसके भीतर एक ब्लास्टोसील होती है। कुछ कोशिकाएं प्रवास द्वारा ब्लास्टोसील में पहुंच जाती हैं, और अंततः उसे पूरी तरह भर लेती हैं जिससे एक गैस्ट्रुला बन जाता है जिसे **प्लैनुला लार्वा** (planula larva) कहते हैं। प्लैनुला में एक्टोडर्मी कोशिकाओं की एक बाहरी परत होती है जो सिलियायुक्त होती है, और एंडोडर्म कोशिकाओं की एक ठोस केन्द्रीय संहति होती है। थोड़े काल तक स्वच्छंद तैरने वाला जीवन बिताने के बाद यह प्लैनुला कहीं किसी ठोस वस्तु के ऊपर अपने चौड़े सिरे के द्वारा टिक जाता है, एंडोडर्म में परत व्यवस्था बनकर एक आंत्र निकल आती है। मुक्त सिरे पर एक मुख और स्पर्शकों का एक घेरा प्रकट हो जाता है। इस प्रकार एक मामूली पौलिप अथवा **हाइड्रुला** (hydrula) बन जाता है जिसके आधार से एक हाइड्रोराइज़ा की वृद्धि हो जाती है जिसमें से मुकुलन द्वारा एक **ओबीलिया** कॉलोनी बन जाती है।

ओबीलिया के जीवन-वृत्त में देखा जाता है कि कॉलोनी अलैंगिक होती है और पौलिपों का निर्माण अलैंगिक मुकुलन के द्वारा होता है। ब्लास्टोस्टाइलों में अलैंगिक मुकुलन के द्वारा मेडुसा बनते हैं और मेडुसा पुनः अपने ही जैसे और मेडुसा नहीं बनाते बल्कि वे लैंगिक विधि से कॉलोनी बनाते हैं। इस प्रकार
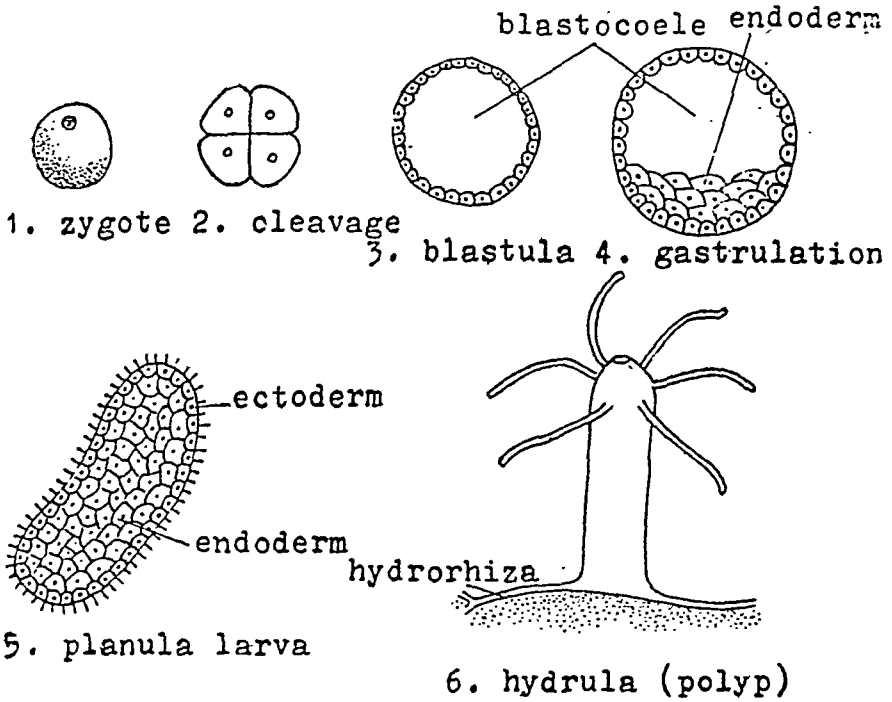
चित्र 120—**ओबीलिया** का परिवर्धन। Zygote, युग्मनज ; cleavage, विदलन ; blastula, ब्लास्टुला ; blastocoele, ब्लास्टोसील ; endoderm, एंडोडर्म ; gastrulation, ग्रैस्टुलाभवन ; ectoderm, एक्टोडर्म ; hydrorhiza, हाइड्रोराइज़ा ; planula larva, प्लैनुला लार्वा ; hydrula (polyp), हाइड्रुला (पौलिप)।

एक अलैंगिक पौलिपी पीढ़ी और एक लैंगिक मेडुसाई पीढ़ी में एकांतर क्रम पाया जाता है। इस घटना को पहले नाइडेरिया में 'पीढ़ी एकांतरण' या **मेटाजेनेसिस** (metagenesis) कहा जाता था जिसका अर्थ है कि जंतु दो स्पष्ट और भिन्न स्वरूपों में पाया जाता है जो जीवन-चक्र के दौरान नियमित रूप में एक दूसरे के आगे-पीछे आते हैं। लेकिन **ओबीलिया** में लैंगिक और अलैंगिक पीढ़ियों का एकांतरण नहीं होता। मेडुसा एक रूपांतरित ज़ूऑइड है जो मुक्त-तैरने वाला होता है ताकि युग्मकों का प्रकीर्णन हो सके, स्थानबद्ध जंतु के लिए यह बहुत आवश्यक है। गोनडों में पाए जाने वाले युग्मक वास्तव में ब्लास्टोस्टाइल में उत्पन्न हुए होते हैं, अतः यह कहना असंभव है कि कौन सी "लैंगिक पीढ़ी" है और कौन सी "अलैंगिक पीढ़ी"। **ओबीलिया** में **बहुरूपता** (polymorphism) मिलती है जिसमें पौलिपों

का कार्य कॉलोनी को अशन कराना है, ब्लास्टोस्टाइलों का कार्य मुकुलन, और मेडुसाओं का कार्य युग्मकों को दूर-दूर पहुंचा देना है। अतः आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार मेटाजेनेसिस नहीं होता, जीवन-चक्र एक जारी रहने वाली प्रक्रिया है जिसमें अंडे से लैंगिक रूप में परिपक्व वयस्क बनता जाता है। जीवन-चक्र इस प्रकार है : अंडा → युग्मनज → प्लैनुला लार्वा → कॉलोनी → लैंगिक मेडुसा।

3. औरीलिया औरिटा (*Aurelia aurita*) (जेली-फ़िश)

क्लास साइफ़ोज़ोआ में वे नाइडेरिया आते हैं जिन्हें आमतौर पर जेली-फ़िश कहते हैं। जीवन-चक्र में मेडुसाई आकृति प्रभावी और अधिक सुस्पष्ट होती । पौलिपी आकृति केवल एक छोटी लार्वा अवस्था होती है। सभी साइफ़ोज़ोआ समुद्री होते हैं और अधिकतर स्वच्छंद तैरने वाले होते हैं; ये उत्तरी ध्रुव महासागर से लेकर उष्ण कटिबंधीय महासागरों तक तटवर्ती जल में रहते हैं।

औरीलिया एक सामान्य जेली-फ़िश है जो सारे विश्व के सागरों में तट के सहारे-सहारे समुद्र की सतह के नज़दीक तैरता रहता है। यह एक जिलेटिनी तश्तरीनुमा

per-radial canal
inter radial canal
circular canal
adradial canal
velarium
marginal lappets and tentaculocyst
gonad
tentacles
oral arm
exhalant groove
gastric filament
sub-genital pit
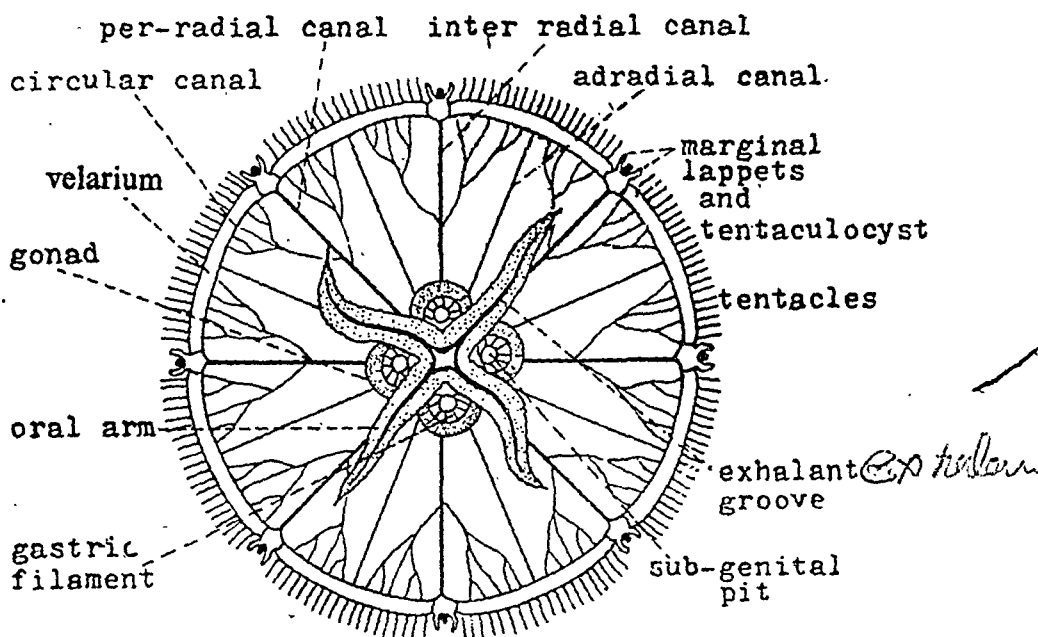
चित्र 121. औरीलिया औरिटा (उपछत्र दृश्य)।

Per-radial canal, प्र-अरीय नाल; inter-radial canal, अंतरा-अरीय नाल; adradial canal, अभि-अरीय नाल; marginal lappets and tentaculocyst, सीमांतीय लैपेट तथा टेंटैकुलोसिस्ट; tentacles, स्पर्शक; exhalant groove, बहिर्वाही खांच; sub-genital pit, उपजनन गर्त; gastric filament, जठर सूत्र; oral arm, मुख बाहु; gonad, गोनड; velarium, वीलैरियम; circular canal, वृत्तीय नाल।

मेडुसा होता है, व्यास लगभग चार इंच का होता है, हालांकि इसी स्पीशीज़ के अधिक बड़े नमूने अटलांटिक के तट पर मिलते हैं। इसमें एक मामूली-सा उत्तल वाह्यछत्र होता है और एक मामूली-सा अवतल उपछत्र। यह वृत्ताकार होता है लेकिन इसके सीमांत में कटाव बने होते हैं जो कि आठ जोड़ी **सीमांतीय लैपेटों** (marginal lappets) द्वारा बनते हैं। पूरे सीमांत में छोटे-छोटे खोखले वहुसंख्यक स्पर्शकों की झालर बनी होती है। घंटिका की उपछत्र दिशा में केन्द्र पर एक सुविकसित किन्तु छोटा मैनुब्रियम होता है जिस पर एक वर्गाकार मुख बना होता है। मुख के कोने लंबे होकर चार लंबे झालर-जैसे होठ अथवा **मुख-वाहु** (oral arms) होते हैं, प्रत्येक मुख-वाहु की निचली दिशा में एक सिलियायुक्त **वहिर्वाही खांच** (exhalant groove) होती है। मुख वाहुओं पर बड़ी संख्या में नीमैटोसिस्ट भरे होते हैं जोकि घंटिका की दोनों सतहों और सीमांतीय स्पर्शकों पर भी पाए जाते हैं। नीमैटोसिस्ट दो प्रकार के होते हैं, (क) **अशूकी आइसोराइज़ों** (atrichous isorhizas) में लंबा कैप्सूल होता है, हत्था नहीं होता, धागे पर कांटे नहीं होते और सिरे पर खुला होता है (चित्र 105 C), (ख) **विषमशूकी सूक्ष्माधार यूरीटीलों** (heterotrichous microbasic euryteles) में छोटा कैप्सूल होता है, हत्था और उसका दूरस्थ भाग फूला हुआ होता है, फूले भाग में बड़े-छोटे कांटे होते हैं, धागे में छोटे कांटे बने होते और वह सिरे पर खुला होता है। मुख से भीतर को एक छोटी **ग्रसिका** (gullet) निकलती है जो एक बड़े आयताकार **जठर** से जा मिलती है, जठर से पार्श्व दिशाओं में चार **जठर कोष्ठ** (gastric pouches) निकले होते हैं जो अंतरा-अरीय स्थिति में होते हैं। मुख के चार कोनों पर एक दूसरे से समकोण बनाते हुए चार **प्र-अरीय नालें** (per-radial canals) होती हैं, इनके बीच-बीच में चार अंतरा-अरीय नालें (inter-radial canals) होती हैं, ये आठों नालें खूब विशाखित होती हैं और वे सीमांतीय लैपेटों में समाप्त होती हैं। प्र-अरीय और अंतरा-अरीय नालों के अध-बीच में आठ अशाखित **अभि-अरीय नालें** (adradial canals) होती हैं जिनमें से दो-दो नालें एक-एक जठर कोष्ठ से निकलती हैं। सभी सोलहों नालें एक सीमांतीय **वत्ताकार**

चित्र 122. विषमशूक सूक्ष्माधार यूरीटील नीमैटोसिस्ट।
Thread, धागा; butt, हत्था; unequal spines, असमान कांटे; capsule, कैप्सूल; cnidoblast, नाइडोब्लास्ट।

नाल (circular canal) में आकर गिरती हैं। ग्रसिका, जठर कोष्ठों से युक्त जठर, और सारी नालें, ये सब एक साथ मिलकर एक आंत्र गुहा बनाते हैं जिसका अस्तर सिलियायुक्त एण्डोडर्म कोशिकाओं का बना होता है। सिलिया के स्पंदन से द्रवों का परिसंचरण होता है, मुख के भीतर खींचकर लाया गया जल ग्रसिका में पहुंच जाता है, उसके बाद यह जल जठर और जठर-कोष्ठों में, फिर अभि-अरीय नालों से होता हुआ वृत्ताकार नाल में और वहाँ से लौटकर यह विशाखित प्र-अरीय और अंतरा-अरीय नालों में से होता हुआ मुख बाहुओं की बहिर्वाही खांचों तक आता है। यह धारा लगभग 20 मिनट में एक पूरा परिसंचरण कर लेती है, यह अपने साथ भीतर को आहार ले जाती और श्वसन में मदद करती है। इस प्रकार आंत्र एक जठर-वाही गुहा होती है। घंटिका के केन्द्र में मुख-बाहुओं के बीच में चार गुलाबी से रंग के **गोनड** होते हैं, गोनड शुरू में घोड़े की नाल की आकृति के होते हैं लेकिन बाद में वे गोल बन जाते हैं। गोनड आंतरिक होते हैं, वे जठर कोष्ठों में पड़े होते हैं लेकिन बाहर से भी दिखाई देते हैं। हर एक गोनड के बीच उपछत्र में गढ़ा होता है जिसे
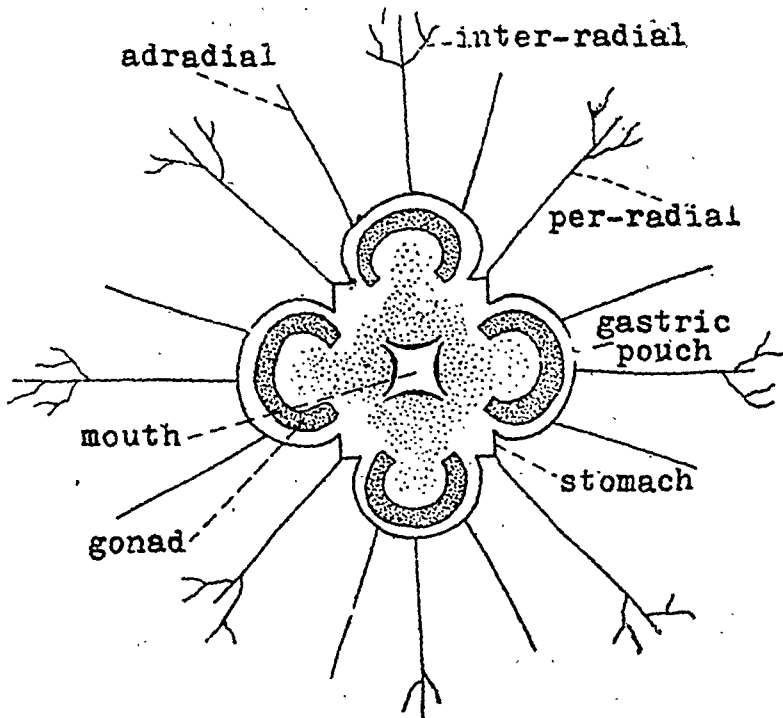
चित्र 123. **औरीलिया** की आंत्र।

Adrial, अभि-अरीय; inter-radial, अंतरा-अरीय; per-radial, प्र-अरीय; gastric pouch, जठर कोष्ठ; mouth, मुख; gonad, गोनड; stomach, जठर।

उपजनन-गर्त (sub-genital pit) कहते हैं, ये गढ़े अंतरा-अरीय होते हैं, इनके कार्य की जानकारी नहीं है। प्रत्येक गोनड के भीतरी बार्डर पर **जठर-सूत्र** (gastric

filament) नामक कोमल धागों की एक पंक्ति बनी होती है, ये सूत्र भी आंतरिक होते हैं और जठर कोष्ठों में को निकले होते हैं। जठर सूत्रों में भी नीमैटोसिस्ट बने होते हैं। उपछत्र दिशा पर घंटिका के सीमांत में एक अस्पष्ट किनारा बना होता है जिसे **वीलैरियम** (velarium) अथवा **कूटवीलम** (pseudovelum) कहते हैं; इसमें उस प्रकार की न तो कोई पेशियाँ होती हैं और न ही कोई तंत्रिका वलय होता है जैसे कि अन्यथा हाइड्रोज़ोअन मेडुसों में पाए जाते हैं, लेकिन इसमें एण्डोडर्मी नालें होती हैं।

ऊतक-संरचना—कोशिकाओं की व्यवस्था उसी प्रकार होती है जैसे कि **ओबीलिया** के मेडुसा में। **एक्टोडर्म** घंटिका को चारों ओर से ढके रहता है, इसमें स्तम्भाकार एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाएँ, संवेदी कोशिकाएँ, तंत्रिका कोशिकाएँ और ग्रंथि-कोशिकाएँ होती हैं जोकि श्लेष्मा बनाती हैं। एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाओं में एपिथीलियम भाग बहुत ह्रासित हो गया होता है और उपछत्र दिशा पर यह पूरी तरह अविद्यमान होता है, पेशीय भाग परिवर्तित होकर **रेखित पेशी तंतु** बन जाते हैं। पेशियाँ पूर्णतः एक्टोडर्मी होती हैं, इनमें तीव्र और तालबद्ध संकुचन हो सकते हैं जिनसे **औरीलिया** तैर पाता है। एक्टोडर्मी पेशी-तन्तु स्पर्शकों, मैनुब्रियम तथा
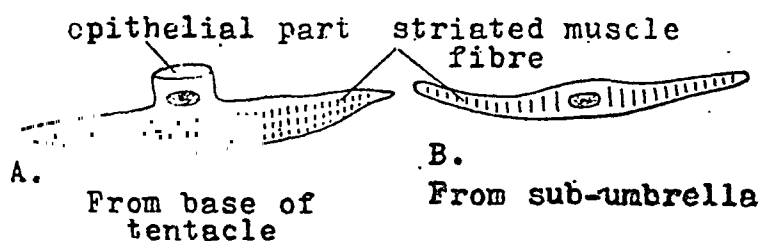
चित्र 124. एक्टोडर्मी एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाएँ।
Epithelial part, एपिथीलियम भाग; striated muscle fibre, रेखित पेशी तन्तु; from base of tentacle, स्पर्शक के आधार से; from sub-umbralla, उपछत्र से।

मुख-बाहुओं में अनुदैर्घ्य होते हैं लेकिन घंटिका में वे अरीय होते हैं। उपछत्र में पेशी-तन्तु एक शक्तिशाली, चौड़ी वृत्ताकार पेशी पट्टी बनाते हैं जिसे **किरीटी पेशी** (coronal muscle) कहते हैं, यह चलन में योगदान देती है। **एंडोडर्म** में स्तम्भाकार सिलियायुक्त एपिथीलियमी कोशिकाएँ होती हैं। इनमें पेशी प्रवर्ध नहीं होते, एण्डोडर्म आंत्र का अस्तर बनाता है। जठर सूत्रों पर एण्डोडर्म का आवरण होता है और भीतर मीज़ोग्लीया होता है। **मीज़ोग्लीया** की मात्रा अधिक होती है और यह एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के बीच घंटिका को भरे रहता है। मीज़ोग्लीया में **अमीबोसाइट** होते हैं और इसमें बहुसंख्यक विशाखित तन्तु आर-पार फैले होते हैं, ये स्वच्छंद रूप में घूमते-फिरते और आहार एवं अपशिष्ट पदार्थ को लाते-ले जाते रहते हैं। इस प्रकार के मीज़ोग्लीया

को कॉलेन्काइमा (collenchyma) कहते हैं और यह हाइड्रोजोअन मेडुसाओं से भिन्न होता है।
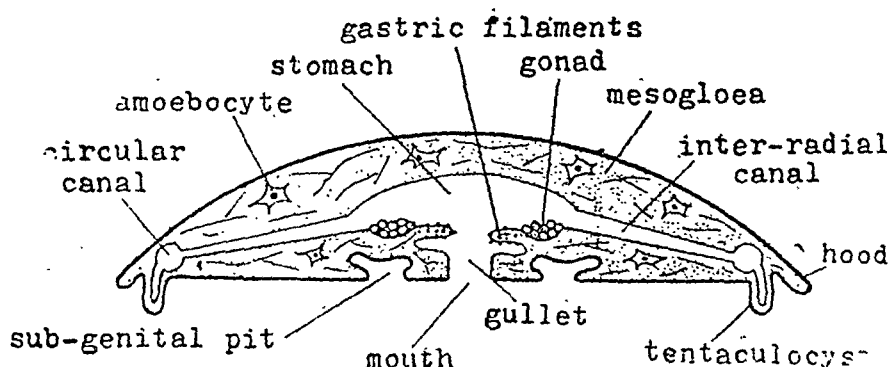
चित्र 125. **औरीलिया** का खड़ा सेक्शन।

Gastric filaments, जठर सूत्र; gonad, गोनड; mesogloea मीज़ोग्लीया; inter-radial canal, अंतरा-अरीय नाल; hood, हुड; tentaculocyst, टेंटैकुलोसिस्ट; gullet, ग्रसिका; mouth. मुख; subgenital pit, उपजनन गर्त; circular canal, वृत्ताकार नाल; amoebocyte, अमीबोसाइट; stomach, जठर।

परिसंचरण—आंत्र के एण्डोडर्मी अस्तर के सिलिया के स्पंदन से द्रवों का परिसंचरण पैदा होता है; जल इस प्रकार भीतर की ओर चलता जाता है : मुख → ग्रसिका → जठर → जठर-कोष्ठ → आठ अभि-अरीय नालें → वृत्ताकार नालें → अंतरा-अरीय और प्र-अरीय नालें → ग्रसिका → मुख बाहुओं की बहिर्वाही खांचें; जल के साथ आहार पहुंचता है, यह अपशिष्ट पदार्थों को निकालता है और श्वसन में मदद देता है।

पोषण –**औरीलिया** मांसभोजी है; इसके आहार में अंडे, मछलियां, छोटे लार्वा और जंतुओं के टुकड़े शामिल हैं। आहार को मुख-बाहु और स्पर्शक पकड़ते हैं और फिर उसे मुख में पहुंचा देते हैं। लेकिन सिलियरी अशन (ciliary feeding) भी सम्पन्न होता है, जैसे-जैसे जंतु नीचे को चलता जाता है वैसे-वैसे उसके उपछत्र की श्लेष्मा में प्लवक फंसता जाता है; कशाभ आहार से लदी श्लेष्मा को घंटिका के सीमांत तक ले जाते हैं जहाँ से मुख-बाहु इसे लेकर मुख में पहुँचा देते हैं। जठर सूत्र जीवित आहार को मार डालते अथवा उसे अशक्त कर देते हैं। जठर सूत्रों और आंत्र के एण्डोडर्म से पाचन-एन्ज़ाइम उत्पन्न होते हैं। आहार का प्रारम्भिक पाचन जठर और उसके कोष्ठों में होता है, यह पाचन **कोशिकाबाह्य** होता है। अंशतः पचा हुआ भोजन जोकि छोटे-छोटे खंडों में टूट गया होता है सिलिया द्वारा बहाकर नालों में पहुँचा दिया जाता है। जठर सूत्रों और नालों की एण्डोडर्म कोशिकाओं द्वारा आहार-कणों को आहार-रिक्तिकाओं में अंतर्ग्रहीत कर लिया जाता है जहां पर **अंतःकोशिक** पाचन होता है। एन्जाइमों द्वारा प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेटों, वसाओं और यहां तक कि

काइटिन का भी पाचन हो जाता है। पचे हुए भोजन को अमीबोसाइट ले लेते और उसका वितरण करते हैं। जठर कोष्ठों का एण्डोडर्म वसा बुंदकों तथा ग्लाइकोजन के रूप में सुरक्षित आहार का भण्डार जमा करता है। जठर-वाही तंत्र पाचन और परिसंचरण के कार्य करता है, यह अपशिष्ट पदार्थों को बाहर भी निकालता है।

जठर-वाही तंत्र से **श्वसन** भी होता है क्योंकि जलधारा अपने परिसंचरण में ऑक्सीजन भी लिए रहती है और कार्बन डाइऑक्साइड को निकालती रहती है। भार की तुलना में मेडुसा की ऑक्सीजन-आवश्यकता बहुत थोड़ी होती है क्योंकि जेली-फ़िश में लगभग 96% जल होता है।

तंत्रिका तंत्र—तंत्रिका कोशिकाएँ और उनके तंतु दो **तंत्रिका-जाल** बनाते हैं जो संवेदी कोशिकाओं तथा पेशी-तंतुओं से जुड़े होते हैं। उपछत्र का तंत्रिका-जाल एक्टोडर्म में रहता है, यह टेंटैकुलोसिस्ट के समीप संकेन्द्रित रहता है और मुख-बाहुओं तथा स्पर्शकों में को पहुँचा होता है, यह मुख्य तंत्रिका-जाल होता है, यह एक्टोडर्मी किरीटी और अरीय पेशियों का नियंत्रण करके घंटिका का स्पंदन करता है।
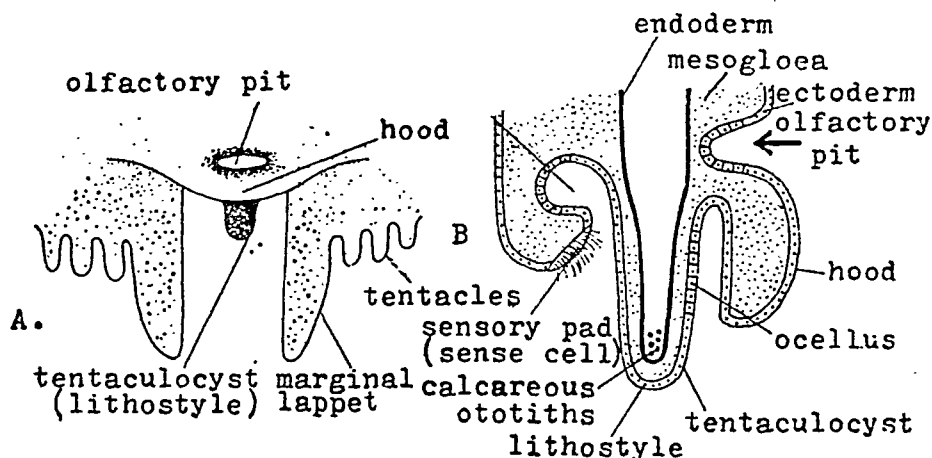
चित्र 126. टेंटैकुलोसिस्ट। A—छत्र के सीमांत का सतही दृश्य। B—टेंटैकुलोसिस्ट का खड़ा सेक्शन।

Olfactory pit, घ्राण गर्त; hood, हुड; tentaculocyst (lithostyle), टेंटैकुलोसिस्ट (लिथोस्टाइल); marginal lappet, सीमांतीय लैपेट; tentacles, स्पर्शक; endoderm, एण्डोडर्म; mesogloea, मीज़ोग्लीया; ectoderm, एक्टोडर्म; ocellus, नेत्रक; calcareous otoliths, कैल्सियमी ऑटोलिथ; sensory pad (sense cell), संवेदी पैड (संवेदी कोशिका।

दूसरा तंत्रिका जाल अधिक विसरित होता है, उसमें उपछत्र तथा बाह्यछत्र दोनों के एक्टोडर्म में स्थित अपेक्षाकृत छोटी तंत्रिका-कोशिकाएँ होती हैं, यह स्थानीय प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करता है जैसे अशन, लेकिन यह घंटिका के स्पंदनों का

संदमन (inhibition) भी कर सकता है क्योंकि ये दोनों तंत्रिका जाल टेंटैकुलोसिस्टों के द्वारा जुड़े रहते हैं।

टेंटैकुलोसिस्ट (Tentaculocyst) अथवा **रोपैलियम** (rhopalium) साइफ़ोज़ोआ के विशिष्ट संवेदी अंग हैं। औरीलिया में आठ टेंटैकुलोसिस्ट होते हैं जिनमें से हर एक टेंटैकुलोसिस्ट अंतरा-अरीय और प्र-अरीय नालों के अंतिम सिरों पर बने युग्मित लैपेटों के बीच में स्थित होता है; ये छोटे रूपांतरित स्पर्शक होते हैं। घंटिका का सीमांत टेंटैकुलोसिस्टों के ऊपर को एक हुड के रूप में निकला होता है। टेंटैकुलोलिस्ट के समीप अनेक संवेदी अंग स्थानीय रूप में पाये जाते हैं, गढ़ों के रूप में दो **घ्राण गर्त** (olfactory pits) होते हैं जिनमें से एक गर्त बाह्यछत्र पर और दूसरा टेंटैकुलोसिस्ट के अंदर की तरफ को स्थित होता है, दोनों का संवेदी एपिथीलियम घ्राणीय होता है। टेंटैकुलोसिस्ट की बाहरी दिशा पर एक एक्टोडर्मी वर्णक स्थल अथवा **नेत्रक** (ocellus) होता है जिसमें वर्णक होता है और प्रकाशग्राही कोशिकाएं होती हैं, नेत्रक प्रकाश के लिए संवेदी होते हैं। टेंटैकुलोसिस्ट दो भागों का बना होता है, एक तो मुद्गराकार प्रवर्ध होता है जिसे **लिथोस्टाइल** (lithostyle) अथवा **स्टैटोसिस्ट** (statocyst) कहते हैं एवं जिसके भीतर एंडोडर्मी कैल्सियमी **ऑटोलिथ** (otolith) होते हैं, और दूसरे एक **संवेदी पैंड** (sensory pad) होता है जो लिथोस्टाइल की भीतरी दिशा में होता है। जब जंतु एक ओर झुका होता है तो लिथोस्टाइल संवेदी पैड के प्रति दवता है और दोनों मिलकर एक संतुलन अंग का कार्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप घंटिका स्वचालित रूप में सीधी हो जाती है। टेंटैकुलोसिस्टों का प्रकट होना नाइडेरिया में एक **अंग** का वनना दर्शाता है जो कि अन्यथा सामान्यतः केवल एक ऊतक स्तर की संरचना पर ही पहुँच पाए हैं।

औरीलिया और ओबीलिया—औरीलिया जोकि एक साइफ़ोज़ोअन मेडुसा है **ओबीलिया** के हाइड्रोज़ोअन मेडुसा से निम्नलिखित बातों में भिन्न होता है। 1. **औरीलिया** बिना वीलम के युक्त एक एक्रैस्पीडोट मेडुसा है, **ओबीलिया** क्रैस्पीडोट है हालांकि उसका वीलम अल्पविकसित होता है। 2. **औरीलिया** में एक्टोडर्मी गोनड भीतरी होते हैं और उपजनन गर्त पाए जाते हैं, **ओबीलिया** में एक्टोडर्मी गोनड बाहरी होते है। 3. नाल-तंत्र **ओबीलिया** की अपेक्षा **औरीलिया** में अधिक सुविकसित होता है। 4. **औरीलिया** के संवेदी अंग सम्मिश्र टेंटैकुलोसिस्ट होते हैं जो **ओबीलिया** के स्टैटोसिस्टों से अधिक विकसित होते हैं। 5. **औरीलिया** में एंडोडर्मी जठर स्पर्शक होते हैं जो **ओबीलिया** में नहीं होते। 6. **औरीलिया** का सीमांत कटावदार होता है और उसमें अनेक छोटे-छोटे खोखले स्पर्शक बने होते हैं, इसके होंठों ने बढ़कर मुख-बाहुओं का रूप ले लिया है, **ओबीलिया** का मेडुसा वृत्ताकार होता है और उसमें लंबे ठोस स्पर्शक होते हैं, होंठ छोटे मुख पालि जैसे होते हैं। 7. **औरीलिया** में नीमैटोसिस्ट सम्पूर्ण घंटिका, स्पर्शकों तथा मुख-बाहुओं, के ऊपर पाए जाते हैं, **ओबीलिया** में वे केवल मैनुब्रियम तथा स्पर्शकों तक ही सीमित होते हैं।

जनन और जीवन-वृत्त—लिंग अलग-अलग होते हैं, नर मेडुसा में चार वृषण होते हैं और मादा मेडुसा में चार अंडाशय। गोनड अंतरा-अरीय होते हैं तथा जठर

कोष्ठों में स्थित होते हैं। लैंगिक कोशिकाएं गोनडों के एंडोडर्म में उत्पन्न होती हैं।
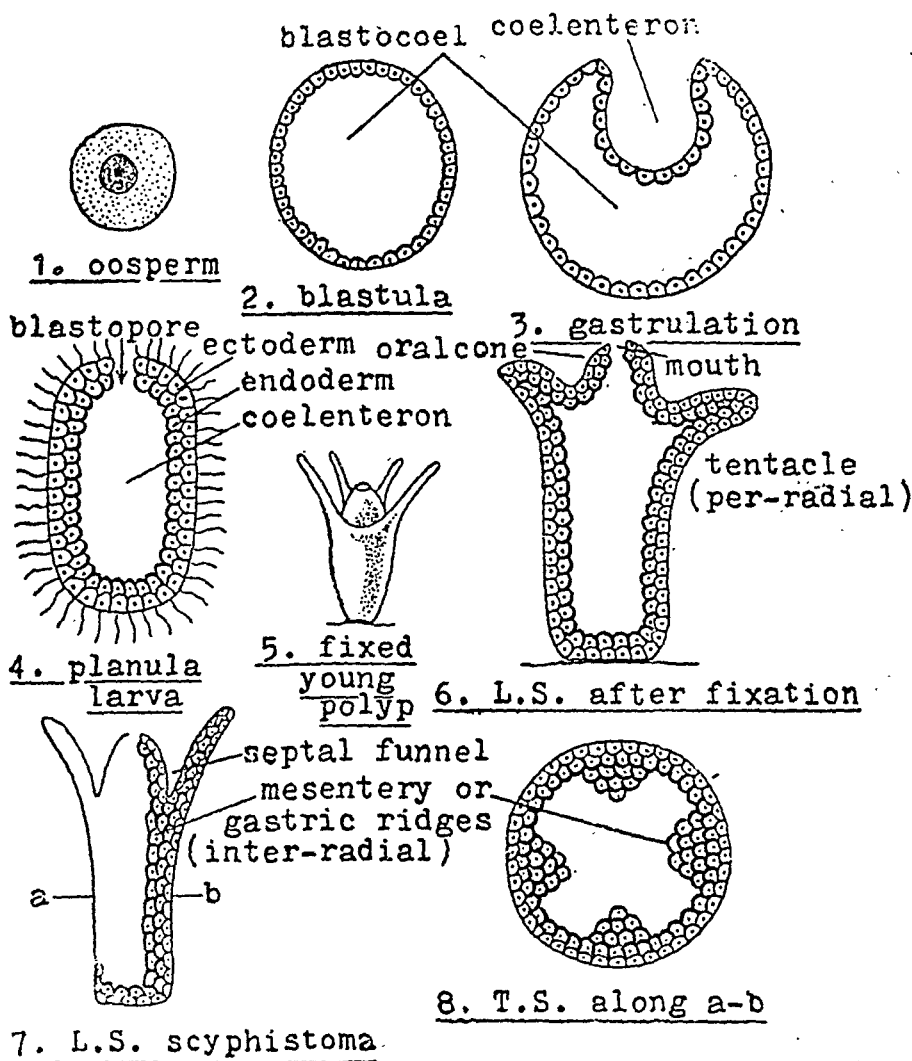
चित्र 127. **ऑरीलिया** की परिवर्धन अवस्थाएं।

Oosperm, निषेचित अंडा; blastula, ब्लास्टुला; blastocoel, ब्लास्टोसील; coelenteron, सीलेंटेरॉन; gastrulation, गैस्ट्रुलाभवन; blastopore, ब्लास्टोपोर; ectoderm, एक्टोडर्म; endoderm, एंडोडर्म; oral cone, मुख-शंकु; mouth, मुख; tentacle (per-radial), स्पर्शक (प्र-अरीय); planula larva, प्लैनुला लार्वा; fixed young polyp, स्थानबद्ध नन्हा पौलिप; L.S. after fixation, स्थानबद्ध हो चुकने पर अनुदैर्घ्य सेक्शन; septal-funnel, पट-कीप; mesentery or gastric ridges (inter-radial), आंत्रयोजनी अथवा जठर-कटक (अंतरा-अरीय); L.S. scyphistoma, साइफ़िस्टोमा का अनुदैर्घ्य सेक्शन; T.S. along a-b, a-b के सहारे अनुप्रस्थ सेक्शन।

नर मेडुसा के शुक्राणु जलधारा के साथ-साथ मुख से होते हुए मादा के भीतर पहुँच जाते हैं। जैसे ही अंडे अंडाशयों से जठर कोष्ठों में आते हैं वैसे ही उनका निषेचन हो जाता है। युग्मनज बाहर आते और मुख-बाहुओं में पहुँच जाते हैं जहाँ युग्मनज एक कोष्ठ में बंद हो जाता है और उसमें विदलन होता है। लेकिन नन्हे भ्रूणों को जठर कोष्ठों, जठर तथा मुख-बाहुओं में भी भारी संख्या में परिवर्धित होते देखा जा सकता

चित्र 128. **ओरीलिया** का परिवर्धन (जारी)।
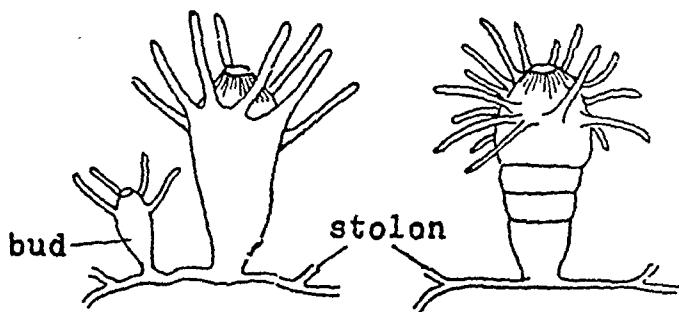
Hydratuba, हाइड्रट्यूबा; bud, मुकुल; stolon, स्टोलन; strobilation in scyphistoma, साइफ़िस्टोमा का स्ट्रोबिलेशन; tentaculocyst, टेंटैकुलोसिस्ट; notched lobes, खांचयुक्त पालि; mouth and manubrium, मुख एवं मैनुब्रियम; canals, नाल; gastric filaments, जठर-सूत्र; marginal lappets, सीमांतीय लैपेट; stomach, जठर; canals, नाल; tentaculocyst, टेंटैकुलोसिस्ट; discs or ephyrae, डिस्क अथवा एफ़ाइरा; ephyra larva, एफ़ाइरा लार्वा; strobila or scyphistoma, स्ट्रोबिला अथवा साइफ़िस्टोमा।
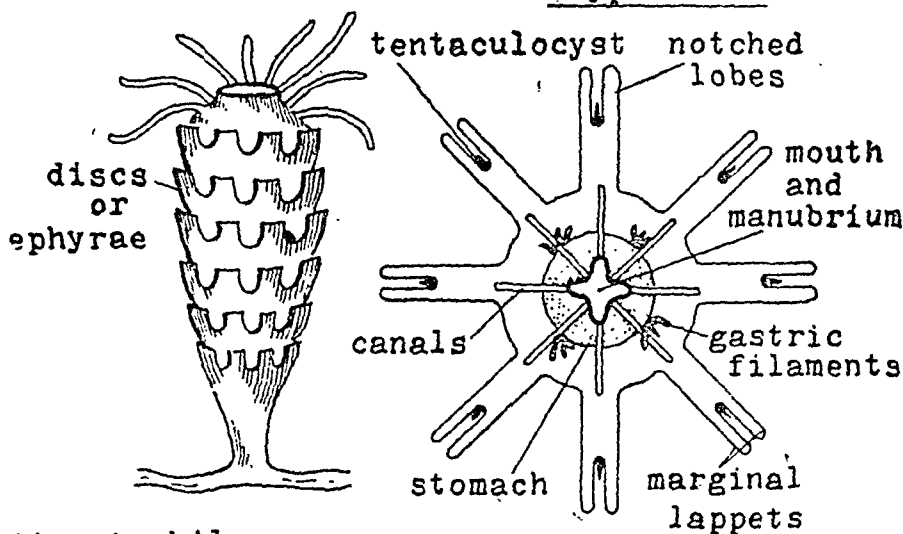
है। विदलन पूर्णभंजी लेकिन असमान होता है, शीघ्र ही एक ब्लास्टुला वन जाता है जिसमें कोशिकाओं की एक ही परत होती है और उसकी ब्लास्टोसील एक तरल से भरी होती है। ब्लास्टुला का एक ध्रुव अंतर्वलित होकर एक द्विस्तरी **गैस्ट्रुला** वन जाता है जिसमें एक वाहरी परत एक्टोडर्म की होती है और ये दोनों परतें मिलकर एक सीलेंटेरॉन गुहा को घेरे रहती हैं जिसका बाहर को एक छिद्र ब्लास्टोपोर होता है। गैस्ट्रुला का एक्टोडर्म सिलियायुक्त बनकर एक **प्लैनुला लार्वा** प्रकट हो जाता है। यह प्लैनुला हाइड्रोज़ोआ के प्लैनुला से निर्माण-विधि में तथा एक सीलेंटेरॉन एवं ब्लास्टोपोर के पाए जाने में भिन्न होता है। प्लैनुला लार्वाओं को मादा मेडुसाओं के मुख-वाहुओं पर समूहों में देखा जा सकता है। कुछ काल के वाद मुख-वाहु से प्लैनुला मुक्त हो जाता है और अल्पकाल का स्वच्छंद तैरने वाला जीवन पूरा करके नीचे वैठता जाता है, इसके सिलिया समाप्त हो जाते हैं, ब्लास्टोपोर वंद हो जाता है और यह अपने अपमुख सिरे के द्वारा किसी वस्तु से चिपक जाता है।

कायांतरण होकर प्लैनुला से एक छोटा पौलिप अथवा **हाइड्रट्यूवा** (hydra-tuba) वन जाता है जिसमें पेरिसार्क नहीं होता। इस कायांतरण में एक मुख-शंकु अथवा मैनुब्रियम वन जाता है, ब्लास्टोपोर खुल कर मुख वन जाता है। प्र-अरीय दिशाओं में चार खोखले मुकुल निकल आते हैं जो स्पर्शक वन जाते हैं। इसके वाद चार अंतरा-अरीय और आठ अभि-अरीय स्पर्शक वन जाते हैं। सीलेंटेरॉन के एंडोडर्म से चार अंतरा-अरीय अनुदैर्घ्य कटक निकल आते हैं जिन्हें **जठर कटक** (gastric ridges) अथवा **आंत्रयोजनियां** (mesenteries) कहते हैं। मुख चौकोर हो जाता है और मैनुब्रियम नीचे वैठता जाता है जिसके साथ कीप-जैसे गढ़े वनते जाते हैं जिन्हें **पट-कीपें** (septal-funnels) अथवा **इनफ़ंडिवुलम** (infundibula) कहते हैं। इन परिवर्तनों के द्वारा प्लैनुला का कायांतरण होकर एक हाइड्रट्यूवा वन जाता है। हाइड्रट्यूवा के आधार से एक जड़-जैसा स्टोलन निकलता है। यह हाइड्रट्यूवा आहार करता है और इसके स्टोलन से पूरे ग्रीष्म में नए-नए हाइड्रट्यूवाओं का मुकुलन होता रहता है। ये हाइड्रट्यूवा अपने जनक के स्टोलन से उसी तरह टूट कर अलग हो सकते हैं जैसे **हाइड्रा** में हुआ करता है। गर्मियों के वाद हाइड्रट्यूवा में मुकुलन होना वंद हो जाता है, यह आहार करना और खाद्य संचय जारी रखता है। यह हाइड्रट्यूवा प्रायः पहले साल इसी तरह सर्दी पार कर लेता है और उससे अन्य हाइड्रट्यूवाओं का मुकुलन हो सकता है लेकिन अगले वर्ष की सर्दियों में इसमें एक अनुप्रस्थ विभाजन की प्रक्रिया होती है जिसे **स्ट्रोविलेशन** (strobilation) कहते हैं; इस विभाजनशील हाइड्रट्यूवा को **साइफ़िस्टोमा** (scyphistoma) अथवा **स्ट्रोविला** (strobila) कहते हैं। साइफ़िस्टोमा की अनुप्रस्थ डिस्कें जोकि स्ट्रोविलेशन के द्वारा उत्पन्न होती हैं चाय की तश्तरियों की ढेरी जैसी दिखाई देती हैं, प्रत्येक डिस्क एक **एफ़िरा** (ephyra) लार्वा होती है। एक साइफ़िस्टोमा से वारह या अधिक एफ़िरा वन सकते हैं जिनमें तुरंत सीमांत पर वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। एफ़िरा लार्वा एक-दूसरे के ऊपर पड़े होते हैं, वे आंत्रयोजनियों में स्थित पेशीय सूत्रों द्वारा जुड़े होते हैं,

ये आंत्रयोजनियां समस्त एफ़िराओं में जारी रहती हैं। पेशीय सूत्र संकुचित होकर टूट जाते हैं जिसके फलस्वरूप एफ़िरा संकुचित होकर अलग हो जाते और वहाँ से तैर कर चले जाते हैं। एफ़िरा साइफ़िस्टोमा की ऊपरी सतह से एक-एक करके टूट कर अलग होते जाते हैं और फिर वे ऊपर से नीचे को उल्टे हो जाते हैं। शीर्ष पर से पहला एफ़िरा निकलने से पहले उसके 16 स्पर्शक अवशोषित हो जाते और 8 खांचायुक्त पालि बन जाते हैं जिनमें से प्रत्येक पालि में एक टेंटैकुलोसिस्ट होता है। उसके बाद निकलने वाले एफ़िराओं में स्पर्शकों का कोई अंश नहीं होता। एफ़िरा एक नन्हा मेडुसाई प्राणी होता है, इसमें आठ खांचायुक्त पालि होते हैं जो प्र-अरीय तथा अंतरा-अरीय होते हैं, प्रत्येक पालि में दो खूब बड़े सीमांतीय लैपेट होते हैं जिनके बीच में एक गहरी खांच होती है और इस खांच में एक छोटा स्पर्शक होता है जो टेंटैकुलोसिस्ट बन जाता है। जठर-गुहा में वृद्धि होकर वह पालियों तक पहुंच जाती है और प्र-अरीय तथा अंतरा-अरीय नाल बनाती है, बाद में अभि-अरीय नालें भी बन जाती हैं। चार जोड़ी जठर सूत्र अंतरा-अरीय आंत्रयोजनियों में बन जाते हैं। एफ़िरा लार्वा बढ़कर एक जेली-फ़िश बन जाता है।

एफ़िरा अधिकतर उन प्रोटोज़ोअनों को खाता है जो लैपेटों द्वारा पकड़े जाते और मुख में पहुंचा दिए जाते हैं। एफ़िरा बढ़कर बड़ा होता जाता है, खाँचायुक्त पालियों के बीच की जगहें भर जाती हैं, मीज़ोग्लीया में बहुत ज़्यादा वृद्धि होकर वह एण्डोडर्म की परतों को धक्का देकर पास-पास ले आता है जिससे कि एक एण्डोडर्म पटलिका बन जाती है, यह पटलिका निर्माण केवल आंत्र में नहीं होता, चार मुख-बाहु और सीमांतीय स्पर्शक प्रकट हो जाते हैं, पट-कीपें उप-जनन गर्त बन जाती हैं और गर्मियों के आने तक एफ़िरा एक पूरा मेडुसा बन जाता है।

साइफ़िस्टोमा के उस आधारीय भाग में जिसमें विखंडन नहीं हुआ होता नए स्पर्शक उग आते हैं, एक विश्राम काल के बाद यह फिर से एक बार हाइड्रैट्यूबा का जीवन अपना लेता है, यह अगले शीत में दोबारा स्ट्रोबिलेशन करने लगता है, यह इस प्रकार हर गर्मियों में अशन और मुकुलन करते तथा सर्दियों में एफ़िरा बनाते कई-कई वर्षों तक जीवित रह सकता है।

ऑरीलिया के जीवन-चक्र में कोई मेटाजेनेसिस नहीं पाया जाता हालांकि कुछ लोगों ने ऐसा कहा है। उन लोगों के अनुसार वयस्क मेडुसा एक लैंगिक पीढ़ी है और यह साइफ़िस्टोमा के साथ जिसे अलैंगिक पीढ़ी कहा जा सकता है एकांतर क्रम में आती है। लेकिन मेडुसा का निर्माण एफ़िरा के कायांतरण के द्वारा होता है और जीवन-चक्र एक जारी रहने वाली प्रक्रिया है, अतः मेटाजेनेसिस नहीं होता। जीवन-चक्र की अवस्थाएँ इस प्रकार हैं: अंडा → युग्मनज → प्लैनुला लार्वा → हाइड्रैट्यूबा → स्ट्रोबिला → एफ़िरा लार्वा → लैंगिक मेडुसा।

ऑरीलिया में अनेक प्रावस्थाएँ मिलती हैं जिनमें ऐसे विभेद पाए जाते हैं जो अन्य साइफ़ोज़ोआ के जीवन-चक्रों में पाए जाते हैं। **ऑरीलिया** के बहुत बड़े अंडे

ऐक्टिनुला लार्वा (actinula larvae) बन जाते हैं (प्लैनुला का एक अधिक विकसित रूप जो एक पौलिप के जैसा होता है और उसमें एक छोटा स्तम्भ होता है) जिनसे सीधे एफ़िरा लार्वा बन जाते हैं। छोटे अंडों से प्लैनुला लार्वा बनते हैं जो हाइड्रैट्यूबाओं में परिवर्तित होकर साइफ़िस्टोमा बन जाते हैं और इन साइफ़िस्टोमाओं में स्ट्रोबिलेशन होकर एफ़िरा बन जाते हैं। भारी अशन और उसके बाद ताप में गिरावट से स्ट्रोबिलेशन होता है। **ऑरीलिया** में यदि आहार प्रचुर हो और ताप कम हो, तब एक ही समय पर अनेक एफ़िरा उत्पन्न होते हैं (**बहुडिस्क**, polydisc, प्रकार का स्ट्रोबिलेशन)। यदि आहार कम और ताप ऊँचा रहा तो एफ़िरा एक-एक करके पैदा होते हैं (**एकडिस्क**, monodisc, प्रकार का स्ट्रोबिलेशन)।

4. मेट्रिडियम (*Metridium*) (समुद्री-एनीमोन)

क्लास **ऐंथोज़ोआ** (Anthozoa) में केवल एकाकी अथवा पौलिपी प्राणी ही पाए जाते हैं, मेडुसी अवस्था नहीं होती। इनके पौलिप हाइड्रोज़ोअनों के पौलिपों से भिन्न होते हैं, मुख एक नलिकाकार अग्रांत्र (stomodaeum) में को खुलता है, जठर-वाही गुहा का अनुदैर्घ्य पटों (septa) अथवा आंत्रयोजनियों द्वारा कक्षों में विभाजन हो जाता है, नीमैटोसिस्ट आंत्रयोजनियों के सीमांतों पर पाए जाते हैं। मीज़ोग्लीया कोशिकीय होता है और गोनड एण्डोडर्मी होते हैं। एन्थोज़ोआ नाइडेरिया का सबसे बड़ा क्लास है और इसमें 6000 से ऊपर ज्ञात स्पीशीज़ पाई जाती हैं जैसे कि मूंगे, समुद्री एनीमोन, समुद्री-कलम (sea pens), और समुद्री-पंखे (sea fans)।

समुद्री एनीमोन जैसे कि **मेट्रिडियम** और **टीऐलिया** (*Tealia*) सभी समुद्रों में आम पाए जाते हैं और अधिक गर्म जलवायु में उथले एवं तटवर्ती जल में विशेषकर अधिक संख्या में पाए जाते हैं। समुद्री एनीमोन को यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इसका ऊपरी मुक्त सिरा एनीमोन नामक फूल जैसा दीखता है, इनमें सुन्दर-सुन्दर रंग व्यवस्थाएँ देखने को मिलती हैं। समुद्री एनीमोन एकाकी स्थानबद्ध जंतु होते हैं जो चट्टानों से जुड़े रहते हैं जहाँ अनेक प्राणी पास-पास चिपके रहते हैं, लेकिन वे इस तरह नहीं चिपके होते कि उनमें कोई गति ही न हो सके। एनीमोनों में अन्य जंतुओं के साथ एक विलक्षण सहजीवी संबंध होते पाया जाता है विशेषकर हर्मिट-केकड़ों के साथ। आम तौर से **सार्गाशिया** (*Sagartia*) और **ऐडेम्ज़िया** (*Adamsia*) घोंघे के उस कवच पर चिपके होते हैं जिनके भीतर हर्मिट केकड़ों की खास स्पीशीज़ रहती पाई जाती हैं। हर्मिट केकड़ा स्पर्श के द्वारा एनीमोन की अपनी खास स्पीशीज़ को पहचान लेता है; उसके बाद वह इसे अपने नखरों (claws) की मदद से चट्टान से छुड़ा लेता और उसे अपने कवच पर छुआते हुए तब तक पकड़े रहता है जब तक कि एनीमोन खुद नहीं चिपक जाता। अनेक एनीमोनों में स्पर्शकों तथा आंत्रयोजनियों की एण्डोडर्म कोशिकाओं के भीतर बड़ी मात्रा में **ज़ूओजैंथेला** विद्यमान होते हैं, लेकिन लगता है कि उनका एनीमोन के जीवन में कोई विशेष आवश्यक कार्य नहीं होता।
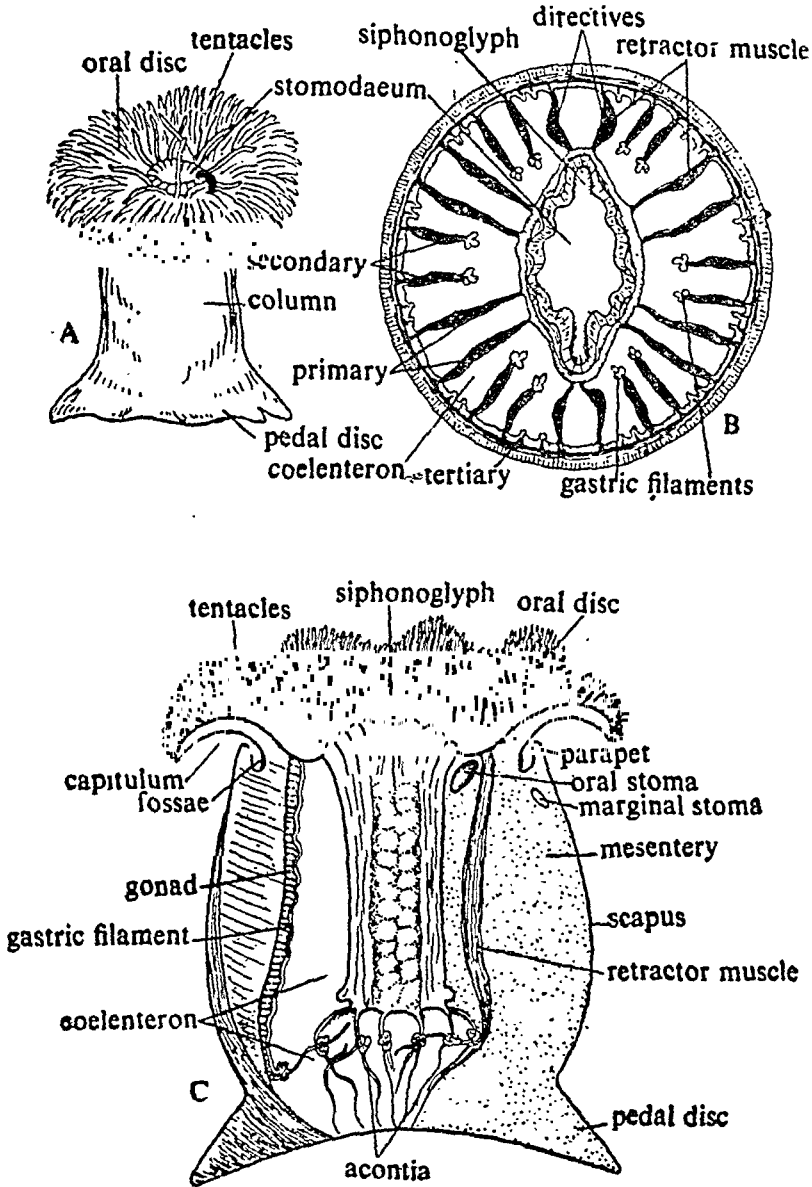
चित्र 129. A—एक समुद्री एनीमोन। B—मेट्रिडियम का अग्रांत्र से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन। C—मेट्रिडियम का अनुदैर्घ्य समभितार्धी (sagittal) सेक्शन, दाईं ओर प्राथमिक आंत्रयोजनी से गुजरता हुआ और बाईं ओर द्वितीयक आंत्रयोजनी से गुज़रता हुआ।

Oral disc, मुख-डिस्क; tentacles, स्पर्शक; stomodaeum, अग्रांत्र; column, स्तम्भ; pedal disc, पाद डिस्क; siphonoglyph, साइफ़ोनोग्लिफ़; directives, दैशिक आंत्रयोजनियाँ; retractor muscle, आकुंचनी पेशी; primary, प्राथमिक पेशी; secondary, द्वितीयक पेशी; tertiary, तृतीयक पेशी; coelenteron, सीलेंटेरॉन; gastric filaments, जठर सूत्र; capitulum, कैपिटुलम; fossae, फ़ॉसि; parapet, पैरापेट; oral stoma, मुखीय स्टोमा; marginal stoma, सीमांतीय स्टोमा; mesentery, आंत्रयोजनी; scapus, स्केपस; gonad, गोनड; acontia, ऐकॉन्शियम।

समुद्री एनीमोन एक पौलिप होता है, इसमें लगभग 8 cm. लंबा एक सिलिंडराकार शरीर होता है, देह का तीन भागों में विभाजन होता है, ऊपरी **मुख-डिस्क** (oral disc) अथवा परिमुख (peristome), एक स्तम्भ (column) और एक नीचे की पाद-डिस्क (pedal disc) अथवा **आधारीय डिस्क** (basal disc)। ऊपरी मुक्त सिरा चपटा, गोल मुख-डिस्क होता है जिसमें एक हल्के से उभार पर एक वड़ा अंडाकार मुख होता है। मुख के चारों तरफ बहुत से छोटे-छोटे नुकीले और खोखले स्पर्शक बने होते हैं जो पाँच घेरों अथवा वृत्तों में व्यवस्थित होते हैं, प्रत्येक घेरे में प्रायः छह की गुणा में स्पर्शक होते हैं, स्पर्शकों की संख्या उम्र के साथ-साथ बढ़ती जाती है। आहार रसों द्वारा रासायनिक उद्दीपन के लिए स्पर्शक बहुत संवेदनशील होते हैं, स्पर्शकों पर बहुसंख्यक नीमैटोसिस्ट पाए जाते हैं। स्तम्भ पूरा सिलिंडराकार हो सकता है, लेकिन कुछ जीनसों में जिनमें **मेट्रिडियम** भी शामिल है यह दो भागों में विभाजित होता है : ऊपरी छोटा पतली दीवार वाला **कैपिटुलम** (capitulum) और एक निचला प्रधान मोटी दीवार वाला **स्केपस** (scapus)। स्तम्भ पर मस्से जैसी गुलिकाएँ (tubercles) बनी होती हैं। कुछ एनीमोनों में, जैसे **मेट्रिडियम** तथा **टीऐलिया** में स्केपस का ऊपरी सीमांत एक सुस्पष्ट वलन बनाता है जिसे **पैरापेट** (parapet) कहते हैं और यह कैपिटुलम के नीचे एक खांच अथवा **फासे** (fossae) बनाता है। स्केपस के ऊपरी भाग में एक वृत्ताकार पेशी परत होती है जिसे **संवरणी** (sphincter) कहते हैं, यह स्केपस के सीमांत और सिकोड़ी हुई मुख डिस्क को कैपिटुलम के ऊपर बंद कर सकती है। जंतु में अत्यधिक संकुचन की क्षमता होती है और मुख-डिस्क को भीतर की ओर खींच लिया जा सकता है। आधारीय डिस्क फैली होती है और जंतु की चट्टानों अथवा कवचों पर चिपकाने में काम आती है; यह डिस्क श्लेष्मी स्राव के और आधारीय डिस्क की पेशियों की मदद से चिपकती है। लेकिन जंतु स्थानबद्ध नहीं होता क्योंकि यह अपनी आधारीय डिस्क की विसर्पण गतियों के द्वारा रेंग सकता है। इस रेंगने में यह डिस्क गति की दिशा में एक स्फीत (turgid) पालि निकालती है और उसी दौरान डिस्क का विपरीत सिरा संकुचित होता है, उसके बाद आधारीय डिस्क में पीछे से आगे की दिशा में पेशीय संकुचनों की लहरें चलती हैं जिससे कि पिछला सिरा आगे को पहले बढ़ता है, या फिर यह हो सकता है कि पेशीय संकुचन आगे से पीछे की ओर चलता है जिससे अगला पालि बाहर को धिकलता है। चलन गति लगभग 8 cm. प्रति घंटा की दर से होती है। एनीमोनों में कभी किसी प्रकार का कंकाल नहीं होता।

आंतरिक बनावट—देह-भित्ति के भीतर एक बड़ी **सीलेण्टेरॉन** अथवा जठरवाही गुहा पाई जाती है, और मुख नीचे एक लंबी दृढ़ नलिका में को खुलता है जिसे ग्रसनी (pharynx) अथवा **अग्रांत्र** (stomodaeum) कहते हैं, यह नलिका स्तम्भ की दो-तिहाई लंबाई तक चली जाती है, इसका अस्तर अंतर्वलित एक्टोडर्म का बना होता है और यह सीलेंटेरॉन में को लटकी रहती है। अग्रांत्र में दो अनुदैर्घ्य सिलियायुक्त खाँचें होती हैं जिन्हें साइफ़ोनोग्लिफ़ कहते हैं, कुछ जीनसों में एक ही

साइफ़ोनोग्लिफ़ होता है। साइफ़ोनोग्लिफ़ों के सिलिया एक श्वसनीय जलधारा पैदा करते हैं जो नीचे को बहती जाती है। बाहरी सतह जंतु की श्वसन आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होती और साइफ़ोनोग्लिफ़ों में से बहती हुई जलधारा श्वसन में सहायता करती है। अग्रांत्र के सिलिया से जो जलधारा बनती है वह जल और अपशिष्ट पदार्थ को मुख में से बाहर ले जाती है। देह-भित्ति में से मोटे अनुदैर्घ्य **पट** (septa) अथवा **आंत्रयोजनियाँ** अरीय रूप में भीतर को चलती जाती हैं, इनके द्वारा सीलेंटेरॉन कक्षों में विभाजित हो जाता है। आंत्रयोजनियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक तो सम्पूर्ण आंत्रयोजनियाँ जो देह-भित्ति से अग्रांत्र की दीवार तक चलती हैं और दूसरी असम्पूर्ण आंत्रयोजनियाँ जो केवल देह-भित्ति में ही जुड़ी होती हैं, वे जठर-वाही गुहा में केवल थोड़ी ही दूर तक चलती हैं। आंत्रयोजनियाँ जोड़े बनाकर पाई जाती हैं और प्रत्येक आंत्रयोजनी की सतह पर एक एण्डोडर्मी **आकुंचनी पेशी** (retractor muscle) अनुदैर्घ्य रूप में चलती जाती है; ये पेशियाँ जंतु को बहुत ज्यादा सिकोड़ ले सकती हैं जिसके कारण भीतर का जल मुख में से होकर बाहर निकल जाता है। आंत्रयोजनियों के छह जोड़े सम्पूर्ण होते हैं, वे देहभित्ति से अग्रांत्र तक चलते हैं, इन छह जोड़ों को **प्राथमिक आंत्रयोजनियां** (primary mesenteries) कहते हैं, इनमें से प्राथमिकों के वे दो जोड़े जो साइफ़ोनोग्लिफ़ों से जुड़े होते हैं **दैशिक** (directives) कहलाते हैं जिनमें आकुंचनी पेशियाँ एक दूसरे के विमुख होती हैं जबकि शेष सभी आंत्रयोजनियों में पेशियाँ एक दूसरे के सम्मुख होती हैं। सहवर्ती आंत्रयोजनी-जोड़ों के बीच-बीच में असम्पूर्ण **द्वितीयक आंत्रयोजनियों**
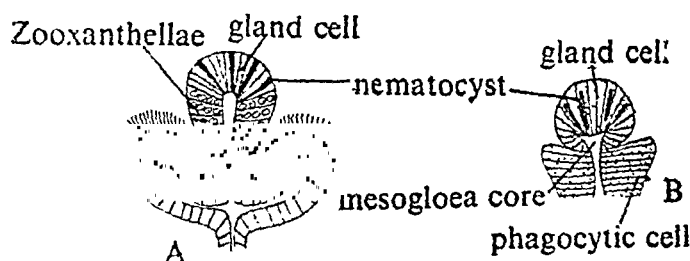
चित्र 130. जठर तंतु का अनुप्रस्थ सेक्शन। A—अग्रांत्र के समतल से लिया गया। B—अग्रांत्र के समतल के नीचे से लिया गया।

Zooxanthellae, **जूओजैंथेला**; gland cell, ग्रंथि-कोशिका; nematocyst, **नीमैटोसिस्ट**; mesogloea core, मीज़ोग्लीया का बना केन्द्र भाग; phagocytic cell, भक्षिकोशिका।

(secondary mesenteries) **के छह** जोड़े पाए जाते हैं जो कि अग्रांत्र तक नहीं पहुंचतीं। प्राथमिक **और द्वितीयक** आंत्रयोजनियों के बीच-बीच में छोटी **तृतीयक आंत्रयोजनियों** (tertiary mesenteries) के 12 जोड़े पाए जाते हैं, इसी प्रकार इससे भी और छोटी **चतुर्थक** (quarternaries) आंत्रयोजनियों के 24 जोड़े पाए जा सकते हैं। मुख-डिस्क के नीचे प्राथमिक तथा द्वितीयक आंत्रयोजनियों में सुराख

बने होते हैं जिन्हें **मुखीय स्टोमा** (oral stoma) अथवा **ऑस्टिया** (ostia) कहते हैं, इन आंत्रयोजनियों में देह-भित्ति के पास को भी छिद्र बने हो सकते हैं जिन्हें **सीमांतीय स्टोमा** (marginal stoma) अथवा ऑस्टिया कहते हैं। इन ऑस्टिया के द्वारा अंतरा-आंत्रयोजनी कक्षों के मध्य जल का आना-जाना हो सकता है। आंत्रयोजनियों के निचले सीमांत आधारीय डिस्क के साथ जुड़े होते हैं लेकिन सीलेंटेरॉन में को निकले हुए उनके मुक्त भीतरी सीमांतों पर मोटे संवलित (convoluted) **जठर सूत्र** बने होते हैं जो ऊपरी भाग में सेक्शन में तीन पालियों वाले होते हैं। प्रत्येक जठर तंतु का ऊपरी भाग पाचन तथा जल परिसंचरण का कार्य करता है; उनमें पाचन ग्रंथि कोशिकाएँ, सिलियायुक्त कोशिकाएँ और नीमैटोसिस्ट होते हैं। प्रत्येक जठर सूत्र का निचला भाग केवल पाचक होता है, इनमें ग्रंथि-कोशिकाएँ होती हैं लेकिन सिलियायुक्त कोशिका कोई नहीं होती, इनकी कोशिकाएँ भक्षिकोशिक होती हैं और अंतःकोशिक पाचन के वास्ते आहार कणों का परिग्रहण कर लेती हैं। जठर सूत्रों के कुछ क्षेत्र देह से उत्सर्जन पदार्थों के बाहर निकालने वाले प्रमुख स्थान होते हैं। प्रत्येक जठर सूत्र एक पतले इंठे हुए धागे के रूप में लंबा हो जाता है जिसे **ऐकॉन्शियम** (acontium) कहते हैं, ऐकॉन्शियम मुख में से होते हुए बाहर को दागे जा सकते हैं, उस स्थिति में ये आहार के वास्ते छोटे जंतुओं को परास्त करने में सहायक होते हैं।

ऊतक-रचना—बाहर से ऐनीमोन के ऊपर एक एपिडर्मिस मढ़ा होता है जिसमें स्तम्भाकार प्रकार की लंबी **एक्टोडर्म** कोशिकाएँ पाई जाती हैं। ये एक्टोडर्म कोशिकाएँ स्पर्शकों और मुख-डिस्क पर सिलियायुक्त होती हैं, स्पर्शकों और मुख-डिस्क की कुछ एक्टोडर्म कोशिकाओं में पेशी-प्रवर्ध होते हैं। इनके अलावा एपिडर्मिस में स्वतन्त्र पेशी-तंतु भी होते हैं। एक्टोडर्म कोशिकाओं के बीच-बीच में **आलम्बी** (supporting) **कोशिकाएँ**, पतली संवेदी **तंत्रिका-कोशिकाएँ**, **श्लेष्मा ग्रंथि-कोशिकाएँ**, और **नीमैटोसिस्ट** होते हैं। तंत्रिका-कोशिकाएँ स्पर्शकों, मुख-डिस्क तथा अग्रांत्र में
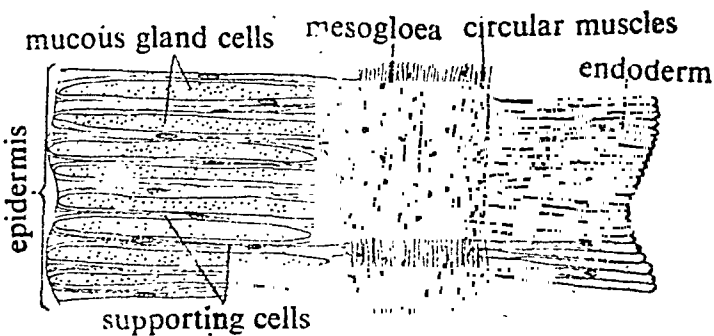
चित्र 131. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन।

Epidermis, एपिडर्मिस; mucous gland cell, श्लेष्मा ग्रंथि-कोशिकाएँ; mesogloea, मीज़ोग्लीया; circular muscles; वृत्ताकार पेशियाँ; endoderm, एण्डोडर्म; supporting cells, आलंबी कोशिकाएँ।

बहुसंख्यक होती हैं, लेकिन वे स्तम्भ में कम हो जाती हैं और आधारीय डिस्क में फिर से प्रचुर हो जाती हैं।

मेट्रिडियम में चार प्रकार के नीमैटोसिस्ट पाए जाते हैं; लेकिन एँथोज़ोआ के इन नीमैटोसिस्टों में नाइडोसिल नहीं होता। 1. **स्पाइरोसिस्ट** (spirocyst) में एक पतला कैप्सूल होता है जिसके भीतर एक समान मोटाई वाली सर्पिल रूप में कुण्डलित नलिका पड़ी होती है, ये नीमैटोसिस्ट केवल स्पर्शकों और मुख-डिस्क पर पाए जाते हैं। 2. **आधारशूकी आइसोराइजा** में अंडाकार कैप्सूल होता है, हत्था नहीं होता, धागे में काँटे केवल आधार पर बने होते हैं और सिरे पर धागा खुला होता है (चित्र 114)। 3. **सूक्ष्माधार मैस्टिगोफोर** (microbasic mastigophore) में एक गोल कैप्सूल होता है, हत्था लंबा होता है और उस पर सर्पिल में बने कांटे होते हैं, धागा लंबा और सिरे पर बंद होता है। 4. **सूक्ष्माधार एमैस्टिगोफोर** (microbasic amastigophore) में एक अंडाकार कैप्सूल होता है, हत्था छोटा होता है जिस पर सर्पिल में कांटे बने होते हैं, धागा नहीं होता। नीमैटोसिस्ट स्पर्शकों पर मस्से-जैसे उभारों में झुण्ड के रूप में पाए जाते हैं, वे एपिडर्मिस, एण्डोडर्म, जठर-सूत्र तथा एकॉन्शियमों में भी पाए जाते हैं।
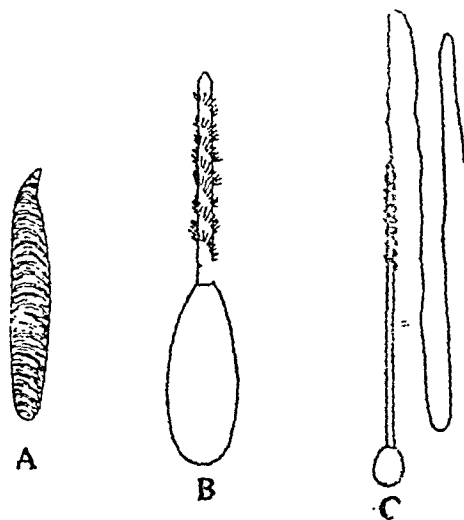
चित्र 132. विभिन्न नीमैटोसिस्ट। A—स्पाइरोसिस्ट। B—सूक्ष्माधार एमैस्टिगोफ़ोर; C—सूक्ष्माधार मैस्टिगोफ़ोर।

एँथोज़ोआ में **मीज़ोग्लीया** की मात्रा बहुत ज्यादा होती है और वह बहुत मोटा होता है, इस वर्ग में इसमें सर्वाधिक विभेदन पाया जाया है। इस परत में एक जिलेटिनी मैट्रिक्स होता है जिसके भीतर अनुप्रस्थ तथा अनुदैर्घ्य तंतु बहुत संख्या में पाए जाते हैं और उसमें छितराई हुई तारारूपी अमीबीय कोशिकाएँ एवं योजी ऊतक कोशिकाएँ पाई जाती हैं।

सबसे भीतरी परत **एंडोडर्म** स्तम्भी एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाओं की बनी होती है, इन कोशिकाओं के आधार पेशी-तंतुओं के रूप में लंबे हो गए होते हैं। ये पेशी-तंतु स्पर्शकों, मुख-डिस्क स्तम्भ और आधारीय डिस्क में वृत्ताकार होते हैं लेकिन आंत्रयोजनियों पर वे शक्तिशाली आकुंचनी पेशियाँ बनाते हैं जो अनुदैर्घ्य दिशा में चलती हैं, ऐनीमोन का मुख्य संकुचन इन्हीं आकुंचनियों द्वारा सम्पन्न होता हैं। एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाओं के बीच-बीच में कणिकायुक्त ग्रंथि-कोशिकाएँ होती

हैं जो एन्ज़ाइमों का स्राव करती हैं। एण्डोडर्म में संवेदी कोशिकाएँ भी होती हैं और आंत्रयोजनियों तथा एकॉन्शियमों पर नीमैटोसिस्ट भी होते हैं।

अशन और पाचन—इसके आहार में उचित साइज़ के जंतु अथवा जंतुओं के टुकड़े शामिल हैं। स्पर्शकों के नीमैटोसिस्टों के द्वारा आहार स्तब्ध हो जाता है, उसके बाद स्पर्शक उस आहार को मुख में धक्का दे देते हैं, मुख के सिलिया आहार को चलाते हुए ग्रसनी में और फिर सीलेंटेरॉन में पहुँचा देते हैं। आहार को आंत्रयोजनियाँ पकड़ लेतीं और उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ती जाती हैं। ट्रिप्सिन की प्रकृति का एक प्रोटियोज़ जठर-सूत्रों तथा एकॉन्शियमों की एण्डोडर्म कोशिकाओं की ग्रंथि-कोशिकाओं से स्रावित होता है, यह एक क्षारीय माध्यम में आहार को तोड़ता है और वसाओं का इमल्सीकरण (emulsification) करता है। इस प्रारम्भिक कोशिका-वाह्य पाचन के बाद भक्षिकोशिकीय एण्डोडर्म-कोशिकाएँ इस आहार ब्रॉथ का अंतर्ग्रहण कर लेती हैं। तब इन्हीं कोशिकाओं में ग्रंथि कोशिकाओं से स्रावित पेप्सिन की किस्म के प्रोटियोज़, इरेप्सिन और लाइपेज़ की मदद से अंतःकोशिक पाचन होता है। अनेक छोटे समुद्री-एनीमोनों में सिलियरी अशन होता है, देह के सिलिया मुख डिस्क की ओर को स्पंदन करते हैं और खाने को खिसकाते जाते हैं, मुख डिस्क से सिलियरी धाराएँ आहार कणों को स्पर्शकों के सिरों की ओर धकेलती जाती हैं, स्पर्शक मुड़कर आहार को मुख के भीतर पहुँचा देते हैं।

पेशी-तंत्र अधिक विकसित होता है, एक्टोडर्मी पेशियाँ स्पर्शकों में अनुदैर्ध्य तंतु और मुख-डिस्क में अरीय तंतु बनाती हैं, लेकिन मुख्य पेशी-तंत्र एण्डोडर्मी होता है। एण्डोडर्मी पेशियाँ स्पर्शकों, मुख-डिस्क, स्तम्भ, ग्रसनी; और आधारीय डिस्क के मीज़ोग्लीया में एक वृत्ताकार परत बनाती हैं। एण्डोडर्मी पेशियाँ सुविकसित **आकुंचनी पेशियाँ** बनाती हैं जो आंत्रयोजनियों के मीज़ोग्लीया में अनुदैर्ध्य दिशा में फैली होती हैं, यही आकुंचनी पेशियाँ जंतु को संकुचित करने का मुख्य साधन होती हैं। मुख-डिस्क और स्तम्भ के जोड़ पर एण्डोडर्मी वृत्ताकार पेशियाँ एक संवरणी बनाती हैं जिसके द्वारा देह आकुंचित होता है और यह संवरणी मुख-डिस्क को ढक लेती है।

तंत्रिका-तंत्र में दो सरल तंत्रिका जाल होते हैं एक पूरे एपिडर्मिस में और दूसरा आंत्रयोजनियों के एण्डोडर्म में होता है। हर तंत्रिका-जाल में संवेदी तंत्रिका कोशिकाएँ और उनके तंत्रिका-तंतु होते हैं। एपिडर्मिसी तंत्रिका-जाल में स्पर्शकों, मुख-डिस्क और ग्रसनी में गैंग्लियान कोशिकाएँ होती हैं। दोनों तंत्रिका-जाल तंतुओं द्वारा संयोजित होते हैं लेकिन कोई केन्द्रीय तंत्रिका नियन्त्रण नहीं होता और प्रतिवर्तों (reflexes) का अभाव होता है।

जनन—(क) **अलैंगिक जनन** : 1. कुछ जीनसों में, जैसे कि **सार्गाशिया में, अलैंगिक अनुदैर्ध्य विभाजन** होता है, आधारीय डिस्क लंबी हो जाती है और अनुप्रस्थ रूप में चिर जाती है, यह चिरना ऊपर को बढ़ता जाता है और स्तम्भ तथा मुख-डिस्क को लंबाई में दो भागों में विभाजित कर देता है, प्रत्येक अर्धांश के कटे सीमांत

परस्पर जुड़ जाते हैं और नई आंत्रयोजनियाँ बन जाती हैं। 2. **पाद-विदार** (pedal laceration) कई जीनसों में होता है, आधारीय डिस्क में से संकीर्णनों के द्वारा पालियाँ बन जाती हैं, प्रत्येक पालि में स्पर्शक और आंत्रयोजनियाँ बनकर नया एनीमोन बन जाता है। कभी-कभी एनीमोन अपनी आधारीय डिस्क और कुछ आंत्रयोजनियों को पीछे चिपके रहने वाले स्थान पर ही छोड़कर आगे चल पड़ता है, पुराने स्थान पर बच रहे इन भागों से एक नए एनीमोन का पुनरुद्भवन हो जाता है और जनक प्राणी में हानि हुए भाग बन जाते हैं। पाद-विदार द्वारा बने हुए एनीमोनों में आंत्र-योजनियों तथा साइफ़ोनोग्लिफ़ों की संख्या एवं व्यवस्था में अनेक अनियमितताएँ मिलती हैं। 3. यदि एनीमोन को स्तम्भ पर से आड़ा दो भागों में काट दिया जाए तो निचले भाग में स्पर्शकों से युक्त एक नई मुख-डिस्क बन जाती है लेकिन ऊपरी भाग में प्रायः नई आधारीय डिस्क नहीं बन पाती, उसके बजाए इसकी निचली अपमुख सतह पर स्पर्शकों का दूसरा सेट बन जा सकता है, इस प्रकार यह **विषमरूपण** (hetermorophosis) दर्शाता है।

(ख) **लैंगिक जनन** : लिंग अलग-अलग होते हैं, एण्डोडर्मी गोनड बड़ी आंत्र-योजनियों पर मोटी अनुदैर्घ्य पट्टियाँ बनाते हैं जो जठर सूत्रों के समानांतर होती हैं। लेकिन कुछ एनीमोन उभयलिंगी होते हैं। युग्मकों का निर्माण एण्डोडर्मी गोनडों की अंतराली कोशिकाओं में होता है, लेकिन उनका परिपक्वन मीज़ोग्लीया में होता है। पृथक्लिंगी प्राणियों में केवल नर के शुक्राणु ही बाहर समुद्री जल में छोड़े जाते हैं, मादा के अंडे भीतर ही बने रहते हैं। शुक्राणु मादा के मुख से होकर उसकी जठर-वाही गुहा में पहुँच जाते हैं और अंडों को निषेचित कर देते हैं। निषेचित अंडे से एक अंडाकार सिलियायुक्त प्लैनुला लार्वा बन जाता है जो स्वच्छंद तैरने वाला होता है। प्लैनुला में कायान्तरण होकर एक मुख, अग्रांत्र, साइफ़ोनोग्लिफ़ तथा 6 से 24 आंत्र-योजनियाँ बन जाती हैं। भ्रूण नीचे डूबता जाता है और अपने अपमुख सिरे के सहारे चिपक जाता है और मुख-डिस्क पर स्पर्शक बन जाते हैं।

फ़ाइलम नाइडेरिया का वर्गीकरण

नाइडेरिया डिप्लोब्लास्टिक होते हैं, मीज़ोग्लीया या तो एक पतली जेली-जैसी रचनाविहीन झिल्ली होती है या यह मोटा हो गया होता है और तब उसमें तंतु और अमीबोसाइट पाये जाते हैं। एंडोडर्म के अस्तर वाली एक जठर-वाही गुहा होती है, यह पाचक और परिसंचारी होती है. इसमें केवल एक ही छिद्र मुख होता है। उच्चतर उदाहरणों में एक्टोडर्म एक अग्रांत्र बनाता है जो निम्नतर उदाहरणों में नहीं होता। नाइडेरिया में स्पर्शक होते हैं और इनका विशिष्ट लक्षण नीमैटोसिस्ट पाए जाते हैं। नाइडेरिया एक बाह्यकंकाल का स्राव कर ले सकते हैं और उनके मीज़ोग्लीया में एक अंतःकंकाल भी बना हो सकता है। कोशिकाएं निम्न संघटना वाले ऊतक बनाती हैं, लेकिन वास्तविक अंग कोई नहीं होता। इनमें दो भिन्न संरचनात्मक रूप पाए जाते हैं जिन्हें पौलिप और मेडुसा कहा जाता है, हाइड्रोज़ोआ

नाइडेरिया के प्ररूप

1. **बोगेनविलिया** (*Bougainvillea*)—यह एक द्विरूपी कॉलोनी है, एक रेंगने वाले हाइड्रोज़ोआ से शाखाएँ निकलती हैं जिनसे बहुसंख्यक पौलिप और मेडुसा बन जाते हैं। पौलिप में एक लंबा वृंत और एक हाइड्रैंथ होता है। हाइड्रैंथ में मैनुब्रियम पर बना एक मुख होता है। मैनुब्रियम के तुरन्त नीचे स्पर्शकों का एक घेरा बना होता है, अधिक बड़े अपमुख स्पर्शकों का एक और दूसरा घेरा हाइड्रैंथ के निचले भाग में बना होता है। दोनों प्रकार के स्पर्शक ठोस होते हैं और उनमें
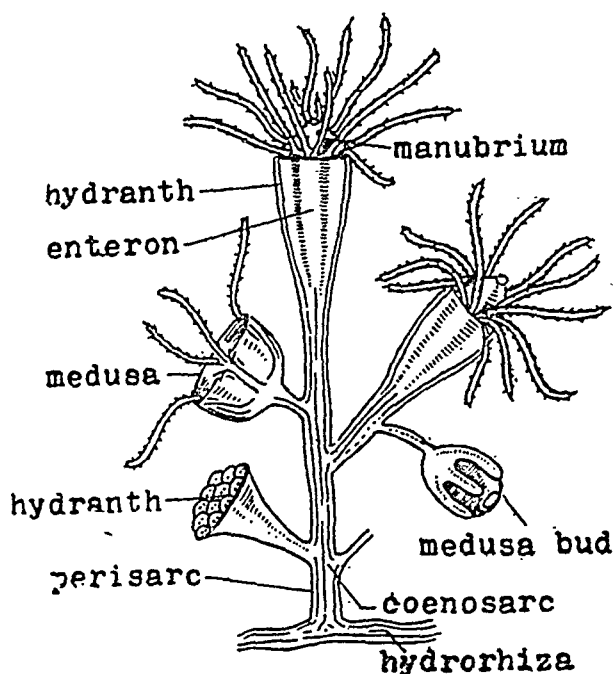
चित्र 133. **बोगेनविलिया रेमोसा** (*Bougainvillea ramosa*)।
Manubrium, मैनुब्रियम ; hydranth, हाइड्रैंथ ; enteron, आंत्र। medusa, मेडुसा ; medusa bud, मेडुसा मुकुल ; perisarc, पेरिसार्क ; coenosarc, सीनोसार्क ; hydrorhiza, हाइड्रोराइज़ा।

रिक्तिकायुक्त एंडोडर्मी कोशिकाओं का एक अक्ष बना होता है। हाइड्रोराइज़ा, शाखाओं तथा वृंतों के ऊपर एक कड़ा पेरिसार्क चढ़ा होता है, लेकिन हाइड्रैंथ के आधार पर आकर रुक जाता है, और यह हाइड्रोथीका नहीं बनाता। वृंत के सीनोसार्क से कई मुकुल निकलते हैं, प्रत्येक मुकुल के भीतर एकल मेडुसा बन जाता है। मेडुसा एक गहरी घंटिका जैसा होता है, यह वृंत टूटकर अलग हो जाता है और तैरता जाता है ; ब्लास्टोस्टाइल नहीं होता।

2. **फाइज़ेलिया पीलेजिका** (*Physalia pelagica*) (पुर्तगाली युद्ध-पोत, Portuguese man-of-war)—यह एक चटकीले नीले रंग की बहुरूपी कॉलोनी

crest
gas glands
pore
gastrozooid
large dactylozooid
small dactylozooid
gonozooid
tentacle ribbon with nematocysts
A.
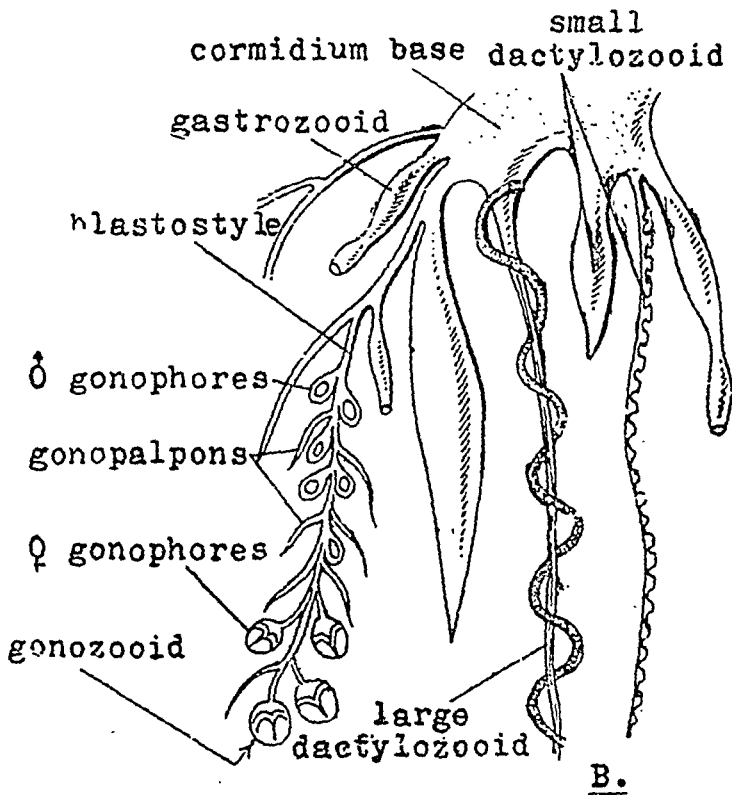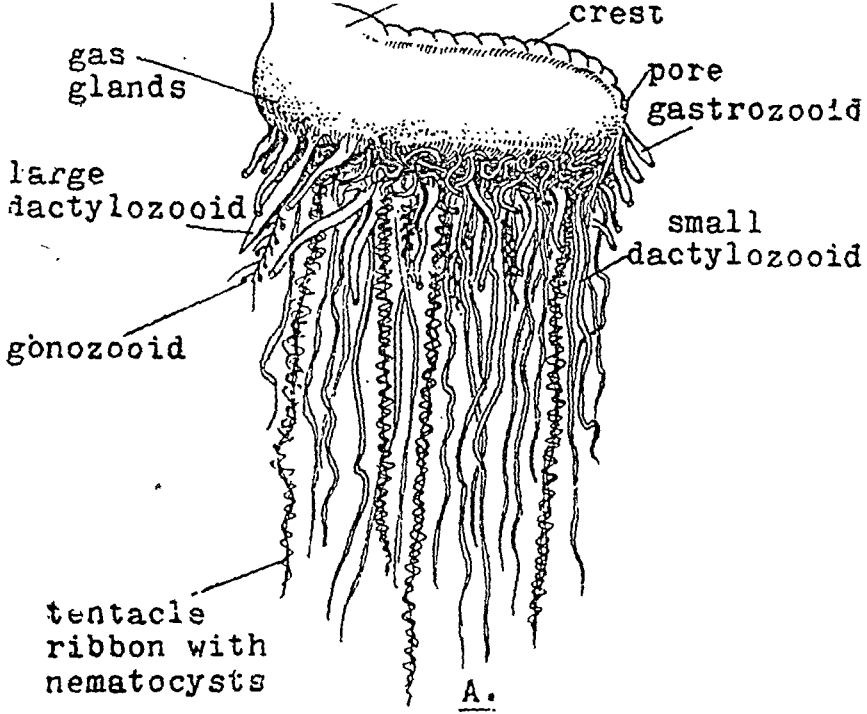
चित्र 134. A—फ़ाइजैलिया पीलैजिका ; B—एक कॉर्मीडियम।
Pneumatophore, न्यूमैटोफोर; crest, क़िरीटी; pore, छिद्र; gastrozooid, गैस्ट्रोज़्-ऑइड; gas glands, गैस ग्रन्थियाँ; large dactylozooid, बड़ा डैक्टिलोज़ऑइड; small dactylozooid, छोटा डैक्टिलोज़ूआइड; gonozooid, गोनोज़ूआइड; tentacle ribbon with nematocyst, नीमैटोसिस्टों से युक्त रिबनी स्पर्शक; cormidium, कार्मीडियम का आधार; blastostyle, ब्लास्टोस्टाइल; gonophores, गोनोफ़ोर; gonopalpon, गोनो-पैल्पान; gonozooid, गोनोजआइड।

के रूप में होता है, यह उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय महासागरों में तिरता पाया जाता है। कॉलोनी के सदस्य सीनोसार्क में से पैदा होते हैं। इसमें गैस से भरा हुआ एक बड़ा **न्यूमैटोफ़ोर** (pneumatophore) होता है जो कई मेडुसाई रचनाओं का बना होता है, यह सतह पर तिरता रहता है, इसमें गैस-ग्रन्थियाँ होती हैं जिनसे एक गैस पैदा होती है—इस गैस में 90% नाइट्रोजन, 9% ऑक्सीजन और 1% आर्गन होती है। कुछ स्पीशीज़ में, लेकिन **फ़ाइज़ेलिया** में नहीं, न्यूमैटोफ़ोर में एक छिद्र होता है जिसके द्वारा गैस बाहर को छोड़ी जा सकती है और कॉलोनी नीचे बैठती जाती है। न्यूमैटोफ़ोर के नीचे अनेक **कॉर्मीडियम** (cormidium) लटके होते हैं जो एक रेखा में व्यवस्थित नहीं होते, कॉर्मीडियम बहुरूपी प्राणियों का एक गुच्छा होता है जो कि रूपांतरित पौलिप होते हैं, ये प्राणी इस प्रकार हैं डैक्टिलोज़ूऑइड (dactylozooids) अर्थात् अंगुलीजीवक, गोनोज़ूऑइड (gonozooid) अर्थात् जनन-जीवक, गैस्टरोज़ूऑइड (gasterozooid) अर्थात् पोषजीवक। **डैक्टिलोज़ूऑइड** अनेक साइज़ के होते हैं; प्रत्येक डैक्टिलोज़ूऑइड एक नलिकाकार मुख-विहीन प्राणी होता है जिसमें शक्तिशाली पेशियों से और नीमैटोसिस्टों की एक एँठती जाती हुई पट्टी से युक्त एक लंबा स्पर्शक होता है। डैक्टिलोज़ूऑइड 40 फुट तक के लंबे हो सकते हैं, ये परस्पर मिलकर एक प्रवाही जाल-जैसा बना लेते हैं जिसमें खाने के लिए मछलियां पकड़ ली जाती हैं, स्पर्शक इन मछलियों को खींच कर समीप ले आते हैं। **गैस्टरोज़ूऑइड** नलिकाकार और मुख से युक्त होते हैं, इनमें एक लंबा स्पर्शक भी बना हो सकता है। गैस्ट्रोज़ूऑइड के होंठ मछली के ऊपर गड़ा दिए जाते हैं और अंशतः पचा हुआ भोजन तरल रूप में शरीर के भीतर ग्रहण कर लिया जाता है। **गोनोज़ूऑइड** अथवा गोनोडेंड्रा विशाखनशील ब्लास्टोस्टाइल होते हैं जिनमें पत्ती-जैसे **गोनोपैल्पॉन** (gonopalpons) और नर तथा मादा मेडुसा अथवा **गोनोफ़ोर** (gonophore) होते हैं। मादा गोनोफ़ोर अपविकसित होते हैं, कुछ समय बाद वे टूट कर मुक्त हो जाते हैं, नर गोनोफ़ोर अपविकसित तो होते हैं लेकिन स्थायी रूप में जुड़े रहते हैं। जनन-कोशिकाओं से एक प्लैनुला लार्वा बनता है जो एक नई कॉलोनी बनाता है। न्यूमैटोफ़ोर तथा गोनोफ़ोर रूपांतरित मेडुसाई प्राणी होते हैं। एक छोटी मछली जिसका नाम **नोमियस** (*Nomeus*) है **फ़ाइज़ेलिया** के साथ सह-भोजी संबंध बनाते हुए उसके भयंकर स्पर्शकों के समीप रहती है। **फ़ाइज़ेलिया** की कॉलोनी के सदस्यों में श्रम-विभाजन देखा जाता है और इस प्रकार इन सदस्यों में मेटाज़ोआ के अंगों का सादृश्य मिलता है।

3. **हैलिस्टेमा** (*Helistemma*)—यह एक बहुरूपी कॉलोनी होता है जिसमें एक लंबा, उतराता हुआ तना होता है जिस पर उसकी पूरी लंबाई में बहुरूपी ज़ूऑइड लगे होते हैं। तने के ऊपरी सिरे पर एक छोटा **न्यूमैटोफोर** होता है जो एक अंतर्वलित कप-जैसा होता है, इसके भीतर गैस भरी होती है। न्यूमैटोफ़ोर के नीचे अनेक पास-पास व्यवस्थित **नेक्टोकेलिक्स** (nectocalyx) अथवा तरण घंटिकाएँ (swimming bells) होती हैं; ये पारदर्शी होती हैं और मैनुब्रियमों से रहित

मेडुसा-जैसी दिखाई पड़ती हैं लेकिन इनमें एक वीलम, पेशियाँ और नालें होती हैं। नेक्टोकैलिक्सों में तालबद्ध संकुचन होता है जिसके द्वारा वे जल को भीतर लेते और उसे तुरंत बलपूर्वक बाहर को निकाल देते हैं, इस क्रिया से वे कॉलोनी को समुद्री जल में चलाते जाते हैं। नेक्टोकैलिक्सों के नीचे तने पर समूहों के रूप में अनेक **कॉर्मीडियम** होते हैं जो रैखिक क्रम में एक के बाद एक लगे होते हैं। एक
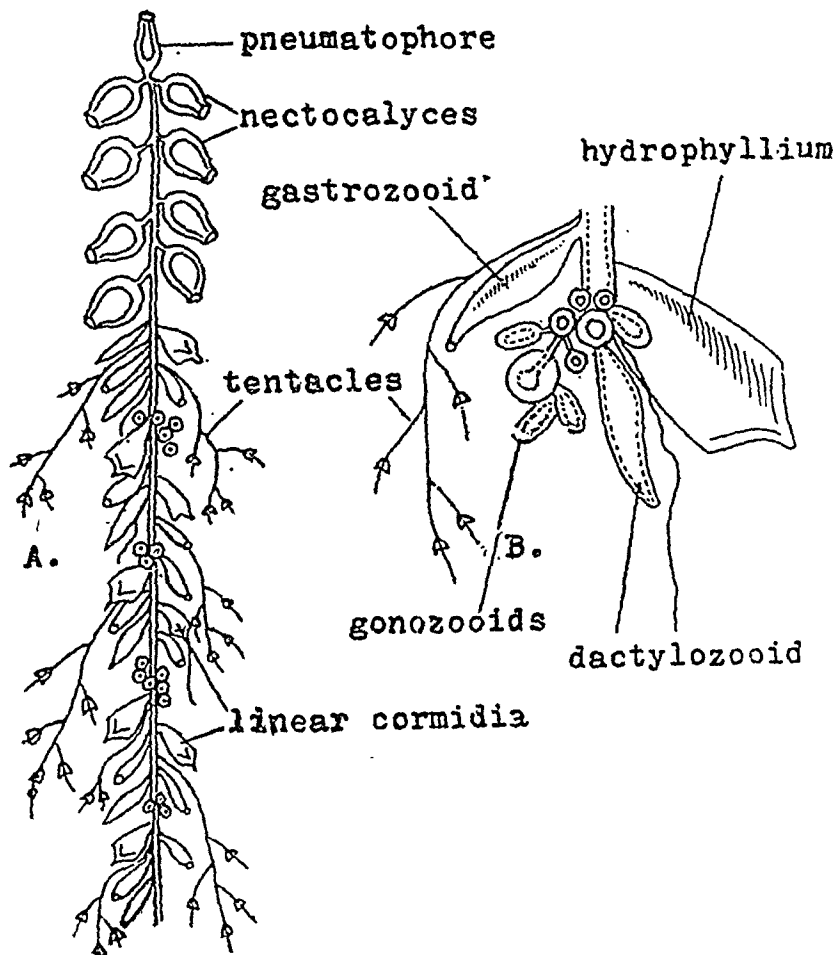
चित्र 135. **हैलिस्टेमा टर्गेस्टिनम** (*Halistemma tergestinum*) ;
B–एक कॉर्मीडियम ।

Pneumatophore, न्यूमैटोफ़ोर; nectocalyces, नेक्टोकैलिक्स; gastrozooid, गैस्ट्रोज़ूऑइड; hydrophyllium, हाइड्रोफ़िलियम; tentacles, स्पर्शक; gonozooids, गोनोज़ूऑइड; dactylozooid, डैक्टिलोज़ूऑइड; linear cormidia, रैखिक कॉर्मीडियम ।

कॉर्मीडियम में गैस्ट्रोज़ूऑइड, डैक्टिलोज़ूऑइड, हाइड्रोफ़िलियम तथा गोनोज़ूऑइड होते हैं। गैस्ट्रोज़ूऑइड नलिकाकार होता है और उसमें एक मुख तथा एक स्पर्शक

होता है, यह स्पर्शक लंबा और विशाखित होता है तथा उस पर बहुसंख्यक नीमैटोसिस्ट होते हैं। **डैक्टिलोज़ूऑइड** नलिकाकार और बिना मुख वाला होता है, लेकिन इसमें एक अविशाखित स्पर्शक होता है जो संवेदी होता है। **गोनोज़ूऑइड** अथवा स्पोरोसैक समूहों में होते हैं, इन पर नर और मादा मेडुसा अथवा गोनोफ़ोर बने होते हैं। **हाइडोफिलियम** एक शील्ड की आकृति की पत्ती होता है जो शेष कॉर्मीडियम को ढके रहता और उसकी रक्षा करता है। ऊपरी सिरा समीपस्थ होता है और **ओबीलिया** के चिपकने वाले सिरे के अनुरूप होता है। नाइडेरिया अरीय सममिति वाले होते हैं, लेकिन **हेलिस्टेमा** में द्विपार्श्वीय सममिति पाई जाती है। जनन कोशिकाओं से एक युग्मन बनता है जो एक प्लैनुला में परिवर्धित हो जाता है, प्लैनुला का एक सिरा अंतर्वलित होकर न्यूमैटोफ़ोर बन जाता है और निचले सिरे से पौलिप बन जाता है। यह प्रथम पौलिप लंबा और मुकुलित होकर कॉलोनी बना देता है।

4. **वेलेला** (*Velella*) एक बहुरूपी कॉलोनी है जो अकेले मेडुसा-जैसा दिखाई पड़ता है। इसका शरीर असमचतुर्भुज (रॉम्बाइड) अर्थात् टेढ़ी वर्फ़ीनुमा आकृति वाला होता है जिसकी ऊपरी सतह एक तिरछे पाल के रूप में होती है। पृष्ठ दिशा में एक न्यूमैटोफ़ोर होता है जो एक काइटिनी कक्ष-युक्त डिस्क होती है, इस डिस्क में हवा भरी होती है, खानों का बाहर से संबंध होता है। देह के केन्द्र से एक बड़ा
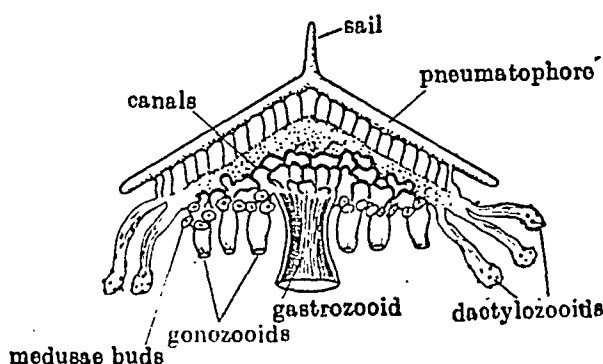
चित्र 136. **वेलेला** का खड़ा सेक्शन (V. S.)

Canals, नालें ; sail, पाल , pneumatophore, न्यूमैटोफ़ोर ; dactylozooid, डैक्टिलोज़ूऑइड ; gastrozooid, गैस्ट्रोज़ूऑइड ; gonozooids, गोनोज़ूऑइड ; medusa buds, मेडुसा मुकुल।

गैस्ट्रोज़ूऑइड लटकता होता है जिसके ऊपर एक मुख बना होता है। गैस्ट्रोज़ूऑइड के चारों ओर बड़ी संख्या में गोनोज़ूऑइड तथा ब्लास्टोस्टाइल होते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक मुख होता है, इनसे स्वच्छंद तैरने वाले मेडुसा बनते हैं। देह के सीमांत पर लंबे स्पर्शक सरीखे डैक्टिलोज़ूऑइड का एक घेरा होता है जिसमें नीमैटोसिस्ट होते हैं। शरीर के भीतर एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म की बनी बहुत-सी विशाखित

नालें होती हैं, एंडोडर्मी नालें गोनोज़ूऑइडों तथा गैस्ट्रोज़ूऑइडों की आंत्र से जुड़ती हैं मगर एक्टोडर्मी नालें न्यूमैटोफ़ोर के खानों में को खुलती हैं। न्यूमैटोफ़ोर तथा उसका पाल एक रूपांतरित मेडुसाई प्राणी होते हैं, लेकिन गैस्ट्रोज़ूऑइड, गोनोज़ूऑइड तथा डैक्टिलोज़ूऑइड रूपांतरित पौलिप होते हैं। **वेलेला** दक्षिण अटलांटिक समुद्रतट के सहारे-सहारे पाया जाता है जहाँ पर हवा के द्वारा कॉलोनी इधर-उधर आती-जाती रहती है।

5. **पौर्पिटा** (*Porpita*) एक बहुरूपी कॉलोनी है जो **वेलेला** से मिलती-जुलती होती है। यह कॉलोनी मेडुसा-जैसी होती है। इसमें एक बड़ा डिस्क-जैसा शरीर होता है जिसमें हवा से भरा एक काइटिनी कक्ष से युक्त न्यूमैटोफ़ोर होता है, इसका प्रत्येक कक्ष दो छिद्रों द्वारा बाहर को खुला रहा है। देह से ये रचनाएँ नीचे को लटकी होती हैं, एकल गैस्ट्रोज़ूऑइड, बहुसंख्यक नलिकाकार गोनोज़ूऑइड अथवा ब्लास्टोस्टाइल जिन पर मेडुसा बने होते हैं, और नीमैटोसिस्टों से युक्त अनेक लंबे सीमांतीय डैक्टिलोज़ूऑइड। देह में फैली हुई विशाखित नालें होती हैं, जिनमें से कुछ न्यूमैटोफ़ोर में को खुलती हैं और कुछ ज़ूऑइडों के आंत्र से जुड़ी होती हैं।
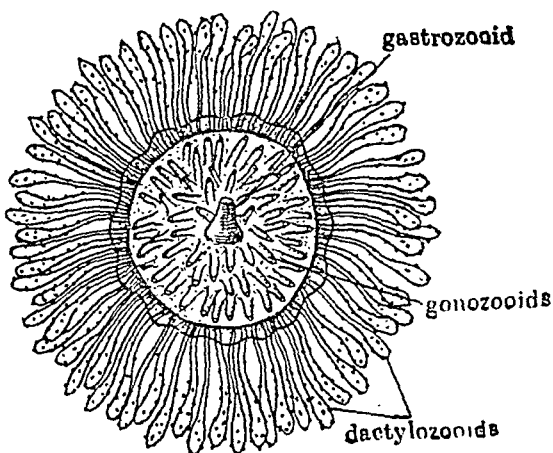
चित्र 137. **पौर्पिटा** (अधर दृश्य)।

Gastrozooid, गैस्ट्रोज़ूऑइड; gonozooid, गोनोज़ूऑइड; dactylozooids, डैक्टिलोज़ूऑइड।

6. **राइज़ोस्टोमा** (*Rhizostoma*)—हिंद-प्रशांत क्षेत्र के उथले जल में पाई जाने वाली यह एक बड़ी जेलीफ़िश होती है। इसमें तश्तरी जैसा एक छत्र होता है जिसका सीमांत कटावदार होता है, अलग-अलग स्पीशीज़ में 8 या 16 टेंटैकुलोसिस्ट होते हैं, सीमांतीय स्पर्शक नहीं होते। नन्हे **राइज़ोस्टोमा** में एक केन्द्रीय मुख होता है, लेकिन वयस्क में चार मुख-बाहुओं की अतिवृद्धि और उनमें वलन पड़ जाने के कारण उसका मुख बंद हो जाता है, इस मुख की बजाए अब इसमें छिद्र-सरीखे हज़ारों **चूषण मुख** (sucking mouths) बन जाते हैं जो कि मुख-बाहुओं की बंद हो गई

खांचों में स्थित रहते हैं, ये चूषण मुख नालों से जुड़े होते हैं। मुख-बाहु बाह्य पाचन के अंग बन जाते हैं, ये आहार को पचाते हैं और तरल इन चूषण-मुखों द्वारा अवशोषित हो जाता है। यह बहुमुखीय (polystomatous) दशा जंतुओं में अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। मुख-बाहु दूरस्थ सिरे पर द्विशाखित होती हैं, और आठ लंबे मुद्गराकार **अंतस्थ उपांग** (terminal appendages) बन जाते हैं। स्पर्शक केवल मुख-बाहुओं पर दो समूहों में बने होते हैं, ये सूत्राकार जड़-जैसे दीखते हैं और इन पर नीमैटोसिस्ट होते हैं। अतिरिक्त मुखधारी बहिर्वृद्धियाँ जिन्हें **स्कैपुलेट** (scapulets) कहते हैं मुख-बाहुओं पर घंटिका के ठीक नीचे स्थित होती हैं।
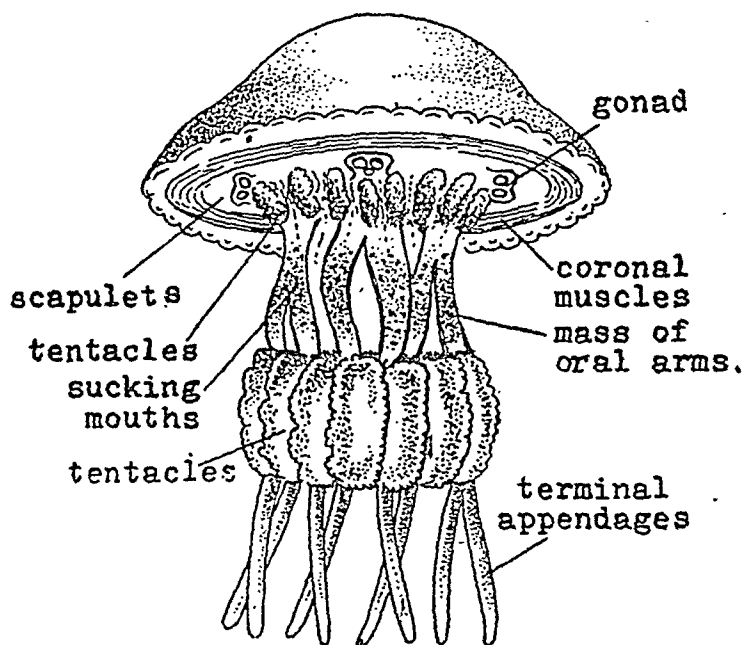
चित्र 138. **राइज़ोस्टोमा पल्मो** (*Rhizostoma pulmo*)।

Gonad, गोनड; coronal muscles, किरीटी पेशियाँ; terminal appendages, अंतस्थ उपांग; tentacles, स्पर्शक; sucking mouths, चूषण मुख; scapulets, स्कैपुलेट।

7. **पथरीले मूंगे**—इनमें पौलिप होते हैं जो बनावट में समुद्री ऐनीमोनों से बहुत मिलते-जुलते होते हैं, इनमें स्पर्शक और आंत्रयोजनियाँ छह की गुणा में होते हैं, लेकिन अंतर यह है कि इनमें कोई साइफ़ोनोग्लिफ़ नहीं होते और दूसरे ये प्राय: कॉलोनीय होते हैं। इनमें कैल्सियम कार्बोनेट का बना एक एक्टोडर्मी बाह्यकंकाल पाया जाता है। पौलिप के बाह्यकंकाल को **कोरैलाइट** (corallite) अथवा प्रवालक कहते हैं और कॉलोनी के बाह्यकंकाल को **कोरैलम** (corallum) अथवा संप्रवाल कहते हैं। पौलिप के एपिडर्मिस से पहले तो कैल्सियम कार्बोनेट की एक आधारीय डिस्क का स्राव होता है, उसके बाद कप की **थीका** नामक दीवारों का जिनके भीतर

गतिहीन रूप में पौलिप बंद रहता है। थीका के भीतर अरीय **पट** (septa) होते हैं उसी प्रकार से जैसे ऐनीमोन में आंत्रयोजनियाँ होती हैं, इन पटों पर नीमैटोसिस्ट होते हैं। थीका के केन्द्र में एक खड़ी शलाका होती है जिसे स्तम्भिका अथवा **कॉलुमेला** (columella) कहते हैं, इसी पर आकर प्राथमिक पट समेकित होते हैं। ये सब मिलकर पौलिप का बाह्यकंकाल बनाते हैं, पौलिप कोरैलाइट को भरे रहता और अंशतः बाहर को निकला रहता है। एक कॉलोनी में हज़ारों पौलिप उसके कोरैलाइट बनाते हैं और ये कोरैलाइट समेकित होकर एक कोरैलम बनाते हैं, लेकिन एक कोरैलम के तमाम पौलिप पार्श्व संयोजनों के द्वारा जुड़े होते हैं। मूँगे की कॉलोनी के आकार में वृद्धि कॉलोनी के सीमांत पर नए-नए पौलिपों के मुकुलन द्वारा होती जाती है। मूँगों में अशन केवल रात्रि को ही होता है।

मूँगों में विभिन्न आकृतियाँ और साइज़ मिलते हैं, कुछ एकाकी होते हैं और उनमें बड़े-बड़े पौलिप होते हैं, लेकिन बहुलता कॉलोनीय मूँगों की है जिनमें पौलिप बहुत छोटे आकार के होते हैं। कुछ मूँगों को आभूषणों और जेवरों में इस्तेमाल किया जाता है। मूँगा कॉलोनियाँ उष्णकटिबंधीय समुद्रों में सबसे ज़्यादा प्रचुर होती हैं, लेकिन उनमें से अधिकतर 22°C पर अधिक अच्छी तरह फलती-फूलती हैं। समुद्र में उदग्र समतल में मूँगा चट्टानें (coral reefs) अधिक से अधिक 50 मीटर तक की गहराई तक सीमित होती हैं। प्रकाश और तलछट की मात्रा से भी मूँगों पर सीमा लग जाती है, वे गहरे अंधियारे वाले क्षेत्रों में तथा जहाँ पर तलछट उससे अधिक तीव्र गति से जमता जा रहा हो जितना कि उसे सिलिया हटा पाते हैं तो वे वहाँ नहीं उग पाते। 50 मीटर से नीचे चट्टानें नहीं होतीं हालाँकि एकल मूँगे 8000 मीटर तक की गहराई पर पाए जाते हैं। मूँगों ने पृथ्वी की पपड़ी की एक मोटी परत का निर्माण किया है, इन्होंने कैरिबियन समुद्र में तथा हिंद प्रशांत क्षेत्र में अफ्रीका के पूर्वी तट से लेकर आस्ट्रेलिया तक मूँगा चट्टानें बनाई हैं, आस्ट्रेलिया के उत्तर-पूर्व तट पर बनी हुई मूँगा चट्टान ग्रेट बैरियर रीफ के नाम से प्रसिद्ध है। मूँगा चट्टान चूना पत्थर का बना एक कटक होता है जिसकी ऊपरी सतह समुद्री सतह के ठीक नीचे होती है, और निम्न ज्वार के समय जो हवा में खुल जाया करती है। मूँगा चट्टानें तीन प्रकार की होती हैं: तटीय चट्टानें (fringing reefs), रोधी चट्टानें (barrier reefs), और अडल (atolls)। **तटीय-मूँगा चट्टानें** समुद्र की तली से बनती और तट से कुछ ही फुट से लेकर समुद्र में चौथाई मील दूर तक चलती जाती हैं, इसमें चट्टान और तट के बीच में कोई नौचालनी जलमार्ग नहीं होता। **रोधी मूँगा चट्टानें** 20 फुट से लेकर एक मील तक चौड़ी होती हैं, और इनके एवं तट के बीच में आधे से 10 मील तक चौड़ा एक गहरा जलमार्ग होता है जिसमें जलयान चल सकते हैं। आस्ट्रेलिया के उत्तर-पूर्व पर बनी ग्रेट बैरियर रीफ़ 1,200 मील लंबी है। **अडल** एक वृत्ताकार अथवा घोड़े की नाल की शक्ल की मूँगा चट्टान होता है जिसके बीच में जल का एक लैगून (lagoon) होता है जो छोटा या 50 मील तक की चौड़ाई का हो सकता है। कोई भी मूँगा चट्टान लगातार जारी

नहीं रहती, उसमें जहाँ-तहाँ आर-पार रास्ते बन कर अनेक मूँगा-चट्टानें तथा द्वीप बन जाते हैं। मूँगा चट्टान में केवल मूँगे ही नहीं होते वरन् इसमें अन्य बहुत से प्रकार के जंतुओं को आश्रय-स्थल मिलता है। हालाँकि मूँगा चट्टानें मुख्यतः पथरीले मूँगों से बनती हैं फिर भी शैवाल, फ़ोरेमिनिफ़र-प्राणी और ऐल्सियोनेरियन मूँगे ये सब भी मूँगा चट्टानों के निर्माण में योगदान देते हैं। चट्टान-उत्पादक जीवों के अतिरिक्त मूँगा चट्टानों में बहुत संख्या में स्पंज, समुद्री-एनीमोन, इकाइनोडर्म, मौलस्क तथा मछलियाँ आदि प्राणी भी पाए जाते हैं।
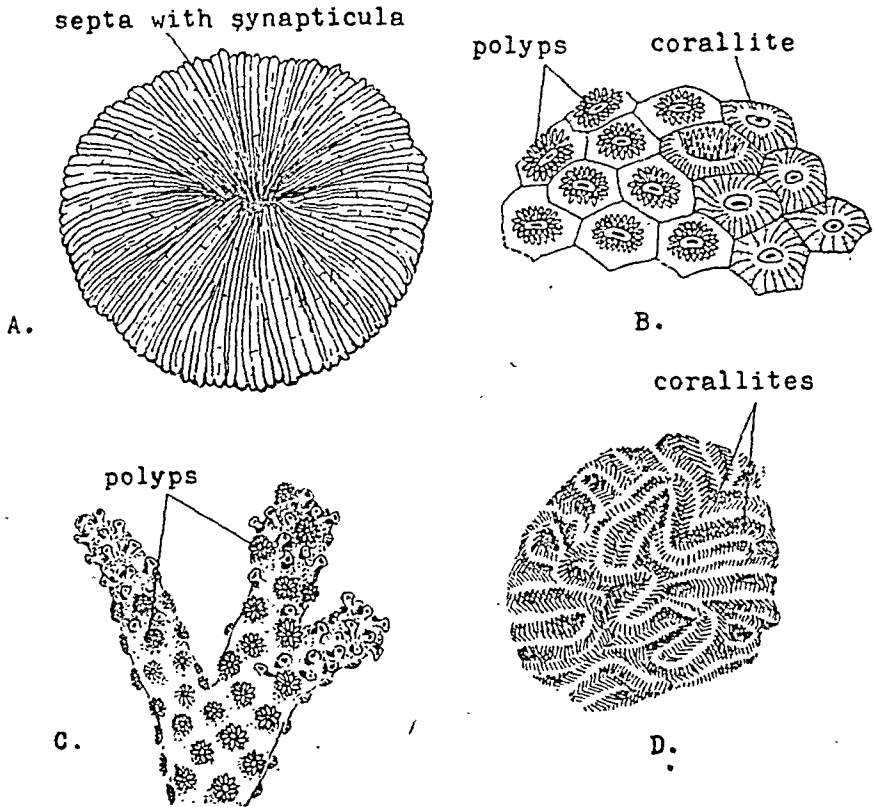
चित्र 139. पथरीले मूँगे। A—**फंजिया एलिगैन्स** (*Fungia elegans*)। B—**ऐस्ट्रीया पैलिडा** (*Astraea pallida*)। C—**मैड्रेपोरा ऐस्पेरा** (*Madrepora aspera*)। D—**मीएंड्राइना सिनुओसा** (*Meandrina sinuosa*)।
Septa with synapticula, पटबंधों सहित पट; polyps, पौलिप; corallite, कोरैलाइट ;

मूँगा चट्टानों की खड़ी मोटाई खूब ज्यादा होती है हालाँकि चट्टान बनाने वाले मूँगे केवल 50 मीटर तक की गहराई तक जीवित रहते हैं, और प्राचीन भूवैज्ञानिक युगों के मूँगे भी उथले वेलांचली जल में रहते थे। इतनी अधिक मोटाई वाली चट्टानें कैसे बन गईं इसके स्पष्टीकरण के लिए अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें से

दो सिद्धान्तों का विवेचन हम यहाँ करेंगे। 1. डार्विन के अवतल सिद्धान्त (Darwin's Subsidence Theory) में कहा गया है कि मूंगा चट्टानें शुरू-शुरू में ढलवाँ समुद्र-तटों पर तटीय मूँगा दीवारों के रूप मे बनीं, जब समुद्र-तट नीचे धंसता गया तो उनके और तट के बीच के जल-मार्ग के चौड़ा होते जाने के साथ-साथ वे रोधी चट्टानें बन गईं। यदि वह थल खंड एक द्वीप रहा ऊ, कि पूरी तरह नीचे समा जाता है तब एक अडल बन जाता है। इस प्रकार डूबते जाने अथवा अवतलन के कारण चट्टानों की मोटाई बढ़ती जाती है। 2. डैली (Daly) के हिमनद नियंत्रण सिद्धान्त (Glacial Control Theory) में कहा गया है कि अन्तिम हिमनद कल्प में जब हिमावरण बने तब महासागरों का स्तर उनकी आज की सतह से (0 से 70 मीटर नीचे हो गया था। लहरों ने तट को काट कर चपटे प्लेटफ़ार्म बना दिए जो मूँगों की वृद्धि के लिए उपयुक्त थे। जैसे-जैसे हिमावरण पिघले और ताप बढ़ता गया वैसे-वैसे मूँगे इन प्लेटफार्मों पर उगने लगे और समुद्र की सतह ऊपर उठते जाने के साथ-साथ वे भी ऊपर को उठते चले आए, और हर प्रकार की मूँगा-चट्टानें पूर्व-विद्यमान प्लेटफ़ार्मों पर बन गयीं। ऐसा प्रमाण मिलता है कि मूँगा-चट्टानें आज भी निमग्न थल पर उगती जा रही हैं और मूँगा-चट्टानों की नींव अब उनसे कहीं ज्यादा गहराई पर पहुँच चुकी है जितनी कि वह तब थी जब कि उनकी वृद्धि शुरू हुई थी।

जीवित मूँगों पर किए गए प्रेक्षणों से पता चला है कि उनकी वृद्धि-दर 5 mm. से 20 cm. प्रति वर्ष होती है, और इस तरह 50 m. गहरी चट्टान 8000 से कम वर्षों में बन जाएगी, और तमाम ज्ञात चट्टानें 30,000 से कम वर्षों में बन गई हो सकती हैं। मूँगा चट्टानों में किए गए कुछ वेधनों से मालूम हुआ कि मूँगा चट्टानें समतल चट्टानों पर टिकी हुई हैं लेकिन कुछ अन्य वेधनों से मालूम हुआ कि मूँगा-चट्टानों में नीचे बने हुए कोई प्लेटफ़ार्म नहीं थे बल्कि उनके नीचे केवल रेत और कवच थे। इन तथ्यों से लगता है कि कुछ मूँगा-चट्टानें पूर्व-विद्यमान प्लेटफ़ार्मों पर बनीं किन्तु अनेक चट्टानें डार्विन के अवतल सिद्धान्त के अनुसार बनीं।

मूँगे—**फंजिया** (*Fungia*) जिसे कुकुरमुत्ता मूँगा (mushroom coral) भी कहते हैं, एकाकी किन्तु बड़ा डिस्क-जैसा कुकुरमुत्ते की आकृति का कोरेलाइट (प्रवालक) होता है, इसकी थीका केवल निचले भाग में ही होती है, विभिन्न पट (septa) कुछ संयोजनों के द्वारा जुड़े होते हैं जिन्हें पटबंध (synapticula) कहते हैं। **ऐस्ट्रिया** (*Astrea*) एक कोरैलम (संप्रवाल) है जिसके कोरैलाइट (प्रवालक) एक दूसरे से निकट सम्पर्क बनाए होते हैं। **मैड्रेपोरा** (*Madrepora*) जिसे मृग-सींग मूँगा (stag-horn coral) भी कहते हैं एक विशाखित पेड़-सरीखा कोरैलम होता है जिसमें छोटे-छोटे कोरैलाइट होते हैं। **मीएंड्राइना** (*Meandrina*) (मस्तिष्क मूँगा, brain coral) में एक बड़ा गोल कोरैलम होता है जिसमें गढ़ों में पंक्तिवद्ध रूप में व्यवस्थित असम्पूर्ण पौलिप होते हैं, पंक्तियों के बीच में उन्हें एक-दूसरे से पृथक् करने वाले कटक होते हैं, और प्रत्येक पंक्ति के पौलिप एक-दूसरे के बहुत समीप होते हैं जिसके

कारण परस्पर संयोजित कोरैलाइट मानव-मस्तिष्क के संवलनों का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

एल्सियोनेरिया प्रकार के मूँगे जैसे कि लाल मूँगा, आर्गन-पाइप मूँगा, समुद्री पंखे, और समुद्री कलम, ये सभी कॉलोनीय होते हैं जिनमें 8 पिच्छाकार स्पर्शकों तथा 8 सम्पूर्ण आंत्रयोजनियों से युक्त छोटे-छोटे पौलिप होते हैं। एक कॉलोनी के तमाम पौलिप एक नरम मांसल ऊतक के द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं, इस ऊतक को **सीनेन्काइम** (coenenchyme) कहते हैं जो मीज़ोग्लीया का बना होता है और इनमें सूराख चलते जाते हैं और इन सूराखों में से **सॉलीनिया** (solenia) नामक एंडोडर्मी नलिकाएँ चलती हैं जो सभी प्रकार के पौलिपों में जारी रहती हैं। पौलिपों का केवल ऊपरी मुख-भाग सीनेन्काइम से बाहर को निकला होता है। सीनेन्काइम के मीज़ोसाइट एक आंतरिक कंकाल का स्राव करते हैं जो कैल्सियमी कंटिकाओं अथवा एक शृंगीय पदार्थ का बना होता है।
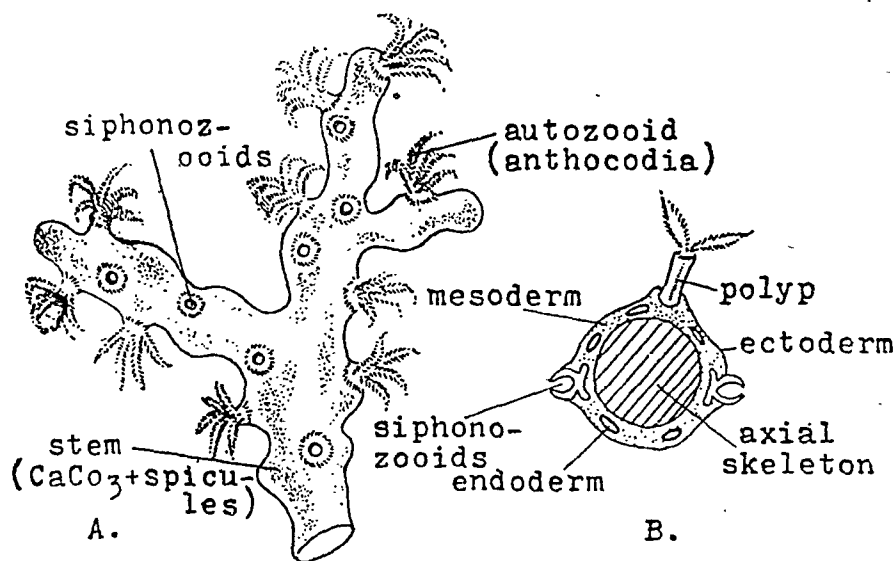
चित्र 140. **कोरैलियम रुब्रम**। A—कॉलोनी का एक अंश, B—स्तम्भ का अनुदैर्घ्य सेक्शन।
Siphonozooids, साइफ़ोनोज़ूऑइड; autozooid (anthocodia), ऑटोज़ूऑइड (ऐंथोकोडिया); stem ($CaCO_3$+spicules), स्तम्भ ($CaCO_3$+कंटिकाएँ); mesoderm, मीज़ोडर्म; polyp, पौलिप: ectoderm, एक्टोडर्म; axial skeleton, अक्षीय कंकाल; siphono-zooid, साइफ़ोनोज़ूऑइड; endoderm, एंडोडर्म।

8. **कोरैलियम रुब्रम** (*Corallium rubrum*) (बहुमूल्य लाल मूँगा)—यह एक सीधी खड़ी कालोनी के रूप में होता है। मीज़ोग्लीया की कंटिकाएँ एक सीमेंट-जैसे पदार्थ से एक साथ जुड़कर एक कड़े अक्षीय कंकाल का निर्माण करती हैं और

यही कंकाल बाज़ार में बिकने वाला बहुमूल्य लाल मूँगा होता है। कंकाल के ऊपर एक पतला सीनोसार्क चढ़ा होता है जिसमें दो प्रकार के पौलिप पाये जाते हैं, (क) **ऑटोज़ूऑइड** (autozooids) सामान्य पोषक पौलिप होते हैं जिनमें आठ पिच्छाकार स्पर्शक और आठ आंत्रयोजनियाँ होती हैं, (ख) साइफ़ोनोज़ूऑइडों (siphonozooids) में स्पर्शक नहीं होते, आंत्रयोजनियाँ ह्रासित होती हैं, ये ज़ूऑइड छोटे होते और जल को कॉलोनी की नलियों में पम्प करते रहते हैं, इस प्रकार **कोरैलियम** एक द्विरूपी कॉलोनी होती है, यह जापान के समीप और गहरे भूमध्य सागर में पाया जाता है। आभूषणों के निर्माण में इस्तेमाल होने के कारण इसका मूल्य होता है।

9. **ट्यूबिपोरा म्यूज़िका** (*Tubipora musica*) (आर्गन-पाइप मूँगा, organ-pipe coral)—लम्बे हो गए पौलिप एक दूसरे के समानांतर स्थित होते हैं; मीज़ोग्लीया से उत्पन्न कंटिकाओं के समेकन द्वारा बना हुआ भीतरी कंकाल खड़ी समानांतर नलिकाओं का बना होता है जो एक आधारीय **प्लेट** से निकलती हैं और ये नलिकाएँ **कैल्सियमी प्लेटफार्मों** द्वारा जुड़ी रहती हैं। पौलिप नलिकाओं में रहते हैं और उनका थोड़ा-सा भाग बाहर को निकला रहता है। पौलिप हरे होते हैं और कंकाल का लाल रंग लौह लवणों के कारण होता है। **ट्यूबिपोरा** मूँगा-चट्टानों में बहुत व्यापक रूप में पाया जाता है।
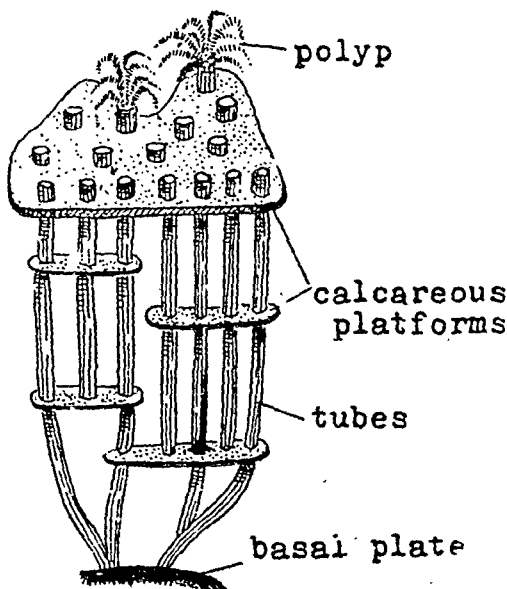
चित्र 141. **ट्यूबिपोरा म्यूज़िका**। Polyp, पौलिप; calcareous platforms, कैल्सियमी प्लेटफ़ार्म; tubes, नलिकाएँ; basal plate, आधारीय प्लेट।

10. **गॉर्गोनिया** (*Gorgonia*) (समुद्री पंखा, sea fan)—यह लाल या पीले रंग की बड़ी-बड़ी सीधी खड़ी जाल-जैसी विशाखित कॉलोनियों के रूप में होता

है। इनकी ऊँचाई 50 cm. तक होती है। कॉलोनी एक आधारीय प्लेट द्वारा स्थान-बद्ध होती है और इस प्लेट से शाखाएँ निकलती हैं जो केवल एक ही समतल में फैली होती हैं। कुछ स्पीशीज़ में इन शाखाओं का सम्मिलन होता है। शाखाओं पर पतले पौलिप होते हैं जिनमें आठ पिच्छाकार पौलिप होते हैं। **गॉ० फ्लैबेलम** (*G. flabellum*) में शाखाएँ आड़े संयोजनों द्वारा जुड़ी होती हैं लेकिन **गॉ० वेरुकोसा** (*G. verrucosa*) में आड़े संयोजन नहीं होते। कंकाल कैल्सियमी नहीं होता, बल्कि एक शृंगीय प्रोटीन का होता है जिसे गॉर्गोनिन (gorgonin) कहते हैं, इस प्रोटीन के चारों ओर मीज़ोग्लीया कैल्सियमी कंटिकाएँ बनाता है। कंकाल का स्राव जन्तु की बाहरी सतह से होता है लेकिन यह भीतरी जान पड़ता है। मीज़ोग्लीया के भीतर विशाखनशील नलिकाओं का एक जाल होता है जिन्हें **सॉलीनिया** (solenia) कहते हैं, ये नलिकाएँ आंत्र के नलिकाकार प्रसार होते हैं जिनमें से जल, ऑक्सीजन, तथा आहार आते-जाते हैं। समुद्री पंखे उथले उष्णकटिबंधीय सागरों में फलते-फूलते हैं जहाँ वे मलय, पश्चिमी द्वीप-समूह, और हिन्द-प्रशांत महासागरों में पौधों के समान उपवन तथा झाड़ियाँ बनाते हैं।
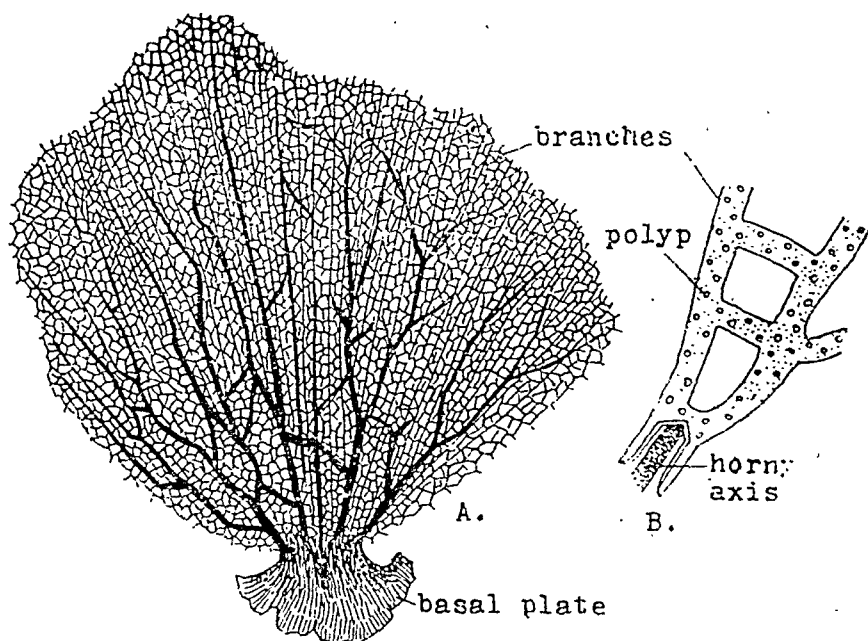
चित्र 142. **गॉर्गोनिया फ्लैबेलम**। A—एक कॉलोनी। B—कंकाल से युक्त एक शाखा का अंश। Branches, शाखाएँ; polyp, पौलिप; horn axis; शृंगीय अक्ष।

11. **पेनैटुला** (*Pennatula*) (समुद्री-पेन, sea-pen)—इसकी कॉलोनी पक्षियों के पंखों के पर की आकृति की द्विपार्श्वीय सममिति से युक्त होती है और फ़र्न की पत्ती जैसी दिखाई पड़ती है। केन्द्रीय स्तम्भ एक विशाल **अक्षीय पौलिप** (axial

polyp) होता है, इसमें नीचे का भाग **वृंतक** (peduncle) और दूरस्थ भाग **पिच्छाक्ष** (rachis) होता है। स्तम्भ में एक अविशाखित शृंगीय कंकाल-शलाका, एक आंत्र गुहा, और मीज़ोग्लीया होते हैं, इस मीज़ोग्लीया के बीच आंत्र के नलिकाकार प्रसार होते हैं जिन्हें सॉलीनिया कहते हैं। वृंतक समुद्री कीचड़ में एक बड़े हो गए **अंतिम बल्ब** (end bulb) के द्वारा गड़ा रहता है, इस वृंतक के क्रमाकुंचनी संकुचनों से समुद्री कलम कीचड़ में को गड़ता जा सकता है और यहाँ तक कि अपने स्थान को भी बदल सकता है। पिच्छाक्ष पर पार्श्व शाखाएँ बनी होती हैं, ये शाखाएँ पोषक पौलिपों ही से बनती हैं जिन्हें **ऑटोज़ूऑइड** कहते हैं; ये पौलिप पिच्छाक्ष के प्रत्येक पार्श्व में पंक्तियों के रूप में पास-पास पड़े होते हैं और इनके आधार एक ही समतल में
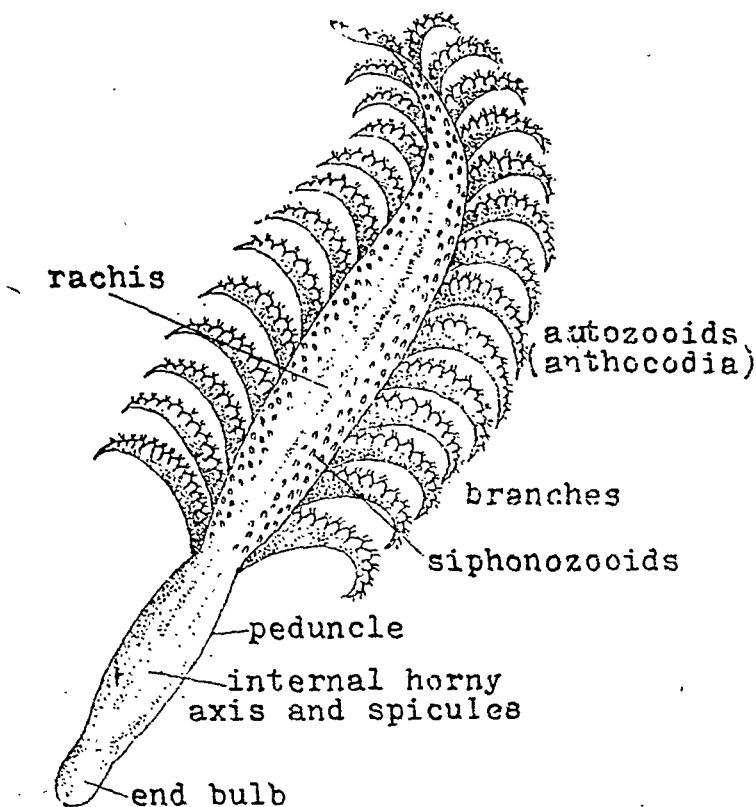
चित्र 143. **पेन्नेटुला सल्कैटा** (*Pennatula sulcata*)

Rachis, पिच्छाक्ष; outozooids, ऑटोज़ूऑइड; branches, शाखाएँ; siphonozooids, साइफ़ोनोज़ूऑइड; peduncle, वृंतक; internal horny axis and spicules, भीतरी शृंगीय अक्ष तथा कंटिकाएँ; end bulb, अन्तिम बल्ब।

परस्पर जुड़कर पिच्छाक्ष के पार्श्वों में टेढ़े घुसे हुए होते हैं, इन्हीं के कारण कॉलोनी का स्वरूप पर-जैसा हो जाता है। ऑटोज़ूऑइडों पर स्पर्शक, आंत्रयोजनियाँ और गोनड बने होते हैं। पिच्छाक्ष की पीठ वाली दिशा में दो क्षेत्रों में व्यवस्थित ह्रासित

पौलिप होते हैं जिन्हें **साइफोनोज़ूऑइड** कहते हैं, इनमें स्पर्शक नहीं होते, इनकी आंत्रयोजनियाँ ह्रासित होती हैं, लेकिन इनके साइफ़ोनोग्लिफ़ बड़े हो गए होते हैं, इनके द्वारा कॉलोनी की नलिकाओं में पानी का परिसंचार होता है। कंकाल में स्तम्भ के भीतर पाया जाने वाला एक शृंगीय अक्ष होता है, मीज़ोग्लीया में स्थित कैल्सियमी कंटिकाएँ होती हैं, शाखाओं में कोई अक्ष नहीं होता। **पेनैटुला सल्कैटा** (*Pennatula sulcata*) चटकीले नारंगी-लाल रंग का होता है, यह अटलांटिक और प्रशांत महासागरों के गर्म तटों के समीप पाया जाता है।

नाइडेरिया पर टिप्पणियां

सीलेंटेरेटा नाम पहले-पहले ल्यूकार्ट ने 1847 में रखा था जिसमें स्पंज, सीलेंटेरेट तथा टीनीफ़ोरा-प्राणी शामिल किए गए थे। आज भी कुछ विशेषज्ञ नाइडेरिया और टीनोफ़ोरा को एक-साथ फ़ाइलम सीलेंटेरेटा के उपफ़ाइलमों के रूप में रखते हैं किन्तु इसमें कोई औचित्य नहीं है क्योंकि इन दोनों वर्गों में कोई निकट का सम्बन्ध नहीं पाया जाता, इन दोनों के देह विभिन्न स्वरूपों वाले होते हैं। नाइडेरिया में विशिष्ट पेशीय चलन गति पाई जाती है, उनमें नीमैटोसिस्ट होते हैं, और उनमें या तो पौलिप की या मेडुसा की आकृति छिपी रहती है। टीनोफ़ोरा में सिलियरी चलन-गति पाई जाती है, इनमें नीमैटोसिस्ट नहीं होते, और इन्हें न तो पौलिप की और न ही मेडुसा की आकृति में छोटा करके देखा जा सकता है। अतः इन्हें आजकल पृथक् फ़ाइलम माना जाता है।

विभिन्न ऊतक—नाइडेरिया के ऊतकों में एक्टोडर्म और एंडोडर्म आते हैं जिनमें से प्रत्येक में विविध कोशिकाओं की एकल परत पाई जाती है, और नाइडेरिया को ऊतक स्तर पर पाई जाने वाली संघटना वाले जन्तु माना जाता है। कोशिकाएँ मिलकर एक पतली देह-भित्ति बनाती हैं जो एक आंत्र-गुहा को घेरे रहती है। देह-भित्ति की मोटाई और उसकी जटिलता में वृद्धि की संभावना उस एक मध्यवर्ती जिलेटिनी परत के विकास द्वारा होती है जिसे मीज़ोग्लीया कहते हैं। निम्नतर नाइडेरिया के पौलिपों में बहुत पतला मीज़ोग्लीया होता है, लेकिन ऐंथोज़ोआ के पौलिपों में मीज़ोग्लीया में तन्तु और कोशिकाएँ होती हैं और यह अधिक मोटा हो गया है; बड़े मेडुसाओं में यह बहुत मोटा और कड़ा होता है और यह एक आंतरिक कंकाल जैसा बन गया है और आहार का सुरक्षित भण्डार भी बना कर रखता है। निम्नतर नाइडेरिया में पाई जाने वाली मुख्य कोशिकाएँ स्तम्भी एपिथीलियम-पेशीय प्रकार की होती हैं जिनसे पेशी-तंतु निकले होते हैं और ये तंतु मीज़ोग्लीया में गड़े होते हैं। इस प्रकार की कोशिका एक प्रोटोज़ोअन के समान होती है क्योंकि इसके अवयव विभिन्न कार्य करते हैं। एण्डोडर्मी कोशिकाओं से कशाभ निकले हो सकते हैं जो आंत्र में मौजूद तरल को मथ सकते हैं, या इन कशाभों को भीतर समेट कर उन्हीं कोशिकाओं के द्वारा कूटपाद बनाए जा सकते हैं जो आहार का परिग्रहण करके आहार-रिक्तिकाएँ बना लेते हैं, **यही** कोशिकाएँ संकुचन के वास्ते पेशी-प्रवर्ध भी

बनाती हैं। इस प्रकार शरीर के तमाम कार्य ऊतकों के द्वारा सम्पन्न होते हैं, अंगों के द्वारा कभी नहीं, हालाँकि विशेषित संरचनाओं जैसे टेंटैकुलोसिस्टों को चाहें तो अंग मान सकते हैं, लेकिन सामान्य तौर पर नाइडेरिया केवल ऊतक स्तर की संघटना तक ही पहुँच ' । ' हैं।

पौलिप और मेडुसा—पौलिप एक आराम की स्थानबद्ध ज़िन्दगी बिताता है, इसका एक चिपका हुआ सिलिंडराकार शरीर होता है जिसमें अपेक्षाकृत पतली देह-भित्ति होती है, मुक्त दूरस्थ सिरे पर एक हाइपोस्टोम होता है जिस पर शीर्षस्थ मुख बना होता है, यह मुख आंत्र में खुलता है। हाइपोस्टोम के नीचे प्रसारशील स्पर्शकों का एक घेरा बना होता है जो ऊपर की ओर को खड़े होते हैं और नीमैटोसिस्टों से लैस होते हैं। स्पर्शक या तो ठोस होते हैं जब कि इनमें केन्द्र में एण्डोडर्म भरा हो, या खोखले हो सकते हैं जबकि इनमें आंत्र फैल कर आ गई हो। पौलिप का समीपस्थ सिरा बन्द होता है।

मेडुसा में एक स्वच्छन्द बहने वाला जीवन पाया जाता है जिसके लिए एक विशद संरचना और शरीरक्रियात्मक विकास की आवश्यकता होती है। शरीर बहुत चौड़ा हो गया है विशेषकर मुखीय सतह पर। आंत्र केवल केन्द्रीय जठर गुहा तथा नालों तक सीमित रहती है, ऐसा अपमुख दिशा पर मीज़ोग्लीया की मोटाई में वृद्धि होने के कारण होता है जो दोनों एण्डोडर्म परतों को धक्का देकर एक साथ दोहरी परत वाली एण्डोडर्म पटलिका के रूप में बदल देता है। हाइपो ८ म ने मैनुब्रियम की शक्ल ले ली है जिसकी परिमा चौड़ी होकर तथा नीचे की ओर को झुककर एक घंटी का रूप आ गया है, ऐसा होने से स्पर्शक खिसक कर घंटिका के सीमांत पर पहुँच गए हैं, स्पर्शक नीचे को लटके रहते हैं और कभी-कभी संस्पर्शकों का एक दूसरा सेट मैनुब्रियम के ऊपर बन जा सकता है। मेडुसा का पेशी-तंत्र अधिक विकसित होता है क्योंकि एपिथीलियम-पेशीय कोशिकाओं का पेशीय भाग बढ़कर लम्बे रेखित पेशी तंतु बन जाते हैं और एपिथीलियमी भाग घट जाता है। तंत्रिका-तंत्र विसरित होता है, जैसे कि पौलिप में, लेकिन कुछ मेडुसाओं में यह एक तंत्रिका-वलय के रूप में संकेन्द्रित हो जाता है और इससे सम्बन्धित सुनिश्चित संवेदी अंग बन जाते हैं।

मेटाजेनेसिस—हाइड्रोज़ोआ में पौलिपी और मेडुसाई दोनों रूप सुविकसित होते हैं। जब किसी नाइडेरियन में पौलिपी और मेडुसाई दोनों प्रकार के रूप पाए जाते हैं तब पौलिपों में केवल अलैंगिक जनन होता है और उन्हें "अलैंगिक पीढ़ी" माना जाता है, तथा मेडुसाओं में केवल लैंगिक जनन ही होता है और उन्हें "लैंगिक पीढ़ी" माना जाता है। अलैंगिक पौलिपी पीढ़ी का लैंगिक मेडुसाई पीढ़ी के साथ एक नियमित एकांतरण होता रहता है, इसी एकांतरण को नाइडेरिया में "मेटाजेनेसिस" कहा जाता है। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या मेटाजेनेसिस का पाया जाना द्विरूपता का सीधा परिणाम है या कि नाइडेरियन के जीवन-चक्र के

कारण ही यह द्विरूपता उत्पन्न हुई है। इनमें से पहले मत के अनुसार मूल नाइडेरियन एक पौलिप था और विशेषीकरण के द्वारा परवर्ती रूप में विकसित मेडुसा बन कर लैंगिक जनन उससे पृथक् हो गया, और इस प्रक्रिया से मेटाजेनेसिस का जन्म हुआ। दूसरे मत के अनुसार पूर्वज नाइडेरियन एक मेडुसा था और पौलिप उसकी जारी रहने वाली लार्वा या बाल्यावस्था है जिसमें लैंगिक जनन की क्षमता तो नहीं है, हां अलैंगिक जनन हो सकता है। अतः, मेटाजेनेसिस एक मिथ्या संकल्पना है। मेटाजेनेसिस नहीं होता इस बात को **ओबीलिया** में पहले ही बताया जा चुका है जिसमें लैंगिक युग्मक वास्तव में अलैंगिक ब्लास्टोस्टाइल में बनते हैं, और फिर वे मेडुसा के गोनडों में परिपक्व होते हैं, अतः "अलैंगिक तथा लैंगिक पीढ़ियों" में विभेद नहीं किया जा सकता। इस प्रकार नाइडेरिया में मेटाजेनेसिस नहीं होता बल्कि केवल एक सतत जीवन-चक्र चलता रहता है जिसमें पौलिप एक बाल्यावस्था है और मेडुसा पूर्णतः विकसित वयस्क है। आज यही मत व्यापक रूप में माना जाता है।

बहुरूपता—एक ही स्पीशीज में उसके जीवन-चक्र के दौरान, अथवा कॉलोनी के सदस्यों के रूप में, अनेक विभिन्न प्रकार के प्राणियों का पाया जाना बहुरूपता कहलाता है, ये सदस्य विभिन्न कार्य करते हैं जिससे कि सदस्यों में एक श्रम-विभाजन की व्यवस्था पाई जाती है। नाइडेरिया अपनी बहुरूपता के लिए प्रसिद्ध हैं लेकिन इन सब विभिन्न रूपों को घटा कर एक ही या तो पौलिपी या मेडुसाई रूप में देखा जा सकता है। पौलिप और मेडुसा के अनेकानेक आकारिकीय विभेद पाए जाते हैं।

अधिकतर हाइड्रोज़ोआ में द्विरूपता पाई जाती है, एक तो पोषक पौलिप अथवा गैस्ट्रोज़ूआॅइड होता है जो कि स्थानबद्ध होता है, इसमें एक मुख, बहु स्पर्शक और आहार के वास्ते एक आंत्र गुहा होती है। दूसरा प्राणी मेडुसा है, जो जेली जैसा, चाय की तश्तरी की शक्ल का, सीमांत पर स्पर्शकों से युक्त होता है और यह स्वच्छन्द तैरने वाला तथा गोनडों को धारण किए हुए होता है। ऐल्सियोनेरिया में केवल पौलिप होते हैं, लेकिन वे द्विरूपी होते हैं, एक तो पोषक जमा जनन पौलिप होता है जिसे ऑटोज़ूआॅइड कहते हैं और जिसमें बहुस्पर्शक, बहुगोनड तथा आंत्रयोजनियाँ होती हैं; दूसरा पौलिप साइफ़ोनोज़ूआॅइड होता है जिसमें न तो स्पर्शक होते हैं और न ही गोनड, ये केवल कॉलोनी की नलिकाओं में पानी का परिसंचार बनाए रखते हैं।

कुछ हाइड्रोज़ोअन कॉलोनियाँ त्रिरूपी होती हैं, इनमें पोषण पौलिपों तथा जनन-मेडुसाओं के अतिरिक्त गोनोज़ूआॅइड अथवा ब्लास्टोस्टाइल नामक रूपांतरित पौलिप भी होते हैं, जो अक्सर एक काइटिनी गोनोथीका में बंद होते हैं। इनमें कोई मुख नहीं होता और न ही स्पर्शक होते हैं, और ये मुकुलन के द्वारा मेडुसाओं तथा उनकी तुल्य आकारिकी वाली अन्य रचनाओं को जन्म देते हैं।

साइफ़ोनोफ़ेरा में सर्वोच्च बहुरूपता पाई जाती है जो जंतु जगत में अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। इनमें तीन प्रकार के पौलिप और चार प्रकार के मेडुसा पाए

जा सकते हैं। पौलिपी प्राणी इस प्रकार हैं: (1) **गैस्ट्रोज़ूऑइड** नलिकाकार और मुख से युक्त होते हैं, और इनमें नीमैटोसिस्ट धारण किया हुआ एक स्पर्शक हो सकता है, ये गैस्ट्रोज़ूऑइड पाचन और तरल आहार के अंतर्ग्रहण के वास्ते होते हैं। (2) **डैक्टिलोज़ूऑइड** सुरक्षा और आहार प्राप्ति के लिए होते हैं, ये नलिकाकार होते हैं, इनमें मुख नहीं होता, एक लम्बा स्पर्शक होता है जिस पर नीमैटोसिस्टों के झुण्ड बने होते हैं। गोनोज़ूऑइडों पर बने गोनोफ़ोरों से संबंधित रूपांतरित डैक्टिलो-ज़ूऑइडों को गोनोपैल्पॉन कहते हैं। (3) **गोनोज़ूऑइड** या तो गैस्ट्रोज़ूऑइडों-जैसे हो सकते हैं या विशाखित ब्लास्टोस्टाइलों-जैसे जिन पर जनन के वास्ते जनन कोशिकाओं को पैदा करने वाले अपविकसित नर और मादा मेडुसाओं के समूह बने होते हैं।

साइफ़ोनोफ़ोरा के रूपांतरित मेडुसा इस प्रकार हैं: (1) **न्यूमैटोफ़ोर** गैस से भरा एक थैला होता है जो एक प्लव (float) के रूप में काम करता तथा तैरने में मदद देता है, यह न्यूमैटोफ़ोर एक उल्टा हो गया हुआ मेडुसाई प्राणी होता है जिसमें मीज़ोग्लीया नहीं होता लेकिन इसकी दीवारें पेशीय होती हैं और इसमें एक गैस-ग्रन्थि पाई जाती है। (2) **हाइड्रोफ़िलिया** पत्ती-जैसे ब्रैक्ट होते हैं या मोटे और जिलेटिनी मेडुसाई प्राणी होते हैं जिनमें आंत्र की एक नलिका होती है, ये आरक्षी होते हैं और कॉलोनी के कुछ ज़ूआइडों को ढके रहते हैं। (3) **नेक्टोकेलिक्स** घंटियों की आकृति के मेडुसाई होते हैं जिनमें एक वीलम, अरीय नाल और वृत्ताकार नाल होती है, इनमें मुख, मैनुब्रियम, स्पर्शक तथा संवेदी अंग नहीं होते। नेक्टोकेलिक्स में पेशीय व्यवस्था होती है और इसके द्वारा तैरने की गति सम्पन्न होकर कॉलोनी का चलना-फिरना सम्भव हो पाता है। (4) **गोनोफ़ोर** वे हैं जो ब्लास्टोस्टाइलों पर या तो अकेले-अकेले या समूहों में बने होते हैं, ये अपविकसित मेडुसा हैं जिनमें मुख नहीं होता और न ही स्पर्शक अथवा संवेदी अंग होते हैं, लेकिन उनमें एक वीलम, नाल और एक मैनुब्रियम होते हैं, मैनुब्रियम के ऊपर गोनड होते हैं। गोनोफ़ोर पृथक्लिंगी होते हैं और उनमें जनन के लिए जनन-कोशिकाएँ बनती हैं।

कॉलोनी के सभी सदस्य, चाहे वे पौलिपी हों या मेडुसाई हों, सीनोसार्क से उत्पन्न होते हैं। बहुरूपता का सम्बन्ध नाइडेरिया के जीवन-चक्रों से है। एकरूपी उदाहरणों में, जैसे हाइड्रा में, पौलिप में अलैंगिक और लैंगिक दोनों विधियों से जनन होता है, यही बात ऐंथोज़ोआ पर भी लागू होती है। लेकिन बहुरूपी उदाहरणों में एक श्रम-विभाजन पाया जाता है जिसमें कॉलोनी के अलग-अलग सदस्य अलग-अलग कार्य करते हैं।

6

फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिथीज़
(PHYLUM PLATYHELMINTHES)

प्लैटिहेल्मिथीज़ में चपटे-कृमि आते हैं, इनके शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में पिचके हुए होते हैं और इनमें द्विपार्श्व सममिति पाई जाती है। ये निम्नतम ट्रिप्लोब्लास्टिक असीलोमी मेटाज़ोआ होते हैं लेकिन ये नाइडेरिया की अपेक्षा अधिक उन्नत होते हैं क्योंकि इनके ऊतकों में संघटन पैदा होकर अंगों का निर्माण हो गया है। मीज़ोडर्म से एक प्रकार का संयोजी ऊतक बनता है जिसे **पैरेंकाइमा** (parenchyma) कहते हैं और जो एक्टोडर्म तथा एंडोडर्म के बीच की जगहों को भर लेता है जिसके कारण कोई सीलोम तथा हीमोसील नहीं होती; अतः इन जंतुओं को असीलोमी जंतु कहते हैं, मीज़ोडर्म से भी अंग बनते हैं जैसे उत्सर्गी और जनन अंग। उत्सर्गी तन्त्र में शाखाओं से युक्त एक दो नालें होती हैं, सूक्ष्मतर शाखाओं के अन्तिम सिरों पर **लौ-कोशिकाएँ** (flame cells) होती हैं, नाल का कोई आन्तरिक छिद्र नहीं होता और यह सिर्फ़ बाहर ही को खुली होती है। रक्तवाही तंत्र और श्वसन तंत्र नहीं होते। गुदा नहीं होती और यहाँ तक कि कुछ में तो मुँह और आहार नाल भी अविद्यमान होते हैं। तन्त्रिका तन्त्र में एक जालक पाया जाता है लेकिन इसमें अग्र सिरे पर गैंग्लियान होते हैं जो एक मस्तिष्क के रूप में कार्य करते हैं। जनन अंगों का बहुत ज़्यादा विकास हो गया होता है, अधिकतर प्लैटिहेल्मिथीज़ उभयलिंगी होते हैं। इस फ़ाइलम में लगभग 15,000 स्पीशीज़ आती हैं और इसे तीन क्लासों में विभाजित किया जाता है। क्लास **टर्बेलैरिया** (Turbellaria) में सिलियायुक्त चपटे-कृमि आते हैं जो प्रायः स्वच्छंदजीवी होते हैं; **ट्रीमैटोडा** (Trematoda) सिलियाविहीन परजीवी चपटे-कृमि अथवा पर्णाभ होते हैं, और **सेस्टोडा** (Cestoda) सब के सब अंतःपरजीवी चपटे-कृमि या फ़ीता-कृमि होते हैं। प्लैटिहेल्मिथीज़ की प्रतिरूपी संरचना केवल टर्बेलैरिया में देखने को मिलती है क्योंकि ट्रीमैटोडा तथा सेस्टोडा में परजीवी स्वभाव के कारण सिलियायुक्त एपिडर्मिस समाप्त हो चुका है और उनमें एक क्यूटिकल तथा चिपकाने वाले अंगों का निर्माण हो गया है। ट्रीमैटोडों में टर्बेलैरिया की देहाकृति एवं आहार नाल कायम बने हैं, लेकिन फ़ीता-कृमि एक लड़ी की तरह लंबे हो गए हैं और उनमें आहार नाल समाप्त हो चुकी है।

class : Turbularia
order: Turbularia
Genus: Dugesia

1. ड्यूगीसिया (*Dugesia*)
(एक प्लैनेरियन-प्राणी)

क्लास **टर्बेलैरिया** में स्वच्छंदजीवी चपटे-कृमि आते हैं जिनका शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में पिचका हुआ होता है और उस पर सिलिया बने होते हैं। ये मूलतः जलीय होते हैं और अधिकतर समुद्रवासी हैं। अलवणजलीय प्रकार तालाबों, झीलों और जलधाराओं में तली में रहते हैं। कुछ स्पीशीज़ स्थलवासी बन गई हैं लेकिन यह बहुत ज्यादा नमी वाले क्षेत्रों तक ही सीमित हैं और अधिकतर उष्णकटिबंधीय भागों में ही पाई जाती हैं। अधिकतर स्पीशीज़ 1 cm. से कम होती हैं लेकिन स्थलीय उदाहरणों में बहुत विशाल आकार मिलते हैं जो कि 60 cm. तक लम्बे हो जाते हैं।

ड्यूगीसिया का एक अलवणजलीय टर्बेलैरियन है जिसे शुरू में **प्लैनेरिया** (*Planaria*) और **यूप्लैनेरिया** (*Euplanaria*) कहा जाता था। **ड्यूगीसिया** की भारत में अनेक स्पीशीज़ पाई जाती हैं जो अलवणजलीय तालाबों, झीलों और जल-स्रोतों की तली में रहती हैं। यह लगभग 12 mm. लंबी और गहरे भूरे रंग की होती है, यह एक पतला निश्चित दिशाओं वाला कृमि है, चलते समय सदा आगे रहने वाला एक अग्र सिरा होता है, देह की एक सतह सदैव ऊपर को रहती है जो इसकी पृष्ठ
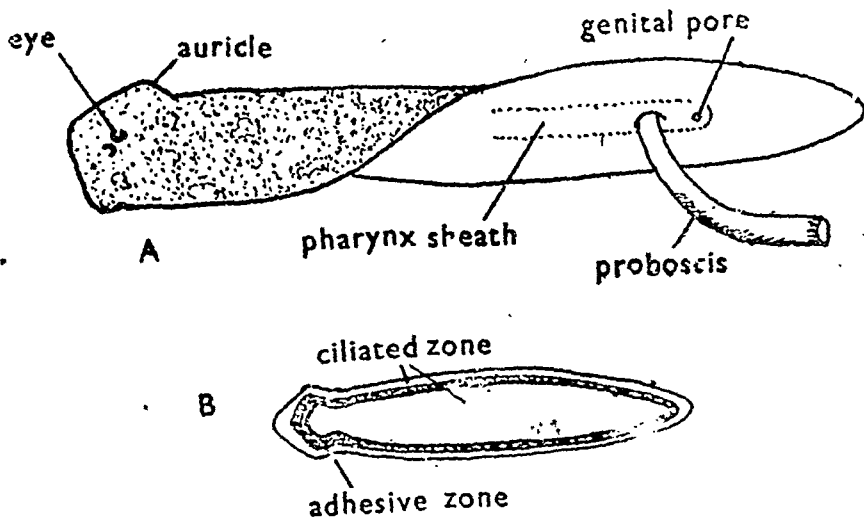
चित्र 144. A—**ड्यूगीसिया टिग्रीना** (*Dugesia tigrina*)। B—अधर सतह जिसमें सिलियायुक्त तथा आसंजी क्षेत्रों को दिखाया गया है।
Eye, आँख; auricle, कर्णक; genital pore, जनन छिद्र; pharynx sheath, ग्रसनी आच्छद; proboscis, शुंड; ciliated zone, सिलियायुक्त क्षेत्र; adhesive zone, आसंजी क्षेत्र।

सतह होती है और सदैव अधः स्तर की ओर रहने वाली सतह अधरीय होती है। इसमें द्विपार्श्व सममिति पाई जाती है जिसका सीधा सहसंबंध आगे के सिरे की ओर चलते

जाने से है। अग्र सिरे पर एक स्पष्ट सिर बन गया होता है तथा बाजुओं में निकले हुए दो शीर्ष पालि (head lobes) अथवा **कर्णक** (auricle) होते हैं। शीर्ष पर दो प्याले-जैसी काली आँखें होती हैं। शीर्ष एक गर्दन-जैसे संकीर्णन द्वारा शेष शरीर से पृथक् हुआ रहता है। शरीर लम्बा होता है, पृष्ठ सतह थोड़ी-सी ऊपर को गोलाई लिए होती है और अधर सतह चपटी होती है। अधर सतह पर देह के मध्य के पीछे एक मुख होता है जो एक ग्रसनी आच्छद (pharyngeal sheath) में खुलता है, इस आवरण के भीतर एक सिलिंडराकार ग्रसनी (pharynx) होती है जिसे देहभित्ति के भीतर से ही झमकता हुआ देख सकते हैं ग्रसनी एक शुंड (proboscis) के रूप में मुँह में से बाहर को निकल आ सकती है। अधर सतह पर सीमांत के सहारे-सहारे चारों ओर चलता हुआ एक **आसंजी क्षेत्र** (adhesive zone) होता है जिसमें से ग्रंथियों में से एक चिपचिपा पदार्थ निकलता है, प्राणी इसी आसंजी क्षेत्र के द्वारा अधःस्तर पर कस कर चिपक जाता है। जब चलता जाता है तब प्राणी अपने पीछे एक श्लेष्मा-पथ छोड़ता चलता है, श्लेष्मा का स्राव अधर सतह पर खुलने वाली श्लेष्म-ग्रन्थियों से होता है।

देह भित्ति—इनमें घनाकार एपिथीलियम कोशिकाओं की बनी एक कोशिका परत का **एपिडर्मिस** होता है। अधिकतर प्लैनेरियनों में समूचे शरीर पर एपिडर्मिस सिलियायुक्त होता है लेकिन **डयूगीसिया** में सिलिया केवल अधर सतह पर पाये जाते
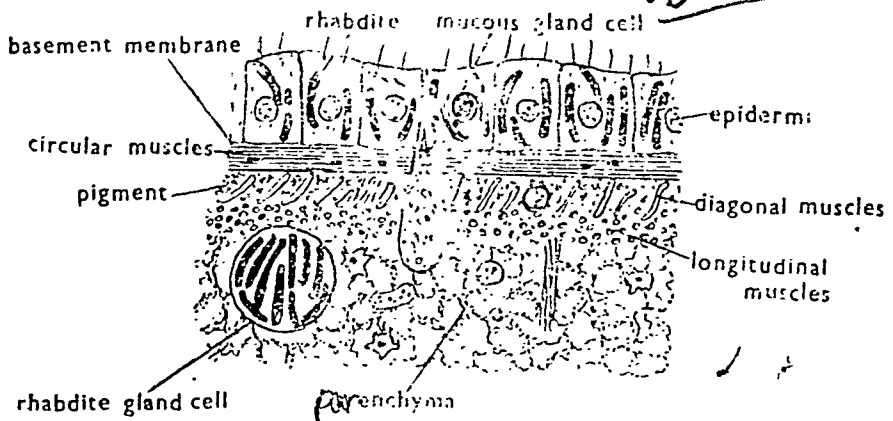
चित्र 145. पृष्ठीय देह-भित्ति से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Basement membrane, आधारक झिल्ली; rhabdite, रैब्डाइट; mucous gland cell, श्लेष्मा ग्रंथि कोशिका; epidermis, एपिडर्मिस; diagonal muscles, विकर्ण पेशियाँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; parenchyma, पैरेंकाइमा, rhabdite gland cell, रैब्डाइट ग्रंथि कोशिका: pigment, वर्णक; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ।

हैं जहाँ वे आसंजी क्षेत्र पर अविद्यमान होते हैं। कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में एपिडर्मिमी कोशिकाओं के बीच-बीच में संवेदी कोशिकाएं और श्लेष्मा-ग्रंथि कोशिकाएं

होती हैं। ग्रंथि कोशिकाएँ जन्तु को एक श्लेष्मा आवरण प्रदान करती हैं और चलने के लिए एक लसदार पथ बनाती हैं। एपिडर्मिसी कोशिकाओं में सीधी खड़ी काचाभ शलाकाएँ होती हैं जिन्हें **रैब्डाइट** (rhabdite) कहते हैं, ये अधर सतह की अपेक्षा पृष्ठ सतह पर अधिक संख्या में होती हैं। रैब्डाइटों का स्राव एपिडर्मिस और मीज़ेंकाइम में स्थित रैब्डाइट-ग्रंथि-कोशिकाओं के द्वारा होता है। आसंजी क्षेत्र में रैब्डाइट नहीं होते। रैब्डाइटों के कार्य का पता नहीं है, लेकिन बाहर की ओर विसर्जित होने पर वे एक श्लेष्मी पदार्थ बनाते हैं जो संरक्षी हो सकता है और जीवित आहार को प्राप्त करने में सहायता करता है। एपिडर्मिस के नीचे **वर्णक** (pigment) की कणिकाएँ और शलाकाएँ बनी होती हैं। ग्रंथियाँ सभी एककोशिक होती हैं, कुछ एपिडर्मिस में होती हैं लेकिन अधिकतर मीज़ेंकाइम में ही पाई जाती हैं, इनमें लंबी-लंबी गर्दनें होती हैं जो सतह पर आ कर खुलती हैं, इनमें श्लेष्मा का स्राव होता है। एपिडर्मिस के नीचे एक **आधारक झिल्ली** (basement membrane) होती है जिसके और नीचे वृत्ताकार पेशियों, विकर्ण (diagonal) पेशियों तथा अनुदैर्घ्य पेशियों की परतें होती हैं। भीतर में एक **पैरेंकाइमा** (जिसे मीज़ेंकाइम भी कहते हैं) भरा होता है जो एक जाल-जैसा केन्द्रकों से युक्त सिनसिशियम (syncytium) होता है, तथा स्वच्छंद भ्रमण करने वाली मीज़ेंकाइम कोशिकाएँ और तरल से भरी गुहाएँ होती हैं। घुली अवस्था में पदार्थों का लाना ले-जाना इस पैरेंकाइमा के द्वारा होता है। पैरेंकाइमा में कुछ पेशियाँ पृष्ठ-अधर दिशा में चलती हैं।

पाचन तंत्र— अधर सतह पर देह के मध्य के पीछे बना हुआ एक छोटा सफ़ेद मुख आहार का अंतर्ग्रहण और बहिःक्षेपण दोनों कार्य करता है। यह भीतर की ओर एक छोटी मुख गुहा में खुलता है जो एक सिलिंडराकार मोटी दीवार वाली ग्रसनी के साथ जुड़ी होती है। ग्रसनी एक ग्रसनी गुहा में पड़ी रहती है और उसके अग्र सिर से जुड़ी होती है। ग्रसनी मुख में से बाहर की ओर को एक शुंड (proboscis) के रूप में निकल आ सकती है, यह शुंड गतिशील होती है और इसे खूब लंबा फैलाया जा सकता है। ग्रसनी का जुड़ा हुआ सिरा एक **अंतड़ी** (intestine) में खुलता है जो तुरंत तीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है, एक शाखा मध्य रेखा में से होती हुई आगे सिर तक पहुँच जाती है और बाकी दो शाखाएँ ग्रसनी गुहा के अगल-बगल से पीछे को चलती हुई पश्च सिरे तक पहुँच जाती हैं। हर शाखा से बहुसंख्यक विशाखित अंधवर्ध निकले होते हैं जिनके अंतिम सिरे बंद होते हैं, और कोई गुदा नहीं होती। अतिविशाखित अंतड़ी का होना पाचन, अवशोषण तथा आहार के वितरण के लिए सतही क्षेत्रफल बढ़ाने का एक साधन है।

अंतड़ी रिक्तिकायुक्त घनाकार कोशिकाओं की अकेली परत की बनी होती है, इन घनाकार कोशिकाओं में कणिकाएँ होती हैं। घनाकार कोशिकाओं के बीच-बीच में तिकोनी आकृति की कुछ ग्रंथि-कोशिकाएँ होती हैं जिनमें सुरक्षित प्रोटीन भंडार भरे रहते हैं। सेवशन में ग्रसनी गोल होती है और एक गोल ग्रसनी गुहा में पड़ी रहती है। ग्रसनी में उसकी सतह से चलते हुए अवकाशिका (lumen) तक पहुँचने

में ये परतें पाई जाती हैं : एपिथीलियमी कोशिकाएँ, अनुदैर्घ्य पेशी परत, वृत्ताकार पेशी परत, बाहरी ग्रंथि-कोशिकाएँ, तंत्रिका जालिका (nerve plexus), भीतरी ग्रंथि कोशिकाएँ, अनुदैर्घ्य पेशी परत, वृत्ताकार पेशी परत तथा एक एंडोडर्मी एपिथीलियम अस्तर।
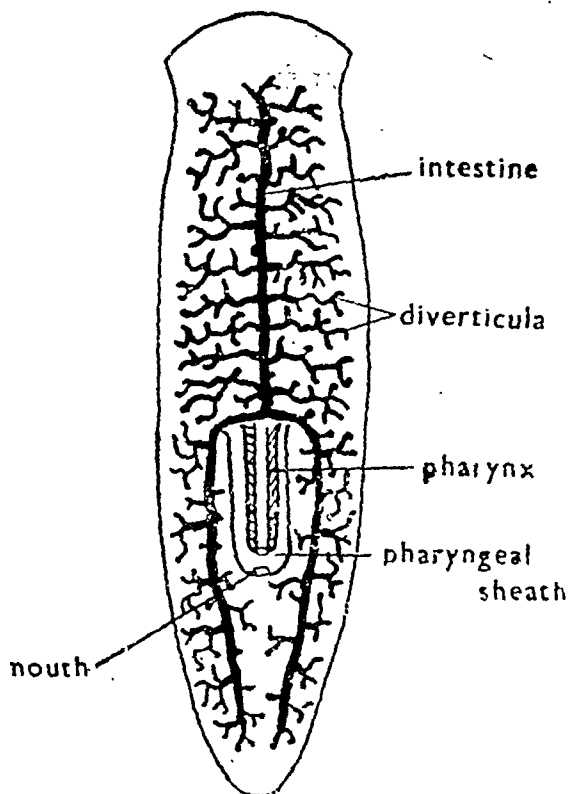
चित्र 146. पाचन-तंत्र। Intestine, अंतड़ी; diverticula, अंधवर्ध, pharynx, ग्रसनी; pharyngeal sheath, ग्रसनी आच्छद; mouth, मुख।

जंतु मांसभक्षी होता है। इसके आहार में ये सब शामिल हैं : छोटे जीवित कृमि, क्रस्टेशियन तथा घोंघे, और बड़े मृत जानवरों के टुकड़े। अशन के लिए जंतु अपने आहार की उपस्थिति दूर से ही संवेदी बोध के द्वारा जान लेता है और उस ओर बढ़ता जाता है, अक्सर जीवित आहार श्लेष्मा ग्रंथियों तथा रैब्डाइटों के लसलसे स्रावों में फँस जाता है और उसके बाद यह इस आहार को अपनी बहिर्वर्तित ग्रसनी के भीतर बंद कर लेता है और आहार के ऊपर पाचन रस डालता जाता है, ग्रसनी की पम्प करने की क्रिया द्वारा आहार टूटता जाता है और उस पर बाहर निकले पाचन रसों की क्रिया होती है जिससे कोशिकबाह्य पाचन सम्पन्न होता है, उसके बाद भोजन निगल लिया जाता है। पाचन कोशिकबाह्य तथा अंतःकोशिक दोनों प्रकार का होता है। मीज़ेंकाइम पचे हुए भोजन के वितरण में सहायता करता है। बिना पचा भोजन मुख के द्वारा बाहर निकाल फेंक दिया जाता है। प्लैनेरियन लंबे

समय तक बिना आहार किए जीवित रह सकते हैं, ये अपने जनन अंगों पैरेंकाइमा तथा पेशियों को घुला कर पोषण प्राप्त करते हैं, तब इनका शरीर छोटा होता जाता है। पुनः खाना शुरू कर देने पर खोए हुए अंग दोबारा बन जाते हैं।

चलन—**ड्यूगीसिया** जलीय प्राणी है लेकिन यह तैरता नहीं है। यह अधःस्तर पर चलता जाता है और यह चलना एक साथ दो साधनों से होता है, एक तो अधर सिलिया द्वारा विसर्पण गति से और दूसरे अग्र सिरे से पश्च सिरे की ओर चलने वाले पेशीय संकुचनों से। चलते समय सिर अधःस्तर से थोड़ा-सा उठा लिया जाता है और अगल-बगल मुड़ता जाता है, जिसके कारण जंतु डुगलाता-सा चलता है, अधिक तीव्र गति में मार्ग और भी अधिक अनियमित हो जाता है

उत्सर्गी-तंत्र—शरीर के प्रत्येक पार्श्व में एक-एव जोड़ी **अनुदैर्घ्य उत्सर्गी महावाहिकाएँ** (longitudinal excretory trunks) होती हैं, ये वाहिकाएँ **नेफ्रिडियोपोर** (nephridiopore) नामक अनेक बारीक छिद्रों के द्वारा देह की पृष्ठ सतह पर खुलती हैं। महावाहिकाओं का प्रत्येक जोड़ा बहुत ज्यादा परस्पर कुण्डलित होता है और दोनों जोड़े शीर्ष में एक अनुप्रस्थ वाहिका द्वारा जुड़े होते हैं। प्रत्येक अनुदैर्घ्य महावाहिका अनेक शाखाओं में विभाजित होती है, और ये शाखाएँ
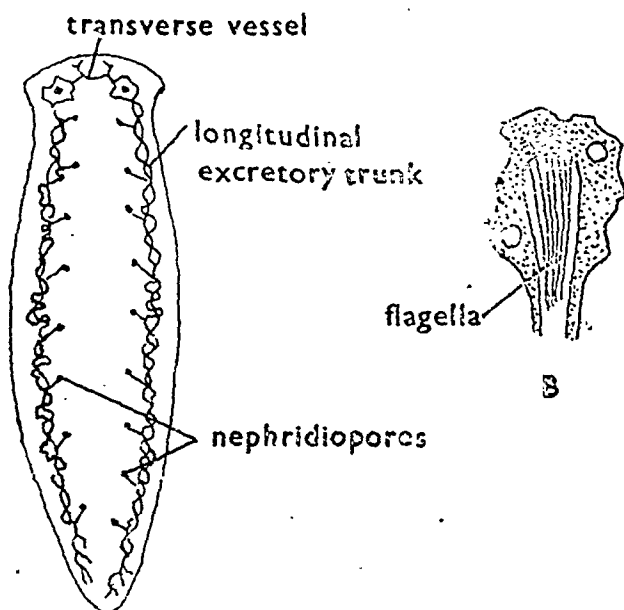
चित्र 147. A—उत्सर्गी तंत्र; B—लौ-कोशिका।
Transverse vessel, अनुप्रस्थ वाहिनी; longitudinal exeretory trunk, अनुदैर्घ्य उत्सर्गी महावाहिका; nephridiopores, नेफ्रिडियोपोर; flagella, कशाभ।

पुनः विशाखित होकर अत्यंत सूक्ष्म केशिकाओं (capillaries) में विभक्त हो जाती हैं जिनमें से प्रत्येक केशिका **लौ-कोशिका** (flame cell) में समाप्त होती है।

केशिका वास्तव में लौ-कोशिका का ही भाग होती है। लौ-कोशिका केंद्रकयुक्त होती है और उसमें प्रोटोप्लाज़्मी प्रवर्ध निकले होते हैं जो मीजेंकाइम में पहुँचते हैं, लौ-कोशिका में एक अंत:कोशिक गुहा होती है जो कोशिका में को जारी रहती है। लौ-कोशिका की गुहा में बहुत से कशाभ होते हैं जो कम्पन करते समय थिरकती हुई दिये की लौ का सा आभास देते हैं। शाखाओं में भीतर-भीतर सिलिया बने होते हैं। उत्सर्गी पदार्थ मीजेंकाइम में से एकत्रित किया जाता है और लौ-कोशिकाओं की गुहाओं में पहुँचा दिया जाता है। लौ-कोशिकाओं के कशाभों के कम्पन से द्रवस्थैतिक (hydrostatic) दाब उत्पन्न होता है जिसके द्वारा तरल अपशिष्ट अनुदैर्घ्य महावाहिकाओं में पहुँच जाता है और वहाँ से नेफ्रिडियोपोरों द्वारा बाहर चला जाता है। इस उत्सर्गी तंत्र को **आदिवृक्कक तंत्र** (protonephridial system) कहते हैं। लेकिन उत्सर्गी पदार्थ के बाहर निकाल फेंकने से अधिक महत्त्व की बात यह है कि यह तंत्र जंतु के अधिशेष जल को बाहर निकाल देता है, यह एक **परासारी-नियंत्रक** (osmoregulatory) तंत्र के रूप में कार्य करता है।

तंत्रिका तंत्र—सिर में एक **मस्तिष्क** होता है तो द्विपालित प्रमस्तिष्कीय गैंग्लियानों (cerebral ganglia) का बना होता है, इसकी आकृति उल्टे V-जैसे अक्षर की होती है; जिसके बाजुओं का आधार आँखों के पास होता है और शेष बाज़ू सिर के सीमांत के समान्तर रहते हैं। मस्तिष्क से बहुत सी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो सामने और बाजुओं की तरफ़ चलती हुई सिर और कर्णकों में जाती हैं। मस्तिष्क की दोनों शाखाएँ पीछे की दो अधर **तंत्रिका-रज्जुओं** (nerve cords) में जारी रहती हैं, जो पश्च सिरे की ओर को चलती जाती हैं, ये रज्जुएँ हर पार्श्व में सीमान्त से उसके लगभग एक-तिहाई फासले पर होती हैं। प्रत्येक तंत्रिका रज्जु से उसके हर पार्श्व में अनुप्रस्थ शाखाएँ निकलती हैं, और दोनों रज्जुएँ कुछ अनुप्रस्थ समयोजियों (transverse commissures) द्वारा परस्पर जुड़ी रहती हैं। इस प्रकार एक केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पाया जाता है जो तंत्रिका-आवेगों के लिए एक समन्वयकारी केंद्र के रूप में कार्य करता है। इस केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के अतिरिक्त एक **अध:एपिडर्मिसी जालक** (subepidermal plexus) होता है जो एपिडर्मिस के तुरंत नीचे होता है, तथा और अधिक गहराई में पाया जाने वाला एक **अध:पेशीय जालक** (submuscular plexus) होता है जो देह-भित्ति की पेशी परतों के नीचे मीज़ेंकाइम में पाया जाता है। ये दोनों जालक तंत्रिका-रज्जुओं से जुड़े होते हैं।

संवेदी अंग—1. रसायनग्राहियों (chemoreceptors) की स्थिति सिर पर होती है, ये सिलियायुक्त गढ़े होते हैं जिनमें एपिथीलियम में नीचे को डूबी हुई सिलियायुक्त कोशिकाएँ होती हैं किंतु रैब्डाइट नहीं होते, कोशिकाओं में संवेदी तंत्रिकाएँ पहुँची हुई होती हैं। इन अंगों के द्वारा जंतु को उस जलधारा के माध्यम से आहार ढूँढ़ने में सहायता मिलती है जो उनके ऊपर से होकर बहती है।

2. **कर्णक-अंग** (Auricular organ)—सिर के प्रत्येक बाजू में एक सफ़ेद से रंग की खाँच होती है जिसे कर्णक अंग कहते हैं, यह कर्णक के आधार के पास

होते हैं। खाँच सिलियायुक्त होती है और उसमें तंत्रिका पहुँचती है, ये रसायन संवेदी अंग होते हैं जिनसे सूँघने और स्वाद लेने का काम लिया जाता है।
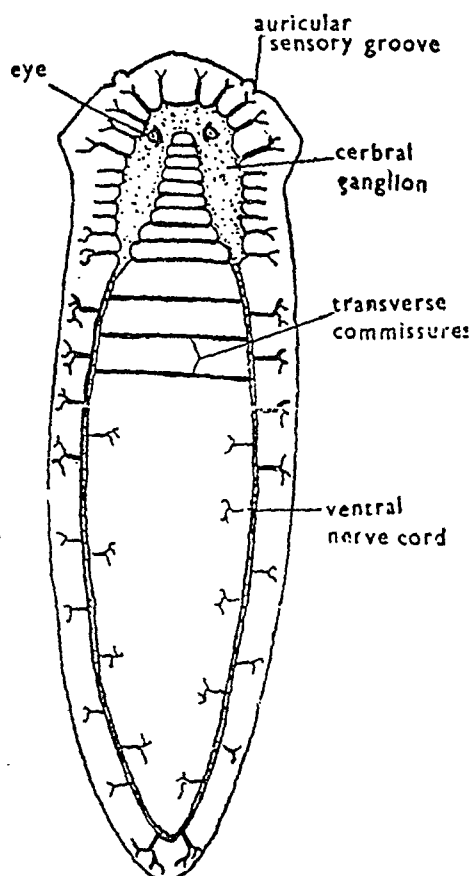
चित्र 148. **ड्यूगीसिया** का तंत्रिका-तंत्र।

Eye, आंख; auricular sensory groove, कर्णक संवेदी खाँच; cerebral ganglion, प्रमस्तिष्कीय गैंग्लियान; transverse commissure, अनुप्रस्थ समयोजी, ventral nerve cord, अधर तंत्रिका-रज्जु।

3. **आँखें** (Eyes) अथवा **नेत्रक** (ocelli)—ये दो गोल काले धब्बे होते हैं जो सिर की पृष्ठ सतह पर बने होते हैं। आंख में एक **वर्णक-कटोरी** (pigment cup) होती है जिसका मुँह खुला हुआ और पार्श्वतः सामने की ओर को रुख किए रहता है। वर्णक-कटोरी में को उभरी हुई अनेक **रेटिना कोशिकाएँ** (retinal cells) होती हैं, ये द्विध्रुवी तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं जिनके भीतरी सिरे फैले हुए और रेखित होते हैं तथा बाहरी सिरे मस्तिष्क से जुड़े होते हैं। आँखों के द्वारा प्रकाश की दिशा का कुछ मोटा-मोटा विभेद किया जा सकता है। वर्णक-कटोरी एक शील्ड का काम करती है और प्रकाश केवल छिद्र में से ही भीतर जा सकता और रेटिना-कोशिकाओं के प्रकाश-संवेदी फूले हुए सिरों को उत्तेजित कर सकता है, इस प्रकार जंतु प्रकाश की दिशा

को पहचान सकता है। यह प्राणी नकारात्मक रूप में प्रकाशानुचलनी होता है और रात में सबसे ज़्यादा सक्रिय होता है।
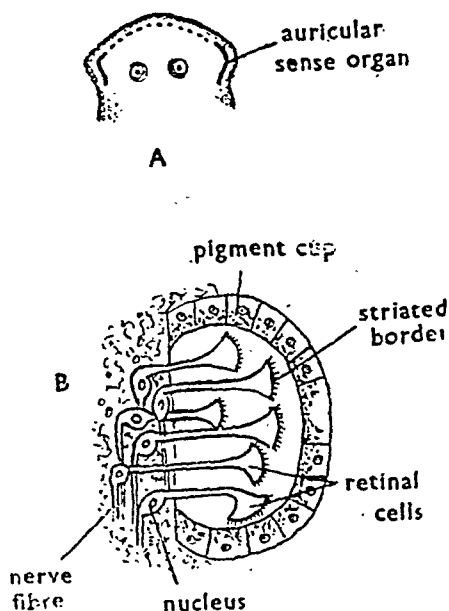
चित्र 149. A—कर्णाक संवेदी अंग। B—आँख का खड़ा सेक्शन।

Auricular sense organ, कर्णाक संवेदी अंग: pigment cup, वर्णक कटोरी; striated border, रेखित बार्डर; retinal cells, रेटिना-कोशिकाएँ; nucleus, केन्द्रक; nerve fibre, तंत्रिका तंतु।

जनन—1. **पुनरुद्भवन** (Regeneration) : **ड्यूगीसिया** में पुनरुद्भवन की अपार क्षमता पाई जाती है, यदि इसे दो भागों में काट दिया जाए तो प्रत्येक भाग में खोया हुआ हिस्सा फिर से बन जाता है। देह के किसी भी भाग से काटे गये मध्यम साइज़ के टुकड़े से एक नया कृमि बन जाता है। पश्च सिरे से लिए गए कुछ टुकड़ों से छोटे सिर वाले अथवा बिना सिर वाले जंतु बन जाते हैं। किसी टुकड़े में पुनरुद्भवन द्वारा पूर्ण जंतु बनने की क्षमता कटी हुई अग्र सतह पर सिर के पुनरुद्भवन पर निर्भर होती है, इसका कारण यह है कि आकारिकीय पैटर्न का नियंत्रण शीर्ष द्वारा होता है। यदि लैंगिक रूप में परिपक्व किसी प्लैनेरियन को ग्रसनी और उसके मैथुन उपकरण के बीच में से काटा जाए तो जनन अंगों का अपघटन हो जाता है और हर एक टुकड़े में से एक अलैंगिक प्राणी बन जाता है। लंबाई में काट लगाने पर दोहरे सिर अथवा दोहरी पूँछों वाले प्राणी बन जाते हैं। समझा जाता था कि पुनरुद्भवन का उत्तरदायित्व अंतराली कोशिकाओं पर है, लेकिन हाल ही में यह सिद्ध कर दिया गया है कि प्लैनेरियन को काटने पर मीज़ेंकाइम से निकली मुक्त कोशिकाएं जिन्हें, **नीयोब्लास्ट** (neoblast) कहते हैं, चलकर कटी हुई सतह पर पहुँच जाती हैं और हानिग्रस्त भागों को जन्म देती हैं।

2. **अलैंगिक जनन**—ड्यूगीसिया के दो स्ट्रेन मिलते हैं, अलैंगिक तथा लैंगिक। अलैंगिक रूप में कोई जननांग नहीं होते, यह विखंडन द्वारा जनन करता है। विखंडन तब होता है जब जंतु अधिकतम साइज़ का बन चुकता है, उस समय जंतु अपने पश्च सिरे को अधःस्तर पर ज़ोर से चिपका लेता है और अगला भाग आगे को चलता जाता है जिसके फलस्वरूप जंतु ग्रसनी के पीछे के भाग पर टूट जाता है। पृथक् हो गए अगले भाग में पश्च प्रदेश का पुनरुद्भवन हो जाता है और पिछले भाग में पुनरुद्भवन होकर पूरा कृमि बन जाता है। विखंडन के वास्ते चलन और चिपकना अनिवार्य है।
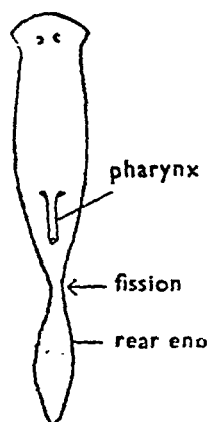
चित्र 150. **ड्यूगीसिया** का विखंडन। Pharynx, ग्रसनी; fission, विखंडन; rear end, पिछला सिरा।

3. **लैंगिक जनन**—**ड्यूगीसिया** में जननांग अस्थायी होते हैं, वे प्रजनन काल में विकसित होते और उसके बाद में जननांग अपविकसित होकर जंतु अलैंगिक स्ट्रेन में पहुँच जाता है जो अगले वर्ष की शुरू गर्मियों तक विखंडन द्वारा जनन करता रहता है। लैंगिक स्ट्रेन में उभयलिंगी अंग बन जाते हैं और यह हर साल शुरू गर्मियों में लैंगिक रूप में जनन करता है।

नर-अंग (Male organs)—इसमें दो छोटे वृषण होते हैं हालाँकि अधिकतर प्लैनेरियनों में छोटे-छोटे बहुसंख्यक वृषण होते हैं। प्रत्येक वृषण एक **शुक्रवाहिका** (vas deferens) के साथ जुड़ा होता है जो फैलकर एक **शुक्राशय** (spermiducal vesicle अथवा seminal vesicle) बनाती है जिसमें परिपक्व शुक्राणु इकट्ठे भरे रहते हैं। दोनों शुक्राशय एक **शिश्न** (penis) में खुलते हैं। शिश्न के दो भाग होते हैं, एक अंडाकार पेशी-ग्रंथिल **शिश्न-बल्ब** (penis-bulb) और एक पेशिल **शिश्न पैपिला** (penis papilla)। शिश्न एक **जनन-एट्रियम** (genital atrium) में खुलता है। छोटी एककोशिक **प्रॉस्टेट ग्रंथियाँ** (prostate glands) शुक्राशयों के अंतस्थ भाग में खुलती हैं।

मादा-अंग (Female organs)—एक जोड़ी छोटे अंडाशय सिर के पीछे पार्श्वों में बने होते हैं। प्रत्येक अंडाशय से एक लम्बी **अंड-पीतक वाहिनी** (ovovitelline duct) निकलती है जो पार्श्वों में चलती जाती है। प्रत्येक अंडपीतक वाहिनी के उद्गम पर जहाँ वह अंडाशय से निकलती है एक छोटा प्रसारित **शुक्रग्राही** (seminal receptacle) होता है। दोनों अंडपीतक वाहिनियाँ परस्पर जुड़कर एक छोटी अंडवाहिनी (oviduct) बनाती हैं जो जनन-एट्रियम में खुलती हैं। शरीर के प्रत्येक पार्श्व पर छोटी-छोटी बहुसंख्यक **पीतक-ग्रंथियाँ** (vitelline glands) होती हैं जो अंडपीतक वाहिनियों में जुड़ी होती हैं, पीतक ग्रंथियों में से पीतक कोशिकाएँ अंडपीतक वाहिनियों में पहुँचती जाती हैं। जनन-एट्रियम में खुलता हुआ एक बड़ा मुद्गराकार मैथुन बर्सा (copulatory bursa) होता है। छोटी-छोटी बहुसंख्यक

सीमेंट ग्रंथियाँ जनन-एट्रियम तथा अंडवाहिनी में खुलती हैं। जनन-एट्रियम बाहर की ओर को एक **जनन-छिद्र** (gonopore) द्वारा खुलता है जो अधर दिशा पर मुख के पीछे खुलता है।
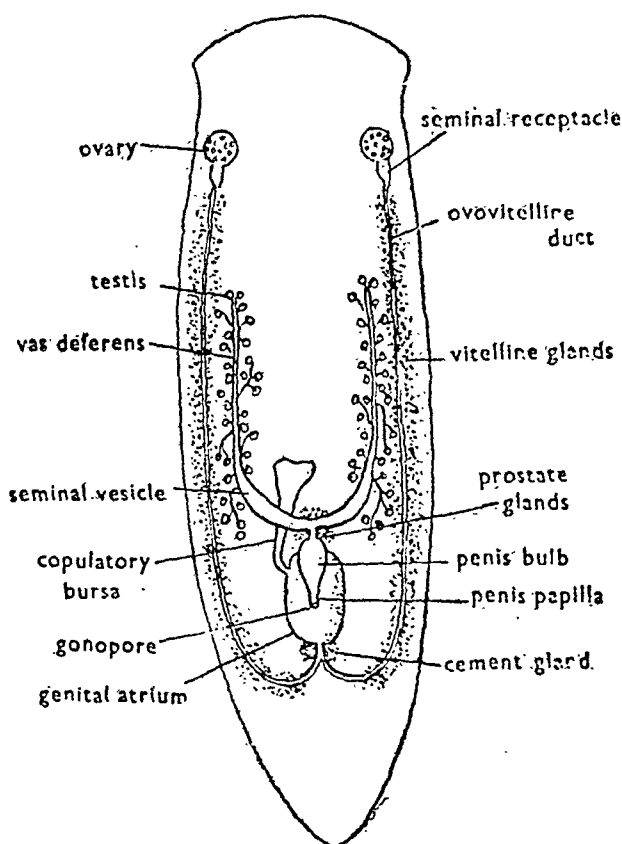
चित्र 151. जनन-अंग।

Ovary, अंडाशय; seminal receptacle, शुक्रग्राही; ovovitelline duct, अंडपीतक वाहिनी; vitelline glands, पीतक ग्रंथियाँ; prostate glands, प्रॉस्टेट ग्रंथियाँ; penis bulb, शिश्न-वल्ब; penis papilla, शिश्न-पैपिला; cement gland, सीमेंट ग्रंथियां; testis, वृषण; vas deferens, शुक्रवाहिका; seminal vesicle, शुक्राशय; copulatory bursa, मैथुन वर्सा; gonopore, जनन-छिद्र; genital atrium, जनन-एट्रियम।

मैथुन (Copulation)—दो कृमि एक ही दिशा में मुँह किए हुए अपनी अधर सतहों के सहारे साथ-साथ आते हैं। प्रत्येक का शिश्न पैपिला लम्बा होकर जनन-छिद्र से बाहर आता है और दूसरे कृमि के मैथुन-वर्सा में पहुँचा दिया जाता है जिसके द्वारा दोनों कृमियों में परस्पर वीर्यसेचन हो जाता है। शुक्राणु मैथुन

वर्सा में छोड़ दिये जाते हैं जहाँ वे थोड़े ही समय तक रहते हैं, फिर वे वहाँ से अंडपीतक वाहिनियों में चढ़ते हुए शुक्र-ग्राहियों तक पहुँच जाते हैं। जैसे-जैसे अंडे अंडाशय में से निकलकर बाहर आते जाते हैं वैसे-वैसे वे निषेचित होते जाते हैं, और वे अंडपीतक वाहिनियों में से नीचे को आते जाते हैं और उनके साथ-साथ पीतक ग्रंथियों से आने वाली पीतक कोशिकाएँ घुलती-मिलती जाती हैं। अंडे और पीतक कोशिकाएँ जनन एट्रियम में इकट्ठे हो जाते हैं जहाँ पीतक कोशिकाएँ अंडों को घेरती हुई एक **कैप्सूल** अथवा **कोकून** (cocoon) बना लेती हैं। कैप्सूल में कई निषेचित अंडे होते हैं, और यह जनन-छिद्र में से होकर किसी पत्थर आदि के नीचे रख दिया जाता है। बाहर को आते समय कैप्सूल पर सीमेंट ग्रंथियों का स्राव लग जाता है, यह चिपकाने वाला स्राव कैप्सूल के ऊपर एक वृंत का रूप ले लेता है। कैप्सूल पत्थरों पर इसी वृंत के सहारे चिपक जाते हैं। एक प्राणी प्रजनन काल में अनेक बार मैथुन करता है और हर थोड़े-थोड़े दिनों बाद एक कोकून रखता जाता है। कोकूनों में से लगभग दो सप्ताह में छोटे आकार के पूर्ण-निर्मित कृमि निकल आते हैं।
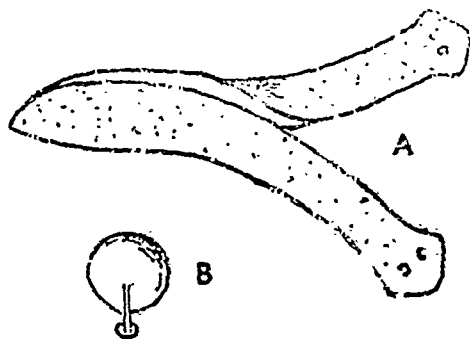
चित्र 152. *A*—मैथुन। *B*—कोकून।

2. फ़ैसियोला हिपैटिका (*Fasciola hepatica*)
(यकृत-पर्णाभ, लिवर-फ्लूक)

क्लास **ट्रीमैटोडा** में फ़्लूक या पर्णाभ आते हैं जो या तो बाह्यपरजीवी (ectoparasites) या अंत:परजीवी (endoparasites) चपटे-कृमि होते हैं। इनमें टर्बेलैरिया की सामान्य देह-आकृति तथा पाचन मार्ग कायम बने रहे हैं, लेकिन परजीविता के कारण इनका सिलियायुक्त एपिडर्मिस जाता रहा है और इनके ऊपर एक क्यूटिकल चढ़ा रहता है। इनमें संलग्नक (holdfast) अंग बन गए हैं और अधिकतर स्पीशीज़ में परपोषी से चिपके रहने के लिए चूषक (suckers) तथा हुक बने होते हैं। इनमें कोई देह-गुहा नहीं होती तथा विभिन्न अंग एक स्पंजी भराऊ ऊतक में गड़े होते हैं जिसका नाम पैरेंकाइमा है। इनमें कोई रक्त नहीं होता और न ही कोई वाही तंत्र होता है, अत: पाचन एवं उत्सर्गी तंत्र बहुत विशाखित होते हैं। जो ट्रीमैटोड जलीय जंतुओं में परपोषी होते हैं उनका जीवन-वृत्त सरल होता है, लेकिन अंत:परजीवियों का जीवन-वृत्त बहुत जटिल होता है—उसमें दो या तीन अलैंगिक पीढ़ियाँ पाई जाती हैं जो दो या अधिक परपोषियों में होती हैं।

फ़ैसियोला हिपैटिका सारे संसार में पाया जाने वाला परजीवी है जो भेड़ों, बकरियों तथा मवेशियों के जिगर तथा पित्त-वाहिनी में पाया जाता है। यह मनुष्य, खरगोश और कंगारुओं में भी पाया जा सकता है। यह पत्ती के आकार का होता

18mm to 51 and 4-13 width

है, लम्बाई लगभग 25 से 30 mm. होती है। इसके अग्र सिरे पर एक तिकोना शंकु अथवा **शीर्ष-पालि** (head lobe) होती है जिससे इसमें कंधे-जैसे होने का स्वरूप बन जाता है। अगले करीब-करीब एक-तिहाई भाग में यह सबसे ज़्यादा चौड़ा होता है और वहाँ से पश्च सिरे की ओर को तंग होता जाता है। इसमें दो पेशिल चूषक होते हैं जिनमें से एक तो अग्र सिरे पर मुख को घेरता हुआ **मुख-चूषक** (oral sucker) होता है और दूसरा अधर सतह पर शीर्ष पालि के पीछे स्थित अपेक्षाकृत बड़ा **अधर चूषक** (ventral sucker) अथवा **ऐसिटैबुलम** (acetabulum) होता है; चूषक पेशिल कटोरियाँ होती हैं जिनके द्वारा निर्वात के माध्यम से परपोषी पर चिपका जाता है। ऐसिटैबुलम के आगे अधर सतह पर एक सम्मिलित **जनन छिद्र** अथवा **गोनोपोर** (gonopore) होता है। एक भारतीय स्पीशीज़ जिसका नाम **फ़ैसियोला इंडिका** (*Fasciola indica*) है भैंसों, गायों, बकरियों तथा सूअरों की पित्त-वाहिनी में पाया जाता है, इसकी अधिकतम चौड़ाई देह के लगभग मध्य में होती है, और पिछला सिरा गोल होता है।
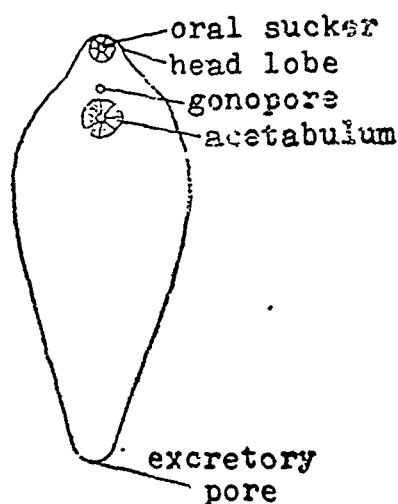
चित्र 153. **फ़ैसियोला हिपैटिका** (अधर)। Oral sucker, मुख चूषक; head lobe, शीर्ष पालि; gonopore, जनन-छिद्र; acetabulum, ऐसिटैबुलम; excretory pore, उत्सर्गी छिद्र।

देह-भित्ति—फ़्लूक की देह पर एक कड़ा रोधी क्यूटिकल होता है जो परपोषी के पाचन रसों से उसकी रक्षा करता है, इसमें छोटे-छोटे काँटे या कंटिकाएँ बनी होती हैं और यह प्रोटीनों का बना हुआ अकाइटिनी होता है। कंटिकाओं की मदद से फ़्लूक परपोषी की पित्त-वाहिनी में जमा रहता है। **फ़ै० इण्डिका** के क्यूटिकल में चौड़े मज़बूत और कुंद शल्क पाए जाते हैं। **सर्केरिया** (cercaria) अवस्था के दौरान एपिडर्मिस विलुप्त हो चुका है। क्यूटिकल की सबसे निचली परत एक कोमल आधारक झिल्ली होती है और उसके नीचे अधःक्यूटिकलीय पेशियाँ होती हैं जिनमें एक तो वृत्ताकार पेशी तंतुओं की बाहरी परत होती है जिसके नीचे अनुदैर्घ्य पेशी तंतुओं की पंक्ति होती है और उसके बाद एक परत तिकर्ण पेशी तंतुओं की होती है जो देह के अगले आधे भाग में ज़्यादा विकसित होते हैं। सभी पेशियाँ अरेखित होती हैं। पेशियों के नीचे पैरेंकाइमा (मीज़ेंकाइम) होता है जिसमें बड़ी-बड़ी विशाखनशील कोशिकाएँ होती हैं और इन कोशिकाओं के प्रवर्ध क्यूटिकल तक पहुँचे होते हैं, इन्हीं कोशिकाओं से क्यूटिकल का स्राव होता है। मीज़ेंकाइम कोशिकाओं के बीच-बीच में तंतुओं का

बना एक सिन्सिशियमी जालक होता है और उसके साथ तरल से भरी हुई गुहाएँ होती हैं। पोषण और अपशिष्ट पदार्थ का वहन पैरेंकाइमा के द्वारा होता है।
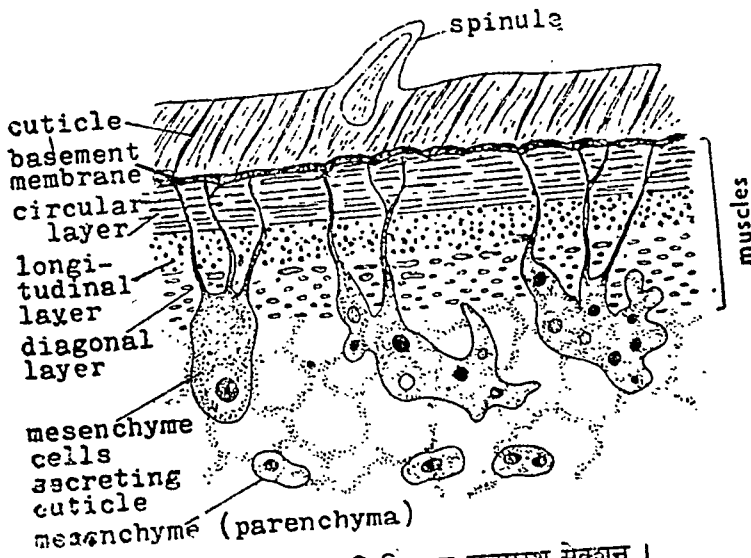
चित्र 154. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन।

Spinule, कंटिका; cuticle, क्यूटिकल; basement membrane, आधारक झिल्ली; circular layer, वृत्ताकार परत; longitudinal layer, अनुदैर्घ्य परत; mesenchyme cells secreting cuticle, क्यूटिकल का स्राव करने वाली मीज़ेंकाइम कोशिकाएँ; mesenchyme (parenchyma), मीज़ेंकाइम (पैरेंकाइमा)।

पाचन-तंत्र—मुख चूषक एक अधर मुख को घेरे रहता है जो भीतर एक कीप-जैसी मुख गुहा में खुलता है, उसके फिर आगे पेशिल ग्रसनी होती है जिसकी दीवारें मोटी और अवकाशिका छोटी होती है, ग्रसनी आहार चूसती है। ग्रसनी में ग्रसनीय ग्रन्थियाँ होती हैं। **फ़ै० इण्डिका** में एक छोटी पेशिल ग्रसनी होती है जिसमें से एक **मुख कोष्ठ** (oral pouch) निकलता है जो ग्रसनी के लगभग आधे साइज़ का होता है। एक छोटी, संकीर्ण ग्रसिका होती है जो एक अंतड़ी में खुलती है, यह अंतड़ी दो शाखाओं अथवा सीकमों में विभाजित हो जाती है जिनमें से हर एक शाखा एक पार्श्व में से चलती हुई पश्च सिरे तक पहुँचती है जहाँ वह बिना खुले समाप्त हो जाती है। सीकमों में अनेक विशाखित अंधवर्ध निकलते हैं जो आहार को देह के तमाम भागों तक पहुँचा देते हैं क्योंकि इन प्राणियों में कोई परिसंचरण-तंत्र नहीं होता। मध्योन्मुख अंधवर्ध छोटे होते हैं और पार्श्व की ओर निकलने वाले लंबे एवं विशाखित होते हैं। गुदा नहीं होती।

आहार नाल के ग्रसिका तक के भीतरी भाग में क्यूटिकल का अस्तर बना होता है और यह भाग एक चूषण अग्रांत्र के रूप में कार्य करता है। अंतड़ियों का अस्तर एण्डोडर्मी स्तम्भाकार कोशिकाओं का बना होता है। फ़्लूक इन

सब चीज़ों का आहार करता है—पित्त, रक्त, लसीका और कोशिका कचरा; ये सब पदार्थ उसकी अंतड़ी में भरे रहते हैं। सीकमों के विसृत अंधवर्धो में आहार का
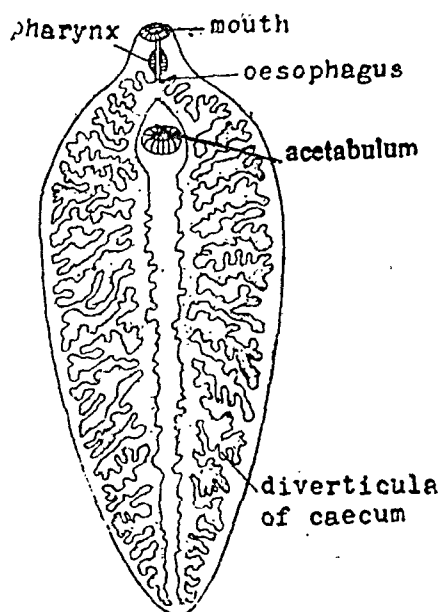
चित्र 155. पाचन-तंत्र।

Pharynx, ग्रसनी; mouth, मुख; oesophagus, ग्रसिका; aceta-bulum, ऐसिटैबुलम; diverticula of caecum, सीकम के अंधवर्ध।

वहन होता है तथा पैरेंकाइमा के साथ मिलकर वे परिसंचरण तंत्र का कार्य करते हैं।

उत्सर्गी-तंत्र—पश्च सिरे पर एक उत्सर्गी छिद्र होता है जिसमें से एक अनुदैर्घ्य उत्सर्गी नाल निकलती है और फिर इस नाल में से चार मुख्य शाखाएँ निकलती हैं, जिनमें से दो पृष्ठीय शाखाएँ और दो अधर शाखाएँ होती हैं; चारों शाखाएँ पुनः विभाजित होती जाती हुई छोटी-छोटी केशिकाएँ बना लेती हैं जो संशाखित हो जाती हैं; केशिकाएँ **लौ-कोशिकाओं** में समाप्त होती हैं। अनुदैर्घ्य उत्सर्गी नाल सिलिया-रहित होते हैं लेकिन केशिकाओं में सिलिया का अस्तर बना होता है। लौ-कोशिकाओं की विशिष्टता के रूप में उनमें एक केन्द्रक से युक्त पतली लचीली दीवारें होती हैं और बीच में एक गुहा होती है जिसमें आधारीय कणिकाओं से निकलते हुए अनेक लम्बे सिलिया होते हैं। सिलिया निरंतर एक ज्वाला की तरह थिरकते रहते हैं। तरल अपशिष्ट पदार्थ इर्द-गिर्द के ऊतकों से अवशोषित होता है और सिलिया इस अपशिष्ट को लौ-कोशिकाओं की द्रवस्थैतिक दाब के द्वारा प्रवाहित करते जाते हैं। लौ-कोशिकाओं तथा नलिकाओं के इस प्रकार के उत्सर्गी तंत्र को जिसमें कोई आंतरिक छिद्र नहीं होता और जो चलते-चलते एक बाहर खुलने वाले छिद्र तक पहुंच जाता है उसे

आदिवृक्कक तंत्र (protonephridial system) कहते हैं। यह तंत्र उत्सर्गी तो होता है लेकिन इसका मुख्य कार्य जंतु के तरल की मात्रा का नियमन करना होता है।
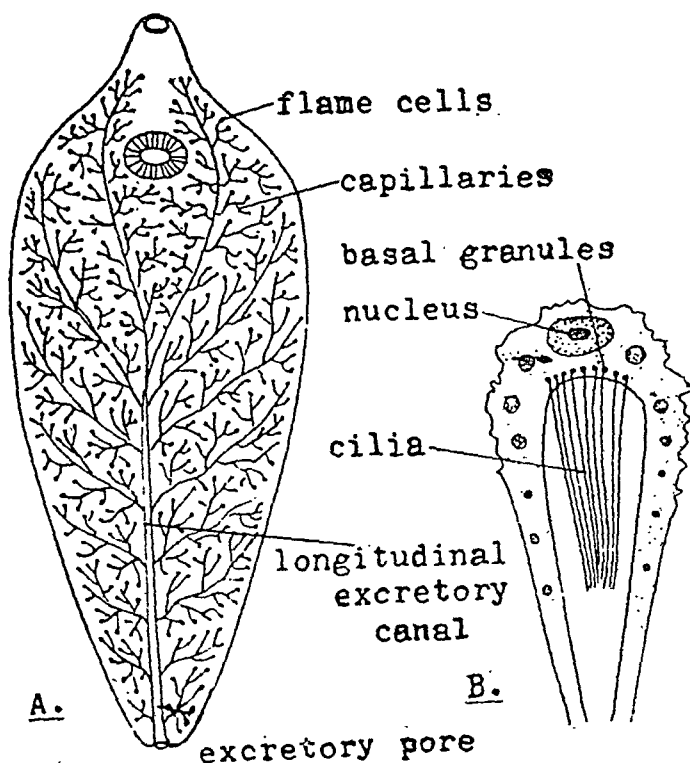
चित्र 156. A—उत्सर्गी तंत्र। B—लौ-कोशिका।
Flame cells, लौ-कोशिकाएँ; capillaries, केशिकाएँ; basal granules, आधारीय कणिकाएँ; nucleus, केन्द्रक; cilia, सिलिया longitudinal excretory canal, अनुदैर्घ्य उत्सर्गी नाल; excretory pore, उत्सर्गी छिद्र।

तंत्रिका-तंत्र—ग्रसिका को घेरता हुआ एक तंत्रिका-व[illegible] पाया जाता है, इसमें पृष्ठ-पार्श्व दिशा में एक जोड़ी प्रमस्तिष्कीय गैंग्लियान होते हैं, और ग्रसिका के नीचे एक अधर गैंग्लियान होता है। इन गैंग्लियानों से आगे की दिशा में छोटी-छोटी तंत्रिकाएँ निकलती हैं। गैंग्लियानों की पश्च दिशा से तीन जोड़ी अनुदैर्घ्य तंत्रिका रज्जुएँ निकलती हैं, एक पृष्ठीय, एक पार्श्वीय और एक अधर जोड़ी तंत्रिका रज्जुएँ। इनमें से पार्श्व तंत्रिका रज्जुएँ सबसे अधिक विकसित होती हैं और वे पश्च सिरे तक चलती जाती हैं। तंत्रिका-रज्जुएँ अनुप्रस्थ समयोजियों द्वारा जुड़ी होती हैं और उनमें से अनेक छोटी-छोटी शाखाएँ निकली होती हैं जिनमें से कुछ शाखाएँ परस्पर मिलकर जालकों का निर्माण करती हैं।

तंत्रिका-कोशिकाएँ अधिकतर द्वि-ध्रुवी होती हैं। परजीवी जीवन के कारण संवेदी अंग समाप्त हो गए हैं।
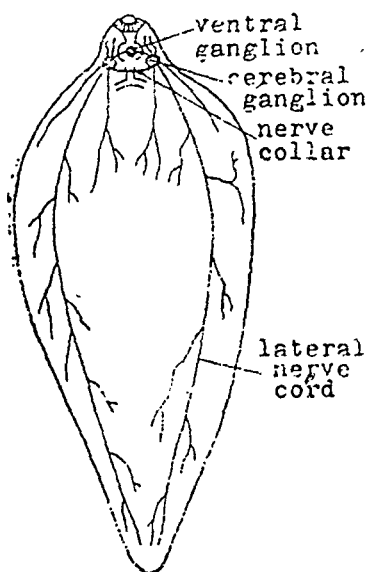
चित्र 157. तंत्रिका-तंत्र। Ventral ganglion, अधर गैंग्लियान; cerebral ganglion, प्रमस्तिष्कीय गैंग्लियान; nerve collar, तंत्रिका वलय; lateral nerve cord, पार्श्व तंत्रिका रज्जु।

जनन-तंत्र—फ़्लूक अधिकतर उभयलिंगी होते हैं लेकिन इनमें पर-निषेचन हुआ करता है। **फ़ैसियोला** के नर अंगों में दो अतिविशाखित नलिकाकार **वृषण** होते हैं जो देह के पश्चीय मध्य भाग में एक दूसरे के आगे-पीछे पड़े रहते हैं। वृषणों की दीवारों से शुक्राणु बनते हैं। प्रत्येक वृषण से एक **शुक्रवाहिका** निकलती है। दोनों शुक्रवाहिनियाँ आगे को चलती जाती और ऐसिटैबुलम के निकट आपस में जुड़ जाती तथा एक चौड़े थैले-जैसे **शुक्राशय** में खुलती हैं जिसका कार्य शुक्राणुओं का भण्डार बनाए रखना होता है। शुक्राशय एक संकीर्ण **स्खलन वाहिनी** (ejaculatory duct) में खुलता है, यह वाहिनी एक पेशिल **सिरस** (cirrus) (शिश्न) में से गुज़रती है जो एक नर जनन-छिद्र द्वारा एक **जनन एट्रियम** (genital atrium) में खुलता है। स्खलन वाहिनी में अनेक छोटी-छोटी **प्रॉस्टेट ग्रंथियाँ** खुलती हैं। एक थैले-जैसा **सिरस-कोष**, शुक्राशय, सिरस तथा प्रॉस्टेट ग्रंथियों को घेरे रहता है। **फ़ै० इंडिका** के सिरस पर छोटे-छोटे काँटे बने होते हैं। जनन एट्रियम नर और मादा जनन-छिद्रों के लिए एक सम्मिलित कोष्ठ होता है, यह एक जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है, और यह छिद्र अधर सतह पर ऐसिटैबुलम के सामने स्थित रहता है। मैथुन के दौरान सिरस उलट कर जनन-छिद्र में से बाहर को आ सकता है।

मादा अंगों में एक अकेला नलिकाकार अंडाशय देह के अग्र भाग में पड़ा रहता है और मध्य रेखा के दाईं ओर होता है। अंडाशय से एक अंडवाहिनी निकलती है। दोनों पार्श्व दिशाओं पर और साथ ही वृषणों के पीछे बहुत-सी संख्या में पुटक होते हैं जो **पीतक ग्रंथियाँ** (vitelline glands) होते हैं, इन ग्रंथियों से एल्बुमिनी पीतक तथा कवच पदार्थ का स्राव होता है। प्रत्येक पार्श्व पर पीतक ग्रंथियाँ एक अनुदैर्घ्य पीतक वाहिनी में खुलती हैं और इन अनुदैर्घ्य पीतक वाहिनियों से एक अनुप्रस्थ पीतक वाहिनी निकलती है। दोनों पार्श्वों की अनुप्रस्थ पीतक वाहिनियाँ बीच में संयुक्त होकर एक सम्मिलित (common) अथवा मध्य पीतक वाहिनी (median vitelline duct) बनाती हैं जिसके प्रारंभ पर ही एक फूला हुआ **पीतक आगार**

(yolk reservoir) होता है। सम्मिलित पीतक वाहिनी आगे की ओर चलती जाती और अंडवाहिनी से जुड़ जाती है, तथा इस संधि पर एककोशिक **मेहलिस-ग्रन्थियों** (Mehlis' glands) का समूह बना होता है। मेहलिस-ग्रंथियों का स्राव गर्भाशय में अंडों के मार्ग को चिकना करता है और कदाचित् अंड-कवचों को कड़ा भी बना देता है, शायद यह शुक्राणुओं को सक्रिय भी बनाता है। अंडवाहिनी तथा पीतक वाहिनी
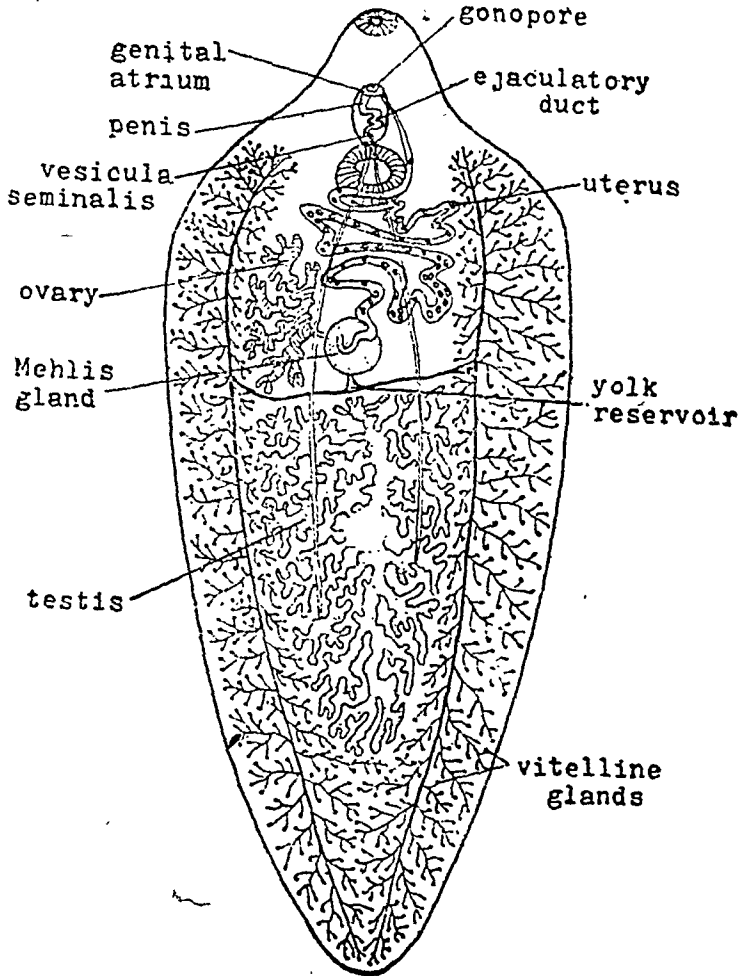
चित्र 158. जनन-अंग।

Gonopore, जनन-छिद्र; ejaculatory duct, स्खलन वाहिनी; uterus, गर्भाशय; yolk reservoir, पीतक आगार; vitelline glands, पीतक ग्रंथियाँ; testis, वृषण; Mehlis' gland, मेहलिस ग्रंथि; ovary, अंडाशय; vesicula seminalis, शुक्राशय; penis, शिश्न; genital atrium, जनन-एट्रियम।

की संधि पर पर्णकों में एक फूला हुआ **ऊटाइप** (ootype) होता है जैसे फ़ै० इंडिका में; इस भाग में अंडे के अंश परस्पर एक साथ आते हैं और अंडों का रूप प्राप्त होता

है, लेकिन फ़० हिपैटिका में ऊटाइप नहीं होता (कुछ विशेषज्ञों के अनुसार)। अंड-वाहिनी तथा पीतक वाहिनी की संधि पर एक चौड़ा संवलित **गर्भाशय** (uterus) निकलता है जिसमें अनेक सम्पूर्ण बन चुके अंडे होते हैं, यह एक मादा जनन-छिद्र के द्वारा जनन एट्रियम में नर जनन-छिद्र के बाईं ओर खुलता है। गर्भाशय अपेक्षाकृत छोटा होता है और यह गोनडों के सामने पड़ा रहता है। गर्भाशय के अंतिम भाग में पेशिल दीवारें होती हैं और उसे **गर्भाशयांत** (metraterm) कहते है जो अंडों को बाहर निकालता है। अंडवाहिनी से एक संकीर्ण **लॉरर-नाल** (Laurer's canal) निकलती है, जो खड़ी ऊपर को चलती है और पृष्ठ सतह पर खुलती है। यह नाल एक अवशेषी योनि (vagina) है और मैथुन-नाल का कार्य करती है। शिश्न प्रायः एक अन्य फ़्लूक द्वारा इस लौरर-नाल में डाला जाता है और शुक्राणु अंडवाहिनी में
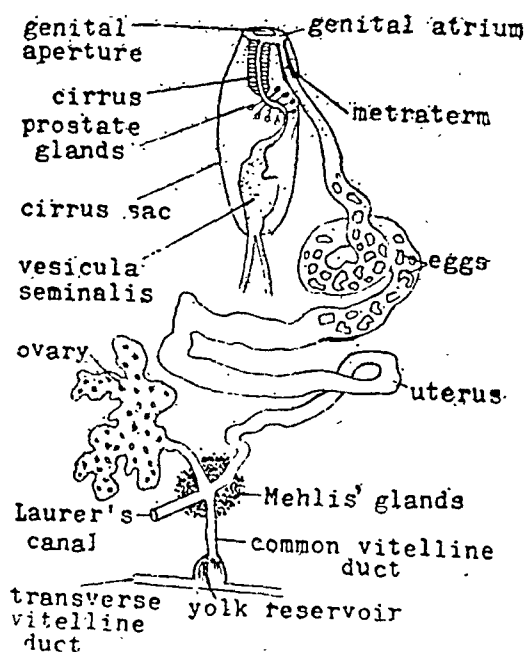
चित्र 159. जनन अंगों की वाहिनियाँ।

Genital atrium, जनन एट्रियम; metraterm, गर्भाशयांत; eggs, अंडे; uterus, गर्भाशय; Mehlis' glands, मेहलिस ग्रंथियाँ; common vitelline duct, सम्मिलित पीतक वाहिनी; Laurer's canal, लौरर-नाल; ovary, अंडाशय; vesicula seminalis, शुक्राशय; cirrus sac, सिरस कोष; prostate glands, प्रॉस्टेट ग्रंथियाँ; cirrus सिरस; genital aperture, जनन-छिद्र।

छोड़ दिए जाते हैं और इस तरह पर-निषेचन होता है। कभी-कभी एक ही फ़्लूक के शुक्राणु उसी के मादा जनन-छिद्र में चले जाते हैं और गर्भाशय में अंदर को चलते जाते हैं, जिससे कि स्व-निषेचन सम्पन्न होता है।

जीवन-वृत्त—अंडों का निषेचन अंडवाहिनी में होता है, निषेचित अंडे पीतक ग्रंथियों से पीतक कोशिकाएँ प्राप्त करते हैं, ये एक काइटिनी कवच में बंद हो जाते हैं, इस कवच का निर्माण पीतक कोशिकाओं की कणिकाओं द्वारा होता है जो वुंदकों का स्राव करती हैं, कवच कड़ा हो जाता और भूरे पीले रंग का बन जाता है, कवच में एक ऑपर्कुलम (operculum) अथवा ढकना होता है। मेहलिस ग्रंथियों का कवच के निर्माण में कोई कार्य नहीं होता। पूर्ण बन चुके "अंडों" को कैप्सूल (capsule) कहते हैं जो साइज में बड़े होते हैं और वे गर्भाशय में पहुँचते हैं, जहाँ उनका परिवर्धन शुरू हो जाता है। कैप्सूल जनन-छिद्र में से बाहर आकर भेड़ की पित्त-वाहिनी में आ जाते हैं, वहाँ से वे उसकी अंतड़ियों में पहुँचते हैं और विष्ठा के साथ बाहर पहुँच जाते हैं। जो कैप्सूल जल में अथवा नमी वाले स्थानों में गिर जाते हैं उनमें लगभग 75°F पर परिवर्धन होता है। कैप्सूल सारे साल बनते रहते हैं, और एक फ्लूक 500,000 कैप्सूल तक पैदा कर सकता है।
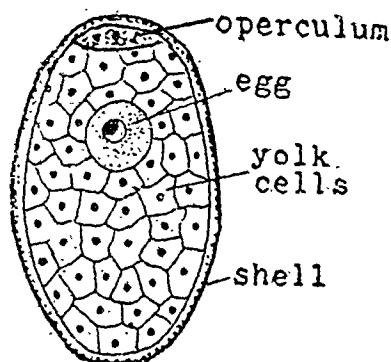
चित्र 160. कैप्सूल। Operculum, ऑपर्कुलम; egg, अंडा; yolk cell, पीतक कोशिका; shell, कवच।

परिवर्धन गर्भाशय में ही शुरू हो जाता है और जमीन पर आ जाने के बाद जारी रहता है। निषेचित अंडे में विभाजन होकर एक छोटी **वंशवर्धी कोशिका** (propagative cell) और एक बड़ी **एक्टोडर्मी कोशिका** (ectodermal cell) बन जाती हैं। एक्टोडर्मी कोशिका में विभाजन होकर लार्वा का एक्टोडर्म बनता है। बाद में वंशवर्धी कोशिका का विभाजन होकर दो कोशिकाएँ बनती हैं जिनमें एक से लार्वा का **एंडोडर्म** तथा **मीज़ोडर्म** बनता है और दूसरी से लार्वा के पश्च सिरे पर स्थित "जनन कोशिकाओं" की एक संहति बन जाती है। परिवर्धन की यह विधि फ्लूक के जीवन-वृत्त के दौरान हर एक लार्वा अवस्था के निर्माण में चलती रहती है। दो सप्ताह में एक छोटा सिलियायुक्त **मिरैसिडियम लार्वा** (miracidium larva) बन जाता है और यह लार्वा ऑपर्कुलम को खोल कर कवच के बाहर आ जाता है, मिरैसिडियम एक प्रोटीनअपघटक एन्ज़ाइम बनाता है जो ऑपर्कुलम की निचली सतह को घुला देता है। मिरैसिडियम लार्वा एक स्वच्छंदजीवी अवस्था होती है, इसके ऊपर 18 से 21 सिलियायुक्त एपिडर्मिसी कोशिकाओं का एक आवरण बना होता है, ये कोशिकाएँ पाँच वलयों में व्यवस्थित रहती हैं। अग्र सिरे पर एक शंक्वाकार शीर्षस्थ पैपिला होता है और उससे जुड़ा हुआ एक ग्रंथि थैला होता है जिस पर एक सूराख बना होता है, इस ग्रंथि को **शीर्षस्थ ग्रंथि** (apical gland) कहते हैं। शीर्षस्थ ग्रंथि के प्रत्येक पार्श्व में एक थैले-जैसी **वेधन ग्रंथि** (penetration gland) होती है। वर्णकयुक्त दो नेत्र-विंदु तथा एक तंत्रिका-तंत्र होता है। एक जोड़ा

आदिनेफ्रीडिया (protonephridia) का पाया जाता है, और उनमें से हर एक में दो-दो लौ-कोशिकाएँ होती हैं। पश्च दिशा में कुछ वंशवर्धी कोशिकाएँ (जनन-कोशिकाएँ) होती हैं जिनमें से कुछ एक में विभाजन होकर जनन गेंदें बन गई होती हैं
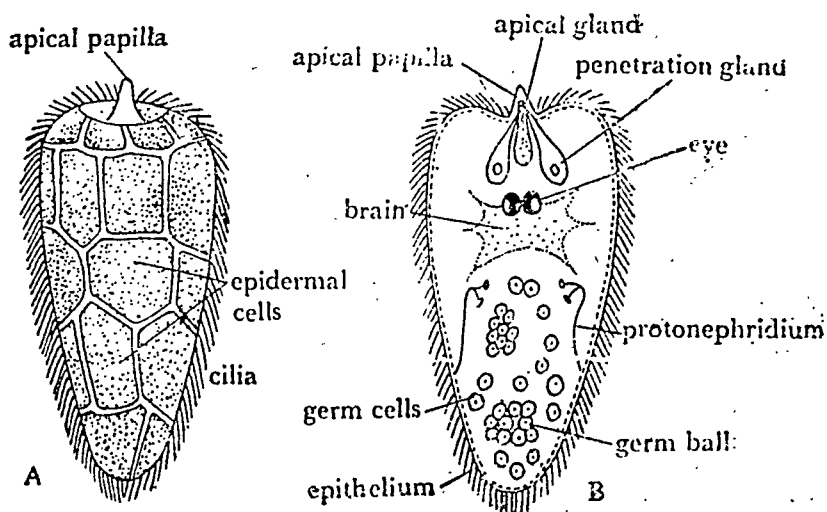
चित्र 161. मिरैसिडियम लार्वा। A—सतही दृश्य; B—भीतरी संरचना। Apical papilla, शीर्षस्थ पैपिला; epidermal cells, एपिडर्मिसी कोशिकाएँ; cilia, सिलिया; apical gland, शीर्षस्थ ग्रंथि; penetration gland, वेधन-ग्रंथि; eye, आंख; brain, मस्तिष्क; protonephridium, आदिनेफ्रीडीयम; germ cells, जनन-कोशिकाएँ, epithelium एपिथीलियम; germ ball, जनन-गेंद।

जो कि परिवर्धनशील भ्रूण होते हैं। मिरैसिडियम आहार नहीं करता, यह जल में अथवा नमी की फ़िल्म में तैरता रहता है लेकिन यदि आठ घंटे के भीतर-भीतर इसे कोई उपयुक्त मध्यस्थ परपोषी नहीं मिल जाता तो यह मर जाता है, मध्यस्थ परपोषी **लिम्निया** (*Limnaea*) अथवा यहाँ तक कि **ब्यूलिनस** (*Bulinus*) या **प्लैनॉर्बिस** (*Planorbis*) वंशों के जलस्थलचर घोंघों की कोई स्पीशीज़ होती है। मिरैसिडियम अपने शीर्षस्थ पैपिला के द्वारा घोंघे पर चिपक जाता और उसके फुफ्फुस-कोश में घुल जाता है जहाँ से फिर यह अपनी वेधन-ग्रंथियों की सहायता से उसके देह-ऊतकों में भीतर घुस जाता है। ऊतकों में मिरैसिडियम अपना सिलियायुक्त एपिडर्मिस उतार फेंकता है, संवेदी अंग समाप्त हो जाते हैं और यह फूल जाता है तथा इसकी आकृति में बदल होकर यह एक स्पोरोसिस्ट बन जाता है।

स्पोरोसिस्ट (sporocyst) एक लंबा जनन थैला होता है जिसके ऊपर एक पतले क्यूटिकल का आवरण बना होता है, उस आवरण के नीचे मीज़ेंकाइम कोशि-

काएँ तथा कुछ पेशियाँ होती हैं। इसके खोखले भीतर में एक जोड़ी आदि-नेफ्रीडिया होते हैं जिनमें से प्रत्येक में दो लौ-कोशिकाएँ होती हैं, और जनन कोशिकाएँ तथा जनन गेंदें होती हैं। जनन कोशिकाएँ इसी मूल अंडाणु से सीधे वंशक्रम में उत्पन्न हुई होती हैं जिससे मिरैसिडियम बनता है। स्पोरोसिस्ट अपने परपोषी के ऊतकों में घूमता फिरता है और उसकी जनन कोशिकाओं से एक तीसरे प्रकार का लार्वा विकसित होता है जिसे रीडिया कहते हैं। एक स्पोरोसिस्ट के भीतर 5 से 8 रीडिया होते हैं। रीडिया लार्वा स्पोरोसिस्ट में से निकलकर घोंघे के ऊतकों में पहुँच जाते हैं, इस निकलने में वे अपने पेशिल कॉलर तथा अधर प्रवर्धों की सहायता लेते हैं। अंत में ये रीडिया घोंघे के जिगर में पहुँच जाते हैं।
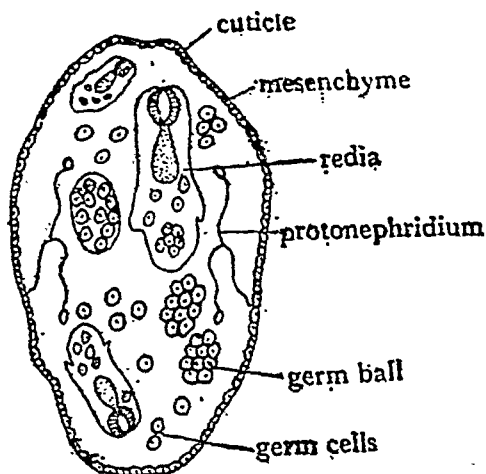
चित्र 162. स्पोरोसिस्ट। Cuticle, क्यूटिकल; mesenchyme, मीज़ेंकाइम; redia, रीडिया; protonephridium, आदिनेफ्रीडियम; germ ball, जनन गेंद; germ cells, जनन कोशिकाएँ।

रीडिया (redia) लम्बा होता है, उसके पश्च सिरे के समीप दो अधर प्रवर्ध होते हैं, और अग्र सिरे के समीप एक जन्म-छिद्र होता है। देह-भित्ति में एक क्यूटिकल, मीज़ेंकाइम तथा पेशियाँ होती हैं और अग्र सिरे के समीप, ठीक जन्म-छिद्र के आगे पेशियों का एक वृत्ताकार कटक बना होता है जिसे **कॉलर** (collar) कहते हैं, यह कॉलर चलन गति में सहायता देता है। रीडिया में एक अग्र मुख, ग्रसनी और थैले-जैसी अंतड़ी होती है और दो जोड़ी लौ-कोशिकाओं से युक्त एक जोड़ी आदिनेफ्रीडिया होते हैं। इसकी गुहा में जनन-कोशिकाएँ तथा जनन गेंदें होती हैं। रीडिया की जनन-कोशिकाएँ गर्मियों के महीनों में संतति रीडियाओं की एक द्वितीय पीढ़ी को जन्म देती हैं किन्तु जाड़ों में उनसे चौथी लार्वा अवस्था उत्पन्न होती है जिसे सर्केरिया लार्वा कहते हैं। इस प्रकार या तो प्राथमिक रीडिया या संतति रीडिया से सर्केरिया लार्वा उत्पन्न होते हैं जो रीडिया के जन्म-छिद्र में से बाहर निकल कर घोंघे के ऊतकों में पहुँच जाते हैं। प्रत्येक रीडिया से 14 से 20 सर्केरिया निकलते हैं। सर्केरिया का शरीर अंडाकार होता है जिसमें एक सरल लम्बी पूँछ बनी होती है, इसका एपिडर्मिस शीघ्र ही झड़ जाता और उसके स्थान पर क्यूटिकल बन जाता है; क्यूटिकल के नीचे पेशियाँ और **पुटीजन ग्रन्थियाँ** (cystogenous glands) होती हैं। इसमें वयस्क के अंगों के मूलांग (rudiments) बने होते हैं, दो चूषक होते हैं तथा मुख, मुख-गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका और एक द्विशाखित अंतड़ी से युक्त अहार नाल होती है। एक आशय

(ब्लैडर) होता है जिसके साथ अनेक लौ-कोशिकाओं से युक्त एक जोड़ी आदिनेफ्रीडियाई नालें होती हैं। दो बड़ी **वेधन ग्रंथियाँ** (penetration glands) होती हैं, लेकिन
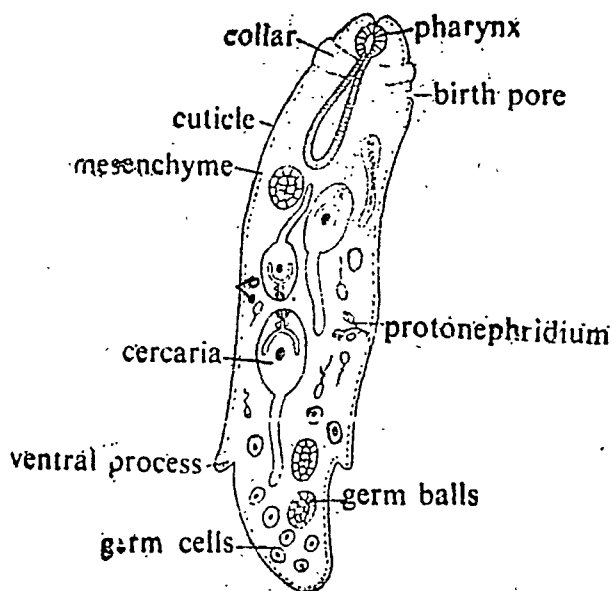
चित्र 163. रीडिया लार्वा।

Collar कॉलर; pharynx, ग्रसनी; birth pore, जन्म-छिद्र; cuticle, क्यूटिकल; mesenchyme, मीज़ेंकाइम; protonephridium, आदिनेफ्रीडियम; cercaria, सर्केरिया; ventral process, अधर प्रवर्ध; germ balls जनन गेंदें; germ cells, जनन कोशिकाएँ।

फ़ैसियोला के सर्केरिया में ये कार्यहीन होती हैं। इसमें जनन कोशिकाओं से बने हुए जननांगों के मूलांग भी होते हैं। सर्केरिया, रीडिया के जन्मछिद्र में से निकल कर बाहर आते हैं, उसके बाद वे घोंघे के जिगर में से चलकर उसके फुपफुस थैले में पहुँच जाते हैं जहाँ से निकलकर फिर वे बाहर जल में चले जाते हैं।

घोंघे में मिरैसिडियम के प्रवेश से लेकर उसमें से सर्केरिया के बाहर आने तक में लगने वाला समय पाँच से छः सप्ताह का होता है।

सर्केरिया जल में 2 से 3 दिन तक तैरते रहते हैं, उसके बाद उनकी पूँछ टूट कर अलग हो जाती है और उनके ऊपर पुटीजन ग्रन्थियों से स्रावित होने वाली एक पुटी बन जाती है। पुटी के भीतर बंद सर्केरिया को **पश्चसर्केरिया (मेटासर्केरिया)** कहते हैं। ये पश्चसर्केरिया पानी में बने हों तो वे एक वर्ष तक जीवित रह सकते हैं, लेकिन यदि वे घास या वनस्पति पर बनते हैं तब कुछ ही सप्ताह तक जीवित रहते हैं, ये थोड़े-थोड़े काल का सूखा सहन कर सकते हैं।

विभिन्न लार्वा अवस्थाओं (मिरैसिडियम, स्पोरोसिस्ट, रीडिया तथा सर्केरिया) का निर्माण जनन-कोशिकाओं से एक ही तरह से होता है। ये जनन-कोशिकाएँ पहले

विभाजन के समय से ही पृथक् हो जाती हैं। अतः इस प्रकार जनन कोशिकाओं एवं दैहिक कोशिकाओं में विभाजन हो जाता है, और केवल जनन कोशिकाओं से ही विभिन्न लार्वा अवस्थाएँ बनती हैं।
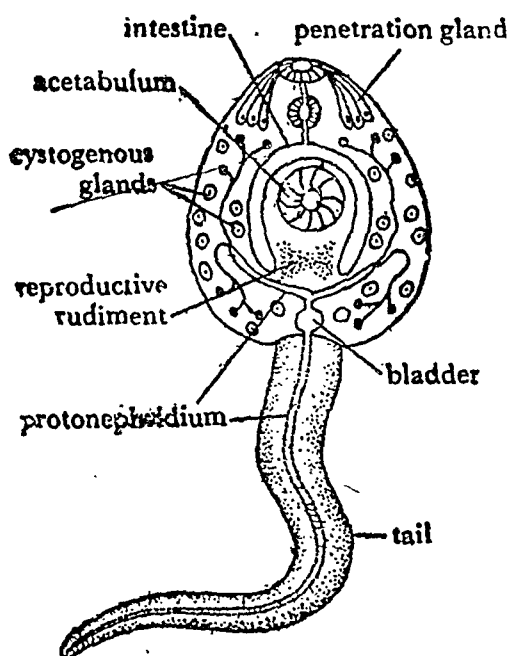
चित्र 164. सर्केरिया लार्वा।

Penetration gland, वेधन ग्रन्थि; intestine, अंतड़ी, acetabulum, ऐसिटैबुलम; cystogenous glands, पुटीजन ग्रन्थियाँ; reproductive rudiment, जनन मूलांग; bladder, आशय, protonephridium आदिनेफ्रीडियम; tail, पूँछ।

पश्चसर्केरिया का और आगे परिवर्धन तभी होता है जब उसे अन्तिम परपोषी निगल लेता है, यह अन्तिम परपोषी भेड़ होती है। पश्चसर्केरिया से मनुष्य में संक्रमण हो सकता है यदि वह इस प्रकार की किसी वनस्पति को खा लेता है जिस पर ये सर्केरिया पुटी बनाते हैं, लेकिन ऐसे उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं। लेकिन पश्चसर्केरिया तब तक संक्रमणशील नहीं होते जब तक कि पुटीभवन के बाद 12 घण्टे नहीं बीत जाते हैं। भेड़ के आहार नाल में पुटि-भित्ति पच जाती है और एक बच्चा फ्लूक् निकल आता है जो परपोषी की अंतड़ियों की दीवार को वेधता हुआ उसके शरीर में पहुँच जाता है। लगभग दो से छह दिन के बाद ये जिगर में पहुँच जाते हैं और जिगर में उनकी गतियों से गम्भीर क्षति पहुँच सकती है। बच्चा-फ़्लूक जिगर में सात या आठ सप्ताह तक रुके रहते हैं जहाँ वे मुख्यतः रक्त का आहार करते हैं और उसके बाद वे पित्त-वाहिनी तथा पित्त-मार्गों में पहुँच जाते हैं। बच्चा-फ़्लूक जिगर में बढ़ रहे होते हैं और पित्त-वाहिनी में अनेक सप्ताह तक रह चुकने

पर उनमें लैंगिक परिपक्व वयस्क बन जाते हैं। भेड़ में इस परजीवी का उद्भवन काल 3 से 4 महीने का होता है।
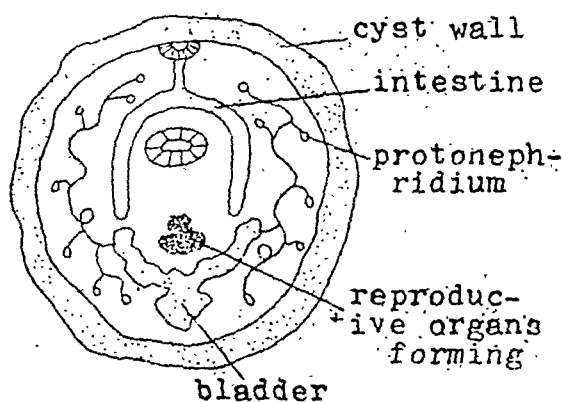
चित्र 165. पश्चसर्केरिया (Metacercaria)

Cyst wall, पुटी भित्ति; intestine, अंतड़ी; protonephridium, आदिनेफ्रीडियम; reproductive organs forming, निर्माणशील जननांग; bladder, आशय।

यकृत् पलूक भेड़ के जिगर में गम्भीर प्रभाव पैदा करते हैं, जिगर के सामान्य कार्यों में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और भेड़ में "यकृत्-सड़न" नामक रोग हो जाता है, यह रोग इन यकृत्-पलूकों के क्यूटिकलीय कंटिकाओं के द्वारा होने वाले क्षोभ से पैदा होता है, भेड़ के शरीर में जल की बहुत मात्रा इकट्ठी हो जाती है, पेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं, यकृत् के कार्य गड़बड़ा जाते हैं और भेड़ें कम उम्र में ही भारी संख्या में मरने लगती हैं। इस रोग के फैलाव को रोकने के लिए संक्रमित भेड़ों का हेक्साक्लोरोईथेन (hexachloroethane) से उपचार करना चाहिए, इस औषधि से पलूक मर जाते हैं। परजीवियों को नष्ट करने के लिए द्वितीयक परपोषी अर्थात् घोंघे को मारना भी कारगर सिद्ध होता है। यह उद्देश्य दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है, चरागाहों में बत्तखें छोड़ कर जो तीव्रता से घोंघों की आबादी को कम करती जाती हैं और दूसरे नालियों आदि के द्वारा चरागाहों का पानी निकाल कर क्योंकि अधिक समय तक सूखे क्षेत्रों में घोंघे जीवित नहीं रह सकते।

फैलाव—**फ़सियोला** का जीवन-वृत्त उसमें परजीविता पाए जाने के कारण बहुत जटिल होता है। एक भेड़ में लगभग 200 पलूक होते हैं जो लगभग 10 करोड़ अंडे देते हैं। मिरैसिडियम लार्वा स्वच्छंद-जीवी होता है और संरचनात्मक दृष्टि से इसमें ऐसा अनुकूलन होता है कि यह मध्यस्थ परपोषी **लिम्निया** घोंघे को ढूंढ सकता है। यह घोंघा सरलता से जल में और दूर-दूर तक उन क्षेत्रों में घास में मिल सकता है जहाँ की मिट्टी खूब गीली हो और जहाँ पर भेड़ें चरती हों। स्पोरोसिस्ट से 5 से 8 रीडिया बन जाते हैं, जिनमें से प्रत्येक में 8 से 12 संतति रीडिया बनते हैं, प्रत्येक संतति रीडिया में 14 से 20 सर्केरिया बनते हैं; इस प्रकार केवल एक ही अंडे से अंत में लगभग एक हज़ार सर्केरिया बन जाते हैं। भारी संख्या में बनने वाले इन

सर्केरियाओं में से कुछ न कुछ सर्केरिया तो नई भेड़ में संक्रमण पैदा कर ही देंगे, और इस तरह वंश का क्रम बना रहता है।

फ़ैसियोला के जीवन-वृत्त में पीढ़ी एकांतरण का एक अच्छा उदाहरण मिलता है, पृलूक लैंगिक पीढ़ी है और इसका एकांतरण अलैंगिक पीढ़ी से नहीं होता बल्कि स्पोरोसिस्टों तथा रीडियाओं की **अनिषेकजनन पीढ़ियों** (parthenogenetic generations) से होता है। लैंगिक पीढ़ी तथा क्रमिक अनिषेकजनन पीढ़ियों के एकांतरण को **विषमयुग्मन** (heterogamy) कहते हैं। विभिन्न लार्वा-अवस्थाओं में अनिषेकजननीय परिवर्धन के मत को अब सही नहीं माना जाता, और जनन-कोशिकाओं से विविध लार्वाओं के बनने को एक साधारण माइटोसिसी अलैंगिक प्रगुणन समझा जाता है; विविध लार्वाओं के इस अलैंगिक प्रगुणन को **बहुभ्रूणता** (polyembryony) कहते हैं। इस प्रकार लार्वा अवस्थाओं में अलैंगिक प्रगुणन का एक काल होता है जिसके बाद वयस्क पृलूक का लैंगिक जनन आता है। इसे पीढ़ी एकांतरण माना जा सकता है लेकिन अधिक संभावना ऐसी है कि यह एक जारी रहने वाला जीवन-वृत्त है जिसमें परजीविता के कारण अलैंगिक प्रगुणन लार्वा अवस्थाओं में ही होता है।

जल और बेंटोनाइट के साथ हेक्साक्लोरोईथेन को 100 पौंड देह-भार के लिए 10 gm. औषधि के दर से खिलाने पर मवेशियों और भेडों से परजीवी समाप्त हो सकते हैं।

3. टीनिया सोलियम (*Taenia solium*)
(सूअर का फ़ीता-कृमि)

क्लास **सेस्टोडा** म फ़ीता-कृमि आते हैं जो आम तौर से कशेरुकियों के आहार नाल में पाए जाने वाले अंतःपरजीवी होते हैं। इनमें एपिडर्मिस समाप्त हो चुका है और ऊपर से एक क्यूटिकल चढ़ा होता है। इनमें बहुत रूपांतरण हो गया होता है, शरीर संकीर्ण और लंबा होता है जिसमें विभाजन होकर स्कोलेक्स (scolex), गर्दन और एक व्यष्टि-शृंखला बन गई होती है जिसकी व्यष्टियों को प्रोग्लौटिड (proglottid) कहते हैं; स्कोलेक्स में परपोषी से चिपके रहने के वास्ते चूपण और हुक बने हो सकते हैं। मुख और पाचन-पथ पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं। जीवन-चक्र में दो या अधिक परपोषी आते हैं।

टीनिया सोलियम संसार के उन भागों में मनुष्य की आंत में पाया जाने वाला परजीवी है जहाँ सूअर का मांस पूरी तरह पकाए बिना खाया जाता है, खास तौर से यूरोप में, लेकिन अब यह अपेक्षाकृत कम होता जा रहा है। यह आहार-नाल में, जहाँ पर यह चिपकता है, श्लेष्मा झिल्ली को हानि पहुँचाता है, और हो सकता है कि आहार-नाल को अवरुद्ध करके यांत्रिकीय हानि भी पहुँचाए। इसके कारण उदरीय दर्द, कमज़ोरी, वज़न घट जाने और अत्यधिक भूख की शिकायतें पैदा हो जाती हैं। यह लंबा, चपटा, रिबन-जैसा और अपारदर्शी सफेद रंग का होता है। यह 6 से 10 फुट लंबा होता है अग्र सिरे पर 1 mm. व्यास का घुंडी-जैसा

स्कोलेक्स (scolex) होता है, जिस पर अरीय पेशियों से युक्त 4 प्याले-नुमा पेशिल चूषक बने होते हैं और एक अग्र गोल उभार **रॉस्टेलम** (rostellum) बना होता है जिस पर दो वृत्तों में व्यवस्थित 22 से 32 हुक बने होते हैं, भीतरी वृत्त में अपेक्षाकृत बड़े और बाहरी वृत्त में छोटे हुक होते हैं, लंबे और छोटे हुक एकांतर क्रम में होते हैं। रॉस्टेलम को थोड़ा-सा बाहर को निकाला और भीतर को सिकोड़ा जा सकता है। चूषकों तथा हुकों से युक्त स्कोलेक्स परपोषी की आंत्र-भित्ति से चिपकने वाला अंश होता है। एक छोटी अखंडित **गर्दन** होती है जो लगातार बढ़ती रहती है और जिसमें से अनुप्रस्थ विभजन अथवा अलैंगिक मुकुलन के द्वारा प्रोग्लौटिडों का प्रफलन (proliferation) होता है। **प्रोग्लौटिड** विखंडीय (metameric) खंड नहीं होते
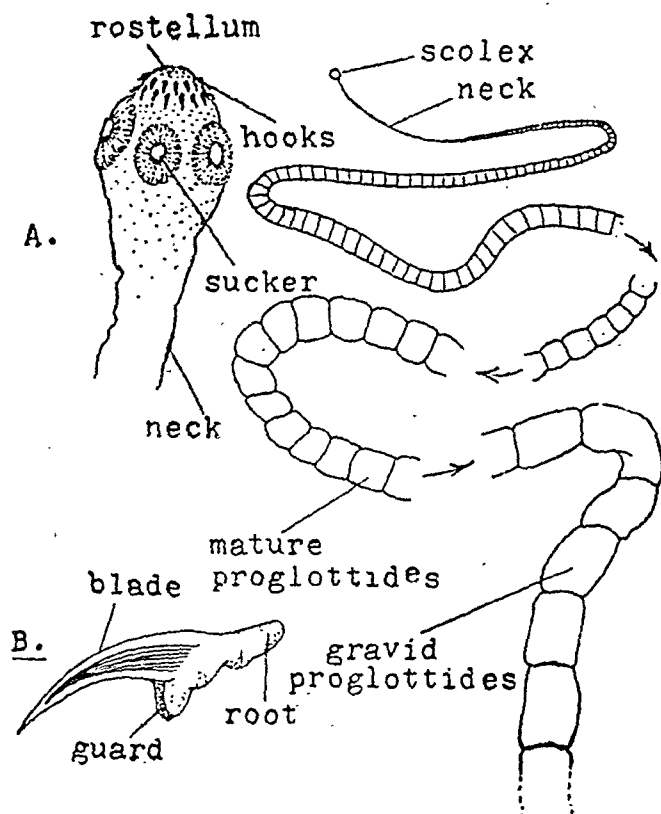
चित्र 166. **टीनिया सोलियम**। A—स्कोलेक्स, B—हुक।
Rostellum, रॉस्टेलम; scolex, स्कोलेक्स; neck, गर्दन; hooks, हुक; sucker, चूषक; blade, ब्लेड; guard, गार्ड; root, जड़; mature proglottides, परिपक्व प्रोग्लौटिड; gravid proglottides, सगर्भ प्रोग्लौटिड।

बल्कि एक शृंखला के रूप में एक दूसरे के आगे पीछे व्यवस्थित प्राणी अथवा व्यष्टियाँ होते हैं, जिसके कारण हम कह सकते हैं कि फ़ीता-कृमि कोई एक व्यक्तिगत प्राणी नहीं होता बल्कि एक-दूसरे के पीछे बने हुए अनेक प्राणियों का परिवार होता है।

ये प्रोग्लौटिड अकशेरुकियों तथा कॉर्डेटों के खंडों से निर्माण और व्यवस्था दोनों ही में भिन्न होते हैं, ये सिर के पीछे स्थित एक अग्र प्रफलन क्षेत्र से बनते हैं, ये पीछे से आगे के क्रम में बनते जाते हैं जिसका यह अर्थ हुआ कि सबसे कम उम्र वाला प्रोग्लौटिड तुरंत गर्दन के बाद होगा और सबसे अधिक आयु वाला पिछले अंतिम सिरे पर होगा। खंडयुक्त अकशेरुकियों में प्रफलन क्षेत्र पश्चीय होता है और खंड आगे से पीछे को बनते जाते हैं। जिसका नतीजा यह होता है कि नवीनतम खंड सबसे पिछले सिरे पर होता है। परिपक्व कृमि के शरीर अथवा **स्ट्रौबिला** (strobila) में 800 से 900 प्रोग्लौटिड होते हैं। नवीनतम प्रोग्लौटिड गर्दन के निकटतम होते हैं, ये लंबाई की अपेक्षा चौड़े अधिक होते हैं और इनमें लैंगिक अंग नहीं होते; बीच के क्षेत्र में कुछ-कुछ वर्गाकार प्रोग्लौटिड होते हैं और उनमें पहले नर अंग विकसित होते है फिर नर और मादा दोनों प्रकार के अंग एक साथ होते हैं, इन्हें **परिपक्व** प्रोग्लौटिड कहते हैं। सबसे अधिक आयु वाले प्रोग्लौटिड आखिरी सिरे के समीप होते हैं। वे चौड़ाई की अपेक्षा लंबे अधिक होते हैं और उनकी लंबाई 12 mm. होती है, इनमें अंडे भरे होते हैं और इन्हें **सगर्भ** (gravid) अथवा पके प्रोग्लौटिड कहते हैं। स्ट्रौबिला धीरे-धीरे लंबाई में पीछे की ओर को चौड़ा होता जाता है। प्रोग्लौटिडों
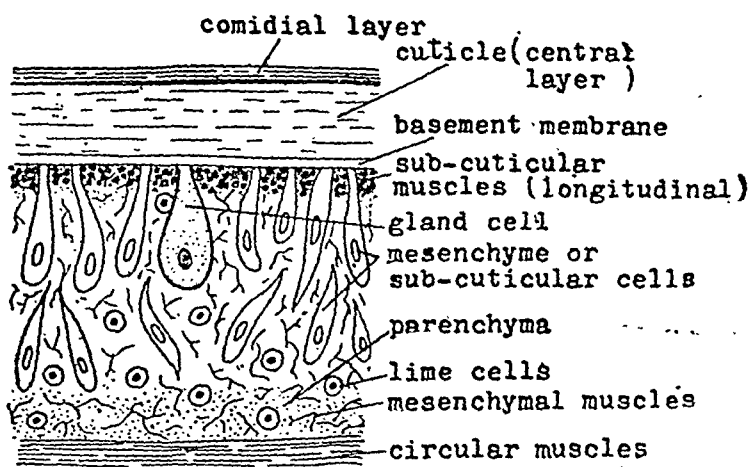
चित्र 167. **टीनिया** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) (अंशतः)। Comidial layer, कोमिडियाई परत; cuticle (central layer), क्यूटिकल (मध्य परत); basement membrane, आधारक झिल्ली; sub-cuticular muscles (longitudinal) अधः क्यूटिकली पेशियाँ (अनुदैर्घ्य), gland cell, ग्रंथि-कोशिका; mesenchyme or sub-cuticular cells, मीज़ेंकाइम अथवा अधः क्यूटिकली कोशिकाएँ; parenchyma, पैरेंकाइमा; lime cells, चूना कोशिकाएँ; mesenchymal muscles, मीज़ेंकाइमी पेशियाँ; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ।

में एकांतर क्रम में दाएँ और बाएँ सीमांत पर एक जनन पैपिला एव छिद्र बना होता है। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य लक्षण यह है कि मुख, आहार-नाल और गुदा का हर

परिवर्धन अवस्था में पूर्ण अभाव होता है। ये परपोषी की उस श्लेष्मा झिल्ली से, जिससे कृमि अपना सम्पर्क बनाए रहते हैं, नाइट्रोजनी पदार्थ के रूप में पचा हुआ आहार अवशोषित करते हैं, और साथ ही परपोषी के आहार-नाल से द्रवों के रूप में वे पचे हुए कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन भी अवशोषित कर लेते हैं। फ़ीताकृमि परपोषी के आहार में पाए जाने वाले यीस्ट के किसी रचक पर और परपोषी के लिंग-हार्मोनों पर भी निर्भर होते हैं। वे ग्लाइकोजन तथा लाइपॉइडों के रूप में आहार को भीतर सुरक्षित भी भर लेते हैं।

प्रोग्लौटिड का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S)—एक बाहरी बहुस्तरी क्यूटिकल होता है। **क्यूटिकल** में तीन प्रमुख परतें होती हैं, एक बाहरी **कोमिडियाई परत** (comidial
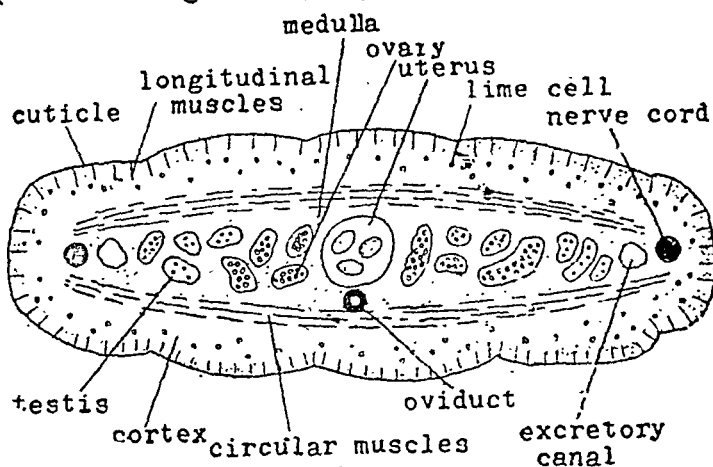
चित्र 168. परिपक्व प्रोग्लौटिड का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)। Cuticle, क्यूटिकल; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; medulla, मेडुला; ovary, अंडाशय; uterus, गर्भाशय; lime cell, चूना कोशिका; nerve cord, तंत्रिका रज्जु; excretory canal, उत्सर्गी नाल; oviduct, अंडवाहिनी; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; cortex कॉर्टेक्स; testis. वृषण।

layer) जिसमें धागे या काँटे बने हो सकते हैं, एक मोटी समांग मध्य परत (central layer), तथा एक **आधारक झिल्ली** (basement membrane)। क्यूटिकल जीवित साइटोप्लाज़्म की परत होती है जिसमें ब्रुश-जैसे धागे होते हैं, यह मीज़ेंकाइम कोशिकाओं का प्रसार होता जान पड़ता है और अब इसे टेगुमेंट (tegument) कहते हैं, यह आधारक झिल्ली पर टिकी होती है। एपिडर्मिस का अभाव होता है, वास्तव में वयस्क में एक्टोडर्म और एंडोडर्म दोनों ही नहीं होते, केवल मीज़ोडर्म होता है जो शरीर के अंग बनाता है। क्यूटिकल के नीचे वृत्ताकार पेशियों की एक पतली परत और अनुदैर्घ्य पेशी तंतुओं की एक मोटी परत पाई जाती है। मुख्य पदार्थ **पैरेंकाइमा** का बना होता है जो तरल से भरी गुहाओं तथा मीज़ेंकाइम (अधः क्यूटिकली) कोशिकाओं से युक्त एक स्पंजी जालक होता है। मीज़ेंकाइम कोशिकाएँ

लंबी गर्दन वाली होती हैं और उनसे क्यूटिकल का स्राव होता है। पैरेंकाइमा में गोल कैल्सियमी चूना कोशिकाएँ होती हैं जिनका स्राव मीज़ेंकाइम से हुआ होता है, ये कदाचित् परपोषी के पाचन रसों के अम्ल का निराकरण कर देती हैं। पैरेंकाइमा में कुछ मीज़ेंकाइमी पेशियाँ होती हैं, और वृत्ताकार पेशी तंतुओं की एक पट्टी के द्वारा, जो किनारों पर अधूरे होते हैं, यह दो भागों—बाहरी **कॉर्टेक्स** (cortex) तथा भीतरी **मेडुला** (medulla) प्रदेशों—में विभाजित होता है। जनन-अंग मेडुला में स्थित होते हैं। पेशियों का क्रम उससे ठीक उल्टा होता है जो कि ट्रीमैटोडों में पाया जाता है। सगर्भ प्रोग्लौटिडों में पेशियाँ क्षीण हो जाती हैं, और ये प्रोग्लौटिड स्ट्रौबिला से टूट-टूट कर अलग हो जाते हैं। प्रत्येक पार्श्व में एक उत्सर्गी नाल तथा एक पार्श्व अनुदैर्घ्य तंत्रिका होती है। ग्रंथि-कोशिकाएँ आम तौर से टीनियॉइडिया में नहीं होतीं हालांकि वे अन्य फ़ीता-कृमियों में मौजूद होती हैं।

तंत्रिका-तंत्र—स्कोलेक्स में दो छोटे गैंग्लियॉन होते हैं जो पतली तंत्रिकाओं के एक चौड़े समयोजी द्वारा जुड़े होते हैं। गैंग्लियानों से आगे की ओर को चूषकों तथा रॉस्टेलम तक जाने वाली तंत्रिकाएँ निकली होती हैं, और पीछे की ओर तीन जोड़ी अनुदैर्घ्य तंत्रिकाएँ निकलती हैं जिनमें से दो पार्श्व अनुदैर्घ्य तंत्रिकाएँ सबसे ज्यादा विकसित होती हैं, वे पूरे स्ट्रौबिला में चलती जाती हैं। गतियों का समन्वय सीमित होता है, हालांकि पूरा कृमि एक साथ सिकुड़ सकता है। पृथक् हो चुके हुए सगर्भ प्रोग्लौटिड संवेदनशील होते हैं। संवेदी अंग नहीं होते।

चित्र 169. तंत्रिका-तंत्र। Commissure, समयोजी; ganglion, गैंग्लियॉन; lateral longitudinal nerves, पार्श्व अनुदैर्घ्य तंत्रिकाएँ।

उत्सर्गी-तंत्र—चार अनुदैर्घ्य उत्सर्गी वाहिकाएँ होती हैं, जिनमें से हर बाजू में दो होती हैं जो सीमांत के किनारे-किनारे चलती हैं। इनमें से दो पृष्ठीय स्थिति में होती हैं जो स्ट्रौबिला के केवल अगले भाग में होती हैं, लेकिन शेष दो वाहिकाएँ अधरीय होती हैं और पूरी लंबाई में चलती जाती हैं। चारों उत्सर्गी वाहिकाएँ स्कोलेक्स में एक **वलय वाहिका** द्वारा जुड़ी होती हैं। पृष्ठीय उत्सर्गी वाहिकाएँ तरल को स्कोलेक्स की ओर ले जाती हैं तथा अधर वाहिकाएँ उससे दूर ले जाती हैं। अधर उत्सर्गी वाहिकाएँ असमान मोटाई की होती हैं और वे प्रत्येक प्रोग्लौटिड के पश्च सीमांत में एक अनुप्रस्थ उत्सर्गी नाल द्वारा जुड़ी होती हैं। उत्सर्गी नालों का अस्तर क्यूटिकल का बना होता है, और इनमें

सिलिया नहीं होते लेकिन इनमें छोटी सिलियायुक्त शाखाएँ आकर गिरती हैं, ये शाखाएँ महीन केशिकाओं में विशाखित हो जाती हैं और ये केशिकाएँ इनकी अभिलक्षणी **लौ-कोशिकाओं** में समाप्त हो जाती हैं जो समस्त पैरेंकाइमा में पाई जाती हैं। लौ-कोशिकाओं के लंबे सीलिया थिरकते रहते हैं और एक द्रवस्थैतिक दाब बनाए रखते हैं जिसके द्वारा अपशिष्ट पदार्थ उत्सर्गी नलिकाओं में धक्के द्वारा पहुँच जाता है। अंतिम प्रोग्लौटिड में एक स्पंदनशील, ब्लैडर अथवा **पुच्छीय आशय** (caudal vesicle) होता है जो एक उत्सर्गी छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है लेकिन जब यह प्रोग्लौटिड टूट कर गिर जाता है तब पुच्छीय आशय खत्म हो जाता है और अबंर उत्सर्गी नलिकाएँ स्वतंत्र रूप में बाहर को खुलती हैं।

जनन-अंग—जनन-अंगों में प्लैटिहेल्मिथीज़ का नमूना मिलता है और फीता-कृमि का मुख्य कार्य असंख्य अंडों का निर्माण करना है ताकि एक परपोषी से दूसरे परपोषी में जाने के दौरान विलोप के प्रति स्पीशीज़ का बना रहना सुनिश्चित हो सके।
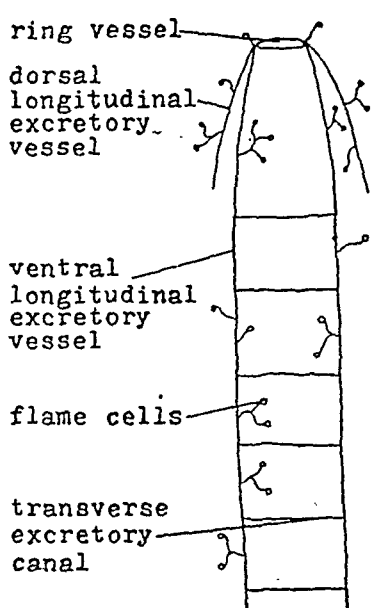
ring vessel
dorsal longitudinal excretory vessel
ventral longitudinal excretory vessel
flame cells
transverse excretory canal

चित्र 170. उत्सर्गी तंत्र। Ring vessel, वलय वाहिका; dorsal longitudinal excretory vessel, पृष्ठीय अनुदैर्घ्य उत्सर्गी वाहिका; ventral longitudinal excretory vessel, अधरीय अनुदैर्घ्य उत्सर्गी वाहिका; flame cells, लौ-कोशिकाएं; transverse excretory canal, अनुप्रस्थ उत्सर्गी नलिका।

अग्र प्रोग्लौटिड अपरिपक्व होते हैं और उनमें जनन-अंग नहीं होते। लगभग 200वें प्रोग्लौटिड से नर अंग बनने लगते हैं क्योंकि **टीनिया** पुंपूर्वी (protandrous) होता है। लगभग 300 वें से 650वें प्रोग्लौटिड तक दोनों लिंगों के सम्पूर्ण जनन-अंग होते हैं, ये परिपक्व प्रोग्लौडिट होते हैं। शेष प्रोग्लौटिडों में लैंगिक अंग खत्म हो जाते हैं और उनमें अंडों से ठसाठस भरा हुआ एक फूला हुआ गर्भाशय होता है, ये सगर्भ प्रोग्लौटिड होते हैं।

नर अंगों में बहुसंख्यक वृषण होते हैं जो अनेक छोटे-छोटे पालियों के बने होते हैं, ये पालि प्रोग्लौटिड की पार्श्व दिशा की ओर उसके अधिकांश भाग में छितराए होते हैं, वृषणों से **अपवाही वाहिनियाँ** (efferent ducts) निकलती हैं जो जुड़ कर एक संवलित **शुक्रवाहिका** (vas deferens) बनाती हैं, और यह शुक्रवाहिका एक पेशीय प्रवेशी अंग अथवा **सिरस** में से होकर गुज़रती है, यह सिरस अंतःकर्षी (retractile) होता है अर्थात् भीतर की ओर सिकोड़ा जा सकता है और यह एक **सिरस थैले** (cirrus sac) में घिरा रहता है। सिरस एक नर जनन-छिद्र द्वारा प्याले की शक्ल के जनन-एट्रियम

(genital atrium) में खुलता है जो कि प्रोग्लौटिड के सीमांत पर बना होता है, नर जनन-छिद्र एक फूले हुए **जनन पैपिला** (genital papilla) पर बना होता है। जनन एट्रियम एक **जनन-छिद्र** द्वारा बाहर की ओर को खुलता है। जनन पैपिला और जनन-छिद्र लगभग नियमित रूप में प्रोग्लौटिडों के दाएँ या बाएँ सीमांतों पर एकांतर क्रम में बने होते हैं। मादा अंगों में अकेला एक द्विपालि **अंडाशय** होता है जिसके दोनों पालि एक सेतु द्वारा जुड़े होते हैं। अंडाशय में विशाखनशील नलिकाएँ होती हैं और वह पश्च बार्डर की तरफ पड़ा रहता है। अंडाशय के सेतु से एक **अंडवाहिनी** निकलती है। अंडाशय के पश्च में एक पालियुक्त **पीतक ग्रंथि** होती है
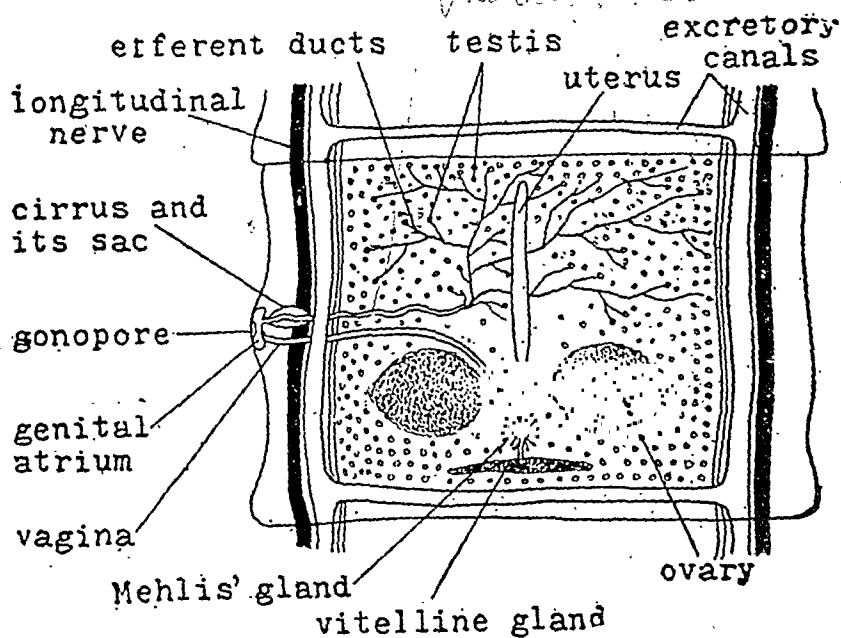
चित्र 171. जनन-अंग (परिपक्व प्रोग्लौटिड)।

Longitudinal nerve, अनुदैर्घ्य तंत्रिका; efferent ducts, अपवाही वाहिनियाँ; testis, वृषण; uterus; गर्भाशय; excretory canals, उत्सर्गी नलिकाएँ; ovary, अंडाशय; vitelline glands, पीतक ग्रंथियाँ; Mehlis' glands, मेहलिस-ग्रंथियाँ; vagina, योनि; genital atrium, जनन-एट्रियम; gonopore, जनन-छिद्र; cirrus and its sac, सिरस और उसका कोष।

जिसमें से एक पीतक वाहिनी निकलकर अंडवाहिनी में जा मिलती है। अंडवाहिनी और पीतक वाहिनी की संधि पर एक फूला हुआ **ऊटाइप** (ootype) बना होता है। इसी ऊटाइप में अंडे के विभिन्न भाग एकत्रित होते हैं और अंडे की आकृति बनती है। ऊटाइप से एक सिलिंडराकार **गर्भाशय** निकलता है जो प्रोग्लौटिड के मध्य में पड़ा रहता है, गर्भाशय में कोई बाहरी छिद्र नहीं होता। अनेक एककोशिक **मेहलिस ग्रंथियाँ** ऊटाइप को घेरे रहती और उसमें खुलती हैं। सीमांतीय जनन एट्रियम में

एक मादा जनन-छिद्र होता है जो एक संकीर्ण नलिकाकार योनि में खुलता है, यह योनि भीतर की ओर चलती जाती है और फूल कर एक शुक्रग्राही बनाती है जिसमें शुक्राणु संचित होते हैं और जिसमें से एक संकीर्ण निषेचनी शुक्रवाहिनी (spermatic duct) निकलती है जो अंडवाहिनी से जा मिलती है। सेस्टोडों की योनि ट्रिमैटोडों की लौरर-नलिका के तुल्य होती है, और सेस्टोडों में गर्भाशय जनन-एट्रियम में को नहीं खुलता है।
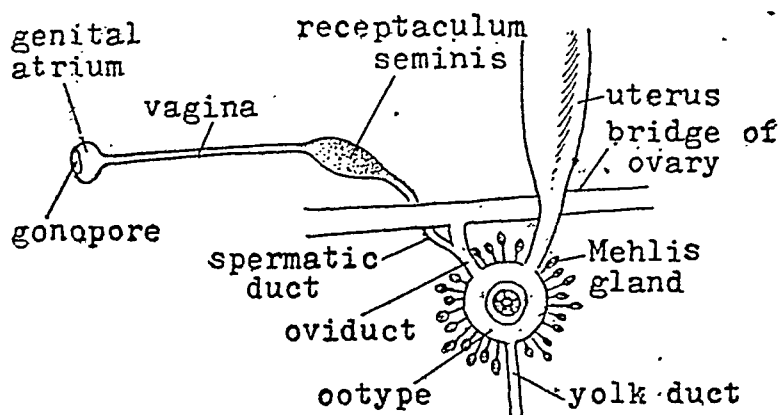
चित्र 172. जनन-अंगों की वाहिनियाँ।

Gonopore, जनन-छिद्र; genital atrium, जनन एट्रियम; vagina, योनि; receptaculum seminis, शुक्रग्राही; spermatic duct, शुक्र-वाहिनी; uterus, गर्भाशय; bridge of ovary, अंडाशय का सेतु; Mehlis' gland, मेहलिस ग्रंथि; yolk duct, पीतक वाहिनी; oviduct, अंडवाहिनी; ootype, ऊटाइप।

एक ही प्रोग्लौटिड के सिरस को उसी की योनि में निवेश करके स्वनिषेचन होता है, और शुक्राणु शुक्रग्राही में पहुँच जाते हैं जहाँ से वे अंडवाहिनी में अंडों का निषेचन करते हैं। यदाकदा एक ही फीताकृमि के भिन्न-भिन्न प्रोग्लौटिडों अथवा एक ही परपोषी में रह रहे विभिन्न फीताकृमियों के बीच मैथुन होता है जिससे कि पर-निषेचन होता है, लेकिन सबसे आम विधि वही है जिसमें एक ही फ़ीताकृमि के विभिन्न प्रोग्लौटिडों के बीच निषेचन होता है। निषेचित अंडों के चारों ओर पीतक ग्रंथियों से आने वाली पीतक कोशिकाएँ इकट्ठी हो जाती हैं, पीतक कोशिकाएँ ऊटाइप में अंडे के चारों ओर एक पतला कवच बनाती हैं। पूर्ण हो चुके अंडे कैप्सूल कहलाते हैं। प्रथम कैप्सूल गर्भाशय के 400वें और 500वें प्रोग्लौटिड के बीच में गर्भाशय में देखे जाते हैं। सगर्भ प्रोग्लौटिडों में गर्भाशय बड़ा हो जाता तथा उसमें से दोनों तरफ 7 से 10 तक पार्श्व शाखाएँ निकल आती हैं, इसमें हजारों कैप्सूल भर जाते हैं और यह लगभग पूरे प्रोग्लौटिड में भर जाता है तथा प्रोग्लौटिड के अन्य जनन-अंगों का अपघटन हो जाता है।

जीवन-चक्र—जीवन-चक्र इतना जटिल नहीं होता जितना कि फ्लूकों में होता है। इसमें कोई अलैंगिक पीढ़ियाँ नहीं होतीं। कैप्सूल गर्भाशय में से बाहर नहीं निकल सकते क्योंकि इसमें कोई बाह्य छिद्र नहीं होता, अतः सगर्भ प्रोग्लौटिड समूह के समूह बनाकर वर्ष-पर्यन्त मानव विष्ठा के साथ-साथ बाहर निकलते रहते हैं और इन प्रोग्लौटिडों में कुछ थोड़ी-सी पेशीय गति होती रहती है। परिवर्धन गर्भाशय में ही प्रारम्भ हो जाता है, निषेचित अंडे में विभाजन होकर एक **मौरुला** (morula) बन जाता है जो कोशिकाओं की एक ठोस गेंद होता है। मौरुला की बाहरी कोशिकाएँ काइटिन के बने एक मोटे रेखित आवरण का स्राव करती हैं, जो कड़ा हो जाता है और इस प्रकार पतले **कैप्सूल कवच** के भीतर एक द्वितीयक कवच अथवा **भ्रूणधर** (embryophore) बन जाता है। भ्रूणधर के नीचे एक पतली **आधारक झिल्ली** होती है। मौरुला की भीतरी कोशिकाएँ एक भ्रूण बनाती हैं जिस पर पश्च दिशा में 6 काइटिनी हुक बन जाते हैं, इस छः हुक वाले भ्रूण को **षडंकुश** (hexacanth) कहते हैं जो हर फीताकृमि का एक विशेष लक्षण है, इस भ्रूण के ऊपर एक दोहरी **षडंकुश झिल्ली** (hexacanth membrane) बनी होती है। प्राथमिक कैप्सूल कवच, मोटे भ्रूणधर, आधारक झिल्ली तथा दो षडंकुश झिल्लियों से युक्त इस षडंकुश को **अंकुशगोला** या आंकोस्फ़ीयर (onchosphere) कहते हैं। परपोषी के शरीर से बाहर निकल जाने वाले सगर्भ प्रोग्लौटिडों में भ्रूण इसी आंकोस्फ़ीयर अवस्था में होते हैं। अंततः प्रोग्लौटिड विघटित हो जाते हैं किन्तु आंकोस्फ़ीयर नमी वाले स्थानों में कुछ समय तक संक्रमणशील बने रहते हैं। सगर्भ प्रोग्लौटिड अथवा आंकोस्फ़ीयर किसी मध्यस्थ परपोषी के द्वारा मानव विष्ठा के साथ-साथ खा लिए जा सकते हैं, यह मध्यस्थ परपोषी प्रायः मलभक्षी स्वभाव वाला सूअर होता है, लेकिन हो सकता है कि कुत्ता, ऊंट, बन्दर और यहाँ तक कि स्वयं मानव भी मध्यस्थ परपोषी बन जाता है। मनुष्य में सामान्यतः लार्वा अवस्थाओं से ही संक्रमण अधिक हुआ करता है, वयस्क फ़ीताकृमि से कम होता है और वैसा होता तो स्वसंक्रमण द्वारा हो सकता है, इस संक्रमण में या तो संदूषित हाथों के द्वारा अंडे शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं या उल्टे क्रमाकुंचन के द्वारा सगर्भ प्रोग्लौटिड धक्का लगाकर आमाशय में को पहुँच जाते हैं और वहाँ पहुंचने पर परिवर्धन शुरू हो जाता है। सूअर के आमाशय में अंडों के कवच घुल जाते और षडंकुश बाहर आ जाता है। षडंकुश में इसके हुकों के बीच-बीच में पाई जाने वाली एक जोड़ी एककोशिक वेधन-ग्रन्थियों की सहायता से वह आंत्र को वेधता जाता है। इस वेधन में हुकों का कोई योगदान नहीं होता हालाँकि ऐसा विश्वास किया जाता रहा है, हुकों का काम केवल स्थानबद्धता प्रदान कराना ही है। उसके बाद यह षडंकुश रक्त

चित्र 173. सगर्भ प्रोग्लौटिड। Uterus, गर्भाशय; gonopore, जनन-छिद्र।
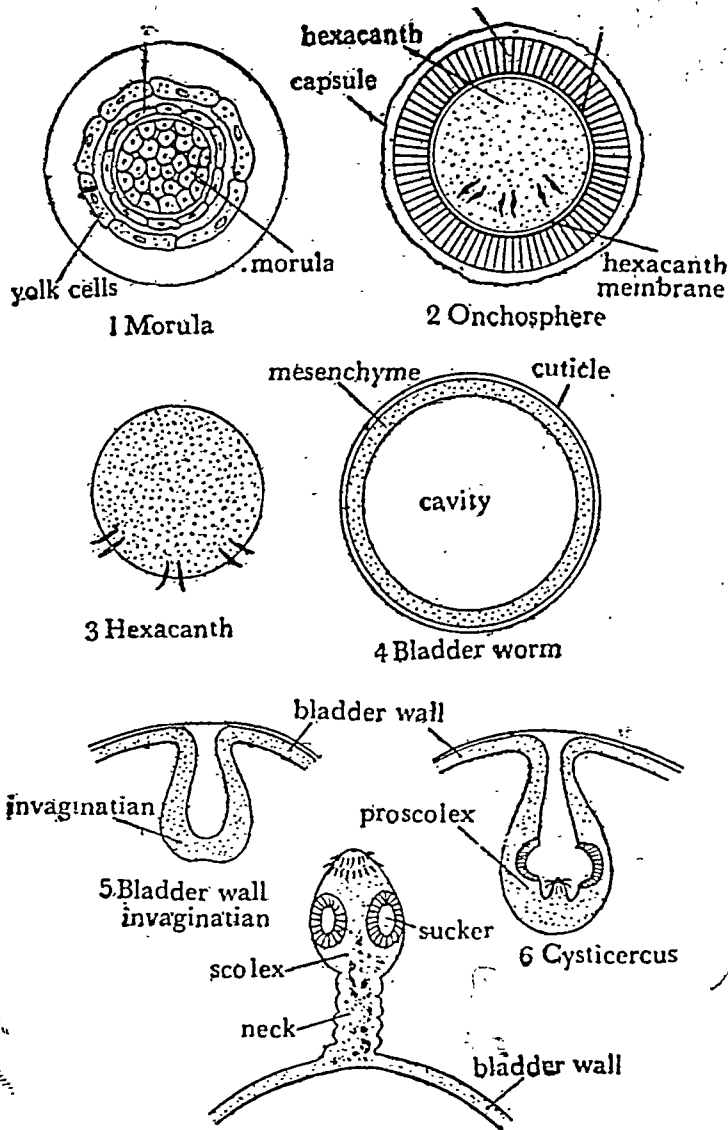
चित्र 174. टीनिया की जीवन-चक्र अवस्थाएँ । Morula, मोरुला; yolk cells, पीतक कोशिकाएँ ; onchosphere, अंकुशगोला ; capsule, कैप्सूल ; hexacanth, षडंकुश ; hexacanth membrane, षडंकुश झिल्ली ; embryophore basement membrane, भ्रूणधर आधारक झिल्ली; bladder worm, ब्लैडर वर्म ; mesenchyme, मीज़ेंकाइम ; cavity, गुहा ; cuticle, क्यूटिकल ; bladder wall, ब्लैडर भित्ति ; invagination, अंतर्वलन; proscolex, प्रोस्कोलेक्स ; cysticercus, सिस्टिसर्कस ; sucker, चूषक ; scolex, स्कोलेक्स; neck, गर्दन ; everted cysticercus, पलटा हुआ सिस्टिसर्कस ।

वाहिकाओं में पहुँच जाता है और हृदय में से होता हुआ अंत में देह के किसी भाग में अरेखित पेशियों में आकर टिक जाता है। लेकिन ये षडंकुश प्रायः जीभ, गर्दन, दिल, कोहनी, कंधा और पुट्ठा ज्यादा पसंद करते हैं। पेशियों में पहुँच कर षडंकुशों के हुक विलीन हो जाते हैं, स्वयं का आकार बड़ा हो जाता, उनके भीतर तरल से भरी एक केन्द्रीय गुहा बन जाती है। उसके बाद वे एक क्यूटिकलीय आवरण के भीतर पुटी अवस्था में पहुँच कर **सिस्टिसर्कस** (cysticircus) अथवा **ब्लैडरवर्म** (bladder-worm) बन जाते हैं। **टीनिया सोलियम** के सिस्टिसर्कस को **सिस्टिसर्कस** सेलुलोसी (*Cysticercus cellulosae*) की संज्ञा दी जाती है। सिस्टिसर्कस अंडाकार होते हैं, रंग सफेदी लिए होता है और लम्बाई में 6 से 18 mm. होते हैं। इन सिस्टिसर्कसों से युक्त सूअर-मांस को "मीज़ली पोर्क" का नाम दिया जाता है।

सिस्टिसर्कस में एक **ब्लैडर भित्ति** (bladder wall) होती है जिसमें एक बाहरी क्यूटिकल तथा भीतरी मीज़ेंकाइम होता है, इसकी गुहा में पानी-जैसा एक तरल होता है जो अधिकांश परपोषी का रक्त-प्लाज़्मा होता है। ब्लैडर-भित्ति के एक भाग में एक स्थूलन पैदा होता है जो अंतर्वलित होकर एक खोखली घुंडी बना देता है। इस अंतर्वलन से भीतर चूषक और हुक बन जाते हैं और तब घुंडी को **प्रोस्कोलेक्स** (proscolex) कहते हैं, चूषक और हुक प्रोस्कोलेक्स की भीतरी सतह पर होते हैं और उल्टे गुहा की ओर को मुँह किये होते हैं। यदि अधूरा पका हुआ सूअर-मांस जिसमें सिस्टिसर्कस हों कोई मनुष्य अर्थात् अंतिम परपोषी, खा लेता है तो जठर में ब्लैडर घुल जाता है और प्रोस्कोलेक्स पलट कर अन्दर का बाहर आ जाता है, जिसके फलस्वरूप चूषक और रॉस्टेलम उसी तरह बाहरी सतह पर आ जाते हैं जैसे कि वे वयस्क में होते हैं और इस प्रकार एक स्कोलेक्स तथा एक छोटी गर्दन बन जाते हैं। स्कोलेक्स अंतड़ी की श्लेष्मा झिल्ली में संलग्न हो जाता है और गर्दन से एक के बाद एक प्रोग्लौटिडों की शृंखला का मुकुलन होता जाता है और एक फीता-कृमि बन जाता है जो दो या तीन महीनों में वयस्क बन जाता है। जहाँ तक मालूम है इस परजीवी का अंतिम परपोषी केवल मनुष्य ही है, हालाँकि कुत्ते में इसकी प्रचुर वृद्धि होते पाई गई है।

4. टीनिया सैजिनेटा (*Taenia saginata*)
(गोमांस फ़ीता-कृमि)

टी० सैजिनेटा मनुष्य में पाया जाने वाला सबसे आम बड़ा फ़ीता-कृमि होता है। यह सारे विश्व में पाया जाता है। तिब्बत, सीरिया और अफ्रीका के कुछ भागों में जहाँ पर अधूरा पका गोमांस खाया जाता है वहाँ 25% से 75% तक की आबादी में इसका संक्रमण पाया जाता है। इसकी लम्बाई 15-20 फुट की होती है हालाँकि 40 फुट तक के नमूने रिकार्ड किये गए हैं। औसत कृमि में एक हज़ार से ऊपर प्रोग्लौटिड होते हैं जो **टी० सोलियम** के प्रोग्लौटिडों से अधिक बड़े होते हैं। स्कोलेक्स का व्यास $1\frac{1}{2}$ से 2 mm. होता है, इसमें चार बड़े शंक्वाकार चूषक होते हैं लेकिन इसमें रॉस्टेलम और हुक नहीं होते। परिपक्व प्रोग्लौटिडों में जनन-अंग उसी प्रकार होते हैं जैसे **टी० सोलियम** में किन्तु जनन एट्रियम के समीप योनि के प्रारम्भ स्थान पर

एक संवरणी उसे घेरे रहती है। सगर्भ प्रोग्लौटिड 20 × 6 mm. साइज़ के होते हैं और वे एक-एक करके बाहर निकलते हैं, वे बहुत ज्यादा सक्रिय होते हैं और केटरपिलर की तरह रेंगते हैं। सगर्भ प्रोग्लौटिडों में गर्भाशय में से प्रत्येक पार्श्व में 16 से 20 शाखाएँ निकली होती हैं।
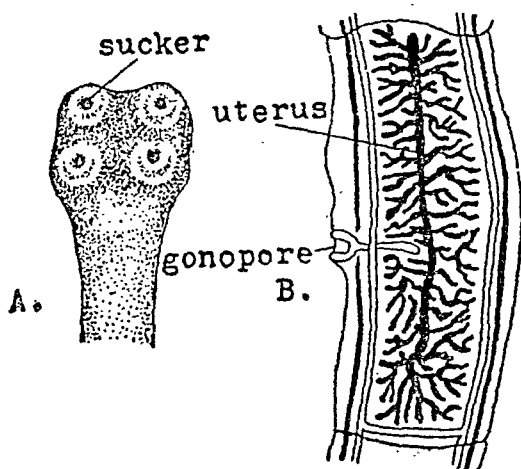
चित्र 175. **टीनिया सैजिनेटा**। A—स्कोलेक्स, B—सगर्भ प्रोग्लौटिड। Sucker, चूषक ; uterus, गर्भाशय ; gonopore, जननछिद्र।

इसके मध्यस्थ परिपोषी गाय-भैंस होती हैं। जीवन-वृत्त **टी० सोलियम** के जैसा होता है और सिस्टिसर्कस 7·5 से 10 mm. तक होता है और उसे **सिस्टिसर्कस बोविस** (*Cysticercus bovis*) का नाम दिया जाता है। इसका सिस्टिसर्कस सबसे ज़्यादा जबड़ों, जीभ तथा हृदय-पेशियों में पाया जाता है।

फ़ीताकृमियों के कारण अंतड़ी का मार्ग रुक जाता अथवा उसके अस्तर को आघात पहुँच जाता है जिसके कारण बैक्टीरियाई संक्रमण हो जाता है। वे इतना ज़्यादा आहार सोखते रहते हैं कि रोगी को पोषणाभाव, वज़न में कमी तथा अवरुद्ध बढ़ोतरी की शिकायतें प्रकट हो जाती हैं। इनके कारण मचली आना, चक्कर आना या मिर्गी के प्रकार के दौरे पड़ना आदि हो जाया करते हैं। उपचार—ऐटेब्रिन और ऐक्रैनिल दोनों में से हर एक की चार-चार ग्राम प्रति खुराक के हिसाब से दो खुराकें दी जाती हैं या फिर 1 gm. हेक्सिलरेसार्सिनोल को 2·0 gm. ऐकेशिया के साथ मिलाकर ड्यूओडेनम नलकी के द्वारा दिया जाता है। इन दोनों उपचारों से फ़ीताकृमि बाहर निकल आते हैं।

फ़ाइलम प्लैटिहेल्मिथीज़ का वर्गीकरण

प्लैटिहेल्मिथीज़ पृष्ठ-अधर दिशाओं में चपटे हो गये चपटे कृमि होते हैं। ये स्वच्छंद-जीवी अथवा परजीवी होते हैं। इनमें द्विपार्श्वीय सममिति पाई जाती है और एक अग्र शीर्ष, तथा पृष्ठीय एवं अधर सतहें होती हैं। ये ट्रिप्लोब्लास्टिक असीलोमी मेटाज़ोआ होते हैं जिनमें मीज़ोडर्म से पेशियाँ, जनन-अंग तथा पैरेंकाइमा बनते हैं।

इसमें सीलोम अथवा हीमोसील कोई नहीं होती। हर एक गुहा में पैरेंकाइमा भरा होता है। परिसंचरण, श्वसन तंत्र तथा गुदा का अभाव होता है। उत्सर्जन तंत्र में लौ-कोशिकाएँ होती हैं। इनमें कॉलोनियाँ कभी नहीं बनतीं, और इनमें प्रायः जटिल अधरीय उभयलिंगी जनन अंग होते हैं।

क्लास 1. **टर्बेलैरिया** (Turbellaria)—ये अधिकतर स्वच्छंदजीवी चपटे-कृमि होते हैं, इनमें एक आन्त्र बनी होती है, एक कोशिकीय सिलियायुक्त एपिडर्मिस होता है जिसमें प्रायः रैब्डाइट होते हैं। आहार नाल कभी द्विशाखित नहीं होती, मुख होता है और एक ऐक्टोडर्मी ग्रसनी में खुलता है।

आर्डर (*a*) **एसीला** (Acoela)—इनमें कोई वास्तविक आहार नाल नहीं होती, और तथाकथित आन्त्र खोखली नहीं होती वरन् सिनसिशियमी एंडोडर्म कोशिकाओं की बनी होती है। एक मुख होता है लेकिन ग्रसनी नहीं होती, इनमें एक तंत्रिका जालक होता है। अंडाशय और पीतक ग्रन्थियाँ पृथक् नहीं होते। ये समुद्रवासी होते हैं, उदाहरणतः **कॉन्वाल्युटा** (*Convoluta*)।

आर्डर (*b*) **रैब्डोसीला** (Rhabdocola)—मुख अग्र सिरे के समीप होता है, आन्त्र सीधी होती है। तंत्रिका तंत्र में दो अनुदैर्घ्य महातंत्रिकाएँ होती हैं, एक या दो अंडाशय होते हैं और दो से लेकर अनेक वृषण होते हैं, उदाहरणतः **माइक्रोस्टोमम** (*Microstomum*)।

आर्डर (*c*) **ट्राइक्लैडाइडा** (Tricladida)—ये समुद्री, अलवणजलीय अथवा स्थलीय होते हैं। अंतड़ी में अंधवर्धों से युक्त तीन शाखाएँ होती हैं। देह लंबा होता है। अंडाशय दो और पीतक ग्रंथियाँ अनेक होती हैं, वृषण दो या अधिक होते हैं, जनन-छिद्र अकेला होता है, मुख पीछे की तरफ हट गया है, उदाहरण : **ड्यूगीसिया, क्रेनोबिया** (*Crenobia*), **डेंड्रोसीलम** (*Dendrocoelum*)।

आर्डर (*d*) **पौलीक्लैडाइडा** (Polycladida)—मुख पश्च सिरे पर होता है, मुख्य आंत्र सुस्पष्ट नहीं होती लेकिन इसमें जटिल विशाखित अंधवर्ध होते हैं, देह बहुत चपटा, पत्ती-जैसा या लंबा होता है। तंत्रिका-तंत्र में अनेक अरीय तंत्रिका रज्जुएँ होती हैं, नेत्र बहुसंख्यक होते हैं, पीतक ग्रंथियाँ नहीं होतीं। ये बड़े आकार के कृमि होते हैं जो समुद्र में पाए जाते हैं, उदाहरण : **प्लैनोसेरा** (*Planocera*), **युंगिया** (*Yungia*)।

क्लास 2. **ट्रीमैटोडा** (Trematoda)—इनमें वही सामान्य देहाकृति तथा आहार नाल वैसे ही पाए जाते हैं जैसे कि टर्बेलैरिया में। ये बाह्यपरजीवी अथवा अंतःपरजीवी होते हैं जिनमें एपिडर्मिस, बाहरी सिलिया और रैब्डाइट नहीं होते। देह के ऊपर क्यूटिकल चढ़ा होता है और एक या अधिक चूषक बने होते हैं। अग्रमुख से युक्त एक संपूर्ण पाचन मार्ग होता है, अंडाशय केवल एक होता है।

आर्डर (*a*) **हेटेरोकोटिलिया** (Heterocotylea) अथवा **मॉनोजीनिया** (Monogenea)—ये अधिकतर बाह्यपरजीवी होते हैं और इनमें केवल एक परपोषी

होता है, इनमें अलैंगिक पीढ़ी नहीं होती, मुख चूषक प्रायः नहीं होता, काइटिनी आलंब से युक्त पश्चीय ऐसिटैबुलम, युग्मित उत्सर्गी छिद्र पृष्ठीय, नर और मादा जनन छिद्र प्रायः अलग-अलग, योनि एक या दो, गर्भाशय में केवल थोड़े से अंडे, उदाहरण : **पौलीस्टोमम** (*Polystomum*), **डिप्लोज़ूऑन** (*Diplozoon*) ।

आर्डर (*b*) **मैलैकोकोटिलिया** (Malacocotylea) अथवा **डाइजीनिया** (Digenea)—ये कशेरुकियों तथा अकशेरुकियों दोनों के अंतःपरजीवी होते हैं और दो या अधिक परपोषी होते हैं जिनमें से एक तो लार्वा अवस्थाओं के लिए मौलस्क होता है और वयस्क अवस्था के लिए कशेरुकी । इनमें दो या अधिक लैंगिक पीढ़ियाँ होती हैं । इनमें प्रायः दो सरल चूषक होते हैं, उत्सर्गी छिद्र अकेला और पश्चीय होता है । जनन-छिद्र नर और मादा अंगों के लिए सम्मिलित होता है, योनि नहीं होती, गर्भाशय लंबा और अनेक अंडों से युक्त होता है जिसमें कायांतरण तथा परपोषियों का एकांतरण होता है, उदाहरण : **फ़ैसियोला, ओपिस्थॉर्किस** (*Opisthorchis*), **शिस्टोसोमम** (*Schistosomum*), **पैरैम्फ़िस्टोमम** (*Paramphistomum*)

क्लास 3. **सेस्टोडा** (Cestoda)—ये अंतःपरजीवी फ़ीताकृमि होते हैं जिनमें एपिडर्मिस, रैब्डाइट और बाह्य सिलिया नहीं होते, देह पर क्यूटिकल चढ़ा होता है, एक शीर्ष होता है जिस पर प्रायः चूषक होते हैं और शीर्ष के पीछे उभयलिंगी अंगों से युक्त खंडों अथवा प्रोग्लौटिडों की एक शृंखला होती है । जीवन-चक्र जटिल होता है जिसमें हुकों से लैस एक भ्रूण होता है तथा दो या अधिक परपोषी होते हैं । मुख और आहार नाल नहीं होते । ये लगभग सभी, कशेरुकियों के आंत्र परजीवी होते हैं जहाँ पर वे पहले से ही पचा पचाया भोजन सोखते रहते हैं ।

उपक्लास A. **सेस्टोडेरिया** (Cestodaria) अथवा **मॉनोज़ोआ** (Monozoa) मछलियों के आंत्र में पाए जाने वाले छोटे-छोटे परजीवी होते हैं, इनमें प्रोग्लौटिड नहीं बने होते, अग्र सिरे पर स्कोलेक्स नहीं होता बल्कि चिपकाने वाला एक झालरदार अंग बना होता है, लार्वा में 10 हुक होते हैं । केवल एक आहार नाल के न होने के अपवाद को छोड़कर ये ट्रीमैटोडों के समान होते हैं, उदाहरण : **ऐम्फ़िलाइना** (*Amphilina*) ।

उपक्लास B. **यूसेस्टोडा** (Eucestoda) अथवा **मीरोज़ोआ** (Merozoa) लंबे, रिबन-जैसे होते हैं जिनमें चिपकाने वाले अंगों से युक्त एक स्कोलेक्स होता है, शरीर अलैंगिक मुकुलों अथवा प्रोग्लौटिडों की शृंखला में विभाजित होता है, लार्वा में छह हुक होते हैं ।

आर्डर (*a*) **टेट्राफ़िलिडिया** (Tetraphyllidea)—स्कोलेक्स पर चार बॉथ्रिडियम (bothridium) होते हैं जिन पर प्रायः हुक बने होते हैं, अनेक प्रोग्लौटिड होते हैं, इलैस्मोब्रैंकों में परजीवी पाए जाते हैं, उदाहरण : **फ़िलोबॉथ्रियम** (*Phyllobothrium*) ।

आर्डर (*b*) **स्यूडोफ़िलिडिया** (Pseudophyllidea)—स्कोलेक्स में दो उथले चूषक होते हैं, कभी-कभी चूषक नहीं भी होते, प्रोग्लौटिडों के रूप में विभाजन हो

भी सकता है और नहीं भी। जनन-छिद्र, मध्य-अधरीय होते हैं, अंडे गर्भाशय के छिद्र से बाहर निकल जाते हैं. सभी क्लासों में अंतड़ियों में पाए जाते हैं, उदाहरण **डाइफ़िलोबॉथ्रियम** (*Diphyllobothrium*)।

आर्डर (c) **साइक्लोफ़िलिडिया** (Cyclophyllidea) अथवा **टीनियॉइडिया** (Taenioidea)—इनमें स्कोलेक्स में चार कटोरी-जैसे चूषक होते हैं, और अक्सर हुकों से युक्त एक रॉस्टेलम होता है, पीतक ग्रंथियों का अकेला एक समूह होता है जो अंडाशय के पीछे पड़ा होता है, वृषण बहुसंख्यक होते हैं, गर्भाशय में कोई छिद्र नहीं होता, उत्सर्गी तंत्र में चार अनुदैर्घ्य नलिकाएँ होती हैं, उदाहरण : **टीनिया, इकाइनोकॉक्कस** (*Echinococcus*), **डाइपाइलिडियम** (*Dipylidium*), **रेलेटिना** (*Raillietina*), **कोटुग्निया** (*Cotugnia*)।

प्लैटिहेल्मिथीज के प्ररूप

1. **पौलिस्टोमम** (*Polystomum*)—यह एक मॉनोजेनेटिक (अर्थात् एक परपोषी और एक ही पीढ़ी वाला) ट्रीमैटोड होता है लेकिन इसका परिवर्धन सीधा नहीं होता। यह मेंढकों और कछुओं के मूत्राशय में पाया जाने वाला अंत:परजीवी होता है। पश्च सिरे पर एक **पश्चासंजक** (opisthaptor) होता है जिस पर एक वृत्त में बने हुए छह चूषक, अनेक छोटे-छोटे काइटिनी हुक और दो बड़े वक्र नखर अथवा लंगर होते हैं। नर अंग—अनेक वृषण पिछले भाग में स्थित होते हैं जिनमें से एक शुक्रवाहिका निकलकर आगे की ओर जाती और शिश्न में पहुँचती है जो एक जनन एट्रियम में खुलता है। जनन एट्रियम एक जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। शिश्न में को अनेक छोटी-छोटी प्रोस्टेट ग्रंथियाँ खुलती हैं। मादा अंग—शिश्न के पीछे एक अकेला लंबा अंडाशय होता है, यह अंडवाहिनी में खुलता है। देह के दोनों पार्श्वों पर पीतक ग्रंथियाँ होती हैं जिनसे अनुदैर्घ्य पीतक वाहिनियाँ निकलती हैं। अंडाशय के पीछे अनुदैर्घ्य पीतक वाहिनियाँ अनुप्रस्थ पीतक वाहिनियों में आकर मिल जाती हैं। दोनों अनुप्रस्थ पीतक वाहिनियाँ एक पीतक आगार में आकर मिल जाती हैं जहाँ से एक सम्मिलित पीतक वाहिनी निकलकर अंडवाहिनी से आ मिलती है। अंडवाहिनी में एक ऊटाइप होता है जो मेहलिस-ग्रंथियों से घिरा रहता है, ईसके बाद यह वाहिनी एक गर्भाशय से जुड़ जाती है और यह गर्भाशय जनन एट्रियम में पहुँच जाता है। अंडवाहिनी से एक जनन-आंत्र नलिका (genito-intestinal canal) निकलती है जो अंतड़ी की दाहिनी शाखा से आकर मिल जाती है। अनुदैर्घ्य अथवा अनुप्रस्थ पीतक वाहिनी से हर पार्श्व में एक **योनि** निकलती है जो एक चौड़े छिद्र द्वारा देह के बाजुओं में खुलती है। योनियाँ मैथुन नलिकाएँ होती हैं, दो कृमियों के बीच हो रहे मैथुन के दौरान शिश्न इन्हीं योनियों में प्रविष्ट होता है। निषेचित अंडे निकलकर जल में पहुँच जाते हैं। प्रत्येक अंडे से नेत्रों से युक्त एक लार्वा निकलता है, इस लार्वा में एक बड़ा पश्चीय चूषक और देह के ऊपर पाँच पट्टियों में व्यवस्थित सिलिया होते हैं। लार्वा टैडपोलों के भीतरी गिलों पर चिपक जाते हैं, फिर उनके सिलिया गिर जाते हैं, और वे रेंग कर मूत्राशयों में पहुँच जाते हैं जहाँ पर वे तीन

वर्ष में लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। किंतु यदि लार्वा टैडपोल के बाहरी गिलों पर चिपकता है तब वह इतनी तीव्रता से बढ़ता है कि पाँच सप्ताह में ही
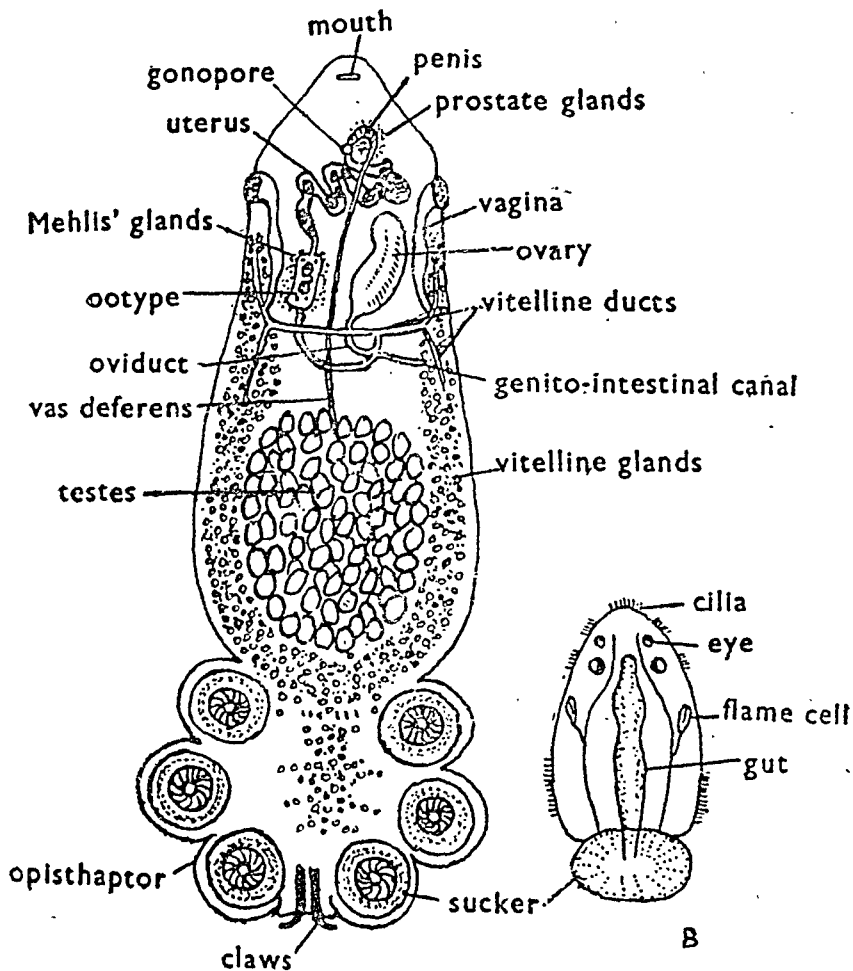
चित्र 176. पौलिस्टोमम इंटरजेराइरम (*Polystomum intergerrimum*) B—लार्वा।

Mouth, मुख; penis, शिश्न; prostate glands, प्रोस्टेट ग्रंथियाँ; vagina, योनि; ovary, अंडाशय; vitelline ducts, पीतक वाहिनियाँ; genito-intestinal canal, जनन-आंत्र नलिका; vitelline glands, पीतक-ग्रंथियाँ; gonopore, जनन-छिद्र; uterus, गर्भाशय; Mehlis' glands, मेहलिस-ग्रंथियाँ, ootype, ऊटाइप; oviduct, अंडवाहिनी; vas deferens, शुक्रवाहिका; testes, वृषण; opisthaptor, पश्चासंजक; claws, नखर; sucker, चूषक; cilia, सिलिया; eye, नेत्र; flame cells, लौ-कोशिकाएँ; gut, आंत्र।

परिपक्व हो जाता है। लेकिन जब टैडपोल में कायांतरण हो रहा हो तब यह मर जाता है क्योंकि उस स्थिति में यह मूत्राशय में नहीं पहुँच पाता।

2. **डिप्लोज़ूऑन इंडिकम** (*Diplozoon indicum*)—इसके दो वयस्क देह के बीच पर गुणा का चिह्न (×) के रूप में स्थायीतः जुड़े होते हैं। यह **बार्बस** (*Barbus*) तथा मिन्नो मछलियों के गिलों पर पाया जाने वाला एकपीढ़ीय बाह्यपरजीवी होता है। प्रत्येक प्राणी में उसके अग्र सिरे पर दो मुखीय चूषक होते हैं, पश्च
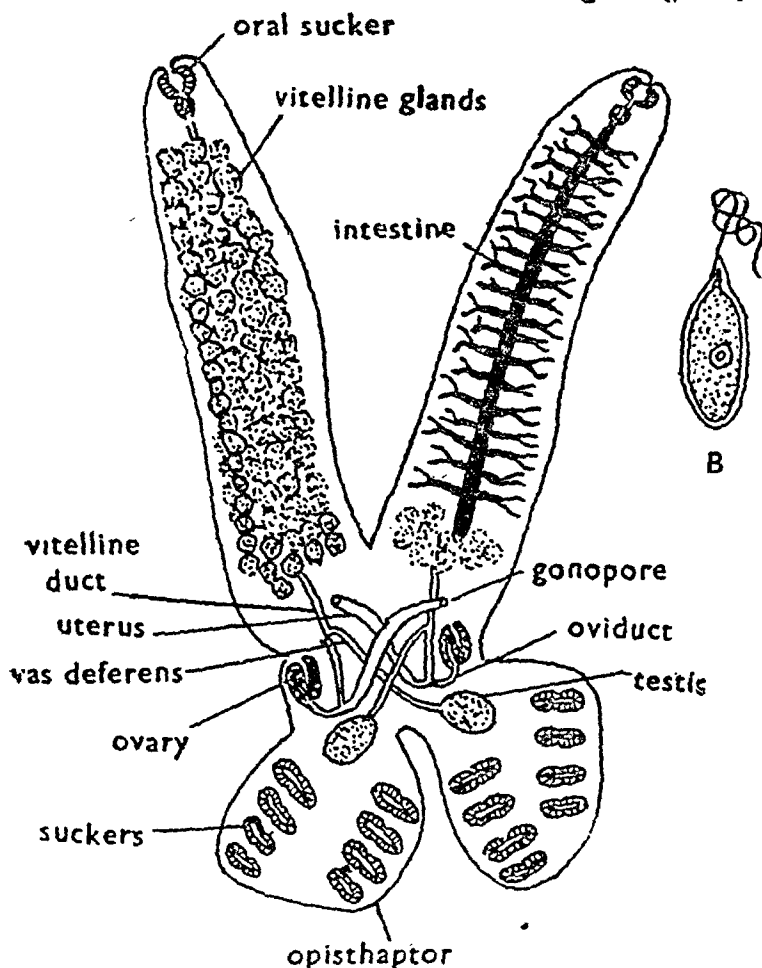
चित्र 177. **डिप्लोज़ूऑन इंडिकम** (दाहिनी ओर केवल अंतड़ी दिखाई गई है)। B—अंडा।

Oral sucker, मुख चूषक ; vitelline glands, पीतक ग्रन्थियाँ ; intestine, अंतड़ी ; vitelline duct, पीतक वाहिनी ; uterus, गर्भाशय ; vas deferens, शुक्रवाहिका ; ovary, अंडाशय ; suckers, चूषक ; opisthaptor, पश्चासंजक ; gonopore, जनन-छिद्र ; oviduct, अंडवाहिनी ; testis, वृषण।

सिरे पर एक **पश्चासंजक** होता है जिस पर चार जोड़ी चूषक बने होते हैं। पार्श्व अंधवर्धों से युक्त एक सम्पूर्ण आंत्र नाल होती है। नर अंग—प्रत्येक जन्तु में पश्च सिरे की ओर एक गोल वृषण होता है जिसमें से एक शुक्रवाहिका निकलती है जो पार

करके दूसरी दिशा में पहुँच जाती है और दूसरे जन्तु की पीतक वाहिनी से जुड़ जाती है। मादा अंग—वृषण के ऊपर एक नलिकाकार तथा वलित अंडाशय होता है जिसमें से एक अंडवाहिनी निकलती है। शरीर के मध्य में, दोनों प्राणियों के जुड़ने के स्थान से आगे छोटी-छोटी पीतक ग्रन्थियाँ होती हैं जिसमें से एक पीतक वाहिनी निकल कर अंडवाहिनी से जुड़ जाती है; अंडवाहिनी एक छोटे गर्भाशय में जारी रहती है जो कि एक जनन-छिद्र द्वारा बाहर खुलता है। गर्भाशय में एक उत्फूलन होता है जिसे चारों ओर से मेहलिस-ग्रन्थियाँ घेरे रहती हैं, गर्भाशय में केवल एक अंडा होता है। इस अंडे में एक लम्बा उलझा हुआ सूत्र होता है जिसके द्वारा, बाहर पहुँचने पर, वह मछली के गिलों पर चिपक जाता है, अंडे में से एक सिलियायुक्त लार्वा निकलता है जिसके ऊपर दो आँखें तथा प्रत्येक सिरे पर एक जोड़ी चूषक होते हैं। जनन अंग तभी विकसित होते हैं जब दो लार्वा एक दूसरे से मिल जाते हैं, उसके बाद वे मध्य बिन्दु पर समेकित हो जाते हैं और वयस्कों के रूप में विकसित हो जाते हैं, एक प्राणी की शुक्रवाहिका दूसरे प्राणी की योनि के द्वारा उसकी पीतक वाहिनी से स्थायी तौर पर जुड़ जाती है, और इस प्रकार मछली के गिलों पर वे अपने सम्पूर्ण जीवन के दौरान सदैव मैथुन अवस्था में बने रहते हैं।

3. **ओपिस्थॉर्किस सिनेन्सिस** (*Opisthorchis sinensis*) (जिसे पहले **क्लोनॉर्किस**, *Clonorchis*, कहा जाता था)—यह चीनी जिगर-फ्लूक कहलाता है, यह चीन, भारत, जापान और हिंदचीन में मनुष्य की पित्तवाहिनियों में रहने वाला परजीवी है। यह मछली खाने वाले स्तनियों में भी पाया जाता है। इसका साइज 10 से 25 mm. होता है। दोनों चूषक छोटे होते हैं, आहार-नाल सुनिर्मित होती है, उत्सर्गी ब्लैडर Y की आकृति का होता है। नर अंग—दो विशाखित वृषण पश्च प्रदेश में एक दूसरे के पीछे पड़े होते हैं, प्रत्येक वृषण से एक शुक्र अपवाहिका (vas efferens) निकलती है। दोनों शुक्रअपवाहिकाएँ देह के बीच के भाग में परस्पर जुड़ कर एक शुक्रवाहिका बनाती हैं जो शुक्राशय में मिल जाती हैं। एक संकीर्ण स्खलन-वाहिनी शुक्राशय से निकल कर जनन एट्रियम में खुलती है और यह जनन एट्रियम ऐसिटैबुलम के सामने आधार सतह पर स्थित एक जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। शिश्न, प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ तथा सिरस कोष नहीं होते। मादा अंग—एक छोटा पालियुक्त अंडाशय वृषणों के सामने स्थित होता है। अंडाशय से एक छोटी अंडवाहिनी निकलती है। प्रत्येक पार्श्व के एक-तिहाई में शरीर के बीच वाले भाग में पीतक ग्रन्थियों के छोटे-छोटे पुटक बने होते हैं। पीतक ग्रन्थियों से छोटी वाहिनियाँ निकलती हैं जो दो अनुप्रस्थ पीतक वाहिनियाँ बनाती हैं और ये पीतक वाहिनियाँ जुड़ कर एक छोटी सम्मिलित पीतक वाहिनी बनाती हैं। सम्मिलित पीतक वाहिनी अंडवाहिनी से जुड़ जाती है जिसके बाद अंडवाहिनी एक ऊटाइप में मिलती है जो मेहलिस-ग्रन्थि की छोटी-छोटी कोशिकाओं द्वारा घिरा रहता है। ऊटाइप में अंडा और पीतक एक साथ एक कवच में बंद होकर एक कैप्सूल बन जाता है जिसमें एक ऑपर्कुलम तथा एक कॉमा-रूपी उपांग बना होता है। ऊटाइप में से एक लम्बा कुंडलित गर्भाशय निकलता है जिसमें

कैप्सूल भरे होते हैं, यह जनन एट्रियम में को खुलता है। अंडाशय के पीछे एक थैला-नुमा
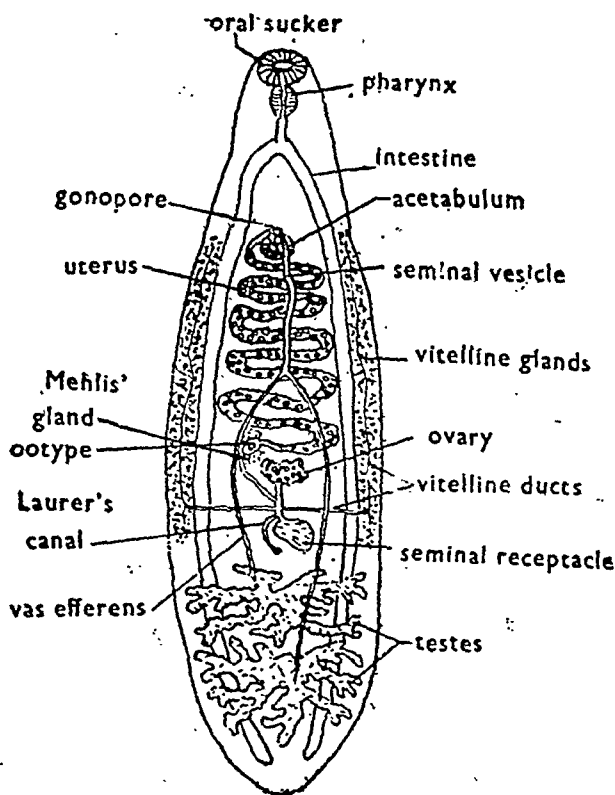
चित्र 178. **ओपिस्थॉर्किस सिनेन्सिस।**

Oral sucker, मुख चूपक ; pharynx, ग्रसनी ; intestine, अंतड़ी ; acetabulum, ऐसिटैबुलम ; gonopore, जनन-छिद्र ; uterus, गर्भाशय ; seminal vesicle, शुक्राशय ; vitelline glands, पीतक ग्रन्थियाँ ; mehlis' gland, मेहलिस-ग्रन्थि ; ootype, ऊटाइप ; ovary, अण्डाशय ; vitelline glands, पीतक वाहिनियाँ ; Laurer's canal, लौरर-नाल ; seminal receptacle, शुक्रग्राही ; vas efferens, शुक्र अपवाहिका ; testes, वृषण ।

शुक्रग्राही पड़ा रहता है जिसमें से एक छोटी वाहिनी निकल कर अंडवाहिनी में मिल जाती है, लेकिन अंडवाहिनी में जुड़ जाने से पहले इसमें एक लौरर-नाल आकर मिलती है। लौरर-नाल शुक्रग्राही के पीछे की ओर को मुड़ती है और पृष्ठ-सतह पर देह के बीच के भाग में बाहर को खुलती है।

निषेचित अंडे जनन-छिद्र में से निकल कर पित्त वाहिनियों में पहुंच जाते हैं जहाँ से वे मनुष्य की अंतड़ी में पहुँचते और फिर विष्ठा के साथ बाहर निकल जाते हैं। कैप्सूलों का स्फोटन तब तक नहीं होता ज़ब तक कि वे **पैराफॉसैल्युरस** (*Parafossalurus*) तथा **बाइथीनिया** (*Bythinia*) घोंघों द्वारा खा नहीं लिए जाते। घोंघे की

अंतड़ी में कैप्सूलों में से मिरैसिडियम निकल आते हैं और वे वेध कर घोंघे के ऊतकों में पहुँच जाते हैं। मिरैसिडियम से एक गोल स्पोरोसिस्ट बन जाता है। स्पोरोसिस्ट से रीडिया बनते हैं जिनमें जन्म छिद्र नहीं होता। रीडियाओं से सर्केरिया लार्वा बनते हैं। सर्केरिया में एक लम्बी पूँछ होती है जिसमें विशाखित पार्श्व फिन बने होते हैं। सर्केरिया घोंघे में से निकल कर एक अन्य दूसरे मध्यस्थ परपोषी में घुस जाते हैं, यह दूसरा मध्यस्थ परपोषी कार्प या मिन्नो वंश की कोई मछली होती है। ये सर्केरिया इन मछलियों की पेशियों में पुटी बना लेते हैं। जब कोई कच्ची या अधपकी मछली को खा लेता है तब मनुष्य की छोटी अंतड़ियों में पुटियों में से बच्चा-फ्लूक निकल आते हैं और फिर वहाँ से चलकर कुछ ही घण्टों में पित्त-वाहिनियों में पहुँच जाते हैं। तीन सप्ताह में फ्लूक परिपक्व हो जाते हैं।

4. शिस्टोसोमा (*Schistosoma*) (पुराना नाम **बिल्हैर्जिया** *Bilharzia*)—यह एक पृथक्लिंगी द्विपीढ़ीय ट्रीमैटोड होता है, जो मनुष्य की यकृत-निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) अथवा श्रोणी-शिरा (pelvic vein) में परजीवी रूप में पाया जाता है। इसकी कुछ स्पीशीज पक्षियों और स्तनियों की शिराओं में परजीवी रूप में पायी जाती हैं। नर मादा अलग-अलग होने के लक्षण में ये विचित्र होते हैं, लेकिन ये दोनों जोड़े बना कर रहते पाये जाते हैं। मोटा नर एक पतली लम्बी मादा को सदैव अपने साथ-साथ एक **मादाधर नलिका** (gynaecophoric canal) में धारण किये रहता है—यह नलिका उसकी अधर देह-भित्ति के वलन के द्वारा बनती है। देह की सतह खुरदरी और कंटीली होती है, और नर मादा दोनों ही में एक मुख चूषक तथा एक ऐसिटैबुलम होता है। ग्रसनी नहीं होती, और अंतड़ी की दोनों शाखाएँ शरीर के मध्य भाग में पुनः जुड़ जाती हैं, यह लक्षण और इसके साथ-साथ नर मादा लिंगों का पृथक् पाया जाना रक्त-फ्लूकों को शेष ट्रीमैटोडों से पृथक् करते हैं। नर अंग—नर
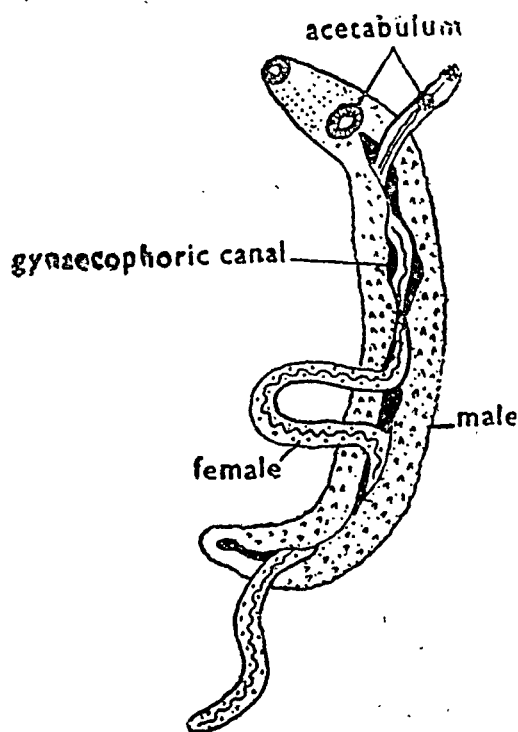
चित्र **179. शिस्टोसोमा हीमैटोबियम** (*Schistosoma haematobium*) का जोड़ा। Acetabulum, ऐसिटैबुलम; gynaecophoric canal, मादाधर नलिका; male, नर; female, मादा।

में चार वृषण होते हैं, वृषणों से एक छोटी शुक्रवाहिका निकलती है जो शुक्राशय में

जुड़ जाती है, यह शुक्राशय शिश्न में प्रविष्ट हो जाता है, शिश्न एक जनन-छिद्र द्वारा ऐसिटैबुलम के नीचे खुलता है। मादा अंग—मादा में एक लंबा अंडाशय लगभग उस बिंदु के ऊपर की दिशा में पाया जाता है जहाँ पर आंत्र-सीकम पुनः जुड़ जाते हैं,
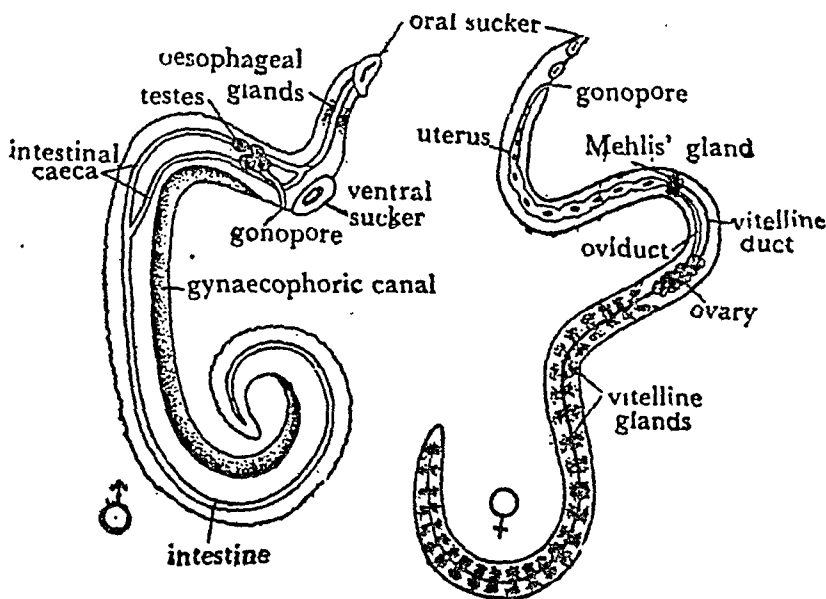
चित्र 180. **शिस्टोसोमा,** नर और मादा पृथक् कर दिए गए हैं। Oesophageal glands, ग्रसिका-ग्रंथियाँ; testes, वृषण; intestinal caeca, आंत्र सीकम; ventral sucker, अधर चूषक; gonopore, जनन-छिद्र; gynaecophoric canal, मादाधर नलिका; intestine, अंतड़ी; oral sucker, मुख चूषक; gonopore, जनन-छिद्र; uterus, गर्भाशय; Mehlis' gland, मेहलिस-ग्रंथि; vitelline duct, पीतक वाहिनी; oviduct, अंडवाहिनी; ovary, अंडाशय; vitelline glands, पीतक ग्रंथियाँ।

अंडाशय के सामने की ओर को एक अंडवाहिनी निकलती है। मादा के पश्च तिहाई भाग में पीतक ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें से निकली हुई एक पीतक-वाहिनी अंडवाहिनी से आकर मिल जाती है। अंडवाहिनी एक ऊटाइप में आकर मिलती है और यह ऊटा-इप मेहलिस-ग्रन्थियों द्वारा घिरा होता है। ऊटाइप में से एक सीधा गर्भाशय निकलता है जिसमें थोड़े से कैप्सूल होते हैं, यह ऐसिटैबुलम के नीचे स्थित एक मादा जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। निषेचन के बाद मादा अपने साथी नर को छोड़ कर सूक्ष्मतर रक्त वाहिकाओं में पहुँच जाती है जहाँ वह एक-एक करके अंडे देती है। कैप्सूल केशिकाओं में विदार पैदा करके मूत्राशय में पहुँच जाते हैं और वहाँ से पेशाब के साथ बाहर निकल जाते हैं। जैसे ही जल के साथ मिल कर पेशाब हलका हो जाता है तुरन्त वैसे ही कैप्सूलों में से मिरैसिडियम लार्वा निकल आते हैं जो एक नये जल

घोंघे में प्रविष्ट होकर उसके जिगर में घुस जाते हैं। मिरैसिडियम एक स्पोरोसिस्ट बनाता है। स्पोरोसिस्टों की पहली पीढ़ी से पुन: मिरैसिडियम लार्वा बन सकते हैं जिनसे फिर स्पोरोसिस्टों की दूसरी पीढ़ी बनती है। स्पोरोसिस्टों की पहली अथवा दूसरी पीढ़ी से सर्केरिया उत्पन्न हो सकते हैं जिनमें पूंछ विशाखित होती है। रीडिया अवस्था नहीं होती। सर्केरिया घोंघों में से बाहर निकल आते हैं और जल में स्वच्छंद तैरने लगते हैं जो बिना सिस्ट बनाए मनुष्य की खाल में उस समय बड़ी तेजी से घुसते चले जाते हैं जब कि वह नहा रहा होता है अथवा कपड़े धो रहा होता है या हो सकता है संक्रमित जल को पीने के कारण ये सर्केरिया शरीर में पहुँच जाएँ। सर्केरिया रक्त वाहिकाओं में घुस जाते हैं, हृदय में पहुँच जाते हैं, इसके बाद फेफड़ों में और तब फिर जिगर में जहाँ वे बढ़ते जाते हैं; उसके पश्चात् वे यकृत-निवाहिका-शिरा अथवा श्रोणि शिरा में पहुँच जाते हैं और लैंगिक परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। एक अंडे से विकसित होने वाले सर्केरियाओं में केवल एक ही लिंग के पलूक बनेंगे, और जिन परपोषियों में कोई नर विद्यमान नहीं होता उनमें मादा परिपक्व नहीं होती। जब नर को कोई मादा मिल जाती है तब वह उसको अपनी मादाधर नलिका में बंद कर लेता है।

मनुष्य में **शिस्टोसोमा** की तीन स्पीशीज़ परजीवी रूप में पाई जाती हैं। 1. **शि० हीमैटोबियम** (*S. haematobium*) जो अफ्रीका, फ़िलस्तीन, ईराक और पुर्तगाल में मनुष्य की श्रोणि शिराओं में पायी जाती है, इसके कैप्सूल में एक तीक्ष्ण अंतस्थ कांटा बना होता है, इसका मध्यस्थ परपोषी **ब्यूलिनस** है। 2. **शि० मैन्सोनाई** (*S. mansoni*) अफ्रीका और उष्णकटिबंधीय अमरीका में पाया जाता है जहाँ यह इलियम-सीकम संधि के समीप शिराओं में रहता है, इसके कैप्सूल में एक पार्श्व कांटा बना होता है; मध्यस्थ परपोषी **प्लैनॉर्बिस** होता है। 3. **शि० जैपोनिकम** (*S. japonicusm*) जापान, चीन और फ़िलीपीन में पाया जाता है। यह यकृत निवाहिका और आंत्रयोजनी शिराओं में रहता है, यह कुत्तों, बिल्लियों, मवेशियों, घोड़ों और सूअरों में भी परजीवी होता है, और इसमें एक अल्पविकसित पार्श्व कांटा होता है, इसका मध्यस्थ परपोषी **ऑन्कोमेलैनिया** (*Oncomelania*) है।

चित्र 181. विभिन्न कैप्सूल। **शि० हीमैटोबियम**; 2—**शि० मैन्सोनाई** 3—**शि० जैपोनिकम**।

शि० इंडिकम भारतीय मवेशियों में निवाहिका शिराओं में पाया जाता है।

शिस्टोसोमा से मूत्राशय में क्षति पहुँचती है, और मूत्राशय पथरी, त्वचा रोग तथा रक्तमेह (haematuria) हो जाते हैं। रक्तमेह गुर्दों का रोग है जिसके कारण रक्त बाहर जाने लगता है। मिस्र में इससे 60% आबादी ग्रस्त है। रोग की रोकथाम

जल की स्वच्छता पर नियंत्रण करके की जा सकती है, और ऐंटिमनी के यौगिकों से इलाज किया जा सकता है।

5. **पैरैम्फ़िस्टोमम** (*Paramphistomum*)—उन द्विपीढ़ीय ट्रीमैटोडों को जिनमें पश्च सिरे पर या उसके समीप एक ऐसिटैबुलम होता है, ऐम्फ़िस्टोम
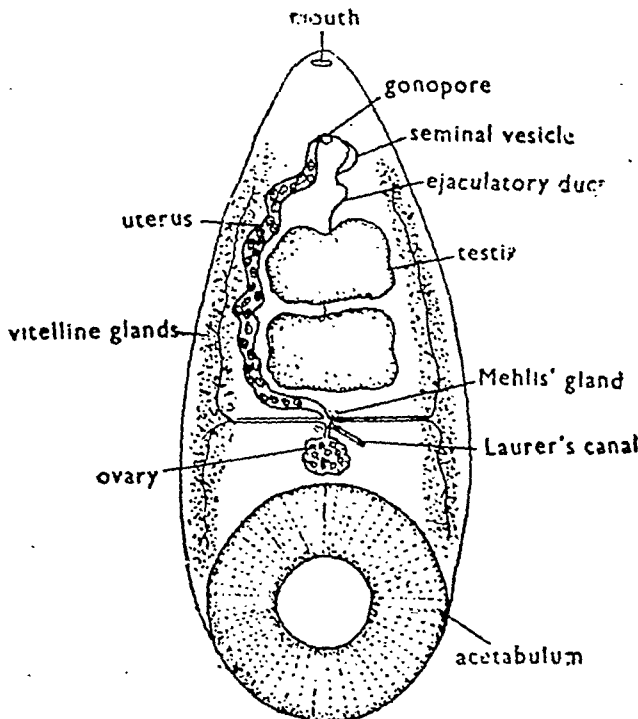
चित्र 182. **पैरैम्फ़िस्टोमम**।

Mouth, मुख; gonopore, जनन-छिद्र; seminal vesicle, शुक्राशय; ejaculatory duct, स्खलनीय वाहिनी; testis, वृषण; Mehlis' gland, मेहलिस-ग्रंथि; Laurer's canal, लौरर-नलिका; acetabulum, ऐसिटैबुलम; ovary, अंडाशय; vitelline glands, पीतक ग्रंथियाँ; uterus, गर्भाशय।

(amphistomes) कहते हैं। **पैरैम्फ़िस्टोमम** मवेशियों की पित्तवाहिनियों में पाया जाने वाला एक द्विपीढ़ीय ऐम्फ़िस्टोम है। मुख-चूषक नहीं होता है, पश्च सिरे पर एक ऐसिटैबुलम होता है, जिसे एक आदिम स्थिति माना जाता है। आंत्र में एक बहुत ही पेशिल ग्रसनी होती है, अंतड़ी में दो सरल सीकम होते हैं। ऐम्फ़िस्टोमों में पैरेंकाइमा में बनी महीन विशाखित नलिकाओं का एक लसीका-तंत्र होता है जो एक आदिम परिसंचरण तंत्र का काम करता है। नर अंग—मध्य में दो बड़े वृषण होते हैं जिनमें से एक शुक्रवाहिका निकल कर आगे की ओर बढ़ती है और शुक्राशय से जा मिलती है। शुक्राशय से निकल कर एक स्खलन-वाहिनी जनन-एट्रियम से जा मिलती है जो एक छिद्र द्वारा बाहर खुलता है, शिश्न नहीं होता। मादा अंग—वृषणों के पीछे

एक अंडाशय होता है जिसमें से एक अंडवाहिनी निकलती है। देह के दोनों पार्श्वों में पीतक ग्रंथियाँ होती हैं जिनमें से अनुदैर्घ्य और अनुप्रस्थ पीतक वाहिनियाँ निकलती हैं और एक सम्मिलित पीतक वाहिनी बना लेती हैं जो अंडवाहिनी से आ मिलती है। अंडवाहिनी एक ऊटाइप से आकर मिलती है जिसे मेहलिस-ग्रंथियाँ घेरे रहती हैं, ऊटाइप से एक गर्भाशय निकलता है जो जनन एट्रियम में प्रविष्ट हो जाता है। एक लौरर-नलिका अंडवाहिनी से जुड़ी होती है और यह पृष्ठ सतह पर खुलती है। इसका एक नजदीकी ऐम्फ़िस्टोम **डिप्लोडिस्कस** (*Diplodiscus*) मेंढकों के मूत्राशय में पाया जाता है।

6. इकाइनोकौक्कस (*Echinococcus*)—**इकाइनोकौक्कस ग्रैनुलोसस** (*Echinococcus granulosus*) एक छोटा फीता-कृमि, 3 से 6 mm. लंबा होता है। यह अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, आइसलैंड, हालैंड, और दक्षिण अमरीका में आम पाया जाता है। कुत्तों, बिल्लियों और भेड़ियों की अंतड़ी में यह सैकड़ों की संख्या में पाया जाता है। स्कोलेक्स में चार चूषक और एक बहिःसारी (protrusible) रॉस्टेलम बना होता है जिस पर हुकों की दो पंक्तियाँ होती हैं। एक गर्दन तथा 3 या 4 प्रोग्लौटिड होते हैं जिनमें से एक अपरिपक्व होता है, एक या दो प्रोग्लौटिड उभयलिंगी जनन-अंगों से युक्त परिपक्व होते हैं और एक बड़ा सगर्भ प्रोग्लौटिड होता है। अंडे परपोषी की विष्ठा के साथ बाहर निकलते हैं और किसी मध्यस्थ परपोषी के पास तक पहुँच जाते हैं, यह मध्यस्थ परपोषी या तो मनुष्य या खरगोश कंगारू, भेड़ और मवेशी जैसा कोई शाकाहारी प्राणी होता है, इस मध्यस्थ परपोषी में पहुँच कर कवच घुल जाता है और छह-हुकों वाला एक भ्रूण निकल कर बेधता हुआ आम तौर से जिगर या फेफड़ों में या कभी-कभी गुर्दों, तिल्ली, हड्डियों, दिल और मस्तिष्क में पहुँच जाता है। नन्हा लार्वा एक ब्लैडर में बदल जाता है जिसके बाहर-बाहर परपोषी एक **पुटी-भित्ति** (cyst wall) का आवरण बना लेता

चित्र 183. इकाइनोकौक्कस ग्रैनुलोसस Scolex, स्कोलेक्स; gonopore, जनन-छिद्र; mature proglottis, परिपक्व प्रोग्लौटिड; gravid proglottis, सगर्भ प्रोग्लौटिड।

है। इस अवस्था में इसे **हाइडैटिड पुटी** (hydatid cyst) कहते हैं। पुटी का परिवर्धन धीमा होता है और कई-कई महीने, यहाँ तक कि कई-कई साल बीत जाते हैं और तब भी ब्लैडर की दीवारों से खोखले शावक **कैप्सूल** (brood capsule) बनते हैं न कि स्कोलेक्स; ये शावक कैप्सूल या तो अपने पतले वृंतों के द्वारा जुड़े रहते हैं या पुटी की तरल से भरी गुहा में स्वच्छंद आ गिरते हैं। आयु के साथ-साथ और अधिक शावक कैप्सूल बनते जाते हैं तथा पुराने कैप्सूलों में 3 से 30 स्कोलेक्स उनकी भीतरी दीवारों पर बन जाते हैं। कभी दबाव पड़ने के कारण मातृ-पुटी में से हर्निया के समान मुकुल निकल आते हैं, इन्हें **संतति ब्लैडर** (daughter bladder) या **संतति पुटियाँ** (daughter cysts) कहते हैं, संतति पुटियों में एक तंतुकी पुटी-भित्ति और एक ब्लैडर भित्ति होती है, ये मातृ पुटी के भीतर **अंतःजात मुकुलन** (endogenous budding) द्वारा या **बहिर्जात मुकुलन** (exogenous budding) द्वारा बाहर बनती हैं। बहिर्जात संतति पुटियाँ टूट कर अलग हो जा सकतीं और चलती-फिरती जाती हैं, इनका परिवर्धन शरीर के किसी अन्य भाग में जारी रहता है। संतति पुटियों में भी उनकी भीतरी दीवारों से अनेक स्कोलेक्स बन जाते हैं।

हाइडैटिड पुटी में एक रंगहीन तरल भरा होता है जो 2 से 50 क्वार्ट्स तक हो सकता है, लेकिन अधिक पुरानी पुटियों में एक कणिकीय जमाव होता है जिसमें
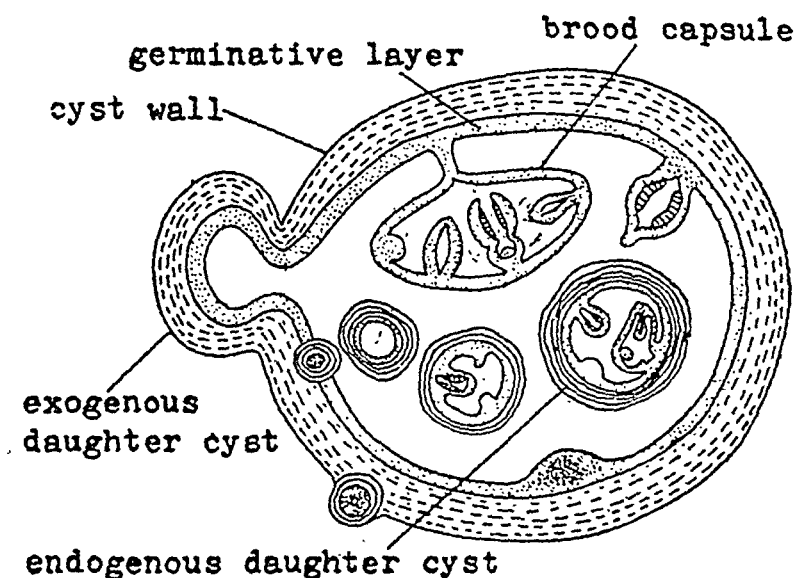
चित्र 184. **इकाइनोकोक्कस** की हाइडैटिड पुटी।
Cyst wall, पुटी-भित्ति; germinative layer, जननिक परत; brood capsule, शावक कैप्सूल; exogenous daughter cyst, बहिर्जात संतति पुटी; endogenous daughter cyst, अंतःजात संतति पुटी।

शावक कैप्सूल और मुक्त स्कोलेक्स होते हैं। अंततः स्कोलेक्स शावक कैप्सूलों में और अंतःजात तथा बहिर्जात संतति पुटियों में वहिर्वलित हो जाते हैं और यदि वे अंतिम

परपोषी, कुत्ता, बिल्ली या भेड़िया में पहुँच गए तो वयस्क **इकाइनोकौक्कस** के रूप **में विकसित हो जाते हैं।**
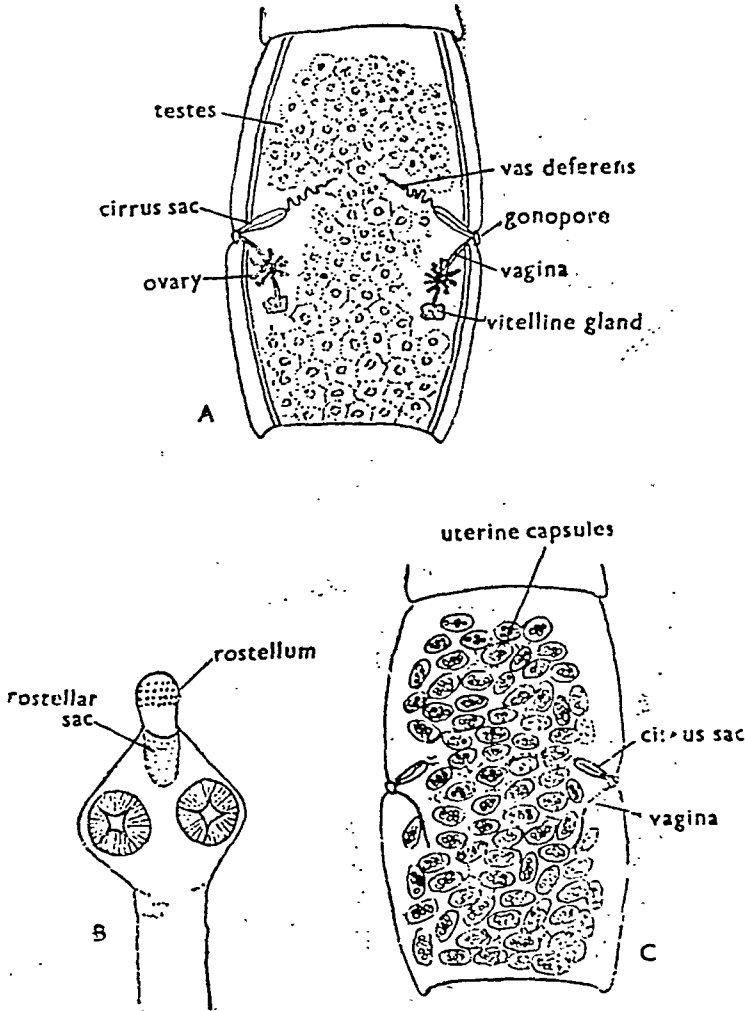
चित्र 185 A. **डाइपाइलिडियम कैनाइनम,** परिपक्व प्रोग्लौटिड; B. स्कोलेक्स; C. सगर्भ प्रोग्लौटिड ।
Testes, वृषण ; cirrus sac, सिरस कोश ; ovary, अंडाशय ; vas deferens, शुक्रवाहिका ; gonopore, जनन-छिद्र ; vagina, योनि ; vitelline gland, पीतक ग्रन्थि ; rostellum, रॉस्टेलम ; rostellar sac, रॉस्टेलम कोश ; uterine capsules, गर्भाशय कैप्सूल ।

हाइडेटिड पुटियाँ अक्सर खूब बड़ी-बड़ी होती हैं, और उनके कारण जिगर बड़ा हो जाया करता है, मस्तिष्क में या आँख में होने पर वे घातक सिद्ध होती हैं। हाइडैटिड तरल में टॉक्सिन मौजूद होते हैं और यदि यह तरल पुटी में से रिसने

लगता है तो इओसिनोफ़िलिया हो जाता है। यदि दवाव पड़ने पर हाइडैटिड पुटी फूट जाती है तो न केवल विषैला तरल ही बाहर निकलता है वल्कि स्कोलेक्स, शावक कैप्सूल तथा संतति पुटियाँ भी देह में छितरा जाती हैं जिनमें से प्रत्येक में से एक नई पुटी वन सकती है।

7. **डाइपाइलिडियम कैनाइनम** (*Dipylidium caninum*)—कुत्तों और बिल्लियों की अंतड़ी में पाया जाने वाला यह एक आम परजीवी है। वयस्क फीता-कृमि लगभग 25 cm. लम्बा होता है और उसमें 150 प्रोग्लौटिड होते हैं। स्कोलेक्स के चार चूषक होते हैं और हुकों की चार पंक्तियों से युक्त एक रॉस्टेलम होता है, यह रॉस्टेलम एक रॉस्टेलमी थैले में भीतर को सिकोड़ा जा सकता है। प्रोग्लौटिड चौड़े की अपेक्षा लंवे अधिक होते हैं। प्रत्येक परिपक्व प्रोग्लौटिड में उभयलिंगी जनन-अंगों के
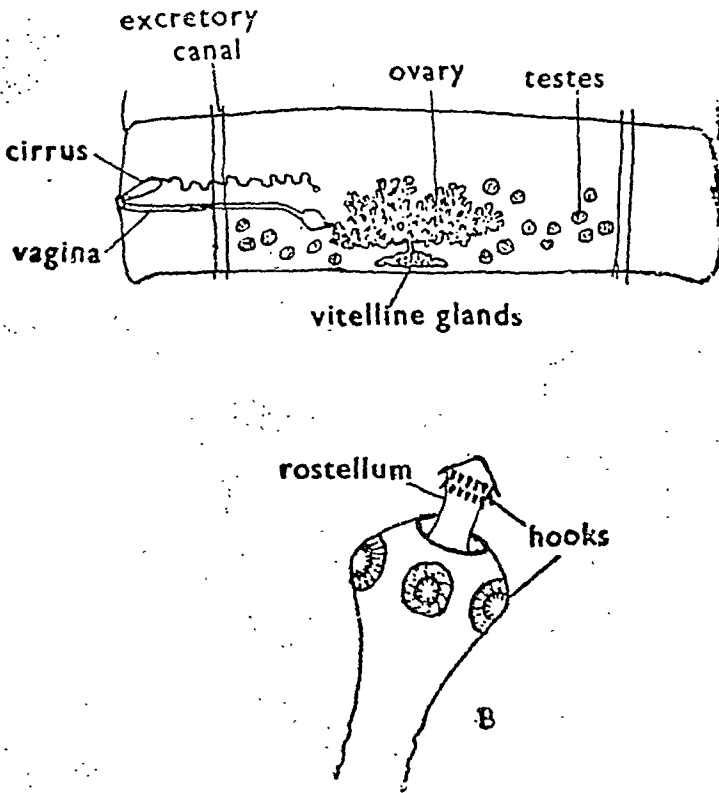
चित्र 186. A—रेलेटिना, B—स्कोलेक्स।

Cirrus, सिरस ; vagina, योनि ; excretory canal, उत्सर्गी नलिका ; ovary, अंडाशय ; testes, वृषण ; vitelline glands, पीतक ग्रन्थियाँ ; rostellum, रास्टेलम ; hooks, हुक।

दोहरे सेट होते हैं तथा हर सीमांत पर एक-एक जनन-छिद्र होता है। मादा अंगों के आगे और पीछे दोनों तरफ वहुसंख्यक वृषण होते हैं। सगर्भ प्रोग्लौटिडों में वहुत से अंडाकार गर्भाशयी कैप्सूल अथवा नीड़ होते हैं जिनमें से प्रत्येक में 3 से 30 कैप्सूल होते

हैं। मध्यस्थ परपोषी एक कुत्ता पिस्सू **प्यूलेक्स** (*Pulex*) होता है लेकिन कभी-कभी कुत्ते की जूँ भी होती है, जिसमें एक सिस्टिसर्काइड बनता है। कुत्ते और बिल्लियों के बच्चे पिस्सुओं और जूओं को खा जाया करते हैं जिससे संक्रमण हो जाता है।

8. **रेलेटिना** (*Raillietina*) – इसमें 200 से ऊपर स्पीशीज़ हैं जो पक्षियों में परजीवी पाई जाती हैं, इन पक्षियों में कबूतर तथा मुर्गियाँ भी शामिल हैं। कुछ स्पीशीज़ कभी-कभी मनुष्य में भी पाई जाती हैं। **रे० स्पाइरेलिस** (*R. spiralis*) तथा **रे० टारक्वेटा** (*R. torquata*) कबूतरों की अंतड़ी में आम पाये जाते हैं। यह लगभग 25 cm. लम्बा होता है और इसमें 500 प्रोग्लौटिड होते हैं जो लंबाई की अपेक्षा अधिक चौड़े होते हैं। स्कोलेक्स के चार चूषक होते हैं, जिनमें से प्रत्येक चूषक पर उसके सीमांत के ऊपर हुकों की एक पंक्ति बनी होती है, इसके अलावा एक साधारण रॉस्टेलम होता है जिस पर छोटे हथौड़ीनुमा हुकों की दो पंक्तियाँ होती हैं। नर अंग—वृषणों के करीब बीस पालि होते हैं, एक छोटी कुंडलित शुक्रवाहिका होती है, तथा सिरस कोश से युक्त एक सिरस होता है। मादा अंग—बड़ा अनियमित अंडाशय बीच में होता है, जिसके नीचे पीतक ग्रन्थियाँ होती है। योनि में एक शुक्रग्राही होता है। जनन-छिद्र अनियमित रूप में एकपार्श्वीय होते हैं। सगर्भ प्रोग्लौटिडों में गर्भाशय टूट-टूट कर गर्भाशयी कैप्सूल बना लेता है, और प्रत्येक में एक से अनेक भ्रूण होते हैं, गर्भाशयी कैप्सूल उत्सर्गी
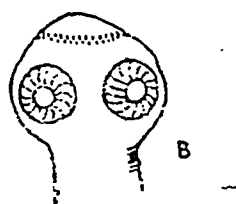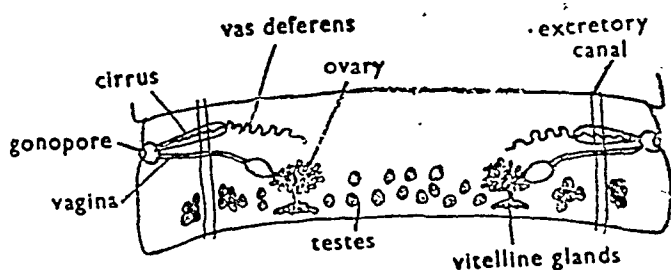
चित्र 187. A—**कोटुग्निया**। B—स्कोलेक्स।
Cirrus, सिरस; vas deferens, शुक्रवाहिका; ovary, अंडाशय; excretory canal, उत्सर्गी नलिका; gonopore, जनन-छिद्र; vagina, योनि; testes, वृषण; vitelline glands, पीतक ग्रन्थियाँ।

नलिकाओं के आगे तक पहुँचे होते हैं। मध्यस्थ परपोषी एक बीटल होता है जिसमें एक सिस्टिसर्काइड बनता है।

9. **कोटुग्निया** (*Cotugnia*)—अनेक पक्षियों में पाया जाने वाला परजीवी है। **कोटुग्निया क्यूनिएटा** (*Cotugnia cuneata*) कबूतरों की अंतड़ी में पाया जाने वाला एक आम परजीवी है, यह 3—6 cm. लंबा होता है। स्कोलेक्स में चार चूषक होते हैं और सूक्ष्म हुकों की दो पंक्तियों से युक्त एक सरल रॉस्टेलम होता है। प्रोग्लौटिड लंबे की अपेक्षा चौड़े अधिक होते हैं, इनमें जनन अंगों के दो सेट होते हैं। नर अंग—वृषण पिछले अर्ध भाग में छितराये होते हैं, प्रत्येक पार्श्व में एक कुंडलित शुक्रवाहिका होती है तथा शिश्न एक बड़े सिरस कोश में बंद होता है। मादा अंग—प्रत्येक पार्श्व में एक अंडाशय होता है; योनि में एक शुक्रग्राही होता है। सगर्भ प्रोग्लौटिड में गर्भाशय से छोटे-छोटे गर्भाशयी कैप्सूल बन जाते हैं जिनमें से हर एक में एक-एक भ्रूण होता है। मध्यस्थ परिपोषी विविध कीट होते हैं जिनमें एक सिस्टिसर्काइड बनता है।

प्लैटिहेल्मिथीज़ पर टिप्पणियाँ

तंत्रिका-तंत्र—तंत्रिका-तंत्र में नाइडेरिया के समान एक जालक होता है किन्तु उसके अतिरिक्त अग्र सिरे पर तंत्रिका कोशिकाओं का एक समूहन भी होता है, जिसमें स्वच्छन्द-जीवी प्राणियों में एक जोड़ी **प्रमस्तिष्कीय गैंग्लिया** होते हैं। परजीवी प्राणियों में **प्रमस्तिष्कीय गैंग्लिया** और तंत्रिका-कॉलर कम विकसित हो सकते हैं। प्रमस्तिष्कीय गैंग्लिया से निकले हुए तंत्रिका-तंतुओं के सूत्र पीछे को चलते जाते हैं जिसमें से कुछ तंत्रिका रज्जुएँ बन जाती हैं। इस प्रकार प्लैटिहेल्मिथीज़ में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का प्रारम्भ देखने को मिलता है। केवल प्रमस्तिष्कीय गैंग्लियान को छोड़ कर इसमें और कोई गैंग्लियान नहीं होते, लेकिन जालक में तंत्रिका कोशिकाएँ तथा तंत्रिका-तंतु होते हैं।

जनन अंग—जनन-अंग जटिल, अधिक विकसित तथा सामान्यतः उभयलिंगी होते हैं, तीनों क्लासों में इनकी रचना न्यूनाधिक रूप में एक ही समान योजना पर होती है। वृषण प्रायः बहुसंख्यक होते हैं जिनमें से शुक्रअपवाहिकाएँ निकलकर प्रायः दो शुक्रवाहिकाओं में खुलती हैं और इन शुक्रवाहिकाओं में प्रसार होकर शुक्राशय बन जाते हैं और फिर एक पेशीय शिश्न में खुलती हैं, शिश्न एक जनन एट्रियम में खुलता है जो अधर दिशा में बने हुए एक जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। जनन एट्रियम में नर और मादा दोनों वाहिनियाँ खुलती हैं। मैथुन के दौरान शिश्न जनन-छिद्र में से बाहर को निकल आता है। अंडाशय अकेला होता है, इसमें अंडे बनते हैं; पीतक ग्रंथियाँ अंडों को पीतक और कवच प्रदान करती हैं। अंडाशय एक अंडवाहिनी में खुलता है जिसमें एक शुक्रग्राही बना हो सकता है, उसके बाद पीतकवाहिनियाँ अंडवाहिनी में आकर मिलती हैं, इस संधि पर मेहलिस-ग्रंथियों से घिरा हुआ एक ऊटाइप बना होता है, इन ग्रंथियों का स्राव अंडों को कड़ा कर देता और उनके मार्ग को चिकना बना देता है, ऊटाइप अंडों को उनकी आकृति प्रदान करता है। ऊटाइप में से एक संयोजी वाहिनी निकल कर जनन-एट्रियम में गिरती है। ट्रीमैटोडों में यह संयोजी वाहिनी गर्भाशय होता है जो लंबा होता है और अंडों को संचित करता है

लेकिन कदाचित् यह सेस्टोडों के गर्भाशय का समजात नहीं होता। प्लैटिहेल्मिथीज़ की वाहिनियों की समजातता पता लगाना कठिन है। अंडवाहिनी और शुक्रवाहिकाओं में सभी क्लासों में समजातता पाई जाती है, और सेस्टोडा की योनि ट्रीमैटोडा की लौरर-नलिका के समजात है लेकिन यह जनन-छिद्र में खुलती है, सेस्टोडों के गर्भाशय की समजातताएँ अनिश्चित हैं, यह ट्रिमैटोडों की योनि के अनुरूप हो सकता है हालांकि यह कहना अधिक न्यायोचित जान पड़ता है कि बाहरी छिद्रों के स्थान में कुछ परिवर्तन हुआ है, इसलिए ट्रीमैटोडों और सेस्टोडों में गर्भाशय एक ही चीज है हालांकि सेस्टोडों में यह जनन-एट्रियम में नहीं खुलता। टर्वेलैरिया के मैथुन वर्सा तथा पेशीय शिश्न कदाचित् ट्रीमैटोडों और सेस्टोडों में नहीं होते हैं।

भ्रूण-विज्ञान—पौलीक्लैड टर्वेलैरिया में, जैसा कि नीमैटोडा, पौलीकीटा और मौलस्का में भी होता है, **सर्पिल विदलन** (spiral cleavage) पाया जाता है जिसमें विदलन के अक्ष ध्रुवी अक्ष पर तिरछे हाते हैं, फलतः कोशिकाएँ एकांतर क्रम में दाहिने और बाएँ होती हैं, ब्लास्टोमियरों का एक टियर (सोपान या निःश्रेणी) (tier) दूसरे टियर के साथ एकांतर क्रम बनाए रखता है, जिसके कारण एक सर्पिल व्यवस्था बन जाती है। सर्पिल विदलन **निर्धारी** (determinate) भी होता है, विदलन से उत्पन्न होने वाली कोशिकाओं की नियति बहुत शुरू में ही निश्चित हो जाती है। यदि विदलन द्वारा बनने वाले चार ब्लास्टोमियर अलग-अलग कर दिए जाएँ तो प्रत्येक से एक-चौथाई लार्वा बनता है, हर कोशिका की एक पूर्वनिर्धारित तथा निश्चित नियति होती है जिसे बदला नहीं जा सकता, और तो और, अगर उसे उसके मूल स्थान से हटा दिया जाए तब भी नहीं बदला जा सकता। इस प्रकार ऐसी स्थिर नियति वाले ब्लास्टोमियरों के निर्माण को जिसमें विशिष्ट कोशिका से विशेष ऊतक ही उत्पन्न हों **निर्धारी विदलन** कहते हैं। अनेक टर्वेलैरिया में अंडे से निकलने वाला भ्रूण सीधा वयस्क में परिवर्धित नहीं होता बल्कि उससे एक अभिलक्षणी **मुलेर-लार्वा** (Muller's larva) बनता है जो अंडाकार होता है एवं जिसके ऊपर पीछे को निकले हुए आठ प्रवर्धी पालि होते हैं। इन पालियों के किनारे-किनारे सिलिया बने होते हैं जो एक सिलियायुक्त पट्टी में जारी रहते हैं, अग्रतः एक मस्तिष्क और तीन नेत्र-बिंदु होते हैं। सामने की ओर लंबे सिलिया का एक शीर्षस्थ पुंज होता है और इसी प्रकार का एक पुच्छीय संवेदी पुंज पश्च सिरे पर होता है। एक मध्य-अधर मुख

चित्र 188. पौलिक्लैड का मुलेर-लार्वा।
Apical tuft, शीर्षस्थ गुच्छा; eyes, आंखें; lobes, पालि; mouth, मुख; ventral cilia, अधर सिलिया।

होता है। लार्वा प्लवकी (planktonic) होता है। कायांतरण के दौरान प्रवर्धी पालि समा जाते हैं, दोनों संवेदी पुंज विलीन हो जाते हैं और लार्वा एक चपटा लंबा नन्हा जंतु बन जाता है। ट्रीमैटोडा के लार्वा स्वरूपों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। सेस्टोडा में यदि मध्यस्थ परपोषी कोई अकशेरुकी जंतु हुआ तो षडंकुश एक सिस्टिसर्काइड लार्वा में परिवर्धित हो जाता है, किंतु यदि मध्यस्थ परपोषी कोई कशेरुकी प्राणी हुआ तो षडंकुश से सिस्टिसर्कस लार्वा बनता है। **सिस्टिसर्काइड** लार्वा अधिक आदिम होता है। अंकुशगोले में उसके अग्र सिरे से एक स्कोलेक्स बनता है जिस पर चूषक और हुक बने होते हैं, अंकुशगोले का बीच का भाग लंबा हो जाता है जिसमें एक खोखली केंद्रीय गुहा बन जाती है। गुहा की दीवारें स्कोलेक्स के चारों ओर एक वलन बना लेती हैं, और स्वयं स्कोलेक्स गुहा के भीतर को सिकोड़ लिया जाता है
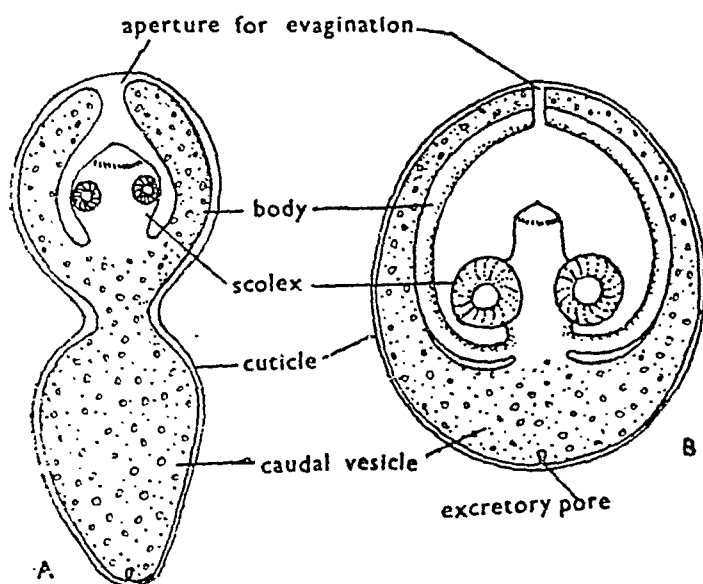
चित्र 189. A और B—दो सिस्टिसर्काइड लार्वा।

Aperture for evagination, बहिर्वर्तन के वास्ते छिद्र; body, देह; scolex, स्कोलेक्स; cuticle, क्यूटिकल; caudal vesicle, पुच्छीय आशय; excretory pore, उत्सर्गी छिद्र।

लेकिन यह अंतर्वलित कभी नहीं होता। अंकुशगोले का अपरिवर्धित पश्च भाग एक ठोस पूँछ अथवा पुच्छीय आशय बना लेता है जिसमें लार्वायी हुक कुछ समय तक बने रहते हैं। पूँछ काफी ज़्यादा लंबी हो जा सकती है या उसमें विशाखन हो सकता है, या वह देह के मध्य भाग के चारों ओर एक अतिरिक्त आवरणी दीवार के रूप में वलित हो जा सकती है। स्कोलेक्स को छोड़ कर शेष सिस्टिसर्काइड ऊतक ढीला और रिक्तिकायित हो जाता है। पूर्ण हो चुके सिस्टिसर्काइड में एक अग्र देह अथवा आशय होता है जिसके भीतर एक स्कोलेक्स बंद होता है, और एक पश्च पूँछ होती है.

उदाहरण : **हाइमेनोलेपिस** (*Hymenolepis*)। **सिस्टिसर्कस** इससे कहीं अधिक बड़ा होता है। अंकुशगोले में तरल से भरी एक केंद्रीय गुहा वन जाती है जो वड़ी होकर भ्रूण को एक थैले (व्लैडर) में वदल देती है; इस थैले की दीवार मीजेंकाइम की वनी होती है जिसके ऊपर क्यूटिकल वनकर एक व्लैडर-वर्म अवस्था वन जाती है। व्लैडर-वर्म की दीवार का एक अंश मोटा वन जाता है और फिर खोखला वन कर गुहा में को एक खोखली घुंडी के रूप में अंतर्वलित हो जाता है, घुंडी के भीतर एक अंतर्वलित स्कोलेक्स वन जाता है जिस पर चूषक, रॉस्टेलम और हुक भीतर को मुँह किये रहते हैं, इस पूरी रचना को **प्रोस्कोलेक्स** (proscolex) कहते हैं। प्रोस्कोलेक्स से युक्त व्लैडर-वर्म को सिस्टिसर्कस लार्वा कहते हैं, जैसे **टीनिया** (चित्र 174)। कुछ फीता-कृमियों में व्लैडर खोखला हो जाता है और उनकी दीवारों में प्रफलन होकर वहुत से स्कोलेक्स वन जाते हैं जो समूहों में व्यवस्थित होते हैं; ये स्कोलेक्स टूट कर अलग नहीं हो जाते वल्कि मुकुलन के द्वारा उनके जुड़े रहने वाले वृंतों से और अधिक स्कोलेक्स वन जाते हैं, इस प्रकार के लार्वा को **सीन्यूरस** (coenurus) कहते हैं, जैसे **टीनिया मल्टीसेप्स** (*Taenia multiceps*)। **इकाइनोकौक्कस** में अंकुशगोले से एक सिस्टिसर्कस वनता है जो परपोषी द्वारा स्रावित एक तंतुकी पुटी-भित्ति में वंद हो जाता है, मीज़ेंकाइम से भीतरी सतह पर स्कोलेक्स न वनकर शावक कैप्सूल वनते हैं, ये शावक कैप्सूल खोखले थैले होते हैं जो अपने वृंतों द्वारा मातृ पुटी से जुड़े होते हैं। प्रत्येक शावक कैप्सूल में 30 तक स्कोलेक्स वनते हैं, कुछ शावक कैप्सूल टूट कर गुहा में भी आ गिरते हैं। शावक कैप्सूलों के अतिरिक्त मीज़ेंकाइम से भीतरी अथवा वाहरी संतति व्लैडर भी वन सकते हैं जो पुटी-भित्तियों में वंद रहते हैं। संतति व्लैडरों में भी स्कोलेक्स वन जाते हैं। इस प्रकार के विशाल सिस्टिसर्कस को **हाइडैटिड पुटी** (hydatid cyst) कहते हैं (चित्र 184)।

परजीविता (Parasitism)—परजीवी वह जीव है जो परपोषी कहलाने वाले एक अन्य जीव के ऊपर रहता है, और जो परपोषी को विना किसी प्रकार का मुआवज़ा देते हुए उससे पोषण और आश्रय प्राप्त करता रहता है। प्लैटिहेल्मिथ परजीवी वाह्यपरजीवी हो सकते हैं (मॉनोजीनिया) लेकिन अधिकतर वे अंतःपरजीवी होते हैं जो खाने की नली, देह गुहाओं अथवा रक्त आदि के तरल आवास में पाए जाते हैं। परजीवियों को अपने भीतर ऐसा प्रतिरोध वनाना पड़ता है जिससे वे परपोषी के वचाव साधनों से टक्कर ले सकें। परजीवी द्वारा ग्रहण किया गया आवास उसके स्वच्छंदजीवी पूर्वजों के वातावरण से वहुत भिन्न होता है, अतः परजीवी को अपने इस नए वातावरण के लिए अनुकूलित होना पड़ता है। जो परजीवी
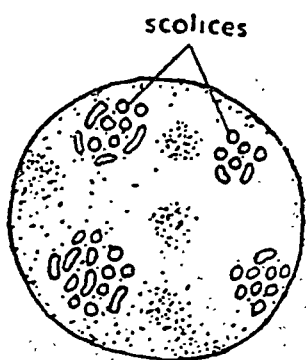
चित्र 190. सीन्यूरस। Scolices, वहुस्कोलेक्स।

सफलतापूर्वक अनुकूलित होते हैं वे अपने परपोषी को कोई नाजायज़ हानि नहीं पहुँचाते, वे सहभोजी (commensal) अथवा अरोगजनक होते हैं। अन्य परजीवी अपने परपोषी में रहने के जीवन के प्रति पूरी तरह अनुकूलित नहीं होते, वे रोग पैदा करते, अपने परपोषी को कमजोर बना देते यहाँ तक कि उसे मार भी डालते हैं। ऐसे परजीवियों को रोगजनक (pathogenic) कहते हैं। ट्रीमैटोडा और सेस्टोडा में उनकी परजीवी जीवन-पद्धति के कारण शरीर-रचना तथा शरीरक्रियाओं में उनके स्वच्छंदजीवी पूर्वजों की स्थिति से परिवर्तन आ जाता है। ये अंतर विशिष्टत: चलन, आहार करने वाले और संवेदी अंगों में अधिक सुस्पष्ट होते हैं, और ट्रीमैटोडा की अपेक्षा सेस्टोडा में तो ये अंतर बहुत ही ज्यादा प्रकट हो चुके हैं। 1. देह की आकृति एक पत्ती या रिबन-जैसी चपटी हो गई है जिससे वे अपनी आवासी गुहाओं में आसानी से समा सकते हैं। 2. बाहरी सतह से सिलिया का पूरी तरह विलोप हो चुका है क्योंकि अब उनकी कोई आवश्यकता ही नहीं रही। 3. वयस्क में एपिडर्मिसी कोशिकाएँ नहीं होतीं, उनकी बजाए देह के ऊपर एक मोटा बहुस्तरी क्यूटिकल बना होता है जो परजीवी को परपोषी के रसों से बचाता है। 4. चूषकों और हुकों जैसे आसंजक अंग बन जाते हैं जिनके कारण परजीवी अपने परपोषी से जुदा नहीं हो पाता। 5. चलन अंग नहीं होते क्योंकि उनकी ज़रूरत ही नहीं है, परपोषी ही परजीवी को लाता-ले जाता रहता है। 6. भोजन संबंधी अंगों का ह्रास हो जाता है और सेस्टोडा में तो मुख और आहार नाल का पूरी तरह विलोप हो चुका है क्योंकि ये परपोषी के आंत्र में से पचा पचाया भोजन सोखते रहते हैं। 7. तंत्रिका-तंत्र उससे कम स्तर का होता है जितना कि वह स्वच्छंदजीवी स्वरूपों में होता है, और संवेदी अंगों का सम्पूर्ण अभाव होता है। 8. जनन-अंग सुविकसित होते हैं और अंडे बहुत ज्यादा संख्या में बनते हैं ताकि स्पीशीज़ का जारी रहना सुनिश्चित हो सके; सेस्टोडों में हर प्रोग्लौटिड में जनन अंगों की पुनरावृत्ति होती है तथा कुछ उदाहरणों में तो हर एक प्रोग्लौटिड में जननांगों के दो-दो सेट होते हैं। 9. कुछ परजीवियों में उनके जीवन-चक्र की किसी अवस्था पर एक अतिरिक्त प्रगुणन प्रावस्था आती है; ट्रीमैटोडों में रीडियों से संतति रीडिया बन सकते हैं, या स्पोरोसिस्ट में अनुप्रस्थ विभजन द्वारा विभाजन हो सकता है या उससे मिरैसिडियम लार्वा बन सकते हैं, सेस्टोडों में ब्लैडर-वर्मों की अनेक पीढ़ियाँ बनी हो सकती हैं जैसे कि हाइडैटिड पुटी में। 10. परजीवी ऐसे साधन बना लेते हैं जिनसे वे निषेचित अंडों को परपोषियों में से उपयुक्त स्थानों पर बाहर निकाल सकें, अंडों के ऊपर मोटे कवच बने होते हैं जो संरक्षी होते हैं तथा सूखने नहीं देते। 11. अधिकतर परजीवियों के एक या अधिक मध्यस्थ परपोषी होते हैं जो उन्हें नए अंतिम परपोषियों तक पहुँचाने के संक्रामी साधन होते हैं।

शरीरक्रियात्मक अनुकूलन (Physiological adaptations)—1. परजीवी के देह-द्रवों की परासरणी दाब उतनी ही हो जाती है जितनी कि परपोषी की, ताकि जल का गड़बड़ पैदा करने वाला आदान-प्रदान न हो सके। 2. रक्त और ऊतकों में रहने वाले परजीवियों को प्रचुर ऑक्सीजन मिल जाती है लेकिन जो परजीवी आहार

नाल अथवा पित्त-वाहिनी में रहते हैं उनमें आक्सीजन के न होने को सहन करने की बहुत शक्ति होती है, उनमें अनॉक्सीय (anaerobic) श्वसन द्वारा ऑक्सीजन प्राप्त करने की दिशा में रूपांतरण हो जाता है क्योंकि अधिकतर भीतरी आवासों में आक्सीजन की मात्रा बहुत कम होती है, वे अपनी ऊर्जा एक अनॉक्सीजीवी प्रक्रिया द्वारा प्राप्त करते हैं जिनमें ऊर्जा के साधन के रूप में ग्लाइकोजन इस्तेमाल होता है और अंतिम उत्पाद कार्बन डाइआक्साइड एवं फैटी एसिड होते हैं जो निकल जाते हैं।
3. सेस्टोड अपने परपोषी की आंत्र को उत्तेजित करते हैं जिससे श्लेष्मा का स्राव होता है और यह श्लेष्मा चपटे कृमियों के चारों तरफ एक संरक्षी आवरण बना लेती है।
4. आहार-नाल के परजीवी प्रति-एन्जाइमों (anti-enzymes) का स्राव करते हैं ताकि उनके द्वारा पाचन रसों का निराकरण हो सके।

7

फ़ाइलम ऐस्कहेल्मिथीज़
(PHYLUM ASCHELMINTHES)

क्लास नीमैटोडा

ऐस्कहेल्मिथीज़ में कई क्लास शामिल हैं जैसे रोटिफ़ेरा (Rotifera), गैस्ट्रोट्राइकिया (Gastrotrichia), नीमैटोफ़ोरा (Nematophora) तथा नीमैटोडा (Nematoda)। प्रस्तुत विवरण केवल क्लास नीमैटोडा से सम्बन्धित है जिसे कुछेक वर्गीकरण पद्धतियों में फ़ाइलम माना जाता है। नीमैटोडों को पिन-कृमि अथवा गोल-कृमि कहते हैं। इनमें द्विपार्श्वतः सममित सिलिंडराकार शरीर होता है जिसकी बाहरी सतह चिकनी और चमकदार होती है। गोल-कृमि बिना आगे को बढ़ते हुए शरीर को ऊपर नीचे के समतल में पीटते हैं, हां अगर बीच में कोई ठोस कण शरीर में छूते रहें तो चलन गति संभव हो जाती है। नीमैटोडों का वितरण बहुत व्यापक है और लगता है कि उन्होंने लगभग हर एक आवास पर सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली है, लेकिन उनकी शरीर-रचना लगभग एक समान ही है। स्वच्छंदजीवी नीमैटोड समुद्र, अलवण जल तथा मिट्टी में हर प्रकार के वातावरण में पाये जाते हैं और अक्सर बहुत ज्यादा संख्याओं में पाये जाते हैं। साथ ही बहुत से परजीवी नीमैटोड भी हैं जो पौधों और जंतुओं के सभी वर्गों में पाए जाते हैं खास तौर से कीटों तथा कशेरुकियों में। इनमें खंडीभवन का चिन्ह नहीं मिलता। ये आम तौर से छोटे आकार के होते हैं। हालाँकि कुछेक काफी लंबे भी होते है। ठीक से बना हुआ कोई सिर नहीं होता। शरीर के ऊपर एक कड़ा प्रतिरोधी क्यूटिकल चढ़ा होता है जो केवल वृद्धि काल के दौरान निर्मोचित होता है। पेशियाँ केवल अनुदैर्घ्य होती हैं और अधिकतर देहभित्ति में सीमित रहती हैं जहाँ वे चार खंडों में विभाजित होती हैं। इनमें सिलिया नहीं होते, और उत्सर्गी तंत्र में कोई लौ-कोशिका नहीं होती, जिसमें केवल एक ही बाह्य छिद्र होता है। एक सम्पूर्ण पाचन-पथ पाया जाता है जो सीधा होता है और जिसमें एक मुख तथा एक गुदा होती है, इस पाचन-पथ में त्रिअरीय अवकाशिका से युक्त एक लंबी ग्रसनी होती है। परिसंचरण और श्वसन तंत्र नहीं होते। बच्चा प्राणियों में विभिन्न अंग पैरेंकाइमा में भरे होते हैं, यह पैरेंकाइमा वयस्क में अधिकांशतः विलीन हो जाता है जिसमें कि विभिन्न अंग तरल से भरी एक गुहा में पड़े रहते हैं, इस

गुहा को कूटगुहा (pseudocoel) कहते हैं और इसमें पेरिटोनियम नहीं होता। एपिडर्मिस चार अनुदैर्घ्य रज्जुओं के रूप में होता है। नीमैटोड पृथक्‌लिंगी होते हैं और उनमें स्पष्ट लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है, नर अंग एक अवस्कर में खुलते हैं किन्तु मादा अंग एक जनन-छिद्र द्वारा खुलते हैं। गोलकृमियों की लगभग 12,000 स्पीशीज पाई जाती हैं। 50 से ज्यादा स्पीशीज मनुष्य में संक्रमण करती हुई पाई जाती हैं लेकिन इनमें से केवल एक दर्जन के लगभग स्पीशीज ही महत्त्वपूर्ण मानव परजीवी हैं। (Insect)

ऐस्कैरिस लम्ब्रिकॉइडीस
(*Ascaris lumbricoides*)

ऐस्कैरिस लम्ब्रिकाइडीस मनुष्य की छोटी अंतड़ी में रहने वाला एक परजीवी है जो अवकाशिका में मुक्त पड़ा रहता है। यह मनुष्य में अनंत काल से रहता चला आया
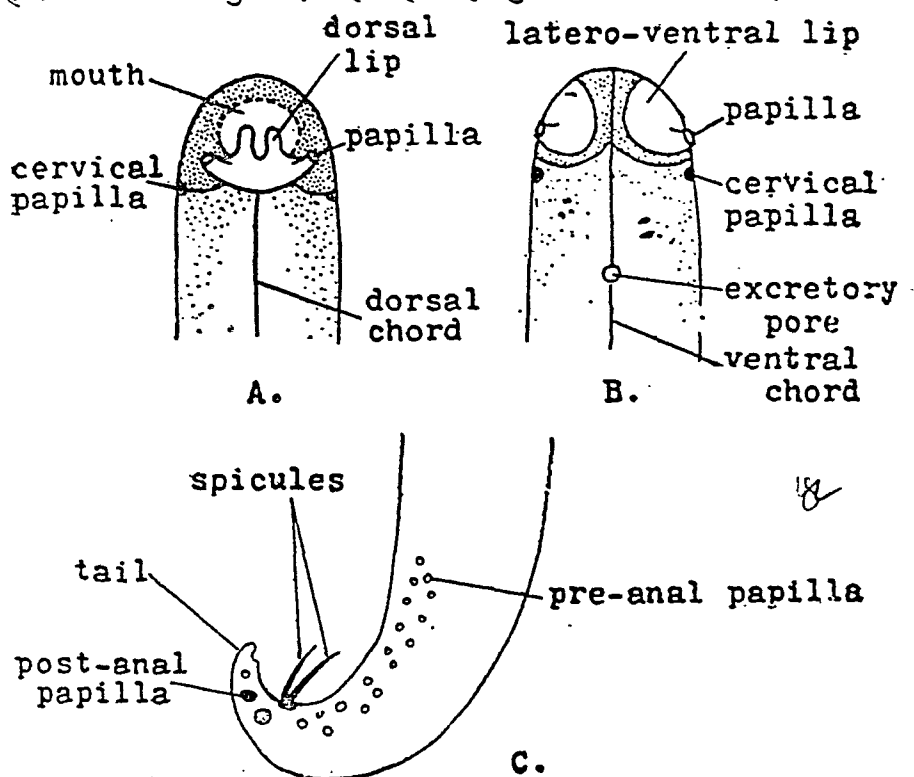
चित्र 191. **ऐस्कैरिस लम्ब्रिकाइडीस** 1A—अग्र सिरा (पृष्ठीय), B—अग्र सिरा (अधर), C—नर का पश्च सिरा।
Mouth, मुख ; dorsal lip, पृष्ठीय होंठ ; cervical papilla, ग्रीवा पैपिला ; papilla, पैपिला ; dorsal chord, पृष्ठीय रज्जु ; latero-ventral lip, पार्श्व-अधर होंठ ; excretory pore, उत्सर्गी छिद्र; ventral chord, अधर रज्जु ; spicules, कंटिकाएँ; tail, पूंछ ; post-anal papilla, गुदापश्चीय पैपिला ; pre-anal papilla, गुदा-पूर्वी पैपिला।

है। वितरण की दृष्टि से यह सारे संसार में पाया जाता है। मनुष्य में और सूअर में पाई जाने वाली किस्में आकारिकीय दृष्टि से समरूप होती हैं लेकिन शरीरक्रियात्मक दृष्टि से भिन्न होती हैं क्योंकि इनमें से एक की संक्रमण अवस्था दूसरे के परपोषी में परिवर्धित नहीं होगी, अतः सूअर में पाई जाने वाली किस्म को **ऐस्कैरिस लम्ब्रीकॉइडीस सूअम** (*Ascaris lumbricoides suum*) कहते हैं। सूअर **ऐस्कैरिस** का भ्रूण मनुष्य में संक्रमण कर सकता है और परिपक्व बन सकता है लेकिन वह शीघ्र ही मर जाता और एक या दो महीने में संक्रमण गायब हो जाता है। **ऐस्कैरिस** बड़े आकार के परजीवी होते हैं, इनका शरीर अपारदर्शी होता है, मादा 8 से 16 इंच लम्बी तथा 4 से 6 mm. मोटी होती है, लेकिन नर छोटे लगभग 6-12 इंच होते हैं। देह सिलिंडराकार होता है और दोनों सिरों की ओर पतला होता जाता है। आम तौर से नीमैटोडों में कोई रंग नहीं होता, बाहरी क्यूटिकल सफेदी या पीलापन लिए होता है लेकिन कुछ में जैसे कि **ऐस्कैरिस** में एक निश्चित लाल झलक मिलती है जो हीमोग्लोबिन की विद्यमानता के कारण होती है। सिलिंडराकार शरीर में चार अनुदैर्घ्य **एपिडर्मिसी रज्जुएँ** होती हैं, जो बाहर से दीख जाती हैं। इनमें से दो पतली रज्जुएँ पृष्ठीय और अधर होती हैं तथा दो मोटी रज्जुएँ पार्श्वीय होती हैं। नीमैटोडों में अग्र स्थित मुख को छह होंठ घेरे रहते है, लेकिन समेकन के कारण ऐस्कैरिस में वे घटकर केवल तीन रह गये हैं, एक पृष्ठीय और दो पार्श्वीय। पृष्ठीय होंठ में दो दोहरे संवेदी पैपिला होते हैं, और प्रत्येक अधर-पार्श्वीय होंठ में एक-एक दोहरा संवेदी पैपिला होता है, ये चारों पैपिला एक साथ मिलकर एक **बाहरी ओष्ठीय वृत्त** (outer labial circle) बनाते हैं हालाँकि अधिकतर नीमैटोडों में इस बाहरी ओष्ठीय वृत्त में
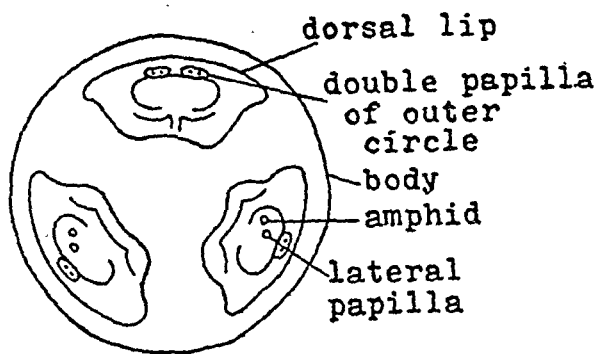
चित्र 192. **ऐस्कैरिस** के होंठ (सामने का दृश्य)।

Dorsal lip, पृष्ठीय होंठ; double papilla of outer circle, बाहरी वृत्त का दोहरा पैपिला; body, शरीर; amphid, ऐम्फ़िड; lateral papilla पार्श्व पैपिला।

6 पैपिला होते हैं। साथ ही नीमैटोडों में 6 पैपिलाओं का एक **भीतरी ओष्ठीय वृत्त** (inner labial circle) होता है, लेकिन **ऐस्कैरिस** में जैसा कि अधिकतर परजीवी नीमैटोडों में होता है भीतरी ओष्ठीय वृत्त के पैपिला अविद्यमान होते हैं।

प्रत्येक अधरपार्श्वीय होंठ में एक-एक **पार्श्वीय पैपिला** होता है और एक-एक क्यूटिकलीय गढ़ा होता है जिसे **ऐम्फ़िड** (amphid) कहते हैं, यह ऐम्फ़िड परजीवी नीमैटोडों में अपविकसित होता है। ऐम्फ़िड सूंघने से संबंधित रसायनग्राही होते हैं। होठों पर महीन दाँत बने होते हैं। होठों के पीछे ग्रीवा-पैपिलाओं का एक जोड़ा होता है, जिनमें से एक-एक हर पार्श्व में तंत्रिका वलय के समीप बना होता है। सभी पैपिला संवेदी होते हैं। पश्च सिरे के समीप एक अनुप्रस्थ **गुदा** होती है जिस पर मोटे-मोटे होंठ बने होते हैं, लेकिन नर में एक **अवस्कर** (cloaca) होता है जिसमें से दो समान लंबाई वाली काइटिनी **कंटिकाएँ** अथवा **शिश्न शूक** (penial setae) होते हैं। नर में अवस्कर के समीप अधर दिशा में क्यूटिकलीय उभार बने होते हैं, जो लगभग 50 जोड़ी गुदापूर्वी पैपिला और 5 जोड़ी गुदापश्चीय पैपिला होते हैं, इनका संबंध मैथुन से होता है। एक छोटी गुदा-पश्चीय पूँछ होती है जो मादा में सीधी लेकिन नर में तीव्र घूमी हुई होती है। मादा जनन-छिद्र जिसे **भग** (vulva) भी कहते हैं अधर दिशा में पाया जाता है जो अग्र सिरे में शरीर की करीब एक-तिहाई दूरी पीछे होता है। होंठों के पीछे मध्य-अधर दिशा में एक उत्सर्गी छिद्र बना होता है।

देह-भित्ति—इसमें सबसे बाहर एक सलवटदार तथा बहुत कड़ा क्यूटिकल होता है, यह अकोशिक होता है और ऐल्बुमिनी प्रोटीन की नौ परतों का बना होता है, यह प्रोटीन परपोषी के पाचन रसों के लिए प्रतिरोधी होता है लेकिन जल और लवणों के लिए पारगम्य होता है। क्यूटिकल काइटिन नहीं होता और यह KOH में घुलनशील होता है, लेकिन वास्तविक काइटिन अंडों के कवचों में होता है। क्यूटिकल के बाहरी भाग में कड़ा **कीरैटिन** (keratin) होता है, उसके नीचे महीन तंतुओं की परतें होती हैं जिसके बाद एक स्पंजी प्रोटीन होता है जिसमें सल्फ़र से भरपूर **मैट्रिसिन** (matricin) होता है, सबसे भीतरी भाग में परस्पर गुथे हुए **कोलैजन** (collagen) तंतुओं से युक्त **घना योजी ऊतक** (dense connective tissue) होता है। क्यूटिकल पूरे जीवन-काल में लगभग चार बार निर्मोचित होता है और ये निर्मोचन केवल वृद्धिकाल के दौरान ही होते हैं। क्यूटिकल के नीचे एक **सिन्सिशियमी एपिडर्मिस** होता है जिसमें अनेक केंद्रक होते हैं लेकिन कोशिका-भित्तियाँ नहीं होतीं, केंद्रक केवल अनुदैर्घ्य एपिडर्मिसी तंतुओं में होते हैं, एपिडर्मिसी कोशिकाओं की संख्या बहुत कम होती है। एपिडर्मिस क्यूटिकल का स्राव करता है और चार अनुदैर्घ्य उत्फूलन, एपिडर्मिसी रज्जुएँ, बनाता है जिनमें से दो मोटी पार्श्व रेखाएँ अथवा रज्जुएँ होती हैं और दो पतली पृष्ठ तथा अधर रेखाएँ होती हैं। पार्श्व रेखाओं में उत्सर्गी नलिकाएँ होती हैं, और पृष्ठ तथा अधर रेखाओं में नलिकाएँ होती हैं। स्वच्छंदजीवी नीमैटोडों के एपिडर्मिस में एककोशिक एपिडर्मिसी ग्रन्थियां होती हैं। एपिडर्मिस से भीतर की ओर एपिडर्मिसी रज्जुओं के बीच में पड़ा हुआ देहभित्ति-पेशीन्यास होता है जिसमें सारे शरीर की लंबाई में चलते जाने वाले अनुदैर्घ्य तंतुओं की केवल एक ही परत होती है। प्रत्येक **पेशी-कोशिका** अथवा तंतु में दो क्षेत्र होते हैं, एक बाहरी अनुदैर्घ्य रेखित स्पिंडलाकार पेशीय भाग वाला तंतुकीय क्षेत्र जो संकुचनी होता है
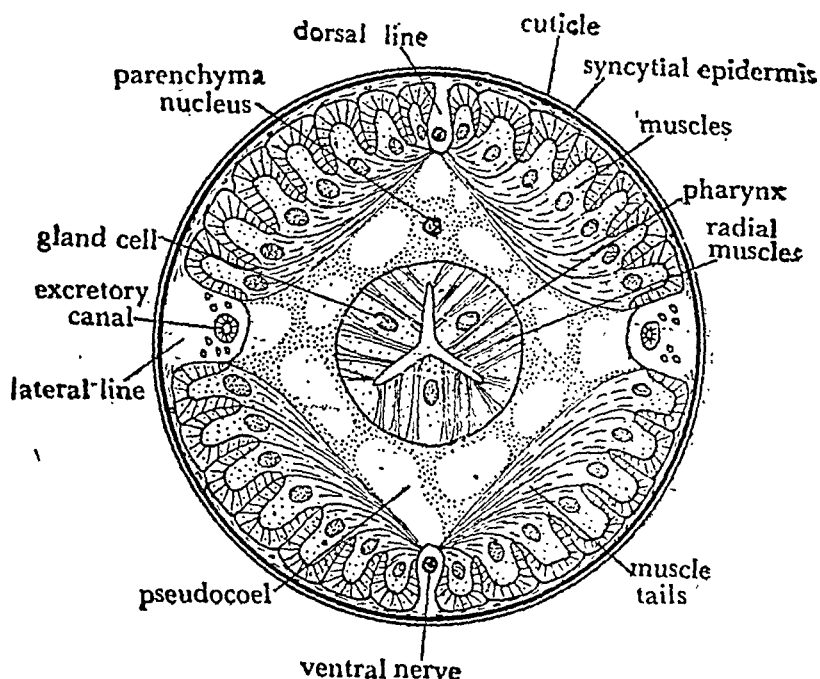
चित्र 193. **ऐस्कैरिस** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) देहभित्ति और ग्रसनी में गुजरता हुआ।

Parenchyma nucleus, पैरेंकाइमा केंद्रक; dorsal line, पृष्ठीय रेखा; cuticle, क्यूटिकल; syncytial epidermis, सिन्सिशियमी एपिडर्मिस; muscles, पेशियाँ; pharynx, ग्रसनी; radial muscles, अरीय पेशियाँ; gland cell, ग्रन्थि कोशिका; excretory canal, उत्सर्गी नलिका; lateral line, पार्श्व रेखा; pseudocoel, कूटगुहा; ventral nerve, अधर तंत्रिका; muscle tails, पेशी-पूँछें।

और एपिडर्मिस की ओर को होता है, दूसरा क्षेत्र **प्रोटोप्लाज्मी क्षेत्र** होता है जो प्रोटोप्लाजम की मुद्गराकार आशय-जैसी संहति होती है और इसमें एक केंद्रक तथा आलम्बी तंतुओं का जालक होता है, ये तंतुक एक तंतुकी प्रवर्ध तथा **पेशी-पूँछ** (muscle tail) बनाते हैं। ऊपरी अर्धांश की पेशी-पूँछें पृष्ठीय रेखा में घुसी रहती हैं और पृष्ठ तंत्रिका से जुड़ी रहती हैं तथा निचले अर्धांशों में पेशी-पूँछें अधर रेखा में घुसी रहती और अधर तांत्रिका से जुड़ी रहती हैं। पेशियाँ चार चतुर्थांश में पड़ी रहती हैं जो अनुदैर्घ्य रज्जुओं द्वारा पृथक् होती हैं। प्रत्येक चतुर्थांश में लगभग 150 पेशी-कोशिकाएँ होती हैं। इन लम्बी पेशियों के संकुचनों से शरीर में ऐंठन और मोड़ पैदा होती हैं। जब प्रत्येक चतुर्थांश में पेशी-कोशिकाएँ बहुत होती हैं तथा देहगुहा में को काफी निकली होती हैं, तब इस दशा को **बहुपेशीय** (polymyarian) दशा कहते हैं जैसे **ऐस्कैरिस** में। जब पेशियाँ चपटी होती हैं और प्रत्येक चतुर्थांश में केवल 2 या 3 होती हैं, तब उस दशा को **अंशपेशीय** (meromyarian) कहते हैं जैसे **ऑक्सीयूरिस**

(*Oxyuris*) में। लेकिन जब पेशियाँ छोटी और पास-पास सटी हुई पड़ी हों ताकि एक सम्पूर्ण पटल बन जाए तब इस प्रकार को **पूर्णपेशीय** (holomyarian) कहते हैं जैसे
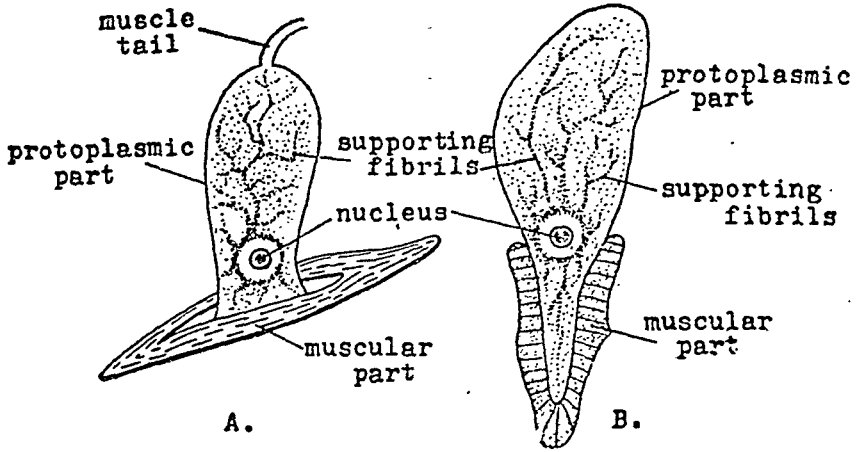
चित्र 194. A—पेशी-कोशिका; B—पेंशी-कोशिका का अनुप्रस्थ सेक्शन। muscle tail, पेशी-पूँछ; protoplasmic part, प्रोटोप्लाज़्मी भाग; supporting fibrils, आलम्बी तंतुक; nucleus, केंद्रक; muscular part, पेशीय भाग ।

ट्राईक्यूरिस (*Trichuris*) में। अनुप्रस्थ सेक्शन में अनुदैर्घ्य पेशियाँ एक परिधीय U-की आकृति का तंतुकी क्षेत्र बनाती हैं जिसमें एक मुद्गरा-रूपी प्रोटोप्लाज्मी क्षेत्र घिरा रहता है और इसी क्षेत्र में से पेशी-पूंछें निकली होती हैं। ग्रसनी मादा की योनि, और नर की कंटिकाओं से संबन्धित विशेष पेशियाँ पाई जाती हैं।

पाचन-तंत्र—एक अंतस्थ मुख होता है जिसे तीन होंठ घेरे रहते हैं, यह एक सिलिंडराकार **ग्रसनी** अथवा ग्रसिका में को खुलता है जिसमें एक पश्चीय फूला हुआ भाग होता है जिसे अन्त्य बल्ब कहते हैं और बल्ब में वाल्व बने होते हैं। ग्रसनी में पेशीय दीवारें होती हैं जिनमें अरीय पेशी तंतु होते हैं जो अवकाशिका को चौड़ा कर देते हैं। ग्रसनी में तीन बड़ी विशाखित ग्रंथि-कोशिकाएँ होती हैं जो क्यूटिकलीय वाहिनियों द्वारा अवकाशिका में खुलती हैं। ग्रसनी की गुहा में तीन गहरी अनुदैर्घ्य खाँचें होती हैं जिनका अस्तर क्यूटिकल का बना होता है और T.S. में अवकाशिका त्रिअरीय दिखाई पड़ती है, योजी ऊतक-तंतु तीनों भीतरी खाँचों में से प्रत्येक में से निकलते और उस क्यूटिकल तक पहुँचते हैं जो ग्रसनी को ढके रहता है, ये अवकाशिका की त्रिअरीय शक्ल बनाए रखते हैं। यह थी अग्रांत्र अथवा मुख-पथ की रचना। एक पतली दीवार की पृष्ठ-अधर दिशा में चपटी बनी हुई **अंतड़ी** अथवा मध्यांत्र होती है जो स्तम्भाकार एपिथीलियम कोशिकाओं की अकेली परत की बनी होती है, इस अंतड़ी के भीतर और बाहर दोनों ओर एक पतला क्यूटिकल बना होता है तथा इसमें कोई आवरक पेशी परत नहीं होती है। एक छोटा संकीर्ण **मलाशय** होता है और उसकी दीवारों में थोड़े से ही पेशी-तंतु होते हैं, इसमें क्यूटिकल का अस्तर बना होता है और

यह पश्चांत्र अथवा गुद-पथ होता है, यह एक अनुप्रस्थ गुदा द्वारा बाहर को खुलता है जिसमें मोटे ओष्ठ बने होते हैं । नर में एक अवस्कर होता है । मलाशय में बड़ी एककोशिक मलाशय ग्रन्थियाँ होती हैं, मादा में तीन और नर में छह ।

पाचन—पाचन ग्रन्थियाँ नहीं होतीं । आहार के रूप में परपोषी का अवपच्चा भोजन होता है जिसमें कुछ बैक्टीरिया होते हैं, यह अपने होंठों से श्लेष्मा झिल्ली को काटता भी है और परपोषी के रक्त एवं ऊतक रसों को चूसता है। चूषणी ग्रसनी द्वारा आहार को चूस लिया जाता है। ग्रसनी की ग्रन्थि-कोशिकाओं में एन्ज़ाइम निकलता है, तथा अंतड़ी आहार को सोख लेती है और अंतःकोशिक पाचन चलाती है । अतिरिक्त आहार को सुरक्षित ग्लाइकोजन और वसाओं के रूप में अंतड़ी, पेशियों और एपिडर्मिस में संचित कर लिया जाता है ।

देह-गुहा—देह-भित्ति और आहार-नाल के बीच की गुहा सीलोम नहीं होती बल्कि एक **कूटगुहा** (pseudocoel) होती है, क्योंकि इसकी सीमाएँ बाहर से पेशियाँ और भीतर से अंतड़ी का क्यूटिकल होते हैं । इसका निर्माण योजी ऊतक कोशिकाओं के अपघटन द्वारा होता है । अल्पायु प्राणी में विभिन्न अंग पैरेंकाइमा में भरे होते हैं, लेकिन वयस्क में यह पैरेंकाइमा लगभग सारा का सारा विलीन हो जाता है जिसके प्रभावस्वरूप अंग अदृढ़ रूप में लटके होते हैं । कूटगुहा में तंतुकी ऊतक और स्थिर कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **सीलोमाणु, सीलोमोसाइट** (coelomocytes) या **कूटगुहाणु** (pseudocoelocytes) कहते हैं, इस प्रकार की चार कोशिकाएँ होती हैं जो पार्श्वीय रज्जुओं के सहारे-सहारे स्थिर स्थितियों में पाई जाती हैं, ये कोशिकाएँ विशाखित और विशाल आकार की होती हैं, जिससे कि वे देह-गुहा को भर देती हैं, इन विशाल कोशिकाओं की परस्पर जुड़ी हुई रिक्तिकाएँ कूटगुहा का प्रदर्श हैं, अतः कूटगुहा अंतःकोशिक गुहा होती है । कूटगुहा में एक स्वच्छ, प्रोटीन से भरा तरल होता है जो पचे हुए भोजन को वितरित करता है तथा अपशिष्ट पदार्थ को इकट्ठा करता है। जनन-अंग कूटगुहा में मुक्त पड़े रहते हैं। स्वच्छंदजीवी उदाहरणों में कूटगुहाणु छोटे आकार के और बहुसंख्यक होते हैं ।

चित्र 195. आहार-नाल । Mouth, मुख; pharynx, ग्रसनी; end bulb, अंतिम बल्ब; intestine, अंतड़ी; rectum, मलाशय; anus, गुदा ।

नीमैटोडा की ऊतक-रचना में कुछ खास विचित्रताएं पाई जाती हैं । इनके देह में कोशिकाओं की संख्या स्थिर होती है जो कि अंडों से फूट कर निकलने के समय पूरी तरह बन चुकी होती है क्योंकि

स्फोटन के बाद कोशिका-विभाजन समाप्त हो जाता है (केवल जनन-अंगों को छोड़कर); अतः वृद्धि के साथ-साथ कोशिकाएँ लंबी होती जातीं और विशालकाय हो जाती हैं, खासतौर से पेशी-कोशिकाएँ, कूटगुहा में पाए जाने वाले सीलोमाणु और उत्सर्गी नलिका कोशिकाएँ; एक कोशिका 1 cm. से भी लंबी हो सकती है। सिन्सिशियमों के बनने की दिशा में प्रवृत्ति पाई जाती है, कदाचित् विखंडन द्वारा अथवा अमाइटोसिस द्वारा केंद्रकों की संख्या बढ़ती जाती है, और कोशिका-भित्तियां टूट जाती हैं।

श्वसन अंग नहीं होते, किंतु परजीवियों में **अनॉक्सीय श्वसन** (anaerobic respiration) होता रहता है और वे ग्लाइकोजन को CO_2 एवं वसा अम्लों में तोड़ कर ऊर्जा प्राप्त करते हैं, ये उत्पाद क्यूटिकल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। उपलब्ध होने पर वे ऑक्सीजन को भी इस्तेमाल कर लेते हैं, क्योंकि परपोषी की खाद्य नली में ऑक्सीजन किसी सुस्पष्ट मात्रा में नहीं पाई जाती। देह-भित्ति में तथा कूटगुहा के तरल में थोड़ी मात्रा में पाया जाने वाला हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन को ले लेता है यहाँ तक कि अगर वह बहुत थोड़े तनाव में हुई तब भी ग्रहण कर लेता है।

उत्सर्गी तंत्र—समुद्रवासी नीमैटोडों में उत्सर्गी तंत्र में एक या दो बड़ी रेनेट ग्रंथि कोशिकाएँ (renette gland cells) होती हैं जो कूटगुहा में अधरतः ग्रसनी और अंतड़ी के जोड़ के समीप पड़ी रहती हैं, इनमें से प्रत्येक रेनेट कोशिका से एक वाहिनी निकलती है, ये वाहिनियां जुड़ जातीं और एक उत्सर्गी छिद्र के द्वारा मध्य-अधर दिशा में खुल जाती हैं। ऐसा काफी प्रमाण मिलता है जिससे इस मत की पुष्टि होती है कि इस ग्रंथि-तंत्र से एक ऐसे नलिकाकार उत्सर्गी तंत्र की उत्पत्ति हुई है जिसकी शक्ल H के समान है और इस H में एक सेतु से जुड़ी हुई दो अनुदैर्घ्य उत्सर्गी नलिकाएँ हैं, और उस सेतु से एक सम्मिलित उत्सर्गी नलिका निकलती है जो उत्सर्गी छिद्र तक पहुँच जाती है। **ऐस्कैरिस** में प्रत्येक पार्श्व रेखा में एक **अनुदैर्घ्य उत्सर्गी** नलिका होती है, H की अग्र शाखाएँ घटी हुई होती हैं और **अनुप्रस्थ नलिका** (transverse canal) विशाखित होकर एक जालक बना लेती है जिसमें से एक **छोटी सम्मिलित उत्सर्गी नलिका** निकलती है जो होठों के तुरंत पीछे स्थित एक सूक्ष्म अधर उत्सर्गी छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। नलिकाएँ दाहिनी ओर की अपेक्षा बाईं ओर अधिक विकसित होती हैं। नलिकाओं में एक दृढ़ झिल्ली का अस्तर बना होता है और बाहर से साइटोप्लाज़्म की एक परत चढ़ी होती है; ये नलिकाएँ एक ही विशाल कोशिका के भीतर बने अंतःकोशिक सूराख होते हैं और कोशिका का केन्द्रक अनुप्रस्थ नलिका पर स्थित होता है। उत्सर्गी तंत्र में कोई भीतरी छिद्र सिलिया, अथवा लौ-कोशिकाएँ नहीं होतीं।

तंत्रिका-तंत्र—ग्रसनी को घेरता हुआ एक **परिग्रसनी वलय** (circum-pharyngeal ring) होता है, यह तंत्रिका तंतुओं और कुछ विसरित रूप में व्यवस्थित तंत्रिका कोशिकाओं का बना होता है। इस वलय से संबंधित अनेक गैंग्लिया होते हैं, एक **अयुग्मित पृष्ठीय गैंग्लिया** होता और उसके समीप एक जोड़ी **उपपृष्ठीय गैंग्लिया** (subdorsal ganglia) होते हैं। वलय के दोनों पार्श्वों पर एक-एक **पार्श्व गैंग्लियान**

(lateral ganglion) होता है जो छह गैंग्लिया में विभाजित होता है। वलय की निचली दिशा में बड़े आकार के एक जोड़ी **अधर गैंग्लिया** होते हैं। प्रत्येक गैंग्लियान
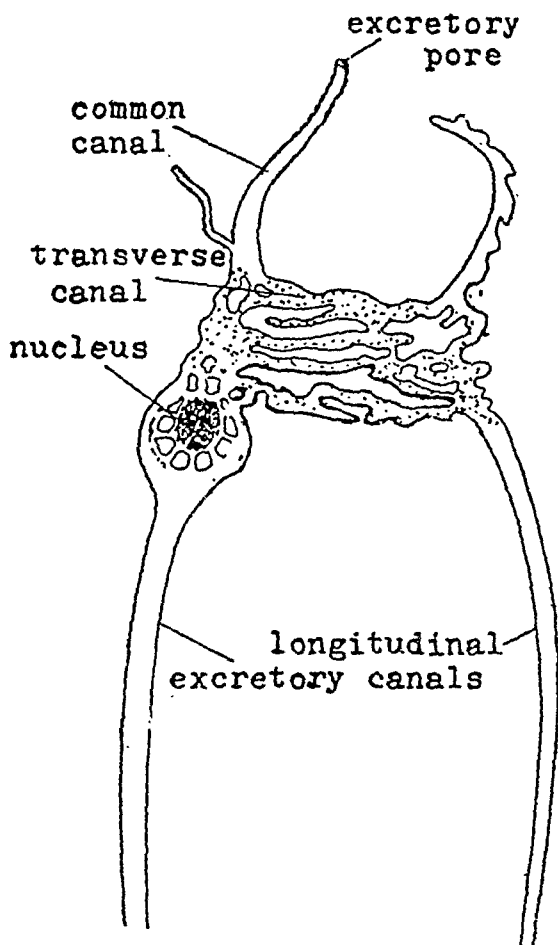
चित्र 196. उत्सर्गी तंत्र।
Excretory pore, उत्सर्गी छिद्र; common canal, सम्मिलित नलिका; transverse canal, अनुप्रस्थ नलिका; nucleus, केन्द्रक; longitudinal excretory canals, अनुदैर्घ्य उत्सर्गी नलिकाएँ।

में तंत्रिका कोशिकाओं की स्थिर संख्या पाई जाती है। परिग्रसनी वलय से अग्र दिशा में छह छोटी तंत्रिकाएँ निकलती हैं, प्रत्येक तंत्रिका का एक गैंग्लियान होता है, ये तंत्रिकाएँ अरीय रूप में व्यस्थित रहती हैं और अग्र सिरे के संवेदी अंगों (पैपिलाओं और ऐम्फ़िडों को जाती हैं। पश्चतः वलय में से छह लंबी तंत्रिकाएँ निकलती हैं और पश्च सिरे की ओर तक पहुँच जाती हैं, इन छह में से एक **मध्य पृष्ठ तंत्रिका** होती है और एक **मध्य-अधर तंत्रिका** जो क्रमशः पृष्ठ रेखा तथा अधर रेखा में पड़ी रहती हैं। मध्य-अधर तंत्रिका प्रधान तंत्रिका है और इसकी पूरी लंबाई में गैंग्लिया बने रहते हैं. इसे **तंत्रिका रज्जु** (nerve cord) कहा जा सकता है। गुदा के समीप इसमें

एक गुदा गैंग्लियान होता है जिससे पूँछ में जाने वाली तंत्रिकाएँ निकलती हैं। शेष पश्चीय तंत्रिकाएँ पतली होती हैं, ये हैं एक जोड़ी **पृष्ठ-पार्श्व तंत्रिकाएँ** (dorso-

चित्र 197. तंत्रिका तंत्र। 1. पृष्ठ-गैंग्लियान; 2. उपपृष्ठ गैंग्लियान; 3. पार्श्व गैंग्लियान; 4. अधर गैंग्लियान। Circumpharyngeal ring, परिग्रसनी वलय; papillary nerves, पैपिली तंत्रिकाएँ; cervical papilla, ग्रीवा पैपिला; lateral nerves, पार्श्व तंत्रिकाएँ; transverse commissure, अनुप्रस्थ समयोजी; ventrolateral commissure, अधरपार्श्व समयोजी; dorsal nerve, पृष्ठ-तंत्रिका; ventral nerve, अधर तंत्रिका; dorsolateral nerve, पृष्ठ-पार्श्व तंत्रिका; ventro-lateral nerve, अधर-पार्श्व तंत्रिका; gagnlion, गैंग्लियान।
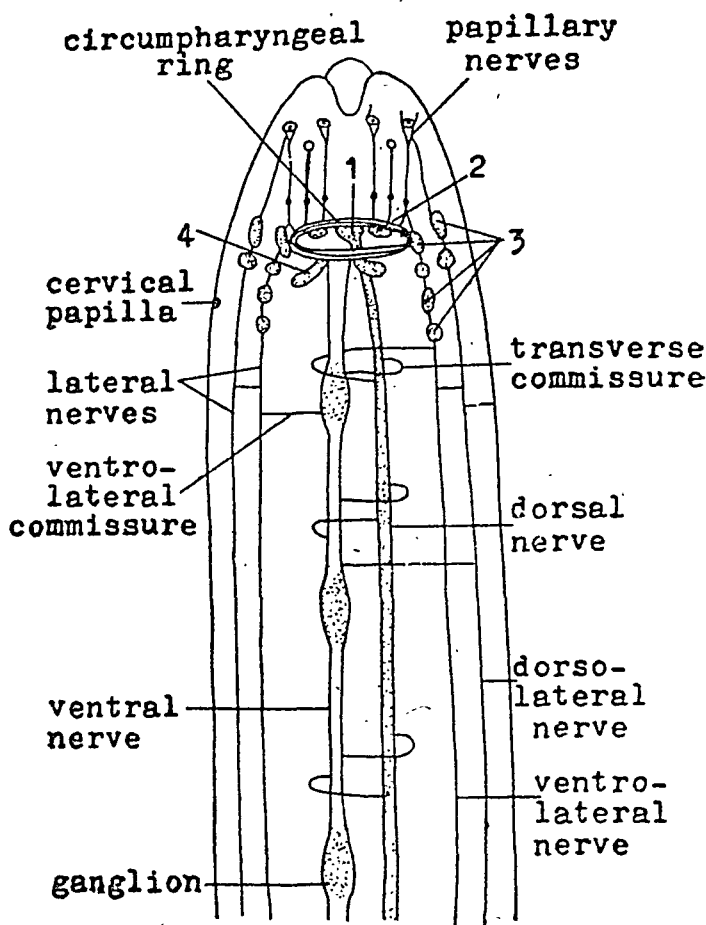
lateral nerves) और एक जोड़ी **अधर-पार्श्व तंत्रिकाएँ** (ventrolateral nerves), ये उत्सर्गी नलिका के समीप पड़ी होती हैं। पृष्ठ और अधर तंत्रिकाएँ अनेक **अनुप्रस्थ समयोजियों** द्वारा जुड़ी होती हैं, तथा अधर तंत्रिका एवं पार्श्व तंत्रिकाएँ अनेक **अधर-पार्श्व समयोजियों** द्वारा जुड़ी होती हैं। पश्चतः तंत्रिका व्यवस्था मादाओं की अपेक्षा नरों में अधिक जटिल होती है।

संवेदी अंग—1. चार **ओष्ठीय पैपिला** (labial papillae) होते हैं, दो पृष्ठीय होंठ पर और एक-एक अधर-पार्श्वीय होंठ पर, प्रत्येक पैपिला एक दोहरा संवेदी अंग होता है। ओष्ठीय पैपिला क्यूटिकलीय होते हैं और उनमें एक-एक तंत्रिका पहुँची होती है।
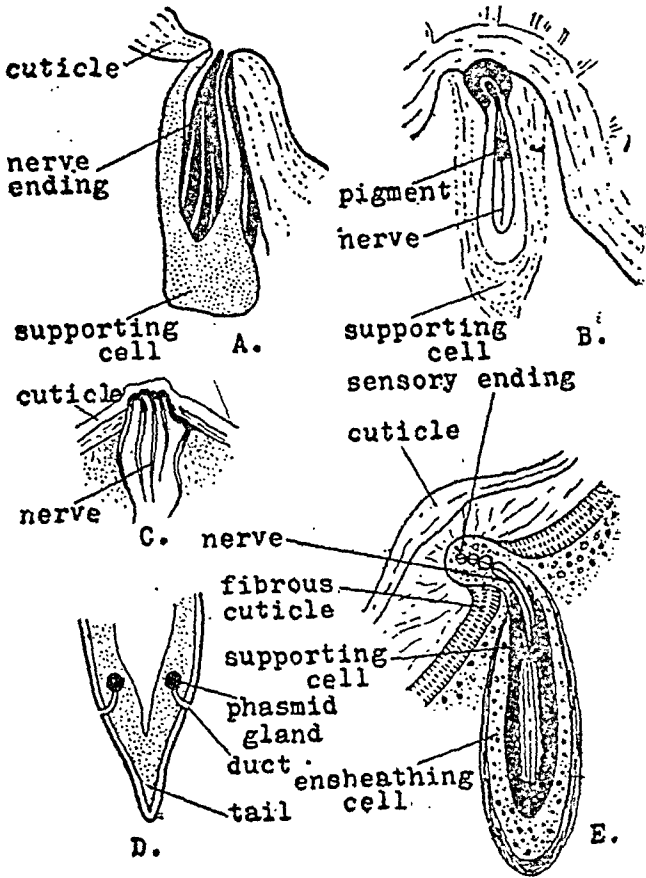
चित्र 198. संवेदग्राही : A—ऐम्फ़िड; B—ओष्ठीय पैपिला; C—जनन पैपिला; D—फ़ैज़्मिड; E—ग्रीवा पैपिला।

Cuticle, क्यूटिकल; nerve ring, तंत्रिका वलय; supporting cell, आलंबी कोशिका; pigment, वर्णक; nerve, तंत्रिका; sensory ending, संवेदी अंत; fibrous cuticle, तंतुकी क्यूटिकल; phasmid gland, फ़ैज़्मिड ग्रंथि; duct, वाहिनी; tail, पूँछ; ensheathing cell, आवरक कोशिका।

2. नर के पुच्छीय सिरे पर 50 जोड़ी गुदापूर्वी और 5 जोड़ी गुदापश्चीय जनन-पैपिला (genital papillae) होते हैं, ये मस्से-जैसे और एक छिद्र से युक्त होते हैं, इनमें पार्श्व तंत्रिकाओं की शाखाएँ पहुँची होती हैं और वे स्पर्शी अंग होते हैं।

3. प्रत्येक अधर-पार्श्वीय होंठ पर एक **पार्श्व-पैपिला** (lateral papilla) होता है जो संवेदी होता है।

4. अग्र सिरे पर हर पार्श्व में तंत्रिका वलय के समीप एक **ग्रीवा पैपिला** (cervical papilla) होता है जो फ्लास्क की आकृति का होता है और मोटे हो गए हुए क्यूटिकल के नीचे स्थित रहता है, यह क्यूटिकलीय होता है और इसमें पार्श्व तंत्रिका से निकल कर आने वाली एक शाखा पहुँचती है।

5. प्रत्येक अधर-पार्श्व पैपिला के समीप एक **ऐम्फ़िड** होता है, ये ऐम्फ़िड परजीवियों में छोटे आकार के क्यूटिकलीय गढ़े होते हैं, प्रत्येक एम्फ़िड में पार्श्व गैंग्लियान से आने वाली एक ऐम्फ़िडीय तंत्रिका आती है, ये सूँघने से संबंधित रसायन संवेदी होते हैं।

6. गुदा के पीछे पूँछ के हर पार्श्व पर एक एककोशक ग्रंथि होती है जिसे **फ़ैज्मिड** (phasmid) कहते हैं, यह फैज्मिड एक नलिका द्वारा बाहर को खुलती है और ग्रंथि-संवेदी होती है; परजीवी नीमैटोडों में फैज्मिड सबसे ज्यादा विकसित होते हैं।

जनन तंत्र—नर-मादा अलग-अलग होते हैं और उन्हें बाहर से पहचाना जा सकता है। नर छोटे आकार का होता है और उसकी पूंछ घुमावदार होती है।
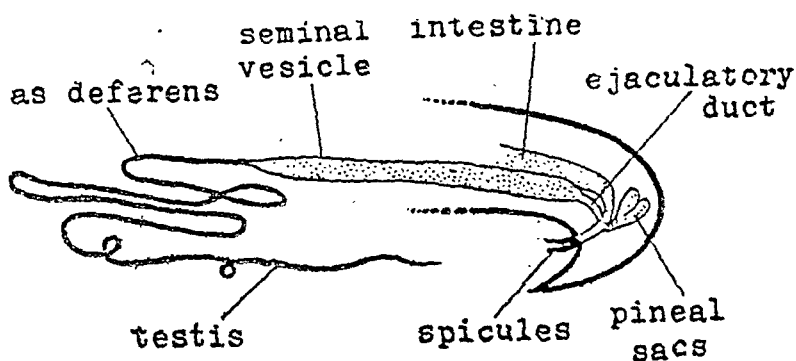
चित्र 199. नर ऐस्कैरिस के जनन-अंग।

Vas deferens, शुक्रवाहिका; seminal vesicle, शुक्राशय; intestine, अंतड़ी; ejaculatory duct, स्खलनीय वाहिनी; pineal sacs, शिश्न थैले; spicules, कंटिकाएँ; testis, वृषण।

गोनड नलिकाकार होते हैं और अपनी वाहिनियों में जारी रहते हैं, वे किसी भी वस्तु द्वारा आलंबित नहीं होते बल्कि कूटगुहा में स्वच्छंद पड़े रहते हैं। नर तंत्र में ह्रास होकर बस एक नलिका रह गई है लेकिन मादा में दोहरी व्यवस्था रहती है। नर अंग देह के पिछले आधे में होते हैं, एक अकेला लंबा धागा-जैसा कुण्डलित **वृषण** होता है, यह उसी मोटाई वाली एक शुक्रवाहिका में जारी रहता है। शुक्रवाहिका एक चौड़े

शुक्राशय में जुड़ जाती है, इस शुक्राशय की दीवारें कुछ-कुछ पेशीय होती हैं, यह देह के पिछले तिहाई भाग में पड़ा होता है। शुक्राशय एक छोटी, संकीर्ण किन्तु पेशिल **स्खलनीय वाहिनी** में खुलता है, जो फिर अवस्कर में खुल जाती है। अवस्कर बाहर की ओर को एक अवस्कर द्वार द्वारा खुलता है। अवस्कर के पृष्ठ में एक जोड़ी पेशीय कोश—**कंटिका कोष्ठ** (spicule pouches)—होते हैं, ये दोनों समेकित हो जाते हैं और अवस्कर से मिल जाते हैं। इन कोष्ठों में एक जोड़ी **कंटिकाएँ** अथवा **शिश्न शूक** (penial setae) पाए जाते हैं जो एक साइटोप्लाज्मी अंतः भाग से युक्त क्यूटिकलीय रचनाएँ होती हैं, इनका कार्य मैथुन के दौरान मादा जनन-छिद्र को खोलना होता है, और इस प्रकार वे शुक्राणुओं के स्थानांतरण में सहायता करते हैं, इनके कार्य में एक काइटिनी प्लेट **गुबर्नेकुलम** (gubernaculum) सहायता करता है जो अवस्कर की दीवार में बना होता है।

मादा-अंग दोहरे अथवा **द्विगर्भाशयी** (didelphic) होते हैं और वे शरीर के पिछले दो-तिहाई भाग में पड़े होते हैं। दो लम्बे धागे-जैसे कुण्डलित **अंडाशय** तनिक सी चौड़ी अंडवाहिनियों में जारी रहते हैं, ये अंडवाहिनियाँ दो चौड़े और
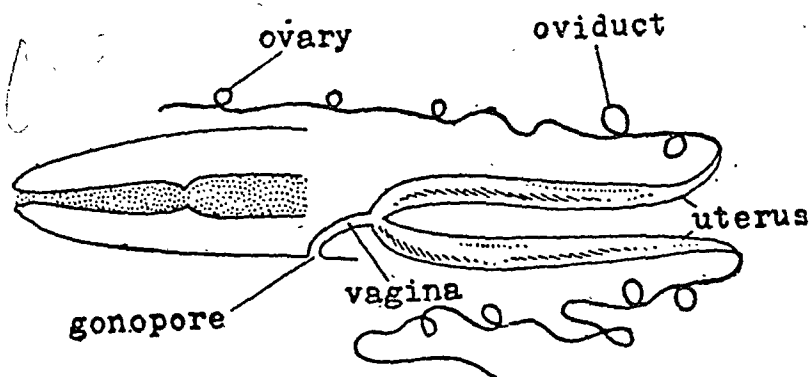
चित्र 200. मादा **ऐस्कैरिस** के जनन अंग।

Ovary, अंडाशय ; oviduct, अंडवाहिनी ; uterus, गर्भाशय; vagina, योनि ; gonopore, जनन-छिद्र।

पेशीय गर्भाशयों में खुलती हैं। गर्भाशय में एक मोटी भीतरी परत वृत्ताकार पेशियों की एक पतली बाहरी परत तिरछी पेशियों की होती है। गर्भाशय का प्रथम भाग **शुक्रग्राही** की तरह कार्य करता है जहाँ शुक्राणु संचित किए जाते हैं और निषेचन होता है, शेष गर्भाशय में निषेचित अंडे संचित किए रहते हैं तथा उनकी कोशिका से पीतक एवं अंड-कवचों के निर्माण के लिए पदार्थ उत्पन्न होते हैं। दोनों गर्भाशय समेकित होकर एक छोटी पेशीय मध्य **योनि** में मिलते हैं जिसका अस्तर क्यूटिकल का बना होता है। योनि एक अनुप्रस्थ **जनन-छिद्र** अथवा भग द्वारा बाहर को खुलती है, यह छिद्र अग्र सिरे से लगभग एक-तिहाई लम्बाई पीछे अधर सतह पर बना होता

है । कुछ नीमैटोडों में गर्भाशय का अंतिम भाग अथवा योनि का अग्र भाग, यदि वह मौजूद हुई, पेशीय **अण्डनिष्कासक** (ovejectors) बनाता है जो क्रमाकुंचनी गतियों के साथ अंडों को एक-एक करके जनन-छिद्र से बाहर निकालता जाता है ।

गोनड या तो **पूर्णगोनिक** (hologonic) होते हैं या **अन्त्यगोनिक** (telogonic) । पूर्णगोनिक गोनडों में जनन-कोशिकाएँ उनकी सम्पूर्ण लंबाई में पैदा होती हैं । **ऐस्कैरिस** में गोनड अंत्यगोनिक होते हैं जिनमें जनन-कोशिकाएँ केवल समीपस्थ सिरे से बनती हैं जिसे जननिक-क्षेत्र कहते हैं । गोनड का इससे अगला भाग एक वृद्धि-क्षेत्र होता है जहाँ युग्मकजन आकार में बढ़ते जाते हैं। अंडाशय में लंबे हो गए बढ़ते जाते हुए अंडे एक केंद्रीय साइटोप्लाज्मी **रेकिस** (rachis) के चारों ओर अरीय रूप में व्यवस्थित हो जाते हैं । वृषण में बढ़ते जाते हुए अमीबीय शुक्राणु केंद्रीय रेकिस के चारों ओर भरे होते हैं । गोनडों के अन्तिम भाग में युग्मक-कोशिकाएँ बनती हैं और रेकिस से युक्त हो जाती हैं, यहाँ पर उनमें परिपक्वन विभाजन हो कर अंडे तथा शुक्राणु बन जाते हैं ।
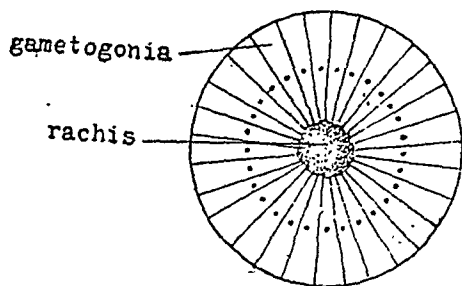
चित्र 201. अंडाशय का अनुप्रस्थ सेक्शन (वृद्धि क्षेत्र) । Gametogonia, युग्मकजन ; rachis, रेकिस ।

परिवर्धन और जीवन-वृत्त—सम्पूर्ण अमीबीय शुक्राणु अंडे में प्रविष्ट हो जाता है, निषेचन गर्भाशय के शुक्रग्राही भाग में सम्पन्न होता है । निषेचित अंडों में से लाइपॉइड पदार्थ का बना एक मोटा स्वच्छ **भीतरी कवच** बनता है । अंडों के चलकर नीचे आते जाने के साथ-साथ गर्भाशय की दीवारों से ऐल्बुमिनी प्रोटीन पदार्थ का एक **बाहरी कवच** स्रावित होता है जो कड़ा होकर अभिलाक्षणिक पीलापन लिए हुए मस्सायी **कवच** बन जाता है, अंड-कवच काइटिन का बना होता है ।

निषेचित अंडों को मादा **ऐस्कैरिस** अपने परपोषी की छोटे अंतड़ी में छोड़ती जाती है और वहाँ ये विष्ठा के साथ-साथ बाहर निकल जाते हैं, परपोषी से बाहर आते समय वे अविभाजित होते हैं । एक
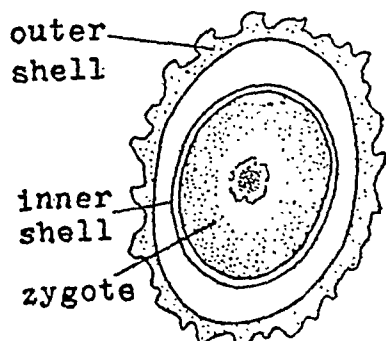
चित्र 202. **ऐस्कैरिस** का अंडा । outer shell, बाहरी कवच; inner shell, भीतरी कवच; zygote, युग्मनज ।

मादा एक दिन में 15,000 से 200,000 तक अंडे दे सकती है। **ऐस्कैरिस** का अंडा निर्माण अतिविशाल होता है, एक परिपक्व मादा 270 लाख तक की संख्या में अंडे दे
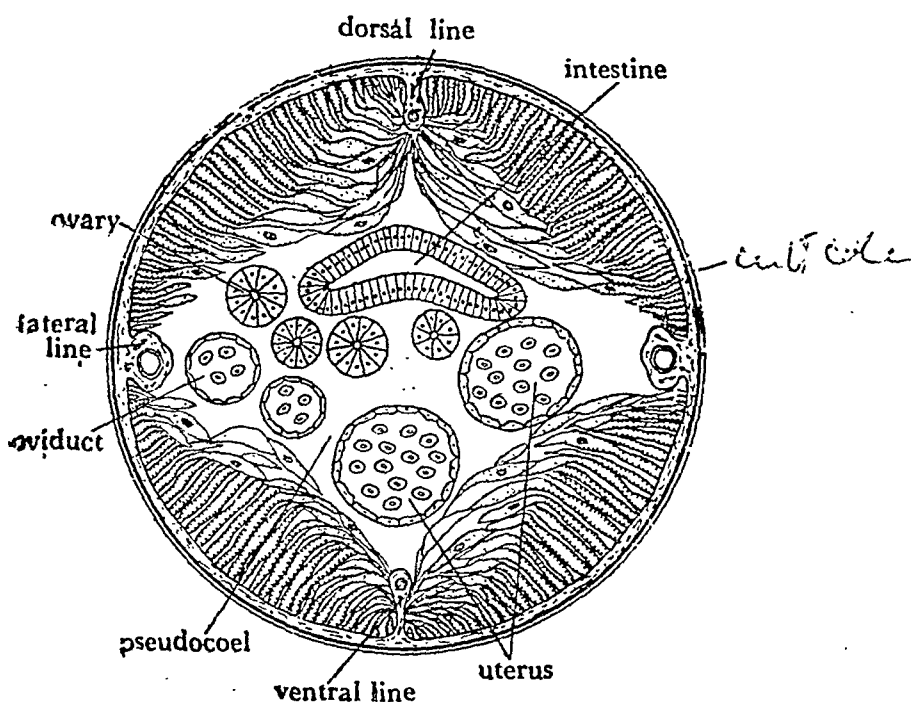
चित्र 203. मादा **ऐस्कैरिस** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Dorsal line, पृष्ठ रेखा; intestine, अंतड़ी; ovary, अंडाशय; lateral line, पार्श्व रेखा; oviduct, अंडवाहिनी; pseudocoel, कूटगुहा; ventral line, अधर रेखा; uterus, गर्भाशय।

सकती है। अंडे अंतड़ियों के भीतर पीलापन या भूरापन का रंग प्राप्त कर लेते हैं। अंडे जमीन पर गिर जाते हैं और नम मिट्टी में कई-कई महीनों तक ज़िन्दा रह सकते हैं हालाँकि पूरी तरह सूखे वातावरण में वे मर जाते हैं। परिवर्धित होने के लिए उन्हें ऑक्सीजन, नमी और मनुष्य के शरीर से कुछ कम ताप चाहिए, सबसे उपयुक्त ताप 85°F होता है। उन्हें मानव-शरीर के बाहर एक उद्भवन काल (incubation period) चाहिये। खंडीभवन मिट्टी में शुरू होता है और लार्वा अथवा **बाल्यावस्थाएँ** कवच के भीतर 10 से 14 दिन में बन जाती हैं, उसके बाद अगले सप्ताह में कवच के भीतर ही भीतर बाल्यावस्थाएँ दो बार निर्मोचन करती हैं। दो बार निर्मोचन कर चुकने के बाद ही वे संक्रमणशील बनती हैं, उसके बाद उन्हें द्वितीय-अवस्था बच्चे कहते हैं। इस संक्रामक अवस्था में वे संयोगवश मिट्टी, जल या सब्जियों के साथ-साथ मनुष्य द्वारा निगल लिये जाते हैं। जहाँ मिट्टी द्वारा दूषण होता हो और जहाँ गर्माई तथा नमी हो वहाँ संक्रमण आम पाया जाता है। बच्चा अवस्थाएँ छोटी अंतड़ियों में पहुँच जाती हैं जहाँ वे कवचों में से बाहर निकल

आती हैं और 0.2—0.3 mm. लम्बी होती हैं, स्फोटन के बाद इन बच्चा अवस्थाओं में वयस्कों की सभी संरचनाएँ मौजूद होती हैं, बस जनन-अंग नहीं होते। वे अंतड़ियों में परिवर्धित नहीं होते बल्कि 10 दिन की एक विशिष्ट प्रवास यात्रा करते हैं।
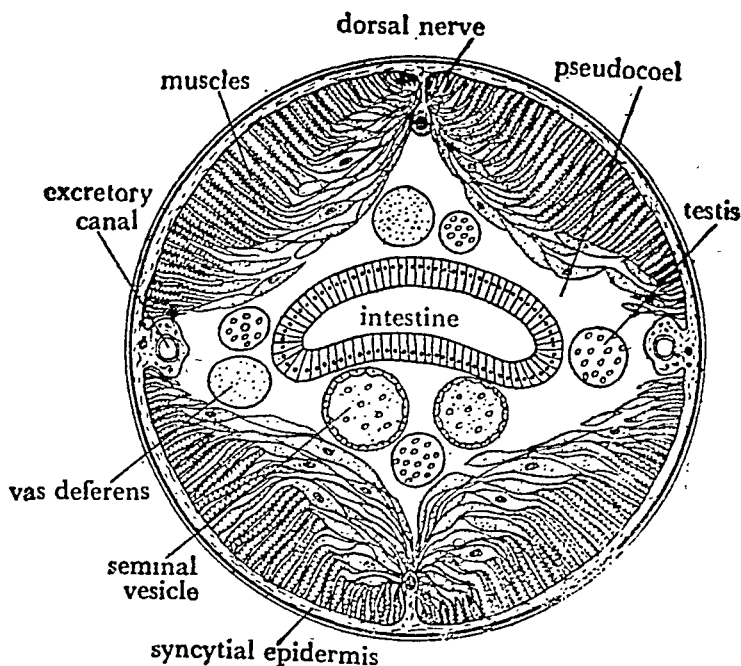
चित्र 204. नर ऐस्कैरिस का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Dorsal nerve, पृष्ठ तंत्रिका; pseudocoel, कूटगुहा; testis, वृषण; muscles, पेशियाँ; excretory canal, उत्सर्गी नलिका; vas deferens, शुक्र-वाहिका; seminal vesicle, शुक्राशय; syncytial epidermis, सिन्सिशियमी एपिडर्मिस।

वे अंतड़ियों की दीवार में वेधन करते हैं और आंत्रयोजनीय रक्त-परिसंचरण में पहुँच जाते हैं जहाँ से वे यकृत निवाहिका शिरा से होकर जिगर में पहुँच जाते हैं, वहाँ से वे यकृत शिरा में जाते हैं और फिर पश्च महाशिरा (postcaval vein) के द्वारा हृदय के दाहिने पार्श्व में पहुँच जाते हैं। हृदय में से वे रुधिर धारा के साथ-साथ अनेक बार शरीर का दौरा कर आते हैं, और तब वे फुपफुस धमनियों के द्वारा फेफड़ों में जाते हैं। फेफड़ों में ये बच्चा-अवस्थाएँ कोशिका को फोड़ देती और कोष्ठकों (वायुकोशों) में पहुँच जाती हैं जहाँ वे कुछ दिन तक रहती हैं, यहाँ उनमें वृद्धि होती और एक तीसरी बार निर्मोचन होता है। फेफड़ों के कोष्ठकों से फिर ये बच्चे श्वसनिकाओं (bronchioles) तथा श्वसनियों (bronchi) में होते हुए श्वासनली में पहुँच जाते हैं और फिर वहाँ से गले में, गले में पहुँचने पर वे निगल लिए जाते और इस तरह

ग्रसनी में प्रविष्ट होकर एक बार पुनः अंतड़ियों में पहुँच जाते हैं। इस दस दिन की यात्रा के दौरान बच्चा-अवस्थाओं में दस गुनी आकार-वृद्धि हो जाती है और वे अब 2 से 3 mm. लंबी होती हैं। अंतड़ी में चौथा और अन्तिम निर्मोचन होता है, और अगले 60 या 75 दिनों में वे बढ़कर वयस्क नर और मादाएँ बन जाती हैं। परपोषी में परजीवी के रहने का काल औसतन केवल 9 महीने से लेकर एक वर्ष तक का होता है।

जीवन-चक्र इस प्रकार चलता है : वयस्क→निषेचित अंडे बाहर निकल जाते हैं→अंड-कवच के भीतर लार्वा बनते हैं और इनमें दो बार निर्मोचन होता है→ मनुष्य द्वारा निगल लिये जाते हैं→अंतड़ियों में जहाँ बच्चा-अवस्थाओं का स्फोटन होता है→अंतड़ियों में से वेधते हैं→आंत्रयोजनी शिराएँ→यकृत निवाहिका शिरा→ जिगर→यकृत शिरा→पश्च महाशिरा→हृदय की दाहिनी दिशा←फुफ्फुस धमनी→ फेफड़े→कोष्ठक जहाँ तीसरा निर्मोचन होता है→श्वसनिकाएँ→श्वसनियाँ←श्वास-नली→घाँटी→ग्रसनी←अंतडी जहाँ चौथा निर्मोचन होता है→वृद्धि होकर वयस्क बन जाते हैं।

परजीवी प्रभाव (Parasitic effects)—अकेले एक परपोषी में बहुत ज्यादा संख्या में यहाँ तक कि 500 से 5000 वयस्क **ऐस्कैरिस** पाये जा सकते हैं। इसके कारण उदर में बेचैनी और कोलनी पीड़ा की शिकायतें पैदा हो जाती हैं। जिसके साथ-साथ पेचिश, उल्टी होना और मामूली ज्वर भी हो जाया करता है। वे अंतड़ियों तथा ऐपेंडिक्स तक में पूरी तरह से भरकर उन्हें अवरुद्ध तक कर डालते हैं। चूँकि उनमें आहार-नली में घूमते रहने का स्वभाव पाया जाता है इसलिए वे पित्त वाहि-नियों अथवा अग्न्याशय वाहिनियों में भी घुस जाते और पाचन में गड़बड़ी पैदा करते हैं या हो सकता है कि वे अंतड़ियों में आघात पहुँचा कर पेरिटोनियम-शोथ (peritonitis) पैदा कर दें। कभी-कभी ये नाक तक में पहुँच जाते हैं। इनके कुछ ऐसे टॉक्सिन निकलते हैं जो आहार नली की श्लेष्मा झिल्ली में क्षोभ पैदा करते हैं या ट्रिप्सिन को नष्ट करके परपोषी द्वारा प्रोटीनों के पाचन को रोक देते हैं, या वे सामान्य घबराहट, सन्निपात अथवा दौरे पैदा करते हैं। बच्चों में जिनमें संक्रमण अधिक सामान्यतः पाया जाता है वे उनकी बौद्धिक क्षमता को मंद कर देते तथा बढ़वार को मार देते हैं। इस परजीवी की बच्चा-अवस्थाएँ फेफड़ों में शोथ और रक्त-स्राव पैदा कर देती हैं जिसके कारण उन्हें न्यूमोनिया हो जाया करता है जो घातक भी सिद्ध हो सकता हैं।

उपचार—बथुए के तेल (oil of chenopodium) तथा टेट्राक्लोरोएथिलीन (tetrachloroethylene) का मिश्रण उपयोगी होता है, लेकिन उपचार ने 12 घंटे पहले से भूखे रहकर एक जिलेटिनी कैप्सूल में एक ग्राम हैक्सिलरेसॉसिनाल (hexylrecorcinol) लेकर और अगले चार घंटे तक कुछ न खाकर कोई दस्तावर दवा ले लेने से **ऐस्कैरिस** का 95% तक संक्रमण समाप्त हो जाता है।

फ़ाइलम ऐस्कहेल्मिथीज़ का वर्गीकरण

ऐस्कहेल्मिथीज़ द्विपार्श्वतः सममित कृमि-जैसे जंतु हैं जिनमें कोई खंडीभवन नहीं पाया जाता लेकिन देह पर एक क्यूटिकल चढ़ा होता है, कोई परिअंतरांग सीलोम नहीं होती लेकिन एक कूटगुहा पाई जाती है। आहार नाल में कोई निश्चित पेशीय दीवार नहीं होती बल्कि एक मुख और गुदा होते हैं तथा एक सुविकसित पेशीय ग्रसनी होती है। श्वसन और परिसंचरण तंत्र नहीं होते। लिंग सामान्यतः अलग-अलग होते हैं। ये अधिकतर जलीय होते हैं हालाँकि कुछ स्थलीय और कुछ परजीवी भी होते हैं। फ़ाइलम ऐस्कहेल्मिथीज़ में ये क्लास शामिल हैं: **रोटिफ़ेरा** (Rotifera), **ग्रैस्ट्रोट्राइकिया** (Gastrotrichia), **काइनोरिंका** (Kinorhyncha), **प्राएपुलाइडा** (Priapulida), **नीमैटोमॉर्फ़ा** (Nematomorpha) तथा **नीमैटोडा** (Nematoda)।

क्लास नीमैटोडा

नीमैटोडा गोल-कृमि होते हैं जो प्रत्येक कल्पनाशील पारिस्थितिक संवास (niche) में पाए जाते हैं, ये जलीय, स्थलीय अथवा सड़ते हुए जैव पदार्थ, पौधों या जंतुओं में परजीवी होते हैं। ये मिट्टी में 8 मीटर की गहराई तक पाए जाते हैं, कृषि मिट्टी में ये बहुत ज्यादा संख्या में पाए जाते हैं। नीमैटोडों में अनुकूलन की बहुत क्षमता पाई जाती है और वही एक स्पीशीज़ उत्तर-ध्रुव क्षेत्र में भी और उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्र में भी पाई जा सकती है। देह सिलिंडराकार होता है और उसके ऊपर प्रोटीन का बना एक लचीला क्यूटिकल होता है। सिलिया पूर्णतः अविद्यमान होते हैं। एपिडर्मिस पतला होता है लेकिन यह चार अनुदैर्घ्य रज्जुओं में विभाजित होता है। एपिडर्मिस के नीचे पेशी-तंतुओं की एक अकेली परत होती है, ये तंतु अनुदैर्घ्य होते हैं और रज्जुओं के द्वारा चार चतुर्थांशों में विभक्त होते हैं। आहार नाल सीधी और एक्टोडर्मी अग्रांत्र एवं पश्चांत्र से युक्त होती है, तथा एक एंडोडर्मी मध्यांत्र होती है जिसमें कोई पेशी या ग्रंथि नहीं होती। देह-भित्ति और आहार नाल के बीच की गुहा एक कूटगुहा होती है जिसमें अत्यधिक रिक्तिकायित कोशिकाएँ होती हैं, ये रिक्तिकाएँ परस्पर जुड़ कर परिअंतरांग **कूटगुहा** बनाती हैं। लिंग आम तौर से अलग-अलग होते हैं। गोनड नलिकाकार होते और अपनी वाहिनियों में जारी रहते हैं। मादा अंग प्रायः युग्मित होते हैं और एक **भग** द्वारा बाहर को खुलते हैं, किंतु नर अंग एकल होते तथा एक **अवस्कर** में को खुलते हैं। विदलन बहुत ज्यादा निर्धारी होता है। 50 से अधिक स्पीशीज़ मनुष्य में परजीवी रूप में पाई जाती हैं।

उपक्लास 1. **फैज़्मिडा** (Phasmida)—इनमें संवेदी अंग फ़ैज़्मिडों के रूप में पाए जाते हैं, उत्सर्गी अंग सुविकसित होते हैं, नरों में प्रायः दो कंटिकाएँ होती हैं, ग्रसनी पेशीय होती है जिनमें एक त्रिअरीय अवकाशिका होती है।

आर्डर (*a*) **मर्मिथॉइडिया** (Mermithoidea)—ये बाल्यावस्थाओं में मुख्यतः कीटों में परजीवी होते हैं, लेकिन वयस्क प्रायः जल या मिट्टी में स्वच्छंदजीवी होते

हैं। शीर्ष के संवेदी अंग घट कर केवल पैपिलाओं के रूप में रह गए हैं, लंबी ग्रसनी तथा अंतड़ी अंत में बंद होती हैं तथा वे खाद्य-संचय अंगों के रूप में कार्य करती हैं, जैसे **मर्मिस** (*Mermis*)।

आर्डर (*b*) **रैब्डिटॉइडिया** (Rhabditoidea)—ये स्वच्छंदजीवी तथा परजीवी दोनों प्रकार के अंशपेशीय नीमैटोड होते हैं जिनके शीर्ष संवेदी अंग पैपिलाओं के रूप में होते हैं, और ऐम्फिड घट कर छोटे कोश जैसे रह जाते हैं। ग्रसनी में प्रायः दो बल्ब होते हैं। नरों में एक पुच्छीय बर्सा होता है और कंटिकाएँ समान लंबाई की होती हैं, जैसे **रैब्डिटिस** (*Rhabditis*)।

आर्डर (*c*) **ऑक्सीयूरॉइडिया** (Oxyuroidea)—ये छोटे से लेकर मध्यम आकार के पारदर्शी अंशपेशीय तर्कुरूपी नीमैटोड होते हैं, ग्रीवा-पैपिला अविद्यमान होते हैं। ग्रसनी में एक बड़ा अन्त्य बल्ब होता है। मादाओं में लंबी नुकीली पूंछ होती है, नरों में एक या दो कंटिकाएँ तथा एक क्यूटिकलीय बर्सा होता है, जैसे **एंटेरोबियस** (*Enterobius*)।

आर्डर (*d*) **ऐस्कैरॉइडिया** (Ascaroidea)—य बड़े सुदृढ़ बहुपेशीय नीमैटोड होते हैं जो कशेरुकियों की अंतड़ी में पाए जाते हैं। मुख में तीन सुविदित होंठ होते हैं, दो ऐम्फिड और दो ग्रीवा-पैपिला होते हैं। ग्रसनी पेशीय होती है जिसमें सरल अंत्य बल्ब हो भी सकता है और नहीं भी, मुख-कैप्सूल नहीं होता। पूंछ मादा में कुंद होती है, लेकिन नर में यह तीव्र घूमी हुई होती है और उसमें दो समान लंबाई की कंटिकाएँ होती हैं, जैसे **ऐस्कैरिस**।

आर्डर (*e*) **स्ट्रॉन्जिलॉइडिया** (Strongyloidea)—ये स्तनधारियों की अंतड़ी में परजीवी होते हैं। मुख में सुस्पष्ट होंठ नहीं होते लेकिन एक क्यूटिकलीय **मुख कैप्सूल** होता है, ग्रसनी पेशीय होती है, अन्त्य बल्ब नहीं होता। मादाओं में पेशीय अंडनिष्कासक होते हैं, मादाओं में एक सुव्यक्त वर्सा होता है जिसमें 13 पेशीय अरें बनी होती हैं, जैसे, **ऐंकाइलोस्टोमा** (*Ancylostoma*), **नेकैटर** (*Necator*)।

आर्डर (*f*) **ड्रैकनकुलॉइडिया** (Dracunculoidea)—ये कशेरुकियों के सीलोम, योनि ऊतक तथा झिल्लियों में पाए जाते हैं। देह सूत्राकार होता है, मुख सरल होता है जिसमें निश्चित होंठ नहीं होते लेकिन पैपिलाओं के दो वृत्तक होते हैं। ग्रसनी में अंत्य बल्ब नहीं होता, यह अग्रतः पेशीय और पश्चतः ग्रन्थीय होता है, आहार-नाल और भग वयस्क मादा में अपविकसित हो जाते हैं। ये शिशुप्रज होते हैं, भ्रूण गर्भाशय को फोड़ कर बाहर आ जाते हैं। नर मादाओं से काफी छोटे होते हैं और उनमें दो बराबर की कंटिकाएँ होती हैं। जीवन-चक्र में एक मध्यस्थ परपोषी आता है, जैसे **ड्रैकनकुलस** (*Dracunculus*)।

आर्डर (*g*) **फ़ाइलेरिआॅइडिया** (Filarioidea)—ये पतले नाजुक नीमैटोड होते हैं। मुख में होंठ नहीं होते। ग्रसनी आगे से पेशीय और पीछे से ग्रंथीय होती है। मादा में भग बहुत आगे होती है, ये अंडप्रज अथवा शिशुप्रज होते हैं। नर

मादाओं की अपेक्षा काफी छोटे होते हैं और उनमें कुण्डलित पूंछ होती है जिन पर असमान कंटिकाएँ होती हैं। जीवन-चक्र में एक मध्यस्थ परपोषी के रूप में एक चूषक कीट होता है, जैसे **वुचेरीरिया** (*Wuchereria,*) **लोआ** (*Loa*)।

उपक्लास 2. **एफैज्मिडा** (Aphasmida)—इनमें फैज्मिड नहीं होते, उत्सर्गी अंग अच्छी तरह नहीं बने होते अथवा मूलांगी होते हैं, नर में केवल एक कंटिका होती है।

आर्डर (*a*) **ट्राइक्यूरॉइडिया** (Trichuroidea)—ये पूर्णपेशीय परजीवी होते हैं जो पक्षियों तथा स्तनियों की आहार नलिका में पाए जाते हैं। मुख में होंठ नहीं होते। देह का अगला भाग पिछले भाग की अपेक्षा ज्यादा पतला होता है। **ग्रसनी** बहुत लंबी, अपेशीय और ग्रन्थि कोशिकाओं में गड़ी हुई होती है। मादाओं में एक अंडाशय होता है। नरों में एक कंटिका होती है या होती ही नहीं, जैसे **ट्राइकिनेला** (*Trichinella*), **ट्राइक्यूरिस** (*Trichuris*)।

नीमैटोडा के प्ररूप

1. **एंटेरोबियस वर्मिकुलैरिस** (*Enterobius vermicularis*) अथवा **ऑक्सीयूरिस** (*Oxyuris*) (पिन-कृमि, pinworm)—यह सारे संसार में पाया जाने वाला पिन-कृमि है, लेकिन यूरोप और अमेरिका में अधिक पाया जाता है। कुछ समुदायों में 40-100% जनसंख्या में संक्रमण पाया जा सकता है। पिन-कृमि मनुष्य के सीकम, कोलन और ऐपेंडिक्स के परजीवी होते हैं। इसमें अग्र सिरे पर तीन छोटे होंठ और एक जोड़ी **शीर्ष प्रसार** (cephalic expansions) होते हैं। मादा 10 mm. लंबी और एक लंबी नुकीली पूंछ वाली होती है, नर 3·5 mm. लंबा और कुंद घुमावदार पूँछ वाला होता है जिसमें एक वर्सा जैसा प्रसार तथा एक अकेली कंटिका होती है; नर थोड़े और दुर्लभ होते हैं। निषेचित मादाएँ यात्रा करके अंडा देने के लिये गुदा के समीप आ जाती हैं, या हो सकता है कि गुदा में से रेंगकर बाहर आ जाएँ और अंडे दे दें। हवा से सम्पर्क होने पर अंडे देने को उत्तेजना मिलती है, कभी-कभी मादाएँ फूट पड़तीं और अंडों की बौछार कर देती हैं। दिए जाने के समय अंडों में काफी परिवर्धन हो चुका होता है, प्रत्येक अंडे में एक टैडपोल जैसा बच्चा होता है। अंडे दिए जाने की जगह को हाथों से खुजला कर और फिर उन्हीं हाथों को मुँह में ले जाकर व्यक्तियों में स्वयं पुनःसंक्रमण हो जाया करता है। कपड़ों, फर्नीचर, कमरे की हवा और धूल के द्वारा अंडे सारे परिवार में संक्रमण फैला सकते हैं। अंडों का विस्फोटन छोटी अंतड़ियों में होता है, बच्चे धीरे-धीरे नीचे आ जाते हैं, उनमें चार बार निर्मोचन होता और वयस्क बन जाते हैं। **एंटेरोबियस** (*Enterobius*) के द्वारा पिनकृमि रोग पैदा होता है; इनकी गतियों से गुदा में अत्यधिक खुजली मचती है, कोलन और ऐपेंडिक्स की श्लेष्मा झिल्ली में शोथ पैदा हो जाता है और अक्सर अनिद्रा एवं भूख न लगने की शिकायतें हो जाती हैं। प्रत्येक पीढ़ी 3 से 4 सप्ताह तक चलती है, और यदि पुनः संक्रमण न हुआ तो संक्रमण समाप्त हो जाता है।

आठ दिन तक 1 ग्रेन जेन्शियन वायोलेट के कैप्सूल खिलाने से अधिकतर कृमि बाहर निकल जाते हैं।
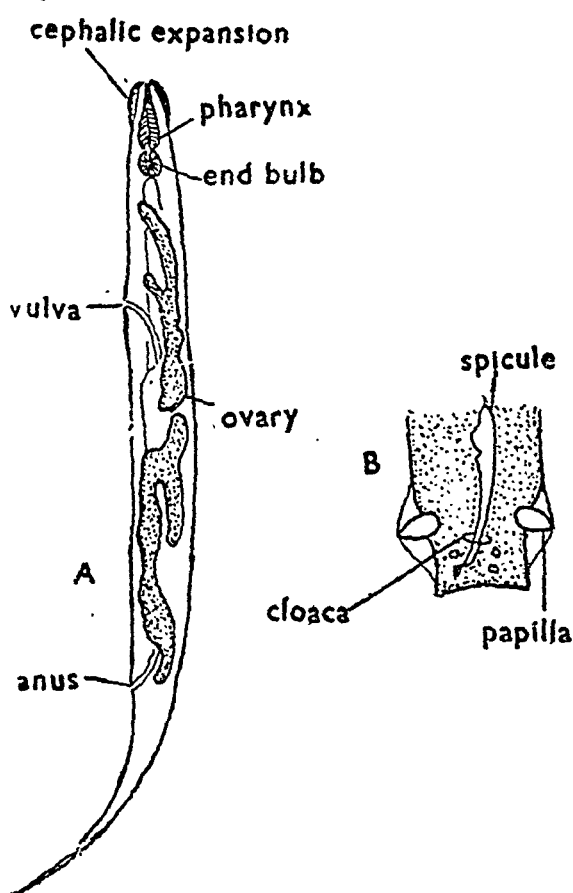
चित्र 205. **एंटेरोबियस वर्मिकुलैरिस** A–मादा; B–नर का पिछला सिरा। Cephalic expansion, शीर्ष प्रसार ; pharynx, ग्रसनी ; end bulb, अंत्य बल्ब ; vulva, भग ; ovary, अंडाशय ; anus, गुदा ; spicule, कंटिका ; cloaca, अवस्कर ; papilla, पैपिला।

2. **ऐंकाइलोस्टोमा डुओडीनेल** (*Ancylostoma duodenale*) (हुक-वर्म)—यह मनुष्य की छोटी अंतड़ी में पाया जाने वाला परजीवी है जो एशिया, उत्तर अफ्रीका और यूरोप में पाया जाता है, यह मनुष्य का भयंकर नीमैटोड परजीवी है क्योंकि यह आंत्रांकुरों (intestinal villi) में चिपका रहता और अपनी पेशीय ग्रसनी के द्वारा रक्त और देह-तरलों को चूसता रहता है, यह आंत्र-श्लेष्मा झिल्ली में सूराख भी कर देता है। अशन करते समय ये एक प्रतिस्कंदक (anticoagulant) भी बनाते हैं जो रक्त को जमने से रोकता है, चूसने के बाद जब वे अलग होते हैं तो घाव में से खून बहता रह जाता है। अग्र सिरा पृष्ठ दिशा में मुड़ा होता है और उसमें एक बड़ा **मुख-कैप्सूल** होता है जिसमें दो अधर-पार्श्वीय कर्तन-प्लेटें होती हैं, इन प्लेटों पर अधर दिशा में बने हुए दो जोड़ी क्यूटीकलीय दाँत होते हैं, एक जोड़ी दाँत पृष्ठ सतह

पर बने होते हैं जो तीव्र **लेंसेट** (lancet) बनाते हैं जिनके द्वारा यह परजीवी अपने परपोषी के ऊतकों को काटता-चीरता है। मादा 12 mm. लंबी होती है, उसकी पूंछ में एक सूक्ष्म काँटा बना होता है, नर 9 mm. लंबा होता है, इसकी पूंछ में एक अभिलाक्षणिक बर्सा होता है जो अवस्कर को घेरे रहता है, यह फैला होता है और इसमें दो बड़े पार्श्व पालि बने होते हैं जिनमें से हर एक में छह **पेशीय अर** होते हैं, और हर एक छोटा मध्य पृष्ठीय पालि होता है जिसमें एक प्रधान पृष्ठ अर होता है, यह अर केवल अंतिम सिरे पर ही विशाखित होता है। अरों की व्यवस्था विचित्र रूप में सदैव एक सी होती है और हर एक अर को एक नाम दिया जाता है, पृष्ठ पालि में पाई जाने वाली मुख्य अर को पृष्ठ अर कहते हैं; प्रत्येक पार्श्व पालि में ऊपर से शुरू करते हुए छह अरों को बाह्यपृष्ठीय, पश्च-पार्श्वीय, मध्य-पार्श्वीय, बाह्य-पार्श्वीय पार्श्व-अधर, अधरीय अधर कहते हैं।

मादाएँ अंतड़ी में अंडे देती हैं जो परपोषी की विष्ठा के साथ बाहर निकल जाते हैं और मिट्टी में स्फोटित होते हैं, उनसे निकले हुए बच्चे दो बार निर्मोचन करते और संक्रामक होते हैं। वे नम मिट्टी में अनेक सप्ताह तक जीवित रह सकते हैं। बच्चे सतह पर आ जाते हैं, वे रोम-पुटकों (hair follicles) में से होकर त्वचा के माध्यम से भीतर घुस कर शिराओं में पहुंच जाते हैं जहाँ से वे दिल में पहुँच जाते हैं। दिल में से फिर वे फुप्फुस धमनियों में से होते हुए फेफड़ों में पहुँच जाते हैं और फिर वहाँ से श्वासनली में जहाँ वे खाँसी पैदा करते हैं और निगल लिए जाकर अंतड़ियों में पहुँच जाते हैं। बच्चा-अवस्थाओं में अंतड़ी के भीतर दो बार निर्मोचन होकर वे वयस्क बन जाते हैं, वे अपने परपोषी में वर्षों तक जीवित रहते हैं।

ऐंकाइलोस्टोमा के वयस्क परपोषी में रक्त-क्षीणता पैदा कर देते हैं, बच्चों में वे उनका शारीरिक एवं बौद्धिक विकास मंद कर देते हैं। परजीवी की बच्चा अवस्थाएँ खाल में खुजली तथा शोथ पैदा करती हैं, फेफड़ों में वे फुपफुसीय संक्रमण और यहाँ तक कि न्यूमोनिया भी पैदा कर देते हैं।

ऐंकाइलोस्टोमा कैनाइनम (*Ancylostoma caninum*) में अधर कर्तन-प्लेटों पर तीन जोड़ी क्यूटिकलीय दाँत बने होते हैं, यह उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों में कुत्तों और बिल्लियों में परजीवी पाया जाता है, और कभी-कभी मनुष्य में भी परजीवी हो जाया करता है।

नेकेटर ऐमेरिकानस (*Necator americanus*) उत्तरी अमरीका में पाया जाने वाला एक आम मानवीय हुकवर्म है, यह **ऐंकाइलोस्टोमा डुओडीनेल** से छोटा होता है, मुख-कैप्सूल में एकल पृष्ठीय दाँत और दो जोड़ी लेंसेट होते हैं; मादा में पुच्छीय काँटा नहीं होता, नर में अपेक्षाकृत लंबा लेकिन अधिक संकीर्ण बर्सा होता है।

3. **ड्रैकनकुलस मेडिनेन्सिस** (*Dracunculus medinensis*) (नेहरुआ, guinea worm)—यह मनुष्यों के अधिक गहरे अधःत्वचिक (subcutaneous) ऊतकों का परजीवी है जहाँ लंबी मादा खाल के नीचे एक ढीली कुंडली बना कर पड़ी रहती है।

पश्चिमी एशिया में अरब से लेकर भारत तक, और पूर्वी द्वीपसमूह तथा अफ्रीका में भी यह एक भारी खतरा बना रहता है। इनकी जानकारी प्राचीन काल से चली आ
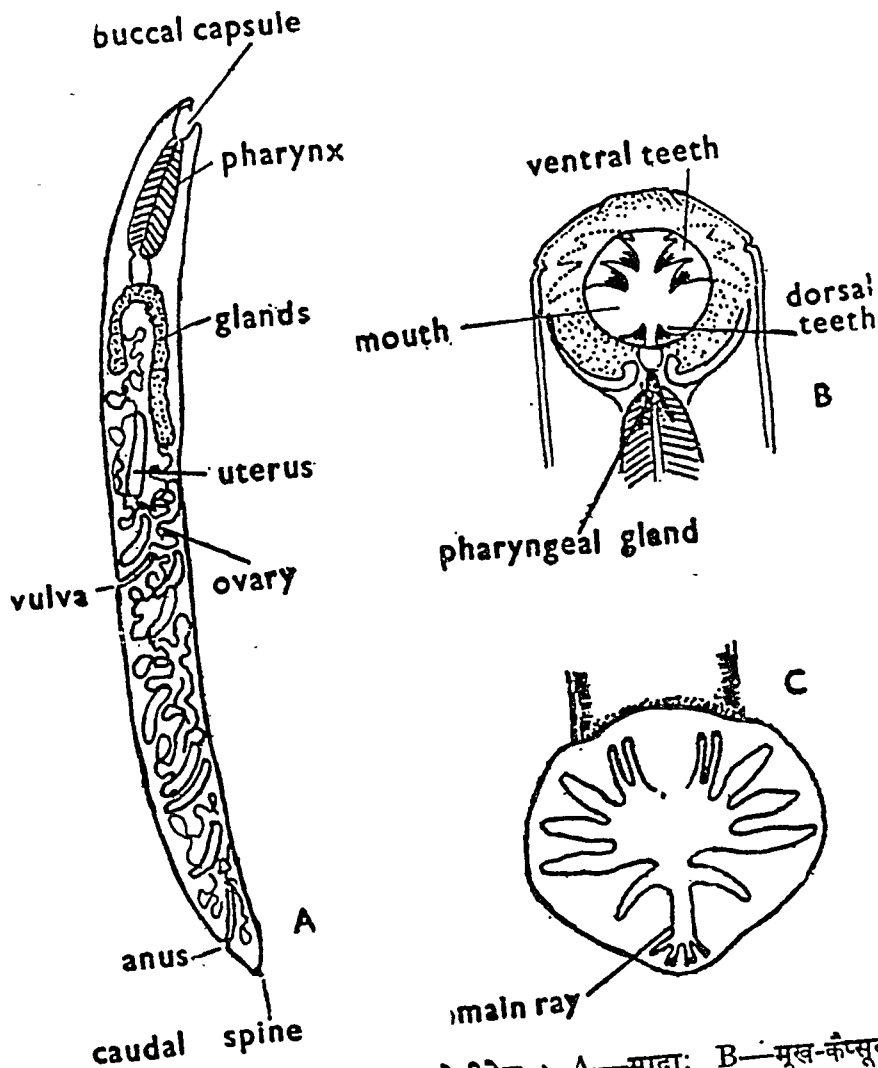
चित्र 206. **ऐंकाइलोस्टोमा डुओडीनेल।** A—मादा; B—मुख-कैप्सूल C—नर का बर्सा।
Buccal capsule, मुख-कैप्सूल; pharynx, ग्रसनी; glands, ग्रंथियाँ; uterus, गर्भाशय; vulva, भग; ovary, अंडाशय; anus, गुदा; caudal spine, पुच्छीय काँटा; ventral teeth, अधर दाँत; mouth, मुख; dorsal teeth, पृष्ठीय दाँत, pharyngeal gland, ग्रसनीय ग्रंथि; main ray, मुख्य अर।

रही है जब कुछ भागों में इन्हें "अग्नि-सर्प" कहा जाता था। मादा 2.5 से 4.0 फुट तक की लंबी होती है और 1.5 mm. मोटी, उसका सिर कुंद होता और पूंछ पर तीव्र हुक बने होते हैं। नर थोड़े होते हैं, ये 20 से 30 mm. लंबे होते और एक

सर्पिल रूप में कुंडलित पूंछ होती है जिसके ऊपर 10 जोड़ी पैपिला और दो बड़ी असमान कंटिकाएँ होती हैं। अग्र सिरे पर दोनों लिंगों में एक क्यूटीकलीय वलय होता है जो मुख को घेरे रहता है और जिस पर 6 ओष्ठीय पैपिला तथा 4 दोहरे पैपिला बने होते हैं। परिपक्व मादाओं में आहार-नाल और भग ह्रासित हो जाते हैं और शरीर में भ्रूणों से भरा एक गर्भाशय पूरा स्थान ले जाता है।
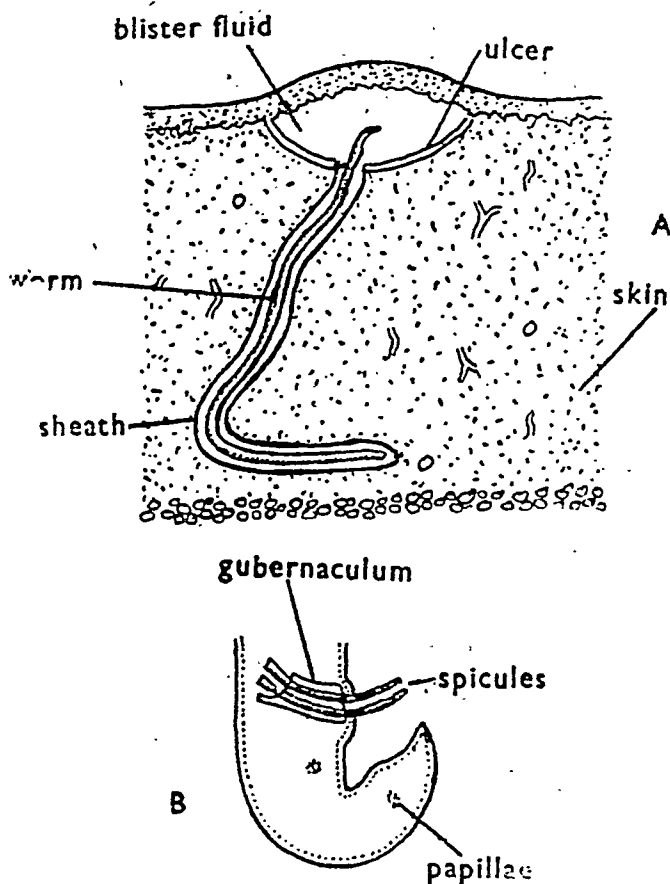
चित्र 207. **ड्रैकनकुलस मेडिनेन्सिस**। A—मनुष्य की खाल में कृमि; B—नर की पूंछ।

Blister fluid, फफोले का तरल; ulcer, व्रण; worm, कृमि; skin, खाल; sheath, आवरण; gubernaculum, गुबर्नेकुलम; spicules, कंटिकाएँ; papillae, पैपिला।

परिपक्व मादा अपने परपोषी की खाल को अपन अग्र सिरे से वेधती है और एक टॉक्सिन बनाती है जिससे फफोला बन जाता है, फफोला बढ़कर एक व्रण बन जाता है जिसमें से गोल-कृमि का अग्र सिरा निकला होता है। जब व्रण से जल का सम्पर्क होता है तो मादा का गर्भाशय व्रण के ऊपर उभर आता है और असंख्य सूक्ष्म कुंडलित बच्चे बाहर को निकल आते हैं, हर बार जब भी व्रण जल के सम्पर्क में आता

है तव यही घटना होती है। जब तमाम बच्चे शरीर से बाहर निकल चुकते हैं तव वह जनक कृमि सिकुड़ कर मर जाता है। बच्चा-कृमियों को साइक्लॉप्स (*Cyclops*) खा ले सकता है जो एक अलवणजलीय क्रस्टेशियन होता है, यह प्राणी मध्यस्थ परपोषी होता है। साइक्लॉप्स के भीतर बच्चा-अवस्थाओं में दो वार निर्मोचन होता है और 3 सप्ताह में वे संक्रामक बन जाती हैं। यदि किसी संक्रमित साइक्लॉप्स को कोई व्यक्ति निगल लेता है तो उसकी वाल्यावस्थाएँ उस व्यक्ति की आहार-नलिका
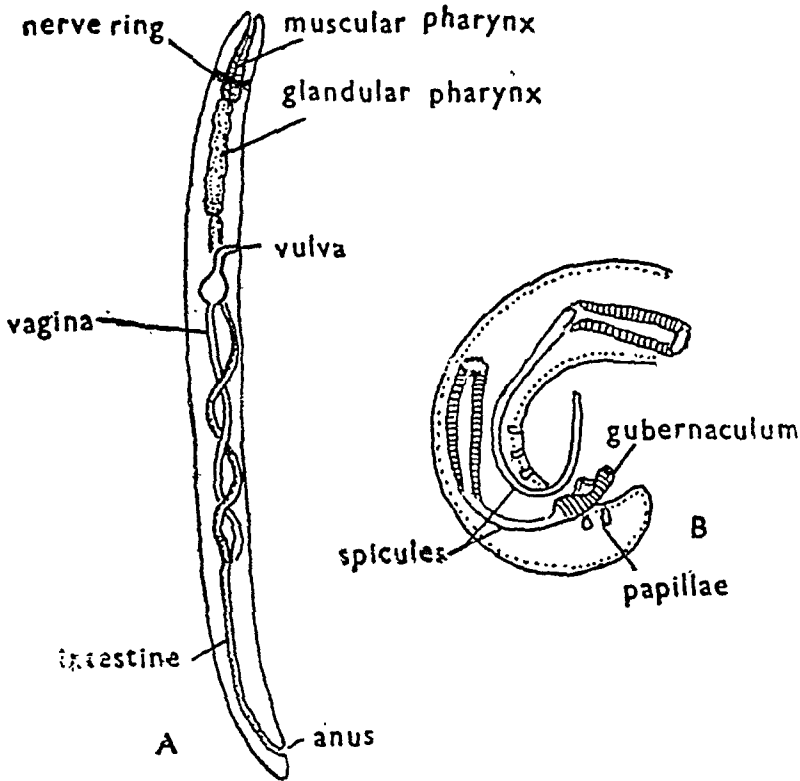
चित्र 208. वुचेरीरिया बैंक्रोफ्टाई। A—मादा; B—नर की पूँछ।
Nerve ring, तंत्रिका वलय; muscular pharynx, पेशीय ग्रसनी; glandular pharynx, ग्रंथीय ग्रसनी; vulva, भग; vagina, योनि; intestine, अंतड़ी; spicules कटिकाएँ; gubernaculum, गुवर्नेकुलम; papillae, पैपिला।

में युक्त हो कर वहाँ से वेध कर अधःत्वचीय ऊतक में पहुँच जाती हैं, फिर उनमें दोबारा तिर्मोचन होता है और लगभग एक वर्ष में वे वयस्क वन जाती हैं।

व्रण बन चुकने के बाद संक्रमित व्यक्ति में पित्ती, दस्त, दमा, चक्कर आने और इओसिनोफ़िलिया की शिकायतें हो जा सकती हैं; व्रण का वैक्टीरियाई संक्रमण भी शुरू हो जाता है। भारत में एक सफल उपाय यह अपनाया जाता रहा है कि एक तिली पर इस नीमैटोड को धीरे-धीरे रोज एक लपेट घुमाते हुए सारे का सारा बाहर

निकाल लिया जाता है। यदि कृमियों को निकाला नहीं गया तो वे अंततः कैल्सिकृत होकर मर जाते हैं। फ़ीनोथाएज़ीन (phenothiazine) का जैतून के तेल में इमलशन बना कर उसका एक सप्ताह तक इंजेक्शन देते रहना कारगर पाया गया है और कृमियों को बाहर निकाला जा सकता है।

4. **वुचेरीरिया बैंक्रोफ्टाई** (*Wuchereria bancrofti*)—अफ्रीका और एशिया में यह मनुष्य का एक महत्त्वपूर्ण फ़ाइलेरिया परजीवी है। वयस्क नीमैटोड कुंडलियाँ बनाए हुए लसीका वाहिकाओं और लसीका ग्रंथियों में पड़े रहते हैं। देह धागे-जैसा होता है. जो अग्र सिरे की तरफ पतला होता जाता है और सामने का सिरा थोड़ा-सा फूला होता है, होंठ नहीं होते, ग्रसनी आगे पेशीय होती है और पीछे ग्रंथीय। मादा 10 cm. लंबी और 0·25 mm. मोटी होती है। नर 4 cm. लम्बा और 0·1 mm. मोटा होता है, इसकी पूँछ अनेक पैपिलाओं से युक्त और पूँछ एक **प्रतान (टैंड्रिल)** की तरह कुँडलित होती है, जिस पर एक लंबी और एक छोटी कंटिका बनी होती है।

परिपक्व मादा जिन बच्चों को जन्म देती है उन्हें **माइक्रोफाइलेरिया** (*microfilaria*) कहते हैं, जिनमें से प्रत्येक एक कोमल **आच्छद** में बंद होता है। माइक्रोफ़ाइलेरिया लसीका-तंत्र में से निकलकर रक्त वाहिकाओं में पहुँच जाते हैं, वे रात के 10 और 2 बजे के बीच में परिधीय परिसंचरण में पहुँच जाते हैं किंतु दिन के **शेष भाग** में वे भीतर को गायब हो जाते हैं। माइक्रोफ़ाइलेरिया का और आगे **परिवर्धन** तभी संभव होता है जब कि वे मनुष्य के रक्त के साथ-साथ किसी मच्छर के द्वारा चूस लिए जाते हैं। मच्छरों की **क्यूलेक्स, ऐनॉफ़िलिस** और **ईडीस** जीनसों का कई स्पीशीज़ मध्यस्थ परपोषियों का कार्य करती हैं। **वुचेरीरिया** का जीवन-चक्र अन्य आर्डरों के नीमैटोडों से इस बात में भिन्न है कि इसे मध्यस्थ परपोषी के रूप में एक रक्त-चूषक कीट की आवश्यकता होती है। माइक्रोफ़ाइलेरिया मच्छर के आमाशय को वेध कर उसकी वक्ष-पेशियों में पहुँच जाते हैं और वहाँ पर वे छोटे एवं मोटे होकर सौसेज जैसी आकृति प्राप्त कर लेते हैं, उसके बाद माइक्रोफ़ाइलेरिया में वृद्धि होती और वे दो बार निर्मोचन करते हैं। अब वे संक्रामक बन जाते हैं और मच्छर के लेबियम में पहुँच जाते हैं। जब मच्छर किसी मनुष्य की गरम और नम खाल को काटता है तो ये लार्वा मच्छर के लेबियम में से रेंग कर बाहर मनुष्य की खाल पर आ जाते हैं; उसके बाद वे खाल के भीतर घुस जाते और दो बार निर्मोचन होने के बाद लसीका-तंत्र के अंदर वयस्क बन जाते हैं।

जीवित और मृत **वुचेरीरिया** लसीका-तंत्र में एकत्रित होकर उसे अवरुद्ध कर देते हैं और उसके कारण लसीका-ग्रन्थियों में सूजन आ जाती है और अन्य रोग लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ मामलों में, लेकिन हमेशा नहीं, लसीका वाहिकाओं के इस अवरुद्ध हो जाने से श्लीपद (फ़ील-पांव, elephantiasis) हो जाता है जिसमें प्रभावित अंश में, जैसे कि भुजाओं, पैरों, वृषण-कोशों या स्तनों में, योजी ऊतक में अतिवृद्धि होकर बहुत ज्यादा सूजन आ जाती है। ऐंटीमनी तथा आर्सेनिक के यौगिक संक्रमण को कम कर देने या समाप्त कर देने में कारगर होते हैं।

वुचेरीरिया मलैयी (*Wuchereria malayai*) भारत, मलय तथा पूर्वी द्वीप-समूह में लसीका-तंत्र में पाया जाने वाला फ़ाइलेरियाई नीमैटोड परजीवी है। इसका मध्यस्थ परपोषी **मैन्सोनिया** (*Mansonia*) जीनस का मच्छर है। इस परजीवी के कारण लसीकावाहिनीशोथ (lymphangitis) हो जाया करता है, लेकिन संक्रमण पैरों तक ही सीमित रहता है।

5. एक अन्य फ़ाइलेरियाई नीमैटोड **लोआ लोआ** (*Loa lou*) अफ्रीका में मनुष्य के अंतःत्वचिक ऊतकों का परजीवी है। मादा 2 से 7 cm. लंबी होती है, नर 2 से 3.5 cm. लंबा होता है। कृमि के देह के ऊपर क्यूटिकलीय मस्से बने होते हैं। यह दो मिनट में एक इंच की दर से खाल के नीचे को रेंगता जाता है और तीव्र खाज तथा सूजन पैदा कर देता है जिसे 'कालाबर स्वेलिंग' (calabar swellings) कहते हैं, आँख में होने वाली यह सूजन वहुत पीड़ायुक्त होती है।

परिपक्व मादाओं से आच्छदयुक्त बच्चे जन्मते हैं जो दिन के समय परिधीय परिसंचरण में दल बाँध कर आ जाते हैं लेकिन रात में विलीन हो जाते हैं। मध्यस्थ परपोषी **क्राइसॉप्स** जीनस की मक्खियाँ होती हैं, लार्वा मक्खी में निर्मोचन करते और परिवर्धित होते जाते हैं, और फिर वे उसके शुंड में पहुँच जाते हैं; संक्रमित **क्राइसॉप्स** के काटने पर ये लार्वा मनुष्य की खाल में घुस जाते हैं।

6. **ट्राइकिनेला स्पाइरैलिस** (*Trichinella spiralis*) (ट्राइकिना कृमि)—यह यूरोप और अमेरिका में पाया जाने वाला मनुष्य की अंतड़ी का एक छोटा परजीवी है, लेकिन उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में यह नहीं पाया जाता है। यह सूअर, पालतू जानवरों और रोडेंटों में भी परजीवी पाया जाता है। मनुष्य में इसका संक्रमण अधूरे पके हुए सूअर-मांस के खाने से पहुँच जाता है। ये पतले कृमि होते हैं जिनका शरीर मध्य से लेकर अगले सिरे तक पतला होता जाता है, लंबी ग्रसनी में एक अगला पेशीय भाग और एक पिछला ग्रन्थीय भाग होता है। मादा 3 से 4 mm. लंबी होती हैं, नर 1.5 mm. लंबे और पश्च सिरे पर एक जोड़ी शंक्वाकार उपांग होते हैं, इनमें कंटिकाएँ नहीं होतीं। निषेचित मादा अंतड़ी में से वेध कर लसीका गुहाओं में पहुँच जाती है और वच्चों को जन्म देती है। ये वच्चे लसीका और रक्त वाहिनियों में से यात्रा करते हुए हर अंग में पहुँचते जाते हैं लेकिन अंत में वे ऐच्छिक पेशियों में आकर टिक जाते हैं, खास तौर से डायाफ़ाम, जीभ, आँख और हाथ-पैरों की पेशियों में जहाँ वे लिपट कर एक सर्पिल बना लेते हैं और उनके ऊपर से एक नींबू की आकृति की पुटी बन जाती है, प्रत्येक पुटी में 1 से 7 भ्रूण होते हैं। पुटी में और आगे परिवर्धन नहीं होता। जैसे-जैसे साल वीतते जाते हैं पुटी केल्सिकृत होती जाती है और भ्रूण मर जाते हैं। यदि अधूरा पका हुआ वह सूअर-मांस या गोश्त आदमी खा ले जिसमें ये पुटियाँ मौजूद हों तो भ्रूण अंतड़ी में वाहर निकल आते हैं और उनमें कई निर्मोचन होकर वे 2 या 3 दिन में परिपक्व हो जाते हैं। वयस्क परजीवी मानव परपोषियों में केवल 2 से 3 महीने तक रहते हैं, वे अनेक वच्चों को

जन्म देकर मर जाते हैं लेकिन अधिकतर नर परजीवी मैथुन करने के बाद बाहर निकल जाते और मर जाते हैं।
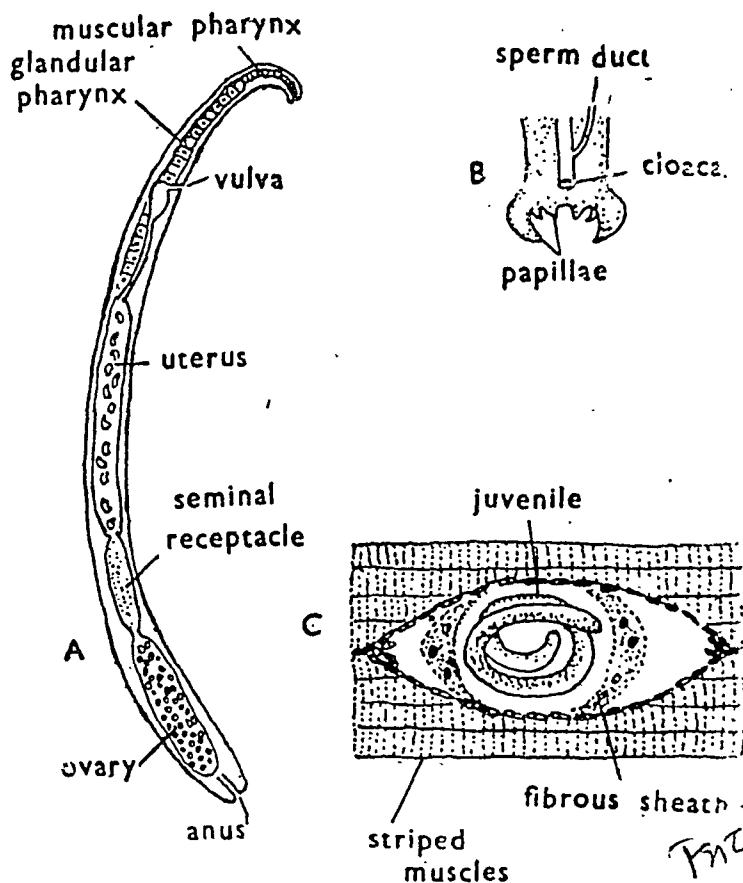
चित्र 209. **ट्राइकिनेला स्पाइरैलिस** । A.-मादा, B-नर की पूँछ, C-पुटी में बंद हुआ बच्चा ।
Muscular pharynx, पेशीय ग्रसनी ; glandular pharynx, ग्रन्थीय ग्रसनी ; vulva, भग ; uterus, गर्भाशय ; seminal receptacle, शुक्रग्राही ; ovary, अंडाशय ; sperm duct, शुक्र नलिका ; cloaca. अवस्कर ; papillae, पैपिला ; juvenile, बच्चा ; fibrous sheath, तंतुकी आवरण ; striped muscles, रेखित पेशियाँ ।

वयस्क परजीवी अंतड़ी में घुसते हुए ट्राइकिनिऐसिस पैदा करते हैं जिसमें दस्त आने, उदर दर्द और चक्कर आने विशेष लक्षण है। कभी-कभी पेशीय स्फुरण (फड़कन) भी होती है। परिसंचरण तंत्र में बच्चों की संख्याएँ बढ़ते जाने के साथ-साथ इओसिनोफिलिया पैदा हो जाता है, दूसरी अवस्था में ये बच्चे वेध कर पेशियों में पहुँच जाते हैं जहाँ वे दर्द, न्यूमोनिया, गुर्दों का ठीक से कार्य न करना और ऊतक-क्षय (necrosis) के लक्षण पैदा कर देते हैं, जो अक्सर घातक सिद्ध होते हैं।

इन बच्चा अवस्थाओं की गतियों और अनेक अपशिष्ट पदार्थों से पेशीय तंतुओं का क्षय हो जाता है जो अक्सर घातक होता है।

हर रोज़ पाइपेरैज़ीन (piperazine) की 2 से 3 gm. की डोज़ देने से मनुष्य में से वयस्क परजीवी बाहर निकल जाते हैं।

नीमैटोडा पर टिप्पणियाँ

नीमैटोड परिवर्धन—अंडों का निषेचन भीतर होता है, हर एक अंडे पर एक काइटिनी आवरण ढक जाता है। विभिन्न नीमैटोडों में निषेचित अंडा मादा के शरीर से अलग-अलग अवस्थाओं में बाहर निकलता है। परिवर्धन का प्रारम्भ या तो तभी हो जाता है जब कि अंडे गर्भाशय में होते हैं, या बाहर दिये जाने के बाद शुरू होता है, कुछ स्पीशीज़ शिशुप्रज होती हैं। निषेचित अंडे में दो विदलन हो कर चार कोशिकाएँ अथवा ब्लास्टोमियर बन जाते हैं, ये चार कोशिकाएँ **ऐस्कैरिस** में पहले पहल T की आकृति में व्यवस्थित हो जाती हैं लेकिन उसके बाद वे एक समानान्तर असमचतुर्भुज (रॉम्बॉइड) में व्यवस्थित हो जाती हैं जो नीमैटोडों की विशिष्टता है। (चित्र 210-2)। इन चार कोशिकाओं को अब A, B, P_2 तथा S_2 कहते हैं, S_2 कोशिका को EMST भी कहते हैं (अर्थात् एक्टोडर्मी—मीज़ोडर्मी—स्टोमोडियल सेल)। ये चारों कोशिकाएँ बराबर नहीं होतीं और एक ही समतल में थोड़ा-थोड़ा एक दूसरे को ढकते हुए व्यवस्थित होती हैं, रॉम्बाइड अवस्था में कोशिका A अग्र होती है, B पृष्ठीय, P_2 पश्चीय और EMST अधरीय होती है। इन कोशिकाओं में और आगे विदलन होता है जिसमें और छोटे ब्लास्टोमियर बनते हैं जो थोड़े से सर्पिल रूप में विस्थापित होकर एकाँतर क्रम में दाएँ और बाएँ पड़े होते हैं। इस प्रकार इनमें एक रूपांतरित सर्पिल विदलन पाया जाता है। नियमित **सर्पिल विदलन** में खंडीभवन रेखाएँ भ्रूण के ध्रुवी अक्ष और विषुवत्-रेखा के संदर्भ में तिरछी होती हैं, और ब्लास्टोमियर सर्पिल रूप में दाएँ-बाएँ एकांतर क्रम बनाते हुए व्यवस्थित रहती हैं जिससे हर एक कोशिका ऊपर भी और नीचे भी दो ब्लास्टोमियरों के बीच में पड़ी रहती है। इस प्रकार एक सेट अथवा टियर की कोशिकाओं की स्थिति और दूसरे टियर की कोशिकाओं की स्थिति में एकांतर क्रम पाया जाता है। सर्पिल विदलन इन वर्गों में पाया जाता है पौलीक्लैड टर्बेलैरिया, नीमैटोडा, पौलिकीटा और अधिकतर मौलस्का, जबकि अधिकाँश जन्तुओं में गोल युग्मनज में या तो अरीय विदलन होता है या द्विपार्श्वीय।

कोशिका A और B में प्रत्येक दो-दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है, जिनमें से एक कोशिका दाईं ओर और दूसरी बाईं ओर होती है। A और B की ये संततियाँ आगे चलकर केवल पश्च सिरे का एक्टोडर्म छोड़कर पूरे एक्टोडर्म को जन्म देंगी। EMST विभाजित होकर E तथा MST कोशिकाएँ बनाता है, E से अंतड़ी का तमाम एंडोडर्म बनता है, जब कि MST देह-भित्ति का मीज़ोडर्म और कूटगुहा कोशिकाएँ बनाता है। यह अग्रांत्र या मुख-पथ (stomodacum) का अस्तर भी बनाता है। P_2 में विभाजन होकर दो कोशिकाएँ बनती हैं जिन्हें P_3 तथा C कहते हैं, उसके बाद

P_3 में विभाजन होकर P_4 तथा D वन जाती हैं। P_4 से जनन-कोशिकाएँ वनेंगी और
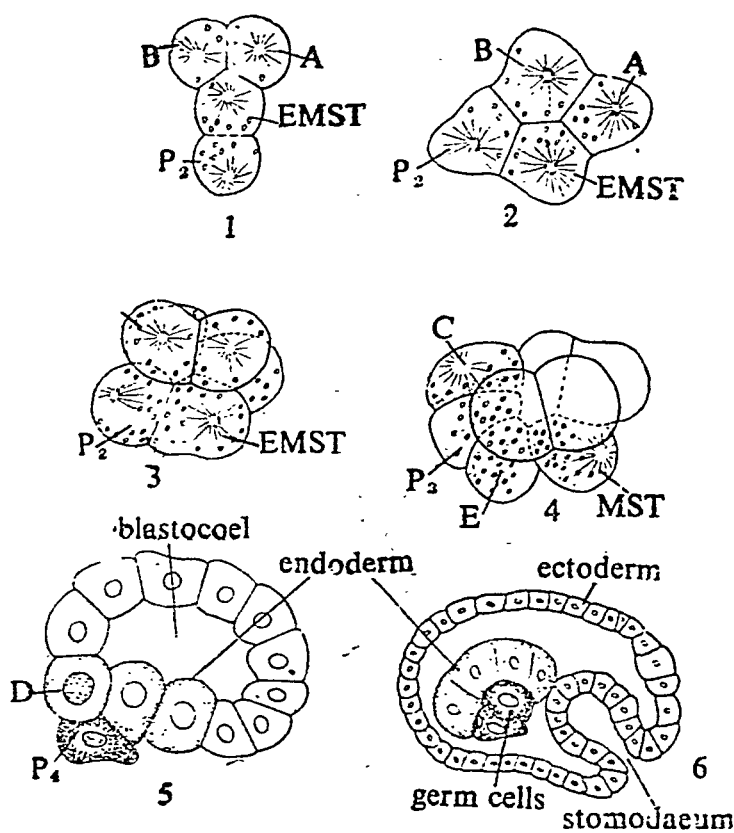
चित्र 210. नीमैटोड के परिवर्धन में अवस्थाएँ (1 से 6)।

Blastocoel, ब्लास्टोसील ; endoderm, एंडोडर्म ; ectoderm, एक्टोडर्म ; germ cells, जनन-कोशिकाएँ ; stomodaeum, अग्रांत्र (मुखपथ)।

C तथा D परस्पर मिलकर एक्टोडर्म तथा मीज़ोडर्म वनाएँगी। इस प्रकार के विदलन को जिसमें भ्रूण में विशिष्ट ऊतक एक विशिष्ट कोशिका से संवन्धित होता है, **निर्धारी विदलन** (determinate cleavage) कहते हैं। इस विदलन में शरीर के विभिन्न अंगों तथा अवयवों का निर्माण एक वहुत ही आरंभिक अवस्था में निर्धारित हो जाता है तथा प्रत्येक कोशिका की नियति का निश्चित रूप में अनुसरण किया जा सकता है। यदि कोई विशिष्ट कोशिका नष्ट कर दी जाए तो उसके अनुरूप अवयव विकसित नहीं होते। ब्लास्टोमियरों के वंश इतिहास को **कोशिका वंश-क्रम** (cell lineage) कहा जाता है, परिवर्धनशील भ्रूण की कोशिकाएँ विभिन्न गुणों वाले निश्चित-क्षेत्रों में व्यवस्थित होती हैं, प्रत्येक क्षेत्र एक विशिष्ट ऊतक अथवा अंग के निर्माण में योगदान देता है, इस प्रकार भ्रूण की कोशिकाओं की नियति को देखा और उसका अनुसरण किया जा सकता है।

भ्रूण कोशिकाओं का विदलन जारी रहता है और 16-कोशिका अवस्था पर एक **ब्लास्टुला** बन जाता है, इसमें एक गुहा **ब्लास्टोसील** होती है। उसके बाद एंडोडर्म कोशिकाओं के ऊपर एक्टोडर्म कोशिकाओं की अध्यावृद्धि अर्थात् एपिबोली (epiboly) के द्वारा एक **गैस्ट्रुला** बन जाता है जिसमें अग्रांत्र और एंडोडर्म कोशिकाओं का अंतर्वलन हो जाता है। ब्लास्टोसील आगे चलकर परिअंतरांग गुहा बन जाती है। जिसमें बड़ी-बड़ी रिक्तिकायुक्त कोशिकाएँ विकसित हो जाती हैं। इस प्रकार एक भ्रूण बन जाता है जिसमें एक पाचन मार्ग होता है, कुछ और कोशिका-विभाजनों के बाद भ्रूण एक **बच्चा** बन जाता है। स्फोटन के बाद इस बच्चे में वयस्क की सभी संरचनाएँ मौजूद होती हैं, केवल जनन-तंत्र के कुछ भाग नहीं होते। बच्चे में 2, 4 या 6 निर्मोचन के बाद वयस्क अवस्था आ जाती है।

इस नीमैटोड परिवर्धन में भावी **जनन कोशिकाएँ** (germ cells) बहुत पहले ही **कायिक कोशिकाओं** (somatic cells) से विभेदित हो जाती हैं। जनन कोशिकाओं में क्रोमोसोमों की पूर्ण संख्या बनी रहती है लेकिन कायिक कोशिकाओं में क्रोमोसोमों का कुछ क्रोमैटिन टूट जाता और साइटोप्लाज़्म में को छोड़ दिया जाता हैं, इसे **क्रोमैटिन ह्रास** (chromatin dimunition) कहते हैं। बच्चा अवस्था बन चुकने के बाद कायिक कोशिकाओं में कोशिका-विभाजन रुक जाता है, और सिर्फ जनन-कोशिकाओं में चलता रहता है। इस प्रकार नीमैटोड में कोशिकाओं की संख्या कम होती है और प्रत्येक स्पीशीज़ के लिए स्थिर होती है। आगे होने वाली वृद्धि के केवल विभेदन, रिक्तिकायन और कोशिकाओं के आकार में वृद्धि के द्वारा ही होती है, ये वे कोशिकाएँ होती हैं जो स्फोटन होने के समय तक पहले से ही बन चुकी होती हैं। **रैब्डिटिस** में 120 एपिडर्मिसी कोशिकाएँ, 172 कोशिकाएँ पाचन नाल में, 200 तंत्रिका कोशिकाएँ और 68 पेशी कोशिकाएँ होती हैं।

हेल्मिथों का परपोषी पर प्रभाव—परपोषी पर हेल्मिथों के द्वारा इन सब बातों के जरिए प्रभाव पड़ता है—जीवन-पद्धति, परजीवियों का साइज, उनकी संख्या और परजीवी द्वारा ग्रहण किया गया स्थान अथवा अंग।

यदि परजीवी बहुत ज़्यादा संख्या में हुए तो वे परपोषी में पोषणाभाव पैदा कर सकते हैं, और यदि परजीवी बहुत बड़े आकार के हुए, जैसे **टीनिया**, तो वे बहुत सा पचा हुआ भोजन छीन लेते हैं, विशेषकर प्रोटीन और विटामिन जिससे परपोषी में कुपोषण का प्रभाव हो जाता है। भारी संक्रमणों से परपोषी की वृद्धि रुक जाती है।

परजीवियों की आहार करने की आदतों तथा ऊतकों में उनकी प्रवास-यात्राओं के कारण घाव पैदा हो जाया करते हैं। **शिस्टोसोमा** से अंतड़ी और मूत्राशय की तंतुमयता (**फ़ाइब्रोसिस**) पैदा हो जाती है और उसके अर्बुद (ट्यूमर) बन जा सकते हैं। **ऐस्कैरिस** से उसके प्रवास के कारण पेरिटोनियमशोथ (peritonitis) पैदा हो जाता है, हुकवर्म अंतड़ियों के अस्तर में काटता है और रक्त-स्राव पैदा करता है, इससे एक स्राव भी निकलता है जो रक्त के स्कंदन को रोकता है। **शिस्टोसोमा** के सर्केरिया खाल

में से वेधन करने पर त्वचाशोथ (dermatitis) पैदा करते हैं। परजीवियों के द्वारा पैदा होने वाले घाव, हो सकता है इतने भयंकर न हों जितने कि इन घावों को संक्रमित करने वाले बैक्टीरिया के प्रभाव होते हैं।

कुछ परजीवी अपने परपोषी के ऊतकों में यांत्रिक क्षोभ पैदा करते हैं। फ्लूकों तथा फीता-कृमियों के द्वारा फेफड़ों, जिगर और मूत्राशय में विक्षतियाँ (lesions) पैदा हो जाती हैं। **इकाइनोकोक्कस** की हाइडैटिड पुटी के द्वारा फेफड़ों, जिगर अथवा मस्तिष्क में होने वाली क्षति कभी-कभी घातक सिद्ध हो जाती है, इनकी हाइडैटिड पुटियाँ अपने दबाव के कारण आस-पास के अंगों के समुचित कार्यों में बाधा डाल सकती हैं।

कुछ परजीवी आहार-नाल अथवा वाहिनियों के मार्ग को अवरुद्ध कर देते हैं, जिगर-फ्लूक जिगर के पित्त-मार्गों को रोक देते हैं। **ऐस्कैरिस** के भारी संक्रमणों से पित्त-वाहिनी, अग्न्याशय वाहिनी अथवा अंतड़ी का रास्ता रुक जा सकता है, ये अंतड़ी की दीवार में सूराख कर दिया करते और पेरिटोनियमशोथ पैदा कर देते हैं। **फ़ाइलेरिया** लसीका गुहाओं को अवरुद्ध कर देता है और हो सकता है कि वह लसीका के प्रवाह को अपसामान्य वाहिकाओं की ओर बदल दे, इससे श्लीपद भी पैदा हो सकता है। जिगर-फ्लूक पित्त के प्रवाह को रोक कर पीलिया रोग पैदा कर देता है और परिसंचरण में विघ्न डाल कर अर्बुद भी पैदा कर देता है।

कुछ परजीवी टॉक्सिन पैदा कर देते हैं जिनका परपोषी पर हानिकारक प्रभाव होता है। परजीवियों के टॉक्सिन श्लेष्मा झिल्ली में क्षोभ पैदा करते हैं, कुछ के द्वारा रक्तक्षीणता पैदा हो जाती और स्फूर्ति का ह्रास हो जाता है। हाइडैटिड पुटी से निकले हुए तरल के कारण इओसिनोफ़िलिया पैदा हो जाता है। कुछ टॉक्सिनों के कारण मानसिक गड़बड़ी पैदा हो जाती है। कुछ कृमि अपने स्रावों अथवा उत्सर्गी पदार्थों के द्वारा एलर्जी पैदा कर देते हैं, और इस प्रकार इओसिनोफ़िलों की संख्या बढ़ जाती और इओसिनोफ़िलिया पैदा हो जाता है। हेल्मिथ संक्रमण का यह एक आम लक्षण है।

लेकिन अधिकतर परपोषियों में अपने परजीवी के प्रति एक प्रतिरोध अथवा प्रतिरक्षा उत्पन्न हो जाती है और उनमें कोई खास प्रभाव नजर नहीं आता। यह प्रतिरक्षा नैसर्गिक हो सकती है और किसी पूर्वगामी संक्रमण के कारण अर्जित की हुई हो सकती है। परजीविता अक्सर परजीवी और परपोषी के बीच एक खासा समझौता होती है, परजीवी अपने आवास के अनुसार बदल जाता है और परपोषी अपने भीतर ऐंटिबॉडी बनाकर तथा ऊतकों की मरम्मत के लिए अपनी क्षमता बढ़ाकर अपनी रक्षा करता है। परपोषी और परजीवी के बीच यह नाजुक संतुलन बहुत आम पाया जाता है, लेकिन यदि इसका अभाव हुआ तो परजीवी जीवित नहीं रह पाता या परपोषी को आघात पहुँचता और वह नष्ट हो जाता है।

8

फ़ाइलम ऐनेलिडा

(PHYLUM ANNELIDA)

ऐनेलिडा ट्रिप्लोब्लास्टिक द्विपार्श्वीय सममित, सीलोमी एवं सखंड मेटाज़ोआ होते हैं। देह पर एक पतला क्यूटिकल चढ़ा होता है जिसमें अधिकतर प्राणियों में काइटिनी शूक (सीटा) मौजूद होते हैं। देहभित्ति के ऊपर एक ग्रन्थीय एपिडर्मिस चढ़ा होता है जिसके नीचे पेशियाँ होती हैं, ये पेशियाँ एक तो बाहरी वृत्ताकार पेशियों की परत और एक भीतरी अनुदैर्घ्य पेशियों की परत के रूप में होती हैं। जन्तुओं की श्रेणी में देह पहली बार विखंडतः व्यवस्थित खंडों अथवा एक रेखीय शृंखला में व्यवस्थित विखंडों (metamere) में विभाजित होता है, किन्तु सारे खंड एक कार्यात्मक इकाई के रूप में संबंधित रहते हैं। परिअंतरांग गुहा एक दीर्णसीलोम होती है जो मीजोडर्म की दो परतों के बीच की गुहा है। सीलोम में एक सिलोमी तरल भरा होता है जो असंपीडनशील (incompressible) होता है और फलतः यह एक द्रव-चालित कंकाल का काम करता है। सिर्फ एक मुखपूर्वी खंड होता है जिसे पुरोमुखंड (prostomium) कहते हैं और ऐसा ही एक पिछला खंडपश्चीय प्रदेश होता है जिसे पुच्छांत (pygidium) कहते हैं। तंत्रिका-तंत्र में एक जोड़ी मुखपूर्वी गैंग्लिया अथवा मस्तिष्क और युग्मित अधर तंत्रिका रज्जुएँ होती हैं जिसमें हर खंड में गैंग्लिया बने होते हैं। एक बंद परिसंचरण तंत्र होता है। पाचन-मार्ग लगभग सीधा और सुनिश्चित क्षेत्रों में विभेदित हो गया होता है। पाचन पूर्णतः कोशिका-बाह्य होता है। उत्सर्गी अंग विखण्डी एक्टोडर्मी नेफ्रीडिया होते हैं, जिनके अलावा नलिकाकार मीजोडर्मी सीलोमवाहिनियाँ होती हैं जो जनन-कोशिकाओं के बाहर जाने के मार्ग के रूप में काम आती हैं। लार्वा, यदि हुआ तो एक ट्रोकोस्फीयर (trochosphere) होता है। इस फ़ाइलम के सदस्यों में स्थानबद्ध, सक्रिय अथवा बाह्य परजीवी जीवन के लिए रूपांतरण पाये जाते हैं, ये प्राणी थल पर अलवणजल में या समुद्र में पाये जाते हैं। इस फ़ाइलम में 8,600 से अधिक ज्ञात स्पीशीज़ पाई जाती हैं, और यह चार क्लासों में विभाजित होती हैं जिन्हें पौलीकीटा (Polychaeta), ओलाइगोकीटा (Oligochaeta), हिरुडिनिया (Hirudinea) और आर्किऐनेलिडा (Archiannelida) कहते हैं।

1. नीऐंथीस (*Neanthes*) (क्लैमवर्म)

क्लास **पौलीकीटा** में अधिकतर समुद्री कृमि आते हैं, जिनमें से अधिकांश 5 और 10 cm. के बीच की लंबाई के होते हैं। यह विभिन्नताओं से भरा हुआ समूह है और इसमें 5300 से अधिक स्पीशीज़ पाई जाती है। इनमें एक सुनिश्चित सिर होता है जिस पर आँखें स्पर्शक (tentacles) और पैल्प (palps) होते हैं। देह खण्डों में विभाजित होता है और प्रत्येक खण्ड में प्ररूपतः पार्श्व बहिर्वृद्धियाँ होती हैं जिन्हें परापाद (parapodium) कहते हैं, इन परापादों पर बहुत से शूक बने होते है। पौलीकीटों को दो वर्गों में बाँटा जाता है जिन्हें भ्रमणी (मुक्तगामी) और स्थानबद्ध प्राणी कहते हैं। भ्रमणी पौलीकीट वेलापवर्ती (pelagic) हो सकते हैं अथवा सक्रिय बिलकारी (burrowers), या चट्टानों के नीचे रेंगने वाले, लेकिन अधिकतर स्पीशीज़ नलिकाएँ बनातीं और उनके भीतर रहती हैं जिनमें से वे आहार की खोज में बाहर आ जाती हैं। गतिशील उदाहरणों में पुरोमुख तथा परापाद सुविकसित होते हैं। स्थानबद्ध पौलीकीट नलियों में रहते जिनमें से वे प्रायः निकलकर बाहर नहीं आते। जो प्राणी नलियों अथवा बिलों में रहते हैं उनमें एक सरल पुरोमुख होता है जिस पर कोई उपांग नहीं होते और परापाद ह्रासित होते हैं।

नीऐंथीस—(पुराना नाम **नेरीस**, *Nereis*) जिसे आम तौर से क्लैमवर्म कहते हैं समुद्री तट पर चट्टानों के सूराखों में पाया जाने वाला एक सबसे बड़ा और सबसे आम पाया जाने वाला ऐनेलिड है, यह ज्वार स्तर पर रेत में श्लेष्मा की बनी अदृढ़ नलिकाओं के नलीनुमा बिलों में रहता है जिनमें से इसका अगला सिरा आहार की तलाश में बाहर को निकाल लिया जाया करता है। ये रात में सबसे अधिक सक्रिय होते हैं और आहार की तलाश में रेंगते या तैरते फिरते हैं। पौलीकीटों में यह एक सबसे अधिक रूपांतरित उदाहरण है। विभिन्न स्पीशीज में 10 cm. से 45 cm. तक लंबाई के रूप में साइज़ अलग-अलग होता है। रंग हरापन लिये हुए नीला होता है जिसमें अलग-अलग स्पीशीज में नारंगी और लाल या पीलापन लिए हुए भूरे की झलक पाई जाती है। अधिकतर स्पीशीज़ पूरे विश्व में पाई जाती हैं।

बाहरी लक्षण—एक अग्रीय सुस्पष्ट सिर होता है जो दो भागों का बना होता है, एक तो **पुरोमुखंड** होता है जिस पर पृष्ठ दिशा में चार आँखें और आगे को निकले हुए एक जोड़ी छोटे पृष्ठ स्पर्शक होते हैं, यह भाग मुख के ऊपर से आगे को बढ़ा हुआ होता है, इसके हर पार्श्व पर एक-एक मोटा दो जोड़ों वाला **पैल्प** होता है, पुरोमुखंड स्पर्शीय और सूँघने वाला होता है। सिर का दूसरा भाग **परिमुखंड** (peristomium) होता है जो अपेक्षाकृत बड़ा होता है जिस पर चार जोड़ी लंबे पतले स्पर्शक अथवा **सिरस** बने होते हैं, इन सिरसों में से हर पार्श्व पर दो पृष्ठीय और दो अधर सिरस होते हैं, ये स्पर्श का कार्य करते हैं। परिमुखंड दो देह-खंडों के जुड़ने से बना है, यह मुख के पार्श्व और अधर सीमांत बनाता है। पुरोमुखंड की अधर दिशा पर एक अनुप्रस्थ मुख बना होता है। शीर्ष के पीछे देह में 80 या अधिक खंड बने होते हैं, जिनमें से प्रत्येक खंड पर एक जोड़ी माँसल उपांग बने होते हैं जिन्हें **परापाद** कहते

हैं। ये परापाद शरीर के अगले आधे भाग में ज्यादा बड़े होते हैं और पिछले सिरे की ओर को छोटे होते जाते हैं। अन्तिम खंड को गुदा-खंड अथवा **पुच्छांत** कहते हैं, यह लंबा होता है और इसके आखिर पर एक गुदा बनी होती है, इसमें कोई परा-

चित्र 211. **नीऐंथीस वाइरेन्स** (*Neanthes virens*) । A—अग्र और पश्च सिरे ; B—बहिर्वर्तित मुख-पिंडयुक्त शीर्ष ।
Prostomium, पुरोमुखंड ; tentacle, स्पर्शक ; palp, पैल्प ; peristomum, परिमुखंड ; parapodia, परापाद ; anus, गुदा ; anal cirrus, गुदा सिरस ; jaws, जबड़े ; denticles, दंतिकाएँ ; eyes, आँखें ; everted buccal cavity and pharynx, बहिर्वर्तित मुख-गुहा और ग्रसनी ।
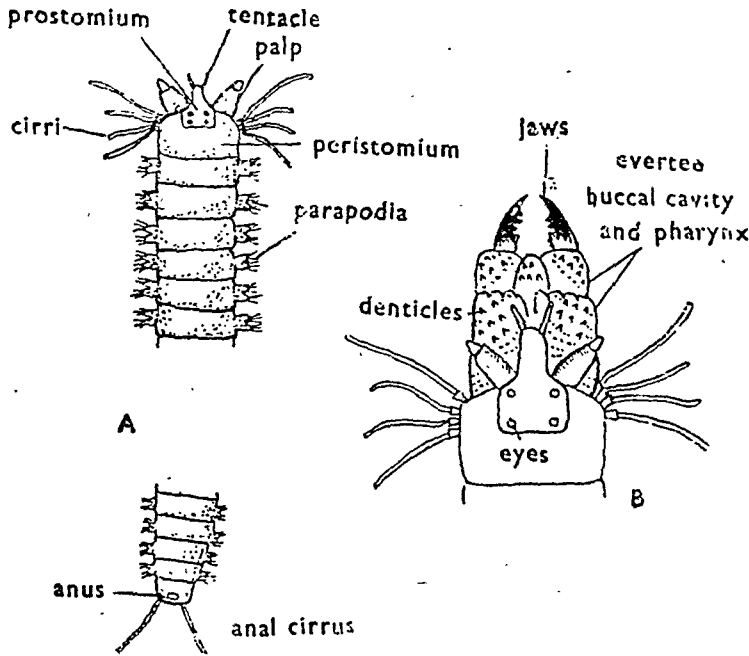
पाद नहीं होते लेकिन एक जोड़ी लंबे **गुदा सिरस** (anal cirrus) होते हैं, जो अधरीय होते हैं। पुच्छांत लार्वा के पश्चीय भाग का प्रतिदर्श है और देह-खंड इसके आगे की ओर बनते हैं।

परापाद द्विशाखी (biramous) होता है, उसमें एक पृष्ठीय **पृष्ठपादक** (notopodium) और एक अधरीय निम्नपादक (neuropodium) होता है, प्रत्येक शाखा में एक आलंबी शूक होता है जिसे **सूचिका** (aciculum) कहते हैं, सूचिका के भीतरी सिरे पर पेशियाँ जुड़ी होती हैं जिनके द्वारा परापाद को बाहर निकाला अथवा भीतर सिकोड़ा जा सकता है। पृष्ठपादक में सिलियायुक्त दो पालि बने होते हैं और इसमें प्रचुर रक्त वाहिकाएँ होती हैं । पृष्ठ दिशा में स्पर्शक-जैसा एक पृष्ठ सिरस होता है। निम्नपादक में सामान्यतः एक पालि होता है लेकिन कभी-कभी दो भी होने

हैं, जिसके नीचे एक अधर सिरस होता है। परापाद की दोनों शाखाओं पर शूकों के पूल बने होते हैं जो **शूकधर कोशों** (setigerous sacs) में गड़े होते हैं, इन कोशों पर पेशियाँ होती हैं जो शूकों को गति प्रदान कर सकती हैं, शूक काइटिन के बने होते हैं और हर एक सरल शूक शूकधर कोश के आधार पर बनी एक बड़ी कोशिका के द्वारा स्रावित होता है। शूक सन्धियुक्त होते हैं, इनमें एक प्रधान कांड (shaft) होता है और एक दूरस्थ फलक (blade) होता है। शूक दो प्रकार के होते हैं, एक में
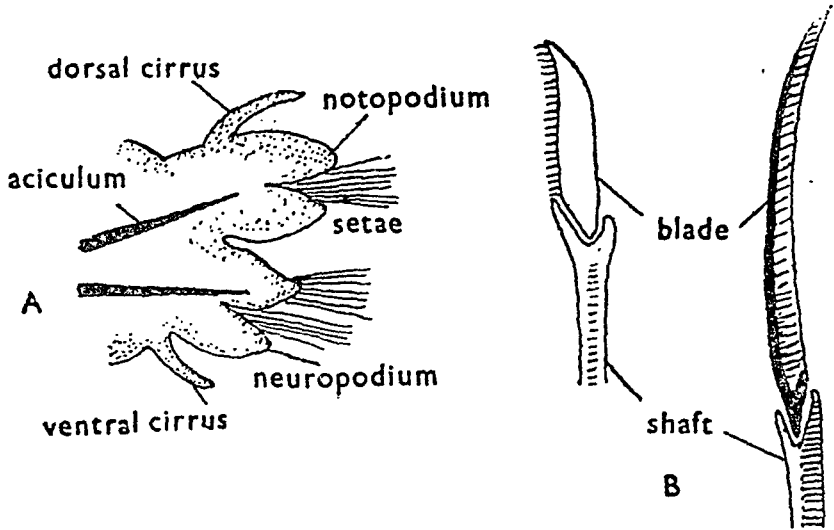
चित्र 212. A—परापाद ; B— परापाद शूक ।
Dorsal cirrus, पृष्ठ सिरस ; aciculum, सूचिका ; setae, शूक ; notopodium, पृष्ठपादक ; neuropodium, निम्नपादक ; ventral cirrus, अधर सिरस ; shaft, कांड ; blade, फलक ।

छोटा फलक और दूसरे में लंबा फलक होता है। पहली दो जोड़ी परापादों में कोई पृष्ठपादक शूक नही होते।

पाचन-तंत्र—आहार में कृमि, लार्वा और क्रस्टेशिया-प्राणी शामिल हैं, बहुत सी स्पीशीज़ शेवाल भी खाती हैं। मुख पुरोमुखंड के नीचे बना होता है, पार्श्व और अधर दिशाओं में इसका सीमांत परिमुखंड बनाता है जो कि एक मुख्य-वलय होता है। मुख एक मुख-गुहा में खुलता है, यह गुहा एक ग्रसनी में खुलती है जो चौथे देहखंड तक जाती है। मुख-गुहा तथा ग्रसनी परस्पर एक पेशीय आच्छद में लिपटी रहती हैं, भीतर इन दोनों में एक मोटे क्यूटिकल का अस्तर बना होता है, ये दोनों मिलकर अग्रांत्र होते हैं। मुख-गुहा में गहरे रंग के अनेक **पराहनु** (paragnaths) अथवा दंतिकाएँ होती हैं। ग्रसनी में पेशीय दीवारें होती हैं, इसके पश्च भाग में, जिसे दंतिकीय प्रदेश कहते हैं, विशेष पेशियाँ होती हैं जिनमें एक जोड़ी बड़े, शक्तिशाली दंतुरित सीमांतों से युक्त काइटिनी जवड़ों के खोखले आधार गड़े होते हैं; ग्रसनी के अस्तर में पराहनु होते हैं जो 12 समूहों में व्यवस्थित होते हैं। परिमुखंड की दीवार से ग्रसनी तक

फैली हुई **बहि:कर्षी पेशियों** (protractor muscles) की पट्टियां बनी होती हैं, ये पेशियाँ मुख-गुहा और ग्रसनी को एक शुंड (proboscis) के रूप में बाहर को निकाल सकती हैं, इस बाहर निकलने में सीलोमी तरल की दाब भी सहायता करती है, शुंड पूरी तरह अन्दर से बाहर को उलट जाती है और उसके कारण दोनों जबड़े शुंड के सामने चौड़े खुल जाते हैं, जबड़ों के द्वारा यह छोटे-छोटे जन्तुओं को पकड़ लेती है। इस
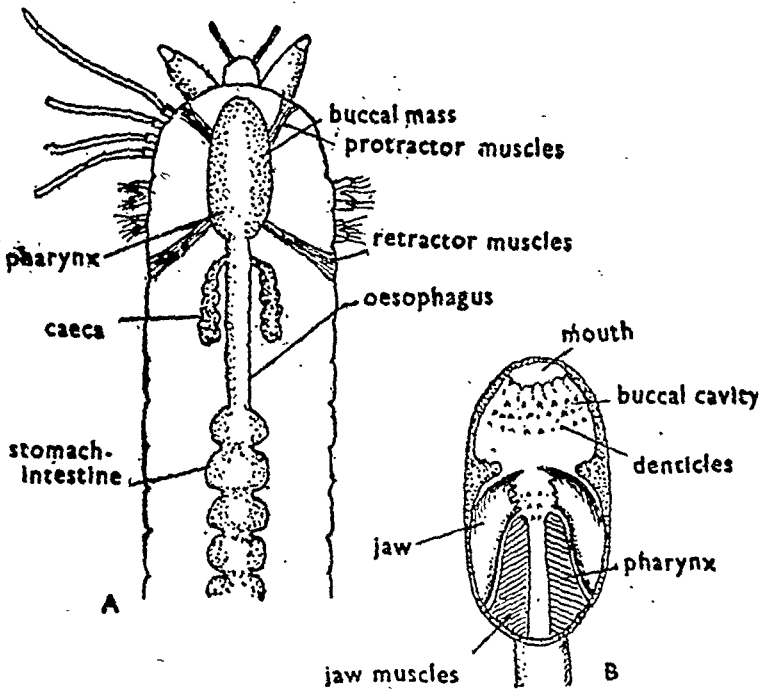
चित्र 213. A—आहार नलिका; B—मुख पिंड का अनुदैर्घ्य सेक्शन(L.S.)। Buccal mass, मुख पिंड ; protractor muscles, बहि:कर्षी पेशियाँ ; pharynx, ग्रसनी ; caeca, अंधवार्ध ; stomach-intestine, जठर अंतड़ी ; retractor muscles, अंत:कर्षी पेशियाँ ; oesophagus, ग्रसनी ; mouth, मुख ; buccal cavity, मुख गुहा ; denticles, दंतिकाएँ ; jaw, जबड़ा; jaw muscles, जबड़ा पेशियाँ ।

प्रकार का वहिर्वर्तन सामान्य अशन के दौरान होता है और मृत्यु के समय भी आम तौर से हो जाया करता है। कभी-कभी शुंड अधूरी ही बाहर को निकलती है, जिसमें केवल मुख-गुहा ही बाहर को खुल पाती है, ऐसा तब होता है जब कृमि खोद रहा होता है अथवा सतह की मिट्टी को खा रहा होता है, सीलोमी दबाव के कारण ही ऐसा संभव हो पाता है। ग्रसनी के पश्च सिरे से देह-भित्ति की ओर अन्त:कर्षी पेशियाँ फैली होती हैं जो शुंड को पीछे को खींच लेती हैं, इसके द्वारा जबड़े बंद हो जाते हैं और एक दूसरे से आगे निकल जाते हैं जिसके द्वारा वे छोटे-छोटे जन्तुओं को आहार के रूप में कारगर ढंग से पकड़ लेते हैं। जबड़े इस प्रकार के खाद्य-जन्तुओं को मार और चीर-फाड़ डालते हैं जो ग्रसनी के भीतर सिकोड़ लिए जाने के साथ-साथ

भीतर चले जाते हैं। पश्चतः ग्रसनी एक संकीर्ण **ग्रसिका** (oesophagus) में खुलती है जो अधिकतर स्पीशीज़ में 9वें खण्ड तक जाती है; दो बड़े ग्रन्थीय ग्रसनिक ग्रंधवर्ध ग्रसनी में को खुलते हैं, इनसे पाचन एन्जाइम निकलते हैं । ग्रसिका के पश्च सिरे पर 9वें खण्ड में एक संवरणी पेशी होती है जो खाने के मार्ग का नियमन करती है । कोई पृथक् आमाशय नहीं होता लेकिन दसवें खंड से लेकर अन्तिम से एक पहले खंड तक एक सीधी **आमाशय-अंतड़ी** चलती जाती है, यह अंतराखंडतः संकीर्ण हुई रहती है । आमाशय-अंतड़ी ही पाचन और अवशोषण का मुख्य स्थान है । आमाशय-अंतड़ी एक मलाशय में खुलती है जो आखिरी खंड में होता है, यह एक अंतस्थ गुदा द्वारा बाहर खुलता है । मलाशय का अस्तर क्यूटिकल का बना होता है और यही पश्चांत्र है । ग्रसिका तथा आमाशय-अंतड़ी में एक एंडोडर्मी अस्तर होता है और यह एक मध्यांत्र बनाती है । आमाशय-अंतड़ी में एक आंतरांग एपिथीलियम होता है जिसके नीचे अनुदैर्घ्य पेशी-परत होती है और उसके भीतर एक वृत्ताकार पेशी परत, तथा सबसे भीतर स्तम्भाकार कोशिकाओं का एक एपिथीलियमी अस्तर बना होता है ।

देह-भित्ति—एक काइटिनी क्यूटिकल होता है जिसमें छिद्र बने होते हैं और इसमें रेखांकन होते हैं जिनके कारण रंग-दीप्ति (iridescence) बन जाती है। इसके नीचे स्तम्भाकार एपिथीलियम में कुछ ग्रन्थि-कोशिकाएँ भी होती हैं जो छिद्रों के द्वारा बाहर को खुलती हैं । एपिडर्मिस अधर दिशा में मोटा होता है क्योंकि वहाँ पर ग्रंथियाँ ज़्यादा बड़ी तथा ज़्यादा संख्या में होती हैं। इन ग्रन्थियों से श्लेष्मा निकलती है जो जंतु के बिलों का अस्तर बनाती है । एपिडर्मिस से भीतर को एक पतली परत वृत्ताकार पेशियों की होती है, फिर उसके भीतर पेशीय-पथों के चार पृथक् अनुदैर्घ्य पूल होते हैं जिनमें से दो पृष्ठ-पार्श्वीय और दो अधर-पार्श्वीय होते हैं । प्रत्येक देह-खंड में दो जोड़ी तिर्यक् पेशियाँ (oblique muscles) होती हैं, ये मध्य अधर रेखा पर से निकलती हैं और पृष्ठ-पार्श्व दिशा में चलती हुई परापाद के आधार के आगे और पीछे की ओर वृत्ताकार पेशियों के भीतर को गड़ी रहती हैं । हर एक तिर्यक् पेशी में पेशी-तंतुओं के दो पूल होते हैं, एक पूल परापाद के आधार के पृष्ठीय भाग में जाता है और दूसरा पूल अधर भाग में जाता है, ये पेशियाँ परापाद को भीतर की ओर सिकोड़ लेती हैं । परापादों का बाहर को निकलना अधिकतर सीलोमी तरल के दबाव के कारण होता है। लेकिन हर एक परापाद में अन्य पेशियाँ भी होती हैं, सबसे बड़ी परापाद पेशियाँ देहभित्ति की वृत्ताकार पेशियों में से निकलती और सूचिकाओं पर आ मिलती हैं, इनके द्वारा सूचिकाएँ एवं परापाद बाहर को फैल जाते हैं। परापादों में ऊपर-नीचे तथा अग्र-पश्च दिशा दोनों में गति हो सकता है, जो तिर्यक् पेशियों और सीलोमी तरल के द्वारा सम्पन्न होती है । हर पेशी परत सिन्सिशियमी ऊतक होती है। पेशीन्यास के भीतर एक भित्तीय पेरिटोनियम का अस्तर बना होता है ।

सीलोम—सीलोम एक फैली हुई परिअंतरांग गुहा होती है जिसमें एक बाहरी

भित्तीय पेरिटोनियम और एक भीतरी अंतरांग पेरिटोनियम होती है, यह भीतरी अंतरांग पेरिटोनियम आहार-नाल को लपेटे रहता है। ऐनेलिडों में सीलोम दीर्ण-सीलोमी होता है जो मीज़ोडर्म के दो परतों में चिर जाने के द्वारा बनता है।
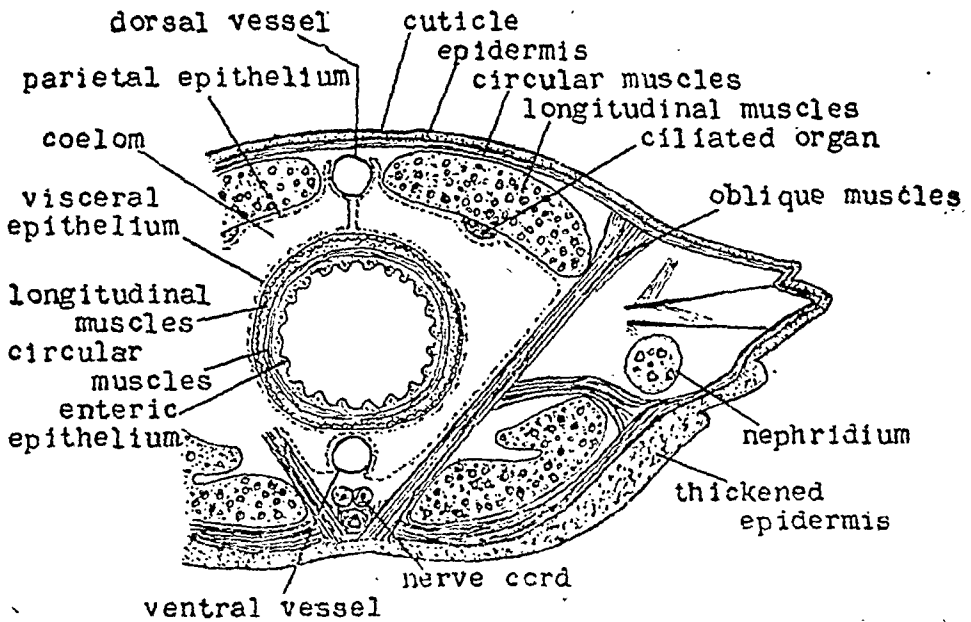
चित्र 214. नीऐंथीस का आमाशय-अंतड़ी से गुज़रता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Dorsal vessel, पृष्ठीय वाहिका ; cuticle, क्यूटिकल ; epidermis, एपिडर्मिस; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; ciliated organ, सिलियायित अंग; oblique muscles, तिर्यक् पेशियाँ; nephridium, नेफ्रीडियम; thickened epidermis, मोटा हो गया एपिडर्मिस; nerve cord, तंत्रिका रज्जु; parietal epithelium, भित्तीय एपिथीलियम; coelom, सीलोम; visceral epithelium, अंतरांग एपिथीलियम; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; enteric epithelium, आंत्र एपिथीलियम; ventral vessel, अधर वाहिका।

सीलोम एक सम्पूर्ण गुहा न रह कर एक रेखीय कक्ष-शृंखला में बदल जाता है, इन कक्षों का विभाजन अंतराखंडीय पटों (intersegmental septa) के द्वारा होता है जो देहभित्ति से भीतर की ओर को चलते हैं किंतु आहार-नाल से एकदम जुड़ नहीं जाते, फिर पटों में भी सूराख बने होते हैं, और हर सीलोमी कक्ष एक दूसरे में खुले होते हैं। प्रत्येक पट में सीलोमी एपिथीलियम की दोहरी परत होती है जिसके भीतर पेशियाँ और योजी ऊतक होते हैं। सीलोम में एक सीलोमी तरल भरा होता है जिसमें अमीबीय कोशिकाएँ अथवा सीलोमाणु पाए जाते हैं, इनके अलावा प्रजनन काल में

इस तरल में जनन-कोशिकाएं भी होती हैं जो अलग-अलग परिवर्धन अवस्थाओं पर होती हैं। नेफ्रीडिया तथा. सीलोम-वाहिनियों के द्वारा सीलोम का बाहर से संबंध बना रहता है। सीलोमी तरल शरीर को स्फीति (turgidity) प्रदान करता है, यह स्फीति चलन गति में सहायता करती है, पेशियों द्वारा संपीडित होने पर यह एक द्रवचालित कंकाल के रूप में कार्य करता है।

संचलन का होना इन तीन चीज़ों की संयुक्त क्रिया पर निर्भर होता है—परापाद, देहभित्ति पेशीन्यास, तथा कुछ हद तक सीलोमी तरल। परापाद अधःस्तर के प्रति पीछे को धक्का देते हैं जिसके कारण धीमी रेंगने वाली गति पैदा होती है, सूचिकाएँ भीतर को खींच ली जातीं और परापादों को ऊपर को उठा कर आगे बढ़ाया जाता है, जब परापाद आगे पहुँच जाते हैं तब सूचिकाएँ बाहर को फैलाई जाती हैं और फिर परापाद दोबारा अधःस्तर के प्रति पीछे को गति करते हैं। लेकिन दोनों पार्श्वों के परापाद एकांतर क्रम में गति करते हैं जिससे कि कृमि के प्रत्येक पार्श्व में क्रमिक लहरें बनती जाती हैं। परापादी चलन के अतिरिक्त, देह की तरंगित गतियों से भी कृमि रेंग लेता अथवा तेज़ी से तैर लेता है, देह तरंगन देह-भित्ति की अनुदैर्घ्य पेशियों में होने वाली संकुचन लहरों के कारण पैदा होते हैं, ये संकुचन दोनों पार्श्वों के परापादों की एकांतर लहरों के संग-संग होते हैं, एक पार्श्व की अनुदैर्घ्य पेशियाँ उस समय संकुचित होती हैं जब कि उस पार्श्व के परापाद भी गति करते हैं, जब परापाद पीछे पहुँच चुकते हैं तो अनुदैर्घ्य पेशियाँ शिथिल (relaxed) हो जाती हैं।

उत्सर्गी अंग—सिर्फ़ पहले तथा अंतिम खंड को छोड़ कर प्रत्येक देह-खंड में एक जोड़ी **नेफ्रीडिया** (वृक्कक) पाए जाते हैं। प्रत्येक नेफ्रीडियम में एक अंडाकार प्रोटोप्लाज़्मी सिन्सिशियमी पिंड होता है जिसके भीतर एक लंबी कुंडलित सिलियायित नलिका होती है जो पट के भीतर से चलती हुई अगले देहखंड में पहुँचती है जहाँ वह एक सिलियायित कीप अथवा **नेफ्रीडियममुख** (nephrostome) में खुलती है। पश्चतः यह नलिका एक संकुचनशील **नेफ्रीडियम-छिद्र** (nephridiopore) में खुलती है जो परापाद के आधार पर अधर सिरस के उद्गम स्थान के समीप अधर सतह पर बना होता है। नलिका प्रोटोप्लाज़्म पिंड में बनी हुई सुरंग के समान होती है। इस प्रकार के खुले नेफ्रीडियम को जिसमें एक सिलियायित नेफ्रीडियममुख होता है, **पश्चनेफ्रीडियम** (मेटानेफ्रीडियम) कहते हैं। नेफ्रीडिया विसरण द्वारा सीलोमी तरल और रक्त से अपशिष्ट पदार्थ इकट्ठा करते हैं, नलिका के सिलिया तरल अपशिष्ट को नेफ्रीडियम-छिद्र से बाहर निकालते हैं। अपशिष्ट से लदे सीलोमाणु अथवा अमीबीय कणिकाएँ कदाचित् सिलियायित नेफ्रीडियममुखों के द्वारा बाहर निकल जाती हैं। पौलीकीटों में मुख्य नाइट्रोजनी अपशिष्ट अमोनिया के रूप में होता है।

अधिकतर देहखंडों में खंडशः **पृष्ठीय सिलियायित अंग** (dorsal ciliated organs) (चित्र 214) होते हैं। ये अंग प्रत्येक खंड में पृष्ठ-पार्श्वीय पेशियों की भीतरी ओर को बने हुए एक जोड़ी सिलियायित टुकड़े होते हैं, ये आदिम सीलोम

वाहिनियों के अवशेष होते हैं, ये सीलोम-वाहिनियों की कीपों से मिलते-जुलते होते हैं लेकिन इनमें बाहर को निकलने वाली कोई वाहिनी नहीं होती। ये सीलोमी तरल को परिसंचरित रखते हैं।
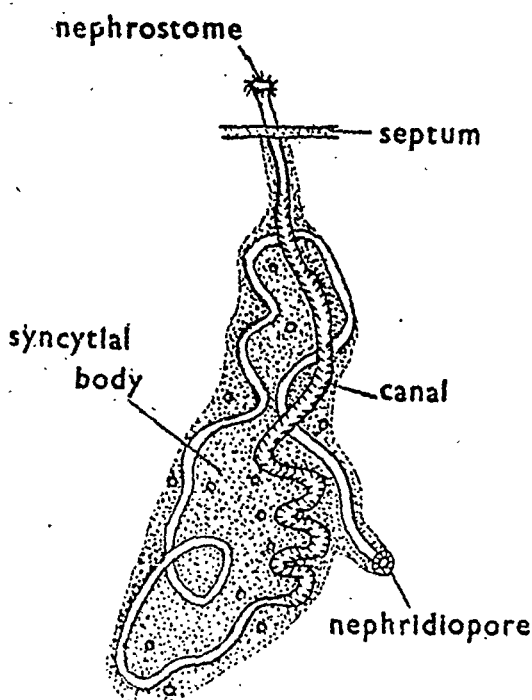
चित्र 215. नेफ्रीडियम।

Nephrostome, नेफ्रीडियममुख; septum, पट; syncytial body, सिन्सिशियमी पिंड; canal, नलिका; nephridiopore, नेफ्रीडियम-छिद्र।

परिसंचरण तंत्र—परिसंचरण तंत्र बंद प्रकार का होता है, इसमें रक्त होता है और रक्त, प्लाज्मा का बना होता है जिसमें **एरिथ्रोक्रुओरिन** (erythrocruorin) नामक श्वसन वर्णक जो कि हीमोग्लोबिन के समान होता है, घुला रहता है, प्लाज्मा में कुछ श्वेत रक्त-कणिकाएँ भी होती हैं। प्रधान रक्त वाहिकाएँ अनुदैर्घ्य होती हैं और मध्य रेखा में पड़ी रहती हैं। एक **पृष्ठीय वाहिका** (dorsal vessel) आहार-नाल की ऊपरी सतह पर पड़ी हुई पिछले सिरे से अगले सिरे तक चलती जाती है, इसकी दीवारें पेशीय होती हैं जिनमें पीछे से आगे की ओर को क्रमाकुंचनी संकुचन होते रहते हैं और रक्त को उसी दिशा में धक्का दिया जाता रहता है; संकुचन अंशतः उन श्रृंखलाबद्ध पेशीय तंतुओं द्वारा भी होता है जो पृष्ठीय वाहिका को छल्लों के रूप में घेरे रहते हैं। अग्रतः पृष्ठीय वाहिका का द्विशाखन हो जाता है और ग्रसिका के ऊपर एक जालक बनाकर पाँचवें खंड में एक **अधर-वाहिका** (ventral vessel) से आ मिलती है। अधर-वाहिका आहार-नाल के नीचे से पाँचवें खंड से लेकर अंतिम खंड तक चलती जाती है। इसमें भी पेशीय दीवारें होती हैं जिनके द्वारा कम

शक्तिशाली क्रमाकुंचनी संकुचन पैदा होते हैं जो कि रक्त को आगे से पिछले सिरे की तरफ प्रवाहित करते हैं। गुदा-खंड में एक **परिमलाशयी वलय** (circumrectal ring) के द्वारा अधर-वाहिका पृष्ठीय वाहिका से जुड़ जाती है। पृष्ठीय वाहिका मुख्यत: एकत्रकारी वाहिका होती है और अधर-वाहिका एक वितरक वाहिका होती है। सिर्फ पहले पाँच को छोड़ कर शेष प्रत्येक खंड में एक जोड़ी पाश अर्थात् लूप के समान **पार्श्व-वाहिकाएँ** (lateral vessels) अथवा **अनुप्रस्थ वाहिकाएं** (transverse vessels) होती हैं जो रक्त को अधर-वाहिका में से पृष्ठीय वाहिका में पहुँचाती हैं। पार्श्व-वाहिकाएँ रक्त को परापादों, आहार-नाल, देहभित्ति और अंतरांगों में पहुँचाती हैं। प्रत्येक खंड में रक्त को परापाद की ओर ले जाने वाली शाखा **निम्नपादक वाहिका** (neuropodial vessel) होती है, और जो शाखा रक्त को परापाद से पार्श्व वाहिका में लौटा लाती है उसे **पृष्ठपादक-वाहिका** (notopodial vessel) कहते हैं। पृष्ठपादकी तथा निम्नपादकी वाहिकाएँ खंड के दोनों पार्श्वों में पड़ी रहती
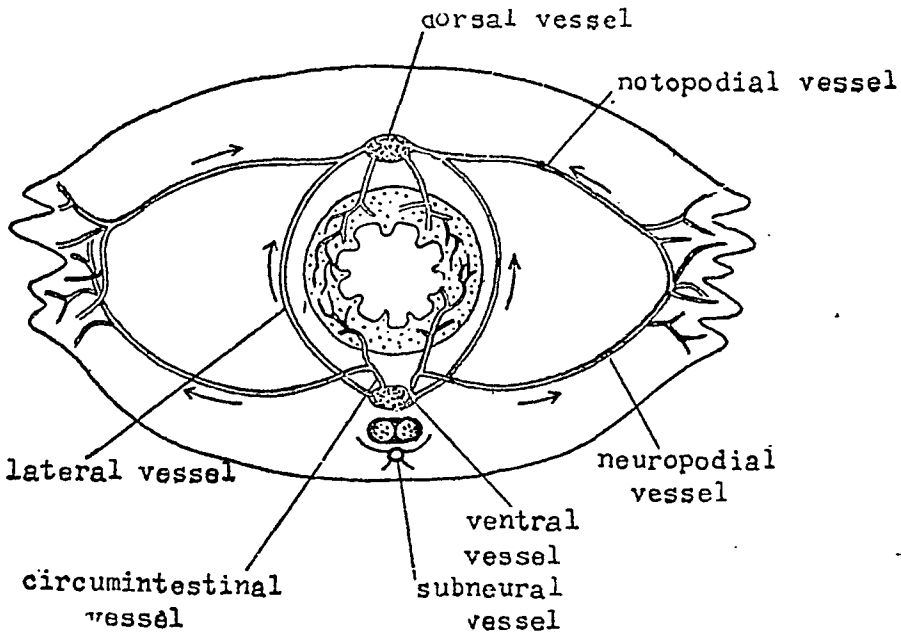
चित्र 216. **नीऐंथीस** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) जिसमें परिसंचरण तंत्र दिखाया गया।

Dorsal vessel, पृष्ठीय वाहिका; notopodial vessel, पृष्ठपादक वाहिका; neuropodial vessel, निम्नपादक-वाहिका; lateral vessel, पार्श्व वाहिका; circumintestinal vessel, परिआंत्र वाहिका, ventral vessel, अधर वाहिका; subneural vessel, अध:तंत्रिका वाहिका।

हैं और वे परापाद में तथा पृष्ठीय देह-भित्ति में कोशिकाओं का जाल अथवा जालक बनाती हैं। हर खंड में एक जोड़ी **परिआंत्र वाहिकाएँ** (circumintestinal vessels) होती हैं जो रक्त को अधर वाहिका से पृष्ठीय वाहिका में ले जाती हैं,

ये परिआंत्र वाहिकाएँ आमाशय-अंतड़ी में कोशिकाओं का एक जालक बनाती हैं। निम्नपादकी वाहिका परिआंत्र-वाहिका से उसके अधर वाहिका से निकलने से शीघ्र बाद में निकलती है। एक पतली **अधःतंत्रिका वाहिका** (subneural vessel) तंत्रिका रज्जु के नीचे से चलती जाती है, इसके भीतर रक्त आगे से पीछे की ओर को चलता जाता है, यह नीचे की देह-भित्ति से रक्त एकत्रित करती है और अधर वाहिका में रक्त की सप्लाई पहुँचाती है।

खूब रक्त सप्लाई वाले परापाद तथा रक्त-वाहिकाओं के जालकों से युक्त देह-भित्ति, ये दोनों ही श्वसन अंगों के रूप में कार्य करते हैं।

तंत्रिका-तंत्र-- तंत्रिका-तंत्र द्विपार्श्वीय होता है तथा विखंडशः व्यवस्थित रहता है। इसमें संवेदी तथा प्रेरक दोनों प्रकार के तंत्रिकाणु (neurons) होते हैं। एक द्विपाली **मस्तिष्क** होता है जिसमें अनेक तंत्रिका-कोशिकाएँ होती हैं, यह पुरोमुखंड
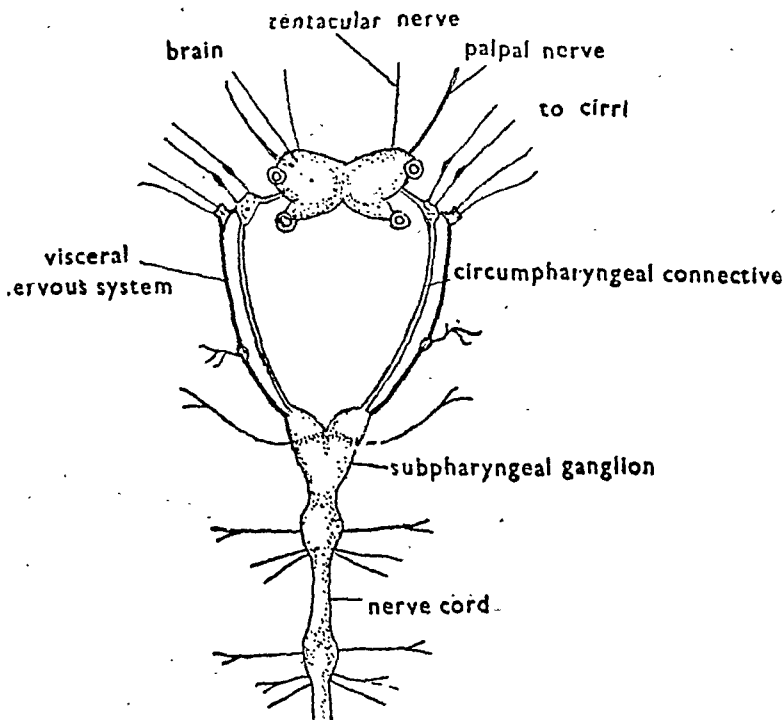
चित्र 217. तंत्रिका-तंत्र।

Brain, मस्तिष्क ; tentacular nerve, स्पर्शक-तंत्रिका ; palpal nerve, पैल्प-तंत्रिका ; to cirri, सिरसों की ओर ; visceral nervous system, अंतरांग तंत्रिका-तंत्र ; circumoesophageal connective, परिग्रसनी संयोजी ; subpharyngeal ganglion, अधःग्रसनी गैंग्लियान ; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु।

में मुख-गुहा के ऊपर स्थित होता है, सक्रिय जीवन के कारण मस्तिष्क बड़ा होता है। मस्तिष्क के बीच के क्षेत्र में दो छोटे पालि होते हैं जिन्हें **कार्पोरा पेंडकुलेटा**

(corpora pedunculata) कहते हैं, ये सहसम्बन्ध केन्द्र होते हैं और मस्तिष्क की ओर आने वाले तमाम आवेगों को समन्वित करते हैं। मस्तिष्क में से एक जोड़ी मोटे **परिग्रसनी संयोजी** (circumoesophageal connectives) निकलते हैं जो ग्रसनी का चक्कर लेते हुए उसके नीचे तीसरे खंड में आपस में जुड़ जाते हैं; मस्तिष्क के समीप हर परिग्रसनी संयोजी में एक गैंग्लियान होता है। जहाँ पर परिग्रसनी संयोजी मिलते हैं वहाँ एक अधःग्रसनी गैंग्यिलान होता है जो दो जोड़ी गैंग्लिया के समेकन से बना होता है, यह एक अधर **तंत्रिका-रज्जु** में जारी रहता है जो एक पूरे आवरण में बंद रहती है। तंत्रिका-रज्जु अधर वाहिका के नीचे पड़ी होती है, चौथे खंड से प्रारंभ होकर हर खंड में इसमें एक दोहरा गैंग्लियान होता है।

मस्तिष्क से ये तंत्रिकाएँ निकलती हैं : चार छोटी दृष्टि-तंत्रिकाएँ (optic nerves) जो आँखों में जाती हैं, दो स्पर्शी तंत्रिकाएँ जो पुरोमुखंड-स्पर्शकों को जाती हैं, तथा दो पैल्प-तंत्रिकाएं जो पैल्पों को जाती हैं। परिग्रसनी संयोजियों के छोटे गैंग्लियान से दो जोड़ी तंत्रिकाएँ निकली हैं जो हर पार्श्व पर परिमुखी सिरसों को जाती हैं। अधःग्रसनी गैंग्लियॉन से एक जोड़ी तंत्रिकाएं परापादों को जाती हैं। तंत्रिका-रज्जु के हर एक गैंग्लियॉन से तीन जोड़ी तंत्रिकाएं निकलती हैं, पहला जोड़ा अगले खंड में जाता है और शेष दो जोड़े उसी खंड, परापादों तथा देह-भित्ति में जाते हैं।

एक **अंतरांग तंत्रिका-तंत्र** (visceral nervous system) होता है जिसमें अधःग्रसनी गैंग्लियॉन से निकलती हुई और संयोजियों के समांतर चलती हुई दो प्रधान तंत्रिकाएं होती हैं, इनमें से हर एक तंत्रिका में एक पृष्ठीय और एक अधर गैंग्लियॉन होते हैं। पृष्ठ गैंग्लियॉन से दो जोड़ी तंत्रिकाएं निकलती हैं जो पृष्ठ परिमुखी सिरसों को जाती हैं, और अधर गैंग्लियॉन से निकलने वाली तंत्रिकाएं आहार-नाल के सामने वाले भाग को जाती हैं।

तंत्रिका-तंत्र प्रतिवर्तों (reflexes) के द्वारा पेशियों के कार्य को नियंत्रित तथा समन्वित करता है। हर खंड में वृत्ताकार तथा अनुदैर्घ्य पेशियों का समन्वय होता है ताकि एक परत का संकुचन स्वचालित रूप में दूसरी परत का शिथिलन कर देता है। दो संलग्न खंडों के बीच में तंत्रिकाएं होती हैं, किसी एक खंड में एक पेशी परत को उत्तेजित करने पर शेष खंडों की उसी परत में उत्तेजना हो जाती है। तंत्रिका-रज्जु में पाँच अनुदैर्घ्य **महातंतु** (giant fibres) होते हैं जो समूची लम्बाई में फैले होते हैं, इनमें से दो बड़े पार्श्व तंतु होते हैं, एक बड़ा मध्य तंतु होता है और मध्य तंतु के अगल-बगल चलते जाने वाले दो छोटे तंतु होते हैं। महातंतु समूचे शरीर का तुरंत समन्वय पैदा करते हैं क्योंकि इसमें शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ को आवेग (impulses) तेजी से चलते हैं और वे पेशियों को तेजी से संकुचित कराते हैं।

संवेदी अंग—संवेदी अंग विशेषित और सुविकसित होते हैं। स्पर्शक, पैल्प और सिरस, ये तीनों स्पर्श-अंग होते हैं। **न्यूकल अंग** (nuchal organs) पुरोमुखंड पर

बने हुए एक जोड़ी गढ़े होते हैं, इनमें सिलयायित स्तंभाकार एपिथीलियम का अस्तर बना होता है जिसमें कुछ-कुछ ग्रन्थि कोशिकाएं भी होती हैं, ये अंग रसायनग्राही और सूंघने वाले होते हैं। पुरोमुखंड पर बनी हुई चार **आँखें** होती हैं, प्रत्येक आँख वर्णांकित रेटिनी कोशिकाओं की बनी एक कटोरी होती है, इन कोशिकाओं के केन्द्रीय सिरे स्वच्छ शलाकाओं के रूप में निकले हुए होते हैं, कटोरी का सूराख एक तारा (प्यूपिल) होता है। बाहरी क्यूटिकल एक पारदर्शी कॉर्निया बन जाता है। कटोरी के भीतर एक स्वच्छ जिलेटिनी अपवर्तक लेन्स (refractive lens) होता है। रेटिनी कोशिकाएं दृष्टि-तंत्रिका के तंत्रिका-तंतुओं से जुड़ी होती हैं। आँखें प्रकाशग्राही होती हैं।
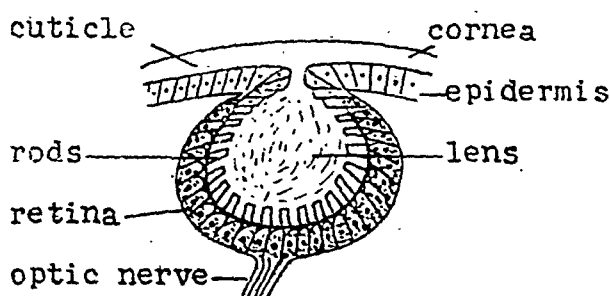
चित्र 218. आँख का उदग्र सेक्शन (V. S.)

Cuticle, क्यूटिकल ; cornea, कॉर्निया ; epidermis, एपिडर्मिस ; lens, लेन्स ; rods, शलाकाएं ; retina, रेटिना ; optic nerve, दृष्टि-तंत्रिका।

जनन-तंत्र—नीऐंथीस पृथक्-लिंगी होता है किंतु गोनड ऋतुपरक होते हैं, वे केवल प्रजनन काल ही में बनते हैं। गोनडों का निर्माण अधर सीलोमी एपिथीलियम से होता है। नर **नीऐंथीस डुमेरिलाई** (*Neanthes dumerilii*) में वृषणों का केवल एक जोड़ा होता है जो उन्नीसवें और पच्चीसवें खंडों के बीच के किसी भी खंड में बने हो सकते हैं। लेकिन **नी० वाइरेंस** तथा **नी० डाइवर्सिकलर** (*N. diversicolor*) में वृषण कई खंडों में फैले होते हैं। मादा में अंडाशय रक्त-वाहिनियों के चारों ओर कई खंडों में स्थित होते हैं। गोनडों में वाहिनियाँ नहीं होतीं, उनकी लैंगिक कोशिकाएं सीलोम में को छोड़ दी जाती हैं जो उनसे खूब भर जाता है; लैंगिक कोशिकाएं सीलोमी तरल में तिरते-तिरते परिपक्व हो जाती हैं। देह-भित्ति में अस्थायी दरार बनकर उसमें से परिपक्व युग्मक बाहर निकल जाते हैं, निषेचन बाहर समुद्र के जल में होता है।

नीऐंथीस वाइरेन्स तथा **नी० डुमेरिलाई** अत्यन्त विभेदशील स्पीशीज़ हैं, अगर बहुत से नमूनों को देखा जाए तो उनमें **व्यक्तिगत विभेद** मिलेंगे, ये अन्तर रंग और खंडों की संख्या में होते हैं। प्रजनन काल में नारंगी अथवा लाल रंगों की झलक का आना मादाओं में सबसे ज्यादा होता है। खंडों की संख्या में वृद्धि नए

खंडों के बनने से होती है जो पुच्छीय खंड के तुरंत आगे बनते जाते हैं। इनके अतिरिक्त परापादों की आकृति, उनके शूकों की संख्या, स्पर्शकों की लम्बाई और दंतिकाओं की संख्या एवं व्यवस्था में परिवर्तन हो सकता है।

न केवल व्यक्तिगत विभेद ही आम होते हैं वरन् कुछ उदाहरणों में एक ही स्पीशीज मे दो विभिन्न स्वरूप अथवा प्रावस्थाएं पाई जा सकती हैं, इनमें से एक **नीऐंथीस** प्रावस्था होती है जो नलिकाकार बिलों में रहती है और रेंगने वाली होती है, दूसरी **हेटेरोनेरीस** (*Heteronereis*) प्रावस्था होती है जो प्रजनन काल के दौरान
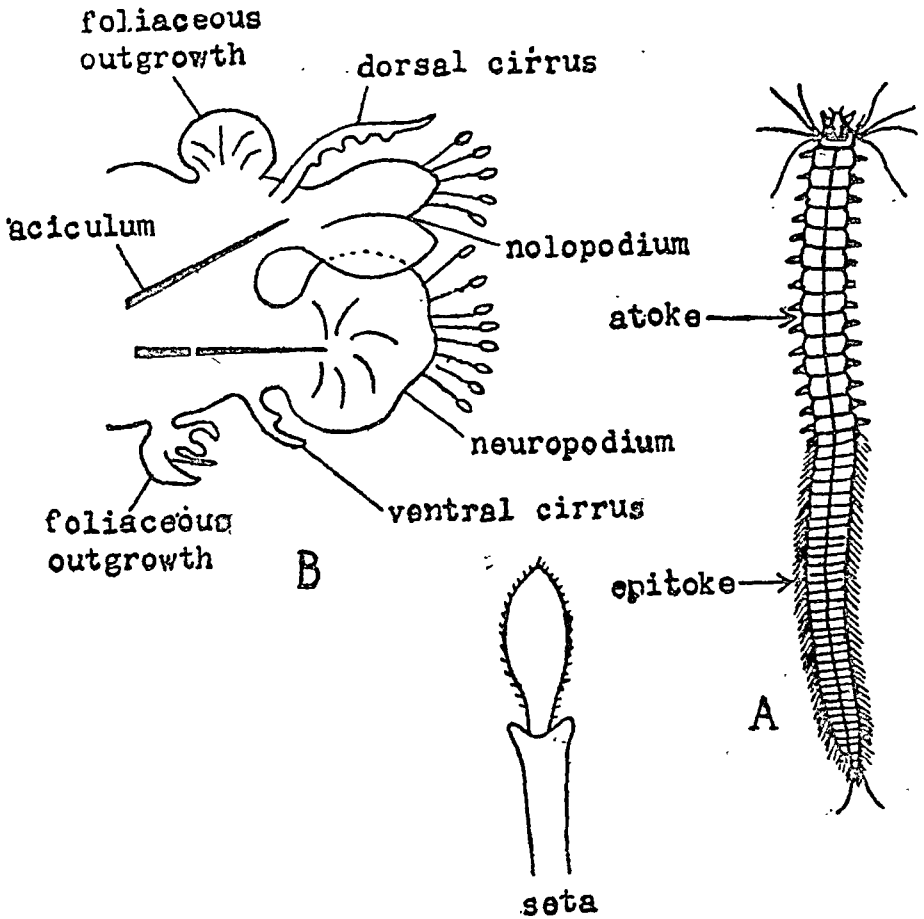
चित्र 219. A. हेटेरोनेरीस प्रावस्था ; B.—अधिजननिक क्षेत्र का हेटेरोनेरीस परापाद।

Foliaceous outgrowth, पर्णाकार बहिर्वृद्धि ; aciculum, सूचिका ; dorsal cirrus, पृष्ठीय सिरस ; notopodium, पृष्ठपादक ; neuropodium, निम्नपादक ; ventral cirrus, अधर सिरस ; atoke, अजननिक ; epitoke, अधिजननिक ; seta, शूक।

बिलों से बाहर आ जाती और स्वच्छंद तैरने वाली है, इनमें होने वाले परिवर्तन हार्मोनों द्वारा प्रेरित होते हैं जो कि मस्तिष्क के नीचे स्थित रक्त वाहिकाओं के एक

जालक में स्रवित होते हैं। इन परिवर्तनों में देह का दो स्पष्ट क्षेत्रों में विभेदन हो जाना शामिल है जिसके अंतर्गत एक अग्र प्रदेश **अजननिक** (atoke) और एक पश्च प्रदेश **अधिजननिक** (epitoke) बन जाता है। अजननिक में आँखें बड़ी हो जाती हैं और परिमुखंडी सिरस लम्बे हो जाते हैं, लेकिन अधिजननिक में परिपादों में रूपांतरण होकर उनमें अधिक बड़े और पत्तियों जैसे पालि बन जाते हैं, पृष्ठीय और अधर सिरसों में वृद्धि हो जाती है, अतिरिक्त पर्णाकार बहिर्वृद्धियाँ बन जाती हैं, शूक अधिक लम्बे और बहुसंख्यक तथा चप्पू के समान फलकों वाले बन जाते हैं। मूल परापादी पेशियों का अपघटन होकर श्वेताणु द्वारा उनका पाचन कर लिया जाता है, और नई पेशियाँ बन जाती हैं। परापादों का रूपांतरण तैरने के स्वभाव के लिए अनुकूलन है और उनकी बड़ी सतहें तैरने के दौरान अधिक तीव्र श्वसन का साधन बन जाती है। अंतिम खंड अथवा पुच्छांत पर संवेदी पैपिला बन जाते हैं। गोनड प्रचुर बन जाते और केवल अधिजननिक तक सीमित रहते हैं तथा नर के शुक्राणु **नीऐंथीस** प्रावस्था के नर के शुक्राणुओं से भिन्न होते हैं। वे ऊपर-ऊपर को तैरते आते हैं और पानी की सतह के पास पश्चीय देह-भित्ति के फटने के द्वारा अंडे देते हैं, निषेचन समुद्र की ऊपरी सतही परतों में सम्पन्न होता है।

परिवर्धन—पौलीकीट अंडा अंत्यपीतकी (telolecithal) होता है। युग्मनज में विदलन होता है जिसमें पहले दो विभाजन बराबर होते हैं जिसके फलस्वरूप चार कोशिकाएँ बनती हैं जो बराबर और एक ही समतल में पड़ी होती हैं; ये कोशिकाएँ हैं A, B, C और D। हर कोशिका से भ्रूण का एक चतुर्थांश बनता है। D अन्य कोशिकाओं से बड़ी होती है और भ्रूण का पृष्ठ भाग बनाती है, B अधरीय तथा C और A पार्श्वीय होती हैं। इसके बाद वाले विभाजन असमान और प्रथम दो विभाजनों के समकोण पर होते हैं, इनके कारण चार-चार लघुखण्डों (micromeres) के तीन चतुष्क (quartets) बन जाते हैं जो गुरुखंडों (macromeres) से विभाजित होते जाते हैं, लघुखंड जीव-ध्रुव की ओर होते हैं और गुरुखंड वर्धी-ध्रुव पर होते हैं। लघुखंड ठीक गुरुखंडों के ऊपर नहीं होते बल्कि एक चतुष्क थोड़ा-सा दाहिनी ओर को हटा हुआ होता है, उससे अगला चतुष्क थोड़ा-सा बाईं ओर को, उससे अगला पुनः दाहिनी ओर को। इस प्रकार की विभाजन व्यवस्था को **सर्पिल विदलन** (spiral cleavage) कहते हैं, जिसमें कोई सी भी कोशिका अपने से ऊपर की अथवा नीचे के दो ब्लास्टोमीयरों के बीच में होती है, और शुरू-शुरू में विदलन-समतल ध्रुवी अक्ष (जीव और वर्धी ध्रुवों को जोड़ने वाला अक्ष) के साथ तिरछा होता है। बाद में उत्तरोत्तर विदलन-समतल समकोणों पर होते हैं। सर्पिल विदलन निर्धारी होता है, यदि 4-कोशिका अवस्था पर ब्लास्टोमीयरों को अलग-अलग कर दिया जाए तो अपने से प्रत्येक ब्लास्टोमीयर से भ्रूण का केवल एक चौथाई भाग बनेगा, इसका यह अर्थ हुआ कि हर ब्लास्टोमीयर की नियति पहले से ही निर्धारित होती है, इसी को **निर्धारी** विदलन (determinate cleavage) कहते हैं। ब्लास्टोमीयरों की नियति निश्चित होती है और प्रत्येक से केवल

एक विशिष्ट ऊतक बनता है। पहले तीन चतुष्कों की कोशिकाओं से लार्वा और वयस्क का एक्टोडर्म बनता है। उससे अगले विदलन पर गुरुखंडों से एक और चतुष्क पृथक् होता है, इस चौथे चतुष्क की एक कोशिका से, जिसे **सोमैटोब्लास्ट** (somatoblast) कहते हैं, समूचा मीज़ोडर्म बनता है और शेष
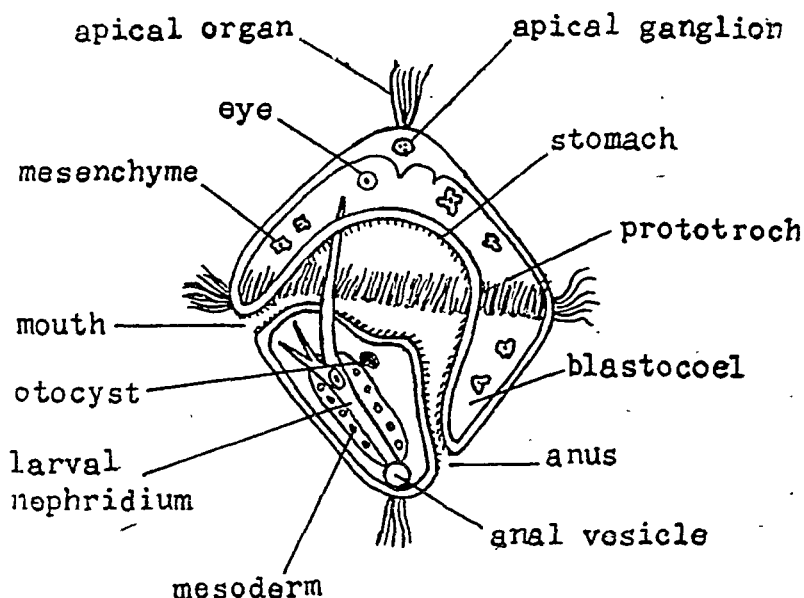
चित्र 220. ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा

Apical organ, शीर्षस्थ अंग; apical ganglion, शीर्षस्थ गैंग्लियॉन; stomach, आमाशय; prototroch, प्रोटोट्रॉक ; blastocoel, ब्लास्टोसील; anus, गुदा; anal vesicle, गुदा-आशय; mesoderm, मीज़ोडर्म; larval nephridium, लार्वा-नेफ्रीडियम; otocyst, ऑटोसिस्ट; mouth, मुख; mesenchyme, मीज़ेन्काइम; eye, आँख।

तीन कोशिकाएँ गुरुखंडों का साथ देती हुई एंडोडर्म बनाती हैं। अन्ततः कोशिकाओं से एक गैस्ट्रुला बनता है, तब तीन जनन-स्तर बन जाते हैं। गैस्ट्रुला का परिवर्धन होकर एक **ट्रोकोस्फ़ीयर** (trochosphere) अथवा ट्रोकोफ़ोर (trochophore) लार्वा बन जाता है। ट्रोकोस्फ़ीयर न केवल पौलिकीटा की ही विशेषता है बल्कि यह मौलस्का, आर्किऐनेलिडा और पौलीक्लैड टर्बेलैरिया में भी पाया जाता है। ट्रोकोस्फ़ीयर गोल और पारदर्शी होता है, इसमें एक बाहरी पतला एक्टोडर्मी एपिथिलियम होता है जो दोनों सिरों पर तथा विषुवतीय वलय पर मोटा हो जाता है। एक वक्र आहार-नाल होती है, जिसमें मुख, एक्टोडर्मी **ग्रसिका** अथवा मुखपथ, एक एंडोडर्मी **आमाशय**, और एक एक्टोडर्मी पश्चांत्र होता है जो गुदा द्वारा बाहर को खुलती है। एक्टोडर्म के मोटे हो गए भागों पर एक अग्र सिलियायित **शीर्षस्थ अंग** (apical organ) होता है जिसके साथ-साथ उसी के नीचे एक **शीर्षस्थ गैंग्लियान** होता है जो एक **नेत्र-बिंदु** (eye spot) है, पश्च सिरे पर कुछ बड़े सिलिया होते हैं, और

विषुवतीय वलय पर एक मुखपूर्वी सिलियायित पट्टी अथवा **प्रोटोट्रॉक** (prototroch) होता है। एक्टोडर्म तथा आहार-नाल के बीच में एक बड़ी गुहा **ब्लास्टोसील** होती है जिसमें मीज़ेंकाइम कोशिकाएँ, लार्वा-मीजोडर्म, तथा एक जोड़ी लार्वीय नेफ्रीडिया होते हैं, हर एक नेफ्रीडियम दो खोखली कोशिकाओं का बना होता है जिनमें से एक कोशिका में सिलिया की ज्वाला बनी होती है, नेफ्रीडियम के समीप एक ऑटोसिस्ट होता है। ट्रोकोस्फ़ीयर वेलापवर्ती (pelagic) होता है, यह अपने प्रोटोट्रॉक के द्वारा समुद्र में तैरता हुआ यहाँ-वहाँ खिसकता जाता है; और वयस्क अंग बनने शुरू हो जाते हैं। शीर्षस्थ अंग से मस्तिष्क, स्पर्शक तथा नेत्रों से युक्त पुरोमुखंड बन जाता है। इसके तुरन्त पीछे के भाग से परिमुखंड बनता है। लार्वा में उसके गुदा सिरे से वृद्धि होती है, यह सिरा एक लम्बा सिलिंडर बन जाता है जिसमें विखंडी विभाजनों द्वारा देह-खंड बनते जाते हैं। अधिक बढ़ चुके लार्वा में एक वयस्क शीर्ष और देह खंड बन जाते हैं और इन दोनों को लार्वीय ट्रोकोस्फ़ीयर का देह पृथक् करता है, यह लार्वीय प्रदेश सिकुड़ जाता है और शीर्ष तथा देह-खंड एक साथ आ जाते हैं और जुड़ जाते हैं जिससे कि लार्वा का वयस्क की दिशा में कायांतरण हो जाता है।

केंचुए

क्लास **ओलाइगोकीटा** में केंचुए तथा अनेक अलवणजलीय उदाहरण आते हैं। ओलाइगोकीटा, पौलीकीटा से इस बात में भिन्न हैं कि इनमें परापाद नहीं होते लेकिन उनके शूक कायम रहते हैं हालाँकि वे थोड़ी संख्या में होते हैं, शीर्ष का बहुत ह्रास हो गया होता है या वह होता ही नहीं, तथा पुरोमुखंड प्रायः छोटा होता है। ओलाइगोकीटों की लगभग 300 ज्ञात स्पीशीज हैं और आज केंचुओं की लगभग 1800 स्पीशीज़ पाई जाती हैं जिनमें से 40 स्पीशीज़ भारत में पाई जाती हैं। ओलाइगोकीटा की सबसे बड़ी जीनस **फ़ेरेटिमा** (*Pheretima*) है जिसमें 500 स्पीशीज आती हैं और उनमें से 13 स्पीशीज़ भारत में पाई जाती हैं। यह दक्षिण-पूर्व एशिया, मलय और भारत से लेकर जापान तक नियमित रूप से पाई जाती है, एक स्पीशीज़ ऑस्ट्रेलिया में भी मिलती है।

2. फ़ेरेटिमा (केंचुआ)

बाहरी लक्षण—फ़ेरेटिमा पौस्थुमा (*Pheretima posthuma*) नदियों के समीप पाया जाता है, इसमें लगभग 8 इंच लम्बा एक सिलिंडराकार शरीर होता है, इसका रंग गहरा भूरा और चमकदार होता है। छल्ले-जैसी खाँचें शरीर को खंडों अथवा **विखंडों** में विभाजित करती हैं जिनकी संख्या लगभग 120 होती है। अग्र सिरे पर एक **पुरोमुखंड** होता है जो कि कोई विखंड नहीं है, यह पहले विखंड में से एक खाँच द्वारा पृथक् हुआ अगला भाग होता है लेकिन कुछ हद तक यह पहले विखंड में को घुसा हुआ सा होता है, इस प्रकार के पुरोमुखंड को **पुरोअधिपालि** (proepilobous) कहते हैं। पुरोमुखंड के नीचे एक बालचंद्राकार मुख होता है। एक मोटी पट्टी-जैसा **क्लाइटेलम** 14 से 16 देह-खंडों में पेटी की तरह शरीर को घेरे रहता है, इसमें ग्रन्थियाँ होती हैं जो श्लेष्मा, ऐल्बुमेन तथा ककून बनाने वाले पदार्थ

का स्राव करती है। 18वें खंड पर अधर दिशा में एक जोड़ी बालचंद्राकार **नर जनन-छिद्र** होते हैं, और 14वें खंड की अधर सतह पर एक मध्यस्थ **मादा जनन-छिद्र** होता है। 17वें और 19वें खंडों की अधर सतह पर एक-एक जोड़ी गोल और उभरे हुए **जनन पैपिला** (genital papillae) होते हैं। चार जोड़ी छोटे अधर पार्श्वीय **शुक्रग्राही छिद्र** (spermathecal apertures) होते हैं जो 5/6, 6/7, 7/8, 8/9 खंडों की अंतराखंडीय खाँचों पर बने होते हैं। पहले, अन्तिम और क्लाइ-टेलम वाले खंडों को छोड़कर शेष हर एक खंड में काइटिनी शूकों का एक छल्ला बना होता है जो हर खंड के बीच में गड़ा होता है, शूक पीछे को रुख किए होते हैं। हर एक शूक त्वचा के एक **शूकधर कोश** (setigerous sac) में से निकलता है, और एक हल्की पीली वक्र और नुकीली शलाका के रूप में होता है। शूकों के द्वारा चलने में
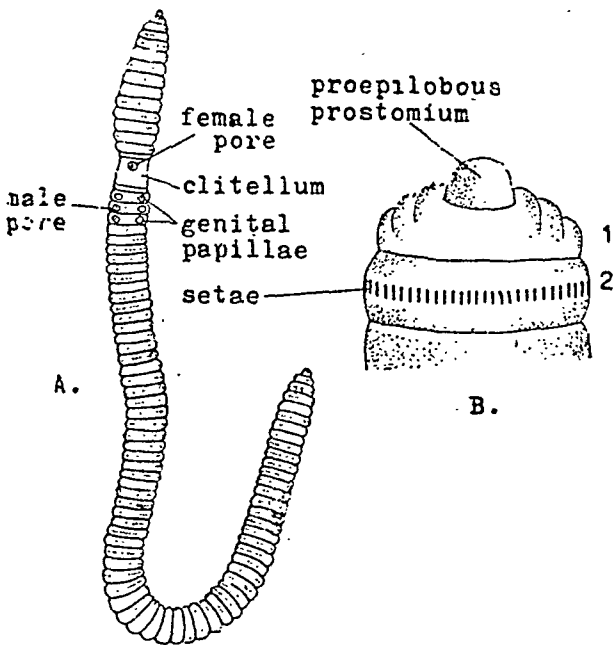
चित्र 221. **फ़ेरेटिमा पौस्थुमा**। A-अधर दृश्य; B-अग्र सिरा।
Female pore, मादा छिद्र; male pore, नर छिद्र; clitellum, क्लाइ-टेलम; genital papillae, जनन पैपिला; setae, शूक; proepilobous prostomium, पुरोअधिपालि पुरोमुखंड।

सहायता मिलती है क्योंकि वे पीछे को उन्मुख होने के कारण ज़मीन में जकड़ते चलते हैं। मध्य-अधर रेखा पर अन्तराखण्डीय खाँचों में **पृष्ठ छिद्र** (dorsal pores) होते हैं जो 12/13 से शुरू होकर आखिरी से एक पहले खण्ड तक बने होते हैं। ये छिद्र देह-गुहा और बाहर के बीच सम्बन्ध बनाते हैं तथा जब कभी किसी केंचुए को छेड़ा जाता है तब वह इन्हीं छिद्रों में से अपने सीलोमी तरल को बाहर ज़ोर से

निकालता है। अन्तिम खण्ड में एक सीधी खड़ी स्लिट-जैसी **गुदा** (anus) बनी होती है।

देह-भित्ति में एक बाहरी पतला क्यूटिकल होता है जिसमें सूक्ष्म विकर्ण (diagonal) रेखांकन बना होता है जिसके कारण रंगों की झलक निकलती है, क्यूटिकल कोलैजनी प्रोटीन तथ्‍. एक पौलीसैकेराइड का बना होता है जिसमें थोड़ी मात्रा जीलेटिन की भी होती है। क्यूटिकल के नीचे लंबी सिलिंडराकार कोशिकाओं से युक्त एककोशिका-मोटा एपिडर्मिस होता है। एपिडर्मिस हर खंड के बीच के भाग में अधिक मोटा होता है। एपिडर्मिसी कोशिकाओं के बीच में दो प्रकार की ग्रन्थि कोशिकाएँ पाई जाती हैं, **श्लेष्मा ग्रन्थि कोशिकाएँ** तथा **ऐल्बुमेन कोशिकाएँ** जिनमें से पहली वाली कोशिकाएँ मुद्गराकार और अधिक संख्या वाली हैं, उनसे श्लेष्मा का स्राव होता है जो जंतु को सूखने से बचाती है और देह को चिकना बनाकर चलन-गति में सहायता करती है, श्लेष्मा केंचुए के बिलों की दीवारों को भी चिपकाए रखती है। ऐल्बुमेन कोशिकाएँ सिलिंडराकार, अल्पसंख्यक और उनमें सूक्ष्म कणिकाओं का इकसार वितरण पाया जाता है, ये ऐल्बुमेन पैदा करती हैं। एपिडर्मिसी कोशिकाओं के भीतरी सिरों के बीच-बीच में छोटी **आधार-कोशिकाएँ** (basal cells) होती हैं जो एपिडर्मिस
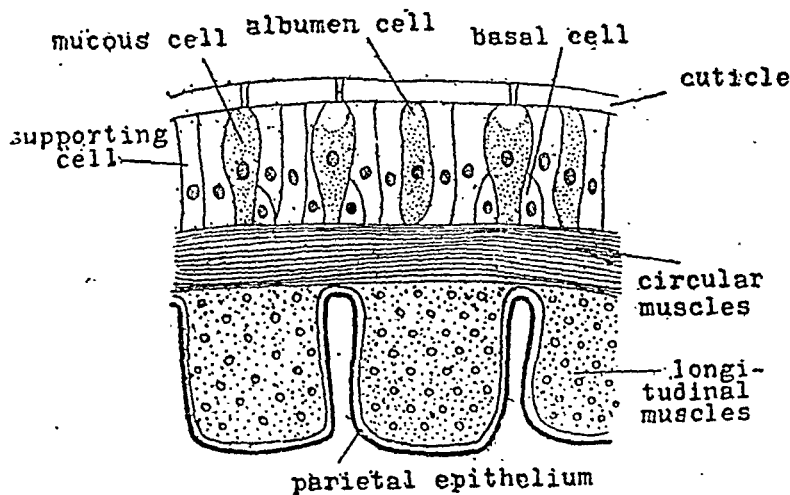
चित्र 222. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)
Supporting cell, आलंबी कोशिका; mucous cell, श्लेष्मा कोशिका; albumen cell, ऐल्बुमेन कोशिका, basal cell, आधार-कोशिका; cuticle, क्यूटिकल; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; parietal epithelium, भित्तीय एपिथीलियम।

कोशिकाओं के बीच की जगहों को भर देती हैं। इनके अलावा एपिडर्मिस में **संवेदी कोशिकाएँ** अथवा **एपिडर्मिसी ग्राही कोशिकाएँ** (epidermal receptor cells) भी होती हैं जो सिलिंडराकार होती हैं तथा समूहों के रूप में पड़ी होती हैं और उनमें

बाहरी सिरों पर बाल-जैसे प्रवर्ध बने होते हैं। एपिडर्मिस के नीचे की पेशियों की दो परतें होती हैं, एक बाहरी **वृत्ताकार पेशी परत** जिसमें वर्णक कणिकाएँ होती हैं और एक भीतरी **अनुदैर्घ्य पेशी परत**। वृत्ताकार पेशी परत की अपेक्षा अनुदैर्घ्य पेशियाँ कहीं अधिक मोटी होती हैं और इन अनुदैर्घ्य पेशियों के पेशी-तंतु अलग-अलग अनुदैर्घ्य बंडलों में पड़े होते हैं; इन बंडलों को कौलेजन तंतुओं द्वारा दृढ़ता मिली होती है। वृत्ताकार एवं अनुदैर्घ्य पेशियाँ परस्पर-विरोधी होती हैं क्योंकि एक के
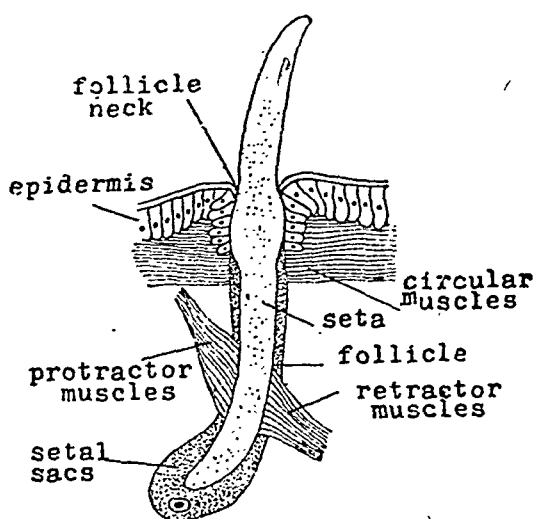
चित्र 223. एक शूक।

Follicle neck, पुटक ग्रीवा; epidermis, एपिडर्मिस; protractor muscles, बहिःकर्षी पेशियाँ; setal sac, शूक-कोश; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; seta, शूक; follicle, पुटक; retractor muscles, अंतःकर्षी पेशियाँ।

संकुचन से दूसरे का शिथिलन हो जाता है। पेशियों का अस्तर बनाते हुए सीलोमी एपिथीलियम की एक पतली **भित्ति-परत** होती है। देह-भित्ति में गड़े हुए बहुत संख्या में शूक होते हैं जो हर एक खंड के मध्य में एक वलय के रूप में पड़े होते हैं, इस प्रकार की व्यवस्था को परिशूकी (perichaetine) व्यवस्था कहते हैं। शूक काइटिनी तथा ऐल्बुमिनी पदार्थों के बने होते हैं और KOH में अघुलनशील होते हैं। प्रत्येक शूक एपिडर्मिस के एक **शूक-कोश** (setal sac) अथवा **शूकधर-कोश** (setigerous sac) का बना होता है। शूक S अक्षर की आकृति में वक्रित होते और पीछे को उन्मुख होते हैं, बीच में वे कुछ थोड़े से मोटे होते हैं; इनसे जुड़ी हुई **बहिःकर्षी** और **अंतःकर्षी** पेशियाँ होती हैं जिनके द्वारा ये बाहर को निकाले अथवा भीतर को सिकोड़े जा सकते हैं। टूट-फूट जाने के बाद शूक बाहर निकाल फेंक दिए जाते हैं और उनकी जगह बार-बार नए शूक बनते रहते हैं।

चलन—अगले खंडों, जिनमें अक्सर अगले नौ खंड होते हैं, उनकी देह-भित्ति की वृत्ताकार पेशियों के संकुचन से भींच कर अगले क्षेत्र को आगे की ओर बढ़ाया जाता है जिसके साथ ही साथ वह पतला भी होता जाता है। यह लंबा और पतला होते जाना 2 से 3 cm. प्रति सेकंड की दर से पीछे की ओर को चलता जाता है, इस विधि से कृमि का शरीर आगे की ओर धिकलता जाता है। अब अगला सिरा अधःस्तर को जकड़ लेता है और शूक अपनी पीछे को उन्मुख नोकों के द्वारा हुकों के समान कार्य करते हैं। जब वृत्ताकार पेशियों की संकुचन लहर केंचुए के अगले आधे शरीर के ऊपर से होकर गुज़र जाती है तो वृताकार पेशियाँ शिथिल हो जातीं और अग्र खंडों की देह-भित्ति की अनुदैर्ध्य पेशियाँ एक लहर के रूप में संकुचित होती हैं जो अग्र सिरे से शुरू होतीं और उस सिरे को मोटा बना देती हैं, इसके फलस्वरूप केंचुए का पश्च शरीर आगे को खिंच आता है, लेकिन अनुदैर्ध्य संकुचन की अवस्था में खंड आगे को नहीं चलते वरन् बाहर को निकले शूकों के द्वारा ज़मीन में गड़ जाते हैं। अनुदैर्ध्य पेशियों का संकुचन एक लहर की तरह पीछे को चलता जाता है। उसके बाद फिर से वृत्ताकार पेशियों की संकुचन लहर अग्र सिरे से शुरू होती, उसे पतला करती और आगे को बढ़ती है, यह लहर उससे पहले ही शुरू हो जाती है जब कि पहली वाली लहर पश्च सिरे तक पहुँची भी नहीं होती। चलन का सम्पन्न होना वृत्ताकार और अनुदैर्ध्य पेशियों के एकांतर संकुचनों के द्वारा होता है जो पीछे को चलती जाने वाली, पतला और मोटा होते जाने की लहर पैदा करते हैं, इसके दौरान एक तो अंशतः अगले सिरे का आगे को धक्का दिया जाना होता हैं और अंशतः पश्च सिरे का आगे को खींचा जाना होता है, शूक केवल सहायक कार्य ही करते हैं। केंचुआ लगभग 10 इंच प्रति मिनट की दर से चलता है। तंत्रिका-तंत्र वृत्ताकार और अनुदैर्ध्य पेशियों का इस तरह समन्वय करता है कि एक पेशी परत के संकुचन से दूसरी पेशी परत का शिथिलन हो जाता है।
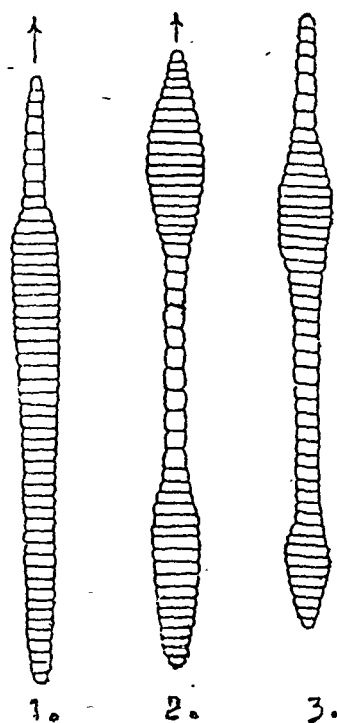
चित्र 224. चलन गति में क्रमिक अवस्थाएँ।

चलन में देह का कड़ापन देह-भित्ति की पेशियों के संकुचन से पैदा होता है, इसके कारण देह-भित्ति सीलोमी तरल के ऊपर दबाव डालती है जो कि असंपीडन-शील (incompressible) होता है, इस प्रकार सीलोमी तरल एक **द्रवचालित कंकाल** का कार्य करता है। जब वृत्ताकार पेशियाँ संकुचित होती हैं तब द्रवचालित कंकाल अनुदैर्ध्य पेशियों को आगे को फैलाता है।

सीलोम—यह एक बड़ी परिअंतरांग गुहा है जो देह-भित्ति तथा आहार-नाल के बीच में होती है, इसका बाहरी अस्तर भित्तीय एपिथीलियम का और भीतरी अस्तर अंतरांग एपिथीलियम का बना होता है। देह-भित्ति तथा आहार-नाल के बीच में अनेक अनुप्रस्थ विभाजक अथवा **पट** (septa) बने होते हैं जो सीलोम को कक्षों में बाँट देते हैं, ये पट अंतराखंडीय खाँचों से निकलते हैं। पहला पट खंड 4 और 5 के बीच होता है, यह पतला और झिल्लीदार होता है। अगले पाँच पट मोटे पेशीय
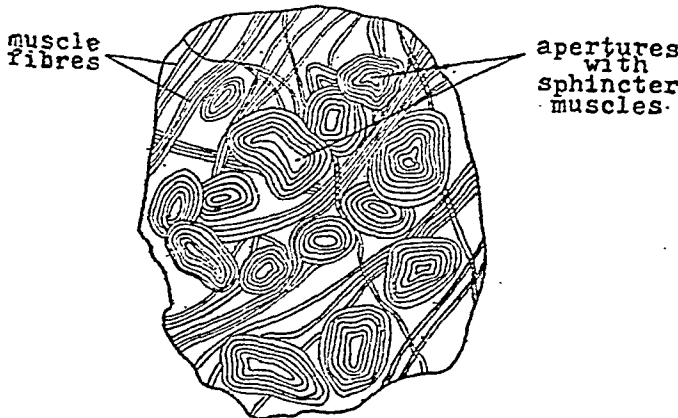
चित्र 225. एक पट का अंश।
Muscle fibres, पेशी-तंतु; apertures with sphincter muscles, संवरणी पेशियों से युक्त छिद्र।

और तिरछे पड़े होते हैं जो खंड 5/6, 6/7, 7/8, /8/9, और 10/11 के बीच होते हैं, ये पट शंक्वाकार होते हैं। इन शंकु-रूपी पटों के संकुचनों से सीलोम-तरल के ऊपर
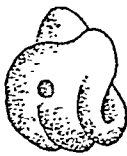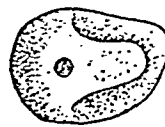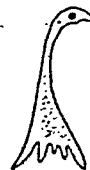
चित्र 226. सीलोमी तरल की कणिकाएँ। 1 और 2—कणिकाएँ; 3—श्वेताणु; 4 और 5 पाँच अमीबाणु।

दवाव पड़ता है जिसके द्वारा अगले खंड स्फीत हो जाते हैं और उन्हें बिल खोदने में

इस्तेमग्ल किया जाता है। शेष पट जो 11/12 से पिछले सिरे तक चलते हैं पतले झिल्लीदार और अनुप्रस्थ होते हैं, इनमें से पहले तीन (11/12, 12/13, 13/14) सम्पूर्ण होते हैं—उनमें कोई छिद्र नहीं होता और इस तरह वे अपने सीलोमी कक्षों को पूरी तरह पृथक किए रहते हैं। 14/15 से लेकर पिछले सिरे तक के शेष पटों में छोटे-छोटे सूराख बने होते हैं, इन सूराखों को अरेखित पेशियों की संवरणियाँ घेरे रहती हैं, इस प्रकार पट केंचुओं में केवल **फ़ेरेटिमा** में मिलते हैं, इनके कारण सीलोमी कक्ष एक दूसरे से सम्पर्क बनाए रखते हैं। सीलोम में एक दूधिया **सीलोमी तरल** होता है जो क्षारीय होता है, इसमें एक रंगहीन **प्लाज्मा** होता है और बहुत सी संख्या में तीन प्रकार की **सीलोमी कणिकाएँ** होती हैं। पहली प्रकार की सीलोमी कणिकाएँ **अमीबाणु** (amoebocytes) होते हैं, ये अधिक संख्या में लेकिन छोटे आकार के होते हैं, ये लगभग गोलाकार से होते हैं जिनमें बहुत से पंखुड़ी-जैसे कूटपाद निकले होते हैं, और एक बड़ा केन्द्रक होता है; अमीबाणु भक्षक-कोशिकीय (phagocytic) होते हैं, ये उत्सर्गी और बाहर से आए पदार्थ को अपने अंदर लेते और परजीवियों के प्रति सुरक्षा प्रदान करते हैं। कुछ अमीबाणु लंबे हो जाते और उनका केन्द्रक एक सिरे पर आ जाता तथा दूसरा सिरा फैल जाता है। दूसरे प्रकार की कोशिकाएँ **कणिकाणु** (granulocytes) अथवा **एलियोसाइट**(eleocyte) होते हैं, ये बहुसंख्यक, बड़े आकार के और गोल होते हैं, इनमें एक अवतलता होती है और केन्द्रक छोटा होता है। इनमें अनेक कणिकाएँ और वसा बुँदक होते हैं, ये कदाचित् पोषण से संबंधित होते हैं। एलियोसाइट शायद क्लोरैगोजन कोशिकाएँ होती हैं जो सीलोम में को छोड़ दी गई होती हैं। तीसरा प्रकार **श्वेताणु** होते हैं, ये चपटे, वृत्ताकार और एक बड़े केन्द्रक से युक्त होते हैं, इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। सीलोमी तरल पृष्ठीय छिद्रों से बाहर आता है और मिट्टी के उन बैक्टीरिया को मार डालता है जो कि केंचुए की खाल पर आ जाते हैं; इस तरल से खाल नम भी बनी रहती है जो श्वसन में मदद देती है। कुछ उत्सर्गी पदार्थ को अमीबाणु भी समेट कर सीलोम से बाहर ले जाते रहते हैं। सीलोमी तरल खाद्य पदार्थों का ऊतकों में वितरण भी करता है। कुछ केंचुओं के शरीर से उत्पन्न होने वाला प्रकाश भी इसी सीलोमी तरल के कारण होता है।

आहार-नाल—आहार-नाल एक सीधी नलिका के रूप में मुख से लेकर गुदा तक फैला होता है, इसमें सुनिर्मित क्षेत्र पाये जाते हैं। पुरोमुखंड के नीचे पहले खंड में एक बालचंद्राकार मुख होता है, यह एक **मुख-गुहा** में खुलता है जो तीसरे खंड तक चलती है। मुख-गुहा के अस्तर में वलन पड़े होते हैं और इसे चारों ओर से पेशीय सूत्र घेरे रहते हैं। मुखगुहा को मुख में से बाहर को निकाला जा सकता है। तीसरे और चौथे खण्ड में एक चौड़ी **ग्रसनी** होती है जो मुख-गुहा से एक खाँच के द्वारा पृथक् रहती है। ग्रसनी की छत एक मोटे वल्व के रूप में होती है, पार्श्व दीवारें भीतर की ओर को दो क्षैतिज शेल्फ़ बनाती हैं, जिनमें से एक शेल्फ़ दाईं ओर तथा दूसरा बाईं ओर होता है। इन शेल्फ़ों के द्वारा ग्रसनी की अवकाशिका दो

कक्षों में विभाजित हो जाती है। ग्रसनी की छत पर भीतर एक सिलियायित एपिथीलियम बना होता है जिसके ऊपर योजी ऊतक तथा रक्त वाहिनियों से युक्त बहुत सी पेशियाँ होती हैं, और उनके बाहर **ग्रसनी-ग्रन्थियाँ** अथवा **लार-ग्रन्थियाँ** होती हैं ;
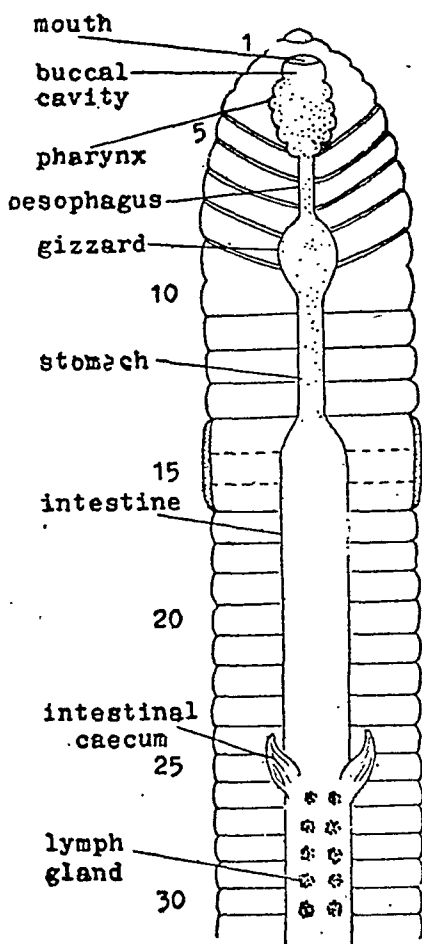
चित्र 227. आहार-नाल।

Mouth, मुख ; buccal cavity, मुख-गुहा ; pharynx, ग्रसनी ; oesophagus, ग्रसिका ; gizzard, गिज़र्ड ; stomach, आमाशय ; intestine, अंतड़ी ; intestinal caecum, आंत्र-अंधनाल ; lymph gland, लसीका ग्रन्थि ।

ये ग्रन्थियाँ **वर्णरागी कोशिकाओं** (chromophil cells) के समूहों की बनी होती हैं, इनसे **म्यूसिन** का स्राव होता है जो आहार को चिकना कर देता है और साथ ही एक **प्रोटीन-अपघटन एन्ज़ाइम** का स्राव भी होता है जो कुछ प्रोटीनों को पचा देता है। अशन के दौरान ग्रसनी एक पम्प का सा कार्य करती है, मुख को ह्यूमस अथवा मिट्टी के टुकड़ों पर गड़ा दिया जाता है, उसके बाद ग्रसनी में क्रमिक संकुचन होते हैं, जिनसे आहार मुख में को खिंचकर पहुंचता जाता है। ग्रसनी के

पीछे एक छोटी संकीर्ण ग्रसिका होती है जो 8वें खंड तक चलती जाती है। आठवें और नवें खण्ड में एक अंडाकार **गिज़र्ड** (gizzard) होता है जिसमें वृत्ताकार पेशियों की बनी मोटी दीवार होती है जिसका अस्तर स्तम्भाकार कोशिकाओं का बना होता है, स्तम्भाकार एपिथीलियम के अंदर की ओर को क्यूटिकल का एक अस्तर बना होता है। गिज़र्ड खाने को बारीक पीस देता है। 9वें से 14वें खंड तक एक नलिकाकार **आमाशय** होता है, इसमें ग्रन्थि-कोशिकाएँ होती हैं जो एक प्रोटीन-अपघटनी एन्ज़ाइम का स्राव करती हैं, इसके अस्तर में बहुत ज्यादा वलन पड़े होते हैं। कुछ केंचुओं में जिनमें **फ़ेरेटिमा** की कुछ स्पीशीज़ भी शामिल हैं, आमाशय के एपिथीलियमी अस्तर में **कैल्सीधर ग्रन्थियाँ** (calciferous glands) होती हैं जिनमें कैल्सियम और CO_2 निकलते हैं, यह कैल्सियम कदाचित् आहार-नाल के अंतः पदार्थ का उदासीनीकरण (neutralization) करता है। कैल्सीधर ग्रन्थियाँ उत्सर्गी होती हैं और उस समय जब कि रक्त में कैल्सियम तथा कार्बोनेट के आयनों का स्तर बढ़ जाता है तो ये ग्रन्थियाँ इन आयनों को रक्त से बाहर निकालती हैं, ये **कैल्साइटों** के रूप में आमाशय के भीतर को छोड़ दिए जाते हैं, जहाँ से फिर ये मिट्टी के साथ-साथ गुदा से बाहर निकल जाते है। 14वें खंड से लेकर 100वें खंड तक एक चौड़ी पतली-दीवार वाली अंतड़ी होती है। अंतड़ी का भीतरी अस्तर वलित होकर **उद्वर्ध** बनाता है, जिनमें से एक उद्वर्ध बाकी से कहीं ज्यादा बड़ा हो जाता है, इसे **टिफ्लोसोल** (typhlosole) कहते हैं, टिफ्लोसोल 26वें खंड से लेकर अंतड़ी के अंत तक पृष्ठ-मध्य दिशा में चलता जाता है। कुछ अन्य केंचुओं की तुलना में **फ़ेरेटिमा** में यह टिफ्लोसोल कम विकसित होता है। अलवणजलीय ओलाइगोकीटों में टिफ्लोसोल नहीं होता है। टिफ्लोसोल से अंतड़ी की अवशोषण सतह बढ़ जाती है। अंतड़ी के अस्तर में सिलियायित और ग्रन्थि-कोशिकाएँ होती हैं। 26वें खण्ड में एक जोड़ी अनियमित रूप में शंखाकार अंधवर्ध निकले होते हैं जो आगे के तीन या चार खण्डों में को निकले होते हैं, ये **आंत्र-अंधनाल** (intestinal caeca) होते हैं, इनमें ग्रन्थि कोशिकाएँ होती हैं, ये स्टार्च के पकने वाले एक **ऐमिलपघटनी एन्ज़ाइम** (amylatic enzyme) का स्राव करती हैं। अंतड़ी के पीछे एक मलाशय होता है जो उतना ही चौड़ा होता है जितनी कि अंतड़ी ; मलाशय में मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियाँ होती हैं जो गुदा में से बाहर को निकलती जाती हैं और केंचुए की बीट बन जाती हैं।

ऊतक-रचना—आहार-नाल की दीवार चार परतों की बनी होती है। इनमें से सबसे बाहरी परत अंतरांग पेरिटोनियम की बनी होती है, अंतड़ी और आमाशय पर इनमें से कुछ कोशिकाएँ रूपांतरित होकर **क्लोरैगोजन कोशिकाएँ** (chloragogen cells) अथवा क्लोरैगोसाइट (chloragocytes) बन जाती हैं जिनमें **क्लोरैगोसोम** नामक पीले कण भरे होते हैं,-ये केशिकाएँ रक्त में से और शायद सीलोमी तरल में से अपशिष्ट पदार्थ को अपने भीतर ले लेती हैं और उसे क्लोरैगोसोमों की पीली कणिकाओं के रूप में स्टोर कर लेती हैं, जब ये कोशिकाएँ पूरी तरह भर जाती हैं तो वे या तो **पृष्ठीय छिद्रों** अर्थात् **उत्सर्गी छिद्रों** में से लेकर बाहर निकल जाती हैं या
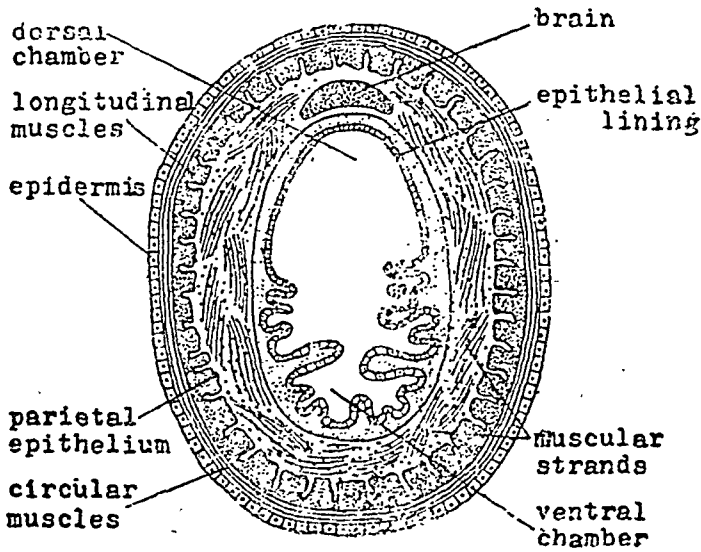
चित्र 228. केंचुए का मुख-गुहा से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Dorsal chamber, पृष्ठ कक्ष; brain, मस्तिष्क; epithelial lining, एपिथीलियमी अस्तर; muscular strands, पेशीय सूत्र; ventral chamber, अधर कक्ष; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; parietal epithelium, भित्तीय एपिथीलियम; epidermis, एपिडर्मिस; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ ।
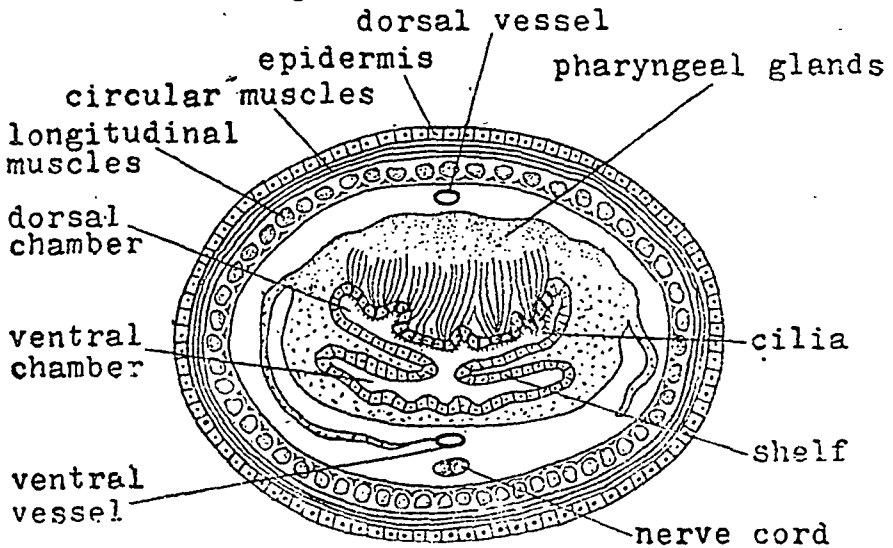
चित्र 229. केंचुए का ग्रसनी से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; epidermis, एपिडर्मिस; dorsal vessel, पृष्ठीय वाहिका; pharyngeal glands, ग्रसनी-ग्रन्थियाँ; cilia, सिलिया; shelf, शेल्फ; nerve cord, तन्त्रिका-रज्जु; ventral vessel, अधर-वाहिका; ventral chamber, अधर-कक्ष; dorsal chamber, पृष्ठीय कक्ष ।

यह अपशिष्ट आजीवन स्थायी रूप में इन क्लोरैगोजन कोशिकाओं में पड़ा रहता है। ग्लाइकोजन और वसा के संश्लेषण एवं सम्भरण की मुख्य केन्द्र ये क्लोरैगोजन कोशिकाएं होती हैं, ये वसा-अम्लों से ग्लाइकोजन बनाती हैं और उसे सुरक्षित भोजन के रूप में स्टोर करती हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसे सीलोमी तरल में पहुँचा देती
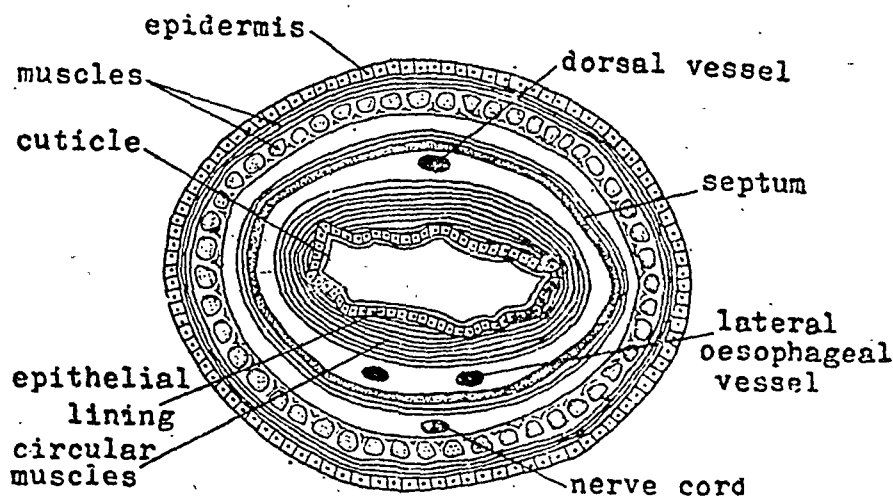
चित्र 230. केंचुए का गिज़र्ड में से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; septum, पट; lateral oesophageal vessel, पार्श्वीय ग्रसिका वाहिका; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ, epithelial lining, एपिथीलियमी अस्तर।

हैं। इस प्रकार ये कोशिकाएँ न केवल उत्सर्गी ही हैं वरन् इनका सम्बन्ध सुरक्षित आहार का भण्डार बनाने से भी है। प्रोटीनों का विऐमिनीकरण (deamination), ऐमोनिया का निर्माण, और यूरिया का संश्लेषण भी क्लोरैगोजन कोशिकाओं में होता है। अतः चयापचय में क्लोरैगोजन कोशिकाओं का बहुत ज्यादा महत्त्व है और उनका कार्य वही है जो कशेरुकियों में जिगर का है। आहार-नाल की अगली दो परतें एक तो बाहरी परत अनुदैर्घ्य पेशियों की और एक भीतरी परत वृत्ताकार पेशियों की, होती हैं। ये परतें अंतड़ी में कम विकसित होती हैं। लेकिन ग्रसिका में अधिक विकसित होती हैं। गिज़र्ड में वृत्ताकार पेशियों की एक बहुत मोटी परत होती है लेकिन अनुदैर्घ्य पेशियाँ नहीं होतीं। ग्रसनी में पेशियाँ सुविकसित होती हैं। आहार-नाल की तमाम पेशियाँ अनैच्छिक होती हैं। पेशियों के भीतर की ओर को आहार-नाल में स्तम्भाकार कोशिकाओं का एपिथीलियमी अस्तर होता है, ये स्तम्भाकार कोशिकाएँ ग्रसनी की छत और अंतड़ी में सिलियायुक्त होती हैं; अंतड़ी में अधिकतर सिलियायुक्त कोशिकाएँ ही होती है जिनमें कुछ ग्रन्थि-कोशिकाएँ भी होती हैं, ये ग्रन्थि-कोशिकाएँ एक प्रोटीन-अपघटनी एन्ज़ाइम बनाती हैं।

आहार और पाचन—केंचुओं के खाने में पत्तियाँ और मिट्टी के जैव पदार्थ शामिल हैं, और मिट्टी के साथ-साथ ये सूक्ष्म जंतुओं को भी खा जाया करते हैं। ये मिट्टी को बहुत ज़्यादा मात्रा में खाते हैं। ग्रसनी की लार-ग्रन्थियों से **म्यूसिन**
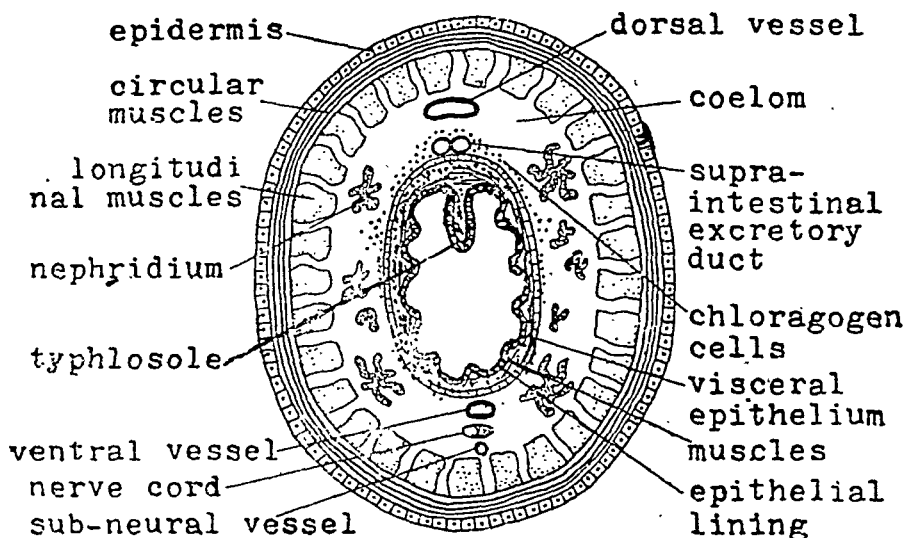
चित्र 231. केंचुए का अंतड़ी से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; coelom, सीलोम; supra-intestinal excretory duct, अधि-आंत्र उत्सर्गी वाहिनी; chloragogen cells, क्लोरैगोजन कोशिकाएँ; visceral epithelium, अंतरांग एपिथीलियम, muscles, पेशियाँ; epithelial lining, एपिथीलियमी अस्तर; subneural vessel, अधःतन्त्रिका-वाहिका; nerve cord, तन्त्रिका रज्जु; ventral vessel, अधर वाहिका; typhlosole, टिफ्लोसोल; nephridium, नेफ्रीडियम; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ।

और एक **प्रोटीन-अपघटनी एन्ज़ाइम** निकलते हैं, म्यूसिन खाने को चिकना करता और उसे पीछे को खसकते जाने में मदद देता है, प्रोटीन-अपघटनी एन्ज़ाइम प्रोटीनों का पाचन शुरू कर देता है। गिज़र्ड खाने को बारीक पीसता है ताकि आमाशय, अंतड़ी और आंत्र-अंधनालों के एन्ज़ाइम उस पर क्रिया कर सकें। इन अंगों से ये एन्ज़ाइम निकलते हैं, एक **प्रोटीन-अपघटनी एन्ज़ाइम** जो प्रोटीनों को पेप्टोनों में बदल देता है, डायस्टेज़ जो स्टार्च को शर्करा में बदल देता है, **लाइपेज़** जो वसाओं को तोड़ता है, और साथ ही **ऐमिलेज़** तथा **इनवर्टिन** भी, जो शर्कराओं पर क्रिया करते हैं। पाचन का अधिकतर भाग अंतड़ियों में होता है और पचा हुआ भोजन अंतड़ी में अवशोपित होकर रक्त में पहुँच जाता है। सीलोमी तरल तथा रक्त आहार को ऊतकों तक पहुँचाते हैं।

लसीका ग्रन्थियाँ—अंतड़ी के ऊपर 26वें खण्ड से लेकर पश्च सिरे तक हर खण्ड में एक जोड़ी सफ़ेद-सफ़ेद **लसीका ग्रन्थियाँ** (lymph glands) होती हैं; ये पालियुक्त होती और पृष्ठ वाहिका के हर पार्श्व में पड़ी रहती हैं। लसीका ग्रन्थियों में अमीबाणु बनते हैं जो भक्षिकोशिकीय होते हैं। लसीका ग्रन्थियों के कुछ भागों में ये सब चीजें पाई जाती हैं : अपवर्तनी कणिकाएँ, अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में क्लोरैगोजन कोशिकाएँ, तथा केंचुओं के परजीवी **मॉनोसिस्टिस** की पुटियाँ एवं स्पोर।

परिसंचरण-तंत्र—वाही-तंत्र रक्त से भरी नलिकाओं का एक बंद तंत्र होता है। रक्त का प्लाज़्मा घुले हीमोग्लोबिन के कारण लाल होता है, इसमें केन्द्रकयुक्त रंगहीन कणिकाएँ होती हैं। तीन प्रधान अनुदैर्घ्य रक्त वाहिकाएँ होती हैं, एक **पृष्ठ वाहिका** (dorsal vessel) जो आहार-नाल के ऊपर पड़ी होती है, एक **अधर वाहिका** (ventral vessel) जो आहार-नाल के नीचे होती है, और एक **अधःतंत्रिका वाहिका** (subneural vessel) जो अधर दिशा में तंत्रिका-रज्जु के नीचे पड़ी होती है। पृष्ठ-वाहिका में रक्त पीछे से आगे की ओर को बहता है, लेकिन अधर और अधःतंत्रिका वाहिकाओं में रक्त आगे से पीछे को बहता है। इस केंचुए का रक्त परिसंचरण कशेरुकियों में पाए जाने वाले रक्त परिसंचरण के विपरीत होता है। पृष्ठ वाहिका आहार-नाल के ऊपर मध्य-अधर दिशा में पीछे से आगे की ओर एक

चित्र 232. परिसंचरण-तंत्र।

Lateral heart, पार्श्व हृदय; supra-oesophageal, अधि-ग्रसिकीय; anterio- ioops, अग्र पाश; lateral oesophageal heart, पार्श्व ग्रसिकीय हृदय; dorsal vessel, पृष्ठ-वाहिका; dorso-intestinal, पृष्ठ-आंत्रीय; commissural intestinal plexus, समयोजी आंत्र जालक; ventral vessel, अधर वाहिका; sub-neural, अधःतंत्रिका; ventro-intestinal, अधर-आंत्र; septo-intestinal, पट-आंत्रीय; ventro-tegumentary, अधर-त्वचिक; lateral-oesophageal, पार्श्व ग्रसिकीय।

सिरे से दूसरे सिरे तक चलती है। यह मोटी और संकुचनशील पेशीय दीवारों से युक्त होती है, हर खण्ड में इसमें एक जोड़ी वाल्व होते हैं जो रक्त को केवल आगे

ही की ओर बहने देते हैं। पृष्ठ वाहिका 14वें खण्ड के पीछे प्रधान एकत्रकारी वाहिका होती है, लेकिन उसके सामने यह रक्त का वितरण करती है। पिछले भाग से 14वें खण्ड तक हर खण्ड में दो जोड़ी **पृष्ठ-आंत्र वाहिकाएँ** और अधःतंत्रिका वाहिका से आने वाली एक जोड़ी **समयोजी** वाहिकाएँ आकर पृष्ठ-वाहिका में मिल जाती हैं। हर पट के पीछे समयोजी वाहिकाएँ एक पाश बनाती हैं और उनमें देह-भित्ति, नेफ्रीडिया तथा प्रोस्टेट ग्रन्थियों से रक्त आता है, ये हर खण्ड में एक **पट-आंत्र** (septo-intestinal) शाखा द्वारा अंतड़ी में रक्त पहुँचाती हैं।

अधर वाहिका दूसरे खण्ड से पश्च सिरे तक चलती जाती है, इसमें कोई वाल्व नहीं होते और यह प्रधान वितरक वाहिका है, इसमें से एक जोड़ी **अधर त्वचिक वाहिकाएँ** (ventro-tegumentary vessels) निकलती हैं जो हर खण्ड में पट के सामने हर पार्श्व में एक-एक होती हैं। अधर-त्वचिक वाहिकाएँ देह-भित्ति के सहारे-सहारे ऊपर को चलती जाती हैं और देह-भित्ति, त्वचिक नेफ्रीडिया, पट नेफ्रीडिया, गोनडों, शुक्राशयों तथा शुक्रग्राहियों में रक्त पहुँचाती हैं। अधर वाहिका से 13वें खण्ड से पीछे की ओर हर खण्ड में एक **अधार-आंत्र** वाहिका भी निकलती है, ये वाहिकाएँ रक्त को अंतड़ी के निचले भाग में पहुँचाती हैं। अंतड़ी में शाखाएँ रक्त जालक बनाती हैं जिनमें अंतड़ी की दीवार में पाए जाने वाले दो जाल होते हैं।

अधःतंत्रिका वाहिका (subneural vessel) 14वें खण्ड से पीछे को मध्य-अधर दिशा में तंत्रिका-रज्जु के नीचे चलती है, यह एक पतली वाहिका होती है और अधर देह-भित्ति से रक्त को इकट्ठा करती तथा कुछ रक्त अंतड़ी को देती चलती है। आगे की ओर अग्र सिरे से 14वें खण्ड तक आहार-नाल की हर अधर पार्श्व दिशा पर एक जोड़ी **ग्रसिका वाहिकाएँ** (oesophageal vessels) होती हैं, जो देह-भित्ति, शुक्रग्राहियों और शुक्राशयों से रक्त को एकत्रित करती हैं। 14वें खण्ड में ये नीचे को झुककर अधः तंत्रिका वाहिका से जुड़ जाती हैं।

आमाशय के ऊपर एक **अधि-ग्रसिका वाहिका** (supra-oesophageal vessel) 9वें से 13वें खण्ड तक चलती है, यह दो जोड़ी अग्र पाशों के द्वारा जो कि 10वें और 11वें खण्डों में आमाशय को घेरे होते हैं पार्श्व ग्रसिका वाहिकाओं से रक्त प्राप्त करती है, यह एकत्रित रक्त को 12 और 13 खण्ड में **पार्श्व ग्रसिका हृदयों** के द्वारा अधर वाहिका में पहुँचाती है। अग्र प्रदेश में पृष्ठ वाहिका एकत्रित रक्त का वितरण करती है, इसमें कई शाखाएँ निकलती हैं जो मुख-गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका और गिज़र्ड में रक्त पहुँचाती हैं, लेकिन रक्त का मुख्य भाग 4 जोड़ी हृदयों से होकर अधर वाहिका में पहुँच जाता है।

हृदय संकुचनशील होते हैं और आहार-नाल को घेरे रहते हैं, ये 7, 9, 12 और 13 खण्डों में होते हैं। 12 और 13 खण्डों के हृदय ऊपर पृष्ठ वाहिका और अधि-ग्रसिका वाहिका दोनों से जुड़े होते हैं, इन्हें **पार्श्व-ग्रसिका हृदय** कहते हैं, इनकी मोटी पेशीय दीवारें होती हैं और एक जोड़ी वाल्व पृष्ठ वाहिका तथा अधि-ग्रसिका वाहिका के साथ होने वाली प्रत्येक संधि पर तथा एक अन्य जोड़ी वाल्व अधर सिरे

पर होते हैं, ये वाल्व रक्त को केवल नीचे की ओर को बहने देते हैं। 7 और 9 खण्डों के शेष दो हृदय **पार्श्व हृदय** होते हैं, ये पृष्ठ-वाहिका को अधर वाहिका के साथ
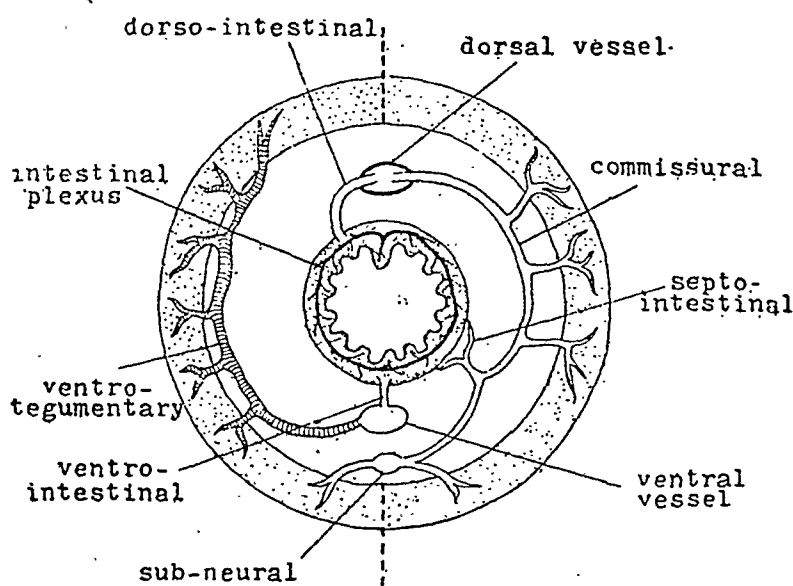
चित्र 233. केंचुए का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.), विंदु-रेखा के वाईं ओर खण्ड में से और दाईं ओर पट में से गुज़रता हुआ।
Dorso-intestinal, पृष्ठ-आंत्र वाहिका; dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; commissural, समयोजी; septo-intestinal, पट-आंत्र; ventral vessel, अधर वाहिका; subneural, अधःतंत्रिका; ventro-intestinal, अधर-आंत्र; ventro-tegumentary, अधर त्वचिक; intestinal plexus, आंत्र जालक।
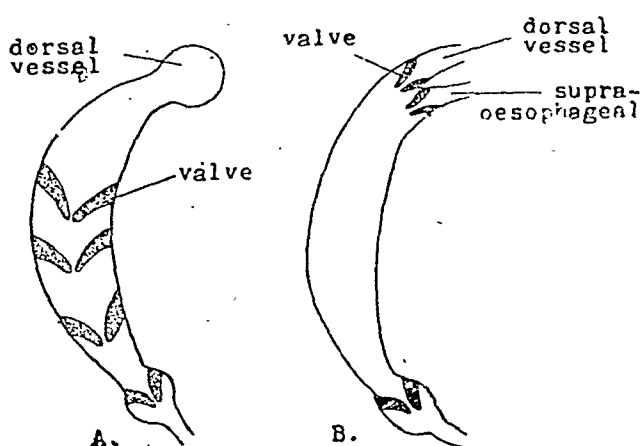
चित्र 234. A—पार्श्व हृदय; B—पार्श्व ग्रसिका हृदय।
Dorsal vessel, पृष्ठ-वाहिका; valve, वाल्व; supra-oesophageal, अधि-ग्रसिका वाहिका।

जोड़ते हैं; इनमें चार जोड़ी वाल्व होते हैं जो रक्त को केवल नीचे की ओर को वहने देते हैं।

परिसंचरण—पृष्ठ-आंत्र वाहिकाओं, अंतड़ी के रक्त जालकों और समयोजियों के द्वारा पृष्ठ-वाहिका में एकत्र होने वाला रक्त कुछ तो अग्र आहार-नाल में पहुँचा दिया जाता है लेकिन मुख्यतः यह हृदयों से होकर अधर वाहिका में पहुँच जाता है। अधर वाहिका में रक्त आगे को बढ़ता हुआ हृदयों के सामने अग्र भाग में पहुँच जाता है किन्तु रक्त का प्रधान भाग पीछे को वह आता है जो कि अधर त्वचिक वाहिकाओं के द्वारा देह-भित्ति और सीलोम में पड़े अंगों में तथा अधर-आंत्र वाहिकाओं के द्वारा आहार-नाल तक पहुँच जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि तमाम अंगों में रक्त अधर वाहिका के द्वारा पहुँचता है। अधर देह-भित्ति से रक्त अधःतंत्रिका वाहिका द्वारा एकत्रित होता है और यह वाहिका पुनः कुछ रक्त पार्श्व-ग्रसिका वाहिकाओं के द्वारा अग्र प्रदेश से भी प्राप्त करती है। यह रक्त अधःतंत्रिका वाहिका से समयोजियों के द्वारा होता हुआ पृष्ठ वाहिका में पहुँच जाता है। पार्श्व-ग्रसिका वाहिकाएँ अग्र पाशों के द्वारा रक्त को अधि-ग्रसिका वाहिका में भी भेजती हैं जो फिर इसे पार्श्व-ग्रसिका हृदयों में से अधर-वाहिका में पहुँचा देती है।
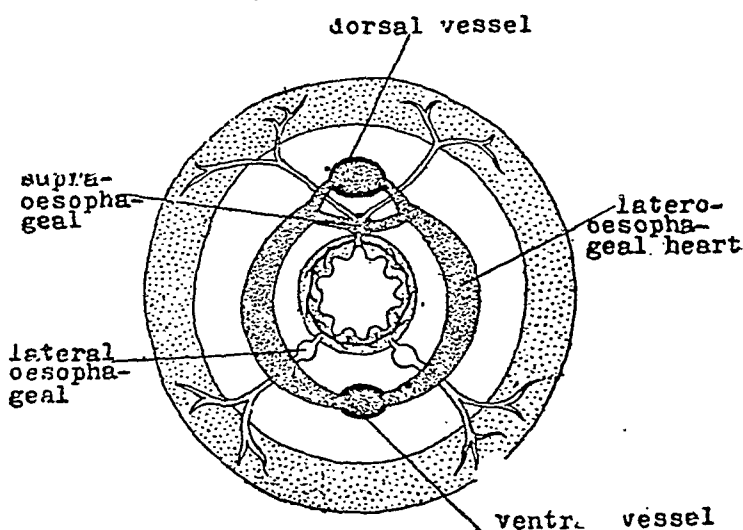
चित्र 235. केंचुए का अनुप्रस्थ सेक्शन, पार्श्व-ग्रसिका हृदयों से गुजरता हुआ। Dorsal vessel, पृष्ठ-वाहिका; latero-oesophageal heart, पार्श्व-ग्रसिका हृदय; ventral vessel, अधर वाहिका; latero-oesophageal, पार्श्व-ग्रसिका वाहिका; supraoesophageal, अधिग्रसिका वाहिका।

रक्त पचे हुए आहार को देह के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचा देता है और नाइट्रोजनी अपशिष्ट तथा CO_2 के समान उत्सर्गी पदार्थों को इकट्ठा करता हुआ उन्हें नेफ्रीडिया, त्वचा और सीलोमी तरल में पहुँचा देता है। श्वसन लगभग सभी जलीय और स्थलीय ओलाइगोकीटों में त्वचा में से गैसों के विसरण के द्वारा होता है, त्वचा

में, अपेक्षाकृत बड़े प्राणियों में, बाहरी एपिडर्मिसी परत के भीतर एक केशिकीय जालक पाया जाता है। स्थलीय स्पीशीज़ में गैसों के विसरण के लिए आवश्यक नमी की फ़िल्म श्लेष्मा ग्रन्थियों, सीलोमी तरल और नेफ्रीडियल उत्सर्गों द्वारा उपलब्ध होती है। प्लाज़्मा का हीमोग्लोबिन त्वचा की केशिकाओं से O_2 निकाल लेता है लेकिन एक नम त्वचा होनी ज़रूरी है जहाँ हीमोग्लोबिन के साथ O_2 जुड़ सके ताकि वह रक्त द्वारा ले जायी जा सके। हीमोग्लोबिन एक कारगर वर्णक होता है और यह या तो बाहरी हवा में से या अपेक्षाकृत कम ऑक्सीजन वाले वातावरण में से O_2 को ले सकता है। अतः केंचुए सु-वायवित जल में रह सकते हैं, और डूबते नहीं हैं। ये बिना ऑक्सीजन के भी कई-कई घंटों तक जीवित रह सकते हैं, ऐसी स्थिति में उनमें कदाचित् अनॉक्सीय श्वसन होता है।
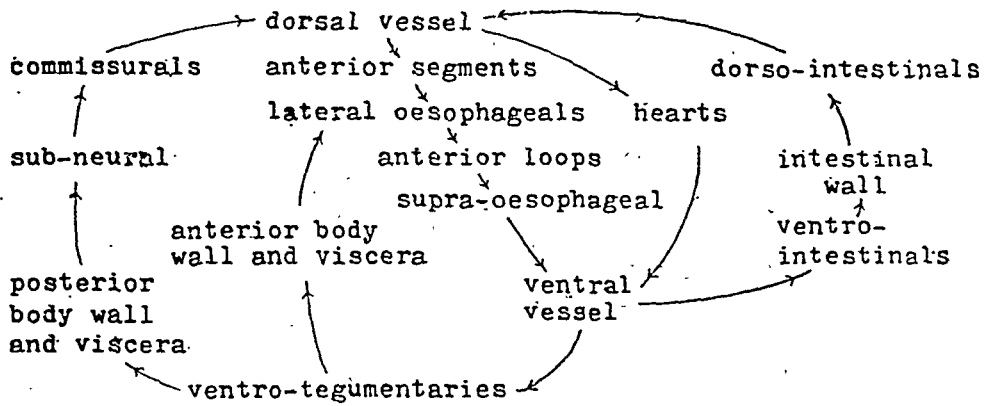
चित्र 236. रक्त-परिसंचरण।

रक्त-ग्रन्थियाँ (Blood glands)—खंड संख्या 4, 5 और 6 में ग्रसनी पिंड के लाल रंग के छोटे-छोटे गोल पुटकों (follicles) के अनेक समूह बने होते हैं, इन्हें **रक्त-ग्रन्थियाँ** कहते हैं। पुटकों में एक सिन्सिशियमी दीवार होती है जिसके भीतर खुली-खुली कोशिकाओं का एक पिंड घिरा होता है। रक्त-ग्रन्थियाँ ग्रसनी-नेफ्रीडिया और लार ग्रन्थियों से जुड़ी होती हैं। रक्त-ग्रन्थियाँ रक्त कणिकाओं और हीमोग्लोबिन का निर्माण करती हैं, ये कदाचित् उत्सर्गी होती हैं।

उत्सर्गी तन्त्र—केंचुओं के उत्सर्गी अंग **नेफ्रीडिया** नामक कुण्डलित नलिकाएँ होती हैं जो खंडशः पुनरावर्तित होती हैं। **फेरेटिमा** में हर खण्ड में छोटे आकार के नेफ्रीडिया बहुत संख्या में होते हैं, इस प्रकार के नेफ्रीडिया को **सूक्ष्मनेफ्रीडिया** (micro-nephridia) अथवा **अंशनेफ्रीडिया** (meronephridia) कहते हैं। केवल पहले तीन खण्डों को छोड़कर नेफ्रीडिया हर खण्ड में पाए जाते हैं। देह में अपनी स्थिति के आधार पर नेफ्रीडिया तीन प्रकार के होते हैं। पहला प्रकार **पट-नेफ्रीडिया** (septal nephridia) का है जो 15वें खण्ड से लेकर पश्च सिरे तक पटों से चिपके होते हैं।

दूसरा प्रकार **त्वचीय नेफ्रीडिया** (integumentary nephridia) का होता है जो 7वें खण्ड से लेकर आखिरी खण्ड तक देह-भित्ति की भीतरी सतह पर चिपके रहते हैं। तीसरा प्रकार **ग्रसनीय नेफ्रीडिया** (pharyngeal nephridia) होता है जो 4थे, 5वें और 6वें खण्डों में पड़ी होती हैं।

पट-नेफ्रीडिया (Septal nephridia)—पट-नेफ्रीडियम में एक सिलियायित कीप अथवा **नेफ्रीडियममुख** होता है जिसके पीछे एक छोटी गर्दन आती है जो नेफ्रीडियम के काय में जारी रहती है, काय का अन्तिम भाग **अंतस्थ वाहनी** (terminal duct) में जारी रहता है। नेफ्रीडियममुख सीलोम में पड़ा होता है, इसमें एक केन्द्रीय कोशिका में मुख-जैसा छिद्र बना होता है जिसे एक बड़ा ऊपरी होंठ और एक छोटा निचला होंठ घेरे रहते हैं; होंठों पर सिलिया की अनेक पंक्तियाँ बनी होती हैं। गर्दन संकीर्ण होती है और उसमें एक सिलियायुक्त नलिका होती है, यह नेफ्रीडियम के काय
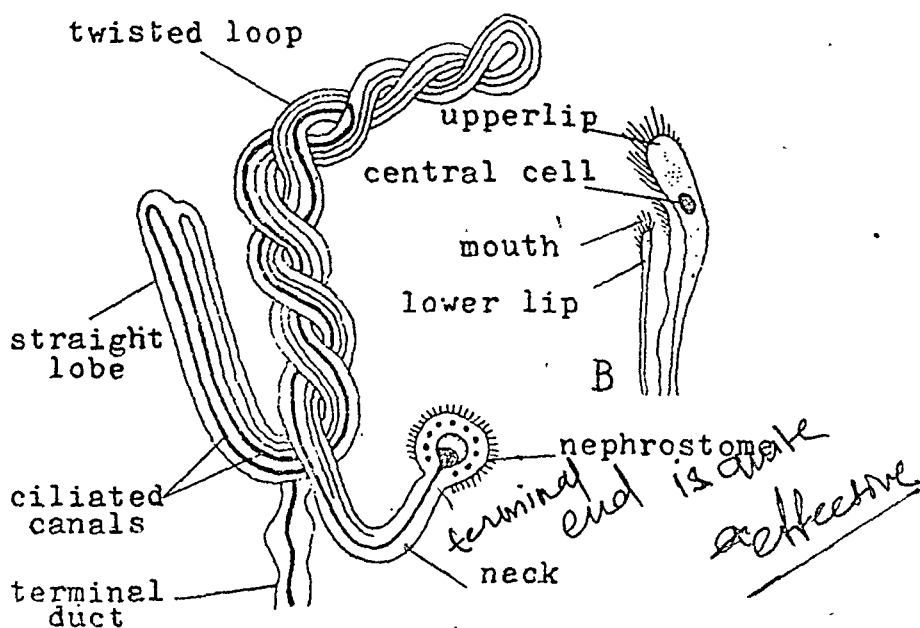
चित्र 237 A.—पट-नेफ्रीडियम; B-नेफ्रीडियममुख का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L.S.) Twisted loop, ऐंठा हुआ लूप; straight lobe, सीधा पालि; ciliated canals, सिलियायित नलिकाएँ; terminal duct, अन्तस्थ वाहिनी; neck, गर्दन; nephrostome, नेफ्रीडियममुख; upper lip, ऊपरी होंठ; central cell, केन्द्रीय कोशिका; mouth, मुख; lower lip, निचला होंठ।

से जुड़ी रहती है। काय में एक छोटा सीधा पालि और एक लम्बा ऐंठा हुआ लूप (पाश) होता है, इस लूप में शाखाएँ होती हैं जोकि एक दूसरे पर सर्पिल रूप में ऐंठी हुई होती हैं; ऐंठनों की संख्या 9 से 13 होती है, इनमें एक शाखा कीप की गर्दन से और अंतस्थ वाहिनी से जुड़ी होती है और दूसरी शाखा सीधे पालि से। नेफ्रीडियम की

अवकाशिका अन्तःकोशिक होती है और निश्चित नलिकाओं में सिलियायित होती है, इस प्रकार की चार नलिकाएँ सीधे पालि में होती हैं और ऐंठे हुए लूप की शाखाओं में तीन नलिकाएं निचले भाग में और दो ऊपरी भाग में होती हैं। इन नलिकाओं के सिलिया की गति ज्वाला के थिरकने के समान दीखती है। 15/16 से पश्च सिरे तक के हर एक पट की दोनों सतहों पर पट-नेफ्रीडिया बने होते हैं। ये नेफ्रीडिया अन्तड़ी के चारों ओर अर्ध-वृत्तों में स्थित होते हैं, इनकी दो पंक्तियाँ पट के आगे और दो पंक्तियाँ पट के पीछे की सतह पर होती हैं। प्रत्येक पट पर 40 से 50 नेफ्रीडिया सामने की ओर और इतनी ही संख्या पट के पीछे की ओर होती है, जिसमें कि हर सीलोमी कक्ष में 30 से 100 पट-नेफ्रीडिया होते हैं। नेफ्रीडिया सीलोम में स्वच्छंद लटके रहते हैं और केवल अन्तस्थ वहिनियों द्वारा जुड़े होते हैं या नेफ्रीडिया अपनी अन्तस्थ वहिनियों द्वारा दो **पट-उत्सर्गी नलिकाओं** (septal excretory canals) में खुलते हैं जो कि पट की पिछली सतह पर पड़ी होती हैं, और जिनमें से एक-एक नलिका अन्तड़ी के हर बाजू में पड़ी रहती है। प्रत्येक पट-उत्सर्गी नलिका अधर दिशा में शुरू होती और पृष्ठ
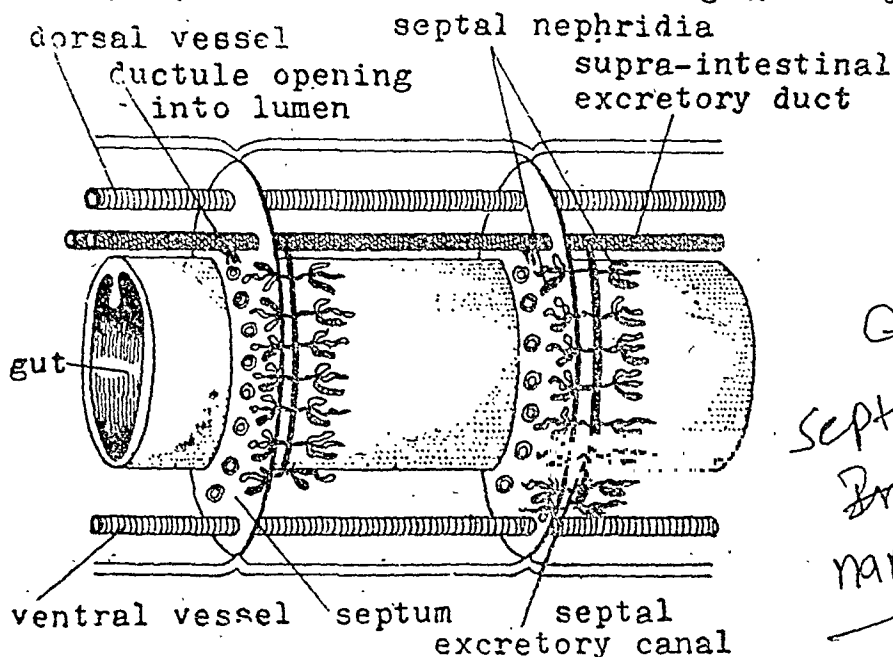
चित्र 238. पट-नेफ्रीडिया (दो खण्डों में)

Dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; ductule opening into lumen, अवकाशिका में खुलने वाली वाहिका; septal nephridia, पट-नेफ्रीडिया; supra-intestinal excretory duct, अधि-आंत्र उत्सर्गी वाहिनी; gut, आहार नली; ventral vessel, अधर वाहिका; septum, पट; septal excretory canal, पट-उत्सर्गी नलिका।

दिशा में वह अपने ही पार्श्व की एक **अधि-आन्त्र उत्सर्गी वाहिनी** (supra-intestinal excretory duct) में खुलती है। अधि-आन्त्र उत्सर्गी वाहिनियाँ दो समान्तर अनुदैर्घ्य नलिकाएँ होती हैं जो आहार-नाल के ऊपर और पृष्ठ वाहिका के नीचे पड़ी

होती हैं, ये 15वें खण्ड से शुरू होकर अन्तिम खन्ड तक चलती जाती हैं, ये हर पट के पीछे थोड़ी सी दूरी में एक दूसरे में खुली होती हैं, उसके बाद या तो दाईं वाहिनी या वाईं वाहिनी एक वाहिनिका के द्वारा पट के समीप अंतड़ी में को खुलती है। हर खण्ड में या तो वाईं अधि-आन्त्र उत्सर्गी वाहिका का या दाईं वाहिका का एक छिद्र वना होता है। पट-नेफ्रीडिया द्वारा इकट्ठा किया गया अपशिष्ट पदार्थ उत्सर्गी नलिकाओं और वहिनियों में से होता हुआ अंतड़ी की अवकाशिका में छोड़ दिया जाता है। अन्तड़ी में खुलने वाले इस प्रकार के छोटे नेफ्रीडिया को **आंत्रनेफ्रीडियमी सूक्ष्मनेफ्रीडिया** (enteronephric micronephridia) कहते हैं।

त्वचीय नेफ्रीडिया (Integumentary nephridia) छोटे आकार के होते हैं, इनमें कोई कीप अथवा नेफ्रीडियममुख नहीं होता और ये बन्द प्रकार के होते हैं, इनका सीलोम में कोई छिद्र नहीं होता। हर त्वचीय नेफ्रीडियम V की आकृति का होता है जिसमें एक छोटी सीधी शाखा होती है और एक ऐंठा हुआ लूप होता है, इनकी अवकाशिका में दो सिलियायित नलिकाएँ होती हैं। ये नेफ्रीडिया 7वें से लेकर आखिरी खण्ड तक देह-भित्ति के अस्तर के भीतर चिपके होते हैं, हर खण्ड में लगभग 200—250 होते हैं, केवल क्लाइटेलम एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हर खण्ड में इनकी संख्या 2000—2500 तक होती है। हर नेफ्रीडियम एक **नेफ्रीडियमछिद्र** के द्वारा देह-भित्ति की बाहरी सतह पर खुलता है। चूंकि त्वचीय नेफ्रीडिया अपशिष्ट को वाहर निकालते हैं इसलिए इन्हें **बहिःनेफ्रीडियमी सूक्ष्मनेफ्रीडिया** (exonephric micronephridia) कहते हैं।
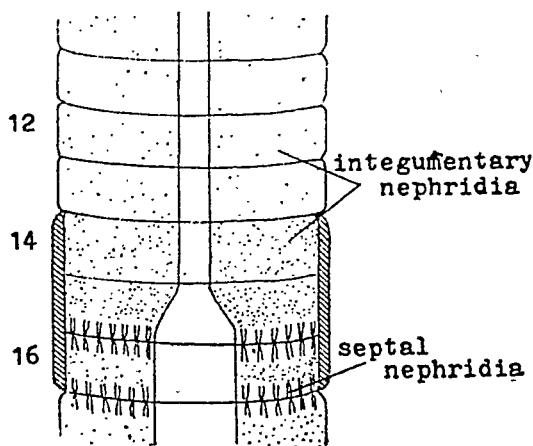
चित्र 239. त्वचीय नेफ्रीडिया।
Integumentary nephridia, त्वचीय नेफ्रीड़िया; septal nephridia, पट-नेफ्रीडिया।

ग्रसनी-नेफ्रीडिया (Pharyngeal nephridia)—ये तीन जोड़ी समूहों के रूप में होते हैं, 4, 5 और 6 खण्डों में ग्रसनी तथा ग्रसिका के ऊपर हर खण्ड में एक-एक जोड़ा होता है। हर ग्रसनी-नेफ्रीडियम लगभग पट-नेफ्रीड़ियम के ही बराबर

होता है लेकिन यह बन्द प्रकार का होता है और उसमें कोई कीप अथवा नेफ्रीडियम-मुख नहीं होता, इसमें एक छोटा सीधा पालि तथा एक सर्पिलतः ऐंठा हुआ लूप होता है, इसकी अवकाशिका में सिलियायित नलिकाएँ होती हैं। इन नेफ्रीडिया से वाहिनिकाएँ निकल कर हर खण्ड में प्रत्येक पार्श्व पर मोटी दीवार वाली एक अकेली वाहिनी के रूप में जुड़ जाती हैं। खण्ड 6 के नेफ्रीडिया की दो वाहिनियाँ खंड 2 में मुख-गुहा में खुलती हैं और खंड 4 तथा 5 के नेफ्रीडिया की युग्मित वाहिनियाँ खण्ड 4 में ग्रसनी में खुलती हैं। ग्रसनी-नेफ्रीडिया अपने अपशिष्ट को आहार-नाल में छोड़ते हैं इसलिए ये आंत्रनेफ्रीडियमी हैं, लेकिन इस प्रकार के आंत्रनेफ्रीडियमी नेफ्रीडिया जो कि आहार-नाल के सामने वाले भाग में (मुख-गुहा तथा ग्रसनी) में खुलते हैं **पेप्टोनेफ्रीडिया** (peptonephridia) कहलाते हैं क्योंकि हो सकता है उन्होने पाचन ग्रन्थियों का कार्य ले लिया हो। ग्रसनी-नेफ्रीडिया से निकट सम्बन्ध बनाते हुए रक्त ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं।
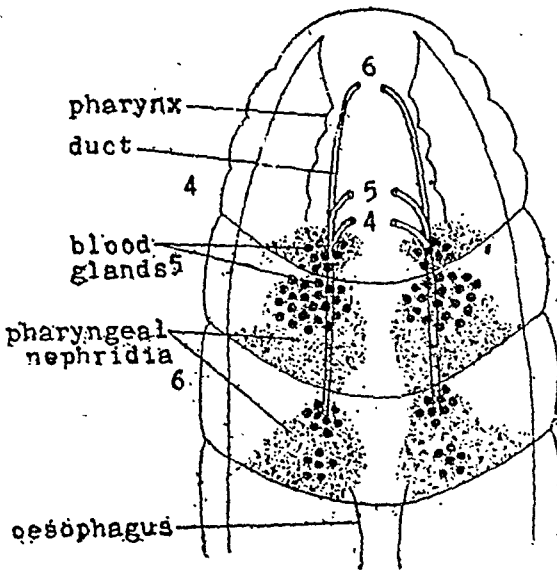
चित्र 240. ग्रसनी-नेफ्रीडिया तथा रक्त-ग्रन्थियाँ।
Pharynx, ग्रसनी; duct, वाहिनी; blood glands, रक्त-ग्रन्थियाँ; pharyngeal nephridia, ग्रसनी-नेफ्रीडिया; oesophagus, ग्रसिका।

200-250
[handwritten]

केंचुओं में नेफ्रीडिया से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ में यूरिया (40%), ऐमोनिया (20%) तथा ऐमिनो-अम्ल और अन्य यौगिक (40%) होते हैं लेकिन यूरिक अम्ल नहीं होता। नेफ्रीडिया इन पदार्थों को बाहर की ओर निकालते और तीन दिन के बाद खाली हो जाया करते हैं। वे अपशिष्ट पदार्थों के छोटे-छोटे कणों को सीलोमी तरल से लेकर नेफ्रीडियममुखों में ले जाते हैं और साथ ही नेफ्रीडिया के काय के भीतर को भी ले जाते हैं, यह अपशिष्ट या तो नेफ्रीडियमछिद्रों द्वारा बाहर को या आहार-नाल में को निकाल दिया जाता है। नेफ्रीडिया में से तरल के गुजरते समय लवणों का पुनः प्रचुर अवशोषण हो जाता है। नेफ्रीडिया का कार्य परासरणनियमन

भी है। स्थलीय केंचुओं में नेफ्रीडिया द्वारा जल का पुनः अवशोषण जल-संरक्षण की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण है। आंत्रनेफ्रीडियमी नेफ्रीडिया इस जल-संरक्षण की दिशा में एक अतिरिक्त अनुकूलन है; आंत्र एपिथिलियम उत्सर्गी पदार्थ में से जल को खींच लेता है और उत्सर्गी पदार्थ विष्ठा के साथ बाहर निकल जाता है, अतः **फेरेटिमा** की विष्ठा उन केंचुओं की अपेक्षा जिनमें केवल बहिःनेफ्रीडियमी नेफ्रीडिया होते हैं अधिक खुश्क होती है। साथ ही नेफ्रीडिया हीमोग्लोबिन के अपघटन से बनने वाले उत्पादों को भी निकालते रहते हैं, और इस प्रकार बनने वाले हीमैटोक्रोम वर्णक नेफ्रीडिया के कुछ भागों में देखे जा सकते हैं।

केंचुओं के उत्सर्गी अंग केवल नेफ्रीडिया ही नहीं हैं। ऊतक अपने उत्सर्गी पदार्थों को रक्त और सीलोमी तरल में छोड़ते रहते हैं, इस अपशिष्ट को क्लोरैगोजन कोशिकाएँ रक्त से निकालती रहती हैं जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है। सीलोमी तरल के अमीबाणु भी अपशिष्ट से लदी क्लोरैगोजन कोशिका को अपने भीतर समेट कर उन्हें नष्ट करते जाते हैं। लसीका ग्रन्थियों के अमीबाणु भी इसी प्रकार का भक्षिकोशिकीय कार्य करते हैं। अंततः रक्त की कणिकाएँ भी रक्त से उत्सर्गी पदार्थ निकालती हैं।

तन्त्रिका-तन्त्र—केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र में एक जोड़ी **अधि-ग्रसनी गैंग्लिया** होते हैं जो समेकित होकर एक **मस्तिष्क** बनाते हैं, यह मस्तिष्क तीसरे खण्ड में मुख-गुहा और ग्रसनी के बीच की खाँच के ऊपर पृष्ठ दिशा में पड़ा होता है। केंचुओं में (जैसा कि जोकों में भी होता है) पुरोमुखण्ड के ह्रासित हो जाने के कारण मस्तिष्क पीछे को हट गया है। मस्तिष्क से एक जोड़ी **परि-ग्रसनी संयोजी** निकलते हैं जिनमें से एक-एक हर पार्श्व में होता है, ये ग्रसनी को घेरते और अधर दिशा में एक जोड़ी समेकित **अधः ग्रसनी गैंग्लिया** से जुड़ जाते हैं जोकि 4थे खण्ड में पड़े होते हैं, इस प्रकार ग्रसनी के चारों ओर एक **तन्त्रिका कॉलर** (nerve collar) बन जाता है। अधः ग्रसनी गैंग्लिया से एक **तन्त्रिका-रज्जु** निकलती है जो अधर दिशा में चलते हुए पश्च सिरे तक पहुँच जाती है। तन्त्रिका-रज्जु दोहरी होती है और दो अनुदैर्घ्य रज्जुओं की बनी होती है जो परस्पर समेकित होती हैं। 5वें से अन्तिम खण्ड तक हर खण्ड में एक जोड़ी समेकित गैंग्लिया फूले होते हैं। तन्त्रिका-कोशिकाएँ समस्त तन्त्रिका-रज्जुओं में फैली होती हैं और केवल गैंग्लियानी उत्फूलनों तक ही सीमित नहीं होतीं।

तन्त्रिकाएँ—मस्तिष्क से 8 से 10 जोड़ी तन्त्रिकाएँ निकलती हैं जो पुरोमुखण्ड मुख-गुहा और ग्रसनी को जाती हैं। दो जोड़ी तन्त्रिकाएँ परिग्रसनी संयोजियों से निकलती हैं और पहले खण्ड तथा मुख-गुहा में को जाती हैं। अधःग्रसनी गैंग्लिया से तीन जोड़ी तन्त्रिकाएँ निकलती हैं जो 2रे, 3रे तथा 4थे खण्ड को जाती हैं। तन्त्रिका-रज्जु के गैंग्लिया से हर खण्ड में तीन जोड़ी तन्त्रिकाएँ निकलती हैं जो इसी खण्ड के, जिसमें कि वह गैंग्लियान मौजूद है, विभिन्न अंगों को जाती हैं। इस तन्त्रिका-तन्त्र में, जैसा कि उच्चतर प्राणियों में होता है, संवेदी और प्रेरक दोनों ही प्रकार के तंत्रिकाणु पाए जाते हैं। तन्त्रिका-रज्जु की तन्त्रिकाओं में संवेदी और

प्रेरक दोनों पाए जाते हैं। त्वचा से आने वाले उद्दीपन संवेदी तन्तुओं द्वारा तन्त्रिका-रज्जु को प्रेषित कर दिए जाते हैं और उद्दीपन या तो सबसे पहले किसी सहसम्बन्धी तन्त्रिकाणु (association neuron) में जाता है या किसी प्रेरक तन्त्रिकाणु में जा सकता है जिसका प्रेरक तन्तु पेशियों में जा रहा हो जिसके कारण वे संकुचित हो जाती हैं। उद्दीपनों अथवा आवेगों (impulses) का यह परिचय एक साधारण **प्रतिवर्त चाप** (reflex arc) होता है। केंचुए का व्यवहार मुख्यतः उसकी प्रतिवर्त क्रियाओं पर निर्भर होता है। वृत्ताकार और अनुदैर्घ्य पेशियों की गतियों का समन्वय होता है ताकि एक के संकुचन से दूसरे का शिथिलन हो सके।
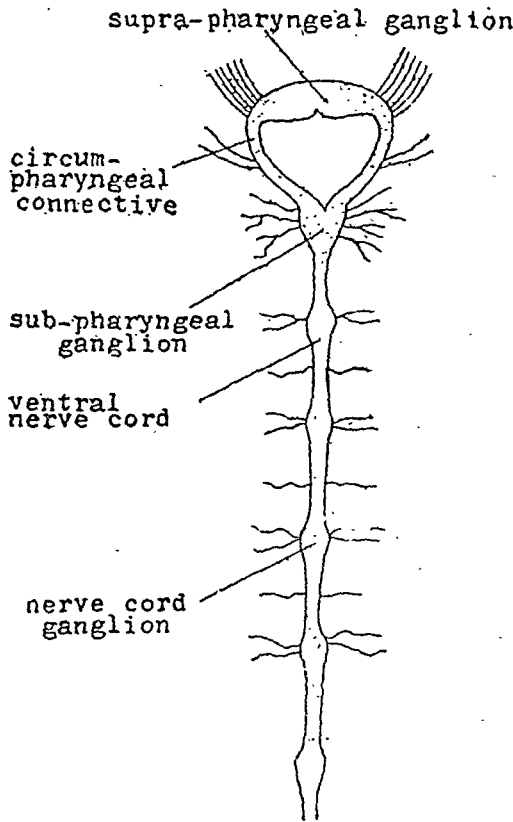
चित्र 241. तन्त्रिका-तन्त्र।

Supra-pharyngeal ganglion, अधिग्रसनी गैंग्लियान; circum-pharyngeal connective, परिग्रसनी संयोजी; subpharyngeal ganglion, अधःग्रसनी गैंग्लियान; ventral nerve cord, अधर तंत्रिका-रज्जु; nerve cord ganglion, तन्त्रिका-रज्जु गैंग्लियान।

तंत्रिका-रज्जु पर ऊपर से **पेरिटोनियम** चढ़ा होता है जिसके नीचे एक परत **अनुदैर्घ्य पेशी तन्तुओं** की और फिर उसके नीचे एक तन्तुकी **एपिन्यूरियम** (epineurium) होता है। तन्त्रिका-रज्जु के दोनों अर्धांश उदग्र एपिन्यूरियम की एक दोहरी परत के द्वारा विभाजित रहते हैं। तन्त्रिका-रज्जु में फैला हुआ आलम्बी

ऊतक कोशिकाओं और तन्तुओं का बना होता है, इस ऊतक को **तन्त्रिकाबन्ध** (neuroglia) कहते हैं। तन्त्रिका-रज्जु के अधर-पार्श्व क्षेत्रों में उसकी पूरी लम्बाई में द्विध्रुवी तथा बहुध्रुवी तन्त्रिका-कोशिकाएँ बनी होती हैं, तथा बीच के भाग में आलम्बी तन्त्रिकाबन्ध से युक्त बहुत से तन्त्रिका-तन्तु होते हैं। तन्त्रिका-रज्जु के ऊपरी भाग में अनुदैर्घ्य रूप में चलते हुए चार **महातन्त्रिका-तन्तु** (giant nerve fibres) होते हैं जो एपिन्यूरियम से घिरे रहते हैं, ये चारों नलिकाकार होते और समांग प्लाज़्मा-जैसे पदार्थ से भरे होते हैं। लेकिन अधिकतर केंचुओं में पाँच महा-तन्त्रिका तन्तु होते हैं, तीन बड़े तन्त्रिका-रज्जु की मध्य-पृष्ठ दिशा में पड़े हुए और शेष दो जो कि कम स्पष्ट होते हैं मध्य-अधर दिशा पर दूर-दूर पृथक् हुए पड़े रहते हैं। महातन्तुओं में सहसम्बन्धी तन्त्रिकाणु होते
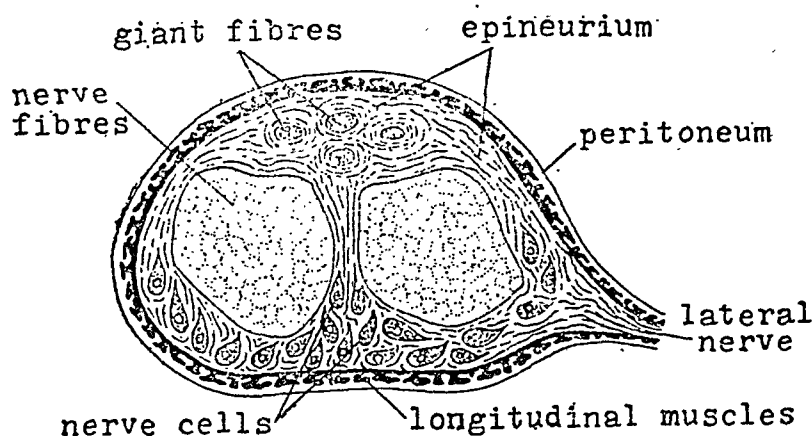
चित्र 242. तन्त्रिका-रज्जु का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)

Nerve fibres, तन्त्रिका-तन्तु; giant fibres, महातन्तु; epineurium, एपिन्यूरियम; peritoneum, पेरिटोनियम; lateral nerve पार्श्व तन्त्रिका; nerve cells, तंत्रिका कोशिकाएँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ।

हैं जो सम्पूर्ण तन्त्रिका-रज्जु में आवेगों के तीव्र संवहन के लिए उत्तरदायी होते हैं। इनमें आवेगों के संवहन की गति 60 से 150 फुट प्रति सैकंड होती है। महा-तन्त्रिका तन्तु आवेगों को देह-भित्ति की अनुदैर्घ्य पेशियों में पहुँचाते हैं और ये तमाम पेशियाँ लगभग एक साथ संकुचित होती हैं।

संवेद-ग्राही—केंचुओं में अनेक बाहरी उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रिया होती है, जब वे किसी सूखी अवशोषी सतह के सम्पर्क में आते हैं तो उनमें परिहार प्रतिक्रिया होती है। इनमें विविध प्रकार के संवेद-ग्राही होते हैं।

एपिडर्मिसी संवेद ग्राही एपिडर्मिस में बना हुआ ऊँची कोशिकाओं का एक अण्डाकार समूह होता है जो क्यूटिकल में उभार पैदा कर देता है, इन कोशिकाओं को एक दूसरे को पृथक् करने वाली गुहाएँ बनी होती हैं; प्रत्येक कोशिका के मध्य के

समीप एक केन्द्रक बना होता है और ऊपर की ओर इसके अन्तिम सिरे पर बाल-जैसे प्रवर्ध बने होतें हैं जो क्यूटिकल में घुस जाते और उसमें से होकर बाहर को निकले होते हैं। कोशिकाओं के निचले सिरों में तन्त्रिका-तन्तु पहुँचे हुए होते हैं।
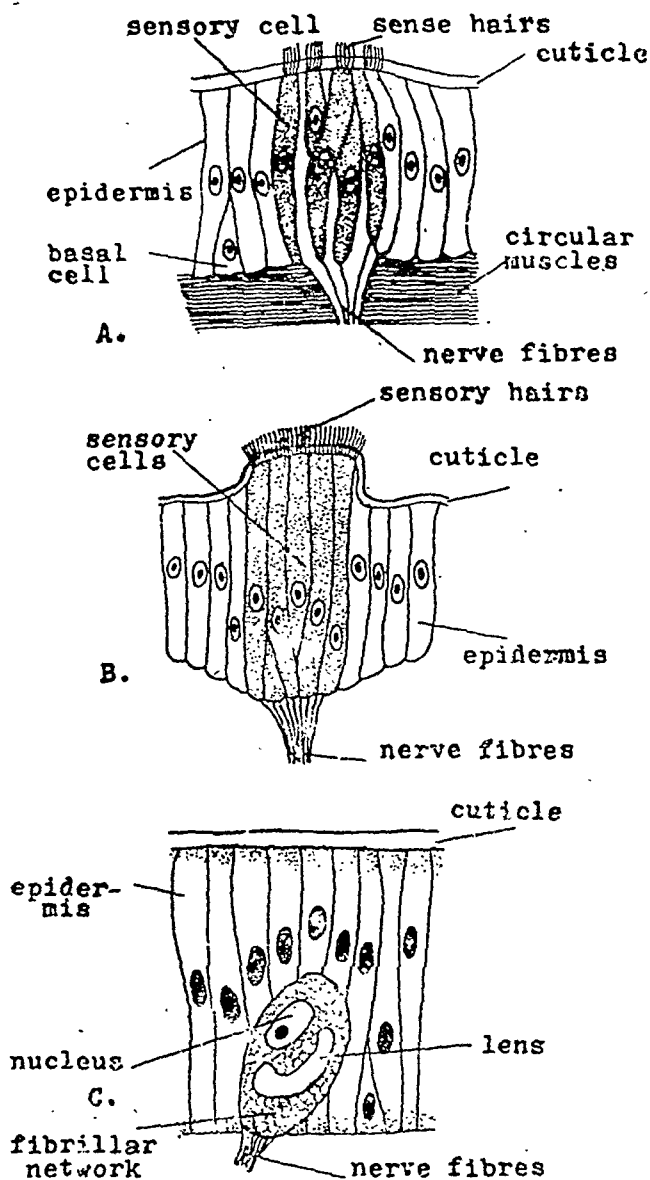
चित्र 243. A—एपिडर्मिसी संवेदग्राही; B—मुख-संवेदग्राही; C—प्रकाश-ग्राही।

Sensory cell, संवेदी कोशिका; sense hairs, संवेदी रोम; cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; basal cell, आधारी कोशिका; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; nerve fibres, तन्त्रिका-तन्तु; lens, लेन्स; nucleus, केन्द्रक; fibrillar network, तन्तुकी जालक।

एपिडर्मिसी संवेदग्राही तमाम एपिडर्मिस पर पाये जाते हैं लेकिन पार्श्व और अधर क्षेत्रों में इनकी संख्या सबसे ज्यादा होती है। इनका कार्य स्पर्श-ज्ञान कराना है और साथ ही ये ताप और रसायन-संवेदों को भी ग्रहण करते हैं। अतः स्पर्श और ठोस वस्तुओं से संचारित होने वाले कम्पनों के प्रति केंचुए बहुत संवेदनशील होते हैं हालांकि वे सुन बिल्कुल नहीं सकते।

मुख-संवेदग्राही (Buccal receptors) मुख-गुहा के एपिथीलियम में बहुत संख्या में पाये जाते हैं, इनमें ऊँची-ऊँची कोशिकाओं के समूह पाये जाते हैं जो एपिथीलियम कोशिकाओं से भी बाहर को निकली होती हैं; इनमें संवेदी बाल-जैसे प्रवर्ध बने होते हैं और उनके केन्द्रक मध्य भाग से नीचे पड़े होते हैं। ये संवेदीग्राही सूँघने का काम करते हैं (**घ्राणग्राही**, olfactoreceptors) और खाने को चखते हैं (**स्वादग्राही**, gustatoreceptors)। ये विभिन्न वनस्पति आहारों के स्वाद में अन्तर पहचान सकते हैं, लेकिन सूंघने का ज्ञान बहुत कम विकसित होता है, हालाँकि आहार के रूप में इस्तेमाल होने वाली विभिन्न प्रकार की पत्तियों को केंचुए सूंघ सकते हैं।

प्रकाशग्राही (Photoreceptors) एक अकेली अण्डाकार कोशिका होती है जो एपिडर्मिस के भीतरी भाग में पड़ी होती है, इसमें एक केन्द्रक और जालक से युक्त साइटोप्लाज़्म होता है, तथा एक दृष्टि अंगक (फैओसोम, phaosome, अथवा लेन्स) होता है जो कि अक्सर वक्र आकृति का और काचाभ पदार्थ का बना होता है। इस दृष्टि-कोशिका में एक या दो तन्त्रिका-तन्तु प्रविष्ट होते हैं। प्रकाशग्राही अधिकतर पुरोमुखण्ड और पहले खण्ड पर पाये जाते हैं, शेष खण्डों पर वे थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं जिनमें अन्तिम खण्ड भी शामिल है, अधर सतह पर प्रकाशग्राही नहीं पाये जाते। प्रकाशग्राही प्रकाश के लिए संवेदी होते हैं लेकिन सिर्फ़ बहुत ही धीमे प्रकाश को छोड़कर अन्य सभी प्रकाश से केंचुए दूर भागते हैं, अतः दिन के समय केंचुए अपने बिलों में छिपे पड़े रहते हैं और रात में ही बाहर आते हैं।

जनन-तंत्र—केंचुए उभयलिंगी होते हैं, उनमें वृषण और अण्डाशय दोनों एक ही प्राणी में पाये जाते हैं, लेकिन परनिषेचन होता है क्योंकि एक तो नर और मादा जनन-छिद्रों की आपेक्षिक स्थिति ऐसी ही होती है और दूसरे क्योंकि केंचुए **पुंपूर्वी** (protandrous) होते हैं, जिनमें नर लैंगिक कोशिकाएँ मादा कोशिकाओं से बहुत पहले ही परिपक्व हो जाती हैं, जिसकी वजह से स्व-निषेचन नहीं हो पाता।

नर अंगों में दो थैले-जैसे **वृषण-कोश** (testis sacs) एक 10वें और दूसरा 11वें खण्ड में अधरतः पड़े होते हैं। दो जोड़े **शुक्राशयों** (seminal vesicles) के होते हैं, एक 11वें खण्ड में और दूसरा 12वें में। 11वें खण्ड के वृषण-कोश इतने बड़े होते हैं कि वे उस खण्ड के शुक्राशयों को भी अपने भीतर बन्द किए रहते हैं। वृषण-कोश सीलोम की कट गई हुई गुहाएँ होती हैं, और शुक्राशय पटों से निकली हुई बहिर्वृद्धियाँ होती हैं। हर वृषण-कोश और उसी दिशा के शुक्राशय में एक नलिकाकार छिद्र द्वारा सम्पर्क बना होता है। इस प्रकार 10वें खण्ड के शुक्र-

कोश में 11वें खण्ड के शुक्राशयों में को खुलने वाले दो छिद्र होते हैं, और 11वें खण्ड के वृषण-कोश में इसी प्रकार के दो छिद्र 12वें खण्ड के शुक्राशयों में को खुलने वाले होते हैं। हर वृषण-कोश में दो **वृषण** होते हैं, जो वृषण-कोश के अस्तर से बनकर निकले हुए होते हैं। हर वृषण में 4 से 8 छोटे-छोटे उँगली जैसे प्रवर्ध बने होते हैं, हर प्रवर्ध **शुक्राणुजन** (spermatogonia) नामक गोल कोशिकाओं का बना होता है। शुक्राणुजन वृषण-कोश में को छोड़े जाते रहते और शुक्राशयों में पहुँचते रहते हैं जहाँ उनमें परिपक्वन विभाजन होकर शुक्राणु (spermatozoa) बनते हैं। चारों में से हर एक वृषण के पीछे एक बड़ी **वृषण कीप** (spermatic funnel) होती है जिसका सीमांत वलित एवं सिलियायित होता है। हर कीप एक पतली, भीतर से सिलियायित **शुक्रवाहिका** में खुलती है जो उसी दिशा की अपनी साथिनी शुक्रवाहिनी के साथ वृषण-कोश को वेध कर अधर देह-भित्ति के सहारे-सहारे 12वें खण्ड से लेकर 18वें खण्ड तक चली जाती है। एक दिशा की दोनों **शुक्रवाहिकाएँ** साथ जुड़ी पड़ी रहती हैं लेकिन उन्हें खींचकर अलग-अलग किया जा सकता है, दोनों एक मोटी **प्रोस्टेट-वाहिनी** (prostatic duct) के साथ 18वें खण्ड में मिल जाती हैं।

खण्ड 16 या 17 से 20 या 21 तक एक जोड़ी, बड़ी सफ़ेद और अनियमित आकृति की **प्रोस्टेट-ग्रन्थियाँ** (prostate glands) पार्श्वतः पड़ी होती है, इनमें अनेक पालि बने होते हैं और इनकी कोशिकाओं की निश्चित आकृतियाँ होती हैं। हर प्रोस्टेट-ग्रन्थि से एक मोटी घुमावदार प्रोस्टेट-वाहिनी निकलती है जो अपनी ही दिशा की दो शुक्रवाहिकाओं से मिल जाती है, और ये तीनों वाहिनियाँ एक सम्मिलित पेशीय आवरण में बन्द रहती हैं, लेकिन तीनों वाहिनियाँ स्पष्ट रहती हैं और एक **नर जनन-छिद्र** द्वारा 18 वें खण्ड की अधर सतह पर अलग छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती हैं। अतः इस नर जनन-छिद्र में तीन अलग-अलग सूराख होते हैं। 18वें खण्ड पर अधरतः एक जोड़ी नर जनन-छिद्र पाए जाते हैं।

परिपक्व शुक्राणु पुनः वृषण-कोशों में पहुँच जाते हैं और वृषण कीपों में से होते हुए शुक्रवाहिकाओं में पीछे को चलते जाते हैं और प्रोस्टेट ग्रन्थियों के स्रावों के साथ-साथ नर जनन-छिद्रों में से होते हुए बाहर निकल जाते हैं। प्रोस्टेट ग्रन्थियों के स्राव के कार्य के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं है।

मादा अंग—12/13 पट की पिछली सतह से जुड़े हुए दो सफ़ेद **अंडाशय** होते हैं, जो तंत्रिका-रज्जु के अगल-बगल एक-एक होते हैं। हर अंडाशय में अनेक उँगली-जैसे प्रवर्ध होते हैं जिनमें विकसित होते हुए अंडों की एक पंक्ति बनी होती है। खण्ड 13 में हर अंडाशय के पीछे एक **अंडाशय कीप** (ovarian funnel) बनी होती है जिसके सीमांत वलित और सिलियायुक्त होते हैं, हर कीप पीछे एक छोटी **अंडवाहिनी** में को खुलती है। दोनों अंडवाहिनियाँ एक दूसरे के नज़दीक आती हुई 14वें खण्ड में तंत्रिका-रज्जु के नीचे परस्पर मिलकर एक अकेले मध्यस्थ एवं अधर **मादा** जनन-छिद्र पर खुलती हैं। अंडवाहिनियाँ भीतर से सिलियायित होती हैं। अंडे

अंडाशयों में से बाहर आते हैं और कीपों में से होते हुए अंडवाहिनियों में चलते जाते तथा अन्त में मादा जनन-छिद्र के द्वारा बाहर निकलते हैं।
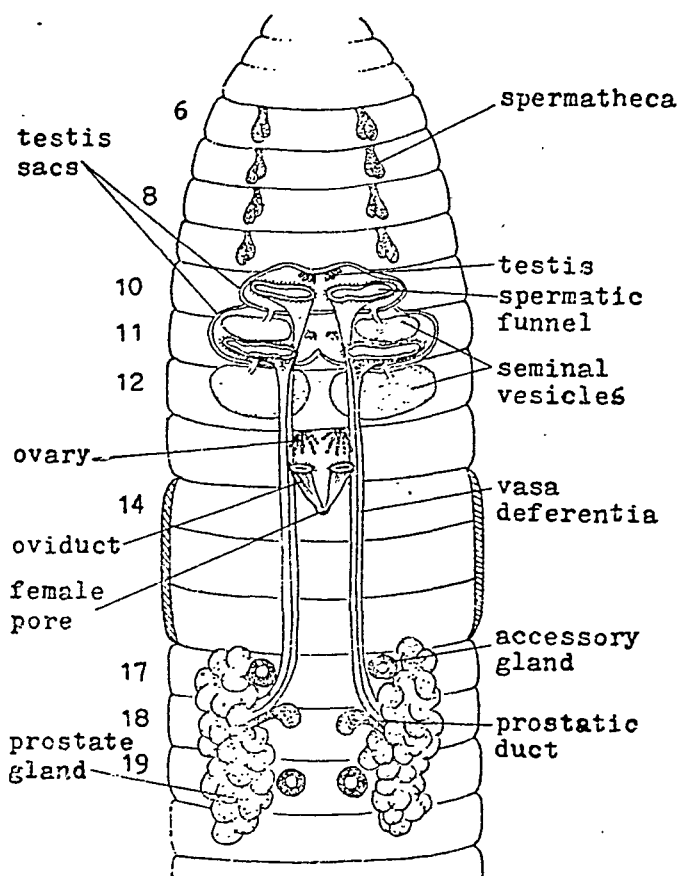
चित्र 244. जनन-अंग।

Testis sacs, वृषण-कोश; spermatheca, शुक्रग्राही; testis, वृषण; spermatic funnel, वृषण कीप; seminal vesicle, शुक्राशय; ovary, अंडाशय; oviduct, अंडवाहिनी; female pore, मादा छिद्र; vasa deferentia, शुक्रवाहिकाएँ; prostate gland, प्रोस्टेट ग्रन्थि; prostate duct, प्रोस्टेट वाहिनी; accessory gland, सहायक ग्रन्थि।

चार जोड़ी **शुक्रग्राही** (spermathecae) होते हैं जो 6, 7, 8, और 9 खण्डों में एक-एक जोड़ी पाए जाते हैं। हर शुक्रग्राही फ्लास्क की आकृति का होता है, उसका प्रधान काय एक **कलशिका** (ampulla) होती है जो एक संकीर्ण वाहिनी में जारी रहती है। वाहिनी से जुड़ा हुआ एक **अंध-नाल** होता है जो पुनः एक फ्लास्क की आकृति का होता है। अन्य केंचुए से आए हुए शुक्राणु इस अंधनाल में संचित होते हैं और कलशिकाएँ संचित शुक्राणुओं को पोषण प्रदान करती हैं। शुक्रग्राही

अपनी छोटी-छोटी वाहिनियों के द्वारा शुक्रग्राही-छिद्रों से बाहर को खुलते हैं, ये छिद्र अंतराखण्डत: 5/6, 6/7, 7/8, 8/9 खण्डों के बीच बने होते हैं।

17वें और 19वें खण्डों के **जनन पैपिला** भीतर की ओर को **सहायक ग्रन्थियों** के रूप में जारी रहते हैं। ये ग्रन्थियाँ ग्रन्थीय कोशिकाओं के गुच्छे होती हैं और उनका स्राव कदाचित् मैथुन में सहायता करता है।

मैथुन एवं ककून-निर्माण—मैथुन को **यूटाइफ़ियस** (*Eutyphoeus*) में होते हुए देखा गया है लेकिन **फ़ेरेटिमा** में नहीं। वर्षा ऋतु में सवेरे-सवेरे सहवर्ती बिलों से आधे-आधे बाहर निकलकर दो केंचुए अपनी अधर सतहों के सहारे-सहारे एक दूसरे से सम्पर्क बनाते हैं, इस सम्पर्क में इनके अग्र सिरे एक दूसरे के विपरीत दिशाओं में होते हैं और ऐसी व्यवस्था होती है कि एक केंचुए के 9 से 11 खण्ड दूसरे केंचुए के क्लाइटेलम के समक्ष आते हैं। इस स्थिति में हर केंचुए के नर जनन-छिद्र दूसरे के शुक्रग्राही-छिद्रों के प्रति आते हैं, और दोनों केंचुओं के ये भाग कसकर चिपक जाते हैं। नर जनन-छिद्रों के क्षेत्र उभर कर पैपिला बन जाते हैं और शुक्रग्राही-छिद्र में प्रविष्ट कर दिए जाते हैं, इस प्रकार दो मैथुनरत केंचुओं के बीच शुक्राणुओं एवं प्रोस्टेट-स्राव का परस्पर आदान-प्रदान हो जाता है। मैथुन लगभग एक घंटे तक चलता है, उसके बाद दोनों केंचुए अलग हो जाते और वापिस अपने-अपने बिलों में घुस जाते हैं।
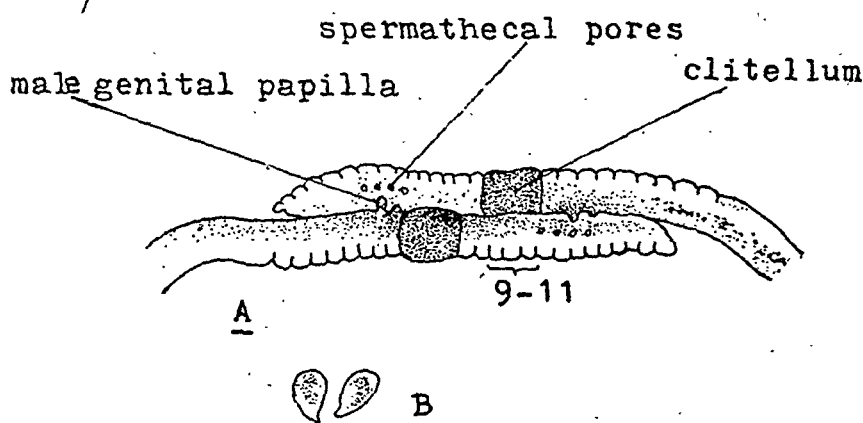
चित्र 245. **यूटाइफ़ियस** में मैथुन। B—ककून।
Male genital papilla, नर जनन पैपिला; spermathecal pores, शुक्रग्राही-छिद्र; clitellum, क्लाइटेलम।

क्लाइटेलम 14 से 16 खण्ड में एक पेटी-जैसी रचना होती है, यह एक जनन सम्बन्धी रचना है जिसमें फूला हुआ एपिडर्मिस होता है, इस एपिडर्मिस में तीन प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं : एककोशिक श्लेष्मा-ग्रन्थियाँ जिनसे मैथुन में सहायता देने वाली श्लेष्मा का स्राव होता है, ककून-स्रावक ग्रन्थियों से ककून की दीवार का स्राव होता है, और ऐल्बुमेन ग्रन्थियाँ ऐल्बुमेन बनाती हैं जिसमें लिपटे हुए अंडे ककून के भीतर एकत्रित होते हैं। क्लाइटेलम की ककून-स्रावक ग्रन्थियाँ एक झिल्लीनुमा

मेखला (पेटी) का स्राव करती हैं, यह मेखला शीघ्र कड़ी हो जाती है और तब मेखला और देह-भित्ति के बीच में ऐल्बुमेन जमा होता है। केंचुआ अपने आपको मेखला में से पीछे-पीछे को खींचता जाता है। जिस समय मेखला मादा जनन-छिद्र के ऊपर
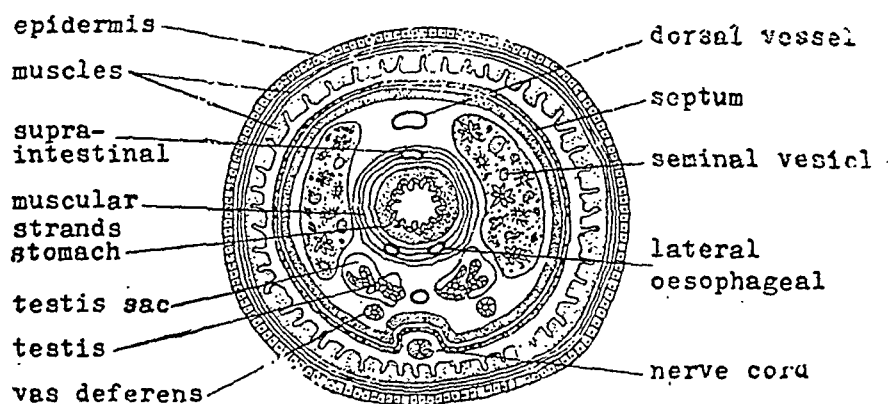
चित्र 246. केंचुए का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.) शुक्राशयों से गुज़रता हुआ।

Epidermis, एपिडर्मिस; muscles, पेशियाँ; supra-intestinal, अधि-आंत्र वाहिका; muscular strands, पेशीय सूत्र; stomach, आमाशय; testis sac, वृषण-कोश; testis, वृषण; vas deferens, शुक्रवाहिका; dorsal vessel, पृष्ठ-वाहिका; septum, पट; seminal vesicle, शुक्राशय; lateral oesophageal, पार्श्व ग्रसिका-वाहिका; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु।

से गुज़रती है तो उसमें अंडे आ जाते हैं, और जब वह शुक्रग्राहियों के ऊपर से होकर गुज़रती है तब शुक्रग्राही-छिद्रों के द्वारा उसमें शुक्राणु आ जाते हैं। जब केंचुए के अग्र सिरे पर से मेखला उतार फेंक दी जाती है तब इसकी लचीली दीवारें दोनों सिरों को बन्द कर देतीं और ककून पूरा हो जाता है। निषेचन ककून के भीतर होता है। ककून अंडाकार हल्के भीले रंग के और लगभग 2 से 2·4 mm. लम्बे तथा 1·5 से 2·00 mm. चौड़े होते हैं। सामान्यतः एक ककून में एक ही भ्रूण होता है।

ककून अगस्त से अक्तूबर के महीने तक नमी वाले स्थानों पर दिए जाते हैं। 8 या 10 सप्ताह में एक छोटे केंचुए के रूप में भ्रूण बाहर आ जाता है।

वितरण और स्वभाव—केंचुए सामान्यतः मिट्टी की ऊपरी परतों में 12 से 18 इंच की गहराई तक रहते हैं। आवश्यक परिस्थितियों में एक तो कुछ अंश नमी का होना चाहिए और दूसरे आहार के रूप में जैव पदार्थ मौजूद होना चाहिए। गर्म और शुष्क जलवायु से बचने के लिए वे ज़मीन में गहरे पहुँचकर एक गेंद-जैसे रूप में अपने आप को गोल-मटोल लपेट कर जीवित बने रह सकते हैं। भारत में गर्मियों में केंचुए बहुत गहरे 10 फुट तक नीचे चले जाते हैं। केंचुए लम्बे-

लम्बे समय तक जल में डूबा रहना बर्दाश्त कर सकते हैं हालांकि कुछ स्पीशीज स्वभावतः जलीय भी होती हैं। कुछ केंचुए पेड़ों की छाल के नीचे तथा पेड़ों की सड़ी-गली लकड़ी में अथवा जंगल में पत्तियों के ऊपर कुण्डलित अवस्था में रहते हैं। कुछ केंचुए वेलांचली (littoral) होते हैं अर्थात् वे निम्न और उच्च ज्वार चिन्हों के बीच
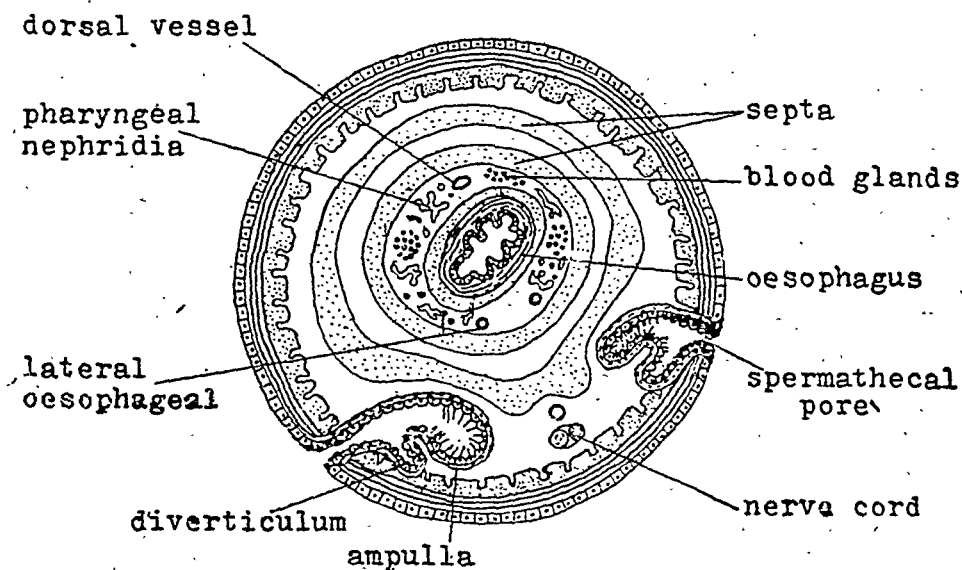
चित्र 247. केंचुए का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.), शुक्रग्राहियों से गुज़रता हुआ।
Dorsal vessel, पृष्ठ-वाहिका; pharyngeal nephridia, ग्रसनी-नेफ्रीडिया; lateral oesophageal, पार्श्व ग्रसिका-वाहिका; diverticulum, अंधनाल; ampulla, कलशिका; septa, पट; blood glands, रक्त-ग्रन्थियाँ; oesophagus, ग्रसिका; spermathecal pore, शुक्रग्राही-छिद्र; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु।

के क्षेत्र में रहते है, हालाँकि वे निश्चित रूप में समुद्री नहीं होते हैं। केंचुओं को हिमालय में 11,000 फुट तक की ऊँचाई पर पाया गया है, और काश्मीर में 12,500 फुट पर बनी एक झील में से केंचुए मिले हैं।

केंचुओं के पाए जाने का निष्कर्ष उनकी "बीट" से निकाला जा सकता है। **फ़ेरेटिमा** की बीट छोटी-छोटी गोल गोल्यियों के ढेरों के रूप में होती हैं जो कि बिलों के समीप अलग-अलग पड़ी होती हैं, लेकिन **यूटाइफ़ियस** में ये बीट दो-दो इंच ऊँची सिलिंडराकार संरचनाओं के रूप में होती हैं। केंचुए मलविसर्जन के वास्ते धरती की सतह पर आते हैं, और शरीर से बाहर निकली हुई मिट्टी ही इनकी बीट होती है।

केंचुए रात्रिचर होते हैं, नियमतः वे अपने बिलों में अपनी पूँछों के द्वारा पकड़ बनाए रखते हुए वनस्पति कचरे को इकट्ठा करते रहते हैं, लेकिन भोजन की तलाश में वे बाहर भी घूमते रहते हैं। केंचुए अपने बिलों को दो प्रकार से खोदते

हैं, पहले तो वे अपने संकीर्ण अग्र सिरे से सब तरफ से मिट्टी को हटाते जाते हैं और फिर अपनी ग्रसनी उसके भीतर गड़ाते हैं, यह ग्रसनी एक पच्चर-जैसा काम करती
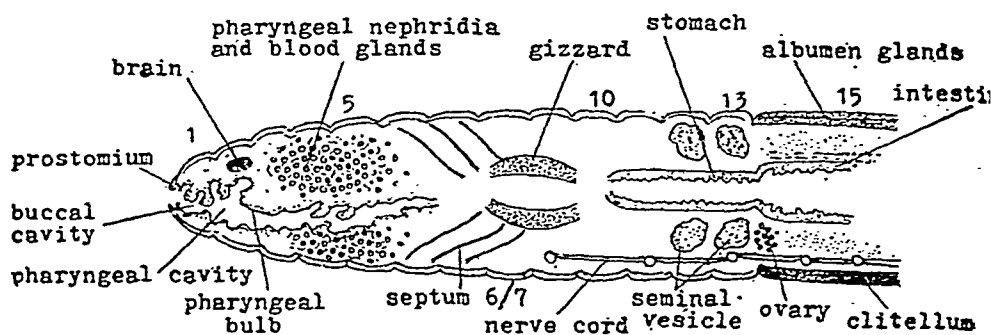
चित्र 248. **फ़ेरेटिमा** के अग्र सिरे का अनुदैर्घ्य सेक्शन (T. S.)। Prostomium, पुरोमुखण्ड; brain, मस्तिष्क; pharyngeal nephridia and blood glands, ग्रसनी-नेफ्रीडिया एवं रक्त-ग्रन्थियाँ; gizzard, गिज़र्ड; stomach, आमाशय; albumen glands, ऐल्बुमेन ग्रन्थियाँ; intestine, अंतड़ी; buccal cavity, मुख-गुहा; pharyngeal cavity, ग्रसनी-गुहा; pharyngeal bulb, ग्रसनी-बल्ब; septum 6/7, पट 6/7; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु; seminal vesicle, शुक्राशय; ovary, अंडाशय; clitellum, क्लाइटेलम।

है; दूसरे वे मिट्टी को खाते जाते हैं। जाड़ों में केंचुए पत्तियों और वानस्पतिक कूड़े-करकट को अपने बिलों में ले जाते और प्रवेश-द्वार को बन्द कर लेते हैं।

जीव-पारिस्थितिकी (Bionomics)—केंचुए लगातार नीचे से मिट्टी ला-लाकर ऊपर बिलों के मुंह के समीप जमा करते जाते हैं। इनके द्वारा ऊपर लाई जाने वाली मिट्टी की मात्रा 7·5 से 18 टन प्रति एकड़ प्रति वर्ष होती है। यदि यह मिट्टी एकसार फैलाई जा सकती होती तो 10 वर्ष में 2 इंच मोटी परत बन जाती। इस प्रकार केंचुए मनुष्य से बहुत पहले से ही धरती जोतते रहे हैं।

जब केंचुए मिट्टी खाते हैं तो इसे गिज़र्ड के भीतर पीसा जाता है, और फिर इस मिट्टी में पत्तियों का जैव पदार्थ मिल जाता है। पाचन के दौरान पाचक रस आदि मिल कर मिट्टी को और श्रेष्ठ बना देते हैं जिससे पौधों की वृद्धि ज्यादा अच्छी तरह हो सकती है। नेफ्रीडियमी उत्सर्गों से भी मिट्टी ज्यादा सम्पन्न हो जाती है।

इनके बिल खोदने के स्वभाव के कारण मिट्टी पोली और छिद्रिल बन जाती है जिससे हवा पेड़ों की जड़ों तक पहुँच सकती है, और कुछ पेड़ों की जड़ों की गाँठों में मौजूद बैक्टीरिया नाइट्रेटों के निर्माण के वास्ते हवा की नाइट्रोजन को इस्तेमाल कर सकते हैं।

चट्टानों, चूने और राख की भट्ठियों के आसपास नीचे से मिट्टी ऊपर ला

लाकर केंचुए जमीन की सतह को ऊपर करते जाते हैं, उसके साथ-साथ पोली ज़मीन नीचे बैठती जाती है और चट्टानें कुछ हद तक नीचे बैठती हैं। केंचुओं ने पुराने खंडहरों
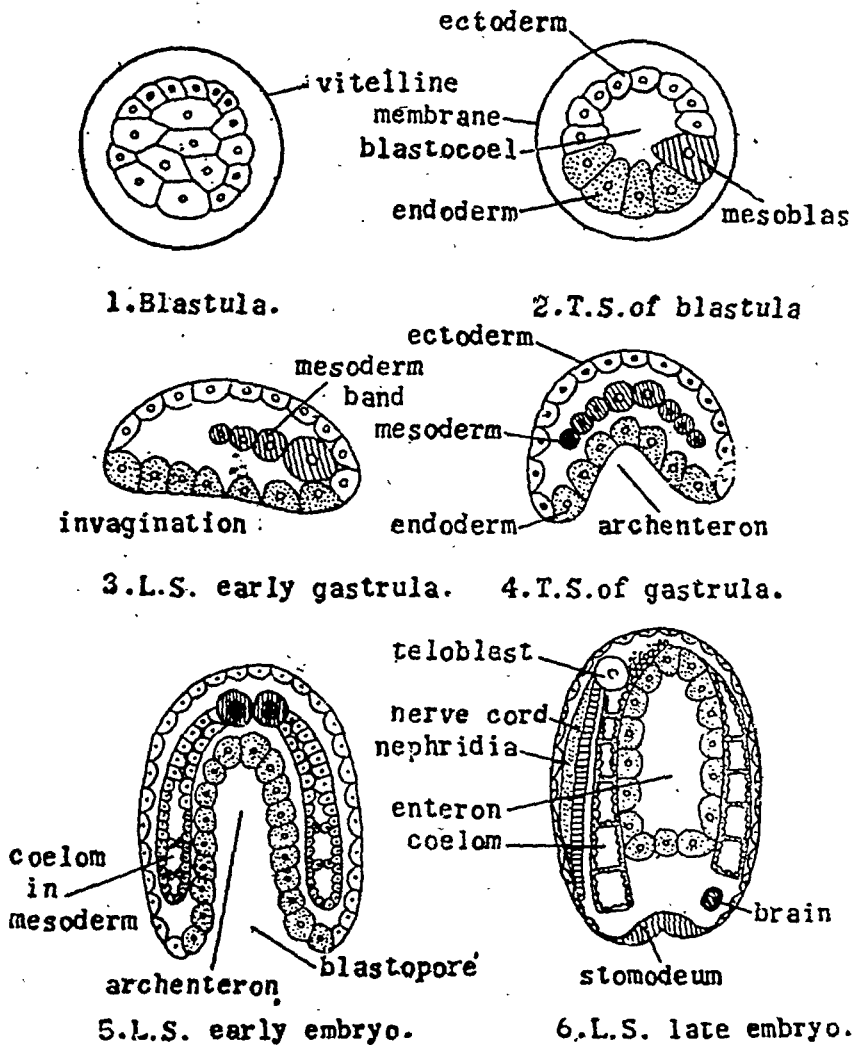
चित्र 249. केंचुए का परिवर्धन

Blastula, ब्लास्टुला; vitelline membrane, पीतक झिल्ली; ectoderm, एक्टोडर्म; blastocoele, ब्लास्टोसील; endoderm, एण्डोडर्म; mesoblast, मीजोब्लास्ट; T. S. of blastula, ब्लास्टुला का अनुप्रस्थ सेक्शन; mesoderm band, मीज़ोडर्म पट्टी; invagination, अन्तर्वलन; archenteron, आद्यांत्र; T. S. of gastrula, गैस्ट्रुला का अनुप्रस्थ सेक्शन; coelom in mesoderm, मीज़ोडर्म में सीलोम; blastopore, ब्लास्टोपोर; teloblast, टीलोब्लास्ट; nerve cord, तन्त्रिका-रज्जु; nephridia, नेफ्रीडिया; enteron, आंत्र; stomodeum, अग्रांत्र; brain, मस्तिष्क।

तथा पुरातत्त्व महत्त्व की वस्तुओं को मिट्टी में दबाते जाने में सहायता प्रदान की है।

कुछ केंचुओं को माओरी लोग खाते हैं। केंचुओं को दवा के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है, मुटापा कम करने और मूत्राशय की पथरी निकालने के वास्ते ये काम में आते हैं। भारत में गठिया के इलाज में ये काम में आते हैं। मछली पकड़ने में इनके उपयोग को सभी लोग जानते हैं।

केंचुए का परिवर्धन

ककून में निषेचित अण्डे होते हैं और उनके साथ-साथ क्लाइटेलम की ग्रन्थियों से स्रावित एक ऐल्बुमिनी पदार्थ भी होता है जो भ्रूण के लिए पोषण प्रदान करता
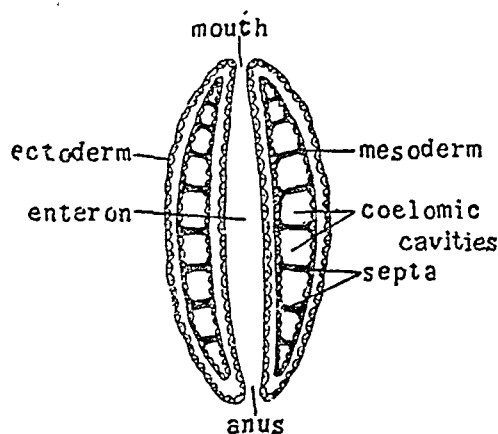
7.L.S.of later embryo
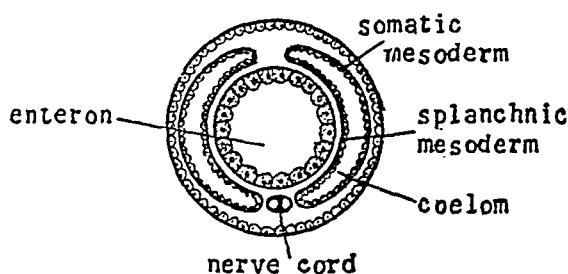
8.T/S.of later embryo.

चित्र 250. केंचुए का परिवर्धन (जारी)

L. S. of later embryo, बाद के भ्रूण का अनुदैर्ध्य सेक्शन; mouth, मुख; anus, गुदा; ectoderm, एक्टोडर्म; mesoderm, मीज़ोडर्म; coelomic cavities, सीलोमी गुहाएँ; septa, पट; enteron, आंत्र, somatic mesoderm, कायिक मीज़ोडर्म; splanchnic mesoderm, आशयिक मीज़ोडर्म; nerve cord, तन्त्रिका-रज्जु।

है। परिवर्धन ककून के भीतर होता है और कोई लार्वा-अवस्था नहीं होती। विदलन

में पौलीकीटों के सर्पिल विदलन के कुछ अंश कायम बने हैं किन्तु यह विदलन बहुत ज्यादा बदल चुका है। विभाजन पूर्णभंजी (holoblastic) लेकिन असमान होता है और प्रतिरूपी सर्पिल विदलन की अपेक्षा कम नियमित होता है। एक **ब्लास्टुला** बनता है जो एक पीतकी झिल्ली में बन्द होता है और जिसके भीतर एक बड़ी ब्लास्टोसील होती है। ब्लास्टुला की निचली कोशिकाएँ एंडोडर्म कोशिकाएँ और ऊपरी कोशिकाएँ एक्टोडर्म कोशिकाएँ होती हैं। **गैस्ट्रुला-निर्माण** एंडोडर्म के एक्टोडर्म-कोशिकाओं के भीतर को अन्तर्वलित हो जाने से होता है जिससे एक सिलिंडराकार गैस्ट्रुला बन जाता है जिसमें एक **आद्यांत्र गुहा** (archenteron cavity) और एक ब्लास्टोपोर होता है। यह ब्लास्टोपोर संकीर्ण होकर मुख बन जाता है। दो बड़ी **मीज़ोब्लास्ट** कोशिकाएँ शुरू में ही विभेदित हो जाती हैं जो एक मीज़ोडर्म पट्टी का निर्माण करती हैं। मीज़ोडर्म पौलीकीटों की तरह इसी मीज़ोडर्म पट्टी से बनता है। भ्रूण पीतक झिल्ली में से मुक्त होकर बाहर आ जाता और ऐल्बुमिनी पदार्थ को खाने लगता है। भ्रूण लम्बा होता जाता है, मीज़ोडर्म-पट्टी फैलकर एक्टोडर्म और एण्डोडर्म के बीच में पहुँच जाती है और यह खंडों में विभाजित हो जाती है मीज़ोडर्म के प्रत्येक खंड में एक **सीलोमी गुहा** बन जाती है। एक्टोडर्म कोशिकाएँ एक बड़ी कोशिका के पीछे जिसे **टीलोब्लास्ट** कहते हैं मोटी-मोटी पंक्तियों में व्यवस्थित हो जाती हैं, इनमें से सबमें भीतरी पंक्ति से तन्त्रिका-रज्जु बनती है, और उससे आगे की दो एक्टोडर्म पंक्तियों से नेफ्रीडिया बनते हैं। मुख और गुदा एंडोडर्मी आंत्र में खुल जाते हैं और इस प्रकार आहार-नाल पूरी हो जाती है। अब एक छोटा कचुआ तैयार हो जाता है जो ककून से बाहर आ जाता है।

3. हिरुडिनैरिया ग्रैनुलोसा

(*Hirudinaria granulosa*)

जोंकें क्लास **हिरुडिनिया** (Hirudinea) में आती हैं जिसमें समुद्री, अलवण-जलीय और स्थलीय आवासों में रहने वाली 300 से ज्यादा स्पीशीज़ आती हैं। हालाँकि बहुत-सी स्पीशीज़ रक्त-चूषक हैं फिर भी काफी बड़ी संख्या ऐसी है जो बाह्य-परजीवी तो नहीं लेकिन परभक्षी हैं, वे कृमियों, घोंघों और कीट-लार्वाओं को खाती हैं। जोंकें सबसे विशेषित ऐनेलिड हैं और वे ओलाइगोकीटो से विकसित हुई हैं।

हिरुडिनैरिया एक आम भारतीय जोंक है जो अलवणजलीय तालाबों, दल-दलों और धीमे बहने वाले नालों में पाई जाती है। यह रक्ताहारी होती है जो मेंढकों और मछलियों का रक्त चूसती रहती है और जब तालाब में मनुष्य या मवेशी घुस जाते हैं तो उनका भी रक्त चूस लेती है। यह 5 से 10 इंच लम्बी होती है और इसका शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा हो गया होता है। शरीर का सबसे बड़ा चौड़ा भाग पश्च सिरे के समीप होता है और अग्र सिरे की ओर को संकीर्ण होता जाता है। संकुचन और प्रसार की बहुत ज्यादा क्षमता होती है। पृष्ठ सतह गहरी हरी होती है और अधर सतह भूरी होती है, हर पार्श्व में एक पीली धारी बनी होती है।

पृष्ठ सतह पर एक मध्यस्थ अनुदैर्घ्य काली धारी होती है। दो चूषक (suckers) होते हैं, एक अग्र शीर्षस्थ अथवा मुख-चूषक जो पहले तीन खण्डों का बना होता है और एक पश्च चूषक जो बड़ा और गोल होता है तथा अन्तिम सात खण्डों का बना होता
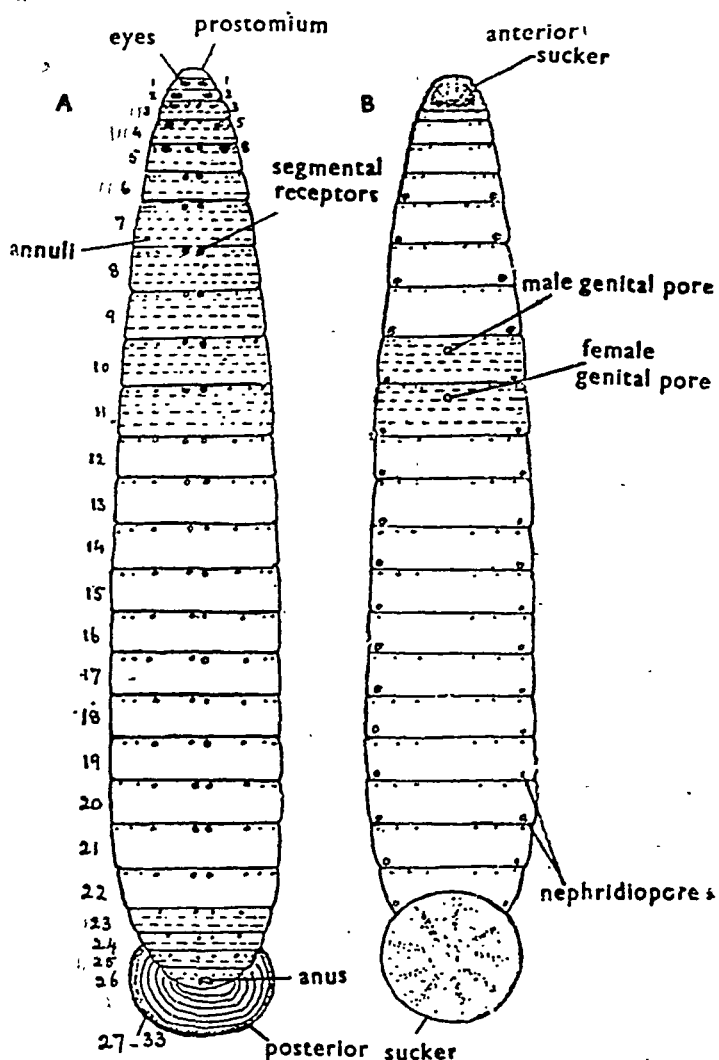
चित्र 251. हिरुडिनैरिया ग्रैनुलोसा। A—पृष्ठ दृश्य, B—अधर दृश्य। Prostomium, पुरोमुखण्ड; eyes, आँखें; annuli, वलय; segmental receptors, खण्डीय ग्राही; anus, गुदा; posterior sucker, पश्च चूषक; anterior sucker, अग्र चूषक; male genital pore, नर जनन-छिद्र; female genital pore, मादा जनन-छिद्र; nephridiopores. नेफ्रिडियम-छिद्र।

है। दोनों चूषकों का रुख अधर दिशा की ओर होता है, जोंक अधःस्तर को अपने चूपकों के द्वारा कस कर जकड़ सकती है। मुख-चूपक के मध्य में एक त्रिअरीय मुख

होता है, पश्च चूषक की जड़ पर एक पृष्ठीय गुदा होती है। विखण्डता बहुत घट गई है। और अन्य ऐनेलिडों की अपेक्षा जोंकों के देह-खण्डों की संख्या स्थिर रहती है, इनमें सदैव 33 खण्ड होते हैं. जिनमें से पहला खण्ड बहुत ह्रासित और **पुरोमुखण्ड** छोटा होता है लेकिन मूल विखण्डन द्वितीयक बाह्य वलयन (secondary external annulation) के कारण छिप जाता है। हर एक खण्ड बाहर से खाँचों के द्वारा छल्लों में विभाजित हो जाता है जिन्हें **वलय** (annuli) कहते हैं। पहले और दूसरे खण्डों में प्रत्येक में एक-एक वलय होता है, तीसरे में दो वलय, चौथे से छठे खण्ड में प्रत्येक में तीन-तीन वलय, सातवें से बाइसवें खण्डों में जो कि चौड़े होते हैं हर एक में पाँच-पाँच वलय होते हैं; तेइसवें से छब्बीसवें खण्ड में प्रत्येक में दो-दो वलय होते हैं; सत्ताइसवें से तेंतीसवें खण्ड में एक-एक वलय होता है, इन्हीं खण्डों से पश्च चूषक बना होता है। प्रजनन काल में एक मेखला-जैसा **क्लाइटेलम** नवें से ग्यारहवें खण्ड के चारों ओर बन जाता है, वर्ष के शेष भाग में कोई क्लाइटेलम नहीं होता। पृष्ठ दिशा पर पाँच जोड़ी आँखें होती हैं—पहले और दूसरे खण्डों पर एक-एक जोड़ा, और तीसरे, चौथे तथा पाँचवें खण्डों के पहले वलयों पर एक-एक जोड़ा होता है। जोंकें उभयलिंगी होती हैं, दसवें खंड के दूसरे वलय पर मध्य-अधर रेखा में एक **नर जनन-छिद्र** बना होता है, और ग्यारहवें खण्ड के दूसरे वलय पर इसी मध्य-अधर रेखा में एक **मादा जनन-छिद्र** बना होता है। सत्तरह जोड़ी **नेफ्रिडियमछिद्र** होते हैं जो छठे से बाईसवें खण्ड तक हर खण्ड के अन्तिम वलय में अधरपार्श्वत: बने होते हैं। हर एक खण्ड के प्रथम वलय पर सात जोड़ी छोटे सफेद-सफेद **खंडीय ग्राही अंग** (segmental receptor organs) बने होते हैं जो खण्ड को घेरे होते हैं।

देह-भित्ति—जोंक में एक बारीक काइटिनी **क्यूटिकल** का बाहरी आवरण होता है जो समय-समय पर टुकड़े-टुकड़े केंचुली के रूप में उतरता रहता है। **एपिडर्मिस** हथौड़ी की आकृति की कोशिकाओं की अकेली परत का बना होता है, कुछ एपिडर्मिसी कोशिकाएँ एककोशिक **नलिकाकार** तथा **नाशपाती की आकृति** की ग्रन्थियाँ बनाती हैं, ग्रन्थि-कोशिकाएँ डर्मिस में जा डूबी हुई हैं, इनसे श्लेष्मा का स्राव होता है जो शरीर पर फैली रहती है। एपिडर्मिस के नीचे एक **डर्मिस** होता है जो पेशी-तंतुओं, केशिकाओं, वसा और वर्णक कोशिकाओं से युक्त योजी ऊतक का बना होता है। ग्रन्थियाँ डर्मिस में पड़ी होती हैं लेकिन खुलती सतह पर हैं। डर्मिस के नीचे के **पेशीन्यास** में एक पतली परत वृत्ताकार पेशियों की और एक मोटी परत अनुदैर्घ्य पेशियों की होती है। अनुदैर्घ्य पेशियाँ खूब मजबूत बनी होती हैं और दोनों चूषकों के भीतर अभिसारित होती हैं। वृत्ताकार पेशियाँ चूषकों में संकेन्द्रीय रूप में व्यवस्थित होती हैं। वृत्ताकार एवं अनुदैर्घ्य पेशियों के बीच में तिर्यक् पेशियों की एक अतिरिक्त दोहरी परत होती है, ये पेशियाँ एक कुण्डली के रूप में देह के चारों ओर सर्पिलत: उन्मुख होती हैं। पृष्ठ-अधर पेशियाँ भी होती हैं जो सारे देह में खंडश: व्यवस्थित होती हैं, वे हर खण्ड में ऊपर से नीचे की दिशा में चलती हैं। कुछ अरीय पेशियाँ होती हैं जिनके तन्तु आहार-नाल से चलकर खाल तक फैले होते हैं, यही पेशियाँ पटों का स्थान

लेती हैं। जोंक के पेशी-तन्तुओं की एक खास रचना होती है, हर तन्तु में एक बाहरी रेखित एवं संकुचनशील कार्टेक्स (cortex) अथवा मायोप्लाज्म (myoplasm) और एक भीतरी अपरिवर्तित प्रोटोप्लाज्म होता है जिसे मेडुला (medulla) अथवा सार्कोप्लाज्म कहते हैं। जोंकों का मीज़ेंकाइम एक विशिष्ट बोट्रॉयडल ऊतक (botryoidal
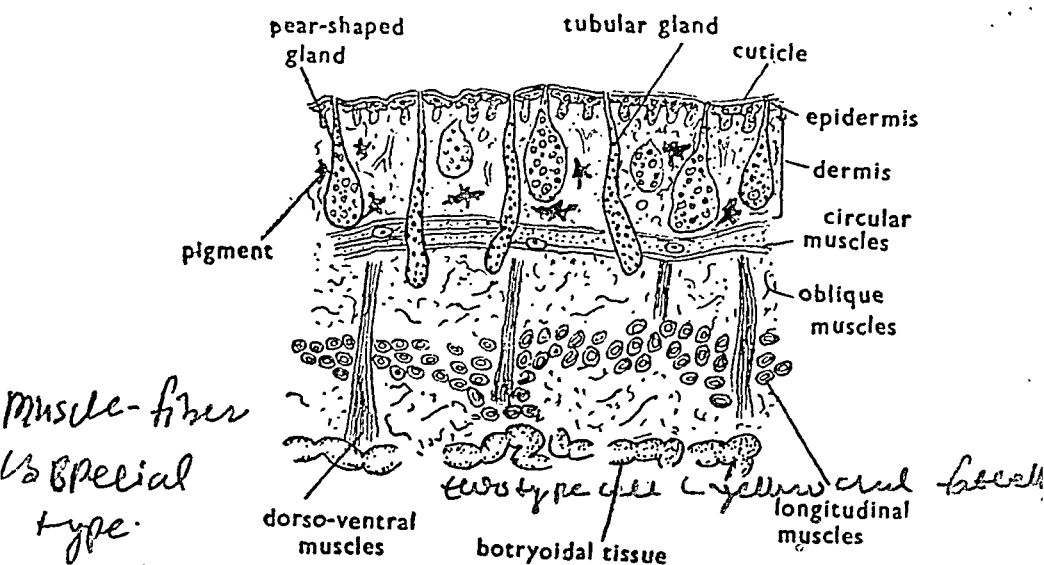
चित्र 252. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)

Pigment, वर्णक; pear-shaped gland, नाशपातीरूपी ग्रन्थि; tubular gland, नलिकाकार ग्रन्थि; cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; dermis, डर्मिस; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; oblique muscles, तिर्यक् पेशियाँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; botryoidal tissue, बोट्रॉयडल ऊतक; dorso-ventral muscles, पृष्ठीय-अधर पेशियाँ।

tissue) होता है जो वर्णकित और अत्यधिक वाहिकायित कोशिकाओं का बना होता है, ये कोशिकाएँ बड़ी और आगे-पीछे लम्बाई में व्यवस्थित होती हैं, कोशिकाओं में एक गहरा भूरा वर्णक तथा अन्तःकोशिक विशाखित केशिकाएँ होती हैं जो तरल से भरी होती हैं। बोट्रॉयडल ऊतक कदाचित् उत्सर्गी होता है, यह देह-गुहा को पूरी तरह से भरे रहता है। बोट्रॉयडल ऊतक के भीतर दो प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं जो जोंकों की विशिष्टताएँ होती हैं—ये हैं वसा कोशिकाएँ एवं पीली कोशिकाएँ। वसा कोशिकाओं में वसा बुन्दकें और कुछ ग्लाइकोजन होता है; पीली कोशिकाएँ पीले, भूरे अथवा हरे कणों से भरी होती हैं, ये कोशिकाएँ उत्सर्गी जान पड़ती हैं।

आहार-नाल—त्रिअरीय मुख अधरशः मुख-चूषक में पड़ा होता है, इसमें सामने की ओर एक कटोरी की आकृति की **मुखपूर्वी गुहा** (preoral cavity) होती है, पश्चतः इसे एक मोटा **वीलम** घेरे रहता है। मुख एक छोटी **मुख-गुहा** में खुलता है जिसमें तीन
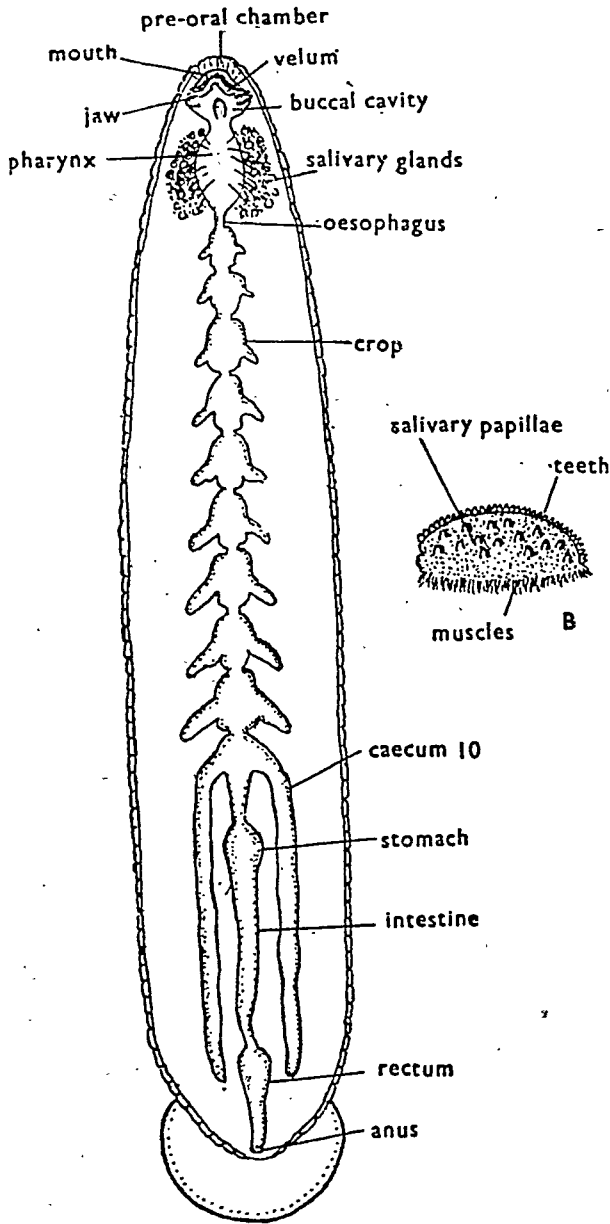
चित्र 253. आहार-नाल । B—जबड़ा

Pharynx, ग्रसनी; jaw, जबड़ा; mouth, मुख; preoral chamber, मुखपूर्वी कक्ष; velum, वीलम; buccal cavity, मुख-गुहा; salivary glands, लार-ग्रन्थियाँ; oesophagus, ग्रसिका; crop, क्रॉप; caecum, अंधवर्ध; stomach, आमाशय; intestine, अंतड़ी; rectum, मलाशय; anus, गुदा; salivary papillae, लार-पैपिला; teeth, दाँत; muscles, पेशियाँ ।

जबड़े—एक पृष्ठीय और दो अधर-पार्श्वीय—होते हैं। जबड़ों में पेशियाँ होती हैं जिनके ऊपर से एक स्कलेरोटिनीकृत क्यूटिकल चढ़ा होता हैं, इस क्यूटिकल पर छीलने के लिए दंतिकाएँ बनी होती हैं, इन जबड़ों पर लार-पैपिला भी होते हैं। मुख-गुहा एक मोटी दीवार वाली पेशीय **ग्रसनी** में खुलती है जो पाँचवें से आठवें खण्ड तक चलती जाती है। ग्रसनी की पेशियाँ वृत्ताकार और अरीय होती हैं, अरीय पेशियाँ ग्रसनी को फ़ैलाती
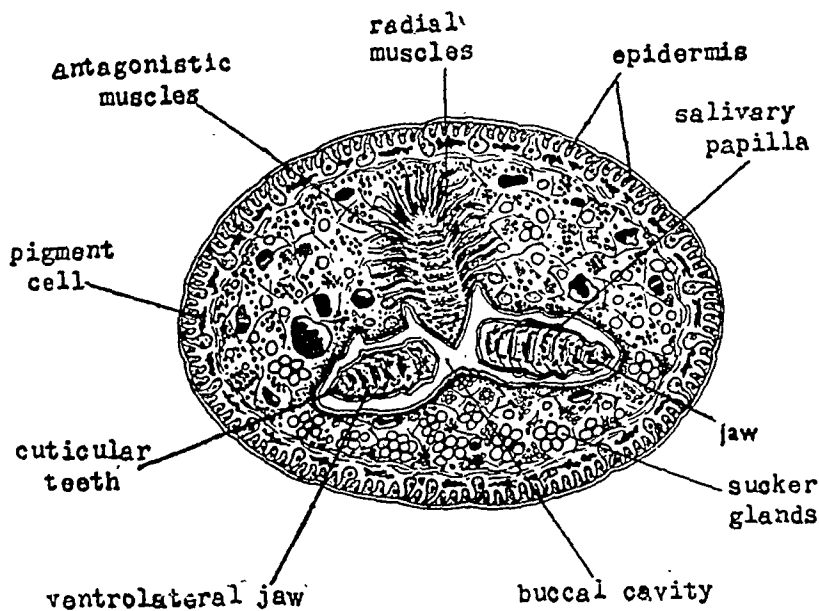
चित्र 254. **हिरुडिनैरिया** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S) जबड़ों से गुजरता हुआ। Pigment cell, वर्णक कोशिका; antagonistic muscles, विरोधी पेशियाँ; radial muscles, अरीय पेशियाँ; epidermis, एपिडर्मिस; salivary papilla, लार-पैपिला; jaw, जबड़ा; sucker glands, चूषक-ग्रन्थियाँ; buccal cavity, मुख-गुहा; ventrolateral jaw, अधरपार्श्व जबड़ा; cuticular teeth, क्यूटिकलीय दाँत।

और रक्त चूसने के लिए एक पम्प-जैसी क्रिया उत्पन्न करती हैं। एककोशिक **लार ग्रन्थियों** के बड़े-बड़े समूह ग्रसनी को घेरे रहते हैं और उनकी वाहिनियाँ जबड़ों के दाँतों के बीच-बीच में खुलती हैं। लार में एक पदार्थ होता है जिसे **हिरुडिन** (hirudin) अथवा **प्रतिस्कंदक** कहते हैं, इस पदार्थ के द्वारा उस समय जबकि जोंक रक्त चूस रही होती है तो रक्त का स्कंदन नहीं होता। ग्रसनी अपने पीछे एक छोटी संकीर्ण ग्रसिका में खुलती है जो फिर एक पतली-दीवार वाले क्रॉप (crop) में खुलती है, यह क्रॉप बहुत बड़ा नौवें से लेकर अट्ठारहवें खण्ड तक फैला होता है, इसमें दस कक्ष, प्रत्येक खण्ड में एक-एक, होते हैं और हर कक्ष में एक जोड़ी पार्श्वीय कोष्ठ अथवा अंधनाल निकले होते हैं, दसवें कक्ष के अन्धनाल बहुत लम्बे होकर पीछे बाइसवें खण्ड तक पहुँचे होते हैं। क्रॉप परपोषी का रक्त और उसके रस संचित करने में काम आता है,

क्रॉप-भरा एक बार का आहार कई-कई महीने चलता है। क्रॉप एक **आमाशय** में खुलता
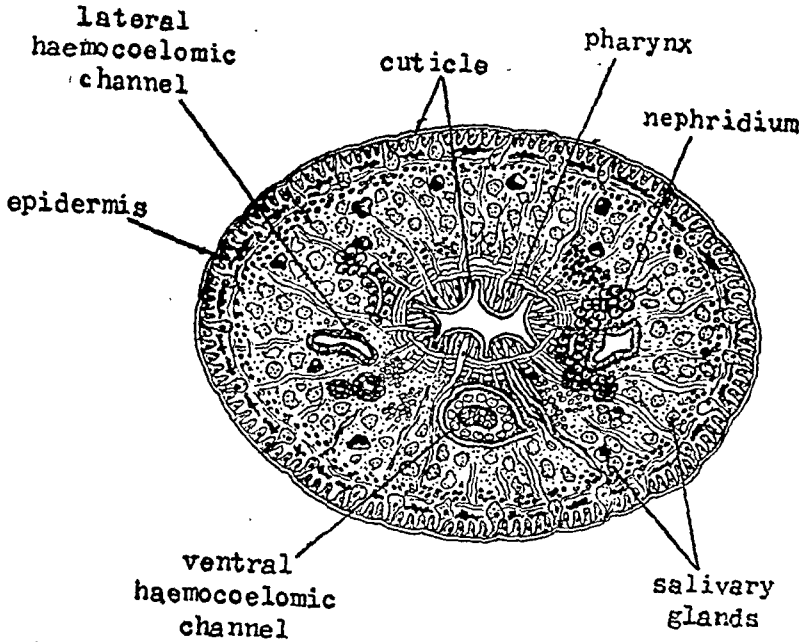
चित्र 255. जोंक का अनुप्रस्थ सेक्शन (T S.) ग्रसनी से गुजरता हुआ। Epidermis, एपिडर्मिस; lateral *haemocoelomic* channel, पार्श्व रक्तसीलोमी नलिका; cuticle, क्यूटिकल; pharynx, ग्रसनी; nephridium, नेफ्रीडियम; salivary glands, लार-ग्रन्थियाँ; ventral haemocoelomic channel, अधर रक्तसीलोमी नलिका।

है जो उन्नीसवें खंड में होता है। आमाशय में को क्रॉप का छिद्र संकीर्ण होता है और उस पर संवरणी पेशियाँ होती हैं जो आहार के प्रवाह का नियंत्रण करती हैं। आमाशय में स्रावी और अवशोषी दोनों प्रकार की एपिथीलियम कोशिकाएँ होती हैं। आमाशय एक नलिकाकार अंतड़ी में खुलता है जो बीसवें से बाइसवें खण्ड में पड़ी होती है, अंतड़ी एक अधिक चौड़े किन्तु छोटे सिलियायित **मलाशय** में खुलती है जो बाइसवें से छब्बीसवें खण्ड में चलती है, मलाशय एक पृष्ठीय गुदा द्वारा छब्बीसवें खण्ड में पश्च चूषक के ऊपर खुलता है। गुदा एक नया परवर्ती छिद्र का प्रतिदर्श है क्योंकि अन्तिम खण्ड अथवा पुच्छान्त, पश्च चूषक में समा चुका है। मुखपूर्वी और मुख गुहाओं का अस्तर क्यूटिकल का बना होता है जो बाहरी सतह के क्यूटिकल से जारी रहता है, ये दोनों गुहाएँ मिलकर एक अग्रांत्र (मुख पथ) बनाती हैं; मलाशय का अस्तर भी क्यूटिकल का बना होता है और वह एक पश्चांत्र (गुदा-पथ) बनाता है; शेष आहार-नाल में एक एंडोडर्मी अस्तर होता है और वह मध्यांत्र बनाती है।

अशन करने में जोंक अपना मुख-चूषक शिकार की खाल पर लगाती है और जबड़ों को एक दूसरे के समीप और दूर-दूर चलाती है। वे खाल में बिना पीड़ा सूराख कर देते हैं। फिर ग्रसनी की पम्प-सदृश क्रिया से बड़ी मात्रा में रक्त को

चूस कर क्रॉप को भर लेती है, हिरुडिन के स्राव से रक्त-स्कंदन रुक जाता है। क्रॉप में रक्त का रक्तलयन हो जाता है जिसमें रक्त करिणकाएँ फूट जाती हैं, हीमोग्लोविन प्लाज़्मा में घुल जाता है और रक्त गहरा लाल हो जाता है। यह रक्त फिर धीरे-धीरे संवरणी छिद्र में से होता हुआ आमाशय में पहुँच जाता है जहाँ वह हरा हो जाता और पच जाता है, लेकिन खाए गए रक्त का हीमोग्लोविन सीधा आमाशय कोशिकाओं में अवशोषित हो जाता है, इस अन्तर्ग्रहीत रक्त का ग्लोविन ही मुख्यतः आहार के रूप में इस्तेमाल होता है, अवशोषण अंतड़ी और आमाशय में होता है। क्रॉप-भरे रक्त के पाचन में दस से चौदह महीने का समय लग जाता है।
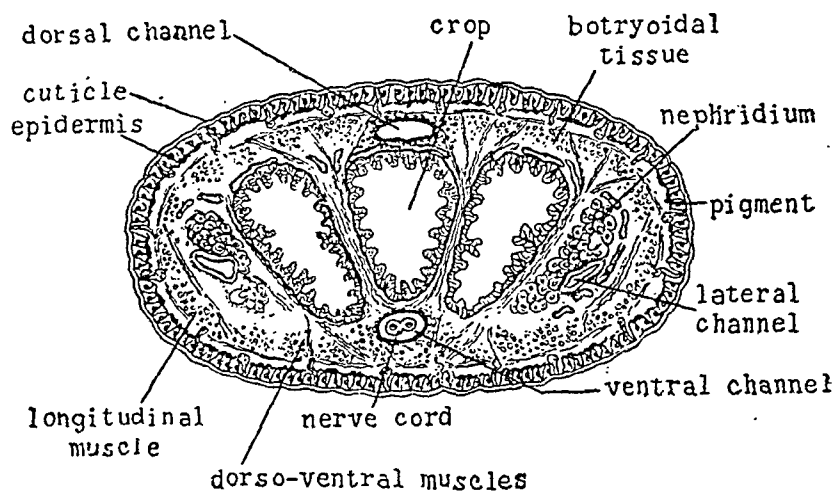
चित्र 258. जोंक का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) क्रॉप से गुजरता हुआ। Epidermis, एपिडर्मिस; cuticle, क्यूटिकल; dorsal channel, पृष्ठीय नलिका; crop, क्रॉप; botryoidal tissue, वोट्रॉयडल ऊतक; nephridium, नेफ्रीडियम; pigment, वर्णक; lateral channel, पार्श्वीय नलिका; ventral channel, अधर नलिका; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु; dorso-ventral muscles, पृष्ठ-अधर पेशियाँ; longitudinal muscle, अनुदैर्घ्य पेशी।

चलन—जोंक में दो प्रकार का चलन पाया जाता है, रेंगना और तैरना। रेंगने में चूषक एकाँतर क्रम में अधःस्तर पर चिपकाए जाते और देह संकुचित एवं प्रसारित किया जाता है। जब अगला चूषक जमाया जाता है तब अनुदैर्घ्य पेशियों में एक संकुचन लहर पैदा होती है जो जन्तु को छोटा करती और पिछले चूषक को आगे की ओर ले आती है, इसके द्वारा देह संकुचित होता और आगे की ओर खिच जाता है, उसके वाद पश्च चूषक गड़ाया जाता है और वृत्ताकार पेशियों में संकुचन लहर पैदा होती और अग्र सिरे से पीछे की ओर को चलती जाती है जिसके द्वारा देह लम्बा और

आगे की ओर को फैल जाता है। तैरने में एक भारी पृष्ठ-अधर चपटापन आ जाता है जो कि पृष्ठ-अधर पेशियों के संकुचन के कारण होता है, और अगले सिरे से पिछले सिरे तक तरंगित लहरें एक खड़े समतल में चलती जाती हैं जो अनुदैर्घ्य संकुचनों के कारण पैदा होती हैं।
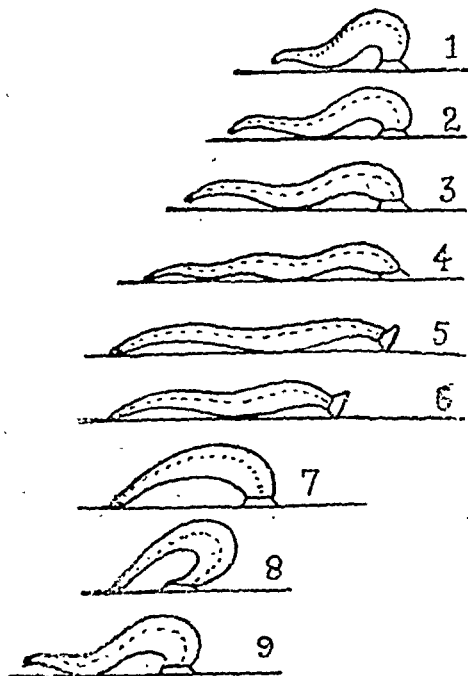
चित्र 257. चलन (रेंगने) में होने वाली अवस्थाएँ।

परिसंचरण-तन्त्र—वास्तविक रक्त-वाही तन्त्र नहीं होता, सीलोमी गुहाएँ तथा तरल रूपांतरित होकर वाही-तन्त्र बन गए हैं, इसमें अत्यधिक ह्रासित सीलोम होता है जिसमें खुली हुई अवस्था में हीमोग्लोबिन और अमीबीय कोशिकाओं से युक्त लाल रंग का सीलोमी तरल होता है। इस तन्त्र को **रक्तसीलोमी तन्त्र** (haemocoelomic system) कहते हैं और लाल सीलोमी तरल को **रक्तसीलोमी तरल** (haemocoelomic fluid) कहते हैं। जिन नलिकाओं में से होकर यह तरल बहता है उन्हें **रक्तसीलोमी नलिकाएँ** कहते हैं। रक्तसीलोमी तन्त्र में चार अनुदैर्घ्य रक्तसीलोमी नलिकाएँ होती हैं, इन नलिकाओं की शाखाएँ तथा केशिकाओं के बने हुए कुछ जालक होते हैं। अनुदैर्घ्य रक्त सीलोमी नलिकाएँ इस प्रकार होती हैं, एक **पृष्ठ नलिका**, एक **अधर नलिका** और दो **पार्श्व नलिकाएँ**। पृष्ठ और पार्श्व नलिकाओं में रक्तसीलोमी तरल पीछे से आगे की ओर बहता है, और अधर नलिका में यह आगे से पीछे की ओर को बहता है। पश्च क्षेत्र में चारों नलिकाएँ एक साथ मिल जाती हैं। पृष्ठीय और अधर नलिकाएँ वितरक नलिकाएँ होती हैं तथा पार्श्व नलिकाएँ वितरक और एकत्रक दोनों प्रकार की होती हैं।

पृष्ठ नलिका की पतली दीवारें होती हैं, यह मध्य-अधर रेखा में आहार-नाल के ऊपर से होकर चलती है। पृष्ठ नलिका से हर देह-खण्ड में दो जोड़ी **पृष्ठ-पार्श्व**
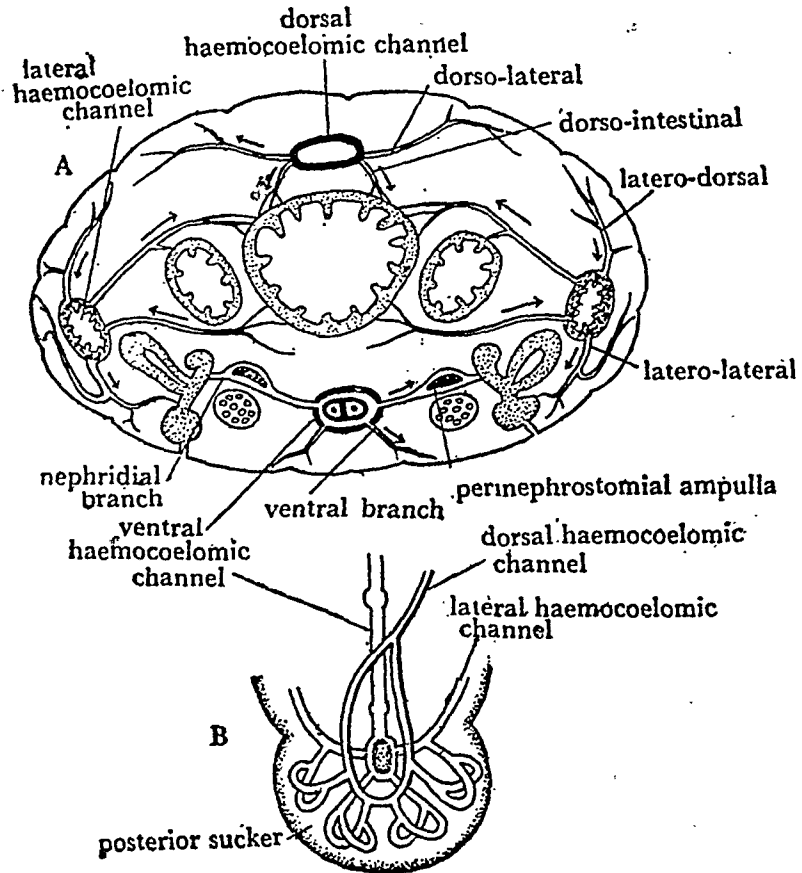
चित्र 258. A—हिरुडिनैरिया का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.), परिसंचरण तन्त्र दिखाते हुए।
B—पश्च दिशा में रक्तसीलोमी नलिकाओं का संयोजन।
Lateral haemocoelomic channel, पार्श्व रक्तसीलोमी नलिका; dorsal haemocoelomic channel, पृष्ठीय रक्तसीलोमी नलिका; dorso-lateral, पृष्ठ-पार्श्व शाखा; dorso-intestinal, पृष्ठ-आंत्र शाखा; latero-dorsal, पार्श्व-पृष्ठीय; latero-lateral, पार्श्व-पार्श्वीय; perinephrostomial ampulla, परिनेफ्रीडियममुखी कलशिका; ventral branch, अधर शाखा; ventral haemocoelomic channel, अधर रक्तसीलोमी नलिका; nephridial branch, नेफ्रीडियमी शाखा; posterior sucker, पश्च चूषक।

नलिकाएँ निकलती हैं जो रक्तसीलोमी तरल को देह-भित्ति की ओर ले जाती हैं, और अनेक **पृष्ठ-आन्त्रीय** नलिकाएँ निकलती हैं जो आहार-नाल को जाती हैं। पृष्ठ

नलिका बाईसवें खण्ड में द्विविभाजित हो जाती है और पीछे जाकर ये दोनों शाखाएँ अधर नलिका से मिल जाती हैं। अग्रतः पृष्ठ नलिका छठे से पहले खण्ड तक आहार-नाल के ऊपर एक जालक बनाती है।

अधर नलिका की दीवारें पतली होती हैं यह मध्य-अधर दिशा में आहार-नाल के नीचे अगले सिरे से पिछले सिरे तक चलती जाती है, यह चौड़ी होती है और केंद्रीय तन्त्रिका-तन्त्र को अपने भीतर बन्द करती हुई चलती है। इससे हर खण्ड में दो जोड़ी शाखाएँ निकलती हैं, पहली शाखा हर पार्श्व में दो उपशाखाओं में विभाजित हो जाती हैं, एक **अधर उपशाखा** अधर देह-भित्ति को जाती है। एक **उदर पृष्ठ उप-शाखा** सीधी ऊपर को जाती हुई पृष्ठ-देह-भिक्ति में पहुँचती है। अधर नलिका की दूसरी शाखा से हर खण्ड में एक जोड़ी **नेफ्रीडियमी शाखाएँ** (nephridium branches) निकलती हैं, प्रत्येक नेफ्रीडियमी शाखा बाहर को चलती हुई एक **परिनेफ्रीडियममुखी कलशिका** के रूप में बड़ी हो जाती है, यह कलशिका एक सिलियायित अंग को घेरे रहती है; नेफ्रीडियमी शाखा केवल उन ग्यारह खण्डों में ही होती है जिनमें वृषण पाये जाते हैं, ये शाखाएँ रक्तसीलोमी तरल को नेफ्रीडियमों, देह-भित्ति तथा सिलियायित अंगों तक परिनेफ्रीडियम मुखी कलशिका बनाती हैं।

पार्श्व-नलिकाओं में संकुचनशील पेशीय दीवारें होती हैं और उनमें वाल्व होते हैं जो रक्तसीलोमी तरल को पीछे से आगे की ओर बहने देते हैं, पार्श्व-नलिकाएँ आहार-नाल के दाएँ-बाएँ एक-एक होती हैं। हर खण्ड में पार्श्व-नलिका से एक शाखा निकलती है और दो शाखाएँ उसमें आकर मिलती हैं। इससे एक **पार्श्व-अधर** शाखा निकलती है जो अग्र और पश्च दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है जिनमें से हर एक शाखा अपनी दूसरी तरफ की साथी से मध्य-अधर दिशा में जुड़कर हर खण्ड में एक रॉम्बॉइड उत्फूलन बनाती हैं, उसके बाद वे रक्तसीलोमी तरल को आहार-नाल, नेफ्रीडिया तथा जनन-अंगों तक ले जाती हैं। हर पार्श्व-नलिका में हर खण्ड में एक तो **पार्श्व-पार्श्वीय** शाखा आकर मिलती है जो उसी दिशा की त्वचा और नेफ्रीडियम से आती है और दूसरे त्वचा तथा अन्तरांगों से आने वाली **पार्श्व-पृष्ठीय** शाखा आकर मिलती है। इस प्रकार पार्श्व-नलिकाओं की शाखाएँ रक्तसीलोमी तरल को त्वचा, नेफ्रीडिया, जनन-अंगों, आहार-नाल तथा निम्न देह-भित्ति में सप्लाई करती हैं, और तमाम भागों से अर्थात् ऊपरी और निचली देह-भित्ति, त्वचा, आहार-नाल, नेफ्रीडिया और जनन-अंगों से रक्तसीलोमी तरल को एकत्रित करती हैं। आगे की ओर पार्श्व नलिकाएँ पाँचवें खण्ड में केशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं और पीछे की ओर वे अधर-नलिका में मिल जाती हैं।

चारों नलिकाएँ न केवल एक दूसरे में खुलती ही हैं वरन् वे त्वचा, पेशियों और बोट्रॉयडल ऊतक में केशिकाएँ भी बनाती हैं। ईस **केशिका-तंत्र** के तीन मुख्य सेट होते हैं, इनमें से एक सेट बोट्रॉयडल केशिकाओं का होता है जो बोट्रॉयडल ऊतक में एक जालक बनाती हैं। बोट्रॉयडल ऊतक की केशिकाओं से सम्बन्ध बने रहने की यह दशा अन्यत्र नहीं पाई जाती, इसकी कशेरुकियों की उस व्यवस्था से तुलना की

जा सकती है जिसमें लसीका-तन्त्र सीलोम और रक्त-तन्त्र दोनों से सम्बन्धित रहता है। केशिका-तन्त्र का दूसरा भाग पेशियों में पाया जाने वाला केशिकाओं का अन्तः पेशीय सेट होता है। तीसरा सेट खाल में पाया जाने वाला त्वचीय केशिकाओं का होता है।
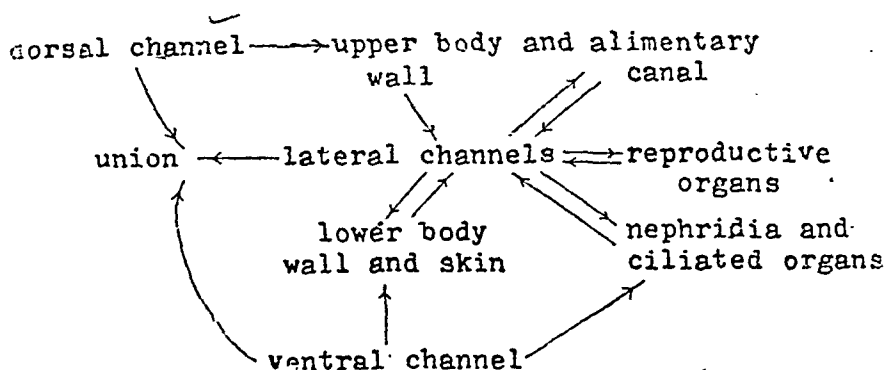
चित्र 259. रक्तसीलोमी तरल का परिसंचरण।

सीलोम—ऐनेलिडा का परिअन्तरांग सीलोम समाप्त हो चुका है. इसके ऊपर बोट्रॉयडल ऊतक आ जमा है और उसी ने इसे लगभग पूरी तरह समाप्त कर दिया है, जो कुछ बचा है वह चार अन्तःसम्बन्धित रक्तसीलोमी नलिकाओं, उनकी शाखाओं तथा कुछ सीलोमी साइनसों के रूप में शेष रह गया है। 1. रक्तसीलोमी नलिकाएँ पतली दीवारों वाली पृष्ठीय तथा अधर नलिकाएँ, और परवर्ती रूप में पेशीय दीवारें प्राप्त की हुई पार्श्व नलिकाएँ होती हैं। चारों अनुदैर्घ्य नलिकाओं का अस्तर सीलोमी एपिथीलियम का बना होता है। 2. रक्तसीलोमी नलिकाओं की अनेक शाखाएँ होती हैं, सबसे प्रमुख शाखाएँ अधर शाखा से निकली हुई शाखाएँ हैं जो सिलियायित अंगों को घेरते हुए थैले-जैसे उत्फूलन बनाती हैं, ये उत्फूलन **परिनेफ्रिडियममुखी कलशिकाएँ** होते हैं। सभी नलिकाओं और उनकी शाखाओं में लाल रक्तसीलोमी तरल होता है. इसके कारण उन नलिकाओं को रक्तसीलोमी नलिकाएँ कहते हैं न कि रक्त वाहिकाएँ, इनका तरल रक्त नहीं होता बल्कि सीलोमी तरल होता है जो घुले हुए हीमोग्लोबिन के कारण लाल रंग का हो जाता है। 3. सीलोमी साइनस एक तो वृषण-थैलों और अण्डाशयी थैलों में बनी हुई हैं जिनके बीच में गोनड होते हैं, और दूसरे शुक्रवाहिकाओं के चारों की गुहाएँ होती हैं। इनका अस्तर सीलोमी एपिथीलियम का बना होता है जिससे गोनड बनते हैं, इनमें बिना हीमोग्लोबिन वाला रंगहीन सीलोमी तरल होता है।

उत्सर्गी तंत्र—नेफ्रीडिया के 17 जोड़े होते हैं। छठे से लेकर बाइसवें खण्ड तक हर एक खण्ड में इनका एक-एक जोड़ा पाया जाता है। ये नेफ्रीडिया ओलाइगोकीटा के पश्चनेफ्रीडिया के समान हैं। हर नेफ्रीडिया में कोशिकाओं का एक ग्रन्थीय पिंड होता है, इन कोशिकाओं के भीतर अन्तःकोशिक वाहिनिकाएँ होती हैं जो

परस्पर जुड़कर एक अन्तराकोशिक नलिका बनाती हैं। नेफ्रीडियम में एक **मुख्य पालि** (main lobe) होता है जो घोड़े की नाल की तरह वक्र होता है, इसके आगे की ओर एक **शीर्षस्थ पालि** (apical lobe) होता है जो मुख्य पालि के ही बराबर चौड़ा होता है, मुख्य पालि की अवतलता में एक संकीर्ण **भीतरी पालि** (inner lobe) होता है जो पुनः अंशतः शीर्षस्थ पालि के सहारे-सहारे बना होता है। मुख्य पालि से एक पतला **आरम्भिक पालि** (initial lobe) निकलता है जो शीर्षस्थ पालि के चारों ओर लिपट जाता है, और फिर सामने की ओर बंद-बंद समाप्त हो जाता है। मुख्य पालि की निचली दिशा से एक पतली **आशय-वाहिनी** (vesicle duct) निकलती है जो पार करके एक बड़े पतली दीवार वाले अण्डाकार थैले में खुलती है, इस थैले को **आशय** (vesicle अथवा bladder) कहते हैं। आशय से एक छोटी **उत्सर्गी वाहिनी** (excretory duct) निकलती है जो बाहर की ओर उसी खण्ड के अन्तिम वलय में स्थित नेफ्रीडियमछिद्र के द्वारा खुलती है जिसमें कि वह नेफ्रीडियम होता है। नेफ्रीडियम कोशिकाओं की एक डोरी का बना
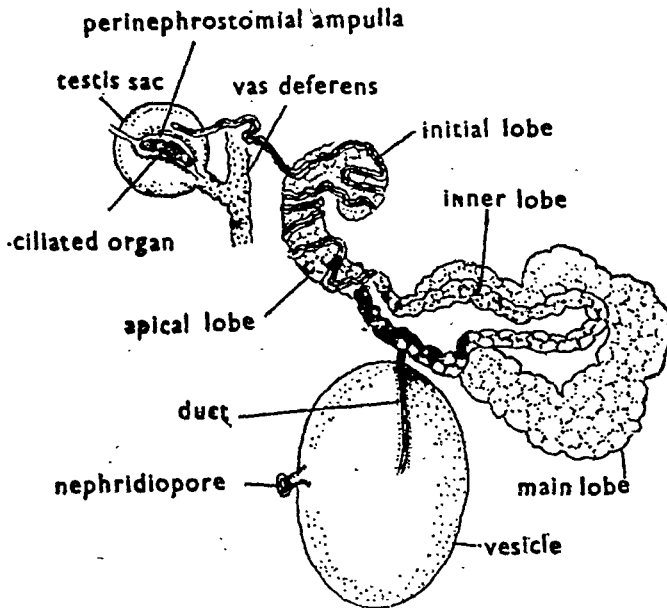
चित्र 260. एक वृषणी नेफ्रीडियम।

Ciliated organ, सिलियायित अंग; testis sac, वृषण-कोश; perinephrostomial ampulla, परिनेफ्रीडियममुखी कलशिका; vas deferens, शुक्र-वाहिनी; initial lobe, आरम्भिक पालि; apical lobe, शीर्षस्थ पालि; main lobe, मुख्य पालि; duct, वाहिनी; vesicle, आशय; nephridiopore, नेफ्रीडियमछिद्र।

होता है, आरम्भिक पालि में कोई नलिका नहीं होती लेकिन शीर्षस्थ पालि से एक अन्तराकोशिक सिलियायित नलिका शुरू होती है, वहाँ से वह भीतरी पालि में पहुँच जाती है, उसके बाद वह मुख्य पालि में पहुँच कर आशय वाहिनी में पहुँच जाती

है। नेफ्रीडिया नाइट्रोजनी अपशिष्ट को बाहर निकालते हैं, इस अपशिष्ट में मुख्यतः ऐमोनिया तथा कुछ अंश यूरिया का होता है, ये शरीर के अतिरिक्त जल को भी बाहर निकाल देते हैं, और इस तरह ये उत्सर्गी एवं परासरणनियामक होते हैं। रक्तसीलोमी नलिकाओं का अस्तर बनाने वाली योजी ऊतक कोशिकाएँ भी अपशिष्ट का अवशोषण करतीं और प्रवास द्वारा एपिडर्मिस में पहुँच जातीं हैं जहाँ वे अपघटित होकर बाहर निकल जाती हैं।

आखिरी ग्यारह जोड़े नेफ्रीडिया के आरम्भिक पालियों के सामने वाले अन्तिम सिरे वृषण-कोशों के ऊपर पड़े होते हैं; ये ग्यारह जोड़े वृषण-नेफ्रीडिया कहलाते हैं, शेष पहले छह जोड़े पूर्व-वृषण नेफ्रीडिया होते हैं और उनमें कोई वृषण-कोश नहीं होते। वृषण-कोशों पर ग्यारह जोड़ी **सिलियायित अंग** (ciliated organs) बारहवें से बाईसवें खण्ड तक होते हैं। सिलियायित अंग एक परिनेफ्रीडियममुखी कलशिका के भीतर बन्द होता है, यह कलशिका रक्तसीलोमी-तन्त्र का एक प्रसृत भाग होती है। सिलियायित अंग में एक **केन्द्रीय आशय** होता है जिसमें छिद्र बने होते हैं और जिसके चारों ओर असंख्य **सिलियायुक्त कीपें** होती हैं। सिलियायुक्त कीपें अधूरी कीप-जैसी होती हैं और उनके सीमांत पर घने सिलिया बने होते हैं। सिलियायित अंगों में सीलोमी अमीबीय कणिकाएँ बनती हैं। सिलियायित अंग भ्रूण में नेफ्रीडिया से जुड़े होते हैं, लेकिन वयस्क प्राणी में इनका नेफ्रीडिया से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इससे प्रकट होता है कि सिलियायित अंग मूलतः
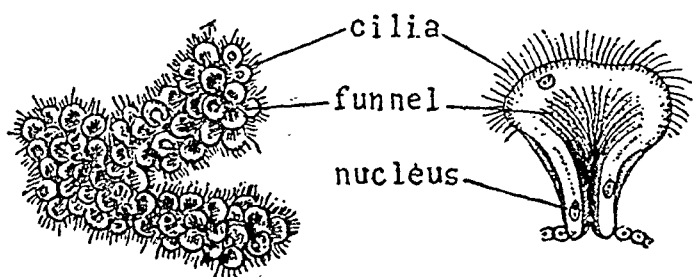
चित्र 261. A—सिलियायित अंग; B—कीप।
Cilia, सिलिया; funnel, कीप; nucleus, केन्द्रक।

नेफ्रीडियम का ही अंग हुआ करता था, लेकिन वयस्क में नेफ्रीडियम से इसका कोई सम्बन्ध न होने के कारण यह उत्सर्गी नहीं है लेकिन कणिकाओं के निर्माण के वास्ते यह रक्तसीलोमी तन्त्र का भाग बन गया है। सिलियायित अंग पौलीकीटा की सीलोमवाहिनियों के अनुरूप हैं न कि नेफ्रीडिया के नेफ्रीडियममुखों के अनुरूप।

तंत्रिका-तंत्र—तन्त्रिका-तन्त्र सामान्य ऐनेलिडन प्रकार का होता है, बस अन्तर इतना है कि अग्र और पश्च सिरों पर गैंग्लिया का समेकन हो गया है। एक जोड़ी समेकित प्रमस्तिष्क गैंग्लिया के रूप में एक छोटा-सा मस्तिष्क पाँचवें

खण्ड में ग्रसनी के ऊपर पड़ा होता है। पुरोमुखण्ड के साइज़ में कमी हो जाने के कारण मस्तिष्क पीछे को खिसक गया है। मस्तिष्क से दो
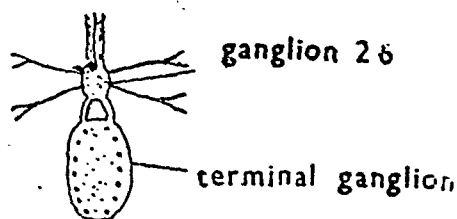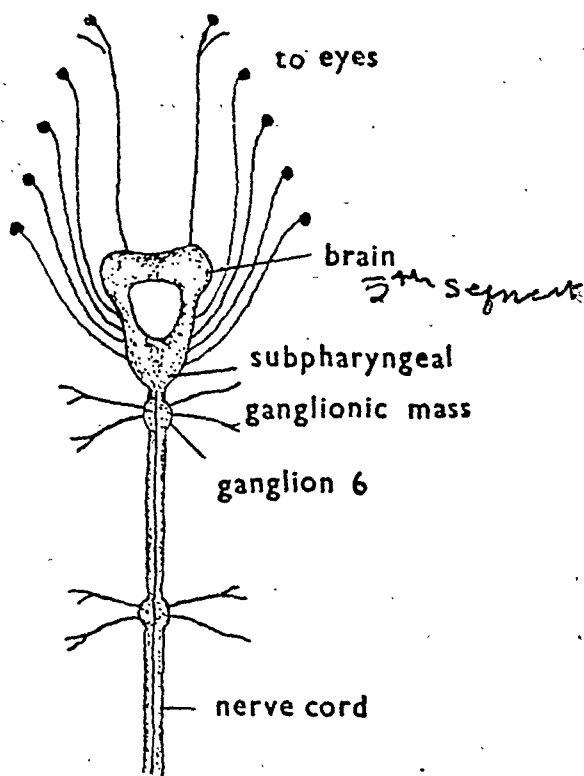
चित्र 262. तन्त्रिका-तन्त्र।

To eyes, आँखों की ओर; brain, मस्तिष्क; subpharyngeal ganglionic mass, अधःग्रसनी गैंग्लियानी पिंड; ganglion 6, छठा गैंग्लियान; nerve cord, तन्त्रिका-रज्जु; ganglion 26, गैंग्लियान 26; terminal ganglion, अन्तिम गैंग्लियान।

परिग्रसनी योजी निकलते हैं जो पाँचवें खण्ड में ग्रसनी के नीचे पड़े हुए अधःग्रसनी गैंग्लियानी पिंड से जा मिलते हैं, यह अधःग्रसनी गैंग्लियान चार जोड़ी गैंग्लिया के समेकन से बना होता है। इस अधःग्रसनी गैंग्लियान से एक दोहरी अधर रज्जु निकलती है जिसमें एक पतला मध्य सूत्र होता है, और यह मध्य-अधर रेखा में पीछे

को चलती जाती है। इसमें छठे से छब्बीसवें खण्ड तक 21 दोहरे गैंग्लियान होते हैं, उसके बाद यह पश्च चूषक में पड़े एक बड़े अन्तस्थ गैंग्लियान में समाप्त हो जाती है। अन्तिम गैंग्लियान सात जोड़ी गैंग्लिया के समेकन से बना होता है। केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र अधर रक्तसीलोमी नलिका के भीतर बन्द होता है।

मस्तिष्क से एक जोड़ी तंत्रिकाएँ निकल कर पुरोमुखंड तथा आँखों के पहले जोड़े में जाती हैं। अधःग्रसनी गैंग्लियान-पिंड से चार जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो आँखों के दूसरे, तीसरे, चौथे या पाँचवें जोड़े में जाती हैं, और साथ ही पहले पाँच खंडों के खंडीय ग्राहियों में भी जाती हैं। तंत्रिका-रज्जु के हर गैंग्लियान से दो जोड़ी मोटी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो अपने ही खंड का, जिसमें खंडीय ग्राही भी शामिल हैं, तंत्रिकायन करती हैं। अंतस्थ गैंग्लियान से छोटी-छोटी तंत्रिकाएँ पश्च चूषक में जाती हैं। एक **अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र** (sympathetic nervous system) होता है जिसमें खाल, पेशियों और आहार-नाल में तंत्रिका जालक होते हैं, इसमें बहुध्रुवी तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं, और आगे की ओर यह परिग्रसनी योजियों से जुड़ा होता है।

संवेदी अंग—1. वलय-ग्राही (annular receptors) छोटे आकार के प्रवर्धी पैपिला होते हैं, हर वलय के मध्य में पड़े हुए 36 वलय-ग्राही होते हैं, प्रत्येक ग्राही में चपटी अतिव्यापी कोशिकाएँ होती हैं जिनमें तंत्रिका-तंतु पहुँचे होते हैं। वलय-ग्राही
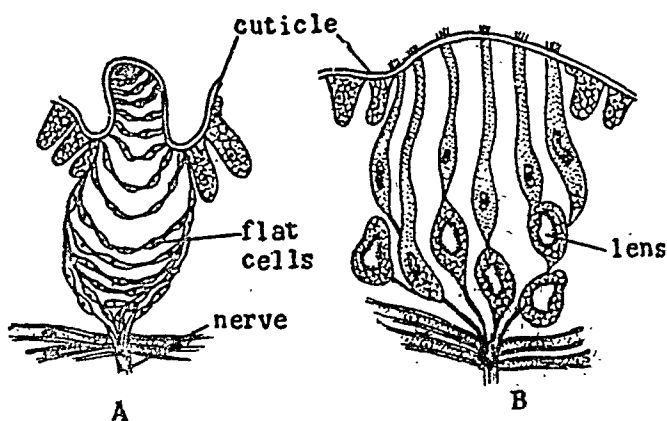
चित्र 263. A—वलय ग्राही; B—खंडीय ग्राही।
Cuticle, क्यूटिकल; flat cells, चपटी कोशिकाएँ; nerve, तंत्रिका; lens, लेन्स।

स्पर्श-अंग होते हैं। 2. **खंडीय ग्राही** (segmental receptors) हर खंड के पहले वलय में उभरे हुए सफ़ेद क्षेत्रक होते हैं। ये हर खंड में पृष्ठ सतह पर चार जोड़ों में और अधर सतह पर तीन जोड़ों की संख्या में होते हैं। इनमें लंबी पतली कोशिकाएँ होती हैं जो सीधी खड़ी होती हैं और उनकी बाहरी सतह पर छोटे-छोटे सिलिया होते हैं, ये स्पर्शीय होते हैं। पृष्ठ सतह के ग्राहियों की कुछ कोशि-

काम्रों में स्वच्छ बालचंद्राकार लेन्स होता है, ये कोशिकाएँ प्रकाशग्राही होती हैं।

3. **आँखें**—आँखों की पाँच जोड़ी होती हैं, जो पहले पाँच खंडों की पृष्ठ सतह पर होती हैं। हर आँख एक लंबी वर्णक-कटोरी होती है जिसकी बाहरी सतह पर पारदर्शी एपिडर्मिस और क्यूटिकल चढ़े होते हैं जो एक कॉर्निया बनाते हैं। कटोरी के भीतर अनेक अनुदैर्घ्य पंक्तियों में व्यवस्थित अपवर्तनी कोशिकाएँ होती हैं, हर अपवर्तनी कोशिका में एक काचाभ लेन्स होता है। आँख में एक दृष्टि तंत्रिका प्रविष्ट होती है और अपवर्तनी कोशिकाओं की ओर तंतु भेजती है। आँखें प्रकाशग्राही होती हैं। आँखों की व्यवस्था और ऊतक-रचना से यह सिद्ध होता है कि वे रूपांतरित खंडीय ग्राही हैं।
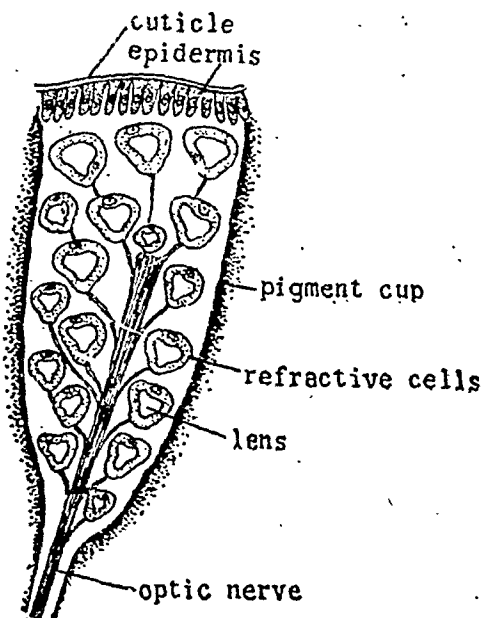
चित्र 264. आँख का उदग्र सेक्शन (V.S.)।

Cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; pigment cup, वर्णक कटोरी; refractile cells, अपवर्तनी कोशिकाएँ; lens, लेन्स; optic nerve, दृष्टि-तंत्रिका।

जनन-तंत्र—जोंकें उभयलिंगी होती हैं। नर अंगों में 11 जोड़ी **वृषण-कोश** होते हैं जो 12वें से 22वें खंड तक हर एक खंड में एक-एक जोड़ी होते हैं। वृषण-कोश बंद सीलोमी गुहाएँ होते हैं, उनके अस्तर से शुक्राणु बनते हैं जो सीलोमी तरल में परिपक्व होते हैं। हर एक वृषण-कोश से एक छोटी **शुक्रअपवाहिका** निकलती है, एक ओर की तमाम शुक्रअपवाहिकाएँ एक अनुदैर्घ्य **शुक्रवाहिका** में आकर मिलती हैं, यह शुक्रवाहिका 11वें से 22वें खंड तक चलती जाती है। अग्र दिशा में दोनों शुक्रवाहिकाएँ दसवें खंड में पड़े दो संवलित, संहत **एपिडिडिमिस** (epididymes) अथवा शुक्राशयों में प्रविष्ट हो जाती हैं। प्रत्येक एपिडिडिमिस से एक संकीर्ण **स्खलन-वाहिनी** निकलती है जो 9वें और 10वें खंड में स्थित एक मध्य एट्रियम में मिल जाती है। एट्रियम में एक अग्र **प्रोस्टेट ग्रंथि** और एक पश्चीय **शिश्न-कोश** (penis sac) होते हैं, शिश्न-कोश पेशीय होता है और उसमें एक नलिकाकार कुंडलित शिश्न होता है जो 10वें खंड के दूसरे वलय की अधर दिशा पर स्थित एक नर जनन-छिद्र में से वहिर्वर्तित हो सकता है। वृषण-कोशों में बने शुक्राणु एपिडिडिमिसों में संचित होते हैं, प्रोस्टेट ग्रंथियों से आने वाले एक स्राव के द्वारा शुक्राणु बंडलों के रूप में चिपका दिए जाते हैं जिन्हें शुक्राणुधर (spermatophore) कहते हैं। मादा अंगों में एक जोड़ी **अंडाशयकोश** होते हैं जिनमें में हरएक में सीलोमी गुहाएँ और एक
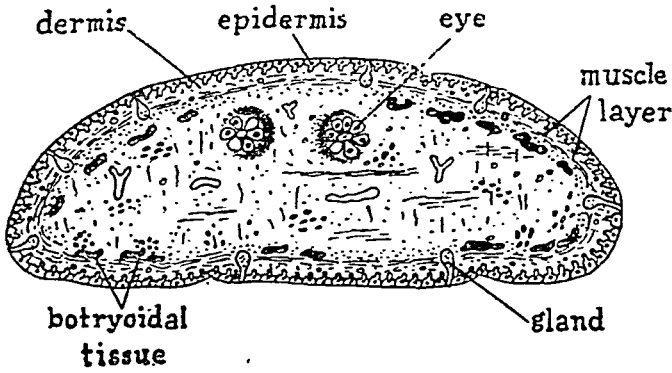
चित्र 265. जोंक का आँखों से गुज़रता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Dermis, डर्मिस; epidermis, एपिडर्मिस; eye, आँख; muscle layer, पेशी परत; gland, ग्रंथि; botryoidal tissue, बोट्रॉयडल ऊतक ।
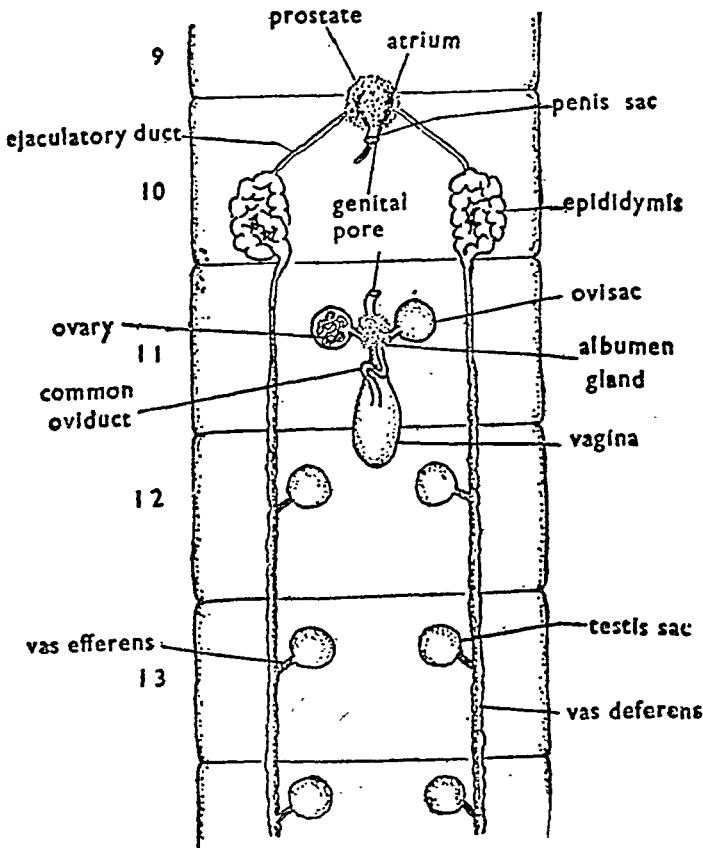
चित्र 266. जनन-अंग ।

Prostate, प्रोस्टेट; atrium, एट्रियम; ejaculatory duct, स्खलन-वाहिनी; penis sac, शिश्न-कोश; genital pore, जनन-छिद्र; epididymis, एपिडिडिमिस; ovary, अंडाशय; ovisac, अंडाशयकोश; albumen gland, ऐल्बुमेन-ग्रंथि; common oviduct, सम्मिलित अंडवाहिनी; vagina, योनि; vas efferens, शुक्र अपवाहिका; testis sac, वृषण-कोश; vas deferens, शुक्रवाहिका ।

अंडाशय बंद होता है। अंडाशय एक कुंडलित केंद्रकयुक्त रज्जु होता है जिसके सिरे मुद्गराकार होते हैं। अंडाशयकोश 11वें खंड में होते हैं और हर अंडाशय से एक पतली अंडवाहिनी निकलती है। दोनों ओर की अंडवाहिनियाँ एक साथ जुड़ कर एक **सम्मिलित अंडवाहिनी** बनाती हैं जो "S" की आकृति की होती है। अंडवाहिनियों के संधि-स्थल पर सम्मिलित अंडवाहिनी में को खुलती हुई एककोशिक ऐल्बुमेन-ग्रंथियाँ होती हैं। सम्मिलित अंडवाहिनी एक नाशपाती-रूपी पेशीय **योनि** (vagina) में खुलती है, योनि की गर्दन एक मध्य-अधर छिद्र के द्वारा 11वें खंड के दूसरे वलय पर खुलती है। जोंक के गोनड सीलोमी एपिथीलियम के अस्तर वाले बंद आशय होते हैं लेकिन अन्य ऐनेलिडा के विपरीत ये अपनी वाहिनियों में जारी रहते हैं। सीलोम के जनन-भाग का शेष भाग से पृथक् होना ओलाइगोकीटा में शुरू होता है लेकिन जोंकों में यह पूरा हो जाता है।

जोंक में मैथुन के द्वारा परनिषेचन होता है। मार्च और अप्रेल के महीनों में दो जोंकें अपनी अधर सतहों के सहारे एक दूसरे के विपरीत मुँह किए हुए इस तरह साथ-साथ आती हैं कि एक का नर छिद्र दूसरे के मादा छिद्र से मिल जाए। हर एक का शिश्न दूसरे की योनि में डाल दिया जाता और शुक्राणुधर छोड़ दिए जाते हैं और इस तरह परस्पर वीर्यसेचन हो जाता है। मैथुन थल पर हो सकता या जल में भी, यह एक घंटे तक चलता रहता है जिसके बाद दोनों जोंकें पृथक् हो जाती हैं। प्रजनन
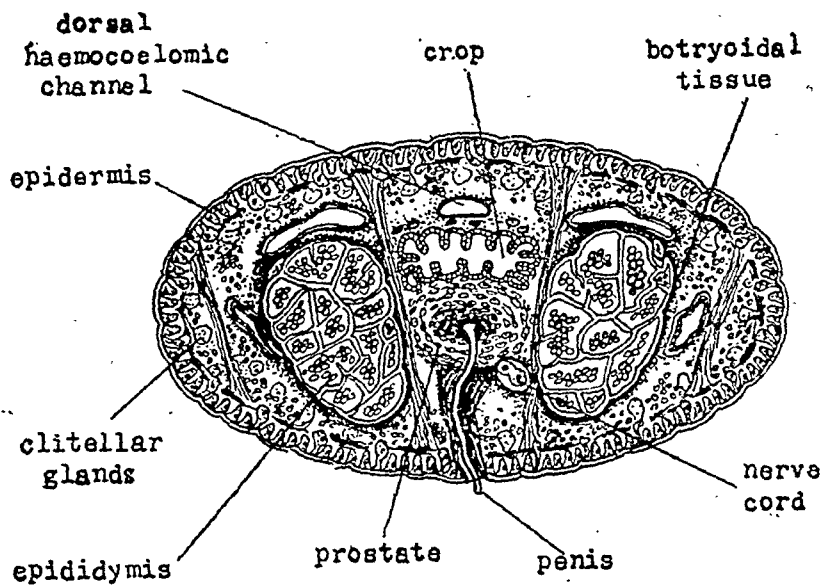
चित्र 267. जोंक का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.), अधिवृषण और प्रोस्टेट से गुज़रता हुआ।

Dorsal haemocoelomic channel, पृष्ठीय रक्तसीलोमी नलिका; crop, क्रॉप; botryoidal tissue, बोट्रॉयडल ऊतक; nerve cord, तंत्रिका रज्जु; penis, शिश्न; prostate, प्रोस्टेट; epididymis, एपिडिडिमिस; clitellar glands, क्लाइटेलमी ग्रंथियाँ; epidermis, एपिडर्मिस।

काल में नवें से ग्यारहवें खंड को घेरता हुआ एक क्लाइटेलम बन जाता है, इसकी

ग्रंथियाँ एक झागदार मेखला का स्राव करती हैं जो कड़ा होकर एक **ककून** बन जाती है, क्लाइटेलमी ग्रंथियाँ ककून में को आहार के लिए ऐल्बुमेन का स्राव कर देती हैं। निषेचित अंडे ककून में को निकाल दिए जाते हैं। जोंक ककून में से रेंगकर बाहर आ जाती है और ककून के दोनों सिरे ध्रुवी प्लगों द्वारा बंद हो जाते हैं, ये ध्रुवी प्लग पुरोमुखंड द्वारा स्रावित होते हैं। ककून एक हल्का पीला बैरल जैसा 30 mm. × 15 mm. साइज़ का होता है; इसमें एक बाहरी स्पंजी परत और एक भीतरी कड़ी काइटिनी परत होती है। ककून सदैव नम मिट्टी में दिए जाते हैं और जल में कभी नहीं दिए जाते। ककून-निर्माण में लगभग छह घंटे लगते हैं, हर ककून में चौबीस भ्रूण बनते हैं जो ककून के भीतर तैरते रहते और ऐल्बुमेन को खाते रहते हैं, अंततः वे ककून से बाहर आ जाते हैं। परिवर्धन सीधा होता है, कोई लार्वा नहीं होता, और लगभग चौदह दिन में पूरा हो जाता है।
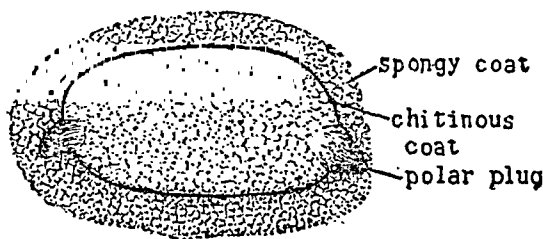
चित्र 268. ककून।

Spongy coat, स्पंजी आवरण; chitinous coat, क़ाइटिनी आवरण; polar plug; ध्रुवी प्लग।

फाइलम ऐनेलिडा का वर्गीकरण

ऐनेलिडा के शरीर में बाहर से वलयों के द्वारा और भीतर से पटों के द्वारा खण्ड-व्यवस्था बनी होती है। प्राणियों में इस वर्ग में पहली बार विखण्डन प्रकट हुआ है। पुरोमुखण्ड नाम का एक अकेला मुखपूर्वी खण्ड होता है। देह के ऊपर काइटिनी क्यूटिकल चढ़ा होता है जिसमें शूक बने हो सकते हैं। इन प्राणियों में एक सीलोम होता है जो सामान्यतः परिअन्तरांगीय होता है। परिसंचरण-तन्त्र बन्द प्रकार का होता है। उत्सर्जन-अंग विखण्डशः व्यवस्थित एक्टोडर्मी नेफ्रीडिया होते हैं जो सीलोम में को खुले हो सकते हैं अथवा नहीं भी। इनमें युग्मित मीज़ोडर्मी सीलोमवाहिनियाँ होती हैं जिनमें से लैंगिक कोशिकाएँ बाहर को निकलती हैं। पेशीय तन्त्र सुविकसित होता है और इनकी क्रिया समन्वित होती है। इनमें दोहरी अधर तन्त्रिका-रज्जु होती है और उन्नत प्रकार के संवेदग्राही होते हैं।

क्लास 1. **पौलीकीटा** (Palychaeta) लगभग सब के सब समुद्री कृमि ही होते हैं जिनमें इस फ़ाइलम के अधिक आदिम लक्षण पाये जाते हैं, देह में खण्ड-व्यवस्था भली-भाँति बनी होती है, सुविकसित परापाद होते हैं जिन पर समूहों में व्यवस्थित बहुसंख्यक शूक होते हैं। आँखों और स्पर्शकों से युक्त एक सुनिश्चित शीर्ष होता है। लिंग अलग-अलग होते हैं, लैंगिक अंग अनेक तथा सरल एवं अस्थायी होते हैं लेकिन

वे विखण्डतः पुनरावर्तित होते हैं। क्लाइटेलम कभी नहीं बनता। इनमें कायान्तरण होता है और एक स्वच्छन्द तैरने वाला ट्रोकोफ़ोर लार्वा होता है। पौलीकीटा ने ही कदाचित् ओलाइगोकीटा को जन्म दिया है।

आर्डर (*a*) **एरेन्शिया** (Errantia)—इनमें देह-खण्ड बहुसंख्यक और प्रायः समान होते हैं, परापादों में सूचिकाएँ होती हैं। ये प्रायः स्वच्छन्द तैरने वाले होते हैं हालाँकि कुछ प्राणी चट्टानों के नीचे रेंगते फिरते, कुछ रेत में सक्रिय रूप में घुसते जाते, और अनेक नलिकाएँ बना कर उनमें रहते हैं। शीर्ष अरूपान्तरित होता है लेकिन आमतौर से उनमें उपांग बने होते हैं, एक बहिःकर्षी ग्रसनी होती है जिसमें जबड़े होते हैं, उदाहरण, **नीऐंथीस** (*Neanthes*), **ऐफ्रोडाइट** (*Aphrodite*), **फ़िलोडसी** (*Phyllodoce*), **सिल्लिस** (*Syllis*), **पौलीनोई** (*Polynoe*)।

आर्डर (*b*) **सीडेण्टेरिया** (Sedentaria)—ये नलिकाओं में रहने वाले स्थानबद्ध प्राणी होते हैं जो उन नलिकाओं में से शायद ही कभी बाहर आते हों। नलिका अधःस्तर पर चिपकी होती है। कुछ प्राणी बिलकारी भी होते हैं। ये सूक्ष्माकार आहार को इकट्ठा करने के लिए रूपान्तरित हो गए होते हैं। शरीर में प्रायः विभिन्न प्रदेश होते हैं, पुरोमुखण्ड छोटा होता है, परापाद ह्रासित और बिना सूचिकाओं वाले होते हैं, बहिःकर्षी ग्रसनी नहीं होती और जबड़ों का अभाव होता है, खण्ड असमरूप होते हैं, उदाहरण, **कीटॉप्टेरस** (*Chaetopterus*), **ऐम्फ़ीट्राइट** (*Amphitrite*); **ऐरेनिकोला** (*Arenicola*), **सबेला** (*Sabella*), **सर्पुला** (*Serpula*)।

पौलीकीटा का एरेन्शिया तथा सीडेण्टेरिया वर्गों में विभाजन किया जाना कोई प्राकृतिक विभाजन नहीं है।

क्लास 2. **ओलाइगोकीटा** (Oligochaeta) में स्थलीय केंचुए तथा अलवणजलीय ऐनेलिड आते हैं। देह में खण्ड-व्यवस्था अच्छी तरह बनी होती है; परापाद नहीं होते, शूक सरल और थोड़े होते हैं। शीर्ष विकसित नहीं होता, केवल एक पुरोमुखण्ड बना होता है जिस पर उपांग नहीं होते। ये उभयलिंगी होते हैं, गोनड संहत प्रकार के होते हैं और हर प्रकार के गोनड दो जोड़ी से अधिक संख्या में नहीं होते, वे शरीर के अग्र भाग में होते हैं जिनमें से वृषण सदैव अण्डाशयों के सामने की ओर होते हैं। क्लाइटेलम मौजूद होता है। मैथुन तथा परनिषेचन होता है, अण्डे ककूनों में दिए जाते हैं, परिवर्धन सीधा होता है जिसमें कोई लार्वा या कायान्तरण नहीं होता। कुछ अलवणजलीय अलोइगोकीटों से हिरुडिनिया वर्ग निकला है।

आर्डर (*a*) **टेरिकोली** (Terricolae)—ये स्थलीय केंचुए होते हैं, क्लाइटेलम में कोशिकाओं की परतें होती हैं, उदाहरण : **फेरेटिमा** (*Pheretima*), **यूटाइफीयस** (*Eutyphoeus*), **लम्ब्राइकस** (*Lumbricus*), **ऐलोलोबोफ़ोरा** (*Allolobophora*)।

आर्डर (*b*) **लिमिकोली** (Limicolae)जलीय ओलाइगोकीटा होते हैं, क्लाइटेलम में एक परत कोशिकाएँ पाई जाती हैं। कुछ अलवणजलीय प्राणी जलमग्न वनस्पति में पाए जाते हैं, शेष तली की मिट्टी में बिल बनाते हैं, उदाहरण : **नेइस** (*Nais*), **डेरो** (*Dero*), **ट्यूबिफेक्स** (*Tubifex*)।

क्लास 3. **हिरुडिनिया** (Hirudinea) में जोंकें आती हैं, इनका शरीर कुछ छोटा होता है, खंड 33 होते हैं जो बाहर से वलयों में विभाजित होते हैं। ये बाह्य-परजीवी जोंकें होते हैं जिनमें अग्र और पश्च चूषक बने होते हैं। स्पर्शक, शूक और परापाद नहीं होते। सीलोम का बोट्रॉयडल ऊतक द्वारा ह्रास हो गया है। (एक आदिम जोंक **ऐकेन्थॉब्डेला** (*Acanthobdella*), सामन-मछली के ऊपर परजीवी पाई जाती है, इसमें 30 खंड होते हैं, और इसमें शूक होते हैं एवं एक अग्र परिअन्तरांग सीलोम होता है, ओलाइगोकीटा और हिरुडिनिया के बीच यह एक कड़ी के रूप में है।)

ये उभयलिंगी होते हैं, जिनमें वृषण अनेक लेकिन अंडाशय केवल एक जोड़ी के रूप में होते हैं। नर जनन-छिद्र मादा जनन-छिद्र के आगे होता है। क्लाइटेलम केवल लैंगिक परिपक्वन के दौरान बनता है। जोंकें अधिकतर अलवणजल में पाई जाती हैं, कुछ स्थलीय होती हैं और शेष समुद्री होती हैं।

आर्डर (*a*) **रिन्कॉब्डेलिडा** (Rhynchobdellida)—ये अलवणजलीय तथा समुद्री जीव होते हैं, अगला सिरा एक बहिर्वर्तनशील शुण्ड के रूप में बन जाता है जिसके साथ एक शुण्ड-आच्छद होता है, लेकिन ग्रसनी अथवा जबड़े नहीं होते। हर खंड में तीन वलय होते हैं। रक्त रंगहीन होता है। इनमें रक्तवाही तन्त्र और साथ ही साथ रक्तसीलोमी तन्त्र भी होता है जिसके फलस्वरूप परिसंचरण तन्त्र रक्तसीलोमी साइनसों से पृथक् होता है, उदाहरण : **ग्लॉसिफोनिया** (*Glossiphonia*), **पोण्टॉब्डेला** (*Pontobdella*), **ब्रैंकेलियॉन** (*Branchellion*)।

आर्डर (*b*) **नैथॉब्डेलिडा** (Gnathobdellida)—ये अलवणजलीय और स्थलीय प्राणी होते हैं; ग्रसनी अवहिर्वर्तनी होती है, यह पेशीय होती है लेकिन शुण्ड के रूप में नहीं बनी होती, दो या तीन दन्तयुक्त जबड़े होते हैं। रक्त लाल होता है, उदाहरण : **हिरुडिनैरिया** (*Hirudinaria*), **हिरुडो** (*Hirudo*), **हीमैडिप्सा** (*Haemadipsa*)।

क्लास 4. **आर्किऐनेलिडा** (Archiannelida) एक छोटा-सा वर्ग है जिसमें समुद्री कृमि आते हैं और इनमें सिलियायुक्त त्वचा होती है। ये सक्रिय अपमार्जक (scavengers) होते हैं और अधिकांश में एक बहिर्वर्तनी जीभ-जैसा ग्रसनी-वल्ब होता है। बाहरी विखण्डन समाप्त हो चुका है हालाँकि भीतरी पट होते हैं, उदाहरण, **पौलीगॉर्डियस** (*Polygordius*)।

वर्गीकरण की पुरानी पद्धतियों में दो और वर्ग एक्यूरॉयडीया (Echiuroidea) तथा साइपनकुलॉयडीया (Sipunculoidea) ऐनेलिडा के क्लासों के रूप में इसी फाइलम में शामिल किये जाते थे। इन स्थानबद्ध विपथी जन्तुओं में कुछ समानताएँ ऐनेलिडा से पाई जाती हैं जैसे नेफ्रीडिया, ऐनेलिडी केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र तथा ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा का पाया जाना, लेकिन कुल मिलाकर ये ऐनेलिडा से बहुत भिन्न हैं, अतः इन्हें अलग-अलग फ़ाइलमों में रखना अधिक न्याय-संगत होगा।

फ़ाइलम एक्यूरिडा (Echiurida)—ये बिलकारी समुद्री जन्तु होते हैं। वयस्क में खण्डीभवन नहीं होता, सीलोम बड़ा और सुविकसित होता है, इसमें पेशीय

सूत्र आर-पार बने होते हैं जो आहार-नाल को टिकाए रहते हैं। परापाद नहीं होते और शूक सामान्यतः समाप्त हो गए होते हैं हालाँकि कुछ में अधर शूकों की एक अकेली जोड़ी पाई जाती है। एक बड़ा मुखपूर्वी शुण्ड होता है, एक से लेकर अनेक जोड़ी खण्डीय अंश पाए जाते हैं। लगभग 60 स्पीशीज़ ज्ञात हैं, उदाहरण : **बोनेलिया** (*Bonellia*), **एक्यूरस** (*Echiurus*)।

फ़ाइलम **साइपनकुलिडा** (Sipunculida)—ये बिलकारी समुद्री जन्तु होते हैं जो रेत और चट्टानों में रहते हैं। वयस्क में खण्डीभवन नहीं होता, सीलोम बड़ा और अविभाजित होता है। शूक नहीं होते, पुरोमुखंड वयस्क में अविद्यमान होता है। शरीर का अग्र भाग पश्च भाग में को अन्तर्वलित हो सकता है। गुदा आगे और पृष्ठ सतह पर होती है क्योंकि अंतड़ी ऊपर की ओर कुण्डलित हुई होती है। खंडीय अंगों का केवल एक जोड़ा पाया जाता है। 200 से ऊपर स्पीशीज़ ज्ञात हैं, उदाहरण : **साइपनकुलस** (*Sipunculus*), **फैस्कोलोसोमा** (*Phascolosoma*)।

ऐनेलिडा के प्ररूप

1. **ऐफ्रोडाइट** (*Aphrodite*) (समुद्री-चूहा)—यह समुद्र की कीचड़ में बिल बनाकर घुस जाया करता है। एक छोटा शीर्ष होता है जो पुरोमुखंड तथा परिमुखंड का बना होता है, पुरोमुखण्ड मुख के ऊपर से पृष्ठ दिशा में उभरा होता है। सामने
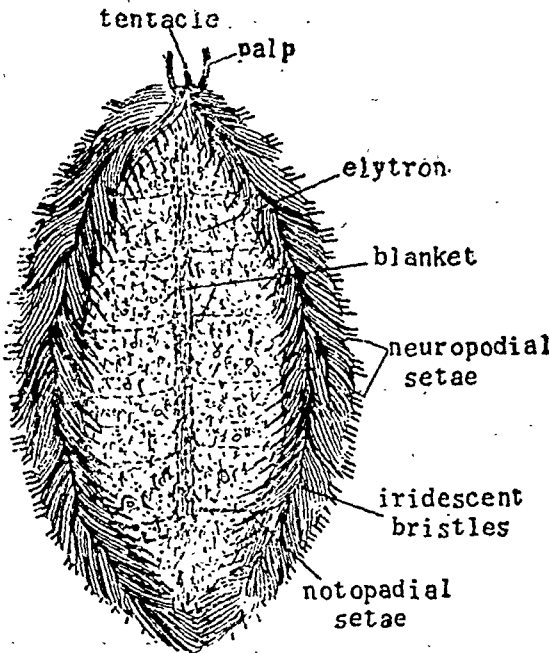
चित्र 269. **ऐफ्रोडाइट एक्यूलिएटा** (*Aphrodite aculeata*)
Tentacle, स्पर्शक; palp, पैल्प; elytron, पक्षवर्म; blanket, चादर; neuropodial setae, निम्नपादक शूक; iridescent bristles, रंगदीप्त शूक; notopodial setae, पृष्ठपादक शूक।

की ओर दो पार्श्व-पैल्प और एक छोटा स्पर्शक होता है। देह छोटा और चौड़ा तथा पृष्ठ दिशा में घुमावदार उभरा हुआ बना होता है, अधर सतह चिपटी होती है जिसमें वलय बने होकर एक रेंगने वाला "तला" बना होता है। पृष्ठपादक के घने मोटे शूक रंगदीप्त होते हैं, ये ताना-बाना बनाकर एक "चादर" बना लेते हैं जो पीठ और उसके साथ में पक्षवर्म को ढक लेते हैं। चादर और पृष्ठ देह-भित्ति के बीच में एक गुहा होती है जिसमें रूपांतरित पृष्ठ-सिरसों से बने 15 जोड़ी पक्षवर्म (elytra) अथवा शल्क होते हैं। पृष्ठ देहभित्ति की पम्पिंग क्रिया से जल शूकों की चादर में से छन कर नीचे की गुहा में आ जाता है, और पक्षवर्म इस जल में से ऑक्सीजन प्राप्त कर लेते हैं। अंतड़ी में लम्बे विशाखित खण्डीय अंधनाल होते हैं जो उन सूक्ष्म आहार-कणों को पचा लेते हैं जो अंतड़ी तथा अंधनालों के बीच पड़ी चलनी में से होकर आते हैं, अंधनालों में अनेक प्रकार की स्रावक तथा अवशोषी कोशिकाएँ होती हैं। सीलोमी
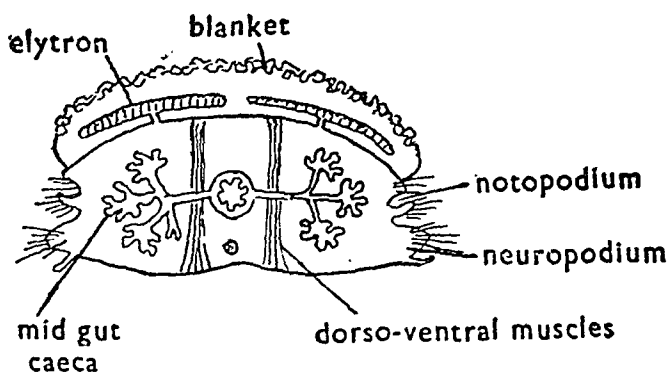
चित्र 270. **ऐफ्रोडाइट** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)

Elytron, पक्षवर्म; blanket, चादर; notopodium, पृष्ठपादक, neuropodium, निम्नपादक; dorso-ventral muscles, पृष्ठ-अधर पेशियाँ; midgut caece, मध्यान्त्र अन्धनाल।

एपिथीलियम सिलियायित होता है जिससे परिसंचरण होता है, और मलाशय में को निकले हुए तीव्रतः सिलियायित कटकों की एक शृंखला होती है।

2. **सिल्लिस** (*Syllis*)—साइज़ एक इंच से कम होता है। शीर्ष पुरोमुखंड तथा परिमुखण्ड का बना होता है। पुरोमुखण्ड पर चार आँखें, तीन स्पर्शक और दो पैल्प होते हैं, इन पैल्पों पर खाँचे बनी होती हैं तथा दोनों समेकित होते हैं। परिमुखण्ड पर दो जोड़ी सिरस होते हैं, स्पर्शक तथा सिरस सखण्ड होते हैं। परापाद में पृष्ठपादक नहीं होता, केवल एक लम्बा सन्धियुक्त पृष्ठपादक सिरस होता है और शूकों तथा सिरस से युक्त एक निम्नपादक होता है। ग्रसनी में अकेला शंक्वाकार दाँत होता है जिसमें विष ग्रन्थि की एक वाहिनी भी होती है, ग्रसनी एक ग्रसनी-आच्छद में बन्द रहती है। ग्रसनी के पीछे एक पेशीय पुरोजठर (proventriculus) होता है जो एक पम्प की तरह कार्य करता है।

सिलिस में अलैंगिक जनन होता है। अग्र प्रदेश अलैंगिक होता है और पिछला प्रदेश गोनडों से युक्त लैंगिक होता है। पिछला लैंगिक प्रदेश रूपांतरित होकर
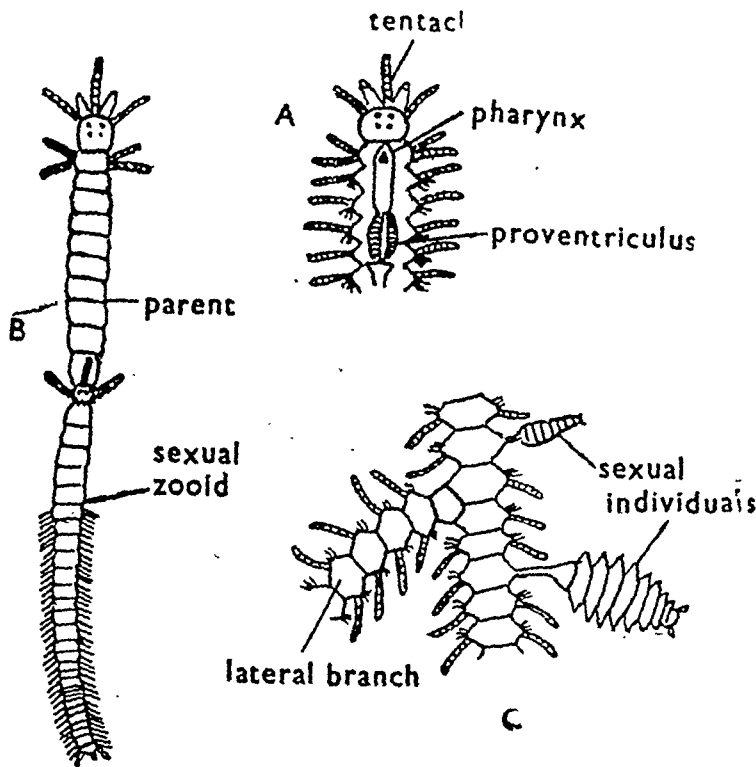
चित्र 271. A—**सिलिस**; B—**सिलिस** में जनन-ज़ूऑयडों का अलैंगिक मुकुलन; C—**सिलिस रेमोसा** (*Syllis ramosa*). सामने अलैंगिक और जनन प्राणियों का मुकुलन हो रहा है।

Parent, जनक; sexual zooid, लैंगिक ज़ूऑयड; tentacle, स्पर्शक; pharynx, ग्रसनी; proventriculus, पुरोजठर; lateral branch, पार्श्व शाखा; sexual individuals, लैंगिक प्राणी।

जनक से पृथक् हो जाता है, फिर अपने में एक शीर्ष बनाकर एक लैंगिक ज़ूऑयड बन जाता है। **सिलिस रेमोसा** (*Syllis ramosa*) में, जो कि गहरे समुद्रों में पाये जाने वाले कुछ स्पंजों में रहता है, जन्तु के शरीर में से मुकुलन के द्वारा बन्ध्य (sterile) पार्श्व शाखाएँ बन जाती हैं जिनमें पुनः विशाखन होकर एक निवह अर्थात् कॉलोनी बन जा सकती है। कुछ शाखाओं में परापाद बन जाते हैं, लैंगिक अंग उत्पन्न हो जाते हैं और एक शीर्ष बन जाता है, इन लैंगिक रूपों में पृष्ठपादक बन जाते हैं। लैंगिक रूप कॉलोनी से पृथक् हो जाते और स्पीशीज़ का वितरण करते हैं। इस प्रकार हम यहाँ तीन प्राकृतिक घटनाएँ देखते हैं, ये हैं कायांतरण, अलैंगिक विभाजन, तथा लैंगिक परिवर्धन।

3. **पौलीनोई** (*Polynoe*)—शरीर छोटा और पृष्ठ-अधरशः चपटा हो गया होता है। शीर्ष में एक पुरोमुखण्ड तथा एक परिमुखण्ड होता है। पुरोमुखण्ड पर तीन स्पर्शक, दो लम्बे पैल्प, और चार आँखें होती हैं। परिमुखण्ड पर दो जोड़ी स्पर्शक और परिमुखण्ड-सिरस होते हैं। देह-खण्ड थोड़ी संख्या में होते हैं, हर खण्ड पर एक जोड़ी परापाद होते हैं जिन पर सुनहरे शूक होते हैं। देह की पृष्ठ सतह को चपटे पक्षवर्म ढके होते हैं जो कि रूपांतरित पृष्ठ सिरस होते हैं। पक्षवर्मों में स्फुरदीप्ति (phosphorescence) पाई जाती है और वे शरीर से गिराये जा सकते तथा पुनः निर्मित हो सकते हैं। **पौलीनोई** मांसभक्षी होता है और खाते समय इसकी ग्रसनी उलट कर बाहर आ जाती है।
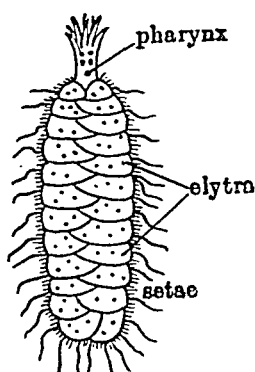
चित्र 272. **पौलीनोई**। Pharynx, ग्रसनी; elytra, पक्षवर्म; setae, शूक।

4. **कीटॉप्टेरस** (*Chaetopterus*)—यह 6-15 इंच लम्बा होता है, इसका दृढ़ शरीर तीन प्रदेशों में बँटा होता है। अगले चपटे प्रदेश में एक कीप-जैसी आकृति का परिमुखण्डी कॉलर होता है जिसके ऊपर दो मूलांगी स्पर्शक और एक मुख बना होता है। चौथे खण्ड में शूक बड़े हो जाते हैं, दसवें खण्ड में एक जोड़ी पंख-जैसे **पक्षाकार पृष्ठपादक** (aliform notopodium) होते हैं जिनके ऊपर सिलियायित एपिथीलियम और अनेक श्लेष्मा-ग्रन्थियाँ होती हैं। पृष्ठ दिशा पर एक सिलियायित खाँच होती है जो मुख से चलती हुई एक सिलियायित कटोरी **पृष्ठ प्यालिका** (dorsal cupule) में समाप्त होती है। मध्य प्रदेश में रूपांतरित परापाद तीन जोड़ी **पंखे** (fans) बनाते हैं जो अर्धवृत्ताकार डयनों की तरह होते हैं, पंखे नलिका की सिलिंडराकार दीवारों से सटे होते हैं। पश्च प्रदेश में समान खण्ड होते हैं जिन पर परापाद बने होते हैं। **कीटॉप्टेरस** एक सबसे ज्यादा रूपांतरित नलिकावासी कृमि है, यह समुद्र की कीचड़ में बनी U की आकृति की पार्चमेंट-जैसी नलिका में स्थायी तौर पर रहता है। इस नलिका के दोनों सिरे खुले लेकिन संकीर्ण हुए होते हैं। ये दोनों सिरे मिट्टी के ऊपर पानी में को निकलते होते हैं। नलिका अन्तराज्वार क्षेत्र में दबी रहती है और एकांतर क्रम में हवा में खुल जाती तथा ज्वार से ढक जाती है। जन्तु की अधर सतह चूषकों द्वारा नलिका से चिपकी रहती है। शरीर से एक लस निकलता है जो नलिका की भीतरी सतह पर तथा जन्तु के देह के ऊपर फैला होता है, इसके कारण जन्तु अँधेरे में बहुत तीव्रता से प्रकाश देता रहता है, कभी-कभी यह लस पानी में फैल जाता है जिससे समुद्र में स्फुरदीप्ति आ जाती है। नलिका में रहने वाले जीवन के कारण देह नरम हो गया है और नलिका के बाहर लाचार होता है।

अशन—मध्य-प्रदेश के तीन जोड़ी पंखों के और साथ ही साथ सिलियायित

खाँच के सिलिया स्पन्दन के कारण एक जलधारा उत्पन्न होती है जो नलिका के एक सिरे से प्रविष्ट होकर दूसरे सिरे से बाहर निकल जाती है, यह धारा श्वसनीय होती है तथा आहार भीतर लाती है। पक्षाकार पृष्ठपादक श्लेष्मा की एक सिलिंडराकार चादर का स्राव करते हैं जो एक **श्लेष्मा थैला** बना लेती है, यह थैला दो पृष्ठपादकों के बीच में एक जाल-जैसा फैला होता
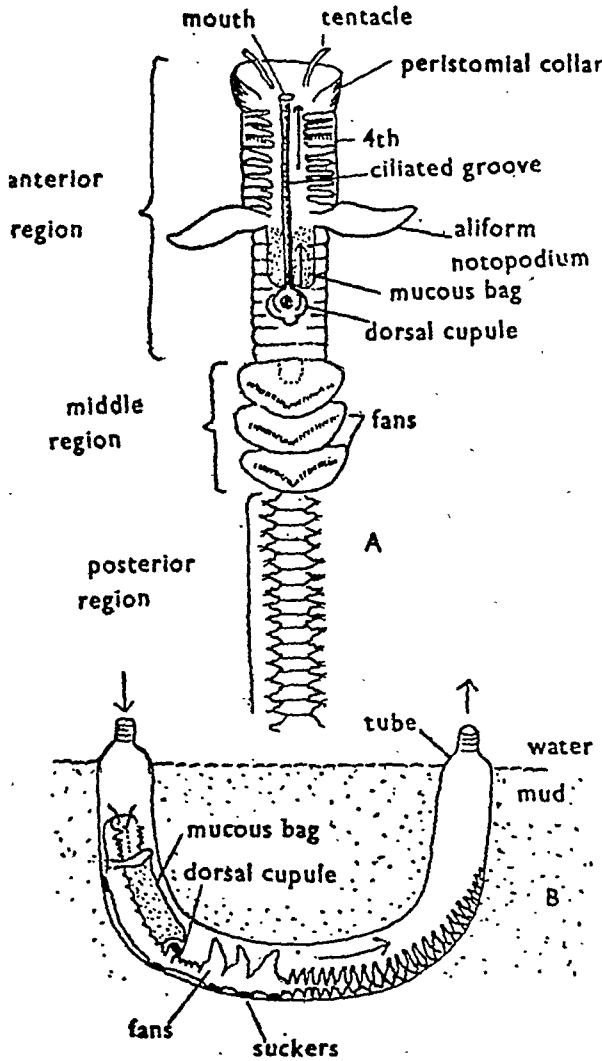
चित्र 273. A—**कीटॉप्टेरस पर्गमेंटेसियस** (*Chaetopterus pergamentaceus*); B—अपनी आवासी नलिका में **कीटॉप्टेरस**।
Anterior region, अग्र प्रदेश; mouth, मुख; tentacle, स्पर्शक; peristomial collar, परिमुखण्डी कॉलर, ciliated groove, सिलियायित खाँच; aliform notopodium, पक्षाकार पृष्ठपादक; mucous bag, श्लेष्मा थैला; dorsal cupule, पृष्ठ-प्यालिका; middle region, मध्य प्रदेश; fans, पंखे; posterior region, पश्च प्रदेश; tube, नलिका; mud, कीचड़।

है। नलिका में से गुज़रने वाला सारा जल इस श्लेष्मा-थैले में से होकर छनता जाता है जो इस तरह आहार कणों को इकट्ठा कर लेता है, इन आहार-कणों में प्लवक तथा अपरद (detritus) शामिल होता है। केवल बहुत ही छोटे कण रोक लिये जाते हैं, आहार से लदा श्लेष्मा-थैला सिलियायित खाँच में नीचे को चलता जाता है और पृष्ठ-प्यालिका द्वारा एक गेंद अथवा **ग्रास** (bolus) के रूप में लिपट जाता है। पृष्ठ-खाँच में सिलिया का स्पन्दन समय-समय पर उल्टा हो जाता है जिससे कि गेंद पृष्ठ-खाँच में से मुँह की तरफ चली जाती और निगल ली जाती है। पंखों का डुलना उस समय रुक जाता है जब कि गेंद को मुख की तरफ धक्का दिया जा रहा होता है।

5. **ऐम्फ़ीट्राइट** (*Amphitrite*)—यह ज्वार-चिह्नों के बीच में समुद्री कीचड़ में नलिकाएँ बनाकर उनके भीतर रहता है, नलिकाएँ श्लेष्मा की बनी होती हैं। देह भूरे रंग का सिलिंडराकार और लगभग 20-30 cm. लम्बा होता है। इसमें तीन स्पष्ट क्षेत्र होते हैं, शीर्ष, वक्ष (thorax) और उदर (abdomen)। शीर्ष पुरोमुखण्ड तथा परिमुखण्ड का बना होता है। पुरोमुखण्ड चपटा होता है और अग्र मुख का ऊपरी होंठ बनाता है। इस पर कोई पैल्प नहीं होते लेकिन दो बड़े-बड़े गुच्छों में व्यवस्थित बहुत से संकुचनशील स्पर्शक होते हैं, स्पर्शक खोखला और सीलोमी तरल से भरा होता है, इसके ऊपर एक सिलियायित खाँच तथा श्लेष्मा ग्रन्थि कोशिकाएँ होती हैं। आहार स्पर्शकों द्वारा एकत्र किया जाता और खाँचों के रास्ते मुख में पहुँचा दिया जाता है। परिमुखण्ड मुख का निचला होंठ बनाता है। वक्ष लम्बा और चौड़े खण्डों वाला होता है। वक्ष के प्रथम तीन खण्डों के ऊपर लाल रंग के तीन जोड़ी गिल (gill) होते हैं, ये गिल बहुत ज़्यादा विशाखित श्वसन अंग होते हैं, ये रूपांतरित पृष्ठ
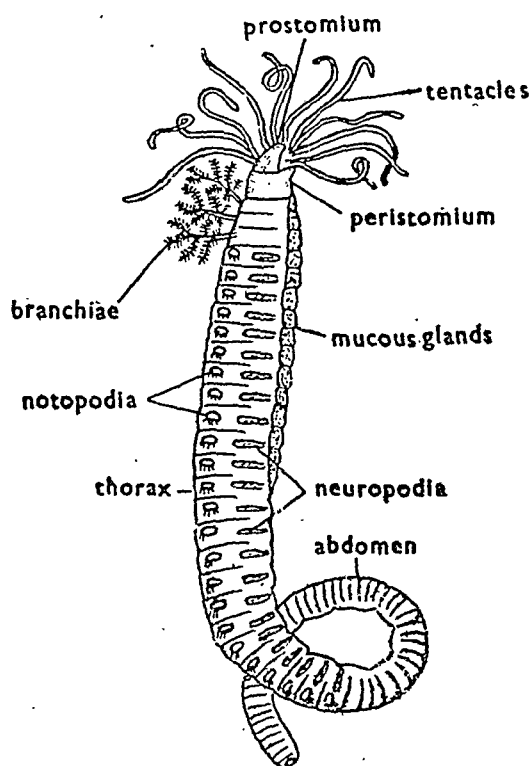
चित्र 274. **ऐम्फ़ीट्राइट ऑर्नेटा** (*Amphitrite ornata*)।
Prostomium, पुरोमुखण्ड; tentacles, स्पर्शक; peristomium, परिमुखण्ड; branchiae, गिल; notopodium, पृष्ठपादक; thorax, वक्ष; mucous glands, श्लेष्मा ग्रन्थियाँ; neuropodium, निम्नपादक; abdomen, उदर।

सिरसों से बने होते हैं। वक्ष के शेष खण्डों के ऊपर शूकों से पृष्ठपादक तथा हुक-जैसे अंकुशों (uncini) से युक्त निम्नपादक होते हैं जिनके अंकुश रूपांतरित शूक होते हैं। आगे के वक्षीय खण्डों की अधर सतह पर शील्ड की आकृति की श्लेष्मा-ग्रन्थियाँ होती हैं, इनसे श्लेष्मा का स्राव होता है जो नलिका का अस्तर बनाती है। उदर लम्बा और संकीर्ण होता है जिस पर कोई शूक नहीं होते, इसमें एक अन्तस्थ गुदा होती है। अक्सर ही ऐसा पाया जाता है कि एक एरेंट पौलीकीट शल्क-कृमि **लेपिडोमेट्रिया** (*Lepidometria*) सहजीवी सम्बन्ध बनाते हुए **एम्फ़ीट्राइट** की नलिका में रहता है।

6. **ऐरेनिकोला** (*Arenicola*) (लॉब-कृमि)—यह 20-40 cm. लम्बा होता और समुद्री कीचड़ में U की आकृति की नलिकाएँ बना कर रहता है। बिलों का
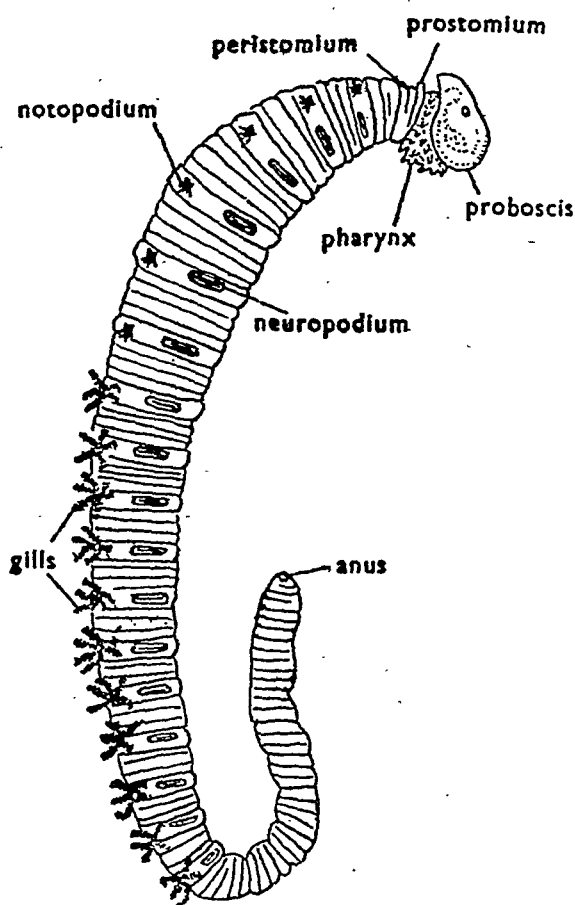
चित्र 275. **ऐरेनिकोला क्रिस्टैटा** (*Arenicola cristata*)
Notopoduim, पृष्ठपादक; peristomium, परिमुखण्ड; prostomium, पुरोमुखण्ड; proboscis, शुण्ड; pharynx, ग्रसनी; neuropodium, निम्नपादक; gills, गिल; anus, गुदा।

अस्तर श्लेष्मा का बना होता है। देह के तीन भाग होते हैं। अग्र भाग आठ खण्डों का

बना होता है जिनमें से पहला खण्ड त्रिपालित पुरोमुखण्ड और दूसरा परिमुखण्ड होता है। पुरोमुखण्ड, परिमुखण्ड तथा उससे पिछला खण्ड मिलकर एक छोटा शीर्ष बनाते हैं। शेष खण्डों के ऊपर परापाद बने होते हैं। अगले सिरे पर एक मुख होता है जिसमें से एक मुख-संहति एक शुण्ड के रूप में बाहर को निकल आती है, शुण्ड के ऊपर छोटे, वक्र और रक्त-वाहिकाओं से युक्त पैपिला बने होते हैं, शुण्ड अशन और चलन में इस्तेमाल होती है। अशन करते समय शुण्ड को बलपूर्वक रेत में घुसाया जाता और पीछे खींच लिया जाता है, इस तरह उसके भीतर रेत आ जाता है जिसमें से जैव पदार्थ को पचा लिया जाता है। देह का मध्य भाग 13 खण्डों का होता है जिनमें से पहले 11 खण्डों के ऊपर 11 जोड़ी गिल बने होते हैं। गिल पृष्ठ सतह पर होते हैं, ये बहुत ज्यादा विशाखित और लाल रंग के होते हैं, गिल पृष्ठपादकों के रूपांतरित सिरस होते हैं। कुछ स्पीशीज़ (**ए॰ मैरना,** *A. marina*) में 13 जोड़ी गिल होते हैं। मध्य भाग के खंडों में परापाद बने होते हैं। अग्रीय अथवा मध्य भाग के परापद में एक पृष्ठीय शंक्वाकार पृष्ठपादक होता है जिस पर शूकों का एक गुच्छा बना होता है, तथा एक अधर लम्बा निम्नपादक होता है जिस पर एक लम्बा रेखा-छिद्र होता है जिसमें रूपांतरित शूकों से बने हुक अथवा अंकुश होते हैं। शरीर का तीसरा अर्थात् पश्च भाग एक संकीर्ण पूंछ होती है जिसमें लगभग 30 खण्ड होते हैं, जिनमें न तो कोई परापाद होते हैं और न ही कोई शूक, लेकिन उनमें अनियमित एपिडर्मिसी पैपिला हो सकते हैं। एक अन्तस्थ गुदा होती है। देह के खण्ड बाहर से से वलयों में विभाजित होते हैं, पहले चार खण्डों में 2, 2, 3, 4 वलय होते हैं और शेष में प्रति खण्ड 5 वलय होते हैं। एपिडर्मिस वर्णांकित होता है और यह बहुभुजी क्षेत्रों में विभाजित हो सकता है। कृमि जैव-पदार्थ मिला हुआ रेत खाता है जिसमें से पोषण प्राप्त कर लिया जाता है, और फिर मिट्टी उसकी गुदा में से निकलती हुई बिल के एक सिरे पर लम्बी-लम्बी सतही बीट के रूप में निकल आती है, दूसरा सिरा कीप की तरह रहता है। कृमि अपनी कीप में से जल को बिल के भीतर को पम्प करता है जिससे गिलों द्वारा होने वाले श्वसन के वास्ते पानी मिलता जाता है।

7. **साबेला** (*Sabella*)—यह 25-30 cm. लम्बा होता है। देह सिलिंडराकार और भूरे रंग का होता है, यह समुद्री कीचड़ में लम्बी झिल्लीदार नलिकाएँ बना कर उनके भीतर रहता है। देह तीन भागों में विभाजित होता है शीर्ष, वक्ष और उदर। शीर्ष पर पुरोमुखण्ड के ऊपर ऊपरी होंठ के दो प्रवर्ध और दो आँखें होती हैं, इस पर दो प्रवर्धों से युक्त एक कॉलर होता है जो तीन खण्डों का बना होता है, जिसके सामने 10 जोड़ी स्पर्शक होते हैं जो सिलियायित गिल का काम करते हैं, ये गिल लगभग 4 cm. लम्बे और हरे रंग के होते हैं। वक्ष में पाँच खण्ड होते हैं जिनमें श्लेष्मा ग्रन्थियाँ होती हैं और परापाद होते हैं, इन परापादों में शूकों से युक्त पृष्ठपादक होते हैं और हुकों से युक्त निम्नपादक होते हैं। उदर लम्बा और 300 खण्डों वाला होता है जिन पर वक्ष के समान परापाद बने होते हैं। **अशन**—नलिका में से गिल एक छत्र की तरह बाहर जल में को निकले होते हैं, इनके सिलिया एक जल-धारा पैदा करते हैं

जो गिलों की खाँचों के सहारे-सहारे मुख में पहुँच जाती है, गिलों के आधार पर एक ऐसा उपकरण होता है जिसके द्वारा आहार के बारीक कण मुख में पहुँच जाते हैं, बीज के आकार के कण नलिका के निर्माण में काम आते हैं, तथा सबसे बड़े कण अस्वीकार करके बाहर फेंक दिए जाते हैं।
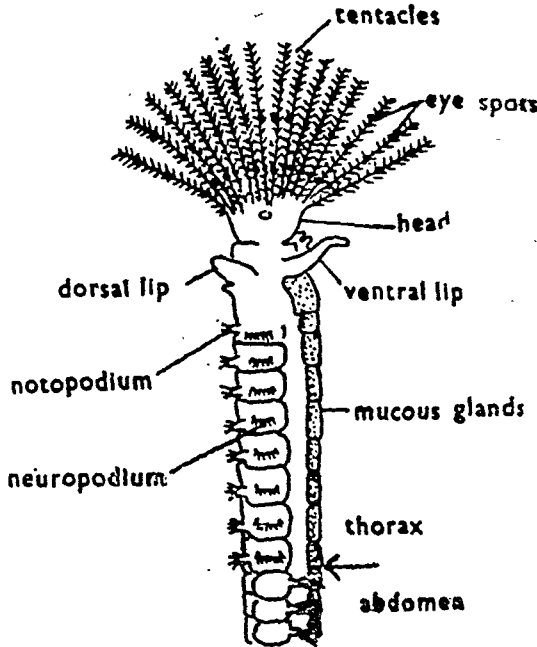
चित्र 276. **साबेला।**

Tentacles, स्पर्शक; eye spots, दृष्टि-बिन्दु; head, शीर्ष; dorsal lip, **पृष्ठीय होंठ;** ventral lip, **अधर होंठ;** notopodium, पृष्ठपादक; neuropodium, निम्नपादक; mucous glands, श्लेष्मा-ग्रन्थियाँ; thorax, वक्ष; abdomen, उदर।

सर्पुला (*Serpula*)—सर्पुला समुद्र में एक कैल्सियमी नलिका में रहता है। लम्बे शरीर में एक शीर्ष, वक्ष और उदर होता है। पुरोमुखण्ड ह्रासित होता है लेकिन उसके उपांग लम्बे एवं पिच्छाकार (feathery) स्पर्शकों के रूप में बदल गए होते हैं, हर स्पर्शक में एक लम्बा स्तम्भ होता है जिस पर छोटे-छोटे सूत्रों की दो पंक्तियाँ होती हैं, स्पर्शक आहार को मुख में पहुँचाते हैं। स्पर्शक की एक दीर्घीकृत शाखा एक **ऑपर्कुलम** बनाती है जो जन्तु के भीतर सिकुड़ जाने के बाद नलिका के मुख को वन्द कर लेता है। परिमुखण्ड वक्ष-खण्डों की तरह होता है लेकिन यह एक **कॉलर** के रूप में आगे को निकला होता है। यह कॉलर पीछे को पलट जाता है। यही कॉलर नलिका का और उसके छल्लों का स्राव करता है। एक पार्श्व वक्ष-झिल्ली होती है जो कदाचित् श्वसनीय होती है। एक मध्य **सिलियायित खाँच** उदर की अवर सतह पर गुदा से आगे की ओर को चलती जाती और फिर वक्ष की पृष्ठ दिशा की ओर मुड़ जाती है, यह खाँच विष्ठा को नलिका के छिद्र में से बाहर निकाल देती है।

देह के खण्डों पर परापाद बने होते हैं। पेशीय गतियों के द्वारा जल को नलिका के अन्दर-बाहर पम्प किया जाता है।
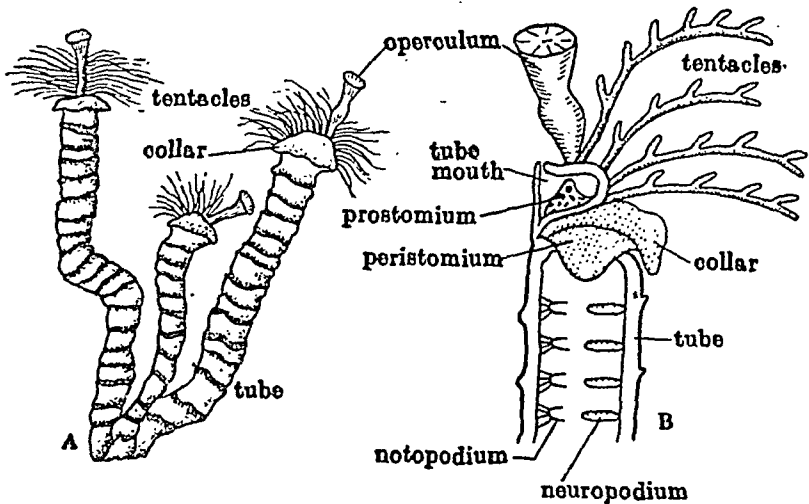
चित्र 277. सर्पुला। A—अपनी नलिकाओं में; B—बढ़ाकर दिखाया गया अगला भाग।
Tentacles, स्पर्शक; collar, कॉलर; tube, नलिका; operculum, आपर्कुलम; tube-mouth, नलिका का मुख; prostomium, पुरोमुखण्ड; peristomium, परिमुखण्ड; notopodium, पृष्ठपादक; neuropodium, निम्नपादक।

9. **फ़ेरेटिमा** (*Pheretima*)—दक्षिण-पूर्वी एशिया में पाया जाने वाला यह एक आम केंचुआ है। क्लाइटेलम स्थायी और 14 से 16 खण्डों में होता है, खण्डों का घेरा बनाते हुए बहुत से शूक होते हैं, खण्ड 18 में दो नर जनन-छिद्र होते हैं और खंड 14 में एक मादा जनन-छिद्र होता है; युग्मित जनन पैपिला खण्ड 17 तथा 19 में होते हैं। शुक्रग्राहियों के चार जोड़े होते हैं।

10. **यूटाइफीयस** (*Eutyphoeus*)—यह एक आम भारतीय केंचुआ है। इसमें 13 से 17 खंडों में एक स्थायी क्लाइटेलम बना होता है, हर खंड में अधरपार्श्वत: चार जोड़ी शूक होते हैं, दो नर जनन-छिद्र खंड 17 में और दो मादा जनन-छिद्र खंड 14 में बने होते हैं, युग्मित जनन पैपिला खंड 18 तथा 19 में होते हैं। शुक्रग्राहियों के दो जोड़े होते हैं। ग्रसिका में खंड 12 में कैल्सिधर ग्रंथियाँ होती हैं। **यूटाइफीयस** में केंचुओं में पाया जाने वाला सबसे सरल मैथुन होता है, शुक्रवाहिका का अंतिम भाग एक शिश्न के रूप में बाहर को निकल आता है और दूसरे केंचुए के शुक्रग्राही-छिद्रों में डाल दिया जाता है, और इस प्रकार शुक्राणु सीधे एक केंचुए से दूसरे केंचुए में पहुँच जाते हैं।

11. **लंब्राइकस** (*Lumbricus*)—यह यूरोप और अमरीका के ठंडे देशों में पाया जाता है। देह में लगभग 150 खंड होते हैं। पुरोमुखंड परिमुखंड को दो भागों में

विभाजित कर देता है, इस दशा को **टैनाइलोबस** (tanylobus) कहते हैं। क्लाइटेलम 33 से 37 खंडों में स्थायी होता है, लेकिन यह केवल पृष्ठ और पार्श्व दिशाओं में होता
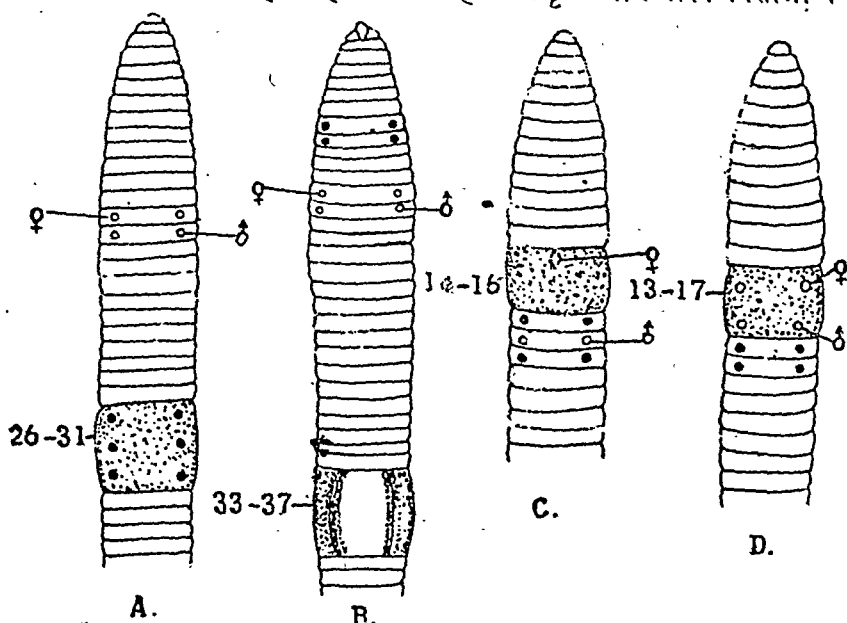
चित्र 278. विभिन्न केंचुए। A—**ऐलोलोबोफ़ोरा**; B—**लम्ब्राइकस**; C—**फेरेटिमा**; D—**यूटाइफीयस**।

है, मध्य-अधर दिशा में अपूर्ण होता है। दो नर जनन-छिद्र खंड 15 में और दो मादा जनन-छिद्र खंड 14 में होते हैं। एक जोड़ी जनन पैपिला खंड 26 में कुछ स्पीशीज़ में होते हैं। दो जोड़ी शुक्रग्राही होते हैं लेकिन उनमें अंधवर्ध नहीं होते, शुक्राशयों के तीन जोड़े होते हैं। हर खंड में निचले अर्धांश में चार जोड़ी शूक होते हैं। मैथुन में दो केंचुए अपनी अधर सतहों से एक साथ आते हैं, और उनमें से प्रत्येक एक श्लेष्मा-आच्छद में ढक जाते हैं। एक का क्लाइटेलम दूसरे केंचुए के खंड 9 और 10 से निकटतः चिपक जाता है, और साथी की देह भित्ति में शूक घुसा दिए जाते हैं। शुक्राणु नर जनन-छिद्र में से निकलते और शुक्र-खाँचों के सहारे चलते जाते हुए क्लाइटेलम में पहुँच जाते हैं, तब वे ककून के ऊपर से फिसल जाने के समय दूसरे केंचुए के शुक्रग्राहियों में पहुँच जाते हैं।

12. **ऐलोलोबोफ़ोरा** (*Allolobophora*)—यह समस्त संसार में ठंडे और गर्म देशों में पाया जाता है, परिमुखंड विभाजित नहीं होता, क्लाइटेलम 24वें खंड के पीछे अलग-अलग स्पीशीज़ में 5 से 9 खंडों का बना होता है। हर खंड में चार जोड़ी शूक निचले अर्धांश में पाये जाते हैं। खंड 15 में दो नर जनन-छिद्र होते हैं, और खंड 14 में दो मादा जनन-छिद्र होते हैं। क्लाइटेलम के ऊपर तीन जोड़ी जनन पैपिला होते हैं। दो जोड़ी शुक्रग्राही तथा चार जोड़ी शुक्राशय खंड 9 से 12 में होते हैं। **ऐलोलोबोफ़ोरा** गोबर की खाद वगैरा में पाया जाता है और गर्मियों की रात में एपिडर्मिसी ग्रन्थियों के स्राव के कारण प्रकाशदीप्ति होती पाई जाती है।

13. **नेइस** (*Nais*)—यह 2-4 mm. लंबा होता है और अलवणजलीय झीलों तथा तालावों में आम पाया जाता है। शरीर हल्का भूरा और पारदर्शी होता है। पुरोमुखंड लंबा और संकुचनशील होता है, प्रथम पाँच खंड एक शीर्ष वनाते हैं जिस पर शूक नहीं होते, शीर्ष पर आँखें होती हैं, देह-खंडों पर लंबे भालाकार शूक वने होते हैं। जनन अलैंगिक और लैंगिक दोनों प्रकार का होता है। अलैंगिक विभाजन में नए खंड प्रफलन द्वारा पिछले सिरे पर वनते जाते हैं, उसके वाद पश्च सिरे के 5 या 6 खंड का संकीर्णन होकर वे पृथक् हो जाते हैं, इसके वाद संकीर्णन के आगे और खंड वन जाते हैं, तथा फिर से अगले 5 या 6 खंडों का संकीर्णन हो जाता है। इस प्रकार ज़ूआयडों की एक शृंखला वन जाती है जो कुछ समय तक एक साथ जुड़े रहते हैं लेकिन वाद में अलग-अलग होकर जनन कोशिकाएँ प्राप्त कर लेते हैं।
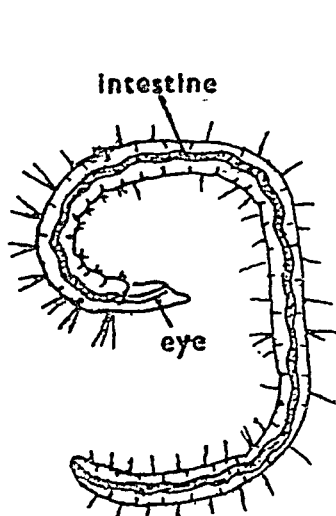
चित्र 279. **नेइस एलिंगुइस** (*Nais elinguis*)। Intestine, अंतड़ी।
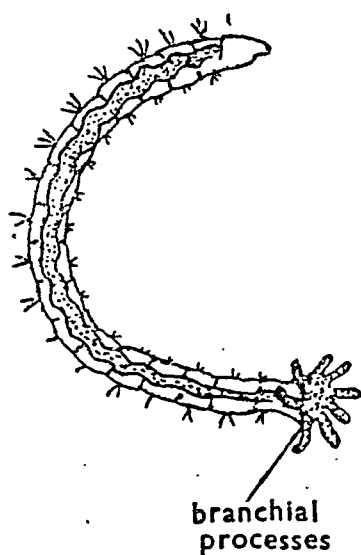
चित्र 280. **डेरो लाइमोसा** (*Dero limosa*)। Branchial processes, जलश्वसनीय प्रवर्ध।

14. **डेरो** (*Dero*)—यह अलवणजलीय तालावों में पाया जाता है। यह 6 से 10 mm. लंबा और लाल-से रंग का होता है। यह तालावों की कीचड़ में अक्सर नलिकाओं में रहता है। पहले चार खंड एक स्पष्ट सिर वनाते हैं जो स्पष्ट शूकों से रहित होता है, आँखें नहीं होतीं। देह में लगभग 48 खंड होते हैं जिन पर लंबे वाल-जैसे पृष्ठ शूक तथा चिरे हुए सिरों वाले छोटे अधर शूक होते हैं। शूक हर खंड में चार वंडलों में वने होते हैं। नर जनन-छिद्र खंड 7 में होता है, क्लाइटेलम प्रजनन काल में वनता है। पश्च सिरे पर कई सिलियायित जलश्वसनीय प्रवर्ध अथवा गिल होते हैं जिनके भीतर रक्त-वाहिका पाश वने होते हैं, ये रचनाएँ श्वसनीय होती हैं। जनन लैंगिक और अलैंगिक विभजन दोनों प्रकार से होता है।

15. **ट्यूबिफ़ेक्स** (*Tubifex*)—अधिकतर अलवणजलीय ओलाइगोकीट उथले जल में पाये जाते हैं, लेकिन **ट्यूबिफ़ेक्स** एक अपवाद है क्योंकि यह गहरी झीलों की तली में बहुत ज्यादा संख्या में पाया जाता है। यह नलिकाओं में रहता है जो श्लेष्मा से चिपकी मिट्टी और खनिजों की बनी होती है। यह 4 cm. लंबा सिलिंडराकार, लाल रंग का कृमि है जो केंचुए से मिलता-जुलता है। क्लाइटेलम 11 और 12 खंडों में बनता है, संकुचनशील हृदय खंड 8 में पाये जाते हैं। शरीर पर पृष्ठ और अधर दिशा में बहुसंख्यक शूक समूहों के रूप में व्यवस्थित होते हैं, शूकों के सिरे विशाखित होते हैं। नर जनन-छिद्र खंड 11 में और मादा जनन-छिद्र खंड 12 में होता है। जनन केवल लैंगिक होता है।
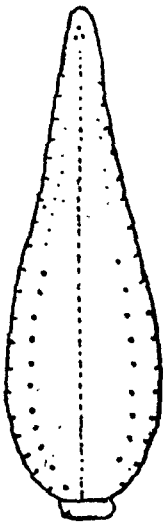
चित्र 281. **ट्यूबिफ़ेक्स ट्यूबिफ़ेक्स** (*Tubifex tubifex*)
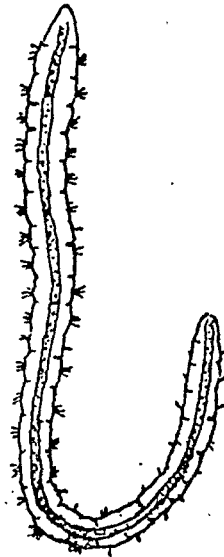
चित्र 282. **ग्लौसिफ़ोनिया वेबेराई** (*Glossiphonia weberi*)।

16. **ग्लौसिफ़ोनिया** (*Glossiphonia*) अथवा **क्लेपसाइन** (*Clepsine*)—यह एक अलवणजलीय जोंक है। अगला चूषक देह के साथ समेकित होता है और मुख के पीछे स्थित होता है। देह चौड़ा, चपटा और हरे-पीले रंग का होता है। यह घोंघों को खाती और मांसभक्षी है। खंडों में औसत तीन वलय प्रतिखंड पाए जाते हैं। क्लाइटेलम स्पष्ट नहीं होता, यहाँ तक कि प्रजनन काल में भी स्पष्ट नहीं बन जाता। अंतड़ी में चार जोड़ी पार्श्व अंधनाल होते हैं। ग्रसनी नहीं होती लेकिन एक शुंड होता है जो मुख में से आगे को निकाला जा सकता तथा भीतर को सिकोड़ा जा सकता है। सीलोम-वाहिनियाँ नेफ्रीडिया से जुड़कर संयुक्त खण्डीय अंग बनाती हैं जिन्हें **नेफ्रोमिश्र** (nephromixium) कहते हैं। **ग्लौसिफ़ोनिया** बड़े-बड़े शुक्राणुधरों को दूसरी जोंक की पीठ पर जमा देती है, उसके बाद वे वहाँ से खाल में को गड़ते जाते और अंडाशयों में पहुँच जाते हैं, इसे **अधःत्वचिक संसेचन** (hypodermic

impregnation) कहते हैं। स्फोटन के बाद बच्चे अपनी माँ की अधर सतह से चिपक जाते हैं।
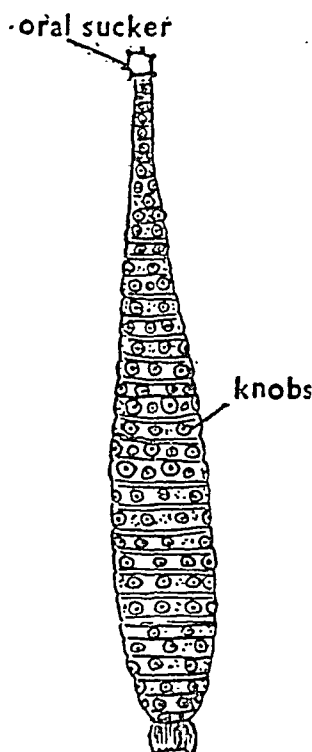
चित्र 283. **पोन्टॉब्डेला लोरिकेटा** (*Pontobdella loricatu*) Oral sucker, मुख चूषक; knobs, घुंडियां।

17. **पोन्टॉब्डेला** (*Pontobdella*)—यह 20 cm. लंबी और हरे-से रंग की जोंक होती है। यह समुद्र में पाई जाती और इलैस्मोब्रैंक मछलियों के ऊपर बाह्य-परजीवी होती है। अगला चूषक तश्तरी की आकृति का तथा पिछला प्याले की आकृति का होता है। अग्र सिरा एक शुंड के रूप में होता है जिसे पलट कर बाहर को निकाला जा सकता है। त्वचा चर्मीय होती है और उसमें बहुत सी खुरदरी घुंडियाँ बनी होती हैं। नेफ्रीडिया नहीं होते लेकिन अधर दिशा में नलिकाओं का एक सम्मिश्र जालक पाया जाता है जिसमें हर खंड में एक जोड़ी सिलियायित नेफ्रीडियममुख तथा नेफ्रीडियमछिद्र पाए जाते हैं। ये मौलस्कों के खाली कवचों में अंडे देती और 100 दिन से भी अधिक तक जब तक कि उनमें से बच्चे निकलें, उनकी रक्षा करती रहती हैं।

18. **ब्रंकेलियान** (*Branchellion*)—यह समुद्री और लगभग 13 cm. लंबी होती है, यह इलैस्मोब्रैंक मछलियों के ऊपर बाह्यपरजीवी रूप में पाई जाती है, छोटे से ही क्षेत्र में इनकी भारी-भारी संख्याएँ पाई जा सकती हैं। अग्र सिरे पर एक शुंड बना होता है। देह पर ग्यारह जोड़ी पत्ती-जैसी श्वसन प्लेटें अथवा गिल बने होते हैं जो पार्श्व दिशा में बने होते हैं। उत्सर्जन अंग उसी प्रकार के होते हैं जैसे **पोन्टॉब्डेला** में।

19. **हीमैडिप्सा** (*Haemadipsa*)—यह उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाई जाने वाली स्थलीय जोंक है। भारत में यह दलदलों में और उष्णकटिबंधीय जंगलों में, पहाड़ियों पर और तराई में बहुत ज्यादा संख्या में पाई जाती है जहाँ यह पत्तियों और झाड़ियों वगैरा में रहती है, यह पेड़ों पर चढ़ जाती और अपने स्तनी शिकार का रक्त चूसने के लिये इन्तजार करती रहती है। जोंक द्वारा बने घाव में से कुछ काल तक रक्त का बहना जारी रहता है। हालाँकि यह स्थलीय है फिर भी यह केवल नम जलवायु में ही रहती है ताकि इसके शरीर की नमी बनी रहे। संहत शरीर से सतह में कमी हो जाती है जिससे वाष्पन रुक जाता है। और तो और, इसके नेफ्रीडियमछिद्र देह के अगल-बगल सीमांतों पर बने होते तथा ऊपर की ओर को मुँह किए होते हैं जिससे कि नेफ्रीडियमों से निकलने वाला तरल उत्सर्ग सारे शरीर पर

फैल कर उसे नम बनाये रखता है । गर्म मौसम में यह जोंक जमीन के भीतर चली जाती है । **हीमैडिप्सा ज़ेलैनिका** (*Haemadipsa zeylanica*) उत्तर प्रदेश के पहाड़ी
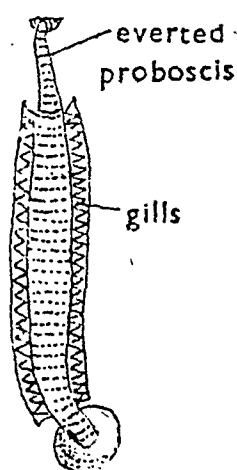
चित्र 284. **ब्रैंकेलियॉन रेवेनेली**
(*Branchellion raveneli*)
Everted proboscis, बहिर्वर्तित शुंडिका; gills, गिल ।
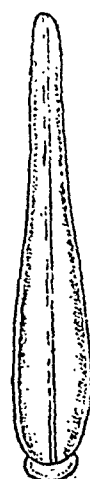
चित्र 285. **हीमैडिप्सा जेलैनिका एजिलिस**
(*Haemadipsa zeylanica agilis*)

इलाकों में पाई जाती है, यह करीब 3 cm. लंबी होती है और इसका रंग जैतूनी हरा होता है तथा इस पर धब्बे बने होते हैं । शरीर संहत तथा उपसिलिंडराकार होता है, खाल कड़ी और वाष्पन को रोकने वाली होती है । चूषक परिग्राही (prehensile) होते हैं । **ही० सिल्वेस्ट्रिस** (*H. sylvestris*) बंगाल में आम पाई जाती है और यह तीन काली धारियों से युक्त एक नारंगी-भूरी जोंक बनी होती है । इस जीनस का बहुत व्यापक वितरण पाया जाता है, यह भारत, पूर्वी द्वीपसमूह, बर्मा, जापान, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अमरीका में पाई जाती है, इससे सिद्ध होता है कि यह जीनस बहुत प्राचीन है ।

फ़ाइलम एक्यूरिडा : बोनेलिया (*Bonellia*)—यह एक समुद्री जन्तु होता है जो चट्टानों की दरारों में रहता है । इसमें अत्यधिक लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है । मादा में एक अण्डाकार, अखण्डीय देह पाया जाता है जिसके ऊपर पैपिला बने होते हैं, सामने की ओर एक लम्बी प्रसारशील सूंड होती है जिसके भीतर मस्तिष्क होती है, यह सूंड ऐनेलिडों के पुरोमुखण्ड के समजात है । अन्तिम सिरे पर सूंड द्विशाखित होता है और उसके ऊपर अधर दिशा में एक सिलियायित खाँच बनी होती है । सुंड के पीछे एक मुख बना होता है और शरीर के अन्त में एक गुदा होती है । केवल एक जोड़ी बड़े और काइटिनी शूक अधर दिशा में बने होते हैं । देह-भित्ति ऐनेलिडों की देह-भित्ति के समान होती है, सीलोम देह के भीतर एक बड़ी और अविभाजित गुहा के रूप में होता है, सीलोमी तरल में कुछ हीमोग्लोबिनधारी कोशि-

काएँ होती हैं जो श्वसन का कार्य करती हैं। रक्त-वाही तन्त्र बंद प्रकार का होता है। एक अकेला नेफ्रीडियम होता है जिसे भूरी नलिका कहते हैं, इसमें सिलियायित नेफ्रीडियममुख होता है, यह अण्डों को धारण किये रहता और एक गर्भाशय का कार्य करता है। विशाखित नलियों से युक्त एक जोड़ी अण्डाकार गुदा-आशय पश्च
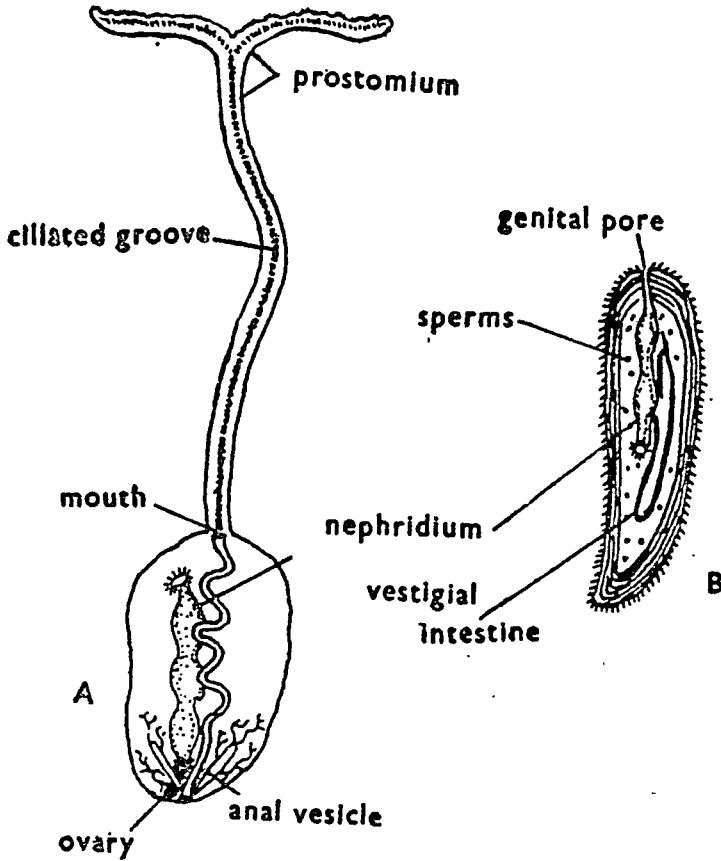
चित्र 286. बोनेलिया विरिडिस (*Bonellia viridis*) A—मादा; B—नर (आवर्धित)।
Prostomium, पुरोमुखण्ड; ciliated groove, सिलियायित खाँच; mouth, मुख; nephridium, नेफ्रीडियम; genital pore, जनन-छिद्र; sperms, शुक्राणु; vestigial intestine, अवशेषी अंतड़ी; ovary, अण्डाशय; anal vesicle, गुदा आशय।

दिशा में बने होते हैं, ये मलाशय से निकलते हैं और कदाचित् उत्सर्गी कार्य करते हैं, ये अपने उत्सर्गो को गुदा के रास्ते बाहर निकाल देते हैं। नर प्राणी ह्रासित होकर एक सूक्ष्म टर्बेलैरिया-जैसा सिलियायित प्राणी रह जाता है जिसमें शुंड नहीं होता, एक जोड़ी शूक होते हैं, एक भूरी नलिका होती है और एक ह्रासित आहार-नाल होती है जिसमें न कोई मुख और न कोई गुदा होती है; यह नर स्थायी रूप में मादा के

नेफ्रीडिया में रहता है। अण्डों का निषेचन नेफ्रीडियम में होता है। **बोनेलिया** के लार्वाओं में नर या मादा किसी भी प्रकार के प्राणी में विकसित होने की पूर्ण क्षमता होती है। जब ये लार्वा पूर्णतः स्वतन्त्र रूप में विकसित होते हैं तब उनसे मादाएँ बनती हैं लेकिन यदि वे किसी वयस्क मादा के सम्पर्क में आ जाएँ तब उस मादा के प्रभाव के कारण इन लार्वाओं पर कुछ संदमन होता है और वे नर बन जाते हैं जिनमें एक वृषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन पाता।

फ़ाइलम साइपनकुलिडा (Sipunculida) : **साइपनकुलस** (*Sipunculus*)—यह समुद्री कीचड़ में रहता और उसमें सक्रिय रूप से घुसता जाता है, इसी मिट्टी को वह खाता भी जाता है। शरीर सिलिंडराकार और लगभग 15 इंच लम्बा होता है, इसमें दो भाग बने होते हैं, एक अगला संकीर्ण **अन्तःवर्त** (introvert) और एक लम्बा, चौड़ा तथा अखण्डीय धड़, शूक नहीं होते। अन्तःवर्त के अगले सिरे पर एक स्पर्शक-वलन होता है जिसमें एक मुख बना होता है, पुरोमुखण्ड नहीं होता। अग्र सिरे के पीछे अन्तःवर्त पर काइटिनी पैपिला बने होते हैं जिनमें से कुछ की आकृति चम्मच जैसी होती है। अन्तःवर्त देह का अगला छठा भाग होता है जो धड़ के अग्र भाग में भीतर को सिकोड़ लिया जा सकता है। धड़ पर पैपिला नहीं होते। देह-भित्ति ऐनेलिडों की तरह होती है। सीलोम एक बड़ी अविभाजित गुहा के रूप में होता है जिसके भीतर वलन पड़ी हुई एवं कुण्डलित आहार नलिका इस तरह पड़ी होती है कि उसकी गुदा अग्रीय एवं पृष्ठ सतह पर होती है। सीलोमी तरल के दबाव के कारण अन्तःवर्त बाहर को निकल आता है, और अन्तःकर्षी पेशियों के संकुचन से यह भीतर को सिकोड़ लिया जाता है। रक्तवाही तन्त्र और श्वसन-तन्त्र नहीं होते; लेकिन सीलोमी तरल में लाल कणिकाएँ होती हैं जिनमें **हीमएरिथ्रिन** (haemerythrin) नामक श्वसन वर्णक मौजूद होता है। एक जोड़ी खण्डीय अंग अथवा भूरी नलिकाएँ होती हैं जो उत्सर्गी होती हैं तथा जनन वाहिनियों का कार्य भी करती हैं। विचित्र सिलियायित आशय जिन्हें कुम्भ (urns) कहते हैं कणिकाओं से मुकुलों के रूप में निकलते हैं, ये उस
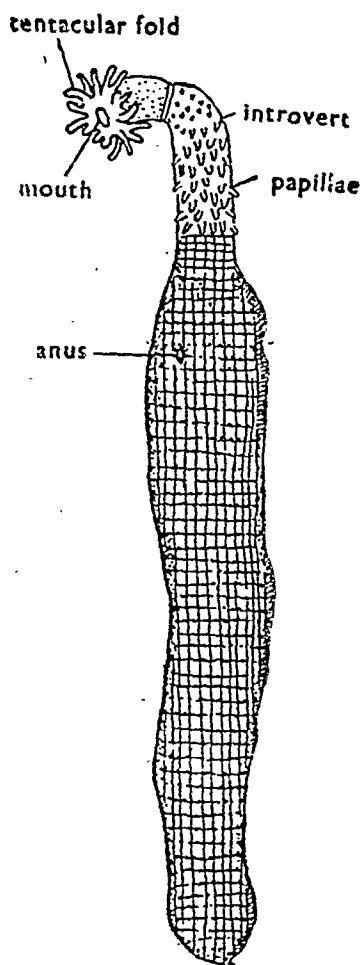
चित्र 287. **साइपनकुलस न्यूडास** (*Sipunculus nudas*) Tentacular fold, स्पर्शक-वलन; mouth, मुख; introvert, अन्तःवर्त; papillae, पैपिला; anus, गुदा।

सीलोमी तरल में से जिसमें ये डूबे रहते हैं अपशिष्ट पदार्थ को दूर करते हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं लेकिन गोनड केवल प्रजनन काल में ही विकसित होते हैं, लैंगिक कोशिकाएँ भूरी नलिकाओं में से वाहर को निकलती हैं। निषेचन समुद्री जल में होता है और एक लम्वा, स्वच्छन्द तैरने वाला ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा वनता है। लार्वा में कायांतरण होता और नया-नया वना हुआ कृमि पानी की तली में डूब जाता है।

ऐनेलिडा पर टिप्पणियाँ

विखण्डन (Metamerism)—सीलोम का परिवर्धन आहार-नाल के दोनों पार्श्वों पर स्थित गोनडी सीलोमी थैलों की श्रृंखला से जुड़ा हुआ है, लेकिन अधिकतर सीलोमित जन्तुओं में सीलोम एक बड़ी परिअन्तरांग गुहा होता है, फिर भी उसमें सीलोम की खण्डीय प्रकृति स्पष्ट होती है—इसमें अन्तराखण्डीय पटों द्वारा कक्षों में विभाजन हो गया होता है तथा कई अन्य तन्त्रों में भी खण्डशः व्यवस्था पाई जाती है। इस प्रकार ऐनेलिडा में खण्डों की एक रेखीय श्रृंखला पाई जाती है—ऐसे खंडों की श्रृंखला जो न्यूनाधिक रूप में एक ही योजना पर वने होते और एक दूसरे के समान होते हैं। इस योजना के अनुरूप देह वाले जन्तुओं को विखण्डशः खण्डित कहा जाता है अर्थात् उनमें **विखण्डन** दिखाई पड़ता है। विखण्डन में न केवल समजात अंगों का (जैसे नेफ्रीडिया, रक्त-वाहिकाओं, तन्त्रिकाओं, जनन-अंगों, पेशियों का) एक श्रृंखलामय पुनरावर्तन होता है वल्कि इनमें से प्रत्येक अंग शेष अंगों से समन्वय करते हुए कार्य करता है, विभिन्न खण्ड एक क्रियात्मक इकाई के रूप में समेकित हो गये होते हैं, खण्डीय संरचनाएँ परस्पर निर्भर होती हैं। ऐनेलिडा में प्रधान अंगों का और समूचे शरीर का भी विखण्डन होता है, यह शरीर अनुप्रस्थ विभाजकों के द्वारा एक खण्ड-श्रृंखला में विभाजित होता है। सवसे कम आयु वाले खण्ड पश्च सिरे पर होते हैं, और नये खण्ड अन्तिम खण्ड अथवा पुच्छांत के सामने वनते जाते हैं।

सीलोम (Coelom)—ऐनेलिडा में सीलोम एक परिअन्तरांग गुहा होती है जो देह-भित्ति तथा आहार-नाल के वीच में होती है, यह गुहा मीज़ोडर्म के खण्डीय आशयों से वनी होती है; वाहरी दिशा में इसका अस्तर मीज़ोडर्म की भित्तीय पर्त का वना होता है और भीतरी दिशा में मीज़ोडर्म की अन्तरांग परत से; ये मीज़ोडर्मी परतें पेरिटोनियम वनाती हैं। सीलोम की दीवारों से जनन-कोशिकाएँ और सीलोमवाहिनियाँ वनती हैं, ये सीलोमवाहिनियाँ शुक्राणुओं अथवा अण्डों को सीलोम में से वाहर को ले जाती हैं। उत्सर्गी अंग सीलोम में से वाहर को खुले होते हैं। कुछ पौलीकीटा में सीलोमी पेरिटोनियम से उत्सर्गी पीली कोशिकाएँ वनती हैं। सीलोम में अमीवी कणिकाओं से युक्त सीलोमी तरल होता है। यह तरल पोषण को सोखता और विलयन के रूप में पदार्थों को लाता-ले जाता है।

पौलीकीटा तथा ओलाइगोकीटा में सीलोम एक सुविकसित गुहा होती है पौलीकीटा में सीलोम परिअन्तरांगी होता है, लेकिन श्रृखलावद्ध अनुप्रस्थ पटों के

द्वारा जो कि देह-भित्ति से आहार-नाल की ओर को अन्तराखण्डीय समतलों पर बने होते हैं, यह विभाजित होता है। पर पेरिटोनियम का बना एक दोहरा बलन होता है जिसके बीच में पेशी-तन्तु होते हैं। सीलोमी कक्ष शृंखलाबद्ध होते हैं और वे आहार-नाल के सहारे-सहारे बनी गुहाओं के द्वारा एक दूसरे में खुले होते हैं, ये वे गुहाएँ होती हैं जहाँ पर यह सम्पूर्ण नहीं होते और आहार-नाल के चारों ओर थोड़ी सी खाली जगह रह जाती है। **ऐरेनिकोला** में पहले तीन पट होते हैं और कुछ पट पश्च सिरे पर होते हैं जिनके फलस्वरूप सीलोम एक लगभग पूरी तरह अविभाजित गुहा होती है। **ऐफ्रोडाइट** में एक लम्बा-चौड़ा सीलोम होता है जिसके अस्तर पर सिलिया बने होते हैं, इन सिलिया के द्वारा परिसंचरण होता रहता है. इसका विकसित होते जाना रक्त-तन्त्र के ह्रास के साथ-साथ हुआ है।

ओलाइगोकीटा में बड़ा परिअन्तरांग सीलोम देह-भिति के आहार-नाल की ओर अन्तराखण्डीय. पटों के फैले होने के कारण कक्षों में विभाजित हो गया होता है। **फ़ेरेटिमा** का पहला पट खण्ड 4 और 5 के बीच होता है, जिसके फलस्वरूप पहले चार खण्डों का सीलोम एक साथ जारी रहता है। उससे अगले आठ पटों में कोई सूराख़ नहीं होता जिससे कि उनके सीलोमी कक्ष एक दूसरे से बन्द रहते हैं, चौदहवें खण्ड से लेकर आखिरी खण्ड तक पटों में अनेक सूराख़ होते हैं जिनमें संवरणी पेशियाँ बनी होती हैं, अतः ये सारे सीलोमी कक्ष सब एक दूसरे में खुले होते हैं।

हिरुडिनिया में बोट्रॉयडल ऊतक बन जाने के क़ारण परिअन्तरांग गुहा के रूप में सीलोम समाप्त हो चुका है। केवल एक आदिम जोंक (**ऐकेन्थॉब्डेला**) में अग्र क्षेत्र में पटों से युक्त एक परिअन्तरांग सीलोम होता है। **हिरुडिनैरिया** में यह चार अनुदैर्घ्य रक्तसीलोमी नलिकाओं, उनकी शाखाओं और गोनडों एवं शुक्रवाहिकाओं को घेरने वाली गुहाओं के रूप में शेष रह गया है। अनुदैर्घ्य नलिकाओं और उनकी शाखाओं में पाया जाने वाला सीलोमी तरल घुले हुए हीमोग्लोबिन के कारण लाल होता है, लेकिन शेष सीलोमी गुहाओं में यह लाल नहीं होता। आर्किऐनेलिडा में एक बड़ा सीलोम होता है जो अनुप्रस्थ पटों के द्वारा कक्षों में विभाजित होता है।

खंडीय अंग (Segmental organs)—ऐनेलिडा में खंडशः पुनरावर्तित नलिकाएँ होती हैं जिन्हें खण्डीय अंग कहते हैं, ये हैं नेफ्रीडिया तथा सीलोमवाहिनियाँ।

1. **नेफ्रीडिया** एक्टोडर्म के अन्तर्वलन के द्वारा बनने वाली कुण्डलित नलिकाएँ होती हैं, ये सीलोम में पड़ी होती हैं, इनकी सिलियायित अवकाशिका अन्तःकोशिक होती है। हर नेफ्रीडियम एक सिलियायित कीप अथवा नेफ्रीडियममुख के द्वारा सीलोम में को खुला रहता है, और इस तरह वह या तो उसी खण्ड में जिसमें वह स्थित रहता है खुलता है या उससे ठीक आगे वाले खण्ड में; दूसरे सिरे पर एक नेफ्रीडियमछिद्र के द्वारा वह बाहर को खुला होता है। नेफ्रीडिया सीलोम में से अपशिष्ट पदार्थ को हटाते हैं लेकिन उनका मूल कार्य कदाचित् शरीर से जल बाहर निकालना हुआ करता था।

2. **सीलोमवाहिनियाँ** (Coelomoducts) खण्डशः पुनरावर्तित मीज़ोडर्मी

नलिकाएँ होती हैं जो एक सिरे पर सीलोम में को एक चौड़ी सिलियायित कीप के द्वारा (जो नेफ्रीडियममुख से पूर्णतः भिन्न होती है) खुलती हैं और दूसरे सिरे पर बाहर को खुलती हैं, इनकी अवकाशिका अन्तराकोशिक होती है। सीलोमवाहिनियाँ या तो उत्सर्गी होती हैं या उत्सर्जन के साथ-साथ जनन-कोशिकाओं को बाहर ले जाने का मिश्रित कार्य करती हैं, या फिर वे केवल जनन-कोशिकाओं को ही बाहर ले जाने का कार्य करती हैं जो कदाचित् उनका मूल कार्य था।

कुछ पौलीकीटा में वन्द नलिकाओं वाले नेफ्रीडिया होते हैं, उनके वन्द सिरे सीलोम में को निकले होते हैं, यह आदिम व्यवस्था होती है। इस वन्द सिरे पर **नलिकाकोशिकाएँ** (solenocytes) निकली होती हैं जो या तो अलग-अलग होती हैं या समूहों में वनी होती हैं। नलिकाकोशिकाएँ गोल सिलियायित कोशिकाएँ होती हैं जो प्रत्येक में वनी एक पतली नलिका के द्वारा नेफ्रीडियम से जुड़ी होती हैं, नलिका की अवकाशिका में एक लम्बा कम्पनशील कशाभ होता है, नलिकाकोशिकाएँ प्लैटीहेल्मिथीस की लौ-कोशिकाओं से मिलती-जुलती हैं। इस प्रकार के नेफ्रीडिया को **आदिनेफ्रीडिया** (protonephridia) कहते हैं जैसे **फिल्लोडसी** (*Phyllodoce*) तथा **वैनेडिस** (*Vanadis*) में। लेकिन अनेक पौलीकीटा तथा सभी ओलाइगोकीटा में नेफ्रीडिया खुले प्रकार के होते हैं, जिनमें से हर प्रकार में सिलियायित नेफ्रीडियममुख होता है जिसके द्वारा वे सीलोम में को खुले होते हैं, इन्हें **पश्चनेफ्रीडिया** (metanephridia) कहते हैं, जैसे **नीऐंथीस, लम्ब्राइकस** (चित्र 215) में। कुछ पौलीकीटा में नेफ्रीडिया तथा सीलोमवाहिनियों के संयोजन से वनने वाले मिश्रित उत्सर्गी अंग वनते हैं जिन्हें **नेफ्रीडियममिश्र** (nephromixia) कहते हैं। इनमें उत्सर्गी अंगों तथा सीलोमवाहिनियों के एक साथ कार्य होने लगे हैं। इनके तीन प्रकार होते हैं :
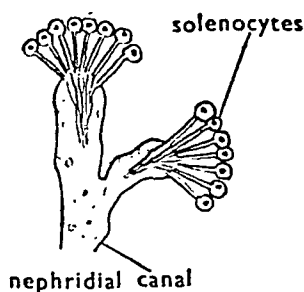
चित्र 288. आदिनेफ्रीडियम।

Solenocytes, नलिकाकोशिकाएँ; nephridial canal, नेफ्रीडियमी नलिका।

(क) **आदिनेफ्रिडियममिश्र** (protonephromixium), जिसमें सीलोमवाहिनी एक वन्द आदिनेफ्रीडियम से जुड़ जाती है जैसे ऐलिसियोपिडी कुल, तथा **फिल्लोडसी** में।

(ख) **पश्चनेफ्रीडियममिश्र** (metanephromixium), जिसमें सीलोमवाहिनी एक खुले पश्चनेफ्रीडियम से जुड़ी होती है, जैसे **हेसियोनी** (*Hesione*) में।

(ग) **मिश्रनेफ्रियम** अथवा **नेफ्रिडियममिश्र** (nephromixium), जिसमें सीलोमवाहिनी एक नेफ्रीडियम से इस प्रकार जुड़ी होती है कि ये दोनों मिलकर एक ही अंग बना लेते हैं, कीप सीलोमवाहिनी होती है और वाहिनी नेफ्रीडियमी होती है, उदाहरण केपिटेलिडी (Capitellidae) कुल तथा **ऐरेनिकोला**। पश्चनेफ्रीडियममिश्र तथा मिश्रनेफ्रियम में कोई ठीक-ठीक अन्तर नहीं होता।

कुछ पौलीकीटा में, जैसे, **नीऐंथीस** में, सीलोमवाहिनी का कुछ अंश पश्चनेफ्रीडियममिश्र से पृथक् हो गया होता है और एक पृष्ठ **सिलियायित अंग** के रूप में पृष्ठ-पार्श्व पेशियों से जुड़ा होता है। यह सीलोमी तरल में परिसंचरण बनाये रखता है।

कुछ नलिकावासी कृमियों में, जैसे **सर्पुला** में, श्रम-विभाजन पाया जाता है, अग्र क्षेत्र के नेफ्रीडिया बड़े होते और उत्सर्जन का कार्य करते हैं, और पश्च क्षेत्र के नेफ्रीडिया छोटे होते तथा केवल जनन-वाहिनियों के ही रूप में कार्य करते हैं।
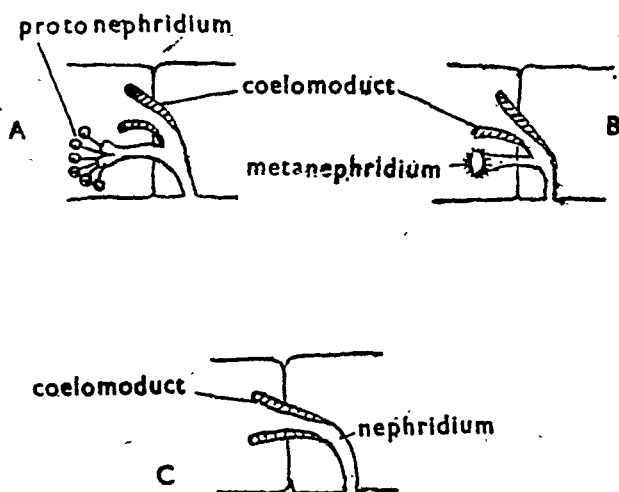
चित्र 289. विभिन्न नेफ्रीडियममिश्र। A—आदिनेफ्रीडियममिश्र; B—पश्चनेफ्रीडियममिश्र; C—मिश्रनेफ्रिडियम।
Protonephridium, आदिनेफ्रीडियम; coelomoduct, सीलोमवाहिनी; metanephridium, पश्चनेफ्रीडियम, nephridium, नेफ्रीडियम।

ओलाइगोकीटा और हिरुडिनिया में नेफ्रीडिया तथा सीलोमवाहिनियाँ अलग-अलग होती हैं। सामान्यतः हर खण्ड में एक जोड़ी **पश्चनेफ्रीडिया** होते हैं, लेकिन सीलोमवाहिनियाँ केवल कुछ जनन-खण्डों में ही सीमित होती हैं। इनके नेफ्रीडिया या तो देह के बाहर को खुलते हो सकते हैं जब कि उन्हें **बाह्यनेफ्रीडियमी** नेफ्रीडिया कहते हैं (जैसे **लम्ब्राइकस**) या वे आहार-नली में को खुले हो सकते हैं और तब उन्हें **आंत्रनेफ्रीडियमी** नेफ्रीडिया कहते हैं (जैसे **फ़ेरेटिमा**)। अधिकतर केंचुओं में हर खण्ड में एक जोड़ी मूल बृहदाकार पश्चनेफ्रीडिया होते हैं, इन्हें **पूर्णनेफ्रीडिया** (holonep-

hridia) अथवा **गुरुनेफ्रीडिया** (meganephridia) कहते हैं जैसे **लम्ब्राइकस** में। लेकिन **फेरेटिमा** में हर खण्ड में बहुत ज्यादा संख्या में छोटे आकार के नेफ्रीडिया होते हैं, इन्हें **अंशनेफ्रीडिया** (meronephridia) अथवा **सूक्ष्मनेफ्रीडिया** (micronephridia) कहते हैं। ऐसा मान लिया गया है कि पूर्णनेफ्रीडिया का मूल जोड़ा टूटकर अनेक सूक्ष्म नेफ्रीडिया बन गए हैं। **फेरेटिमा** में तीन प्रकार के अंशनेफ्रीडिया होते हैं। (क) अग्र खण्डों में पाये जाने वाले अनेक आंत्रनेफ्रीडियमी अंशनेफ्रीडिया होते हैं जो ग्रसनी में को खुलते हैं, इन्होंने पाचन ग्रन्थियों का कार्य ले लिया हो सकता है और इन्हें **पेप्टोनेफ्रीडिया** (peptonephridia) कहते हैं। (ख) छठे से पीछे हर खण्ड में त्वचीय बाह्यनेफ्रीडियमी अंशनेफ्रीडिया होते हैं। (ग) चौदहवें से पीछे हर खण्ड में आंत्रनेफ्रीडियमी अंशनेफ्रीडिया होते हैं जो अधि-आंत्र उत्सर्गी वाहिनियों में खुलते हैं और इन वाहिनियों में अंतड़ी में खुलने वाले खण्डीय छिद्र पाए जाते हैं!

हिरुडिनिया में नेफ्रीडिया सामान्यतः ओलाइगोकीटा के पश्चनेफ्रीडिया के समान होते हैं, जिनमें सीलोमी गुहा में को खुलने वाला एक सिलियायित नेफ्रीडियम-मुख होता है जैसे **हिरुडो** (*Hirudo*) में। **हिरुडिनैरिया** में नेफ्रीडिया एक आशय में को खुलने वाली कुण्डलित नलिकाएँ होती हैं, और यह आशय एक नेफ्रीडियमछिद्र के द्वारा बाहर को खुलता है, दूसरा सिरा एक सीलोमी गुहा में को पड़ा होता है लेकिन नेफ्रीडियममुख नहीं होता। कुछ रिंकॉब्डेलिडा में जैसे **पोन्टॉब्डेला** में देह की अधर सतह पर एक सम्मिश्र जालक होता है जिससे हर खण्ड में एक जोड़ी शाखाएँ निकलती हैं और हर शाखा के अन्त पर एक सिलियायित कीप होती है, और ऐसी ही शाखाओं का एक जोड़ा बाहर को खुलता है।

आर्किऐनेलिडा में हर खण्ड में एक जोड़ी नेफ्रीडिया होते हैं, वे नलिकाकोशिकाओं से युक्त बन्द प्रकार के आदिनेफ्रीडिया हो सकते हैं या सीलोम में खुलते हुए नेफ्रीडियममुखों से युक्त पश्चनेफ्रीडिया हो सकते हैं, जैसे **पौलीगॉर्डियस** (*Polygordius*)।

जनन—पौलीकीटा में लिंग अलग-अलग होते हैं, गोनड सीलोमी एपिथीलियम के क्षेत्रक होते हैं और अधिकतर खंडों में उनकी पुनरावृत्ति होती है, गोनड प्रजनन काल में सुव्यक्त हो जाते हैं और उनमें बहुत अधिक संख्या में जनन-कोशिकाओं का प्रफलन होता है जो टूटकर अलग हो जाती और सीलोम को भर लेती हैं जहाँ पर सीलोमी तरल में उनका परिपक्वन होता है। परिपक्व हो जाने पर जनन कोशिकाएँ या तो खण्डीय अंगों में से होकर या देह-भित्ति के फट जाने से बाहर निकल जाती हैं। निषेचन समुद्र के जल में सम्पन्न होता है। अनेक उदाहरणों में एक **वृंदन** (swarming) की घटना होते देखी जाती है, जिसमें रेंगने वाले अथवा बिल बनाकर रहने वाले कृमि जल की सतह पर पहुँच जाते और अपनी लैंगिक कोशिकाओं को विसर्जित करके वे पुनः तली में बैठ जाते हैं। वृंदन एक अनुकूलन है जिसके द्वारा अधिकाधिक संभावित संख्या में अण्डों का निषेचन होता है। वृंदन प्रायः निश्चित समयों पर होता है और अक्सर चन्द्रमा की अवस्थाओं के साथ-साथ होता है। युग्मकों

के विसर्जन के बाद लगभग सदैव ही लैंगिक प्राणियों की मृत्यु हो जाती है। निषेचित अंडे से एक ट्रोकोफ़ोर लार्वा बनता है।

सिल्लिडों में प्रायः गोनड शरीर के पिछले भाग में सीमित होते हैं; यह भाग टूट कर एक स्वच्छन्द तैरने वाला जूऑयड बन जाता है जिसमें एक शीर्ष बन जाता लेकिन मुख या ग्रसनी नहीं बनते हैं, यह कुछ काल तक जीवित रहता और युग्मक बनाता है। अनेक ऐनेलिडों में हानिग्रस्त भागों के पुनरुद्भवन की क्षमता पाई जाती है, इसके साथ-साथ अलैंगिक विधि के जनन करने की क्षमता जुड़ी रहती है। कुछ उदाहरणों में मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन होता है, लेकिन **ऑटोलिटस** में अन्तिम सिरे पर एक प्रफलन क्षेत्र होता है जिसमें से लैंगिक जूऑयड की एक शृंखला का मुकुलन होता है जो एक-एक करके टूट कर अलग होते जाते हैं। मुकुलन द्वारा **सिल्लिस** में अनेक शाखाएँ बन जाती हैं जिनमें से कुछ में एक शीर्ष बन जाता, लैंगिक अंग विकसित हो जाता, पृष्ठपाद बन जाते जो परापादों का पुनःनिर्माण कर लेते हैं, ये लैंगिक प्ररूप देर तक जनक के शरीर से जुड़े रह सकते हैं या वे कॉलोनी से पृथक् हो जा सकते हैं।

ओलाइगोकीटा में जनन-अंगों के कुछ लक्षण अत्यन्त प्रमुख होते हैं, ये प्राणी लगभग सदैव ही उभयलिंगी होते हैं। लैंगिक कोशिकाएँ या तो सीलोम में को या शुक्राशयों में को विसर्जित हो जाती हैं, ये शुक्राशय शेष सीलोम से पृथक् हुए उसके विशेष भाग होते हैं, ये बड़े आकार के सीलोमी थैले होते हैं जो अलग-अलग जीनसों में अलग-अलग संख्या में होते हैं, अक्सर एक जोड़ी शुक्राशय एक मध्य शुक्र-आगार के साथ जुड़ गए हो सकते हैं, इस आगार में को शुक्रवाहिनियों की सिलियायित कीपें खुली होती हैं। वृषण अनेक हो सकते हैं लेकिन अंडाशय कभी दो से अधिक नहीं होते। शुक्रग्राही ही प्रायः पाए जाते हैं जो मैथुन के दौरान दूसरे कृमि के शुक्राणु प्राप्त करते हैं। क्लाइटेलम एपिडर्मिस का एक ग्रन्थीय परिवर्धन होता है जिससे ककून बनते और भ्रूण के पोषण के वास्ते ऐल्बुमेन का निर्माण होता है। क्लाटेलम स्थायी हो सकता है, जैसे कि केंचुए में, या केवल प्रजनन काल में ही बना करता है। कुछ ओलाइगोकीटा में विशिष्ट मैथुनी शूक होते हैं। कुछ ओलाइगोकीटा में अलैंगिक जनन होता है जैसे **नेइस** तथा **कीटोगैस्टर** (*Chaetogaster*) में, जिनमें पश्च सिरे पर प्रफलन होकर जूऑयडों की एक कड़ी बन जाती है जो अन्ततः पृथक् होकर लैंगिक कोशिकाएँ बना लेते हैं।

हिरुडिनिया उभयलिंगी होते हैं जिनमें अनेक जोड़ी वृषण होते हैं लेकिन अंडाशय केवल दो ही होते हैं, गोनड पूर्णतः बन्द सीलोमी आशयों में घिरे होते हैं, लेकिन वे वाहिनियों द्वारा एक दूसरे से सम्पर्क बनाए रहते हैं जोकि अन्य ऐनेलिडा से भिन्न व्यवस्था है। शुक्राणु बण्डलों के रूप में एकत्रित होकर शुक्राणुधर बनाते हैं। मैथुन सामान्यतः होता है, हालाँकि कुछ में अधःत्वचीय संसेचन होता पाया जाता है। क्लाइटेलम प्रजनन काल में प्रकट होता है, और अंडे ककूनों में दिए जाते हैं जो क्लाइटेलमी ग्रन्थियों से बनते हैं।

आर्किऐनेलिडा सामान्यतः उभयलिंगी होते हैं, अण्डाशय अग्रीय खण्डों में होते हैं और वृषण उनके पीछे होते हैं, इस प्रकार गोनड कुछ थोड़े से ही खंडों में सीमित रहते हैं। **पौलीगॉर्डियस** में लिंग अलग-अलग होते हैं, अंडाशय अथवा वृषण कुछ थोड़े से पश्चीय खंडों में बनते हैं, वाहिनियाँ नहीं होतीं।

9

फाइलम आर्थ्रोपोडा
(PHYLUM ARTHROPODA)

प्राणियों की संख्या तथा परिस्थितिक वितरण की विविधता की दृष्टि से फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा अन्य सभी फ़ाइलमों से कहीं आगे बढ़ा-चढ़ा है। इनमें वायवीय, जलीय, स्थलीय तथा परजीवीय वातावरणों के लिए एक अनुकूली विकिरण हो चुका है और शायद संसार का कोई भी ऐसा कल्पनीय संवास (niche) नहीं है जिसमें आर्थ्रोपोडा-प्राणी मौजूद न हों। अब तक 800,000 से अधिक स्पीशीज़ वर्णित की जा चुकी हैं, अतः आर्थ्रोपोडा समस्त ज्ञात जन्तुओं का लगभग 80% हैं।

आर्थ्रोपोडा द्विपार्श्वतः सममित, विखंडशः खण्डित मेटाज़ोआ होते हैं। इसके विखंड समान नहीं होते बल्कि विशेषित होते हैं और उनकी संख्या आमतौर से निश्चित होती है। सभी अथवा कुछ खंडों पर युग्मित उपांग बने होते हैं जो संधियुक्त होते हैं, इन उपाँगों में से कम-से-कम एक जोड़ा जबड़ों के रूप में अवश्य कार्य करता है। शीर्ष सुविकसित होता है। दीर्णसीलोमी सीलोम बहुत ह्रासित होता है और उसके स्थान पर एक परिअंतरांग रक्तसीलोम बन जाता है जो रक्त से भरा होता है। परिसंचरण तन्त्र खुले प्रकार का होता है। सीलोम के स्थान पर रक्तसीलोम बन जाता है क्योंकि देह-भित्ति की द्रवचालित स्फीति की अब और आवश्यकता नहीं रहती, और सीलोम के ह्रास का एक परिणाम नेफ्रीडिया का समाप्त हो जाना है। वास्तविक नेफ्रीडिया नहीं होते लेकिन सीलोमवाहिनियाँ होती हैं जो जनन-वाहिनियों के और अक्सर उत्सर्गी अंगों के रूप में भी कार्य करती हैं। पेशियाँ अधिकतर रेखित होती हैं, वे पृथक् होती हैं जोकि ऐनेलिडा की अविच्छिन्न पेशी परतों से भिन्न व्यवस्था होती है। देह में सिलिया नहीं होते। काइटनी क्यूटिकल का एक बाह्यकंकाल होता है जो अक्सर मोटा और कड़ा होता है, लेकिन धड़ और पाँवों में यह जगह-जगह पर लचीला होता है जिससे गतिशील संधियाँ बन जाती हैं। मोटे क्यूटिकल के कारण अनेक परिवर्तन हो गए हैं, इसके कारण पाँवों में संधियाँ बनी होने की आवश्यकता बन गई है। बाह्यकंकाल के कड़े भागों को चलाने के लिए पेशियाँ पृथक्-पृथक् होती हैं। मोटे क्यूटिकल से जल की हानि रुक जाती है, इस लक्षण के कारण आर्थ्रोपोडा धरती पर आ सकने योग्य बन सके हैं। अकशेरुकियों में केवल ये ही ऐसे प्राणी हैं जो

इतनी ज्यादा सफलतापूर्वक स्थल पर रह सकने के वास्ते अनुकूलित हो गए हैं। अतः इस फाइलम में अन्य किसी की अकशेरुकी फ़ाइलम की अपेक्षा कहीं अधिक स्थलीय प्राणी पाए जाते हैं। लेकिन क्यूटिकल के कड़े बाह्यकंकाली आवरण के मौजूद होने से दो समस्याएँ पैदा हो गईं जिन्हें आर्थ्रोपोडा के विकास में हल किया जाना जरूरी था, ये थीं वृद्धि और चलन-गति की समस्याएँ। वृद्धि की समस्या का समाधान समय-समय पर निर्मोचन के द्वारा होने लगा जिसमें जन्तु नए क्यूटिकल के कड़े हो जाने से पहले आकार में बड़ा हो जाता है। चलने की समस्या देह और उपांगों के क्यूटिकल में विभाजन होकर पृथक् प्लेटों अथवा स्क्लेराइटों (sclerites) के बन जाने से हल हो गई है, जिनके साथ हर दो स्क्लेराइटों के बीच में पतली, नरम और लचीली संधि-झिल्लियाँ बन गई हैं जो मुड़ने और चलने को संभव बनाती हैं। आर्थ्रोपोडा ऐनेलिडों से विकसित हुए हैं या कम-से-कम ये दोनों ही फाइलम किसी समान पूर्वज से उत्पन्न हुए हैं।

आर्थ्रोपोडा को इन चार उपफ़ाइलमों में विभाजित किया जाता है। ओनाइकोफोरा (Onychophora), ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा (Trilobitomorpha), मैंडिबुलैटा (Mandibulāta) और कीलिसेरेटा (Chelicerata)।

क्लास **क्रस्टेशिया** (Crustacea) में अधिकतर जलीय मैंडिबुलैटा आते हैं जिनमें दो जोड़ी ऐंटेना होते हैं, श्वसन-अंग जल में कार्य करने वाले गिलों के रूप में होते हैं। प्ररूपतः इनमें संयुक्त (compound) नेत्र पाए जाते हैं। शरीर छोटा हो गया होता है जिसके साथ-साथ पाँवों का विशेषीकरण हुआ है, इनमें संरचनात्मक संघटना की बहुत ज्यादा विविधता मिलती है। इनमें 26,000 ज्ञात स्पीशीज़ पाई जाती हैं जिनमें केकड़े, झींगे, लॉब्स्टर, श्रिम्प और क्रेफ़िश जैसे सुपरिचित उदाहरण शामिल हैं। क्रस्टेशिया, समुद्र, तलावों, झीलों और नदियों में रहते हैं, कुछ स्थलीय अथवा परजीवी होते हैं लेकिन अधिकतर वे समुद्र में पाए जाते हैं। कुछ क्रस्टेशियन, जैसे कि झींगा, लॉब्स्टर, श्रिम्प तथा केकड़े मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण आहार-साधन भी हैं।

1. पेलीमॉन मैल्कॉम्सोनाई
(*Palaemon malcoemsonii*)
(झींगा)

पेलीमॉन भारतीय नदियों में पाई जाने वाली एक झींगा है, इन नदियों में इसके बाह्यकंकाल के लिए आवश्यक चूना लवण पर्याप्त मात्रा में होते हैं। शरीर नीलापन लिये हुए हरे रंग का होता है। यह शरीर लंबा और दो भागों वाला होता है, शिरोवक्ष (cephalothorax) और एक उदर जो अक्सर नीचे को मुड़ा हुआ होता है। शिरोवक्ष कुछ-कुछ सिलिंडराकार होता है और इसमें कोई संधियाँ नहीं दिखाई देतीं, उदर पार्श्वतः संपीडित (compressed) होता है और इसमें छह खंड बने होते हैं। देह के ऊपर एक कड़ा क्यूटिकल चढ़ा होता है जो कि बाह्यकंकाल होता है, यह $CaCO_3$ के जमे होने के कारण कड़ा बना होता है और उनमें अनेक वर्णक होते हैं। क्यूटिकल के कड़े टुकड़े **स्क्लेराइट** (sclerite) होते हैं जो नरम

क्यूटिकल के द्वारा जुड़े रहते हैं, इन नरम क्यूटिकलीय भागों को **संधि-झिल्लियाँ** (arthrodial membrane) कहते हैं । **शिरोवक्ष** में एक शीर्ष और वक्ष होता है, शीर्ष पर एक पृष्ठ प्लेट तथा वक्ष के ऊपर एक **कैरापेस** (carapace) होता है । पृष्ठ प्लेट और कैरापेस एक दूसरे से पूर्णतः समेकित होते हैं और एक अविच्छिन्न **पृष्ठ शील्ड** (dorsal shield) बनाते हैं । पृष्ठ-शील्ड आगे की ओर एक **रॉस्ट्रम**
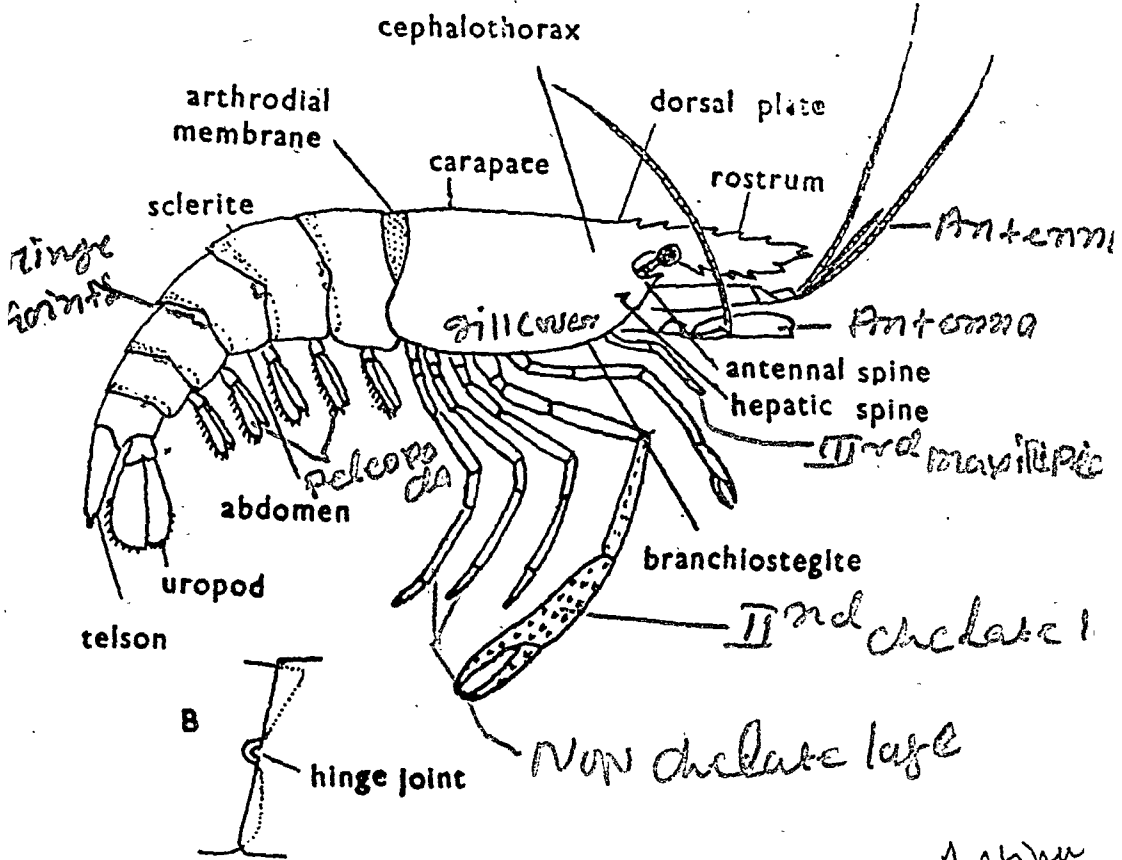
चित्र 290. **पेलीमॉन मैल्काम्सोनाई** । B-हिंज संधि

Rostrum, रॉस्ट्रम ; dorsal plate, पृष्ठ प्लेट ; cephalothorax, शिरोवक्ष; carapace, कैरापेस; arthrodial membrane, संधि झिल्ली ; sclerite, स्क्लेराइट ; telson टेलसॉन ; uropod, पुच्छपाद ; abdomen, उदर; branchiostegite, गिलावरक; hepatic spine, यकृत काँटा; antennal spine, ऐंटेनीय कांटा; hinge joint, हिंज संधि ।

(rostrum) के रूप में निकली होती है और वह पार्श्वतः संपीड़ित होता तथा दंतुरित (serrated) होती है । पृष्ठ प्लेट पर दोनों पार्श्वों में दो-दो छोटे काँटे बने होते हैं, इनमें से एक ऐंटनीय काँटा (antennal spine) और दूसरा यकृत काँटा (hepatic spine) होता है । कैरापेस वक्ष के दोनों बाजुओं में नीचे को बढ़ा हुआ होता है, इन बढ़े हुए भागों को **गिलावरक** (branchiostegite) अथवा पार्श्व प्लेट कहते हैं ।

शीर्ष और वक्ष की अधर दिशा में काइटिनी स्क्लेराइट होते हैं जिन्हें **स्टर्नम** (sternum) कहते हैं। शिरोवक्ष एक कैल्सीकृत, कड़ी संधि झिल्ली द्वारा उदर से जुड़ा होता है। उदर के अंत में एक शंक्वाकार **टेल्सॉन** (telson) होता है जो नुकीला होता और जिसके सिरे पर अगल-बगल दो छोटे काँटे बने होते हैं। शरीर तथा उपांगों पर अनेक **शूक** बने होते हैं जो क्यूटिकल की खोखली वहिर्वृद्धियाँ होती हैं। ये शूक ऐनेलिडा के शूकों से भिन्न होते हैं। ऐनेलिडा के शूक खाल के शूकधर थैलों के काइटिनी स्राव होते हैं।

खंड—शरीर सखंड होता है, पहला खंड केवल भ्रूणीय होता है जो **खंड-पूर्वी प्रदेश** (presegmental region) बनाता है और इसी प्रदेश से संबंधित एक जोड़ी वृंतयुक्त आँखें होती हैं हालांकि ये आँखें इस प्रकार की उपांग नहीं होतीं, यह प्रदेश ऐनेलिडा के पुरोमुखंड के अनुरूप होता है। खंडपूर्वी प्रदेश के पीछे 19 खंड होते हैं जिनके बाद फिर एक **खंड-पश्चीय प्रदेश** (postsegmental region) आता है जिसमें टेल्सॉन बना होता है। खंडों को सामूहिक रूप में तीन **टैग्मैटा** (tagmata), अर्थात् आकृति एवं उपांगों के आधार पर तीन विभेदित प्रदेशों, में रखा जा सकता है जो इस प्रकार हैं: शीर्ष, वक्ष तथा उदर। शीर्ष आँखों के प्रदेश+खंडपूर्वी भ्रूणीय खंड+ पहले पाँच जोड़ी उपांगों के जिनमें से पहले दो मुखपूर्वी और पिछले दो मुख-पश्चीय होते हैं, पाँच खंडों का बना होता है। वक्ष और उदर के क्षेत्र शीर्ष के पीछे एक
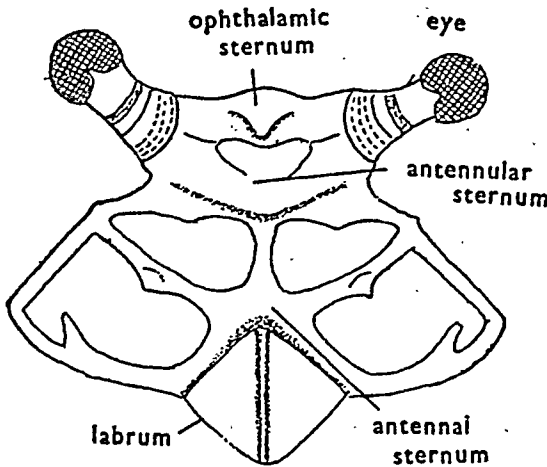
चित्र 291. मुखपूर्वी प्रदेश के स्टर्नम।

Ophthalmic sternum, नेत्री स्टर्नम ; antennular sternum, ऐंटेन्यूली स्टर्नम ; labrum, लेब्रम् ; antennal sternum, ऐंटेनीय स्टर्नम।

धड़ बनाते हैं। वक्ष में आठ खंड होते हैं जिनमें से प्रत्येक खंड में एक जोड़ी उपांग होते हैं। लेकिन शीर्ष और वक्ष में वयस्क अवस्था में समेकन हो जाने के कारण कोई खंडीभवन दिखाई नहीं देता। इनके उपांगों से ही इन खंडों का संकेत मिलता है। उदर में छह खंड होते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक जोड़ी उपांग होते हैं।

बाह्यकंकाल—पृष्ठ-शील्ड शीर्ष और वक्ष को पृष्ठतः तथा पार्श्वतः ढके रहती है। अधर सतह पर स्टर्नम होते हैं जिनमें से सबसे अगला **नेत्री स्टर्नम** (ophthalmic sternum) होता है, उसके पीछे एक **ऐंटेन्यूली** (antennular) स्टर्नम होता है, और फिर **उसके पीछे ऐंटेनीय** (antennal) स्टर्नम अथवा अधिमुख होता है जिससे एक मध्य **लेब्रम** (labrum) जुड़ा होता है। तीसरे और चौथे खंडों में स्टर्नम नहीं होते। खंड 5 से 13 तक के स्टर्नम समेकित होकर एक फ़र्श बना लेते हैं। खंड 5 से 13 के पार्श्वों पर 9 जोड़ी काइटिनी स्क्लेराइट होते हैं जिन्हें **एपिमेरॉन** (epimeron) कहते हैं; हर खंड के हर पार्श्व पर एक एपिमेरॉन होता है। उदर में हर खंड के ऊपर एक पृष्ठीय **टर्गम** (tergum) अथवा टर्गाइट (tergite) होता है जो चौड़ा और गोलाई लिए हुऐं होता है, अधर दिशा में एक **स्टर्नम** अथवा **स्टर्नाइट** होता है, और हर पार्श्व पर टर्गम से बनकर निकला हुआ **प्ल्यूरॉन** (pleuron) होता है। वक्ष और उदर के हर पार्श्व पर **एपिमेरॉन** (epimeron) द्वारा, जो कि प्ल्यूरॉन का अंश होता है, यह उपांग प्ल्यूरॉन से जुड़ा होता है। हर दो खंडों के बीच में दो टर्गम एक अंतराटर्गम संधि-कला द्वारा और दो स्टर्नम एक अंतरास्टर्नम सन्धि-

चित्र 292.
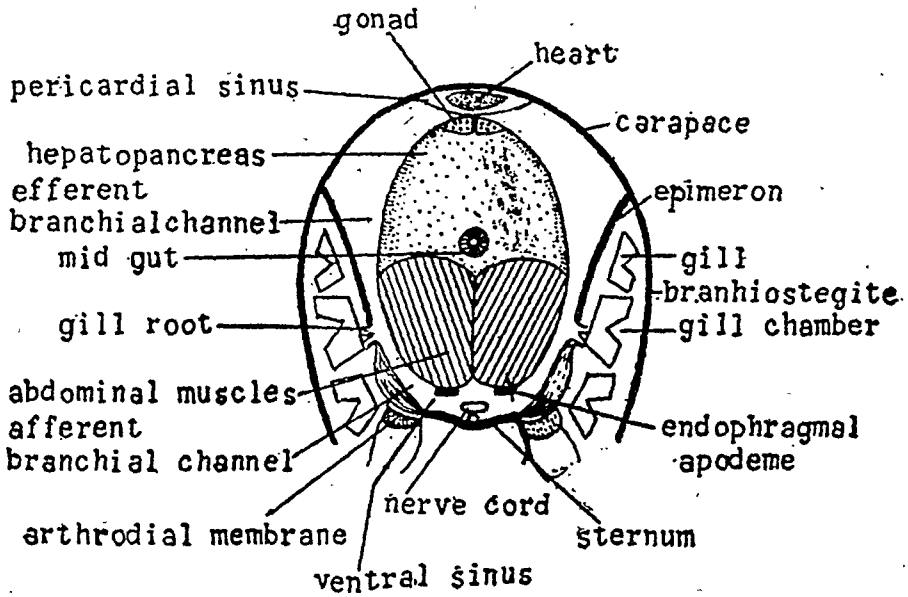
झींगा का शिरोवक्ष से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Pericardial sinus, परिहृद् साइनस; hepatopancreas, यकृताग्न्याशय; gill root, गिल-मूल: sternum, स्टर्नम; gill chamber, गिल-कक्ष।

कला द्वारा जुड़े होते हैं। उदर में हर खंड अपने से पिछले खंड के साथ-साथ पार्श्वतः एक जोड़ी हिंज सन्धियों द्वारा जुड़ा होता है, यह हिंज-सन्धि एक गुलिका तथा एक गर्तिका की बनी होती है जिनके द्वारा एक खंड दूसरे खंड पर उदग्र समतल में गति कर सकता है, लेकिन अगल-बगल गति होना संभव नहीं है।

खंड 3 और 4 के बीच में एक अधर मुख होता है जो सामने की ओर एक लेब्रम (labrum) द्वारा और पीछे की ओर एक **मेटासोमा** (metasoma) अथवा **लेबियम** (labium) के द्वारा सीमित होता है। लेब्रम देहभित्ति से विकसित हुआ होता है किन्तु लेबियम अग्रांत्र के अग्र सिरे से बना होता है। टेल्सॉन की जड़ में अधर दिशा पर एक **गुदा** (anus) होती है।
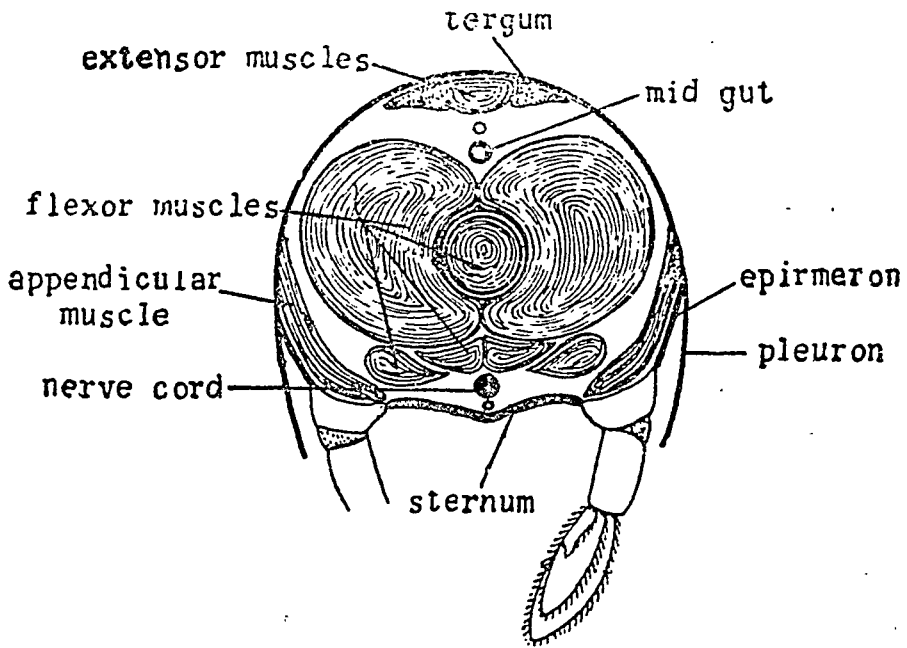
चित्र 293. झींगा का उदर से गुजरता हुआ अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)। Extensor muscle, प्रसारिणी पेशी ; tergum टर्गम ; mid-gut, मध्यांत्र ; epimeron, एपिमेरॉन ; pleuron, प्ल्यूरॉन ; sternum, स्टर्नम ; nerve-cord तंत्रिका-रज्जु ; flexor muscle, आकोचनी पेशी ; appendicular muscle, उपांग पेशी।

अंतःफ्रैग्मा-कंकाल (Endophragmal skeleton)—क्यूटिकल की अंतः-वृद्धियों द्वारा, जिन्हें **ऐपोडीम** (apodeme) कहते हैं एक अंतःकंकाल बन जाता है जो पेशियों के निवेशन (insertion) का कार्य करता है। झींगा में ये ऐपोडीम परस्पर जुड़ कर एक अंतःफ्रैग्मा-कंकाल का निर्माण करते हैं। यह कंकाल शिरोवक्ष के एपि-मेरॉनों तथा स्टर्नमों के बीच में पड़ी शलाकाओं के रूप में होता है। इसका सबसे ज्यादा विकास खंड 3/4 और खंड 11/12 तथा 12/13 के बीच-बीच में होता है। तीसरे और चौथे खंडों के बीच में दो बड़े ऐपोडीम होते हैं जो एक अनुप्रस्थ तंतुकी सूत्र से जुड़े होते हैं; दोनों ऐपोडीम मिलकर एक **शीर्ष ऐपोडीम** (cephalic apodeme) बनाते हैं जिस पर मैंडिबल की पेशियाँ जुड़ी होती हैं। इसके बाद के हर

खंड के हर पार्श्व में दो पास-पास बने हुए ऐपोडीम होते हैं, एक **अंतःप्ल्यूराइट** (endopleurite) जो ऐपिमेरॉन से निकलता है और दूसरा **अंतःस्टर्नाइट** (endosternite) जो स्टर्नम से निकलता है। खंड 11 और 12, तथा 12 और 13 के बीच में हर पार्श्व पर अंतःस्टर्नाइट से एक Y की आकृति की शाखा निकलती है, इस शाखा की भीतरी शाखा को **मध्यफ्रैग्म** (mesophragm) और बाहरी शाखा को **पराफ्रैग्म** (paraphragm) कहते हैं। ये दोनों आकोचनी उदर-पेशियों (flexor abdominal muscles) के जुड़ने के वास्ते होती हैं।
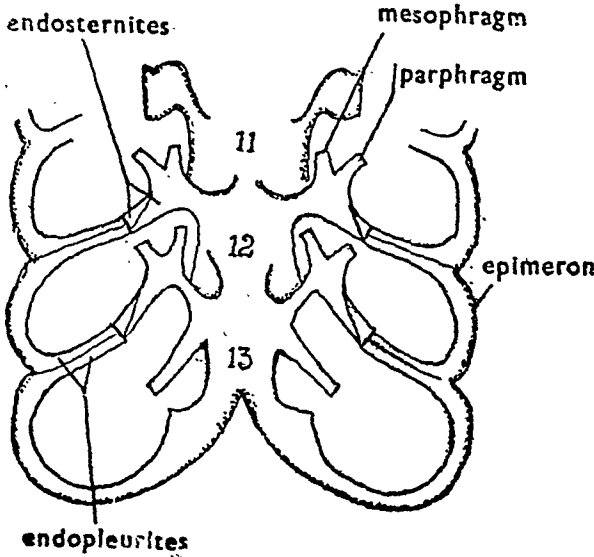
चित्र 294. अंतःफ्रैग्मा कंकाल और स्टर्नम (आंशिक)।
Endosternite, अंतःस्टर्नाइट; mesophragm, मध्यफ्रैग्म; epimeron, एपिमेरॉन; endopleurite, अंतःप्ल्यूराइट; paraphragm, पराफ्रैग्म।

उपांग—हर खंड के अधर-पार्श्व सीमांत से एक जोड़ी उपांग अथवा पाँव निकले होते हैं। कुल 19 जोड़ी उपांग होते हैं, 5 जोड़ी शीर्ष पर, उससे अगले 8 जोड़ी वक्ष पर, तथा अंतिम 6 जोड़ी उदर पर। सभी उपांग **द्विशाखी** (biramous) होते हैं, केवल पहली जोड़ी इसका अपवाद है जो एकशाखी होती है। हर उपांग में एक आधारीय वृंत अथवा **आदिपादांश** (protopodite) होता है जो दो टुकड़ों अथवा **पादखंडों** (podomeres) का बना होता है, ये दो खंड एक निचला कक्षपादांश (coxopodite) अथवा **कॉक्सा** (coxa) और एक ऊपरी आधारपादांश (basipodite) अथवा **बेसिस** (basis) होते हैं। आदिपादांश से दो शाखाएँ निकलती हैं एक तो भीतरी **अंतःपादांश** (endopodite) और एक बाहरी **बाह्यपादांश** (exopodite) जो दोनों ही एक से लेकर कई-कई पादखंडों की बनी हो सकती हैं। पहला उपांग शेष के समान नहीं होता, यह एकशाखी होता है। हर उपांग पर क्यूटिकलीय बाह्यकंकाल होता है जो अधिकतर उपांगों में नलिकाकार खंडों अथवा पादखंडों में विभाजित होता है और ये पादखंड एक दूसरे से नरम संधि-कला द्वारा जुड़े होते हैं, इस हर जोड़ पर एक संधि

बनी होती है, इन संधियों के कारण उपांगों के पादांशों में गति संभव होती है। हर पादांश में क्यूटिकल की भीतरी सतह पर जुड़ी हुई दो बहिःकर्षी और दो अंतःकर्षी पेशियाँ होती हैं। उपांगों का प्रसारण (extension) और आकोचन (flexion)
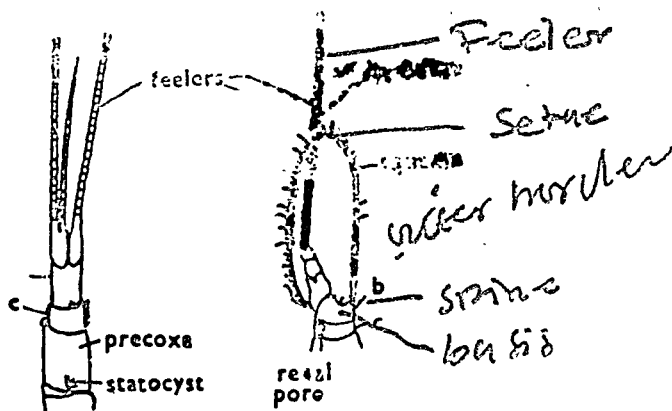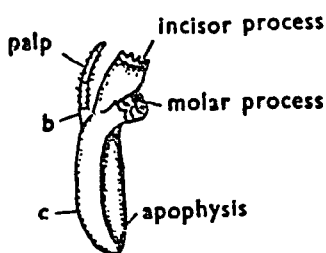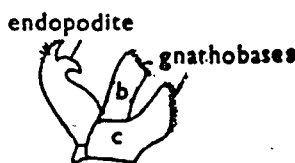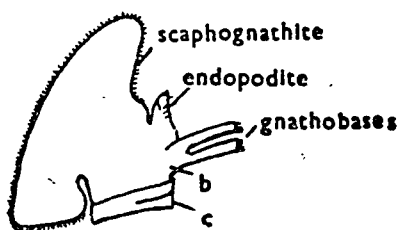
चित्र 295. शीर्ष-उपांग।

b, बेसिस; c, कॉक्सा; feelers, स्पर्शक; pre-coxa, पूर्वकॉक्सा; statocyst, स्टैटोसिस्ट; antennule, ऐंटेन्यूल; antenna, ऐंटेना; endopodite, अंतःपादांश; squama, स्क्वैमा; renal pore, वृक्क-छिद्र; mandible, मैंडिबल; palp, पैल्प; apophysis, ऐपोफ़ाइसिस; incisor process, कृंतक प्रवर्ध; molar process, चर्वण प्रवर्ध; gnathobases, हन्वाधार; maxillula, मैक्सिल्यूला; scaphognathite, स्कैफ़ोग्नैथाइट; maxilla, मैक्सिला।

पेशियों द्वारा सम्पन्न होता है, जिसमें पेशियाँ और क्यूटिकल परस्पर मिल कर लीवर-पद्धति की तरह कार्य करते हैं। चलन के वास्ते पेशी और कंकाल-तंत्रों का यह समन्वय अनिवार्यतः वैसा ही है जैसा कि कशेरुकियों में, बस अंतर इतना है कि आर्थ्रोपोडों में पेशियाँ बाह्यकंकाल की भीतरी सतह पर जुड़ी होती हैं जब कि कशेरुकियों में पेशियाँ अंतःकंकाल की बाहरी सतह पर जुड़ी होती हैं। सामान्यतः तमाम उपांग इन दोनों में से किसी एक प्रकार के होते हैं : (क) **संकीर्णपाद** (stenopodium) पतला पाँव होता है, इसके अंतःपादांश तथा बाह्यपादांश एक समान वृंत आदिपादांश के ऊपर लगे होते हैं। (ख) **पर्णपाद** (phyllopodium) चौड़ा पत्ती-जैसा होता है, क्यूटिकल पतला होता है, और अंतःपादांश व बाह्यपादांश द्विभुज नहीं बनाते। उपांगों के 19 जोड़े होते हैं जिनमें से शीर्ष पर 5 जोड़े, वक्ष पर 8 जोड़े, और उदर पर 6 जोड़े होते हैं। इन उपांगों का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

1. **ऐंटेन्यूल** (Antennule), एकशाखी, इसके आदिपादांश में तीन पादखंड पाए जाते हैं, एक पूर्वकॉक्सा, एक कॉक्सा और एक बेसिस। बेसिस के ऊपर से एक जोड़ी लंबे, खंडयुक्त स्पर्शक (feelers) निकले होते हैं जिनमें से बाहरी स्पर्शक में दो असमान लंबाई वाली शाखाएँ होती हैं। पूर्वकॉक्सा के भीतर एक स्टैटोसिस्ट होता है। ऐंटेन्यूल स्पर्शग्राही होता है और इसका स्टैटोसिस्ट संतुलन में सहायता करता है। ऐंटेन्यूल अन्य मैंडिबली क्लासों के ऐंटेनाओं के समजात होते हैं।

2. **ऐंटेना** (Antenna), इसके आदिपादांश में एक कॉक्सा तथा एक बेसिस होते हैं, कॉक्सा के ऊपर एक वृक्क-छिद्र (renal-aperture) होता है। बाह्यपादांश एक चौड़ा पत्ती-जैसा **स्क्वैमा** (squama) होता है। अंतःपादांश एक लंबा बहुखंडी स्पर्शक होता है। ऐंटेना स्पर्शग्राही होता है। ऐंटेनाओं का अन्य मैंडिबली क्लासों में कोई समजात उपांग नहीं पाया जाता, लेकिन ये ऐरेकिनडों के कीलिसेराओं (chelicerae) के समजात होते हैं।

3. **मैंडिबल** (Mandible) मुख के पार्श्व में होता है, इसमें एक बड़ा कैल्सीकृत कॉक्सा होता है जो एक **ऐपोफ़ाइसिस** (apophysis) अथवा जबड़ा बनाता है, बेसिस दो पादांशों से जुड़कर एक पैल्प अथवा अंतःपादांश बनाता है, ऐपोफ़ाइसिस की भीतरी दिशा से दो दंत-युक्त बहिर्वृद्धियाँ निकली होती हैं—एक **चर्वण-प्रवर्ध** (molar process) जिसमें पाँच या छह दंत-प्लेटें बनी होती हैं, और एक **कृंतक प्रवर्ध** (incisor process) होता है जिस पर तीन दाँत बने होते हैं। बाह्यपादांश नहीं होता। मैंडिबल आहार को काटने तथा चबाने के काम आते हैं, वयस्क में इसका द्विशाखी स्वरूप समाप्त हो जाता है।

4. **मैक्सिल्यूला** (Maxillula) पतले और पर्णाकार होते हैं, इसमें पर्णपाद होने की प्रवृत्ति होती है। कॉक्सा और बेसिस चौड़े होते तथा भीतर की ओर को जबड़ों अथवा **हन्वाधारों** (gnathobases) के रूप में निकले होते हैं जिनके किनारे पर शूक बने होते हैं, अंतःपादांश वक्र और अंत में द्विशाखी होता है, इसमें छोटे-छोटे हुक

होते हैं, वाह्यपादांश नहीं होता। मैक्सिल्यूला का द्विशाखी स्वरूप समाप्त हो चुका है, यह आहार को मुख में बढ़ाने का कार्य करता है।

5. **मैक्सिला** (Maxilla) एक पतला पर्णाकार पर्णपाद होता है। कॉक्सा अपूर्णतः विभाजित होता है, वेसिस बड़ा होता है जिसमें शूकों से युक्त दो हन्वाधार होते हैं, अंतःपादांश छोटा होता है, वाह्यपादांश एक बड़ा पंखा-जैसा **स्कैफ़ोग्नैथाइट** (scaphognathite) बन जाता है जिसके ऊपर उसके सीमांत के सहारे-सहारे पिच्छाकार (plumose) शूक बने होते हैं, यह एक गिल-कक्ष में को निकला होता है और गिलों के ऊपर एक जलधारा उत्पन्न करता है। मैक्सिला आहार करने और श्वसन में सहायता करता है।

6. **पहला मैक्सिलिपीड** (First maxillipede) अथवा पादहनु पतला होता है और इसमें पर्णपादी प्रवृत्ति होती है, कॉक्सा तथा वेसिस चपटे, पत्ती-जैसे हन्वाधार बनाते हैं, कॉक्सा के ऊपर एक द्विपालित, पत्ता-सरीखा **अधिपादांश** (epipodite) होता है जो एक गिल का कार्य करता है, अंतःपादांश छोटा होता है, वाह्यपादांश लंबा होता और उसमें एक पत्ती-जैसा प्रसार होता है। पहला मैक्सिलिपीड स्पर्शीय होता है, यह आहार को पकड़े रखता और श्वसनीय होता है।

7. **दूसरा मैक्सिलिपीड** (Second maxillipede) अथवा पादहनु में एक छोटा कॉक्सा होता है जिनमें एक अधिपादांश होता है जिस पर एक गिल जुड़ा होता है, वाह्यपादांश लंबा और पतला होता है, अंतःपादांश वेसिस से निकलता है और उसमें पाँच संधियाँ अथवा पादखंड होते हैं जिन्हें **इस्कियम** (ischium), **मीरस** (merus), **कार्पस** (carpus), **प्रोपोडस** (propodus) और **डैक्टिलस** (dactylus) कहते हैं, इनमें से अंतिम दो पादखंड एक दूसरे के समांतर होते और एक कर्तन प्लेट बनाते हैं जिस पर शूक बने होते हैं। दूसरा मैक्सिलिपीड स्पर्शीय होता है, यह आहार को पकड़े रखता तथा श्वसनीय होता है।

8. **तीसरा मैक्सिलिपीड** (Third maxillipede) अथवा पादहनु कुछ-कुछ टाँग सरीखा होता है। कॉक्सा में एक अधिपादांश होता है, वेसिस छोटा होता है, वाह्यपादांश लम्बा होता है, अन्तःपादांश लम्बा और तीन पादखण्डों वाला होता है, पहला पादखण्ड समेकित इस्कियम तथा मीरस का प्रतिदर्श है, दूसरा कार्पस का, और तीसरा समेकित प्रोपोडस एवं डेक्टिलस का प्रतिदर्श है। तीसरा मैक्सिलिपीड स्पर्शीय होता है, यह आहार को पकड़े रखता है और श्वसनीय है।

9. **पहली चर टाँग** (First walking leg) में कॉक्सा व वेसिस छोटे होते हैं वाह्यपादांश नहीं होता, अन्तःपादांश में पाँच पादखण्ड, इस्कियम, मीरस, कार्पस, प्रोपोडस और डैक्टिलस होते हैं, अन्तिम दो पादखण्ड एक कसकर पकड़ने वाला चिमटा या **कीला** (chela) बनाते हैं, अतः चर टाँग को **कीलेट टाँग** (chelate leg) कहते हैं, इसका कार्य चलना, आक्रमण, सुरक्षा, पकड़ना और आहार को मुख में ले जाना होता है।

10. **दूसरी चर टाँग** (Second walking leg) अथवा कीलेट टाँग पहली टाँग की तरह होती है लेकिन यह बड़ी होती है और नर में तो विशेषत: अधिक बड़ी होती है। इसके कार्य वही हैं जो पहली टाँग के हैं।
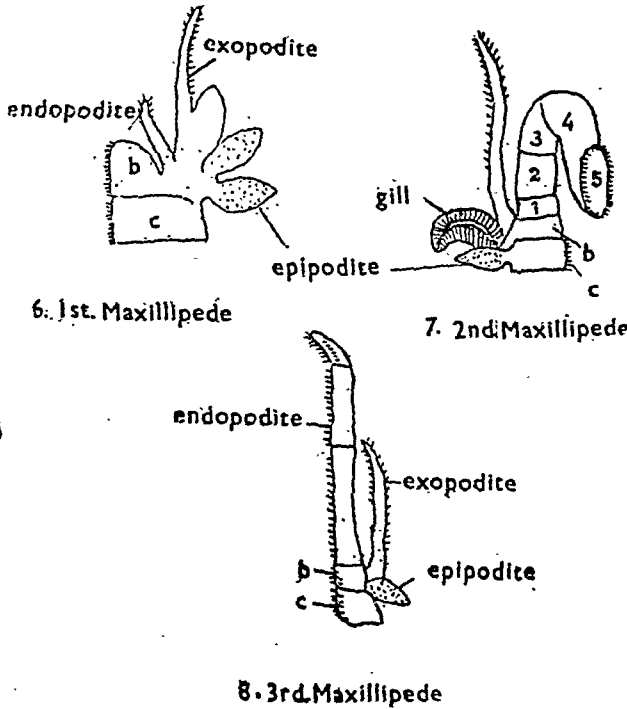
चित्र 296. वक्ष-उपांग (विभिन्न मैक्सिलिपीड) b—बेसिस, c—कॉक्सा, Endopodite, अन्त:पादांश; exopodite, बाह्यपादांश; epipodite, अधिपादांश; gill, गिल।

11. **तीसरी चर टाँग** (Third walking leg) में कॉक्सा व बेसिस छोटे होते हैं, बाह्यपादांश नहीं होता, अन्त:पादांश में वही सामान्य पाँच पादखण्ड होते हैं, लेकिन प्रोपोडस और डैक्टिलस एक ही रेखा में होते हुए कीला नहीं बनाते। मादा के कॉक्सा में एक मादा जनन-छिद्र होता है। तीसरी टाँग चलने तथा आहार बढ़ाते जाने में इस्तेमाल होती है।

12. **चौथी चर टाँग** (Fourth walking leg) तीसरी के समान होती है।

13. **पाँचवीं चर टाँग** (Fifth walking leg) वैसी ही होती है जैसे तीसरी, लेकिन नर में इसके कॉक्सा तथा वक्ष के बीच में एक नर जनन-छिद्र मौजूद होता है। पाँचों चर टाँगों का द्विशाखी गुण समाप्त हो गया है।

14. **पहला तरणपाद** (First pleopod) अथवा तरणक (swimmeret) में छोटा कॉक्सा होता है, लम्बा बेसिस, बड़ा पत्ती-जैसा बाह्यपादांश और छोटा पत्ती-जैसा अन्त:पादांश होता है। उदर के सभी छह तरणपादों का कार्य धीरे-धीरे तैरना होता है।

15. **दूसरा तरणपाद** (Second pleopod) अथवा तरणक वैसा ही होता है जैसा कि पहला तरणपाद, इसके अन्तःपादांश के समीप एक **अन्तःविवर्ध** (appendix interna) होता है जो एक वक्र शलाका के रूप में होता तथा जिसके ऊपर एक हुकधारी अन्तस्थ घुण्डी होती है, यह मादा-झींगा में दूसरी ओर के अपने साथी अन्तः-

चित्र 297. वक्ष-उपांग (चर टाँगें)। b—वेसिस, c—कॉक्सा। Knee, घुटना; ischium, इस्कियम; merus, मीरस; carpus, कार्पस; propodus, प्रोपोडस; dactylus, डैक्टिलस।
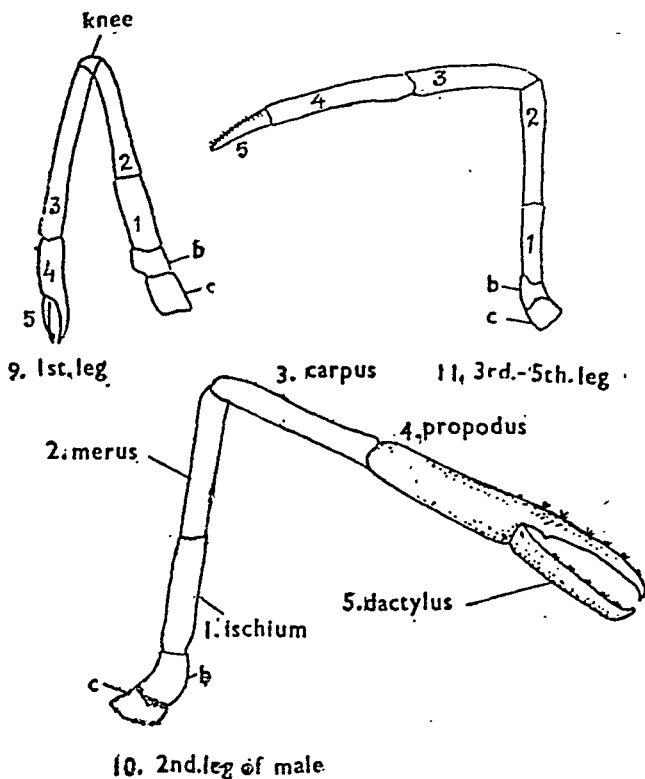
विवर्ध के साथ एक साथ मिलकर अंडे धारण करने का काम करता है। नर-झींगा में दूसरे तरणपाद में एक अतिरिक्त उँगली-जैसा प्रवर्ध होता है जिसे **पुंविवर्ध** (appendix masculina) कहते हैं और जो अन्तःविवर्ध के समीप स्थित होता है, यह शुक्राणुओं को मादा के भीतर पहुँचाता है।

16. **तीसरा तरणपद** (Third pleopod) वैसा ही होता है जैसा कि दूसरा तरणपाद, लेकिन इसमें नर में कोई पुंविवर्ध नहीं होता।

17. **चौथा तरणपाद** (Fourth pleopod) वैसा ही होता है जैसा कि तीसरा तरणपाद।

18. **पाँचवाँ तरणपाद** (Fifth pleopod) वैसा ही होता है जैसा कि तीसरा तरणपाद। मादा के तरणपादों में 2रे से लेकर 5वें तरणपादों तक के दाएँ-

वाएँ अन्तःविवर्ध परस्पर एक-दूसरे में फँस कर आपस में टिकने के लिए हुक-जैसी रचनाएँ बना लेते हैं।

19. पुच्छपाद (Uropod) टेल्सन के एक तरफ़ से जुड़ा होता है। कॉक्सा और वेसिस परस्पर समेकित होकर एक संपाद (sympod) बना लेते हैं, बाह्यपादांश और अन्तःपादांश बड़े और चपटे होते हैं बाह्यपादांश में एक अनुप्रस्थ सीवन (suture) बनी होती है। टेल्सन के साथ मिलकर दोनों पुच्छपाद एक पुच्छ-फ़िन (tail fin) बनाते हैं जो झींगा के तैरने के दौरान शक्तिशाली और तीव्र गति से पीछे को उल्टा तैर जाना सम्भव बनाते हैं।
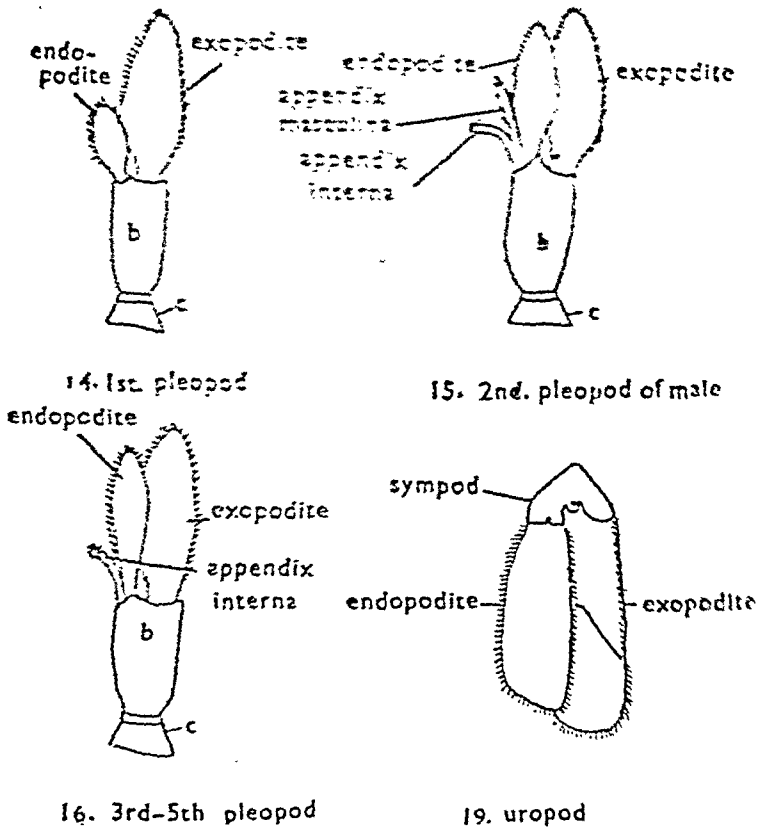
चित्र 298. उदर-उपांग; b—वेसिस; c—कॉक्सा। Endopodite, अन्तःपादांश; exopodite, बाह्यपादांश; appendix masculina, पुंविवर्ध, appendix interna, अन्तःविवर्ध, pleopod, तरंगपाद; sympod, संपाद; uropod, पुच्छपाद।

क्रस्टेशिया के उपांगों को पूर्वज-प्रकार, जैसे कि तीसरे मैक्सिलिपीड, से व्युत्पन्न माना जा सकता है, इनमें उनके मूल कार्यों के अनुरूप अनुकूली विविधता देखा जाता है। उपांग अनेक कार्यों के लिये हो सकते हैं जैसे स्पर्श के लिए (ऐन्टेन्यूल), भोजन चबाने के लिये (मैंडिबल), पकड़ने के लिए (कीलेट टाँगें), चलने के लिए (टाँगें)

श्वसन-धारा के लिए (मैक्सिला), तैरने के लिए (पुच्छपाद), और तैरने एवं मैथुन के लिए (तरणपाद)।

देह-भित्ति—देह के ऊपर एक मोटा दो-स्तरी **क्यूटिकल** होता है, इसकी बाहरी परत में एक पतला अकाइटिनी **अधिक्यूटिकल** (epicuticle) होता है जो प्रोटीनों और लाइपिडों का बना होता है, भीतरी परत एक मोटा पटलित क्यूटिकल अथवा **प्राक्-क्यूटिकल** (procuticle) होता है जिसमें काइटिन की परतें होतीं और तीन क्षेत्र बने होते हैं, सबसे बाहरी क्षेत्र एक वर्णकित-**बाह्यक्यूटिकल** (exocuticle) होता है, उसके नीचे एक मोटा **अन्तःक्यूटिकल** (endocuticle) होता है जिसमें एक ऊपरी कैल्सीकृत और उसके नीचे एक अकैल्सीकृत क्षेत्र होता है। बाह्यक्यूटिकल प्रोटीनों के जमाव के कारण गहरे रंग का होता है और स्क्लेरॉटाइज़ेशन के प्रक्रम द्वारा कड़ा हो गया होता है। कैल्सीकृत क्षेत्र में कैल्सियम के कार्बोनेटों तथा फास्फ़ेटों के जमाव होते हैं जो देह-भित्ति को कड़ा कर देते हैं। काइटिन, पौलीसैकेराइड का एक ऐसीटेट है जिसमें ग्लूकोसऐमीन भी होता है। क्यूटिकल अपेक्षाकृत अपारगम्य
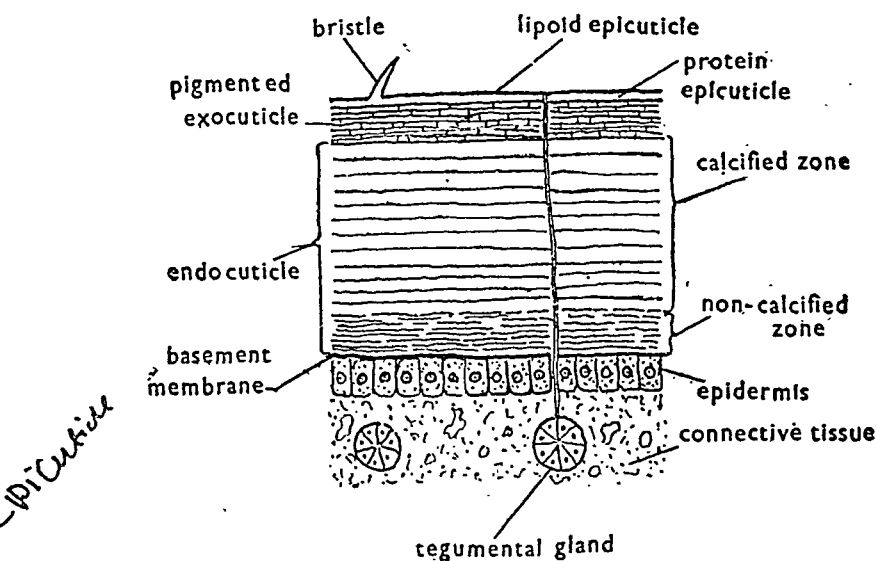
चित्र 299. देह-भित्ति का उदग्र सेक्शन (V. S.)

Pigmented cuticle, वर्णकित क्यूटिकल; bristle, शूक; lipoid epicuticle, लाइपॉइडी अधिक्यूटिकल; protein epicuticle, प्रोटीन अधिक्यूटिकल; calcified zone, कैल्सीकृत क्षेत्र; non-calcified zone, अकैल्सीकृत क्षेत्र; epidermis, एपिडर्मिस; connective tissue, योजी ऊतक; basement membrane, आधारक झिल्ली; endocuticle, एण्डोक्यूटिकल।

होता है, केवल वहीं स्थान अपवाद होते हैं जो पतले होते और गैसों के आवागमन अथवा जल के अवशोषण को होने देते हैं। वयस्क में हर-एक वर्ष के उपरान्त क्यूटिकल

उतार फेंक दिया जाता है, इसे **निर्मोचन** (moulting अथवा ecdysis) कहते हैं। क्यूटिकल के नीचे एककोशिका मोटाई वाला **हाइपोडर्मिस** (hypodermis) अथवा **एपिडर्मिस** (epidermis) होता है जो स्तम्भाकर एपिथीलियम-कोशिकाओं का बना होता है, यह एक पतली **आधारक झिल्ली** (basement membrane) के ऊपर टिका होता है जिसके नीचे एक परत योजी ऊतक की होती है जिससे नीचे पड़ी हुई पेशियाँ जुड़ी होती हैं। योजी ऊतक में **आच्छद ग्रन्थियाँ** (tegumental glands) होती हैं जो स्रावी कोशिकाओं के समूहों की बनी होती हैं, इन स्रावी कोशिकाओं में एक-एक लम्बी वाहिनी होती है जो बाहर को अधिक्यूटिकल की सतह पर खुलती है, आच्छद ग्रन्थियाँ एपिक्यूटिकल का स्राव करती है, प्राक्क्यूटिकल का स्राव हाइपोडर्मिस से होता है। अधिक्यूटिकल के ऊपर शूक बने होते हैं। योजी ऊतक में वर्णकों से युक्त वर्णकधर होते हैं। वर्णकधर एक कोशिका होती है जिसमें अरीय रूप में विशाखित प्रवर्ध निकले होते हैं, इसकी वर्णक कणिकाएँ या तो सिकुड़ कर कोशिका के केन्द्र में या प्रवर्धों में को फैली हुई हो सकती हैं। वर्णक कणिकाओं की गति का नियन्त्रण तन्त्रिका-तन्त्र द्वारा और नेत्र-वृन्त में **साइनस-ग्रन्थियों** (sinus glands) के द्वारा उत्पन्न हार्मोनों के द्वारा होता है।

पेशी-तन्त्र—पेशियाँ लगभग सब की सब रेखित होती हैं, ये अब अनुदैर्घ्य होती हैं, बस हृदय और धमनियों में ही वे वृत्ताकार होती हैं। पेशियों का सम्बन्ध उदर एवं उपांगों के प्रसारण तथा आकोचन से है। सात जोड़ी **प्रसारिणी पेशियाँ** (extensor muscles) छह उदर खण्डों तथा टेल्सॉन से निकलती हैं जो पृष्ठत: चलती जाती हैं और वक्ष की पार्श्व दीवारों पर निवेशित होती हैं। इन पेशियों के संकुचन से उदर का प्रसार और उसका सीधा होना सम्पन्न होता है। पाँच जोड़ी उदरीय **आकोचनी पेशियाँ** (flexor muscles) होती हैं जो पहले पाँच उदर खण्डों से निकलती हैं, ये अधर दिशा में पड़ी रहतीं और बहुत शक्तिशाली होती हैं, ये स्टर्नमों, ऐपोडीमों तथा वक्ष-भित्ति पर निवेशित होती हैं। आकोचनी पेशियों के संकुचन से उदर मुड़ जाता है। उपांगों में खोखले, नलिकाकार पादखण्ड होते हैं, दो पास-पास के खण्डों के बीच में एक हिंज-संधि होती है जिस पर गति को सम्भव बनाने वाली एक कोमल **संधि-कला** होती है। हर पादखण्ड में दो प्रसारिणी तथा दो आकोचनी पेशियाँ होती हैं जो उससे पहले के और उसके बाद के पादखण्डों से जुड़ी होती हैं, आकोचनी पेशियाँ पादखण्डों को मोड़तीं और प्रसारिणी उसे सीधा करती हैं। क्रस्टेशिया में हर पेशी में दो से पाँच तक तन्त्रिकाएँ होती हैं, ये प्रेरक और संवेदी तन्त्रिकाएँ होती हैं जिनके अलावा एक संदमनी (inhibitory) तन्त्रिका होती है जो पेशी-संकुचन का सन्दमन करती अर्थात् उसे रोकती है।

आहार-नाल—एक बड़ा मध्य-अधर मुख होता है जो तीसरे और चौथे खंडों के बीच में स्थित रहता है, इसके सामने की ओर एक लेब्रम तथा अगल-बगल मैंडिबल के कृंतक प्रवर्ध, और पीछे एक लेबियम अथवा मेटासोमा बना होता है, इस लेबियम में एक दरार बनकर दो पालि अथवा पराहनु (paragnatha) बन

जाते हैं। मुख ऊपर को एक मुख-गुहा में खुलता है, इस गुहा के भीतर अनियमित काइटिनी वलन बने होते हैं, यह एक छोटी किन्तु चौड़ी ग्रसिका में को खुलती है, इसके अस्तर में अनुदैर्घ्य वलन बने होते हैं जो छह खाँचें अथवा कोष्ठ बनाते हैं; ग्रसिका की दीवार में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। ग्रसिका एक बड़े आमाशय के साथ जुड़ती है जिसके दो भाग होते हैं, एक तो बड़ा **आगम जठर** (cardiac stomach) और दूसरा उसके नीचे बना हुआ **निर्गम जठर** (pyloric stomach)।
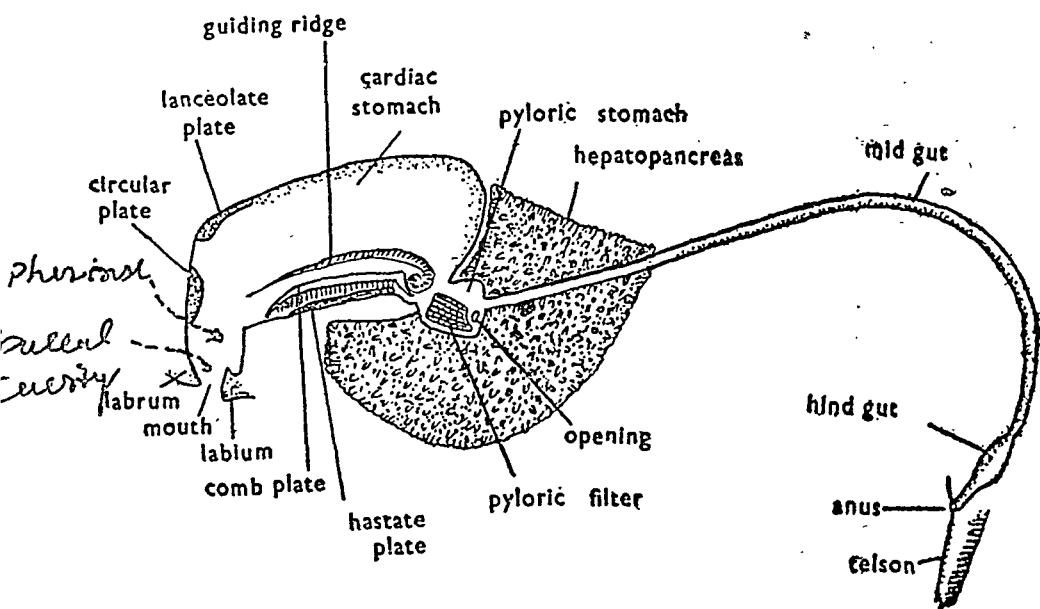
चित्र 300. आहार-नाल।

Mouth मुख; labrum, लेब्रम; circular plate, वृत्ताकार प्लेट; lanceolate plate, भालाकार प्लेट; guiding ridge, निर्देशी कटक; cardiac stomach, आगमी जठर; pyloric stomach, निर्गमी जठर; hepatopancreas, यकृताग्न्याशय; mid-gut, मध्यांत्र; hind-gut, पश्चांत्र; anus, गुदा; telson, टेल्सॉन; opening, छिद्र; pyloric, filter, निर्गम छन्ना; hastate plate, भालाकार प्लेट; comb plate, कंकत प्लेट; labium, लेबियम।

आगम जठर का अस्तर एक कोमल क्यूटिकल का बना होता है जिस पर बहुत छोटे-छोटे नरम शूक बने होते हैं; कुछ भागों में क्यूटिकल मोटा और कैल्सीकृत होकर प्लेट बना लेता है, अग्रतः एक पतली **वृत्ताकार प्लेट** होती है, अग्र छत में एक वल्लभाकार प्लेट (lanceolate plate) होती है, तथा फ़र्श के बीच में एक **भालाकार प्लेट** (hastate plate) होती है। भालाकार प्लेट के चारों ओर एक पार्श्व खाँच बनी होती है, सिर्फ़ पश्च दिशा में यह खाँच नहीं होती। भालाकार प्लेट की पार्श्व दिशाओं में और उसके पीछे एक मोटा हो गया हुआ कटक बना होता है जिसे **कंकत**

प्लेट (combed plate) कहते हैं, इस कटक के ऊपर उसके भीतरी सीमांत के सहारे-सहारे लम्बे शूकों की एक पंक्ति बनी होती है जो पार्श्व खाँच को ढके रहती है। आगमी जठर की दीवार पार्श्व दिशा में वलित होकर दो नीलापन लिये हुए काले से रंग के पार्श्व अनुदैर्घ्य वलन अथवा **निर्देशी कटक** (guiding ridges) बन जाते हैं। आगमी जठर एक x की आकृति के आगम-निर्गम छिद्र के द्वारा निर्गम जठर में को खुलता है, यह छिद्र चार आगम-निर्गम वाल्वों द्वारा घिरा होता है जिन पर शूकों की पंक्तियाँ बनी होती हैं, ये शूक छानने के लिये एक चलनी-जैसा कार्य करते
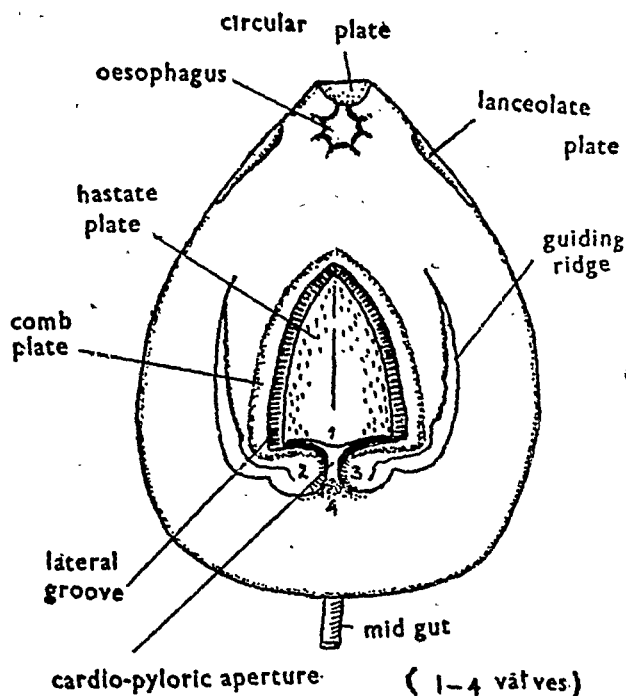
चित्र 301. आगम-जठर (मध्य-पृष्ठतः काट कर खोला गया)। 1-4 Valves, 1-4 वाल्व।
Oesophagus, ग्रसिका; circular plate, वृत्ताकार प्लेट; lanceolate plate, बल्लमाकार प्लेट; guiding ridge, निर्देशी कटक; mid-gut, मध्यांत्र; cardio-pyloric aperture, आगम-निर्गम छिद्र; lateral groove, पार्श्व खाँच; comb plate; कंकत प्लेट; hastate plate, भालाकार प्लेट।

हैं। निर्गम जठर छोटा होता है, उसकी पार्श्व दीवारें मोटी और पेशीय होती हैं, इन दीवारों के कारण उसकी अवकाशिका दो भागों में विभाजित हो जाती है एक तो पृष्ठ-कक्ष और दूसरी अधर-कक्ष। अधर-कक्ष में एक **निर्गम छन्ना** (pyloric filter) होता है जिसमें लम्बाई में कटक बने होते हैं जिन पर कंघी के समान शूक बने होते हैं, इन्हीं शूकों में से आहार छनता है। पृष्ठ-कक्ष में से एक लम्बा मध्यांत्र निकलता है और इनके इस सन्धिस्थल पर शूक होते हैं जो आहार को मध्यांत्र से

वापिस लौटने से रोकते हैं। मध्यांत्र पीछे को चलता जाता है और छठे उदर खण्ड में यह एक पश्चांत्र में मिल जाता है जो शुरू में फूला हुआ और अन्त में संकरा होता जाता है और एक गुदा द्वारा टेल्सॉन के नीचे बाहर को खुलता है। मुख से लेकर जठर के अन्त तक आहार-नाल की भीतरी सतह पर क्यूटिकल का अस्तर बना होता है, यह क्षेत्र स्टोमोडियम है, पश्चांत्र में भी क्यूटिकल का अस्तर बना होता है और यह प्रॉक्टोडियम होता है, मध्यांत्र में एंडोडर्मी अस्तर होता है और वह मीज़ेन्टेरॉन होता है।
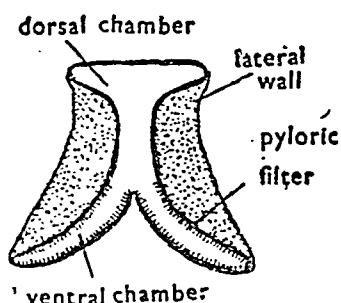
चित्र 302. निर्गम जठर का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.) Dorsal chamber, पृष्ठ-कक्ष; lateral wall, पार्श्व भित्ति; pyloric filter, निर्गम छन्ना; ventral chamber, अधर कक्ष।

एक बड़ा संहत नारंगी रंग का जिगर अथवा **यकृताग्न्याशय** (hepatopancreas) होता है जो जठर के पीछे और अंशतः उसके नीचे स्थित होता है, यह एक जोड़ी रूपांतरित अन्धनालों से विकसित हुआ होता है और वाहिनियों एवं अन्तिम सिरों पर बन्द स्रावी नलिकाओं का बना होता है, लेकिन यह अपेक्षाकृत ठोस होता है। इससे दो छोटी यकृताग्न्याशय वाहिनियाँ निकलती हैं और निर्गम जठर में खुलती हैं।

अशन—पेलीमॉन छोटे जलीय कीटों, शेवालों, कुतृणों एवं माँसों को खाता है। कीलेट टाँग आहार को पकड़ती और उसे मुँह में ले जाती है, दूसरे और तीसरे जोड़ी मैक्सिलिपीड आहार की इस तरह स्थिति बनाये रखे उसे पकड़े रहते हैं कि मैंडिबल उसे अपने कृंतक प्रवर्धों द्वारा काट-काट कर छोटे टुकड़े बना सके और फिर आहार को मुख के भीतर पहुँचा दे। मुख-गुहा में मेंडिबलों के चर्वण-प्रवर्ध खाने को चूरा करते हैं जो जठर में पहुँच जाता है। आगम जठर में खाना और ज़्यादा चूरा किया जाता है, उसके बाद यह आगम-निर्गम वाल्वों में से छाना जाता है और तरल के रूप में निर्गम जठर में पहुँचता है जहाँ से वह दोबारा निर्गमी छन्ने के द्वारा छाना जाता है।

यकृताग्न्याशय का कार्य स्राव और अवशोपण होता है, इससे प्रोटिएज़, लाइपेज़, तथा कई कार्बोहाइड्रेट-अपघटनी एन्ज़ाइम बनते हैं जो निर्गम जठर के अन्त में छोड़े जाते हैं जहाँ वे छने हुए आहार में घुल-मिल जाते हैं। इन एन्ज़ाइमों से प्रोटीनों, वसाओं तथा कार्बोहाइड्रेटों का पाचन होता है। पाचन के उत्पाद मध्यांत्र तथा यकृताग्न्याशय में अवशोपित हो जाते हैं। यकृताग्न्याशय में कुछ कोशिकाएँ होती हैं जो अतिरिक्त आहार को ग्लाइकोजन, वसा तथा कैल्सियम के रूप में संग्रह कर लेती हैं।

श्वसन-तंत्र—हर पार्श्व में गिलावरक तथा शिरोवक्ष के बीच में एक बड़ा किंतु संकीर्ण **गिल-कक्ष** (gill chamber) होता है जिसके भीतर आठ गिल, तीन अधिपादांश, और कैरापेस के अस्तर के रूप में श्वसनांग होते हैं। 1. गिलावरक के

पतले अस्तर के भीतर रक्त गुहाएँ होती हैं जो बाहरी जल में से ऑक्सीजन को सोख लेती हैं। 2. तीन जोड़ी अधिपादांश तीन मैक्सिलिपीडों के अंग होते हैं, ये देह-भित्ति से बनी कॉक्साओं की पत्ती-जैसी वृद्धियाँ होती हैं, इनके ऊपर पतला क्यूटिकल चढ़ा होता है और ये आदिम प्रकार के गिलों के रूप में कार्य करते हैं। 3. सभी गिल मूलतः पूर्वकॉक्सा की बहिर्वृद्धियाँ थे और उन्हें पादगिल (podobranchs) कहा जाता था; लेकिन डेकापोडा वर्ग में पूर्वकॉक्सा वक्ष में समा गये
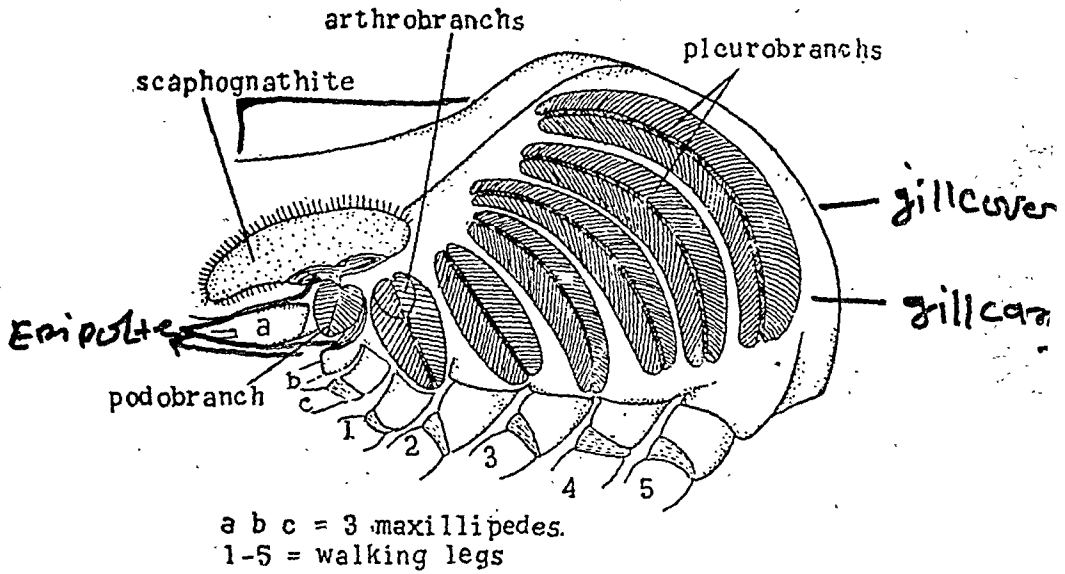
चित्र 303. गिल-कक्ष, जिसमें गिल दिखाये गये हैं।
Scaphognathite, स्कैफ़ोग्नैथाइट; arthrobranchs, सन्धिगिल; pleurobranchs, पार्श्व-गिल; podobranch, पादगिल; maxillipedes, मेक्सिलिपीड; walking legs, चर टाँगें।

हैं इसलिये गिलों की सन्धि भी नई बन गई है। गिलों को उनके जुड़े होने के स्थान के आधार पर अलग-अलग नाम दिये जाते हैं, यदि वे किसी पाँव के आधारीय पादखण्ड से जुड़े हुए हों तो **पादगिल**, यदि किसी उपांग और वक्ष के बीच की संधि-कला से जुड़े हुए हों तो **सन्धि-गिल** (arthrobranch), या फिर यदि वक्ष के प्ल्यूरॉन से जुड़े हुए हों तो **पार्श्व-गिल** (pleurobranch) कहलाते हैं। आदिम व्यवस्था में हर वक्ष-खण्ड के दोनों पार्श्वों पर चार गिल हुआ करते थे, ये थे एक पाद-गिल, दो सन्धिगिल, और एक पार्श्वगिल, इस प्रकार कुल मिला कर हर बाज़ू पर 32 गिल होते थे। लेकिन किसी भी डेकापौड क्रस्टेशियन में यह आदिम संख्या कायम नहीं रही है, गिलों की संख्या में कमी होते जाने की प्रवृत्ति रही है। **पेलीमॉन** में हर बगल पर 8 गिल होते हैं, एक जोड़ी पादगिल दूसरे मैक्सिलिपीड के कॉक्सा से जुड़े होते हैं, दो जोड़ी सन्धिगिल होते हैं जो तीसरे मैक्सिलिपीड को वक्ष से जोड़ने वाली सन्धि-कला पर बने होते हैं, और पाँच जोड़ी पार्श्वगिल होते हैं जो पाँच

वक्ष-टाँगों के प्ल्यूरॉनों से जुड़े होते हैं। गिल का वह भाग जिसके द्वारा वह शेष शरीर से जुड़ा होता है, **गिल मूल** (gill root) कहलाता है। दूसरा गिल तीसरे गिल के नीचे छिपा होता है, शेष सभी गिल खुले होते हैं। हर एक गिल एक
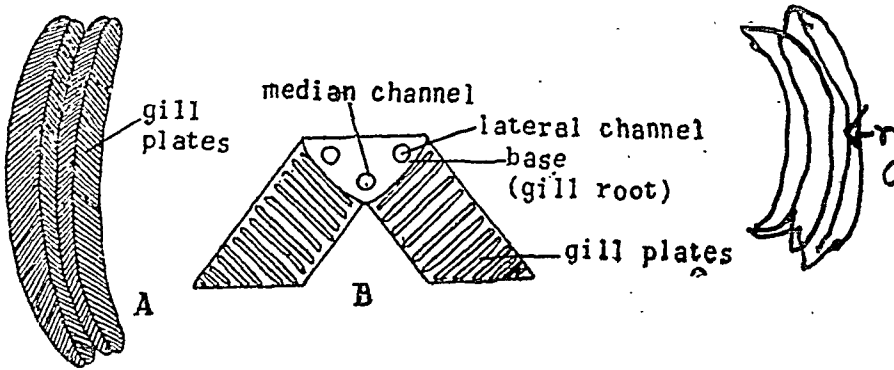
चित्र 304. A—गिल; B—गिल का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.) Gill plates, गिल-प्लेटें; median channel, मध्य नलिका; lateral channel, पार्श्व नलिका; base (gill root) आधार (गिल-मूल)।

रूपांतरित एपिपोडाइट होता है जो बड़ा तथा अत्यधिक वलनित हो गया है। गिल-में एक लम्बा आधार अथवा अक्ष होता है जिसके ऊपर दो पंक्तियों में व्यवस्थित गिल-प्लेटें वनी होती हैं, हर पक्ति में गिल-प्लेटें इस प्रकार लगी होती हैं जैसे कि पुस्तक में उसके पन्ने, इस प्रकार के गिलों को **पर्णगिल** (phyllobranch) कहते हैं। हर गिल-आधार में तीन रक्त-वाहिनियाँ चलती हैं, इनमें से दो वाहिकाएँ **पार्श्व नलिकाएँ** (lateral channels) होती हैं जो अनॉक्सीकृत रक्त को गिल में ले जाती हैं और एक **मध्य नलिका** (median channel) होती है जो गिल में शुद्ध हुए रक्त को उससे दूर ले जाती है।

मैक्सिला का स्कैफ़ोग्नैथाइट लगातार विना रुके कम्पन करता रहता और गिलकक्ष में एक जल-धारा पैदा करता रहता है जो गिलों के ऊपर से वहती चलती है। गिल-कक्ष में पानी पीछे से घुसता रहता और आगे की ओर सिरे के सामने से वाहर को निकलता है। गिल जल में से ऑक्सीजन ले लेते और कार्वन डाईऑक्साइड छोड़ देते हैं।

परिसंचरण-तन्त्र—परिसंचरण-तन्त्र खुले प्रकार का होता है, धमनियाँ अपने से आगे केशिकाओं में नहीं खुलतीं वल्कि साइनसों में खुलती हैं। इन्हीं साइनसों और धमनियों से रक्त आता-जाता रहता है। रक्त में एक स्वच्छ प्लाज़्मा होता है जिसमें रंगहीन कणिकाएँ होती हैं, प्लाज़्मा में घुला हुआ **हीमोसाएनिन** (haemocyanin) होता है जोकि ताँवा और प्रोटीन का यौगिक है, यह एक श्वसन-वर्णक है जो केवल प्लाज़्मा में ही पाया जाता है, ऊतकों में कभी नहीं। रक्त में स्कंदन-क्षमता होती है। वाह्यकंकाल के पाए जाने से सहसम्वन्धित लक्षण के रूप में परिअंतरांग गुहा एक हीमोसील (haemocoele) होती है जिसमें रक्त भरा रहता है, सीलोम वहुत ज्यादा

ह्रासित हो चुका है उसका प्रतिदर्श केवल गोनडों की गुहाओं (गोनोसील) के रूप में और कुछ आर्थ्रोपोडों में ऐनेलिडों की सीलोमवाहिनियों के समजात उत्सर्गी गुहाओं के रूप में मिलता है। सीलोम के ह्रासित होने के साथ-साथ परिसंचरण-तन्त्र की गुहाओं में बहुत ज्यादा प्रसार होकर एक हीमोसील बन गई है जिसमें तमाम महत्त्वपूर्ण अंग रुधिर में डूबे रहते हैं।

एक संहत तिकोना हृदय होता है जो पृष्ठतः कैरापेस के पश्च भाग के नीचे होता है, इसमें स्पंजी पेशीय दीवारें होती हैं। हृदय में को पाँच जोड़ी ऑस्टिया (ostia) खुलते हैं, ये रक्त को केवल हृदय में को ही बहने देते हैं। हृदय के नीचे एक **परिहृद् पट** (pericardial septum) होता है जोकि चारों ओर देह-भित्ति से जुड़ा होता है, यह एक **परिहृद् साइनस** (pericardial sinus) को हीमोसील से पृथक् करता है, इस परिहृद्-साइनस में ही हृदय स्थित होता है। हृदय अपने स्थान पर तीन पेशीय सूत्रों द्वारा टिका रहता है।

हृदय के अग्र सिरे से दो **ऐंटेनीय धमनियाँ** (antennary arteries) निकलती हैं और उनके बीच में एक मध्य **नेत्रीय-धमनी** (ophthalmic artery) होती है, ये तीनों सामने की ओर को चलती जाती हैं। ऐंटेनाओं के पीछे दोनों ऐंटेनीय धमनियाँ मिल जाती हैं और नेत्रीय धमनी भी उनमें जुड़ जाती है। हर ऐंटेनीय धमनी सें इन अंशों को जाने वाली शाखाएँ निकलती हैं—परिहृद् साइनस, जठर, मैंडिबल, वृक्क, ऐंटेना, ऐंटेन्यूल, और आँख। हृदय में से एक जोड़ी यकृत-धमनियाँ (hepatic arteries) भी निकलती हैं जो रक्त को यकृताग्न्याशय में ले जाती हैं। हृदय के पिछले सिरे से एक मोटी धमनी निकलती है जो दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है—एक पतली **अध्यांत्र धमनी** (supra-intestinal artery) और एक मोटी **स्टर्नम-धमनी** (sternal artery)। अध्यांत्र धमनी मध्यांत्र के ऊपर से होती हुई चलती है और उससे निकली हुई दो शाखाएँ पश्चांत्र में जाती हैं। स्टर्नम धमनी नीचे को चली जाती, तंत्रिका-रज्जु को वेधती और दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है एक **अधर वक्ष धमनी** (ventral thorax artery) जो तन्त्रिका-रज्जु के नीचे से चलती हुई मुख तक पहुँच जाती है और रास्ते में वक्ष के स्टर्नमी क्षेत्रों तथा उपांगों को रक्त प्रदान करती जाती है, दूसरी शाखा **अधर-उदरीय धमनी** (ventral abdominal artery) होती है जो तन्त्रिका-रज्जु के नीचे-नीचे से पीछे को चलती जाती है, यह उदर और उदरीय उपांगों को रक्त पहुँचाती है। अंततः तमाम धमनियाँ हीमोसील की रक्त-गुहाओं में खुलती हैं।
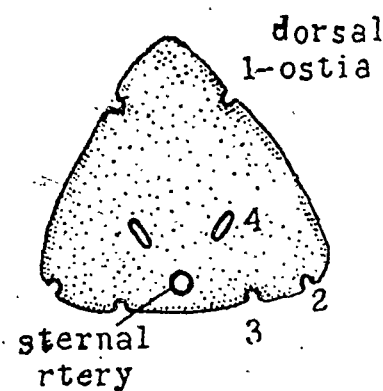
चित्र 305. हृदय (अधर दृश्य)। 1-4, पृष्ठ ऑस्टिया। Dorsal ostia, पृष्ठ ऑस्टिया; sternal artery, स्टर्नम-धमनी।

समस्त शरीर में रक्त-साइनस बने होते हैं। यकृताग्न्याशय के नीचे एक जोड़ी **अधर साइनस** (ventral sinuses) होते है जिनमें से हर पार्श्व पर छह **अभिवाही गिल नलिकाएँ** (afferent branchial channels) निकलतीं और रक्त को गिलों की
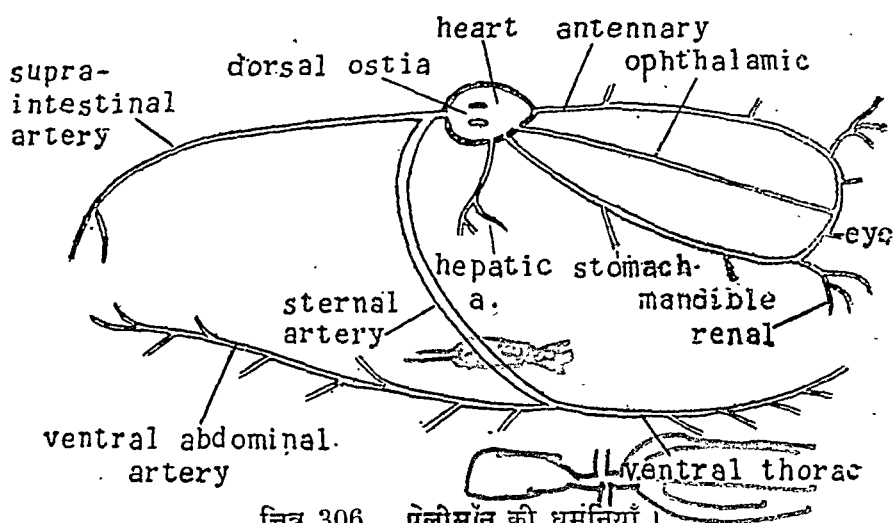
चित्र 306. पेलीमॉन की धमनियाँ।

Supra-intestinal artery, अध्यांत्र धमनी; dorsal ostia, पृष्ठ ऑस्टिया; heart, हृदय; antennary, ऐंटेनीय; opthalmic, नेत्री; eye, आँख; renal, वृक्कीय; mandible, मैंडिबल; stomach, जठर; hepatic a., यकृत धमनी; sternal artery, स्टर्नम-धमनी; ventral abdominal, अधर उदरीय धमनी; ventral thoracic, अधर-वक्षीय।

ओर ले जाती हैं, उसके बाद रक्त दो **पार्श्व नलिकाओं** (lateral channels) में से बहता है जोकि हर गिल की जड़ अथवा उसके अक्ष में से होकर बहती हैं, यह रक्त अनॉक्सीकृत होता है। गिलों में रक्त शुद्ध हो जाता और हर गिल के अक्ष में पड़ी हुई **मध्य नलिका** (median channel) में से लौटता हुआ छह **अपवाही गिल नलिकाओं** (efferent branchial channels) में पहुँचता है जहाँ से यह रक्त परिहृद् साइनस में पहुँचता और ऑस्टिया में से होता हुआ हृदय में पहुँच जाता है।

परिसंचरण—हृदय के संकुचन से रक्त इस प्रकार धक्का दिया जाता रहता है; हृदय→धमनियाँ→हीमोसील की रुधिर गुहाएँ→अधर साइनस→अभिवाही गिल नलिकाएँ→पार्श्व नलिकाएँ→गिल (शुद्ध होता है)→मध्य नलिकाएँ→अपवाही गिल नलिकाएँ→परिहृद् साइनस→हृदय।

उत्सर्गी अंग—क्रस्टेशिया के उत्सर्गी अंग दो जोड़ी ग्रन्थियाँ होती हैं, **एंटेनीय ग्रन्थियाँ** (antennary glands) जो ऐंटेनाओं के आधार पर खुलती हैं और **मैक्सिलीय ग्रन्थियाँ** (maxillary glands) जो मैक्सिलाओं के आधार पर खुलती हैं। प्रायः एक ही प्राणी में ये दोनों ग्रन्थियाँ एक ही समय पर कार्यशील नहीं होतीं,

जीवन-वृत्त के दौरान एक के बाद दूसरी ग्रन्थि कार्य करती है। अधिकतर क्रस्टेशिया में ऐंटेनीय ग्रन्थियाँ लार्वा में और मैक्सिलीय ग्रन्थियाँ वयस्क में क्रियाशील होती हैं, किन्तु डेकापोडा वर्ग में ऐंटेनीय ग्रन्थियाँ वयस्क में कार्य करती हैं, और वे कभी-कभी लार्वा में मैक्सिलीय ग्रन्थि इस्तेमाल करते हैं।
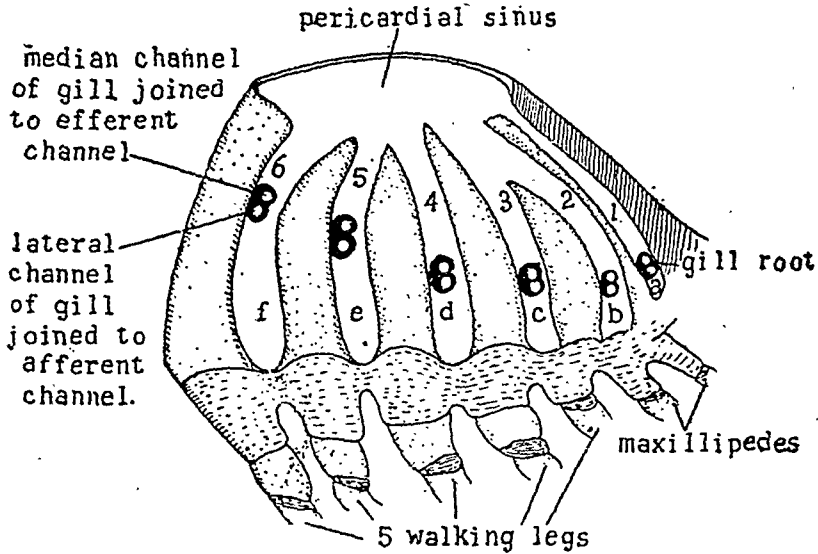
1-6=efferent branchial channels.
a-f=afferent branchial channels.

चित्र 307. वक्ष-भित्ति जिसमें गिलों की जड़, तथा अभिवाही एवं अपवाही गिल-नलिकाएँ दिखाई गई हैं।

Median......channel, गिल की मध्य नलिका अपवाही नलिका से जुड़ जाती है; lateral......channel, गिल की पार्श्व नलिका अभिवाही नलिका से जुड़ जाती है; walking legs, चार टाँगें; maxillipedes, मैक्सिलिपीड; gill root गिल-मूल; pericardial sinus, परिहृद् साइनस; afferent branchial channel, अभिवाही गिल नलिका; efferent branchial channel, अपवाही गिल नलिका।

वयस्क **पेलीमॉन** की ऐंटेनीय अथवा हरी ग्रन्थि शिरोवक्ष में और हर ऐंटेना में कॉक्सा में पड़ी होती है। इसके तीन भाग होते हैं अन्त-कोश (end sac), ग्रन्थि-जालक (glandular plexus) और एक आशय (bladder)। **अन्त-कोश** मीज़ोडर्म से उत्पन्न हुआ सेम के बीच की आकृति का एक थैला होता है और एक मीज़ोडर्मी **ग्रन्थि-जालक** में खुलता है जोकि संवलित विशाखित नलिकाओं का बना होता है। अन्त-कोश तथा ग्रन्थि-जालक के बीच एक संवरणी पेशी होती है। ग्रन्थि-जालक एक पतली दीवार वाले **आशय** में खुलता है, इस आशय में एक छोटी वाहिनी अथवा मूत्र-वाहिनी (ureter) होती है जो कॉक्सा की भीतरी सतह पर बने एक वृक्कछिद्र (renal pore) द्वारा बाहर को खुलती है। आशय में से एक प्रसार निकला होता है जिसमें से

एक वाहिनी निकल कर पीछे की ओर को चलती हुई एक लम्बे **वृक्क-कोष** (renal sac) में खुलती है, यह वृक्क-कोश आंतरांग में आगम-जठर के ऊपर स्थित रहता है। ऐंटेनीय ग्रन्थि मीज़ोडर्मी होती हैं, अन्त-कोश एक बन्द हो गए हुए अवशेषी सीलोम का प्रतिदर्श है, जालक तथा आशय एक सीलोम-वाहिनी के रूप हैं। नाइट्रोजनी अपशिष्ट पदार्थ मुख्यतः ऐमोनिया यौगिक तथा ऐमीन होते हैं जोकि उत्सर्गी अंगों द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिए जाते हैं। उत्सर्गी अपशिष्ट में यूरिया तथा यूरिक एसिड की भी थोड़ी-थोड़ी मात्राएँ पाई गई हैं। प्रयोगात्मक प्रमाण से सिद्ध हो गया है कि ऐमोनिया का उत्सर्जन गिलों से भी होता है और इस प्रकार गिल महत्त्वपूर्ण सहायक उत्सर्जन अंग हैं। त्वचा भी उत्सर्जन का कार्य करती है, विशेषतः निर्मोचन के दौरान जबकि वह एकत्रित अपशिष्ट को पुराने क्यूटिकल के साथ बाहर फेंक
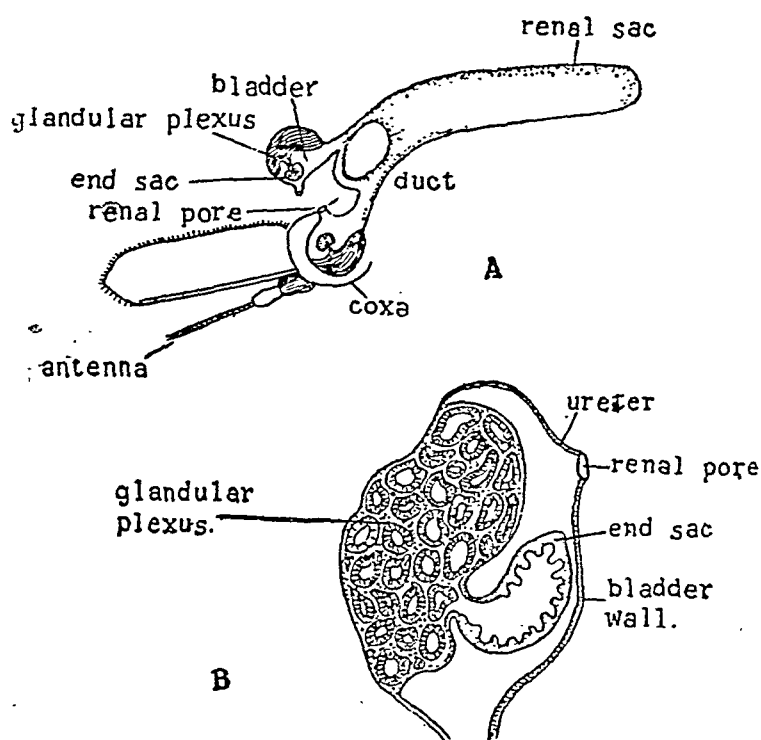
चित्र 308. A–उत्सर्गी अंग। B–ऐंटेनीय ग्रन्थि का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S)। Atenna, ऐंटेना; coxa, कॉक्सा; duct, वाहिनी; renal pore, वृक्क छिद्र; end sac, अन्त-कोश; glandular plexus, ग्रन्थि-जालक; bladder, आशय; renal sac, वृक्क-कोश; ureter, मूत्रवाहिनी; bladder wall, आशयिक भित्ति।

देती है। निर्मोचन का सम्पन्न होना हाइपोडर्मिस से बनने वाले एक हारमोन के द्वारा होता है। गिलों के अक्षों और टाँगों के आधारों पर कुछ कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **वृक्काणु** (nephrocytes) भीतर संचित करते रहते हैं।

तंत्रिका-तंत्र—एक द्विपालिक अधिग्रसनी गैंग्लियान अथवा मस्तिष्क ग्रसिका के ऊपर पड़ा होता है। वह तीन जोड़ी गैंग्लियानों का बना होता है। मस्तिष्क दो स्रोतों
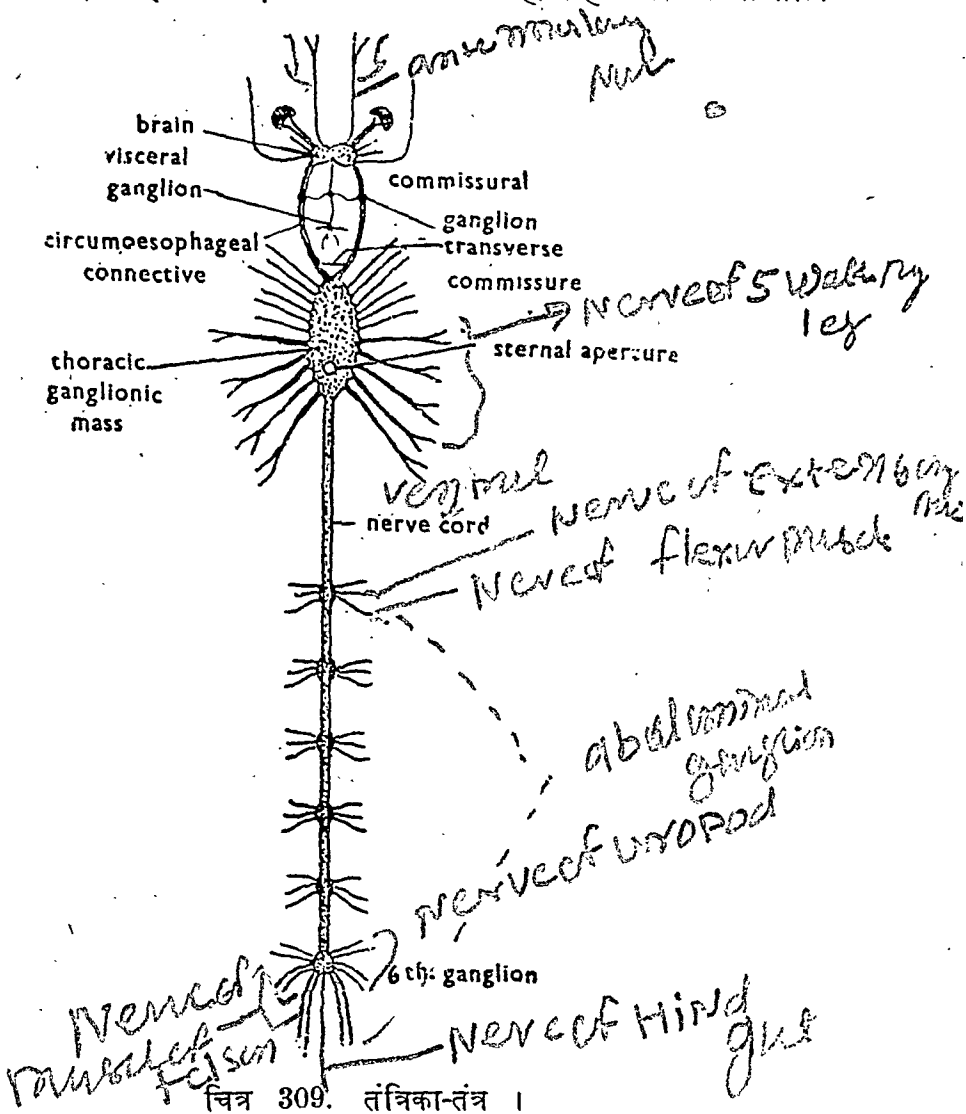
चित्र 309. तंत्रिका-तंत्र।

Brain, मस्तिष्क; visceral ganglion, आंतरांग गैंग्लियान; circum-oesophageal connective, परिग्रसिका संयोजी; thoracic ganglionic mass, वक्ष गैंग्लियानी संहति; commissural ganglion, समयोजी गैंग्लियान; transverse commissure, अनुप्रस्थ समयोजी; sternal aperture, स्टर्नम-छिद्र; nerve cord, तंत्रिका रज्जु; 6th ganglion, 6ठा गैंग्लियाँन।

से बना होता है, एक **प्राक्मस्तिष्क** (protocerebrum) जिसमें आँखों, खंडपूर्व क्षेत्र तथा ऐंटेन्यूलों के गैंग्लिया होते हैं, दूसरा **पश्चमस्तिष्क** (metacerebrum) जिसमें ऐंटेनाओं के गैंग्लिया होते हैं। मस्तिष्क से दो परिग्रसिका-संयोजी निकलते हैं जिनमें से

प्रत्येक में एक-एक **समयोजी गैंग्लियान** (commissural ganglion) होता है। दोनों संयोजी ग्रसिका के पीछे पहुँचकर जुड़ जाते और एक अंडाकार **वक्ष गैंग्लियानी संहति** (thoracic ganglionic mass) से मिल जाते हैं, यह संहति 11 जोड़ी गैंग्लियॉनों के समेकन से बनती है जो कि मैंडिबलों, मैक्सिल्यूलाओं, मैक्सिलाओं, तीन जोड़ी मैक्सिलिपीडों और पाँच जोड़ी चर टाँगों के गैंग्लिया होते हैं। वक्ष गैंग्लियानी संहति से एक अधर तंत्रिका-रज्जु निकलती है, यह रज्जु दो तंत्रिका-रज्जुओं के सम्पूर्ण समेकन से बनती है, यह छठे उदर खंड तक चलती जाती है और इन छह खंडों में हर एक में एक दोहरा गैंग्लियॉन होता है, छठा गैंग्लियॉन अन्य गैंग्लिया से अधिक बड़ा होता है। ऐनेलिडों की तरह इसमें भी केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में **महातंतु** (giant fibres) होते हैं। एक जोड़ी पृष्ठ-मध्य महातंतु मस्तिष्क में से निकलते हैं, और एक जोड़ी पृष्ठ-पार्श्व महातंतुओं की होती है। पृष्ठ-मध्य तंतुओं के लिए आवेग मस्तिष्क में पैदा होते हैं लेकिन पृष्ठ-पार्श्व तंतुओं के लिए आवेग किसी भी गैंग्लियान में पैदा हो सकते हैं।

मस्तिष्क में से तीन जोड़ी मोटी तंत्रिकाएँ निकलती हैं, ये आँखों, ऐंटेन्यूलों और ऐंटेनाओं को जाती हैं। मस्तिष्क ही से दो जोड़ी पतली कोशिकाएँ निकलती हैं जो नेत्र-पेशियों तथा लेब्रम को जाती हैं। दो परिग्रसिका संयोजियों को जोड़ता हुआ एक पतला **अनुप्रस्थ समयोजी** (transverse commissure) पाया जाता है। वक्ष-गैंग्लियानी संहति से 11 जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं, पहली छह जोड़ी पतली और उससे पिछली पाँच जोड़ी मोटी होती हैं। ये तंत्रिकाएँ इन अंगों को जाती हैं—मैंडिबलों, मैक्सिल्यूलाओं, मैक्सिलाओं, तीन मैक्सिलिपीडों, तथा पाँच चर टाँगों को। पहले पाँच उदर गैंग्लिया में से प्रत्येक गैंग्लियान में से तीन जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं, ये तरणपादों, और उसी खंड की प्रसारिणी एवं आकोचनी पेशियों में जाती हैं। छठे उदर गैंग्लियान में से दो जोड़ी तंत्रिकाएँ तरणपादों में जाने वाली निकलती हैं, दो जोड़ी पुच्छपादों में, दो जोड़ी टेलसॉन में और एक जोड़ी अकेली मध्य तंत्रिका पश्चांत्र में जाती है।

एक **आंतरांग तंत्रिका-तंत्र** (visceral nervous system) होता है जिसमें ग्रसिका के ऊपर दो आंतरांग गैंग्लिया होते हैं, इनमें से निकली हुई तंत्रिकाएँ मस्तिष्क, समयोजी गैंग्लिया तथा आगम जठर में जाती हैं।

आर्थ्रोपोडा के तंत्रिका-तंत्र में ऐनेलिडा के तंत्रिका-तंत्र से अधिक उन्नत दशा प्रकट होती है। तंत्रिका-तंत्र के कुछ विशिष्ट भागों का सम्बन्ध उपांगों से होता है ताकि उनकी गतियाँ समन्वित हो सकें, ये भाग स्वायत्त क्रियात्मक इकाइयाँ होती है, ये स्व-नियन्त्रक होते हैं और केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र पर निर्भर नहीं होते, अर्थात् यदि सिर काट भी दिया जाय तो फिर भी प्राणी चल सकता है लेकिन उसकी गतियाँ समन्वित नहीं होतीं क्योंकि मस्तिष्क का संदमन प्रभाव नहीं मिल पाता।

संवेदी अंग—1. **स्पर्श शूक** (tactile setae) ऐंटेनाओं के स्पर्शकों पर तथा अन्य उपांगों के ऊपर काफी संख्या में पाये जाते हैं। स्पर्श शूक में एक आधारीय खंड

और एक दूरस्थ खंड होते हैं, इस दूरस्थ खंड के ऊपर पिच्छाकार पिच्छक (plumose barbs) होते हैं, स्पर्श-शूक के भीतर एक तंत्रिका जाती है। स्पर्श-शूक जलधारा और अधःस्तर के लिए संवेदी होते हैं, ये केवल हिलते-डुलते हुए ही उत्तेजित होते हैं, छूने से नहीं। 2. **घ्राण शूक** (olfactory setae)—हर ऐंटेन्यूल के दो स्पर्शकों के बीच में स्थित होते हैं, इसमें दो खंड होते हैं, निचला खंड लंबा और एक खोखली खाँच वाला होता है; खाँच में हर पार्श्व में और भी महीन शूकों की एक-एक पंक्ति होती है, हर घ्राण शूक में ऐंटेन्यूली तंत्रिका से एक शाखा आती है। इसका कार्य गन्ध ग्रहण करना होता है। 3. **स्टैटोसिस्ट** (statocysts)—हर ऐंटेन्यूल के पूर्व-कॉक्सा के भीतर एक-एक स्टैटोसिस्ट पाया जाता है, यह एक गोल क्यूटिकलीय थैला होता है जिसका आकार लगभग 1mm. होता है। स्टैटोसिस्ट में संवेदी पिच्छाकार शूकों का एक वलय बना होता है जिसके भीतर स्टैटोलिथ (संतुलनाश्म) होते हैं जिन्हें स्वयं झींगा वहाँ पहुँचाता है। स्टैटोसिस्ट संतुलन-सम्बन्धी संवेद का अंग है। निर्मोचन के समय स्टैटोसिस्ट का अस्तर और उसके स्टैटोलिथ उतार कर फेंक दिये जाते
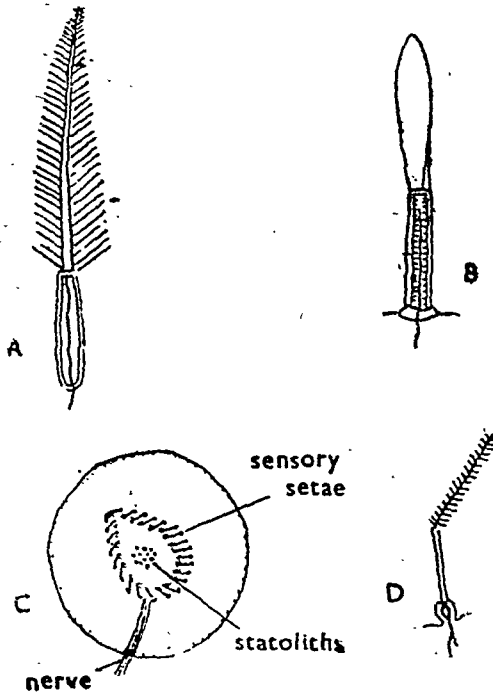
चित्र 310. **ग्राही अंग** A—स्पर्श-शूक; B—घ्राण-शूक; C—स्टैटोसिस्ट; D—स्टैटोसिस्ट का शूक

Sensory seta, संवेदी शूक; statolith, स्टैटोलिथ; nerve, तंत्रिका।

और दोबारा प्राप्त कर लिये जाते हैं। 4. **प्रग्राही** (proprioceptors) वक्ष तथा उदर खंडों के उपांगों और पेशियों में पाए जाते हैं, पेशियों के हर ग्राही में एक रूपांतरित पेशी-कोशिका होती है जिसमें तंत्रिकाएँ पहुँची होती हैं। ये देह के भीतर के

विभिन्न अंगों की स्थिति एवं उनकी गतियों का ज्ञान कराते हैं। 5. **आंखें** (eyes)—दो जोड़ी संयुक्त नेत्र होते हैं, हर नेत्र एक दो जोड़े वाले वृंत पर बने होते हैं। यह वृंत एक अधूरे अक्षि-कोटर में पड़ा होता है। हर आँख बहुत बड़ी संख्या में संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाइयों की बनी होती है जो अरीय रूप में व्यवस्थित होती है, इन इकाइयों को **नेत्रांशक** (ommatidia) कहते हैं। आँख के ऊपर एक पारदर्शी क्यूटिकल होता है जो **कॉर्निया** (cornea) बन जाता है, यह कॉर्निया वर्गाकार फलकों (facets) का बना होता है, और हर फलक एक नेत्रांशक को ऊपर से ढके होता है। नेत्रांशक एक दृक्-तंत्रिका के तंतुओं के साथ जुड़े होते हैं। इस प्रकार के संयुक्त नेत्र (compound eyes) क्रस्टेशियनों तथा कीटों में पाये जाते हैं। संयुक्त-नेत्र उत्तल होता है जिसमें कि सम्पूर्ण कॉर्निया-सतह बढ़ जाती है और उसके कारण दृष्टि-क्षेत्र बढ़ जाता है। संयुक्त नेत्र का एक और लाभ गति को देख सकने की क्षमता प्राप्त करना है। वस्तु की मामूली-सी गति उसी प्रकार से नेत्रांशकों में भी चलती जाती है जो उत्तेजित होते रहते हैं, और गतिमान वस्तु से आने वाला एक-बिंदु प्रकाश एक ही समय में अनेक नेत्रांशकों को उत्तेजित करता है। संयुक्त नेत्र की संरचना और उसके कार्य करने के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी कॉकरोच के विवरण में प्रस्तुत की जायेगी (चित्र 384 तथा 385)।

चित्र 311. संयुक्त नेत्र का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L. S.)। Ommatidia, नेत्रांशक; transparent cuticle, पारदर्शक क्यूटिकल; cornea, कॉर्निया; nerve fibres, तंत्रिका तंतु; muscles, पेशियाँ; optic nerve, दृक्-तंत्रिका।

साइनस-ग्रन्थि (sinus gland)—प्रत्येक नेत्र-वृंत में एक साइनस-ग्रंथि होती है, इससे अनेक हार्मोन निकलते हैं, जिनमें से एक हार्मोन का प्रभाव निर्मोचन का संदमन करना होता है; एक अन्य हार्मोन वर्णकधरों में तथा संयुक्त नेत्रों के वर्णक-आवरणों में वर्णक को फैलाने का नियंत्रण करता है।

जनन-तंत्र—पेलीमॉन पृथक्लिंगी होता है, जैसा कि कुछ ही अपवादों को छोड़कर सभी आर्थ्रोपोडा में होता है। नर आकार में बड़ा होता है और उसकी दूसरी जोड़ी कीलायुक्त टाँगें मादा की अपेक्षा ज्यादा बड़ी होती हैं। **नर-अंग**—एक जोड़ी वृषण हृदय के नीचे तथा यकृताग्न्याशय के ऊपर पड़े होते हैं, दोनों वृषण अग्रत: जुड़े होते हैं, ये अनेक खंडकों (lobules) के बने होते हैं। हर वृषण में से एक संवलित शुक्रवाहिका निकलती है जो पीछे को चलती जाती और अंतिम भाग में फूल

कर एक शुक्राशय वना लेती है जिसमें शुक्राणुधर नामक शुक्राणु-वंडल संचित हो जाते हैं। शुक्रवाहिका एक जनन-छिद्र द्वारा वाहर को खुलती है, यह जनन-छिद्र पाँचवीं चर टाँग की संधि-कला पर स्थित रहता है। दूसरे जोड़ी के हर तरणपाद में उसके
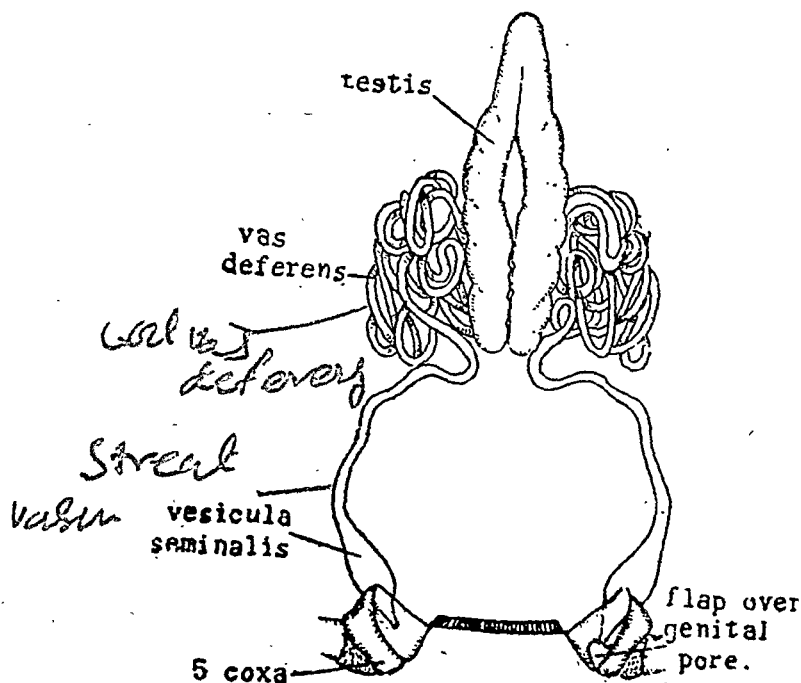
चित्र 312. नर के जनन-अंग।

Testis, वृषण; vas deferens, शुक्रवाहिका; vesicula seminalis, शुक्राशय; coxa, कॉक्सा; flap over genital pore, जनन-छिद्र के ऊपर पल्ला।

अंत:पादांश में एक पुंविवर्ध होता है जो शुक्राणुधरों को मादा में पहुँचाता है। **मादा-अंग**—एक जोड़ी अंडाशय होते हैं जो हृदय के नीचे और यकृताग्न्याशय के ऊपर स्थित होते हैं। दोनों अंडाशयों के सिरे एक दूसरे से जुड़े होते हैं। हर अंडाशय से एक अंडवाहिनी निकलती है जिसमें उसके आरम्भ में ही एक चौड़ी कीप होती है। अंडवाहिनी नीचे को चलती जाती है और तीसरी चर टाँग के कॉक्सा पर बने हुए एक जनन-छिद्र के द्वारा वाहर को खुलती है।

गोनड खोखले होते हैं और उनके भीतर सीलोम के अवशेष बंद रहते हैं। ये गोनड अपनी वाहिनियों में जारी रहते हैं क्योंकि सीलोम का ह्रास हो चुका है। शुक्रवाहिका और अंडवाहिनी सीलोम-वाहिनियाँ होती हैं।

मादा की त्वचीय ग्रन्थियों से स्रावित एक चिपचिपे पदार्थ के द्वारा अंडे तरणपादों में चिपक जाते हैं। दोनों पार्श्वों के अंत:विवर्ध एक-दूसरे में फँस जाते हैं और उन्हीं पर अंडों को चिपकाये हुए मादा घूमती फिरती रहती है। अंडे बड़े आकार के होते हैं और उनमें एक केन्द्रीय भाग में एकत्रित हुआ वहुत मात्रा में पीतक होता है।

पीतक के चारों ओर परिधीय प्रोटोप्लाज्म होता है, इस प्रकार के अंडों को **केन्द्र-पीतकी** (centrolecithal) कहते हैं। मैथुन के समय नर मादा को उसके पीठ के वल नीचे गिरा लेता और उसकी अधर सतह पर शुक्राणुधर छोड़ देता है जहाँ निषेचन सम्पन्न होता है।
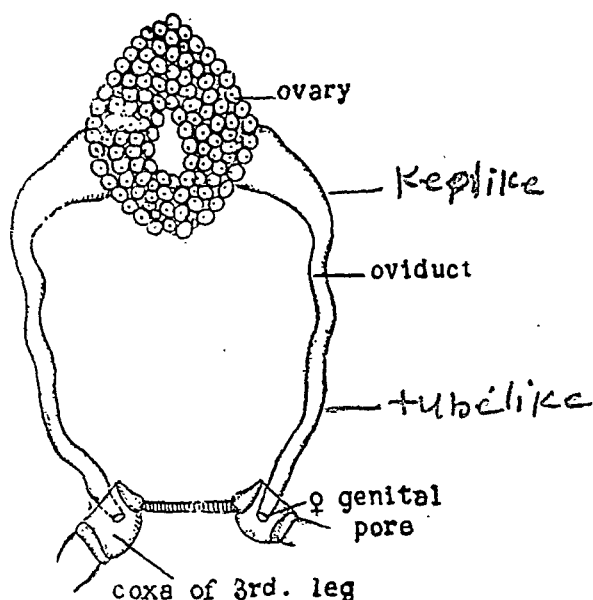
चित्र 313. मादा के जनन-अंग।
Ovary अंडाशय; oviduct, अंडवाहिनी; genital pore, जनन-छिद्र; coxa of 3rd leg, तीसरी टाँग का कॉक्सा ।

ऐस्टेकस का परिवर्धन

पेलीमॉन का परिवर्धन **ऐस्टेकस** (क्रे फ़िश) के परिवर्धन के समान होता है। अण्डा बड़ा होता है, पीतक की बड़ी मात्रा केन्द्र में होती है जिसके चारों तरफ परिधीय प्रोटोप्लाज्म होता है, अतः यह अण्डा **केन्द्रपीतकी** होता है, इसमें चारों ओर से घेरती हुई एक अण्ड-झिल्ली होती है, केंन्द्रक पीतक के वीच में पड़ा होता है और थोड़ा-सा साइटोप्लाज्म इस केन्द्रक के चारों ओर भी होता है। युग्मनज का खण्डीभवन **अंश भंजी** (meroblastic) होता है क्योंकि केवल परिधीय साइटोप्लाज्म में ही विभाजन होता है। युग्मनज का केन्द्रक विभाजित होता है लेकिन साइटोप्लाज्म में विभाजन नहीं होता जिससे कि एक ऐसा अविदलित अण्डा बन जाता है जिसमें केन्द्र में बड़ी संख्या में सिसिशियमी केन्द्रक होते हैं, धीरे-धीरे ये केन्द्रक वहाँ से चलकर परिधीय भाग में आते हैं जहाँ हर केन्द्र के चारों ओर थोड़ा-सा साइटोप्लाज्म घिर जाता है और कोशिका-झिल्लियाँ वन जाती हैं लेकिन वे पीतक में को वढ़ नहीं जातीं। इस प्रकार एक मौरुला वन जाता है जो वहुकेन्द्रकी होता है। कोशिकाओं की परिधीय परत को **ब्लास्टोडर्म** कहते हैं और वह पीतक को घेरे रहती है। पीतक में खण्ड वन

जाते हैं और इस प्रकार अरीय पीतक-पिरैमिड बन जाते हैं, लेकिन शीघ्र ही ये पिरामिड समेकित होकर एक पीतक-संहति बनाते हैं। इस प्रकार एक ठोस ब्लास्टुला बन जाता है, जिसकी ब्लास्टोसील में पीतक भरा होता है। भावी एक्टोडर्म, एण्डोडर्म और

5.L.S. of gastrula. 6.Nauplius stage
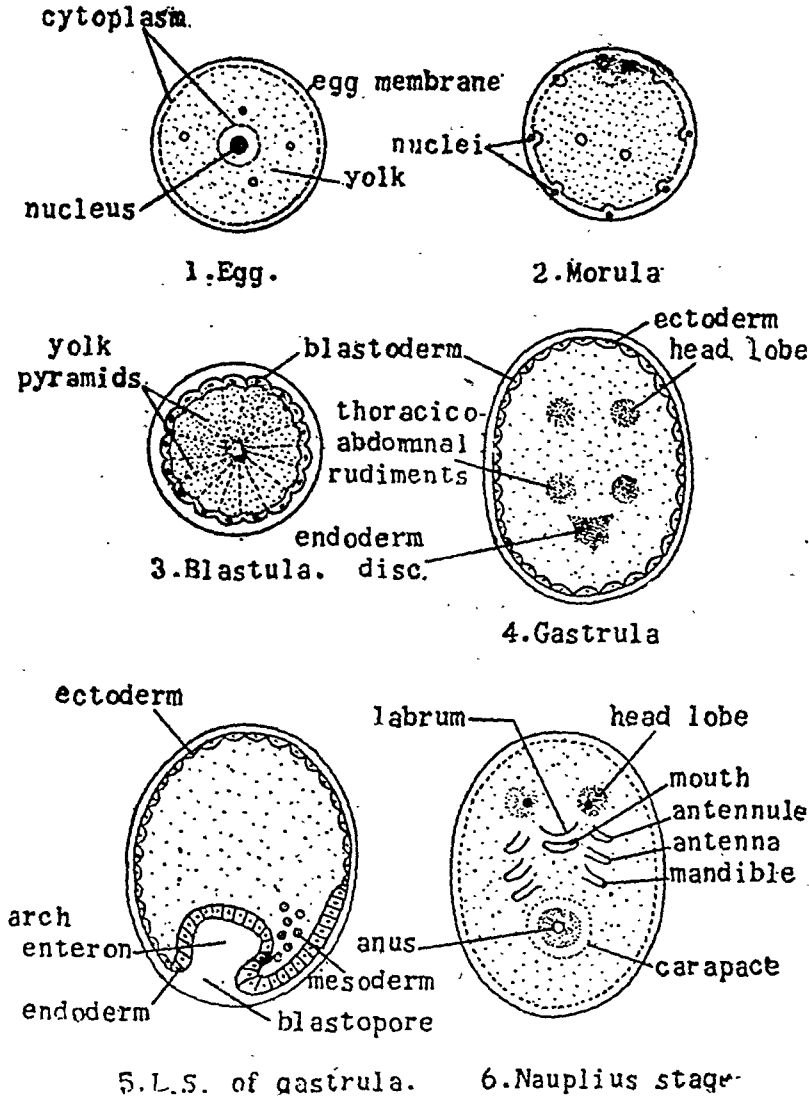
चित्र 314. क्रेफिश का परिवर्धन। 1—अण्डा, 2—मौरुला, 3—ब्लास्टुला, 4—गैस्ट्रुला, 5—गैस्ट्रुला का अनुप्रस्थ सेक्शन, 6—नौप्लियस अवस्था। Nucleus, केन्द्रक; cytoplasm, साइटोप्लाज्म; egg-membrane, अंडा-झिल्ली; yolk, पीतक; yolk pyramids, पीतक-पिरैमिड; blastoderm ब्लास्टोडर्म; ectoderm, एक्टोडर्म; head lobe, शीर्ष पालि; endoderm, disc, एण्डोडर्म डिस्क; archenteron, आद्यांत्र; mesoderm, मीज़ोडर्म; anus, गुदा; labrum, लेब्रम; mouth, मुख, antennule, ऐन्टेन्यूल; antenna, ऐंटेना; mandible, मैंडिबल; carapace, कैरापेस।

मीज़ोडर्म को ब्लास्टोडर्म में पहचाना जा सकता है। ब्लास्टोडर्म-कोशिकाएँ एक दिशा में बड़ी हो जातीं और स्तम्भाकार बन जाती हैं, इनसे एक **अधर प्लेट** (ventral plate) बनती है। अधर प्लेट में पाँच स्थूलन बन जाते हैं जो इस प्रकार होते हैं—
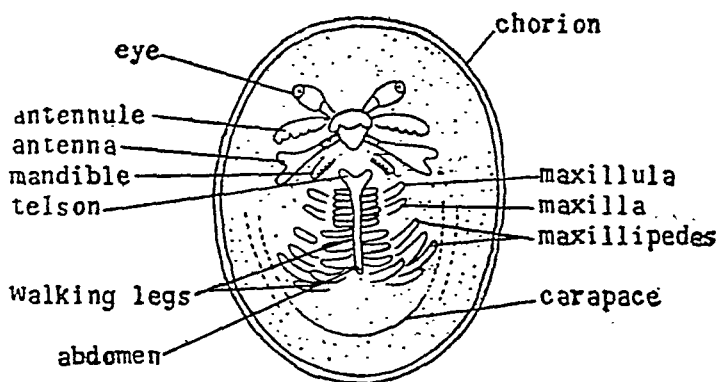
7. Embryo before hatching
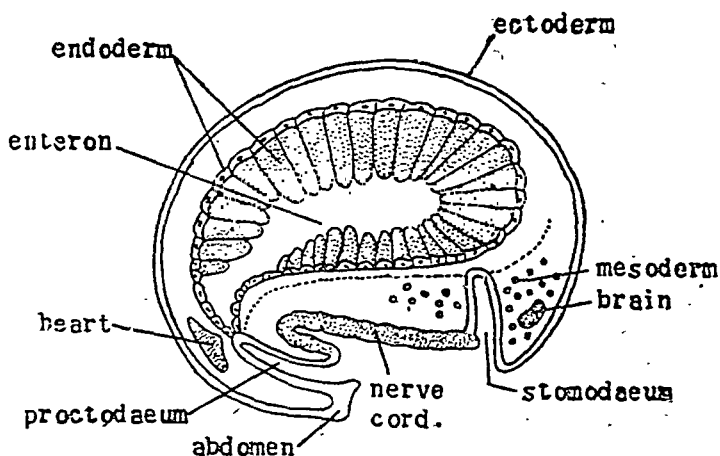
8. L.V.S. of embryo before hatching.

चित्र 31़5. क्रेफिश का परिवर्धन (जारी) 7—स्फोटन के पहले भ्रूण, 8—स्फोटन के पहले भ्रूण का अनुदैर्घ्य उदग्र सेक्शन (L.V.S.)।
Eye, आँख; antennule, ऐंटेन्यूल; antenna, ऐंटेना; mandible, मैंडिबल; telson, टेल्सॉन; walking leg, चर टाँग; abdomen, उदर; chorion, कोरियॉन; maxillula, मैक्सिल्यूला; maxilla, मैक्सिला; maxillipedes, मैक्सिलिपीड; carapace, कैरापेस; ectoderm, एक्टोडर्म, endoderm, एण्डोडर्म; mesoderm, मीज़ोडर्म; brain, मस्तिष्क; stomodaeum, स्टोमोडियम; nerve cord, तन्त्रिका-रज्जु; proctodaeum, प्रौक्टोडियम; heart, हृदय।

दो स्थूलन **शीर्ष पालि** होते हैं जिनसे आँखें और मस्तिष्क बनता है, दो **वक्ष-उदर** मूलाँग होते और एक **एण्डोडर्म डिस्क** होती है।

ब्लास्टोडर्म कोशिकाएँ एण्डोडर्म डिस्क पर भीतर की ओर दब जाती अथवा अन्तर्वलित हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप **आद्यांत्र** गुहा बन जाती है जिसमें एक बाहरी छिद्र अथवा ब्लास्टोपोर होता है, इस प्रकार एक **गैस्ट्रुला** बन जाता है। गैस्ट्रुला का ब्लास्टोडर्म उसका **एक्टोडर्म** होता है, और जो कोशिकाएँ आद्यांत्र का अस्तर बनाती हैं वे **एण्डोडर्म** हैं, एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के बीच की गुहा पीतक से भरी रहती है। ब्लास्टोपोर के समीप एण्डोडर्म में से कुछ कोशिकाएँ मुकुलित होकर भीतर को चलती जाती हैं जो एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के बीच का स्थान लेकर **मीज़ोडर्म** बनाती हैं। ब्लास्टोपोर बन्द होकर आद्यांत्र को पृथक् रूप दे देता है।

वक्षोदर मूलांग समेकित हो जाते हैं और उनके आगे तीन जोड़ी एक्टोडर्मी उभार बन जाते हैं जिनमें को मीज़ोडर्म बढ़कर पहुँच जाती और इस तरह ऐंटेन्यूलों, ऐंटेनाओं तथा मैंडिबलों के मूलांग बन जाते हैं। इस भ्रूण को अब "नौप्लियस अवस्था" कहते हैं जो अभी भी अण्डे के भीतर रहती है।

एक्टोडर्म में अवनमन पैदा हो जाते हैं जिनसे स्टोमोडियम तथा प्रौक्टोडियम बनते हैं जिनके छिद्र क्रमशः मुख और गुदा होते हैं। कुछ समय बाद स्टोमोडियम तथा प्रौक्टोडियम आद्यांत्र में को खुल जाते हैं और इस तरह आहार-नाल बन जाती है। आहार-नाल की एंडोडर्म कोशिकाएँ पीतक को खाती हुई अरीय रूप में तब तक बाहर को बढ़ती जाती हैं जब तक कि वे एक्टोडर्म को छूती हुई लम्बे-लम्बे स्तम्भों के रूप में नहीं बन जातीं। वक्षोदर मूलांग का एक द्विभुज प्रवर्ध बन जाता है जो आगे मुड़कर अण्डे के नीचे की ओर आ जाता है। नेत्र-वृन्त तथा एक लेब्रम बन जाते हैं, वक्ष प्रदेश के ऊपर एक कैरापेस प्रकट हो जाता है। युग्मित मैक्सिल्यूली, मैक्सिला, तीन जोड़ी मैक्सिलिपीड, तथा पाँच जोड़ी चर टाँगें बन जाती हैं। शिरोवक्ष क्षेत्र बड़ा और गोल हो जाता है लेकिन उदर छोटा और शिरोवक्ष के नीचे को मुड़ जाता है, उदर उपांगों के मूलांग तथा एक टेल्सॉन प्रकट हो जाते हैं। अण्डे में से भ्रूण बाहर आ जाता है और अपनी पहली जोड़ी चर टाँगों के द्वारा और साथ ही टेल्सॉन के सहारे स्रावित अनेक धागों के द्वारा अपनी माँ के शरीर से चिपका रहता है। भ्रूण के स्फोटन तक का समय लगभग छह सप्ताह तक का होता है।

भ्रूण स्तरों से अंग बनने शुरू हो जाते हैं। एक्टोडर्म से ये अंग बनते हैं—एपिडर्मिस, गिलों का आवरण, तन्त्रिका-तन्त्र, आँखों और स्टैटोसिस्टों के संवेदी भाग और स्टोमोडियम तथा प्रौक्टोडियम के अस्तर। एण्डोडर्म से बनते हैं—मध्यांत्र का एपिथीलियम तथा यकृताग्न्याशय। मीज़ोडर्म से बनने वाले भाग हैं पेशियाँ, योजी ऊतक, वाही तन्त्र, गोनड और उत्सर्गी अंगों के अंश। इस सारे समय पीतक लगातार प्रयुक्त होता जाता है। एक बार के निर्मोचन से भ्रूण अपनी माता से मुक्त होकर स्वतन्त्र हो जाता है। उसके बाद क्रमिक निर्मोचनों के द्वारा यह वयस्क आकृति एवं साइज़ प्राप्त कर लेता है। निर्मोचन का नियन्त्रण एक हार्मोन से होता है जो

हर नेत्र-वृन्त में स्थित एक **साइनस-ग्रन्थि** (sinus gland) से निकलता है, इस हार्मोन का निर्मोचन पर संदमनी प्रभाव होता है।

क्रेफिश का जीवन-वृत्त क्लास-क्रस्टेशिया का या यहाँ तक कि ऑर्डर डेकापोडा का भी कोई प्ररूपी जीवन-वृत्त नहीं है। अधिकतर क्रस्टेशिया में अण्डे से स्फोटित होने वाला लार्वा वयस्क से पूर्णतः असमान होता है, लार्वीय परिवर्तनों में एक निर्मोचन-क्रम शामिल है जिससे वयस्क अवस्था पहुँचने से पहले विभिन्न लार्वा रूपों का एक सिलसिला चलता जाता है। क्रेफ़िश एक अलवणजलीय प्राणी है, इसके अण्डे में पीतक की वहुत मात्रा होती है जिससे कि परिवर्धन छोटा हो गया होता और लार्वा रूप समाप्त हो जाते हैं। यह कदाचित् नदियों के जीवन के प्रति एक अनुकूलन है।

पुनरुद्भवन (Regeneration)—क्रस्टेशिया में, और खास तौर से उनकी शिशु-अवस्थाओं में निर्मोचन के दौरान खाए जाने वाले भागों का अंशतः पुनरुद्भवन हो जाने की क्षमता पाई जाती है, और अनेक निर्मोचनों के वाद ये हानिग्रस्त भाग पूरी तरह दोवारा वन चुकते हैं। कभी-कभी खोए हुए भाग के स्थान पर कोई फर्क उपांग वन जाता है जैसे किसी दोषपूर्ण आँख को अलग कर देने से उसके स्थान पर एक ऐंटेना वन जा सकता है, इस प्रकार के पुनरुद्भवन को जिसमें खोये भाग की जगह कोई अन्य नया भाग वन जाता है, **विषमरूपण** (heteromorphosis) कहते हैं।

स्वविच्छेदन (Autotomy)—डेकापोडा में कोई आघात पहुँची हुई टाँग या कीला एक निश्चित 'वियोजन विन्दु' पर पेशियों की प्रतिवर्त क्रिया (reflex action) के द्वारा टूटकर अलग हो जाते हैं, यह 'वियोजन विन्दु' वेसिस और इस्किंयम के वीच के स्थान पर होता है। भीतर एक दोहरी झिल्ली होती है जिसमें से एक तन्त्रिका और रक्त-वाहिकाएँ गुजरती हैं, वियोजन का समतल इन्हीं दोनों झिल्लियों के वीच में से गुज़रता है। टाँग के टूटने पर ठुंठ के ऊपर एक झिल्ली वन जाती है जो रक्त को वाहर नहीं वह जाने देती। ठुंठ से एक नई टाँग निकल आती है, नई टाँग में जो पेशियाँ वनती हैं वे कदाचित् एक्टोडर्म से वनती हैं। एक निश्चित विन्दु पर होने वाली इस टूटने की क्रिया को स्वविच्छेदन कहते हैं, इसका एक लाभ यह है कि रक्त की अत्यधिक हानि नहीं हो पाती क्योंकि यदि उपांग उसी निश्चित वियोजन बिन्दु के ऊपर से टूटता है तो घाव शीघ्र ही वन्द हो जाता है।

क्लास ऐरेक्निडा
(Class Arachnida)

ऐरेक्निडा स्थलीय तथा जलीय आर्थ्रोपोडा होते हैं. किन्तु उनमें से अधिकतर स्थलीय होते हैं, और जो कुछ थोड़े से जलीय हैं तो उन्होंने यह आवास परवर्ती रूप में ही अपनाया है। फिर भी उनका मूल वातावरण जलीय था क्योंकि उनके पूर्वज यूरिप्टेराइडा (Eurypterida) थे जो कि महाकाय विलुप्त जल-विच्छू थे। यूरिप्टेरिड केम्ब्रियन से लेकर परमियन तक थे और मूलतः समुद्री थे लेकिन वाद में वे अलवणजल और थल पर भी पहुँच गये, यही स्थलीय प्राणी आजकल के ऐरेक्निडा के पूर्वज थे। ऐरेक्निडा सिलूरियन कल्प में प्रकट हुए और कार्वोनिफेरस में सभी

आर्डरों के फ़ासिल प्रतिनिधि मिलते हैं। ऐरेक्निडा शेष आर्थ्रोपोडा से भिन्न एक अलग-थलग शाखा के रूप में हैं, फिर भी खण्डों एवं उपांगों की व्यवस्था में ये क्रस्टेशिया के समान हैं, लेकिन इनमें मैंडिबल नहीं होते और इन्हें **कीलीसेरेट** (chelicerate) कहा जाता है जो कि क्रस्टेशियनों, कीटों और मिरियापोडा के विपरीत अवस्था है, इन शेष वर्गों में मैंडिबल होते हैं और इन्हें कुल मिलाकर **मैंडिबुलेटा** (mandibulata) कहा जाता है। शरीर पर एक पूर्णतः काइटिनीकृत बाह्यकंकाल होता है। देह के अगले भाग को **प्रोसोमा** (prosoma) कहते हैं जो शीर्ष और वक्ष के भागों में विभाजित नहीं होता। प्रोसोमा में छः खण्ड होते हैं जिनमें से प्रत्येक के एक जोड़ी उपांग होते हैं, पहला खण्ड मुखपूर्वी होता है जिसमें विचित्र कीलिसेरी पाये जाते हैं, ये उपांग परिग्राही होते हैं और सामान्यतः तीन संधियों के बने होते हैं, दूसरा खण्ड मुख-पश्चीय होता है और उसके ऊपर पेडिपैल्प (pedipalp) बने होते हैं जो संवेदी अथवा परिग्राही होते हैं, उससे अगले चार खण्डों में से हर एक में एक-एक जोड़ी चर टाँगों की होती है। ऐन्टेना नहीं होते। देह का दूसरा भाग **ओपिस्थोसोमा** (opisthosoma) होता है जिसमें आदिम प्ररूपों में 13 खण्ड एवं 1 टेल्सॉन होता है, लेकिन उच्चतर उदाहरणों में खण्डों की संख्या कम होती जाती है। दूसरे खण्ड में एक जनन-छिद्र होता है। वास्तविक जबड़े नहीं होते, आहार-नाल चूषणी होती है। श्वसन अंग प्रायः ओपिस्थोसोमा के अग्र भाग में पाए जाते हैं, श्वसन अंग इनमें से कोई से हो सकते हैं—गिल-पुस्तकें (gill books), फेफड़ा-पुस्तकें (lung-books) अथवा वातिकाएँ (tracheae)। अधिकतर उदाहरणों में परिवर्धन सीधा होता है, कोई लार्वा अवस्था नहीं होती। ऐरेक्निडा अनेक वातावरणों के लिये अनुकूलित हैं, इनमें ये सब सुपरिचित प्राणी आते हैं—विच्छू, मकड़ियाँ, चिचड़ियाँ (ticks) और कुटकियाँ (mites)।

2. पैलैम्नियस (*Palamneus*)

(बिच्छू)

विच्छू प्राचीनतम स्थलीय आर्थ्रोपोड हैं, इनके फ़ॉसिल सिलूरियन कल्प में पाये गये हैं। आज बिच्छुओं का वितरण उष्णकटिबन्धीय तथा उपोष्णकटिबन्धीय प्रदेशों तक सीमित है, ये छिपे-छिपे रहते हैं और रात्रिचर होते हैं, दिन के समय पत्थरों और लकड़ी आदि के नीचे अथवा ज़मीन के भीतर छिपे रहते हैं। **पैलैम्नियस** एक भारतीय विच्छू है जो समस्त भारत से लेकर फ़िलीपीन तक फैला है, इसकी अनेक स्पीशीज़ पाई जाती हैं जिनमें से **पै० बेंगालेंसिस** (*P. bengalensis*) उत्तर भारत में आम पायी जाती है। दिन के वक्त यह ज़मीन के भीतर बने सूराखों आदि में छिपा रहता है और रात को अपना शिकार पकड़ने के लिये बाहर निकल आता है। एक साथ पूरे-पूरे परिवार रहते पाये गये हैं। यह लगभग 14 cm. लम्बा और हरापन लिये हुए गहरे काले रंग का होता है। शरीर लम्बा और संकीर्ण होता है, इसमें एक छोटा **प्रोसोमा** अथवा शिरोवक्ष होता है जिसके पीछे एक लम्बा **ओपिस्थोसोमा** अथवा उदर होता है। ओपिस्थोसोमा में दो भाग होते हैं, एक चौड़ा

मीज़ोसोमा (mesosoma) और एक संकीर्ण **मेटासोमा** (metasoma) अथवा पूंछ होती है जो कि जीवित जन्तु में ऊपर को उठी रहती है, मेटासोमा के अन्त में एक **टेल्सॉन** (telson) होता है। मादा में मीज़ोसोमा अधिक चौड़ा और अधिक लम्बा होता है। प्रोसोमा तथा ओपिस्थोसोमा में जो देह-खण्ड शामिल होते हैं वे क्रस्टेशियनों के शिरोवक्ष तथा उदर के देह-खण्डों से पूर्णतः भिन्न होते हैं।
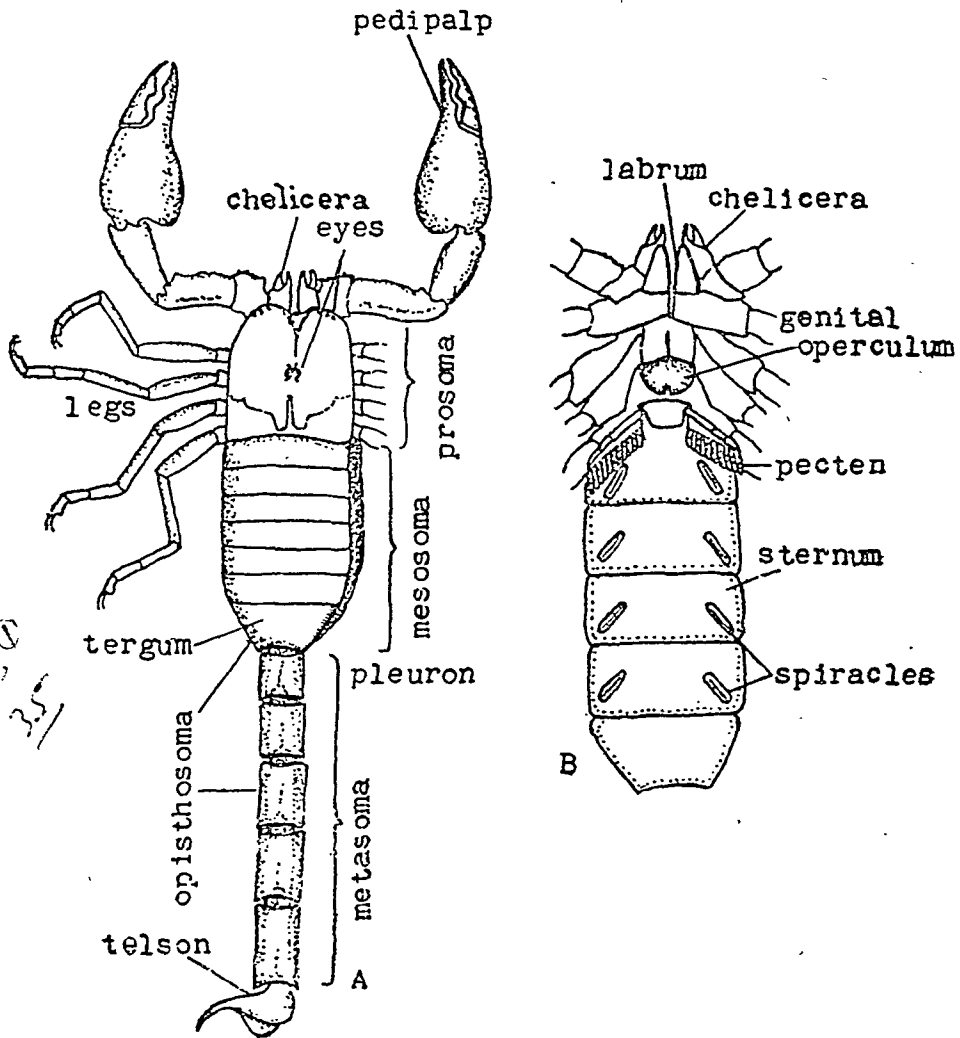
चित्र 316. **पैलैम्नियस बेंगालेंसिस**। A—पृष्ठ दृश्य; B—प्रोसोमा तथा मीज़ोसोमा का अधर दृश्य।

Pedipalp, पेडिपैल्प; chelicera, कीलिसेरा; eyes, आँखें; legs, टाँगें; prosoma, प्रोसोमा; mesosoma, मीज़ोसोमा; tergum, टर्गम; pluron, प्ल्यूरॉन; opisthosoma, ओपिस्थोसोमा; metasoma, मेटासोमा; telson, टेल्सॉन; labrum, लेब्रम; genital operculum, जनन आपर्कुलम; pecten, कंकतिका; sternum, स्टर्नम; spiracles, श्वास-रन्ध्र।

देह-खण्ड—प्रोसोमा में खण्ड दृष्टिगोचर नहीं होते; लेकिन यह भाग पूर्व खण्डीय प्रदेश और सात भ्रूण-खण्डों के समेकन से बना है, किंतु वयस्क में पहला भ्रूण-खण्ड जिसे **पूर्वकीलिसेरीय खण्ड** (precheliceral segment) कहते हैं समाप्त हो चुका है। ओपिस्थोसोमा में भ्रूण में 13 खण्ड होते हैं लेकिन पहला खंड जिसे **पूर्वजनन खण्ड** (pregenital segment) कहते हैं शीघ्र ही समाप्त हो जाता है और इस तरह 12 वयस्क खण्ड बच रहते हैं जिनमें से सात खण्ड मीज़ोसोमा में और पाँच खण्ड मेटासोमा में होते हैं। ओपिस्थोसोमा के अन्त में एक पश्चखण्डीय प्रदेश होता है जो टेलसॉन बनाता है। इस प्रकार वयस्क बिच्छू में एक पूर्वखण्डीय प्रदेश होता है जिसके पीछे 18 खण्ड और एक टेलसॉन होता है। लेकिन अधिकतर ऐरेक्निडों में समेकन के द्वारा खण्डों के विलीन हो जाने की प्रवृत्ति होती है, और कुटकियों (mites) में तो खण्डीभवन पूरी तरह समाप्त हो गया है एवं उदर अपने आगे के प्रोसोमा से समेकित होकर केवल एक ही देह प्रदेश बन गया है।

बाह्यकंकाल (Exoskeleton)—प्रोसोमा के ऊपर एक पृष्ठीय **कैरापेस** चढ़ा होता है जिसमें अग्रतः एक गहरा खाँचा बना होता है जिससे दो ललाट-पालि (frontal lobes) बन जाते हैं। कैरापेस पार्श्वों को भी ढके रहता है। कैरापेस के ऊपर एक जोड़ी सरल **मध्य आँखें** (median eyes) और अग्र-पार्श्व सीमांतों पर तीन जोड़ी छोटी आँखें होती हैं। ऐरेक्निडा में संयुक्त नेत्र नहीं होते। प्रोसोमा की अधर सतह पर कोई स्टर्नम नहीं होते, बस अन्तिम जोड़ी टाँगों की आधार-सन्धियों के बीच में एक काइटिनी प्लेट होती है जिसे **मेटास्टर्नाइट** (metasternite) कहते हैं, यह प्लेट इन टाँगों के अनुरूप समेकित स्टर्नमों की प्रतिदर्श है। मीज़ोसोमा में सभी खण्डों में चौड़े टर्गम होते हैं, सातवें खण्ड का टर्गम शेष टर्गमों से अधिक संकीर्ण होता है। अधरतः पहले खण्ड का स्टर्नम अविद्यमान होता है, दूसरे का छोटा, लेकिन खण्ड 3 से 7 तक के स्टर्नम चौड़े और सुविकसित होते हैं, टर्गम तथा स्टर्नम हर पार्श्व में कोमल अन्तर्वलित **प्ल्यूरॉनों** द्वारा जुड़े होते हैं। मेटासोमा में हर खण्ड में टर्गम और स्टर्नम की अष्टभुजी आकृति की सम्पूर्ण चापें होती हैं, ये चापें टर्गमों, स्टर्नमों तथा प्ल्यूरॉनों के सम्पूर्ण समेकन हो जाने से बन जाती हैं, ये खण्ड एक-दूसरे के पीछे लचीली विधि से सन्धियुक्त होते हैं।

चित्र 317. बाह्यकंकाल। A-मीज़ोसोमा का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.) : B-मेटासोमा का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)। Tergum, टर्गम; pleuron, प्ल्यूरॉन, sternum, स्टर्नम; tergal arc, टर्गमी चाप, sternal arc, स्टर्नमी चाप।

प्रोसोमा के अग्र सिरे पर एक छोटा अधर मुख होता है जिसके ऊपर को एक

लेब्रम (labrum) झुका होता है। मेटासोमा के अन्तिम खण्ड की अधर दिशा में टेल्सॉन के समीप एक गुदा होती है। टेल्सॉन अथवा डंक (sting) फूला हुआ और आधार पर द्विपालिक होता है तथा अन्तिम सिरे पर एक नुकीला कंट बना होता है, फूले हुए भाग के भीतर दो विष-ग्रन्थियाँ होती हैं जिन्हें अरेखित पेशियाँ घेरे रहती हैं, इनकी वाहिनियाँ अलग-अलग छिद्रों के द्वारा बाहर को खुलती हैं और ये छिद्र काँटे के सिरे पर बनी खाँचों में पड़े होते हैं। ग्रन्थियों का विष स्वच्छ, रंगहीन टॉक्सैल्बुमिन (toxalbumin) होता है। जिसमें विषैले पदार्थ होते हैं जो विच्छू के डंक मारने के द्वारा भीतर पहुँचा दिये जाते हैं।
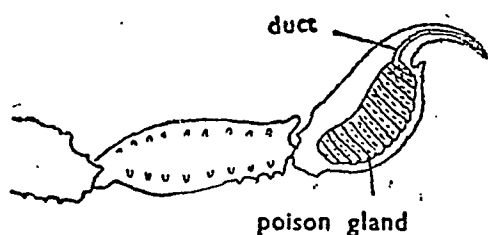
चित्र 318. विष ग्रन्थि तथा डंक सहित पूंछ। Duct, वाहिनी; poison gland, विष ग्रन्थि।

उपांग—प्रोसोमा के छह खण्डों में प्रत्येक में एक-एक जोड़ी उपांग होते हैं। 1. ऐंटेन्यूल तथा ऐंटेना विलीन हो गये हैं, पहले खण्ड में एक जोड़ी तीन-सन्धियुक्त **कीलिसेरा** (chelicerae) होते हैं जिनमें अन्तस्थ कीला (चिमटा) होता है। कीलिसेरा मुखपूर्वी होते हैं और आहार को पकड़े रखने तथा उसे चीरने में काम आते हैं। कीलिसेरा क्रस्टेशियनों के ऐंटेनाओं के समजात हैं। 2. दूसरे खण्ड में दो लम्बे **पेडिपैल्प** (pedipalpi) होते हैं जो मुख-पश्चीय होते हैं, प्रत्येक पेडिपैल्प छह पादखण्डों का बना होता है जो इस प्रकार हैं:—कॉक्सा, ट्रोकैन्टर, फ़ीमर, पटेला, टिबिया और टार्सस। कॉक्सा मुख की दिशा में एक जबड़ा अथवा हन्वाधार बनाता है जिससे चबाने का काम लिया जाता है। बड़ी टिबिया तथा छोटा टार्सस परस्पर मिल कर एक शक्तिशाली कीला बनाते हैं जो आहार पकड़ने में इस्तेमाल होता है। 3. खण्ड तीन से छः तक हर खण्ड में एक जोड़ी **चर टाँगें** होती हैं, ये सभी एक जैसी होती हैं, हर एक में सात पादखण्ड बने होते हैं जो इस प्रकार हैं कॉक्सा, ट्रोकैन्टर, फ़ीमर, पटेला, टिबिया, एक द्विसन्धी टार्सस जिससे तेज़ काँटे बने होते हैं, तथा एक पूर्वटार्सस (pretarsus) जिसमें एक जोड़ी नखर अथवा **अंकुश** (ungues) होते हैं, अधर सतह पर **नखरों** के बीच में एक छोटा मध्य कुंद **नखर** अथवा **डैक्टिल** (dactyl) होता है। पहली दो जोड़ी टाँगों के कॉक्सा मुख के समीप जबड़े अथवा हन्वाधार बनाते हैं। पहली जोड़ी टाँगों के हर कॉक्सा के ऊपर छोटी कणदार खूंटियाँ बनी होती हैं जो एक **घर्षण-ध्वनि अंग** (stridulatory organ) बनाती हैं।

ओपिस्थोसोमा में पहले खण्ड में एक अधर मध्य पालि होता है जिसे जनन-आपर्कुलम कहते हैं, यह एक विदर द्वारा विभाजित होता है, और रचना की दृष्टि से दो उपांग मूलांगों के समेकन से बना होता है, यह जनन-छिद्र को ढके रहता है। दूसरे खण्ड के स्टर्नम में एक जोड़ी कंघे-जैसी कंकतिकाएँ (pectines) होती हैं

जिसका एक संकीर्ण आधार होता है तथा दूरस्थ बार्डर पर कुन्द काइटिनी काँटे बने होते हैं। कंकतिकाएँ स्पर्शी होती हैं, ये पाद मूलांगों से व्युत्पन्न हुई हैं। खण्ड 3 से 6 के स्टर्नमों पर हर खण्ड में एक जोड़ी तिरछे झिरी-जैसे **श्वास-रन्ध्र** (spiracles या stigmata) बने होते हैं, ये श्वास-रन्ध्र भीतर को **फेफड़ा-पुस्तकें** (lung-books) नामक श्वसन अंगों में खुलते हैं। सातवें खण्ड में कोई उपांग नहीं होते। अन्तिम पाँच खण्ड आकार में घट गये होते हैं और उनमें भी कोई उपांग नहीं होते। बिच्छू के समूचे शरीर पर छोटे-छोटे काँटे तथा **संवेदी बाल** बने होते हैं, पेडिपैल्पों पर इनकी संख्या अपेक्षाकृत ज्यादा होती है।
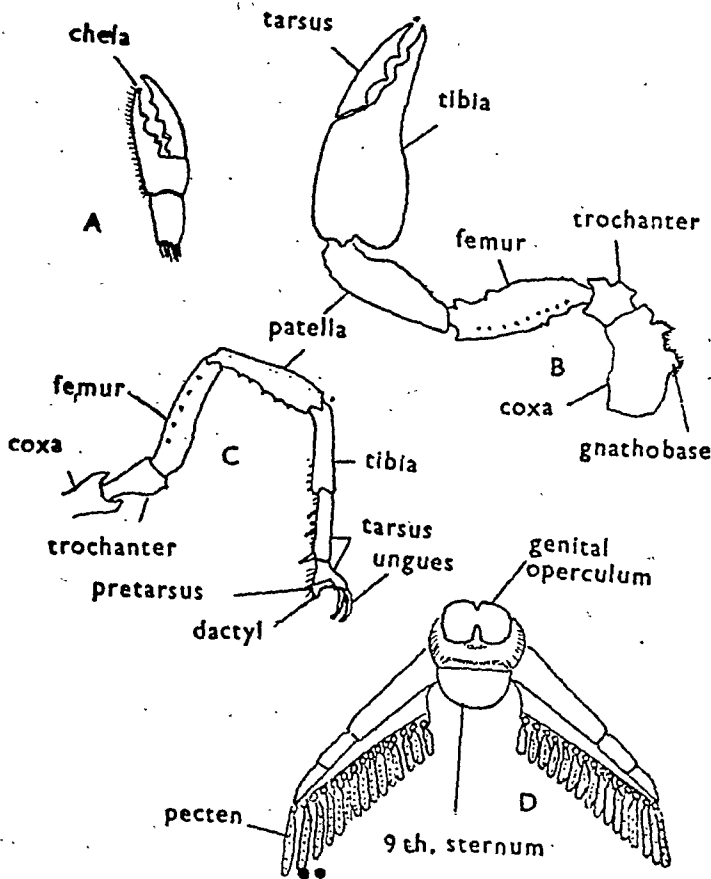
चित्र 319. उपांग। A--कीलिसेरा; B--पेडिपैल्प; C-टाँग; D--कंकतिकाएँ। Chela, कीला; tarsus, टार्सस; tibia, टिबिया; patella, पटेला; femur, फ़ीमर; trochanter, ट्रोकैन्टर; coxa, कॉक्सा; gnathobase, हन्वाधार; pretarsus, पूर्वटार्सस; ungues, अंकुश; dactyl, डैक्टिल; genital operculum, जनन आपर्कुलम; pecten, कंकतिका; sternum, स्टर्नम।

अन्तःकंकाल—प्रोसोमा के भीतर एक क्यूटिकलीय **एन्डोस्टर्नाइट** (endo-sternite) होता है जिसकी स्थिति तन्त्रिका-तन्त्र के ऊपर होती है। यह प्रोसोमा

तथा मीज़ोसोमा की गुहाओं को पृथक् करता हुआ एक डायाफ्राम की तरह अनुप्रस्थ समतल में पड़ा होता है। यह तिकोना होता है जिसमें दो चौड़ी भुजाएँ अथवा पंख तथा दो छोटे पार्श्व प्रवर्ध होते हैं, इस पर पेशियाँ जुड़ी होती हैं। प्रोसोमा की भीतरी अधर सतह से जुड़े हुए एक जोड़ी **अधिमुखी ऐपोडीम** (epistomal apodemes) होते हैं जिन पर पेशियाँ जुड़ती हैं।
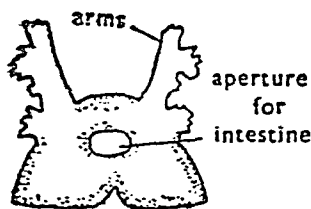
चित्र 320. एन्डोस्टर्नाइट। Arms, भुजाएँ; aperture for intestine, अन्तड़ी के वास्ते छेद।

आहार-नाल—एक छोटी **मुखपूर्वी-गुहा** (preoral cavity) होती है जिसे पृष्ठ दिशा पर कीलिसेरा ढके रहते हैं, अधर दिशा में पहली जोड़ी टाँगों के कॉक्सा होते हैं, और पार्श्वों पर पेडिपैल्पों के कॉक्सा होते हैं। मुखपूर्वी-गुहा एक छोटे, संकीर्ण मुख में खुलती है, यह एक लेब्रम द्वारा ढकी होती है। दूसरे, तीसरे और चौथे उपांगों के कॉक्सा मुख के दोनों ओर **हन्वाधार** बनाते हैं जो चबाने के लिए होते हैं। मुख एक लचीली, कोष्ठ-जैसी ग्रसनी में को खुलता है। ग्रसनी में एक काइटिनी अस्तर बना होता है और पेशियाँ होती हैं, ग्रसनी की दीवारें लंबी क्यूटिकलीय पट्टियों की बनी होती हैं जो झिल्लियों द्वारा जुड़ी होती हैं; ग्रसनी के ऊपर बाहर से जुड़ी पेशियाँ दीवारों को चौड़ा कर सकती हैं जिससे कि चूषण-क्रिया हो सकती है। ग्रसनी के पीछे एक संकीर्ण ग्रसिका आती है जो एक चूषणी **आमाशय** में को खुलती है, यह आमाशय आगे की ओर फूला हुआ होता है। उसके पीछे नलिकाकार हो जाता और 4 से 12 खंड तक चलता है। चौथे खंड में आमाशय के **लार-ग्रंथियों** की युग्मित वाहिनियाँ खुलती हैं। आमाशय पीछे एक मामूली-सी संकीर्ण नलिकाकार **मध्यांत्र** (mid-gut) में खुलता है जो 13वें से 18वें खंड तक चलती जाती है। आमाशय में पाँच या छः जोड़ी वाहिनियाँ आकर खुलती हैं जो खंडशः पुनरावर्तित **पाचन-अंधनालों** (digestive caeca) से आती हैं। पाचन-अंधनालों का पहला जोड़ा प्रोसोमा में पड़ा होता है और शेष जोड़े मीज़ोसोमा में होते हैं। पाचन-अंधनाल योजी ऊतक के एक आवरण के द्वारा बंधे रहते हैं और कुल मिलकर एक भूरा जिगर-जैसा अंग बनाते हैं। आमाशय तथा मध्यांत्र के बीच में दो जोड़ी **मैल्पीजी नलिकाएँ** (malpighian tubules) होती हैं, ये ऐंडोडर्मी होती हैं जबकि कीटों में एक्टोडर्मी होती हैं। मध्यांत्र के अंत में एक पश्चांत्र होता है जिसका अस्तर काइटिन का बना होता है, यह एक मध्य गुदा द्वारा बाहर खुलता है जो आख़िरी खंड और टेलसॉन के बीच में खुलती है। मुख से लेकर ग्रसिका के अंत तक स्टोमोडियम होता है, जिसका अस्तर काइटिनी होता है और पश्चांत्र एक प्रोक्टोडियम होता है, आमाशय तथा मध्यांत्र में ऐंडोडर्मी अस्तर होता है और वे एक मीज़ेन्टेरॉन बनाते हैं।

अशन एवं पाचन—खाने में कीट और मकड़ियाँ शामिल हैं जिन्हें पैडिपैल्पों के कीला द्वारा पकड़ा जाता है और टेल्सॉन द्वारा डंक मार कर मार डाला जाता है। आहार को फिर कीलिसेराओं के हवाले कर दिया जाता है, एक कीलिसेरा खाने को पकड़ता और दूसरा उसे फाड़कर खोल देता है, पेडिपैल्पों के और पहली दो जोड़ी टाँगों के हन्वाधार खाने को चबाते जाते हैं। लार-ग्रन्थियों, आमाशय तथा पाचन अंधनालों द्वारा स्रावित होने वाले एन्ज़ाइम शिकार के चिरे-फटे ऊतकों पर उड़ेले जाते और इस तरह खाना बाहर ही अंशतः पच जाता है, यह खाना मुखपूर्व गुहा में पहुँच जाता है। उसके बाद अंशतः पचा हुआ आँथ मुख में से होकर गुज़रता है और चूषण-ग्रसनी द्वारा चूस लिया जाता है। शेष पाचन पाचन-अंधनालों की गुहाओं में सम्पन्न होता है। पाचन-अंधनालों में स्रावी एवं पाचन-कोशिकाएँ होती हैं, स्रावी कोशिकाएँ एन्ज़ाइम बनाती हैं जिनसे वसाओं, प्रोटीनों तथा कार्बोहाइड्रेटों का आंशिक पाचन हो जाता है, उसके बाद पाचन कोशिकाओं में पाचन की क्रिया सम्पूर्ण हो जाती है। पचे हुए भोजन की अधिमात्रा पाचन अंधनालों की अंतराल कोशिकाओं में संचित कर ली जाती है।

चित्र 321. पाचन-तंत्र। Labrum, लेब्रम; mouth, मुख; pharynx, ग्रसनी; oesophagus, ग्रसिका; salivary glands, लार-ग्रन्थियाँ; lymph glands, लसीका-ग्रंथियाँ; stomach, जठर; digestive caeca, पाचक अंधनाल; malpighian tubules, मैल्पीजी नलिकाएँ; midgut, मध्यांत्र; hind gut, पश्चांत्र; telson, टेल्सॉन; anus, गुदा।

उत्सर्गी अंग–दो जोड़ी नलिकाकार, आगे को रुख किए हुए एंडोडर्मी मैल्पीजी नलिकाएँ होती हैं जो आमाशय तथा मध्यांत्र की संधि पर आहार-नाल के भीतर को खुलती हैं, इनकी पतली सिन्सिशियमी दीवारें होती हैं जो रक्त में से अपशिष्ट पदार्थ को निकालती रहती हैं। उसके बाद अपशिष्ट को ग्वानिन क्रिस्टलों के रूप में नलिकाओं की अवकाशिका में छोड़ दिया जाता है जहाँ से वे आहार-नाल के जरिए शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोसोमा के पांचवें खंड में एक जोड़ी कॉक्सीय ग्रन्थियाँ (coxal glands) होती हैं, हर ग्रन्थि से एक लंबी संवलित वाहिनी

निकलती है जो तीसरी टाँग के कॉक्सा के समीप के खाँच में खुलती है। कॉक्सीय ग्रन्थियाँ, सीलोमी उद्भव वाली सीलोमवाहिनियाँ होती हैं, वे उत्सर्गी पदार्थ को दूर करती हैं जिसमें मुख्यत: ग्वानिन होता है। कुछ विशेष बड़ी कोशिकाएँ भी होती हैं जिन्हें **वृक्काणु** (nephrocytes) कहते हैं, ये प्रोसोमा और मीज़ोसोमा में, समूहों में पड़े होते हैं और कदाचित् उत्सर्गी होते हैं।

श्वसन तंत्र—मीज़ोसोमा के तीसरे से छठे स्टर्नम में हरेक में एक जोड़ी **श्वास-रंध्र** (spiracles) होते हैं। हर श्वास-रंध्र एक संकीर्ण, तिरछा झिरी-जैसा सूराख होता है जो एक **परिकोष्ठ** (atrium) में खुलता है, यह परिकोष्ठ एक फुफ्फुस-थैले अथवा **फेफड़ा-पुस्तक** (lung-book) में को खुलता है। फेफड़ा-पुस्तक एक संपीडित थैला होता है जिसमें पतले क्यूटिकल का अस्तर बना होता है, इसकी एक तरफ की दीवार में वलन बन कर कोमल खोखले पन्ने बन जाते हैं जिन्हें **पटलिकाएँ** (lamellae) कहते हैं, ये पटलिकाएँ पुस्तक के पन्नों की तरह एक-दूसरे के समांतर पड़ी होतीं और एक समान आधार पर जुड़ी होती हैं। पटलिकाएँ छड़ों द्वारा एक-दूसरे से पृथक् बनी रहती हैं जिसके कारण उनके बीच-बीच में हवा स्वतंत्रतापूर्वक घूम सकती है। रक्त पटलिकाओं के भीतर घूमता है। फेफड़ा-पुस्तकें अधर-उदरीय दीवार के एक्टोडर्म की अंतःवृद्धियों के रूप में बनती हैं, हर निर्मोचन के समय क्यूटिकल नए सिरे से बनता है। हर फेफड़ा-पुस्तक रक्त से भरा हीमोसील का एक साइनस होता है। हवा श्वास-रंध्रों में से होकर परिकोष्ठ में पहुँचती है और पटलिकाओं के बीच में चली जाती है, पटलिकाओं की पतली दीवार में से गैस-विनिमय होता है—यह गैस विनिमय पटलिकाओं के भीतर परिसंचरित रक्त और दो पटलिकाओं के बीच-बीच की हवा के बीच होता है। परिकोष्ठ की पृष्ठ सतह पर एक पेशी जुड़ी होती है जिसके संकुचन से परिकोष्ठ फैल जाता और हवा भीतर पहुँच जाती है, पेशी के शिथिलन से हवा बाहर आ जाती है।

परिसंचरण-तंत्र—सात कक्षों का बना एक मध्य-पृष्ठ **हृदय** खंड 7 से 13 में पड़ा होता है। हृदय के हर कक्ष में एक जोड़ी ऑस्टिया होते हैं जो रक्त को केवल भीतर की ओर आने देते हैं। ऊतक-रचना की दृष्टि से हृदय की दीवार पर एक बाहरी एपिथीलियमी परत होती है जिसके नीचे पेशियों की दो परतें होती हैं, और भीतर की ओर एंडोथीलियम का एक अस्तर पाया जाता है। पेशी-परतें हृदय का संकुचन करती हैं। हृदय के नीचे एक परिहृद् (pericardium) होता है जो पार्श्वों पर मीज़ोसोमा के टर्गमों से जुड़ा होता है, परिहृद् द्वारा शेष हीमोसील से एक **परिहृद्-साइनस** पृथक् हो जाता है, हृदय इसी परिहृद् साइनस में पड़ा होता है। **धमनियाँ**—हृदय के हर कक्ष में से एक जोड़ी **पार्श्व-**
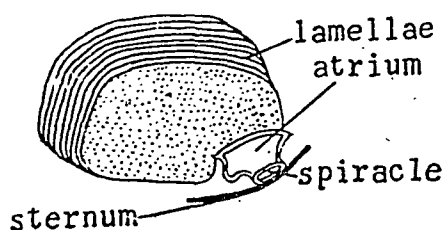
चित्र 322. फेफड़ा-पुस्तक। Lamellae, पटलिकाएँ; atrium, परिकोष्ठ; spiracle, श्वास-रंध्र; sternum, स्टर्नम।

धमनियाँ निकलती हैं जो अंगों में रक्त को पहुँचाती हैं। हृदय के अगले सिरे से एक **अग्र महाधमनी** (anterior aorta) निकलती है जिससे निकल कर शाखाएँ प्रोसोमा तथा उपांगों में जाती हैं। अग्र महाधमनी से निकली हुई दो धमनियाँ ग्रसिका का चक्कर लगाती हुई नीचे समेकित होकर एक **अधितंत्रिका-धमनी** (supraneural artery) बन जाती हैं जो तंत्रिका-रज्जु के ऊपर-ऊपर चलती हुई पीछे को जाती हुई मीज़ोसोमा के निचले भाग में रक्त सप्लाई करती है। हृदय के पिछले सिरे से एक **पश्च-महाधमनी** (posterior aorta) निकलती है जो आंत्र के ऊपर से चलती हुई अंतिम खंड तक पहुँच जाती है। धमनियों की सूक्ष्म अंतिम शाखाएँ साइनसों में को खुलती हैं जो पुनः एक **अधर साइनस** (ventral sinus) में खुलते हैं, इस अधर साइनस से चल कर रक्त फेफड़ा-पुस्तकों में पहुँचता है। अधर साइनस से परिहृद् तक पेशियाँ फैली होती हैं, जब ये पेशियाँ संकुचित होती हैं तो अधर साइनस बड़ा हो जाता है और उसमें शिरा-रक्त पहुँच जाता है। पेशियों के शिथिलन होने पर रक्त को बलपूर्वक फेफड़ा-पुस्तकों में शुद्ध होने के लिए भेज दिया जाता है। फेफड़ा-पुस्तकों में
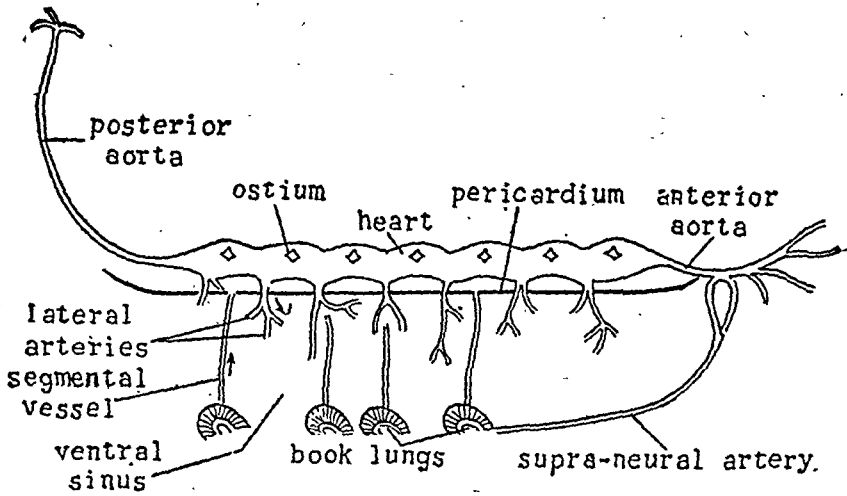
चित्र 323. परिसंचरण-तन्त्र।

Anterior aorta, अग्र महाधमनी; pericardium, परिहृद्; heart, हृदय; ostium, आस्टियम; posterior aorta, पश्च महाधमनी; lateral arteries, पार्श्व धमनियाँ; segmental vessel, खण्डीय वाहिका; ventral sinus, अधर साइनस; book lungs, पुस्तक-फेफड़े; supra-neural artery, अधि-तंत्रिका धमनी।

से **खंडी-शिराएँ** (segmental veins) निकलती हैं जो ऑक्सीजनित रक्त को परिहृद् साइनस में ले जाती हैं और फिर यह रक्त आस्टिया में से होकर हृदय में पहुँच जाता है। हृदय में संकुचन होने पर आस्टिया का नियंत्रण करने वाले वाल्व बंद हो जाते हैं और रक्त धमनियों में पहुँचा दिया जाता है। रक्त रंगहीन होता है और

उसमें अमीवाणु होते हैं। रक्त में पाया जाने वाला श्वसन वर्णक हीमोसाएनिन होता है।

गाँठ-जैसी **लसीका ग्रन्थियां** (lymph glands) अधि-तन्त्रिका धमनी से जुड़ी पाई जाती हैं ये भक्षिकाणु-प्रवृत्ति की होती हैं।

तन्त्रिका-तन्त्र—एक द्विपालिक अधिग्रसिका गैंग्लियान अथवा मस्तिष्क ग्रसिका के ऊपर बना होता है, इसमें से दो परिग्रसिका योजी निकलते हैं जो ग्रसिका का चक्कर लगाते हुए नीचे की तरफ एक अध:ग्रसिका गैंग्लियानी संहति में जा मिलते हैं, यह संहति 10 जोड़ी गैंग्लिया के समेकन से बनी होती है। एक दोहरी अधर तन्त्रिका-रज्जु होती है जिसमें सात जोड़ी असमेकित गैंग्लिया होते हैं, दो मीज़ोसोमा में तथा पाँच मेटासोमा में। मस्तिष्क से दो जोड़ी तन्त्रिकाएँ निकलती हैं जो पार्श्व एवं मध्य नेत्रों में जाती हैं। अध:ग्रसिका गैंग्लियानी संहति में से 10 जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जिनमें से एक-एक जोड़ी प्रोसोमा-उपाँगों को, जनन आपर्कुलम, कंकतिकाओं और मीज़ोसोमा के खण्ड 3 व 4 में जाती हैं। तंत्रिका-रज्जु के प्रथम छ: गैंग्लिया में से दो-दो जोड़ी तंत्रिकाएँ, निकलती हैं जो अपने ही खण्डों में चलती जाती हैं। तंत्रिका-रज्जु के सातवें गैंग्लियान से तीन जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो अन्तिम खण्ड और टेल्सॉन में जाती हैं। मस्तिष्क से जुड़ा हुआ एक अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous sytem) होता है जिसमें एक गैंग्लियान होता है जिसमें से एक तो अकेली अग्र तंत्रिका जो ग्रसनी की पेशियों में जाती है तथा दो जोड़ी तंत्रिकाएँ जो ग्रसिका तथा आमाशय को जाती हैं, निकलती हैं।

चित्र 324. तन्त्रिका-तन्त्र।
To eyes, आँखों को; brain, मस्तिष्क; circumoesophageal connective, परिग्रसिका योजी; suboesophageal ganglionic mass, अध: ग्रसिका गैंग्लियानी संहति; nerve cord, तंत्रिका रज्जु; mesosoma मीजोसोमा; metasoma, मेटासोमा।

संवेदी अंग—1. देह और उपाँगों पर बने हुए **संवेदी रोम** सूक्ष्म शूक होते हैं जो स्पर्श-संवेदी होते हैं। संवेदी रोम का आधार फूल कर एक छोटी-सी गोली के

रूप में बन जाता है जो त्वचा में बनी एक गर्तिका से फिट हो जाता है, रोम में एक संवेदी तंत्रिका तंतु जाता है। एक लम्बा कोमल संवेदी रोम जिसे **ट्राइकोबॉथ्रियम** (trichobothrium) कहते हैं वायु की गति को अनुभव कर सकता है। 2. **कंकतिकाएँ** मीजोसोमा के दूसरे खण्ड के नीचे बनी होती हैं जो मध्य में परस्पर जुड़ी होती हैं, हर कंकतिका में एक आधार भाग होता है जिस पर लगभग 15 कुंद काइटिनी काँटे एक पंक्ति में लगे होते हैं, हर काँटे की अधर सतह पर बहुत ज्यादा संख्या में संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। कंकतिकाएँ मीज़ोसोमा के दूसरे खण्ड के पादमूलांगों से उत्पन्न हुई होती हैं। कहा गया है कि कंकतिकाएँ स्पर्शी, घ्राणी और रससंवेदी होती हैं लेकिन इनमें से किसी भी कार्य की पुष्टि नहीं हो पाई है। 3. **पार्श्व नेत्र** (lateral eyes) कीटों के सरल नेत्रों (simple eyes) (चित्र 382) की तरह होते हैं। हर पार्श्व नेत्र एक वर्णकित कटोरी के रूप में होता है जिसके ऊपर से पारदर्शी क्यूटिकल का बना एक उभयोत्तल लेन्स होता है, कटोरी के भीतर अनेक अनुदैर्घ्य दृक् शलाकाएँ होती हैं जिन्हें **रैब्डोम** (rhabdome) कहते हैं जो **रेटिनी कोशिकाओं** अथवा **रेटिन्यूली** (retinulae) के साथ संबन्धित होते हैं। रेटिनी कोशिकाओं में तंत्रिका-तंतु पहुंचे होते हैं। 4. **मध्य नेत्र** (median eye) एक कटोरी के समान होता है जो बाहर से एक क्यूटिकली
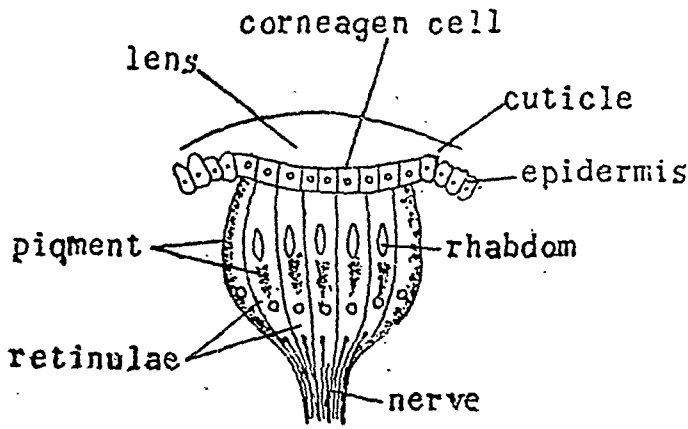
चित्र 325. बिच्छू की मध्य-आँख का खड़ा सेक्शन (V.S.)। Lens, लेन्स; corneagen cell, कॉर्नियाजेन कोशिका; cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; pigment, वर्णक; retinulae, रेटिन्यूली; rhabdome, रैब्डोम; nerve, तंत्रिका।

लेंस अथवा कॉर्निया से ढका होता है, कॉर्निया क्यूटिकल के साथ जारी रहती है लेकिन ज्यादा मोटी होती है, वर्णकित कटोरी के भीतर रैब्डोम होते हैं, हर रैब्डोम अनेक रेटिनी कोशिकाओं से घिरा होता है और इन कोशिकाओं में एक दृक्-तंत्रिका से तंत्रिका-तंतु आते हैं। बिच्छू की मध्य आँखें कीटों की संयुक्त तथा सरल आँखों के बीच की होती हैं, वे संयुक्त नेत्रों के समान इस बात में होती हैं कि उनकी रेटिनी कोशिकाएँ उसी तरह हर रैब्डोम के चारो ओर व्यवस्थित होती हैं जैसे कि नेत्रांशकों

में, लेकिन कीटों एवं क्रस्टेशियनों की संयुक्त आँखों से इस बात में भिन्न हैं कि उनकी रेटिनी कोशिकाएँ उद्दीपनों को ग्रहण करना और आवेगों का प्रेषित करना, ये दोनों ही कार्य करती हैं। ये कीटों के सरल नेत्र से इस प्रकार समान हैं कि इनके फलक नहीं बने होते बल्कि इनमें केवल एक ही लेंस होता है। पार्श्व और मध्य नेत्र दोनों ही प्रकाश परिवर्तनों के लिए संवेदी होते हैं लेकिन वे प्रतिबिंब बनाने में असमर्थ होते हैं।

जनन-अंग—लिंग अलग-अलग होते हैं लेकिन मादा बिच्छुओं की संख्या नरों की अपेक्षा अधिक होती है। नर-मादा के बीच एक विशद प्रणय प्रदर्शन होता है जिसमें नृत्य शामिल हैं, उसके बाद मैथुन सम्पन्न होता है। निषेचन आँतरिक होता है और परिवर्धन अंडाशयों के भीतर होता है। अनेक बिच्छू जैसे कि **पैलैम्नियस** शिशुप्रज होते हैं अर्थात् वे बच्चों को जन्म देते हैं जिनकी शक्ल वयस्कों जैसी होती है। कुछ बिच्छू अंड-शिशुप्रजक (ovoviviparous) होते हैं। शिशुप्रज उदाहरणों में अण्डों में पीतक नहीं होता, उनमें पूर्णभंजी और समान विदलन होता है। जन्म लेने के बाद बच्चा-बिच्छू अपनी माँ के शरीर के ऊपर रेंगने लगते हैं और पहले निर्मोचन के होने तक वहीं रहते
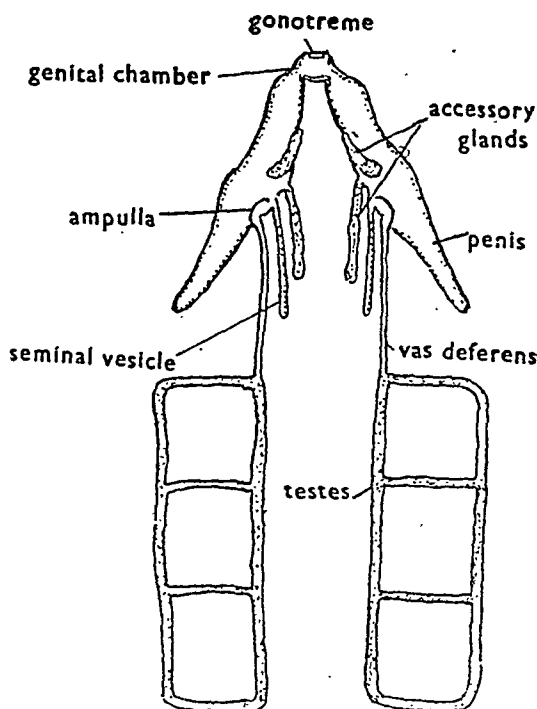
चित्र 326. नर **पैलैम्नियस** के जनन-अंग।
Gonotreme, जनन रंध्र; genital chamber जनन-कक्ष; accessory glands, सहायक ग्रन्थियाँ; ampulla, ऐम्पुला; penis, शिश्न; seminal vesicle, शुक्राशय; vas deferens, शुक्रवाहिका; testes. वृषण।

हैं, धीरे-धीरे वे अपनी माँ को छोड़ कर स्वतंत्र हो जाते हैं। अंडशिशुप्रज प्राणियों में अंडे बड़े और अंत्यपीतकी होते हैं, उनमें अंशभंजी विदलन होता है। **नर-अंग**—मीज़ोसोमा में स्थित दो वृषण होते हैं, हर वृषण में समान्तर पड़ी हुई दो अनुदैर्घ्य

नलिकाएँ होती हैं जो चार अनुप्रस्थ नलिकाओं द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। हर वृषण से एक शुक्रवाहिका निकलती है जो आगे को बढ़ती जाती है और एक बड़े काइटिनी **पराक्षीय अंग** (paraxial organ) अथवा शिश्न से जा मिलती है, इन्हीं अंगों के द्वारा नर को मादा से तुरन्त पृथक् पहचाना जा सकता है। दोनों पराक्षीय अंग सामने की ओर मिलकर एक जनन-कक्ष बनाते हैं और यह जनन-कक्ष एक नर जनन-छिद्र अथवा **जनन-रंध्र** (gonotreme) द्वारा वाहर मीज़ोसोमा के पहले खण्ड की अधर सतह पर खुलता है, नीचे से जनन-छिद्र एक जनन-आपर्कुलम द्वारा ढका होता है। पराक्षीय अंगों की दीवार में युग्मित नलिकाकार तथा अण्डाकार **सहायक ग्रन्थियाँ** (accessory glands) होती हैं। हर पराक्षीय अंग और शुक्रवाहिका से जुड़ा हुआ एक नलिकाकार **शुक्राशय** होता है जिसमें शुक्राणु भरे रहते हैं। **मादा-अंग**—मीज़ोसोमा में पड़ा हुआ एक अकेला अण्डाशय होता है, इसमें तीन अनुदैर्ध्य नलिकाएँ होती हैं जो चार अनुप्रस्थ नलिकाओं द्वारा परस्पर जुड़ी होती हैं। अण्डाशय-नलिकाओं में अनेक अन्धवर्ध बने होते हैं जिनमें विभिन्न परिवर्धन-अवस्थाओं पर अण्डे होते हैं, जिनसे छोटे-छोटे भ्रूण वन जाते हैं, ये भ्रूण अण्डाशय और उनकी अनुप्रस्थ नलिकाओं में चिपक जाते हैं। अण्डाशय की बाहरी नलिकाओं से दो **अण्डवाहिनियाँ** निकलती हैं जो आगे चलती जाती हैं तथा एक सम्मिलित जनन-कक्ष में खुलती हैं, यह कक्ष एक मादा जनन-छिद्र अथवा **जनन-रंध्र** द्वारा वाहर को खुलता है, यह जनन-रंध्र नीचे से मीज़ोसोमा के प्रथम खण्ड में वने एक जनन-आपर्कुलम द्वारा ढका रहता है।
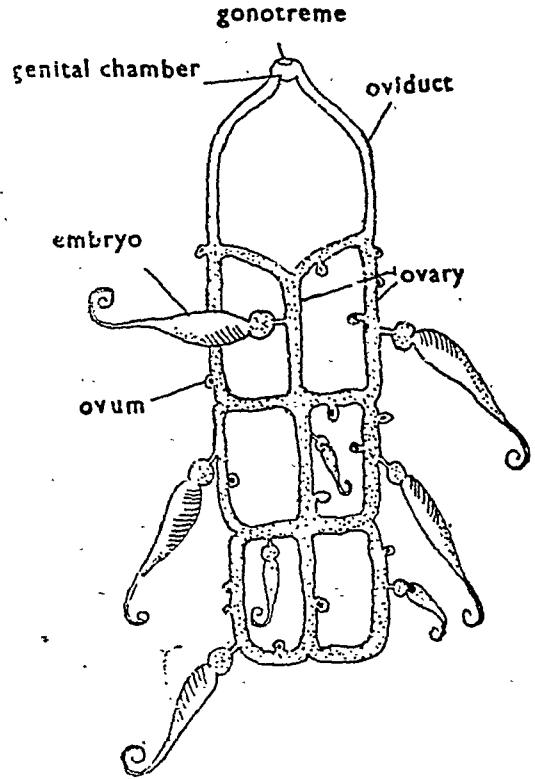
चित्र 327. मादा **पैलेम्नियस** के जनन-अंग। Gonotreme, जनन-रंध्र; genital chamber, जनन-कक्ष; oviduct, अण्डवाहिनी; embryo, भ्रूण; ovary, अंडाशय; ovum, अण्डाणु।

फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा का वर्गीकरण

आर्थ्रोपोडा का उद्भव ऐनेलिडों से या कम-से-कम दोनों के समान पूर्वज से हुआ है। ये द्विपार्श्वतः सममित, सखण्ड जन्तु होते हैं, देह के ऊपर प्रायः एक कड़ा

काइटिनी वाह्यकंकाल वना होता है; कुछ या सभी खण्डों में युग्मित उपाँग होते हैं, वीच-वीच में क्यूटिकल पतला और लचीला होकर संधियाँ वनाता है। वाह्यकंकाल के कारण देहभित्ति का ह्रास हो गया है, और वृद्धि केवल निर्मोचन के ही समय होती है। सीलोम ह्रासित होता है और हीमोसील एक परिआन्तराँग गुहा के रूप में वढ़ी हुई होती है। एक दोहरी अधर तंत्रिका-रज्जु होती है जिसमें प्ररूपत: हर खण्ड में एक जोड़ी गैंग्लिया होते हैं, और एक जोड़ी मुख-पूर्वी मस्तिष्कीय गैंग्लिया होते हैं। पेशियाँ अधिकतर रेखित होती हैं और अविच्छिन्न परतें नहीं बनातीं, सिलिया आमतौर से अविद्यमान होते हैं। आर्थ्रोपोडा सबसे बड़ा फ़ाइलम है और इसके सदस्य समुद्र में से निकल कर अलवणजल, स्थल, वायु और परजीवी वातावरणों में पहुँच चुके हैं। फ़ाइलम आर्थ्रोपोडा में चार उप-फ़ाइलम आते हैं जो इस प्रकार हैं : ओनाइकोफ़ोरा, ट्राइलोवाइटोमार्फ़ा, मैंडिवुलैटा तथा कीलिसेरेटा।

उप-फ़ाइलम I. ओनाइकोफ़ोरा (Onychophora)—इस वर्ग के सदस्य थोड़ी संख्या में और समान संरचना वाले होते हैं, इनकी केवल 65 जीवित स्पीशीज़ हैं जिनमें से सभी स्पीशीज़ संसार के उष्णकटिवन्धीय प्रदेशों में पाई जाती हैं, लेकिन वे सदैव नम आवासों में रहती हैं। इनमें ऐनेलिडा तथा आर्थ्रोपोडा दोनों के लक्षण और साथ में कुछ अपने लक्षण भी देखे जाते हैं। ऐनेलिड लक्षण इस प्रकार हैं : एक पतली नरम खाल जिसमें काइटिनी वाह्यकंकाल नहीं होता, देह-खण्ड समान होते हैं, हर देह-खण्ड में परापादों के जैसे पाँव होते हैं जो सन्धियुक्त नहीं होते, उत्सर्गी अंग विखण्डश: पुनरावर्तित नेफ्रीडिया होते हैं, जनन-वाहिनियों में सिलिया होते हैं। उनके आर्थ्रोपोड लक्षण ये हैं : श्वास-रन्ध्रों से युक्त वातिका श्वसन-तन्त्र (tracheal respiratory system) होता है, लार ग्रन्थियाँ होती हैं, उपांगों के अन्त में नखर होते हैं, हृदय में युग्मित ऑस्टिया होते हैं, सीलोम ह्रासित होता है और एक वड़ी परिआंतरांग हीमोसील होती है। ओनाइकोफोरा में स्वयं अपने भी लक्षण होते हैं जो ऐनेलिडा तथा आर्थ्रोपोडा दोनों से ही भिन्न होते हैं, ये हैं अकेली जोड़ी जवड़ों का पाया जाना, श्वास-रन्ध्रों की व्यवस्था, त्वचा का गठन, वास्तविक गैंग्लिया से रहित अलग-अलग अधर तन्त्रिका-रज्जुओं का होना, और सरल समान खण्डों का पाया जाना। कुछ विशेषज्ञों ने अव ओनाइकोफ़ोरा को एक पूरे **फाइलम** का दर्जा देकर उसे शेष आर्थ्रोपोडा से पृथक् कर दिया है क्योंकि इन दोनों में अनेक अन्तर हैं तथा वे आर्थ्रोपोडों के उद्गम के समीप एक ही समान विन्दु से विकसित हुए हैं।

उप-फ़ाइलम II. मैंडिवुलैटा (Mandibulata) में कम-से-कम एक जोड़ी ऐन्टेना, युग्मित मैंडिवलों और मैक्सिलाओं के रूप में शीर्ष उपांग पाये जाते हैं। मैंडिवल जवड़ों-जैसे अशन अंग होते हैं। प्ररूपत: इनमें संयुक्त नेत्र होते हैं। इनका शरीर शीर्ष, वक्ष और उदर में विभाजित होता है। इसमें चार क्लास होते हैं।

क्लास 1. **क्रस्टेशिया** (Crustacea)—इनमें जलीय आवास और जलीय श्वसन होता है। देह के ऊपर एक काइटिनी क्यूटिकल चढ़ा होता है, और शीर्ष, वक्ष तथा उदर में विभाजित होता है। शीर्ष का निर्माण एक खण्डपूर्वी प्रदेश तथा अगले

छः खण्डों के समेकन से होता है, शीर्ष पर दो जोड़ी ऐन्टेना, एक जोड़ी मैंडिबल, और दो जोड़ी मैक्सिला होते हैं। उपांग सन्धियुक्त तथा तैरने, चलने, श्वसन तथा जनन के लिये रूपान्तरित होते हैं। उनमें सामान्यतः दो संयुक्त आँखें होती हैं। श्वसन अंग गिल होते हैं जो वक्ष की दीवार के अथवा उपांगों के अधिपादांशों के खोखले विशाखन होते हैं। सीलोम ह्रासित होता तथा हीमोसील बड़ी होती है। उत्सर्गी अंग अंशतः सीलोमवाहिनियाँ होते हैं। लिंग अलग-अलग होते और प्रायः द्विरूपता पाई जाती है, शुक्राणु अमीबी अथवा कशाभी होते हैं, अण्डे प्रायः केन्द्रपीतकी होते हैं जो एक लार्वा के रूप में स्फोटित होते हैं जिसमें कायान्तरण होता है।

उप-क्लास (A) **ब्रैंकियोपोडा** (Branchiopoda) आदिम क्रस्टेशिया होते हैं जो अधिकतर अलवणजल में पाये जाते हैं; शीर्ष पर संयुक्त आँखें होती हैं, ऐन्टेन्यूल तथा मैक्सिला ह्रासित या अविद्यमान होते हैं और मैंडिबलों में सामान्यतः पैल्प नहीं होते। वक्ष में खण्डों की संख्या कम-ज्यादा होती है। कैरापेस शील्ड-जैसा अथवा द्विकपाटी (bivalve) होता है, या नहीं होता। उदर में अन्तर पाए जाते हैं लेकिन केवल पुच्छ-शरों (caudal styles) को छोड़कर कोई उपांग नहीं होते। धड़ के उपांग चपटे और पत्ती-जैसे होते हैं, उनके ऊपर घने शूक बने होते हैं। ये अपने पाँवों में से जल को छानकर आहार करते हैं। लार्वा नौप्लियस होता है।

आर्डर (*a*) **नोटोस्ट्राका** (Notostraca)—कैरापेस घोड़े की नाल की आकृति की एक चौड़ी शील्ड होती है। संयुक्त नेत्र वृन्त-हीन होते हैं, ऐन्टेन्यूल तथा ऐन्टेना मूलांगी होते हैं, वक्ष 11 खण्डों का होता है, पहले दो खण्ड शेष खण्डों से भिन्न होते हैं, उदर में केवल अगले दो खण्डों में ही उपांग होते हैं, दो अन्तिम पुच्छ शाखाएँ होती हैं, उदाहरण **एपस** (*Apus*)।

आर्डर (*b*) **डिप्लोस्ट्राका** (Diplostraca) छोटे आकार के अधिकतर अलवणजलीय प्राणी होते हैं। कैरापेस द्विकपाटी होता है जिसके भीतर धड़ बन्द होता लेकिन शीर्ष बाहर रहता है। वृन्तहीन आँखें परस्पर समेकित होती हैं, बड़े द्विशाखी ऐन्टेना तैरने में काम आते हैं। धड़ में 4 से 6 युग्मित उपांग होते हैं। टेल्सॉन में असंधियुक्त पुच्छीय काँटे बने होते हैं, उदाहरण **डैफ्निया** (*Daphnia*)।

उप-क्लास (B) **ऑस्ट्रैकोडा** (Ostracoda) संयुक्त नेत्र होते हैं या नहीं होते। कैरापेस द्विकपाटी होता है जिसमें अभिवर्तनी पेशी (adductor muscle) होती है। वक्ष में दो जोड़ी पांव होते हैं, उदाहरण **साइप्रिस** (*Cypris*)।

उप-क्लास (C) **कोपीपोडा** (Copepoda)—ये स्वच्छन्दजीवी अथवा मछलियों के परजीवी होते हैं। शीर्ष पर संयुक्त नेत्र नहीं होते, ऐन्टेन्यूल तथा ऐन्टेना बड़े और तैरने तथा पकड़ने के काम में आते हैं, कैरापेस नहीं होता, वक्ष में 5 या 7 खण्ड होते हैं जिन पर उपांग बने होते हैं, सातवें खण्ड के उपांग अवशेषी होते हैं, उदर में तीन खण्ड होते हैं जिनमें कोई पांव नहीं होते, टेल्सॉन में एक जोड़ी पुच्छीय शर पाए जाते हैं। नौप्लियस लार्वा होता है, उदाहरण : **साइक्लॉप्स** (*Cyclops*)।

उप-क्लास (D) **ब्रैंकियूरा** (Branchiura)—ये मछलियों के अस्थायी पर-जीवी होते हैं। इनमें एक चूषक मुख तथा संयुक्त नेत्र होते हैं। शीर्ष के कैरापेस-जैसे प्रसार वक्ष के साथ समेकित हो जाते हैं, उदर में खण्ड नहीं बने होते और न ही कोई उपांग होते हैं, वक्ष में चार उपांग होते हैं, उदाहरण : **आर्गुलस** (*Argulus*)।

उप-क्लास (E) **सिरिपीडिया** (Cirripedia)—ये परजीवी, अथवा स्वच्छंदजीवी होते हैं जो कि समूहों में चिपके होते हैं। शीर्ष पर संयुक्त नेत्र नहीं होते, ऐन्टेना भी नहीं होते। कैरापेस एक कड़ा कवच होता है जो सम्पूर्ण जन्तु को भीतर वन्द किए रहता है, उदर मूलांगी होता है और उसमें कोई उपांग नहीं होते, लेकिन पुच्छीय शाखाएँ होती हैं। ये सामान्यतः उभयलिंगी होते हैं। परिवर्धन में नौप्लियस तथा साइप्रिस अवस्थाएँ पाई जाती हैं।

आर्डर (*a*) **थोरैसिका** (Thoracica) स्थायी विशाखित वार्नेकल होते हैं, कैरापेस कैल्शियमी प्लेटों का वना होता है, कोई उदर खण्ड नहीं होते, उदाहरण : **लेपस** (*Lepas*); **बैलेनस** (*Balanus*), **माइटेला** (*Mitella*)।

आर्डर (*b*) **राइजोसेफ़ेला** (Rhizocephala) क्रस्टेशिया के ऊपर परजीवी होते हैं, वयस्क में खण्ड नहीं होते और न ही कोई उपांग अथवा आहार-नाल होती है, यह एक वृन्त के द्वारा अपने परपोषी से जुड़ा रहता है और इस वृन्त से जड़ें निकल कर परपोषी के ऊतकों में फैली रहती है, उदाहरण : **सैकुलाइना** (*Sacculina*)।

ऊपर वताए गए पाँच उप-क्लासों को अक्सर एक साथ मिलाकर **एन्टोमोस्ट्राका** (Entomostraca) में रखा जाता है लेकिन इसका कोई वर्गीकरण महत्त्व नहीं है, इसमें छोटे क्रस्टेशियन आते हैं।

उप-क्लास (F) **मैलाकॉस्ट्राका** (Malacostraca) में अपेक्षाकृत वड़े और अधिक परिचित क्रस्टेशियन आते हैं। शीर्ष का वाह्यकंकाल वक्ष के वाह्यकंकाल से जुड़ कर एक कैरापेस बनाता है, संयुक्त नेत्र वृन्तयुक्त होते हैं, शीर्ष में 5 खण्ड होते हैं, वक्ष में 8 और उदर में 6 खण्ड होते हैं जिनमें सभी में उपांग वने होते हैं। अन्त में एक टेल्सॉन होता है। कायान्तरण होता है लेकिन नौप्लियस लार्वा शायद ही कभी पाया जाता हो। यह उप-क्लास वहुत बड़ा है और इसमें कुल ज्ञात क्रस्टेशियनों के लगभग तीन-चौथाई प्राणी आते हैं।

अधिआर्डर (1) **पेरैकेराइडा** (Peracarida)—कैरापेस 4 वक्ष खण्डों से ज्यादा से नहीं जुड़ा होता या कैरापेस होता ही नहीं। आँखें वृन्तयुक्त अथवा वृन्तहीन होती हैं। शिशुओं का सीधा परिवर्धन होता है और एक भ्रूणकोष्ठ (brood pouch) होता है, उदाहरण : **माइसिस** (*Mysis*, आर्डर माइसिडेसिया), **ओनिस्कस** (*Oniscus*, आर्डर आइसोपोडा), **गैमेरस** (*Gammarus*, आर्डर ऐम्फ़िपोडा)।

अधिआर्डर (2) **हॉप्लोकेराइडा** (Hoplocarida) अथवा **स्टोमेटोपोडा** (Stomatopoda)—कैरापेस उथला और 3 वक्ष-खण्डों के साथ जुड़ा हुआ, 4 वक्ष-खण्ड खुले रह जाते हैं। आँखें वृन्त-युक्त होती हैं। उदर लम्वा, जिसके पहले 5 जोड़ी

उपांगों में बहिपदांशों पर गिल बने होते हैं, छठे उपांग टेल्सॉन के साथ मिलकर एक पुच्छ-फिन बनाते हैं। नौप्लियस अवस्था नहीं होती, उदाहरण : **स्क्विला** (*Squilla*) **लिसियोस्क्विला** (*Lysiosquilla*)।

अधिआर्डर (3) **यूकेराइडा** (Eucarida)—कैरापेस सिर और वक्ष दोनों को ढके रहता है तथा सभी वक्ष-खण्डों के साथ जुड़ा रहता है, आँखें वृन्तयुक्त होती हैं, हृदय छोटा और वक्ष में पड़ा होता है। ऐन्टेना के आदिपादांश में केवल दो पादखण्ड होते हैं। एक जोइया (zoaea) लार्वा होता है। इस वर्ग में अपेक्षाकृत बड़े मैलाकॉस्ट्राका आते हैं।

आर्डर (*a*) **डेकापोडा** (Decapoda)—कैरापेस शीर्ष तथा वक्ष को ढके रहता है, संयुक्त नेत्र वृन्तयुक्त होते हैं, तीन जोड़ी वक्ष-उपांग मैक्सिलिपीडों और पाँच जोड़ी चर टांगों के रूप में रूपान्तरित होते हैं। स्कैफ़ोग्नैथाइट वड़ा होता है, स्टैटोसिस्ट ऐन्टेन्यूलों में पाए जाते हैं।

उप-आर्डर (*i*) **मैक्रूरा** (Macrura) में झींगा, लॉब्स्टर, शिम्प तथा क्रेफ़िश आती हैं। ऐन्टेन्यूल तथा ऐन्टेना सुविकसित होते हैं, उदर लम्बा और पुच्छपाद तथा टेल्सॉन द्वारा एक पंखे जैसा पुच्छ-फिन बन जाता है, उदाहरण : **पैलीमॉन, पीनियस** (*Penaeus*) (जो कि तैरने वाले प्ररूप हैं), **ऐस्टेकस** (*Astacus*), **सिलैरस** (*Scyllarus*), **कैम्ब्रस** (*Cambrus*) (रेंगने वाले प्ररूप)।

उप-आर्डर (*ii*) **ऐनॉम्यूरा** (Anomura) में स्क्वैट लॉब्स्टर तथा हर्मिट-केकड़े आते हैं। उदर ह्रासित होता है, पुच्छ-फिन नहीं होता, उदाहरण : **यूपैग्यूरस** (*Eupagurus*), **हिप्पा** (*Hippa*)।

उप-आर्डर (*iii*) **ब्रैकियूरा** (Brachyura) में वास्तविक केकड़े पाए जाते हैं। उदर बहुत ज्यादा ह्रासित हो गया होता है, और वक्ष के नीचे को स्थायी तौर पर मुड़ा होता है, पुच्छपाद नहीं होते। ऐन्टेन्यूल और आँखें गुहाओं में को सिकोड़ ली जा सकती हैं, कायान्तरण में एक जोइया तथा एक मेगैलोपा (megalopa) लार्वा होते हैं, उदाहरण : **नेप्चुनस** (*Neptunus*), **सिल्ला** (*Scylla*), **कैंसिनस** (*Carcinus*), **कैंसर** (*Cancer*), **टेल्फ़ुजा** (*Tephusa*)।

क्लास 2. **काइलोपोडा** (Chilopoda) पृष्ठ-अधरतः चपटे हो गये मैंडिबुलेट प्राणी हैं। शीर्ष में 6 खण्ड होते हैं, एक जोड़ी ऐंटेना तथा तीन जोड़ी जबड़े होते हैं, धड़ में बहुत से खण्ड होते हैं, हर खण्ड में एक जोड़ी टाँगें होती हैं, केवल पहले खण्ड में टाँगें नहीं होतीं बल्कि एक जोड़ी विष-नखर होते हैं, आखिरी दो खण्डों में उपांग नहीं होते। श्वास-रंध्र युग्मित होते हैं लेकिन खण्डों की संख्या से कम होते हैं, ये भीतर की ओर संशाखित वातिकाओं में खुलते हैं। गोनड आहार-नाल की पृष्ठ दिशा में होते हैं तथा जननछिद्र अंतिम खंड में होते हैं। ये माँसभक्षी और रात्रिचर काँतर (सेंटिपीड) होते हैं, उदाहरण : **स्कोलोपेंड्रा** (*Scolopendra*), **लियोबियस** (*Lithobius*)।

क्लास 3. **डिप्लोपोडा** (Diplopoda) में सिलिंडराकार लम्बा शरीर होता है। शीर्ष में 5 खण्ड होते हैं, एक जोड़ी मुद्गराकार ऐंटेना, एक जोड़ी मैंडिबल और एक जोड़ी मैक्सिला होते हैं। अगले चार खण्ड इकहरे होते हैं, वे एक वक्ष बनाते हैं, शेष धड़-खण्ड दोहरे होते हैं—वे दो-दो खण्डों के जुड़े होने से बनते हैं, इनमें हर एक में दो-दो जोड़ी टाँगें होती हैं। हर खण्ड में एक जोड़ी श्वास-रन्ध्र होते हैं जो भीतर वायु-कोष्ठों में खुलते हैं, इन वायु कोष्ठों से विशाखित वातिकाएँ निकलती हैं। गोनड आहार-नाल की अधर दिशा में होते हैं और जनन-छिद्र तीसरे धड़-खंड पर होता है। ये शाकाहारी गिजाइयाँ (शतपाद) होते हैं; उदाहरण, **थाइरोग्लूटस** (*Thyroglutus*), **जूलस** (*Julus*), **थाइरोपाइगस** (*Thyropygus*)।

काइलोपोडा और डिप्लोपोडा को प्राय: एक साथ **मिरियापोडा** (Myriapoda) के अन्तर्गत रखा जाता है।

क्लास 4. **इंसेक्टा** (Insecta) अथवा **हेक्सापोडा** (Hexapoda) मैंडिबुलेट होते हैं, इनमें ऐंटेना, मैंडिबल और मैक्सिला के शीर्ष उपांग होते हैं। इनका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

उप-फ़ाइलम III. **कीलिसेरेटा** (Chelicerata)—इनमें ऐंटेना नहीं होते, इनमें एक जोड़ी मुखपूर्वी उपांग होते हैं जिन्हें कीलिसेरा कहते हैं, इनमें मैंडिबल नहीं होते, इनमें एक जोड़ी मुखपश्चीय पेडिपैल्प और चार जोड़ी टाँगें होती हैं। इनमें संयुक्त नेत्र नहीं होते। शरीर का दो भागों में विभाजन हो जाता है, एक तो प्रोसोमा (शिरोवक्ष) और एक ओपिस्थोसोमा (उदर) जिसमें खण्ड बने भी हो सकते हैं और नहीं भी। ये तरल आहार खाते हैं। इसमें दो क्लास आते हैं।

क्लास 1. **मीरोस्टोमैटा** (Merostomata)—जलीय कीलिसेरैटा होते हैं जिनमें पाँच या छः जोड़ी उदर उपांग रूपांतरित होकर गिल बन जाते हैं, देह के अन्त में एक लम्बा नुकीला टेल्सॉन होता है।

उप-क्लास (A) **यूरिप्टेराइडा** (Eurypterida) विलुप्त महाकाय जल-विच्छू हैं, ये केम्ब्रियन से लेकर पर्मियन कल्प तक पाये जाते थे; उदाहरण, **यूरिप्टेरस** (*Eurypterus*)।

उप-क्लास (B) **ज़ाइफ़ोस्यूरा** (Xiphosura) जलीय कीलिसेरेट हैं। प्रोसोमा के ऊपर एक चौड़ा घोड़े की नाल की आकृति का कैरापेस चढ़ा होता है जो पार्श्वों में फैला होता है, इसमें एक जोड़ी कीलायुक्त कीलिसेरा होते हैं और पाँच जोड़ी टाँगें (पेडिपैल्प टाँगरूपी होते हैं)। प्रोसोमा और ओपिस्थोसोमा एक हिंज-सन्धि द्वारा विभाजित रहते हैं। ओपिस्थोसोमा के मीज़ोसोमा में 6 खण्ड होते हैं, मेटासोमा अवशेषी तथा अखंडी होता है और उसके अन्त में एक लम्बा टेल्सॉन होता है। मेटासोमा के पहले खण्ड पर काइलेरिया (Chilaria) और दूसरे खण्ड पर एक जनन-आपर्कुलम होता है। ओपिस्थोसोमा के पाँच जोड़ी उपांग चपटे होते हैं और उनमें श्वसन के लिये पटलिकाकार गिल-पुस्तकें होती हैं। ज़ाइफ़ोस्यूरा ऑर्डोवीशियन कल्प में

प्रकट हुए लेकिन उनमें से अधिकतर विलुप्त हो गये और केवल तीन जीनसें आज जीवित पाई जाती हैं; उदाहरण, ज़ाइफ़ोस्यूरा (*Xiphosura*)। Xiphosura

क्लास 2. ऐरेक्निडा (Arachnida)—ये अधिकतर स्थलीय होते हैं हालाँकि कुछ जलीय होते हैं। देह में 6 खण्डों वाला एक अग्र प्रोसोमा होता है तथा 12 या 13 खण्डों वाला एक ओपिस्थोसोमा होता है जिसके अन्त में एक टेल्सॉन होता है। प्रोसोमा में वृंतहीन सरल आँखें और छः जोड़ी उपांग होते हैं। ऐंटेना तथा वास्तविक जबड़े नहीं होते। श्वसन अंग गिल-पुस्तकों, फेफड़ा-पुस्तकों अथवा वातिकाओं के रूप में होते हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं। कायांतरण नहीं होता। ऐरेक्निडा एक अलग-थलग शाखा है जो शेष आर्थ्रोपोडा से भिन्न होती है, ये परभक्षी होते हैं और कुछ परजीवी होते हैं।

आर्डर (*a*) **स्कॉर्पियोनिडिया** (Scorpionidea) स्थलीय बिच्छू होते हैं। प्रोसोमा तथा ओपिस्थोसोमा जारी रहते हैं, प्रोसोमा के ऊपर एक पृष्ठ कैरापेस चढ़ा होता है और उस पर छोटे कीलिसेरा तथा बड़े पेडिपैल्प होते हैं, जो दोनों ही कीलायुक्त होते हैं, इनमें चार जोड़ी टाँगें होती हैं। ओपिस्थोसोमा में एक सात-खण्डी मीज़ोसोमा तथा पाँच-खंडी मेटासोमा होता है तथा टेल्सॉन का एक डंक बना होता है। मीजोसोमा के पहले खण्ड में एक जनन-आपर्कुलम होता है, दूसरे खण्ड में एक जोड़ी कंकतिकाएँ होती हैं, और उससे अगले चार खण्डों में से प्रत्येक में एक जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें होती हैं, उदाहरण: **पैलेम्नियस** (*Palamneus*), **स्कॉर्पियो** (*Scorpio*), **बूथस** (*Buthus*)।

आर्डर (*b*) **ऐरेनियाइडा** (Araneida) स्थलीय मकड़ियाँ होती हैं। प्रोसोमा के ऊपर एक टर्गमी शील्ड ढकी होती है, लेकिन शीर्ष एक खाँच द्वारा पृथक् हो गया होता है, इसके ऊपर दो-सन्धि वाले कीलारहित कीलिसेरा होते हैं जिनमें विष-ग्रन्थियाँ होती हैं, पेडिपैल्पों में कीला नहीं होता, चार जोड़ी टाँगें होती हैं। प्रोसोमा एक संकीर्ण पेडिसेल (pedicel) के द्वारा बाहर से बिना सन्धि वाले एवं नरम ओपिस्थोसोमा से जुड़ा होता है। ओपिस्थोसोमा के अन्त में 2 से 4 जोड़ी ग्रन्थियाँ होती हैं जो एक वयन-उपकरण (spinning apparatus) बनाती हैं। श्वसन अंग दो जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें, या एक जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें एवं वातिकाएँ, या केवल वातिकाएँ होती हैं, उदाहरण: **लाइकोसा** (*Lycosa*), **टेनीज़िया** (*Ctenizia*), **यूरीपेल्मा** (*Eurypelma*), **फ़ोल्कस** (*Pholcus*)।

आर्डर (*c*) **सॉलिफ़्यूगा** (Solifuga) स्थलीय होते हैं, देह में तीन भाग होते हैं, शीर्ष और वक्ष का प्रोसोमा होता है और एक ओपिस्थोसोमा होता है, देह बहुत ज़्यादा रोमिल होता है। वक्ष में 3 खण्ड तथा ओपिस्थोसोमा में 10 होते हैं। कीलिसेरा कीलायुक्त होते हैं, पेडिपैल्प टाँग-जैसे और हर एक में एक चूषक होता है। श्वसन-अंग वातिकाएँ होती हैं। ये चींटी-जैसे दिखाई पड़ते हैं, उदाहरण: **मिरमैरेक्ने** (*Myrmarachne*), **गेलियोडीज़** (*Galeodes*)।

आर्डर (*d*) **स्यूडोस्कार्पियोनिडिया** (Pseudoscorpionidea)—प्रोसोमा में पृष्ठ खाँचें होती हैं, कीलिसेरा छोटे, पेडिपैल्प मजबूत और कीलायुक्त होते हैं। ओपिस्थोसोमा में 12 खण्ड होते हैं लेकिन इसमें मीज़ोसोमा और मेटासोमा में विभाजन नहीं होता। डंक नहीं होता, एक जोड़ी वयन ग्रन्थियाँ (spinning glands) होती हैं। श्वसन के लिये वातिकाएँ होती हैं, उदाहरण : **कीलिफ़र** (*Chelifer*)।

आर्डर (*e*) **एकैराइना** (Acarina) का शरीर गोल होता है जिसमें प्रोसोमा तथा ओपिस्थोसोमा समेकित होकर एक हो जाते हैं. ये अखण्ड होते हैं। कीलिसेरा और पेडिपैल्प तथा अन्य मुख-अंग चबाने, वेधन अथवा चूषण के काम आते हैं। ओपिस्थोसोमा में कोई उपांग नहीं होते। श्वसन देह की सतह अथवा वातिकाओं के द्वारा होता है। इनमें चिचड़ियाँ (*ticks*) तथा कुटकियाँ (*mites*) आती हैं। उदाहरण : **इक्सोडीस** (*Ixodes*), **आर्गस** (*Argas*)।

उप-फ़ाइलम IV **ट्राइलोबाइटोमॉर्फ़ा** (Trilobitomorpha)—क्लास **ट्राइलोबाइटा** (Trilobita)—ये सब विलुप्त आर्थ्रोपोडा हैं, ये केम्ब्रियन तथा सिल्यूरियन कल्पों में समुद्र में प्रचुर संख्या में रहा करते थे लेकिन लगभग 25 करोड़ वर्ष पहले कार्वोनिफ़ेरस कल्प में विलुप्त हो गये। फ़ॉसिल ट्राइलोबाइटों की 3900 से ज़्यादा स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है। इनका शरीर चपटा और छोटा हुआ करता था, ये 3 से 10 cm. लम्बे होते थे। शरीर पर कैल्सिकृत क्यूटिकल चढ़ा होता था जो अधर सतह की अपेक्षा पृष्ठ सतह पर ज़्यादा मोटा होता था। देह में तीन भाग होते थे, एक अखण्ड **शीर्ष शील्ड** (head, shield), एक लचीला खण्डयुक्त **धड़** (trunk), और एक अखण्ड पूंछ अथवा **पुच्छांत** (pygidium) होता था। एक जोड़ी मध्य कटक अगले सिरे से पिछले सिरे तक चलते जाते थे जो सम्पूर्ण शरीर को तीन लम्बे पालियों में विभाजित कर देते थे, दो **पार्श्व पालि** (pleural lobes) और एक मध्य **पिच्छाक्ष** (rachis) अथवा अक्षीय पालि। ट्राइलोबाइटा नाम (**ट्राई**-तीन, **लोब**-पालि) इसी त्रिपालि अवस्था के आधार पर दिया गया है। शीर्ष पर एक जोड़ी सखण्ड ऐंटेना और चार जोड़ी द्विशाखी उपांग होते थे; कुछ में संयुक्त नेत्र होते थे, कुछ में सरल नेत्र और कुछ नेत्रहीन होते थे। धड़ और पुच्छांत में अनेक द्विशाखी उपांग होते थे। हर उपांग में विभिन्न आकृति का एक आदिपादांश होता था, एक झालरी बाह्यपादांश और 6-सन्धि वाला अन्तःपादांश होता था। ये अधिकतर मांसभक्षी थे।

ऐंटेनाओं का पाया जाना और उपांगों की आकृति से ट्राइलोबाइटा का क्रस्टेशिया से सम्बन्ध स्थापित होता है, लेकिन यह बहुत नज़दीकी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि अनेक अन्तर पाये जाते हैं, ट्राइलोबाइटों को कीलिसेरेटा तथा मैंडिबुलेटा आर्थ्रोपोडों दोनों का समान पूर्वज माना जाता है।

आर्थ्रोपोडा के प्ररूप

1. **पेरिपैटस** (*Peripatus*)—यह स्थलीय होता है और नम जंगलों में पत्तियों अथवा पत्थरों के नीचे, पेड़ों की छालों में और चट्टानों की दरारों में पाया

जाता है। यह अफ़्रीका, मलय, पश्चिमी द्वीपसमूह और दक्षिण अमेरिका में पाया जाता है और इस प्रकार इसमें हमें एक असन्तत वितरण (discontinuous distribution) का उदाहरण मिलता है। दिन के वक्त यह छिपा रहता है और रात में खाना पकड़ने के लिये बाहर आता है, खाने में मक्खियाँ, दीमक और काष्ठ-जूं शामिल हैं। सुरक्षा तथा आहार को पकड़ने के लिये अपनी ग्रन्थियों से श्लेष्मा को निकाल सकता है।

पेरिपैटस 5 cm. लंबा और सिलिंडराकार शरीर का होता है, शीर्ष स्पष्ट नहीं होता, और देह में बाहर से खंड नहीं बने होते, बल्कि उसमें वलयक बने होते हैं जिन पर गुलिकाएँ अथवा पैपिलाओं की पंक्तियाँ बनी होती हैं, हर गुलिका के अंत पर एक काँटा बना होता है। शीर्ष पर तीन जोड़ी उपाँग होते हैं—पूर्वएेंटना (preantenna), मुख-पैपिला, तथा जबड़े। आर्थ्रोपोडा में पहला भ्रूण-खंड वयस्क में विलीन हो जाता है, लेकिन इसमें यह मौजूद रहता और उस पर उपाँग बने होते हैं जिन्हें
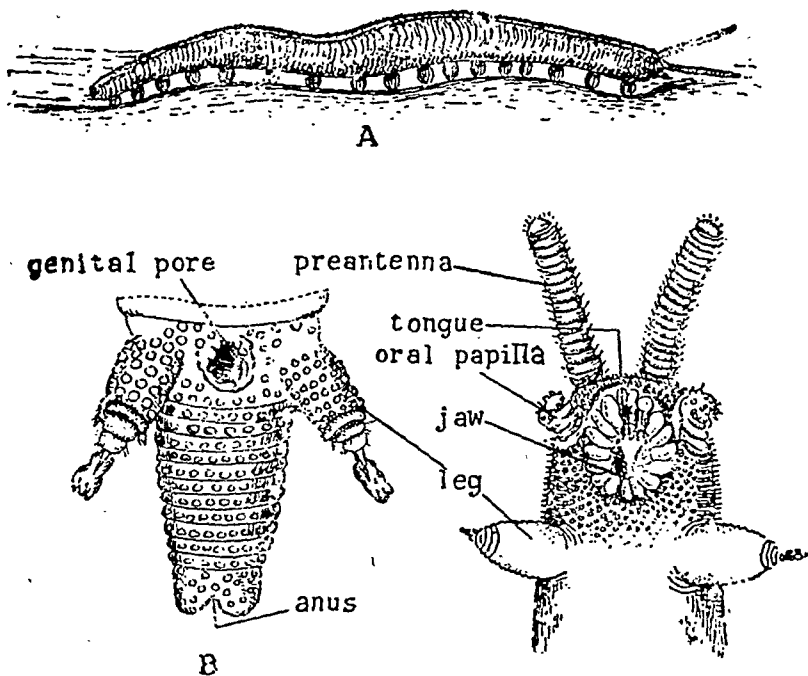
चित्र 328. A—**पेरिपैटस कैपेंसिस** (*Peripatus capensis*) B—पश्च सिरा; C—अग्र सिरा।
Genital pore, जनन-छिद्र; anus, गुदा; preantenna, पूर्वएेंटेना; tongue, जीभ; oral papilla, मुख-पैपिला; jaw, जबड़ा; leg, टाँग।

पूर्वएेंटेना कह सकते हैं, ये उपांग लंबे गतिशील और स्पर्श-संवेदी होते हैं। पूर्वएेंटेनाओं के पीछे एक जोड़ी पृष्ठ आँखें होती हैं। शीर्ष के नीचे एक अधर मुख होता है जिसमें एक जोड़ी **जबड़े** होते हैं जो अपनी नोकों से काटते और शिकार को छोटे-छोटे टुकड़ों

में चीर डालते हैं। जवड़े दूसरे खंड में होते हैं। तीसरे खंड में एक जोड़ी **मुख-पैपिला** (oral papillae) होते हैं जिनमें श्लेष्मा-ग्रंथियाँ होती हैं और ये ग्रंथियाँ इन पैपिलाओं के सिरों पर खुलती हैं। शरीर में अलग-अलग स्पीशीज़ में 15 से 40 जोड़ी टाँगें होती हैं। टाँगें शंक्वाकार होती हैं जिन पर छल्ले बने होते हैं और उन छल्लों पर गुलिकाएँ होती हैं तथा अधर दिशा में काँटेदार गद्दियाँ बनी होती हैं। टाँगें खोखली होती हैं और उनमें एक अंतिम पैर होता है जिसमें दो नखर बने होते हैं। एक अंतस्थ गुदा होती है। आखिरी जोड़ी टाँगों के बीच में एक अधर जनन-छिद्र होता है। हर टाँग के आधार पर एक अधर नेफ्रीडियमछिद्र होता है।

शरीर के ऊपर एक पतला काइटिनी क्यूटिकल चढ़ा होता है, खाल के ऊपर गुलिकाएँ होती हैं जिनके अंत में कंटिकाएँ होती हैं, ये गुलिकाएँ खास तौर से पूर्व-ऐंटेनाओं, मुख के होंठों और मुख पैपिलाओं पर होती हैं। एक जोड़ी लार-ग्रंथियाँ मुख-गुहा में खुलती हैं, ये रूपांतरित नेफ्रीडिया होते हैं। हृदय एक पृष्ठ नलिका होती है जिसमें युग्मित ऑस्टिया बने होते हैं, यह नलिका एक परिहृद् गुहा में पड़ी होती है। श्वसन-अंग वातिकाएँ होती हैं, जो शरीर के विभिन्न भागों पर श्वास-रंध्रों के द्वारा बाहर को खुलती हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं, नर मादा के शरीर पर शुक्राणुधर छोड़ देता है और अधःत्वचीय संसेचन होता है। ये शिशुप्रज होते हैं और एक वर्ष में 30 से 40 बच्चों को जन्म देते हैं जो सिर्फ़ साइज़ और रंग को छोड़ कर अन्य सभी बातों में वयस्कों के समान होते हैं।

2. क्रस्टेशियन लार्वा

(क) **नौप्लियस लार्वा** (Nauplius larva)—अंडाकार और अखंड होता है, इसमें एक चौड़ा सिरा होता है जिसमें एक मध्य आँख, बड़ा लेब्रम और तीन जोड़ी
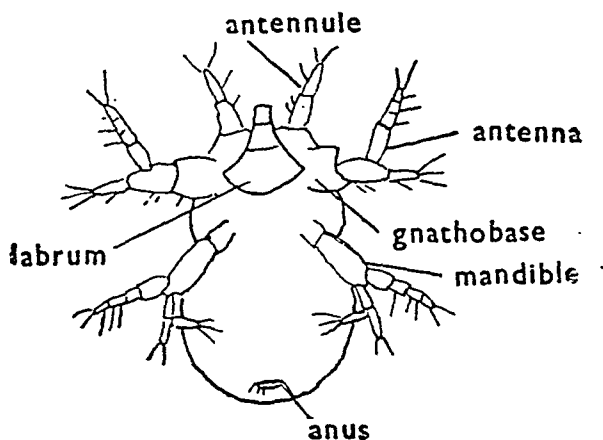
चित्र 329. साइक्लॉप्स का नौप्लियस (अधर)।
Antennule, ऐंटेन्यूल; antenna, ऐंटेना; gnathobase, हन्वाधार; mandible, मैंडिबल; labrum, लेब्रम; anus, गुदा।

उपांग बने होते हैं। मध्य आँख का होना नौप्लियस लार्वा का एक खास लक्षण है और

अक्सर इसे **नौप्लियस नेत्र** कहा जाता है, यह प्रायः तीन किंतु कभी-कभी चार नेत्रकों की बना होता है, ये नेत्रक वर्णकयुक्त कप होते हैं जिनमें लेन्स नहीं होता और इनमें प्राक्‌मस्तिष्क से तंत्रिकाएँ आती हैं। मध्य आँख वयस्क क्रस्टेशियन में बनी रह सकती है या अपविकसित हो जाती है। उपाँग इस प्रकार होते हैं, एक जोड़ी एक-शाखी ऐंटेन्यूल जिनमें **ललाट-अंग** (frontal organs) बनाने वाली संवेदी कोशिकाओं के दो समूह होते हैं, एक जोड़ी द्विशाखी ऐंटेना, और एक जोड़ी द्विशाखी मैंडिबल जो तैरने में मदद देते हैं, इनमें मुख की तरफ को निकले हुए हन्वाधार होते हैं हालांकि मैंडिबलों के हन्वाधार शुरू-शुरू में अविद्यमान हो सकते हैं। मुख से युक्त स्टोमोडियम, गुदा से युक्त प्रोक्टोडियम और एक मध्यांत्र भी होती हैं।

प्ररूपी क्रस्टेशियन एक स्वच्छंद तैरने वाले नौप्लियस के रूप में स्फोटित होता है, लेकिन मैलाकॉस्ट्राका में (सिर्फ आदिम रूपों को छोड़ कर) नौप्लियस अवस्था अंडा-झिल्ली के भीतर ही बीतती है।

(ख) **मेटानौप्लियस** (Metanauplius) लार्वा नौप्लियस की तरह होता है, बस अंतर इतना होता है कि इसके देह में कुछ खंडीभवन होता है, तथा वक्ष के तीन जोड़ी और अधिक उपांग बने होते हैं, तथा इस वक्ष में कुछ खंडीभवन भी होता है। कुछ नोटोस्ट्राका, जैसे कि **एपस** (*Apus*), एक मेटानौप्लियस लार्वा के रूप में अंडे से निकलते हैं।

(ग) **साइप्रिस** (Cypris) लार्वा एक द्विकपाटी **कवच** में बंद होता है जिसमें अभिवर्तनी पेशी होती है। शीर्ष पर संयुक्त नेत्र होते हैं, ऐंटेन्यूल होते हैं जिनमें डिस्कें होती हैं और इन डिस्कों पर सीमेंट-ग्रंथियाँ खुलती हैं, ऐंटेना समाप्त हो जाते हैं लेकिन शेष शीर्ष-उपांग मौजूद होते हैं, वक्ष में छह जोड़ी द्विशाखी उपांग होते हैं, चार खंडों का एक उदर होता है। इसमें अनेक वयस्क लक्षण पाए जाते हैं। सिरिपीडिया में, जैसे **लेपस** में, अंडे से एक नौप्लियस निकलता है, यह एक साइप्रिस में बदल जाता है जो ऐंटेन्यूलों की डिस्कों के द्वारा सीमेंट-ग्रंथियों के स्राव की मदद से चिपक जाता है, उसके बाद यह एक प्यूपा बन जाता है जिसमें शेल-प्लेटें बन जाती हैं और इसमें घूर्णन होकर वह वयस्क आकृति प्राप्त कर लेता है (चित्र 336)।

(घ) **ज़ोइया** (Zoaea) **लार्वा** में एक सुविकसित शीर्ष होता है जिसमें एक लंबा मध्य **पृष्ठ कंठ** (dorsal spine) होता है, दो सवृंत संयुक्त नेत्र होते हैं, और एक सरल नेत्र होता है, ऐंटेन्यूल से लेकर आखिरी जोड़ी मैक्सिलिपीडों तक सभी उपाँग पाए जाते हैं। कैरापेस सुविकसित होता है और आगे की ओर को एक **रॉस्ट्रम** के रूप में निकला होता है। वक्ष अखंड और पश्च सिरे पर मूलांगी होता है। उदर सुनिर्मित तथा सखंड होता है लेकिन इसमें केवल एक द्विशाखी टेल्सॉन को छोड़कर और कोई उपांग नहीं होते। यह अपने द्विशाखी मैक्सिलिपीडों की सहायता से तैरता है।

ज़ोइया की विकसित अवस्था को **मेटाज़ोइया** (metazoaea) कहते हैं, यह ज़ोइया-जैसा होता है लेकिन मैक्सिलिपीडों के पीछे वक्ष उपांगों के एकशाखी मूलांगों

के होने के लक्षण में उससे भिन्न होता है। कुछ ऐनॉम्यूरा में अंडे में से ज़ोइया अवस्था निकलती है जो एक मेटाज़ोइया में से गुजर कर वयस्क बन जाती है।

(ङ) **माइसिस** (Mysis) अथवा **शाइज़ोपॉड** (schizopod) **लार्वा** वयस्क **माइसिस** (चित्र 341) जैसा होता है। शीर्ष और वक्ष पर एक कैरापेस होता है, शीर्ष और वक्ष के सभी उपांग मौजूद होते हैं, लेकिन सभी वक्ष-उपांग एक-सरीखे एवं बाह्य-पादांशों से युक्त द्विशाखी होते हैं, उदर में पाँच जोड़ी तरणपाद होते हैं तथा छठा उपांग पुच्छपाद बनाता है। कुछ डेकापोडा में जैसे कि समुद्री झींगा **पिनियस** में अंडे में से निकलने वाली अवस्था नौप्लियस होती है, क्रमिक निर्मोचनों के द्वारा यह जोइया, मेटाज़ोइया और माइसिस अवस्थाओं में से गुज़रती है और वयस्क बन जाती है। कुछ लॉब्स्टरों में जैसे **होमैरस** (*Homrous*) में नौप्लियस और ज़ोइया अंडे में ही गुजरते हैं, यह एक माइसिस लार्वा के रूप में बाहर आता है जो वयस्क में बदल जाता है।
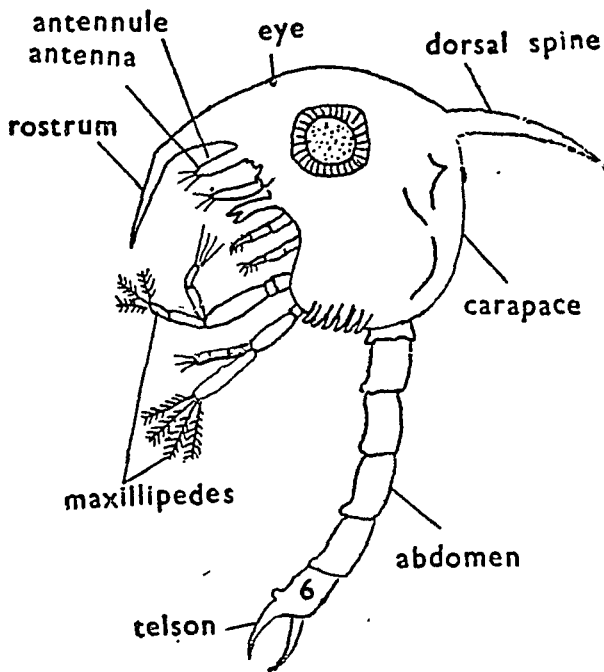
चित्र 330. केकड़े का ज़ोइया।

Rostrum, रॉस्ट्रम; antenna, ऐंटेना; antennule, ऐंटेन्यूल; eye, आँख; dorsal spine, पृष्ठ कंटिका; carapace, कैरापेस; abdomen, उदर; telson, टेल्सॉन; maxillipedes, मैक्सिलिपीड।

(ञ) **मेगालोपा** (Megalopa) **लार्वा** में एक बड़ा अखंड शिरोवक्ष होता है जिसमें केकड़े की तरह सभी 13 जोड़ी उपांग मौजूद होते हैं, उदर सीधा और शिरोवक्ष की रेखा में होता है, यह झींगा के उदर-जैसा होता है जिसमें 6 जोड़ी

सुविकसित तरणपाद होते हैं। केकड़ों में नौप्लियस अवस्था अंडे के भीतर गुज़रती है, ज़ोइया अंडे से बाहर आता है जो निर्मोचित होकर मेगालोपा अवस्था बनाता है, मेगालोपा में निर्मोचन होकर वयस्क बन जाता है।

डेकापोडा में परिवर्धन का एक क्रमिक संक्षेपण (abbreviation) हो जाता है। जो अवस्थाएँ निम्नतर क्रस्टेशिया में स्वच्छन्द लार्वा-रूप में होती हैं वे स्फोटन से पहले ही जल्दी-जल्दी अण्डे के भीतर एक के बाद एक पार होती जाती हैं।
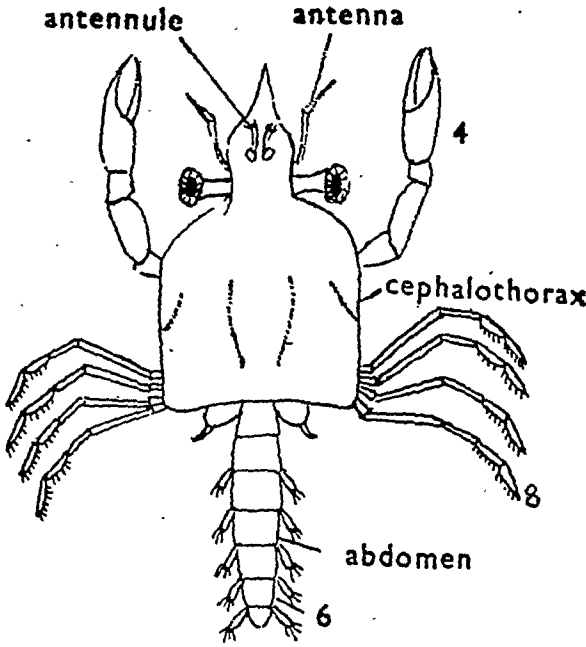
चित्र 331. केकड़े का मेगालोपा।

Antennule, ऐन्टेन्यूल; antenna, ऐन्टेना; cephalothorax, शिरोवक्ष; abdomen, उदर।

3. एपस (*Apus*) (टैडपोल-श्रिम्प)—यह सारे विश्व में अलवणजल में पाया जाता है, यह 2 से 3 cm. लम्बा होता है। शरीर में अखण्ड शीर्ष और सखंड वक्ष एवं उदर होते हैं। पृष्ठ सतह के अगले दो-तिहाई भाग के ऊपर एक पतला घोड़े की नाल की आकृति का कैरापेस चढ़ा होता है। कैरापेस की पृष्ठ सतह पर 3 अवृंत आँखें होती हैं, और उनके पीछे एक **पृष्ठ अंग** (dorsal organ) होता है जिसके कार्य के बारे में जानकारी नहीं है। पृष्ठ अंग के पीछे एक अनुप्रस्थ **ग्रीवा-खाँच** (cervical groove) होती है और फिर उसके पीछे एक जोड़ी बड़ी उत्सर्गी **मैक्सिलीय ग्रन्थियाँ** (maxillary glands) होती हैं। अधरतः कैरापेस से एक मध्य **उपललाट प्लेट** (subfrontal plate) बन जाती है जो पीछे की ओर को एक लेब्रम के रूप में बढ़ी हुई होती है। ग्रीवा-खाँच के सामने का क्षेत्र **शीर्ष** होता है जिसके ऊपर युग्मित ऐन्टेन्यूल, अवशेषी ऐन्टेना, दन्तयुक्त मैंडिबल तथा दो जोड़ी मैक्सिला होते हैं।

कैरापेस केवल ग्रीवा-खाँच तक ही चिपका हुआ होता है उसके पीछे यह मुक्त होता है। वक्ष में 11 खण्ड होते हैं, हर खंड में एक जोड़ी पर्णपाद होते हैं, ग्यारहवें खंड में नर और मादा दोनों ही में जनन-छिद्र होते हैं। उदर में 22 खंड होते हैं, प्रथम दो खण्डों में उपांग नहीं होते, उसके अगले 15 खण्डों में से हर एक में 2 से 5 जोड़ी पर्णपाद होते हैं, अन्तिम 5 खण्डों में कोई उपांग नहीं होते। उदर के अन्त में दो लम्बी पुच्छ-शाखाओं से युक्त एक टेल्सॉन होता है।

एपस उल्टा पेट को ऊपर करके तैरते हुए आहार करता है, इस आहार करने में वह जल को अपने पर्णपादों में से छानता जाता है, आहार एक खाँच में से होकर
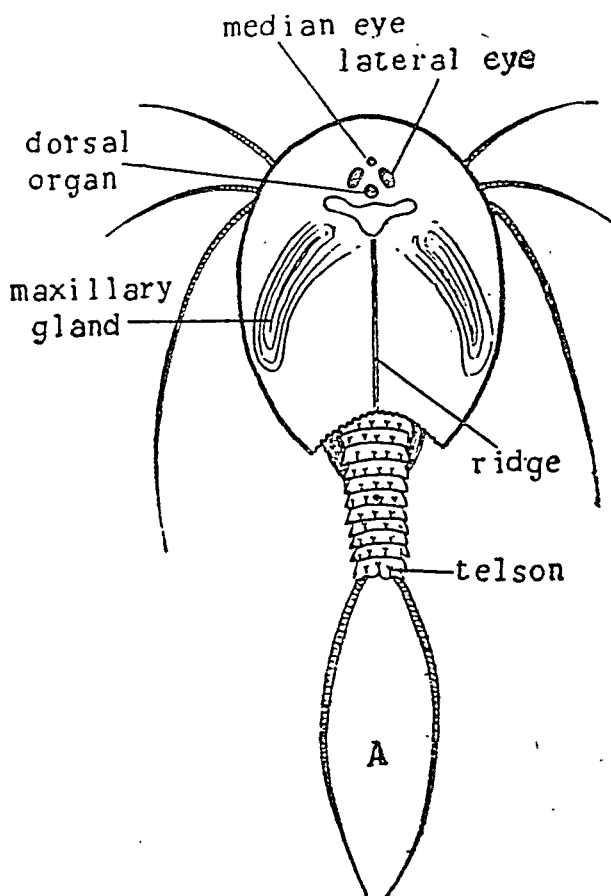
चित्र 332. एपस कैंक्रिफॉर्मिस (*Apus cancriformis*) (पृष्ठ दृश्य)।
Median eye, मध्य आँख; lateral eye, पार्श्व आँख; dorsal organ, पृष्ठ अंग; maxillary gland, मैक्सिलीय ग्रन्थि; ridge, कटक; telson, टेल्सॉन।

चलता जाता है, यह खाँच अधर सतह पर चलती हुई मुँह तक पहुँचती है, यह अपने शीर्ष की निचली सतह को तली में लगा कर भी भोजन करता है। आहार में छोटे आकार के जीवित और मृत जन्तु तथा पौधे एवं अपरद होता है। नर विरल होते

हैं तथा जनन अनिषेकजननी (parthenogenetic) होता है; मादा अपने अण्डों को ग्यारहवें खण्ड के एक जोड़ी कोष्ठों में लिए हुए घूमती फिरती है। शिशु एक मेटानौप्लियस अवस्था में जन्म लेते हैं जो वयस्कों में परिवर्तित हो जाते हैं।

चित्र 333. एपस कॅक्रिफ़ॉमिस (*Apus cancriformis*) (अधर दृश्य) Abdominal phyllopodia, उदरीय पर्णपाद; caudal ramus, पुच्छीय शाखा।

4. **डैफ्निया** (*Daphnia*) (जल-पिस्सू)—यह 1 से 2 mm. आकार का होता है, यह सारे विश्व में अलवणजल के तालाबों और नालों में होता है। इसका मामूली-सा लाल रंग होता है जो इसके रक्त में हीमोग्लोबिन होने के कारण होता है। हीमोग्लोबिन की उपस्थिति जल की ऑक्सीजन की मात्रा पर निर्भर होती है जैसे सुवायवित जल में ये प्राणी रंगहीन होते हैं और बन्द अर्थात् रुके हुए पानी में लालीपन लिये हुए होते हैं। हीमोग्लोबिन का संश्लेषण एवं विघटन वसा-कोशिकाओं के द्वारा होता है। खण्डों की संख्या में ह्रास हो गया है, अतः खण्डीभवन अस्पष्ट होता है। शरीर में एक शीर्ष तथा एक वक्ष होता है, वास्तविक उदर नहीं होता लेकिन एक ऐब्रेप्टर (abreptor) होता है। शीर्ष 5 समेकित खण्डों का बना होता है, इसमें एक अधर चोंच होती है और दो संयुक्त नेत्र एक में समेकित हो जाते हैं, शीर्ष के पार्श्वों में संवेदी

न्यूकल अंग (nuchal organs) बने होते हैं जो कोशिकाओं के समूह होते हैं। शीर्ष पर छोटे ऐन्टेन्यूल होते हैं तथा बहुत बड़े द्विशाखी ऐन्टेना होते हैं जिनमें एक शाखा में 3
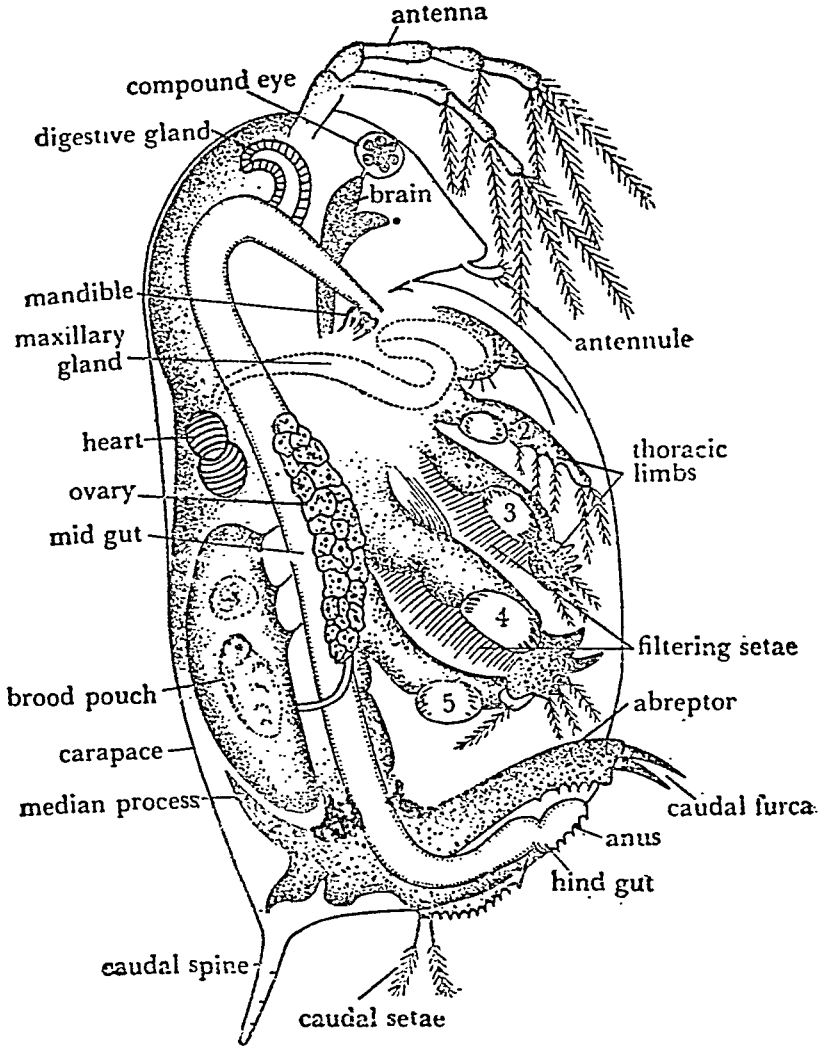
चित्र 334. डैफ़्निया (मादा) (1—5 तैरने वाले पाँव)।

Antenna, ऐन्टेना; compound eye, संयुक्त नेत्र; digestive gland, पाचन-ग्रन्थि; brain, मस्तिष्क; mandible, मैंडिबल; antennule, ऐन्टेन्यूल; maxillary gland, मैक्सिलीय ग्रन्थि; heart, हृदय; ovary, अण्डाशय; midgut, मध्यांत्र; brood pouch. भ्रूण-कोष्ठ; carapace, कैरापेस; median process, मध्य प्रवर्ध; caudal spine, पुच्छ-कंटिका; caudal setae, पुच्छ-शूक; hindgut, पश्चांत्र; anus, गुदा; caudal furca, पुच्छ-द्विभुज; abreptor ऐब्रेप्टर; filtering setae, छननी शूक; thoracic limbs, वक्ष उपांग।

सन्धियाँ और दूसरी शाखा में चार संधियाँ होती हैं जिन पर लम्बे पिच्छाकार शूक होते हैं। ऐन्टेना तैरने में काम आते हैं। दो बड़े मैंडिबल होते हैं, एक जोड़ी मैक्सिल्यूला होते हैं लेकिन मैक्सिला वयस्क में नहीं होते। धड़ एक द्विकपाटी कैरापेस में बन्द होता है, लेकिन शीर्ष इसमें बन्द नहीं होता, कैरापेस में पिछली दिशा में एक **पुच्छीय कंटिका** बनी होती है। कैरापेस के हर कपाट में एक उत्सर्गी **मैक्सिलीय ग्रंथि** होती है जिसकी वाहिनी मैक्सिल्यूला के पीछे खुलती है। वक्ष में पांच जोड़ी पत्ती-जैसे **तैरने वाले पाँव** होते हैं। उदर नहीं होता लेकिन एक मिथ्या उदर अथवा **ऐब्रेप्टर** होता है जो नीचे को मुड़ा हुआ और कैरापेस के भीतर पड़ा रहता है, इसके अन्त पर एक पंक्ति में कंटिकाएँ बनी होती हैं और एक अन्तस्थ **पुच्छ-द्विभुज** अथवा टेल्सॉन होता है, पश्चत: उदर में दो लम्बे पिच्छाकार **पुच्छ-शूक** (caudal setae) बने होते हैं। ऐब्रेप्टर सतत गति करता हुआ भीतर घुस आने वाले कणों को बाहर की ओर फेंकता रहता है।

मुख अधर होता है, यह एक वक्र ग्रसिका में खुलता है जिसमें एक जोड़ी **पाचन-ग्रंथियाँ** होती हैं जिनसे एन्ज़ाइम निकलते हैं। ग्रसिका एक मध्यांत्र से जुड़ी होती है जिसमें एक **परिखाद्य झिल्ली** (peritrophic membrane) होती है, मध्यांत्र एक पश्चांत्र में खुलती है जो अन्त में ऐब्रेप्टर के समीप बनी एक गुदा के द्वारा बाहर खुलती है। मध्यांत्र की पृष्ठ दिशा में एक थैलानुमा हृदय होता है जिसमें एक जोड़ी ऑस्टिया होते हैं। एक जोड़ी वृषण अथवा अण्डाशय मध्यांत्र के पार्श्व में पड़े होते हैं। वृषणों से निकली शुक्रवाहिकाएँ टेल्सॉन के नीचे खुलती हैं; मादा में अण्डाशयों से निकली अण्ड-वाहिनियाँ एक **भ्रूण-कोष्ठ** (brood pouch) में खुलती हैं जो कैरापेस के नीचे पड़ा हुआ एक थैला होता है। वक्ष-उपांग भोजन-प्राप्ति में विविध कार्यों के लिए इस्तेमाल होते हैं, तीसरी और चौथी जोड़ी जल को पम्प करने और उसमें से आहार के बारीक़ कणों को एकत्र करने का कार्य करती हैं, पहली और दूसरी जल को छानने तथा बड़े कणों को भीतर आने से रोकती हैं। पाँवों के सम्मिश्र शूक आहार-कणों को एक मध्य-अधर **आहार खांच** में से मुख की ओर को चलाते जाते हैं, ये सूक्ष्म कण लेब्रम के स्राव द्वारा गोलियों के रूप में चिपक जाते हैं और इन गोलियों को निगल लिया जाता है।

जनन लैंगिक तथा अनिषेकजननी दोनों विधियों से होता है। जब परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो अण्डे पतले कवच वाले तथा बहुत कम पीतक-मात्रा वाले बनते हैं, ये भ्रूण-कोष्ठ में अनिषेकजनन रूप में परिवर्धित होते हैं। परिस्थितयाँ प्रतिकूल हों तो अंडे मोटे कवच वाले तथा अधिक पीतक-मात्रा वाले होते हैं, ये नरों द्वारा निषेचित होते तथा भ्रूण-कोष्ठ में एक वयूटिकली थैले में विकसित होते हैं, इस थैले को **एपहिप्पियम** (ephippium) कहते हैं। अगले निर्मोचन के समय यह एपहिप्पियम गिरा दिया जाता है, इसके भीतर अण्डे ठंड से जमने अथवा सूख जाने से सुरक्षित रहते हैं अनुकूल परिस्थितियाँ लौट आने पर इन अण्डों में से बच्चे निकल आते हैं। मादाओं की अपेक्षा नर थोड़ी संख्या में और छोटे आकार के होते हैं। अनेक पीढ़ियों तक कोई नर नहीं होते और जनन निरन्तर अनिषेक विधि से ही होता रहता है, बीच-बीच में गर्मियों में जब परिस्थितियाँ खराब हो जाती हैं तो नर प्रकट होते हैं और तब

लैंगिक एवं अनिषेकजनन दोनों ही प्रकार से जनन होता जाता है। यह महत्त्व की बात है कि अनिषेकजनन कभी भी पूर्णतः स्थगित नहीं होता।

इस प्राणी में प्रायः विभिन्न मौसमों में देह की आकृति में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। वसन्त के बाद शीर्ष गोल से नुकीली आकृति का हो जाता है, फिर शरद से पूर्व यह पुनः अपनी सामान्य गोल आकृति में आ जाता है। इस परिवर्तन क्रम को **चक्ररूपण** (cyclomorphosis) कहते हैं, और इसका होते रहना आंतरिक परिस्थितियों एवं बाहरी कारकों के कारण होता है।

एक सम्बन्धित जीनस **साइमोसेफेलस** (*Simocephalus*) भी अलवणजल में बहुत आम पाया जाता है, यह **डैफ़्निया** जैसा होता है लेकिन पुच्छ कंटिका के न होने तथा शीर्ष के पीछे एक ग्रीवा खाँच के बने होने के लक्षणों में उससे भिन्न होता है।

5. **साइक्लॉप्स** (*Cyclops*) (जल-पिस्सू)—यह सारे विश्व में अलवणजल तथा नुनखराजल के तालाबों एवं नालियों में पाया जाता है, यह लगभग 2 mm. लम्बा और एक लम्बे नाशपाती के आकार के शरीर वाला होता है जिसमें एक स्तम्भ-सा बना होता है, रंग में यह कुछ-कुछ हरा-सा होता है। देह दो भागों में विभाजित होता है एक तो अगला भाग जो एक काइटिनी शील्ड में बन्द होता है और एक पिछला भाग जो सखण्ड होता है। अग्र भाग में एक **शीर्ष** होता है, जो पहले दो वक्ष-खण्डों के साथ समेकित होकर एक शिरोवक्ष बनाता है, जो एक कैरापेस से ढका होता है, यह कैरापेस आगे को एक **रॉस्ट्रम** में को निकला होता है। शिरोवक्ष की अग्रपृष्ठ दिशा पर एक **मध्य आँख** होती है जिसमें तीन नेत्रक होते हैं। **वक्ष** के अगले पाँच खण्ड मुक्त होते हैं, लेकिन अन्तिम खण्ड केवल मादाओं में पहले उदर खण्ड के साथ समेकित होता है, इस खण्ड के ऊपर दो अण्डवाहिनियों के छिद्र बने होते हैं जिन पर वाल्व ढके होते तथा दो बड़े **अण्ड-थैले** (egg-sacs) होते हैं। **उदर** में 3 खण्ड होते हैं तथा एक अन्तिम टेल्सॉन होता है जिस पर एक गुदा और एक जोड़ी **पुच्छ-द्विभुज** होता है, इस पुच्छ-द्विभुज पर पिच्छाकार शूक बने होते हैं। शीर्ष के उपांग एक जोड़ी बड़े 17 खण्डी ऐन्टेन्यूल होते हैं जो तैरने में काम आते हैं तथा नर में मैथुन के वास्ते आलिंगक (clasping) अंगों के रूप में रूपान्तरित होते हैं, एक जोड़ी एकशाखी ऐन्टेना होते हैं, दन्तयुक्त मैंडिबल, द्विशाखी मैक्सिल्यूला और एक-शाखी मैक्सिला होते हैं, मैक्सिलाओं पर उत्सर्गी मैक्सिलीय ग्रन्थियों की वाहिनियाँ खुलती हैं। वक्ष में 4 जोड़ी द्विशाखी टाँगें होती हैं जो मध्य में **योजक** (coupler) नामक प्लेटों द्वारा जुड़ी होती हैं, पाँचवीं जोड़ी उपांग मूलांगी होते हैं। वक्ष-टाँगों के द्वारा सहसा झटके वाली गतियाँ होती हैं। उदर में उपांग नहीं होते।

परिसंचरण अथवा श्वसन अंग नहीं होते, पेशियों द्वारा आहार-नाल के हिलने-डुलने से रक्त को गति मिल जाती है, श्वसन देह की सतह द्वारा होता है और साथ ही मलाशय भी श्वसन के लिये जल को भीतर ले लेता है। चलन दो प्रकार का होता है, एक तो ऐंटेन्यूलों एवं ऐंटेनाओं द्वारा धीमा-धीमा तैरना और दूसरा वक्ष उपांगों के द्वारा तीव्रता से तैरना।

मादा में जनन अंगों में एक अकेला **अण्डाशय** होता है जिसमें से दो अण्ड-वाहिनियाँ निकलती हैं, अण्डवाहिनियों के प्रारम्भिक भागों से एक वड़ा विशाखित **गर्भाशय** बन जाता है, अण्डवाहिनियाँ पीछे को चलती जाती हैं और उनमें अन्तिम
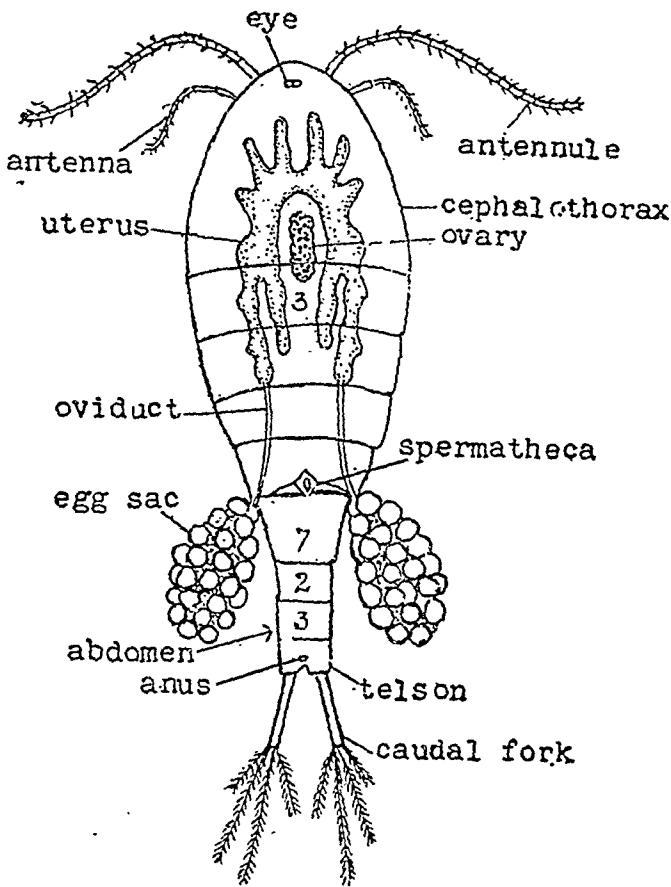
चित्र 335. **साइक्लॉप्स** (मादा)।

Eye, आँख; antenna, ऐंटेना; antennule, ऐंटेन्यूल; uterus, गर्भाशय; cephalothorax, शिरोवक्ष; ovary, अण्डाशय; oviduct, अंडवाहिनी; spermatheca, शुक्रग्राही; egg-sac, अण्डा-थैला; abdomen, उदर; anus, गुदा; telson, टेल्सॉन; caudal fork, पुच्छ द्विभुज।

वक्ष-खण्ड में एक अकेले शुक्रग्राही से वाहिनियाँ आकर मिलती हैं, उसके वाद अंड-वाहिनियाँ अण्डा-थैलों में मिल जाती हैं जिनमें परिवर्धनशील अण्डे भरे होते हैं। नर में कैरापेस के नीचे एक अकेला वृषण होता है, वृषण से निकलती हुई दो कुण्डलित शुक्रवाहिनियाँ होती हैं जिनके अन्तिम भागों में शुक्राणु एक साथ आ-आकर शुक्राणुधरों में एकत्रित होते जाते हैं, यह भाग हर पार्श्व में एक फूले हुए शुक्राशय में खुलता है जहाँ शुक्राणुधर संचित होते रहते हैं, शुक्राशय अन्तिम वक्ष-खण्ड पर नर जननछिद्रों के द्वारा वाहर को खुलते हैं। निषेचित अण्डा एक नौप्लियस के रूप में

स्फोटित होता है जिसके बाद में कई मेटानौप्लियस अवस्थाएँ आती हैं, फिर परिवर्तन होकर साइक्लॉप्स अवस्था आ जाती है जो वयस्क के समान होती है लेकिन तीसरे वक्ष-उपांग के पीछे कोई और उपांग नहीं होते; तथा उदर अखण्ड होता है। पाँचवें निर्मोचन के बाद साइक्लॉप्स अवस्था वयस्क में बदल जाती है।

साइक्लॉप्स एक मानव फ़ीताकृमि **डाइफ़िलोबोथ्रियम** (*Diphyllobothrium*) का मध्यस्थ परपोषी होता है जिसके भीतर उसका प्रोसर्कायड लार्वा पाया जाता है; इसमें एक गोल-कृमि **ड्रैकनकुलस** का लार्वा रहता है यह गोल-कृमि मनुष्य में व्रण (फोड़े) पैदा कर देता है।

6. **साइप्रिस** (*Cypris*)—यह लगभग 2 mm. लम्बा और स्थिर तालाबों में पाया जाता है। कैरापेस एक **द्विकपाटी कवच** होता है जो दोनों कवचों के बीच में अनुप्रस्थशः पड़ी हुई एक अभिवर्तनी पेशी के द्वारा बन्द हो जाता है। कवच के ऊपर एक मध्य आँख होती है। कवच के भीतर एक अखण्ड शरीर बन्द रहता है। शीर्ष पर पाँच जोड़ी उपांग होते हैं जो इस प्रकार हैं: बड़े आकार के ऐन्टेन्यूल, बड़े द्विशाखी ऐन्टेना, पैल्पों से युक्त मैंडिबल, मैक्सिल्यूला तथा जबड़ा-जैसे मैक्सिला। वक्ष में दो जोड़ी टाँगें होती हैं। उदर में एक जोड़ी छोटे पुच्छ-शरों को छोड़कर कोई और उपांग नहीं होता। यह तैरता है और शेवालों, छोटे जन्तुओं तथा अपरद आदि को खाता रहता है, बड़े कण कवच में ऐन्टेनाओं तथा मैंडिबलों के द्वारा भीतर ले जाये जाते हैं, सूक्ष्म कण मैक्सिलाओं के द्वारा भीतर पहुँचते हैं और ये आहार मुख में को पहुँचा दिये जाते हैं। पहली जोड़ी टाँगें रेंगने में और दूसरी जोड़ी साफ़ करने में इस्तेमाल होती हैं।
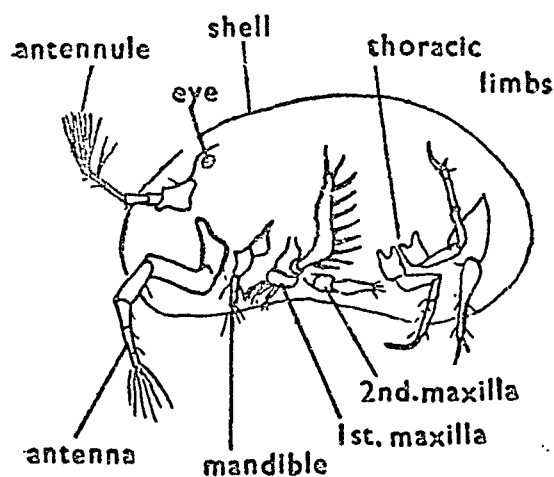
चित्र 336. साइप्रिस जिसका बायाँ कवच कपट हटा दिया गया है।
Antenna, ऐन्टेना; antennule ऐन्टेन्यूल; eye, आँख; shell कवच; thoracic limbs, वक्ष-पाँव; mandible, मैंडिबल; maxilla, मैक्सिला।

7. **लेपस** (*Lepas*) (गूज़-वार्नेकल)—यह सभी समुद्रों में पाया जाता है और लट्ठों, कछुओं तथा जहाज़ों के ऊपर समूहों में चिपका रहता है। यह एक सलवट पड़े **वृन्तक** (peduncle) द्वारा लटका रहता है जो कि प्राणी के शीर्ष के अग्र सिरे का प्रतिदर्श है। शरीर जिसे **कैपिटुलम** (capitulum) कहते हैं एक कैरापेस में बन्द रहता है; यह कैरापेस पाँच कैल्सिकृत प्लेटों का बना होता है; एक मध्य पृष्ठ **कैराइना** (carina), दो बड़े **स्कूटम** (scutum), और दो

दूरस्थ **टर्गम** (tergum) होते हैं। दोनों स्कूटमों के बीच में एक अभिवर्तनी पेशी
होती है, यह कैरापेस को वन्द कर सकती है। शीर्ष और धड़ में कोई खण्ड नहीं
वने होते। शीर्ष पर अवशेषी ऐन्टेन्यूल होते हैं जो वृन्तक के चिपके हुए सिरे पर
डिस्क-जैसे होते हैं, ये उस सीमेंट में गड़े होते हैं जो वृन्तक में पड़ी हुई दो **सीमेंट**
ग्रन्थियों से बनता है, इनकी वाहिनियाँ ऐन्टेन्यूलों पर खुलती हैं। ऐन्टेना नहीं होते,
मैंडिबलों में एक-एक पैल्प होता है, मैक्सिल्यूला सरल होते हैं, मैक्सिला रोमिल होते
हैं। मैक्सिलाओं के सामने एक सुस्पष्ट मुख होता है जिसके ऊपर से एक बड़ा लेब्रम
आया होता है। **वक्ष** में छः जोड़ी समान द्विशाखी पैर अथवा **सिरस** (cirrus) होते
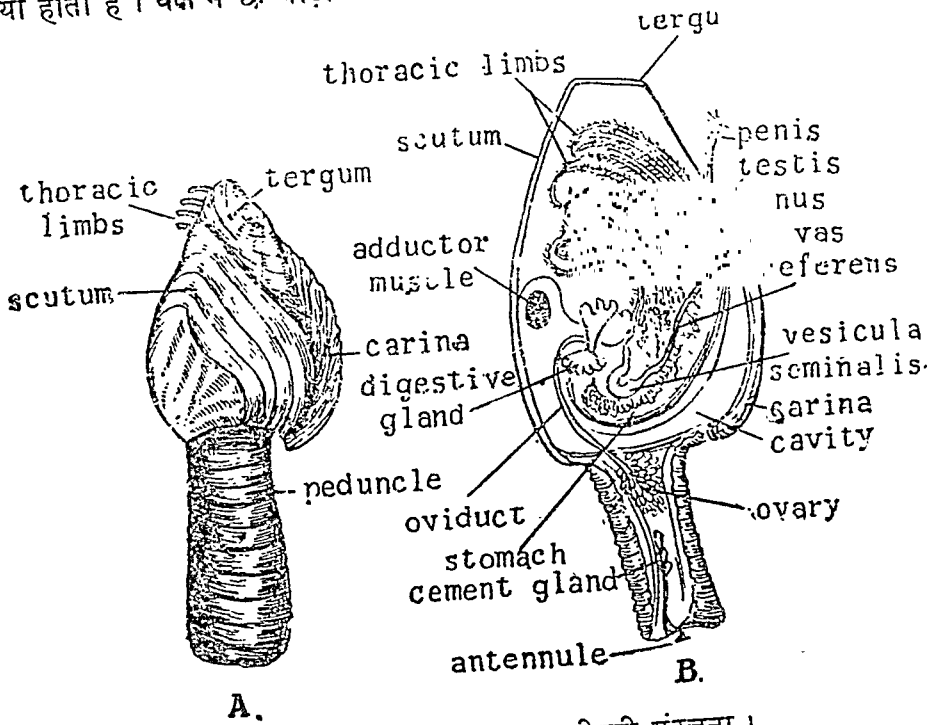
चित्र 337. A—लेपस; B—भीतरी संरचना।
Thoracic limbs, वक्ष पाद; tergum, टर्गम; scutum,, स्कुटम;
penis, शिश्न; testis, वृषण; anus, गुदा; vas deferens, शुक्र-
वाहिका; vesicula seminalis, शुक्राशय; carina, कैराइना; cavity,
गुहा; ovary, अण्डाशय; antennule, ऐन्टेन्यूल; cement gland, सीमेंट
ग्रन्थि; stomach, आमाशय; oviduct, अण्डवाहिनी; digestive
gland, पाचन-ग्रन्थि; adductor muscle, अभिवर्तनी पेशी।

हैं। इन सिरसों के पीछे एक लम्बा अधर **शिश्न** होता है। उदर नहीं होता, लेकिन
शिश्न के पीछे एक गुदा होती है जिसके साथ-साथ दो अवशेषी पुच्छ-शाखाएँ होती
हैं। हृदय नहीं होता। सिरसों को बाहर की तरफ निकाल-निकाल कर और फिर
उन्हें भीतर की ओर खींच कर आहार कण एकत्र किये जाते हैं जिन्हें प्राणी
खाता है।

लेपस उभयलिंगी होता है, अण्डाशय वृन्तक में पड़े होते हैं और अण्ड-वाहिनियाँ पहले जोड़े वक्ष-सिरसों के ऊपर खुलती हैं। विशाखित वृषण सिरसों के समीप होते हैं, हर वृषण से एक शुक्रवाहिका निकलती है, यह एक शुक्राशय बनाती है जो शिश्न में प्रविष्ट हो जाता है। शिश्न अपने पड़ोसी प्राणियों के भीतर शुक्राणु छोड़ देता है, और इस प्रकार परनिषेचन हो जाता है। निषेचित अण्डे में से नॉप्लियस निकलता है जिसमें ललाट-सींग (frontal horns) होते हैं, इसमें निर्मोचन होकर एक साइप्रिस अवस्था बनती है, इसके ऐन्टेन्यूलों में एक-एक डिस्क होती है और एक-एक सीमेंट-ग्रन्थि होती है, साइप्रिस ऐन्टेन्यूलों द्वारा चिपक जाता है, शरीर कवच के भीतर घूम जाता है, मुखपूर्व प्रदेश लम्बा होकर एक वृन्तक बना लेता है, कवच-प्लेटें बन जाती हैं, उदर विलीन हो जाता, तथा वयस्क आकृति प्राप्त हो जाती है।

8. **बैलैनस** (*Balanus*) (एकॉर्न बार्नेकल)—यह बिना वृन्त का होता है और हर समुद्र में चट्टानों पर अपने अगले चौड़े सिरे द्वारा चिपका रहता है। शरीर के चारों तरफ़ 6 कैल्सियमी प्लेटों का बना एक **मुंडेरा** (parapet) होता है, इस मुंडेरे के ऊपर एक ढकना होता है जो कैरापेस में पड़े **स्कुटम** और **टर्गम** का बना होता है। चिपके हुए सिरे पर सीमेंट-ग्रन्थियों से युक्त दो अवशेषी ऐन्टेन्यूल
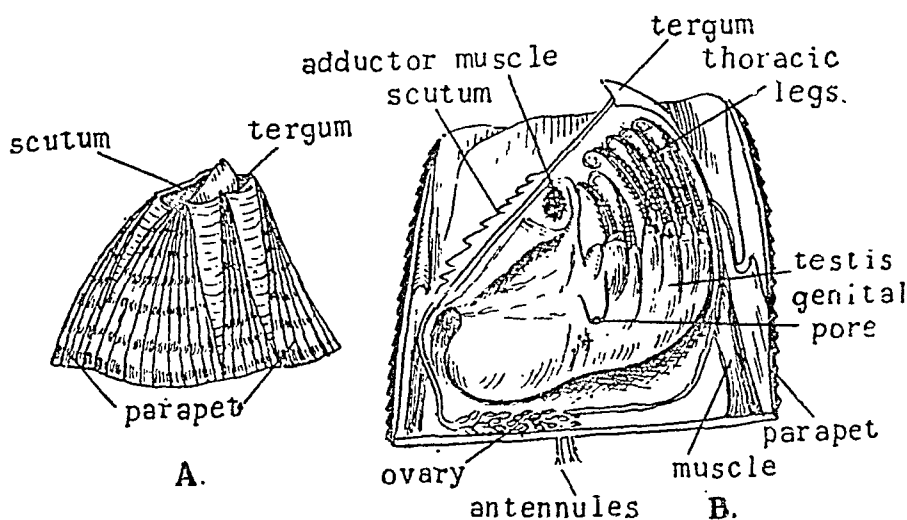
चित्र 338. A—**बैलैनस**। B—आंतरिक रचना।

Scutum, स्कुटम; tergum टर्गम; parapet, मुंडेरा; adductor muscle, अभिवर्तनी पेशी; thoracic legs, वक्ष टाँगें; testis, वृषण; genital pore, जनन-छिद्र, ovary, अंडाशय; antennules, ऐन्टेन्यूल; muscle, पेशी।

होते हैं, ऐन्टेना नहीं होते, मैंडिबल, मैक्सिल्यूला तथा मैक्सिला पाये जाते हैं। वक्ष में छः द्विशाखी टाँगें अथवा **सिरस** होते हैं, उदर नहीं होता। यह सिरसों द्वारा भोजन

प्राप्त करता है । यह जन्तु उभयलिंगी है । अंडे में से नौप्लियस निकलता है, उससे एक साइप्रिस अवस्था बनती है जो अपने ऐन्टेन्यूलों तथा सीमेंट ग्रन्थियों के द्वारा चिपक जाती है । साइप्रिस से वयस्क बन जाता है ।

9. **सैकुलाइना** (*Sacculina*)—यह केकड़ों के ऊपर परजीवी होता है जिनमें यह वक्ष और उदर के बीच चिपका रहता है । यह एक थैले के समान होता है जिसमें एक वृन्त होता है और इस वृन्त में से जड़ें निकली होती हैं जो परजीवी के शरीर में दूर-दूर तक फैली होकर पोषण को सोखती रहती हैं । इसमें कोई खण्डीभवन, आहार-नाल अथवा उपांग नहीं होते, लेकिन इसमें एक गैंग्लियॉन होता है तथा अण्डाशय एवं वृषण से युक्त होते हुए यह उभयलिंगी होता है ।

अण्डे में से एक नौप्लियस निकलता है जिसमें ललाट-सींग होते हैं लेकिन कोई मुख अथवा आहार-नाल नहीं होते, यह एक साइप्रिस अवस्था में पहुँच जाता है जिसमें थोड़े से ही काल के स्वच्छंद जीवन के बाद वह अपने ऐन्टेन्यूल के द्वारा किसी बच्चा-केकड़े के शूक अथवा उसकी त्वचा पर उस समय चिपक जाता है जबकि वह ताज़ा-ताज़ा निर्मोचन किया हुआ हो और उसकी खाल यानी क्यूटिकल नरम हो । परजीवी अपने उपांगों से युक्त सम्पूर्ण धड़ को उतार फेंकता है, शेष शरीर
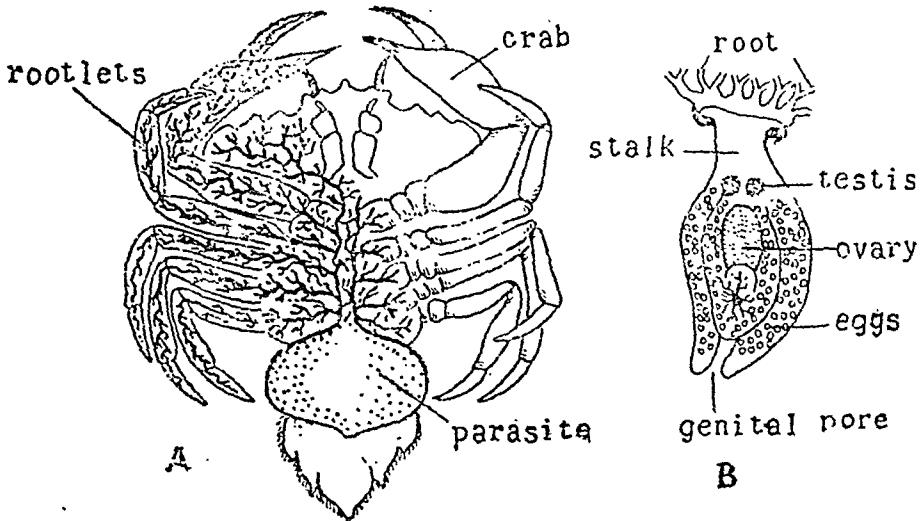
चित्र 339. केकड़े के ऊपर सैकुलाइना B-सैकुलाइना का खड़ा सेक्शन (V.S) Rootlets, मूलिकाएँ (महीन जड़ें); crab, केकड़ा; parasite, परजीवी, root, जड़; stalk, वृंत; testis, वृषण; ovary, अण्डाशय; eggs, अण्डे; genital pore, जनन-छिद्र ।

कोशिकाओं की एक गोल संहति के रूप में बदल जाता है । ऐंटेन्यूल परपोषी की देह में सूराख़ करते हैं और इस जोड़ में से होकर कोशिकाओं की संहति केकड़े के शरीर के भीतर पहुंच जाती है, यह संहति रक्त के साथ-साथ भीतर घूमती-फिरती और अन्त में अन्तड़ी के ऊपर आ चिपकती है । उससे फिर जड़ें निकलती हैं जो

बढ़कर परपोषी के वक्ष, टाँगों और कीलाओं तक फैलकर पहुँच जाती हैं। परजीवी केकड़े के उदर की खाल पर दबाव डालता जाता है, केकड़े के अगले निर्मोचन पर परजीवी उदर के नीचे एक थैले-जैसे वयस्क प्राणी के रूप में बाहर उभर आता है जो एक वृन्त तथा जड़ों के द्वारा अपने परपोषी से जुड़ा रहता है।

सैकुलाइना द्वारा परजीवित केकड़ों में द्वितीयक लैंगिक लक्षणों में परिवर्तन आ जाता है। मादा-केकड़ा शिशु-प्रकार की ओर परिवर्तित हो जाती है। नर-केकड़े में उदर चौड़ा हो जाता, मैथुन-शर छोटे हो जाते और उदरीय तरणपाद बन जाते हैं—इस प्रकार नर में मादा की ओर बदल जाने की प्रवृत्ति होती है। इन परिवर्तनों को **परजीवी बंध्यकरण** (parasitic castration) कहते हैं जिसमें परजीवी के कारण परपोषी के चयापचय में गड़बड़ तथा हार्मोन-असंतुलन पैदा हो जाता है।
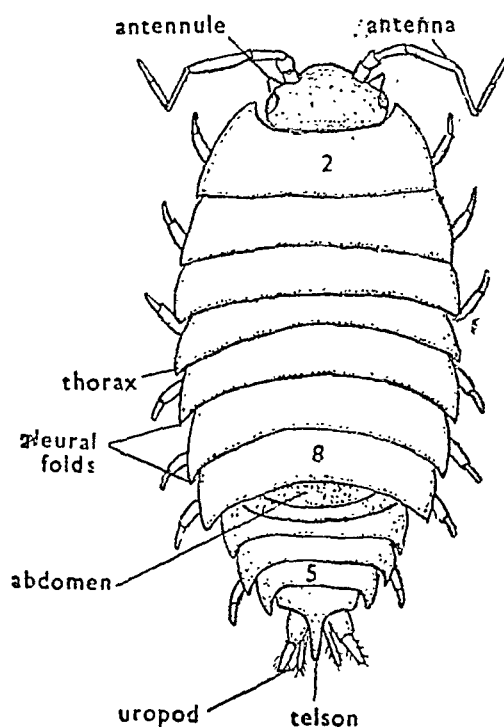
चित्र 340. **ओनिस्कस।**
Antennule, ऐंटेन्यूल ; antenna, ऐंटेना; thorax, वक्ष; pleural fold, पार्श्व वलन; abdomen, उदर; uropod, पुच्छपाद; telson, टेलसॉन।

10. **ओनिस्कस** (*Oniscus*) (काष्ठ-जूँ) यह सारे विश्व में एकान्त पड़े पत्थरों, ह्यूमस तथा मृत लकड़ी और छाल आदि के नीचे रहता पाया जाता है। देह पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा होता है और उसमें शीर्ष, वक्ष तथ उदर के तीन प्रदेश पाए जाते हैं। शीर्ष में 5 समेकित खंड होते हैं, वक्ष में 8 खंड होते हैं जिसमें से पहला खंड शीर्ष के साथ समेकित होता है, उदर में 6 खण्ड होते हैं जिनमें से आखिरी खण्ड अन्तस्थ टेलसॉन से समेकित होता है। वक्षीय एवं उदरीय खण्डों के दायें-बायें सीमांत पार्श्व वलनों के रूप में अगल-बगल निकले हुए होते हैं। शीर्ष के ऊपर ये रचनाएँ होती हैं, एक जोड़ी अवृंत आँखें, बहुत छोटे ऐंटेन्यूल; लंबे 8-सन्धि वाले ऐंटेना, दंतुरित गहरे रंग के मैंडिबल, छोटे मैक्सिल्यूला तथा मैक्सिला। वक्ष में एक जोड़ी मैक्सिलिपीड और 7 जोड़ी चर टाँगें होती हैं जिनमें से प्रत्येक टाँग के अन्त में एक हुक बना होता है। उदर में 5 जोड़ी द्विशाखी चपटे तरणपाद होते हैं, जिनमें वातिका-सरीखी श्वसन नलिकाएँ होती हैं, इन नलिकाओं में वायु-गुहाएँ होती हैं, जो जन्तु को थल

के ऊपर जीवन बिताने योग्य बनाती हैं। नर में हर एक दूसरे तरणपाद पर एक पुंप्रवर्ध निकला होता है जो शुक्राणुधरों को मादा के भीतर पहुँचाता है। छठे उदर खण्ड में एक जोड़ी पुच्छपाद होते हैं जो एक छोटे नुकीले टेल्सॉन के अगल-बगल पड़े होते हैं। मादा में दूसरे से छठी जोड़ी वक्ष-टाँगों में **ऊस्टेगाइट** (oostegite) यानी अण्डों को टिकाए रखने वाली रचनाएँ बन जाती हैं जो एक **भ्रूण-कोष्ठ** (brood pouch) बनाती हैं, इस भ्रूण-कोष्ठ में अण्डे और भ्रूण तब तक रखे रहते हैं जब तक कि उनमें वयस्क रूप नहीं प्राप्त हो जाता। **ओनिस्कस** से मिलती-जुलती अन्य जीनसों में **पार्सेलियो** (*Parcellio*) (स्थलीय), **ऐसेलस** (*Asellus*) (अलवणजलीय) और लिगिया (*Ligia*) (समुद्री) हैं।

11. **माइसिस** (*Mysis*)—यह समुद्री होता है लेकिन कुछ स्पीशीज़ अलवण-जलीय झीलों में भी पाई जाती हैं। यह 5 mm. लम्बा और कुछ-कुछ काँच-जैसा पारदर्शी होता है। यह छन्ना-विधि द्वारा छोटे जन्तुओं एवं पौधों का आहार करता है। कैरापेस का अस्तर श्वसनीय होता है। देह श्रिम्प-जैसा होता है जिसमें शिरो-वक्ष के ऊपर एक कैरापेस होता है। कैरापेस के ऊपर एक **मैंडिबलीय खांच** होती है। शीर्ष में 5 समेकित खंड होते हैं, इस पर एक जोड़ी सवृंत संयुक्त नेत्र होते हैं, लम्बे द्विशाखी ऐंटेन्यूल तथा ऐंटना, पैल्पों से युक्त मैंडिबल, छोटे मैक्सिल्यूला तथा बड़े मैक्सिला होते हैं। **वक्ष** के पहले 3 खंड पृष्ठत: कैरापेस से समेकित रहते हैं लेकिन
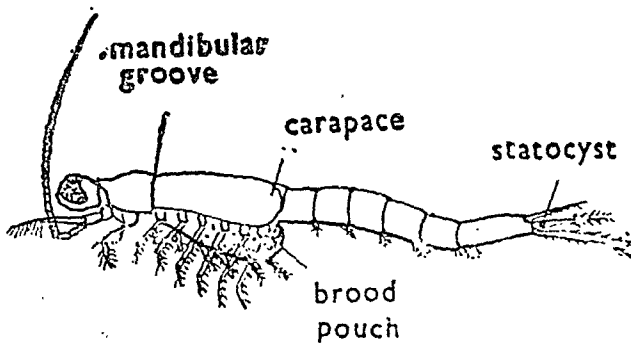
चित्र 341. **माइसिस रेलिक्टा** (*Mysis relicta*) (मादा)

Mandibular groove, मैंडिबलीय खाँच; carapace, कैरापेस; statocyst, स्टैटोसिस्ट; brood pouch, भ्रूण-कोष्ठ।

खण्ड 4 से 8 मुक्त होते हैं। वक्षीय उपाँग अविभेदित होते हैं, वे सब समान, द्विशाखी एवं टाँग-रूपी होते हैं। पश्चीय वक्ष-उपाँग मादा में एक **भ्रूण-कोष्ठ** बना लेते हैं। **उदर** में 6 खण्ड होते हैं, इसमें नर में 5 जोड़ी बड़े द्विशाखी तरणपाद होते हैं, लेकिन मादा में ये तरणपाद एकशाखी छोटे और असंधित होते हैं या यहाँ तक कि अविद्यमान भी होते हैं। छठे खण्ड के उपाँग पुच्छपाद होते हैं, ये चपटे टेल्सॉन के साथ मिलकर एक पुच्छ-फ़िन बनाते हैं। हर पुच्छपाद के अन्तःपादांश में एक स्टैटोसिस्ट होता है।

12. **स्क्विला** (*Squilla*) (मैंटिस-श्रिम्प)—यह हिन्द महासागर तथा भूमध्य-सागर में आम पाया जाता है। यह बिलों में रहता है जिनमें से केवल शरीर का अगला सिरा बाहर को निकला रहता है। यह 25 cm. लम्बा होता है और खाने के भी काम में आता है। शिरोवक्ष पर बना हुआ कैरापेस छोटा, पतला और अकैल्सिकृत होता है, यह आगे की ओर एक रॉस्ट्रम के रूप में निकला होता है। कैरापेस शीर्ष और कुछ वक्ष-खंडों को ढके रहता है, वक्ष के अन्तिम 3 या 4 खंड बिना ढके रह जाते हैं। शीर्ष के ऊपर एक जोड़ी सवृंत गतिशील संयुक्त नेत्र होते हैं; ऐंटेन्यूल तथा ऐंटेना सुविकसित, मैंडिबल, मैक्सिल्यूला तथा मैक्सिला सामान्य होते हैं। एक जोड़ी मैक्सिलीय ग्रन्थियों की वाहिनियाँ मैक्सिलाओं के ऊपर खुलती हैं। **वक्ष** में 8 खण्ड होते हैं, पहले
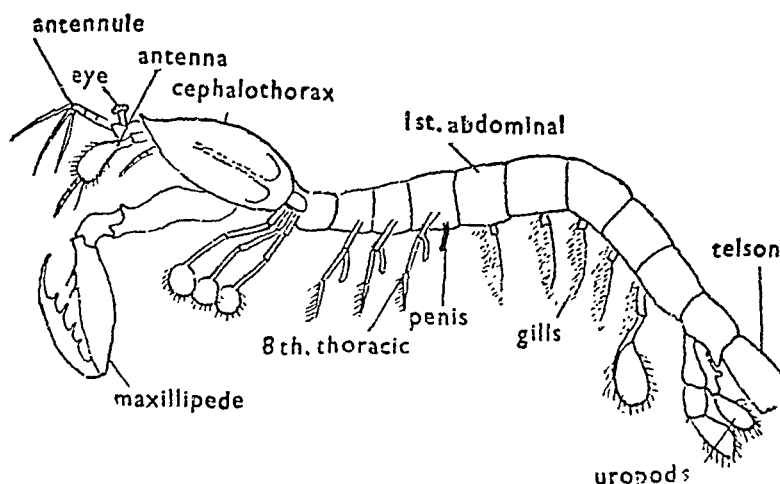
चित्र 342. **स्क्विला मैंटिस** (*Squilla mantis*)।
Antennule, ऐंटेन्यूल; eye, आँखें; antenna, ऐंटेना; cephalothorax, शिरोवक्ष; abdomen, उदर; telson, टेल्सॉन; uropods, पुच्छपाद; gills, गिल; penis, शिश्न; thoracic, वक्षीय; maxillipede, मैक्सिलिपीड।

पाँच जोड़ी वक्षीय उपांग एकशाखी होते हैं, वे मुख की ओर को मुँह किए हुए रहते हैं और मैक्सिलिपीडों की तरह कार्य करते हैं। दूसरा वक्ष-उपांग बड़ा होता है और उसमें एक चाकू-सरीखा **उपकीला** (subchela) होता है जिसमें पकड़ने में मदद देने वाले काँटे बने होते है, यह उपांग मैंटिस की अगली टाँग-जैसा दिखाई पड़ता है। शेष तीन जोड़ी वक्ष-उपांग छोटी, द्विशाखी पतली टाँगें होती हैं, अन्तिम टाँग में नर प्राणी में एक शिश्न होता है। **उदर** चपटा और शिरोवक्ष की तुलना में बहुत बड़ा होता है, इसमें 6 खण्ड होते हैं, 5 जोड़ी बड़े चपटे, द्विशाखी तरणपाद होते हैं, जिसमें इनके बाह्यपादांशों के ऊपर त्रिशाखित गिल बने होते हैं, छठे खण्ड पर एक जोड़ी बड़े पुच्छपाद होते हैं जो चपटे फैले हुए टेल्सॉन के साथ मिलकर एक पुच्छ-फ़िन बनाते हैं।

13. यूपैग्यूरस (*Eupagurus*) (हर्मिट-केकड़ा)—यह समुद्रतट पर आम पाया जाता है। चूँकि यह गैस्ट्रोपॉड मोलस्कों के खाली कवचों में रहता है इसलिए इसमें बहुत अधिक रूपांतरण हो गया होता है, शिरोवक्ष कवच में से आगे को निकला होता है लेकिन उदर सर्पिल रूप में ऐंठा हुआ कवच के भीतर रहता है, यह उदर कोमल होता है। शीर्ष में सवृंत संयुक्त आँखें होती हैं, छोटे ऐंटेन्यूल, बड़े ऐंटेना और सामान्य मैंडिबल, मैक्सिल्यूला तथा मैक्सिला होते हैं। वक्ष के पहले तीन जोड़ी उपांग सुविकसित होते हैं, उससे अगले पाँच उपांग एकशाखी टाँगें होती हैं जिनमें से पहली तीन टाँगें केकड़े की तरह होती हैं और अन्तिम दो टाँगें छोटी और कीलायुक्त होती हैं। बाईं ओर की पहली वक्ष-टाँग दाईं ओर की टाँग से छोटी होती है, इनमें से एक या
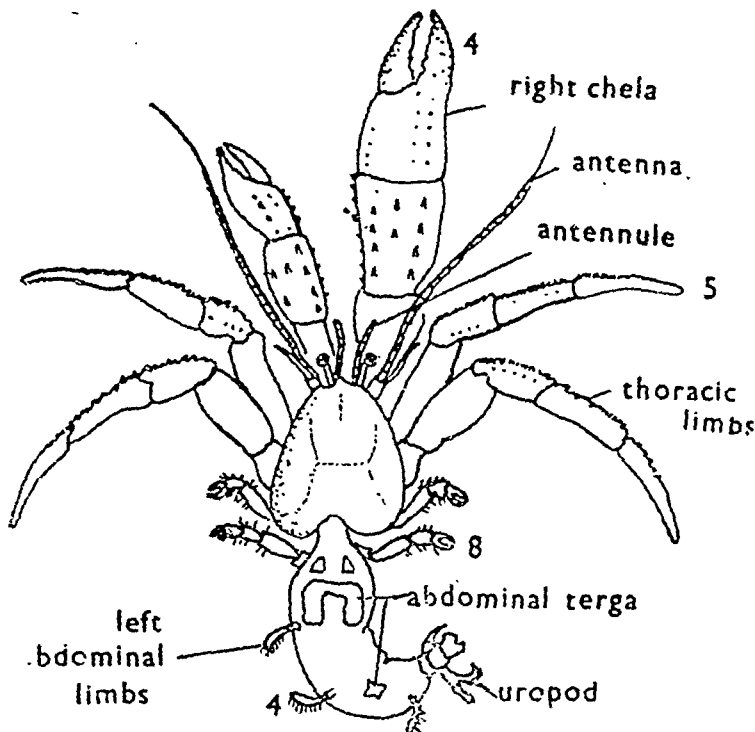
चित्र 343. कवच से बाहर निकाला गया यूपैग्यूरस।

Right chela, दाहिना कीला; antenna, ऐंटेना; antennule, ऐंटेन्यूल; thoracic limbs, वक्ष-उपांग; abdominal terga, उदरीय टर्गम; uropod, पुच्छपाद; left abdominal limbs, बाएँ उदरीय उपांग।

दोनों टाँगों के कीला कवच का मुंह उस समय बन्द करने के काम आते हैं जब केकड़ा अपने को कवच के भीतर सिकोड़ लेता है। नरम अखण्ड उदर सामान्यतः दाहिनी ओर को चक्कर खाते हुए सर्पिल रूप में इस तरह ऐंठा हुआ होता है कि वह गैस्ट्रोपॉड के कवच में सही-सही बैठा रहता है। उदर के अन्त में एक जोड़ी खुरदरे हुक-जैसे पुच्छपाद होते हैं जो बहुत ज्यादा रूपांतरित होते हैं, मुख्यतः बाईं ओर का पुच्छपाद जिसके द्वारा यह कवच की स्तंभिका (columella) को पकड़े रहता है। उदर में जिगर तथा

गोनड होते हैं, इसमें टर्गमों के अवशेष केवल पृष्ठ दिशा में पाए जाते हैं। दाहिनी ओर उपांग नहीं पाए जाते, लेकिन बाईं ओर दो या तीन ह्रासित उपांग पाए जाते हैं। जैसे-जैसे हर्मिट-केकड़ा बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे वह अधिकाधिक बड़े कवचों में रहने लगता है। वह कभी भी गैस्ट्रोपॉड के मूल निवासी प्राणी को न तो मारता है और न ही बाहर निकाल कर फेंक देता है, हालाँकि कभी-कभी ऐसा कहा गया है।

अंडे से एक ज़ोइया लार्वा निकलता है जिससे एक मोटाज़ोइया बनता है, निर्मोचनों के साथ-साथ यह एक रूपांतरित मेगालोपा में बदल जाता है। मेगालोपा सममित होता है. इसमें एक सखण्ड उदर होता है जिसमें पाँच जोड़ी द्विशाखी तरणपाद होते हैं। उसके बाद जिगर, गोनड और उत्सर्गी अंग हट कर उदर में पहुँच जाते हैं; तरणपादों का ह्रास होने लगता है और प्राणी एक गैस्ट्रोपॉड कवच में घुस कर एक असममित वयस्क का रूप प्राप्त कर लेता है।

14. नेप्चुनस (*Neptunus*) (तैरने वाला केकड़ा)—यह हिंदप्रशाँत महासागर में पाया जाता है और 12 cm. चौड़ा होता है। क्रस्टेशिया वर्ग में सबसे ज्यादा
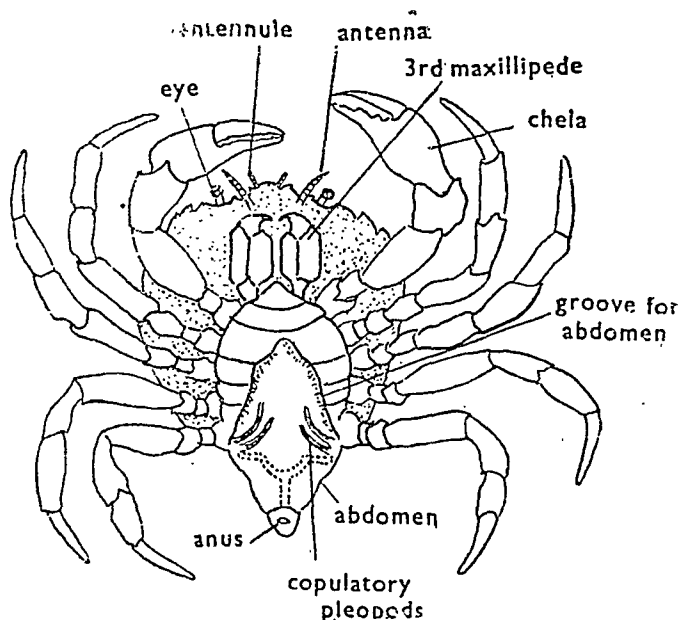
चित्र 344. सिल्ला का नर (नीचे को मोड़े गए उदर का अधर दृश्य)। Eye, आँख; antennule, ऐंटेन्यूल; antenna, ऐंटेना; maxilipede, मैक्सिलिपीड; chela, कीला; groove for abdomen, उदर के वास्ते खाँच; abdomen, उदर; copulatory pleopods, मैथुन तरणपाद; anus, गुदा।

विशेषीकरण केकड़ों में ही पाया जाता है। शिरोवक्ष पृष्ठ-अधर दिशा में दबा हुआ होता है, और यह लंबाई की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है क्योंकि कैरापेस पार्श्वतः गिलावरक क्षेत्र में बढ़ा होता और एक तीव्र कोण बनाते हुए मुड़ गया होता है,

जिससे हर पार्श्व पर एक **गिल-कक्ष** घिर जाता है। शीर्ष तथा वक्ष के तमाम डेकापोड उपांग पाए जाते हैं। दो वृंतयुक्त संयुक्त नेत्र होते हैं, हर वृंत कैरापेस के एक **नेत्र-कोटर** (orbit) में स्थित रहता है, इन नेत्र-कोटरों के कारण जिनमें को आँखें सिकोड़ी जा सकती हैं, वे ऐंटेनाओं से पीछे निकलती जान पड़ती हैं। ऐंटेन्यूल तथा ऐंटेना छोटे होते हैं। हर ऐंटेन्यूल का आधार एक गर्तिका में पड़ा होता है जिसमें को ऐंटेना अनुप्रस्थशः सिकोड़ा जा सकता है। मैक्सिल्यूला छोटे होते हैं, मैक्सिलाओं में एक-एक **स्कैफ़ोग्नैथाइट** होता है जो गिल-कक्ष के अपवाही मार्ग पर बना होता है। वक्ष में तीन जोड़ी मैक्सिलिपीड, तीसरा मैक्सिलिपीड चौड़ा और चपटा होता है, न कि टाँग-जैसा, ये नीचे से मुख क्षेत्र को घेरते हैं। पाँच जोड़ी टाँगें होती हैं जिनमें बाह्यपादांश नहीं होते। हर टाँग में 7 संधियां होती हैं, कॉक्सा, बेसिस, इस्कियम, मीरस, कार्पस, प्रोपोडस तथा डैक्टिलस। पहली जोड़ी टाँगें बड़ी होती है जिनमें एक मजबूत **कीला** होता है. उससे अगली तीन टाँगें बिना कीला वाली होती हैं जिनके अंत में एक साधारण नखर होता है, पाँचवीं जोड़ी टाँगों का अंतिम पादखंड बड़ा और चपटा होता है तथा तैरने के लिए एक **फिन** बना देता है। बिना तैरने वाले केकड़ों में जैसे कि **सिल्ला** में, अंतिम चार जोड़ी टांगें सब समान होती हैं, तथा केकड़े अगल-बगल चलते हैं। उदर बहुत ज्यादा ह्रासित होता है जिसमें नरम अकैल्सिकृत स्टर्नम होते हैं, यह वक्ष-स्टर्नमों की एक खाँच में स्थायी रूप में मुड़ा हुआ पड़ा रहता है। उदर मादाओं में ज्यादा चौड़ा होता है, खंड 3 से 5 समेकित होते हैं और इसमें खण्ड 2 से 5 तक चार जोड़ी बहुत ज्यादा ह्रासित तरणपाद होते हैं जो अंडे धारण किए रहने का काम करते हैं। नर में उदर संकीर्ण होता है, इसमें खंड एक व दो में दो जोड़ी अत्यधिक ह्रासित तरणपाद पाए जाते हैं, ये शुक्राणुधरों के स्थानांतरण में काम आते हैं। अंतिम खंड में एक अधर गुदा होती है, पुच्छपाद नहीं होते।

आहार को कीलायुक्त टाँगें पकड़ती हैं और फिर उसे मैंडिबल काटते हैं, अग्रांत्र में एक उपकरण होता है जो आहार को चबाने, दबाने और छानने का काम करता है। अंडा एक जोइया के रूप में स्फोटित होता है जो एक मेगालोपा बन जाता है जिसमें केकड़े के जैसा शिरोवक्ष और झींगा-जैसा उदर होता है, इससे वयस्क बन जाता है। कुछ सामान्य केकड़े ये हैं : **कैसिनस** (*Carcinus*) (समुद्रतट का केकड़ा), **पॉर्टुनस** (*Portunus*) (एक तैरने वाला केकड़ा), **कैंसर** (*Cancer*) (खाने योग्य रॉक-केकड़ा), **जीलैसिमस** (*Gelasimus*) (फ़िड्लर-केकड़ा), **सिल्ला** (*Scylla*) (तटीय केकड़ा), तथा **टेल्फुजा** (*Telphusa*) (अलवणजलीय केकड़ा)।

काइलोपोडा (*Chilopoda*)

15. **स्कोलोपेंड्रा** (*Scolopendra*) (कांतर, कनखजूरा)—यह उष्णकटिबंधीय तथा शीतोष्ण प्रदेशों में आर्द्र स्थानों में पाया जाता है, अगर आर्द्रता कम हो जाती है तो यह मर जाता है। यह 20 cm. लंबा होता है और लाल की झलक लिये हुए हरे तथा पीले रंग का होता है। देह पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा और एक स्पष्ट शीर्ष एवं धड़ में विभाजित होता है। **शीर्ष** कुछ-कुछ चपटा और एक जोड़ी **संयुक्त नेत्रों**

से युक्त होता है, ये नेत्र चार सरल नेत्रकों के समूह होते हैं। शीर्ष छः समेकित खंडों का बना होता है जिनमें से पहला और तीसरा खंड भ्रूणीय होते हैं, दो बहुसंधियुक्त ऐंटेना होते हैं जो दूसरे खंड के होते हैं, काटने के वास्ते एक जोड़ी दंतयुक्त मैंडिबल चौथे खंड में होते हैं, एक जोड़ी पहले मैक्सिला होते हैं जिनमें एक आधार-संधि और दो पालि होते हैं; एक जोड़ी दूसरे मैक्सिला जिनमें दोनों की आधारीय संधियाँ समेकित होकर एक लेब्रियम बनाते हैं और हर एक में एक 3-संधियुक्त पैल्प होता है जिसके अंत में एक नखर होता है। मैंडिबलों के बीच में एक मुख होता है जिसके आगे लेब्रम होता है। मुखांग कीटों के समान होते हैं। धड़ में 21 खंड होते हैं जिनमें से हर एक में एक जोड़ी **टाँगें** होती हैं। हर खंड में एक पृष्ठीय **टर्गम** और एक अधरीय
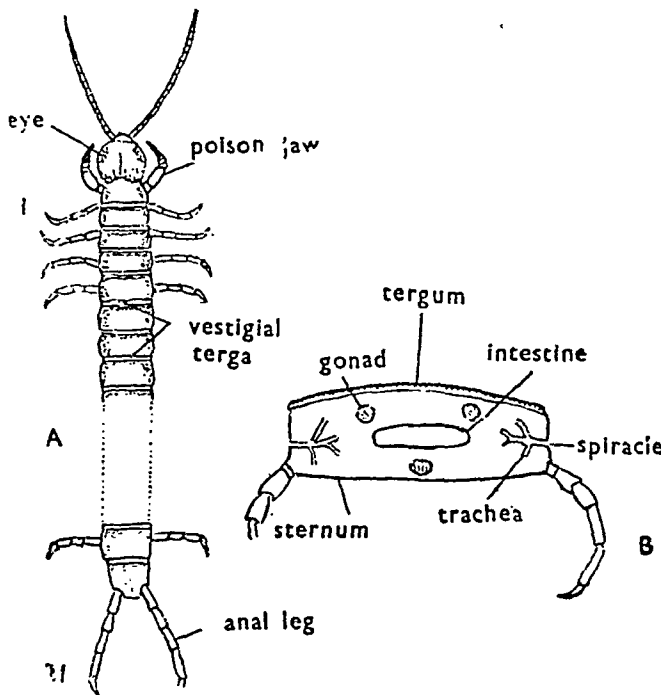
चित्र 345. A—**स्कोलोपेंड्रा**; B—**स्कोलोपेंड्रा** का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)। Eye, आँख; poison claw, विष नखर; vestigial tergum, अवशेषी टर्गम; anal leg, गुदा-टाँग; tergum, टर्गम; gonad, गोनड; intestine, आंत्र; spiracle, श्वास-रंध्र; trachea, वातिका; sternum, स्टर्नम।

स्टर्नम होता है, जो हर पार्श्व में एक नरम **प्ल्यूरॉन** द्वारा जुड़े होते हैं और इस प्ल्यूरॉन में काइटिनी स्क्लेराइट होते हैं। अवशेषी टर्गम मुख्य टर्गमों के बीच में पड़े होते हैं। सभी मुखांग पार्श्व दिशाओं में एक जोड़ी टाँगों से ढके होते हैं जो रूपांतरित होकर **मैक्सिलिपीड** अथवा विष-जबड़े बन जाती हैं, इन मैक्सिलिपीडों की आधारीय संधि स्टर्नम से समेकित हो जाती है तथा चार मुक्त संधियाँ होती हैं और एक अंतिम नख़र होता है जिसके ऊपर विष-ग्रंथि वाहिनी खुलती है, यह विष-ग्रंथि हर

मैक्सिलिपीड के भीतर पड़ी होती है। यह जंतु अपने इन्हीं मैक्सिलिपीडों से काटता है और काट खाना जहरीला होता है। शेष सभी टाँगें समान होती हैं, हर एक में सात संधियाँ होती हैं; कॉक्सा, ट्रोकैंटर, फ़ीमर, टिबिया और तीन टार्सस, अंतिम टार्सस एक नखर की शक्ल का होता है। धड़ के अंत में गुदा से युक्त एक टेल्सॉन होता है, इस अंतिम खंड में एक जोड़ी लंबी नखरयुक्त गुदा-टाँगें होती हैं। धड़ में प्ल्यूरॉनों पर 9 जोड़ी **श्वास-रंध्र** होते हैं, ये भीतर **वातिकाओं** में खुलते हैं जिनके भीतर सर्पिल स्थूलन बने होते हैं; ये वातिकाएँ विशाखित और संशाखित होती हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं, नर जनन-छिद्र खंड 11 और 12 के बीच में पड़ा होता है और मादा जनन-छिद्र खंड 10 पर होता है। अंडों से विस्फोटित होने वाले शिशुओं में खंडों तथा उपांगों की पूरी संख्या होती है।

कांतर मांसभक्षी होते हैं, वे आहार के लिए छोटे-छोटे जन्तुओं को अपने विषैले मैक्सिलिपीडों के द्वारा मार डालते और उसे अपने मैंडिबलों के द्वारा चबाते हैं।

डिप्लोपोडा (*Diplopoda*)

16. **थाइरोग्लूटस** (*Thyroglutus*) (गिजाई, मिलिपीड, सहस्रपाद)—यह अंधेरी नम जगहों में पत्थरों और पेड़ों की छालों के नीचे रहता है। शरीर सिलिंडराकार और भूरे रंग का होता है, यह जंतु गोल होकर यानी लिपट कर एक गेंद बन जाता है। शीर्ष पृष्ठतः उत्तल और अधरतः चपटा होता है, यह स्पष्ट होता है जिसके ऊपर एक जोड़ी सामूहिक (composite) आँखें होती हैं—हर सामूहिक आँख अनेक नेत्रकों का एक मिला-जुला समूह होती है; एक जोड़ी छोटे, मुद्गराकार **7**-संधि वाले ऐंटेना होते हैं जिन्हें खाँचों के भीतर सिकोड़ लिया जा सकता है, आहार चबाने के लिए एक जोड़ी मैंडिबल होते हैं, और एक जोड़ी मैक्सिला भी जो कि खंड 5 के दूसरे उपांग होते हैं, पहली जोड़ी के मैक्सिला विलीन हो चुके हैं। मैंडिबलों के बीच में एक मुख होता है और उसके नीचे एक बड़ा लेबियम-जैसा **नैथोकाइलेरियम** (gnathochilarium) होता है जिसमें अनेक छोटे-छोटे पैल्प होते हैं, यह अंशतः मैक्सिलाओं का बना होता है। धड़ में वक्ष और उदर होते हैं। **वक्ष** में चार अकेले खंड होते हैं, इसके पहले खंड में जिसे **कॉलम** (collum) कहते हैं कोई टाँग नहीं होती, यह शीर्ष के पीछे एक कॉलर बनाता है, तथा इसका स्टर्नम नैथोकाइलेरियम में शामिल हो गया होता है; शेष तीन खंडों में एक-एक जोड़ी चार टाँगें तथा एक-एक जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं। **उदर** अनेक दोहरे खंडों का बना होता है, हर खंड दो मूल पृथक् खंडों के समेकन से बना होता है, अंतिम तीन खंडों को छोड़कर हर खंड में दो जोड़ी टाँगें, दो जोड़ी श्वास-रंध्र और दो जोड़ी गैंग्लियान होते हैं। अंतिम उदर-खंड रूपांतरित होता है, इसमें कोई टाँग नहीं होती, इसका टर्गम बड़ा तथा एक छोटी कंटिका से युक्त होता है, इस पर नीचे की ओर एक गुदा होती है। अग्र प्रदेश की कुछ टाँगों में **दुर्गन्ध ग्रन्थियाँ** (stink glands) अथवा प्रतिकारी ग्रंथियाँ (repugnatorial glands) होती हैं जिनकी वाहिनियाँ टर्गमों के पार्श्वों पर खुलती हैं, इनके

स्राव में आयोडीन, क्विनोन तथा हाइड्रोसिएनिक अम्ल होते हैं। स्राव से आयोडोफ़ार्म जैसी एक अप्रिय गंध निकलती है, यह एक सुरक्षाकारी साधन है। हर टाँग में सात संधियाँ होती हैं—कॉक्सा, ट्रोकैंटर, फीमर, टिबिया तथा 3 टार्सस। नर में तीसरे उदर खंड में कोई टाँग नहीं होती बल्कि एक जोड़ी **मैथुन प्रवर्ध** होते हैं जिनके द्वारा शुक्राणुओं का स्थानांतरण होता है। हर उदर खंड में एक बड़ा टर्गम होता है जो देह के दोनों पार्श्वों में एक वलय के समान मुड़ा होता है, यह दो टर्गमों के समेकन से बना होता है, हर खंड में दो जोड़ी श्वास-रंध्रों से युक्त दो छोटे स्टर्नम होते हैं।
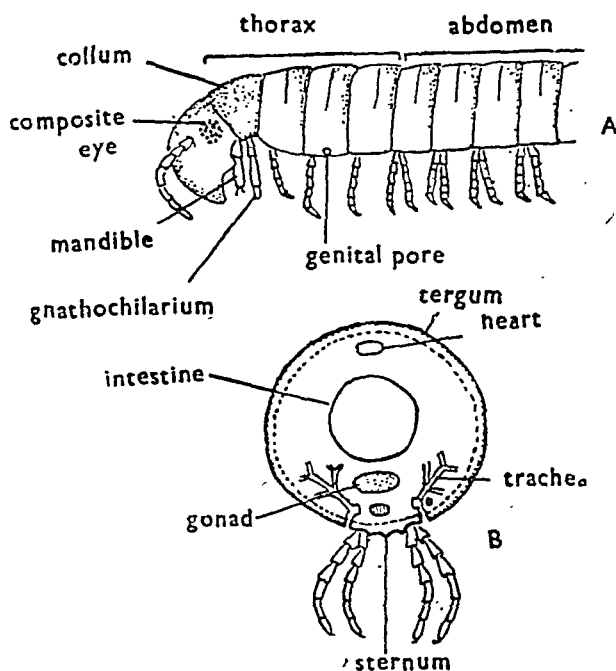
चित्र 346. A—थाइरोग्लुटस; B—उदर का अनुप्रस्थ 'सेक्शन (T.S.)। Composite eye, सामूहिक आँख; collum, कॉलम; thorax, वक्ष; abdomen, उदर; mandible, मैंडिबल; gnathochilarium, नैथोकाइलेरियम; genital pore, जनन-छिद्र; tergum, टर्गम; heart, हृदय; gonad, गोनड; trachea, वातिका; sternum, स्टर्नम।

वक्ष में टर्गम और स्टर्नम अकेले-अकेले होते हैं। श्वास-रंध्र वातिका-कोष्ठों में खुलते हैं जिनमें से वातिका गुच्छे निकलते हैं। नर मादा अलग-अलग होते हैं। दोनों लिंगों में जनन-छिद्र दूसरी जोड़ी वक्ष टाँगों की आधार संधि पर बने होते हैं। स्फोटन होने पर शिशुओं में 6 देह-खंड होते हैं जिनमें से केवल पहले तीन खंडों पर युग्मित टाँगें होती हैं। सहस्रपाद शाकभक्षी होते हैं, वे क्षय होने वाली वनस्पति का आहार करते हैं, लेकिन जब वे पौधों की जड़ों को खाने लगें तो विनाशकारी हो जाते हैं, तब वे फसलों को नष्ट करते हैं।

मीरोस्टोमैटा
(*Merostomata*)

17. **जाइफोस्यूरा** अथवा **लिमुलस** (*Limulus*, नृप-केकड़ा)—यह एक प्राचीन उप-क्लास जाइफ़ोस्यूरा (Xiphosura) में आता है जिसके अधिकतर सदस्य विलुप्त हो चुके हैं, लेकिन **लिमुलस** एक प्राणी है जो ट्रिऐसिक से उसी तरह अपरिवर्तित चला आ रहा है, फलतः इसे "जीवित फ़ासिल" (living fossil) कहा जाता है। यह अधिकतर अटलांटिक तट पर पाया जाता है, नृप-केकड़ों के अन्य सदस्य कोरिया, जापान, फिलिपीन तथा इण्डोनेशिया के तटों के सहारे-सहारे पाए जाते हैं। नृप-केकड़ा 60 cm. तक लम्बा होता है, यह रेतीली समुद्री तली में होता है जिसमें यह सूराख करके रहता है। इसमें एक चौड़ा घोड़े की नाल की शक्ल का प्रोसोमा होता है,
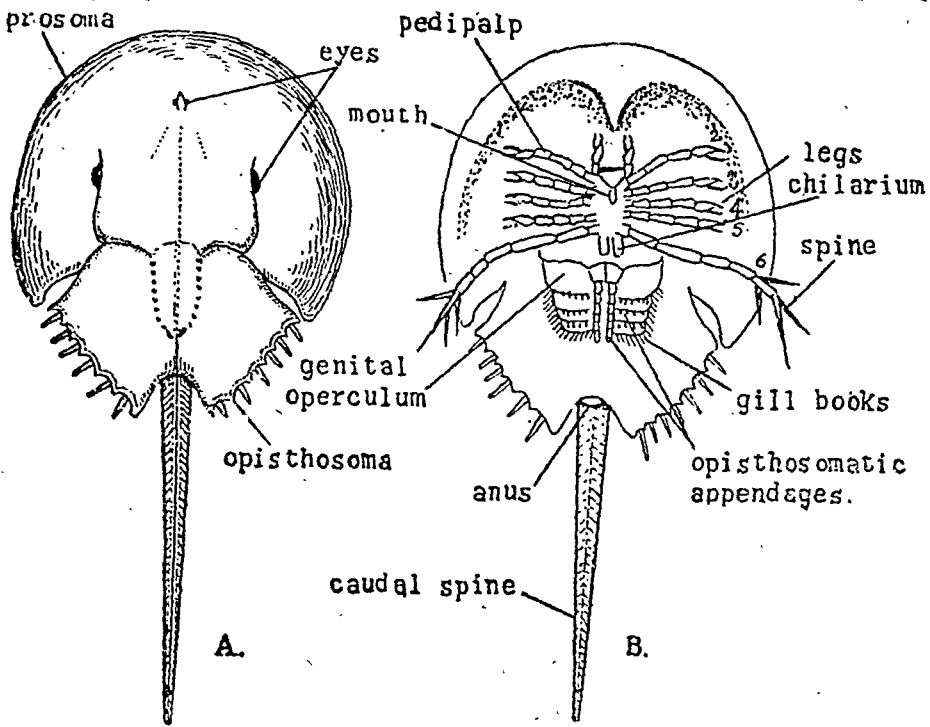
चित्र 347. **जाइफोस्यूरा पौलीफीमस** (*Xiphosura polyphemus*), A—पृष्ठ दृश्य; B—अधर दृश्य।

Prosoma, प्रोसोमा; eyes, आँखें; opisthosoma, ओपिस्थोसोमा; pedipalp, पेडिपैल्प; mouth, मुख; genital operculum, जनन-आपर्कुलम; anus, गुदा; caudal spine, पुच्छ-काँटा; legs, टाँगें; chilarium, काइलेरियम; spine, कंटिकाएँ; gill-books, गिल-पुस्तकें; opisthosomatic appendages, ओपिस्थोसोमा के उपांग।

एक उससे छोटा ओपिस्थोसोमा, और एक लम्बा सिरे की ओर पतला होता जाता हुआ टेल्सॉन होता है। शरीर ऊपर से उत्तल, बाजुओं पर फैला हुआ और नीचे

की ओर कुछ-कुछ अवतल होता है। **प्रोसोमा** की पृष्ठ सतह पर एक वड़ा कैरापेस ढका होता है जो 6 समेकित टर्गमों का वना होता है, इसमें दो पश्च-पार्श्व प्रवर्ध वने होते हैं, पृष्ठतः एक जोड़ी पार्श्व आँखें, दो सरल पृष्ठ आँखें और 7 काँटे होते हैं; प्रोसोमा के स्टर्नम एक झिल्लीदार चादर वनाते हैं। प्रोसोमा में छः जोड़ी उपांग होते हैं जो सारे-के-सारे कैरापेस के नीचे छिपे होते हैं, ये एक जोड़ी 3 सन्धि वाले कीलिसेरा होते हैं जिनमें कीला वना होता है, मुख कीलिसेराओं के पीछे होता है, एक जोड़ी 6-सन्धियुक्त पेडिपैल्प होते हैं, ये शिशु जन्तुओं तथा वयस्क मादाओं में कीलायुक्त होते हैं, लेकिन वयस्क नरों में हर पेडिपैल्प के अन्त में एक वक्र नखर होता है, उससे वाद के चार जोड़ी उपांग चलने वाली यानी चर टाँगें होती हैं। पेडिपैल्प तथा पहली तीन जोड़ी टाँगों के हन्वाधार बने होते हैं जो मुख को घेरे रहते हैं। पहली तीन जोड़ी टाँगें 6-सन्धि वाली और कीलायुक्त होती हैं, चौथी जोड़ी टाँग 7-सन्धि वाली तथा कीलारहित होती है, उपांगों की सबसे वड़ी जोड़ी यही होती है जो प्रोसोमा के अन्तिम खण्ड पर बनी होती है, इस जोड़ी में उसकी अन्तिम से एक पहली सन्धि के ऊपर चार काँटे होते हैं। इन चौथी टाँगों में हर कॉक्सा पर एक-एक **स्पैचुलाकार कांटा** (spatulate spine) होता है जो गिल-पुस्तकों को साफ करने में काम आता है। पेडिपैल्प और पहली तीन जोड़ी टाँगें चलने तथा चवाने के काम आती हैं लेकिन चौथी टाँग पकड़ने के अथवा वालू खोदने के काम आती है। **ओपिस्थोसोमा** एक हिंज के द्वारा प्रोसोमा से पृथक् होता है, इसमें समेकित टर्गम होते हैं जो कड़े होते हैं लेकिन स्टर्नम झिल्लीदार होते हैं, इसमें 9 खण्ड होते हैं। ओपिस्थोसोमा में एक जोड़ी चपटी प्लेटें होती हैं जो **काइलेरियम** (chilarium) कहलाती हैं, इनके कार्य के वारे में कोई जानकारी नहीं है, ये जननपूर्वी खण्ड की अंग होती हैं। दूसरे खण्ड में एक जोड़ी **जनन-आपर्कुलम** होते हैं जो उससे पिछले उपांगों को ढक कर गिलों को सुरक्षित रखते हैं; जनन-आपर्कुलम के नीचे दो जनन-छिद्र होते हैं। खण्ड 3 से 7 में 5 जोड़ी चपटी प्लेटें अथवा ओपिस्थोसोमीय उपांग होते हैं जिनमें **गिल-पुस्तकें** (gill-books) जुड़ी होती हैं। हर गिल-पुस्तक में 150 से 200 गिल पटलिकाएँ होती हैं जो पुस्तक के पन्नों की तरह समान्तर रचनाएँ होती हैं। प्लेटें हिलती-डुलती रहती हैं, इनमें से हर एक में एक छोटा, संकीर्ण भीतरी अन्तःपादांश होता है तथा एक वड़ा वाहरी वाह्यपादांश होता है जिसके ऊपर गिल-पुस्तकें वनी होती हैं। खण्ड 8 और 9 में उपांग नहीं होते। अन्तस्थ टेल्सॉन अथवा **पुच्छीय कांटा** (caudal spine) लम्बा होता है और यह निर्वाध रूप में घुमाया-फिराया जा सकता है। यह काँटा सेक्शन में त्रिभुजी होता है, यह कदाचित किन्हीं विलुप्त उदरीय खण्डों एवं टेल्सॉन का प्रतिदर्श है। पुच्छ-काँटे के आरम्भ में एक अधर गुदा होती है।

लार-ग्रन्थियाँ एवं मैलपीजी नलिकाएँ नहीं होतीं, मध्यांत्र में दो जोड़ी पाचन-ग्रन्थियाँ खुलती हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं, शिशु वयस्कों के समान होते हैं। **लिम्युलस** रेत में से रेंगता चलता है और पौलीकीट कृमियों तथा मौलस्कों को खाता जाता है। आहार को कीलिसेरा पकड़ते और हन्वाधार उसे चीर-फाड़ कर पीसते हैं।

ऐरेक्निडा (*Arachnida*)

18. **मकड़ियाँ**—मकड़ियाँ सबसे अधिक सफल ऐरेक्निडा हैं और उनकी 35,000 हजार स्पीशीज़ ज्ञात हैं। मकड़ियों में दो विशिष्ट अनुकूली लक्षण पाए जाते हैं, एक तो वे रेशम बनाती हैं जिसका वे विभिन्न प्रकार से उपयोग करती हैं, और दूसरे नरों के पेडिपैल्प रूपान्तरित होकर मैथुन अंग बनाते हैं। देह दो प्रदेशों में विभाजित हो गया होता है, एक प्रोसोमा और दूसरा ओपिस्थोसोमा, इन दोनों को बीच से एक संकीर्ण **वृन्त** (pedicel) जोड़े रहता है, देह और उपांगों पर बहुत ज्यादा संख्या में काइटिनी रोम बने होते हैं जो कदाचित स्पर्श-संवेदी होते हैं। **प्रोसोमा** के पृष्ठ पर एक कैरापेस चढ़ा होता है जो 6 खण्डों के समेकित टर्गमों का बना होता है, और अधर दिशा में अक स्टर्नम होता है। कैरापेस के ऊपर पृष्ठ-मध्य दिशा में चार जोड़ी सरल आँखें होती हैं, आँखों के सामने का कैरापेस का भाग **क्लाइपियस** (clypeus) कहलाता है, पश्चत: कैरापेस में अनेक क्रमबद्ध गढ़े होते हैं। स्टर्नम के सामने एक **लेबियम** होता है, ऊपर होंठ को **रॉस्ट्रम** कहते हैं, और होंठों के बीच में एक छोटा
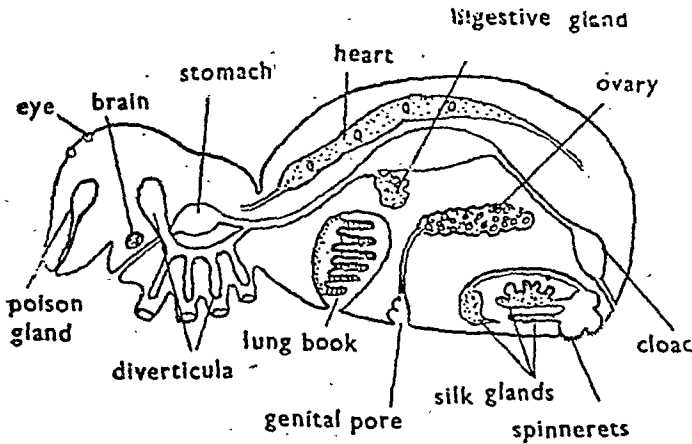
चित्र 348. मकड़ी का खड़ा सेक्शन (V. S.) उसकी रचना दर्शाते हुए। Poison gland, विष-ग्रन्थि; eye, आँख; brain, मस्तिष्क; stomach, आमाशय; heart, हृदय; digestive gland, पाचन-ग्रन्थि; ovary, अंडाशय; cloaca, अवस्कर; spinnerets, वयित्र; silk glands, रेशम-ग्रन्थियाँ; genital pore, जनन-छिद्र; lung-book, फेफड़ा-पुस्तक; diverticula, अन्धवर्ध।

मुख होता है। प्रोसोमा में 6 जोड़ी उपांग होते हैं, एक जोड़ी 2-संधि वाले कीलिसेरा होते हैं जो मुख के सामने और ऊपर पड़े होते हैं, हर कीलिसेरा में एक बड़ा आधारीय खण्ड **पैट्यूरॉन** (paturon) होता है जिसमें एक **विष-ग्रन्थि** होती है, और दूसरा एक विषदन्त सरीखा दूरस्थ खण्ड **नख** (unguis) होता है जिसके अन्तिम सिरे पर विष-ग्रन्थि की वाहिनी खुलती है। एक जोड़ी 6-सन्धि वाले पेडिपैल्प होते हैं जिनमें कीला नहीं होता और जिनके आधारीय खण्ड हन्वाधार बनाते हैं, छः सन्धियाँ इस प्रकार होती हैं : कॉक्सा, ट्रोकैंटर, फीमर, पेटेला, टिबिया और टार्सस। नर मकड़ी का

पेडिपैल्प रूपान्तरित होकर एक **प्रवेशी अंग** (intromittent organ) बन जाता है जो टार्सस में पड़ा होता है, इस अंग में दो भाग होते हैं एक तो शुक्राशय से युक्त एक बल्व और दूसरे एक सर्पिल रूप में ऐंठी हुई नलिका जिसमें से मैथुन के दौरान शुक्राणु मादा जनन-छिद्र में स्थानान्तरित हो जाते हैं। 4 जोड़ी 7-सन्धि वाली टाँगें होती हैं, ये सन्धियाँ इस प्रकार होती हैं ; कॉक्सा, ट्रोकैंटर, फीमर, पैटेला, टिबिया, मेटाटार्सस और टार्सस, टार्सस में प्रायः 2 नखर बने होते हैं। **ओपिस्थोसोमा** नरम और प्रायः अखण्ड होता है लेकिन यह 13 खण्डों का बना होता है। पहला अथवा जनन-पूर्वी खंड वृन्त बनाता है, इसके टर्गम को **लोरम** (lorum) और स्टर्नम को **प्लैगुला** (plagula) कहते हैं। दूसरे खण्ड में पहली जोड़ी फेफड़ा-पस्तकें होती हैं, इसमें एकल जनन-छिद्र
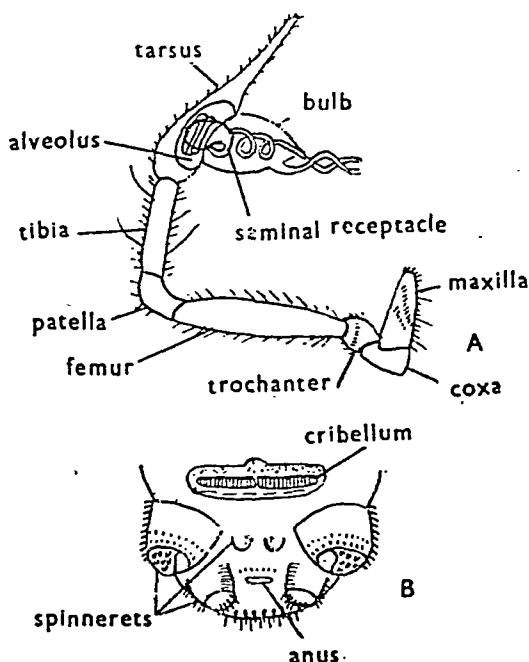
चित्र 349. A. नर का पेडिपैल्प जिसमें प्रवेशी अंग दिखाया गया है।
B. मकड़ी का ऐक्निडियम (वयन-उपकरण)

Tarsus, टार्सस; alveolus, गर्तिका; bulb, बल्व; tibia, टिबिया; seminal receptacle, शुक्रग्राही; patella, पैटेला; maxilla, मैक्सिला; femur, फ़ीमर; trochanter, ट्रोकैंटर; coxa, कॉक्सा; cribellum, क्रिवेलम; spinnerets, वयित्र; anus, गुदा।

भी होता है। तीसरे खण्ड में या तो फेफड़ा-पुस्तकों की एक दूसरी जोड़ी होती है अथवा एक जोड़ी श्वसन-रंध्र बने होते हैं। चौथे खण्ड में **वयित्रों** (spinnerets) का एक अगला जोड़ा और पाँचवें खण्ड में एक या दो जोड़ी वयित्र होते हैं, वयित्रों के ऊपर प्रायः एक विशेष आवरण होता है जिसे **क्रिवेलम** (cribellum) कहते हैं। शेष ओपिस्थोसोमा-खण्ड उपांगहीन होते हैं, वे सब समेकित होकर शरीर के अन्त में एक छोटी **गुदा-गुलिका** (anal tubercle) बनाते हैं जिस पर गुदा-छिद्र बना होता है।

हर वयित्र का आधार कड़ा लेकिन अन्तिम सिरा झिल्लीदार होता है जिसमें बाल और काँटे बने होते हैं, ये सब एक **वयित्र क्षेत्र** (spinning field) बनाते हैं। मकड़ियों में या तो 2 या 3 जोड़ी वयित्र होते हैं जो एक वयन-उपकरण अथवा **ऐरेक्निडियम** (arachnidium) बनाते हैं। ओपिस्थोसोमा के भीतर **वयन** (spinning) अथवा **रेशम-ग्रन्थियाँ** (silk glands) होती हैं जिनमें से निकली हुई सूक्ष्म नलिकाएँ वयित्रों के वयन-क्षेत्रों की सतह पर खुलती हैं, ग्रन्थियों के स्राव नलिकाओं में से निकलते और रेशम-सूत्र या जाला बनाते हैं। जाला बिलों अथवा घोंसलों का अस्तर बनाने में इस्तेमाल होता है या अंडों के वास्ते एक ककून बनाने में, या पकड़े गए शिकार को लपेटने में, या यह एक सुरक्षा-डोरी बनाने में काम आता है जिसके द्वारा मकड़ी बीच हवा में लटकी रह सकती है, या कुछ मकड़ियाँ अपना शिकार फांसने के लिए इसका एक जाल बनाती हैं। कुछ मकड़ियों में पिछली टाँगों के टार्सस पर विशिष्ट वक्र काँटे होते हैं जिन्हें केलेमिस्ट्रम (calamistrum) कहते हैं, वयित्रों के साथ मिलकर ये रेशम को एक जाल के रूप में बुनने में काम आते हैं।

श्वसन-अंगों में फेफड़ा-पुस्तकें तथा वतिकाएँ होती हैं, इनकी संख्या मकड़ियों के वर्ग में अलग-अलग होती है, दोनों के बाहरी सूराख अथवा श्वास-रंध्र होते हैं। अधिकतर मकड़ियों में एक जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें तथा एक जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं जो भीतर को सीधी अविशाखित वातिकाओं में खुलते हैं। कुछ मकड़ियों में दो जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें होती हैं, जबकि अन्य में वातिकाओं से युक्त दो जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं। इस प्रकार मकड़ियों के फेफड़ा-पुस्तकों के स्थान पर वातिकाओं के बनते जाने की तमाम अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं।

मकड़ियाँ माँसभक्षी होती हैं और कीटों को खाती हैं, लेकिन कुछ मकड़ियाँ अपेक्षाकृत बड़े जन्तुओं को भी खाती हैं। शिकार कीलिसेरा के विष द्वारा मार दिया जाता है, होंठों की लार-ग्रंथियों से प्रोटीन-विश्लेषी एन्ज़ाइमों का स्राव होता है जिसमें आंशिक बाहरी पाचन होता है, तरल आहार आमाशय के स्पंदनों के द्वारा शूकों में से छनता जाता हुआ भीतर को चूस लिया जाता है। शिकार के काइटिनी अवशेष खोखले छिलके के रूप में फेंक दिये जाते हैं। मध्यांत्र के अनेक अंधवर्ध बने होते हैं, एक मुख्य अंधवर्ध ओपिस्थोसोमा में होता है, और एक जोड़ी अंधवर्ध प्रोसोमा में होते हैं जो एक-एक शाखा हर टाँग में पहुँचाते हैं। आहार अंधवर्धों में संचित होता और वहीं उसका पाचन सम्पूर्ण होता है।

लिंग अलग-अलग होते हैं और अनेक में लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है, नर मादा की अपेक्षा छोटा होता है। नर अपने पेडिपैल्पों में को शुक्राणुओं को चूस लेता है, उसके बाद प्रणय-प्रदर्शन होता तथा मैथुन सम्पन्न होता है। कुछ मकड़ियों में मैथुन के बाद मादा उसी नर को खा जाती है। निषेचित अंडे वयित्रों द्वारा बनाये गए ककून के भीतर बंद कर दिये जाते हैं।

यूरिपेल्म। (*Eurypelma*) (टैरेंटुला, Tarantula)—यह मकड़ी गहरे रंग की और रोमिल शरीर एवं रोमिल टाँगों वाली होती है। शरीर 5 cm. लम्बा और टाँगें छोटी-छोटी होती हैं जो फैलकर 15 cm. घेर लेती हैं। इसमें दो जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें और दो जोड़ी वयित्र होते हैं। ये लट्ठों और वृक्षों के भीतर रहती हैं, जहाँ यह अपने बिलों में रेशमी जालों का अस्तर बना लेती है। यह बीटलों का और यहां तक कि छोटे-छोटे पक्षियों का भी शिकार कर लेती है। यह शिकार के भीतर विष का इंजेक्शन देती है और उसके बाद पचे हुए तरल को चूस लेती है। इसका काट खाना विषैला होता है। यह रात्रिचर होती है और अण्डों को ककूनों में देती है। **यूरिपेल्मा** केवल नई दुनियाँ में ही रहती है। भारत में पाई जाने वाली इसकी निकटतम सम्बन्धी जीनस **पीसिलो-थीरिया** (*Poecilotheria*) होती है।
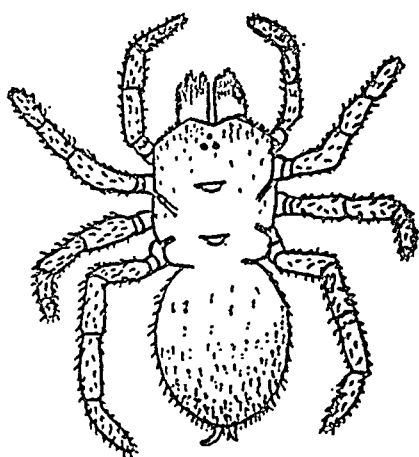
चित्र 350. **यूरेपेल्मा हेंट्ज़ाई** (*Erypelma hentzi*)

टेनिज़ा (*Cteniza*) फंदा-द्वार मकड़ी (trap-door spider)—वह गहरे भूरे रंग की तथा लगभग 3 cm. लम्बी होती है, टाँगें छोटी होती हैं। दो जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें होती हैं, वातिकाएँ नहीं होतीं, दो जोड़ी वयित्र होते हैं। इसके कीलिसेराओं पर खोदने के लिए पंक्तिबद्ध दाँते बने होते हैं, इसके द्वारा यह जमीन में सुरंग खोदती
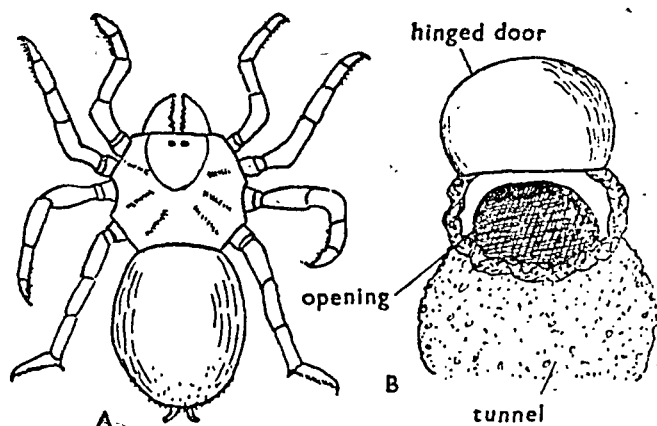
चित्र 351. **टेनिज़ा** और उसका घर।

Hinged door, हिंज द्वार ; opening, सूराख ; tunnel, सुरंग।

हैं जो 15 cm. गहरी होती है। यह अपनी सुरंग में रेशम का अस्तर बना कर छिपे रहने के लिए एक घोंसला बना लेती है। सुरंग के सूराख पर एक हिंज द्वार बना होता है और यह द्वार कीटों के लिए एक फंदा बन जाता है।

लाइकोसा (*Lycosa*) (भेड़िया-मकड़ी)—यह भूरे रंग की और पीले निशानों वाली होती है, लम्बाई लगभग 2 cm., टाँगें 2·5 cm. जिनके अन्त में 3 नखर होते हैं, एक जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें और वातिकाएँ होती हैं, तीन जोड़ी वयित्र होते हैं। यह सदैव अपने शिकार को सक्रिय रूप में पकड़ती है। यह जाला नहीं बुनती बल्कि अपनी सुरंगों में रहती है। ककून मादा के वयित्रों से चिपके-चिपके शरीर पर ही लिए रहते हैं, अण्डों से निकलने पर बच्चे कुछ समय के लिए अपनी माँ की पीठ पर चढ़े हुए घूमते-फिरते हैं। इसका विष ऊतकक्षयी (necrotic) होता है और गेंग्रीन पैदा कर देता है।
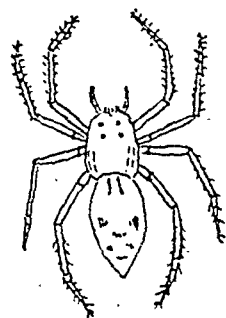
चित्र 352. **लाइकोसा**

फ़ॉल्कस (*Pholcus*) (घरेलू मकड़ी)—यह सारे विश्व में पाई जाने वाली घरेलू मकड़ी है जो इमारतों में ढीले-ढीले अनियमित जाले बनाती है, और मकड़ी जाले के नीचे लटकी रहती है। शरीर 6 mm. लंबा और पतला होता है, लंबी टाँगें 5 cm. तक होती हैं, जिनके अन्त में हर टाँग में 3 नखर होते हैं। देह का रंग धूसर होता है। मादा अपने अण्डा-ककूनों को कीलिसेराओं में पकड़े रहती है।

थेरिडियॉन (*Theridion*) (घरेलू मकड़ी)—शरीर सफेदीपन लिए हुए से लेकर काला तक होता है, और 6 mm. लम्बा होता है जिसमें ओपिस्थोसोमा के ऊपर छह आड़ी काली निशानियाँ बनी होती हैं। यह सारे विश्व में पाई जाती है और दीवारों के कोनों में अपना जाला बनाती है, जाले के बीच में एक ककून छिपा दिया जाता है और मकड़ी जाले की भीतरी तरफ रहती है।

एपिआइरा (*Epeira*) (बाग की मकड़ी)—अलग-अलग मकड़ियाँ 6 mm. से 20 mm. साइज़ तक की होती हैं, ओपिस्थोसोमा अण्डाकार और गोल होता है तथा उस पर अक्सर कुछ नमूना-सा बना होता है। टाँगें छोटी होती हैं और उनके अन्त में दो-दो नखर होते हैं। मादा में जनन-छिद्र एक सुस्पष्ट **अंडनिक्षेपक** (ovipositor) के सिरे पर होता है। एक जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें तथा एक-एक अकेला मध्य श्वास-रन्ध्र होता है जो वातिकाओं में को खुलता है, वयित्रों की तीन जोड़ियाँ होती हैं। यह अपना जाल झाड़ियों, बाग-बगीचों और घरों आदि में बना देती है। यह अपना शिकार रेशम में बाँध देती है।

19. **मिरमैरेक्ने** (*Myrmarachne*)—देह में प्रोसोमा का विभाजन होकर शीर्ष और वक्ष बन गए हैं और एक उदर अथवा ओपिस्थोसोमा होता है। शरीर और पाँव बहुत ज्यादा रोमिल होते हैं। यह 1 cm. लम्बा और गहरे भूरे रंग का होता है। यह रात्रिचर होता तथा आम के वृक्षों के तनों पर पाया जाता है। शीर्ष पर दो जोड़ी नेत्रक होते हैं, एक जोड़ी बड़े कीलायुक्त कीलिसेरा होते हैं जो सामने को निकले होते तथा प्रोसोमा से भी ज्यादा लंबे होते हैं, एक जोड़ी टाँग-जैसे पेडिपैल्प होते हैं जिनमें से हर एक में एक छोटा अन्तस्थ आसंजी चूषक होता है, तथा एक जोड़ी टाँगें होती हैं जो कुछ छोटी और स्पर्श-संवेदी होती हैं। वक्ष में तीन स्पष्ट

खण्ड होते हैं जिनमें से हर एक में एक जोड़ी टाँगें होती हैं जिनके अन्त में दो मजबूत नखर होते हैं, टाँगें दौड़ने में काम आती हैं । उदर में 10 खण्ड होते हैं। वक्ष के ऊपर एक जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं एवं तीन जोड़ी श्वास-रंध्र उदर पर होते हैं, ये भीतर वातिकाओं में खुलते हैं। निषेचित अंडे एक बिल के भीतर घोंसले में दिये जाते हैं, जब तक अंडों में से बच्चे निकलते हैं तब तक मादा वहीं रहती है। कुछ अध्येताओं का दावा है कि **मिरमैरेक्ने** एक मकड़ी है और यह सॉलिफ्यूगा वर्ग में नहीं आती जिसमें अन्यथा **गेलियोडीस** (*Galeodes*) तथा **इरेमोबेटीस** (*Eremobates*) आते हैं जो कि चींटी-सरीखी मकड़ियाँ होती हैं।
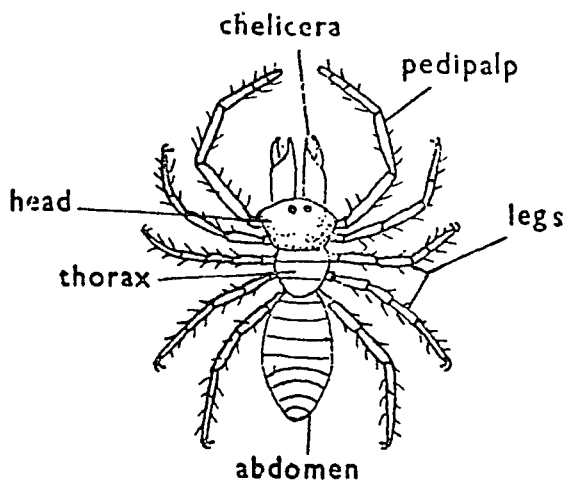
चित्र 353. **मिरमैरेक्ने** ।

Chelicera, कीलिसेरा; pedipalp, पेडिपैल्प; head, शीर्ष; thorax, वृक्ष; abdomen, उदर ; legs, टाँगें ।

20. **कीलिफ़र** (*Chelifer*) (बुक-स्कॉर्पियन)—यह विच्छू-जैसा होता है, बस फर्क इतना है कि इसमें पूंछ और डंक नहीं होते, यह 3 mm. लम्बा और लालीपन लिये हुए भूरे रंग का होता है। यह सारे विश्व में पाया जाता है और पुरानी किताबों व इमारतों में तथा कीटों के ऊपर रहता है। प्रोसोमा में 6 समेकित खण्ड होते हैं। और कुछ-कुछ तिकोना होता है जिस पर दो आँखें और 6 जोड़ी उपांग होते हैं। कीलिसेरा छोटे होते हैं लेकिन कीला से युक्त होते हैं जिसमें वयन-ग्रन्थियाँ होती हैं। पेडिपैल्प बड़े और कीलायुक्त होते हैं, तथा चार जोड़ी टाँगें होती हैं। ओपिस्थोसोमा चौड़ा और 12 खण्डों से युक्त होता है, तीसरे और चौथे खण्ड में एक-एक जोड़ी श्वास-रन्ध्र होते हैं जो भीतर वातिकाओं में खुलते हैं।

21. **कुटकियाँ** (Mites)—कुटकियों की संख्या शेष सभी ऐरेक्निडा से ज़्यादा होती है, ये सूक्ष्म और माइक्रोस्कोप से देखे जा सकने वाले ऐकैराइना होते हैं। स्वच्छन्दजीवी कुटकियाँ जन्तु और वनस्पति पदार्थ पर आहार करती हैं। ये ज़मीन पर, झड़ी हुई पत्तियों या छाल के नीचे और पौधों के ऊपर पाई जाती हैं, इन पौधों

में कुछ कुटकियाँ गॉल (पिटकियाँ) पैदा करती हैं। अनेक कुटकियाँ स्थलीय होती हैं तथा कुछ जलीय होती हैं लेकिन उनमें गिल नहीं होते। लगभग 50 प्रतिशत कुटकियाँ परजीवी होती हैं, ये लगभग सभी प्रकार के जन्तुओं में संक्रमण पैदा करती हैं, अधिकतर ये मनुष्य और जानवरों पर बाह्यपरजीवी होती हैं, हालाँकि कुछेक अन्त:परजीवी भी होती है, जैसे **न्यूमोनिसस** (*Pneumonyssus*) जो बन्दरों के फेफड़ों में पाई जाती हैं।

कुटकियों में प्रोसोमा तथा ओपिस्थोसोमा अखण्ड होते हैं और उनमें कोई विभाजन नहीं होता, वे इस प्रकार जुड़े होते हैं कि सारे का सारा एक अण्डाकार शरीर दिखाई पड़ता है, हालाँकि कुछ में यह लम्बा भी होता है। शरीर के ऊपर स्पर्शीय रोम अथवा शल्क बने होते हैं। आँखें हो सकती हैं अथवा नहीं होतीं। 6 जोड़ी उपांग होते हैं, कीलिसेरा कीलायुक्त होते हैं अथवा वेधन तथा चूषण के लिये रूपांतरित होते हैं, पेडिपैल्प टाँग-जैसे होते हैं जिनमें 5 या कम सन्धियाँ होती हैं, इनकी आधार सन्धि से एक प्लेट बनी हो सकती है जिसे **मैक्सिला** कहते हैं और जो संयुक्त होकर एक **लेबियम** बनाती है। सहायक मुखांग प्राय: एक **हाइपोस्टोम** (hypostome) या निचला होंठ और एक **एपिस्टोम** (epistome) अथवा ऊपरी होंठ के रूप में रूपांतरित होते हैं, ये होंठ समेकित होकर एक **रॉस्ट्रम** बने हो सकते हैं जिसके भीतर वाह्यकर्षी कीलिसेरा वन्द होते हैं। कीलिसेरा एक चीरा देते हैं तथा हाइपोस्टोम भीतर प्रविष्ट होकर उसमें से तरल सोख लेता है। सामान्यत: चार जोड़ी टाँगें होती हैं। श्वसन-अंग या तो नहीं होते या वातिकाएँ होती हैं। लिंग अलग-अलग होते हैं, बच्चा एक **लार्वा** के रूप में निकलता है जिसमें तीन जोड़ी टाँगें होती हैं, यह खाता और शांत अवस्था में आ जाता है, उसके बाद निर्मोचन होकर एक निम्फ़ (अर्भक) बन जाता है जिसमें चार जोड़ी टाँगें होती हैं, कुल मिलाकर तीन निम्फ़ अवस्थाएँ हो सकती हैं, अन्तिम निर्मोचन के बाद एक वयस्क बन जाता है। कुछ आम कुटकियों का यहाँ पर वर्णन दिया जा रहा है। **एरियोफ़ीइस** (*Eriophyes*) एक गॉल-कुटकी होती है, यह कलियों को नष्ट कर देती है, पत्तियाँ ऐंठ जाती हैं और शाखाओं में बड़ी-बड़ी असाधारण गॉलें बन जाती हैं। **डेमोडेक्स** (*Demodex*) एक पुटक कुटकी है, इसका शरीर लम्बा होता है और यह मनुष्य तथा जानवरों की त्वग्वसीय ग्रन्थियों और रोम-पुटकों में रहती तथा त्वचाशोथ (डर्मेटाइटिस) पैदा करती है। **सार्कोप्टीस** एक खाज कुटकी होती है, इसमें वातिकाएँ नहीं होतीं, यह खाल में गड़ती जाती है और एक ऊतक अन्त:परजीवी है, यह मनुष्य में खाज पैदा करती है और कुत्तों तथा विल्लियों में पशुखाज। **सोरॉप्टीस** (*Psoroptes*) स्तनियों की खाल पर बाह्यपरजीवी रूप में पाई जाने वाली एक स्कैब-कुटकी है, इससे
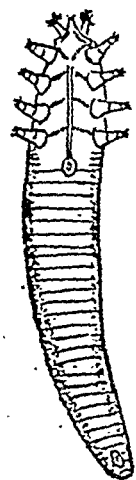
चित्र 354. **डेमोडेक्स ऑलिक्यूलोरम** (*Demodex ollicul-orum*), मादा।

मनुष्य, भेड़ों, गायों तथा घोड़ों की खाल में विदार पड़ जाते तथा स्कैव बन जाते हैं, संक्रमण फैलता जाता और उससे परपोषी की मृत्यु तक हो जाती है। **राइज़ोग्लाइफ़स** (*Rhizoglyphus*) एक वल्व कुटकी है जो पौधों के वल्वों (कंदों) में घुसती जाती और इस तरह कवकों एवं वेक्टीरिया को प्रवेश प्रदान कराती है जिनके कारण वल्व मर जाते हैं। **लाइपोनिसस** (*Liponyssus*) चूहा कुटकी है जो एक चूहा-वाइरस संक्रमण को मनुष्य में पहुँचा देती है, ऐसा सन्देह किया जाता है कि यह टाइफ़स फैलाती है।
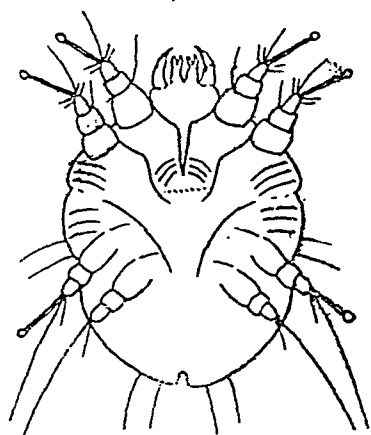
चित्र 355. **सार्कोप्टीस स्कैवियाई** (*Sarcoptes scabiei*), मादा।

22. **चिचड़ियाँ** (Ticks)—चिचड़ियाँ बड़ी कुटकियाँ होती हैं जिनकी त्वचा चर्मीय होती हैं। सभी चिचड़ियाँ कशेरुकियों के रक्त का आहार करती हैं, इनकी आहार-नाल में अनेक प्रसारशील अन्धवर्ध होते हैं जिनमें रक्त भरा रहता है। इनकी लार में एक प्रतिस्कन्दक (ऐंटिकोऐगुलिन) होता है जैसे कि जोंक में, जिसके द्वारा रक्त को जमने से रोका जाता है। चिचड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं, नरम शरीर वाली चिचड़ियाँ जिनमें स्कुटम न होकर एक अधर कैपिट्रुलम होता है (आर्गेसिडी, Argasidae), और कड़े शरीर वाली चिचड़ियाँ जिनमें एक पृष्ठ शील्ड अथवा स्कुटम तथा एक पृष्ठ **कैपिटुलम** होता है (इक्सोडिडी, Ixodidae)। स्कुटम नर में लगभग पूरी पृष्ठ सतह ढके रहता है लेकिन मादाओं में यह काफी छोटा होता है। इनमें एक गतिशील कैपिटुलम होता है जिसमें एक **रॉस्ट्रम** होता है, इस रॉस्ट्रम के भीतर दन्तयुक्त कीलिसेरा तथा एक दन्तयुक्त हाइपोस्टोम होता है, पेडिपैल्प 3 या 4 सन्धि वाले होते हैं। चार जोड़ी सुस्पष्ट पतली 6 सन्धियों वाली टाँगें होती हैं जिनमें दो नखर तथा एक गद्दी अथवा पल्विलस (pulvillus) होता है। ये स्तनियों, पक्षियों और सरीसृपों पर परजीवी होती हैं।

चित्र 356. **आर्गस पर्सिकस** (*Argas persicus*), मादा।

इक्सोडीस (*Ixodes*) (भेड़-चिचड़ी)—यह भूरे रंग की और 4 mm. लम्बी होती है। प्रोसोमा और ओपिस्थोसोमा में विभाजन नहीं होता। अग्र दिशा में एक अण्डाकार चलायमान मिथ्या शीर्ष अथवा **कैपिटुलम** होता है, जिसके पीछे एक देह होता है और इस देह पर एक चर्मीय त्वचा चढ़ी होती है और खण्डीभवन का कोई चिन्ह नहीं होता। कैपिटुलम में केवल मादाओं में पृष्ठतः दो संवेदी गर्तयुक्त क्षेत्र पाये जाते हैं, आँखें नहीं होतीं। कैपिटुलम का स्टर्नमी क्षेत्र आगे से लम्बा होकर एक **हाइपोस्टोम** बनाता है

जिसमें अनेक दोहरे मुड़े हुए हुक और एक मध्यपृष्ठ खाँच होती है। हाइपोस्टोम के हर पार्श्व में दो-सन्धि वाला एक-एक **कीलिसेरा** होता है जिसके सिरे पर दाँता बना होता है। 4 सन्धियों वाले एक जोड़ी **पेडिपैल्प** होते हैं जिनकी आधार सन्धियाँ समेकित होकर एक आवरण बनाती हैं जिसके भीतर कीलिसेरा तथा हाइ-पोस्टोम दोनों ही बन्द होते हैं, इस तरह एक रक्त-चूषण उपकरण बन जाता है। चार जोड़ी पतली टाँगें होती हैं, हर टाँग में 7 सन्धियाँ होती हैं जिसके अन्त में दो नखर और एक चूषक-जैसा **पल्विलस** होता है। पहली जोड़ी टाँग के टार्सस में एक प्यालानुमा संवेदी **हैलर-अंग** (Haller's organ) होता है। कैपिटुलम के पीछे देह के ऊपर एक पृष्ठीय काइटिनी **स्कुटम** अथवा पृष्ठ शील्ड होती है जो नर में पूरी की पूरी होती है लेकिन मादा में केवल शरीर के अगले आधे भाग में ही होती है, इस लक्षण के कारण आहार करने पर मादा का शरीर बहुत ज्यादा फूल सकता है। पश्चीय अधर दिशा पर एक गुदा होती है। चौथी जोड़ी टाँगों के पीछे एक जोड़ी सुव्यवत श्वास-रन्ध्र होते हैं जो भीतर सम्वलित वातिकाओं में खुलते हैं। पहली और दूसरी जोड़ी टाँगों के बीच में एक अकेला जनन-छिद्र बना होता है।
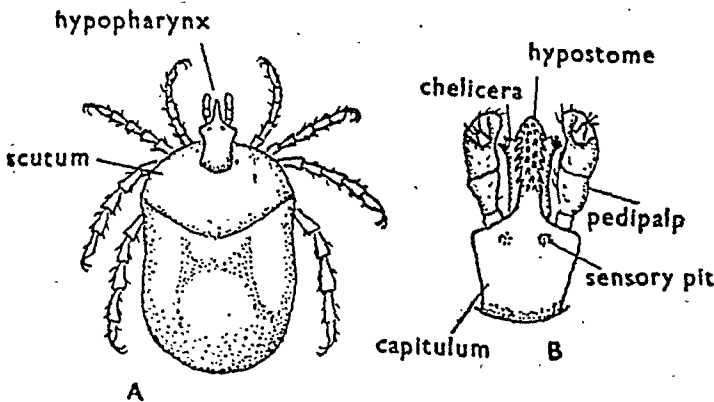
चित्र 357. **इक्सोडीस रिसिनस** (*Ixodes ricinus*); B-**इक्सोडीस** के मुखांग। Hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स; scutum, स्कुटम; chelicera, कीलि-सेरा; hypostome, हाइपोस्टोम; pedipalp, पेडिपैल्प; sensory pit, संवेदी गर्त; capitulum, कैपिटुलम।

भेड़ के रक्त से अपने पेट को ठसाठस भर लेने के बाद मादा एक नर के साथ मैथुन करती है और उसके बाद जमीन पर गिर जाती है। नर मैथुन के बाद आहार करता है। कुछ सप्ताह बाद मादा अण्डे देती है जिन्हें वह घास की जड़ों के पास रखती है, अण्डों में से लार्वा निकलते हैं जिनमें तीन जोड़ी टाँगें होती हैं। लार्वा घास के ऊपर चढ़ते जाते हैं और जो भी कशेरुकी प्राणी मिलता है उसी पर चिपक कर रक्त चूसने लगते हैं। तीन या चार दिन तक इस तरह आहार करने के बाद वे नीचे गिर जाते तथा निर्मोचन करके **निम्फ़** बन जाते हैं जिनमें चार जोड़ी टाँगें होती हैं। निम्फ़ एक नये कशेरुकी परपोषी के ऊपर चढ़ जाती हैं और 5 दिन तक रक्त चूसती हैं, उसके बाद वे जमीन पर आ गिरतीं और निर्मोचन होकर वयस्क बन

जाती हैं, ये वयस्क एक और नया परपोषी ढूंढ़ लेते हैं। लार्वा, निम्फ़ और वयस्क कई-कई महीनों तक बिना आहार किये जीवित बने रह सकते हैं।

इक्सोडीस एक भेड़-चिचड़ी है, यह एक वाइरस (विषाणु) को फैलाती है जिसमें भेड़ और घरेलू जानवरों में टिक-ज्वर हो जाता है तथा मनुष्य में मस्तिष्क-शोथ (एन्सेफ़ेलाइटिस) भी पैदा होता है। **आर्गस** एक कुक्कुट-चिचड़ी है जिसमें एक स्पाइरोकीट होता है जिससे मुर्गियों में आवर्ती ज्वर पैदा होता है। यह मनुष्य को भी काट लेती है। **मार्गेरोपस** (*Margaropus*) अथवा **बूफ़िलस** (*Boophilus*) एक मवेशी-चिचड़ी होती है। यह एक स्पोरोज़ोअन **बैबेसिया बाइजेमिना** (*Babesia bigemina*) का निवेशन कर देती है जिसके कारण मवेशियों में टेक्सस ज्वर हो जाता है जो घातक सिद्ध होता है। **डर्मासेंटर** एक कुत्ता-चिचड़ी होती है जो भूरे रंग की होती है, यह जानवरों तथा मनुष्य के ऊपर परजीवी होती है और एक भयंकर टुलेरीमिया (tularemia) तथा आवर्ती ज्वर पैदा करती है। **ऑर्निथोडोरस** (*Ornithodorus*) एक स्पाइरोकीट **रिकेट्सिया** (*Rickettsia*) को फैलाती है जो मनुष्य में एक भयंकर आवर्ती ज्वर फैलाती है।
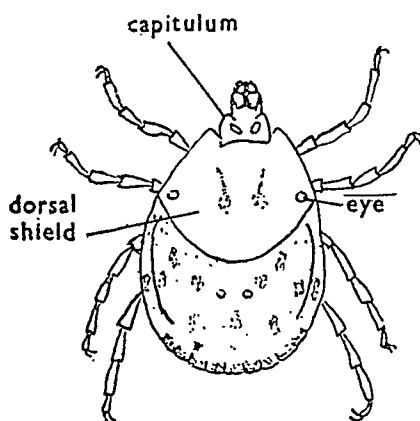
चित्र 358. **डर्मासेंटर ऐंडर्सोनाई** (*Dermacentor andersoni*), मादा। Dorsal shield, पृष्ठ शील्ड; capitulum, केपिटुलम; eye, आँख।

आर्थ्रोपोडा पर टिप्पणियाँ

शिरोभवन (Cephalization)—आर्थ्रोपोडा को उसी मूल से उत्पन्न हुआ माना जाता है जिससे पौलीकीटा उत्पन्न हुए हैं। पौलीकीटा में शिरोभवन का जो प्रक्रम शुरू हुआ वह यहाँ और आगे पहुँच गया है। देह सखंड और **खंड-एककों** (tagmata) में स्पष्ट विभाजित होता है। ओनाइकोफ़ोरा, क्रस्टेशिया, इन्सेक्टा तथा मिरियापोडा में अग्र खंड-एकक एक **शीर्ष** होता है जिस पर ऐन्टेना तथा मुखांग बने होते हैं। शेष देह जिसे धड़ कहते हैं दो खण्ड-एककों, एक **वक्ष** तथा एक **उदर,** में विभाजित होता है।

ऐरेक्निडा में सबसे अगला खण्ड-एकक **प्रोसोमा** अथवा शिरोवक्ष होता है जिसमें मुखांग होते हैं तथा टांगें भी बनी होती हैं। पिछला खण्डएकक एक **ओपिस्थोसोमा** अथवा उदर होता है, कुछ में यह एक मीज़ोसोमा तथा मेटासोमा में विभाजित होता है। आर्थ्रोपोडा के विभिन्न क्लासों में विविध खण्ड-एकक एक-दूसरे के अनुरूप नहीं होते क्योंकि वे समान खण्डों के नहीं बने होते। जैसे-जैसे आर्थ्रोपोड संघटन श्रेष्ठतर होता जाता है, वैसे-ही-वैसे शीर्ष में अधिक खण्ड शामिल होते जाते हैं जिनके उपांग जबड़े

बन जाते हैं और मुख की स्थिति बदल जाती है; इस तरह शीर्ष में कुछ मुखपूर्वी खण्ड भी होते हैं जिनके उपांग ऐन्टेना होते हैं। इस प्रकार ओनाइकोफ़ोरा के शीर्ष में तीन खण्ड होते हैं जिनमें से केवल पहला खण्ड मुखपूर्वी होता है जबकि क्रस्टेशिया के शीर्ष में छः खण्ड होते हैं जिनमें एक खण्डपूर्वी खण्ड भी शामिल है, तीन खण्ड मुखपूर्वी होते हैं।

क्यूटिकल (Cuticle)—अनेक आर्थ्रोपोड लक्षणों का सम्बन्ध एक मोटे, अर्ध-कड़े क्यूटिकल से है जो एक संरक्षी कवच अथवा बाह्यकंकाल बनाता है। क्यूटिकल की प्रकृति तथा संरचना मूलतः सभी आर्थ्रोपोडा में एक-सी होती है, इसमें एक अपारगम्य अकाइटिनी बाह्य **अधिक्यूटिकल** (ऐपिक्यूटिकल) तथा एक मोटा, पारगम्य लचीला पटलिकित भीतरी **प्राक्क्यूटिकल** (procuticle) होता है जो **काइटिन** का बना होता है। अनेक आर्थ्रोपोडा में बाह्यकंकाल के रूप में काइटिन का क्यूटिकल ही एकमात्र परत होती है, लेकिन क्रस्टेशिया और इन्सेक्टा में अधिक्यूटिकल और प्राक्-क्यूटिकल दोनों ही होते हैं। अधिक्यूटिकल एक पतली बाहरी **लाइपॉइड** तथा एक भीतरी अधिक मोटी **प्रोटीन** की परत का बना होता है। लाइपॉइड (वसीय) परत के कारण अधिक्यूटिकल जल के लिए अपारगम्य होता है, और यह जल द्वारा भीग नहीं सकता, फिर भी गैसों के लिये यह पारगम्य बना रहता है। प्राक्क्यूटिकल का काइटिन एक **एमिनोपौलिसैकेराइड** (aminopolysaccharide) होता है जो अधिकतर विला-यकों में अघुलनशील होता है। काइटिन लचीला होता है तथा गैसों के लिये और जलीय घोल में अनेक पदार्थों के लिये निर्बाध रूप में पारगम्य होता है। क्रस्टेशिया तथा इन्सेक्टा में काइटिन के तीन क्षेत्र बने होते हैं, एक तो बाहरी **वर्णकित क्षेत्र** जिसमें गहरे रंग का हो जाने अथवा **स्क्लेरॉटाइज़ेशन** की प्रक्रिया होती है, विशेषतः कीटों में। वर्णकित क्षेत्र के नीचे एक मोटा, पटलिकित **कैल्सिकृत क्षेत्र** (calcified zone) होता है जो कड़ा अन्तःक्यूटिकल बनाता है, खास तौर से क्रस्टेशियनों में। निचली परतें एक **अकैल्सिकृत क्षेत्र** बनाती हैं जो अपेक्षाकृत नरम होता है। समय-समय पर देह के एन्ज़ाइम वर्णकित तथा कैल्सिकृत क्षेत्रों को निचली परत से पृथक् कर देते हैं, वे फट जाते और शरीर से उतार फेंक दिए जाते हैं, इस प्रक्रिया को **निर्मोचन** (moulting या ecdysis) कहते हैं; उसके बाद एक नया क्यूटिकल जो कि पुराने क्यूटिकल के नीचे बन चुका होता है फैल जाता है और कठोर बन जाने से पहले वृद्धि होने को सम्भव बनाता है।

श्वसन-अंग

क्रस्टेशिया और ऐरेक्निडा के प्लाज़्मा में श्वसन वर्णक हीमोसाएनिन के रूप में होता है, लेकिन ओनाइकोफ़ोरा, मिरियापोडा और इन्सेक्टा में कोई श्वसन वर्णक नहीं होता। श्वसन निम्नलिखित अंगों द्वारा सम्पन्न होता है।

1. **त्वचा**—छोटे आर्थ्रोपोडा में जैसे कि छोटे जलीय कोपीपोडा, चिचड़ी एवं कुटकियों, और कोलेम्बोला में श्वसन-अंग नहीं होते, इनमें श्वसन पतली खाल में से होता है।

2. **गिलों** में बहुत पतला क्यूटिकल होता है। कैरापेस यदि हुआ तो उसका अस्तर पतला होता है और यह श्वसन सम्पन्न करता अथवा श्वसन की अधिपूर्ति करता है। मैलाकॉस्ट्राका में वक्ष-उपांगों के अधिपादाँश बहुत वलनित होते हैं जिससे कि उनकी श्वसन सतह बढ़ जाती है। ये अधिपादाँश गिल बनाते हैं जिन्हें जुड़े होने के स्थान के अनुसार अलग-अलग नाम दिये जाते हैं। (क) **पादगिल** (podobranchiae) वक्ष-उपांगों के आधारीय पादखण्ड से जुड़े हुए गिल होते हैं, ये कैरापेस से ढके भी हो सकते हैं और नहीं भी। (ख) **संधि-गिल** (arthrobranchiae) वे गिल होते हैं जो उपांगों को वक्ष से जोड़ने वाली संधिकला पर जुड़े होते हैं। (ग) **पार्श्वगिल** (pleurobranchiae) वे होते हैं जो वक्ष के प्ल्यूरॉनों (पार्श्वों) से जुड़े होते हैं। गिल विशाखित और पिच्छाकार हो सकते हैं (**ऐस्टैकस**), या उनमें चपटी गिल-प्लेटों की शृंखला बनी हो सकती है (झींगा तथा केकड़े)। गिल सामान्यतः गिलावरक के नीचे एक गिल-कक्ष में पड़े होते हैं जिसमें से होकर एक जलधारा गुजरती है। जलधारा उन उपाँगों द्वारा उत्पन्न होती है जिन पर गिल बने होते हैं या फिर यह भी हो सकता है कि कुछ विशिष्ट उपांगों पर खास पालि बने होते हैं जो जलधारा पैदा करते हैं। स्थलीय केकड़ों में गिल होते हैं और वे इसलिये कार्य कर सकते हैं क्योंकि गिल-कक्ष में नमी बनाये रखी जा सकती है। स्थलीय आइसोपोडा (**ओनिस्कस**) में उदरीय उपांगों की त्वचा अन्तर्वलित होकर विशाखित नलिकाएँ बनाती है, ये नलिकाएँ कीटों की वातिकाओं के समान होती हैं, इनके द्वारा श्वसन सम्पन्न होता है। ड्रैगन-फ्लाई की निम्फ़ों में मलाशय का अस्तर उभर कर **मलाशय गिल** (rectal gills) बनाता है और जल को गुदा के द्वारा अन्दर-बाहर पम्प करते हुए श्वसन होता है। इसी तरह कुछ कोपीपोडा (**साइक्लॉप्स**) में अन्तड़ी के तालबद्ध कम्पनों के द्वारा जल मलाशय के भीतर पहुँचता व बाहर निकलता है जिससे **गुदा श्वसन** सम्पन्न होता है।

3. **वातिका-तंत्र** (Tracheal system)—ओनाइकोफ़ोरा (**पेरिपैटस**) में सारे शरीर के ऊपर श्वास-रंध्र होते हैं, मुख्यतः अधर दिशा में, और हर खण्ड में अनेक श्वास-रंध्र बने होते हैं जो देह-भित्ति के गढ़ों में खुलते हैं, इन गढ़ों से सूक्ष्म वातिकाओं के गुच्छे-के-गुच्छे भीतर की ओर को निकलते हैं जो अन्य वातिकायुक्त आर्थ्रोपोडा से केवल इस बात में भिन्न हैं कि ये खण्डीय व्यवस्था में नहीं होतीं। इन वातिकाओं में कोई श्वास-रन्ध्र नियन्त्रण नहीं होता, अतः वे वायु के प्रवेश का नियन्त्रण नहीं कर सकतीं। मिरियापोडा में भी वातिका-तन्त्र पाया जाता है। काइलोपोडा में युग्मित श्वास-रन्ध्र खण्डों की संख्या से आधे से कम होते हैं, और उनकी वातिकाएँ विशाखित होकर संशाखित हो जाती हैं। डिप्लोपोडा में एक जोड़ी श्वास-रन्ध्र हर वास्तविक खण्ड में होते हैं तथा उनमें वाल्व बने होते हैं। हर श्वास-रन्ध्र भीतर को एक वायु कोष्ठ में खुलता है जिसमें से बहुत-सी अविशाखित वातिकाएँ निकलती हैं।

कीटों में वातिका तन्त्र सबसे ज्यादा विकसित होता है। इसमें सामान्यतः 2 जोड़ी श्वास-रन्ध्र वक्ष पर और 8 जोड़ी उदर खण्डों पर पाये जाते हैं। श्वास-रन्ध्र **वातिकाओं** में खुलते हैं जो **पार्श्व-महावातिकाओं** के द्वारा परस्पर सम्बन्धित होती

हैं । वातिकाएँ एक्टोडर्म के नलिकाकार अन्तर्वलन होते हैं जिनका अस्तर क्यूटिकल का बना होता है, और यह क्यूटिकल सर्पिल स्थूलनों के रूप में बना होता है जो वातिकाओं को पिचक जाने से रोकते हैं। वातिकाएँ विभाजित होकर सूक्ष्म कोशिकाएँ बनाती हैं जिन्हें **अनुवातिकाएँ** (tracheoles) कहते हैं जो अंगों में पहुँच जाती और कोशिकाओं एवं ऊतकों के ऊपर अथवा उनके भीतर समाप्त होती हैं जिससे बिना किसी मध्यस्थ श्वसन-वर्णक के ऑक्सीजन सीधी पहुँचाई जाती है। अनुवातिकाओं में क्यूटिकल इतना पतला होता है कि उसमें से कोशिका-तरल एवं अनुवातिका के बीच गैसीय विनिमय हो सकता है। सामान्यत: अनुवातिकाओं में ऊतक तरल भरा होता है जो ऑक्सीजन को सोखता है लेकिन तीव्र शारीरिक क्रिया के दौरान जैसे कि उड़ते समय यह ऊतक-तरल कोशिकाओं में वापिस खींच लिया जाता है और इसके फलस्वरूप अनुवातिकाओं में हवा और आगे सीधे कोशिकाओं तक पहुँच जाती है। निर्मोचन के दौरान वातिकाओं का क्यूटिकल उतार फेंक दिया जाता है तथा नई वातिकाएँ बन जाती हैं लेकिन अनुवातिकाएँ स्थायी होती हैं तथा उनका क्यूटिकल उतार कर नहीं फेंका जाता। श्वसन एकान्तर क्रम में उदर को संकुचित करने तथा उसे मूल आकृति में ले आने के द्वारा सम्पन्न होता है, संकुचनों से **साँस छोड़ा जाता** (अन्त:श्वास) और उदर की मूल आकृति लौट आने पर **सांस भीतर लिया जाता** है (बाह्यश्वास)। लेकिन कुछ आर्थ्रॉप्टेरा में कुछ श्वास-रन्ध्र अन्त:श्वासी और कुछ बाह्यश्वासी होते हैं, जैसे टिड्डे-टिड्डियों में पहले चार जोड़ी श्वास-रन्ध्र अन्त:श्वास के समय खुलते हैं और बाह्यश्वास के समय बन्द हो जाते हैं जबकि शेष छ: जोड़ी बाह्यश्वास के समय खुलते तथा अन्त:श्वास के समय बन्द हो जाते हैं। लम्बी-लम्बी उड़ानों के लिए अनुकूलित कीटों में (जैसे मधुमक्खी और टिड्डियों में) वातिकाओं में पतली-पतली दीवार वाले फूले हुए भाग बन जाते हैं जिन्हें **वायु-थैले** (air sacs) कहते हैं, ये थैले हवा के आगार बन जाते तथा तन्त्र के भीतर वायु के परिसंचरण में सहायता करते हैं। एक **तन्त्रिकापेशीय** क्रियाविधि श्वसन-क्रियाविधि का नियन्त्रण करती है, वह नियन्त्रण तन्त्रिका-रज्जु में पड़े हुए तन्त्रिका केन्द्रों के द्वारा होता है।

ओडोनाटा तथा प्लेकॉप्टेरा के कुछ जलीय लार्वाओं में श्वास-रन्ध्र नहीं होते, बल्कि उनमें उदर खण्डों के बाह्य प्रवर्ध होते हैं जिनमें वतिकाएँ जुड़ी रहती हैं, इन्हें **वातिका-गिल** (tracheal gill) कहते हैं।

वातिकाएँ कुछ ऐरेक्निडा में भी पाई जाती हैं, सॉलिफ्यूगा तथा एकैराइना में वे मात्र श्वसन-अंग होती हैं, लेकिन ऐरेनियाइडा में या तो वातिकाएँ ही मात्र श्वसन-अंग हाती हैं या वे फेफड़ा-पुस्तकों के साथ मिलकर श्वसन करती हैं। लेकिन इन्सेक्टा, मिरियापोडा और ऐरेक्निडा में वातिका-तन्त्र हर क्लास में स्वतन्त्र रूप में उत्पन्न हुआ है।

4. **गिल-पुस्तकें** (Gill-books) मीरोस्टोमेटा (**लिम्युलस**) की श्वसन-अंग होती हैं। उदर उपाँगों से 5 जोड़ी चपटी दोलनी प्लेटें बनी होती हैं जिन पर गिल-पुस्तकें जुड़ी होती हैं। गिल-पुस्तकें समान्तर पन्नों के रूप में व्यवस्थित कोमल

पटलिकाओं की बनी होती हैं, रक्त पटलिकाओं में बहता है और उन्हीं में से गैसीय विनिमय हो जाता है।

5. **फेफड़ा-पुस्तकें** (Lung books) कुछ स्थलीय ऐरेक्निडा (विच्छुओं और मकड़ियों) की श्वसन-अंग होती हैं। श्वास-रन्ध्र भीतर क्यूटिकल के अस्तर बने खानों में खुलते हैं, अस्तर से अनेक समान्तर पटलिकाएँ बनी होती हैं जिनके भीतर रक्त परि-संचरित होता है, और हवा इन पटलिकाओं के बीच में से गुजरती जाती है जिससे कि पूर्णतः विसरण के द्वारा पटलिकाओं में से गैस-विनिमय होता है। उदर खण्डों के ऊपर चार जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें होती हैं। ऐसा माना जाता है कि फेफड़ा-पुस्तकों की उत्पत्ति गिल-पुस्तकों के भीतर की ओर को चले जाने से हुई है जिसमें पटलिकाएँ कक्षों अथवा फेफड़ों में वन्द हो गई हैं। फेफड़ा-पुस्तकें मूलतः जलीय उपयोग के लिए थीं लेकिन उनमें स्थलीय जीवन के लिए अनुकूलन हो गया है। कुछ मकड़ियाँ एक आदिम फेफड़ा-पुस्तक अवस्था से गुजरी हैं, इनमें ये अवस्थाएँ देखी जाती हैं : (क) कुछ में केवल दो जोड़ी फेफड़ा-पुस्तकें होती हैं; (ख) एक अग्र जोड़ा फेफड़ा-पुस्तकों का **और** एक पश्च जोड़ा श्वास-रन्ध्रों का जो कि भीतर वातिकाओं में खुलते हैं; (ग) दो जोड़ी श्वास-रन्ध्र जो वातिकाओं में को खुलते हैं। इस प्रकार मकड़ियों में वे सभी अवस्थाएँ मिलती हैं जिनमें से आदिम फेफड़ा-पुस्तकों के स्थान पर वातिकाओं का निर्माण हुआ है, ये वातिकाएँ स्वयं फेफड़े के अन्धवर्धों के रूप में उत्पन्न हुई हैं।

10

आर्थ्रोपोडा
(ARTHROPODA)

क्लास इन्सेक्टा (*Class Insecta*)

कीट मैंडिबलयुक्त आर्थ्रोपोड-प्राणी हैं, ये खुश्क धरती पर पाए जाते, कुछ जलीय होते और कुछ केवल अपनी लार्वावस्था में ही जल में रहते हैं। जो समुद्र में रहते हैं वे बहुत ही थोड़े हैं। पंखों के कारण कीटों ने वायु वातावरण को भी जीत लिया है। शेष सभी स्थलीय जन्तुओं को एक साथ मिलकर कीटों की संख्या उनसे ज्यादा होगी। थल-प्राणिता (land fauna) के रूप में इनका इतनी सफलता के साथ उत्तरजीवी बना रहना कई कारणों से है, : इनका शरीर एक कड़े बाह्यकंकाल से ढका होता है जो थल पर जल-हानि को रोकता है; इनके श्वसन और परिसंचरण-तंत्र इतने कारगर होते हैं कि अंगों को ऑक्सीजन मिलना तथा पोषण प्राप्त होना अत्यन्त तीव्र और संपूर्ण होता है; ये बहुत तेजी से परिवर्धित होते तथा इनमें वंशवृद्धि की बहुत ज्यादा क्षमता पाई जाती है; वायु जीवन भी एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है क्योंकि वायु में प्रतिस्पर्धा बहुत सीमित होती है।

1. पेरिप्लैनेटा ऐमेरिकाना (कॉकरोच)
(*Periplaneta americana*)

कॉकरोच या तिलचटे बहुत प्राचीन कीट हैं और जहाँ कहीं भी आहार मिलता हो तथा ताप सहनीय हो वहीं ये अनेक प्रकार से आवासों में पनपते हैं। कॉकरोचों को आर्डर **डिक्टियॉप्टेरा** (Dictyoptera) के अन्तर्गत रखा जाता है जिनमें सामान्यीकृत कर्तन मुखांग होते हैं, अग्र पंख अपेक्षाकृत कड़े और पश्च पंखों की अपेक्षा संकीर्ण होते हैं, पुच्छक (cerci) बहु संधियुक्त होते हैं, टार्सस 5-संधि वाले होते हैं, शर (स्टाइल, styles) केवल वयस्क नरों में होते हैं, अण्डे एक अण्डपुटक (ootheca) में बन्द अवस्था में दिए जाते हैं। कॉकरोचों में (फ़ैम० ब्लैटिडी, Blattidae) शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में दबा हुआ होता है, प्रोनोटम बड़ा और शील्ड-जैसा होता है, टाँगों के कॉक्सा चौड़े और अधर सतह की रक्षा करते हुए की स्थिति में होते हैं। कॉकरोच **पेरिप्लैनेटा ऐमेरिकाना** रसोइघरों में पाया जाता है लेकिन अधिक खुली जगहों में जैसे बेकरियों,

रेस्ट्रांओं तथा सीवरों में रहना ज्यादा पसन्द करता है क्योंकि इन जगहों में इसे प्रचुर आहार और गर्मी मिलती है। यह एक सबसे बड़ा कॉकरोच है जिसकी लम्वाई 4·cm.
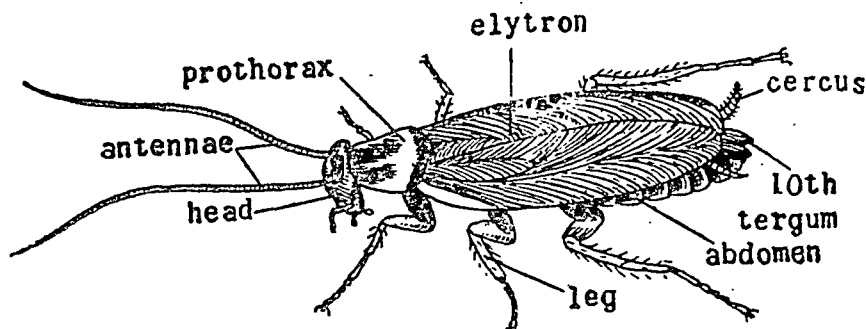
359. **पेरिप्लैनेटा ऐमेरिकाना**

Head, शीर्ष; antennae, ऐंटेना; prothorax, अग्रवक्ष; elytron, पक्षवर्म; cercus, सर्कस; tergum, टर्गम; abdomen, उदर; leg, टाँग।

तक होती है और पंख दोनों लिंगों में पाए जाते हैं। इससे थोड़ा छोटा एक कॉकरोच **ब्लाटा ओरिएंटैलिस** (*Blatta orientalis*) होता है जिसमें मादा में पंख अवशेषी होते हैं, यह भी इसी प्रकार के स्थानों में पाया जाता है। कॉकरोच संसार के सभी भागों में फैल चुके हैं और कदाचित् उनका मूल स्थान अफ्रीका था। कॉकरोच एक रात्रिचर जन्तु है जो दिन के समय खोखलों और दरारों में छिपा रहता है और रात के समय आहार करने के लिए बाहर निकल आता है। यह भाँति-भाँति की वस्तुओं को खाता फिरता है जैसे कपड़े, जूते, किताबें और मनुष्य का भोजन, यह **सर्वभक्षी** (omnivorous) प्रवृत्ति का होता है। यह तेज़ी से दौड़ता है हालाँकि उड़ भी सकता है। इसके प्राकृतिक शत्रुओं में पक्षी, झाऊमूसा (हेजहॉग), चूहे, मकड़ी और ततैये आते हैं। घरों में बोरैक्स का चूरा करके छिपने वाले स्थानों में छिड़कने से काकरोच समाप्त हो जाते हैं।

बाह्य लक्षण—शरीर लम्बा, खण्डयुक्त और पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा होता है, यह तीन स्पष्ट खण्ड-एककों में विभाजित होता है, शीर्ष, वक्ष और उदर। शीर्ष एक पतली और नरम गर्दन अथवा **ग्रीवा** (cervicum) द्वारा वक्ष के साथ जुड़ा होता है। संपूर्ण शरीर के ऊपर एक कड़ा भूरे रंग का काइटिनी **बाह्यकंकाल** होता है। बाह्यकंकाल के हर खण्ड से कठोर हो गई प्लेटें बनी होती हैं जिन्हें **स्क्लेराइट** (sclerite) कहते हैं, ये स्क्लेराइट पतली लचीली **संधि-कलाओं** द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं।

शीर्ष—यह शरीर के लम्वे अक्ष से समकोण बनाता हुआ व्यवस्थित रहता है, लचीली गर्दन के कारण यह हर दिशा में अच्छी तरह घुमाया जा सकता है। यह कुछ-कुछ अण्डाकार और अग्र-पश्च दिशा में चपटा होता है, यह छः खण्डों के समेकन से बना होता है, यह खण्डीभवन स्क्लेराइटों से सम्बन्धित नहीं होता जो समेकित

होकर एक **शीर्ष-कैप्सूल** (head capsule) बनाते हैं। शीर्ष पर बड़े **संयुक्त नेत्र** होते हैं जो पृष्ठतः ज्यादा चौड़े होते हैं। शीर्ष-कैप्सूल का सबसे ऊपरी भाग **वर्टेक्स** (vertex)
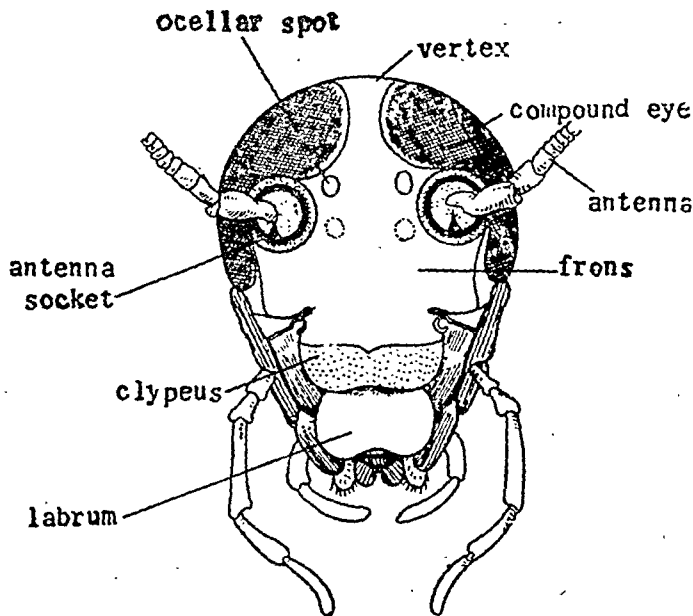
चित्र 360. शीर्ष का अग्र दृश्य।

Ocellar spot, नेत्रक बिन्दु; vertex, वर्टेक्स; compound eye, संयुक्त नेत्र; antenna, ऐंटेना; frons, फ्रॉन्स; labrum, लेब्रम; clypeus, क्लाइपियस; antenna, socket, ऐंटेना गर्तिका।

कहलाता है, निम्फ़ में वर्टेक्स एक उल्टी Y-आकृति की **एपिक्रेनियल सूचर** (epicranial suture) द्वारा दो **एपिक्रेनियल प्लेटों** में विभाजित हो जाता है। निर्मोचन के दौरान शीर्ष-कैप्सूल इसी एपिक्रेनियल सूचर पर फटता है, और यह एपिक्रेनियल सूचर वयस्क में विलीन हो जाती है। वर्टेक्स के नीचे आगे की ओर एक **फ्रॉन्स** (frons) होता है और फिर उसके नीचे एक **क्लाइपियस** (clypeus) होता है। अधिकतर कीटों में क्लाइपियस तथा फ्रॉन्स के बीच में एक सूचर होती है लेकिन कॉकरोच में यह नहीं होती। क्लाइपियस का निचला भाग झिल्लीदार होता है और उसके सहारे एक **लेब्रम** (labrum) अथवा ऊपरी होंठ नीचे को लटका रहता है। आँखों और ऐंटेनाओं के बीच के कोण में दो छोटे हल्के पीले-से रंग के क्षेत्र होते हैं जिन्हें **नेत्रक बिन्दु** (ocellar spots) कहते हैं, ये अविकसित नेत्रक होते हैं। शीर्ष कैप्सूल के पार्श्वों में हर संयुक्त नेत्र के नीचे जीना (gena) होते हैं। शीर्ष की पिछली तरफ एक बड़ा आयत **आक्सिपिटल रंध्र** (occipital foramen) होता है जो शीर्ष की गुहा को देह की गुहा के साथ जोड़ता है।

शीर्ष के ऊपर तीन युग्मित उपांग **ऐंटेना, मैंडिबल** और **मैक्सिला** तथा एक अयुग्मित **लेबियम** होता है। ऐंटेना शीर्ष के दूसरे खण्ड के अंग होते हैं, मैंडिबल **चौथे**

खण्ड के, मैक्सिला पांचवें खण्ड के और लेबियम छठे खण्ड का होता है। पहले और तीसरे खण्ड के उपाँग नहीं होते।
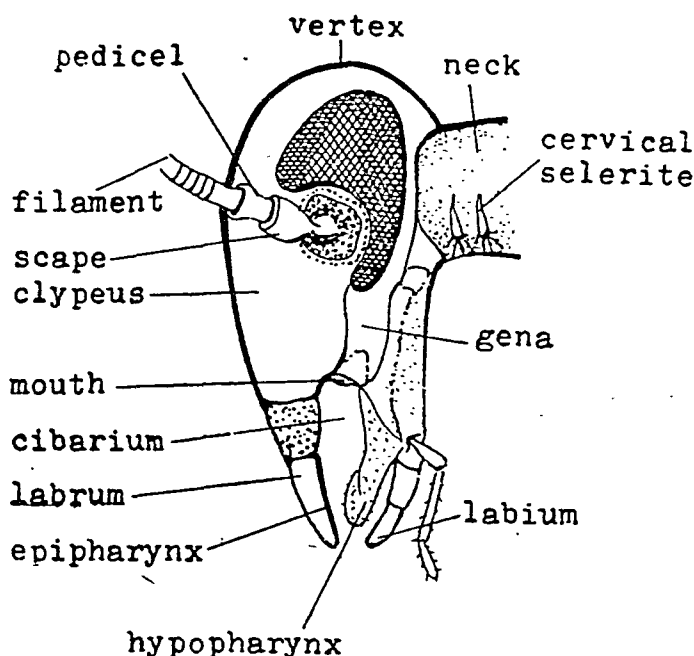
चित्र 361. शीर्ष और गर्दन (पार्श्व दृश्य)।

Vertex, वर्टेक्स; neck, गर्दन; cervical sclerite, ग्रीवा स्क्लेराइट; gena, जीना; labium, लेबियम; pedicel, पेडिसेल; filament, फ़िलैमेंट; scape, स्केप; clypeus, क्लाइपियस; mouth, मुख; cibarium, साइबेरियम; labrum, लेब्रम; epipharynx, एपिफ़ेरिंक्स; hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स।

ऐंटेना झिल्लीदार **गर्तिकाओं** (sockets) से निकलते हैं जो आँखों के नीचे की ओर बनी होती हैं। हर ऐंटेना में तीन भाग होते हैं, एक बड़ा आधारीय **स्केप** (scape) जिससे आगे एक लघुतर **पेडिसल** (pedicel) और फिर उसके आगे एक लम्बा सूत्राकार बहु-संधि **फ्लैजेलम** (flagellum) होता है। ऐंटेनाओं को हर दिशा में घुमाया जा सकता है इनके ऊपर छोटे-छोटे संवेदी शूक बने होते हैं।

मुखांग (Mouth-parts)—मुख के इर्द-गिर्द व्यवस्थित उपांगों को मुखांग कहते हैं जो इस प्रकार होते हैं, एक लेब्रम, दो मैंडिबल, दो मैक्सिला, एक लेबियम और एक हाइपोफ़ेरिंक्स। (1) **लेब्रम** (labrum) एक चपटा पालि होता है जो क्लाइपियस के नीचे लटका होता है, इसके आधार पर पेशियाँ होती हैं जिनके द्वारा यह गति करता है, यह मुख के सामने की ओर ऊपरी होंठ के रूप में पड़ा होता है। लेब्रम की भीतरी सतह के साथ समेकित एक पतली प्लेट **एपिफ़ेरिंक्स** (epipharynx) होती है। (2) **मैंडिबल** (Mandibles) शीर्ष-कैप्सूल के पार्श्वों में नीचे को लटके होते हैं, हर पार्श्व में एक मैंडिबल होता है जो शीर्ष के साथ एक

गोली और गर्तिका (ball and socket) प्रकार के संयोजन से जुड़ा होता है।
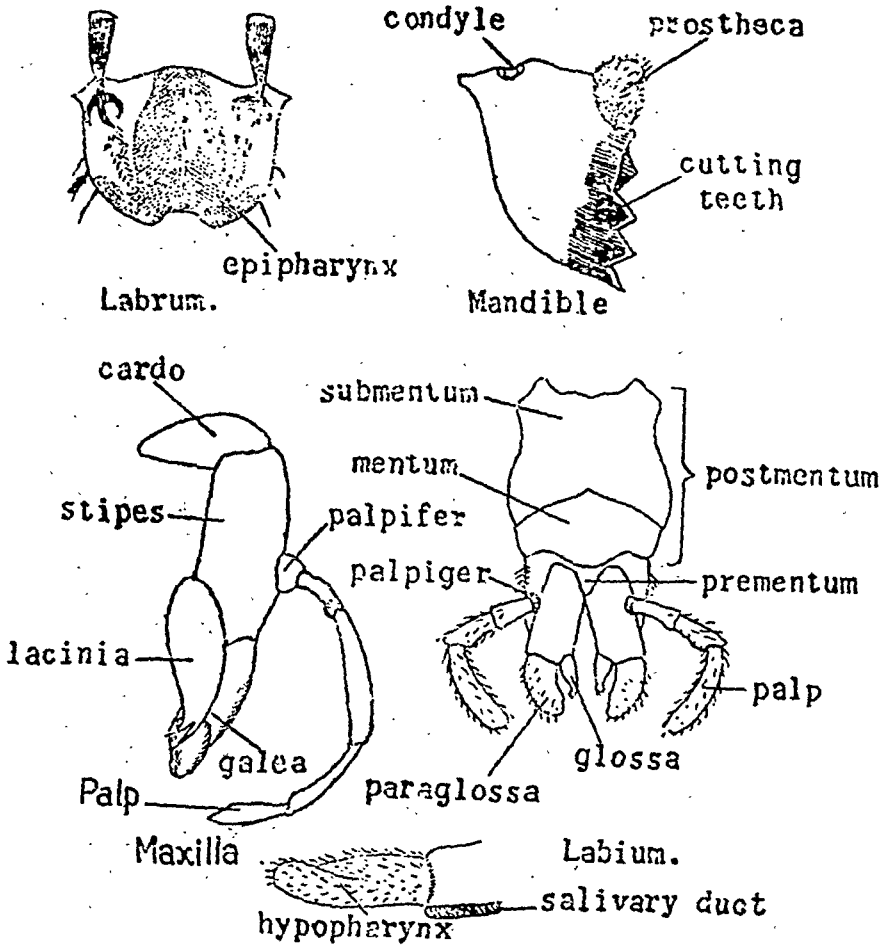
चित्र 362. कॉकरोच के मुखांग।

Labrum, लेब्रम; epipharynx, एपिफ़ेरिंक्स; mandible, मैंडिबल; condyle, स्थूलक; prostheca, प्रोस्थीका; cutting teeth, काटने वाले दाँत; cardo, कार्डो; stipes, स्टाइप्स; lacinia, लैसीनिया; galea, गेलिया; palpifer, पैल्पिफ़र; palp, पैल्प; maxilla, मैक्सिला; labium, लेबियम; mentum, मेंटम; sub-mentum, सबमेंटम; post-mentum, पश्च-मेंटम; prementum, पूर्वमेंटम; palp, पैल्प; glossa, ग्लौसा; paraglossa, पराग्लौसा; palpiger, पैल्पिजर; hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स; salivary duct, लार-वाहिनी।

प्रत्येक मैंडिबल सुदृढ़ और अत्यधिक स्केलेरॉटिनीकृत होता है, इसके भीतरी सीमांत पर दाँत-जैसी संरचनाएँ होती हैं। इसके भीतरी किनारे के समीपस्थ सिरे पर एक अपेक्षाकृत नरम प्रोस्थीका (prostheca) होती है। मैंडिबल जबड़े होते हैं जो आहार को चूरा करने और काटने के काम आते हैं। हर मैंडिबल चार पेशियों द्वारा चलाया

जाता है, जब दोनों मैंडिबल परस्पर बंद होते हैं, तो बाएँ मैंडिबल के दाँत दाहिने मैंडिबल के दाँतों को आगे से ढक लेते हैं, और काटने तथा चवाने के दौरान दोनों के बीच में आहार का चूरा बन जाता है (3) मैक्सिला (Maxillae)—दो मैक्सिला होते हैं, शीर्ष-कैप्सूल की निचली दिशा में हर बाजू में एक-एक होता है। हर मैक्सिला में एक आधारीय भाग होता है जो एक **कार्डो** (cardo) तथा एक **स्टाइप्स** (stipes) का बना होता है, ये दोनों भाग एक-दूसरे पर कोण बनाए रहते हैं, स्टाइप्स की बाहरी दिशा से एक 5 संधि वाला पैल्प निकलता है, पैल्प के आधार पर एक छोटा स्क्लेराइट **पैल्पिफ़र** (palpifer) होता है। स्टाइप्स की भीतरी तरफ़ से एक दोहरी बहिर्वृद्धि निकलती है जिसमें एक बाहरी हुड-जैसा **गेलिया** (galea) और एक भीतरी **लैसीनिया** (lacinia) होता है जो चपटा और सिरे पर पतला होता जाता हुआ एवं अंत में दो तीक्ष्ण नखर-जैसे प्रवर्धों से युक्त होता है। इसके भीतरी सीमांत पर सख्त शूक बने होते हैं। मैक्सिला आहार को लैसीनिया के नखरों द्वारा पकड़ते हैं और उसे चबाए जाने के वास्ते मैंडिबलों तक लाते हैं। मैक्सिला एक और काम भी करते हैं—ऐंटेनाओं, पैल्पों तथा अगली टाँगों को साफ़ करने का। (4) **लेबियम** (Labium) मुख के पीछे पड़ा हुआ निचला होंठ होता है, यह दूसरी जोड़ी मैक्सिला का प्रतिदर्श है जो समेकित होकर एक हो गए हैं। इसमें एक समीपस्थ **पश्चमेंटम** (postmentum) होता है जो एक बड़े **सबमेंटम** (sub-mentum) तथा एक छोटे अल्प-स्क्लेरॉटित **मेंटम** (mentum) में विभाजित होता है। लेबियम का दूरस्थ भाग एक युग्मित संरचना होती है जो आधारों पर समेकित एक जोड़ी मैक्सिलाओं के समान दिखाई पड़ता है, इसमें मेंटम के आगे एक **पूर्वमेंटम** अथवा **स्टाइप्स** बना होता है, और हर पार्श्व में इसमें एक 3-संधि वाला पैल्प होता है, हर पैल्प के आधार पर एक छोटा स्क्लेराइट **पैल्पिजर** (palpiger) होता है। पैल्पों के बीच में चार पालि होते हैं—दो मध्य एवं छोटे **ग्लौसा** (glossa) तथा दो बाहरी एवं बड़े **पराग्लौसा** (paraglossa)। लेबियम-पैल्प संवेदी होते हैं और लेबियम अशन में कोई सक्रिय भाग नहीं लेता, लेकिन ग्लौसा तथा पराग्लौसा, जिन्हें एक साथ मिला कर **लिगुला** (ligula) कहा जाता है मैंडिबलों में से आहार-कणों को बाहर निकलने से रोकते हैं। (5) मैक्सिलाओं के बीच में तथा लेबियम के सामने एक चपटी सिलिंडराकार रचना होती है जिसे **हाइपोफ़ेरिंक्स** (hypopharynx) अथवा जीभ कहते हैं, इसके आधार पर एक लार-वाहिनी खुलती है।

अंतःकंकाल—बाह्यकंकाल शीर्ष-कैप्सूल में भीतर की ओर मुड़ कर **ऐपोडीम** बनाता है जिन पर पेशियाँ जुड़ी होती हैं। ये ऐपोडीम अंतःकंकाल हैं जो एक **टेंटोरियम** (tentorium) बनाते हैं। टेंटोरियम शीर्ष-कैप्सूल में आक्सिपिटल रंध्र के नीचे पड़ा होता है, इसमें एक चपटा प्लेट-जैसा काय बना होता है जिसमें तंत्रिकाओं के लिए एक छेद होता है, काय में से तीन जोड़ी भुजाएँ निकलती हैं—एक जोड़ी **अग्र भुजाएँ** (anterior arms), एक जोड़ी **पश्च भुजाएँ** (posterior arms) और एक जोड़ी पतली **पृष्ठ भुजाएँ** (dorsal arms)। टेंटोरियम शीर्ष-कैप्सूल की निचली दीवारों

को सधाए रखता है और मुखांगों की पेशियों के वास्ते जुड़ने का स्थान प्रदान करता है। ग्रसिका टेंटोरियम के काय के ऊपर पड़ी होती है। मध्यवक्ष (mesothorax) तथा पश्चवक्ष (metathorax) दोनों में स्टर्नम-प्रदेश से एक सुव्यक्त, मध्य नलिकाकार एपोडीम निकलता है और तंत्रिका-रज्जु की दोनों रज्जुओं के बीच में से
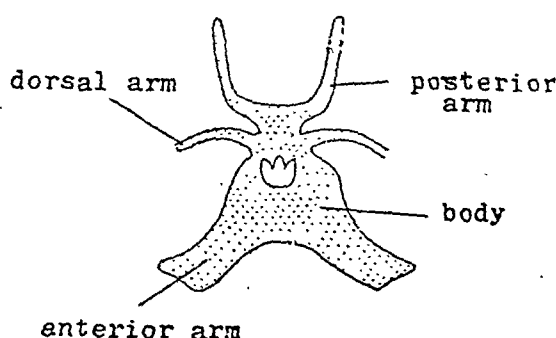
चित्र 363. टेंटोरियम।
Dorsal arm, पृष्ठ भुजा; posterior arm, पश्च-भुजा; body, काय; anterior arm, अग्र-भुजा।

ऊपर को उभरा होता है, ये ऐपोडीम खंड के अगले भाग में होते हैं। मध्यवक्ष तथा पश्चवक्ष दोनों के पश्च प्रदेश से एक-एक जोड़ी पंख-सरीखे ऐपोडीम निकलते हैं। ये ऐपोडीम टाँगों की पेशियों के जुड़ने के लिए होते हैं।

गर्दन अथवा **ग्रीवा (सर्वाइकम)** एक पतला नरम भाग होता है जिसको काइटिनी **ग्रीवा-प्लेटों** (cervical plates) का बल मिला होता है। गर्दन में पेशियाँ होती हैं जो शीर्ष का आगे-पीछे बहिःकर्षण तथा अंतःकर्षण करती और उसे ऊपर-नीचे अथवा अगल-बगल घुमाती हैं। अन्य कीटों की भाँति कॉकरोच अपनी गर्दन को फैला कर लंबा कर सकता है।

वक्ष—वक्ष में तीन खंड होते हैं, अग्रवक्ष (prothorax), मध्यवक्ष (mesothorax) तथा पश्चवक्ष (metathorax)। हर खंड में एक जोड़ी चर टाँगें होती हैं, पहली जोड़ी के पंख मध्यवक्ष से और दूसरी जोड़ी के पंख पश्चवक्ष से निकलते हैं।

हर वक्ष-खंड का बाह्यकंकाल चार काइटिनी स्क्लेराइटों का बना होता है: एक पृष्ठ **टर्गम** (वक्ष टर्गमों को कीटों में **नोटम,** notum, भी कहते हैं)। पार्श्वतः हर दिशा में एक **प्ल्यूरॉन** और अधरतः एक **स्टर्नम** होता है। हर खंड के स्क्लेराइटों के बीच में और संलग्न खंडों के स्क्लेराइटों के बीच में पतली नरम, लचीली **संधि-कलाएँ** होती हैं जो स्क्लेराइटों को जोड़ती हैं।

अग्र-वक्ष में एक बड़ा **अग्रनोटम** (pronotum) होता है, इसका अगला सीमांत अंतःकर्षित शीर्ष को ऊपर से ढके रहता है और पिछला सीमांत पंखों के आधारों को ढकता है। **मध्यनोटम** (mesonotum) तथा **पश्चनोटम** (metanotum) छोटे होते हैं, ये चपटे और आयताकार होते हैं जिनके पार्श्वीय सीमांत अनियमित होते हैं। हर

वक्ष-प्ल्यूरॉन एक उदग्र खाँच के द्वारा दो भागों में विभाजित होता है—एक **एपिमेरॉन** (epimeron) और दूसरा **एपिस्टर्नम** (episternum)। अधर दिशा में वक्ष का अधिकतर भाग झिल्लीदार होता है, लेकिन हर खंड में स्टर्नम दो प्लेटों के रूप में होता है, एक अगली प्लेट और दूसरी पिछली प्लेट के रूप में।
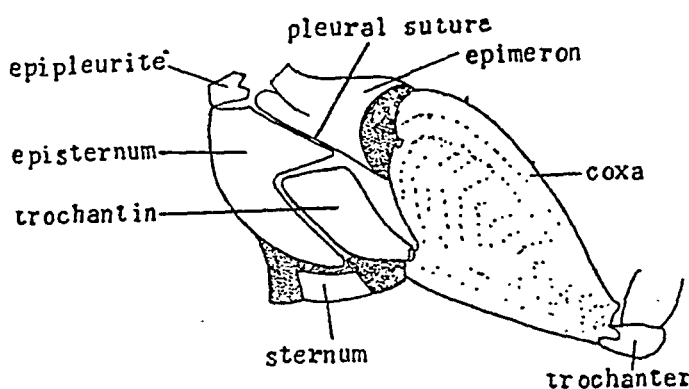
चित्र 364. वक्ष-प्ल्यूरॉन और टाँग का जोड़।

Epipleurite, ऐपिप्ल्यूराइट; episternum, एपिस्टर्नम; trochantin, ट्रोकेंटिन; pleural suture, प्ल्यूरल सूचर; epimeron, एपिमेरॉन; coxa, कॉक्सा; sternum, स्टर्नम; trochanter, ट्रोकेंटर।

टाँगें—तीन जोड़ी चर टागें समान होती हैं, हर टाँग में पाँच खंड होते हैं, एक बड़ा आधारीय **कॉक्सा** जो वक्ष खंड के साथ प्ल्यूरॉन और स्टर्नम के बीच में जुड़ा होता है, कॉक्सा के बाद एक छोटा **ट्रोकेंटर** आता है जो कॉक्सा पर मुक्त गतिशील होता किन्तु अगले खंड **फ़ीमर** के साथ स्थिरतः जुड़ा होता है, फीमर लंबी और चौड़ी होती है, इसके बाद फिर एक समान मोटाई वाली **टिबिया** होती है जिस पर दृढ़ शूक बने होते हैं जिन्हें **टिबियल पदकंट** (tibial spurs) कहते हैं। अन्तिम खंड एक **टार्सस** होता है जिसमें 5 गतिशील संधियाँ अथवा **पादखंड** होते हैं जिनमें महीन शूक बने होते हैं तथा जिनकी अधर सतह पर चिपकने वाली गद्दियाँ होती है जिन्हें **पदतलक** (plantulae) कहते हैं। टार्सस के अन्तिम पादांश को प्रायः एक **पूर्वटार्सस** (pretarsus) कहते हैं और इसके अन्त में दो वक्र नखर अथवा **नख** (ungues) बने होते हैं। नखरों के बीच में एक नरम खोखला पालि अथवा **ऐरोलियम** (arolium) होता है जिसके ऊपर छोटे शूक बने होते हैं, यह ऐरोलियम चिकनी सतहों पर चिपकने के वास्ते एक आसंजी अंग होता है।

चलन—जब काकरोच शांत अवस्था में होता है तो टाँगों के कॉक्सा शरीर के साथ सटे होते, और पतली टाँगें सामने की ओर को निकली होती हैं, पिछली टाँगें पीछे को फैली होती हैं और बीच की टाँगें सुविधानुसार कोई भी स्थिति ले लेती हैं। चलन के दौरान पहली जोड़ी टाँगें सामने को निकली होती हैं, चलने

अथवा दौड़ने के समय इन्हीं के द्वारा दिशा-निर्धारण होता है। स्थलीय चलन में छः टाँगें दो तिपाहियों की तरह काम करती हैं। एक दिशा की पहली और तीसरी टाँग तथा दूसरी दिशा की बीच की टाँग एक तिपाही (ट्राइपॉड) बनाती हैं जिन पर कीट टिका होता है तथा शेष तीन टाँगें आगे को बढ़ाकर अधःस्तर पर जमाई जाती हैं। तब पहली टाँग खींचती, तीसरी टाँग धक्का देती, और दूसरी दिशा की बीच की
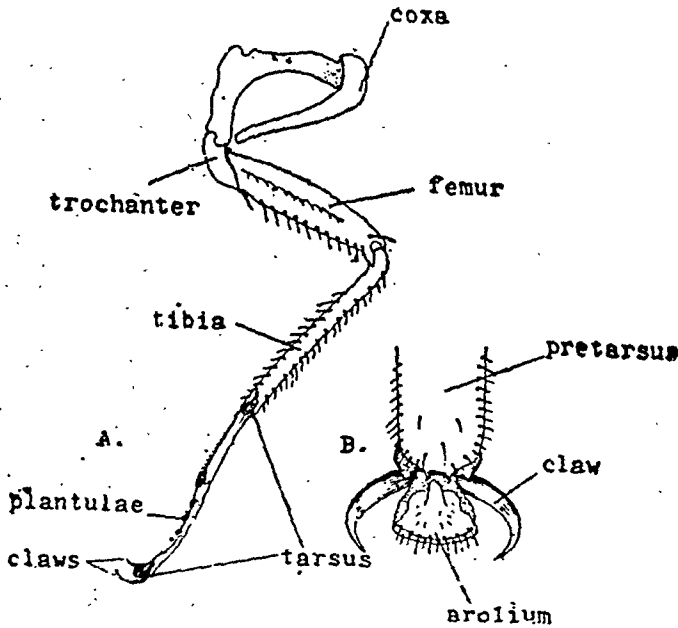
चित्र 365. A—टाँग, B—टार्सस का अन्तिम भाग।
Coxa, कॉक्सा; trochanter ट्रोकेंटर; femur, फीमर; tibia, टिबिया; plantulae, पदतल्क; claw, नखर; tarsus, टार्सस; pretarsus, पूर्वटार्सस; arolium, ऐरोलियम।

टाँग एक धुराग्र (pivot) का काम करती है। यही प्रक्रिया अन्य तीन टाँगों द्वारा दोहराई जाती है और कीट एक टेढ़े-मेढ़े ढंग से चलता जाता है। तंत्रिका-रज्जु चलन गतियों का समन्वय करती है।

पंख (Wings)—दो जोड़ी पंख होते हैं, पहली जोड़ी मध्यवक्ष से और दूसरी जोड़ी पश्चवक्ष से निकलती है। पंख नोटम के अग्र-पार्श्व सीमांत से जुड़े होते हैं। पहली जोड़ी के पंख ज्यादा स्क्लेरोटिनीकृत होते हैं और उन्हें **पक्षवर्म** (elytron) अथवा **टेगमेन** (tegmen) कहते हैं, ये आरक्षी होते हैं और पिछले पंखों को मोड़ी हुई अवस्था में ऊपर से ढके रहते हैं, बायाँ टेगमेन अंशतः दाएँ टेगमेन को ढके रहता है। दूसरी जोड़ी पंख झिल्लीदार और बड़े होते हैं, वे विश्रामावस्था में टेगमेनों के नीचे मुड़े हुए पड़े होते हैं। पंख नोटम और प्ल्यूरॉन के बीच में देह-भित्ति की बहिर्वृद्धियों के रूप में बनते हैं। हर पंख में दो झिल्लीनुमा परतें होती हैं जिनके बीच में हीमोसील (रुधिर-गुहा) के नलिकाकार एवं काइटिनी प्रसार बने होते हैं

जिन्हें **शिराएँ** (veins) अथवा तंत्रिकाभ (nervures) कहते हैं जिनमें प्रारंभिक अवस्थाओं में रक्त भरा होता है। शिराएँ अधिक काइटिनीकृत होती हैं और उनमें एक-एक छोटी वातिका होती है, बड़ी शिराओं में एक महीन तंत्रिका-तंतु भी होता है। कॉकरोच में पंख-पेशियाँ कम विकसित होती हैं फिर भी यह अच्छा-खासा उड़ लेता है, उड़ते समय पंख क्षैतिजशः फैल जाते हैं, पंखों का अगला सीमांत कड़ा बना रहता है लेकिन शेष पंख उस समय हवा के दबाव के द्वारा उसके अनुसार प्रभावित होता रहता है जबकि पंख ऊपर नीचे गति करता है, फलतः पंख के नीचे को आते समय यह ऊपर को टेढ़ा हो जाता और पंख के ऊपर जाते समय यह नीचे को झुक जाता है, अतः झुकने के कारण पंखों पर पीछे की ओर से दबाव पड़ता है और कीट हवा में आगे को चलता जाता है। एक **अनुदैर्घ्य पृष्ठ पेशी** (longitudinal dorsal muscle) जो कि टर्गमों के नीचे पड़ी रहती है, टर्गमों को ऊपर को उठा देती है जिनके द्वारा पंख नीचे को आ जाता है; वक्ष के हर बाजू में टर्गम से स्टर्नम तक चलने वाली एक **टर्गोस्टर्नम पेशी** (tergosternal muscle) टर्गम को नीचे को खींचती है जिससे पंख ऊपर को उठ जाता है।

चित्र 366. वक्ष का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) जिसमें उड्डयन पेशियाँ दिखाई गई हैं।
Longitudinal muscle, अनुदैर्घ्य पेशी; tergosternal muscle, टर्गोस्टर्नम पेशी; sternum, स्टर्नम ; wing, पंख ; anterior pleural muscles, अग्र-पार्श्व पेशियां ; pleuron, प्ल्यूरॉन।

उदर—उदर में वयस्क में 10 खंड होते हैं लेकिन भ्रूण में 11 खंड थे। उदर का बाह्यकंकाल कड़े हो गये स्क्लेराइटों का बना होता है। प्रतिरूपी उदर खंड में एक **पृष्ठ टर्गम**, अधर **स्टर्नम**, और दोनों के बीच में हर पार्श्व में एक संकीर्ण झिल्लीदार **प्ल्यूरॉन** होता है। हर प्ल्यूरान में तीन स्क्लेराइट होते हैं, दो **पार्श्व टर्गाइट** (laterotergite) जो टर्गम से निकलते हैं, और स्टर्नम से निकलता हुआ एक संकीर्ण **पार्श्वस्टर्नाइट** (laterosternite)। पृष्ठतः उदर में 10 टर्गम होते हैं, लेकिन मादा के 8वें और 9वें टर्गमों का अधिकतर भाग 7वें टर्गम से ढका होता है। 10वां टर्गम शील्ड की आकृति का होता है जिसमें पीछे की दिशा में एक गहरा खांचा बना होता है। 10वें खंड में एक जोड़ी लबे, सिरे की ओर पतले होते जाते

हुए 15-संधि वाले **गुदा-लूम** या गुदा सर्कस (anal cerci) होते हैं । हर **लूम** में एक तंत्रिका चलती जाती है और इसमें एक संवेदी अंग होता है जो ध्वनि के लिए ग्राही होता है । अधर दिशा में नर में 9 स्टर्नम लेकिन मादा में केवल 7 ही बाहर से दृश्यमान स्टर्नम होते हैं । नर के नवें स्टर्नम में एक जोड़ी पतले **गुदा शर** (anal styles) होते हैं जो मादा में अविद्यमान होते हैं, मादा का सातवां स्टर्नम पीछे की ओर को एक जोड़ी बड़े अंडाकार **शीर्षस्थ पालियों** अथवा **गइनोवेल्वुलर प्लेटों** (gynovalvular plates) के रूप में निकला होता है जो एक नौतल-जैसी रचना बनाती हैं, इन गोलाईदार नौतल के द्वारा मादा को तुरंत पहचाना जा सकता है । मादा का 8वाँ और 9वाँ खंड भीतर को अंतर्वलित होते हैं । नर में कुछ जनन रचनाएँ उदर के पीछे को थोड़ी-सी निकली हो सकती हैं । दोनों लिंगों में जनन-छिद्र **गोनैपोफाइसिस** नामक स्क्लेराइटों से घिरा रहता है, नर में ये गोनैपोफ़ाइसिस 9वें खंड में होते और **जननेंद्रिय** (genitalia) अथवा बाह्य-जननांग बनाते हैं । मादा में गोनैपोफ़ाइसिस 8वें और 9वें खंड में होते हैं और वे एक **अंडनिक्षेपक** (ovipositor) बनाते हैं । 10वें खंड में टर्गम के ठीक नीचे एक **गुदा** (anus) होती है जिसे चार **पोडिकल प्लेटों** (podical plates) का सहारा मिला होता है । ये प्लेटें 11वें खण्ड के अवशेषों का प्रतिदर्श हैं, और दो सर्कस इसी ग्यारहवें खण्ड के उपांग हैं। पोडिकल प्लेटें चार पालि बनाती हैं, गुदा के हर पार्श्व में बनी प्लेटों को **पैराप्रॉक्ट** (paraprocts) कहते हैं, गुदा के ऊपर एक गोल **एपिप्रॉक्ट** (epiproct) प्लेट होती है और गुदा के नीचे एक छोटा **हाइपोप्रॉक्ट** (hypoproct) होता है ।
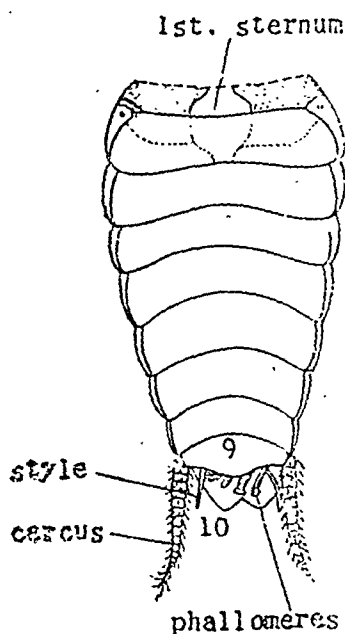
चित्र 367. नर का उदर (अधर) ।
Sternum, स्टर्नम; style, शर; cercus (सर्कस) लूम; phallomere, शिश्नखंड ।

पाँचवें और छठे उदर टर्गमों के बीच की झिल्ली नर में एक गहरी थैली बनाती है, इस थैली में दो झिरी-जैसे कोष्ठ होते हैं जो कदाचित् ग्रंथीय होते तथा एक स्राव छोड़ते हैं जो प्रजनन काल में मादा को आकर्षित करता है ।

श्वास-रंध्र—दस जोड़ी झिरी-जैसे **श्वास-रंध्र** होत हैं जो दो जोड़ी वक्ष पर तथा आठ जोड़ी उदर पर होते हैं । वक्ष श्वास-रंध्रों की पहली जोड़ी अग्रवक्ष तथा मध्यवक्ष के बीच के प्ल्यूरॉन पर होती है और दूसरी जोड़ी मध्यवक्ष तथा पश्चवक्ष के बीच में । पहली जोड़ी के श्वास-रंध्र शेष श्वास-रंध्रों की अपेक्षा बड़े होते हैं । उदर श्वास-रंध्र, वक्ष श्वास-रंध्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं, पहली जोड़ी

पृष्ठतः पहले उदर खंड में पड़ी होती है, शेष सात जोड़ी खंड 2 से 8 के प्ल्यूरॉन पर बनी होती हैं।
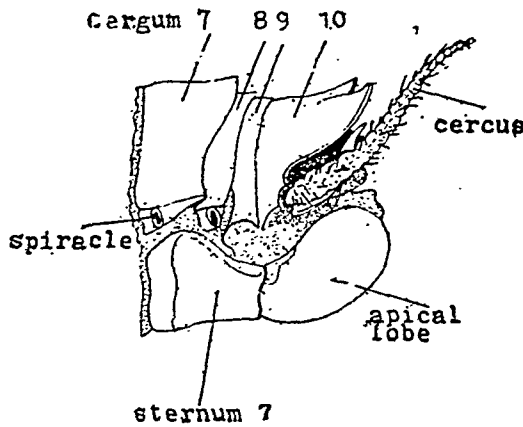
चित्र 368. मादा का उदर (पार्श्व दृश्य)
Tergum, टर्गम ; cercus, लूम (सर्कस) ; spiracle, श्वास-रंध्र ; sternum, स्टर्नम ; apical lobe, शीर्षस्थ पालि ।
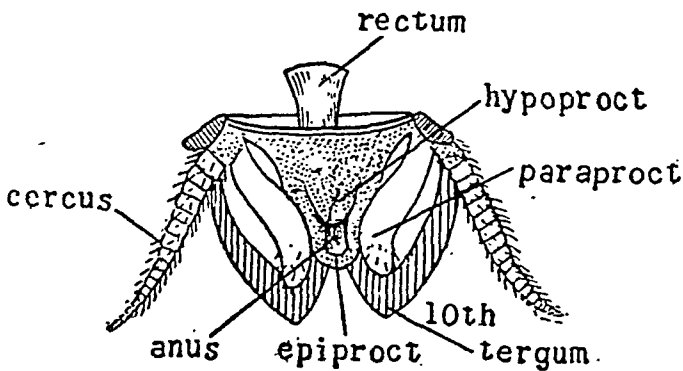
चित्र 369. उदर का पार्श्व सिरा (अधर दृश्य) ।
Rectum, मलाशय; hypoproct, हाइपोप्रॉक्ट; paraproct, पैराप्रॉक्ट; tergum, टर्गम; epiproct, एपिप्रॉक्ट; anus, गुदा; cercus, सर्कस ।

देह-भित्ति—देह-भित्ति में तीन स्पष्ट परतें पाई जाती हैं, एक सबसे बाहरी क्यूटिकल, एक कोशिकीय **एपिडर्मिस** अथवा **हाइपोडर्मिस** और एक कोमल **आधारक झिल्ली** (basement membrane)। क्यूटिकल की रचना काइटिन की होती है जो कड़ा होकर बाह्यकंकाल बनाता है, काइटिन ग्लाइकोसऐमीन के एक पॉलिसैकेराइड का ऐसीटेट होता है। क्यूटिकल में दो स्तर होते हैं एक बाहरी पतला **अधिक्यूटिकल** (epicuticle) और एक भीतरी मोटा **प्राक्क्यूटिकल** (procuticle), प्राक्क्यूटिकल में दो भाग होते हैं एक ऊपरी पतला वर्णकित **बाह्यक्यूटिकल** (exocuticle) और एक निचला मोटा **अंतःक्यूटिकल** (endocuticle)। अधिक्यूटिकल जल के वास्ते

अपारगम्य और गैसों के वास्ते पारगम्य होता है, लेकिन जहाँ-जहाँ यह बहुत पतला होता है उन स्थानों पर इसके द्वारा जल का भी कुछ अवशोषण हो सकता है।
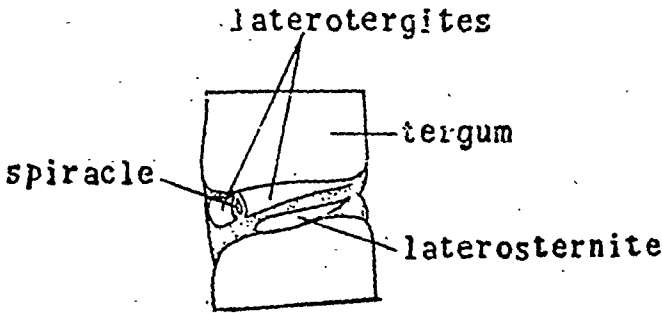
चित्र 370. उदर खंड जिनमें श्वास-रंध्र दिखाए गए हैं। Laterotergites, पार्श्व टर्गाइट ; spiracle, श्वास-रंध्र ; tergum, टर्गम ; laterosternite, पार्श्वस्टर्नाइट।
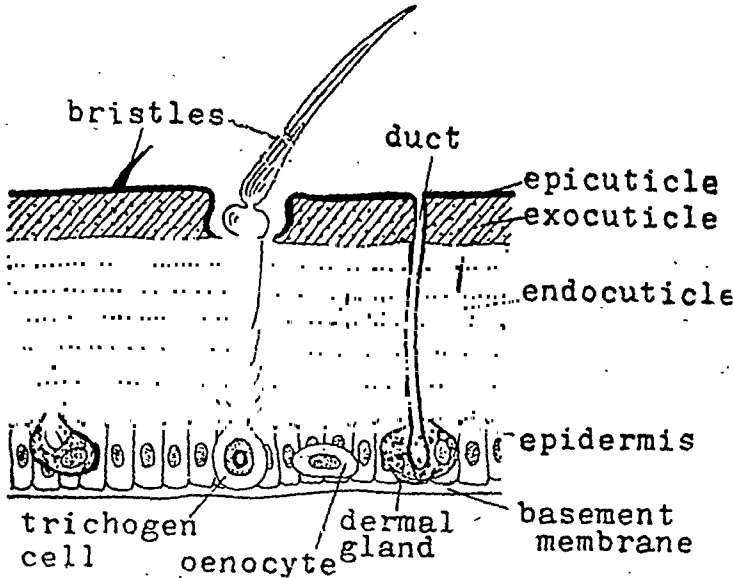
चित्र 371. त्वचा का खड़ा सेक्शन (V.S.)
Bristles, शूक; duct, वाहिनी; epicuticle, अधिक्यूटिकल; exocuticle, वाह्यक्यूटिकल; endocuticle, अंतःक्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस (अथवा हाइपोडर्मिस); basement membrane, आधारक झिल्ली; dermal gland, चर्म-ग्रन्थि; oenocyte, ईनोसाइट; trichogen, ट्राइकोजन कोशिका।

अधिक्यूटिकल में मोम-जैसे लाइपॉइड (lipoid) की एक वाहरी परत रहती है, तथा एक भीतरी परत कड़े प्रोटीन की होती है, इसमें काइटिन नहीं होता। एपिक्यू-टिकल में गतिशील और अचल दोनों प्रकार के शूक बने हो सकते हैं। प्राक्क्यूटिकल

काइटिन की बनी एक मोटी, पटलिकित, लचीली परत होती है। प्राक्क्यूटिकल का ऊपरी भाग एक पटलिकित क्षेत्र होता है जिसमें वर्णक होता है और जो स्क्लेरॉटित
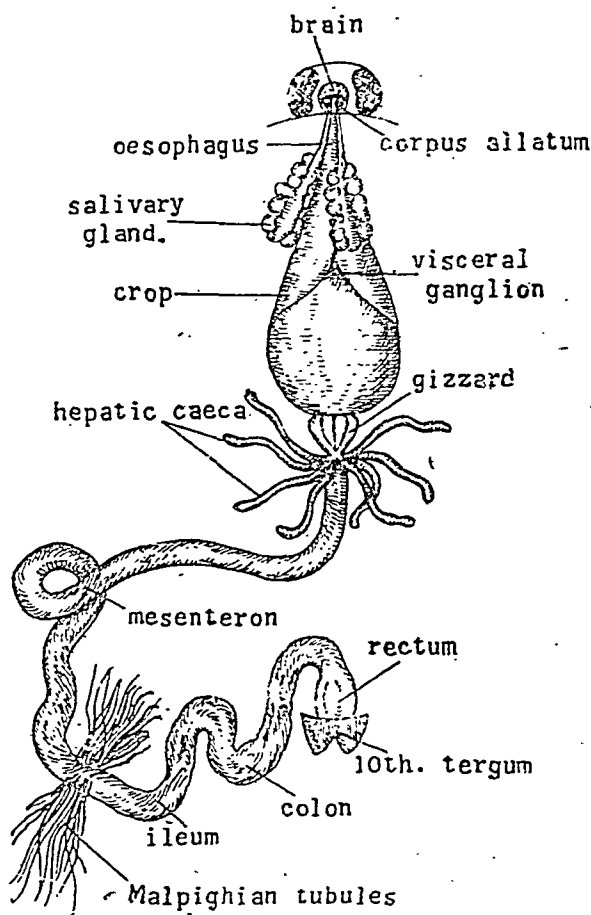
चित्र 372. पाचन-तंत्र।

Brain, मस्तिष्क; oesophagus ग्रसिका; corpus allatum, कार्पस ऐलेटम; salivary gland, लार-ग्रन्थि; crop, क्रॉप; visceral ganglion, आँतरांग गैंग्लियान; gizzard, गिजर्ड; hepatic caeca, आंत्र अंधनाल; mesenteron, मध्यांत्र; malpighian tubules, मैल्पीजी नलिकाएँ; ileum, क्षुद्रांत्र; colon, बृहदांत्र; rectum, मलाशय; tergum, टर्गम।

होता है, इसे प्रायः बाह्यक्यूटिकल कहते हैं और यह दृढ़ता तथा लचीलापन दोनों ही प्रदान करता है। स्क्लेरॉटिकरण की प्रक्रिया से त्वचा का कड़ा बनना क्रस्टेशिया की अपेक्षा कीटों में बहुत ज्यादा हो चुका है, क्रस्टेशियनों में कड़ा होना मुख्यतः कैल्सियम लवणों के जमाव से होता है। अंतःक्यूटिकल प्रोटीन और काइटिन का बना होता है जो क्षैतिज परतों में व्यवस्थित होते हैं। हाइपोडर्मिस में एक्टोडर्म कोशिकाओं की

अकेली परत पाई जाती है जो स्तम्भाकार होती हैं, इस परत से क्यूटिकल का स्राव होता है। हाइपोडर्मिस की विशिष्ट कोशिकाएँ रूपांतरित होकर गतिशील शूक बनाती हैं, इन कोशिकाओं को **ट्राइकोजन कोशिकाएँ** (trichogen cells) कहते हैं। हाइपोडर्मिस में **चर्म ग्रंथियाँ** (dermal glands) तथा **ईनोसाइट** (oenocyte) होते हैं। आधारक झिल्ली पतली और रचनाविहीन होती है जो हाइपोडर्मिस की भीतरी सतह की सीमा बनाती है। अचल शूक क्यूटिकल की ठोस बहिर्वृद्धियाँ होती हैं।

आहार-नाल—क्रियात्मक मुख-गुहा वास्तविक मुख-गुहा नहीं होती अपितु मुख के सामने बनी हुई एक गुहा होती है जिसमें आहार प्राप्त किया जाता है, इसे **मुखपूर्व खाद्य-गुहा** (pre-oral food cavity) अथवा **साइबेरियम** (cibarium) कहते हैं (चित्र 361)। इस गुहा की सीमाएँ इस प्रकार बनी होती हैं। सामने की ओर लेब्रम, पीछे लेबियम और हर पार्श्व में एक मैंडिबल तथा एक मैक्सिला; साइबेरियम के भीतर एक बड़ा जीभ-जैसा हाइपोफ़ैरिंक्स होता है। मुखपूर्व-गुहा के आधार पर एक मुख होता है जो नलिकाकार **ग्रसनी** में खुलता है, यह ग्रसनी उदग्रत: ऊपर को चलती जाती है और उसके बाद पीछे को एक **ग्रसिका** में को मुड़ जाती है जो वक्ष में से होकर चलती जाती है। ग्रसिका एक बड़े नाशपाती के आकार के **क्रॉप** (crop) के रूप में फैल जाती है, जो पतली दीवारों वाला होता है और उदर में को काफ़ी पहुँचा हुआ होता है, यह क्रॉप अपने पीछे एक **गिजर्ड** (gizzard) अथवा **पुरोजठर** (proventriculus) में को खुलता है। गिजर्ड एक गोल मोटी दीवार वाला थैला
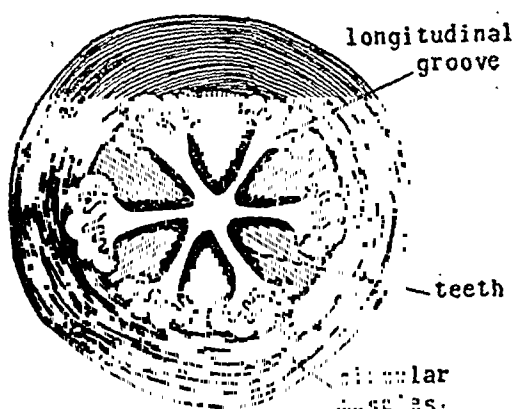
चित्र 373. गिजर्ड का अनुप्रस्थ (T.S.)।

Longitudinal, अनुदैर्घ्य खाँच; teeth, दाँत; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ।

होता है, जिसके अस्तर में छ: बड़े क्यूटिकलीय स्थूलन अथवा दाँत बने होते हैं जिनके बीच-बीच में गहरी खाँचें होती हैं जिनमें सूक्ष्म शूक बने होते हैं, गिजर्ड आहार को चूरा करता और उसे छानता है। मुखपूर्व गुहा से गिजर्ड तक आहार-नाल स्टोमोडियम

(अथवा अग्राँत्र) होती है क्योंकि इसमें एक क्यूटिकलीय अस्तर होता है जो बाह्य-कंकाल से जारी रहता है। गिजर्ड के पीछे एक नलिकाकार **मीज़ेंटेरॉन** (mesenteron) अथवा **मध्याँत्र** (mid-gut) होता है जिसका अस्तर एण्डोडर्म कोशिकाओं का बना होता है; इस भाग का कार्य पाचन क्रिया को पूरा करना तथा आहार को सोखना है। मध्याँत्र की एंडोडर्मी कोशिकाएँ स्राव कटने के दौरान विघटित होती जाती हैं और उनके भीतरी पदार्थ अवकाशिका में विसर्जित होते जाते हैं तथा नई कोशिकाएँ बनती जाती हैं। मध्याँत्र के अगले सिरे से आठ नलिकाकार **आँत्र अंधनाल** (hepatic/enteric caeca) निकलते हैं। मध्याँत्र के पीछे एक **पश्चाँत्र** (hind-gut) अथवा **प्रौक्टोडियम** (proctodeum) होता है जिसमें एक क्यूटिकलीय एण्डोडर्मी अस्तर बना होता है। मध्याँत्र के पीछे एक छोटा नलिकाकार **क्षुद्राँत्र** (ileum) अथवा छोटी अंतड़ी होती है, जिसके पीछे एक लम्बा और कुण्डलित **बृहदाँत्र** (colon) अथवा बड़ी अंतड़ी आती है और फिर इसके अन्त में एक चौड़ा मलाशय बना होता है जो पश्चत: 10वें टर्गम के नीचे बनी **गुदा** के द्वारा बाहर को खुलता है। बृहदाँत्र का अस्तर सलवट पड़ा हुआ होता है तथा मलाशय के अस्तर में छ: मोटे अनुदैर्घ्य वलन बने होते हैं। मध्याँत्र तथा पश्चाँत्र की सन्धि पर बहुत ज्यादा संख्या में अत्यन्त बारीक पीली **मैल्पीजी नलिकाएँ** (malpighian tubules) होती हैं, इनका संबंध उत्सर्जन क्रिया से होता है, हालाँकि ये पश्चाँत्र में को खुलती हैं।

आहार-नाल से जुड़ी हुई एक जोड़ी **लार-ग्रँथियाँ** होती हैं जो वक्ष में क्रॉप के अगल-बगल एक-एक पड़ी होती हैं। हर ग्रन्थि में दो ग्रंथीय भाग तथा एक थैले-जैसा
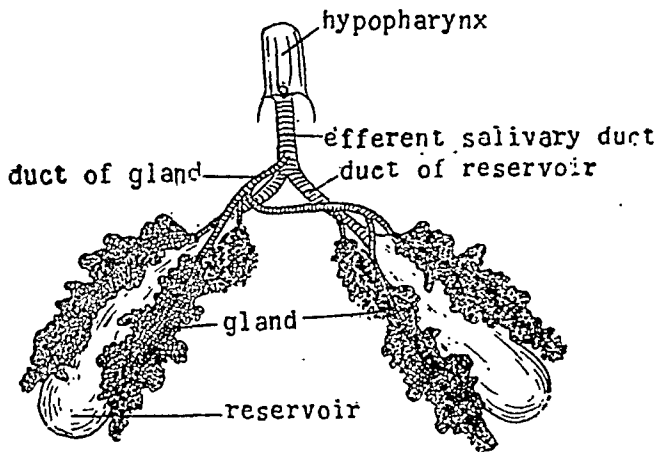
चित्र 374. लार उपकरण।

Hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स; duct of gland, ग्रन्थि की वाहिनी; efferent salivary duct, अपवाही लार-वाहिनी; duct of reservoir, आगार की वाहिनी; gland, ग्रन्थि; reservoir, आगार।

आगार होता है। दोनों दिशाओं के ग्रन्थि-भागों से वाहिनियाँ निकलती हैं जो परस्पर जुड़कर एक सम्मिलित वाहिनी बनाती हैं। इसी प्रकार आगारों से निकलने

वाली दोनों वाहिनियाँ भी परस्पर जुड़कर एक अन्य सम्मिलित वाहिनी बनाती हैं। दोनों सम्मिलित वाहिनियाँ मिलकर एक **अपवाही लार-वाहिनी** (efferent salivary duct) बनती हैं जो मुखपूर्व गुहा में हाइपोफ़ेरिक्स के आधार पर खुलती है। ग्रन्थियों और आगार की वाहिनियाँ इस एक बात में विचित्र होती हैं कि उनमें वातिकाओं की तरह सर्पिल रूप में मोटा हो गया हुआ क्यूटिकलीय अस्तर पाया जाता है।

आहार और पाचन—कॉकरोच के खाने में हर किस्म का जंतु अथवा पादप जैव पदार्थ शामिल है। यह मरे हुए कीटों को और यहाँ तक कि उतार फेंके हुए अपने ही क्यूटिकल को भी खा जाता है, अतः यह सर्वभक्षी होता है और रास्ते में जो कुछ मिले उसी को चखता चलता है। मैक्सिला आहार को पकड़ते और उसे मैंडिबलों तक लाते हैं, मैंडिबलों के दाँत आहार को काटते और चूरा करते हैं। मैक्सिला, मैंडिबलों के प्रोस्थीका तथा लेबियम आहार को मुखपूर्व गुहा में धक्का देने में सहायता करते हैं जहाँ से फिर यह मुख के भीतर पहुँच जाता है, इस संबंध में हाइपोफ़ेरिक्स का कार्य स्पष्ट नहीं है। मुखपूर्व गुहा में आहार में लार मिल जाती है। लार में एक एन्ज़ाइम **ऐमाइलेज** होता है जो कार्बोहाइड्रेटों पर क्रिया करता हुआ उन्हें ग्लूकोज़ में बदल देता है जो क्रॉप द्वारा सोख लिया जाता है। उसके बाद आहार क्रॉप में पहुँचता है जहाँ पर पाचन होता है क्योंकि मध्यांत्र के एन्जाइम गिजर्ड की खाँचों में से होते हुए इसमें पहुँच जाते हैं। गिजर्ड के दांत आहार का चूरा करते हैं और गिजर्ड एक छन्ने का भी काम करता है जो केवल छोटे आहार-कणों को ही मध्यांत्र में जाने देता है। एन्ज़ाइम मध्यांत्र तथा आँत्र अंधनालों में बनते हैं, ये प्रोटीनों और वसाओं को पचाते हुए उन्हें क्रमशः पेप्टोनों और एक इमल्शन में बदल देते हैं। तब आहार का एक ग्रास बन जाता है जो **परिखाद्य झिल्ली** (peritrophic membrane) नामक एक पतली काइटिनी नलिका में बन्द हो जाता है, यह झिल्ली गिज़र्ड से तुरंत पिछले भाग द्वारा स्रावित होती है। इसी झिल्ली के भीतर पाचन पूरा होता है तथा यह बड़े आहार कणों से मध्यांत्र के अस्तर को क्षति पहुँचने से बचाती है। पचा हुआ आहार मध्यांत्र तथा आँत्र अंधनालों में सोख लिया जाता है। मलाशय बिना पचे अंश में से जल को खींच लेता और इस तरह अति-आवश्यक जल का संरक्षण करता है। कुछ अवशोषित आहार वसा, ग्लाइकोजन और ऐल्बुमिनी पदार्थों के रूप में वसा-पिंड (fat body) में सुरक्षित भंडार के रूप में संचित कर लिया जाता है, यह वसा-पिंड हीमोसील में पड़ा होता है। कॉकरोच के पाचन एन्ज़ाइम वही होते हैं जो कशेरुकी में, बस पेप्सिन नहीं होता, और एन्ज़ाइम कशेरुकी की अपेक्षा अधिक अम्ल माध्यम में कार्य करते हैं। लेकिन जो कीट रक्त का भोजन करते हैं उनमें कार्बोहाइड्रेट तथा वसाओं को पचाने वाले एन्जाइम समाप्त हो चुके हैं।

परिसंचरण तंत्र—यह खुले अथवा **रिक्तीय** (lacunar) प्रकार का होता है, रक्त वाहिनियाँ केशिकाओं में न खुली होकर गुहाओं में को खुलती हैं जिसके कारण रक्त सीधे ऊतकों के सम्पर्क में आता है, इसलिए परिसंचरण धीमा होता है। रक्त में रंगहीन प्लाज्मा होता है जिसमें बहुसंख्यक श्वेत कोशिकाएँ होती हैं, इसमें

श्वसन वर्णक नहीं होता अतः श्वसन में रक्त का कोई योगदान नहीं होता। रक्त परिआंतरांग गुहा को भरे रहता है जो कि एक **हीमोसील** होती है; अंग रक्त में मुक्त रूप में डूबे रहते हैं, कीटों में हीमोसील ने सीलोम को लगभग पूरी तरह से समाप्त कर दिया है। मध्य-पृष्ठ दिशा में एक नलिकाकार **हृदय** पड़ा होता है जिसमें खंडशः व्यवस्थित 13 कीप-जैसी आकृति के खाने (कक्ष) होते हैं। हर कक्ष की पार्श्व दिशाओं में एक जोड़ी **ऑस्टिया** (ostia) होते हैं—हर बाजू में एक-एक; ये ऑस्टिया वाल्वों द्वारा सुरक्षित रहते हैं जो रक्त को हृदय में केवल भीतर की ओर आने देते हैं। हृदय कोशिकाओं की एक अकेली परत का बना होता है जिसमें रेखित पेशियाँ होती हैं, कोशिकाओं के भीतर और बाहर दोनों तरफ एक कोमल झिल्ली की सीमा होती है। हृदय का पहला खाना आगे एक **अग्र महाधमनी** में जारी रहता है जो शीर्ष के भीतर हीमोसील में खुलता है। हृदय के नीचे एक क्षैतिज पेशीय झिल्ली होती है जिसे **पृष्ठ-डायाफ्राम** (dorsal diaphragm) कहते हैं, यह परिआँतरांग गुहा को दो भागों में विभाजित करता है, एक छोटा पृष्ठ **परिहृद** अथवा परिहृद् साइनस जिसके भीतर हृदय पड़ा होता है और एक बड़ी हीमोसील जिसमें विभिन्न अंग पड़े होते हैं।

चित्र 375. हृदय (पृष्ठ दृश्य)। Aorta, महाधमनी; heart, हृदय; haemocoel, हीमोसील; alary muscles, पक्ष-पेशियाँ।

पृष्ठ-डायाफ्राम में अनेक छोटे-छोटे सूराख बने होते हैं जिनके द्वारा हीमोसील का परिहृद् के साथ संबंध बना होता है। पृष्ठ-डायाफ्राम से जुड़ी हुई एक शृंखला **पक्ष पेशियों** (alary muscles) की होती है, ये त्रिभुजाकार होतीं और इनके नुकीले बाहरी सिरे टर्गमों से जुड़े होते हैं। पक्ष-पेशियों के संकुचनों से रक्त हीमोसील में से परिहृद् में पहुंच जाता है और फिर वहाँ से ऑस्टिया में से होकर हृदय के भीतर पहुंच जाता है। हृदय की पेशीय दीवार एक तरंग के रूप में पीछे से आगे की ओर संकुचित होती जाती है और रक्त को आगे अग्र-महाधमनी में को धक्का दे दिया जाता है जहाँ से वह पुनः परिआँतरांग गुहा में पहुँच जाता है और धीरे-धीरे अंगों तथा उपांगों में जिनमें पंख भी शामिल हैं पहुँचता जाता है।

कॉकरोच में एक-एक **सहायक स्पंदनी आशय** (accessory pulsatile vesicle) हर ऐंटेना के आधार पर होता है जो पुनः रक्त पम्प करता है। हीमोसील

में एक **अधर डायाफ्राम** (ventral diaphragm) होता है जो तंत्रिका-रज्जु के तुरंत ऊपर बना होता है।
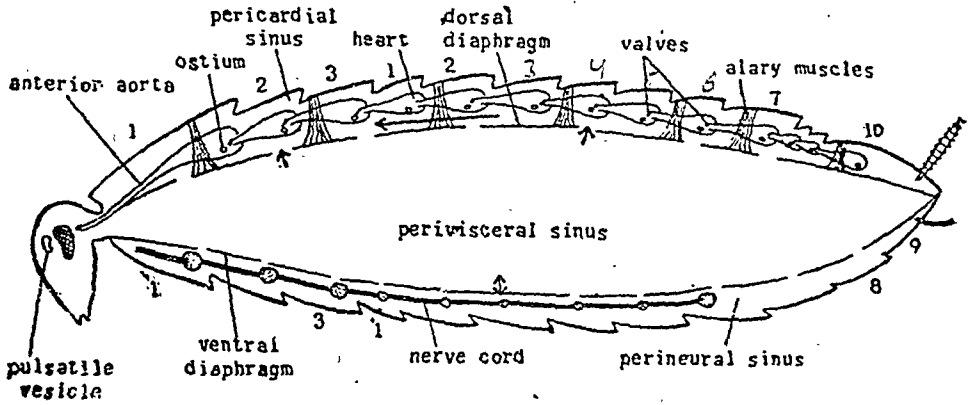
चित्र 376. परिसंचरण तंत्र।

Pulsatile vesicle, स्पंदनी आशय; anterior aorta, अग्र महाधमनी; ostium, ऑस्टियम; pericardial sinus, परिहृद् साइनस; heart, हृदय; dorsal diaphragm, पृष्ठ-डायाफ्राम; valves, वाल्व; alary muscles, पक्ष-पेशियाँ; perivisceral sinus, परिआँतरांग साइनस; ventral diaphragm, अधर डायाफ्राम; nerve cord, तंत्रिका-रज्जु; perineural sinus, परितंत्रिकीय साइनस।

रक्त से सम्बन्धित कुछ कोशिकीय ऊतक होते हैं जैसे **ईनोसाइट** (oenocytes) तथा **कॉर्पोरा ऐलैटा** (corpora allata)। ईनोसाइट बहुत बड़ी-बड़ी कोशिकाएँ होती हैं जो श्वास-रंध्रों के निकट समूहों में बनी होती हैं, ये एक्टोडर्म से उत्पन्न हुई होती हैं तथा अपना स्राव रक्त में छोड़ती हैं, ये चयापचय में मदद देतीं और एपिक्यूटिकल के लाइपॉइड तथा प्रोटीन बनाती हैं।

कॉर्पोरा ऐलैटा एक जोड़ी छोटे पालि होते हैं जो मस्तिष्क के पीछे और ग्रसिका के ऊपर पड़े होते हैं, ये भी एक्टोडर्मी स्रोत के होते हैं तथा ये वाहिनीहीन ग्रन्थियाँ हैं, इनसे एक बाल-हार्मोन (juvenile hormone) निकल कर रक्त में पहुँचता है जो बाल्यावस्थाओं में कायाँतरण तथा निर्मोचन का नियन्त्रण करता है और वयस्क में अंडों के निर्माण का नियन्त्रण करता है।

श्वसन-तंत्र—दस जोड़ी श्वास-रंध्र खंडशः व्यवस्थित होते हैं, 2 जोड़ी वक्ष पर और 8 जोड़ी पहले आठ उदर खंडों पर होती हैं। वक्ष श्वास-रंध्र उदर श्वास-रंध्रों की अपेक्षा ज्यादा बड़े होते हैं। हर श्वास-रंध्र एक अंडाकार स्क्लेराटित क्षेत्र में बनी हुई झिरी होती है, यह झिरी एक गुहिका में खुलती है जिसे **परिकोष्ठ** (atrium) कहते हैं, इस परिकोष्ठ में से नलिका अथवा **वातिका** निकलती है। श्वास-रंध्रों को वाल्वों द्वारा बन्द किया जा सकता है अथवा खोला जा सकता है, ये वाल्व विशेष पेशियों द्वारा चालित होते हैं। वातिकाएँ रुपहली, एक्टोडर्मी नलिकाएँ

होती हैं जिनमें एक कोमल एक-स्तरी एपिथीलियम होता है, जिसकी भीतरी सतह पर क्यूटिकलीय अस्तर होता है। इस अस्तर में एक सर्पिल अथवा वलय जैसा स्थूलन बना होता है जो वातिकाओं को पिचकने से रोकता है, क्यूटिकलीय अस्तर को **इंटिमा** (intima) कहते हैं। वक्ष-श्वासरंध्र भीतर को अनेक महावातिकाओं में को खुलते हैं, लेकिन हर उदर-श्वासरंध्र एक ही महावातिका में खुलता है। मुख्य महावातिकाएँ
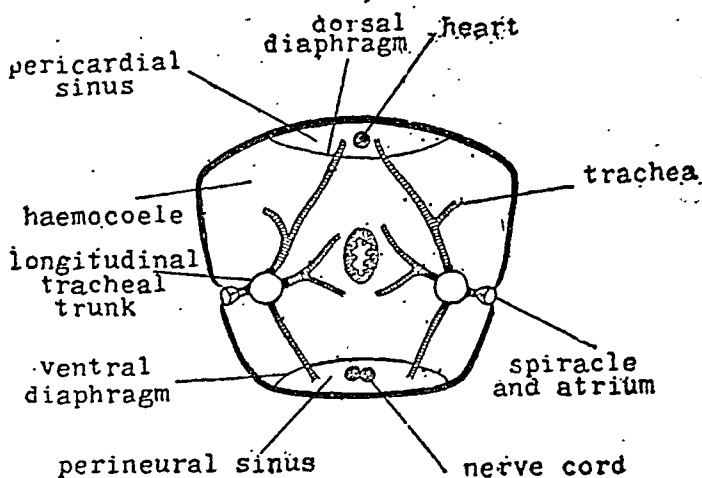
चित्र 377. वक्ष का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) जिसमें श्वसन-अंग दिखाए गए हैं।

Pericardial sinus, परिहृद साइनस; dorsal diaphragm, पृष्ठ-डायाफ्राम; heart, हृदय; trachea, वातिका; spiracle and atrium, श्वास-रंध्र एवं परिकोष्ठ; nerve cord तंत्रिका-रज्जु; perineural sinus, परितंत्रिकीय साइनस; ventral diaphragm, अधर डायाफ्राम; longitudinal tracheal trunk, अनुदैर्घ्य महावातिका; haemocoele, हीमोसील।

दो अनुदैर्घ्य महावातिकाओं में मिलती हैं जो शरीर में हर पार्श्व में एक-एक होती हैं, उसके बाद ये विभाजित होकर एक पृष्ठ और एक अधर महावातिकाएँ बनाती हैं जो पुनः शाखाओं और उप-शाखाओं में विभाजित होती जातीं और अंत में संशाखित होकर एक जाल बना लेती हैं, यह जाल शरीर के हर भाग में पहुँचा हुआ होता है। वातिकाओं की अन्तिम शाखाएँ **अनुवातिका कोशिकाओं** (tracheolar cells) में समाप्त होती हैं, इन कोशिकाओं में से और आगे बहुत सूक्ष्म नलिकाएँ चलती जाती हैं जिन्हें **अनुवातिकाएँ** (tracheoles) कहते हैं। अनुवातिकाओं में पतला हो गया क्यूटिकल होता है और वे अपने अंधसिरों के द्वारा ऊतकों की कोशिकाओं में समाप्त होती हैं। विश्राम करते हुए कीट में जबकि श्वसन क्रिया अधिक नहीं होती तो अनुवातिकाएँ हवा से न भरी होकर कोशिकाओं के ऊतक द्रव से भरी होती हैं, इस ऊतक द्रव में ऑक्सीजन घुल जाती है। इस प्रकार की वातिका-व्यवस्था के द्वारा देह

की कोशिकाएँ अथवा उनके द्रव बाहरी हवा के साथ सीधा सम्बन्ध बनाए रखते हैं।
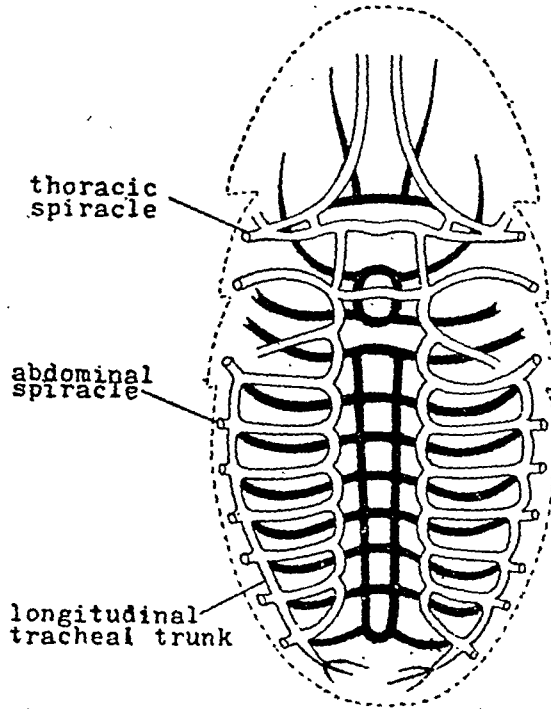
चित्र 378. वातिका-तन्त्र, पृष्ठ वातिकाएँ (सफेद), अधर वातिकाएँ (काली)।

Thoracic spiracle, वक्ष श्वासरंध्र; abdominal spiracle, उदर-श्वासरंध्र; longitudinal tracheal trunk, अनुदैर्घ्य महावातिका।

अन्तःश्वास (inspiration) तथा बाह्यश्वास (expiration) श्वास-रंध्रों के द्वारा होता है, बाह्यश्वास एक सक्रिय प्रक्रम है जबकि अंतःश्वास निष्क्रिय होता है। कॉकरोच में पहला वक्ष और पहला उदर श्वासरंध्र सदैव खुले रहते हैं, किन्तु दूसरा वक्ष तथा पिछलें सात उदर श्वास-रंध्र अन्तःश्वास के दौरान खुलते और बाह्यश्वास के दौरान बन्द हो जाते हैं। अन्तःश्वास के दौरान हवा श्वास-रंध्रों में से होकर वातिकाओं में पहुँच जाती, और फिर अनुवातिकाओं में पहुँच जाती है जिनमें द्रव भरा होता है, O_2 इन द्रवों में घुल जाती और ऊतकों की कोशिकाओं तक पहुँच जाती है। श्वासरंध्रों का खुलना और उसके बाद हवा का विसरण होना कार्बन-डाइऑक्साइड द्वारा श्वास-रंध्रों के उत्तेजित होने के कारण होता है। बाह्यश्वास में कुछ CO_2 श्वास-रंध्रों में से होकर बाहर निकल जाती है लेकिन उसका अधिकतर भाग देह के क्यूटिकलीय आवरण में से होकर बाहर निकल जाता है। CO_2 प्लाज्मा में भी घुल कर देह की सतह के समीप पहुंच जाती है और यह देह-सतह गैसों के लिए पारगम्य होने के कारण CO_2 बाहर जाने देती है।

जब सक्रिय गति होती है जैसे कि दौड़ने में अथवा उड़ने में, तब उपापचय दर

बढ़ जाती और ऊतकों की परासारी दाव (osmotic pressure) भी बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप ये द्रव अनुवातिकाओं में से निकल कर देह-कोशिकाओं में पहुँच जाते हैं, इस खाली हो जाने से वायु का और आगें तक अनुवातिकाओं में पहुँच सकना सम्भव हो जाता है और हवा का कोशिकाओं के साथ सीधा सम्वन्ध वन जाता है,
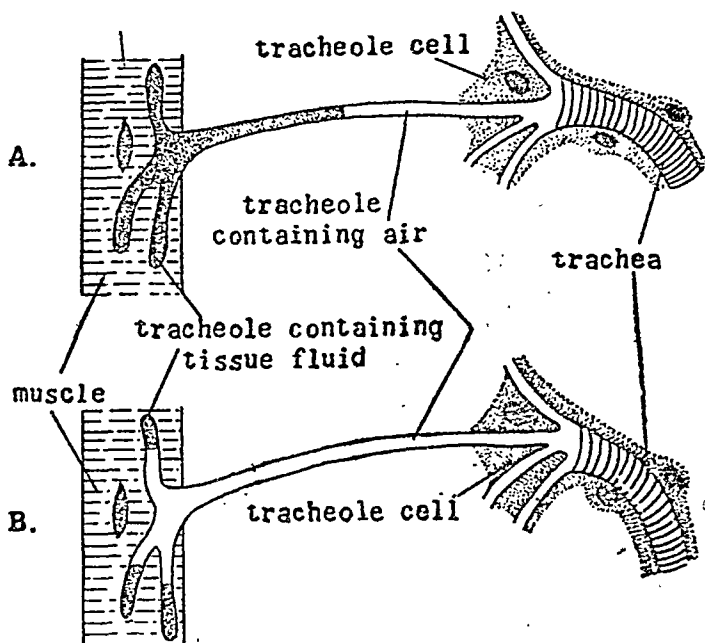
चित्र 379. वातिका-श्वसन A—विश्राम अवस्था B—कार्यरत अवस्था। Tracheole cell, अनुवातिका कोशिका ; tracheole containing air, वायु से भरी अनुवातिका ; muscle, पेशी ; trachea, वातिका ; tracheole containing tissue fluid, ऊतक तरल से भरी अनु-वातिका।

O_2 को कोशिकाओं के द्रव सीधा ग्रहण कर लेते हैं। सक्रिय गति में उदर खण्ड फैलते और शिथिल हो जाते हैं, इन गतियों को **श्वसन गतियाँ** कहते हैं और इनके द्वारा श्वासरंध्रों में अधिक हवा भीतर पहुँचती है।

श्वसन गतियों का समन्वय हर खण्ड में तंत्रिकाओं के द्वारा होता है, लेकिन ये तंत्रिकाएँ वक्ष-गैंग्लियानों से आवेग ग्रहण करती हैं जो सभी श्वसन क्रियाओं पर नियंत्रणकारी प्रभाव डालते हैं, वक्ष गैंग्लियान ऑक्सीजन के अभाव और कार्वनडाइ-ऑक्साइड की अधिकता के द्वारा उत्तेजित होते और अनुक्रिया करते हैं।

उत्सर्गी अंग—जहाँ पर अध्यांत्र और पश्चांत्र जुड़ते हैं वहाँ पर पश्चाँत्र में को खुलती हुई वहुत अधिक संख्या में वारीक पीले रंग की सूत-जैसी **मैल्पीजी नलिकाएँ** (malpighian tubules) होती हैं, ये छः समूहों में निकलती हैं जिनमें से हर समूह में लगभग एक दर्जन नलिकाएँ होती हैं। ये नलिकाएँ निर्बाध रूप में हीमोसील में पड़ी होती हैं लेकिन उसमें खुलती नहीं। ये ऐनेलिडा के नेफ्रीडियमों की तरह एक्टोडर्मी

होती हैं। हर मैल्पीजी नलिका ग्रन्थीय सिलियायुक्त कोशिकाओं की एक अकेली परत की बनी होती है, इन कोशिकाओं में सिलिया का बना हुआ एक अभिलाक्षणिक ब्रुश होता है; ये ही कोशिकाएँ कॉकरोच के मुख्य उत्सर्गी अंग हैं और रक्त में से **यूरेटों** (urates) तथा **यूरिक अम्ल** (uric acid) को सोखकर अलग करती हैं जो फिर पश्चांत्र में पहुँच कर विष्ठा के साथ बाहर निकल जाते हैं। नलिकाओं का अपने उत्सर्गी पदार्थों को पश्चांत्र में छोड़ना जल के संरक्षण के वास्ते एक अनुकूलन है क्योंकि मलाशय में उत्सर्गी पदार्थ में से जल सोख लिया जाता है।

कॉकरोच को छोड़कर अन्य कीटों पर किए गए प्रयोगों से पता चला है कि हर नलिका का दूरस्थ भाग स्रावी होता है और K तथा Na के नाइट्रोजनी यूनिटों को घोल के रूप में अवकाशिका में छोड़ता है, और इस घोल में से यूरिक एसिड का क्रिस्टलों के रूप में अवक्षेपण हो जाता है। हर नलिका का समीपस्थ भाग अवशोषी होता है जो जल को और बाइकार्बोनेटों के रूप में अकार्बनिक बेस को सोख कर पुनः रक्त में पहुँचा देता है। जल और बाइकार्बोनेटों का संरक्षण होकर बारंबार प्रयोग किया जाता है। इस तरह जल और बेस का परिसंचरण वैसा ही है जैसा कि कशेरुकी गुर्दे में पाया जाता है।

सहायक उत्सर्गी अंग भी होते हैं, जो **वसा पिंड** और **वृक्काणु** (nephrocytes) होते हैं। वसा पिंड अधिक मात्रा में होता है और अनेक छोटे-छोटे पालियों का बना होता है, यह अपशिष्ट यूरिक अम्ल को संचित करता है, और साथ ही यह पाचन के उत्पादों को भी वसाओं, ऐल्ब्यूमिनाइडों तथा ग्लाइकोजन के रूप में संचित करता है। वृक्काणु शृंखलाबद्ध कोशिकाएँ होती हैं जो हृदय के सहारे-सहारे पड़ी होती हैं अथवा वसा पिंडों के साथ सम्बन्धित होती हैं, ये कोशिकाएँ भी नाइट्रोजनी अपशिष्ट को संचित करती हैं जिसे बाद में रक्त वहाँ से दूर कर देता है।

तंत्रिका-तंत्र—ग्रसिका के सामने और टेंटोरियम के ऊपर एक द्विपालिक **अधिग्रसिका गैंग्लियॉन** (supraoesophageal ganglion) अथवा **मस्तिष्क** होता है जो तीन जोड़ी गैंग्लियानों के सम्पूर्ण समेकन से बनता है। मस्तिष्क का कार्य मुख्यतः संवेदी होता है। मस्तिष्क से दो **परिग्रसनी संयोजी** निकलते हैं जो ग्रसिका का चक्कर लेते हुए उसके नीचे एक अधःग्रसनी गैंग्लियान से जुड़ जाते हैं और यह **अधःग्रसनी गैंग्लियॉन** तीन जोड़ी गैंग्लियॉनों के समेकन से बना होता है, यह गैंग्लियॉन प्रधान प्रेरक केन्द्र होता है तथा पेशियों, मुखांगों, पंखों और टाँगों की गतियों का नियंत्रण करता है। इतना तंत्रिका-तंत्र शीर्ष-कैप्सूल के भीतर स्थित रहता है। अधःग्रसनी गैंग्लियॉन से एक दोहरी **अधर तंत्रिका-रज्जु** निकलती है जिसकी दोनों रज्जुएँ एक-दूसरे से समेकित नहीं होतीं। तंत्रिका-रज्जु में वक्ष-खंडों में तीन बड़े गैंग्लियॉन होते हैं, और पांच छोटे गैंग्लियॉन पाँच उदर-खण्डों में तथा एक बड़ा छठा गैंग्लियॉन कुछ दूर पीछे सातवें खंड में बना होता है। तंत्रिका-रज्जु का हर गैंग्लियॉन दो गैंग्लियॉनों के समेकन से बना होता है, केवल छठा उदर गैंग्लियॉन इसका अपवाद होता है जो अनेक गैंग्लियॉनों (कदाचित् तीन जोड़ी) के समेकन से बना होता है।

केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र से तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो विभिन्न भागों को जाती हैं, ये तंत्रिकाएँ एक साथ **परिधीय तंत्रिका-तंत्र** बनाती हैं। मस्तिष्क से तीन जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो आँखों, ऐंटेनाओं तथा लेब्रम को जाती हैं। अधःग्रसिका
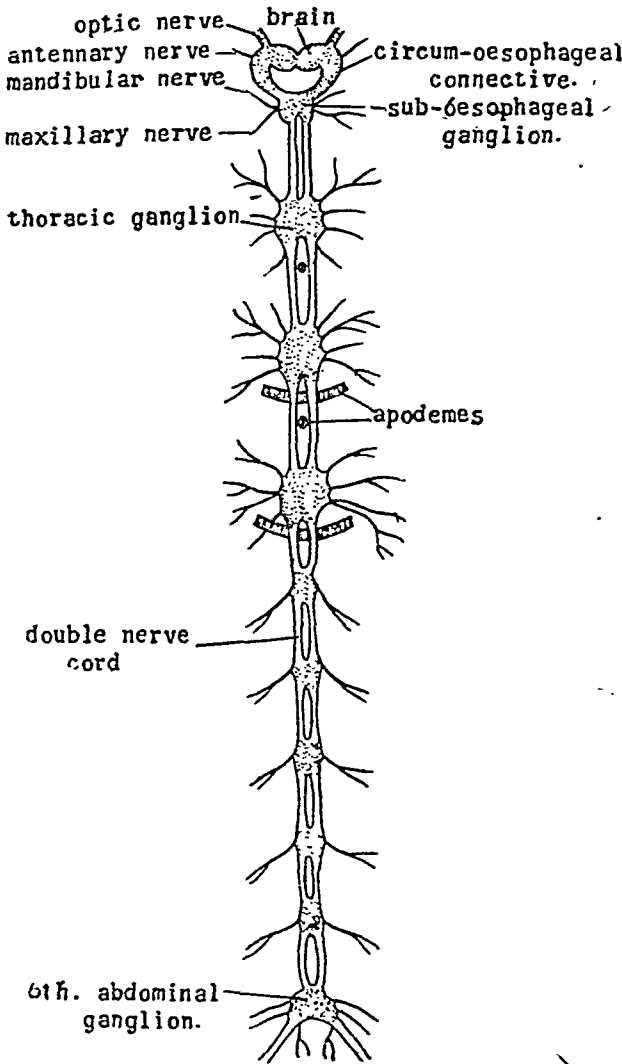
चित्र 380. तंत्रिका-तंत्र।

Brain, मस्तिष्क; circumoesophageal connective, परिग्रसिका संयोजी; suboesophageal ganglion, अधः ग्रसिका गैंग्लियॉन; optic nerve, दृक् तंत्रिका; antennary nerve, ऐंटेनीय तंत्रिका; mandibular nerve, मैंडिबलीय तंत्रिका; maxillary nerve, मैक्सिलीय तंत्रिका; thoracic ganglion, वक्ष-गैंग्लियॉन; apodemes ऐपोडीम; double nerve cord, दोहरी तंत्रिका-रज्जु; abdominal ganglion, उदर गैंग्लियॉन।

गैंग्लियॉन से भी तीन जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो मैंडिबलों, मैक्सिलाओं और लेबियम को जाती हैं। तंत्रिका-रज्जु के हर गैंग्लियॉन से कई जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो अपने ही खण्डों के विभिन्न भागों को जाती हैं, लेकिन आखिरी उदर गैंग्लियान से पाँच जोड़ी तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो उदर के अन्तिम पाँच खण्डों में एक-एक जोड़ी के हिसाब से जाती हैं।

एक **अनुकम्पी तंत्रिका-तंत्र** (sympathetic nervous system) होता है जिसमें एक छोटा **ललाट गैंग्लियॉन** (frontal ganglion) मस्तिष्क के सामने होता है, एक जोड़ी छोटे **ग्रसिका-गैंग्लियान** (oesophageal ganglion) होते हैं जो मस्तिष्क के पीछे होते हैं और एक बड़ा **आंतरांग गैंग्लियॉन** (visceral ganglion) होता है जो क्रॉप की पृष्ठ दिशा में होता है—यही सबसे मुख्य गैंग्लियान है। ये सभी गैंग्लियॉन संयोजियों द्वारा मस्तिष्क से जुड़े होते हैं। अनुकम्पी तंत्रिका-तंत्र से तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो पेशियों, आहार-नाल और श्वास-रंध्रों में जाकर उनकी क्रियाओं का नियंत्रण करती हैं।

विभिन्न संवेद-ग्राही (Receptors)—कीट अनेक उद्दीपनों का अनुभव करते और प्रकाश, ध्वनि, ताप-परिवर्तनों एवं स्पर्श के प्रति संवेदी होते हैं, इनमें स्वाद और गंध का ज्ञान भी होता है। एपिडर्मिसी कोशिकाएँ रूपाँतरित होकर **संवेदिकाएँ** (sensillae) बन जाती है। संवेदग्राही की आधारभूत संरचनात्मक इकाई यही संवेदिकाएँ हैं, हर संवेदिका में एक रूपान्तरित शूक तथा हाइपोडर्मिस की दो या अधिक रूपान्तरित कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **ट्राइकोजन** या **शूकजन** कोशिकाएँ (trichogen cells) कहते हैं, इसमें एक तंत्रिका कोशिका होती है जिसमें एक तंत्रिका-तंतु होता है। स्पर्श, स्वाद और गन्ध के संवेदग्राहियों में इस प्रकार की अलग-अलग और सरल संवेदिकाएँ होती हैं, लेकिन श्रवण (सुनने) और दृष्टि के संवेदग्राहियों में संवेदिकाओं के समुच्चय बने होते हैं और ये विशद अंगों का रूप लिये होते हैं। स्पर्श-संवेदिकाएँ मुख्यतः ऐंटेनाओं, पैल्पों, टाँगों, देह और लूमों पर पाई जाती हैं। घ्राण संवेदिकाएँ (olfactory sensillae) मुख्यतः ऐंटेनाओं पर पाई जाती हैं, लेकिन घ्राण संवेद अन्य भागों पर भी पाया जाता है क्योंकि ऐंटेनाओं को काट कर हटा देने पर भी कीटों में घ्राण-संवेद
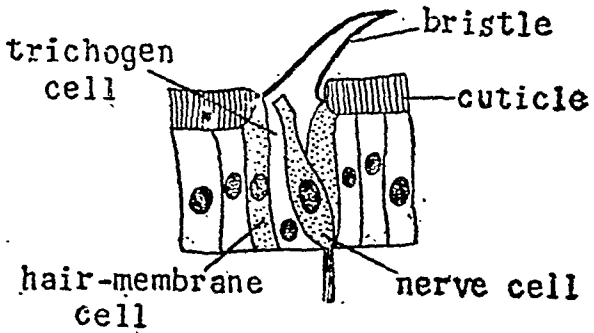
चित्र 381. स्पर्श संवेदिका। Trichogen cell, शूकजन कोशिका; bristle, शूक; cuticle क्यूटिकल; hair-membrane cell, रोम झिल्ली कोशिका; nerve cell, तंत्रिका कोशिका।

मौजूद रहता पाया जाता है। **स्वाद-संवेदिकाएँ** (gusta'ory sensillae) मैक्सिलाओं पर पाई जाती हैं जिनमें स्वाद-संवेद मौजूद होता कहा जाता है।

श्रवण (auditory) अथवा **ध्वनिग्राही संवेदिकाओं** (chordotonal sensillae) में तंत्रिका-तंतुयुक्त एक तंत्रिका-कोशिका बनी होती है, और उस तंत्रिका कोशिका के दूसरे सिरे पर एक शलाका होती है जिसे **स्कोलोपेल** (scolopale) कहते हैं और जिसके ऊपर पतला क्यूटिकल चढ़ा होता है। इस क्यूटिकल में होने वाले कम्पनों से स्कोलोपेल उत्तेजित होता है। काकरोच में लूमों पर श्रवण-संवेदिकाएँ बनी होती हैं और वे ऐसी ध्वनि भी ग्रहण कर सकते हैं जिसे मनुष्य का कान ग्रहण नहीं कर सकता। ऐंटेना के पेडिसेल में एक ध्वनिग्राही संवेदिका होती है जो ऐंटेना की फ्लेजेलम-गतियाँ बनाती हैं।

आँखें—कीटों में दो प्रकार की आँखें होती हैं, **सरल आँखें** अथवा **नेत्रक** (ocelli) और **संयुक्त आँखें** (compound eyes) लेकिन कॉकरोच में केवल संयुक्त आँखें ही होती हैं।

नेत्रक—नेत्रक एक प्याले-जैसी आकृति का होता है। प्याले के ऊपर का क्यूटिकल पारदर्शी और मोटा होकर एक **लेन्स** बनाता है। लेन्स के नीचे रंगहीन पारदर्शी कोशिकाएँ होती हैं जो एपिडर्मिस से जारी रहती हैं, ये **कॉर्नियाजन** (corneagen) कोशिकाएँ होती हैं। कुछ कीटों में कॉर्नियाजन कोशिकाएँ समूहित होकर एक **काचक** अथवा **विट्रेला** (vitrella) बना लेती हैं, वह भी लेन्स का कार्य करता है। प्याले के चारों ओर एक वर्णक वलय होता है। प्याले के भीतर का निचला भाग **दृष्टिपटल** अथवा **रेटिना** (retina) होता है, जिसमें अनेक अनुदैर्घ्य दृक्-शलाकाएँ होती हैं जिन्हें **रैब्डोम** (rhabdom) कहते हैं, इन रैब्डोमों के साथ-साथ लगी हुई अनेक संवेदी कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें **दृष्टिपटलक** या **रेटिन्युला**
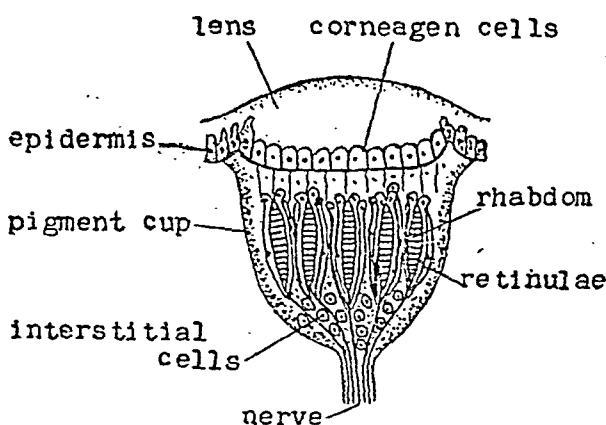
चित्र 382. कीट-नेत्रक का उदग्र सेक्शन (V.S.)

Lens, लेन्स; corneagen cells, कॉर्नियाजन कोशिकाएँ; epidermis, एपिडर्मिस; rhabdome, रैब्डोम; retinulae, दृष्टिपटलक; pigment-cup, वर्णक-प्याला; interstitial cells, अन्तराल कोशिकाएँ।

(retinula) कहते हैं। दृष्टिपटलकों में तंत्रिका-तंतु पहुँचते हैं और उनमें वर्णक भी मौजूद हो सकता है। नेत्रक प्रकाश के लिए संवेदी होते हैं लेकिन उनमें प्रतिबिम्ब बना सकने की क्षमता नहीं होती।

संयुक्त आँखों की स्थिति कॉकरोच में पार्श्वीय होती हैं। ये गुर्दे की आकृति की होती हैं, इनका ऊपरी भाग निचले भाग की अपेक्षा ज्यादा चौड़ा होता है। हर संयुक्त आँख शलाका-जैसे **नेत्रकांशों** (ommatidia) के समूहों की बनी होती है, ये नेत्रांशक अरीय रूप में व्यवस्थित रहते हैं और उनके उपर पारदर्शी क्यूटिकल होता है जो सतह पर षड्भुजी फलक (facets) बनाता है। नेत्रांशक में एक उभयोत्तल **लेन्स** अथवा कॉर्निया होती है जो क्यूटिकल के मोटे और पारदर्शी हो जाने से बनती है, ये ही फलक होते हैं। लेन्स के नीचे एपिडर्मिस से दो स्वच्छ **कार्नियाजन कोशिकाएँ** अथवा **मसूराकार कोशिकाएँ** (lenticular cells) बन जाती हैं जिनसे लेन्स का स्राव होता है। कॉर्नियाजन कोशिकाओं के पीछे एक पारदर्शी **क्रिस्टलीय शंकु** (crystalline cone) होता है जो एक-दूसरे लेन्स का कार्य करता है, इसके चारों ओर चार **काचक** अथवा **शंकु कोशिकाएँ** होती हैं। काचकों से क्रिस्टलीय शंकु का स्राव होता है, ये नीचे की ओर को नुकीले होते जाते हैं। ये सब भाग मिलकर **अपवर्तनी प्रदेश** (dioptrical region) बनाते हैं। शंकु के नीचे और उससे संपर्क बनाए हुए एक स्पिडलकार अपवर्तनी पिंड रैब्डोम होता है जिसके चारों ओर सात प्रकाशग्राही
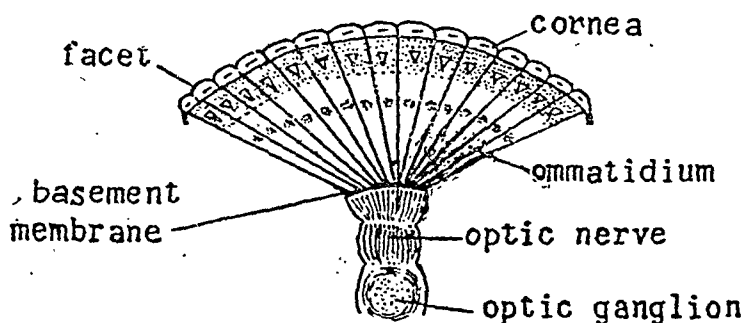
चित्र 383. संयुक्त नेत्र का उदग्र-सेक्शन (V.S.)

Facet, फलक; cornea, कॉर्निया; ommatidium, नेत्रांशक; optic nerve, दृक्-तंत्रिका; optic ganglion, दृक् गैंग्लियान; basement membrane, आधारक झिल्ली।

दृष्टिपटलक कोशिकाएँ (retinular cells) अथवा **दृष्टिपटलक** होते हैं जो लम्बी हो गई कोशिकाएँ होती हैं। दृष्टिपटलक कोशिकाओं से रैब्डोम का स्राव होता है, यह रैब्डोम सात **रैब्डोमखंडों** (rhabdomeres) का बना होता है—हर दृष्टिपटलक कोशिका से एक-एक रैब्डोमखंड का स्राव होता है। रैब्डोम तथा दृष्टिपटलक मिलकर **संवेद-ग्राही प्रदेश** (receptor region) बनाते हैं और उसके नीचे नेत्र की एक **आधारक झिल्ली** होती है। हर दृष्टिपटलक कोशिका के आधार पर एक

तंत्रिका-तंतु जुड़ा होता है, और ये सब तंतु दृक्-तंत्रिका में पहुंच जाते हैं। नेत्रांशक को घेरते हुए तथा उसे पड़ोसी नेत्रांशकों से पृथक् करते हुए अनेक कीटों में दो समूहों में व्यवस्थित बहुत घनी वर्णांकित कोशिकाएँ होती हैं—शंकु के चारों ओर बना हुआ एक आईरिस अथवा **परितारिका वर्णक आवरण** (iris pigment sheath) और
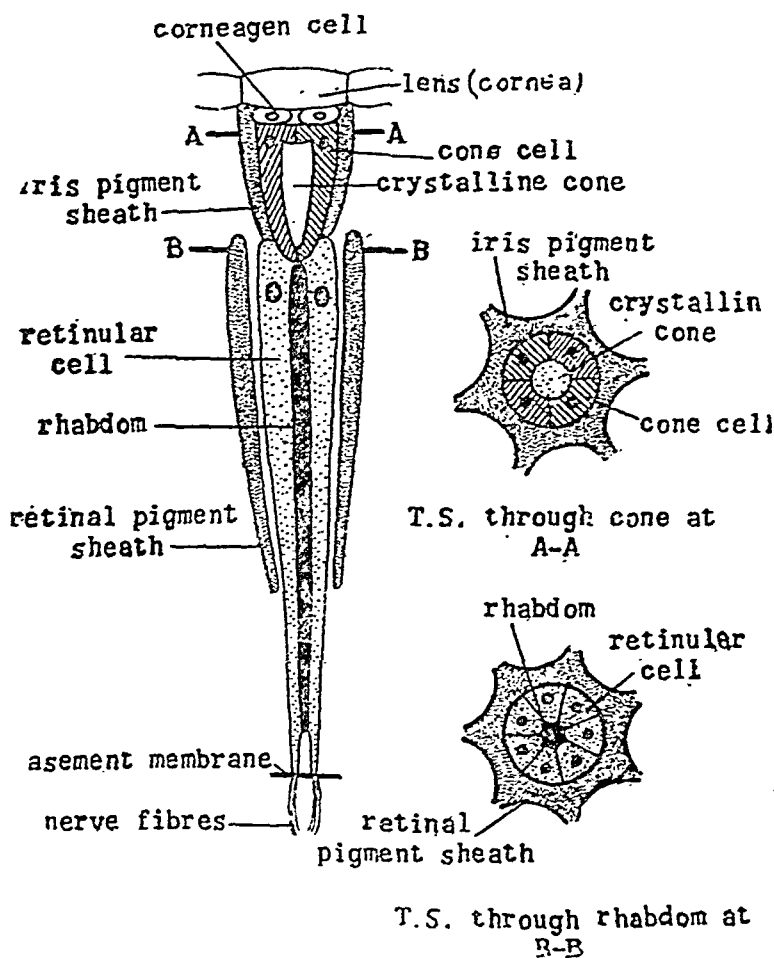
चित्र 384. नेत्रांशक का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L.S.) तथा अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Corneagen cell, कार्नियाजन कोशिका; lens (cornea), लेन्स (कॉर्निया); cone cell, शंकु-कोशिका; crystalline cone, क्रिस्टलीय शंकु; iris pigment sheath, परितारिका वर्णक आवरण; retinular cells, दृष्टि-पटलक कोशिकाएँ; rhabdome, रैब्डोम; retinal pigment cells, दृष्टिपटलक वर्णक कोशिकाएँ; basement membrane, आधारक झिल्ली; nerve-fibres, तंत्रिका-तंतु; T.S. through cone at A-A, A-A पर शंकु का अनुप्रस्थ सेक्शन; T.S. through rhabdom at B-B, B-B पर रैब्डोम का अनुप्रस्थ सेक्शन।

दृष्टिपटलक कोशिकाओं तथा रैब्डोम को घेरता हुआ **दृष्टिपटलक वर्णक आवरण** (retinal pigment sheath)। कुछ कीटों में दृष्टिपटलक वर्णक आवरण नहीं होता।

कीटों में दो प्रकार के नेत्रांशक होते हैं। रात्रिचर कीटों और अनेक क्रस्टेशियनों में वर्णक केवल शंकु-कोशिकाओं के चारों ओर ही होते हैं, उनके दृष्टिपटलक तथा रैब्डोम शंकु से छूते हुए नहीं होते। इस प्रकार की आँखों को **अध्यारोपण नेत्र** (superposition eyes) कहते हैं जिनमें नेत्रांशक एक-दूसरे से वर्णक द्वारा पृथक् नहीं होते। दृष्टिपटलक तथा रैब्डोम अपने लेन्सों से आने वाले और साथ-साथ पड़ोसी लेन्सों से भी आते प्रकाश द्वारा उत्तेजित होते हैं, दूसरे शब्दों में हर नेत्रांशक में अनेक लेन्सों में से प्रकाश पहुँचता है। हर नेत्रांशक में पूरे दृष्टि-क्षेत्र का समूचा प्रतिबिम्ब बनता है, और सारे प्रतिबिम्ब मिल कर एक जारी रहता हुआ किन्तु अंशतः परस्पर ढकने वाला **अध्यारोपण प्रतिबिम्ब** बनाते हैं। अध्यारोपण प्रतिबिम्ब धुंधले प्रकाश में बनता और अधिक साफ नहीं होता है।

दिवाचर कीटों में नेत्रांशक एक-दूसरे से दो वर्णक आवरणों के द्वारा पृथक् रहते हैं, उनके दृष्टिपटलक एवं रैब्डोम शंकु से सटे होते हैं। इस प्रकार की आँखों को सन्निस्थापन आँख (apposition eye) कहते हैं जिसमें केवल वही प्रकाश-किरणें प्रतिबिम्ब बना सकती हैं जो नेत्रांशक के अक्ष के समांतर चलतीं और सीधी लेन्स के मध्य में से होकर गुजरती हैं। हर नेत्रांशक एक भिन्न किन्तु सहलग्न प्रतिबिम्ब बनाता है, और एक संयुक्त नेत्र के तमाम नेत्रांशक मिलकर एक **सन्निस्थापन** अथवा **शबल** (मोजेक, mosaic) दृष्टि बनाते हैं जो उतनी ही संख्या में अलग-अलग लेकिन सहलग्न प्रतिबिम्ब बनाते हैं जितनी कि नेत्रांशकों की संख्या होती है। लेकिन जब प्रकाश धीमा होता है तो दिवाचर कीटों में दोनों वर्णक-आवरण एक दूसरे से दूर हो जाते हैं (परितारिका-वर्णक आवरण ऊपर को चला जाता तथा दृष्टिपटलक वर्णक नीचे को चला जाता है)। उस स्थिति में नेत्रांशक अलग-अलग नहीं रहते और प्रकाश एक नेत्रांशक में से दूसरे नेत्रांशक में जा सकता है। हर नेत्रांशक एक प्रतिबिम्ब बनाता है और तमाम नेत्रांशकों के प्रतिबिम्ब एक-दूसरे के ऊपर ढकते जाते और इस प्रकार एक अध्यारोपण प्रतिबिम्ब बनता है। किन्तु कॉकरोच में वर्णक आवरण में सिकुड़ कर हट जाने की क्षमता नहीं होती।

लेकिन हाल ही में किए गए अध्ययनों से निम्नलिखित कारणों के द्वारा शबल दृष्टि के सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती : (1) अनेक कीटों के वर्णक आवरण सिकुड़ कर हट जाने वाले नहीं होते। (2) हर नेत्रांशक का दृष्टि-क्षेत्र उससे ज्यादा होता है जितना कि सोचा जाता रहा है, और संलग्न नेत्रांशकों में बनने वाले प्रतिबिम्ब एक-दूसरे को अध्यारोपित करते हैं, जिसके फलस्वरूप सन्निस्थापन आँखें भी अध्यारोपण आँखों का कार्य कर सकती हैं जो कि पिछली विचारधारा के विपरीत है, अतः नेत्रांशक को एक क्रियात्मक इकाई के रूप में मानना गलत होगा। (3) हर नेत्रांशक में गहरे स्तरों पर फोकस करने पर एक नहीं बल्कि अनेक क्रमिक प्रतिबिम्ब बनते

हैं। संयुक्त नेत्र की शक्ति इन्हीं गहरे प्रतिबिम्बों पर निर्भर रहती है जो नेत्रांशक समूहों द्वारा बनते हैं। प्रतिबिम्ब बहुत स्पष्ट नहीं होते लेकिन वे आँखों को वस्तुओं की गतियों को तुरन्त जान लेने के वास्ते सक्षम बना देते हैं।

कीट नेत्र विभिन्न रंगों को पहचान सकते हैं, हालाँकि वे वर्ण-क्रम (स्पेक्ट्रम) के तमाम रंगों को नहीं देख सकते, ये परावैंगनी (अल्ट्रा-वायोलेट) किरणों को अनुभव कर सकते हैं।

जनन-तंत्र—कीटों में लिंग अलग-अलग होते हैं। नर कॉकरोच में एक जोड़ी त्रिपालिक (three-lobed) **वृषण** होते हैं जो चौथे और पाँचवें उदर खंडों में पृष्ठ-पार्श्व दिशा में वसा में डूबे हुए पड़े रहते हैं। अवयस्क कॉकरोचों में वृषणों में शुक्राणु भरे रहते हैं लेकिन कुछ शुक्राणु पुराने वयस्कों में भी पाए जा सकते हैं। हर वृषण से एक पतली धागे-जैसी सफेद रंग की **शुक्रवाहिका** निकलती है। दोनों शुक्रवाहि-

चित्र 385. नर के जननांग।
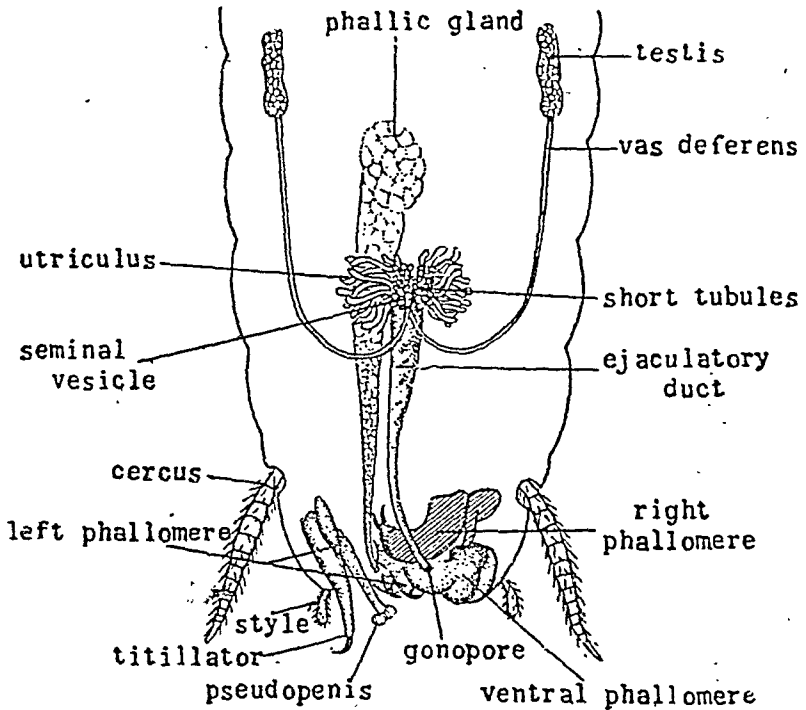
Phallic gland, शिश्न ग्रन्थि; testis, वृषण; vas deferens, शुक्र-वाहिका; utriculus, हृति (यूट्रिकुलस); seminal vesicle, शुक्राशय; short tubules, छोटी नलिकाएँ; ejaculatory duct, स्खलन वाहिनी; cercus, लूम (सर्कस); left phallomere, बायाँ शिश्न-खण्ड; style, शर; titillator, पुलकक; pseudopenis, कूटशिश्न; gonopore, जनन-छिद्र; ventral phallomere, अधर शिश्न-खण्ड; right phallomere, दाहिना शिश्नखण्ड।

काएँ पीछे की ओर नीचे को चलती जाती हुई मध्य में जुड़कर एक **स्खलन वाहिनी** बनाती हैं जो पीछे को चलती जाती है। दोनों शुक्रवाहिनियों तथा स्खलन-वाहिनी की सन्धि पर तथा उनसे जुड़ी हुई बड़ी सफेद रंग की **दृति** अथवा **यूट्रिकुलर** (utricular) ग्रन्थि होती है। इस ग्रन्थि में तीन प्रकार की ग्रन्थीय नलिकाओं की संहति बनी होती है। **परिधीय नलिकाएँ** (peripheral tubes) लंबी होती हैं, **केन्द्रीय** नलिकाएँ छोटी होती हैं, और छोटी केन्द्रीय नलिकाओं के पीछे कुछ छोटी किन्तु अधिक कंदीय एवं बिंदुकित सफेद नलिकाएँ होती हैं जिन्हें **शुक्राशय** कहते है, इन्हीं शुक्राशयों में शुक्राणु भरे रहते हैं।

एक लंबी, चपटी **शिश्न-ग्रन्थि** अथवा **संगोलित-ग्रन्थि** (conglobate gland) होती है जिसका चौड़ा अग्र सिरा छठे खण्ड में तंत्रिका-रज्जु के थोड़ा-सा
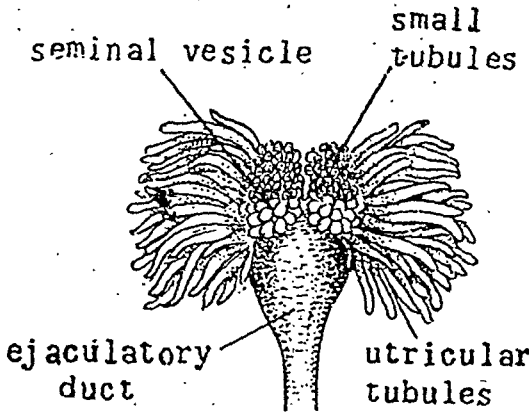
चित्र 386. दृति (यूट्रिकुलर) ग्रंथि।

दाहिनी ओर पड़ा होता है, पश्चतः यह शिश्न-ग्रन्थि पतली होती जाती हुई एक वाहिनी का रूप ले लेती है। उदर के अन्तिम सिरे की ओर नर में गोनैपोफाइसिस नर के बाह्य जननांग बनाते हैं, ये तीन **शिश्नखंड** (phallomeres) होते हैं। दाहिना शिश्नखण्ड मध्य-पृष्ठ स्थिति में होता है, इसमें दो क्षैतिज **सम्मुखी प्लेट** (opposing plates) तथा एक चौड़ा दंतुरित (serrate) पालि होता है जिसमें एक आरे-जैसे दाँतें बना हुआ सीमांत और दो बड़े दाँत होते हैं और इसकी पश्च दिशा में एक दरांती की शक्ल का हुक होता है। बायें शिश्नखण्ड में एक समान आधार से निकलती हुई अनेक संरचनाएँ होती हैं, सबसे बायीं ओर एक वक्र हुक से युक्त लंबी पतली भुजा होती है इसे **पुलकक** (titillator) कहते हैं। पुलकक से अगली संरचना एक उससे छोटी और चौड़ी भुजा होती है जिसके अन्तिम सिरे पर एक काला हथौड़े जैसा शीर्ष बना होता है, इसे **कूटशिश्न** (pseudopenis) कहते हैं। कूटशिश्न के निकट तीन छोटे नरम पालि होते हैं जिनमें से एक के ऊपर एक हुक बना होता है जिसे **ऐस्परेट पालि** (asperate lobe) कहते हैं। शिश्न-ग्रन्थि की वाहिनी बायें शिश्नखण्ड में से चलती जाती है और ऐस्परेट पालि तथा कूटशिश्न के बीच खुलती है। अधर शिश्नखण्ड अंशतः दाहिने शिश्नखण्ड के नीचे पड़ा होता है, इसमें एक

बड़ी भूरी प्लेट होती है। स्खलन-वाहिनी अधर शिश्नखण्ड के समीप जननछिद्र के द्वारा बाहर को खुलती है।
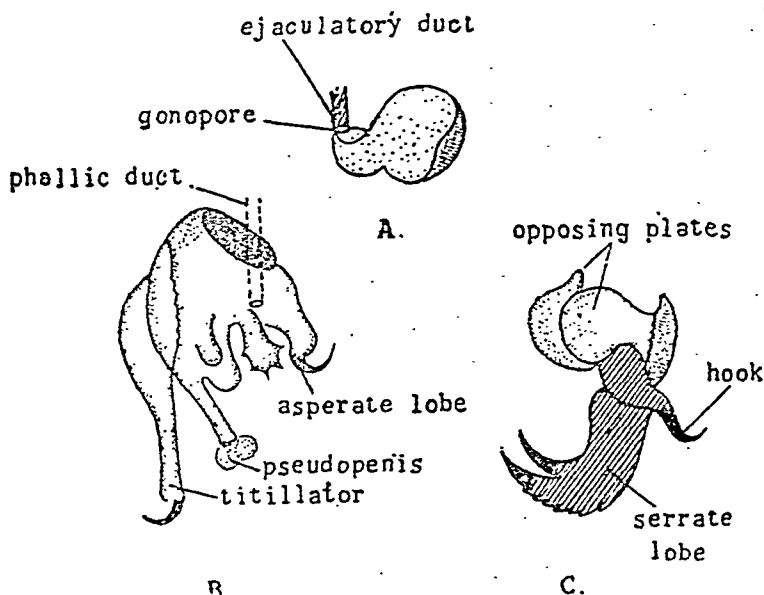
चित्र 387. A—अधर शिश्नखण्ड; B—बायाँ शिश्नखण्ड; C—दाहिना शिश्नखण्ड। Phallic duct, शिश्न वाहिनी; asperate lobe, ऐस्परेट पालि; pseudopenis, कूटशिश्न; titillator, पुलकक; opposing plates, सम्मुखी प्लेटें; hook, हुक; serrate lobe, दंतुरित पालि।

मैथुन से पहले शुक्राशय की हर नलिका के शुक्राणु परस्पर चिपक कर एक अकेला **शुक्राणुधर** (spermatophore) बना लेते हैं। शुक्राणुधर नाशपाती की शक्ल का लगभग 1·3 mm. व्यास का होता है और उसकी दीवार में तीन परतें होती हैं, सर्वप्रथम सबसे भीतरी परत यूट्रिकुलस ग्रंथि की लंबी परिधीय नलिकाओं के स्राव से बनती है, फिर इस परत के भीतर शुक्राशयों से शुक्राणु और यूट्रिकुलस-ग्रंथि की छोटी केंद्रीय नलिकाओं से एक तरल आता है। तब यह संसेचित भीतरी परत स्खलन-वाहिनी में आ जाती और फिर इसके ऊपर स्खलन-वाहिनी की कोशिकाओं से बनने वाली एक और परत आ जाती है। मैथुन के दौरान शुक्राणुधर मादा के शुक्रग्राही-छिद्र से चिपका दिया जाता है, जिसके बाद इसके ऊपर शिश्नग्रंथि का एक स्राव बह कर आ जाता है जो कड़ा होकर शुक्राणुधर की तीसरी और सबसे बाहरी परत बनाता है।
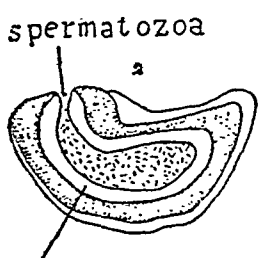
चित्र 388. शुक्राणुधर का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Spermatozoa, शुक्राणु; three-layered wall, तीन परत वाली दीवार।

मादा-जनन अंग—खंड 4, 5 और 6 में पार्श्वतः वसा में दबे हुए दो बड़े अंडाशय होते हैं। हर अंडाशय आठ अंडाशय नलिकाओं अथवा **अंडाशयकों** (ovarioles) का बना होता है, और हर अंडाशय में परिवर्धनशील अंडे पंक्तिबद्ध पड़े रहते हैं। हर अंडाशयक एक पतली नलिका के रूप में प्रारंभ होता और पीछे की ओर चौड़ा होता जाता है क्योंकि वहाँ भीतर का अंडा बहुत बड़ा हो जाता है, हर अंडाशयक का अंतिम अंडा परिपक्व होता है। एक ओर के आठों अंडाशयक एक अंडवाहिनी से जुड़े होते हैं, और दोनों अंडवाहिनियाँ जुड़ कर एक चौड़ी मध्य **सम्मिलित अंडवाहिनी** (common oviduct) अथवा योनिमार्ग (vagina) बनाती हैं जो एक जनन-छिद्र द्वारा एक **जनन-कक्ष** (genital chamber) अथवा **गाइनेट्रियम** (gynatrium) में खुलता है। जनन-छिद्र आठवें स्टर्नम में बना हुआ छिद्र होता है, आठवाँ स्टर्नम जनन-कोष्ठ के भीतर सातवें स्टर्नम के ऊपर को अंतर्वलित पड़ा होता है। बहुत विशाखित एक जोड़ी **आसंज ग्रंथियाँ** (colleterial glands) होती हैं, बाईं आसंज ग्रंथि बड़ी और दाहिनी आसंज ग्रंथि छोटी होती है। दोनों आसंज ग्रंथियों की वाहिनियाँ जुड़ कर एक सम्मिलित वाहिनी बनाती हैं जो जनन-कोष्ठ की पृष्ठ दिशा में खुलती है। असमान साइज के एक जोड़ी मुद्गराकार **शुक्रग्राही** होते हैं उनमें से एक बड़ा और एक छोटा होता है, दोनों शुक्रग्राही मिल कर एक छोटी सम्मिलित वाहिनी बनाते हैं जो जनन-कोष्ठ के भीतर एक छोटे **शुक्रग्राही पैपिला** के ऊपर खुलती है। कुछ लोगों का कहना है कि केवल एक ही शुक्रग्राही होता है और दूसरा भाग उससे निकला हुआ एक कुंडलित अंधनाल होता है।

मादा में सातवाँ स्टर्नम पीछे की ओर दो बड़ी अंडाकार **गाइनोवैल्वुलर प्लेटें** (gynovalvular plates) अथवा **शिखाग्र पालि** (apical lobes) होते हैं, इनके बीच में एक बड़ी गुहा बंद हो जाती है जिसमें एक भीतरी **गाइनैट्रियम** अथवा **जनन-कक्ष** होता है और एक पश्चीय **अंडपुटक कक्ष** (oothecal chamber) होता है। गाइनेट्रियम और अंडपुटक की पृष्ठ एवं पश्च दीवार 8वें और 9वें उदर स्टर्नमों के अंतर्वलन से बनती हैं। बाह्य-जननांग गाइनेट्रियम के भीतर छिपे पड़े रहते हैं, ये एक **अंडनिक्षेपक** (ovipositor) के रूप में होते हैं जो गोनैपोफ़ाइसिसों का बना होता है। अंडनिक्षेपक जनन-छिद्र के ऊपर और पीछे होता है, यह छोटा होता और इसमें तीन जोड़ी लंबे प्रवर्ध बने होते हैं, यह छोटा होता और इसमें तीन जोड़ी लंबे प्रवर्ध बने होते हैं, एक जोड़ी लंबी मोटी भुजाएँ पृष्ठतः पड़ी होती हैं और उनके बीच में दो पतली संकरी होती जाती हुई भुजाएँ होती हैं, ये दोनों जोड़ी भुजाएँ एक समान आधार से निकलतीं हैं, और वे **पश्च गोनैपोफ़ाइसिस** (posterior gonapophysis) बनाती हैं, ये 9वें उदर खंड के अंग होते हैं और 9वें टर्गम से जुड़े होते हैं। अंडनिक्षेपक की तीसरी भुजाएँ बड़ी होतीं और वे अभिसारी (converging) होते हुए पीछे परस्पर मिल कर पश्च गोनैपोफ़ाइसिस के नीचे पड़ी होती हैं, ये **अग्र गोनैपोफ़ाइसिस** होते हैं। अग्र गोनैपोफ़ाइसिस 8वें उदर खंड के होते हैं और वे 8वें टर्गम के बाहरी

सीमांतों से जुड़े हैं। अंडनिक्षेपक का इस्तेमाल केवल निषेचित अंडों को अंडपुटक कक्ष तक पहुँचाने का होता है।
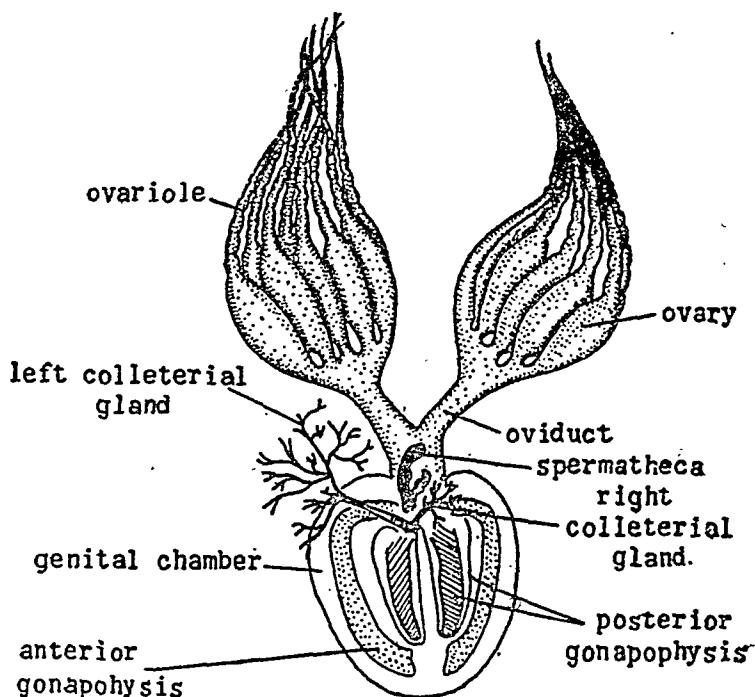
चित्र 389. मादा के जननांग (पृष्ठ दृश्य)

Ovariole, अंडाशयक; ovary, अंडाशय; oviduct, अंडवाहिनी; spermatheca, शुक्रग्राही; colleterial gland, आसंज ग्रंथि; posterior gonapophysis, पश्च गोनैपोफ़ाइसिस; left colleterial gland, बाईं आसंज ग्रंथि; genital chamber, जनन-कोष्ठ; anterior gonapophysis, अग्र गोनैपोफ़ाइसिस।

मैथुन—नर और मादा कॉकरोच अपने पश्च सिरों के द्वारा साथ-साथ आते हैं। नर अपने पुलककों के द्वारा मादा की गाइनोवैल्वुलर प्लेटों को खोलता और अपने शिश्नखंडों को मादा के जनन-कक्ष में डाल देता है। कूटशिश्न मादा के जनन-छिद्र में डाल कर उसे अनुप्रस्थशः घुमा दिया जाता है ताकि मादा स्थिति में बनी रहती है। अंडनिक्षेपक के अग्र गोनैपोफ़ाइसिस दाहिने शिश्नखंड में अटका लिए जाते हैं। अधर शिश्नखंड दाहिनी ओर घूम जाता है और इस प्रकार स्खलन-वाहिनी के जनन-छिद्र को खोल देता है, और उसके बाद शुक्राणुधर को धक्का देकर खिसका दिया जाता और सीधा शुक्रग्राही पैपिला पर लगा दिया जाता है और लगभग एक घंटे के भीतर उस पर चिपका दिया जाता है।

अब शिश्न-ग्रंथि अपने स्राव को शुक्राणुधर के ऊपर छोड़ती है जिससे कि

उसकी सबसे बाहरी परत बन जाती है जो लगभग दो घंटे में कड़ी हो जाती है। मैथुन लगभग सवा घंटा चलता है, जिसके बाद दोनों कॉकरोच अलग-अलग हो जाते
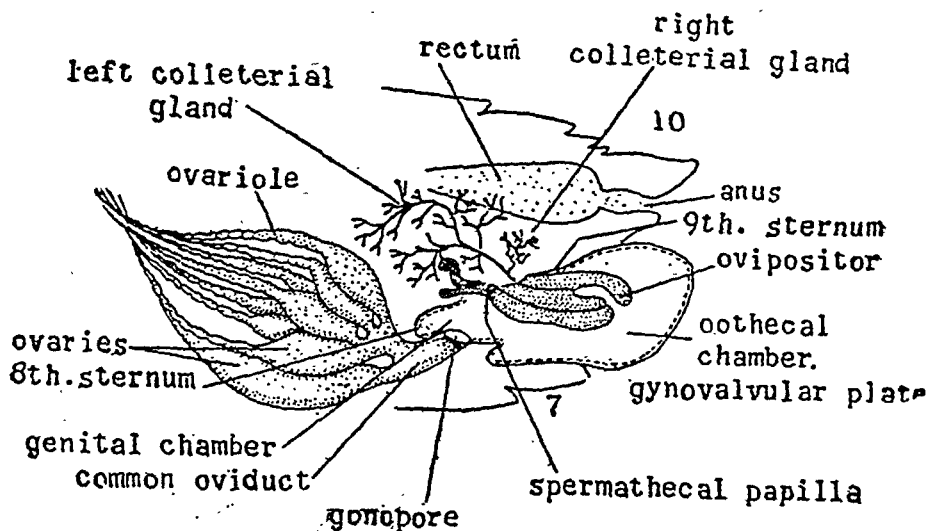
चित्र 390. मादा के जनन अंग (पार्श्व दृश्य)।
Ovaries, अंडाशय; ovariole, अंडाशयक; left colleterial gland, बाईं आसंज ग्रंथि; rectum, मलाशय; right colleterial gland, दाईं आसंज ग्रंथि; anus, गुदा; sternum, स्टर्नम; ovipositor, अंडनिक्षेपक; oothecal chamber, अंडपुटक कक्ष; gynovalvular plate, गाइनौ-वैल्वुलर प्लेट; spermathecal papilla, शुक्रग्राही पैपिला; gonopore, जनन-छिद्र; common oviduct, सम्मिलित अंडवाहिनी; genital chamber, जनन-कक्ष।

हैं। शुक्राणुधर में से शुक्राणु धीरे-धीरे अगले 20 घंटों में शुक्रग्राहियों के भीतर पहुँच जाते हैं, जिसके बाद खाली शुक्राणुधर गिरा दिया जाता है।

अंडपुटक-निर्माण—अंडे दोनों अंडाशयों से एकांतर क्रम में आते हुए सम्मिलित अंडवाहिनी में पहुँच जाते और मादा जनन-छिद्र में से होते हुए जनन-कक्ष में पहुंच जाते हैं जहाँ शुक्रगाहियों में से आते हुए शुक्राणुओं द्वारा वे निषेचित होते जाते हैं। दोनों आसंजी ग्रंथियाँ अपने-अपने स्रावों को निषेचित अंडों के ऊपर छोड़ती जाती हैं, ये स्राव मिलकर एक स्क्लेरोप्रोटीन बनाते हैं जो कड़ा होकर अंडों के चारों ओर एक गहरा-भूरा अंटपुटक बना देता है। अंडपुटक को आकृति प्रदान
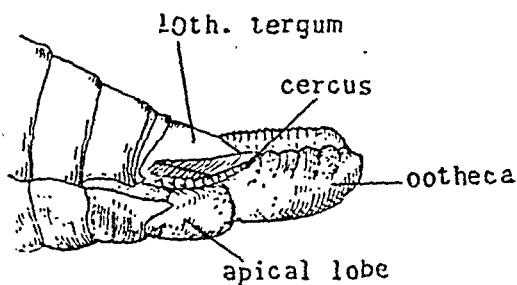
चित्र 391. अंडपुटक से युक्त उदर।
10th tergum, 10वाँ टर्गम; cercus, लूम; ootheca, अंडपुटक; apical lobe शिखाग्र पालि।

करने का कार्य अंडनिक्षेपक तथा अंडपुटक कक्ष की दीवारें करती हैं। अंडपुटक 12 mm. लंबा होता है, इसकी एक दिशा में दंतुरित सीमांत से युक्त एक सीधा किरीटि होता है, इसमें 16 निषेचित अंडे दो सीधी उदग्र पंक्तियों में पड़े होते हैं, अंडों की स्थिति को अंडपुटक की बाहरी सतह से भी देखा जा सकता है। अंडपुटक लगभग एक दिन में पूरा हो जाता है और अंडपुटक कक्ष में से बाहर को निकला रहता है, जहाँ इसे 10वाँ टर्गम तथा गाइनोवैल्वुलर प्लेटें स्थिति में लिए रहती हैं। मादा कई दिन तक अंडपुटक को लिए फिरती रहती है और अंत में उसे किसी अंधेरी सूखी जगह में रख देती है।

कायांतरण—अंडपुटक में से कॉकरोच के बच्चे दंतुरित किरीटि को खोलकर बाहर आते हैं, इन्हें **अर्भक या निम्फ़** (nymph) कहते हैं। निम्फ़ की संरचना वयस्क की संरचना के समान होती है और वह वयस्क के जैसा ही खाना खाती है किंतु रंग में पीलापन लिए हुए हल्की, आकार में छोटी, पंख से विहीन और अपरिपक्व गोनडों (जनन-ग्रंथियों) से युक्त होती है। आहार करते जाते इसमें वृद्धि होती जाती है, इसका बाहरी बाह्यकंकाल उतार फेंक दिया जाता है और बाह्यकंकाल के इस उतार फेंकने को **निर्मोचन** (ecdysis, moulting) कहते हैं, जो एक निर्मोचन-हार्मोन के कारण होता है। निर्मोचन में हाइपोडर्मिस एक एन्ज़ाइम का स्राव करता है जो पुराने क्यूटिकल की निचली सतह को घुलाता जाता है, और इस तरह क्यूटिकल हाइपोडर्मिस से पृथक् हो जाता है। उसके बाद हाइपोडर्मिस एक नए अधिक्यूटिकल का स्राव करता है जो एन्ज़ाइम के लिए अपारगम्य होता है। अंततः हाइपोडर्मिस से एक नए प्राक्क्यूटिकल का स्राव होता है, अधिक्यूटिकल तथा प्राक्क्यूटिकल से नए क्यूटिकल का निर्माण हो जाता है, पुराना क्यूटिकल फट जाता और जंतु द्वारा उतार फेंक दिया जाता है। निम्फ़ में पुराना बाह्यकंकाल उतार फेंकने से पहले हाइपोडर्मिस एक नया बाह्यकंकाल बना देता है, और वृद्धि केवल तभी तक हो सकती है जब तक कि आवरण कड़ा नहीं हो जाता क्योंकि कड़ा बाह्यकंकाल आकार में वृद्धि नहीं होने देता। कॉकरोच के निम्फ़ में छः या सात निर्मोचन होकर लगभग एक वर्ष में वयस्क बन जाता है। इस काल के दौरान निम्फ़ में वृद्धि होती जाती है, त्वचा से पंख बन जाते हैं जिन्हें बाहर से देखा जा सकता है, और गोनड परिपक्व हो जाते हैं। कीटों में दो अंतःस्रावी ग्रंथियाँ होती हैं जिनसे निकले हुए हार्मोन वृद्धि तथा निर्मोचन का नियंत्रण करते हैं। **कॉर्पोरा ऐलैटा** (corpora allata) से एक **बाल हार्मोन** निकलता है जो प्रारंभिक वृद्धि एवं निर्मोचन का नियंत्रण करता है। बाल हार्मोन का प्रभाव रोक लगाने का भी है क्योंकि जब तक इसका स्राव होता रहता है तब तक यह जननाँगों और वयस्क आकृति के निर्माण को रोकता है लेकिन कार्पोरा ऐलैटा केवल निम्फ़ (अथवा लार्वा) अवस्थाओं में ही क्रियाशील होते हैं, उसके बाद वे निष्क्रिय हो जाते और बाल हार्मोन नहीं बनता। दूसरी अंतःस्रावी ग्रंथियाँ पहले वक्ष-खंड में पाई जाने वाली **अग्रवक्ष ग्रंथियाँ** (prothoracic glands) होती हैं जिनके हार्मोन को **एक्ड़ाइसॉन** (ecdyson) कहते हैं, यह भी वृद्धि और निर्मोचन के लिए उत्तरदायी होता है, यह अंतिम निर्मोचन कराता है जिससे कीट वयस्क अवस्था में पहुँच जाता है, प्रारंभिक अवस्थाओं

में यह हार्मोन कॉर्पोरा ऐलैटा के वाल हार्मोन के नियंत्रण में रहता है। अंतिम निर्मोचन के बाद आकार में और आगे वृद्धि नहीं होती। वयस्क लक्षणों की यह धीमी क्रमिक प्राप्ति जिसमें लगभग न के बराबर परिवर्तन होते हैं **अपूर्ण कायांतरण** (incomplete metamorphosis) अथवा **विषमपरिवर्तनी कायांतरण** (hetero-metabolous metamorphosis) कहलाती है। सभी कीटों में दो निर्मोचनों के बीच के काल को **अंतरावस्था** (stadium) कहते हैं, और अंतरावस्था के दौरान बालकीट द्वारा ग्रहण किया गया रूप **इन्स्टार** (instar) कहलाता है। अंडे में से निकले हुए बच्चे को पहले इन्स्टार में कहा जाता है, पहली अंतरावस्था के अंत में पहला निर्मोचन होता है, और बालकीट दूसरे इन्स्टार में पहुँच जाता है, इस प्रकार क्रम चलता रहता है तथा अंतिम इन्स्टार वयस्क होता है जिसे **पूर्णकीट** अथवा **इमैगो** (imago) कहते हैं।

कीट का परिवर्धन

अधिकतर कीटों के अंडे केन्द्रपीतकी (centrolecithal) होते हैं जिनमें अधिक मात्रा में पीतक होता है और उसके भीतर साइटोप्लाज्म के एक अंश में स्थित केन्द्रक होता है तथा पीतक के चारों ओर साइटोप्लाज्म की एक परिधीय परत होती है। अंडे के ऊपर एक पीतक-झिल्ली और एक कवच अथवा **कोरियॉन** (chorion) होता है जिनमें एक या अधिक लघुद्वार (micropyle) होते हैं। कोरियॉन क्यूटिकल की परतों का बना होता है और उसमें एक मोम-जैसा अस्तर पाया जाता है। युग्मनज में अंशभंजी (meroblastic) विदलन होता है जिसमें पीतक में विभाजन नहीं होता। युग्मनज-केन्द्रक बारंबार विभाजित होता जाता और उससे बने हुए सैंकड़ों केन्द्रक चलकर सतह पर आते जाते हैं, उसके बाद परिधीय साइटोप्लाज्म हर केन्द्रक के चारों ओर विभाजित हो जाता है, इस प्रकार एक **ब्लास्टोडर्म** (blasto-derm) बन जाता है जो परिधीय कोशिकाओं की अकेली परत होती है। अधर सतह पर कुछ ब्लास्टोडर्म कोशिकाएँ स्तम्भाकार हो जातीं और एक लंबा **जर्म-बैन्ड** (germ band) अथवा **अधर प्लेट** (ventral plate) बन जाती है। अधर-प्लेट के मध्य में एक खाँच प्रकट होती है, इस खाँच की कोशिकाएँ अंतर्वलन अथवा अधिवृद्धि द्वारा भीतर को चली जातीं और दो कोशिक-परतें बन जाती हैं, बाहरी परत **एक्टोडर्म** होती है और भीतरी परत **मीज़ोडर्म**, अनुदैर्घ्य खाँच एक लंबा ब्लास्टोपोर होती है, यह एक प्रकार के **गैस्ट्रुलाभवन** (gastrulation) का प्रतिदर्श है। अधर प्लेट के हर पार्श्व में ब्लास्टोडर्म में एक वलन बन जाता है, ये दो वलन बीच की ओर को बढ़ते जाते और परस्पर जुड़ कर एक दो-स्तरी आवरण बना देते हैं, बाहरी आवरण **सीरोसा** (serosa) होता है और भीतरी **उल्व** अथवा ऐम्नियॉन (amnion) होता है। सीरोसा तथा ऐम्नियॉन भ्रूण के निर्माण में कोई भाग नहीं लेते, भ्रूण के स्फोटित होने से पहले ही ये अपघटित हो जाते हैं। **एंडोडर्म** की उत्पत्ति मीज़ोडर्म के दोनों सिरों से वृद्धि-केन्द्रों से दो पृथक् भागों के रूप में होती है। एक्टोडर्म एंडोडर्म में को अंतर्वलित

होकर स्टोमोडियम तथा प्रोक्टोडियम बन जाते हैं। इस प्रकार पीतक के नीचे को. तीन-परत वाला भ्रूण बन जाता है।
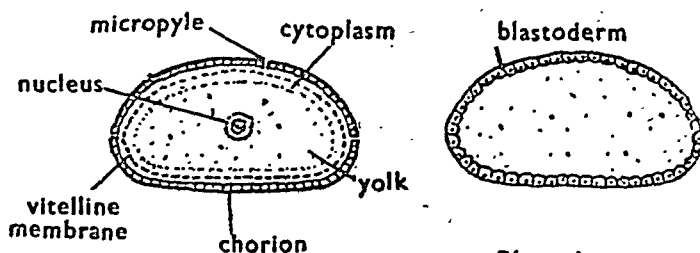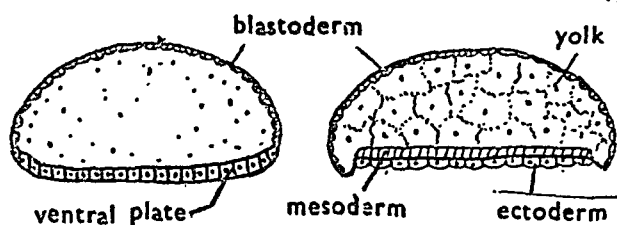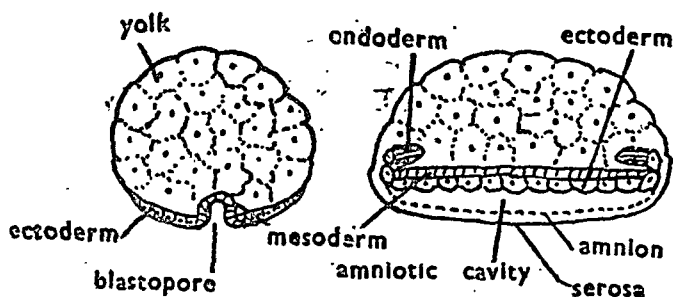
चित्र 392. कीट का परिवर्धन। 1. अंडा; 2. ब्लास्टोडर्म; 3. अधर प्लेट; 4. भ्रूण-स्तर; 5. अवस्था 4 का अनुप्रस्थ सेक्शन; 6. लार्वा झिल्लियाँ। Micropyle, लघुद्वार; cytoplasm, साइटोप्लाज़्म; yolk, पीतक; nucleus, केन्द्रक; vitelline membrane, पीतक-झिल्ली; chorion, कोरियॉन; blastoderm, ब्लास्टोडर्म; ventral plate, अधर प्लेट; ectoderm, एक्टोडर्म; mesoderm, मीज़ोडर्म; ectoderm, एक्टोडर्म; blastopore, ब्लास्टोपोर; endoderm, एंडोडर्म; amnion, ऐम्नियॉन; amnionic cavity, ऐम्नियॉन गुहा; serosa, सीरोसा।
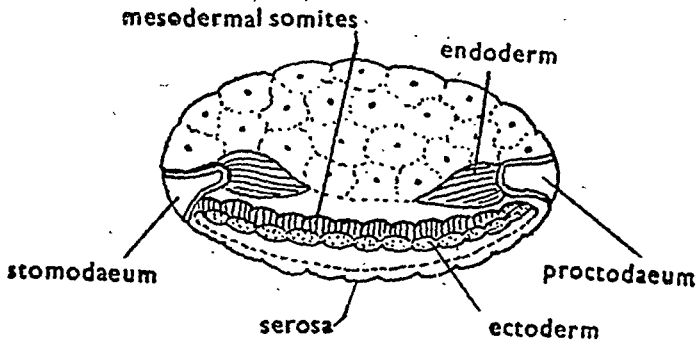
7. Endoderm and invagination
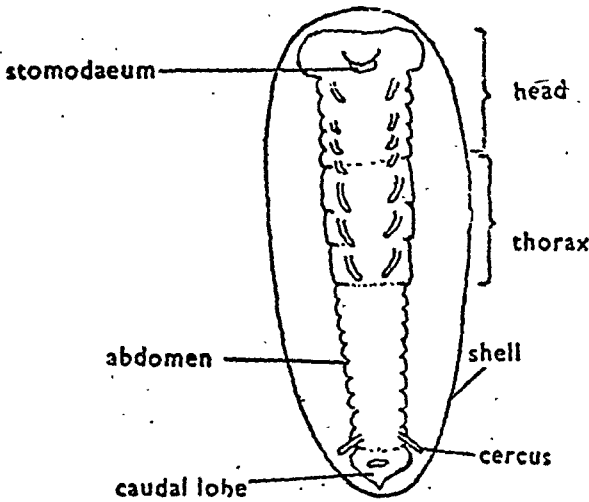
8 Embryo

चित्र 393. कीट का परिवर्धन (जारी)। 7. एंडोडर्म तथा अंतर्वलन; 8. भ्रूण।

Stomodaeum, स्टोमोडियम; mesodermal somite, मीज़ोडर्मी कायखंड (सोमाइट); endoderm, एंडोडर्म; proctodaeum, प्रौक्टोडियम; ectoderm, एक्टोडर्म; serosa, सीरोसा; head; शीर्ष; thorax, वक्ष; shell, कवच; cercus, लूम; caudal lobe, पुच्छ पालि; abdomen, उदर।

प्रारंभिक काल में ही अधर प्लेट एक क्रमबद्ध रूप में अनुप्रस्थ खंडों में विभाजित हो जाती है जिन्हें **कायखंड** अथवा **सोमाइट** (somite) कहते हैं। मीज़ोडर्म के खंड खोखले कोष्ठ बनकर **सीलोमी कोश** (coelomic sacs) बन जाते हैं। कुल मिलाकर 21 जोड़ी कोश बनते हैं, लेकिन सबसे आगे के और सबसे पीछे के कायखंडों में सीलोमी कोश नहीं होते। अंततः सीलोमी कोश विघटित हो जाते और उनके स्थान

पर हीमोसील बन जाती है। जिस समय सीलोमी कोशों का विघटन हो रहा होता है उसी दौरान मीज़ोडर्म के हृदय, देह-भित्ति और आहार-नाल की पेशियों का तथा वसा पिंड का निर्माण हो जाता है।

एक अधर एक्टोडर्मी खाँच से जिसमें कि खंडीय उत्फूलन होते हैं गैंग्लियानों की शृंखला बन जाती है, इन्हीं से मस्तिष्क और तंत्रिका-रज्जु का निर्माण होता है। पहले छः कायखंडों से शीर्ष बनता है, उससे अगले तीन से वक्ष और फिर उससे अगले ग्यारह कायखंडों से उदर बनता है, अंतिम कायखंड से पुच्छ पालि या टेल्सॉन बनता है। मुखांग तथा उपांग कायखंडों में से बनते हैं, लेकिन उदर के उपांग उच्चतर कीटों में विलीन हो जाते हैं, बस ग्यारहवें खंड के बचे रहते हैं जो लूम बन जाते हैं। इस अवस्था में भ्रूण अंडे में से एक निम्फ़ अथवा लार्वा के रूप में बाहर आता है जिसमें भ्रूणोत्तर (postembryonic) वृद्धि और निर्मोचन-क्रम पूरा होकर, जिसमें कायांतरण होता है या नहीं होता, वयस्क रूप एवं आकार प्राप्त हो जाते हैं।

मच्छर

आर्डर **डिप्टेरा (Diptera)** में मक्खियाँ आती हैं, इनमें सामान्यतः केवल एक जोड़ी कार्यशील पंख होते हैं, पिछली जोड़ी पंख ह्रासित होकर ठूंठ बने रह जाते हैं जो उन उदाहरणों तक में पाए जाते हैं जो कि परवर्ती रूप में पंखविहीन हो चुके हैं। मुखांग चूषणीय होते हैं, ये स्पंजी, काटने वाले अथवा वेधन करने वाले प्रकार के हो सकते हैं। बड़े मध्यवक्ष पर क्रियात्मक पंख होते हैं, अग्रवक्ष और पश्चवक्ष छोटे तथा मध्यवक्ष से समेकित होते हैं। कायांतरण पूर्ण होता है और लार्वाओं में टांगें नहीं होतीं (अपादी, apodous)।

फ़ैमिली **क्यूलिसिडी (Culicidae)** में मच्छर आते हैं जो एक प्रकार की पतली मक्खियाँ हैं, इनमें सामान्यतः एक लंबी सूंड होती है जिसमें वेधन मुखांग होते हैं। वास्तविक मच्छर तमाम मक्खियों से इस बात में भिन्न होते हैं कि इनमें शीर्ष की अपेक्षा बहुत ज्यादा लंबी सूंड होती है और पंखों की शिराओं एवं पंखों के पश्च बार्डरों पर चपटे रेखित शल्कों की पंक्तियाँ बनी होती हैं।

2. क्यूलेक्स स्पी०
(*Culex* sp.)

क्यूलेक्स जीनस में आम पाए जाने वाले मच्छर आते हैं जो विश्व भर में पाए जाते हैं, ये मध्यम आकार और धूसर रंग के होते हैं। **क्यूलेक्स पाइपिएन्स** (*Culex pipiens*) तमाम विश्व के शीतोष्ण भागों में पाया जाता है, और **क्यूलेक्स फ़ैटिगैन्स** (*Culex fatigans*) सारे उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाता है। क्यूलेक्स घरों में, शहरों में और फ़ार्म पर रहता है और ग्रामीण प्रदेशों में भी बहुत प्रचुर संख्या में पाया जाता है। इनकी सबसे अधिक बहुतता बसंत में होती है, लेकिन प्रतिकूल मौसमों में ये निष्क्रिय अवस्था में छिप जाते हैं; वयस्क मच्छर पेड़ों, गुफ़ाओं, दरारों और भुसौरों आदि में छिप जाते हैं। नर मच्छर का

आयु-काल मुश्किल से तीन सप्ताह होता है, मादाओं को निषेचित करने के बाद ये मर जाते हैं। मादाएँ चार सप्ताह से कई महीनों तक जिंदा रहती हैं। किंतु तमाम अंडे दिए जा चुकने के बाद वे मर जाती हैं। क्यूलेक्स में एक वर्ष में अनेक पीढ़ियाँ होती हैं।

बाहरी लक्षण—शरीर तीन भागों शीर्ष, वक्ष और उदर में विभाजित होता है, इसके ऊपर छोटे-छोटे शल्क चढ़े होते हैं। शीर्ष गोल होता है और एक पतली गर्दन के ऊपर खूब अच्छी तरह घुमाया जा सकता है। दो बहुत बड़ी काली संयुक्त आँखें होती हैं, नेत्रक नहीं होते, शीर्ष की चोटी पर एक **एपिक्रेनियम** होता है जिसके नीचे एक **कलाइपियस** होता है जो मोटा और आगे को निकला हुआ होता है। दो सूत्राकार ऐंटेना होते हैं जिनमें से प्रत्येक में 15 संधियाँ होती हैं, आधारीय खंड **स्केप** होता है जो बहुत बड़े गोल दूसरे खंड पेडिसल में छिपा होता है, इस दूसरे खंड में श्रवण क्रिया करने वाला **जॉन्स्टन-श्रंग** (Johnston's organ) होता है, शेष 13 खंड एक फ्लैजेलम बनाते हैं जिसमें वलयों में लगे हुए अनेक शूक होते हैं। ये शूक नरों में अधिक लंबे और अधिक संख्या में होते हैं जिससे कि उनके ऐंटेना अधिक गुच्छेदार दिखाई पड़ते हैं। मादा में थोड़े और छोटे शूकों के वलय बने होते हैं, इस प्रकार नर-मादा को ऐंटेनाओं के द्वारा तुरंत पहचान लिया जा सकता है। शीर्ष के ऊपर दो मैक्सिलरी पैल्प और एक सूंड (शुंड) बनी होती है। मैक्सिलरी पैल्प कड़े होते हैं और उन पर बहुत से शूक बने होते हैं, मादा पैल्प छोटे और 3-खंडीय होते हैं लेकिन नर में ये लंबे, यहाँ तक कि सूंड से भी ज्यादा लंबे, होते हैं, और 5-खंडीय होते हैं।

चित्र 394. **क्यूलेक्स**, मादा। Proboscis, शुंड; antenna, ऐंटेना; palp, पैल्प; mesothorax, मध्यवक्ष; wing, पंख; halter, हाल्टर; scutellum, स्कुटेलम; abdomen, उदर; cercus, लूम।

मुखांग—सूंड एक सीधी और लम्बी नलिका होती है जो एक मांसल अधर

लेबियम की बनी होती है जिसकी ऊपरी सतह पर एक गहरी खाँच बनी होती है, इस खाँच के भीतर एक लम्बा नुकीला अधर-खाँच युक्त **लेब्रम एपिफैरिंक्स** (labrum epipharynx) होता है। लेबियम के दूरस्थ सिरे पर एक जोड़ी छोटे स्पर्शी **लैबेला** (labella) होते हैं जो ह्रासित लेबियल पैल्प होते हैं। साथ ही लेबियम की खाँच में मादा क्यूलेक्स में पाँच सूई-जैसी शूकिकाएँ (stylets) भी होती हैं, ये दो मैंडिबल, दो मैक्सिला और एक हाइपोफ़ैरिंक्स होती हैं। मैक्सिलाओं की अपेक्षा मैंडिबल पतले होते हैं, मैक्सिलाओं के अन्तिम सिरे दंतुरित होते हैं तथा मैंडिबलों के कुछ-कुछ भाले जैसे। हाइपोफ़ैरिंक्स भी सूई-जैसा होता है और उसमें से चलती हुई एक बारीक लार-वाहिनी अन्तिम सिरे पर खुलती है, इस वाहिनी में से लार बह कर निकलती है जो शिकार-प्राणी के रक्त को स्कंदित होने से रोकती है। नर में लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स और लेबियम मादा ही की तरह होते हैं लेकिन मैंडिबल और मैक्सिला बहुत छोटे और क्रियाविहीन होते हैं तथा हाइपोफ़ैरिंक्स लेबियम के साथ समेकित हो गया होता है।
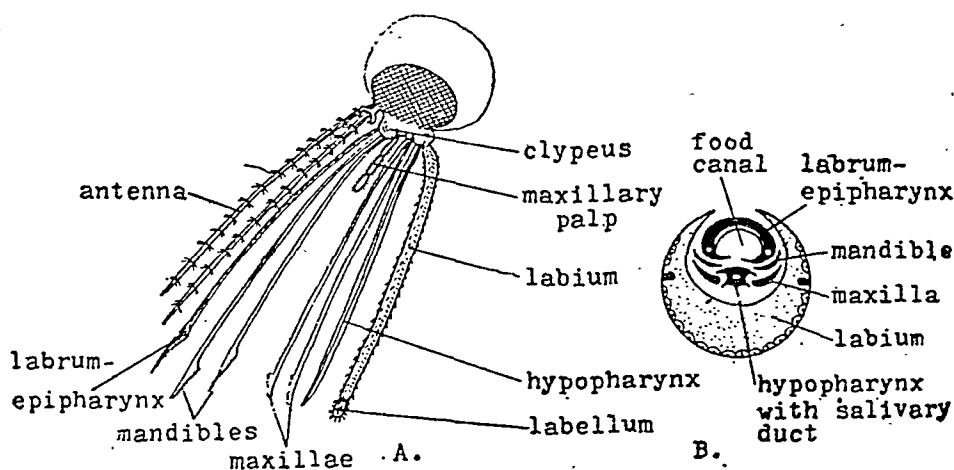
चित्र 395. A—मादा क्यूलेक्स के मुखांग। B—शुंड का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Antenna, ऐंटेना ; labrum epipharynx, लेब्रम एपिफ़ैरिंक्स ; mandibles, मैंडिबल ; maxillae, मैक्सिला ; labellum, लैब्रेलम ; hypopharynx, हाइपोफ़ैरिंक्स ; labium, लेबियम ; maxillary palp, मैक्सीलरी पैल्प ; clypeus, क्लाइपियस ; food canal, आहार नलिका ; salivary duct, लार वाहिनी।

अशन—दोनों लिंगों का सामान्य आहार फूलों का मकरंद और पौधों के रस होते हैं, किन्तु मादा में कशेरुकियों के रक्त का अतिरिक्त आहार करने के वास्ते मुखांग रूपांतरित हो गये हैं। मादा मच्छर कशेरुकी के शरीर पर बैठता और अपने लैबेला को उसकी खाल के ऊपर गड़ाता है, ये लैबेला वेधक मैंडिबलों तथा मैक्सिलाओं के वास्ते मार्ग-दर्शन के रूप में कार्य करता है जो मांस में घुसेड़ दिये जाते हैं ; आव-

रक लेबियम पीछे को वक्र हो जाता है जिससे कि सूइयाँ भीतर चली जाती हैं। लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स तथा हाइपोफ़ैरिंक्स एक साथ मिलकर एक आहार-नलिका बनाते हैं जिसमें से घाव से ऊपर की ओर को रक्त चूस लिया जाता है, चूषण की क्रिया ग्रसनी द्वारा की जाती है जिसके जरिये रक्त मुख में पहुँचता है। इस प्रकार मुखांग वेधन तथा चूषण में काम आते हैं। मच्छरों में आमाशय के अतिरिक्त तीन और ग्रसिकीय आहार-आगार होते हैं, इन आगारों में भोजन संचित कर लिया जाता है जैसे कि पौधों के रस, लेकिन रक्त संचित नहीं होता जो सीधा आमाशय में पहुँच जाता है।

वक्ष—वक्ष ऊपर को वक्र होता है, इसमें एक मध्यवक्ष होता है जो बहुत बड़ा होता है, इसके टर्गम में तीन स्क्लेराइट होते हैं, एक स्कुटम (scutum), एक त्रिपालिक स्कुटेलम (scutellum) और एक पश्च-स्कुटेलम (post-scutellum)। अग्रवक्ष और पश्चवक्ष बहुत छोटे होते हैं। वक्ष के ऊपर दो जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं। मध्यवक्ष से एक जोड़ी झिल्लीदार क्रियात्मक पंख बने होते हैं जो लम्बे और संकरे होते हैं। पंख की शिराओं के उपर शल्क बने होते हैं और पंखों के पश्च सीमांत पर शूक और शल्कों की लाइनें बनी होती हैं। पश्चवक्ष के पंख ह्रासित होकर एक जोड़ी छोटे **हाल्टीयर** (haltere) होते हैं जिनमें से हर एक हाल्टीयर में एक फूला हुआ अधर अथवा **स्कैबेलम** (scabellum), एक संकीर्ण स्तम्भ अथवा **वृंत**, और एक दूरस्थ फूली घुंडी अथवा **कैपिटेलम** (capitellum) होता है। हाल्टीयर उड़ने के दौरान 300 बार प्रति सेकिंड के हिसाब से कंपन करते हैं, कदाचित् ये संतोलकों का काम करते हैं लेकिन इनके कार्य के बारे में संदेह है, फिर भी यदि हाल्टीयरों को निकाल दिया जाए तो उड़ान या तो कठिन हो जाती या असम्भव हो जाती है। वक्ष में से तीन जोड़ी टाँगें निकलती हैं जो बहुत लम्बी और पतली होती हैं, ये भंगुर होती
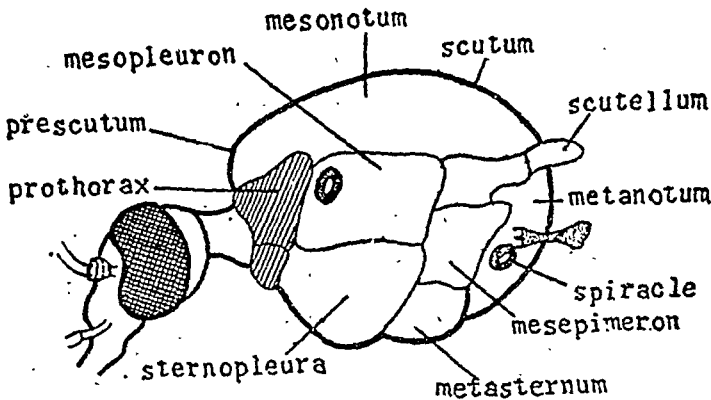
चित्र 396. क्यूलेक्स का शीर्ष और वक्ष।

Prothorax, अग्रवक्ष ; prescutum, अग्रस्कुटम ; mesopleuron, मध्यप्ल्यूरॉन ; mesonotum, मध्यनोटम ; scutum, स्कुटम ; scutellum, स्कुटेलम ; metanotum, पश्चनोटम ; spiracle, श्वास-रंध्र ; mesepimeron, मध्यएपिमेरॉन ; metasternum, पश्चस्टर्नम ; sternopleura, स्टर्नोप्ल्यूरा।

हैं, इनमें कीटों की टाँगों वाले सभी सामान्य भाग होते हैं लेकिन कॉक्सा छोटे होते हैं और टार्सस लम्बे एवं पाँच सन्धियों वाले होते हैं जिनके अन्त में एक जोड़ी सरल नखर होते हैं, हर नखर के नीचे एक गद्दी-जैसा **पल्विलस** होता है । टाँगों पर भी बहुत से शल्क और शूक होते हैं ।

उदर—उदर में 10 खण्ड होते हैं जिनमें से पहला खण्ड अवशेषी और पश्च-वक्ष के साथ समेकित होता है । दूसरे से आठवें तक खण्ड स्पष्ट होते हैं और उनमें से हर एक पर एक जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं, नौवाँ और दसवाँ खण्ड अंशतः आठवें में को घुसे हुए होते हैं । मादा में दसवाँ खण्ड कुंद होता है और उस पर एक जोड़ी लूम बने होते हैं, इन दोनों के बीच में एक **पश्च जनन प्लेट** होती है जो दसवें स्टर्नम का भाग होती है । नर में 9वाँ और 10वाँ खण्ड जटिल होते हैं, इनमें मच्छरों के पैदा होते ही 180° का मरोड़ आ जाता है जिससे कि टर्गम और गुदा अधर दिशा पर तथा स्टर्नम पृष्ठ दिशा पर आ जाते हैं । 9वाँ खण्ड वलय जैसा होता है जिसमें एक द्विपालिक अधर टर्गम होता है, इसमें एक जोड़ी बड़े **आलिंगक** (claspers) होते हैं जिनमें से हर एक में एक चौड़ा अधरीय **कॉक्साइट** (coxite) होता है जिसके पीछे एक संकरा स्टाइल और उसके सिरे पर बना हुआ नखर होता है । 10वें खण्ड में एक द्विपालिक पृष्ठ स्टर्नम होता है जिसमें से दो प्रवर्ध निकले होते हैं जिनके सिरे वक्र और दंतयुक्त होते हैं, नर प्रवेषी अंग अथवा **ईडिऐगस** (aedeagus) पीछे को निकला होता है, यह 9वें खण्ड के गाइनैपोफ़ाइसिसों के समेकन से बना होता है । स्खलन-वाहिनी ईडिऐगस में खुलती है । मैथुन के दौरान नर अपने आलिंगकों के द्वारा मादा को पकड़े रहता है और ईडिऐगस योनिमार्ग में डाल दिया जाता है ।
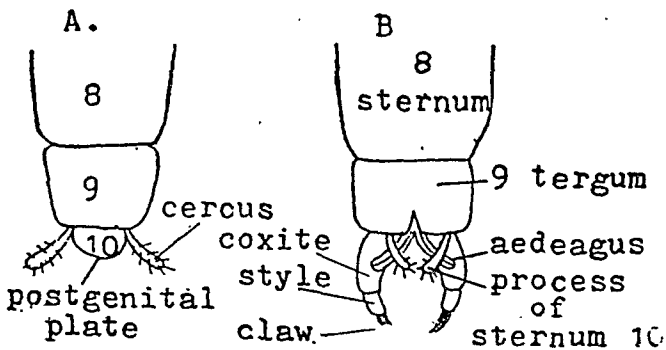
चित्र 397. क्यूलेक्स के उदर का पश्च सिरा ।

A—मादा, पृष्ठ दृश्य; B—नर, अधर दृश्य ।

Cercus, लूम ; post genital plate, पश्च जनन प्लेट ; sternum, स्टर्नम ; tergum, टर्गम ; aedeagus, ईडिऐगस ; process of sternum, स्टर्नम का प्रवर्ध ; coxite, कॉक्साइट ; style. वृंत ; claw, नखर ।

जीवन-वृत्त—मैथुन के बाद मादा शान्त जल की सतह पर अण्डे देती है, अण्डे ताल-तलैयों या वर्षा के जल से भरे पात्रों में दिये जा सकते हैं । अण्डों की आकृति

सिगार के जैसी होती है, और वे एक सिरे पर पतले होते जाते हैं। अण्डे रात में दिए जाते और एक मादा 300 तक अण्डे देती है। अण्डे अगल-बगल दिये जाते हैं जो सीधे खड़े रहते हैं, और मादा उन्हें अपने पैरों से एक साथ ला-लाकर परस्पर चिपका कर उनका एक नौकाकार बेड़ा बना देती, ये बेड़े जल की सतह पर तैरते रहते हैं। अण्डे में से 1 से 3 दिन में स्फोटन हो जाता है, और हर अण्डे के निचले सिरे से लार्वा निकल आता है।
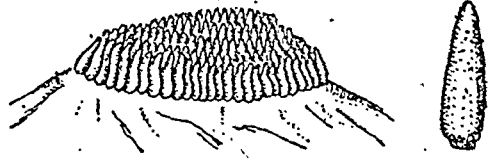
चित्र 398. क्यूलेक्स का अंडा-बेड़ा तथा अंडा।

लार्वा—लार्वाओं को "रिग्लर" कहते हैं क्योंकि ये रेंग-रेंग कर चलते हैं, स्फोटित होने पर ये सूक्ष्मदर्शीय आकार के होते हैं। लार्वा एक सक्रिय जीवन
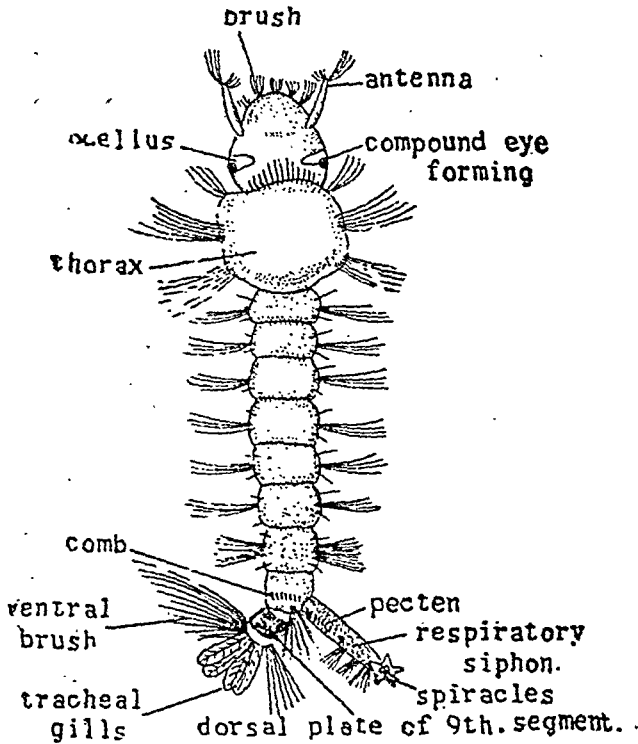
चित्र 399. क्यूलेक्स का लार्वा।

Brush, ब्रुश; antenna, ऐंटेना; compound eye forming, निर्माणशील संयुक्त नेत्र; ocellus, नेत्रक; thorax, वक्ष; comb, कंकत; ventral brush, आधार ब्रुश; tracheal gills, वातिका गिल; pecten, कंकतिका; respiratory siphon, श्वास साइफ़न; spiracles of 9th segment, 9वें स्टर्नम के श्वास-रंध्र; dorsal plate, पृष्ठ प्लेट।

विताता है, यह तैरता, फिरता, खाता और बढ़ता जाता है, और लार्वा-जीवन तापमान के अनुसार 3 से 14 दिन तक चलता है। इस काल के दौरान यह चार वार निर्मोचन करता और हर निर्मोचन के वाद बड़े आकार का होता जाता है। लार्वा में एक वड़ा काइटिनी शीर्ष होता है जो पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा होता है, इसमें परिवर्धित होती जाती हुई संयुक्त आँखें होती हैं और प्रत्येक के निकट पीछे एक लार्वा-नेत्रक होता है, इसमें एक **लेब्रम** होता है। छोटे दंतयुक्त **मैंडिवल** होते हैं, एक जोड़ी **मैक्सिला** जिन पर अशन शूक वने होते हैं, भीतर की ओर पड़े होते हैं, लेवियल प्लेटें होती हैं और एक जोड़ी सन्धियुक्त ऐंटेना होते हैं। इनमें एक मुख होता है जिसके ऊपर एक जोड़ी घूमने वाले **अशन ब्रुश** (feeding brush) होते हैं जो कड़े शूकों के वने होते हैं। ये ब्रुश एक जलधारा पैदा करते हैं जिसके द्वारा आहार के छोटे-छोटे कण मुख में को धक्का दिये जाते हैं। आहार में शेवाल और छोटे-छोटे जैव कण होते हैं, लार्वा इन कणों का जल की सतह के नीचे आहार करता है। वक्ष गोलाकार होता है और उसके खण्ड समेकित होते हैं। शीर्ष, वक्ष और उदर खण्डों पर युग्मित शूक होते हैं जिनमें से कुछ गुच्छे वनाये हुए होते हैं विशेषतः वक्ष के ऊपर। उदर पतला होता है और उसमें 9 खण्ड होते हैं, पहले सात उदरखण्डों पर शूकों के गुच्छे वने होते हैं। आठवें खण्ड में एक काइटिनी तथा नलिकाकार **श्वसन साइफ़न** होता है, इस साइफ़न के अन्तिम सिरे पर दो श्वास-रंध्र होते हैं जो भीतर वातिकाओं में को खुलते हैं। श्वास-रंध्रों को घेरते हुए पाँच पत्ती-जैसे पालि वने होते हैं जो पलट कर श्वास-रंध्रों को वन्द कर सकते हैं ताकि उनमें पानी न जा सके। यह श्वसन तंत्र **पश्चवाती** (metapneustic) होता है जिसमें उदर श्वास-रंध्रों की केवल अंतिम जोड़ी खुली होती है। लार्वा जलीय होने पर भी अपने साइफ़न के द्वारा हवा से साँस लेता है और हवा लेने के वास्ते सतह पर आता है। विश्राम-अवस्था में लार्वा अपने साइफन से जल की सतही फिल्म को वेधता और इस साइफ़न को सतह के तुरंत ऊपर रखते हुए हवा को भीतर खींचता है, और स्वयं सिर नीचा किए हुए साइफ़न के सहारे लटका रहता है, लेकिन यह एक कोण वनाए हुए भुका रहता है। साइफ़न की अधर दिशा में दो शूक-गुच्छे होते हैं और चपटे काँटों की दो पंक्तियाँ होती हैं जिन्हें **कंकतिका** (pecten) कहते हैं। आठवें खंड पर एक या दो पंक्तियों में व्यस्थित छोटे-छोटे शल्कों के क्षेत्र होते हैं जो एक **कंकत** (comb) बनाते हैं। **क्यूलेक्स** की कुछ स्पीशीज़ में कंकत में अनेक पंक्तियों में शल्क वने होते हैं। उदर का नौवां खंड पतला होता और उसके ऊपर एक काइटिनी **पृष्ठ प्लेट** (dorsal plate) ढकी होती है। नौवें खंड के अंत में एक **गुदा** होती है जो चार पत्ती-जैसे **वातिका-गिलों** के द्वारा घिरी रहती है, इन वातिका-गिलों में रक्त वाहिनियों के वजाए वातिकाएँ होती हैं, यही वास्तविक गिलों से इनका भेद है। नौवें खंड में उसके सिर पर एक गुच्छा **पृष्ठ शूकों** (dorsal bristles) का होता है, और अधर दिशा में शूकों का एक घना गुच्छा होता है जिसे **अधर ब्रुश** (ventral brush) कहते हैं। भारी होने के कारण लार्वा जल में डूव जाता है। उदर की रेंगने वाली

गतियों के द्वारा यह ऊपर आता जाता है। चौथे निर्मोचन के बाद लार्वा एक प्यूपा में बदल जाता है।

प्यूपा एक कॉमा की आकृति का होता है और इसे "टम्बलर" कह दिया जाया करता है। इसमें शीर्ष और वक्ष द्वारा एक बड़ा **शिरोवक्ष** बना होता है। शिरोवक्ष की मध्य-पृष्ठ दिशा में एक जोड़ी नलिकाकार **श्वसन-तूर्य** (respiratory *trumpets*) होते हैं जो दूरस्थ सिरे पर ज्यादा चौड़े होते हैं, ये वक्ष श्वास-रंध्रों की एक अग्र जोड़ी में खुलते हैं। तूर्यों के सहारे प्यूपा जल की सतह-फिल्म से लटका रहता और उनके दूरस्थ सिरों से जो कि जल के थोड़ा-सा ऊपर को निकले होते हैं हवा भीतर ले जाई जाती रहती है। शिरोवक्ष के भीतर कोश देखे जा सकते हैं जिनके भीतर वयस्क के संयुक्त नेत्र, एक जोड़ी नेत्रक, ऐंटेना, पंख और टाँगें देखी जा सकती हैं। शिरोवक्ष के पीछे एक नीचे को मुड़ा हुआ उदर होता है जो 9 खंडों का बना
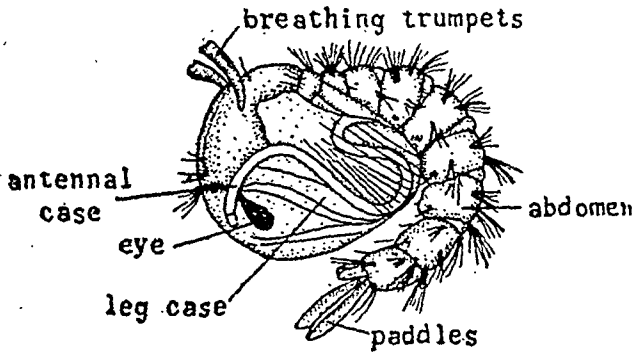
चित्र 400. क्यूलेक्स का प्यूपा।

Breathing trumpets, श्वास तूर्य; antennal case, ऐंटेना-कोश; eye, आंख; leg case, टाँग कोश; paddles, चप्पू; abdomen, उदर।

होता है जिनमें से सबसे पहला खंड बहुत छोटा होता है लेकिन खंड 2 से 9 तक स्पष्ट और गतिशील होते हैं। उदर के ऊपर शूकों के समूह बने होते हैं। अंतिम खंड पर एक जोड़ी काइटिनी पत्ते जैसे **चप्पू** बने होते हैं जिनके द्वारा प्यूपा तैरता है। प्यूपा एक विश्रामी अवस्था होती है, इस अवधि के दौरान यह कुछ नहीं खाता-पीता, लेकिन मच्छरों के प्यूपा इस बात में विचित्र होते हैं कि वे सक्रिय होते और तैरते फिरते हैं। लार्वा के विपरीत प्यूपा जल की अपेक्षा ज्यादा हल्का होता है और नीचे डूब सकने के वास्ते उसे पेशीय श्रम करना पड़ता है। प्यूपा-काल ताप पर निर्भर रहता हुआ दो से सात दिन तक चलता है। इस काल के दौरान प्यूपा में विलक्षण परिवर्तन होते हैं जबकि भीतर वयस्क कीट जिसे **पूर्णकीट** अथवा इमैगो कहते हैं बन रहा होता है। पूर्णकीट के पूरी तरह बन चुकने के बाद प्यूपा की खाल पीठ पर मध्य-पृष्ठ दिशा में तूर्यों के बीच में फट जाती और पूर्णकीट बाहर आ जाता है, इस बाहर आने में सबसे पहले शीर्ष बाहर आता है और उसके बाद शरीर तथा उपांग बाहर निकाल लिए जाते हैं। पूर्णकीट थोड़े से काल के लिए प्यूपा-त्वचा के ऊपर

विश्राम करता, अपने पंख फैला कर उन्हें सुखा लेता और फिर उड़ जाता है। यह एक सप्ताह के भीतर अंडे देना शुरू कर सकता है और इस प्रकार अपने जीवन-वृत्त को दोहरा सकता है।

कायांतरण—अंडे से फूट कर बाहर निकला हुआ बच्चा वयस्क-कीट से अपनी संरचना और जीवन-पद्धति दोनों में भिन्न होता है, इसे लार्वा कहते हैं। यह लार्वा खाता है, चलता-फिरता है, निर्मोचन करता और बढ़ता जाता है। उसके बाद वह एक शांत अवस्था **प्यूपा** में आ जाता है जो लार्वा और पूर्णकीट दोनों से ही भिन्न होता है। अंततः वयस्क प्यूपा में बनता है। इस प्रकार के परिवर्धन को **पूर्ण कायांतरण** (complete metamorphosis) अथवा **पूर्णपरिवर्तनी** कायांतरण (holmetabolous metamorphosis) कहते हैं। यह उच्चतर कीटों में होता है जैसा कि मच्छर में होता है। लार्वा-काल के अंत तक वृद्धि और निर्मोचन का नियंत्रण **कॉर्पोरा ऐलैटा** के बाल-हार्मोन द्वारा होता है। शांत अवस्था में होते हुए भी प्यूपा में बहुत ज्यादा आंतरिक परिवर्तन होकर भीतर पूर्णकीट बनता जाता है। केवल केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र और विकसित होते हुए जननांगों को छोड़ कर अधिकतर लार्वा-अंगों का प्यूपा अवस्था में विघटन हो जाता है, लार्वा-अंगों की इस विघटन क्रिया को **ऊतकलयन** (histolysis) कहते हैं। ऊतकलयन की प्रक्रिया प्रधानतः **भक्षकाणु** नामक रक्त कोशिकाओं द्वारा सम्पन्न होती है जो विघटनशील अंगों के ऊतकों को खाते जाते हैं और उनके पाचन-उत्पाद रक्त में पहुँच कर नए ऊतक बनाते हैं। पूर्णकीट के अंगों के निर्माण के वास्ते लार्वा में पहले से ही निर्माण कोशिकाओं के समूह पृथक् हुए रहते हैं, इन्हें **पूर्णकीट-मुकुल** (imaginal buds) अथवा **हिस्टोब्लास्ट** (histoblasts) कहते हैं। पूर्णकीट-मुकुल लार्वा की तमाम देह में पाए जाते हैं; जो या तो उसके भीतरी अंगों के समीप या एपिडर्मिस के अंतर्वलनों में पड़े होते हैं। पूर्णकीट-मुकुल भावी अंगों के मूलांग होते हैं। प्यूपा के भीतर नए वयस्क अंगों की निर्माण-क्रिया को **ऊतकजनन** (histogenesis) कहते हैं। पूर्णकीट-मुकुल प्रसुप्त होते हैं, ये **अग्रवक्ष अंतःस्रावी ग्रंथियों** के एक हॉर्मोन से उत्तेजित होते हैं, ये ग्रंथियाँ केवल कायांतरण के दौरान ही सक्रिय होती हैं और एक प्यूपाकारी हॉर्मोन का स्राव करती हैं जो पूर्णकीट मुकुलों को आगे परिवर्धित करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्यूपा के भीतर पूर्णकीट बन जाता है, परिवर्धन पूरा हो जाने के बाद प्यूपा का आवरण बन जाता और भीतर से एक पूर्णनिर्मित पूर्णकीट निकल आता है। वयस्क की दिशा में अंतिम निर्मोचन का नियंत्रण भी अग्रवक्ष ग्रंथियों के हॉर्मोन से ही होता है, यह केवल तभी होता है जब कॉर्पोरा ऐलैटा का बाल-हॉर्मोन बनना बंद हो जाता है। इस प्रकार पूर्णपरिवर्तनी कायांतरण में जीवन-चक्र की अवस्थाएँ इस प्रकार होती हैं; अंडा → लार्वा → प्यूपा → पूर्णकीट, और वयस्क पंख भीतर से पूर्णकीट-मुकुलों से बनते हैं और बाहर से दृश्यमान नहीं होते। अर्धपरिवर्तनी (hemimetabolous) अथवा विषमपरिवर्तनी कायांतरण में, जैसे कि कॉकरोच में, अवस्थाएँ इस प्रकार होती हैं : अंडा → निम्फ → पूर्णकीट, और वयस्क के पंख त्वचा के बाहर से विकसित होते हैं।

3. ऐनॉफ़िलीस स्पी०
(*Anopheles* sp.)

ऐनॉफिलीस की अनेक स्पीशीज मलेरिया ज्वर पैदा करने वाले प्रोटोज़ोअन **प्लाज्मोडियम** की वाहक (vectors) होती हैं। **ऐनॉफ़िलीस** परजीवी को एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में पहुँचाता है। **प्लाज्मोडियम** बंदरों में भी मलेरिया पैदा करता है, अतः बंदर मलेरिया परजीवी के आगार परपोषियों के रूप में भी कार्य करते हैं।
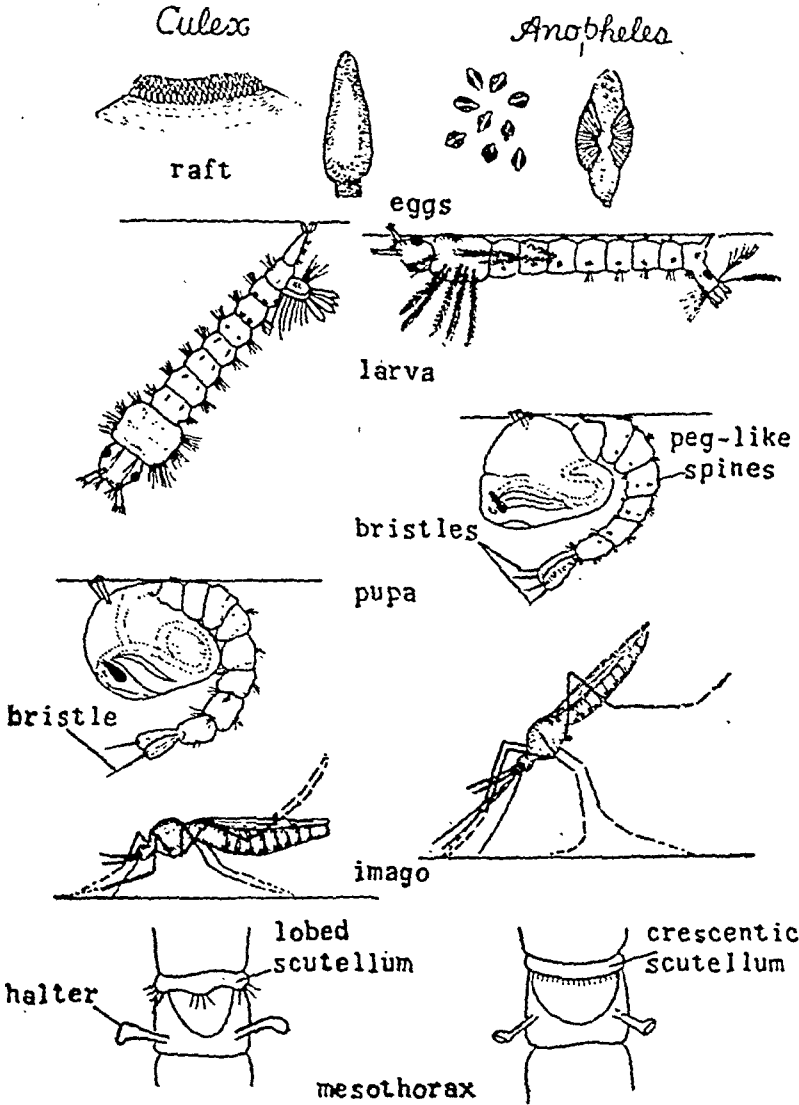
चित्र 401. क्यूलेक्स और ऐनॉफ़िलीस की तुलना।
Raft, बेड़ा; eggs, अंडे; larva, लार्वा; bristles, शूक; peg-like spines, खूंटी-जैसे काँटे; pupa, प्यूपा; imago, पूर्णकीट; halter, हाल्टीयर; lobed scutellum, पालियुक्त स्कुटेलम; mesothorax, मध्यवक्ष; crescentic scutellum, बालचंद्र स्कुटेलम।

मलेरिया ग्रस्त रोगी के रक्त का आहार करते हुए मादा **ऐनॉफ़िलीस प्लाज़्मोडियम** की युग्मककोशिका अवस्थाओं को भीतर ले जाती है जो मच्छर के भीतर परिवर्धित होतीं और लैंगिक जनन में से गुज़रते हुए हज़ारों स्पोरोज़ूआइट बना देती हैं। जब यह मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तब वह अपनी लार के साथ-साथ उसके रक्त में संक्रामी स्पोरोज़ूआइट पहुँचा देती है। **ऐनॉफ़िलिस** दलदली जगहों में रहता है, लेकिन, इसकी कुछ स्पीशीज़ जैसे कि **ऐ० स्टीफ़ेन्साई** (*A. stephensi*) और **ऐ० क्वाड्रिमैक्युलैटस** (*A. quadrimaculatus*) उपनगरीय और देहाती इलाकों में घरों में पहुँच जाते हैं। भारत में मलेरियाई मच्छरों की अनेक स्पीशीज़ हैं जिनमें से सामान्यतः मिलने वाली हैं **ऐनॉफ़िलीस मैक्युलैटस** (*Anopheles maculatus*), **ऐ० क्यूलिसिफ़ेशीज** (*A. culicifacies*), **ऐ० फ़्लुविऐटिलिस** (*A. fluviatilis*) तथा **ऐ० स्टीफ़ेन्साई**। इनके अलावा और भी अनेक स्पीशीज़ हैं जिनके कारण संसार में मलेरिया फैलता है।

स्वभाव (Habits)—**ऐनॉफ़िलीस** मच्छर सामान्यतः संध्या के समय और सुबह-सुबह सक्रिय होता है, लेकिन कुछ स्पीशीज़ अंधेरे में भी आहार करती हैं। नर-मादा दोनों ही मकरंद और पादप रसों का आहार करते हैं, लेकिन मादा कशेरुकियों का रक्त भी चूसती है जो वह प्रायः कई-कई दिन छोड़ कर चूसती है। ऐनॉफ़िलाइन मच्छर सामान्यतः वयस्क अवस्था में शीत-निष्क्रिय होते हैं और वे पेड़ों, चट्टानों तथा गुफाओं में छिप जाते हैं, लेकिन कुछ स्पीशीज़ लार्वा के रूप में शीत-निष्क्रिय होतीं और अपने आपको नम मिट्टी में गड़ा लेती हैं। एनॉफ़िलीस की अधिकतर स्पीशीज़ स्थानबद्ध स्वभाव वाली होती हैं और कुछ सौ गज़ से शायद ही कभी दूर उड़ कर जाती हों। वे अधिकतर प्राकृतिक जल में ही अंडे देती हैं जैसे तालाबों, दलदलों, धान के खेतों और घास-उगी नालियों में, लेकिन कुछ स्पीशीज़ बहती हुई जलधाराओं में भी अंडे देती हैं जैसे **ऐ० लिस्टोनाई** उपहिमालयी धाराओं में, और **ऐ० रॉसाई** (*A. rossi*) वर्षा के जल से भरे अस्थायी तालाबों में और **ऐ० स्टीवेन्साई** कुओं में अंडे देते हैं।

अभिनिर्धारण (Identification)—संरचना और जीवन-वृत्त की तफ़सीलों में **एनॉफ़िलीस** तथा **क्यूलेक्स** में जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है बहुत समानता पाई जाती है, लेकिन इसमें कुछ ऐसे लक्षण पाए जाते हैं जिनके द्वारा इसे (**ऐनॉफ़िलीस** को) उसकी हर परिवर्धन अवस्था में पहचाना जा सकता है।

ऐनॉफ़िलीस के पूर्णकीट में पतला शरीर होता है, लेकिन उदर रक्त से भरे होने पर वह फूला-फूला दिखाई पड़ता है। नर के मैक्सिलरी पैल्प शुंड से ज्यादा लंबे और 5 संधि वाले होते हैं, अंतिम दो संधियाँ चपटी और चौड़ी होती हैं जिसमें पैल्प मुद्गराकार दिखाई देने लगते हैं। मादा में मैक्सिलरी पैल्प सूंड से हमेशा आधे से ज्यादा लंबे होते हैं पर प्रायः उतने ही लंबे होते हैं जितनी कि सूंड होती है। **क्यूलेक्स** में नर के मैक्सिलरी पैल्प प्रायः सूंड के बराबर लंबे होते हैं और मुद्गराकार नहीं होते, मादा में वे सदा छोटे और तीन-संधियों वाले होते हैं। वक्ष में **ऐनॉफ़िलिस**

का स्कुटेलम बाल चंद्राकार होता है जिसके पश्च सीमांत पर शूक बने होते हैं, अन्य मच्छरों में स्कुटेलम त्रिपालिक होता और हर पालि पर एक शूक-गुच्छा बना होता है। **ऐनॉफ़िलीस** के पाँवों पर काले-काले धब्बे बने होते हैं जबकि अन्य में ये धब्बे नहीं बने होते हैं। बैठी हुई अवस्था में **एनॉफ़िलीस** का शरीर सतह के साथ एक कोण बनाता है, इसकी सूँड शरीर की सीधी रेखा में होती है, **क्युलेक्स** का शरीर बैठे हुए सतह के समांतर रहता है और इसकी सूँड शरीर की सीधी रेखा में नहीं होती। लेकिन कुछ **ऐनॉफ़िलीस** में **क्यूलेक्स** के समान बैठी हुई स्थिति पाई जाती है जैसे **ऐनॉफ़िलीस क्युलिसिफेसीज़** (*Anopheles culicifacies*)। **एनॉफ़िलीस** के उदर में स्टर्नमों में शल्क नहीं होते, जबकि अन्य में उदर के टर्गमों तथा स्टर्नमों दोनों में शल्क बने होते हैं।

अण्डे—मादा **ऐनॉफ़िलीस** एक बार में 40 से 100 अण्डे देती है, ये अण्डे दोनों सिरों पर नुकीले होते हैं और उनमें एक जोड़ी पार्श्व **वायु उत्प्लव** (air floats) होते हैं, अण्डे एकल रूप में दिये जाते हैं और जल पर क्षैतिजशः पड़े होते हैं। ये बिखरे-बिखरे समूहों में पड़े होते हैं और सतह-तनाव के कारण इनमें ज्यामितीय नमूने बन जाते हैं। **क्यूलेक्स** के अण्डे सिगार की आकृति के होते हैं और उनमें कोई वायु उत्प्लव नहीं होते, ये सीधे खड़े हुए नौका की आकृति के बेड़े बनाते हैं।

ऐनॉफ़िलीस में अण्डे में से 24 से 48 घंटों के भीतर लार्वा निकल आता है।

लार्वा—**ऐनॉफ़िलीस** के लार्वा में श्वसन-साइफ़न नहीं होता, बल्कि आठवें खण्ड पर इसमें एक उभरी हुई काइटिनी **चतुर्भुजी प्लेट** (quadrilateral plate) होती है जिस पर दो श्वास-रंध्र होते हैं, इन श्वास-रंध्रों को घेरते हुए पाँच छोटे पत्ती-जैसे पल्ले होते हैं। श्वास-रंध्रों के समीप छोटे शूक होते हैं जो एक जोड़ी **कंकतिकाएँ** (pecten) बनाते हैं। **क्यूलेक्स** के लार्वा का आठवें खण्ड पर शूकों की पंक्तियों द्वारा बना हुआ **कंकत** (comb) इसमें नहीं पाया जाता, हाँ, केवल नये-नये स्फोटित **ऐनॉफ़िलीज़** लार्वा में होता है। लार्वा में **हस्ताकार** (palmate) **शूक** अथवा **रोम** होते हैं जिनकी एक-एक जोड़ी हर वक्ष-खण्ड और अधिकतर उदर-खण्डों पर होती है। हस्ताकार शूक में एक छोटा वृंत बना होता है जिसमें से अनेक पतले और चपटे पर्णक अरीय रूप में निकले होते हैं। लार्वा जल की सतह पर हस्ताकार शूकों तथा आठवें खण्ड की चतुर्भुज प्लेट के द्वारा क्षैतिजशः लटका रहता है, यह एक विशिष्ट विश्राम-स्थिति होती है, इस स्थिति में यह जल की सतह को कई स्थानों पर छूता रहता है, और श्वास-रंध्र जल की सतह के ऊपर को निकले होते हैं। लार्वा का शीर्ष चौड़ाई की अपेक्षा ज्यादा लंबा होता है, और यह जल की सतह पर आहार करता है। परिवर्धन धीमा होता है और लार्वा-जीवन दो से चार सप्ताह तक चलता है।

क्यूलेक्स में लार्वा में एक नलिकाकार श्वसन-साइफ़न होता है जिसमें दो **कंकतिकाएँ** होती हैं। आठवें खण्ड पर छोटे शूकों की पंक्तियों का बना हुआ एक कंकत

होता है। इसमें वक्ष और उदर पर शूकों के गुच्छे बने होते हैं लेकिन ये शूक हस्ताकार नहीं होते। लार्वा सिर नीचे लटकाये हुए अपनी श्वसन-नलिका द्वारा लटका रहता है,
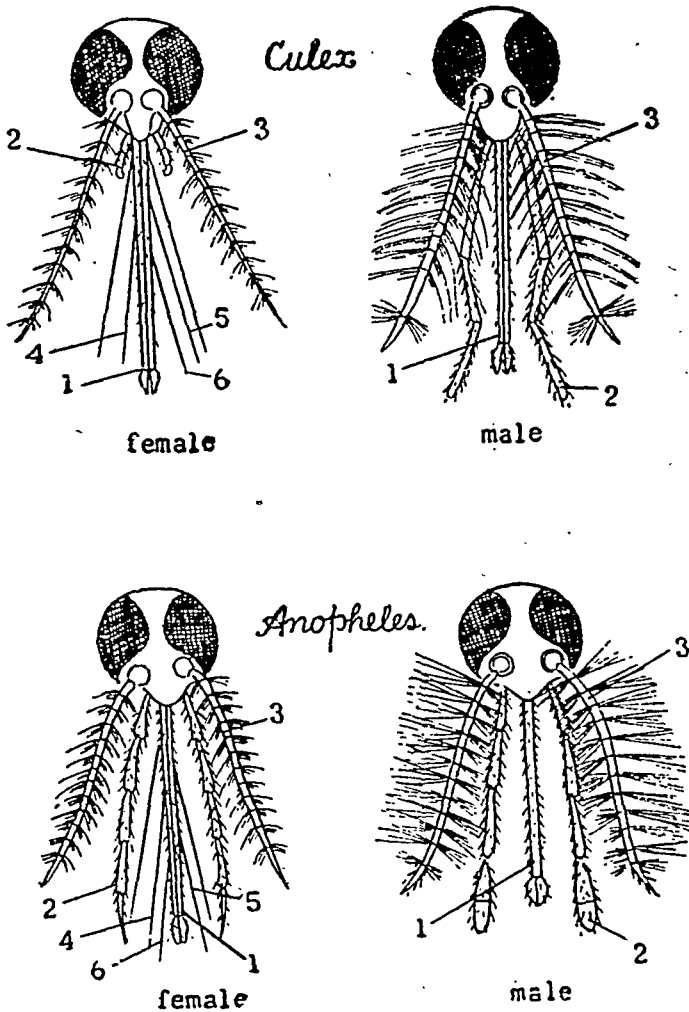
चित्र. 402 क्यूलेक्स और ऐनॉफ़िलीस के मुखांग।

Female, मादा; male, नर; 1—लेबियम; 2—मैक्सिलरी पैल्प; 3—ऐंटेना ; 4—मैंडिबल ; 5—मैक्सिला ; 6—हाइपोफ़ैरिंक्स।

यह जल की सतह को अपने साइफ़न द्वारा केवल एक स्थान पर छूता रहता है। सिर गोल होता है और लार्वा जल की सतह के नीचे आहार करता है।

प्यूपा—ऐनॉफ़िलीस में प्यूपा-काल दो से सात दिन तक चलता है। **श्वसन-तूर्य** छोटे और चौड़े होते हैं जिन पर एक बड़ा अन्तस्थ छिद्र होता है, इस छिद्र से एक दिशा में एक विदार (चीरा) नीचे को चलता जाता है, किन्तु अन्य मच्छरों में श्वसन-तूर्य लम्बे और संकरे होते हैं, जिन पर बिना विदार वाला एक अन्तस्थ छोटा
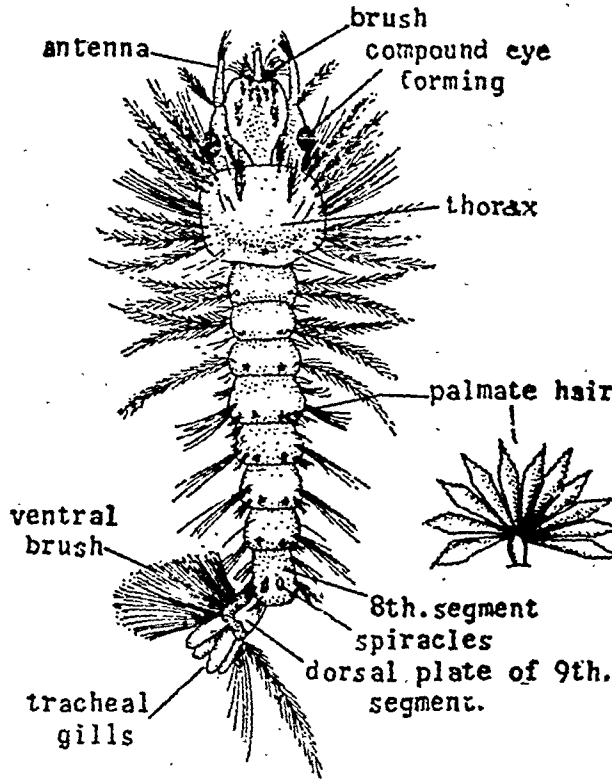
चित्र 403. ऐनॉफ़िलीस लार्वा।

Antenna, ऐंटेना; brush, ब्रुश; compound eye forming, निर्माणशील संयुक्त आँख; thorax, वक्ष; palmate hair, हस्ताकार रोम; ventral brush, अधर ब्रुश; tracheal gill, वातिका गिल; 8th segment, आठवाँ खण्ड; spiracles, श्वास-रंध्र; dorsal plate of 9th segment, नौवें खण्ड की पृष्ठ प्लेट।
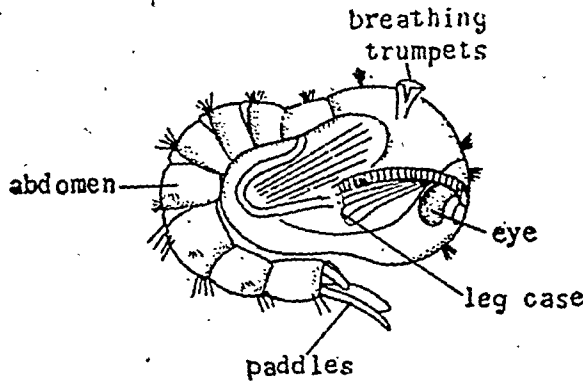
चित्र 404. ऐनॉफ़िलीस लार्वा।

Leg case, टाँग कोश; eye, आँख; breathing trumpets, श्वसन तूर्य; paddles, चप्पू।

छिद्र होता है। **ऐनॉफ़िलीस** के प्यूपा का उदर **क्यूलेक्स** की अपेक्षा ज्यादा तीव्र मुड़ा हुआ होता है। **ऐनॉफ़िलीस** के उदर-चप्पुओं के अन्तिम सिरों पर एक बड़ा और एक छोटा शूक होता है जबकि **क्यूलेक्स** में केवल एक ही बड़ा शूक होता है। **ऐनॉफ़िलीस** के प्यूपा में केवल अन्तिम उदर खण्ड को छोड़कर शेष सभी उदर खण्डों में उनके पश्च सिरों पर खूंटी-जैसे काँटों का एक जोड़ा बना होता है, जबकि **क्यूलेक्स** के प्यूपा में उदर खण्डों पर बारीक विशाखित शूकों के समूहों की एक जोड़ी पाई जाती है।

मच्छर और रोग—जब कोई मच्छर काट लेता है तो उसके ग्रसिका-ग्रंथ-नालों से एक कवक निकल कर घाव में पहुँच जाता है, इस कवक के कारण स्थानीय सूजन और खुजली पैदा होती है। इस परेशानी पैदा करने के अलावा मच्छरों से कई रोग भी पैदा हो जाते हैं। इनके कारण मनुष्य और जानवरों में दो प्रकार के रोग हो जाया करते हैं, एक तो इनके आक्रमण से सीधे रोग का संचरण हो जाता है लेकिन स्वयं मच्छर में रोग-जीव का प्रगुणन नहीं होता। दूसरे ये रोगजनक जीव का प्रेषण करते हैं जो इनके शरीर में परिवर्धित और प्रगुणित होते हैं।

मनुष्य में मच्छरों के द्वारा पैदा होने वाले रोग ये हैं—मलेरिया, पीत ज्वर, डेंग्यू, फाइलेरियता, मस्तिष्कशोथ और डर्मेटोबिया।

1: **मलेरिया**—एक भयंकर मानव-रोग है, यह **ऐनॉफ़िलीस** के द्वारा फैलता है, मलेरिया एक परजीवी प्रोटोजोअन **प्लाज्मोडियम** के द्वारा होता है जो अपना आंशिक जीवन मनुष्य में और आंशिक जीवन मादा **ऐनॉफ़िलीस** में बिताता है। मच्छर एक रोगवाही (vector) का कार्य करता है। **ऐनॉफ़िलीस** की लगभग दो दर्जन स्पीशीज़ संसार के विभिन्न भागों में मलेरिया की महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक रोगवाही होती हैं। मलेरिया में एक उच्च आवर्ती ज्वर होता है जिसके साथ-साथ ठंड और कंप-कंपी आती है और कभी-कभी दाँतों की कड़कड़ी बजने लगती है। रोगी में भीषण सिरदर्द होता है; जी मचलने लगता है और उसके बाद इतना ज़्यादा पसीना आता है कि कपड़े तर हो जाते हैं, तब बाद में तापमान गिर जाता है और हर अगले आक्रमण पर यही घटना घटती है। अक्सर मलेरिया बार-बार हो जाया करता है जो घातक तक सिद्ध हो सकता है।

2. **पीत ज्वर** (Yellow fever) दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका तक ही सीमित है। यह एक वाइरस (विषाणु) के कारण होता है जिसमें अचानक ज्वर हो जाता, तीव्र सिरदर्द होता और हड्डियों में दर्द होने लगता है, चेहरा लाल और सूजा-सूजा हो जाता है तथा खाल सूख जाती है। कुछ दिनों के बाद तीव्र पीलिया (jaundice) हो जाता है, रक्त-स्राव होता है और रक्त एवं पित्त की उलटियाँ आती हैं। पीत ज्वर में मृत्यु-दर बहुत ऊँची होती है। जंगल के जानवर पीत ज्वर वाइरस के पर-पोषियों का काम करते हैं और यह वाइरस **हीमोगोगस** (*Haemogogus*) तथा **ईडिस** (*Aedes*) की अनेक स्पीशीज़ जैसे **ई० ईजिप्टाई** (*A. aegypti*), **ई० सिम्पसोनाई** (*A. simpsoni*), **ई० फ्लुविऐटिलिस** (*A. fluviatilis*) तथा **ई० ऐल्बोपिक्टस**

(*A. albopictus*) के द्वारा संचरित होता है, इन सब मच्छरों में से **ईडिस ईजिप्टाई** विश्व भर में पाया जाता है और आधुनिक वायु-यात्रा के कारण पीत ज्वर के प्रवेश का खतरा निरंतर बना रहता है।

3. **डेंग्यू** (Dengue) अथवा **"हड्डीतोड़ बुखार"** एक वाइरस द्वारा होता है, यह रोग उष्ण देशों में व्यापक रूप से फैला हुआ है। इसमें अचानक उच्च ज्वर हो जाता है और चेहरे पर दाने निकल आते तथा सिर, आँख, पेशियों और जोड़ों में तीव्र पीड़ा होती है। डेंग्यू घातक नहीं होता, यह **ईडिस ईजिप्टाई, ईडिस ऐल्बोपिक्टस,** तथा **क्यूलेक्स फैटिगैन्स** से फैलता है। डेंग्यू अक्सर एक महामारी के रूप में फैल जाता है जो बहुत तेजी से बढ़ती जाती है।

4. **फ़ाइलेरियता** (Filariasis) मनुष्य में दो नीमैटोडों **वुचेरीरिया बैंक्राफ्टाई** (*Wuchereria bancrofti*) तथा **वु० मलैयी** (*W. malayi*) से पैदा होता है। इसके मध्यस्थ परपोषी अनेक प्रकार के मच्छर होते हैं जैसे **ईडिस, क्यूलेक्स** और **ऐनॉफ़िलीस**। **वुचेरीरिया** के लार्वाओं को **लघुफ़ाइलेरिया** (microfilariae) कहते हैं जो संक्रमित व्यक्तियों के रक्त के साथ मच्छरों द्वारा चूस लिये जाते हैं, ये मच्छर रोगवाही का कार्य करते हैं। लघुफ़ाइलेरिया मच्छर में वृद्धि करते और संक्रामक बन जाते हैं। जब यह मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तो ये लार्वा उसकी सूंड में से निकल कर मनुष्य की खाल पर पहुँच जाते और वहाँ से भीतर को वेध कर पहुँच जाते हैं, और फिर अधिकाधिक गहरे जाते हुए लसीका-ग्रन्थियों, वृषण-कोश, भुजाओं और टाँगों में सूजन पैदा कर देते हैं। अन्ततः फ़ाइलेरियता द्वारा फ़ीलपाँव (श्लीपद) पैदा हो सकता है लेकिन यह जरूरी नहीं कि हमेशा ऐसा ही हो।

5. **मस्तिष्कशोथ** (Encephalitis) एक वाइरस के द्वारा होता है जिसके परिणामस्वरूप उच्च ज्वर, सिर-दर्द, सुस्ती और मस्तिष्क में सूजन आ जाती है। यह मुख्यतः घोड़ों और पालतू जानवरों में होता है लेकिन मनुष्य में भी संक्रमण हो जाता है हालाँकि आमतौर पर नहीं होता। मस्तिष्कशोथ **ईडिस** तथा **क्यूलेक्स** की अनेक स्पीशीज़ के कारण होता है।

6. **डर्मेटोबिया** (Dermatobia) मनुष्यों और मवेशियों का खाल का रोग है। एक बॉटफ्लाई **डर्मेटोबिया** अपने अण्डे **सोरोफ़ोरा** (*Psorophora*) नामक मच्छर के शरीर के ऊपर देती है। जब यह मच्छर काटता है तो बॉटफ्लाई के अण्डे शीघ्रता से क्षत प्राणी की त्वचा पर स्फोटित हो जाते, और उनसे निकले हुए लार्वा खाल में वेधन करते और सूजन तथा त्वक् माएसिस (cutaneous myiasis) पैदा कर देते हैं। **सोरोफ़ोरा** मध्य और दक्षिणी अमेरिका तक ही सीमित है।

मच्छरों का नियन्त्रण—मानव रोग फैलाने वाले मच्छर मानवता के सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे भयंकर शत्रु हैं। इनके विनाश के वास्ते कदम उठाना आवश्यक है, लेकिन कोई भी सामान्य तरीके हर प्रकार के मच्छर के लिए कारगर नहीं होंगे, इसलिए मच्छरों के स्वभाव और उनके प्रजनन स्थानों का अध्ययन आवश्यक है, उसके

वाद ही उनके उन्मूलन के लिए कारगर तरीके अपनाये जा सकते हैं। मच्छर-नियंत्रण के लिए ये सामान्य तरीके इस्तेमाल किये जा सकते हैं :

1. **व्यक्तिगत सुरक्षा**—(क) मच्छर-ग्रस्त इलाकों में सुरक्षाकारी वस्त्र पहनने चाहिएँ जो कि शरीर के खुले भागों को भी ढक सकें, खास तौर से सूर्यास्त के बाद। (ख) मच्छरों को भगाने वाले विकर्षकों (repellents) का इस्तेमाल करना चाहिए जैसे मच्छर क्रीम, सिट्रोनेला और इंडैलोन (Indalone)। अमेरिकी नौसेना का विकर्षण न० 448 लम्बे समय तक वहुत कारगर रहता है। (ग) सोते समय बारीक सूराख वाली मच्छरदानी से मच्छरों के काटे से बचा रहा जा सकता है और सोने के कमरों तथा घरों में मच्छरों को भीतर आने देने से रोकने के वास्ते जाली लगानी चाहिए। (घ) दीवारों पर क्रियोसोट पोतने से भी मच्छर दूर भागते हैं।

2. **वयस्कों का विनाश**—(क) तरल कीटनाशी जैसे कि फ्लिट अथवा **डी० डी० टी०** के छिड़काव से मच्छरों को मारा जा सकता है। डी० डी० टी० से न केवल मच्छर मर ही जाते हैं बल्कि वे घर से बाहर भी चले जाते हैं। (ख) घरों में सल्फ़र डाईऑक्साइड का धूमन देने से भी लाभ पहुँचता है। (ग) तेल में 10% **डी० डी० टी०** और जल के मिश्रण को वायुयान से छिड़कने से नगरों, तालावों, दलदलों और जंगलों में काफ़ी संख्या में मच्छर मर जाते हैं।

3. **लार्वाओं का विनाश**—मच्छरों को वयस्कों की अपेक्षा उनकी लार्वा अवस्थाओं में मारना अधिक आसान होता है और उसके लिए अनेक तरीके सफलतापूर्वक इस्तेमाल किये जाते हैं। (क) **तेल छिड़कना**—मच्छरों के प्रजनन स्थानों पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया जाता है, जल की सतह पर वनी तेल की झिल्ली लार्वाओं का दम नहीं घोट डालती जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है, बल्कि यह उनके लिए विषैली होती है, तेल छिड़कना बारबार करना चाहिए ताकि जो लार्वा और प्यूपा बाद में स्फोटित होने वाले हों वे भी मर जायें। (ख) **पनामा लार्वानाशी** (Panama larvicide) एक मिश्रण है जिसमें कास्टिक सोडा, रेज़िन (राल) और फ़ीनॉल जल में घोले जाते हैं, इसे पनामा नहर प्रदेश में बहुत ही सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया है। पनामा लार्वानाशी जल के साथ अच्छी तरह घुल जाता है और लार्वाओं तथा शैवालों जिस पर वे पलते हैं, दोनों को ही मार देता है। पनामा लार्वानाशी का एक भाग जल के 10,000 भागों के लिए पर्याप्त होता है। (ग) **पेरिस ग्रीन** (Paris green) बारीक धूलि के साथ मिला हुआ आर्सेनिक का पाऊडर होता है, इसमें एक भाग पाऊडर 100 भाग धूलि के साथ मिलाया हुआ होता है। इसे हवा में फेंका जा सकता है और यह तालाब की सतह को ढक लेगा, यह जल में अघुलनशील होता है और तिरता रहता है, और **ऐनॉफ़िलीस** के सतही अशन करने वाले लार्वाओं द्वारा खा लिया जाता है, यह लार्वाओं को मार डालता है लेकिन प्यूपाओं को नहीं। यह केवल उन्हीं लार्वाओं के प्रति कारगर होता है जो सतह पर आहार करते हैं। (घ) **प्राकृतिक शत्रु**—मिन्नो एवं **गैम्बूज़िया** (*Gambusia*) मछलियाँ मच्छरों के लार्वाओं एवं प्यूपाओं को खा जाती हैं और उन्हें मच्छरों के प्रजनन स्थानों में प्रवेश करा देना

लाभकर होता है, लेकिन इसके लिए यह जरूरी होगा कि झाड़ी आदि तथा तिरने वाली वनस्पति को साफ कर दिया जाये ताकि मछलियाँ लार्वाओं तक पहुँच सकें। (ङ) **रासायनिक लार्वानाशी**—एक भाग डी० डी० टी० का 3 करोड़ भाग जल में इमल्शन बना कर लार्वाओं को मारने के लिए व्यापक रूप में छिड़काव करने में इस्तेमाल किया जाता है लेकिन इसमें 50 घण्टे लग जाते हैं। इस उद्देश्य के लिए बड़े क्षेत्रों में हवाई जहाज़ काम में लाये जा सकते हैं।

4. **प्रजनन स्थानों को समाप्त करना**—उन मच्छरों के लिये जो वर्षा के जल से भरे पात्रों या टंकियों आदि में अंडे देते हैं, जैसे कि **ईडिस**, उनमें जल निकाल देना भर भी काफी होता है। बड़े तालावों या दलदलों में एक ढलवाँ नाली बना देने से बहुत मात्रा में जल निकल जाता है। छोटे तालावों को मिट्टी से पाटा जा सकता है। भारत में खेतों में **ऐनॉफ़िलीस** के नियंत्रण में 5 तर दिन और उसके बाद 2 से 4 खुश्क दिन रखना बहुत कारगर पाया गया है।

5. **रोक-दवाएँ** (निरोधक औषधियाँ)—हर रोज़ कुनैन खाना मच्छर के काटों के प्रति कारगर होता है, लेकिन पीत ज्वर के लिए कारगर टीका अभी तक नहीं खोज निकाला गया है।

घरेलू मक्खी (Housefly)

फ़ैमिली ऐंथोमाइडी (Family Anthomyidae)—इसमें पुरानी फ़ैमिली मस्किडी आती है। ये छोटे से बड़े आकार तक की मक्खियाँ होती हैं जो घरेलू मक्खी से मिलती-जुलती होती हैं। इसके अधिकतर सदस्य रक्त नहीं चूसते हालांकि कुछ रक्त-भोजी मक्खियाँ जैसे कि **स्टोमॉक्सिस** (*Stomoxys*) और **ग्लौसाइना** (*Glossina*) भी इसी में आते हैं, मुखांग या तो चूषण के लिए रूपांतरित होते हैं या मूल वेधन अंगों के समाप्त हो जाने के बाद वेधन के लिए पुनः रूपांतरित हो जाते हैं। लार्वाओं में कोई स्पष्ट शीर्ष नहीं होता, प्यूपा एक **प्यूपावरण** (puparium) के भीतर होता है।

2. मस्का नेबुलो
(*Musca nebulo*)

मस्का (*Musca*) जीनस की मक्खियाँ मनुष्य के रहने के स्थानों पर बहुत आम पाई जाती हैं। ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं में ये खास तौर से ज्यादा संख्या में होती हैं। जाड़ों में ये अधिकतर मर जाती हैं लेकिन उष्ण स्थानों में इनमें से बहुत-सी बच भी जाती हैं, लेकिन ठंड के कारण ये सुस्त और ढीली बनी रहती हैं। रात को ये छतों, दीवारों और बिजली की डोरियों आदि वस्तुओं पर विश्राम करती हैं। मस्का की अनेक स्पीशीज़ होती हैं, जैसे **मस्का नेबुलो** जो कि भारत की सबसे आम मिलने वाली घरेलू मक्खी है। **मस्का डोमेस्टिका** (*Musca domestica*) यूरोप और अमेरिका में, **मस्का विसिना** (*Musca vicina*) तमाम पूर्व के देशों में आम पाई जाती हैं, **मस्का ऑटम्नैलिस** (*Musca autumnalis*) यूरोप और दक्षिण एशिया में

पाई जाती हैं, **मस्का सॉर्बेन्स** (*Musca sorbens*) भूमध्यसागर से लेकर तमाम उष्णतर एशिया में पाई जाती है।

बाहरी लक्षण—**मस्का नेबुलो** लगभग 8 mm. लंबी होती है, और इसका देह शीर्ष, वक्ष और उदर में स्पष्टतः विभाजित होता है। देह हट्टा-कट्टा और धूसर रंग का होता है।

शीर्ष—शीर्ष बड़ा और घुमाया जा सकने वाला होता है, यह वक्ष की बराबर चौड़ा होता है, इसके ऊपर पार्श्वतः दो बड़ी लाल-भूरी संयुक्त आँखें बनी होती हैं, हर आँख में लगभग 4000 नेत्रांशक होते हैं। शीर्ष की पृष्ठ दिशा में तीन **नेत्रक** अथवा सरल आँखें होती हैं जो एक त्रिभुजी **नेत्रक प्लेट** के ऊपर बनी होती हैं। संयुक्त नेत्रों के बीच में शीर्ष के पृष्ठ प्रदेश पर एक **वर्टेक्स** (vertex) होता है जिसके नीचे एक **फ्रॉन्स** होता है। शीर्ष के सामने एक गढ़ा बना होता है जो एक जीभी Ω की
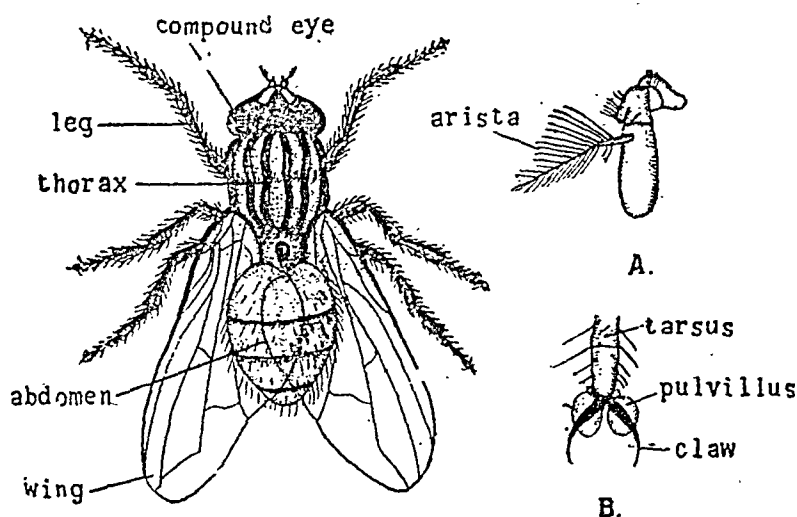
चित्र 405. **मस्का नेबुलो** A-ऐरिस्टा B-टार्सस।
Compound eye, संयुक्त नेत्र; leg, टाँग; thorax, वक्ष; abdomen, उदर; wing, पंख; tarsus, टार्सस; pulvillus; पल्विलस; claw, नखर।

आकृति की सीवन अथवा **टाइलिनल सूचर** (ptilinal suture) से सीमांकित होता है। इस गढ़े में एक जोड़ी छोटे 3 संधि युक्त **ऐंटेना** होते हैं जिनकी अंतिम संधि सबसे बड़ी होती है। ऐंटेनाओं को सिर के सामने को उठाया जा सकता है और उन्हें गढ़े में को सिकोड़ा जा सकता है। ऐंटेना के अंतिम खंड पर एक शूक बना होता है, जो अपने सिरे तक पिच्छाकार होता है, इस शूक को **ऐरिस्टा** (arista) कहते हैं। ऐंटेनाओं के आधारों पर एक-एक बालचंद्राकार स्क्लेराइट होता है जिसे **फ्रॉन्टल ल्युन्यूल** (frontal lunule) कहते हैं। हर संयुक्त नेत्र के नीचे एक पार्श्व **जीना** होता है। गढ़े के नीचे एक झिल्लीदार कटक होता है जिसे **अधिमुख एपिस्टोम** (epistome) कहते हैं। शीर्ष के नीचे एक मांसल **सूंड** (proboscis) होती है। सूंड तीन भागों

की बनी होती है : एक आधारीय **रॉस्ट्रम** (rostrum), एक मध्य **हौस्टेलम** (haustellum), और एक जोड़ी दूरस्थ **लैबेला**। रॉस्ट्रम शंक्वाकार होता है और उसके सामने एक **क्लाइपियस** होता है। आकारिकीय दृष्टि से रॉस्ट्रम शीर्ष का ही एक भाग होता है और उसके ऊपर एक जोड़ी एक-संधि वाले मैक्सिलरी पैल्प होते हैं। रॉस्ट्रम
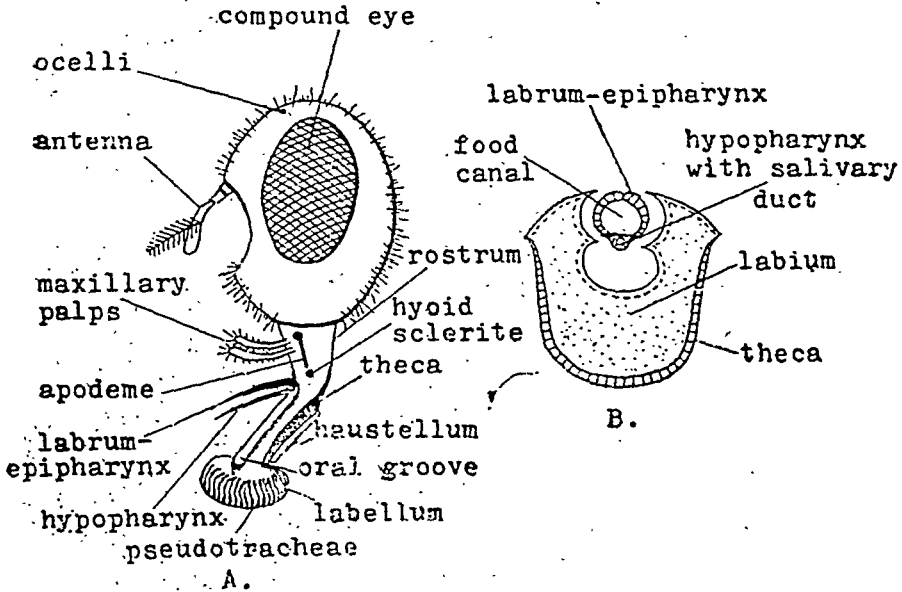
चित्र 406. A–शीर्ष और सूँड। B–हौस्टेलम का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.) Compound eye, संयुक्त नेत्र; ocelli, नेत्रक; antenna, ऐंटेना; maxillary palp, मैक्सिलरी पैल्प; apodeme, ऐपोडीम; labrum-epipharynx, लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स hypopharynx, हाइपोफ़ैरिंक्स; pseudotracheae, कूटवातिकाएँ; labellum, लैबेलम; oral groove. मुख-खांच; haustellum, हौस्टेलम; theca, प्रावरक; hyoid sclerite, कंठिका स्क्लेराइट; rostrum, रॉस्ट्रम; food canal, खाद्य-नलिका; salivary duct, लार-वाहिनी; labium, लेबियम।

के भीतर एक काइटिनी **आलम्ब** या **फ़ल्क्रम** (fulcrum) होता है जो ग्रसनी को अपने भीतर बंद किए रहता है। आलम्ब के निचले सिरे पर एक छोटा काइटिनी **कंठिकीय स्क्लेराइट** (hyoid sclerite) होता है जो ग्रसनी की अवकाशिका को चौड़ा बनाए रखता है। रॉस्ट्रम पर टिका हुआ एक हौस्टेलम उससे जुड़ा होता है जो एक अत्यंत रूपांतरित लेबियम का होता है, हौस्टेलम के पश्च भाग में एक कम काइटिनित **प्रावरक** (theca) या **मेंटम** (mentum) होता है। हौस्टेलम के सामने की ओर एक गहरी **मुख-खांच** (oral groove) होती है जिसमें एक **लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स** और एक **हाइपोफ़ैरिंक्स** पड़े होते हैं। हाइपोफ़ैरिंक्स में एक लार-वाहिनी होती है। लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स में खांच बनी होती है, खांच नीचे से हाइपोफ़ैरिंक्स द्वारा बंद होकर एक नलिका अथवा **खाद्य-नलिका** बन जाती है। मैंडिबल तथा मैक्सिला नहीं होते।

दूरस्थ लैंबेलम बड़े पालि होते हैं जो बीच में जुड़े होते हैं, इनकी बाहरी सतहों पर बहुत-सी **कूटवातिकाओं** (pseudotracheae) की एक श्रृंखला बनी होती है; ये कूटवातिकाएँ अपूर्ण काइटिनी वलयों के द्वारा फैली बनाए रखी जाती हैं, इन्हीं वलयों के कारण वे वातिकाएँ-जैसी दीख पड़ती हैं। कूटवातिकाएँ बाहरी दिशा में दोहरी पंक्ति में बने सूक्ष्मछिद्रों के द्वारा बाहर को खुलती हैं जिनमें से होकर तरल आहार भीतर ग्रहण किया जाता है। कूटवातिकाएँ अभिसृत होकर एक मुख में आकर खुलती हैं जो दोनों लैंबेलमों के बीच में बना होता है। मुख के समीप मुखपूर्वी दाँत (prestomal teeth) होते हैं जो ठोस खाने को खुरचने में काम आते हैं। सूँड को शीर्ष के नीचे को सिकोड़ा जा सकता है और रॉस्ट्रम तथा हौस्टेलम के बीच में मुड़ जाती है।

अशन—घरेलू मक्खी हर किसी जैव तरल पर आहार करती है, इसके मुखांग तरल आहार का लेहन (lapping) करने के वास्ते रूपांतरित होते हैं, लैबेलम आहार को सूँघ और चख सकते हैं। ग्रसनी की चूषण-क्रिया के द्वारा तरल खाद्य और बहुत से सूक्ष्म ठोस कण कूटवातिकाओं में को चूस लिए जाते हैं और फिर वहाँ से मुख में को, फिर लेब्रम एपिफैरिंक्स तथा हाइपोफैरिंक्स द्वारा बनने वाली खाद्य-नलिका में को, और फिर आहार ग्रसनी में पहुँच कर आहार-नाल में चला जाता है। घरेलू मक्खियाँ ठोस पदार्थों पर, खास तौर से शर्करा और मिठाइयों पर, भी आहार करती हैं, उस समय मक्खी अपने आहार-नाल में से और लार-ग्रंथि में से आए हुए तरल की एक बूँद अपनी कूटवातिकाओं के द्वारा उस ठोस खाद्य पर उगल देती है। आहार-नाल का तरल और लार खाद्य के ठोस कणों को पिघला देती है जिसे फिर मक्खी चूस लेती है।

वक्ष—धूसर रंग के वक्ष की पृष्ठ दिशा में चार काले रंग की अनुदैर्घ्य धारियाँ बनी होती हैं। वक्ष का अधिकतर भाग बड़े मध्यवक्ष का बना होता है, अग्रवक्ष तथा पश्चवक्ष बहुत ह्रासित होते हैं और पृष्ठ दिशा में उनका अधिकांश भाग छिपा रहता है। मध्यवक्ष का **नोटम** तीन बड़े स्क्लेराइटों, एक **अग्रस्कुटम**, एक **स्कुटम** और एक **स्कुटेलम** का बना होता है जिनके बीच में अनुप्रस्थ सीवनें होती हैं। बड़े मध्यवक्ष पर एक जोड़ी पंख होते हैं। पंख लगभग पारदर्शी होते हैं, और विश्राम अवस्था में मुड़े होने पर वे उदर को ढके रहते और पीछे को उससे भी आगे तक निकले होते हैं। पंख की निचली भीतरी दिशा में एक स्वच्छंद पालि **ऐलुला** (alula) होता है और इससे पीछे वक्ष की दिशा में दो और पालि होते हैं जिन्हें **स्क्वैमा** कहते हैं और जो अपारदर्शी होते हैं। पंखों के बंद होने पर ये तीनों पालि नीचे को मुड़ जाते हैं। पश्चवक्ष पंख बहुत ह्रासित होते और **हॉल्टीयरों** में रूपांतरित हो गए होते हैं जो संतुलन-अंग होते हैं, ये उड़ान के दौरान तीव्रता से कम्पन करते रहते हैं। हॉल्टीयर में एक चौड़ा आधारीय **स्कैबेलम** होता है, एक संकीर्ण वृंत अथवा **पेडिसेल** होता है और एक अंतस्थ घुंडी **केपिटेलम** होती है। स्कैबेलम में अनेक संवेदिकाएँ होती हैं जो ध्वनिग्राही होती हैं। वक्ष के नीचे तीन जोड़ी टाँगें निकलती हैं जिनमें 5-संधि टार्ससों से युक्त सामान्य रचना होती है। हर टार्सस के अंत में दो

नखर होते हैं जिनके नीचे दो गद्दी-जैसे **पल्विलस** होते हैं, पल्विलसों से एक चिपचिपा तरल निकलता है जिसके द्वारा मक्खी छतों और चिकनी सतहों पर जैसे कि काँच के शीशों पर बैठ सकती और चल सकती है और गिरती नहीं है। पूरी टाँग पर बहुत संख्या में शूक बने होते हैं।

उदर—उदर और वक्ष के बीच की संधि संकीर्ण होती है। उदर बीच में चौड़ा और सिरे की तरफ़ संकरा होता जाता है। यह नीचे की तरफ़ हल्का पीला-सा और ऊपर की तरफ़ गहरा पीला होता है जिस पर मध्य-पृष्ठ दिशा में एक काली अनुदैर्ध्य धारी बनी होती है। उदर में दस खंड होते हैं। किंतु पहला खंड शोष (atrophied) हो चुका है और दूसरा ह्रासित, खंड 3 से 6 सुविकसित और दृश्यमान होते हैं, लेकिन खंड 7 से 10 तक ह्रासित और अपने से अगले खंडों में को अंतःसर्पित (telescoped) होते हैं। दृश्यमान खंडों में टर्गम बड़े और बढ़ कर अधर दिशा की तरफ़ तक फैले होते हैं। खंड 2 से 6 तक टर्गमों के अधर सीमांतों में एक जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं। मादा में छिपे हुए खंड 7 से 10 एक नलिकाकार **अंडनिक्षेपक** बनाते हैं जो मक्खी के अंडे देते समय बाहर को निकल आता और देखा जा सकता है। दसवें खंड पर एक जोड़ी **लूम** बने होते हैं। नर में अंतिम खंड नीचे को मुड़े होते और एक **हाइपोपिगियम** (hypopygium) अथवा बाह्य जननांग बनाते हैं। नौवें खंड में एक जोड़ी **आलिंगक** होते हैं और दोनों के बीच में एक ईडिएगस (शिश्नाग्रिका) होता है। दसवां खंड नौवें के साथ समेकित होता है और उस पर एक जोड़ी लूम होते हैं।

जीवन-वृत्त—मैथुन के चार दिन बाद मादा मक्खी अंडे देती है। अंडे प्रजनन काल में किसी भी समय दिए जा सकते हैं, भारत के अधिकतर भाग में यह प्रजनन काल मार्च से अक्तूबर तक चलता है। घरेलू मक्खी अपने अंडे लीद की खाद में देना ज्यादा पसंद करती है लेकिन मानव विष्ठा, कूड़ा-करकट, सड़ते हुए जंतु एवं वनस्पति पदार्थ में भी दे दिया करती हैं। अंडे देने के वास्ते आवश्यक परिस्थितियों में नमी और उपयुक्त ताप हैं, इसलिए लीद की खाद अथवा मानव-विष्ठा सूखे नहीं होने चाहिएँ। मादा अपना अंडेनिक्षेपक बाहर को निकाल कर एक बार में लगभग 120 से 160 अंडे दे देती है। प्रजननकाल के दौरान एक मक्खी 4 से 6 बार अंडे देती है। अंडा सफेद, सिलिंडराकार और 1 mm. लंबा होता है, इसमें एक दिशा में दो अनुदैर्ध्य पसली-जैसे उत्फूलन बने होते हैं। अंडे 8 से 24 घंटे में, ताप पर निर्भर रहते हुए, स्फोटित हो जाते हैं, और लार्वा गोबर में निकलते हैं।
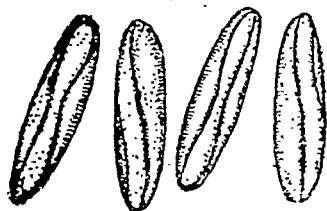
चित्र 407. **मस्का** के अंडे

लार्वा—इन लार्वाओं को **मैगट** (maggot) कहते हैं, ये अत्यधिक रूपांतरित होते हैं, इनमें स्पष्ट शीर्ष नहीं होता, न वक्षीय अथवा उदरीय उपांग होते हैं, तथा

श्वास-रंध्रों की संख्या बहुत घटती जाती है। इनके ऊपर पतला नरम काइटिन चढ़ा होता है। ऐसे लार्वाओं को अपादी लार्वा कहते हैं।

अंडे से स्फोटित लार्वा पहला **इन्स्टार** होता है और यह 2 mm. लम्बा होता है, यह **पश्चवाती** (metapneustic) होता है—इसमें केवल एक जोड़ी पश्च उदर-श्वास-रंध्र होते हैं जिनमें से प्रत्येक में दो झिरी-जैसे छिद्र बने होते हैं, ये श्वासरंध्र अन्तिम खण्ड पर होते हैं। पहला इन्स्टार दो से तीन दिन तक चलता है, उसके बाद निर्मोचन होकर यह **दूसरे इन्स्टार** में आ जाता है जो एक तो पहले इन्स्टार से ज्यादा बड़ा होता है और दूसरे इसमें एक जोड़ी अग्र श्वास-रंध्र भी बन जाते हैं और इस प्रकार यह **उभयवाती** (amphipneustic) होता है जिसमें एक जोड़ी पश्च उदर श्वास-रंध्रों की और एक जोड़ी अग्रवक्ष श्वास-रंध्रों की होती है। दूसरा इन्स्टार एक दिन तक चलता है और इसमें निर्मोचन होकर **तीसरा इन्स्टार** बन जाता है। तीसरे इन्स्टार का पूर्णवृद्धि प्राप्त लार्वा 12 mm. लम्बा होता है, इसमें एक छोटा अस्पष्ट शीर्ष होता है जो भीतर को सिकोड़ लिया जा सकता है, इसके पीछे 12 खण्ड आते हैं, अग्र सिरा संकीर्ण होता है लेकिन पश्चतः शरीर चौड़ा हो जाता है। नुकीले अग्र
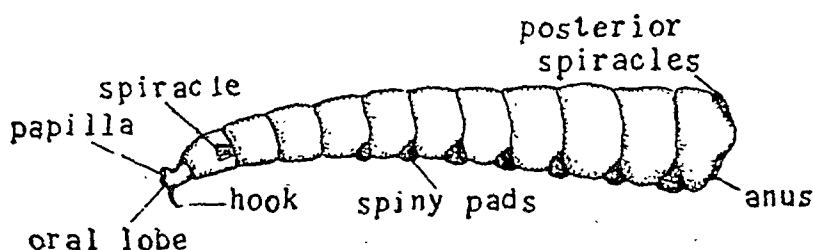
चित्र 408. **मस्का लार्वा** ।

Oral lobe, मुख पालि; papilla, पैपिला; hook, हुक; spiracle, श्वास-रंध्र; spiny pads, कंटिकीय गद्दियाँ; posterior spiracles, पश्च श्वास-रंध्र; anus, गुदा ।

सिरे में दो छोटे **मुख पालि** बने होते हैं जो संवेदी होते हैं, हर मुख पालि में एक सूक्ष्म **संवेदी पैपिला** होता है, ये संवेदी पैपिला ह्रासित ऐंटेनाओं के प्रतिदर्श हैं। दोनों मुखपालियों के बीच में एक मुख होता है जिसमें से एक जोड़ी हुक आगे को निकले होते हैं। ये हुक परवर्ती रूप में विकसित एक काइटिनी स्क्लेराइट के भाग होते हैं जिसे **शीर्ष-ग्रसनी कंकाल** (cephalopharyngeal skeleton) कहते हैं, इस कंकाल में तीन स्क्लेराइट होते हैं, एक जोड़ी हुक अथवा **मैंडिबलीय स्क्लेराइट** (mandibular sclerite), एक H की आकृति का **मध्य** अथवा **हाइपोस्टोमीय** स्क्लेराइट (hypostomal sclerite) और एक बड़ा **ग्रसनी स्क्लेराइट** (pharyngeal sclerite)। मैंडिबलीय स्क्लेराइट अपने पीछे हाइपोस्टोमीय स्क्लेराइट से जुड़े होते हैं, हाइपोस्टोमीय स्क्लेराइट में एक लार-वाहिनी का छिद्र बना होता है। पश्चतः बड़ा ग्रसनी स्क्लेराइट होता है जो दो पटलिकाओं का बना होता है—ये

पटलिकाएँ अधर दिशा में जुड़ी होकर एक गहरी खाँच बना लेती हैं। शीर्ष-ग्रसनी कंकाल का इस्तेमाल चलन और आहार को चीरने-खोलने में होता है। तीसरा
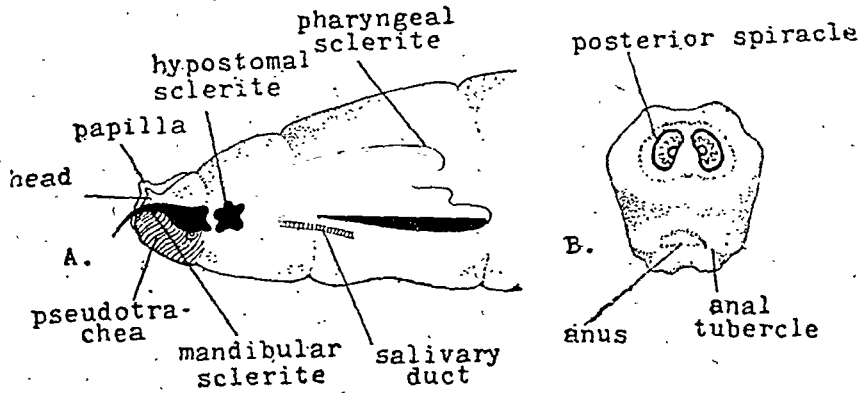
चित्र 409. **मस्का लार्वा**। A—अग्र सिरा, B—पश्च सिरा।

Head, शीर्ष; papilla, पैपिला; pseudotrachea, कूटवातिका; mandibular sclerite, मैंडिबलीय स्क्लेराइट; hypostomal sclerite, हाइपोस्टोमीय स्क्लेराइट; pharyngeal sclerite, ग्रसनी-स्क्लेराइट; salivary duct, लार वाहिनी; posterior spiracle, पश्च श्वास-रंध्र; anus, गुदा; anal tubercle, गुदा गुलिका।

इन्स्टार उभयवाती होता है जिसमें दो जोड़ी श्वास-रंध्र होते हैं, अगला अग्रवक्षीय श्वास-रंध्र दूसरे खण्ड में पड़ा होता है, और हर एक श्वास-रन्ध्र में 6 से लेकर 8 उँगली-जैसे प्रवर्ध बने होते हैं जिनके सिरों पर छिद्र होते हैं। उदर श्वास-रन्ध्रों का पश्च जोड़ा 12वें खण्ड को पश्च-पृष्ठ दिशा में होता है, तीसरे इन्स्टार में ये ज्यादा बड़े, गहरे रंग के और C की आकृति के बन जाते हैं जिनमें हर एक में तीन-तीन वक्र झिरी बनी होती हैं। श्वास-रन्ध्र भीतर एक सुविकसित वातिका-तंत्र में खुलते हैं। पश्च श्वास-रंध्रों के नीचे एक गुदा 12वें खण्ड में होती है और इसके साथ-साथ गुदा गुलिकाएँ बनी होती हैं। खण्ड 6 से 12 तक की अधर दिशा में **कंटिकीय गद्दियाँ** (spiny pads) अथवा कूटपाद बने होते हैं जो हर खंड में एक जोड़ी होते हैं, ये चलने में काम आते हैं। तीसरा इन्स्टार लगभग 3 से 5 दिन तक चलता है। पूरा लार्वा-काल 6 से 8 दिन का होता है, जिसके दौरान लार्वा दो बार निर्मोचन करता और यह खाता तथा हर निर्मोचन पर आकार में बड़ा हो जाता है। आहार करने में लार्वा प्रकाश से दूर गोबर के नमी और अँधियारे वाले भाग में चला जाता है, यह उसी पदार्थ को खाता है जिसमें अण्डे से विस्फोटित हुआ होता है, यह एन्जाइम बनाता है जो आहार को तरल अवस्था में ले आते हैं और आहार के रूप में छोटे ठोस कणों को खाता है।

प्यूपा—जब लार्वा प्यूपा बनने के लिए तैयार हो जाता है तो यह खाद की किसी सूखी, अँधेरी दरार को ढूंढता है, शरीर संकुचित होता है और खंड अन्तः विसर्पित होकर एक प्यूपा बन जाता है। इस प्रकार लार्वा बिना निर्मोचन हुए एक प्यूपा में बदल जाता है, अन्तिम लार्वा-त्वचा कड़ी होकर बाहरी आवरण अथवा **प्यूपावरण** (puparium) बना लेती है जिसमें प्यूपा बन्द रहता है। इस प्रकार के प्यूपा को **कोआर्क्टेट** (coarctate) कहते हैं, इसमें अपना कोई काइटिनी आवरण नहीं होता बल्कि सिर्फ़ एक नरम प्यूपा-त्वचा होती है, बाहरी प्यूपावरण अन्तिम लार्वा-त्वचा का बना होता है। प्यूपावरण ढोल के आकार का होता है और यह गहरा भूरे रंग का हो जाता है, बाहर से यह खंडयुक्त होता तथा इसमें लार्वा-श्वासरंध्रों तथा कंटिकीय गद्दियों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं जो अक्रियात्मक हो जाते हैं। प्यूपा हवा को अपने भीतर एक जोड़ी काँटों-जैसे **प्यूपा-श्वासरंध्रों** में से ले जाता है, ये प्यूपा-श्वासरंध्र प्यूपावरण के पाँचवें और छठे खंड के बीच में से उभरे होते हैं। प्यूपा पूर्णतः अचल होता है और प्यूपा अवस्था 4 से 5 दिन तक चलती है।
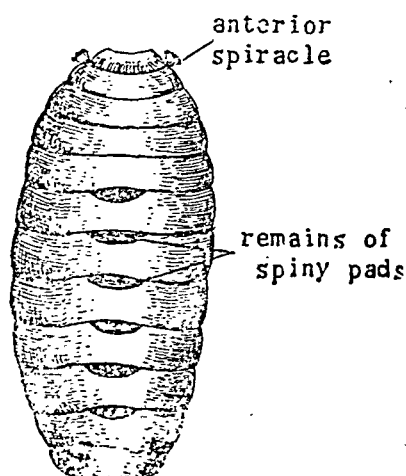
चित्र 410. **मस्का** का प्यूपावरण। Anterior spiracle, अग्र श्वास-रंध्र; remains of spiny pads, कंटिकीय गद्दियों के अवशेष।

इस अवधि में आंतरिक परिवर्तन होते हैं, लार्वा अंग विघटित हो जाते अथवा अंगों के ऊतकों को खाते हुए भक्षकाणुओं के द्वारा **ऊतकलयन** (histolysis) हो जाता है। लार्वा के **पूर्णकीट मुकुलों** से वयस्क अंग बनने लगते हैं अर्थात् प्यूपा में **ऊतक जनन** (histogenesis) होने लगता है। पूर्णकीट मुकुल प्रसुप्त कोशिकाएँ होती हैं, जो अग्रवक्ष अंतःस्रावी ग्रंथियों के एक हार्मोन से उत्तेजित हो जाती हैं, ये ग्रन्थियाँ केवल कायांतरण के दौरान ही सक्रिय होती हैं और पूर्णकीट मुकुलों को वृद्धि के लिए प्रेरित करती हैं। इन प्रक्रियाओं के द्वारा प्यूपा के भीतर वयस्क मक्खी अथवा पूर्णकीट बन जाता है। पूर्णकीट के शीर्ष पर रक्त से भरा एक थैला बन जाता है जिसे **टाइलिनम** (ptilinum) कहते हैं। यह थैला बाहर की ओर उलट कर आ सकता है। इस टाइलिनम को प्यूपावरण पर धक्का देकर उसे चटखा दिया जाता है और प्यूपावरण अनुप्रस्थशः चिरता जाता है तथा पूर्णकीट बाहर निकल आता है, उसके पंख खुश्क हो जाते और वह उड़ जाता है, एक सप्ताह में लैंगिक परिपक्वता आ जाती है। मक्खी के निकलने में दो प्रक्रम शामिल होते हैं, एक तो पूर्णकीट अपनी प्यूपा-त्वचा में से निकलता है और दूसरे वह टाइलिनम द्वारा तोड़े गये प्यूपा-

वरण में से बाहर आता है। पूर्णकीट के बाहर आ जाने के बाद टाइलिनम शीर्ष में को सिकोड़ लिया जाता है, लेकिन इसका एक चिह्न शेष रह जाता है जिसे टाइलिनम-सीवन कहते हैं।

चित्र 411. प्यूपारवरण में से निकाला गया प्यूपा। Head, शीर्ष; leg case, टाँग कोश; eye forming, निर्माणशील आँख; wing case, पंख कोश।

घरेलू-मक्खी की जीवपारिस्थितिकी—मक्खियाँ परेशान तो करती ही हैं लेकिन उसके अलावा वे मनुष्यों में रोग पैदा करने वाले कई जीवधारियों का वाहन भी करती है। मक्खियाँ सड़ी गली चीज़ों, खाद और विष्ठा को खाती हैं, वे इन स्थानों पर अण्डे देने के लिए भी जाती हैं; और इन स्थानों से रोगाणुओं को अपने शरीर पर लेकर दूसरे ही क्षण खाने की मेज़ पर रसोईघरों में, रेस्ट्राँओं में और मिठाई की दुकानों पर पहुँच जाती हैं। ये रोगाणुओं को अपनी शूकीय टाँगों और चिपचिपे पल्विलसों से ले लेती है और फिर मनुष्य के भोजन के ऊपर आकर अपनी टाँगों को झाड़ती है। ये रोगजनक जीवों को अपनी आहार-नली में भी ले जाती है जहाँ से वे उसकी विष्ठा में होकर मनुष्य के खाने तक पहुँच जाते हैं, या फिर लार निकालते और आहार-नाल के द्रवों को उगल कर मनुष्य के आहार पर छोड़ देती है। इस प्रकार घरेलू मक्खियाँ बहुत खतरनाक होती हैं और वे ऐसे जीवों को प्रेषित करती रहती हैं जो मनुष्य की अंतड़ियों के अनेक रोग फैलाते हैं, जैसे मयादी बुखार (टाइफ़ाइड), पैराटाइफ़ाइड़, दस्त, जीवाणुमूलक और अमीबीय पेचिश तथा हैज़ा। इन भयंकर बीमारियों के अलावा क्षय रोग तथा पोलियोमाइलिटिस के फैलने में भी मक्खियों का हाथ होता है और ये आहार-विषाक्तन भी पैदा कर देती हैं। घरेलू मक्खियाँ आंखों और घावों से होने वाले स्रावों को भी खाती हैं और इस प्रकार वे आंखों के भी कई रोग फैलाती हैं जैसे मिस्र और यूनान में आप्थैल्मिया (ophthalmia), उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में याज़ (yaws) तथा रोहे (trachoma) फैलाते भी देखी गई हैं। घरेलू मक्खी के लार्वा एक नीमैटोड **हैब्रोनेमा** (*Habronema*) के अंडे भी खा जाते हैं और यह संक्रमण प्यूपाओं तथा वयस्क मक्खियों में भी पहुँच जाता है जो इस परजीवी को घोड़ों में पहुँचा देते हैं, लेकिन अक्सर मक्खियां इन नीमैटोड लार्वाओं को बच्चों की आंखों में छोड़ देती हैं जिससे आंखें दुखनी आ जाती हैं। अक्सर मनुष्य के हेल्मिथ परजीवियों के अंडे घरेलू मक्खियों की आहार-नाल अथवा उनकी विष्ठा में देखे गये हैं और इनके द्वारा इस प्रकार के दो परजीवियों का संचरण होता है, **हाइमेनोलेपिस** (*Hymenolepis*) (एक फ़ीताकृमि) के अंडे एक व्यक्ति की विष्ठा से दूसरे व्यक्तियों

तक पहुँचा दिए जाते हैं। दूसरा उदाहरण एक अन्य फ़ीताकृमि **इकाइनोकॉक्कस** का है जो कुत्तों में पाया जाता है और इसके अंडे मनुष्यों में पहुँचा दिए जाते हैं जिनमें वे बहुत बड़ी-बड़ी और अक्सर प्राणघाती सिस्ट (पुटियां) बना देते हैं।

घरेलू मक्खियों का नियंत्रण—घरेलू मक्खियों और उनके द्वारा होने वाली हानि का नियंत्रण करने में इस बात का ध्यान रखना होगा कि केवल एक व्यक्ति का अपने घर में जाली कर अथवा स्वच्छता बरत कर सुरक्षा करना पर्याप्त नहीं है, आवश्यकता तो इस बात की है कि उस इलाके की पूरी आबादी और नगरपालिकाएँ परस्पर सहयोग करें। इनको समाप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :

1. **भोजन की सुरक्षा**—यदि रसोई में जाली लगाई जाये और खाने की चीजों को ढक कर रखा जाये तो मक्खियाँ रोग नहीं फैला सकतीं, लेकिन यह काम बड़े पैमाने पर करना होगा, सार्वजनिक होटलों व रेस्ट्रांओं में, मिठाई बेचने की दुकानों पर और खास तौर से शहर में दूध सप्लाई करने वाले केन्द्रों में जिन्हें मक्खियों से मुक्त रखना चाहिए।

2. **मक्खियों के प्रजनन का नियंत्रण**—(क) मक्खियाँ घोड़े की लीद, खाद, मानव विष्ठा और कूड़े-करकट में अंडे देती हैं इसलिए ऐसी जगहों को बन्द अथवा खुले न रखने की व्यवस्था होनी चाहिए, उसके बाद नगरपालिकाओं को चाहिए कि वे इन्हें हटा कर या तो कहीं गाड़ दें या उन्हें जला दें जैसा कि छावनियों के इलाकों में किया जाता है। (ख) शहरी और देहाती सड़े-गले कूड़े-करकट को खेतों में फैला देना चाहिए ताकि यह जल्दी सूख जाये और उसमें अंडे न दिये जा सकें। यदि खाद में चूना मिला दिया जायें तो उससे भी अंडे दिया जाना रोका जा सकता है। चीन में मानव विष्ठा के पात्रों में पोटैशियम साइनाइड डाल दिया जाता है और इस तरह अंडे दिये जाने को सफलतापूर्वक रोका जा सका है। (ग) गन्दगी और कूड़े-करकट में कैल्शियम बोरेट के समान कीटनाशियों को मिला देना चाहिए जिनसे लार्वा मर जाते हैं।

3. **वयस्क मक्खियों को मारना**—घर में मक्खियों को मारने की कई विधियाँ अपनायी जा सकती हैं। (क) खाने की मेज़ पर मक्खियाँ मारने की जालियाँ (स्वैटर) इस्तेमाल की जाती हैं, खिड़कियों और मेजों पर मक्खीमार कागज़ रखे जाते हैं जिनमें मक्खियाँ चिपक कर मर जाती हैं। (ख) ऐसे तार या डोरियाँ लटकाई जा सकती हैं जिनके ऊपर चार भाग रेजिन और एक भाग अरंडी के तेल के मिश्रण को उबाल कर उस पर पोता गया हो, मक्खियाँ इन तारों पर बैठतीं और मर जाती हैं। (ग) मीठा मिलाये हुए दूध में 3% फ़ार्मेलिन की कुछ बूंदें डाल कर चाय की तश्तरियों में रखकर घरों और रेस्ट्रांओं में रखा जा सकता है, मक्खियाँ इस दूध को पीती हैं और मर जाती हैं, लेकिन मक्खियों के लिये इसे स्वादिष्ट बनाने के वास्ते दूध को थोड़ा-सा क्षारीय बना देना चाहिए। (घ) घरों, भुसौरों और शौचालयों में **डी०डी०टी**, बेंज़ीन हेक्साक्लोराइड, अथवा क्लोरडेन का छिड़काव करके सफलता-

पूर्वक मारा जा सकता है। शहर अथवा गांवों के बड़े-बड़े इलाकों पर हवाई जहाजों से दो क्वार्ट डी०डी०टी० प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़का जा सकता है और सात-सात दिन छोड़कर 21 दिन तक छिड़काव दोहराया जाता है जिससे यह सुनिश्चित हो जाए कि मक्खियों की तमाम अवस्थाएँ मर गई हैं।

क्लास इन्सेक्टा (हेक्सापोडा) का वर्गीकरण

कीट मैंडिबलयुक्त आर्थ्रोपोडा होते हैं जिनमें तीन स्पष्ट प्रदेश शीर्ष, वक्ष और उदर होते हैं। शीर्ष में छः समेकित खंड होते हैं और इसमें एक ही जोड़ी ऐंटेना, एक जोड़ी मैंडिबल तथा दो जोड़ी मैक्सिला होते हैं, वक्ष में तीन खंड होते और उसमें तीन जोड़ी टाँगें तथा प्रायः दो जोड़ी पाँत्र बने होते हैं, उदर में ग्यारह खंड होते हैं और उसमें कोई चलन उपाँग नहीं होते। श्वसन-अंग वातिकाएँ होती हैं। जन्तुओं के किसी भी अन्य क्लास की अपेक्षा कीटों की संख्या कहीं ज्यादा है फिर भी इनमें संरचना की दृष्टि से एक विलक्षण एकरूपता पाई जाती है। ये अधिकतर स्थलीय अथवा वायवीय होते हैं, लेकिन अनेक कीट जलीय होते हैं, खास तौर से अपने लार्वा रूपों में।

उपक्लास I **ऐप्टेरिगोटा** (*Apterygota*) अथवा (ऐमेटाबोला, Ametabola) इनमें पंख नहीं होते, यह दशा आदिम होती है, एक या अधिक जोड़ी उदर-उपांग पाए जाते हैं। कायान्तरण लगभग नहीं होता।

आर्डर (a) **कोलेम्बोला** (*Collembola*)—उदर में 6 खंड होते हैं। जिनमें से तीन में उपांग बने होते हैं। चर्वण मुखांग शीर्ष के भीतर छिपे होते हैं। वातिकाएँ तथा मैल्पीजी नलिकाएँ नहीं होतीं। कायांतरण नहीं होता, उदाहरण: **पोड्युरा** (*Podura*)।

आर्डर (b) **थाइसैन्यूरा** (Thysanura)—उदर में 11 खंड होते हैं, जिनमें से कुछ में खंडीय शर (styles) बने होते हैं। लूम और अन्तस्थ सूत्र पाए जाते हैं, संयुक्त नेत्र होते हैं या नहीं होते, वातिकाएँ होती हैं, मैल्पीजी नलिकाएँ सामान्यतया होती हैं; मुखांग दृश्यमान होते हैं और वे काटने-चबाने के काम आते हैं; उदाहरण, **लेपिज्मा** (*Lepisma*), **मैकिलिस** (*Machilis*)।

उपक्लास II **टेरिगोटा** (Pterygota) अथवा (**मेटाबोला**, *Metabola*)—इनमें पंख होते हैं जो परवर्ती रूप में समाप्त हो गए हो सकते हैं। उदर उपांग नहीं होते, बस बाह्य जननाँग और लूम होते हैं। मैलपीजी नलिकाएँ और वातिकाएँ होती हैं। बच्चों में जिन्हें निम्फ़ (अर्भक) कहते हैं खंडों की पूरी संख्या होती है, और इनमें अत्यन्त सरल कायांतरण होता है।

विभाग A. एक्सॉप्टेरिगोटा (*Exopterygota*) (**हेटेरोमेटबोला**, *Heterometabola*)—ये सरल कायांतरण वाले कीट होते हैं, लार्वा-अवस्था एक निम्फ़ होती है जो थोड़े से निर्मोचनों के बाद वयस्क में बदल जाती है, प्यूपा इन्स्टार नहीं होता। पंख वक्ष की बहिर्वृद्धियों के रूप में विकसित होते हैं, बैठते समय पंख मुड़ कर शरीर के ऊपर आ जाते हैं। मैल्पीजी नलिकाएँ बहुसंख्यक होती हैं।

आर्डर (a) **ऑर्थाप्टेरा** (Orthoptera)—पंखों की अगली जोड़ी चर्मीय और अपारदर्शी होती है, पिछली जोड़ी पंख नरम होते और शरीर के ऊपर को मोड़े जा सकते हैं; चर्वण मुखांग; लूमयुक्त उदर और मादा में अण्डनिक्षेपक; लूम असंधित; कूदने के वास्ते पिछली टाँगें बड़ी; सुविकसित ध्वनि-उत्पादक (घर्षण-ध्वनि) अंग प्राय: होते हैं; कायांतरण अपूर्ण, इस आर्डर में टिड्डियाँ, टिड्डे, और झींगुर आते हैं, उदाहरण, **पीसिलोसीरस** (*Poecilocerus*), **लोकस्टा** (*Locusta*), **शिस्टोसर्का** (*Schistocerca*)।

आर्डर (b) **डिक्टियॉप्टेरा** (*Dictyoptera*)—मुखांग चबाने वाले, ऐंटेना सूत्राकार, लूम बहुसंधित, टार्सस 5-संधित। अग्र पंख संकीर्ण एवं कड़े टेगमेन होते हैं, पिछले पंख नरम और झिल्लीदार। अण्डे अण्डपुटक में दिए जाते हैं, इस आर्डर में कॉकरोच तथा मैंटिस आते हैं, उदाहरण, **पेरिप्लैनेटा, ब्लाटा, मैंटिस** (*Mantis*)।

आर्डर (c) **आइसॉप्टेरा** (*Isoptera*)—ये सामाजिक और बहुरूपी कीट होते हैं जो पंखयुक्त एवं पंखहीन लैंगिक नर और मादा तथा पंखहीन वंध्य कर्मियों (workers) एवं सैनिकों (soldiers) के समुदायों के रूप में रहते हैं। लम्बे झिल्लीदार पंख समान होते तथा गिरा दिए जा सकने वाले होते हैं, मुखांग चबाने वाले होते हैं, लैंगिक नरों एवं मादाओं में बाह्य जननाँग मूलाँगी होते हैं, कायांतरण मामूली सा होता है, उदाहरण, **टर्मीस** (*Termes*), **ओडोंटोटर्मीस** (*Odontotermes*), **यूटर्मीस** (*Eutermes*)।

आर्डर (d) **हेमिप्टेरा** (*Hemiptera*) अथवा **रिंकोटा** (*Rhynchota*)—सामान्यत: इनमें दो जोड़ी समान अथवा असमान पंख होते हैं, वेधन एवं चूषण मुखाँग जिनमें लेबियम का बना एक रॉस्ट्रम होता है जिसके भीतर दो जोड़ी वेधनी सूई-जैसे मैक्सिला और मैंडिबल होते हैं, अग्रवक्ष शेष वक्ष-खंडों से मुक्त होता है; कायांतरण अपूर्ण होता है। हेमिप्टेरा दो वर्गों में विभाजित किए जाते हैं। **होमोप्टेरा** (*Homoptra*) में शल्क-कीट (scale insects) आते हैं जो या तो अपंखी होते हैं या उनमें अगली जोड़ी के पंख कड़े हो गए होते हैं; अग्रवक्ष छोटा, टार्ससों में 1 से 3 सन्धियाँ; उदाहरण, **साइकडा** (*Cicada*), **नेफ़ोटेटिक्स** (*Nephotettix*), **ड्रॉसिचा** (*Drosicha*), **टैकार्डिया** (*Tachardia*)। **हेटेरॉप्टेरा** (*Heteroptera*) में बग (मत्कुण) आते हैं जिनमें अगले पंख केवल समीपस्थ भाग में कड़े बन गए होते हैं, अग्रवक्ष बड़ा होता है, टार्सस 3-संधित; उदाहरण, **साइमेक्स** (*Cimex*), **ट्राएटोमा** (*Triatoma*), **डिस्डर्कस** (*Dysdercus*), **ऑक्सीकैरेनस** (*Oxycarenus*), **लेप्टोकोराइसा** (*Leptocorisa*)।

आर्डर (e) **ऐनॉप्ल्यूरा** (*Anoplura*)—ये पक्षियों और स्तनियों के बाह्य-परजीवी होते हैं; शरीर चपटा होता है, और ये परवर्ती रूप में पंखहीन हो गए हैं; ऐंटेना छोटे, आँख ह्रासित अथवा शोषी; टाँगें छोटी; मुखाँग वेधन और चूषण के लिए; कायांतरण नहीं होता। ऐनॉप्ल्यूरा को दो वर्गों में बाँटा जाता है। **मैलोफ़ैगा** (*Mallophaga*) चर्वण जूएँ होती हैं जो स्तनियों पर पाई जाती हैं, जैसे **मीनोपॉन**

(*Menopon*); **साइफ़नकुलैटा** (*Siphunculata*) चूषण-जूएँ होती हैं जो स्तनियों पर बाह्यपरजीवी होती हैं; उदाहरण: **पेडिक्युलस** (*Pediculus*), **थाइरस** (*Phthirus*) **ट्राइकोडेक्टीस** (*Trichodectes*)।

विभाग B. एक्सॉप्टेरिगोटा (Exopterygota), **हेमिमेटाबोला** (Hemimetabola)—इन कीटों में थोड़ा-सा कायांतरण होता है, अण्डे से निकलने वाला बच्चा निम्फ़ होता है जो वयस्क से काफ़ी भिन्न होता है, इसमें विशिष्ट निम्फ़-अंग होते हैं जो वयस्क की दिशा में बदलते जाने के समय उतार फेंक दिए जाते हैं लेकिन कोई प्यूपा इन्स्टार नहीं होता। पंख का निर्माण वक्ष पर बाहर-बाहर होता है, ये पंख विश्राम के समय देह के ऊपर मुड़ कर नहीं आए होते। मैल्पीजी नलिकाएँ बहुसंख्यक होती हैं।

आर्डर (a) **एफ़ेमेरॉप्टेरा** (Ephemeroptera)—मुखांग अवशेषी, पंख झिल्लीदार, पिछले पंख छोटे, लूम और पुच्छ-सूत्र बहुत लम्बे, निम्फ़ जलीय और वयस्क की दिशा में होने वाले अन्तिम निर्मोचन से पहले एक सक्रिय पंखयुक्त अवस्था होती है जिसे उपपूर्णकीट (subimago) कहते हैं; इस आर्डर में मे-फ्लाई आती है, उदाहरणत: **एफ़ेमेरा** (*Ephemera*)।

आर्डर (b) **ओडोनाटा** (Odonata)—इसमें सक्रिय परभक्षी ड्रैगन-फ़्लाई (भंभीरियाँ) आती हैं जिनमें समान; बराबर और झिल्लीदार पंख होते हैं, हर पंख में एक सुस्पष्ट बिंदु (स्टिगमा) बना होता है, अग्रवक्ष बहुत ह्रासित होता है, ऐंटेना छोटे होते हैं, मुखाँग चबाने वाले, आँखें बहुत बड़ी और सुस्पष्ट; नर के जननाँग 2रे तथा 3रे उदर स्टर्नमों पर। निम्फ़ जलीय जिनमें मलाशयी अथवा पुच्छ-गिल होते हैं तथा एक शक्तिशाली परिग्राही लेबियम होता है। कायांतरण अपूर्ण होता है; उदाहरणत: **पेलियोफ़्लेबिया** (*Palaeophlebia*), **एपियोफ्लेबिया** (*Epiophlebia*)।

विभाग C. एंडॉप्टेरिगोटा (Endopterygota) (अथवा होलोमेटाबोला, Holometabola)—इनमें पूर्ण कायांतरण पाया जाता है जिसमें विशेषित लार्वा और प्यूपा इन्स्टार होते हैं, इनके पंख भीतर से बनते हैं। मैल्पीजी नलिकाएँ थोड़ी संख्या में होती हैं।

आर्डर (a) **न्यूरॉप्टेरा** (Neuroptera)—ये कोमल शरीर वाले कीट होते हैं जिनमें दो जोड़ी समरूप झिल्लीदार पंख होते हैं जो विश्रामावस्था में उदर के ऊपर एक चापीय छत-जैसी बना लेते हैं; ऐंटेना लम्बे, मुखांग चबाने वाले; उदर बिना लूम वाला; कायांतरण पूर्ण, लार्वा मांस-भक्षी, जलीय लार्वाओं में उदरीय गिल, प्यूपा एक्सैरेट, उदाहरणत: **मिर्मेलियॉन** (*Myrmeleon*), **क्राइसोपा** (*Chrysopa*)।

आर्डर (b) **लेपिडॉप्टेरा** (Lepidoptera)—इनमें दो जोड़ी सुविकसित पंख होते हैं जो शल्कों से ढके होते हैं; मैक्सिला एक लंबी चूषण सूंड बनाते हैं जो सर्पिल रूप में लिपट सकती है, केवल लेबियल पैल्पों को छोड़ कर अन्य मुखाँग ह्रासित होते हैं, अग्रवक्ष और मध्यवक्ष समेकित होते हैं; कायांतरण पूर्ण होता है, एरुकारूपी लार्वा

केटरपिलर होते हैं जिनमें तीन जोड़ी वक्ष-टाँगें और पाँच जोड़ी उदर-पैर होते हैं, प्यूपा ऑब्टेक्ट, प्रायः ककून में अथवा मिट्टी के कोश में बंद होते हैं; उदाहरण, **पैपीलियो** (*Papilio*), **सर्पोफ़ैगा** (*Scirpophaga*), **बॉम्बिक्स** (*Bombyx*), **यूप्टेरोट** (*Eupterote*), **काइलो** (*Chilo*), **टिनिया** (*Tinea*), **पाइरॉस्टा** (*Pyrausta*)।

आर्डर (c) **कोलियॉप्टेरा** (Coleoptera)—अगली जोड़ी पंख कड़े श्रृंगीय पंख-कोश बन जाते हैं जो मध्य-पृष्ठ रेखा में परस्पर मिलते हैं, विश्रामावस्था में ये पिछली जोड़ी झिल्लीय पंखों तथा शरीर को ढके रहते हैं, मुखाँग चवाने वाले होते हैं; अग्रवक्ष अन्य खंडों के ऊपर घुमाया जा सकता है, मध्यवक्ष छोटा, कायांतरण पूर्ण जिसमें लार्वा या तो कैम्पोडियाईरूपी अथवा एरुकारूपी होते हैं जो अपादी शायद ही कभी होते हों, प्यूपा एक्सैरेट; उदाहरण: **हीलियोकॉर्पिस** (*Heliocorpis*), **काइलोमीनिस** (*Chilomenes*), **ट्राइबोलियम** (*Tribolium*), **लिटा** (*Lytta*), **ऐंथोनोमस** (*Anthonomus*), **टेनेब्रियो** (*Tenebrio*), **कैलेंड्रा** (*Calandra*)।

आर्डर (d) **हाइमेनॉप्टेरा** (Hymenoptera)—इनमें दो जोड़ी झिल्लीदार पंख होते हैं जिनमें पिछली जोड़ी छोटे होते हैं, ये अगली जोड़ी के साथ छोटे-छोटे हुकों के द्वारा बंधे होते हैं; मुखाँग चवाने और चाटने वाले; अग्रवक्ष अन्य वक्ष-खंडों के साथ समेकित; उदर आधार पर संकुचित और इसका पहला खंड पश्चवक्ष के साथ समेकित होता है; अण्डनिक्षेपक आरी की तरह काटने, वेधने अथवा डंक मारने के लिए रूपांतरित; कायांतरण पूर्ण जिसमें लार्वा अधिकतर अपादी होते हैं, प्यूपा एक्सैरेट और ककूनों में बंद हुए, उदाहरण: **एपिस** (*Apis*), **पोलिस्टीस** (*Polistes*), **वेस्पा** (*Vespa*), **कैम्पोनोटस** (*Camponotus*)।

आर्डर (e) **डिप्टेरा** (Diptera)—इनमें एक ही जोड़ी पारदर्शी पंख होते है, पिछली जोड़ी हाल्टीयरों के रूप में रूपांतरित हो गई है, मुखांग वेधनी और चूषणी मैंडिबल अक्सर अविद्यमान, लेबियम अंत में चौड़ा होकर एक जोड़ी मांसल पालि बना लेता है ; अग्रवक्ष तथा पश्चवक्ष छोटे और एक बड़े मध्यवक्ष के साथ समेकित; टार्सस 5-संधित; कायांतरण पूर्ण जिसमें अपादी अथवा एरुकारूपी लार्वा जिनमें बहुधा ह्रासित शीर्ष होता है, प्यूपा मुक्त अथवा प्यूपावरण में बन्द, उदाहरण: **क्यूलेक्स ऐनॉफ़िलीस, मस्का, स्टोमॉक्सिस, हाइपोडर्मा** (*Hypoderma*), **फ़्लेबोटोमस, क्राइसॉप्स**।

आर्डर (f) **ऐफ़ैनिप्टेरा** (Aphaniptera) **अथवा साइफ़ोनैप्टेरा** (*Siphonaptera*)—ये छोटे कीट होते हैं जो परवर्ती रूप में पंखहीन हो गए हैं, शरीर पार्श्वतः दबा हुआ होता है, ऐंटेना छोटे, आँखें विद्यमान अथवा अविद्यमान, मुखांग वेधनी और चूषणी, टाँगों के कॉक्सा बहुत बड़े, टार्सस 5-संधित, कायांतरण पूर्ण जिसमें अपादी अथवा एरुकारूपी लार्वा होते हैं, प्यूपा एक्सैरेट और ककूनों में बन्द। ये नियततापी जन्तुओं के बाह्यपरजीवी होते हैं, उदाहरण: **ज़ीनॉप्सिला** (*Xenopsylla*), **प्यूलेक्स** (*Pulex*), **टीनोसेफ़ैलस** (*Ctenocephalus*)।

कीटों के प्रकार

1. **आर्केसेला** (*Orchesella*) **अथवा पोड्यूरा** (*Podura*) (**स्प्रिंगटेल**)—यह बड़ी संख्या में अलवणजल की सतह पर पाया जाता है, हालाँकि अधिकतर कोलेम्बोला मिट्टी में, पत्थरों के नीचे, चींटियों और पक्षियों के घोंसलों में रहते हैं, ये सारे विश्व में पाये जाते हैं और अक्सर यूथी (gregarious) होते हैं। देह छोटा और रोमिल होता है, पंख कभी नहीं बने हैं। **आर्केसेला** में 6-संधित ऐंटेना होते हैं, चर्वण मुखाँग शीर्ष के भीतर छिपे होते हैं लेकिन ये बाहर को निकले हुए भी हो सकते हैं,

चित्र 412. **आर्केसेला**।
Pigmented ocellus, वर्णांकित नेत्रक; ventral tube, अधर नलिका; hamula, हैम्युला; caudal furca, पुच्छ फरका।

इनमें मैंडिबल और मैक्सिला होते हैं जिनके सामने की ओर लेब्रम तथा पीछे की ओर लेबियम होता है। सरल नेत्रक होते हैं। टाँगों में टार्सस नहीं होते, हर टिबिया में 2 नखर होते हैं। उदर में 6 खंड होते है, पहले खंड के उपांग एक द्विपालिक **अधर नलिका** (ventral tube) बनाते हैं जो एक चिपकाने वाला अंग होता है, तीसरे खंड के उपांग समेकित होकर एक **हैम्युला** (hamula) बनाते हैं, और चौथे खंड के उपांग एक द्विशाखित **पुच्छ फ़रकूला** (caudal furcula) बनाते हैं। जब फ़रकुला को आगे को मोड़ा जाता है तो वह हैम्युला में टिका रहता है, और फिर फ़रकुला को नीचे को दबाया जाता है जिससे जन्तु ऊपर हवा में को धिकल जाता है।

चित्र 413. लैपिज्मा सैकेराना (*Lepisma saccharina*) Cercus, लूम; styles, शर; caudal filament, पुच्छ सूत्र।

2. **लेपिज्मा** (*Lepisma*) (सिल्वरफ़िश)—यह 1 cm. लम्बी और रुपहले शरीर की होती है जिस पर अदृढ़ रूप से चिपके हुए शल्क होते हैं। शीर्ष पर लम्बे संधित ऐंटेना होते हैं और दो सरल नेत्रक होते हैं। हर पार्श्व के ग्लौसा और पराग्लौसा समेकित होते हैं। टार्सस 3-संधित होते और उनके अन्त में नखर बने होते हैं। उदर

में 11 खंड होते हैं, खंड 8 और 9 में एक-एक जोड़ी शर (स्टाइल) बने होते हैं, 11वें खंड में एक जोड़ी लम्बे लूम होते हैं और उनके बीच में एक लम्बा **पुच्छ सूत्र** (caudal filament) होता है। यह कीट घरों में पाया जाता और इसे स्टार्च बहुत प्रिय होता है, यह किताबों और कपड़ों को हानि पहुँचाता है।

3. **मैंटिस** (*Mantis*) (प्रेइंग अर्थात् पुजारी-मेंटिस)—यह विश्व भर में पाया जाता है, यह हरे रंग का और पत्तियों में छिपा रहता है, पिछले पंख बड़े और तेज रंग के होते हैं। शीर्ष बहुत ज़्यादा घुमाया जा सकने वाला होता है, संयुक्त आंखें बहुत बड़ी होती हैं, तीन नेत्रक होते हैं। अग्रवक्ष बहुत लम्बा होता है। उदर में छोटे संधित लूम होते हैं, और नर में एक जोड़ी गुदा शर पाए जाते हैं। इस कीट का सब से अधिक स्पष्ट लक्षण इसकी अगली टाँगें होती हैं, जिनके कॉक्सा लम्बे होते हैं, फीमर में अधरतः तेज़ काँटे बने होते हैं, टिबिया में पृष्ठतः काँटे बने होते हैं और ये दोनों भाग चाकू के फलके और दस्ते की तरह मुड़ सकते हैं—जिसके भीतर शिकार पकड़ा जा सकता है। यह प्राणी मांसभक्षी और लड़ाकू होता है, यह मक्खियों, टिड्डियों और केटरपिलरों को खाता है, यह बैठते समय अपनी पिछली दो जोड़ी टाँगों पर बैठता और अगली टाँगों को सामने की ओर "हाथ जोड़कर प्रार्थना करने
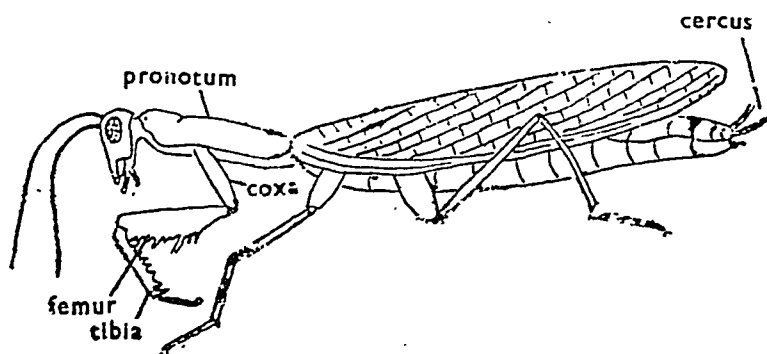
चित्र 414. **मैंटिस रेलिजियोसा** (*Mantis religiosa*)
Femur, फीमर; tibia, टिबिया; coxa, कॉक्सा; pronotum, अग्रवक्ष; cercus, लूम।

की मुद्रा" में खड़ा हो जाता है, जैसे ही शिकार दिखाई दिया कि यह चुपके-चुपके उसके पास पहुँचकर उस पर झपट्टा मारता और अपनी शिकारी अगली टाँगों से उसे दबोच लेता है।

4. **पीसिलोसीरस** (*Poecilocerus*) (टिड्डा)—यह नीले और पीले रंग का लगभग 5 cm. लम्बा और आक के पेड़ों पर पाया जाता है। शीर्ष बड़ा होता है जिस पर 2 संयुक्त आँखें और 3 नेत्रक होते हैं, ऐंटेना छोटे और सूत्राकार होते हैं, मुखांग काटने चबाने वाले होते हैं। अग्रवक्ष बड़ा, अगले पंख या टेगमेन संकीर्ण और कड़े, उनमें वलन नहीं पड़ते हैं, पिछले पंख नरम, बड़े और वलित होते हैं। पिछली टाँगों की फीमर बड़ी कूदने वाली होती है, टार्सस 3-संधित जिनके अन्त में दो-दो नखर

और एक-एक मध्यमांसल **पल्विलस** होता है। हर पश्चफीमर पर केवल नरों में लगभग 800 छोटी-छोटी खूँटियाँ होती हैं जो एक **ध्वनि-कर्षक उपकरण** (stridulatory apparatus) बनाती हैं, इनके द्वारा जब टेगमेन बन्द होते हैं तो उसके प्रति इन्हें रगड़कर धीमी-सी चिरचिराहट की आवाज पैदा होती है। पहले उदर खंड के हर पार्श्व में एक **श्रवण अंग** (auditory organ) होता है। मादा में एक छोटा अण्डनिक्षेपक होता है जिसमें वक्र वाल्व होते हैं जिन के द्वारा यह जमीन में खोद कर अंडे देता है। निम्फ़ पीला होता है जिन पर काले और लाल धब्बे बने होते हैं
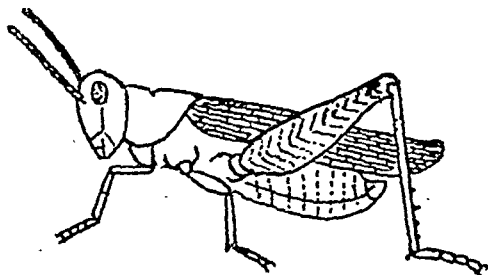
चित्र 415. **पीसिलोसीरस**

5. **टिड्डियाँ** (*Locusts*)—टिड्डियाँ छोटे शृंगों वाले टिड्डे होते हैं, यह नाम टिड्डी प्रवासी विनाशकारी प्रावस्था के लिए सुरक्षित है जबकि अप्रवासी अवस्थाओं के लिए टिड्डा कहा जाता है। इनमें ऐंटेना शरीर से काफी छोटे होते और उनमें 25 से अधिक खण्ड नहीं होते, पिछली फीमरों पर ध्वनि-कर्षण उपकरण पाया जाता है जो कड़े टेगमेनों के प्रति रगड़ा जाता है जिससे नरों में एक आवाज निकलती है; मादाएँ शांत होती हैं; पहले उदर-खंड में एक जोड़ी श्रवण अंग होते हैं। मादा में एक छोटा अण्डनिक्षेपक होता है जो पृथक् प्लेटों का बना होता है, इन प्लेटों के द्वारा मादा मिट्टी में एक सूराख खोद लेती है और उसके भीतर 30 से 100 लम्बे-लम्बे अण्डे रख देती है, एक चिपचिपा तरल उन अण्डों पर छोड़ दिया जाता है जो कड़ा होकर एक जलरोधी **अण्ड-कोष** (egg-sac) बना लेता है, एक मौसम में एक मादा अण्डों के ऐसे-ऐसे 20 पिंड देती है। अण्डों का विस्फोटन होकर निम्फ निकल आते हैं जो 5 से 8 निर्मोचनों के बाद वयस्क बन जाते हैं। टिड्डियाँ बहुत पेट्ठ और खस्सड़ होती हैं, निम्फ़ और वयस्क दोनों अवस्थाओं में वे वनस्पति और फसलों को खा जाती हैं।

लोकस्टा माइग्रेटोरिया (*Locusta migratoria*) पुरानी दुनिया की एक मुख्य प्रवासी टिड्डी है, यह पूर्वी यूरोप से फिलीपीन द्वीपों तक फैली है। यह 2 इंच लम्बी और पीले या हरे से रंग की होती है। **शिस्टोसर्का ग्रीगेरिया** (*Schistocerca gregaria*) एक सबसे अच्छी जानी हुई स्पीशीज है। यह 2 इंच या उससे बड़े आकार की होती है, इसमें पीली अप्रवासी प्रावस्था होती है और गुलाबीपन लिए हुए प्रवासी प्रावस्था होती है; दोनों प्रावस्थाओं में टेगमेनों पर काले रंग के धब्बे बने होते हैं; यह टिड्डी उत्तर अफ्रीका से उत्तर भारत तक फैली है जहाँ ये फसलों को भारी हानि पहुँचाती है। **सिर्टेकैंथैक्रिस सक्सिनैटा** (*Cyrtacanthacris succinata*) जिसे बम्बई की टिड्डी अथवा पतंगा भी कहते हैं, लाल से रंग की होती है, यह केवल भारत में ही पाई जाती है। **मीलैनोफस** (*Melanoplus*) तथा **शिस्टोसर्का अमेरिकाना** (*Schistocerca americana*) केवल अमेरिका में पाई जाती है।

प्रावस्थाएँ तथा जैविकी—टिड्डियाँ बहुरूपी होती हैं, ये तीन प्रावस्थाओं में पाई जाती हैं : 1. **प्रवासी** (migratory) अथवा **यूथी** (gregarious) प्रावस्था; 2. **एकल** (solitary) प्रावस्था, 3. **मध्य** (intermediate) अथवा **संक्रामी** (trans-

चित्र 416. **शिस्टोसर्का ग्रीगैरिया** (मादा)
B—एकल प्रावस्था का शीर्ष और वक्ष।
C—यूथी प्रावस्था का शीर्ष और वक्ष।
Auditory organ, श्रवण अंग; tegmen, टेगमेन; ovipositor, अण्ड निक्षेपक; convex pronotum, उत्तल अग्रनोटम; carina, नौतल; concave pronotum, अवतल अग्रनोटम।
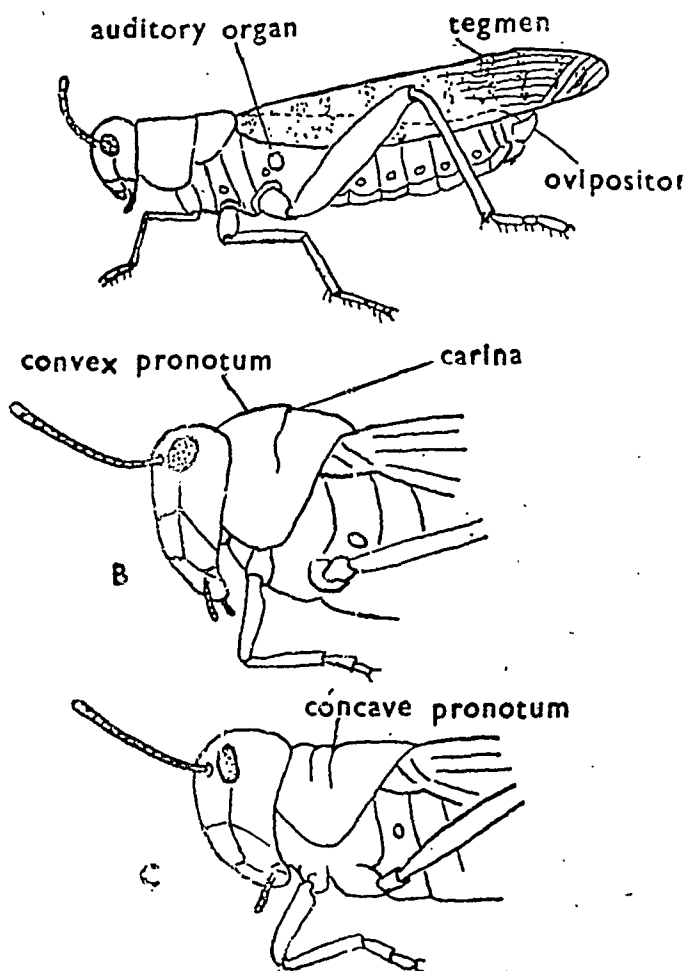
ient) प्रावस्था। 1. **यूथी प्रावस्था** में इसके निम्फों में काला और पीला या नारंगी रंग होता है, ये निम्फ इन्स्टार किसी भी वातावरण में बन सकते हैं, वयस्क में अग्रनोटम कुछ-कुछ अवतल होता है, जिसमें एक सुस्पष्ट संकीर्णन होता है, पंख अनुपातत: अधिक बड़े होते हैं, लैंगिक परिपक्वता आने पर रंग बदल जाता है, खास तौर से नर

में। यह प्रावस्था निम्फों तथा वयस्कों दोनों में यूथी होती है, संख्या बढ़ जाने पर ये घने-घने टिड्डी दल बनाकर अपने प्रजनन स्थानों से प्रवास कर जाते हैं। प्रवास के कारणों की ठीक-ठीक जानकारी नहीं है, हो सकता है कि कुछ विशिष्ट वातावरण परिस्थितियों के कारण अथवा किसी यूथी सहज प्रवृत्ति के कारण प्रवास पैदा होता हो। प्रवास उड़ान में दोनों जोड़ी पंख काम में लाए जाते हैं और नए स्थानों पर पहुँचकर ये टिड्डियां तमाम वनस्पति को खा डालती हैं। उड़ान का रुकना क्रियात्मक कारणों द्वारा होता है जिसमें गोनडों (जनन ग्रन्थियों) का परिपक्व हो जाना भी शामिल है। तब ये नए स्थानों पर जनन करती हैं और यदि वातावरण उससे भिन्न हुआ जो कि उनके मूल प्रजनन स्थानों में था तो इनकी सन्तान एकल प्रावस्था में परिवर्धित हो जाती है। 2. **एकल प्रावस्था** में एक उत्तल अग्रनोटम होता है जिसमें एक सुव्यक्त अनुदैर्घ्य कटक होता है जिसे **कैराइना** (carina) अथवा नौतल कहते हैं, संकीर्णन नहीं होता, ये टिड्डियाँ यूथी नहीं होतीं और लैंगिक परिपक्वता आने पर कोई रंग परिवर्तन नहीं होता। इनके निम्फों में वातावरण के रंग के अनुरूप रंग-परिवर्तन होते हैं। 3. **संक्रामी प्रावस्था** में एक या उससे दूसरी प्रावस्था की ओर प्रवृत्ति होती है, जो इस बात पर निर्भर होता है कि वे एकल प्रावस्था की ओर अथवा यूथी दशा की ओर परिवर्धित हो रही हैं; इस प्रकार इनमें विविध मध्य श्रेणियाँ पाई जाती हैं।

प्रयोगों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि अलग-थलग रूप में अण्डे से निकले बच्चों को पालकर बड़ा कर दिया जाए तो एकल प्रावस्था की टिड्डियाँ बनती हैं और यदि उन्हें बड़ी संख्या में सामूहिक रूप में पाला जाए तो वे यूथी प्रावस्था में विकसित होती हैं।

6. **दीमकें**—दीमकें सामाजिक और बहुरूपी कीट होती हैं जो उष्णकटिबन्धीय और उपोष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में बड़ी-बड़ी संख्या में समुदाय बनाकर सामूहिक रूप में रहती हैं। दीमकें लकड़ी खाते हुए बहुत ज्यादा नुक्सान पहुँचाती हैं, ये सहजीवी फ्लैजेलेटों जैसे कि **ट्राइकोनिम्फा कैम्पैनुला** (*Trichonympha campanula*) की सहायता से लकड़ी पचा सकती हैं, ये सहजीवी इनकी अन्तड़ियों में रहते और पीढ़ी-दर-पीढ़ी नई दीमकों में पहुँचते रहते हैं।

शीर्ष पर संयुक्त नेत्र, एक जोड़ी ऐंटेना और काटने, चबाने वाले मुखांग होते हैं। गर्दन में सुस्पष्ट पार्श्व स्क्लेराइट होते हैं। अग्रनोटम सुव्यक्त होता है, दो जोड़ी लम्बे, संकीर्ण, समरूप पंख होते हैं जिनमें से हर एक में एक आधारीय सीवन (basal suture) होती है जिस पर से पंख टूट कर गिर जाते हैं, टार्सस 4-संधित होते हैं जिन पर एक जोड़ी नखर होते हैं। उदर में 10 खंड होते हैं जिसके अन्त में 2 से 6-संधित **लूमों** की एक जोड़ी होती है, नर में नौवें खंड पर एक जोड़ी **गुदा-शर** (anal styles) बने होते हैं।

दीमक समुदाय—अन्य सामाजिक कीटों की अपेक्षा दीमक में ज्यादा संख्या में जातियाँ (castes) पाई जाती हैं। इनमें नर और मादा की तीन प्रकार की जनन-

जातियाँ होती हैं और कर्मियों (workers) तथा सैनिकों (soldiers) की दो वंध्य जातियाँ होती हैं। (क) गुरु पंखी (*Macropterous*) रूप अथवा प्रथम श्रेणी की जनन जाति में लैंगिक दृष्टि से सम्पूर्ण नर और मादा आते हैं, किसी भी समुदाय के
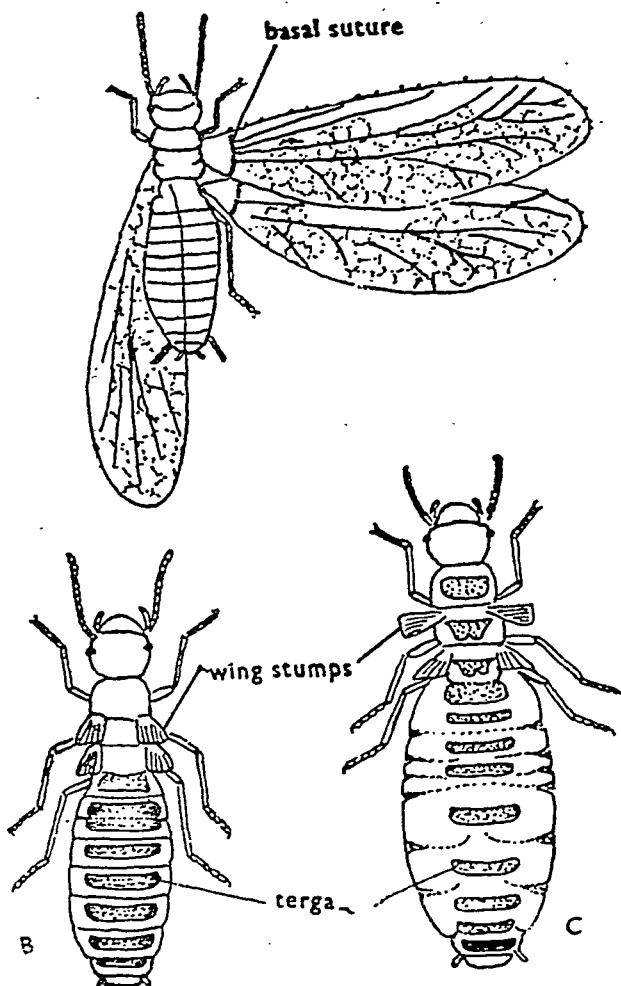
चित्र 417. गुरुपंखी दीपक रूप। A—पंखयुक्त लैंगिक रूप; B—पंखच्युत राजा; C—पंखच्युत रानी; Basal suture, आधारीय सीवन; wing-stumps, पंख ठूंठ; terga, टर्गम।

पूर्वज ये ही होते हैं जिनसे अन्य रूप प्राप्त हुए हैं, इसमें दो जोड़ी बराबर आकार वाले पंख होते हैं जो बैठी हुई अवस्था में उदर से काफ़ी पीछे तक निकले होते हैं। देह अधिक काइटिनी तथा गहरे-भूरे रंग का होता है। संयुक्त नेत्र सुविकसित होते हैं और एक जोड़ी नेत्रक पाए जाते हैं। मस्तिष्क तथा लैंगिक अंग अन्य जातियों की अपेक्षा इसमें ज्यादा बड़े होते हैं, नवविकसित नर और मादा घोंसला छोड़कर बाहर निकलते, एक अल्प वायवीय जीवन बिता कर अपने पंखों को आधारीय सीवन पर

गिरा देते हैं, उसके बाद वे नर-मादा के जोड़े बाँध कर मैथुन करते हैं और फिर एक नया घोंसला शुरू करते हैं। इस प्रकार हर जोड़े में एक-एक पंखच्युत राजा और रानी होते हैं जिन्हें **प्राथमिक शाही जोड़ा** (primary royal pair) कहते हैं, इनमें गिरे हुए पंखों के ठूंठ बने होते हैं, इसके राजा और रानी में स्थायी संबंध रहता है, दूसरे शब्दों में ये एकसंगमनी (monogamous) होते हैं। रानी अपने उदर की वृद्धि के द्वारा फूलती जाती है। इन्हीं दीमकों से नई कॉलोनियाँ स्थापित होती हैं।

(ख) **लघुपंखी** (*Brachypterous*) रूप अथवा द्वितीय श्रेणी की जनन जाति में लैंगिक रूप में परिपक्व नर और मादा होते हैं लेकिन बाहर से देखने में वे निम्फ़ प्रकट होते हैं, इनमें केवल छोटे **पंख-मुकुल** होते हैं, शरीर कम काइटिनी होता है और रंग कुछ हल्का पीलापन लिए हुए होता है। संयुक्त नेत्र काले नहीं होते, मस्तिष्क तथा लैंगिक अंग छोटे होते हैं। ये अन्त:भूमिक होते हैं और अपने घोंसलों से कभी बाहर नहीं आते। यदि प्राथमिक राजा या रानी मर जाते हैं तो उनका स्थान ये लघुपंखी प्राणी ले लेते हैं जो **प्रतिस्थापी** (substitute) अथवा **पूरक** (complemental) राजा या रानी होते हैं, ऐसी रानियाँ थोड़ी संख्या में अंडे देती हैं, एक ही घोंसले में अनेक प्रतिस्थापी राजा और रानियाँ हो सकती हैं और ये **बहुसंगमनी** (polygamous) होते हैं।
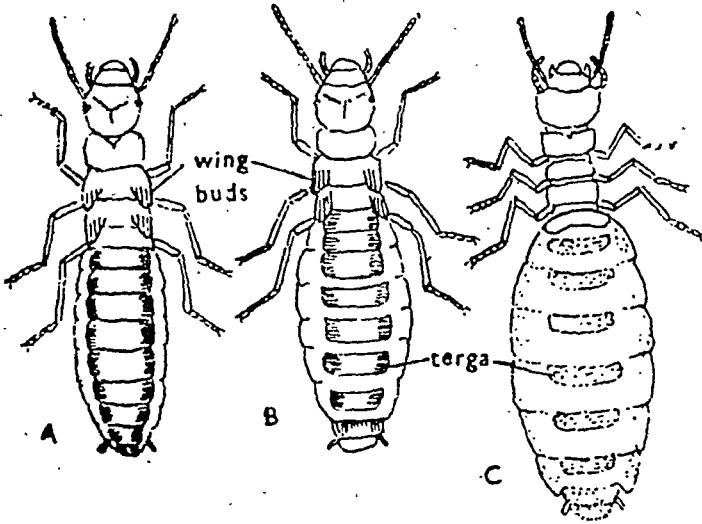
चित्र 418.

चित्र 418. A—लघुपंखी राजा; B—लघुपंखी रानी; C—अपंखी रानी। Wing buds, पंख-मुकुल; terga, टर्गम।

(ग) **अपंखी** (*Apterous*) रूप अथवा तीसरी श्रेणी की जनन जाति निम्फ़ीय कर्मियों-जैसी दिखाई पड़ती है, इनमें पंख नहीं होते, क्यूटिकल रंगहीन होता है, संयुक्त नेत्र अवशेषी होते हैं और नेत्रक अविद्यमान होते हैं, इनमें नर और मादा दोनों होते हैं। अपंखी रूप विरल होते हैं और केवल निम्नतर दीमकों में पाए जाते हैं।

उदाहरणतः **ल्यूकोटर्मीस** (*Leucotermes*) में, इन्हें कर्मीय (ergatoid) राजा और रानियाँ कहते हैं, ये अनेक की संख्या में हो सकते हैं।

तीन जनन जातियों में एक विलक्षण भ्रूणोत्तर वृद्धि पाई जाती है विशेषतः मादा में। निषेचित मादा एक **रानी** में विकसित हो जाती है जो 2 से 3 cm. लम्बी होती है, आकार की वृद्धि केवल उदर में बढ़ोतरी के कारण होती है, शीर्ष और वक्ष सामान्य बने रहते हैं, उदर के टर्गम तथा स्टर्नम नहीं बढ़ते, लेकिन प्ल्यूरॉन झिल्लियाँ बहुत ज्यादा फैल जाती हैं, ऐसा अंडाशयों तथा वसापिंड के आकार में वृद्धि के कारण होता है, जिससे कि रानी एक बड़ी निष्क्रिय अंडा देते जाने वाला प्राणी बन जाती है। गुरुपंखी मादा से बनने वाली रानी सबसे बड़ी होती है। रानी 6 से 15 वर्षों तक जीती है और अपने जीवन काल में 10 लाख से भी ज्यादा अंडे देती है। पहले समझा जाता था कि रानी को नष्ट कर देने से अंततः उनका समुदाय समाप्त हो जाएगा किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि तब लघुपंखी अथवा अपंखी रानियाँ बन जाएँगी और समुदाय को चलाती जाएँगी।

(घ) **वंध्य कर्मी** (*Sterile workers*) अपंखी, अजननशील नर एवं मादा होते हैं जिनमें लैंगिक अंग शोषी और अक्रियात्मक हो गए हैं। कर्मी की त्वचा बहुत कम काइटिनित होती है और शरीर हल्के पीले रंग का होता है, यह एक निम्फ़-जैसा दिखाई पड़ता है, सिर चौड़ा आगे से नुकीला होता जाता है, संयुक्त नेत्र नहीं होते, और कुछ स्पीशीज़ में नेत्रक भी नहीं होते। कर्मी **द्विरूपी** (dimorphic) हो सकते हैं, जिनमें से एक में शीर्ष और मैंडिबल बड़े तथा दूसरे में छोटे होते हैं, जैसे **ओडोंटोटर्मीस** में। कुछ में कर्मी त्रिरूपी (trimorphic) होते हैं जिनमें छोटे, मध्य और बड़े आकार पाये जाते हैं, जैसे **टर्मीस** (*Termes*) में। समुदाय में कर्मियों की संख्या बहुत ज्यादा होती है और
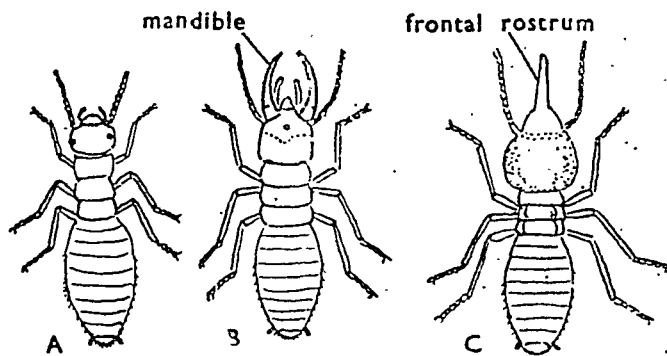
चित्र 419. A—दीमक-कर्मी; B—मैंडिबलित सैनिक; C—नासायित सैनिक। Mandible, मैंडिबल; frontal rostrum, ललाटीय रॉस्ट्रम।

जनन एवं सुरक्षा को छोड़कर वे अन्य सभी काम करते हैं, अंडे-बच्चों की देख-भाल करते हैं, आहार खोजते हैं, कवकों को उगाते हैं, घर बनाते हैं, रानी और सैनिकों को खिलाते हैं। ये आपस में एक-दूसरे को चाट-चाट कर साफ़ भी करते रहते हैं। अपने

कुतरने के स्वभाव के कारण ये फ़सलों, लकड़ी और मनुष्य के सामान को नुकसान पहुँचाते हैं और इस तरह अपार क्षति पहुँचाते हैं।

(ङ) **वंध्य सैनिक** (*Sterile soldiers*) अपंखी नर और मादा होते हैं जिनमें लैंगिक अंग नहीं होते। सैनिक में एक बड़ा काइटिनी शीर्ष होता है, मैंडिबल बड़े और रंग हल्का पीला-सा होता है। सैनिक दो प्रकार के होते हैं : (i) **मैंडिबलित सैनिक** (Mandibulate soldiers) में शक्तिशाली मैंडिबल होते हैं लेकिन ललाटीय रॉस्ट्रम नहीं होता; (ii) **नासायित सैनिकों** (nasute soldiers) में छोटे मैंडिबल होते हैं तथा शीर्ष पर एक मध्य ललाटीय रॉस्ट्रम बना होता है। सैनिक समुदाय की रक्षा करते हैं, मैंडिबलित सैनिक अपने मैंडिबलों द्वारा और नासायित सैनिक अपने ललाटीय रॉस्ट्रम में से गाढ़ा विकर्षक (repellent) तरल निकाल कर। कभी-कभी सैनिक सूराखों को अपने शीर्ष से ही बन्द कर देते हैं।

दीमकों के निवास—आदिम दीमकें लकड़ी में, मृत पेड़ों, इमारती लकड़ी तथा लकड़ी के साज-सामान में सूराख करके सुरंगों में रहती हैं। कुछ दीमकें ज़मीन में
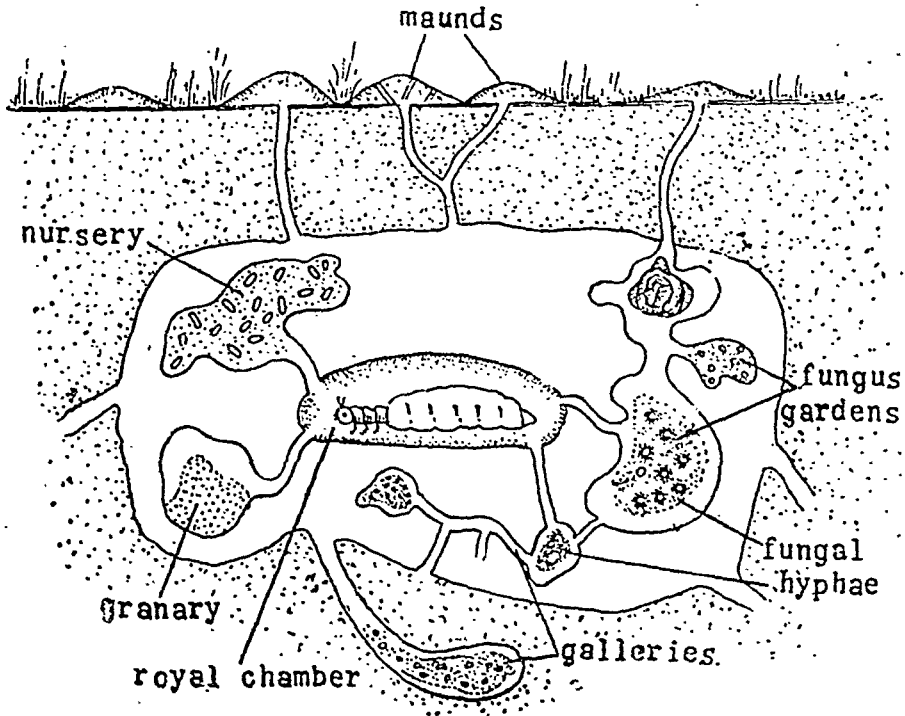
चित्र 420. दीमक का निवास।

Mounds, बाँबी; nursery, शिशुशाला; granary, अनाज की खत्ती; royal chamber, शाही कक्ष; galleries, सुरंगें (गैलरियाँ); fungal hyphae, कवक तंतु; fungus garden, कवक वाटिकाएँ।

सुरंगें बनाती हैं, वे घास, वनस्पति तथा फ़सलों की जड़ों को नष्ट कर डालती हैं। अधिक उन्नत प्रकार की दीमकें बड़े-बड़े मिट्टी के घर बनाती हैं जिन्हें **बाँबी** अथवा

वल्मीक (termitaria) कहते हैं जो 20 फुट तक ऊँचे हो जाते हैं, ये खोदी हुई मिट्टी, लकड़ी तथा अपने मल से बनाती हैं जिनमें अपनी लार भी मिलाती जाती हैं, इन घरों की दीवारें चट्टान-जैसी मज़बूत हो जाती हैं। लकड़ी खाने वाली दीमकों (**टर्मोप्सिस,** *termopsis*) में कर्मी नहीं होते, ये सड़ते जाते हुए लठ्ठों में सुरंगें बनाती हैं। **कैलोटर्मीस** (*Calotermes*), **नीओटर्मीस** (*Neotermes*) तथा **मैस्टोटर्मीस** (*Mastotermes*) सूखी लकड़ी में सूराख़ करती हैं जैसे खम्भों में, फ़र्नीचर में और लकड़ी की इमारतों में। **कैलोटर्मीस** लंका में चाय के पौधों के तनों में सूराख करती है। **ल्यूकोटर्मीस** तथा **कॉप्टोटर्मीस** (*Coptotermes*) ज़मीन में रहती हैं और ज़मीन में से ही होकर छिपने के वास्ते मिट्टी के ही सुरंग-मार्ग बना-बनाकर इमारतों की लकड़ियों की चीज़ों तक पहुँच जाती हैं। भारतीय दीमक **ओडोंटोटर्मीस** में अंतःभूमिक तथा बाँबीवासी दोनों ही प्रकार के आवास पाए जाते हैं। वल्मीकों का निर्माण अधिकतर अफ्रीका, लंका और आस्ट्रेलिया में होता है।

बाँबियों और दीमकों के घरों में सुरंग-मार्गों, कक्षों, शाही कक्ष और आहार जमा करने तथा कवक वाटिकाओं की कृषि करने आदि के विशिष्ट कक्षों की एक भूल-भुलैया सी बनी होती है। कर्मियों के रात्रिचर दल चारा ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ते हैं और वनस्पति आहार को इकट्ठा करके उसे विशिष्ट कोष्ठों में जमा कर लेते हैं। कर्मी बाहर ज़मीन पर आकर बीज, घास और वनस्पति इकट्ठा करते हैं, इन्हें काट-काट कर खास कोष्ठों अथवा अनाज-भण्डार में भर लेते हैं। दीमकों के खाने में लकड़ी, वनस्पति, दीमकों का ही विष्ठा पदार्थ, निर्मोचित त्वचाएँ और कॉलोनी के मृत सदस्य शामिल हैं। कुछ दीमकें अपने घरों में "कवक वाटिकाओं" की खेती करती हैं, ये वाटिकाएँ लाल-भूरे स्पंजी "छत्ते" होते हैं जिन्हें कर्मी-दीमकें वनस्पति-पदार्थ एवं मल से मिलाकर बनाती हैं, इन छत्तों के ऊपर कवक-तंतु उगते हैं जिनमें सफ़ेद-सफ़ेद क्षेत्र बन जाते हैं। कवक वाटिकाएँ घर के केन्द्र के समीप बनी कोठरियों में उगाई जाती हैं, ये एक **शाही कक्ष**, के साथ जिसमें राजा और रानी रहते हैं सम्पर्क स्थापित किए रहते हैं। रानी को भोजन के रूप में कर्मी अपनी लार और कवक-तंतु खिलाते हैं। अंडे और निम्फ़ कवक कोष्ठों अथवा शिशुशालाओं में परिवर्धित होते हैं, निम्फ़ों की देखभाल और उन्हें पोषण प्रदान करने का कार्य कर्मियों का होता है जो उन्हें अपने भीतर अंशतः पूर्वपचा कवक और वनस्पति पदार्थ खिलाते हैं, इस विधि से सह-जीवी फ़्लैजेलेट प्राणी निम्फ़ों में पहुँच जाते हैं। निम्फ़ या तो जननक्षम नरों और मादाओं में विकसित हो जाते हैं जो उस घर से बाहर निकल कर नई कॉलोनियाँ स्थापित करते हैं, या वंध्य कर्मियों अथवा सैनिकों में विकसित हो जाते हैं।

हालाँकि दीमक बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाती हैं फिर भी वे लाभकर भी हैं, मृत काष्ठ और वनस्पति उत्पादों को खाकर वे बहुत सेवा करती हैं, अपने मल पदार्थ से वे मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाकर और मिट्टी को हवा तथा नमी के लिए पारगम्य बना कर कृषि मे सहायता देती हैं।

दीमकों के घरों में दीमकों के अलावा और भी कीट रहते हैं, इन्हें **दीमकरागी**

(termitophilous) प्राणी कहते हैं, इनमें अधिकतर बीटल होते हैं। ऐसे कुछ प्राणियों के साथ दीमकें अपने वास्तविक अतिथि जैसे का व्यवहार करती हैं, कुछ की तरफ़ बेरुखी का व्यवहार करती हैं, और ऐसे कुछ अन्य प्राणी अपमार्जक (scavengers) तथा परभक्षी होते हैं। कुछ मामलों में एक ही निवास में दीमकों की एक से ज्यादा स्पीशीज़ साथ-साथ रह सकती हैं।

7. **पेलियोफ़्लेबिया** (*Palaeophlebia*) (ड्रैगन-फ्लाई या भंभीरी)—उष्ण-कटिबन्धों में यह बहुत संख्या में पाई जाती है और धूप-प्रेमी होती है। इसका शरीर
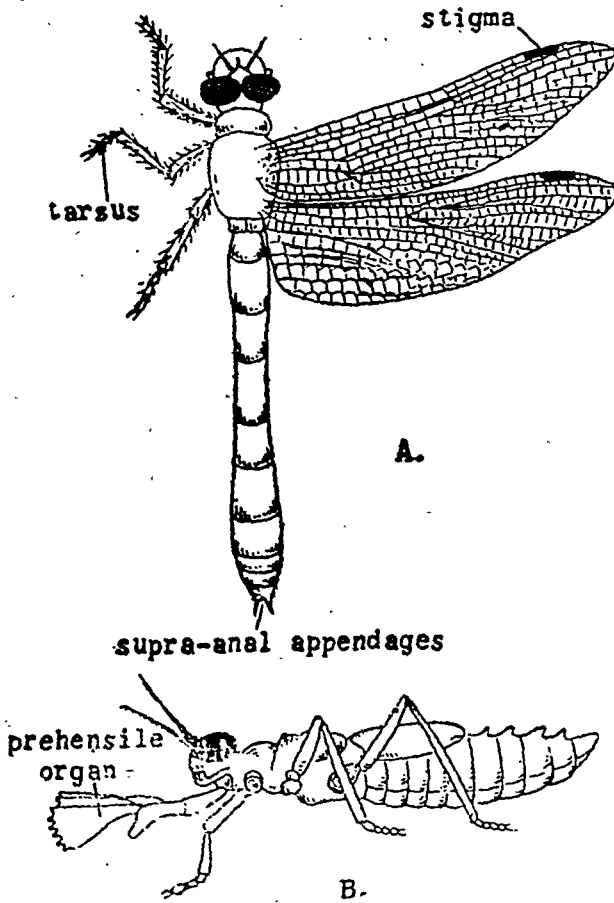
चित्र 421. A—पेलियोफ्लेबिया; B—भंभीरी (ड्रैगन-फ़्लाई) का निम्फ़। Tarsus, टार्सस; stigma, विन्दु; supra-anal appendages, अधिगुदा उपांग; prehensile organ, परिग्राही अंग।

चटकीले रंग का होता है। भंभीरियों में चर्वण मुखाँग होते और ये परभक्षी होती हैं। सिर अच्छी तरह घुमाया-फिराया जा सकता है और उस पर दो बहुत छोटे ऐंटेना होते हैं, एक जोड़ी बहुत बड़ी संयुक्त आँखें होती हैं और 3 नेत्रक होते हैं। वक्ष फूला हुआ होता है, खंड तिरछे मुड़ गए हुए होते हैं जिससे कि उनके स्टर्नम तथा टाँगें

आगे की तरफ को खिसक जाती हैं; टाँगें चलने के काम न आकर पकड़ने वाली बन जाती हैं। दो जोड़ी बड़े सम-आकार पंख होते हैं जिनमें से हर एक में एक सुव्यक्त गहरे रंग का बिन्दु (stigma) होता है, बैठी हुई स्थिति में पंख खुले रखे जाते हैं। उदर लंबा और 10 खंडों वाला होता है, 10वें खंड में से एक जोड़ी अधिगुदा (supra-anal) उपाँग निकले होते हैं जो मादा में छोटे होते हैं, लेकिन नर में बड़े आलिंगकों (claspers) का रूप ले लेते हैं। नर में उदर के 2रे और 3रे स्टर्नमों पर मैथुन अंग बने होते हैं, इनमें आलिंगकों अथवा **हेमुलसों** (hamuli) का एक अग्र जोड़ा होता है जो मैथुन के समय अण्डनिक्षेपक को थामे रहते हैं, और दोनों हेमुलसों के बीच में एक मध्य **शिश्न** (penis) होता है। एक जोड़ी नर जननछिद्र 9वें स्टर्नम पर बने होते हैं। मादा में एक जनन-छिद्र ८वें स्टर्नम पर होता है, एक छोटा अण्ड़निक्षेपक पाया जाता है।

भंभीरियों के निम्फ़ जलीय होते हैं, लेबियम लंबा और एक **परिग्राही अंग** के रूप में रूपांतरित हो गया होता है जिसमें हुक-जैसे पैल्प होते हैं, इसे ये कीट खाने के वास्ते जलीय प्राणियों को पकड़ने में इस्तेमाल करते हैं। मलाशय के अस्तर से **मलाशयी गिल** (rectal gills) बने होते हैं, और श्वसन के लिए जल मलाशय के भीतर खींच लिया जाता है।

8. **साइमेक्स** (*Cimex*) (खटमल)—शरीर अंडाकार, पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा हो गया हुआ और एक लाल-भूरे से रंग का होता है। शीर्ष छोटा, चौड़ा और अग्रवक्ष के पार्श्व प्रसारों के भीतर टिका हुआ होता है; ऐंटेना 5-संधित, संयुक्त नेत्र सुनिर्मित लेकिन नेत्रक नहीं होते, क्लाइपियस स्पष्ट होता है। मुखाँग एक 4-संधित चूषण **रॉस्ट्रम** बनाते हैं, जो शीर्ष के नीचे बनी एक अधर खाँच में टाँगों की पहली जोड़ी तक पहुँचा हुआ पड़ा होता है; पैल्प नहीं होते। रॉस्ट्रम एक गहरी खाँच बने, संधित लेबियम का बना होता है; खाँच के समीपस्थ भाग पर एक छोटा लेब्रम ढका होता है, खाँच के भीतर युग्मित सूई-जैसे मैंडिबल और मैक्सिला होते हैं, मैंडिबलों के अन्तिम सिरे दंतुरित होते हैं जिनके द्वारा खाल में वेधन किया जा सकता है, दोनों मैक्सिला एक दूसरे से निकट सटे हुए होकर दो नलिकाएँ बनाते हैं एक तो खाद्य-नलिका होती है जिसमें से होकर रक्त चूसा जाता है और दूसरी निचली लार-नलिका होती है जिसमें से लार निकलती है। एक सूक्ष्म हाइपोफ़ैरिंक्स होता है।

वक्ष में एक बड़ा अग्रनोटम होता है, मध्यवक्ष में एक जोड़ी ठूंठ-जैसे अवशेषी **अर्धपक्षवर्म** (hemielytra) होते हैं। टाँगों में 3-संधित टार्सस होते हैं और हर एक में दो-दो नखर होते हैं। उदर में 10 खंड होते हैं, 10वाँ खंड छोटा होता है और उसमें गुदा बनी होती है। नर में 9वें स्टर्नम में एक हुक वाला ईडिएगस (शिश्नाग्रिका) होता है जो शुक्राणुओं को मादा में पहुँचाता है। मादा में 8वाँ और 9वाँ स्टर्नम दो-दो भागों में कटे होते हैं। लूम नहीं होते, उदर का पश्च सिरा मादा में गोल

होता है लेकिन नर में कुंद रूप में नुकीला होता है। मादा के 5वें स्टर्नम में उसकी दाहिनी ओर एक दरार होती है जिसमें **बरलीज-अंग** (Berlese organ) खुलता है, इस अंग में को नर के शिश्न द्वारा शुक्राणु पहुँचा दिए जाते हैं, ये शुक्राणु वेधन करते हुए अण्डवाहिनियों में पहुँच जाते हैं।
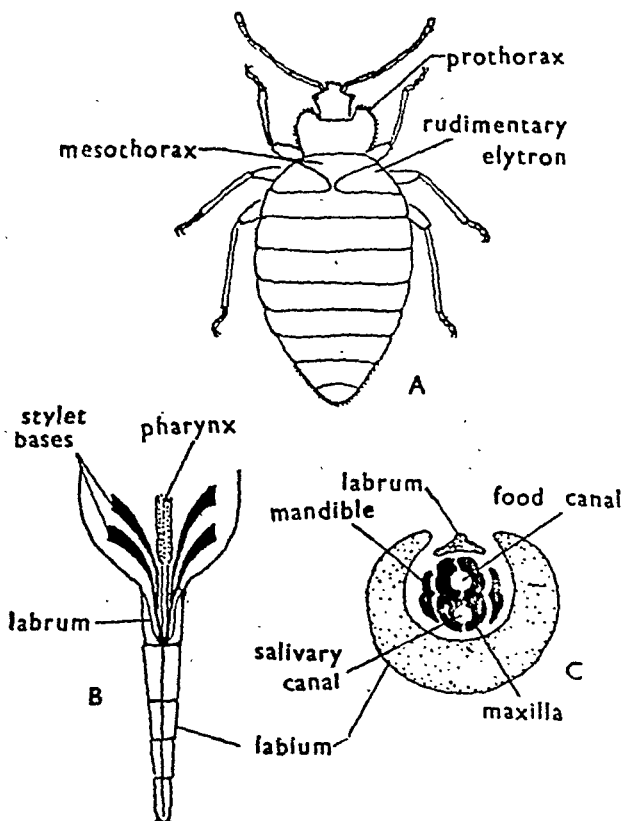
चित्र 422. A—**साइमेक्स रोटंडैटस** (*Cimex rotundatus*); B—खटमल के मुखाँग; C—रॉस्ट्रम का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Prothorax, अग्रवक्ष; mesothorax, मध्यवक्ष; rudimnetary elytron, मूलाँगी पक्षवर्म; stylet bases, शूकिका-आधार; pharynx, ग्रसनी; labrum, लेब्रम; labium, लेबियम; mandible, मैंडिबल; food canal, खाद्य-नलिका; maxilla, मैक्सिला; salivary canal, लार-नलिका।

साइमेक्स पक्षियों और स्तनियों का एक बाह्यपरजीवी है, इसकी दो स्पीशीज़ मनुष्य की अस्थायी बाह्यपरजीवी होती हैं : एक तो **सा० रोटंडैटस** (*C. rotundatus*) अथवा **सा० हेमिप्टेरस** (*C. hemipterus*) जो एशिया और अफ्रीका में पाई जाती तथा जिसमें अग्रवक्ष का पश्च सीमान्त गोल हो गया होता है; और दूसरी **सा०**

लेक्टुलेरियस (*C. lectularius*) जो यूरोप और अमेरिका में पाई जाती और जिसमें अग्रवक्ष का पश्च सीमांत सीधा होता है। खटमल गंदे घरों में रहते हैं तथा ये रात्रि-चर होते हैं, दिन के समय दीवारों, फर्श तथा फर्नीचर में दरारों आदि में छिपे रहते हैं, रात को आहार करने के वास्ते बाहर निकल आते हैं, ये खाल में वेधन करके रक्त चूसते हैं, इनके काटने से सूजन आ जाती और खाज-जलन पैदा हो जाती है। खटमल बिना आहार किए 6 महीने या उससे भी ज्यादा समय तक जीवित रह सकता है। ये दरारों में अंडे देते हैं, इनकी मादा बैचों में 200-से-500 तक अंडे देती है; अण्डे 1mm. लंबे पीले-सफेद से रंग के होते हैं, हर अण्डा ढोल की आकृति का होता है जिसमें लघु-द्वार से युक्त एक सिरे पर उभरा हुआ ढक्कन होता है; गर्म देशों में अंडे वर्षपर्यन्त दिए जाते रहते हैं, अण्डों में से 8 दिन में निम्फ़ निकल आते हैं, ये पीले रंग के होते हैं, 5 इन्स्टारों के बाद जिनमें 7 से 24 सप्ताह लग जाते हैं ये वयस्क बन जाते हैं। ऐसा शक किया जाता है कि खटमल मनुष्यों में कुछ बीमारियाँ फैलाते होंगे खास तौर से काला-आज़ार और गिल्टी-प्लेग लेकिन इस दिशा में कोई सबूत नहीं मिलता है, कदाचित् वे किसी मानव-रोग के वाही नहीं हैं।

9. **डिस्डर्कस** (*Dysdercus*) (कपास-रंजी)—यह काले एवं लाल रंग का पादपभक्षी कपासी-मत्कुण (बग) होता है। शीर्ष छोटा, संयुक्त नेत्र बड़े, नेत्रक अविद्य-मान, एक लंबा 4 संधित रॉस्ट्रम होता है जो वेधन एवं चूषण का काम करता है; अग्रवक्ष बड़ा होता है, लम्बे संकीर्ण पंख उदर से और पीछे तक फैले होते हैं, पहली जोड़ी अर्धपक्षवर्म होते हैं जिनके आधारीय भाग कड़े क्यूटिकलीय और वर्णकयुक्त होते हैं तथा दूरस्थ भाग झिल्लीदार होता है, अर्धपक्षवर्म विश्रामावस्था में एक-दूसरे को ढके रहते हैं। दूसरी जोड़ी पंख झिल्लीदार और नरम होते हैं। **डिस्डर्कस** की अनेक स्पीशीज़ हैं जो दूर-दूर तक पाई जाती हैं। **डिस्डर्कस सिंगुलेटस** (*Dysdercus cingulatus*) भारत में कपास का एक गंभीर नाशक जीव है, यह कपास के डोडों पर आहार करता है, यह उनमें वेधन करता और एक सूक्ष्मजीव को उसमें प्रविष्ट करा देता है जो कपास के रेशों को रंग देता है, यह माल्वेसी फ़ैमिली का भी नाशक जीव है। **फ़ोनोक्टोनस** (*Phonoctonus*) एक बग है जो इसका प्राकृतिक शत्रु है, यह डिस्डर्कस-जैसा दीखता है और उसी पर आहार करता है।
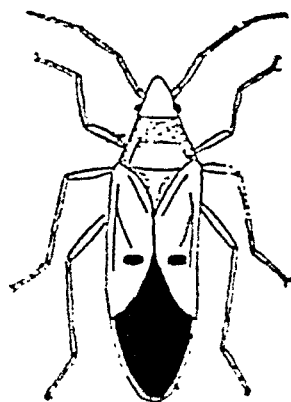
चित्र 423. **डिस्डर्कस**

10. **ड्रॉसिचा** (*Drosicha*) (मीली-बग)—इसमें एक छोटा रॉस्ट्रम होता है जिससे वेधन और चूषण किया जाता है। टार्सस 1-संधित होता है और एक-एक नखर होता है। नर 6mm. लम्बा और उसका देह गहरे लाल रंग का होता है, केवल अग्र जोड़ी पंख पाए जाते हैं, पिछले पंख एक जोड़ी हाल्टीयर (haltere) होते हैं; मुखाँग नहीं होते; उदर 8-खंडीय होता है और एक ईडिऐगस होता है तथा 3 जोड़ी

लंबे सूत्राकार प्रवर्ध होते हैं। मादाओं की अपेक्षा नरों की संख्या थोड़ी होती है। मादा 12 mm. लम्बी होती है, इसमें पंख नहीं होते और खंडीभवन अदृश्य हो गया है, इसमें एक मोमिया आवरण अण्डाकार शरीर पर बना होता है, आँखें नहीं होतीं, यह रेंग कर चला करता है। भारत में **ड्रॉसिचा स्टेबेंजाई** (*Drosicha stebbengi*) एक आम मीली बग् है,-इसके निम्फ़ आम के अन्तिम प्ररोहों तक चढ़ कर पहुँच जाते
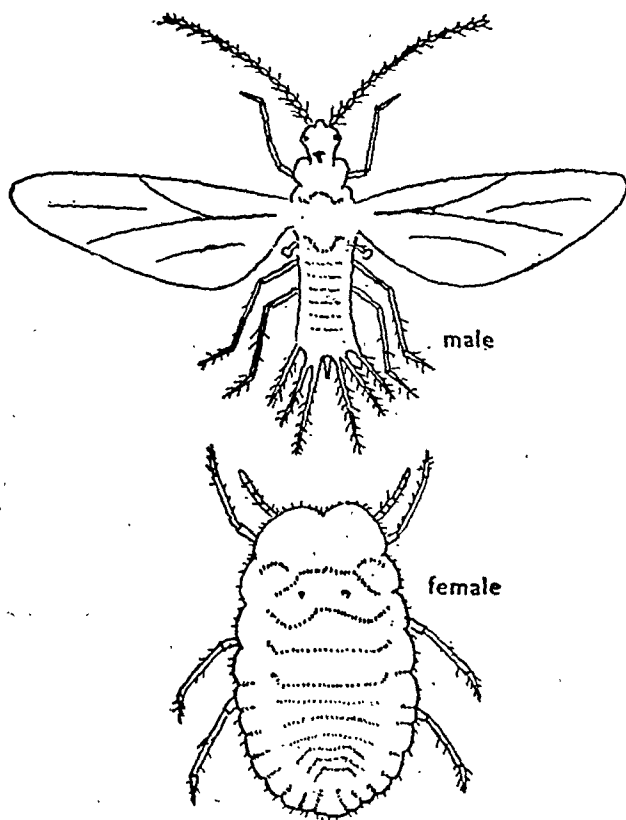
चित्र 424. **ड्रॉसिचा स्टेबेंजाई** (*Drosicha stabbengi*), नर और मादा। male, नर; female, मादा।

हैं जहाँ वे स्तंभों, पत्तियों और पुष्पदल पर चिपक कर पौधे का रस चूसते रहते हैं, इससे आम के फल का बनना रुक जाता है और छोटे फलों को यह कमज़ोर कर देता है जिससे वे झड़ जाते हैं। यह आलूचा, सिट्रस फलों, कटहल, पपीता और नाशपाती पर भी आक्रमण करता और उनका रस चूसता है। **ड्रॉसिचा** से फलों की फसल घट जाती है और उससे काला कवक बनने लगता है। नर पेड़ों पर ही मादाओं को निषेचित कर देते हैं, उसके बाद मादा या तो रेंग कर नीचे आ जाती या नीचे गिर पड़ती है और मिट्टी में अण्डे देती है, ये अण्डे 300 से 400 तक की संख्या में समूहों में दिये जाते हैं। 8 महीने के बाद अण्डों में से बच्चे निकलते हैं, और ये निम्फ़ चढ़कर पेड़ों पर पहुँच जाते और तीन निम्फ़-इन्स्टारों के बाद वयस्क बन जाते हैं।

11. **टैकार्डिया लाका (-लैकिफ़र)** (*Tachardia lacca*) (*-Laccifer*) (लाख-कीट)—यह भारत से लेकर फ़िलीपीन द्वीपों तक पाया जाता है। इसमें एक छोटा वेधनी और चूषणी रॉस्ट्रम होता है। नर में द्विरूपता के साथ-साथ पीढ़ी एकांतरण पाया जाता है, पहली पीढ़ी में अपंखी और पंखी दोनों रूप होते हैं, दूसरी पीढ़ी में सिर्फ अपंखी नर होते हैं, ये दोनों पीढ़ियाँ एक वर्ष में बनती हैं। नर में चार बड़े नेत्रक होते हैं, दो पृष्ठ और दो अधर, संयुक्त नेत्र नहीं होते। टार्सस 1 संधित और उनमें एक-एक नखर होता है। उदर में 8 खंड होते हैं तथा एक ईडिऐगस और युग्मित सूत्राकार प्रवर्ध होते हैं। मादा अपविकसित, शल्क-जैसी, अपंखी, बिना टाँगों वाली होती है, सूक्ष्म ऐंटेना होते हैं, शरीर गोल-गोल होता है जिसमें चूषणी मुखांग एक 2-संधित रॉस्ट्रम बनाते हैं, शरीर से 3 नलिकाकार प्रवर्ध निकलते हैं जिनमें से एक प्रवर्ध पर गुदा और शेष दो पर मध्यवक्षीय श्वास-रंध्र होते हैं।

चित्र 425. **टैकार्डिया लाका जो फ़ाइकस की टहनी पर पपड़ी बनाए हुए है।** Twig, टहनी।

मादा-कीट पेड़ की शाखा के ऊपर रेज़िनी पदार्थ की एक घनी कोठरी में बन्द रहता है, लाख को यह अपनी त्वचा-ग्रंथियों से एक सुरक्षा-आवरण के रूप में बनाता है। व्यापार का कच्चा-लाख रेज़िन और रंगने वाले कुछ पदार्थ का बना होता है, इसे चपड़ा बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। लाख को टहनियों पर से हटा लिया जाता है, गरम पानी में पिघला लिया जाता है और उसके बाद चपड़ा बनाने के लिए उसे साफ कर लिया जाता है। हर वर्ष भारत में 40 लाख पौंड चपड़ा बनाया जाता है, यह कुछ तो निर्यात कर दिया जाता है और कुछ भाग देश में ही वार्निश, पेंट और आभूषण बनाने में इस्तेमाल हो जाता है। भारत में वे पेड़ जिनमें गोंद अथवा रेज़िन होते हैं टैकार्डिया के परपोषी वृक्ष होते हैं, जैसे ब्यूटिया (*Butea*), फ़ाइकस (*Ficus*) और ऐकेशिया (*Acacia*)। वृक्ष का असर उस पर बनने वाले लाख के रंग एवं मात्रा पर पड़ता है। किरमिजी लाख रंग मादाओं के शरीर से निकलता है। एक परभक्षी मॉथ (शलभ) **यूब्लेमा** लाख-कीट का प्राकृतिक शत्रु है और इसे खाता है।

12. **पेडिकुलस** (*Pediculus*) (जूँ)—यह मनुष्य का एक पंखहीन बाह्यपर-जीवी है; यह बन्दरों तथा कपियों में भी पाई जाती है। शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा होता है। शीर्ष शंक्वाकार और लम्बा होता है, जिस पर छोटे 3-संधि वाले ऐंटेना होते हैं, संयुक्त नेत्र सुविकसित होते हैं, नेत्रक नहीं होते। मुखांग वेधन तथा

चूषण के लिए बहुत ज्यादा रूपांतरित हो गए हैं, मुखांगों की समजातता स्पष्ट नहीं है इनमें एक नलिकाकार **हॉस्टेलम** (शुंड) होता है जिसके अन्तिम सिरे पर दाँत बने होते हैं, हॉस्टेलम के भीतर तीन शूकिकाएँ पड़ी होती हैं जो वेधन का कार्य करती हैं और भीतर को एक शूकिका-कोश (stylet sac) में सिकोड़ ली जा सकती हैं, वास्तव में जब इस्तेमाल नहीं हो रहे होते तब मुखांग शीर्ष में को सिकोड़े हुए रहते हैं। अशन करने में हॉस्टेलम बाहर आ जाता, इसके दाँत परपोषी की खाल में गढ़ जाते, शूकिकाएँ खाल में सूराख करतीं और उसी समय लार उस सूराख में छोड़ दी जाती है तथा एक ग्रसनी नलिका घाव में प्रविष्ट की जाती है और उसके द्वारा रक्त चूसा जाता है। वक्ष छोटा होता है, इसके खंड समेकित होते हैं, टाँगें मजबूत, और 1-संधित टार्सस होते हैं जिनके अन्त में एक ही शक्तिशाली और घुमाया जा सकने वाला नखर होता है; यह नखर टिबिया के एक प्रवर्ध के प्रति खुल और बन्द हो सकता है और इस तरह एक कीला-जैसी रचना बना लेता है जो परपोषी के बाल को कसकर जकड़े रखने का काम करती है। उदर 9-खंड वाला होता है और चौड़ा होता है, इसके टर्गम और स्टर्नम हल्के काइटिनित होते हैं लेकिन प्ल्यूरॉन अधिक काइटिनित एवं वर्णकित होते हैं। पृष्ठ सतह पर श्वास-रंध्र होते हैं, 1 जोड़ी वक्ष पर और 6 जोड़ी उदर पर। उदर का अन्तिम भाग मादा में एक खाँच बना हुआ होता है लेकिन नर में गोलाई लिए हुए होता है। लूम नहीं होते। नर में उदर का पश्च सिरा ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ होता है जिससे गुदा और जनन-छिद्र दोनों ही पृष्ठ दिशा पर आ जाते हैं, 8वें स्टर्नम पर खांच बना हुआ एक ईडिएगस होता है। मादा में जनन छिद्र 8वें स्टर्नम पर होता है और इसमें एक जोड़ी छोटे **जनन-पाद** (गोनोपौड) होते हैं जो अण्डे देने के समय बाल को पकड़ लेते हैं।
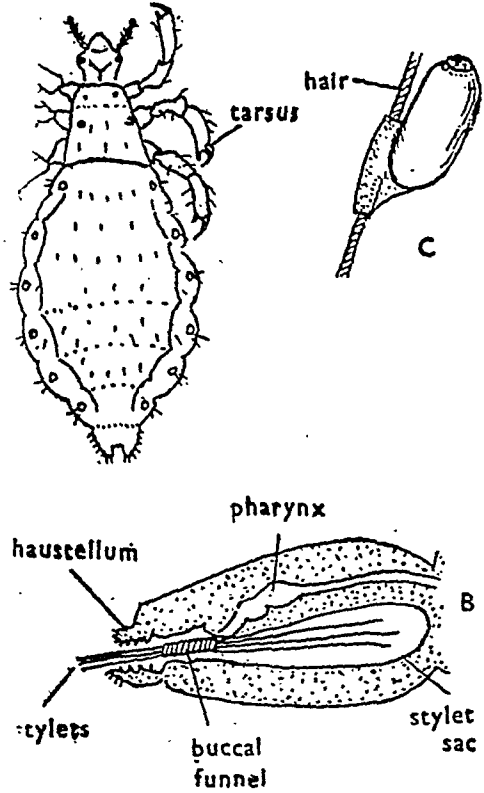
चित्र 426. पेडिकुलस ह्यूमैनस कॉर्पोरिस (*Pediculus humanus corporis*)
B—मुखाँग; C—बाल से चिपका हुआ अंडा
Tarsus, टार्सस; hair, बाल; stylets, शूकिकाएँ; pharynx, ग्रसनी; buccal funnel, मुख कीप; stylet sac, शूकिका-कोश।

पेडिकुलस ह्यूमैनस की दो प्रजातियां (races) होती हैं, 1. **पै० ह्यूमैनस कैपिटिस** (*P. humanus capitis*) अथवा सिर की जूँ, यह सिर पर बालों में रहती और वहीं अण्डे देती है, यह अपेक्षाकृत छोटी होती है, ऐंटेना मोटे होते और उदर-खंडों का विभाजन अधिक स्पष्ट होता है। 2. **पै० ह्यूमैनस कार्पोरिस** (*P. humanus corporis*) अथवा बदन की जूँ, यह कपड़ों की सलवटों या सीवन आदि में रहती है लेकिन आहार करने के लिये खाल पर पहुँच जाती है और अण्डे कपड़ों अथवा शरीर के बालों पर देती है, यह अपेक्षाकृत बड़ी और ज्यादा हल्के रंग की होती है, ऐंटेना पतले होते हैं और उदर खंडों का विभाजन स्पष्ट नहीं होता।

ये दोनों प्रजातियाँ मुक्त रूप में परस्पर प्रजनन करती हैं। **पेडिकुलस** प्रतिदिन 8 से 12 अण्डे देती है, हर अण्डा ढोलाकार और एक आपर्कुलम (प्रच्छद) से युक्त होता है, दूसरा सिरा एक आसंजक पदार्थ द्वारा बाल अथवा कपड़ों पर चिपका होता है। एक सप्ताह में बच्चे निकल आते हैं जो 3 निर्मोचनों के बाद वयस्क बन जाते हैं।

पेडिकुलस द्वारा **रिकेट्सिया** फैलता है जो टाइफ़स ज्वर का जीवधारी होता है, यह एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में त्वचा के वेधनों के द्वारा पहुँच जाता है। इससे ट्रेंच-ज्वर का रोगकारी जीव तथा आवर्ती ज्वर का स्पाइरोकीट भी फैलते हैं, ये रोग त्वचा के वेधन के द्वारा नहीं फैलते बल्कि उसके मल अथवा मानव त्वचा पर जूँ के मसल जाने से फैलते हैं।

13. **मिर्मेलियॉन** (*Myrmelion*) (पिपीलिका-व्याघ्र मक्खी, ant-lion fly)—यह कुछ-कुछ ड्रैगन-फ्लाई जैसी दिखाई पड़ती है, यह दिन में छिपी रहती और रात को बाहर निकलती है। शरीर और पंख रोमिल होते हैं, शीर्ष बड़ा जिस पर संयुक्त नेत्र और छोटे ऐंटेना होते हैं—इन ऐंटेनाओं का अन्तिम सिरा घुण्डीदार होता है, मुखांग काटने वाले होते हैं, पैल्प लम्बे। पंख बड़े और बराबर आकार के
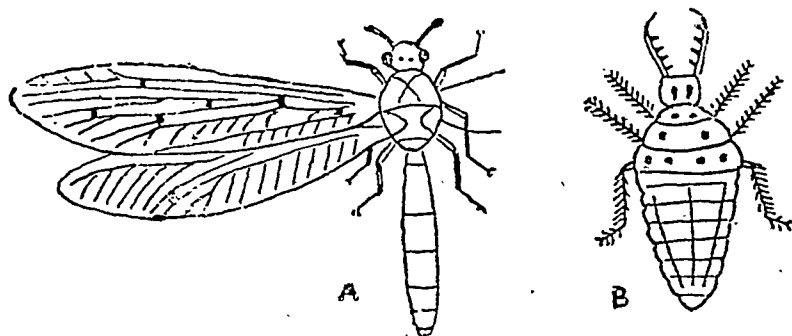
चित्र 427. *A*—**मिर्मेलियॉन** (*Myrmelion*); *B*—लार्वा

होते हैं जिन पर भूरे और काले चिन्ह बने होते हैं, बैठते समय ये पंख उदर के ऊपर ढलवां छत बना लेते हैं। उदर लम्बा और पतला होता है जिसमें केवल नर में एक जोड़ी लूम होते हैं। अण्डे रेत में दिये जाते हैं, लार्वा एक गढ़ा खोद लेता है जिस

की दीवारें एक शंकु की तरह ढलवां होती हैं, लार्वा अपने को गढ़े के नीचे गड़ाए रखता है सिर्फ लम्बे जवड़े गढ़े की तली में उभरे रहते हैं, जब कोई शिकार गढ़े में गिरता है तो यह झटके से उसके ऊपर को रेत उछालता है, जवड़ों से शिकार को पकड़ लेता है और उसके शरीर के रस को चूस लेता है। कुछ स्पीशीज़ के लार्वा वृक्षों के तनों में अथवा पत्थरों के नीचे छिपे पड़े रहते हैं जहाँ वे चींटियों का शिकार करते हैं। लार्वा में चपटा गतिशील शीर्ष होता है, बड़े-बड़े दरांती-जैसे जवड़े होते हैं और उनमें तेज़ दाँत बने होते हैं; मैक्सिला जवड़े-जैसे होते और मैंडिवलों की खाँचों में फिट होते हैं, उदर चौड़ा होता है। प्यूपा एक्सैरेट होता है जिसमें टाँगें मुक्त होती हैं।

14. पैपिलियो (*Papilio*) (तितली)—**पैपिलियो** सारे विश्व में पाई जाती है, इसकी अनेक स्पीशीज भारत में आम पाई जाती हैं, इनमें दो जोड़ी बड़े भड़कीले पंख होते हैं जिनका रंग काला और पीला होता है जिनमें कुछ नीले तथा लाल धब्बे बने होते हैं। पंखों का सीमान्त लहरदार होता है और उसमें एक पूंछ की तरह का प्रसार एवं एक दृक्-बिन्दु होता है। तितलियों में शीर्ष, वक्ष और उदर स्पष्टतः अलग-अलग होते हैं। शरीर, पंखों और उपांगों के ऊपर चौड़े तथा अतिव्यापी शल्क होते हैं, पंखों के शल्कों में विविध रंग पाए जाते हैं जो प्राकृतिक वरण के प्रभाव के अधीन होते हैं। शीर्ष में ऊपर एक एपिक्रेनियम होता है, सामने की ओर समेकित फ्रॉन्स और क्लाइपियस का एक फ्रॉन्टो-क्लाइपियस होता है, एक लेब्रम, और नीचे की ओर एक छोटा एपिफैरिंक्स होता है। ऐंटेना पतले और अन्त में घुंडीदार होते हैं। मैंडि-

चित्र 428. **पैपिलियो पैमॉन** (*Papilio pammon*)
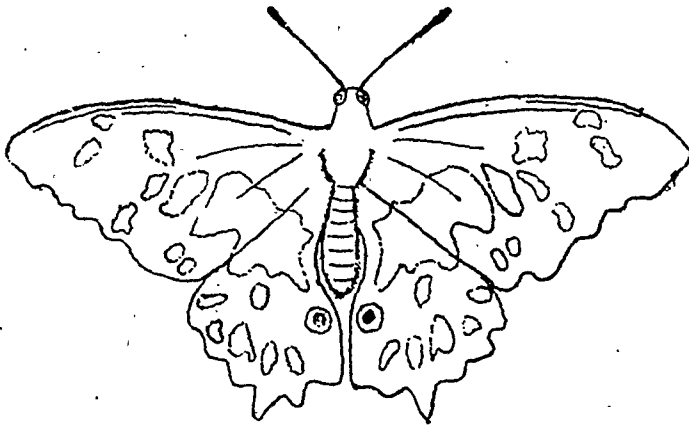
वल अविद्यमान, मैक्सिलाओं के गेलिया लम्बे और भीतर की तरफ खाँच-युक्त होते हैं, एक-दूसरे में फंसे हुए हुकों के द्वारा ये दोनों गेलिया एक साथ लगे रहते और इस तरह एक नलिकाकार सूँड बन जाती है जिसमें चूसने के लिए एक खाद्य-नलिका बन जाती है। इस्तेमाल न होने के समय सूँड वक्ष के नीचे सर्पिल रूप में कुण्डलित पड़ी रहती है, और फूलों के मकरन्द अथवा फलों के रस को चूसने के समय यह सीधी लम्बी कर दी जाती है। मैक्सिलरी पैल्प छोटे होते हैं, लेब्रियम के कुछ भाग ह्रासित होते हैं, लेकिन एक जोड़ी 3-संधित लेबियल पैल्प होते हैं और मुख के फ़र्श पर एक

हाइपोफैरिंक्स होता है। अग्रवक्ष ह्रासित होकर एक संकीर्ण कॉलर के रूप में होता है, मध्यवक्ष बड़ा और पश्चवक्ष छोटा होता है। वक्ष में दो जोड़ी बड़े झिल्लीदार पंख होते हैं, अगली जोड़ी के पंख फैली हुई अवस्था में पिछले पंखों को थोड़ा-सा ढके होते हैं और वे दोनों एक साथ मिलकर एक ही जोड़ी के रूप में कार्य करते हैं। टाँगों में लम्बे कॉक्सा होते हैं, टार्सस 5-संधित और दो नखरों से युक्त होते हैं। उदर में 10 खंड होते हैं, लेकिन पहला खंड ह्रासित होता है। मादा में सातवाँ टर्गम बड़ा होता
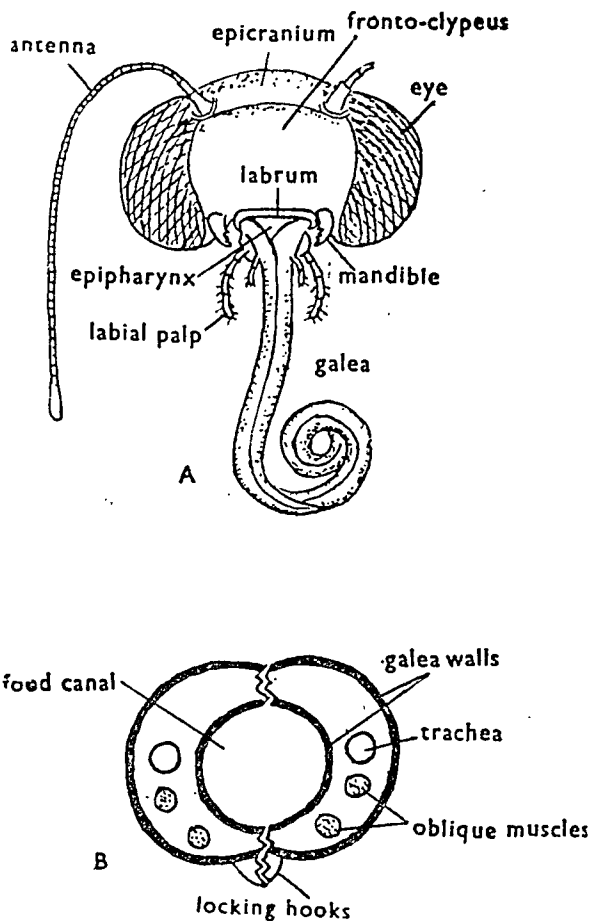
चित्र 429. A—तितली का शीर्ष और मुखांग। B—सूंड का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)

Antenna, ऐंटेना; epicranium, एपिक्रेनियम; fronto-clypeus, फ्रॉन्टो-क्लाइपियस; eye, नेत्र; labrum, लेब्रम; mandible, मैंडिबल; epipharynx, एपिफ़ैरिंक्स; labial palp, लेबियल पैल्प; galea, गेलिया; food canal, खाद्य-नलिका; galea walls, गेलिया की दीवारें; trachea, वातिका; oblique muscles, तिरछी पेशियाँ; locking hooks, बन्धक हुक।

है, जनन-छिद्र 10वें टर्गम के नीचे होता है। नर में एक जोड़ी आलिंगक और एक ईडिऐगस (शिश्न) होता है।

लार्वा में एक छोटा शीर्ष, 3-खंडी वक्ष और 10-खंडी उदर होता है। शीर्ष पर नेत्रक दो समूहों में बने होते हैं, 3-संधित ऐंटेना होते हैं तथा शक्तिशाली मैंडिबल होते हैं। लेबियम में ग्रन्थियाँ होती हैं जो प्यूपा को बन्द करने वाले रेशम का निर्माण करती हैं। वक्ष में 3 जोड़ी छोटी टाँगें होती हैं जिनमें एक-एक नखर होता है। उदर के खंड 3 से 6, और 10 में एक-एक जोड़ी मांसल **प्रपाद** (prolegs) पाए जाते हैं। तितलियों के लार्वा पुष्पी पौधों का आहार करते हैं और भारी क्षति पहुँचाते हैं। **पैपिलियो** के लार्वा बेल, नींबू और नारंगियों के पेड़ों की पत्तियाँ खाते हैं। प्यूपा ऑब्टेक्ट प्रकार का होता है जिसके पाँव देह से समेकित रहते हैं, केवल पिछले उदर खंड ही थोड़े से गतिशील रहते हैं, 10वें खंड में एक छोटा-सा प्रवर्ध **क्रीमैस्टर** (cremaster) होता है जिसके द्वारा यह अपने रेशमी आलम्ब से चिपका रहता है।

15. **सर्पोफ़ैगा** (*Scirpophaga*) (मॉथ या शलभ)—**सर्पोफ़ैगा** एक पतला घास-मॉथ होता है। इसके पंख सफेद और शरीर भूरा-सा होता है। **स० मॉनोस्टिग्मा** (*S. monostigma*) में हर अग्र-पंख पर एक काला चिन्ह होता है। यह दिन के समय धान और गन्ने की पत्तियों में छिपा रहता और रात को बाहर निकल आता है। सूँड छोटी होती है और लेबियल तथा मैक्सिलरी पैल्प सुनिर्मित होते हैं। वक्ष रोमिल होता है और उस पर लम्बी टाँगें बनी होती हैं। इसके लार्वा मूँज घास, धान और गन्ने के तनों में वेधन करते जाते और भारी क्षति पहुँचाते हैं।
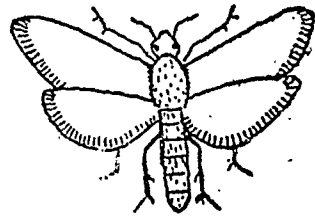
चित्र 430. **सर्पोफ़ैगा ऑरिफ़्लुआ** (*Scirpophaga auriflua*)

लेपिडॉप्टेरा को प्रायः दो वर्गों में बांटा जाता है, **रोपैलोसेरा** (*Rhopalocera*) में तितलियाँ और **हेटेरोसेरा** (*Heterocera*) में मॉथ रखे जाते हैं। तितलियों की तथा मॉथों की संरचना बहुत ज्यादा समान रहती है, लेकिन कुछ स्पष्ट विभेदों के द्वारा इन्हें अलग-अलग पहचाना जा सकता है: तितलियाँ दिवाचर होती हैं, इनमें सामान्यतः पतला शरीर होता है, इनके ऐंटेना सूत्र-जैसे और अन्त में घुण्डीदार होते हैं, बैठते समय पंख देह के ऊपर सीधी खड़ी स्थिति में रखे जाते हैं, मॉथ अधिकतर रात्रि-चर होते हैं, प्रायः इनका शरीर मोटा होता है, इनके ऐंटेना सूत्र-जैसे और पिच्छाकार होते हैं तथा उनके अन्त पर घुण्डी नहीं बनी होती, बैठते समय पंख उदर के ऊपर ढकते हुए मोड़ लिए जाते हैं। अधिकतर मॉथों में एक फ्रीनुलम (frenulum) होता है जो पिछले पंखों के सामने वाले सीमान्त पर बने हुए काँटों का एक गुच्छा होता है; तितलियों में फ्रीनुलम नहीं होता।

लेपिडॉप्टेरा के लार्वाओं का बहुत ज्यादा आर्थिक महत्त्व होता है, इनमें से अधिकतर लार्वा वृक्षों और फसलों के प्ररोहों तथा पत्तियों को खाते हैं और कुछ लार्वा फ़सली पौधों के तनों और उनकी जड़ों में वेधन करते हैं, कुछ घरेलू चीजों को नष्ट करते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो भरी हुई चीजों को जैसे अनाज तथा आटे को नष्ट कर डालते हैं।

16. **बॉम्बिक्स मोराई** (*Bombyx mori*) (रेशम कीट)—यह चीन का रेशम-कीट है लेकिन मनुष्य द्वारा अन्य देशों में भी फैल गया है, वरण द्वारा इसकी अनेक प्रजातियाँ बनाई जा चुकी हैं, अब यह पूरी तरह गृह्यकृत (domesticated) हो चुका है और प्राकृतिक अवस्था में अब कहीं नहीं पाया जाता। वयस्क मॉथ में पंखों का प्रसार 40-45 mm. होता है और यह क्रीम-श्वेत रंग का होता है, और अगले पंखों पर भूरी रेखाएँ होती हैं। ऐन्टेना कंकतिकीय (pectinate) होते हैं, नेत्रक, पैल्प एवं मैक्सिला नहीं होते, लेकिन सूंड होती है। **बॉम्बिक्स** की समूची फैमिली में फ्रीनुलम नहीं होता (फ्रीनुलम शूकों का एक समूह होता है जो अगले तथा पिछले पंखों के स्पर्श क्षेत्र से निकले होते हैं)।

मादा लगभग 300 छोटे और पीले से रंग के अण्डे देती है। अण्डों से निकलने वाले केटरपिलर अथवा लार्वा रेशम के कीड़े (सिल्कवर्म) कहलाते हैं, ये चिकने और रोमहीन होते हैं, इनकी लम्बाई 4·0 से 4·5 mm. होती है, इन्हें सफेद शहतूत की पत्तियाँ खिलाई जाती हैं। लार्वा में त्वचा के भीतर 15 जोड़ी एककोशिक **निर्मोकी ग्रंथियाँ** (exuvial glands) होती हैं, जिनका स्राव निर्मोचन में सहायता करता है।
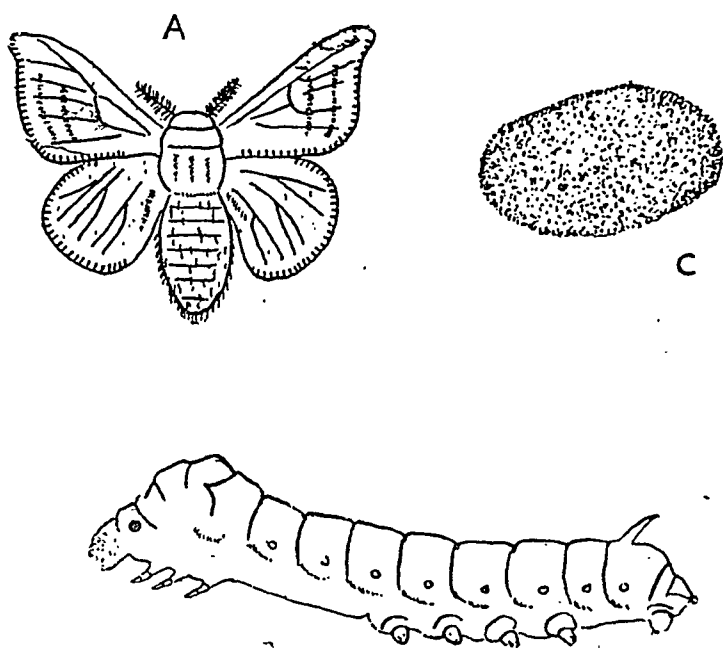
चित्र 431. **बॉम्बिक्स मोराई**। A—मॉथ; B—लार्वा; C—ककून।

8वें उदर खण्ड पर पृष्ठत: एक **गुदा श्रृंग** (anal horn) होता है, लेबियल ग्रन्थियाँ रेशम उत्पादक अंगों में रूपान्तरित हो जाती हैं, रेशम लेबियम पर स्थित एक मध्य वयित्र द्वारा बुना जाता है। लार्वा 15 दिन में पूर्ण बड़ा हो जाता है और अपने चारों ओर रेशमी सूत्र का एक ककून बुन लेता है, ककून मोटा और अण्डाकार होता है और उसमें लगभग 2000 फुट रेशमी धागा आता है, प्यूपायन ककून के भीतर होता

है; 12 से 16 दिन में पूर्ण कीट बाहर आ जाता है। इस मॉथ में वर्ष के दौरान जलवायु परिस्थितियों तथा **बॉम्बिक्स मोराई** की प्रजातियों के अनुसार 1 से 6 बार प्रजनन होता है।

रेशम उद्योग में प्यूपाओं को खौलते पानी में डाल कर मार दिया जाता है और कच्चे रेशम को ककूनों पर से उधेड़ लिया जाता है, यह रेशम सफेद हो सकता है या पीला।

बॉम्बिक्स मोराई भारत में भी पाला जाता है, लेकिन एक भारतीय रेशम-कीट भी है जिसे **यूप्टेरोट** (*Eupterote*) कहते हैं, इसका मरा-मरा पीला-भूरा रंग होता है, ऐन्टेना कंकतिकीय होते हैं, सूंड नहीं होती, फ्रीनुलम होता है, इसका लार्वा अथवा रेशम-कीड़ा खुरदरा होता है जिसके ऊपर लम्बे बालों के गुच्छे और बहुसंख्यक द्वितीयक शूक होते हैं, लेकिन **वेरुका** (verruca) नहीं होते—वेरुका क्यूटिकल की उन गुलिकाओं को कहा जाता है जिन पर शूकों के गुच्छे बने होते हैं।

16. **बीटल** (Beetles)—जन्तु जगत् में सबसे बड़ा आर्डर कोलियॉप्टेरा का है जिसमें ढाई लाख से ऊपर की संख्या में ज्ञात स्पीशीज पाई जाती हैं। ये हवा जल और थल में पाये जाते हैं, ये मिट्टी में और सड़ते-गलते हुए जन्तु एवं पादप पदार्थों में रहते हैं। कुछ मांसभक्षी होते हैं, और हानिकर कीटों को नष्ट करने के नाते लाभदायक होते हैं, लेकिन अनेक बीटल पादपभक्षी होते हैं, वे कपास, चाय, कॉफी, आलू, लकड़ी और अनाज की फसलों को नष्ट करते और कुछ भण्डार में भरे अनाज को बरबाद कर देते हैं।

बीटलों की त्वचा ठोस होती है, स्क्लेराइट बहुत अच्छी तरह एक-दूसरे से फिट रहते हैं। अगले पंख रूपान्तरित होकर चर्मीय अथवा शृंगीय पक्षवर्म बना देते हैं जो बीचों-बीच एक सीधी रेखा में मिले होते हैं। पिछले पंख झिल्लीदार होते हैं, ये ह्रासित हो सकते हैं अथवा अविद्यमान भी हो सकते हैं। शीर्ष बहुत ज्यादा काइटिनित होता है जिससे कि केवल क्लाइपियस तथा लेब्रम ही स्पष्ट होते हैं; ऐन्टेना अधिकतर उदाहरणों में 11-संधित होते हैं, इनमें विविध आकृतियाँ पाई जाती हैं जैसे वे **सूत्राकार**, **कंकतीय** (pectinate) (एक पार्श्व में शाखाओं से युक्त), **मुद्गराकार** (clavate), **जेनिकुलेट** (geniculate) (कोहनी की तरह मुड़ा हुआ), या **पटलिकित** (lamellate) (खण्डों में पास-पास व्यवस्थित पत्ती-जैसी पटलिकाएँ होती हैं)। संयुक्त नेत्र होते हैं लेकिन नेत्रक सामान्यतः नहीं होते। मुखांग चबाने वाले होते हैं, जिनमें सुविकसित मैंडिबल होते हैं, मैक्सिलरी पैल्प 4-सन्धित होते हैं और लेबियल पैल्प 3-सन्धित। अग्रवक्ष बड़ा और गतिशील होता है, मध्यवक्ष छोटा और पश्चवक्ष से समेकित होता है। उदर टर्गमों और स्टर्नमों की संख्या में अनुरूपता नहीं होती, अनेक उदाहरणों में केवल 5 स्टर्नम होते हैं। नर में एक काइटिनी **ईडिऐगस** गुहा के भीतर छिपा हुआ पड़ा रहता है, मादा में एक नलिकाकार अण्डनिक्षेपक होता है जो अन्तःकर्षित खण्डों का बना होता है।

तमाम विविध वीटलों को चार मुख्य प्रखण्डों में रखा जा सकता है, (क) स्टैफिलिनिडी (Staphylinidae) में छोटे पक्षवर्म होते हैं जो उदर को खुला छोड़ देते हैं, उदाहरणतः **ऐटेमिलीस** (*Atemeles*), जो चींटियों के घरों में पाया जाने वाला एक सहरागी (symphile) होता है। (ख) स्कैरैविग्राइडी (Scarabeidae) में चौड़ा उन्नल शरीर होता है, ऐन्टेना पटलिकित होता है, पक्षवर्म उदर के अन्तिम सिरे को खुला छोड़ देता है, उदाहरण : **हीलियोकॉर्पिस** (*Heliocorpis*)। (ग) कुरकुलियोनिडी (Curculionidae) घुन होते हैं जिनमें शीर्ष आगे की ओर एक रॉस्ट्रम के रूप में निकला होता है, अन्त पर मुखांग वने होते हैं; उदाहरणः **कैलेन्ड्रा** (*Calandra*) (घ) इलेटरिडी (Elateridae) में संकीर्ण लम्बा शरीर होता है, अग्रवक्ष कोनों पर पीछे को निकला होता है, पक्षवर्म उदर को ढकें रहते हैं, उदाहरणः **ऐग्रिओटीस** (*Agriotes*)।

काइलोमीनिस (*Chilomenes*) (लेडी-वर्ड वीटल, lady-bird beetle)—यह मैदानों में आम पाया जाता है, यह गोल होता और इसमें लालपन लिए हुए पीला रंग होता है जिसमें हरएक पक्षवर्म पर 3 काले निशान वने होते हैं, तथा एक काला निशान अग्रवक्ष पर होता है, यह वहुत लाभकर होता है क्योंकि यह एफिडों (लाहियों) तथा शल्क-कीटों को खा जाता है। अण्डे लाहियों के समीप कपास के पौधों के ऊपर दिये जाते हैं। लार्वा लम्बा और कांटेदार होता है, यह काला होता है जिसके ऊपर पीले तथा सफेद धव्वे वने होते हैं, लार्वा वहुत ज्यादा संख्या में लाहियों को खाता है।
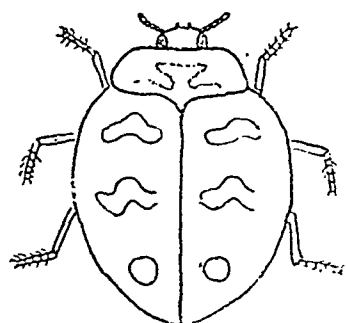
चित्र 432. **काइलोमीनिस सेक्सामैक्युलैटा** (*Chilomenes sexamaculata*)।

हीलियोकॉर्पिस (*Heliocorpis*) (गुवरीला, अथवा गोवर-वीटल, dung beetle)—इसकी भारत में अनेक स्पीशीज पाई जाती हैं जो गोवर के ढेरों में रहती हैं। शरीर धूसर से काले रंग तक का होता है, वह गोल होता, पक्षवर्म छोटे होते जो उदर के पिछले सिरे को विना ढका छोड़ देता है। ऐंटेना घुण्डीदार होते हैं, टाँगें मजवूत होती हैं जिनमें चौड़ी काँटेदार टिविया होती हैं, टार्सस पतले होते हैं। वड़ी स्पीशीज (**हीलियोकॉर्पिस जाइगस**) में चपटे शीर्ष तथा वक्ष में प्रवर्धी कांटे वने होते हैं। **हीलियोकॉर्पिस** का स्वभाव होता है कि वह गोवर की गोलियाँ वनाकर उन्हें जमीन पर
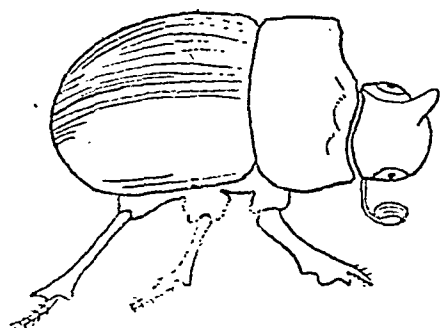
चित्र 433. **हीलियोकॉर्पिस व्यूसीफेलस** (*Heliocorpis bucephalus*)।

लुढ़काता जाता है, और कभी वे दो-दो वीटल मिलकर ऐसा करते रहते हैं जिनमें या तो एक ही लिंग के या नर-मादा के जोड़े हो सकते हैं, वे गोबर की इन गोलियों को या तो अपने भोजन के वास्ते अथवा उस पर अण्डे देने के लिए जमीन में गाड़ देते हैं, इनके लार्वा भी इन्हीं गोबर की गोलियों पर आहार करते तथा उनमें ही प्यूपा अवस्था गुज़ारते हैं।

ट्राइबोलियम (*Tribolium*) (अनाज का लाल बीटल)—यह लाल-लाल और भूरे से रंग का होता है, लम्बाई 5 mm., ऐन्टेना मुद्गराकार, मैंडिबल शक्ति-शाली, पक्षवर्म ऊपर से उदर को पूरी तरह छिपाये रहते हैं। यह दूर-दूर तक पाया जाता है, और स्टोरों, खत्तियों तथा भण्डारों में पाया जाता और जमा करके रखे गये अनाज को बहुत हानि पहुँचाता है।
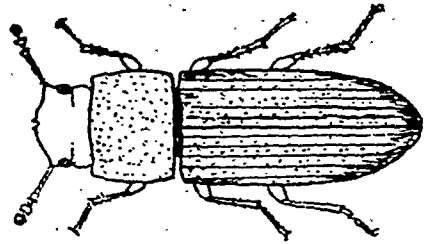
चित्र 434. **ट्राइबोलियम**।

17. **एपिस** (*Apis*) (मधुमक्खी)—यह एक सामाजिक कीट है जो 50,000 या अधिक प्राणियों के एक साथ रहते हुए कॉलोनी (मण्डल, निवह) बनाता है। हर कॉलोनी में एक रानी, कई नर अथवा **पुंमधुप (ड्रोन)** तथा असंख्य वंध्य मादा **कर्मी** होते हैं।

कर्मी (Workers)—मधुमक्खी के शरीर पर घने शूक बने होते हैं, इन शूकों में पार्श्व पिच्छिकाएँ बनी होती हैं, अविशाखित शूक संयुक्त नेत्र तथा टाँगों पर पाये जाते हैं। शीर्ष उतना ही चौड़ा होता है जितना कि वक्ष। शीर्ष शंक्वाकार होता है जिस पर संयुक्त नेत्र तथा तीन नेत्रक होते हैं, शीर्ष के स्क्लेराइट समेकित होते हैं, लेकिन क्लाइपियस स्पष्ट होता है। मुखांगों में ये भाग होते हैं: एक एपिफैरिंक्स,
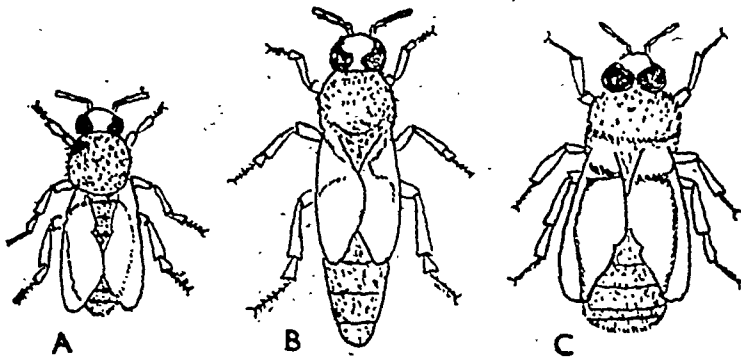
चित्र 435. **एपिस मेलिफेरा** (*Apis mellifera*)। A—कर्मी; B—रानी C—पुंमधुप।

लेब्रम, दो मैंडिबल, दो मैक्सिला, और एक लेबियम। लेब्रम की स्थिति क्लाइपियस के नीचे होती है, लेब्रम के नीचे एक मांसल एपिफैरिंक्स होता है जो एक स्वाद-अंग होता है। मैंडिबल चिकने और लेब्रम के हर पार्श्व में स्थित होते हैं, इनका इस्तेमाल

मोम को आकृति देने तथा छत्ता बनाने में होता है। लेबियम में ये भाग होते हैं, उपमेंटम, मेंटम, पराग्लौसा और एक ग्लौसा अथवा जीभ जिसमें एक लम्बा लेबियल पैल्प हर पार्श्व में होता है। ग्लौसा लम्बा और प्रसारशील होता है, इसके अन्तिम सिरे पर एक छोटा लैबेलम (labellum) होता है, ग्लौसा मकरन्द इकट्ठा करने में काम आता है, यह स्पर्श और स्वाद का बोध कराने वाला अंग होता है। दोनों मैक्सिला मेंटम के एक-एक पार्श्व में उसके ऊपर लगे होते हैं, इन मैक्सिलाओं पर मैक्सिलरी पैल्प बने होते हैं। दोनों मैक्सिला तथा दोनों लेबियल पैल्प एक नलिका बनाते हैं जो भीतर ग्लौसा को बन्द किये रहते हैं, यह ग्लौसा ऊपर नीचे हिलता-डुलता और मकरन्द इकट्ठा करता है, मैक्सिलाओं और लेबियल पैल्पों को परस्पर दबाने से
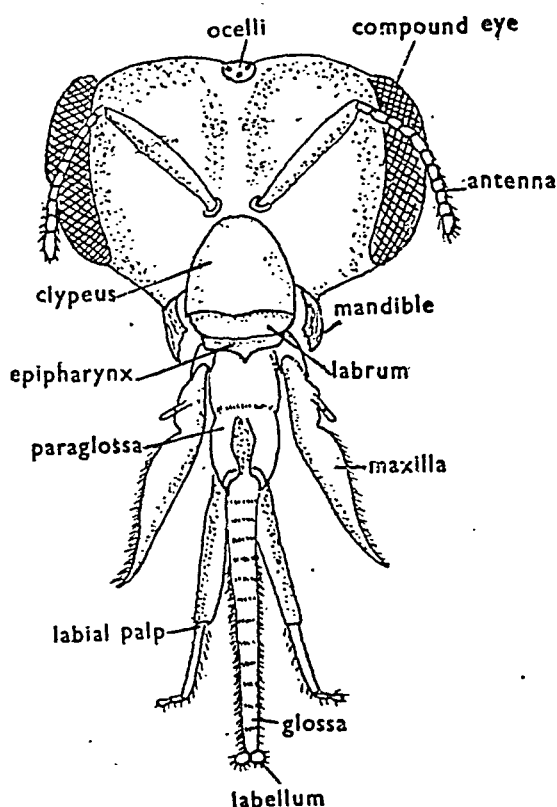
चित्र 436. कर्मी मक्खी का शीर्ष और मुखांग।
Ocelli, नेत्रक; compound eyes, संयुक्त नेत्रक; antenna, ऐंटेना; clypeus, क्लाइपियस; mandible, मैंडिबल; labrum, लेब्रम; epipharynx, एपिफ़ेरिंक्स; paraglossa, पराग्लौसा; maxilla, मैक्सिला; labial palp, लेबियल पैल्प; glossa, ग्लौसा; labellum, लैबेलम।

मकरन्द ऊपर को चढ़ता जाता है। ऐन्टेना छोटे और स्पर्श एवं गन्ध का ज्ञान कराने वाले होते हैं।

पहला वक्ष खंड जिसे **प्रोपोडियम** (propodeum) कहते हैं वक्ष से समेकित रहता है। अगले पंख पिछली जोड़ी पंखों से बड़े होते हैं। पिछले पंखों में हुक होते हैं जो अगले पंखों के पिछले सीमांत पर बनी एक खाँच में फ़िट हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप हर पार्श्व के पंख परस्पर बँध जाते हैं। **टाँगें** बहुत ज़्यादा रूपांतरित होती हैं, हर अग्रवक्षीय टाँग में टिबिया के ऊपर कड़े शूकों की एक पंक्ति होती है जो एक **नेत्र-ब्रुश** (eye brush) बनाते हैं; यह नेत्र-ब्रुश संयुक्त नेत्रों को साफ़ करने के काम आता है; टिबिया के दूरस्थ सिरे पर एक गतिशील काँटा बना होता है, इस काँटे को **वीलम** (velum) कहते हैं—यह टार्सस पर बने हुए एक खाँचे के ऊपर बन्द होकर एक **ऐंटेना कंकत** (antennal comb) बनाता है जिसमें से ऐंटेना को खींचते हुए साफ़ कर दिया जाता है, टार्सस पर बने लम्बे शूक एक **पराग-ब्रुश** (pollen brush) बनाते हैं जो शरीर के अगले भाग पर से पराग को हटाने के काम आता है। हर मध्यवक्षीय टाँग में टार्सस पर एक **पराग-ब्रुश** होता है, टिबिया के अन्त में एक **पदकंट** जैसा काँटा बना होता है जिससे पराग-करंड (pollen basket) में से पराग निकाला जा सकता और उदर की सतह पर से मोम हटाया जा सकता है। हर पश्चवक्षीय टाँग में एक बड़ी टिबिया होती है जिसमें शूकों से घिरी हुई एक गुहा होती है जो एक **पराग-करंड** अथवा **कॉर्बिक्यूला** (corbicula) बनाती है—इसका
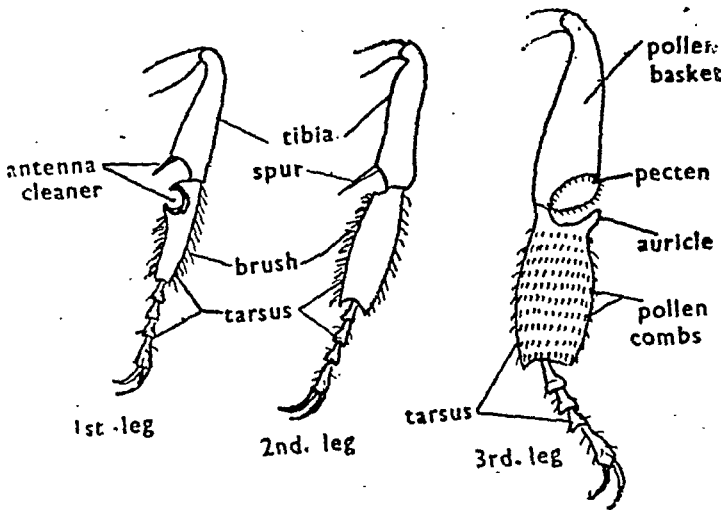
चित्र 437. मधुमक्खी की टाँगें।
Antenna cleaner, ऐंटेना-मार्जक; tibia, टिबिया; spur, पदकंट; brush, ब्रुश; tarsus, टार्सस; pollen basket, पराग-करंड; pecten, कंकतिका; auricle, कर्णक; pollen combs, पराग-कंघियाँ।

उपयोग पराग जुटाते समय पराग भरने में होता है, टिबिया के दूरस्थ सिरे पर कड़े शूकों की एक पंक्ति होती है जिसे **कंकतिका** (pecten) कहते हैं जिसके नीचे एक पतली प्लेट **ऑरिकल** (auricle) अथवा **कर्णक** होती है। कंकतिका और कर्णिका मिलकर एक **मोम-चुटकी** (wax pincher) बनाती है जिसके द्वारा कर्मी अपने उदर

से मोम हटाता जाता है। टार्सस की बाहरी सतह पर एक **पराग-ब्रुश** होता है तथा भीतरी सतह पर **पराग-कंघियाँ** होती हैं जिसमें कड़े काँटों की अनेक पंक्तियाँ बनी होती हैं; पराग कंघियाँ शरीर से पराग छुड़ा कर उसे पराग-करंड में भरने के काम आती हैं।

उदर दूसरे खंड से शुरू होता है, खंड 2 से 7 तक स्पष्ट दिखाई देते हैं लेकिन खंड 8 से 10 रूपांतरित और छिपे हुए होते हैं। अंडनिक्षेपक रूपांतरित होकर डंक बन गया है (क्योंकि कर्मी एक वंध्य मादा होती है)। डंक 3 जोड़ी गोनैपोफ़ाइसिस का बना होता है जिनमें से एक जोड़ी 8वें खंड पर और दो जोड़ी 9वें खंड पर होती हैं। खंड 8 के गोनैपोफ़ाइसिस दो **शूकिकाओं** (stylets) के रूप में होते हैं जो एक-दूसरे के समांतर पड़ी होतीं और एक विष-नली को भीतर घेरे रहती हैं। खंड 9 के एक जोड़ी गोनैपोफ़ाइसिस समेकित होकर एकल **शूकिका आच्छद** (stylet
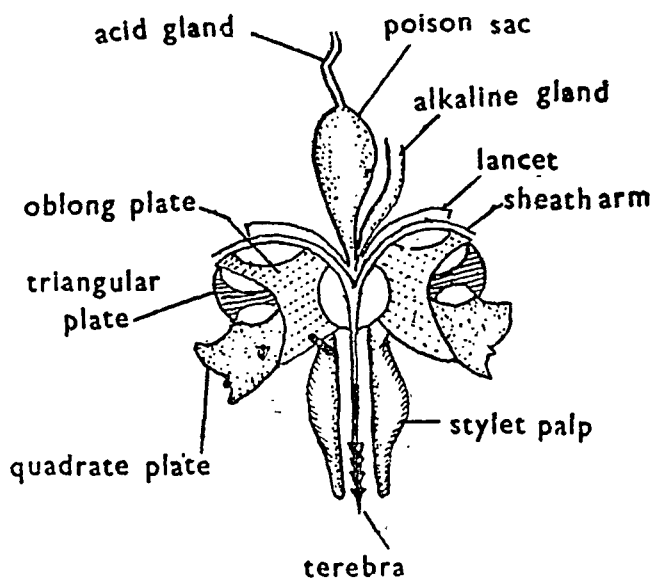
चित्र 438. कर्मी मधुमक्खी का डंक।

Acid gland, अम्ल ग्रन्थि; poison sac, विष-कोश; alkaline gland, क्षारीय ग्रन्थि; lancet, कुन्तक (भाला); sheath arm, आच्छद भुजा; stylet palp, शूकिका पैल्प; oblong plate, दीर्घायित प्लेट; triangular plate, त्रिभुज प्लेट; quadrate plate, क्वाड्रेट प्लेट, terebra, टेरेब्रा।

sheath) बनाते हैं, और दूसरी जोड़ी से दो **शूकिका पैल्प** (stylet palps) बन जाते हैं। डंक अथवा **टेरेब्रा** दो शूकिकाओं का बना होता है जो अपनी लम्बाई में एक खाँच और पटरी की व्यवस्था के द्वारा खोखले शूकिका-आच्छद के साथ संधित रहते हैं, शूकिकाएँ इस व्यवस्था द्वारा अपने स्थान पर बनी रहती हैं और केवल ऊपर-नीचे चल सकती हैं। शूकिकाओं तथा उनके आच्छदों के सिरों पर काँटे बने

होते हैं जिनसे घाव बन जाता है, समीपस्थशः शूकिका आच्छदों में एक फूला हुआ **बल्ब** होता है, उसके आगे वे **भुजाएँ** बनाती हैं जो पेशियों से युक्त 3 जोड़ी प्लेटों से सम्बन्धित होती हैं। शूकिकाओं से उनकी समीपस्थ दिशा पर जुड़ा हुआ एक मध्य **विष कोश** (poison sac) होता है जिसमें दो **अम्ल ग्रन्थियाँ** (acid glands) और एक **क्षारीय ग्रन्थि** (alkaline gland) होती है। डंक मारने में प्लेटों की पेशियाँ शूकिकाओं तथा शूकिका-आच्छद को शिकार की त्वचा में घुसा देती हैं, दोनों प्रकार की ग्रन्थियों के स्राव मिश्रित होकर विष-नली में से बहकर घाव में पहुँच जाते हैं। सामान्यतः काटने के बाद विष-ग्रन्थियाँ, डंक और अंतड़ी का कुछ भाग बाहर खिंच आता है और मधुमक्खी दो दिन के भीतर मर जाती है।

कर्मी सभी काम करते हैं जैसे कि आहार जुटाना, मकरन्द लाना, मोम का स्राव, शिशुओं की देखभाल, छत्ते का निर्माण और उसकी सफ़ाई आदि। फलतः उनके मुखांग मकरन्द जुटाने तथा मोम को आकृति देने के लिए रूपांतरित होते हैं, उदर का एपिडर्मिस मोम के स्राव के लिए रूपांतरित होता है, और टाँगें पराग एकत्रित करने के लिए। रानियों तथा पुंमधुपों में मुखांग छोटे होते हैं क्योंकि वे मकरन्द एकत्रित करने में इस्तेमाल नहीं होते, उनके एपिडर्मिस में मोम का स्राव करने वाली ग्रन्थियाँ नहीं होतीं, और पश्चवक्षीय टाँगों में रूपांतरण नहीं होते।

रानी (Queen)—सामान्य शरीर-रचना वैसी ही होती है जैसी कर्मी में, लेकिन इसका आकार बड़ा होता है, उदर लम्बा और मोड़ लिए गये पंखों के पीछे तक निकला होता है। चूंकि यह छत्ता-निर्माण अथवा पराग जुटाने में हाथ नहीं बँटाती इसलिए इसमें न तो मोम-ग्रन्थियाँ होती हैं और न ही पैरों पर पराग-जुटाने वाले रूपांतरण बने होते हैं। इसमें खाँचेदार मैंडिबल होते हैं, 12-सन्धित ऐंटेना होते हैं और एक डंक होता है जो केवल किसी प्रतिद्वन्द्वी रानी के ही खिलाफ़ इस्तेमाल हो सकता है, यह डंक अनेक बार काम में लाया जा सकता है। कर्मियों की तरह रानी निषेचित अंडों से बनती है।

पुंमधुप (Drone)—नर अथवा पुंमधुप-प्राणी कर्मियों से ज्यादा बड़े होते हैं, इनमें **पूर्णदृक्** (holoptic) आँखें होती हैं जो पृष्ठतः एक-दूसरे से छूती हुई होती हैं, फ्रॉन्स प्रदेश छोटा हो गया होता है, इनमें छोटे और खाँचे से युक्त मैंडिबल होते हैं क्योंकि ये मोम को आकृति नहीं देते, ऐंटेना 13-संधित होते हैं, डंक नहीं होता, लेकिन 9वें स्टर्नम में 2 आलिंगक और एक झिल्लीदार ईडिऐगस होता है। पुंमधुप अनिषेचित अंडों से बनते हैं।

एपिस मेलिफ़ेरा (*Apis mellifera*) मधुमक्खियाँ सभी देशों में पाई जाती हैं। भारत में तीन स्पीशीज़ होती हैं : 1. **एपिस डॉर्सेटा** (*Apis dorsata*) बड़ी मधुमक्खी है, यह एक अकेला छत्ता बनाती है जो 3 से 4 फुट लम्बा होता है, यह चट्टानों से, वृक्षों से अथवा इमारतों पर से लटका होता है, यह मक्खी बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाती और मनुष्य पर हमला कर देती है। 2. **एपिस इंडिका** (*Apis indica*) **ए० मेलिफ़ेरा** (A. mellifera) से मिलती-जुलती और उसी में समा जाती

हुई होती है, यह मध्यम आकार की होती है। 3. **एपिस फ़्लोरिया** (*Apis florea*) बौनी मक्खी है और तीनों स्पीशीज़ में सबसे छोटी है।

छत्रक (Honeycomb) पूरे छत्ते अथवा मधु-पेटी की आधारीय रचना होता है; हर छत्रक में पीठ से पीठ जुड़ी हुई षड्भुजी कोशिकाओं की दो शृंखलाएँ होती हैं, छत्ते नीचे को लटके होते हैं जिसके कारण कोठरियों (कोष्ठों) के अक्ष क्षैतिज समतल में पड़े होते हैं। छत्रक मोम का बना होता है और यह मोम छोटी उम्र की कर्मी मक्खियों द्वारा स्रावित किया हुआ होता है, इस मोम को वे चबातीं और अपनी लार (शीर्ष ग्रन्थियों का स्राव) उसमें मिलाती हैं। एक रेज़िनी पदार्थ **प्रोपोलिस या छत्तागोंद** (propolis) को पौधों से इकट्ठा करके मधुमक्खियाँ अपने छत्तों के खुले-खुले हिस्सों अथवा दरारों को भरने के काम में लाती हैं। जिन कोठरियों (कोष्ठों) में कर्मी विकसित होते हैं वे पुंमधुपों के विकसित होने वाली कोठरियों से छोटी होती हैं, रानी के विकास वाली शाही कोठरियाँ लंबूतरी और बड़ी होती हैं। कुछ कोठरियाँ पराग और मकरंद एकत्रित करने के काम आती हैं। रानी हर भ्रूण-कोठरी में एक अंडा देती है, 3 दिन में अंडे में से लार्वा निकल आता है। छोटे लार्वा को 3 दिन तक एक प्रोटीन-सम्पन्न **शाही-जेली** (royal jelly) खिलायी जाती है, चौथे दिन से कर्मियों और पुंमधुपों के लार्वाओं को शहद और पचे हुए पराग का भोजन कराया जाता है, लेकिन रानियों के लार्वा सदैव शाही जेली पर ही पलते हैं। लार्वाओं के पूरी तरह बढ़ चुकने पर उनकी कोठरियों के मुह मोम और पराग द्वारा बन्द कर दिए जाते हैं, तब लार्वाओं से प्यूपा बन जाते हैं जो ककूनों के भीतर बन्द रहते हैं, नवविकसित मधुमक्खी बन चुकने पर वह अपनी कोठरी से बाहर आ जाती है। रानी के विकास में $15\frac{1}{2}$ दिन, कर्मी के विकास में 21 दिन और पुंमधुप के विकास में 24 दिन लगते हैं।

रानी कई ऋतुओं तक जीवित रहती है, लेकिन पुंमधुप और कर्मियों की आयु थोड़ी-थोड़ी होती है। कॉलोनियाँ ऋतुपरक नहीं होतीं बल्कि सालों चलती हैं। ग्रीष्म के अन्त में कर्मी अपने छत्तों में पुंमधुपों को धक्का देकर निकाल देती हैं क्योंकि अब छत्ते में उनकी ज़रूरत नहीं रहती। कर्मी सारा काम करते हैं, फूलों पर जाकर मकरंद और पराग लाते हैं, वे मधुरस और फूटे हुए फलों से रस एकत्र करके लाती हैं। पौधों से इकट्ठा किया गया मकरंद कर्मी मक्खियों की आहार-नाल के एक विशेष भाग मधुकोश (honey sac) में शहद के रूप में बदल दिया जाता है। शहद कुछ कीटों के मधुरस (honeydew) से भी बनाया जाता है, यह पराग के साथ मिला कर भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और जाड़ों में इस्तेमाल करने के वास्ते संग्रह भी कर लिया जाता है। कर्मी बच्चा-मक्खियों और रानी को भी आहार कराते हैं, वे अपने डंक के द्वारा कॉलोनी की रक्षा करते हैं, वे प्रोपोलिस (छत्तागोंद) को इकट्ठा करते और छत्तकों के निर्माण के वास्ते अपनी उदरीय ग्रन्थियों से मोम का स्राव करते हैं।

जब छत्ते की जनसंख्या उस छत्ते के हिसाब से बहुत ज्यादा हो जाती है तो

पुरानी रानी बहुत से कर्मियों को अपने साथ लेकर एक पोश्रा या दल (swarm) बनाकर उड़ कर बाहर चली जाती और एक नई कॉलोनी बना लेती है। इसी बीच पुरानी कॉलोनी में एक नई रानी बन जाती है, यह नई रानी बहुत से पुंमधुपों के साथ परिणय-उड़ान (nuptial flight) पर निकल पड़ती है, उड़ते-उड़ते ही मैथुन सम्पन्न हो जाता है तथा यह नवसंसेचित रानी अपने उसी पुराने छत्ते में लौट आती है, जितने शुक्राणु उसने प्राप्त कर लिये होते हैं वे उन तमाम अंडों के लिये पूरे हो सकने चाहिएँ जिन्हें वह रानी देती है, क्योंकि अपने आयुकाल में वह दोबारा मैथुन नहीं करती। रानी अपने अंडों के निषेचन पर नियंत्रण कर सकती है, अनिषेचित अंडे अगुणित (haploid) होते हैं और उनमें 16 क्रोमोसोम (गुणसूत्र) होते हैं, इन अंडों से पुंमधुप पैदा होता है; निषेचित अंडे द्विगुणित (diploid) होते हैं और उनमें 32 क्रोमोसोम होते हैं, उनसे रानियां तथा वन्ध्य मादा कर्मी बनते हैं।

मानव ने शहद और छत्ता-मोम प्राप्त करने के लिए मधुमक्खियों का गृह्यकरण (domestication) कर लिया है, मधुमक्खियों से फूलों और कृषि-फ़सलों का परपरागण होता है।

18. **बर्रें, ततैये** अथवा **भिड़ें** (Wasps)—बर्रें सिर्फ़ दक्षिणी अमेरिका को तथा अफ़्रीका के कुछ भागों को छोड़ कर सभी देशों में पाई जाती हैं। बर्रें सामाजिक कीट होती हैं, वे समुदाय बना कर रहती हैं जिनमें एक निषेचित मादा या **रानी**, **कर्मी** तथा **नर** होते हैं। रानी और कर्मियों में 12-संधित ऐंटेना पाये जाते हैं तथा 6 दृश्यमान उदर-खंड बने होते हैं, लेकिन रानी बड़ी होती है। नर में 13-संधित ऐंटेना तथा 7 दृश्यमान उदर-खंड होते हैं। पहला उदर-खंड वक्ष से समेकित होता है, दूसरा खंड संकीर्ण होकर एक संकुचित वृन्त (pedicel अथवा petiole) या कटि बनाता है जो चिकना होता है। क्लाइपियस खण्डित होता है, अग्रनोटम पंखों के आधार तक फैला होता है, बैठते समय पंख लम्बाई में मोड़ लिये जाते हैं। समुदाय केवल एक ही वर्ष चलता है क्योंकि ये आहार संग्रह नहीं करते, जाड़ों में कर्मी और नर मर जाते हैं, केवल निषेचित रानी ही बच जाती हैं जो अगले वसन्त में एक नयी कॉलोनी शुरू करती है। बर्रें कागज़-जैसे पदार्थ के घर बनाती हैं जिसे वे चबाई हुई लकड़ी की लुगदी से बनाती हैं। बर्रें परभक्षी और मांसभक्षी होती हैं, वे अपने लार्वाओं को चबाए हुए कीट खिलाती हैं, वयस्क मकरंद, पके फल तथा मधुरस भी खा लेते हैं। बर्रों में रानी तथा कर्मियों में एक डंक होता है जो उनका अंडनिक्षेपक होता है; यह डंक बहुत पीड़ादायी और कभी-कभी खतरनाक होता है। बर्रें हितकारी भी हैं क्योंकि वे हानिकर पादप-जूँओं, डिप्टेराओं तथा लेपिडॉप्टेरा के लार्वाओं को नष्ट करती हैं।

वेस्पा (*Vespa*)—यह सारे विश्व में पाया जाता है। शरीर गठा हुआ, लाल अथवा काले से रंग का होता है जिसमें पीली अनुप्रस्थ पट्टियाँ बनी होती हैं। शीर्ष पश्चतः अवतल होता है, नेत्रक छोटे होते हैं, वक्ष गहरा और घनाकार होता है,

पंख संकीर्ण और लम्बे होते हैं, टाँगें मज़बूत और कम लम्बी होती हैं, उनमें सरल नखर बने होते हैं। उदर बड़ा और पीछे को नुकीला होता है, दूसरा उदर खंड आधार पर संकीर्ण और एक छोटा वृंत बनाए हुए होता है। **वेस्पा** पेड़ों के खोखलों तथा जमीन के भीतर अपने बड़े-बड़े कागजी घर बनाता है। इन घोंसलों में क्षैतिज कोठरियाँ होती हैं और समूचे घर के चारों ओर आवरक परतें बनाई गई होती हैं, नई कोठरियाँ घोंसले की परिधि में जोड़ी जाती रहती हैं और फिर नए-नए टीयर बनाये जाते हैं जो खड़े खम्भों द्वारा जुड़े रहते हैं। **वेस्पा क्रैब्रो** (*Vespa crabro*) यूरोप का हार्नेट (बड़ा ततैया) है, **वे० ड्यूकैलिस** (*V. ducalis*) मिठाइयों की दुकानों पर पाया जाने वाला भारतीय बड़ा ततैया है। भारत में आम मिलने वाली दो स्पीशीज़ ये हैं—चेस्टनट-लाल रंग का **वे० ओरिऐंटैलिस** (*V. orientalis*) और गहरा भूरा एवं उदर पर पीली पट्टियों वाला **वे० मैग्निफ़िका** (*V. magnifica*)।

चित्र 439. **वेस्पा**

पौलिस्टीस (*Polistes*)—यह विश्व भर में पाया जाता है, इसकी विभिन्न स्पीशीज़ पीली, चेस्टनट भूरी अथवा काली-सी होती हैं। सिर आगे से चपटा होता
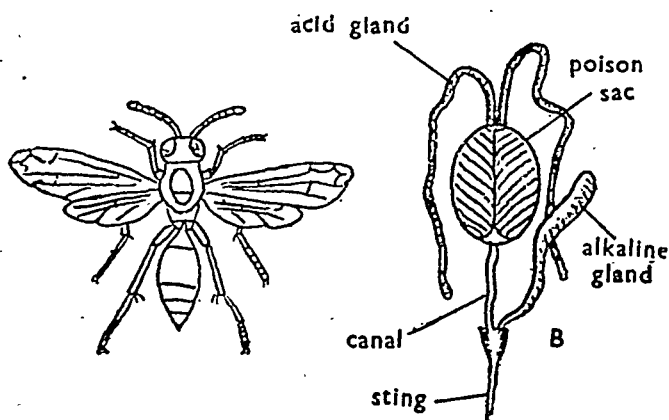
चित्र 440. **पैलिस्टीस**। B-डंक और विष-ग्रंथियाँ।
Acid gland, अम्ल ग्रंथि; poison sac, विष थैला; alkaline gland, क्षारीय ग्रंथि; canal, नलिका; sting, डंक।

है जिस पर संयुक्त नेत्र और एक त्रिभुज में व्यवस्थित नेत्रक पाए जाते हैं। वक्ष लंबा और पतला होता है, लम्बी टाँगों में सरल नखर होते हैं। उदर का दूसरा खंड छोटा और आधार पर संकीर्ण होता हुआ एक छोटा वृन्त बनाता है, उदर स्पिंडल की

आकृति का होता है। आवश्यकता पड़ने पर मादा और कर्मी दोनों ही जननशील हो सकते हैं। इसकी कॉलोनियाँ छोटी होती हैं, छत्ता कागजी होता है, और इस छत्ते में एक ही टीयर होता है जो एक केन्द्रीय वृंत द्वारा इमारतों अथवा वृक्षों से लटका रहता है, छत्ते के चारों ओर कोई बाहरी आवरण नहीं होता और षड्भुजी कोठरियाँ नीचे को खुली होती हैं। छत्ता छोटा अथवा बड़ा हो सकता है। सामान्य भारतीय स्पीशीज़ में ये दो शामिल हैं, पीला **पौलिस्टीस स्टिग्मा** (*Polistes stigma*) और चेस्टनट-भूरे रंग का **पौ० सल्कैटस** (*P. sulcatus*)।

19. **चींटियाँ** (Ants)—ये सामाजिक और बहुरूपी कीट होते हैं। शीर्ष, वक्ष और उदर स्पष्ट सीमाँकित होते हैं। ऐंटेना **कोहिनीरूपी** (geniculate) होते हैं जिनमें स्केप, पेडिसेल और फ़्लैजेलम बने होते हैं, फ़्लैजेलम वाला भाग मुड़ा होता है और उस पर छल्ले-जैसी संधियाँ बनी होती हैं। नर के ऐंटेना में मादा तथा कर्मी की अपेक्षा एक अतिरिक्त संधि होती है। दो संयुक्त नेत्र तथा तीन नेत्रक नर में सुविकसित होते हैं, परन्तु नेत्रक मादा में छोटे और कर्मी में अवशेषी होते हैं। अग्र-वक्ष बड़ा होता है, उदर का पहला खंड वक्ष के साथ समेकित होता है, दूसरा और तीसरा खंड एक संकीर्ण **वृंत** बनाते हैं जिस पर एक या दो पर्व (nodes) अथवा गांठें होती हैं, शेष सात उदर-खंड एक गोलाभ पेट, या **गैस्टर** (gaster) बनाते हैं।

चींटी समुदाय में तीन प्रकार के प्राणी पाए जाते हैं, नर, मादा और कर्मी। **नर** अथवा **ऐनर** (aner) में एक छोटा गोल शीर्ष होता है, मैंडिबल कम विकसित होते हैं, पंख, संवेदी अंग और जननाँग बहुत ज्यादा विकसित होते हैं। **मादा** अथवा गाइने (gyne) आकार में बड़ी होती है। मैंडिबल और गैस्टर बड़े होते, ऐंटेना और टाँगें छोटी होती हैं, पंख अस्थायी होते और जननाँग सुविकसित होते हैं। **कर्मी** अथवा **अर्गेटी** (ergate) वंध्य मादा होते हैं, लेकिन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अंडे दे सकते हैं, इनके मैंडिबल ऐंटेना और पाँव सुविकसित होते हैं, वक्ष तथा गैस्टर छोटे होते हैं, पंख कभी नहीं बनते। ये तीनों प्रकार के प्राणी समुदाय के भीतर अनेक आकारिकीय रूपों में होते पाये जाते हैं। पंखयुक्त नर और मादा परिणय-उड़ान के दौरान मैथुन करते हैं, उड़ान के बाद धरती पर लौट आने पर मादा अपने पंख गिरा देती है और जमीन के भीतर एक नई कॉलोनी शुरू करने की दिशा में अंडे देने शुरू कर देती है। अंडों से उत्पन्न होने वाले कर्मी इस मादा को तरल पदार्थों का आहार कराते हैं।

चींटियाँ अपमार्जक (scavengers) होती हैं, ये मृत पदार्थ को हटाकर साफ़ करती जाती हैं, कुछ चींटियाँ कवक उगाती हैं (**ऐट्टा**, *Atta*); कुछ लाहियों के साथ सहजीवनी रूप से रहतीं और उनके शरीर से निकलने वाले द्रवों का आहार करती हैं (**क्रीमैटोगैस्टर**, *Crematogaster*); कुछ बीज इकट्ठा करके गोदाम भर लेती हैं (**पोगोनोमिर्मेक्स**, *Pogonomyrmex*)।

फ़ॉर्मिका (*Formica*) एक आम मिलने वाली छोटी चींटी होती है, इसकी अनेक स्पीशीज़ पाई जाती हैं। **फ़ॉ० सैंग्विनिया** (*F. sanguinea*) जो पूरे

और एशिया में पाई जाने वाली लाल चींटी है, यह **फ़ॉ० फस्का** (*F. fusca*) के प्यूपाओं को पकड़ लाती है और उनसे निकली हुई चींटियों को दास बनाकर उनसे अपने छत्ते के कार्य कराती है।
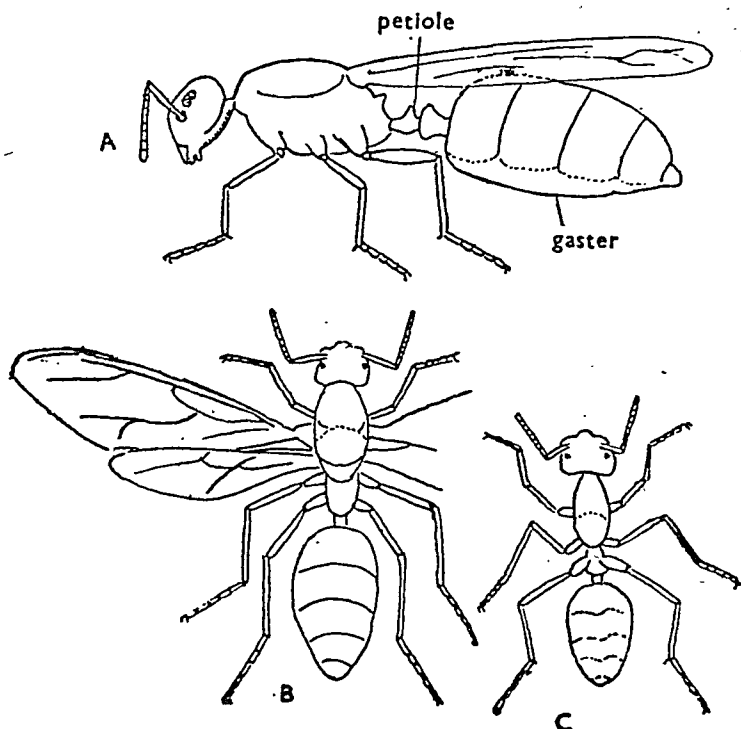
चित्र 441. **कैम्पोनोटस** (*Camponotus*) A-गाइने; B-ऐनर; C-अर्गेटी। Petiole, वृन्त; gaster, गैस्टर।

कैम्पोनोटस (*Camponotus*) लकड़ी काटने वाली बड़ी काली चींटी है, यह लकड़ी और जमीन में अपनी कॉलोनियाँ बनाती है, इसके कर्मी घरों में आम देखे जाते हैं। ऐंटेना कर्मी और मादा में 12-संधित तथा नर में 13-संधित होते हैं। मैंडिबल तिकोने, ललाट प्रदेश छोटा, वक्ष आगे से चौड़ा और पीछे से पिचका हुआ, अग्रवक्ष और मध्यवक्ष एक मेहराब बनाते हैं, उदर अंडाकार होता है। नर में नेत्रक होते हैं, इसका उदर कर्मी की अपेक्षा ज्यादा लंबा होता है। मादा में वक्ष अधिक भारी और उदर नर की अपेक्षा ज्यादा लम्बा और चौड़ा होता है। **कैम्पोनोटस कम्प्रेसस** (*Camponotus compressus*) भारत के मैदानों में और 7000 फुट तक की ऊँचाई पर पहाड़ियों पर पाई जाती है।

20. **मक्खियाँ** (Flies)—वास्तविक मक्खियों में शीर्ष बड़ा होता है जिस पर बड़े संयुक्त नेत्र और नेत्रक बने होते हैं, फ्रॉन्टल सूचर तथा ल्यून्यूल स्पष्ट होते हैं, ऐंटेना सामान्यतः छोटे और 3-संधि वाले होते हैं जिनमें एक **ऐरिस्टा** होता है, पैल्प 1-संधित होते हैं, **टाइलिनम** सदैव पाया जाता है। मुखाँग रूपाँतरित होकर एक

चूषणी शुंडिका बना लेते हैं, मैंडिबल सामान्यतः नहीं होते, लेबियम दूरस्थतः फैल कर मांसल पालियाँ अथवा **लैबेला** बना लेता है। अग्रवक्ष तथा पश्चवक्ष छोटे होते हैं और एक बड़े मध्यवक्ष से समेकित होते हैं, एक अकेली जोड़ी मध्यवक्षीय पंख पाए जाते हैं, पश्चवक्षीय पंख ह्रासित होकर **हाल्टीयर** (halteres) बन जाते हैं; टार्सस 5-संधित होते हैं। उदर का पहला खंड शोषित होता है, दूसरा खंड ह्रासित होता है, शेष खंडों में से पश्चीय खंड छिपे हुए होते हैं। लार्वा में एक छोटा अवशेषी शीर्ष होता है, प्यूपा **कोआर्क्टेट** होता है जो कि लार्वा के कड़े हो गये क्यूटिकल अथवा **प्यूपेरियम** में बन्द होता है। **मस्का** (*Musca*), **स्टोमॉक्सिस** (*Stomoxys*) तथा **ग्लौसाइना** (*Glossina*) मक्खियों की एक ही फ़ैमिली (ऐंथोमाइडी, Anthomyidae) में आती है।
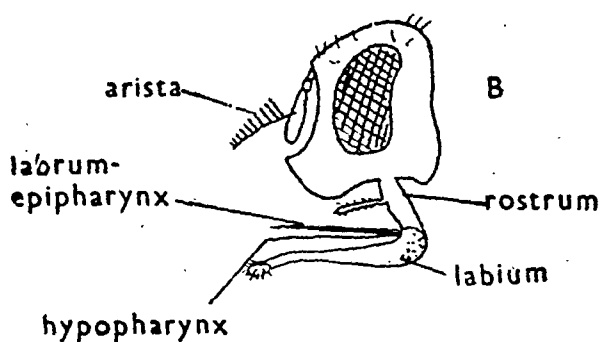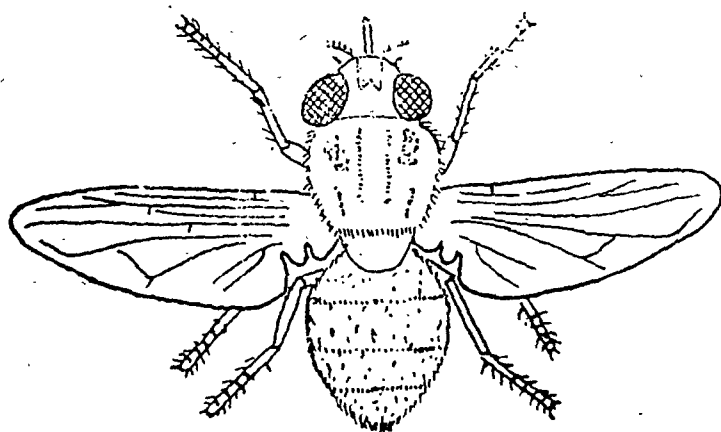
चित्र 442. **स्टोमॉक्सिस कैल्सिट्रैंस** (*Stomoxys calcitrans*)।
B—शीर्ष और मुखांग।
Arista, ऐरिस्टा; labrum-epipharynx; लेब्रम-एपिफेरिंक्स; hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स; labium, लेबियम; rostrum, रॉस्ट्रम।

स्टोमॉक्सिस (अस्तबल मक्खी)—यह घरेलू मक्खी से बहुत ज्यादा मिलती-जुलती है और इसे अक्सर काटने वाली मक्खी कहते हैं, लेकिन यह इन कई बातों में भिन्न होती है : लम्बी, पतली, काली शुंडिका, वक्ष पर चार टूटी हुई अनुदैर्ध्य रेखाएँ

तथा उदर के खंड 4-और 5 पर 3 धब्बे बने होते हैं, यह उदर घरेलू मक्खियों में अपेक्षाकृत छोटा होता है। नर-मादा दोनों ही मनुष्यों और स्तनियों का रक्त चूसते हैं। वेधनी मुखांग एक शृंगीय शुण्डिका के रूप में होते हैं। इस शुण्डिका में एक छोटा **रॉस्ट्रम** और लम्बा हौस्टेलम होता है जिसका आधार काइटिनी तथा फूला हुआ होता है, लैवेला ह्रासित होते हैं और उनमें रेतन (rasping) के वास्ते काइटिनी दाँत बने होते हैं लेकिन कूटवातिकाएँ नहीं होतीं। लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स तथा हाइपोफ़ैरिंक्स शुण्डिका की अपेक्षा छोटे होते हैं अतः वे घाव करने में हाथ नहीं बँटाते, घाव केवल शुण्डिका द्वारा किया जाता है। लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स शुण्डिका के साथ मिलकर एक खाद्य-नलिका बनाता है, हाइपोफैरिंक्स में लार-नलिका होती है। मैंडिबल और मैक्सिला नहीं होते, किन्तु एक जोड़ी छोटे 1-संधित मैक्सिलरी पैल्प होते हैं जो अब लेबियम के आधार से जुड़े होते हैं। सिकोड़े जाने पर शुण्डिका पूरी तरह छिपाई नहीं जा सकती।

स्टोमॉक्सिस घोड़े की लीद की खाद में तथा अस्तबल में अंडे देती है जहाँ पर अंधेरा और नमी मिलती है, **मस्का** के लार्वा से इसका लार्वा इस बात में भिन्न होता है कि इसमें छोटे गोल पश्च श्वास-रंध्र होते हैं जिनमें प्रत्येक में 3 छिद्र होते हैं।

स्टोमॉक्सिस कैल्सिट्रैन्स (*Stomoxys calcitrans*) के द्वारा **ट्रिपैनोसोमा इवैन्साई** का संक्रमण होता है जो मवेशियों में सूरा रोग पैदा करता है। इसमें ऐसी आदत होती है कि यह एक जानवर पर आहार करना शुरू करके दूसरे पर पूरा करता है, और इस प्रकार मवेशियों में **ऐंथ्रैक्स** के रोगाणु फैलाता है और **लीश्मानिया ट्रॉपिका** (*Leishmania tropica*) भी फैलाता है जो मनुष्य में ओरिएंटल सोर पैदा करता है। यह घोड़े में पाए जाने वाले एक नीमैटोड परजीवी **हैब्रोनीमा** (*Habronema*) तथा मुर्गियों के फ़ीता-कृमि **हाइमेनोलेपिस** (*Hymenolepis*) का मध्यस्थ परपोषी है।

ग्लौसाइना (*Glossina*) (सेट्सी-मक्खी)—यह अफ्रीका में जहाँ-तहाँ अलग-अलग क्षेत्रों में पाई जाती है, जिनके नर-मादा दोनों ही मनुष्य और स्तनियों के रक्त को चूसते हैं। इसका शरीर लम्बा और भूरा-सा होता है, शीर्ष बड़ा और सुव्यक्त संयुक्त नेत्र वाला होता है, ऐंटेना 3-संधित होते हैं जिनमें केवल एक दिशा में पिच्छीय शूकों से युक्त एक ऐरिस्टा बना होता है। लेबियम से शुण्डिका बनी होती है जिसमें छोटा रॉस्ट्रम तथा लम्बा हौस्टेलम होता है, हौस्टेलम पर एक आधारीय फूला हुआ भाग होता है तथा दूरस्थ सिरे पर ह्रासित लैवेला होते हैं जिनमें रेतन के लिए काइटिनी दाँत होते हैं, शुण्डिका वेधन के काम आती है। शुण्डिका की खाँच में एक लेब्रम-एपिफैरिंक्स तथा एक पतला हाइपोफैरिंक्स पड़े होते हैं। लेबियम के साथ लेब्रम-एपिफ़ैरिंक्स मिलकर एक खाद्य नलिका बन जाती है, हाइपोफ़ैरिंक्स के भीतर एक लार-नलिका होती है। लम्बे खाँचयुक्त मैक्सिलरी पैल्पों से शुण्डिका का आच्छद बन जाता है। मैंडिबल और मैक्सिला नहीं होते। शुण्डिका शीर्ष के सामने को निकली होती है। वक्ष बड़ा और चतुर्भुजी होता है, बैठते समय पंख एक के ऊपर एक चढ़ कर मुड़ जाते हैं। उदर सिरे पर पतला होता जाता है।

ग्लौसाइना अंडे नहीं देती, मादा के गर्भाशय में एक समय में एक लार्वा परिवर्धित होता जाता है, यह लार्वा ज़मीन में दे देती है जो ज़मीन में घुसकर तुरन्त प्यूपा अवस्था में बदल जाता है, एक महीने में पूर्णकीट बन जाता है।
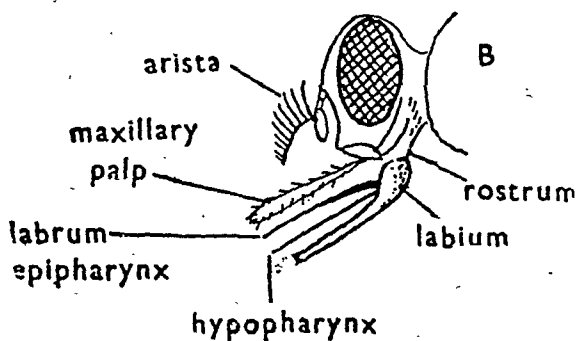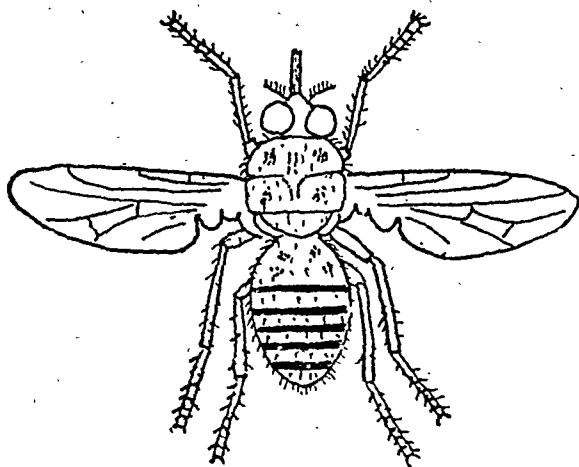
चित्र 443. **ग्लौसाइना पैल्पैलिस** (*Glossina palpalis*), B-शीर्ष और मुखाँग। Arista, ऐरिस्टा; maxillary palp, मैक्सिलरी पैल्प; labrum-epipharynx, लेब्रम-एपिफ़ेरिंक्स; hypopharynx, हाइपोफ़ेरिंक्स; labium, लेबियम, rostrum, रॉस्ट्रम।

ग्लौसाइना पैल्पैलिस तथा **ग्लौ० टैकिनॉयडीस** (*G. tachinoides*) द्वारा **ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएन्जी** फैलता है जो मनुष्य में निद्रालु रोग पैदा करता है। **ग्लौ० मॉर्सिटेन्स** से **ट्रिपैनोसोमा रोडेजिऐन्जी** फैलता है जिससे रोडेशिया का निद्रालु रोग पैदा होता है, इसके द्वारा पालतू जानवरों में नगाना रोग पैदा करने वाले ट्रिपैनोसोम भी संचरित होते हैं।

21. **जीनॉप्सिला कीयोपिस** (*Xenopsylla cheopis*) (चूहे का पिस्सू)—शरीर पार्श्वतः चपटा होता है, यह परवर्ती रूप में पंखहीन बन गया है, यह मनुष्य तथा चूहों का बाह्यपरजीवी है जो रक्त चूसता है। शीर्ष और शरीर पर पीछे को मुड़े हुए शूक बने होते हैं। शीर्ष में कोई सीवन (सूचर) नहीं होती, स्क्लेराइट

समेकित होते हैं, दो पार्श्व अ-फलकी नेत्र होते हैं, ऐंटेना 3-संधित तथा गढ़ों में स्थित होते हैं, शीर्ष पर एक अन्तराऐंटेनीय खाँच बनी होती है। मुखांग वेधनी और चूषणी होते हैं, मैंडिबल खाँचयुक्त ब्लेड होते हैं जिनका दूरस्थ भाग दंतुरित होता है, एक छोटा हाइपोफ़ेरिंक्स मैंडिबलों के आधार से जुड़ा होता है, हर मैक्सिला मुख के पार्श्व में बनी हुई एक त्रिभुजी पालि होती है, इसमें एक 4-संधित मैक्सिलरी पैल्प होता है, लेबियम ह्रासित होकर एक आधारीय प्लेट के रूप में रह जाता है जिसके ऊपर एक जोड़ी 5-संधित लेबियल पैल्प होते हैं, एक लंबे लेब्रम-हाइपोफ़ेरिंक्स में एक अधर
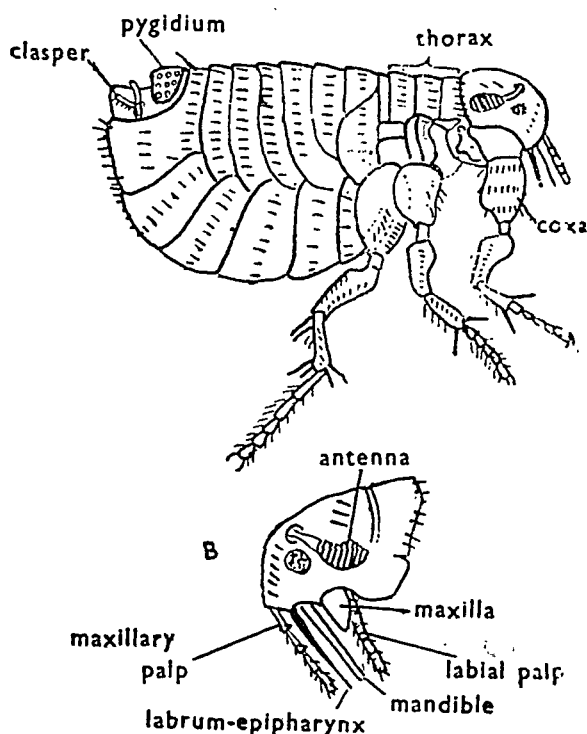
चित्र 444. **जीनॉप्सिला कीयोपिस** (नर); B—शीर्ष और मुखांग।

Coxa, कॉक्सा; pygidium, पुच्छांत; thorax, वक्ष; clasper, आलिंगक; antenna, ऐंटेना; maxilla, मैक्सिला; labial palp, लेबियल पैल्प; mandible, मैंडिबल; labrum-epipharynx, लेब्रम एपिफ़ेरिंक्स; maxillary palp, मैक्सिलरी पैल्प।

खाँच बनी होती है, मैंडिबलों के साथ मिलकर यह एक रक्त-चूषी नलिका बनाता है, लेबियल पैल्प नलिका का आच्छद बनाते हैं। त्वचा में सूराख़ करना कदाचित् केवल मैंडिबलों का काम है, मैंडिबलों तथा लेब्रम-एपिफ़ेरिंक्स की नलिका से रक्त चूसा जाता है। वक्ष-खण्ड असमेकित होते हैं, जिनमें से पश्चवक्ष सबसे बड़ा होता है। टाँगें कूदने के वास्ते लम्बी होती हैं, कॉक्सा बड़े और मज़बूत होते हैं, फ़ीमर तथा टिबिया छोटी होती हैं, टार्सस लम्बे होते हैं तथा 5-संधित होते हैं, जिनमें दोहरे नखर होते हैं।

उदर में 10 खंड होते हैं, मादा में 8वें खंड पर जनन-छिद्र होता है, 10वाँ खंड पृष्ठ दिशा में को मुँह किए रहता है और उस पर एक गुदा और एक जोड़ी छोटे गुदा-शर होते हैं। नर में 9वें खंड पर एक जोड़ी प्लेट-जैसे आलिंगक बने होते हैं और उनके बीच में एक ईडिऐगस होता है, 10वाँ खंड ऊपर की ओर को मुँह किए रहता है। दोनों लिंगों में 9वें खंड की पृष्ठ दिशा में एक संवेदी पुच्छाँत होता है।

भारत में **ज़ीनॉप्सिला कीयोपिस** के द्वारा चूहे से मनुष्य में **बेसिलस पेस्टिस** (*Bacillus pestis*) फैलता है जो गिल्टी प्लेग पैदा करता है, संक्रमण **ज़ीनॉप्सिला** की विष्ठा द्वारा होता है जो खुजलाने के समय खाल में रगड़ जाती है, या फिर खून चूसते समय उल्टा पिस्सू के पेट से घाव में रक्त पहुँच जाने से भी संक्रमण हो जाता है। प्लेग से भारत में हर वर्ष पाँच लाख से अधिक लोगों की मृत्यु हो जाती है। इसके द्वारा चूहा-टाइफ़स रोग भी चूहों से मनुष्य में पहुँच सकता है। **ज़ीनॉप्सिला** चूहों के अरोगजनक **ट्रिपैनोसोमा ल्यूइसाई** (*Trypanosoma lewisi*) का भी मध्यस्थ परपोषी है। यह दो फ़ीता-कृमियों **डाइपाइलीडियम कैनाइनम** (कुत्ता और बिल्ली में पाए जाने वाले) और **हाइमेनोलेपिस** (चूहों, चुहियों और मनुष्य में पाए जाने वाले) के सिस्टिसर्कायड लार्वाओं का भी मध्यस्थ परपोषी है। भारत और लंका में **ज़ीनाप्सिला ऐस्टिया** (*Xenopsylla astia*) द्वारा भी प्लेग फैलती है मगर अपेक्षाकृत कम मात्रा में **ज़ीनॉप्सिला ब्रैज़िलिऐंसिस** (*Xenopsylla braziliensis*) अफ्रीका, ब्राज़ील और भारत के कुछ भागों में चूहों से प्लेग फैलाता है।

प्यूलेक्स इरिटैन्स (*Pulex irritans*) पिस्सू प्राथमिकतः मनुष्य का परजीवी है। **टीनोसेफ़ैलाइडीस** (*Ctenocephalides*) एक पिस्सू है जो सामान्यतः कुत्तों और बिल्लियों पर आहार करता है लेकिन यह मनुष्य से भी आहार प्राप्त कर सकता है, इसके शीर्ष से नीचे की ओर की रुख किए हुए मोटे-मोटे काँटों की एक पंक्ति बनी होती है जिसे **कपोल कंघी** (genal comb) कहते हैं, ऐसी ही एक और पंक्ति अग्रवक्ष से पीछे की ओर को निकली होती है जिसे **अग्रनोटमी कंघी** (pronotal comb) कहते हैं; ये कंघियाँ **ज़ीनॉप्सिला** तथा **प्यूलेक्स** में नहीं होतीं।

कीट-वर्ग पर टिप्पणियाँ

खंडीभवन—कीट के भ्रूण में 21 खंड होते हैं, 6 शीर्ष में, 3 वक्ष में और 11 उदर में जिसके बाद में एक **टेल्सॉन** अथवा पुच्छ-पालि आती है जो केवल भ्रूणीय होती है। शीर्ष में सबसे पहला **ऐंटेनापूर्वी** खंड होता है जो केवल भ्रूणीय होता है, दूसरा खंड **ऐंटेनरी** खंड है जिस पर एक जोड़ी ऐंटेना बने होते हैं, तीसरा **अंतर्वेशी** (intercalary) खंड होता है जिस पर वयस्क में कोई उपाँग नहीं होते, चौथा **मैंडिबुलर** खंड होता है जिस पर एक जोड़ी मैंडिबल बने होते हैं, पाँचवाँ **मैक्सिलरी** खंड है जिस पर मैक्सिला होते हैं, और छठा **लेबियल** खंड है जिसके युग्मित उपाँग समेकित होकर एक लेबियम बना लेते हैं। खंड संख्या 7 से 9 वक्ष के होते हैं जिन पर हर खंड पर एक-एक जोड़ी टाँग होती हैं, 8वें और 9वें खंड पर एक-एक जोड़ी पंख भी बने हो सकते हैं। खंड 10 से 20 उदरीय होते हैं जिनमें भ्रूण में युग्मित उपाँग

बने होते हैं लेकिन इनमें से अधिकतर उपाँग शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। खंड 17 (8वाँ उदरीय) में एक मादा जनन-छिद्र होता है, खंड 18 (9वाँ उदरीय) में नर में एक नर जनन-छिद्र होता है और एक जोड़ी **गुदा-शर** बने होते हैं; खंड 20 (11वाँ उदरीय) उच्चतर कीटों के वयस्क में विलीन हो जाता है लेकिन उसके उपांग **लूम (सर्कस)** बने रहते हैं।

शीर्ष—शीर्ष काइटिनी प्लेटों में अथवा स्क्लेराइटों में बन्द रहता है; इन स्क्लेराइटों का खंडीभवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्क्लेराइट समेकित होकर एक **शीर्ष कैप्सूल** (head capsule) बना लेते हैं, समेकन रेखाएँ अथवा सीवनें (sutures) बनी रह सकती अथवा समाप्त हो जा सकती हैं। पृष्ठतः शीर्ष पर एक **एपिक्रेनियम** होता है और सामने की ओर दोनों ऐंटेनाओं के बीच में एक **फ़ॉन्स** होता है, शीर्ष के पार्श्वों पर **भित्तीय (पैराइटल)** स्क्लेराइट होते हैं, इनका निचला भाग हर पार्श्व में **जीना** (कपोल) होता है। फ़ॉन्स के नीचे एक मध्य **क्लाइपियस** होता है जिससे नीचे को एक **लेब्रम** लटका रहता है। लेब्रम की भीतरी सतह पर एक संवेदी **एपिफ़ेरिंक्स** होता है। क्लाइपियस और लेब्रम के पीछे एक **हाइपोफ़ेरिंक्स** होता है। आगे से क्लाइपियस एवं लेब्रम तथा पीछे से हाइपोफ़ेरिंक्स बीच में एक मुखपूर्वी गुहा अथवा **साइबेरियम** को बन्द किए रहते हैं जो भीतर को एक वास्तविक मुख में खुलती है (चित्र 361)।
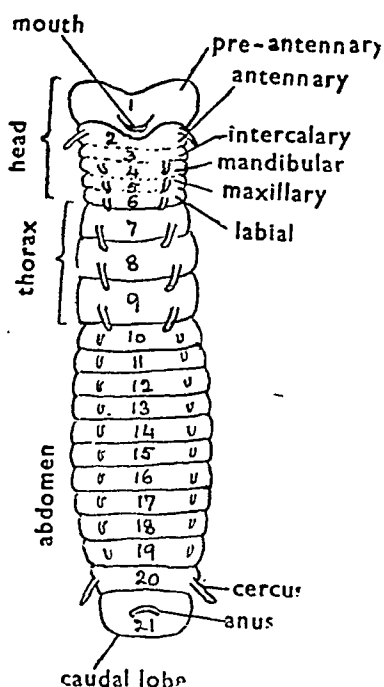
चित्र 445. कीट-भ्रूण। Mouth, मुख; head, शीर्ष; thorax, वक्ष; abdomen, उदर; caudal lobe, पुच्छ पालि; anus, गुदा; pre-antennary, ऐंटेनापूर्वी; antennary, ऐंटेनरी;. intercalary, अंतर्वेशी; mandibular, मैंडिबुलर; maxillary, मैक्सिलरी; labial, लेबियल; cercus, लूम।

कायांतरण

भ्रूणोत्तर वृद्धि (स्फोटन के बाद) के काल के दौरान कीट में अनेक क्रमिक **निर्मोचन** होते हैं अर्थात् वह अपनी त्वचा को उतार फेंकता रहता है, इस प्रक्रिया से वह अधिकतम आकार प्राप्त कर लेता है। निर्मोचनों के बीच की अवस्थाओं को **अन्तरावस्थाएँ** कहते हैं और दो निर्मोचनों के बीच किसी भी अन्तरावस्था में जो रूप कीट ग्रहण करता है उसे इन्स्टार कहते हैं। अंडे से बाहर निकलने पर वह पहले इन्स्टार में होता है, इस अन्तरावस्था के अन्त में उसमें एक निर्मोचन होता और वह दूसरा इन्स्टार बन जाता है और इस तरह चलता जाता है। अंतिम इन्स्टार वयस्क अथवा **पूर्णकीट** होता है। पूर्णकीट बनने की दिशा में कीट में जो भी परिवर्तन

होते हैं उन्हें कुल मिलाकर **कायांतरण** कहा जाता है। कीट में निम्नलिखित प्रकार के कायांतरण होते हैं।

1. **अकायांतरणी** कीट (ऐप्टेरिगोटा)—निम्नतर कीटों (कोलेम्बोला, थाइसैन्यूरा) में अंडे से निकलने वाला बच्चा वयस्क का ही छोटा रूप होता है और इसे **निम्फ़ (अर्भक)** कहते हैं, यह वयस्क से केवल इतना भिन्न है कि इसमें जननांग अपरिपक्व होते हैं। कई निर्मोचन तथा वृद्धि होकर यह वयस्क बन जाता है। ये कीट आदिरूप में पंखविहीन हैं, इन्हें ऐप्टेरिगोटा भी कहते हैं, उदाहरणतः **लेपिज्मा**; इनमें शिशु से वयस्क की ओर होने वाले परिवर्तन नगण्य होते हैं, कायांतरण न होने के कारण इस प्रकार के कीटों को अकायांतरणी कहते हैं।

2. **विषमपरिवर्तनी कायान्तरण** (एक्सोप्टेरिगोटा)—पंखयुक्त कीटों में वयस्क कई बातों में शिशुओं से भिन्न होते हैं, इस प्रकार के कीटों में वयस्क बनाने की दिशा में कायान्तरण होता कहा जाता है। अण्डे से स्फोटित होने वाली निम्फ में शरीर-आकृति, मुखांगों के प्रकार, और संयुक्त नेत्रों के पाये जाने वाले लक्षणों में एक सामान्य समरूपता पाई जाती है, हालांकि इन निम्फ़ों में उनके जलीय, तैरने अथवा बिल बनाने आदि की आदतों से सम्बन्धित अनुकूलन भी पाये जा सकते हैं। इन लक्षणों में निम्फ़ से वयस्क की ओर होने वाला परिवर्तन एक क्रमिक परिवर्तन होता है जिसमें निम्फ़ के उपांग, मुखांग, ऐंटेना और टाँगें सीधी वयस्क के प्रकार की रचनाओं में विकसित हो जाती हैं। पंख धीरे-धीरे वक्ष की बाहरी बहिर्वृद्धियों के रूप में विकसित हो जाते हैं, इनके बाहरी पंख-परिवर्धन के कारण इन्हें **एक्सॉप्टेरिगोटा** (बाह्यपंखी) भी कहते हैं। जननांग धीरे-धीरे परिपक्व हो जाते हैं। निम्फ़ से वयस्क की ओर हम धीमे परिवर्तन होने वाले कीटों को **विषमपरिवर्तनी** (या **विषमकायान्तरणी**) कहते हैं, इनमें ये वर्ग आते हैं: डिक्टियॉप्टेरा, ऑर्थाप्टेरा, आइसॉप्टेरा, हेमिप्टेरा, तथा ऐनॉप्ल्यूरा। हालांकि ड्रैगन-फ्लाई, मे-फ्लाई आदि की निम्फ़ वयस्कों से बहुत भिन्न होती हैं क्योंकि इनमें जलीय स्वभाव होने के कारण अनेक विशिष्ट निम्फ़ीय अनुकूलन पाये जाते हैं जबकि वयस्क वायवीय होते हैं, फिर भी ये निम्फ़ीय अनुकूलन वयस्कों की दिशा में होने वाले परिवर्तन के दौरान समाप्त हो जाते हैं, इस प्रकार के मामूली से अधिक परिवर्तनों वाले उदाहरणों को **अर्धपरिवर्तनी** (hemimetabolic) कहते हैं, इनमें ओडोनाटा, प्लेकॉप्टेरा, तथा एफेमेरॉप्टेरा आते हैं।

3. **पूर्णपरिवर्तनी कायान्तरण** (एंडोप्टेरिगोटा)—लेपिडॉप्टेरा, कोलियॉप्टेरा, हाइमेनॉप्टेरा, डिप्टेरा, साइफ़ोनैप्टेरा आदि में अंडे से निकलने वाले बच्चे को **लार्वा** कहते हैं, यह लार्वा संरचना, देहाकृति, मुखांगों, टाँगों और जीवन-पद्धति के लक्षणों में वयस्क से बहुत भिन्न होता है, लार्वा में संयुक्त नेत्रों के स्थान पर **पार्श्व नेत्रक** होते हैं, यह अधिक मात्रा में खाता, वृद्धि करता, चलता-फिरता और निर्मोचन करता जाता है। यह लार्वा अपने वयस्क से इतना ज्यादा भिन्न होता है कि यह पहले एक विश्रामी शान्त इन्स्टार में, जिसे **प्यूपा** कहते हैं, बदल जाता है, यह प्यूपा कभी-कभी एक ककून में बन्द हो जाता है जो कि लार्वा की लेबियल ग्रन्थियों से स्रावित होता

है। इस इन्स्टार में बहुत ज्यादा परिवर्तन होते हैं, हाइपोडर्मिस की जेबों से आन्तरिक रूप में पाँव बनते हैं, और ये पंख बाहर से दिखाई नहीं पड़ते हैं। चूँकि पंख भीतरी पूर्णकीट डिस्कों से विकसित होते हैं इसलिए इन कीटों को **एंडॉप्टेरिगोटा** (अन्तःपंखी) भी कहते हैं। उपांग बन जाते हैं, पेशियाँ, वातिकाएँ और आहार-नाल के भाग पूर्ण-कीट के अनुरूप अंगों द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते हैं। इन विशाल परिवर्तनों को पूर्ण-परिवर्तनी कायान्तरण कहते हैं।

पूर्णपरिवर्तनी कीटों में बाद की लार्वा एवं प्यूपा इन्स्टारों में आन्तरिक पुनर्निर्माण होता है। केवल केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र और विकासशील जननांगों को छोड़कर शेष सभी लार्वा-अंग भंग हो जाते हैं, इनके विघटन को **ऊतकलयन** (histolysis) कहते हैं, यह ऊतकलयन भक्षिकाणुओं द्वारा सम्पन्न होता है जो अंगों को खाते जाते हैं, और इनके पाचन से उपलब्ध होने वाले उत्पाद नई संरचनाओं के निर्माण में इस्तेमाल होते हैं। नई संरचनाओं का निर्माण वृद्धि केन्द्रों से होता है जिन्हें **पूर्ण-कीट मुकुल** अथवा **डिस्क** कहते हैं। पूर्णकीट डिस्क उन निर्माणशील कोशिकाओं के समूह होते हैं जो लार्वा में अलग से होते हैं, ये ही समूह पूर्णकीट के भावी अंगों के मूलांग होते हैं; इनसे टाँगें, मुखांग, आन्तरिक अंग और पंख बनते हैं। प्यूपा के भीतर पूर्णकीट-डिस्कों से इस प्रकार पूर्णकीट के अंगों की निर्माण-क्रिया को **ऊतकजनन** (histogenesis) कहते हैं, और इसी के परिणामस्वरूप पूर्णकीट बन जाता है।

इस प्रकार हर कीट में दो भ्रूणोत्तर प्रक्रियाएँ होती हैं, पहली प्रक्रिया शिशु में **वृद्धि** का होना है और दूसरी प्रक्रिया **कायान्तरण** का होना, दोनों में निर्मोचन होता है; इन दोनों प्रक्रियाओं पर अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के हार्मोनों का नियन्त्रण होता है। कीटों में इस तरह की दो अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ होती हैं, **कॉर्पोरा ऐलैटा** तथा **अग्रवक्षीय ग्रन्थियाँ**। कॉर्पोरा ऐलैटा के **बाल-हार्मोन** लार्वा-काल के अन्त तक वृद्धि और निर्मोचन का नियन्त्रण करते हैं। जब तक कॉर्पोरा ऐलैटा के बाल-हार्मोन बनते रहते हैं तब तक प्यूपा अथवा वयस्क की दिशा में होने वाला अन्तिम निर्मोचन नहीं हो सकता। अग्रवक्षी ग्रन्थियाँ अग्रवक्ष में पाई जाने वाली एक जोड़ी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं, इनसे एक हार्मोन **एक्डाइसॉन** निकलता है जिससे निर्मोचन होता तथा पूर्णकीट-डिस्कों एवं जननांगों का विकास होता है। दोनों हार्मोनों के स्रावित होते रहने पर तब केवल लार्वा का ही निर्मोचन होगा। इन दोनों हार्मोनों का परिणाम लार्वा अथवा प्यूपा इन्स्टारों में वयस्क लक्षणों के प्रकट होने को दमन करना है। जब केवल एक्डाइसॉन का स्राव होता है तब बाल-हार्मोन नहीं बनता और लार्वा में निर्मोचन होकर प्यूपा बन जाता है, और प्यूपा से वयस्क बन जाता है। इस प्रकार यह पता चलता है कि हर निर्मोचन के वास्ते एक्डाइसॉन का होना अनिवार्य है, किन्तु जब तक बाल-हार्मोन उपलब्ध होता है तब तक इसकी क्रिया में रूपान्तरण होता रहता है। निर्मोचन में पुराने क्यूटिकल को हटाने का काम हाइपोडर्मिस से स्रावित होने वाले एक एन्ज़ाइम से होता है, यह एन्ज़ाइम क्यूटिकल की निचली सतह

को काटता जाता है, और फिर हाइपोडर्मिस से एक नया क्यूटिकल पुराने क्यूटिकल के नीचे बन जाता है।

पूर्णपरिवर्तनी कीटों में 3 प्रकार के लार्वा होते हैं। 1. **कैम्पोडियारूपी** (compodeiform) लार्वा में एक मोटी त्वचा होती है और यह निम्नतम कीटों (थाइसैन्यूरा) के समान होता है जिसमें देह-प्रदेश सुसीमित होते हैं, संवेदी अंग सुनिर्मित होते हैं, चबाने वाले अथवा चूषणी मुखांग होते हैं; इसमें तीन जोड़ी वक्ष-टाँगें होती हैं जो चलनीय होती हैं, उदरीय उपांग नहीं होते, ये लार्वा सक्रिय परभक्षी होते हैं जैसे अनेक कोलियॉप्टेरा में। 2. **कैटरपिलररूपी** (Eruciform) लार्वा मांसल होता है और उसमें एक पतली त्वचा होती है, इसमें एक स्पष्ट शीर्ष होता है जिसमें पार्श्व नेत्रक बने होते हैं, ऐन्टेना छोटे होते हैं, मुखांग चबाने वाले प्रकार के होते हैं, लेबियम में एक वयित्र होता है, 3 जोड़ी सन्धित एवं नखरयुक्त वक्ष-टाँगें होती हैं जो आश्रय के काम आती हैं न कि चलने में, उदर में 4 या 5 असन्धित पकड़ने वाले प्रपाद होते हैं, लूम नहीं होते। इन लार्वाओं को कैटरपिलर (इल्ली) भी कहते हैं, ये अपेक्षाकृत निष्क्रिय होते हैं, जैसे लेपिडॉप्टेरा। 3. **अपादी लार्वा** में एक शीर्ष होता है जो स्पष्ट अथवा अस्पष्ट-सीमित हो सकता है, वक्ष और उदर में टाँगें नहीं होतीं, ये सक्रिय अथवा निष्क्रिय हो सकते हैं, उदाहरणतः डिप्टेरा में इन्हें **मैगट** कहते हैं और हाइमेनॉप्टेरा में **ग्रब**।
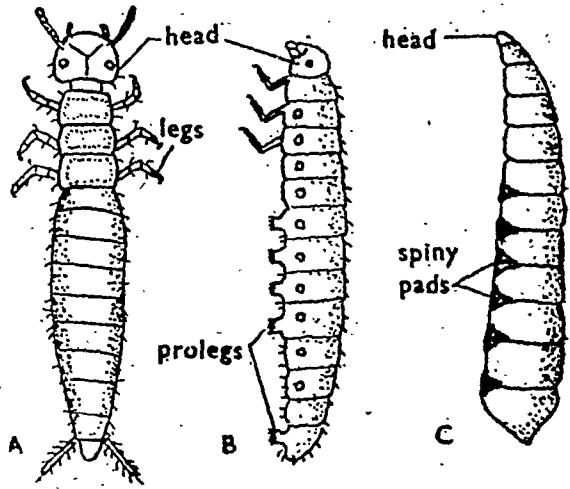
चित्र 446. कीट-लार्वाओं के प्रकार। A—कैम्पोडियारूपी लार्वा; B—कैटरपिलररूपी लार्वा; C—अपादी लार्वा।
Head, शीर्ष; legs, टाँगें; prolegs, प्रपाद; spiny pads, कंटिका-युक्त गद्दियाँ।

पूर्णपरिवर्तनी कीटों में 3 प्रकार के प्यूपा पाये जाते हैं। 1. **ऐक्सैरेट** (मुक्तोपांगी) प्यूपा में टाँगें और पंख कोश अपनी पूरी लम्बाइयों में मुक्त रहते हैं, ये प्यूपा गति कर सकते हैं, उदाहरणतः कोलियॉप्टेरा तथा हाइमेनॉप्टेरा। 2. **आब्टेक्ट** (बन्धोपांगी) प्यूपा में उसकी टाँगें तथा पंख-कोश अपनी पूरी लम्बाई में अन्तिम लार्वा निर्मोचन के बाद निर्मोचन तरल द्वारा देह के साथ दृढ़तः चिपके होते हैं, उदाहरणतः लेपिडॉप्टेरा, डिप्टेरा तथा कोलियॉप्टेरा। 3. **कोआर्क्टेट** (सहसंकुची) प्यूपा में

अन्तिम लार्वा-त्वचा प्यूपा का आवरण बनाती है, यह त्वचा कड़ी हो जाती और भीतर वन्द प्यूपा से पृथक् हो जाती है, इस आवरण को **प्यूपावरण** कहते हैं जो सिलिंडराकार अथवा ढोलाकार हो सकता है, उदाहरणतः डिप्टेरा।
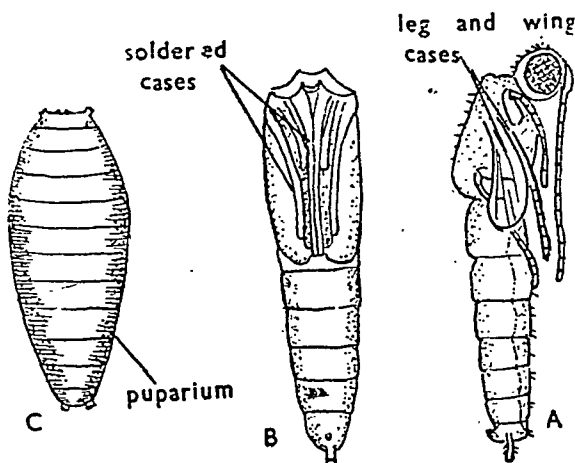
चित्र 447. कीट-प्यूपाओं के प्रकार। A—ऐक्सैरेट (मुक्तोपांगी) प्यूपा; B—ऑब्टेक्ट (बंधोपांगी) प्यूपा; C—कोआर्क्टेस (सहसंकुची) प्यूपा। Puparium, प्यूपावरण; soldered cases, चिपके हुए कोश; legs and wing cases, टाँगों के एवं पंखों के कोश।

कीट और रोग

कीट निरन्तर मनुष्य और उसके पालतू जानवरों पर आक्रमण करते हुए उनमें विभिन्न प्रकार के रोग फैलाते रहते हैं। कीट दो प्रकार से रोग पैदा करते हैं: 1. अपने परपोषियों के ऊतकों के विनाश से हानिकर प्रभाव पैदा करते हुए, जैसे **डर्मैटोबिया** मक्खी के लार्वा त्वचा के नीचे घुसते जाते और त्वचीय माइएसिस पैदा करते हैं। एक पिस्सू **डर्मैटोफ़िलस** त्वचा के नीचे ऊतकों को नष्ट करता जाता और व्रण (सोर) पैदा करता है। **गैस्ट्रोफिलस** मक्खी के लार्वा घोड़ों के आमाशय में घुसकर अन्तड़ियों का माइएसिस पैदा करते हैं। 2. कुछ कीट रोग-जनक बैक्टीरिया तथा प्रोटोज़ोअनों का संक्रमण फैलाते हैं। जो कीट रोग-जनक जीव को एक परपोषी से दूसरे परपोषी में पहुँचाते हैं उन्हें **रोगवाहक** (vector) कहते हैं, ये रोगवाहक निम्नलिखित प्रकार से रोग फैला सकते हैं—

(क) **परोक्ष यान्त्रिक संचरण** (Indirect mechanical transmission)—कीट रोगाणुओं को अपने शरीर पर लेकर उन्हें सीधे किसी परपोषी तक पहुँचा देते हैं, या वे रोगाणुओं को अपनी लार अथवा विष्ठा के साथ परपोषी तक पहुँचाते हैं, उदाहरणतः घरेलू मक्खियाँ टाइफाइड (मयादी बुखार) के रोगाणुओं को रोगी की विष्ठा से अन्य व्यक्ति के भोजन तक पहुँचा देती हैं।

(ख) सीधा यान्त्रिक संचरण (Direct mechanical transmission)—कीट किसी रोगी प्राणी के शरीर से रोगाणु ग्रहण करके उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के घावों, त्वचा अथवा रक्त में स्वयं प्रविष्ट करते हैं, उदारहणतः काटने वाली मक्खी **स्टोमॉक्सिस** ओरियन्टल सोर (व्रण) के लीशमानिया को तथा ऐन्थ्रैक्स के रोगाणुओं को दूसरे परपोषियों में पहुँचाती है, लेकिन इन रोगाणुओं को वह अपने शरीर में केवल थोड़े से ही काल के लिये धारण किये रहती है।

(ग) जैविक संचरण (Biological transmission)—हो सकता है कि कोई कीट किसी रोगजनक जीव का केवल वाहक ही न हो, अपितु हो सकता है कि रोगाणु अथवा परजीवी उस कीट के शरीर में कुछ परिवर्धन सम्बन्धी परिवर्तनों से गुजरते हों और उसके भीतर उनमें प्रगुणन होता हो, इस तरह की प्रक्रिया को जैव संचरण कहते हैं जो 3 प्रकार का हो सकता है : (1) रोग के जीव उस कीटाणु में केवल प्रगुणन करते हैं जैसे पिस्सू में प्लेग के कीटाणु। (2) कीट के भीतर रोगाणुओं में परिवर्धनीय, परिवर्तन होते और वे प्रगुणन भी करते हैं, जैसे मच्छरों में मलेरिया परजीवी। (3) रोगाणुओं में, कीट के भीतर, परिवर्धन तो होता है लेकिन संख्या-वृद्धि नहीं होती, जैसे मच्छरों में श्लीपद के फाइलेरिया लार्वा।

रोग न पैदा करने वाले महत्त्वपूर्ण कीट मच्छर, मक्खियाँ, पिस्सू, जूँ और खटमल हैं।

1. **मच्छर—ऐनॉफ़िलीस** की अनेक स्पीशीज़ मानव मलेरिया की वाहक होती हैं। मादा **ऐनॉफ़िलीस** मच्छर मलेरिया रोगी को काटता है और मानव रक्त के साथ मलेरिया पैदा करने वाले **प्लाज्मोडियम** को अपने भीतर ले जाता है। **ऐनॉफ़िलीस** के भीतर **प्लाज्मोडियम** में संख्या-वृद्धि होती तथा उसमें स्पोरजनन होता है, जब यह मच्छर किसी दूसरे व्यक्ति को काटता है तो परजीवी को उसके शरीर में पहुँचा देता है। मलेरिया चार प्रकार के होते हैं : 1. **प्लाज्मोडियम वाइवैक्स** से सुदम्य तृतीयक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर हर 48 घंटे के बाद आता है। 2. **प्ला० मलेरी** से चतुर्थक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर हर 72 घंटे के बाद आता है। 3. **प्ला० फ़ैल्सिपैरम** से दुर्दम तृतीयक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर लगभग लगातार चढ़ा रहता है। 4. **प्ला० ओवेल** से हल्का तृतीयक मलेरिया होता है जिसमें ज्वर हर 48 घंटे के बाद आता है। चूँकि **ऐनॉफ़िलीस** की विभिन्न स्पीशीज़ व्यापक रूप में वितरित हैं इसलिए मलेरिया बहुत व्यापक है। उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में मलेरिया से हर वर्ष न केवल हज़ारों मौतें होती हैं बल्कि इसके कारण धरती के कुछ सबसे उपजाऊ क्षेत्रों में कृषि होने में भी बाधा पड़ती है।

क्यूलेक्स से पक्षियों में मलेरिया होता है। **क्यूलेक्स फ़ैटिगैंस** तथा **क्यू० पाइपिएन्स** एक नीमैटोड परजीवी **वुचेरीरिया बैंक्रॉफ़्टाई** के लार्वा का वाहक और मध्यस्थ परपोषी होते हैं, इस लार्वा के वयस्क मनुष्य में श्लीपद पैदा करते हैं। वुचेरीरिया के लार्वा परिधीय रक्त में केवल रात के समय आते हैं और तब क्यूलेक्स रक्त चूस कर लार्वा भीतर ले लेता है। लार्वा मच्छर के भीतर परिवर्धित होते और नये मानव

परपोषियों में पहुँचा दिए जाते हैं जिनमें वे लसीका (लिम्फ़ैटिक) तंत्र में परिपक्व होते हैं। **वुचेरीरिया** का संचरण गर्म देशों में **ऐनॉफ़िलीस** तथा **ईडीस** की कुल स्पीशीज़ से भी होता है। यह नीमैटोड मनुष्य की भुजाओं, टाँगों, वृषण कोश अथवा स्तन-ग्रंथियों में सूजन पैदा कर देता है। भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में **मैंसोनिया** (*Mansonia*) जीनस के एक और मच्छर से **वुचेरीरिया मलैयी** फैलता है, यह नीमैटोड केवल टाँगों तक सीमित रहता है। **वुचेरीरिया** के संक्रमण के हर मामले से श्लीपद पैदा हो जाता हो ऐसी बात नहीं है।

ईडीस एक बहुव्यापी मच्छर है। यह दिन और रात दोनों में काटता है। **ईडीस इजिप्टाई** पीत ज्वर के वाइरस का वाहक है। पीत ज्वर दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में बहुत व्यापक है, यह मलेरिया से कहीं ज्यादा भयानक है। **ई० इजिप्टाई** तथा अन्य स्पीशीज़ डेंगू अथवा "हड्डी-तोड़ ज्वर" का वाइरस भी फैलाते हैं, ये बंदरों से संक्रमण फैलाते हैं और गर्म देशों में डेंगू एक महामारी के रूप में फैल जाता है, डेंगू में उच्च ज्वर होता है, खाल पर दाने उभर आते हैं और हड्डियों में दर्द होता है।

2. **मक्खियाँ**—घरेलू मक्खी **मस्का** की स्पीशीज़ से टाइफ़ाइड (मयादी बुख़ार) के रोगाणुओं का फैलाव होता है, ये रोगाणु मक्खी के शरीर और टाँगों पर बने शूकों द्वारा उस समय प्राप्त कर लिए जाते हैं जब वह रोगी के मल-मूत्र पर बैठती है, और फिर जब वह मनुष्य के भोजन पर पहुँचती है तो ये रोगाणु उसमें लग जाते हैं। मक्खी द्वारा ट्रैकोमा (रोहों) के रोगाणु भी फैलते हैं, यह आँखों का एक रोग है जो उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाता है; इसके अलावा हैज़े, पेचिश और दस्तों के रोगाणु भी मक्खियों द्वारा आम तौर से फैलाये जाते हैं।

सेट्सी-मक्खी **ग्लौसाइना** विभिन्न जानवरों से लेकर मनुष्य तक **ट्रिपैनोसोमा** की वाहक होती है। **ग्लौ० पैल्पैलिस** तथा **ग्लौ० टैक्निनॉयडीस**, ये दो स्पीशीज गैम्बियन निद्रालु रोग पैदा करने वाले **ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएंज़ी** का संचरण करती हैं। **ग्लौ० मॉर्सिटैन्स** द्वारा रोडेशिया के निद्रालु रोग पैदा करने वाले **ट्रिपैनोसोमा रोडेजिएंज़ी** फैलता है। मक्खी मनुष्य के रक्त में ट्रिपैनोसोमा छोड़ती है जहाँ से वे लसीका ग्रंथियों तथा प्रमस्तिष्क-मेरु तरल में पहुँच जाते हैं जिससे प्राणघातक सिद्ध होने वाला निद्रालु रोग हो जाता है। पालतू और जंगली जानवरों में भी निद्रालु रोग हो जाया करता है। **ग्लौ० मॉर्सिटैन्स** एक और रोगाणु **ट्रिपैनोसोमा ब्रूसियाई** का वाहक है जो मवेशियों तथा घोड़ों में नगाना रोग पैदा करता है, नगाना निद्रालु रोग से मिलता-जुलता होता है।

फ़्लेबोटोमस (सैंड-फ़्लाई) सरीसृपों तथा स्तनियों का रक्त चूसती है, यह भारत में तथा भूमध्यसागर के आस-पास के देशों में सैंड-फ़्लाई ज्वर फैलाती है। इस ज्वर का वाहक **फ़्लेबोटोमस पैपेटसी** (*Phlebotomus papatasi*) है, इस ज्वर में आँखों में दर्द होता है, पीठ और गर्दन में अकड़ाहट होती है, और श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या घट जाती है। **फ़्ले० पैपेटसी** तथा **फ़्ले० सार्जेन्टी** (*P. sergehti*) से **लीश्मानिया ट्रॉपिका** फैलता है जो भारत और पूर्वी एशियाई देशों में ओरियंटल व्रण

पैदा करता है। चीन में **फ्लै० मेजर** (*P. major*) और भारत में **फ्लै० आर्जेंटिपेस** (*P. argentipes*) से **लीश्मानिया डोनोवनाई** फैलता है जिससे कालाज़ार होता है—इस रोग में परजीवी तिल्ली, जिगर, अस्थि-मज्जा (bone marrow) और एंडोथीलियमी (अंतःकला) कोशिकाओं में पहुँच जाते हैं। कालाज़ार महामारी के रूप में होता है और मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होता है। **फ्लै० वेरुकैरम** (*P. verrucarum*) दक्षिण अमेरिका के देशों में ओरोया ज्वर (Oroya fever) के बेसिलस का संचरण करती है।

गैडफ़्लाई **टैबेनस** तथा अस्तबल मक्खी **स्टोमॉक्सिस** चबाने वाली तथा रक्त चूषणी मक्खियाँ होती हैं; ये **ट्रिपैनोसोमा ईवैन्साई** की वाहक होती हैं जिससे सूरा रोग हो जाता है—यह रोग घोड़ों और मवेशियों में बहुत व्यापक रूप में पाया जाता है, घोड़ों में यह घातक होता है। **टैबेनस** तथा **स्टोमॉक्सिस** द्वारा ओरियंटल व्रण के **लीश्मानिया ट्रॉपिका** का तथा मवेशियों के एक अत्यन्त विषालु रोग एंथ्रैक्स के बेसिलस का यांत्रिकीय संचरण भी हो सकता है। **स्टोमॉक्सिस** मुर्गियों के फ़ीताकृमि **हाइमेनोलेपिस** के लार्वा का और घोड़ों के एक नीमैटोड **हैब्रोनीमा** (*Habronema*) के लार्वाओं का भी मध्यस्थ परपोषी हो सकता है।

मैंग्रोव-मक्खी **क्राइसॉप्स** (*Chrysops*) पश्चिमी अफ्रीका में मानव रक्त को चूसती है। यह **फ़ाइलेरिया लोआ** (*Filaria loa*) की मध्यस्थ परपोषी एवं वाहक है, यह परजीवी एक मानवीय नीमैटोड परजीवी है जिसके द्वारा "कालाबार उत्फूलन" बन जाते हैं, नीमैटोड अधःत्वचीय ऊतकों में घूमता-फिरता है, खास तौर से आँखों के आस-पास। लार्वा दिन के समय परिधीय परिसंचरण में आ जाते हैं और तभी **क्राइसॉप्स डिमिडिऐटा** (*Chrysops dimidiata*) मानव रक्त को चूसती है, लार्वा मक्खी में परिवर्धित होते हैं और नए परपोषियों में संचरित हो जाते हैं। **क्राइसॉप्स डिस्कैलिस** (*Chrysops discalis*) ट्यूलैरीमिया (tularaemia) के रोगाणुओं का संचरण करती है, यह अमेरिका में पाया जाने वाला रोडेंटों का प्लेग-जैसा रोग है।

एक वार्बल-मक्खी (warble fly) **हाइपोडर्मा** (*Hypoderma*) अमेरिका में मवेशियों की टाँगों पर अंडे देती है, लार्वा खाल में से सूराख करके भीतर पहुँचते जाते और आहार-नाल तक पहुँच जाते हैं। भारत में **हाइपोडर्मा क्रॉसाई** (*Hypoderma crossi*) के लार्वा बकरियों की पीठ की खाल के नीचे परिवर्धित होते हैं।

साइमूलियम (*Simulium*) नाम की काली-मक्खी से एक फ़ाइलेरिया नीमैटोड **ऑन्कोसेरा** (*Onchocera*) के लार्वाओं का संचरण होता है, इस नीमैटोड का अफ्रीका, अमेरिका और यूरोप में मनुष्य तथा मवेशियों में संक्रमण पाया जाता है।

3. **विभिन्न पिस्सू—ज़ीनॉप्सिला कीयोपिस** तथा **ज़ी० ऐस्टिया** (*X. astia*) चूहे के पिस्सू हैं, ये संक्रमित चूहे का रक्त चूसते और मनुष्य में गिल्टी की प्लेग के बेसिलाई का संचरण करते हैं। संक्रमण फैलने का तरीका या तो यह हो सकता है कि चूहे के पिस्सू की आहार-नाल का रास्ता इन बेसिलाई द्वारा अवरुद्ध हो जाए

और चूसा हुआ रक्त पुनः उलट कर घाव में पहुँच जाए, या फिर हो सकता है कि पिस्सू की संक्रमित विष्ठा मनुष्य की खाल में खुजाने के दौरान रगड़ी जाए। भारत में प्लेग महामारी के रूप में होती है। **जी० कीयोपिस** स्थानिक टाइफ़स के रोगाणुओं का भी चूहों से मनुष्य में संक्रमण फैलाता है; यह चूहों से मनुष्यों में टुलैरीमिया के रोगाणु भी फैलाता है। **ज़ीनॉप्सिला** दो फ़ीता-कृमियों, कुत्तों-बिल्लियों के **डाइपाइलिडियम कैनाइनम** और चूहों एवं मनुष्यों के **हाइमेनोलेपिस**, के लार्वाओं का भी मध्यस्थ परपोषी होता है।

4. **विभिन्न बग (मत्कुण)**—आम खटमल **साइमेक्स** (*Cimex*) को अनेक मानव रोगों का कारण होने के बारे में संदेह किया जाता रहा है लेकिन यह सिद्ध नहीं किया जा सका है। खटमलों की आहार-नाल में कुछ बैक्टीरियानाशी पदार्थ होते हैं जिनमें बैक्टीरिया अधिक समय तक जिंदा नहीं रह पाते। **साइमेक्स** द्वारा प्लेग और आवर्ती ज्वर के रोगाणुओं का वाहन एवं संचरण हो सकता है, यह थोड़े ही कालों के लिए होता है। तीन बग—"ऐसैसिन बग" **ट्राएटोमा, पैनस्ट्रॉंजिलस** (*Panstrongylus*) तथा **रॉड्नियस** (*Rhodnius*) मानव निवासों में प्रजनन करते हैं, ये **ट्रिपैनोसोमा क्रूज़ाई** के वाहक हैं जिससे दक्षिण अमेरिका में चगास-रोग पैदा होता है, यह रोग निद्रालु रोग के समान है, इससे मस्तिष्क और शरीर में लगातार क्षय होता जाता है और अंततः मृत्यु हो जाती है। **ट्राएटोमा रूब्रोफ़ेशिएटा** (*Triatoma rubrofasciata*) भारत में पाया जाता है, इसके निम्फ़ घरों में आम पाए जाते हैं जहाँ वे दरारों में तथा गलीचों के नीचे छिपे रहते हैं, यह स्पीशीज़ कालाज़ार के संचरण से सम्बन्धित है।

5. **जूँएँ**—**पेडिक्युलस** जूँ रक्त चूसती और रिकेट्सिया अपने भीतर प्राप्त कर लेती है जो जूँ के भीतर प्रगुणित होते जाते हैं, जब वे मनुष्य में वेधन द्वारा पहुँचा दिए जाते हैं तब उनसे स्थानिक एवं जनपदिक (epidemic) टाइफ़स पैदा होता है। **पेडिक्युलस** से मनुष्य में ट्रेंच-ज्वर पैदा करने वाले **रिकेट्सिया** का आवर्ती ज्वर के **स्पाइरोकीटों** का भी वहन होता है। ट्रेंच ज्वर तथा आवर्ती ज्वर जूँ के मल से फैलता है जबकि यह या तो मनुष्य की त्वचा में रगड़ा जाए या स्वयं जूँ ही मनुष्य के शरीर पर कुचली जाए।

कीटों का आर्थिक महत्त्व

एक ही आहार और एक ही निवास-स्थान के लिए मनुष्य और कीटों में सदा से लड़ाई होती रही है। विभिन्न कीट मनुष्य और उसके पालतू जानवरों पर आक्रमण करते हुए उनमें रोग फैलाते हैं, वे उसकी सम्पत्ति एवं फसलों को नष्ट करते हैं, अतः मनुष्य के वास्ते कीटों का बहुत बड़ा महत्त्व है। कुछ कीट मनुष्य के वास्ते लाभकर भी हैं, लेकिन अधिकांश से उसे सीधी अथवा परोक्ष हानि पहुँचती है।

(क) **लाभदायक कीट**—जिन कीटों से शहद, मोम, लाख, रंग और रेशम पैदा होता है वे व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक हैं। कुछ कीट हानिकारक कीटों को नष्ट करने की दृष्टि से हमारे लिए बहुत उपकारी हैं।

(1) **व्यापारिक उत्पाद**—मधुमक्खी **एपिस** से हर वर्ष लाखों टन शहद प्राप्त होता है, इसके छत्तों से छत्ता-मोम भी उपलब्ध होता है। मधुमक्खियों के लाभ बहुत ही व्यापक हैं, इनसे न केवल शहद और मोम ही प्राप्त होते हैं बल्कि इनके द्वारा अनेक फूलों और फलों का परपरागण होता है जिसके बिना शायद इन पौधों का अस्तित्व ही नहीं बना रहता। लक्ष-कीट **टैकार्डिया** अपनी त्वचा-ग्रंथियों से व्यापारिक लाख का स्राव एक आरक्षी आवरण के रूप में करता है, यह स्राव मादाओं से होता है, भारत में लाख से चपड़ा तैयार किया जाता है। मेक्सिको का किरमिजी कीट (cochineal insect) कैक्टसों पर पाया जाता है, इस शल्क-कीट की मादाओं के शरीर से किरमिजी रंग तैयार होते हैं। **बॉम्बिक्स** तथा **यूप्टेरोट** रेशम के मॉथ हैं, ये भारत, चीन, जापान और यूरोप में पाले जाते हैं; रेशम के कीड़े कहलाने वाले इनके लार्वा कच्चे रेशम के ककून बनाते हैं, इस रेशम के तंतु को उधेड़ लिया जाता और उससे रेशम बनाया जाता है। एशियाई देशों में हर वर्ष 5 करोड़ पौंड रेशम तैयार किया जाता है। दो बीटलों **लिट्टा** (*Lytta*) तथा **माइलेब्रिस** (*Mylabris*) के सुखाए गए पक्षवर्म (इलाइट्रा) एक शक्तिशाली कामोत्तेजक कैंथेरिडीन बनाने में काम में लाए जाते हैं।

दो मक्खियों **ल्यूसिलिया** (*Lucilia*) तथा **फ़ॉर्मिया** (*Phormia*) के लार्वा हड्डियों के ऐसे घावों के इलाज में काम में लाये जाते हैं जिन पर दवाइयों का प्रभाव नहीं पड़ता; इन लार्वाओं को हड्डियों तथा अस्थि-मज्जा के घावों में रख दिया जाता है, ये सड़ते जाते हुए तथा मृत ऊतकों को साफ़ कर डालते हैं, बैक्टीरिया वृद्धि को रोकते हैं और ऐलेंटोइन का स्राव करते हैं जिसका असर घाव भरने की दिशा में होता है।

2. **लाभदायक परभक्षी कीट**—कुछ कीट परभक्षी होते हैं, वे बहुत बड़ी संख्या में हानिकारक कीटों को खाते और उन्हें नष्ट करते हैं। एक मैंटिस **स्टैगोमैंटिस** (*Stagomantis*) अतिभक्षी होता है, वह मक्खियों, टिड्डों और कैटरपिलरों को खाता है जिनमें से कुछ फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले होते हैं। एक लेडी-बर्ड बीटल **काइलोमीनिस** (*Chilomenes*) कपास के पौधों पर आक्रमण करने वाले लाहियों को खाता है। एक अन्य लेडी-बर्ड बीटल **नोवियस** (*Novius*) उन शल्क-कृमियों को नष्ट करता है जो संतरे और नींबू के वृक्षों पर नाशकजीव होते हैं। **एपिकौटा** (*Epicauta*) एक फफोला-बीटल (blister beetle) होता है जो अपने अंडे टिड्डियों के क्षेत्रों में देता है, इन अंडों से निकले हुए लार्वा टिड्डी के अंडा-कैप्सूलों में घुसकर अंडों को खा जाते हैं। एक स्थलीय बीटल **कैलैसोमा** (*Calasoma*) अनेक प्रकार के लेपिडॉप्टेरा-लार्वाओं को खाता है जो अनाज की फसलों तथा कपास को नष्ट किया करते हैं।

3. **लाभदायक परजीवी कीट**—कुछ कीट हानिकारक जीवों के परजीवी होते हैं, वे प्रायः अपने अंडे इन हानिकारक कीटों के लार्वाओं तथा वयस्कों के शरीर के भीतर देते हैं, इन अंडों से निकलने वाले बच्चे भीतर ही भीतर अपने परपोषी को

खाते हुए उसे मार डालते हैं। **टैकिना** (*Tachina*) तथा उससे सम्बन्धित मक्खियों के लार्वा हानिकारक लेपिडॉप्टेरा-लार्वाओं को जैसे आर्मी-वर्म को खाते हैं जो धान्य फ़सलों को नुकसान पहुँचाते हैं। हाइमेनॉप्टेरन मक्खियों के लार्वा तथा मांसभक्षी भिड़ें बहुत संख्या में लाहियों (एफ़िडों) को खाती हैं। चैल्सिड तथा इक्न्यूमॉन मक्खियाँ परजीवी होती हैं जो अपने अंडों को पादपभक्षी लेपिडॉप्टेरा के ककूनों और लार्वाओं में देती हैं। एक हाइमेनॉप्टेरन मक्खी **ऐपेंटेलीस** (*Apenteles*) आर्मी-वर्म तथा डोड-कृमियों (बोल-वर्म) में अंडे देती है, परजीवी लार्वा परपोषी की खाल को काटकर बाहर निकल आते हैं।

4. **अपमार्जक** (Scavengers)—कुछ कीट अपमार्जक का काम करते हैं, वे मृत प्राणि एवं पादप पदार्थ को खाते हैं और इस तरह सड़ने को रोकते हैं। कुछ चींटियाँ तथा कुछ मक्खियों के लार्वा पूरे प्राणिशवों को चट कर जा सकते हैं।

ख. हानिकारक कीट—लाभकारक कीटों की तुलना में हानिकारक कीटों की संख्या बहुत ज़्यादा है।

1. **रोग फैलाने वाले कीट**—अनेक प्रकार के मच्छर, मक्खी, पिस्सू, जूँ और खटमल मनुष्यों तथा पालतू जानवरों में रोग फैलाते हैं, इनका वर्णन पहले ही "कीट और रोग" शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है।

3. **घरेलू कीट**—काकरोच, चींटियाँ, मक्खियाँ और घुन मानव-आहार को खराब कर देते हैं। **टिनिया** (*Tinea*), **टिनियोला** (*Tineola*) तथा **ट्राइकोफ़ैगा** (*Trichophaga*) कपड़ों के मॉथ हैं, ये अपने अंडों को ऊनी कपड़ों में देते हैं, अंडों से निकलने वाले लार्वा कपड़ों को खाते और उन्हें बरबाद कर देते हैं, वे फ़रों, गलीचों और सूखे मेवों को भी खाते हैं। **ऐंथ्रीनस** (*Anthrenus*) एक गलीचा बीटल है; यह एक अपमार्जक है जो क्षय होते हुए प्राणि-पदार्थ को खाता है, लेकिन इसके लार्वा गलीचों और पररक्षित जीव-विज्ञानीय नमूनों को बरबाद करते हैं। **टेनेब्रियो** (*Tenebrio*) एक अनाज-कृमि (मील-वर्म) बीटल है, इसके लार्वा अनाज या आटा-कृमि कहलाते हैं, ये आटे और गोदामों में भरे अनाज को खाते हैं, जैसे चावल को। सिल्वर-फ़िश **लेपिज्मा** (*Lepisma*) और पुस्तक-जूँ **लाइपोस्केलिस** (*Liposcelis*) किताबों और पुरानी पांडुलिपियों में रहतीं और उन्हें बरबाद करती रहती हैं। **दीमकें** पुस्तकों, गलीचों, फ़र्नीचर और इमारतों में लकड़ी के काम को जितना नुकसान पहुँचाती हैं उसका कोई अन्दाज़ा नहीं लगा सकता।

3. **घरेलू जानवरों के लिये हानिकारक**—सेट्सी-मक्खी **ग्लौसाइना** के द्वारा घोड़ों में नगाना रोग पैदा करने वाले **ट्रिपैनोसोमा ब्रूसियाई** का संचरण होता है। रक्त-चूपक मक्खियाँ **टैबैनस** तथा **स्टोमॉक्सिस** घोड़ों और मवेशियों में **ट्रिपैनोसोमा ईवैन्साई** भीतर पहुँचा देती हैं जो भारत में सूरा रोग पैदा करता है। वार्बल-मक्खी **हाइपोडर्मा** के लार्वा गाय-बैलों की खाल के नीचे वेधन करते जाते हैं और श्वसन के लिए खाल में सूराख कर देते हैं, उसके बाद वे ग्रसिका में पहुँच जाते और पुनः रीढ़ की हड्डी के समीप आकर खाल में सूराख करते हैं जहाँ पर छोटे-छोटे फूलन

बन जाते हैं, इनसे न केवल चमड़े को ही नुकसान पहुँचता है वरन् मांस और दूध की सप्लाई भी घट जाती है। बॉट-मक्खी **गैस्ट्रोफ़िलस** घोड़ों के बालों पर अंडे देती है, ये लार्वा बहुत ज़्यादा संख्या में आमाशय में पहुँच जाते हैं। भेड़-चिचड़ी **मेलोफ़ैगस** (*Melophagus*) तथा मवेशियों एवं घोड़ों की वन-मक्खी **हिप्पोबॉस्का** (*Hippobosca*) अपने परपोषियों का रक्त चूसती हैं और अक्सर रक्त-स्राव पैदा कर देती हैं। कुक्कुट-जूं **मीनोपॉन** (*Menopon*) मुर्गियों का रक्त चूसती और उन्हें क्षति पहुँचाती है।

4. **फ़सलों के लिए हानिकारक**—अनेक कीट वन-वृक्षों, उगती हुई खेती, फलों और गोदामों में भरे हुए अनाज को नुकसान पहुँचाते हैं, हर वर्ष इनसे करोड़ों रुपये की हानि पहुँचती है। इस प्रकार के कीट असंख्य हैं, इनमें से अधिकतर लेपिडॉप्टेरा, कोलियॉप्टेरा, डिप्टेरा तथा हेमिप्टेरा में आते हैं। भूरी-पूंछ वाला मॉथ **यूप्रॉक्टिस** (*Euproctis*) तथा जिप्सी मॉथ **लिमैंट्रिया** (*Lymantria*) पत्तियों वाले एवं छायादार वृक्षों को भयंकर क्षति पहुँचाते हैं, इनके लार्वा एक भारी खतरा हैं जो वन-वृक्षों को बरबाद कर देते हैं। हीसियन-मक्खी **माएटियोला** (*Myetiola*) एक छोटे आकार की मिज-मक्खी है जिसके लार्वा गेहूँ के पौधे को नुकसान पहुँचाते हैं। दो लेपिडॉप्टेरा के लार्वा, भारत का **काइलो** (*Chilo*) और अमेरिका का **डायेट्रीया** (*Diatraea*) गन्ने के तनों में सूराख़ करता जाता है और अपार क्षति पहुँचाता है। एक हेमिप्टेरन गन्ना पर्ण-फुदकी (sugar-cane loaf-hopper) **पाइरिला** गन्ने का रस चूस जाता है, और ऐसा वह वयस्क तथा निम्फ़ दोनों ही अवस्थाओं में करता है, इस तरह गन्ने को बहुत नुकसान पहुँचता है। सारे संसार में पाया जाने वाला एक मॉथ **पाइरौस्टा** (*Pyrausta*), लेकिन जो खास तौर से उष्णकटिबंधीय भागों में ज्यादा संख्या में पाया जाता है, मक्का के तनों और फलों में बहुत भारी नुकसान पहुँचाता है, इसके लार्वाओं को मक्का-वेधक (corn-borer) कहते हैं जो पौधों के इन भागों में सूराख़ करते जाते हैं। भारत की धान पर्ण-फुदकी **नेफ़ोटेटिक्स** (*Nephotettix*) तथा चावल और ज्वार आदि का पूर्व का नाशकजंतु **लेप्टोकोराइज़ा** (*Leptocorisa*) (गन्धी-बग) हेमिप्टेरा हैं, ये बहुत ज्यादा संख्या में चावल पर आक्रमण करते और पत्तियों तथा बालियों को खाते हैं। एक मॉथ **शौनोबियस** (*Schoenobius*) के लार्वा भारत में चावल के पौधों के तनों में वेधन करते जाते हैं, इनसे पौधा मर जाता है। एक ऑर्थॉप्टेरन **हीरोग्लाइफ़स** (*Hieroglyphys*) के निम्फ़ और वयस्क चावल के पौधों के वृद्धिशील प्ररोहों को खा डालते और इस प्रकार दाना नहीं बैठ पाता। भारतीय कपास-बग **डिस्डर्कस**, मिस्र का कपास-बग **ऑक्सीकैरेनस** (*Oxycarenus*) और कपास-डोडी घुन **ऐंथोनोमस** (*Anthonomus*) कपास को बहुत क्षति पहुँचाते हैं, ये कपास-डोडियों में दाग़ बना देते और उन्हें नष्ट कर डालते हैं। एक हेमिप्टेरन **एफ़िस** (लाही) भारत में कपास का भारी शत्रु है, ये नाशक-कीट कभी-कभी बहुत ज्यादा संख्या में कपास के पौधों पर आक्रमण करते हैं जिससे पौधे मुरझा जाते और मर जाते हैं। दो लेपिडॉप्टेरा **ऐग्रोटिस** (*Agrotis*)

तथा **नोरिमोशेमा** (*Gnorimoschema*) भारत में आलू के कर्तन-कृमि (cut-worm) हैं, **ऐग्रोटिस** मॉथ आलू की पत्तियों को खाता और तनों को काट देता है; और **नोरिमोशेमा** के लार्वा खेतों और भण्डारों में आलुओं को भीतर खाते जाते हैं, इसके लार्वा तम्बाकू और टमाटर को भी नुकसान पहुँचाते हैं। **ऐग्रोटिस** के लार्वा मटर, बन्दगोभी, तम्बाकू, मूँगफली, गेहूँ और फूल-गोभी को भी नुकसान पहुँचाते हैं। कुछ कोलियॉप्टेरा जैसे **ऐग्रियोटीस** (*Agriotes*) और **लाइमोनियस** के लार्वाओं को तारकृमि (wire-worms) कहते हैं, ये जड़ों को खाते और धान्यों, जड़-फसलों तथा घास की श्रेणी के पौधों को बहुत ज्यादा क्षति पहुँचाते हैं। अनेक कीट और उनके लार्वा भारत में सब्जियों को नष्ट करते हैं। **साइफोकोरीन** (*Siphocoryne*) एक लाही है जो पत्ता-गोभी की पत्तियों को खाता है, स्क्वैश बग **ऐनैसा** (*Anasa*) कुकुरबिटेसी-पौधों के लिए हानिकर है, चित्तीदार डोडी-कृमि (spotted boll-worm) **ऐरियस** (*Earias*) भिंडी को नुकसान पहुँचाता है; लाल बीटल **औलैकोफ़ोरा** (*Aulacophora*) कुम्हड़ा (काशीफल, सीताफल) के पौधों को खाता है; एक बीटल **ब्रूकस** (*Bruchus*) के लार्वा सेम और मटर की फलियों में वेधन करते हुए दाने को मार डालते हैं। अनेक कीट फलों के वृक्षों पर आक्रमण करते हैं, वे जड़ों, तनों, शाखाओं, पत्तियों, पुष्प-क्रम और फल को क्षति पहुँचाते हैं। **ड्रॉसिचा** नामक मीली-बग भारत में आम, अलूचा, पपीता, कटहल, नाशपाती और सिट्रस फलों के पेड़ों को हानि पहुँचाते हैं। आम का तेला **इडियोसेरस** (*Ideocerus*) के निम्फ़ और वयस्क पुष्प-क्रम पर आक्रमण करते और पादप-रस चूसते हैं, इस प्रकार आम के फल बनने में रोक लगाते हुए ये अपार क्षति पहुँचाते हैं। **कॉन्टैरिनिया** (*Contarinia*) मक्खी के लार्वा नई-नई बनती हुई नाशपातियों को खाते हैं जिससे वे शीघ्र ही गल जाती हैं। सेब का बग **सिल्ला** (*Psylla*) सेब और नाशपाती के वृक्षों पर अंडे देता है, अंडों से निकलने पर निम्फ़ फूलों और प्ररोहों को नुकसान पहुँचाते हैं। एक बीटल **ऐंथोनोमस** (*Anthonomus*) के लार्वा भी सेब के फूलों को बरबाद करके फल बैठना रोक देते हैं। एक बग **निसियस** (*Nysius*) अनेक प्रकार के फल-वृक्षों के लिए अत्यन्त नाशकारी है।

अनेक मॉथ, कैटरपिलर और बीटल संग्रहीय अनाज को भारी क्षति पहुँचाते हैं, दो बीटल टेनेब्रियो (*Tenebrio*) तथा **ट्राइबोलियम** (*Tribolium*) एक सी आदतों के होते हैं और वे अनाज के गोदामों में आमतौर पर पाये जाते हैं, **टेनेब्रियो** अपनी तमाम अवस्थाओं में आटे और अन्य भण्डार वस्तुओं में पाया जाता है, इसके लार्वाओं को "मील-वर्म" कहते हैं। **ट्राइबोलियम** जमा करके रखे गये गेहूँ और अनाज को खाता है। एक घुन **कैलैन्ड्रा** (*Calandra*) भारत में चावल तथा अन्य जमा किए गये अनाज के दानों में सूराख़ करता है।

11

फ़ाइलम मोलस्का
(PHYLUM MOLLUSCA)

स्पीशीज़ की संख्या की दृष्टि से समस्त अकशेरुकियों में दूसरे नम्बर का सबसे बड़ा फ़ाइलम मोलस्का है, इसमें 80,000 से अधिक जीवित स्पीशीज़ का वर्णन किया जा चुका है और इनके अतिरिक्त 35,000 फ़ॉसिल स्पीशीज़ भी ज्ञात हैं। कठोर कवच के होने से इनमें परिरक्षित होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं, इसके परिणामस्वरूप मोलस्का-प्राणियों का फ़ॉसिल रिकार्ड बहुत सम्पन्न है, ये मोलस्का-प्राणी आरम्भिक केम्ब्रियन में बन चुके थे। मोलस्का एक विषमाँग वर्ग प्रतीत होते हैं क्योंकि इनमें आकृति की महान् विविधता मिलती है लेकिन ये सबके सब एक ही आधारभूत योजना पर बने होते हैं।

मोलस्का मूलतः द्विपार्श्वीय सममित जन्तु हैं जिनमें कोमल छोटा शरीर पाया जाता है जिसमें कोई खंडीभवन नहीं होता, कुछ में द्विपार्श्वीय सममिति समाप्त हो गई है। शरीर में एक अग्र शीर्ष होता है, एक पृष्ठीय आंतरांग कूबड़ (visceral hump) होता है, एक अधर पेशीय पद (अथवा चरण) होता है जो रेंगने, मिट्टी में घुसते जाने अथवा तैरने के काम आता है। देह के चारों ओर एक मांसल **प्रावार** (mantle) होता है जो एक कैल्सियमी **कवच** (shell) का स्राव करता है, यह कवच प्रायः बाहरी होता है हालाँकि कभी-कभी भीतरी और ह्रासित अथवा अविद्यमान भी हो सकता है। कवच एक ही भाग का बना हो सकता है अथवा दो भाग का, एक भाग के कवच को एक-कपाटी (univalve) और दो भाग के कवच को द्विकपाटी (bivalve) कहते हैं। प्रावार तथा देह के बीच में एक **प्रावार-गुहा** (mantle cavity) होती है जिसमें गुदा और वृक्क (गुद) खुलते हैं और इसी के भीतर एक जोड़ी सिलियायित गिल अथवा **कंकतें** (ctenidia) होती हैं जिनमें एक अक्ष पर दोनों पार्श्वों में पत्ती-जैसी शाखाएँ बनी होती हैं, लेकिन कुछ मोलस्कों में गिलों की संख्या कहीं ज्यादा हो सकती है। दीर्णसीलोम ह्रासित होकर परिहृद्, गोनडों और वृक्कों की गुहाओं में सीमित होती है, मुख्य देह-गुहा हीमोसील होती है। हीमोसील में पाई जाने वाली रक्त की बड़ी मात्रा को देह-भित्ति पेशियाँ चलाती-संभालती हैं, और इससे आकृति में

परिवर्तन, पद का फैलना, शुण्डिका तथा शीर्ष का बाहर को निकल आना आदि संभव होते हैं। एक पृष्ठीय हृदय होता है जिसमें एक या दो अलिंद (auricle) तथा अकेला निलय (ventricle) होता है। श्वसन वर्णक हीमोसाएनिन होता है। श्वसन इन रचनाओं द्वारा सम्पन्न होता है : प्रावार, एपिडर्मिस, एक से लेकर अनेक कंकतों अथवा प्रावार गुहा में बने एक "फेफड़े" द्वारा। नर-मादा प्रायः अलग-अलग प्राणी होते हैं, परिवर्धन या तो सीधा होता है या उसमें एक रूपांतरित ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा होता है जिसे **वेलिजर** (veliger) लार्वा कहते हैं।

मोलस्का अधिकतर समुद्री होते हैं, हालाँकि कुछ मोलस्का अलवण जल में पाए जाते और कुछ थल पर भी पाये जाते हैं। इस फ़ाइलम के सदस्यों में आकृति की अपार विविधता पाई जाती है, इनमें इस प्रकार के सुपरिचित जन्तु पाये जाते हैं जैसे काइटॉन, घोंघे, स्लग, क्लैम, सीपियाँ, स्क्विड तथा ऑक्टोपस। मोलस्का को पाँच मुख्य क्लासों में विभाजित किया जाता है।

1. **ऐम्फ़िन्यूरा** (Amphineura) में काइटॉन आते हैं जिनमें द्विपार्श्वीय सममिति पाई जाती है।

2. **गैस्ट्रोपॉडा** (Gastropoda) में घोंघे, स्लग और व्हेल्क आते हैं-जो असममित हो जाते हैं और जिनमें एक सर्पिलतः कुण्डलित कवच पाया जाता है।

3. **स्कैफ़ोपोडा** (Scaphopoda) में गजदन्त-कवच आते हैं जो नलिकाकार कवचों में रहते और द्विपार्श्वतः सममित होते हैं।

4. **लैमेलिब्रैंकिएटा** (Lamellibranchiata) में क्लैम, मसेल, स्कैलप, कौकल तथा सीपियाँ आती हैं जिनमें शरीर पार्श्वतः संपीड़ित होता है तथा दो कपाट वाले कवच में वन्द होता है।

5. **सिफ़ैलोपोडा** (Cephalopoda) में स्क्विड, ऑक्टोपस, कटल-फ़िश और विभिन्न नौटिलस आते हैं जिनमें द्विपार्श्व सममिति होती है, इनका पद अविभाजित होकर भुजाएँ बन जाती हैं।

1. लैमेलिडेन्स मार्जिनैलिस (*Lamellidens marginalis*)
(अलवणजलीय मसेल)

क्लास **पीलेसिपोडा** (*Pelecypoda*) अथवा लैमेलिब्रैंकिएटा में द्विकपाटी कहलाने वाले मोलस्क आते हैं और इनमें मसेल, क्लैम, स्केलप तथा सीपियाँ (आयस्टर) जैसे आम प्राणी शामिल हैं। शीर्ष और उसके साथ-साथ संवेदी अंगों का पूर्णतः विलोप हो चुका है। इनका शरीर और पद पार्श्वतः संपीडित होते हैं, और कवच में दो कपाट (वाल्व) होते हैं जो पृष्ठतः हिंज के रूप में जुड़े होते हैं। इनके गिल बड़े और बहुत अधिक सुविकसित होते हैं, इन गिलों ने श्वसन के अतिरिक्त आहार एकत्र करने का भी कार्य ले लिया है। ये ज़लीय आवासों की नरम तली में घुसते जाते हैं।

अलवरणजलीय मसेल संसार के अधिकतर भागों में नदियों और झीलों में कीचड़ में अंशतः गड़े हुए पाये जाते हैं, **यूनियो** (*Unio*) सारे संसार में तथा **लैमेलिडेन्स मार्जिनैलिस** भारतीय नदियों एवं संसार के अन्य भागों में पाया जाता है।
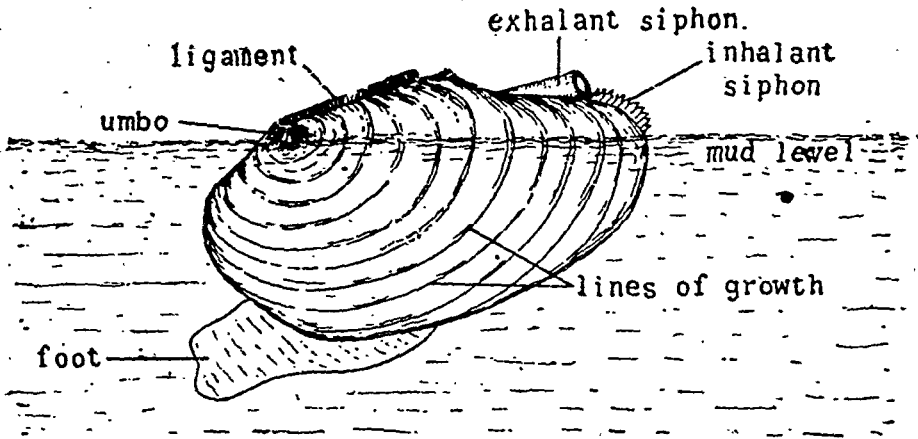
चित्र 448. **लैमेलिडेन्स मार्जिनैलिस** ।

Umbo, अम्बो; ligament, स्नायु; exhalant siphon, वहिर्वाही साइफन; inhalant siphon, अन्तर्वाही साइफ़न; mud-level, कीचड़ स्तर; lines of growth, वृद्धि-रेखाएँ; foot, पद ।

ऐनोडॉन्टा (*Anodonta*) अनेक भागों में आम पाया जाता है। यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा विवरण इन सभी जीनसों पर लागू होगा। यह प्राणी अचलायमान होता है लेकिन अपने पेशीय पद से रेत में हल चलने की गति की तरह से धीरे-धीरे चलता जा सकता है। एक बाहरी **कवच** होता है जो दो सममित और बराबर आकार के अर्धांशों का बना होता है जिन्हें कपाट (वाल्व) कहते हैं—ये दाहिने और बाएँ कपाट कहलाते हैं, दोनों कपाट एक पृष्ठीय लचीली पट्टी **हिंज-स्नायु** (hinge ligament) द्वारा जुड़े रहते हैं, यह स्नायु दोनों कवच-कपाटों में जारी रहता है लेकिन यह अकैल्सिकृत कॉन्कियोलिन (conchiolin) का बना होता है, यह लचीला होता और कवच के कपाटों को खोल देता है। हिंज-स्नायु के पास दाँत और कूपिकाएं होती हैं जो एक-दूसरे में फ़िट होकर एक कारगर परस्पर बन्धक व्यवस्था बना लेते हैं जिससे कि दोनों कवच-कपाटों के आगे और पीछे को हट जाना रुक जाता है। हिंज-स्नायु की अग्र दिशा में हर पार्श्व पर एक फूला हुआ भाग **अम्बो** (umbo) होता है जो कवच का आदितम भाग होता है और शुरू-शुरू में बच्चा-प्राणी में बनता है, अम्बो के नीचे कवच-क़पाटों की संकेन्द्रित वृद्धि-रेखाएं होती हैं। कवच-क़पाट आगे से गोलाई लिये हुए तथा पीछे से कुछ-कुछ नुकीले होते हैं, अम्बो का रुख़ आगे को होता है जिससे जन्तु के दाहिने और बाएँ कवच-कपाटों को निर्धारित किया जा सकता है। अधिकतर पीलेसियोडा में दोनों कवच-कपाट समरूप और बराबर साइज़ के होते हैं, लेकिन कुछ अचल फ़ैमिलियों (कुलों) में, जैसे ऑयस्टर (मुक्ता या सीपी)

में ऊपर अथवा बायाँ कपाट दाहिने कपाट से सदैव ज्यादा बड़ा होता है, इसी दाहिने कपाट के द्वारा जन्तु अधःस्तर से जुड़ा रहता है।
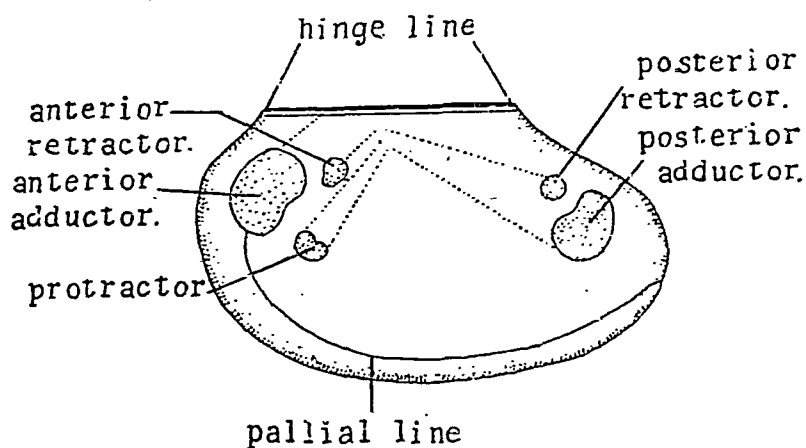
चित्र 449. दाहिना कवच-कपाट, भीतरी सतह से।

Hinge line, हिंज-रेखा; anterior retractor, अग्र अन्तःकर्षी; anterior adductor, अग्र अभिवर्तनी; protractor, बहिःकर्षी; pallial line, प्रावार-रेखा; posterior retractor, पश्च अन्तःकर्षी; posterior adductor, पश्च अभिवर्तनी।

प्रावार (Mantle)—कवच-कपाटों की भीतर सतह का अस्तर बनाते हुए एक अर्धपारदर्शी **प्रावार** (Mantle अथवा pallium) दो पालियों का बना होता है, ये पालियाँ पृष्ठतः एक-दूसरे में जारी रहती हैं। यह खाल की तरह होता है, यह कोमल अंगों को भीतर बन्द किये रखता और साथ ही एक स्कर्ट या घाघरे की तरह लटका रहता है। प्रावार द्वारा एक **प्रावार-गुहा** (mantle cavity) घिरी होती है जो हर पार्श्व में शरीर की पूरी लम्बाई में चलती है। प्रावार ऊपरी आधे हिस्से में शरीर को तथा मध्य-अधर भाग में एक पेशीय **पाद** (foot) को भीतर बन्द किये रहता है। हर प्रावार-पालि का निचला सीमान्त अथवा बार्डर मोटा हो गया होता है और उसमें पेशियाँ होती हैं, पेशियाँ प्रावार को कवच-कपाटों से एक **प्रावार-रेखा** (pallial line) पर जोड़े रहती हैं, प्रावार के मोटे हो गये निचले सीमान्त में तीन समान्तर पालियां अथवा वलन बने होते हैं, इनमें से सबसे भीतरी वलन सबसे बड़ा होता है और यही वह वलन है जिसमें पेशियाँ होती हैं, ये पेशियां अरीय एवं वृत्ताकार दोनों प्रकार की होती हैं, यही वलन जल के प्रवाह को नियन्त्रित करता है। मध्य वलन संवेदी होता है। बाहरी वलन से कवच का स्राव होता है; बाहरी वलन की भीतरी सतह से पेरिऑस्ट्रेकम (periostracum) अर्थात् परिकवच बनता है और इसकी बाहरी सतह से प्रिज्मीय (prismatic) तथा मुक्ताभ परतों (nacreous layers) का स्राव होता है लेकिन सीप-परत का स्राव प्रावार की संपूर्ण बाहरी सतह से भी होता है। अनेक द्विकपाटियों में जब कभी कोई बाहरी कण कवच और प्रावार के बीच में आ जाता है तो प्रावार उसके चारों ओर एक मोती का स्राव

कर देता है। यह मोती उस बाहरी कण के चारों ओर संकेन्द्रीय परतों के रूप में बनता जाता है। प्रावार पालियों के पश्च सीमान्त भी मोटे हो गये होते हैं तथा वे दो छोटी नलिकाओं के रूप में कवच के बाहर को निकले रहते हैं, एक पृष्ठीय बहिर्वाही
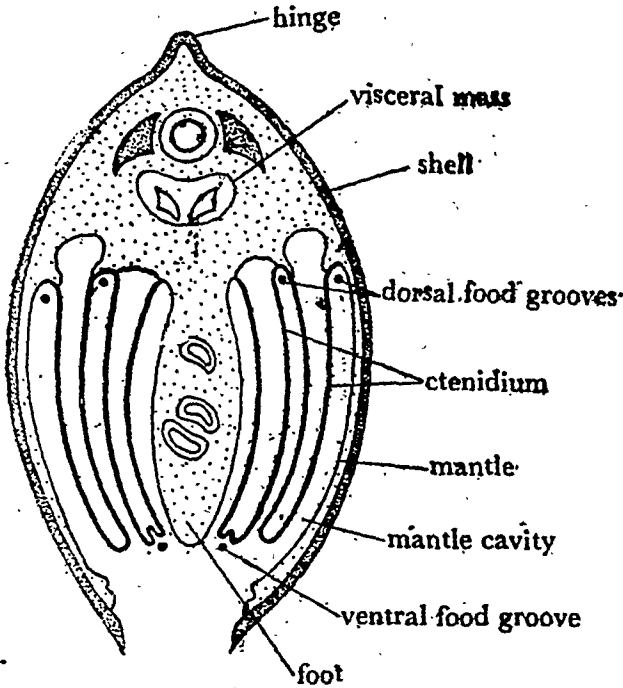
चित्र 450. **लैमेलिडेन्स** का उदग्र सेक्शन (V.S.)
Hinge, हिंज; visceral mass, आँतरांग संहति, shell, कवच; dorsal food grooves, पृष्ठ खाद्य-खाँचें; ctenidium, कंकत (गिल); mantle, प्रावार; mantle cavity, प्रावार-गुहा; ventral food groove, अधर खाद्य-खाँच; foot, पद।

साइफन (exhalant siphon) और एक अधरीय **अन्तर्वाही साइफन** (inhalant siphon) के रूप में। बहिर्वाही साइफन एक वास्तविक नलिका होती है जो प्रावार की दो पालियों के समेकन से बनी होती है, लेकिन अन्तर्वाही साइफन एक अस्थायी नलिका होती है जो प्रावार पालियों के परस्पर छूते रहने के द्वारा बन जाती है, इसके सीमान्तों पर **झालर** (fimbriae) बनी होती है। जल अन्तर्वाही साइफन में से भीतर जाता और परिसंचरण करता हुआ बहिर्वाही साइफन में से बाहर निकल जाता है।

कवच—यदि कवच-कपाट को प्रावार पालियों से अलग कर दिया जाए तो इसकी भीतरी सतह नजर आने लगती है, इस सतह पर पेशियों के जुड़े होने के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, उन पेशियों के जो दोनों कपाटों के बीच में अनुप्रस्थशः फैली होती हैं। प्रावार के सीमांत का चिपका होना अथवा निवेशन एक **प्रावार-रेखा** के रूप में

दिखाई पड़ता है। अग्रतः एक **अग्र अभिवर्तनी पेशी** (anterior adductor muscle) का चिह्न होता है पश्चतः एक अपेक्षाकृत बड़ा चिह्न **पश्च अभिवर्तनी पेशी** (posterior adductor muscle) का होता है, इन चिन्हों के नज़दीक ही दो और चिन्ह होते हैं, एक तो **अग्र अन्तःकर्षी पेशी** (anterior retractor muscle) का और एक **पश्च अन्तःकर्षी पेशी** (posterior retractor muscle) का होता है। अग्र अभिवर्तनी के पास एक **वहिःकर्षी पेशी** (protractor muscle) का भी चिन्ह होता है। अभिवर्तनी पेशियाँ कवच-कपाटों को एक साथ पास-पास लाकर कस कर वंद कर
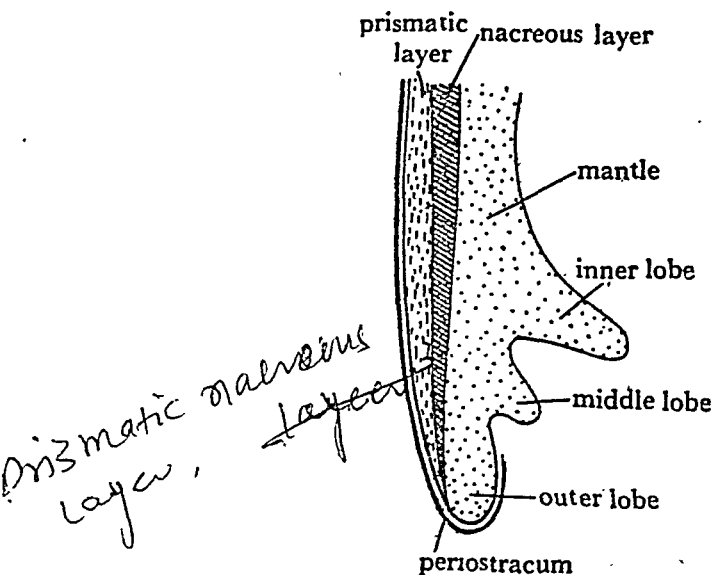
चित्र 451. प्रावार और कवच के निचले सीमांत का अनुप्रस्थ सेक्शन (T.S.)।

Prismatic layer, प्रिज्मीय परत; nacreous layer, मुक्ताभ परत; mantle, प्रावार; inner lobe, भीतरी पालि; middle lobe, मध्य पालि; outer lobe, वाहरी पालि; periostracum, पेरिकवच (परिऑस्ट्रैकम)।

लेती हैं, अंतःकर्षी पेशियाँ पद को भीतर खींच लेती हैं तथा वहिःकर्षी पेशी पद को वाहर की ओर निकाल देती है। हिंज-स्नायु अभिवर्तनी पेशियों का विरोधी होता है और जव अभिवर्तनी पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं तो इसी स्नायु के कारण कपाट खुल जाते हैं। आदितः दोनों अभिवर्तनी पेशियाँ वरावर आकार की होती हैं लेकिन अनेक फैमिलियों में अग्र अभिवर्तनी ह्रासित हो जाती है, और सीपियों तथा स्कैलपों में यह पूरी तरह विलीन हो जाती है और तव पश्च अभिवर्तनी हट कर कवच-कपाटों के मध्य में आ जाती है। सभी पेशियाँ अरेखित होती हैं, जन्तु की वृद्धि के साथ-साथ इनकी स्थिति भी धीरे-धीरे हटती जाती है, उनकी वड़ी ही मंद रेखाएं अम्वो तक पहुँचती हुई देखी जा सकती हैं।

कवच के सेक्शन में तीन परतें होती हैं, एक बाहरी भूरी श्रृंगीय परत **परिकवच** (periostracum) जो संरक्षी होती है और एक श्रृंगीय जैव पदार्थ कॉन्कियोलिन (conchiolin) की बनी होती है । इसके नीचे मध्य परत एक मोटी **प्रिज्मीय परत** (prismatic layer) होती है जो $CaCO_3$ के उदग्र क्रिस्टलों अथवा प्रिज्मों की बनी होती है, और ये प्रिज्म कॉन्कियोलिन द्वारा पृथक् रहते हैं । सबसे भीतरी
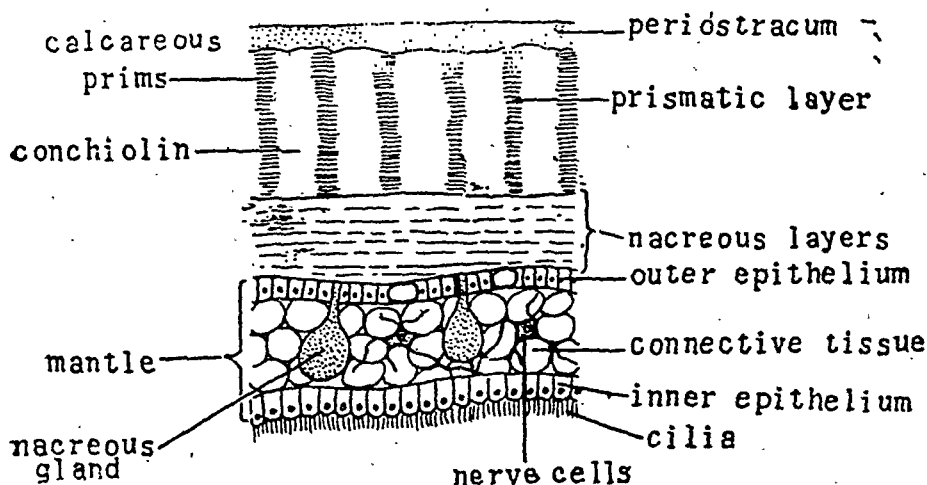
चित्र 452. कवच और प्रावार का अनुप्रस्थ सेक्शन ।

Calcareous prisms, कैल्सियमी प्रिज्म; conchiolin, कॉन्कियोलिन; mantle, प्रावार; nacreous gland, मुक्ताभ ग्रन्थि; periostracum, परिकवच; prismatic layer, प्रिज्मीय परत; nacreous layers, मुक्ताभ परतें; outer epithelium, बाहरी एपिथीलियम; connective tissue, योजी ऊतक; inner epithelium, भीतरी एपिथीलियम; cilia, सिलिया; nerve cells, तंत्रिका कोशिकाएँ ।

मुक्ताभ परत (nacreous layer) अथवा मुक्ता-सीप ("mother-of-pearl) परत $CaCO_3$ तथा कॉन्कियोलिन की एकांतर परतों की बनी होती है । हिंज-स्नायु अकैल्सिकृत कॉन्कियोलिन का बना होता है, यह परिकवच के साथ अविच्छिन्न रहता है । कवच की भीतरी दो परतों के लिए सुरक्षित कैल्सियम कार्बोनेट पाचन-ग्रन्थियों की कुछ विशिष्ट कोशिकाओं में संग्रहीत रहता है । मुक्ताभ परत अम्बो के ऊपर सबसे ज्यादा मोटी और कवच के सीमांत पर सबसे ज्यादा पतली होती है, यह बटनों के निर्माण में इस्तेमाल होती है । कवच के बनने में परिकवच का निर्माण प्रावार की बाहरी पालि से होता है, तथा प्रिज्मीय एवं मुक्ताभ परतों का स्राव प्रावार की पूरी बाहरी सतह से होता है, हालांकि मुक्ताभ परत का स्राव प्रावार के मोटे हो गए निचले सीमान्त से भी होता है ।

प्रावार में कोशिकाओं की एक परत वाला एक बाहरी एपिथीलियम होता है जो कवच से छूता रहता है, इसमें रक्त वाहिकाओं की शाखाएं होती हैं, इसके भीतर

एक योजी ऊतक होता है जिसमें ये सब रचनाएँ पाई जाती हैं : रक्त वाहिकाएँ, तंत्रिका-कोशिकाएँ एवं तंतु, एककोशिक श्लेष्मा ग्रन्थियाँ तथा मुक्ताभ ग्रन्थियाँ जा कवच की मुक्ताभ परत का स्राव करती हैं। सबसे भीतरी ओर मोटे सिलियायित एपिथीलियम की एक अकेली कोशिका परत होती है।

शरीर लम्बा होता है लेकिन पार्श्वतः संपीडित होता है। शीर्ष समाप्त हो गया है, ऊपरी अर्ध भाग में एक **आंतरांग संहति** (visceral mass) होती है जो एक मध्य-अधर फनाकार, पार्श्वतः संपीडित पद में जारी रहती है, यह पद आगे की ओर को रुख किये रहता है, यह मिट्टी में घुसते जाने के लिए एक अनुकूलन है। पद में एक बड़ा साइनस (कोटर) होता है जो रक्त से भरा रहता है और रक्त की दाब तथा एक जोड़ी पाद-वहिःकर्षी पेशियों की क्रिया के द्वारा वाहर को निकल आता है,
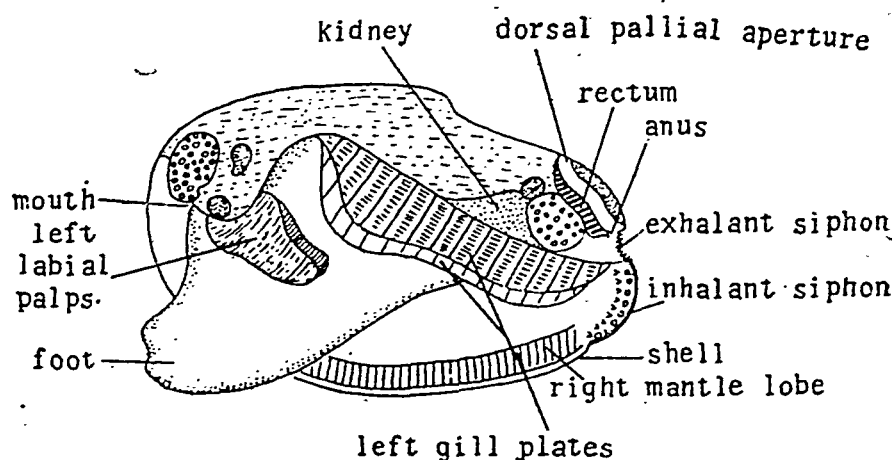
चित्र 453. वायाँ कवच-कपाट और वायीं प्रावार-पालि हटाकर दिखाया गया प्राणी।

Kidney, वृक्क; dorsal pallial aperture, पृष्ठ प्रावार छिद्र; rectum, मलाशय; anus, गुदा; exhalant siphon, वहिर्वाही साइफ़न; inhalant siphon, अंतर्वाही साइफन ; shell, कवच ; right mantle lobe, दायीं प्रावार-पालि; left gill plates, वायीं गिल प्लेटें; mouth, मुख; left labial palps, वायें लेबियल पैल्प; foot, पद।

ये वहिःकर्षी पेशियाँ पाद के हर पार्श्व से उसके सम्मुखी कवच-कपाट तक अनुप्रस्थशः फैली होती हैं। पद फूला हुआ और स्फीत (turgid) हो जाता है, और फिर उस स्थिति में मिट्टी में घुस कर चलते जाने में इस्तेमाल होता है। पद का भीतर सिकोड़ लिया जाना एक जोड़ी अग्र और एक जोड़ी पश्च अन्तःकर्षी पेशियों द्वारा संपन्न होता है जो एक ओर तो पद से जुड़ी होतीं और दूसरी ओर कवच-कपाटों से जुड़ी होती हैं, साथ ही यह भीतर सिकोड़ने की क्रिया स्वयं पद के भीतर मौजूद पेशी-तंतुओं द्वारा भी होती है। हर पार्श्व पर देह में से एक प्रावार-पालि निकली होती है, प्रावार ालियों के वीच की जगह **प्रावार-गुहा** होती है जिसमें हर पार्श्व में एक **कंकत**

(ctenidium) लटका रहता है। प्रावार-गुहा बड़ी होती है तथा देह के हर पार्श्व में फैली हुई होती है, यह कंकतों की सुरक्षा करती और उन पर गाद बैठने से रोकती है, और इसके द्वारा अन्दर-बाहर को निश्चित दिशाओं में जल की धारा बहती रह सकती है।

सीलोम एक दीर्णसीलोम होती है जो मोलस्कों में मीज़ोडर्म के दो परतों में फट जाने से बनती है, लेकिन यह सीलोम ह्रासित होकर वृक्कों एवं गोनडों की युग्मित गुहाओं तथा हृदय को भीतर घेरे रखने वाले परिहृद् के रूप में रह गया है। मूलतः ये तीनों गुहाएँ परस्पर जुड़ी रहा करती थीं लेकिन उत्तरोत्तर ये पृथक् होती गयीं और केवल वृक्कों तथा परिहृद् की गुहाएं परस्पर संबंधित रह गयी हैं। गोनडों की गुहाएँ पूर्णतः पृथक् हो गई हैं।
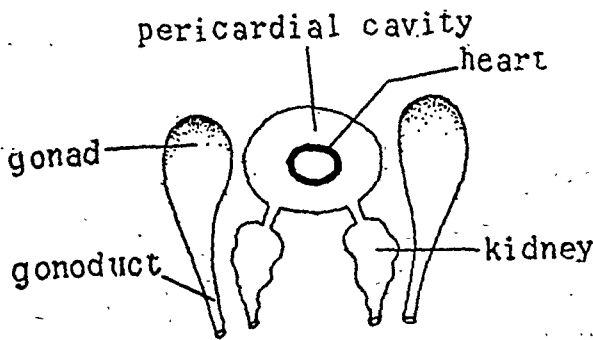
चित्र 454. **लैमेलिडेन्स** की सीलोमी गुहाएँ।
Gonoduct, जनन-वाहिनी; gonad, गोनड; pericardial cavity, परिहृद् गुहा; heart, हृदय; kidney, वृक्क।

श्वसन-तंत्र—एक अकेली जोड़ी लंबे **कंकत** पाए जाते हैं जिनमें से पद के हर पार्श्व में एक-एक कंकत होता है। बड़ी प्रावार-गुहा से ही यह संभव हो सका है कि पार्श्वतः पड़े हुए इन कंकतों की इतनी ज्यादा लंबाई हो सके। हर कंकत दोहरा जान पड़ता है किन्तु वास्तव में यह दो **गिल-प्लेटों** (gill plates) अथवा अर्धगिलों (demibranchs) का बना होता है—एक बाहरी और भीतरी गिल-प्लेट जो एक ही कंकत के वलित हो जाने से बनी है। कंकतों के कारण हर पार्श्व में प्रावार-गुहा के दो भाग बन जाते हैं—एक तो बड़ा आधारीय अंतर्वाही कक्ष और दूसरा एक छोटा पृष्ठीय बहिर्वाही कक्ष अथवा अधिगिल (suprabranchial) कक्ष। हर गिल-प्लेट दो समरूप पल्लों अथवा पटलिकाओं (lamellae) की बनी होती है जो केवल पृष्ठ दिशा में छोड़कर शेष सभी सीमांतों पर एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं और इस प्रकार हर गिल-प्लेट की दोनों पटलिकाओं से एक संकीर्ण किन्तु लंबा थैला बन जाता है। पटलिकाएँ बहुत से ऊर्ध्वाधर (खड़े) समांतर **गिलसूत्र** (gill filaments) की बनी होती है, गिलसूत्र लंबे होते हैं, वे नीचे को चलते जाते और V अक्षर के रूप में फिर से ऊपर को घूम जाते हैं, जिससे हर गिलसूत्र में एक अवरोही और एक आरोही शाखा बन जाती है। सहवर्ती गिलसूत्र ऊतकों के समेकनों के द्वारा जुड़ जाते हैं जिन्हें

अंतरासूत्री संयोजन (interfilamentar junctions) कहते हैं। इस प्रकार गिल-सूत्र तथा अंतरासूत्री संयोजनों से एक गिल-प्लेट की दो पटलिकाएँ बन जाती हैं,
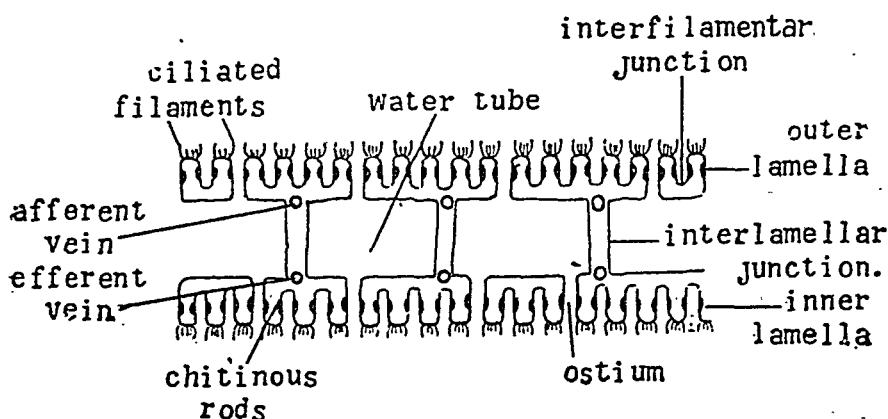
चित्र 455. गिल-प्लेट का अनुप्रस्थ सेक्शन ।
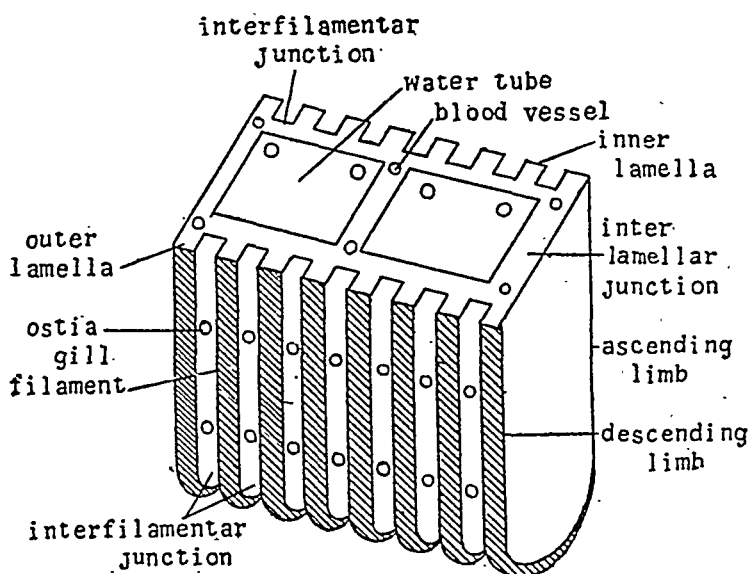
चित्र 456. गिल-प्लेट का एक अंश ।

Interfilamentar junction, अन्तरासूत्री संयोजन; water tube, जल नलिका; blood vessel, रक्त वाहिका; inner lamella, भीतरी पटलिका; interlamellar junction, अन्तरापटलिका संयोजन; ascending limb, आरोही शाखा; descending limb, अवरोही शाखा; ostia, ऑस्टिया; gill filament, गिलसूत्र; outer lamella, बाहरी पटलिका; afferent, अभिवाही; efferent, अपवाही ।

अंतरासूत्री संयोजनों में छिद्र बने होते हैं जिन्हें ऑस्टिया (ostia) कहते हैं, इन ऑस्टिया के द्वारा प्रावार-गुहा के अधर अंतर्वाही कक्ष और जल-नलिकाओं के बीच संबंध स्थापित हो जाता है। गिलसूत्र खड़ी रेखाओं-जैसे दिखाई पड़ते हैं और उनके अंतरासूत्री संयोजन एक पटलिका पर बने क्षैतिज रेखांकन जैसे गिलसूत्रों पर विविध प्रकार के सिलिया बने होते हैं, हर गिलसूत्र के भीतर बनी दो **काइटिनी शलाकाएँ** अवलंब प्रदान करती हैं। सूत्रों के पार्श्वों पर **पार्श्व सिलिया** होते हैं, उस दूरस्थ सतह पर जिस पर अन्तर्वाही धारा सबसे पहले आकर टकराती है, **ललाटीय सिलिया** (frontal cilia) होते हैं, ललाटीय सिलिया के अगल-बगल दोनों तरफ लंबे **पार्श्व-ललाटीय सिलिया** (latero-frontal cilia) होते हैं जिन्हें ललाट-पार्श्वीय सिलिया भी कह देते हैं। गिल-प्लेट की दोनों पटलिकाओं के बीच में एक गुहा होती है जो वाही ऊतक की उदग्र (खड़ी) छड़ों द्वारा विभाजित रहती है, यह वाही ऊतक **अन्तरा-पटलिका संयोजन** (interlamellar junctions) बनाता है जिनमें रक्त वाहिकाएँ होती हैं। दो पटलिकाओं के बीच के अंतरापटलिका संयोजन गुहा को स्पष्ट छोटे-छोटे कक्षों में विभाजित कर देते हैं जिन्हें **जल-नलिकाएँ** (water tubes) कहते हैं,
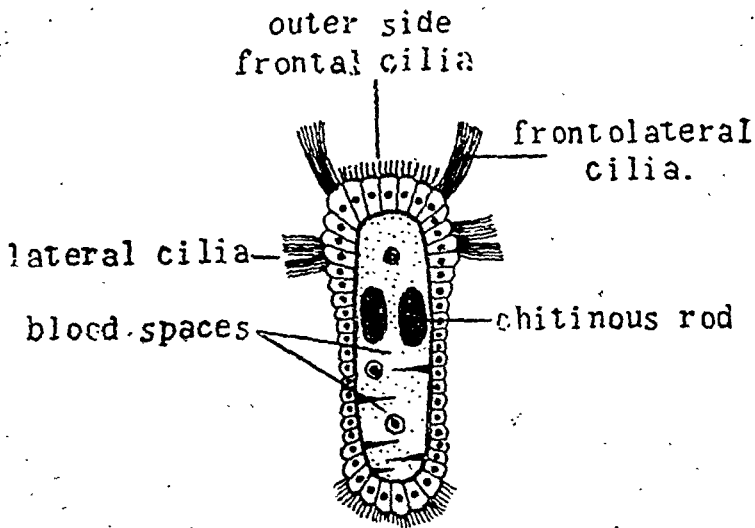
चित्र 457. गिल-सूत्र का क्षैतिज सेक्शन।
Outer side, बाहरी दिशा; frontal cilia, ललाटीय सिलिया; frontolateral cilia, ललाट-पार्श्वीय सिलिया; chitinous rod काइटिनी शलाका; blood space, रक्त-गुहा; lateral cilia, पार्श्व सिलिया।

ये जल-नलिकाएं पृष्ठ सतह को छोड़ शेष सब तरफ़ बन्द रहती हैं, पृष्ठ सतह पर ये प्रावार-गुहा के एक **अधिगिल कक्ष** (suprabranchial chamber) में खुलती हैं। हर भीतरी गिल-प्लेट के निचले सीमांत पर एक **अधर खाद्य खाँच** (ventral food groove) चलती जाती है। साथ ही कंकत के आधार पर हर पार्श्व में दो **पृष्ठीय खाद्य खाँचें** (dorsal food grooves) भी होती हैं, एक खाँच प्रावार तथा बाहरी गिल-

प्लेट की बाहरी पटलिका के बीच में होती है और दूसरी बाहरी गिल-प्लेट की भीतरी पटलिका एवं भीतरी गिल-प्लेट की बाहरी पटलिका के बीच में होती है (चित्र 450)।
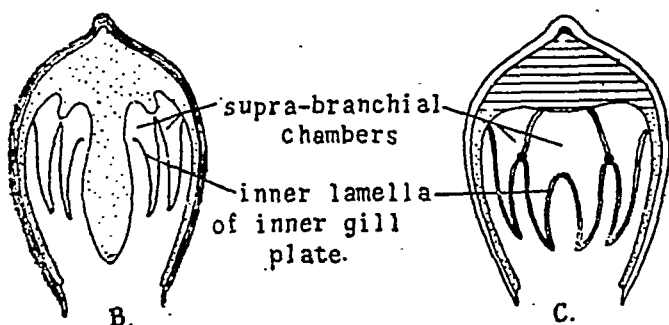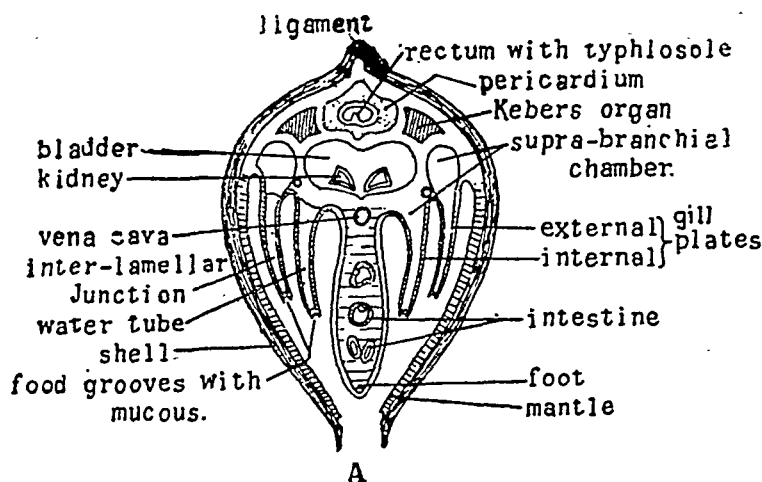
चित्र 458. **लैमेलिडेन्स** का ऊर्ध्वाधर सेक्शन (V.S.)

A—पद के अग्र प्रदेश में से गुजरता हुआ; B—पद के पश्च प्रदेश से गुजरता हुआ; C—पद से पीछे।

Ligament, स्नायु; rectum with typhlosole, टिफ्लोसोल से युक्त मलाशय; pericardium, परिहृद्; Keber's organ, केबर-अंग; supra-branchial chamber, अधिगिल कक्ष; external gill plates, बाहरी गिल-प्लेट; internal gill plate, भीतरी गिल-प्लेट; intestine, अंतड़ी; foot, पद; mantle, प्रावार; bladder, मूत्राशय; kidney, वृक्क; vena cava, महाशिरा; interlamellar junction, अन्तरापटलिका संयोजन; water tube, जल-नलिका; shell, कवच; food grooves with mucous; श्लेष्मा से युक्त खाद्य-खाँच; inner lamella, भीतरी पटलिका।

गिल-प्लेटों के पृष्ठीय जोड़ से पता चलता है कि बाहरी गिल-प्लेट की बाहरी पटलिका प्रावार से जुड़ी होती है, बाहरी गिल-प्लेट की भीतरी पटलिका और भीतरी गिल-प्लेट की बाहरी पटलिका एक साथ मिल कर आंतरांग संहति से जुड़ी होती हैं,

भीतरी गिल-प्लेट की भीतरी पटलिका अग्रतः आंतरांग संहति से जुड़ी होती है लेकिन पीछे की ओर मुक्त होती तथा पद के पीछे दूसरी दिशा वाली अपनी साथिन के साथ जुड़ी होती है जिससे कि भीतरी गिल-प्लेटों की भीतरी पटलिकाएँ एक-दूसरे से संयोजित रहती हैं।

गिल-सूत्रों के सिलिया के अनवरत स्पन्दनों के कारण एक अविच्छिन्न जल-धारा वन जाती है जो पश्च एवं अधर दिशा में बने अन्तर्वाही साइफन में से प्रविष्ट होती है, फिर वह प्रावार-गुहा में पहुँचती है, पार्श्व सिलिया इस जलधारा को भीतर प्रविष्ट करा देते हैं और ऑस्टिया में से होकर यह जलधारा गिल-प्लेटों की जल-नलिकाओं में जाती है जहाँ से फिर यह अधिगिल कक्षों में पहुंचती है और फिर पश्चतः एवं पृष्ठतः स्थित वहिर्वाही साइफन में से होकर बाहर निकल जाती है। पार्श्व-ललाट सिलिया ऑस्टिया का बार्डर बनाते हुए एक लचीली कंघी बना लेते हैं, यह कंघी एक छलनी का काम करती और बड़े कणों को ऑस्टिया के भीतर जाने से रोकती है। जलधारा अपने साथ कंकतों तक न केवल ऑक्सीजन ही ले जाती है वरन् आहार भी ले जाती है, बाहर निकलती हुई जलधारा अपने साथ उत्सर्गी उत्पादों एवं विष्ठा को ले जाती है। गैस-विनिमय कंकतों के भीतर उस समय होता है जब जल धारा जल-नलिकाओं में ऊपर की ओर को चढ़ती जाती है। गैस-विनिमय प्रावार की भीतरी सतह द्वारा भी सम्पन्न होता है।

पाचन-तन्त्र—अग्र अभिवर्तनी पेशी के नीचे एक छोटा मुख होता है, मुख के

1974
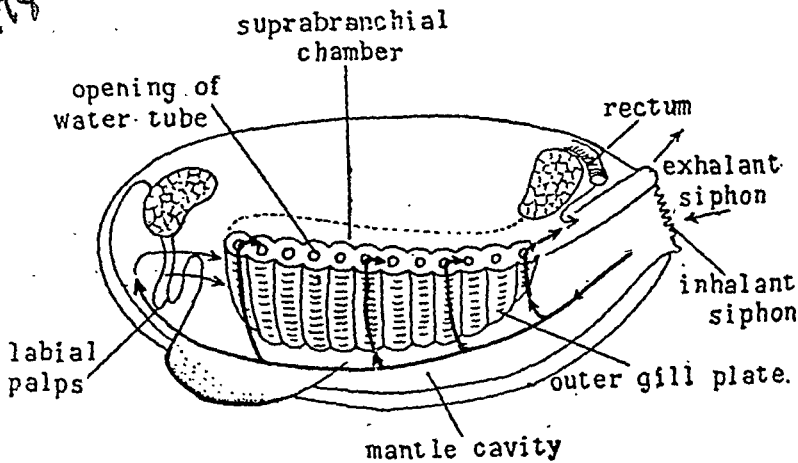
चित्र 459. जलधारा का परिसंचरण।

Labial palps, लेबियल पैल्प; opening of water tube, जल-नलिका का छिद्र; suprabranchial chamber, अधिगिल कक्ष; rectum, मलाशय; exhalant siphon, वहिर्वाही साइफन; inhalant siphon, अन्तर्वाही साइफन; outer gill plate, बाहरी गिल-प्लेट; mantle cavity, प्रावार-गुहा।

हर पार्श्व में एक-एक जोड़ी त्रिभुजी लेबियल पैल्प होते हैं जिनमें से एक पैल्प मुख के

आगे और एक मुख के पीछे होता है; दोनों ओर के लेबियल पैल्प अपने-अपने साथियों के साथ जुड़े होते हैं और इस तरह वे ऊपरी और निचले होंठ बना लेते हैं। हर दिशा के दोनों लेबियल पैल्पों के बीच में एक **सिलियायित मुख खाँच** (ciliated oral groove) बन्द होती है जो मुख के भीतर को खुलती है। मुख भीतर एक छोटी ग्रसिका में को खुलता है और यह ग्रसिका एक मोटी दीवार वाले आयताकार आमाशय में खुलती है; इस आमाशय में एक सिलियायित अस्तर होता है। एक जोड़ी गहरे भूरे रंग की **पाचन ग्रंथियाँ** अथवा जिगर आमाशय को चारों ओर से घेरे रहता है, पाचन ग्रंथियों से आने वाली वाहिनियाँ आमाशय में को खुलती हैं। आमाशय से अंतड़ी निकलती है जो नीचे आंतरांग संहति में को जाती और उसमें एक कुण्डली
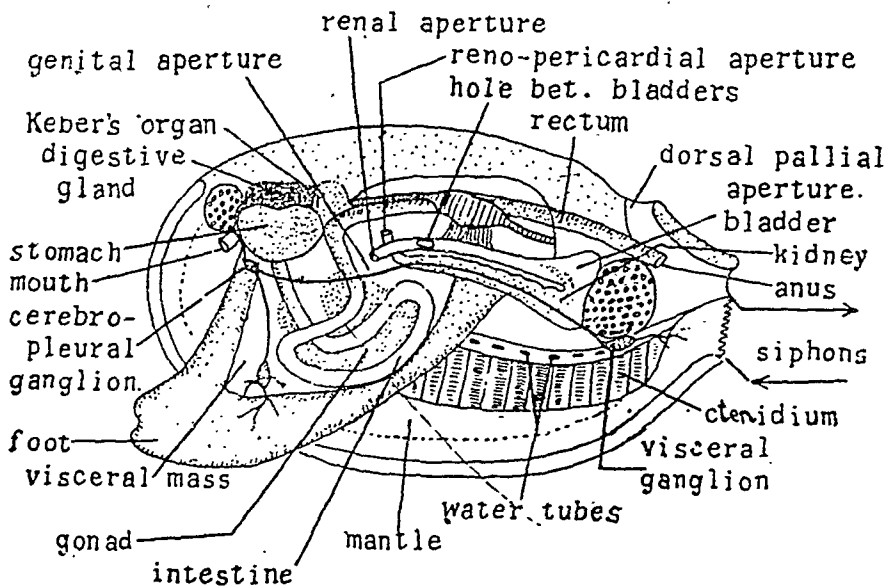
चित्र 460. बाईं ओर से शरीर-विच्छेदन।

Mouth, मुख; stomach, आमाशय; digestive gland, पाचन ग्रन्थि; Keber's organ, केबर-अंग; genital aperture, जनन-छिद्र; renal aperture, वृक्क छिद्र; reno-pericardial aperture, वृक्क-परिहृद् छिद्र; hole bet. bladders, मूत्राशयों के बीच का छिद्र; rectum, मलाशय; dorsal pallial aperture, पृष्ठीय प्रावार छिद्र; bladder, मूत्राशय; kidney, वृक्क; anus, गुदा; siphons, साइफन; ctenidium, कंकत; visceral ganglion, आंतरांग गैंग्लियान; water tubes, जलनलिकाएँ; mantle, प्रावार; intestine, अन्तड़ी; gonad, गोनड; visceral mass, आंतरांग संहति; foot, पद; cerebro-pleural ganglion, प्रमस्तिष्क-पार्श्व गैंग्लियान।

बनाती और फिर से ऊपर आ जाती है, आमाशय के समीप अंतड़ी मलाशय में को मुड़ जाती है, मलाशय पीछे को परिहृद् में से होता हुई गुज़रता है, यह निलय में

से होकर निकलता है और पश्च अभिवर्तनी पेशी के ऊपर स्थित गुदा के द्वारा बहिर्वाही साइफन में को खुल जाता है। आहार-नाल के अस्तर से आमाशय के पश्च भाग तथा अन्तड़ी के पहले भाग में दो कटक अथवा वलन बने होते हैं, इसी प्रकार का एक कटक मलाशय में भी होता है, इन कटकों को **आन्त्रवलन** अथवा **टिफलोसोल** (typhlosole) कहते हैं। आमाशय में एक जिलेटिनी, लचीली शलाका **क्रिस्टलीय शर** (crystalline style) होती है जिसका स्राव आमाशय की कोशिकाओं से होता है। क्रिस्टलीय शर में प्रोटीन का मैट्रिक्स होता है, इसमें श्लेष्मा तथा कार्बोहाइड्रेट-विश्लेषी एमाइलेज होता है, यह एमाइलेज़ प्रोटीन-अणुओं के ऊपर संघनित होता है। यह शर आमाशय के सिलिया के कारण घूमता जाता है जिसके कारण इसका मुक्त अग्र सिरा गलता जाता है और उनमें से एमाइलेज़ निकलता जाता है जिससे आमाशय में स्टार्चों का कोशिकाबाह्य विधि से आँशिक पाचन हो जाता है। शर के घूमते जाने से आमाशय के अन्तर्पदार्थों के मिश्रित होने में भी सहायता मिलती है।

अशन (Feeding)—**लैमेलिडेन्स** में छन्ना (filter) अथवा सिलियरी अशन होता है, आहार प्राप्त करने का काम कंकत (गिल) ने ले लिया है। इसके आहार में सूक्ष्म पौधे, प्रोटोज़ोआ और जैव-कचरा शामिल हैं। श्वसन-धारा के द्वारा आहार के कण प्रावार-गुहा में पहुँच जाते हैं। प्रावार-गुहा में पहुँचने पर जलधारा धीमी हो जाती है और भारी कण नीचे बैठते जाते तथा पिछले क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। छोटे कण धारा के साथ-साथ कंकतों के गिल-सूत्रों के ऊपर से चलते जाते हैं। गिल-सूत्रों के विभिन्न सिलिया अलग-अलग कार्य करते हैं, **पार्श्व सिलिया** के द्वारा खाद्य से लदी जलधारा का प्रावार-गुहा में प्रवेश होता है, **पार्श्व-ललाटीय** सिलिया सूक्ष्म आहार-कणों को सूत्रों के सामने की ओर ले जाते हैं और वे बड़े कणों को कंकतों को अवरुद्ध करने से रोकते हैं। उसके बाद **ललाटीय-सिलिया** कणों को एकत्रित करके उन्हें कंकतों की सतह पर ऊपर या नीचे ले जाते हुए उन्हें खाद्य-खाँचों में पहुँचा देते हैं। कंकतों से श्लेष्मा का स्राव होता है जिसमें आहार कण उलझ कर लड़ी जैसी संहतियाँ बना लेते हैं जो पृष्ठीय तथा आधारीय खाँचों में से गुजरते हुए मुख की तरफ को चलती जाती हैं। लेबियल पैल्पों के सिलिया खाद्य से लदी श्लेष्मा को **सिलियायित मुख-खांचों** में को दिशा देते हुए मुख तक पहुँचा देते हैं। लेबियल पैल्पों का कार्य आहार को छाँट कर उसे मुख में पहुँचाना है; ये कुछ आहार कणों को अस्वीकार करके उन्हें बाहर की ओर जाती हुई जलधारा की तरफ भी बढ़ा सकते हैं।

पाचन—पाचन अन्तःकोशिक और कोशिकाबाह्य दोनों प्रकार से होता है। पाचन-ग्रन्थियों से एन्ज़ाइम निकलते हैं जिनके द्वारा आमाशय में पाचन सम्पन्न होता है। पाचन-ग्रन्थियों की कोशिकाएँ आहार के ठोस कणों को भीतर ले लेतीं और उनके अन्दर-ही-अन्दर अन्तःकोशिक एन्ज़ाइमों के द्वारा प्रोटीनों का पाचन और कदाचित् कार्बोहाइड्रेटों का और आगे का पाचन होता है। क्रिस्टलीय शर प्रोटीन तथा श्लेष्मा का बना होता है, इसका पदार्थ आमाशय में आहार के साथ मिल जाता है और एक स्टार्चलयी एन्ज़ाइम बनाता है जिससे कार्बोहाइड्रेटों का पाचन होता है। अमीबीय

प्रवासी कोशिकाएँ आहार का अन्तर्ग्रहण करके उसे पचाती भी हैं, और पचे हुए आहार को वे शरीर के अन्य भाग तक पहुंचाती भी हैं। पचे हुए भोजन का अवशोषण पाचन-ग्रन्थि में होता है।

परिसंचरण तन्त्र—रक्त बिना रंग का होता है, प्लाज्मा में ताराकार अमीबाणु होते हैं और कदाचित् एक श्वसन वर्णक हीमोसाएनिन भी होता है। यह निश्चित नहीं है कि क्या किसी भी लैमेलिब्रैंक में हीमोसाएनिन होता भी है, उनके प्रावार और कंकत जल से ऑक्सीजन लेते हैं। अमीबाणु रक्त-गुहाओं में से
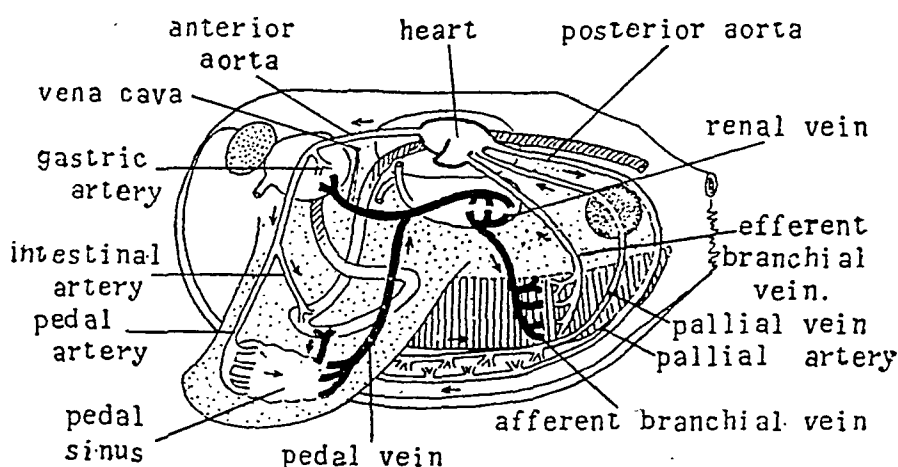
चित्र 461. परिसंचरण-तन्त्र।

Heart, हृदय; posterior heart, पश्च हृदय; renal vein, वृक्क शिरा; efferent branchial vein, अपवाही गिल शिरा; pallial vein, प्रावार शिरा; pallial artery, प्रावार धमनी; afferent branchial vein, अभिवाही गिल शिरा; pedal vein, पाद शिरा; pedal sinus, पाद साइनस; pedal artery, पाद धमनी; intestinal artery, आंत्र धमनी; gastric artery, जठर धमनी; vena cava, महाशिरा।

बाहर जाकर देह में पहुँच जाते हैं जहाँ वे भक्षिकाणु प्रकार के कार्य करते और अपशिष्ट को दूर करते रहते हैं। मध्य-पृष्ठ दिशा में एक **परिहृद्** होता है जिसके भीतर हृदय पड़ा होता है। हृदय में एक पेशीय **निलय** होता है जो मलाशय के कुछ भाग को घेरे रहता है। निलय के पार्श्वों में दो पतली दीवार वाले **अलिंद** होते हैं, हर अलिंद एक संकीर्ण नलिका द्वारा निलय में खुलता है। हर अलिंद अपने चौड़े आधार के द्वारा परिहृद् से जुड़ा रहता है। अधिकतर लैमेलिब्रैंकों में निलय मलाशय के चारों ओर वलित हो जाता है जिससे कि परिहृद् न केवल हृदय को ही वरन् आहार-नाल के कुछ भाग को भी घेरे रहता है। निलय के हर सिरे से एक महाधमनी निकलती है, मलाशय के ऊपर-ऊपर चलती हुई एक **अग्र महाधमनी** (anterior aorta), और मलाशय के नीचे से गुजरती हुई एक **पश्च महाधमनी** (posterior

aorta), दोनों महाधमनियाँ विभाजित होकर धमनियाँ बनाती हैं जो सारे शरीर में विशाखित हो जाती हैं। एक प्रावार धमनी रक्त को प्रावार में पहुँचाती है, जठरीय आन्त्रीय तथा यकृत-धमनियाँ रक्त को आंतरांग में पहुँचाती हैं। **पाद-धमनी** रक्त को पद में ले जाती है। धमनियाँ अस्पष्ट सीमित **साइनसों** तथा रिक्तिकाओं में समाप्त होती हैं। मोलस्कों में केशिकाएँ नहीं होतीं, केवल सेफेलोपोडा में ही होती हैं; धमनियों में से रक्त योजी ऊतक की रिक्तिका-गुहाओं में को बहता जाता है। पद तथा आंतरांग से आने वाली शिराएँ जुड़ कर एक बड़ा **पाद साइनस** (pedal sinus) बनाती हैं जो पद के भीतर रहता है। साइनसों तथा रिक्तिकाओं से रक्त **महाशिरा** में पहुँच जाता है जो वृक्कों के बीच में अनुदैर्घ्यत: पड़ी होती है। महाशिरा से रक्त **वृक्क शिराओं** में पहुँचता है जो वृक्कों में विशाखित होती हैं जहाँ पर रक्त में से नाइट्रोजनी पदार्थ निकाल दिया जाता है। वृक्कों से रक्त एक अनुदैर्घ्य **अभिवाही गिल शिरा** में पहुँचता है जिससे निकली हुई शाखाएँ कंकतों के सूत्रों में पहुँच जाती हैं, रक्त कंकतों में शुद्ध होता है और **अपवाही गिल शिरा** में पहुँच जाता है जो रक्त को वापिस हृदय में ले आती है। प्रावार में पहुँचने वाला रक्त शुद्ध होकर एक **प्रावार-शिरा** द्वारा हृदय में सीधा पहुँच जाता है। लेकिन महाशिरा तथा वृक्कों से आने वाला कुछ रुधिर कंकतों में न जा कर सीधा हृदय में पहुँच जाता है, अत: हृदय में दोनों प्रकार का रक्त आता है—ऑक्सीजनित भी और अनॉक्सीजनित भी।
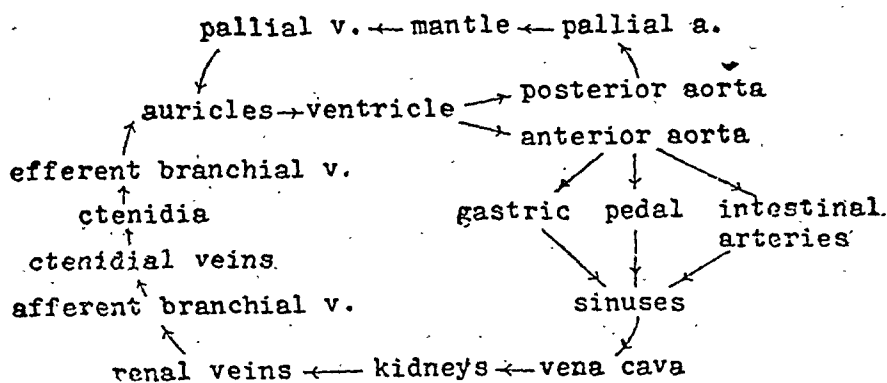
चित्र 462. रक्त-परिसंचरण।

उत्सर्गी अंग—परिहृद् के नीचे एक जोड़ी वृक्क होते हैं, जो महाशिरा के अगल-बगल एक-एक होते है। हर वृक्क एक नलिका के रूप में होता है जो बीच में से अपने ही ऊपर पूरी तरह से जुड़ी हुई होती है, नलिका का निचला भाग स्पंजी, भूरे रंग का, वृक्क का **ग्रन्थीय भाग** होता है; नलिका का ऊपरी भाग पतली दीवार वाला एक सिलियायित **मूत्राशय** होता है। दोनों वृक्कों के मूत्राशय एक अंडाकार छिद्र द्वारा परस्पर-सम्बन्धित रहते हैं। हर वृक्क एक सिरे पर परिहृद् में को खुला होता है और उस छिद्र को **वृक्क-परिहृद्** (reno-pericardial) छिद्र कहते हैं। वृक्क का दूसरा सिरा

एक **उत्सर्गी** अथवा **वृक्क-छिद्र** के द्वारा प्रावार गुहा में को खुलता है। हर वृक्क सीलोम का बन्द हो गया हुआ एक अंश होता है, इस अंश को **रीनोसील** (renocoel) अथवा वृक्क-गुहा कहते हैं, यह गुहा सीलोम से बाहर की ओर जाने वाली सीलोम-वाहिनी के तुल्य है। दोनों वृक्कों को अक्सर इसके खोजकर्ता के नाम के आधार पर
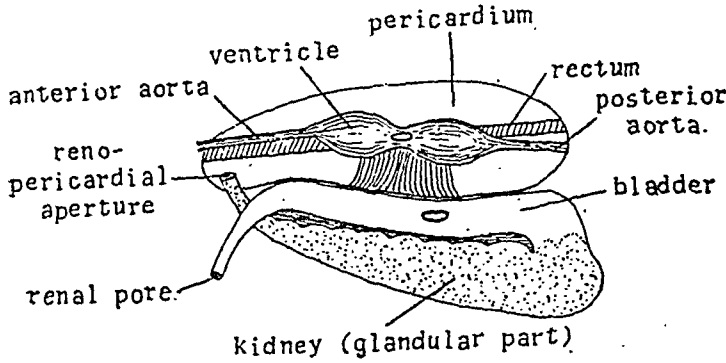
चित्र 463. बोजैनस का अंग।

Kidney (glandular), वृक्क (ग्रन्थीय भाग); bladder, मूत्राशय; renopericardial aperture, वृक्क-परिहृद् छिद्र; anterior aorta, अग्र महाधमनी; ventricle, निलय; pericardium परिहृद्; rectum, मलाशय; posterior aorta, पश्च महाधमनी।

बोजैनस का अंग भी कहते हैं। वृक्कों का कार्य परिहृद् और रक्त में से नाइट्रोजनी पदार्थ को निकाल कर बाहर फेंक देना है, मूत्राशय के सिलिया बाहर की ओर को चलने वाली एक धारा पैदा करते हैं। अकार्बनिक लवणों का वृक्क के भीतर पुनः अवशोषण हो जाता है। वृक्क बहुत-सी मात्रा में जल को भी बाहर निकालते जाते हैं जिससे कि रक्त की साँद्रता बनी रहती है।

परिहृद् के सामने की ओर एक और उत्सर्गी अंग होता है जिसे **केबर-अंग** (Keber's organ) अथवा परिहृद् ग्रन्थि कहते हैं, यह परिहृद् के एपिथीलियम की बनी होती है, इसमें एक बड़ी लाल भूरी-सी ग्रन्थीय संहति होती है जो अपशिष्ट का विसर्जन परिहृद् में को करती रहती है। नाइट्रोजनी अपशिष्टों में मुख्यतः ऐमोनिया और ऐमीनो यौगिक होते हैं, लेकिन यूरिया तथा यूरिक अम्ल के भी लेश पाए गए हैं।

तंत्रिका-तंत्र—हालाँकि शीर्ष मूलांगी होता है फिर भी तंत्रिका-तंत्र अन्य मोलस्कों के तंत्रिका-तंत्र के ही समान होता है। ग्रसिका के हर पार्श्व में एक-एक **प्रमस्तिष्क-पार्श्व गैंग्लियान** (cerebro-pleural ganglion) होता है, ये दोनों गैंग्लिया ग्रसिका के सामने पड़े हुए **प्रमस्तिष्क-समयोजी** (cerebral commissure) द्वारा जुड़े होते हैं। इस क्लास के अधिकतर सदस्यों में प्रमस्तिष्कीय तथा पार्श्व-गैंग्लिया समेकित होकर एक बन जाते हैं। प्रत्येक प्रमस्तिष्क-पार्श्व गैंग्लियॉन से **प्रमस्तिष्क-पाद योजी** (cerebro-pedal connective) निकलता है, जो नीचे को

चलता जाता हुआ **पाद-गैंग्लियॉन** से जा मिलता है, यह गैंग्लियॉन और आंतरांग के सन्धि-स्थल पर पड़ा होता है। दोनों पाद गैंग्लिया समेकित होकर द्विपालिक संहति बना लेते हैं। प्रत्येक प्रमस्तिष्क पार्श्व गैंग्लियॉन से एक **प्रमस्तिष्क-आँतरांग योजी** (cerebro-visceral connective) निकलता है जो पीछे को वृक्क में से गुजरता हुआ निकलता जाता है और **आँतरांग गैंग्लियॉन** (visceral ganglion) में जा मिलता है। दोनों आंतरांग गैंग्लिया परस्पर समेकित होने तथा पश्च अभिवर्तनी पेशी के नीचे पड़े होते हैं। प्रमस्तिष्क-पार्श्व गैंग्लिया से निकलने वाली तंत्रिकाएँ लेबियल पैल्पों तथा प्रावार के अगले भागों में जाती हैं, पाद-गैंग्लिया से निकलने वाली तंत्रिकाएँ पाद-पेशियों में जाती हैं, आंतरांग गैंग्लिया से निकलने वाली तंत्रिकाएँ हृदय, कंकत, आहार-नाल और प्रावार के पश्च भाग में जाती हैं।
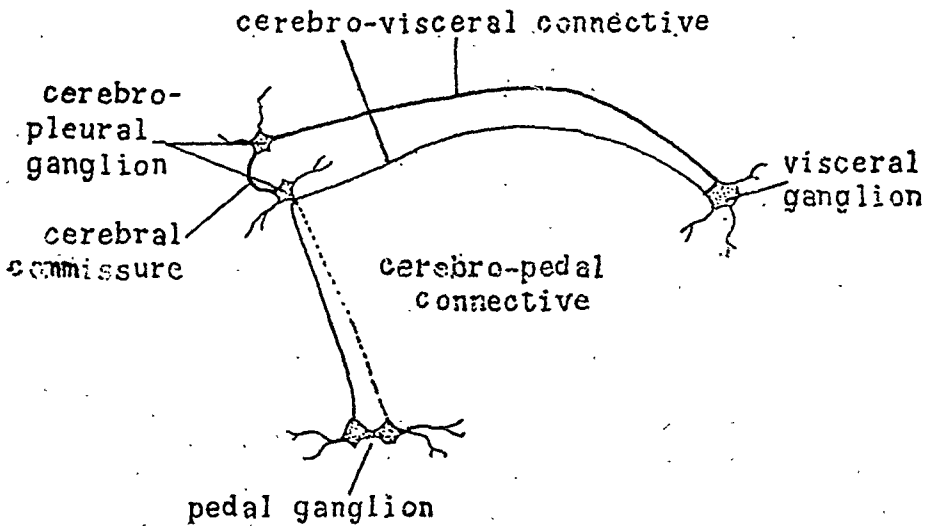
चित्र 464. तंत्रिका-तंत्र।

Cerebro-pleural ganglion, प्रमस्तिष्क-पार्श्व गैंग्लियॉन; cerebro-visceral connective, प्रमस्तिष्क-आंतरांग योजी; visceral ganglion, आंतरांग गैंग्लियॉन; cerebro-pedal connective, प्रमस्तिष्क-पाद योजी; pedal ganglion, पाद गैंग्लियान; cerebral commissure, प्रमस्तिष्क-समयोजी।

संवेदी अंग—1. **स्पर्श कोशिकाएँ** (Tactile cells) प्रावार के सीमान्तों तथा अंतर्वाही साइफ़न की झालर पर बनी होती हैं। 2. **प्रकाशग्राही** (photoreceptors) कोशिकाओं के रूप में होते हैं जो साइफ़नों के सीमान्तों पर होती हैं और प्रकाश के लिए संवेदी होती हैं। 3. **जलेक्षिका** (osphradium) पीले रंग की कोशिकाओं का एक समूह होती है जो हर आंतरांग गैंग्लियॉन के समीप पड़ी होती हैं, ये रसायनसंवेदी होती हैं तथा अंतर्वाही साइफ़न में प्रवेश करती हुई जल-धारा को परखती रहती हैं। 4. **संतुलन-पुटी अथवा स्टैटोसिस्ट** (statocyst)—पद में हर पाद-गैंग्लियॉन के

समीप एक सन्तुलनपुटी होती है। यह गेंद-जैसी होती है और त्वचा के एक गढ़े के रूप में विकसित होती है, इसके चारों ओर कोशिकाओं की अनेक परतें होती हैं और भीतर एक कैल्शियमी सन्तुलनाश्म (statolith) होता है। सन्तुलनपुटी में प्रमस्तिष्क-पाद योजी से एक तंत्रिका आती है। सन्तुलनपुटियाँ सन्तुलन-संबंधी अंग होते हैं।
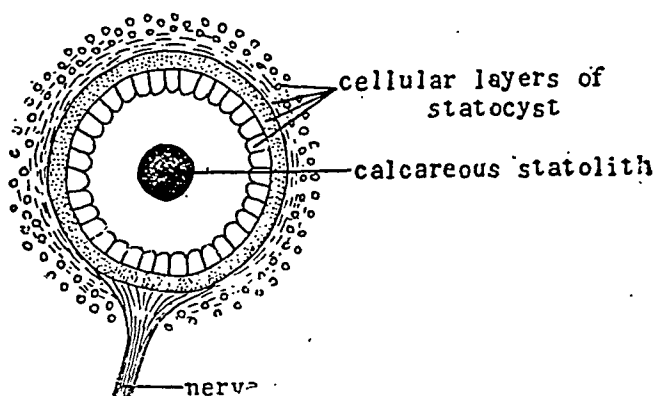
चित्र 465. सन्तुलनपुटी।

Cellular layers of statocyst, सन्तुलनपुटी की कोशिक परतें; calcareous statolith, कैल्शियमी सन्तुलनाश्म; nerve, तंत्रिका।

जननांग—नर-मादा प्राणी अलग-अलग होते हैं। युग्मित गोनड आंतरांग संहति में अंतड़ी की कुण्डलियों को घेरे रहते हैं, प्रजनन काल में ये गोनड बड़े और सुस्पष्ट हो जाते हैं। हर गोनड में एक छोटी वाहिनी होती है जो उत्सर्गी छिद्र के समीप प्रावार-गुहा में खुलती है। नर में वृषण सफ़ेद, और मादा में अंडाशय लाली लिये हुए होते हैं। नर में शुक्राणु बहिर्वाही साइफ़न में से होकर बाहर जल में निकल जाते हैं जहाँ से वे किसी मादा के अन्तर्वाही साइफ़न में से होकर उसके कंकतों तक पहुँच जाते हैं। मादा में अंडे प्रावार-गुहा में छोड़ दिए जाते हैं और वे ऑस्टिया में होकर कंकतों की जल-नलिकाओं में पहुँच जाते हैं, इन्हीं में निषेचन सम्पन्न होता है तथा प्रारम्भिक परिवर्धन पूरा होता है। निषेचित अंडे सामान्यत: कंकतों की बाहरी गिल-प्लेटों में परिवर्धित होते हैं जो एक **भ्रूण-कोश** (brood pouch) अथवा **शिशुधानी** (marsupium) के रूप में फूल जाती हैं।

परिवर्धन—द्विकपाटियों के वृहत् अधिकांश में लैंगिक कोशिकाएँ बाहर जल में निकाल दी जाती हैं जहाँ निषेचन होता है, और युग्मनज एक मुक्त-तैरने वाले **ट्रोकोस्फीयर** लार्वा में परिवर्धित हो जाता है, इसके बाद दूसरी लार्वा-अवस्था **वेलिजर** (veliger) लार्वा की होती है जो विशेषकर समुद्री उदाहरणों में होता है। पीलेसिपोडों में वेलिजर लार्वा सममित होता है। अलवणजलीय फैमिली यूनियोनिडी (Unionidae) [जिसमें **ऐनोडॉन्टा** तथा **लैमेलिडेन्स** आते हैं] में एक परोक्ष किन्तु अधिक विशेषित परिवर्धन होता है, वेलिजर लार्वा कंकतों की शिशुधानी में बनता है,
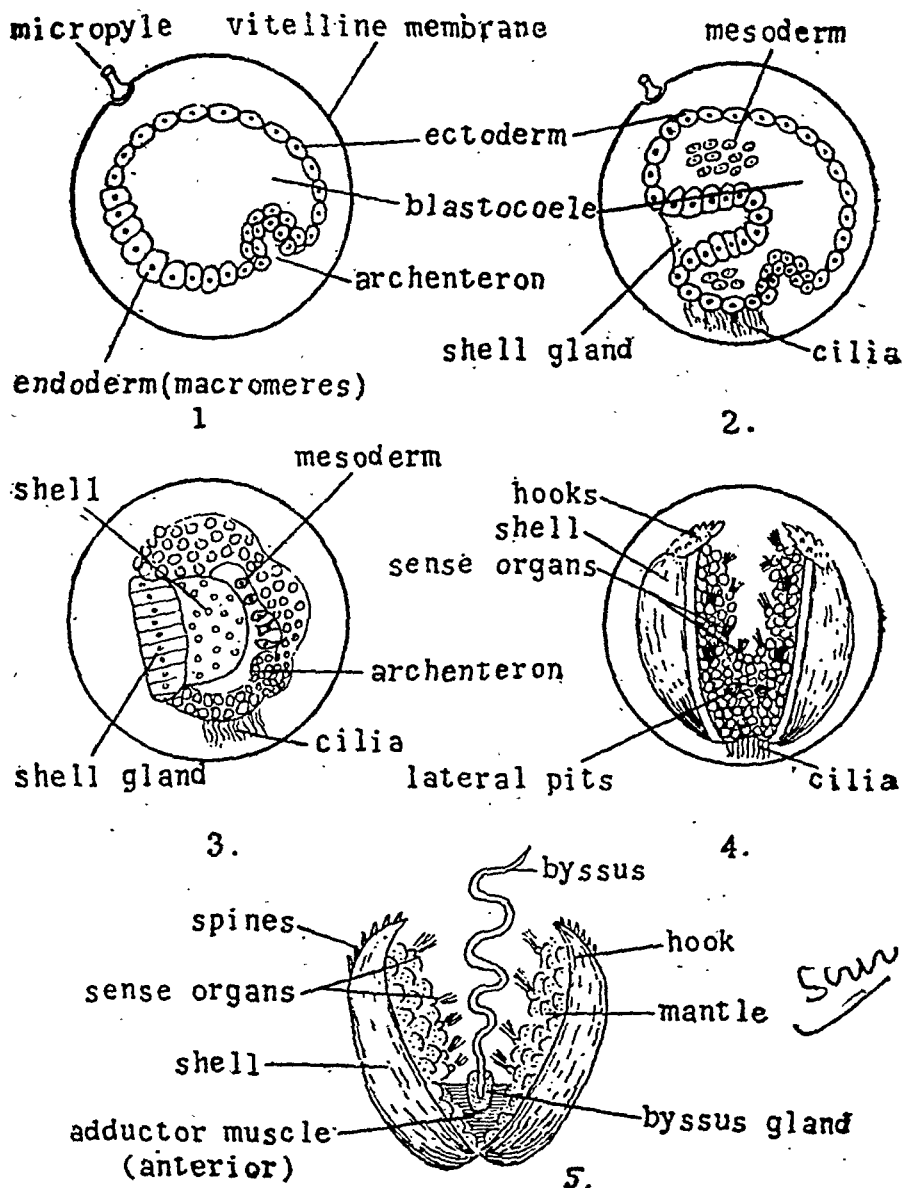
चित्र 466. परिवर्धन। 1–गैस्ट्रुला; 2–प्रारम्भिक भ्रूण; 3–बाद का भ्रूण; 4–विकसित भ्रूण; 5–ग्लोकीडियम लार्वा।

Micropyle, लघुनली; vitelline membrane, पीतक झिल्ली; ectoderm, एक्टोडर्म; mesoderm, मीज़ोडर्म; endoderm (macromeres), एंडोडर्म (गुरुखंड); blastocoele, ब्लास्टोसील; archenteron, आद्यांत्र; shell gland, कवच-ग्रन्थि; cilia, सिलिया; shell, क़वच; hooks, हुक; sense organs, संवेदी अंग; lateral pits, पार्श्व गढ़े; byssus, बिसस; byssus gland, बिसंस-ग्रन्थि; adductor muscle (anterior) अभिवर्तनी पेशी (अग्रीय); spines, कंटिकाएँ।

यह वेलिजर अत्यधिक रूपाँतरित होता है और इस फैमिली में इसे **ग्लोकीडियम** (glochidium) लार्वा कहते हैं।

युग्मनज में पूर्ण किन्तु असमान विदलन होता है, और एक **मौरुला** (morula) बन जाता है जिसमें छोटे **लघुखंड** (micromeres) तथा बड़े **गुरुखंड** (macromeres) होते हैं। गैस्ट्रुला का निर्माण लघुखंडों के भीतर को गुरुखंडों के अन्तर्वलन द्वारा होता है लेकिन इस प्रकार बनने वाला आद्यान्त्र काफी लम्बे काल तक छोटा बना रहता है। गैस्ट्रुला में ये भाग होते हैं : लघुखंड अथवा एक्टोडर्म, गुरुखंड अथवा एंडोडर्म; बड़ी ब्लास्टोसील तथा छोटी आद्यांत्र पायी जाती है, यह आद्यांत्र एक पीतक झिल्ली में
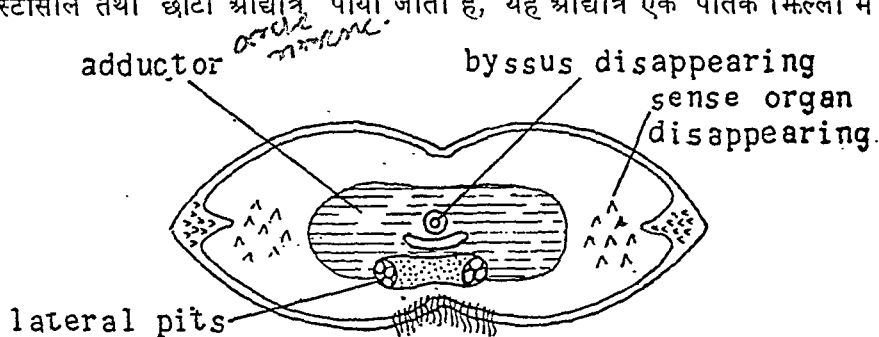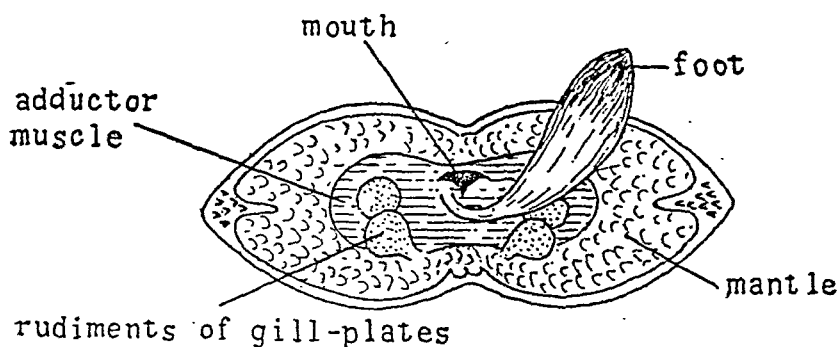
चित्र 467. परिवर्धन (जारी)। 6—प्रारम्भिक कायान्तरण; 7—कायांतरण की बाद की अवस्था।
Adductor, अभिवर्तनी; byssus disappearing, समाप्त होता हुआ बिसस; sense organ disappearing, समाप्त होता हुआ संवेदी अंग; lateral pits, पार्श्व गढ़े; mouth, मुख; foot, पद; mantle, प्रावार; rudiments of gill-plates, गिल-प्लेटों के मूलांग।

घिरी होती है। गैस्ट्रुला की कुछ कोशिकाएँ मुकुलित होकर ब्लास्टोसील में पहुँचती जाती हैं और मीज़ोडर्म बनाती हैं। एक गहरा अन्तर्वलन बनकर **कवच ग्रन्थि** (shell gland) बन जाती है जो मोलस्का की विशेषता है। कवच-ग्रन्थि भ्रूण की पृष्ठ सतह दर्शाती है, पश्च सिरे पर लम्बे सिलिया का एक गुच्छा बना होता है। कवच-ग्रन्थि

से एक अयुग्मित कवच का स्राव होता है जिसके स्थान पर शीघ्र ही एक तिकोना **द्विकपाटी कवच** बन जाता है ; कवच-कपाटों के बीच में एक प्रावार-गुहा घिरी होती है। कवच-कपाटों के निचले भाग हुकों के रूप में मुड़ गए हुए होते हैं जिनके ऊपर काँटे बने होते हैं (**ऐनोडॉन्टा** तथा **लैमेलिडेन्स** में, लेकिन अनेक अलवण-जलीय मसेलों अर्थात् सीपियों में ये हुक नहीं होते)। भ्रूण बीच में चिरा हुआ होता है जिससे एक तो पृष्ठ शरीर बन जाता है और दो प्रावार-पालियाँ। हर प्रावार-पालि पर चार ब्रुश-जैसे **संवेदी अंग** निकले होते हैं जिनमें से हर एक में शूकों का एक समूह बना होता है। मीज़ोडर्म से एक बड़ी अभिवर्तनी पेशी बन जाती है जो आगे की दिशा में दोनों कवच-कपाटों के बीच फैली होती है। शरीर पर एक **बिसस ग्रन्थि** (byssus gland) बन जाती है जिससे एक चिपकदार धागे का स्राव होता है—इस धागे को **बिसस** कहते हैं। इस भ्रूण को **ग्लोकीडियम** लार्वा कहते हैं। अब तक भ्रूण का पोषण अंडे में मौजूद रहे पीतक से हो रहा होता था। लार्वा में कोई मुख या गुदा नहीं होते, और पाचन मार्ग भी अभी तक नहीं बना होता। एक ही अलवणजलीय मसेल में हजारों ग्लोकीडियम बन सकते हैं।

ग्लोकीडियम का पोषण शिशुधानी में होता है जिसमें बहुत ज्यादा संख्या में ग्लोकीडियम होते हैं, इन ग्लोकीडियमों को इस तरह बाह्यपरजीवी कहा जा सकता है। ग्लोकीडियम बहिर्वाही साइफ़न में से होते हुए बाहर जल में पहुँच जाते हैं, फिर वे किसी अलवणजलीय मछली के गिलों अथवा फिनों पर अपने बिसस तथा कवच-कपाटों के द्वारा चिपक जाते हैं। कुछ ग्लोकीडियमों को अपने परपोषियों के रूप में कुछ विशिष्ट मछलियाँ ही चाहिए होती हैं लेकिन अन्य ग्लोकीडियम बहुत-सी विभिन्न परपोषी मछलियों में परजीवी हो सकते हैं। परजीवी ग्लोकीडियमों से वयस्क मछलियों को कोई नुक्सान नहीं पहुँचता। कुछ ही घंटों में परपोषी की कोशिकाओं में वृद्धि होकर ये लार्वा उनके भीतर बन्द हो जाते अर्थात् **पुटीभूत** या सिस्ट अवस्था में आ जाते हैं, परपोषी के ऊतकों में उत्तेजना होती है जिससे कि वे परजीवी के चारों ओर वृद्धि करके एक सिस्ट बना लेते हैं। अपने प्रावार के द्वारा मछलियो के रसों को सोखकर ग्लोकीडियम अपना आहार प्राप्त करते हैं, लार्वा के प्रावार में भक्षिकोशिकाएँ होती हैं जो परिवर्धनशील मसेल के वास्ते पोषण प्राप्त करती हैं, इस प्रकार ये ग्लोकीडियम एक बाह्यपरजीवी जीवन व्यतीत करते हैं जो लगभग 10 सप्ताह तक चलता है, इस काल के दौरान कायान्तरण होता है।

कायान्तरण—संवेदी अंग, लार्वा अभिवर्तनी पेशी, लार्वा प्रावार, और बिसस विलीन हो जाते और वयस्क अंग बनने लगते हैं। एक्टोडर्म अन्तर्वलित होकर स्टोमोडियम (अग्रांत्र) तथा प्रॉक्टोडियम (पश्चांत्र) बनाता है जो आद्यांत्र में खुल जाते और इस तरह आहार-नाल बन जाती है। मुख के पीछे एक उभार के रूप में पद बन जाता है, पद के हर पार्श्व में दो पैपिला निकल आते हैं जिनसे गिल-प्लेटें बन जाती हैं। सिस्ट कमज़ोर पड़ जाती है और नया-नया बना प्राणी अपने कवच-कपाटों को खोलता व बन्द करता है और अपने पद को फैलाता है, यह सिस्ट में से बाहर आ जाता है और तली में गिर जाता तथा स्वच्छन्द-जीवी बन जाता है, उसके बाद वह वयस्क

रूप एवं वयस्क जीवन-पद्धति ग्रहण कर लेता है। ग्लोकीडियम अवस्था का मछलियों द्वारा जहाँ-तहाँ लाना-ले जाना होता है और इस प्रकार इसका एक बड़े क्षेत्र में फैलाव होता जाता है।

2. पाइला ग्लोबोसा (सेबी घोंघा)
[*Pila globosa* (apple snail)]

क्लास **गैस्ट्रोपोडा** (Gastropoda) मोलस्कों में सबसे बड़ा क्लास है, इसमें 35,000 से अधिक जीवित स्पीशीज़ पाई जाती हैं और लगभग 15,000 फ़ॉसिल प्राणी ज्ञात हैं। अधिकतर उदाहरणों में कवच तथा आंतरांग संहति दाहिनी दिशा में सर्पिल के रूप में कुण्डलित रहते हैं। केवल गैस्ट्रोपोडा ही ऐसे मोलस्क हैं जिनमें विशाल अनुकूली विकिरण पाया जाता है और वे विभिन्न आवासों में पहुँच चुके हैं। समुद्री प्राणियों में या तो समुद्र की तली में रहने के लिए अथवा तैरने वाले तलप्लावी जीवन के लिए अनुकूलन हो गया है, कुछ अलवणजल में पहुँच गए हैं, कुछ अन्य जलस्थलचर जीवन बिताते हैं और फुप्फुसी घोंघे सफलतापूर्वक थल पर रहते हैं।

पाइला अलवणजलीय तालाबों, झीलों तथा चावल के खेतों में आम पाया जाता है। **पा० ग्लोबोसा** (*P. globosa*) उत्तर भारत में पाया जाने वाला आम घोंघा है, जबकि **पा० वाइरेन्स** (*P. virens*) असम, बंगाल और दक्षिण भारत में
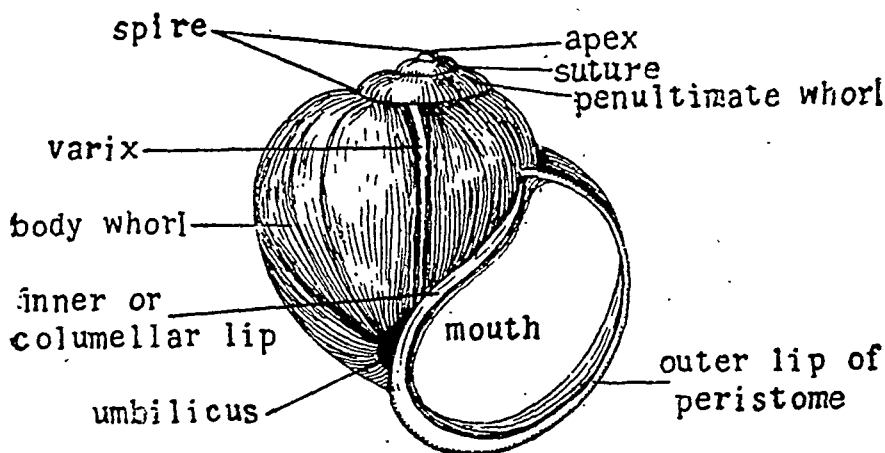
चित्र 468. **पाइला ग्लोबोसा** का कवच।
Apex, शिखर; suture, सीवन (सूचर); penultimate whorl, उपांतिम चक्र; spire, सर्पिल-शिखर; varix, उत्कूट; body whorl, शरीर-चक्र; inner or columellar lip, भीतरी अथवा कॉलुमेलीय होंठ; umbilicus, नाभि; mouth, मुख; outer lip of peristome, परिमुख का बाहरी होंठ।

पाया जाता है, ये उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जिनमें आहार के रूप में बहुत मात्रा में

जलीय वनस्पति पाई जाती हो। ये जलस्थलचर होते हैं और जल एवं थल दोनों प्रकार के जीवन के लिए अनुकूलित होते हैं।

कवच—अन्य गैस्ट्रोपोडा की भाँति **पाइला** का कवच भी एककपाटी होता है लेकिन एक केन्द्रीय अक्ष के चारों ओर दक्षिणावर्त (right-handed) सर्पिल के रूप में कुण्डलित रहता है। कवच का सबसे ऊपरी सिरा **शिखर** (apex) होता है, जो सबसे पहले बना होता है और इसी में से फिर कवच की वृद्धि आगे होती जाती है, शिखर में सबसे छोटा और सबसे पुराना चक्र होता है। शिखर के नीचे एक-एक **सर्पिल-शिखर** (spire) होता है जिसमें अनेक क्रमश: बड़े होते जाने वाले सर्पिल या **चक्र** बने होते हैं और जिसके अन्त में सबसे बड़ा चक्र अथवा **शरीर-चक्र** (body whorl) होता है जिसमें देह का अधिकतर भाग बन्द रहता है। चक्रों के बीच की रेखाओं को **सीवनें** अथवा **सूचर** (suture) कहते हैं। शरीर-चक्र में एक बड़ा मुख अथवा छिद्र होता है, इस छिद्र के सीमांत को **परिमुख** (peristome) कहते हैं जिसमें से जीवित प्राणी के शीर्ष और पद बाहर को निकल आ सकते हैं। परिमुख के देखने वाले की ओर रखते हुए अधर दिशा से देखने पर मुख कालुमेला की दाहिनी ओर होता है और कवच घड़ी की सूइयों की गति के अनुरूप सर्पिल होता है, इस प्रकार के कवच को **दक्षिणावर्त** (dextral) कहते हैं। मुख के बाहरी सीमांत को बाहरी होंठ कहते है तथा भीतरी सीमांत को भीतरी अथवा कालुमेलीय होंठ कहते हैं। कवच के केन्द्र में एक खड़ा अक्ष अथवा **कालूमेला** (columella) चलता जाता है जिसके चारों ओर कवच के चक्रों की कुण्डली बनी होती है। कालूमेला खोखली होती है और बाहर की ओर को इसके सूराख को **नाभि** (umbilicus) कहते हैं। नाभि से युक्त कवचों को नाभित (umbilicate) अथवा छिद्रित (perforate) कहते हैं। कवच की वृद्धि-रेखाएँ दृश्यमान होती हैं, इनमें से कुछ रेखाएँ कटक-जैसी दिखाई पड़ती हैं और उन्हें **उत्कूट** (varix) कहते हैं। **पाइला** का कवच पीले से भूरे और यहाँ तक कि काले तक अनेक प्रकार के रंगों का होता है। कवच के मुँह में फिट होता हुआ एक कैल्शियमी **प्रच्छद** अथवा **आपर्कुलम** (operculum) होता है जिसकी बाहरी सतह पर अनेक वृद्धि वलय एक केन्द्र के चारों ओर कुछ-कुछ संकेन्द्रीय रूप, में बने पाए जाते हैं; इसकी भीतरी सतह पर एक दीर्घवृत्ताकार **बॉस** (boss) होता है जो पेशियों के जुड़े होने के वास्ते होता है। यह बॉस क्रीम रंग का होता और इसके चारों ओर एक खाँच का घेरा बना होता है।
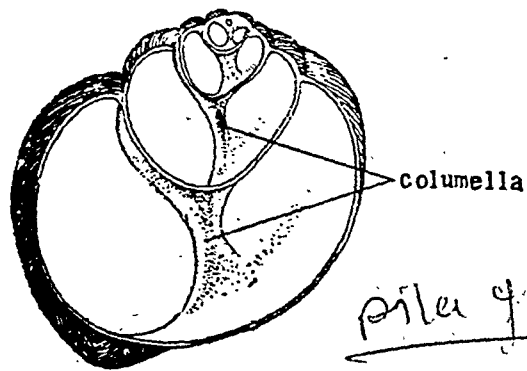
Columella

चित्र 469. कवच को सीधा खड़ा काट कर दिखाया गया है। Columella, कॉलुमेला।

गैस्ट्रोपॉड कवच उन्हीं तीन परतों का बना होता है जिनका पीलेसिपोडा का कवच बना होता है। कवच के सेक्शन में एक सबसे बाहरी वर्णकित परत **परिकवच** होती है जो एक शृंगीय जैविक कॉन्कियोलिन की बनी होती है, इसके नीचे एक
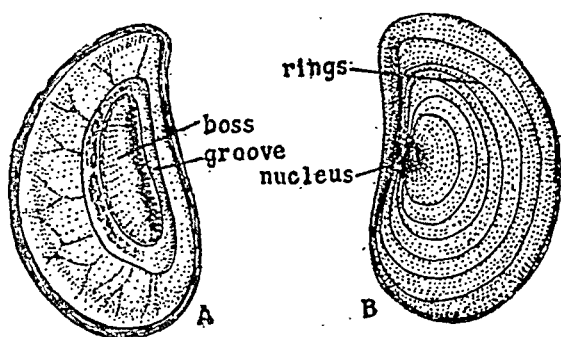
चित्र 470. प्रच्छद। A—भीतरी सतह; B—बाहरी सतह।
Rings, वलय; boss, बॉस; groove, खाँच; nucleus, केन्द्र।

प्रिज्मीय परत होती है जो खड़ी-खड़ी व्यवस्थित क्रिस्टलीय कैल्शियमी प्लेटों की बनी होती है, सबसे भीतरी परत अनुदैर्घ्यतः चलती हुई कैल्शियमी प्लेटों की **मुक्ताभ परत** की होती है। गैस्ट्रोपोडा के कवचों में आकृति, तक्षण, नमूनों और रंगों की अनन्त विविधता पाई जाती है। कवच के भीतर प्रावार होता है जो कवच का स्राव करता है।

शरीर—शरीर में तीन भाग होते हैं: शीर्ष, पद और आंतरांग संहति। फैले हुए प्राणी में शीर्ष और पद कवच के मुख से बाहर निकल आते हैं लेकिन आंतरांग संहति कवच के चक्रों के भीतर पड़ी होती है। एक कॉलुमेला-पेशी पद में से निकलती और कॉलुमेला पर निवेशित होती है, यह शरीर को कवच से जोड़े रखती है और यह जंतु को भीतर को सिकोड़ लेती है तथा प्राच्छद को बंद कर लेती है। एक स्पष्ट **शीर्ष** होता है जिसमें से एक प्रोथ (snout) आगे को निकला होता है, शीर्ष पर दो जोड़ी **स्पर्शक** होते हैं। पहली जोड़ी स्पर्शक अथवा **लेब्रियल पैल्प** छोटे और आगे स्थित होते हैं, उनके पीछे दूसरी जोड़ी स्पर्शक होते हैं जो लंबे होते हैं, स्पर्शक खोखले होते हैं और उनमें बहुत ज्यादा प्रसार एवं संकुचन हो सकता है। स्पर्शकों के पीछे शीर्ष पर एक जोड़ी आँखें होती हैं जो वृंतों अथवा **नेत्रधरों** (ommatophores) के ऊपर बनी होती हैं। शीर्ष के नीचे एक बड़ा **पद** होता है, इसकी निचली सतह धूसर और चपटा तलवा होती है। यह त्रिभुजाकार होती है जिसका शिखर पीछे को मुँह किए होता है, यह रेंगने के काम आता है; इसकी ऊपरी सतह चित्तकदार होती है और पृष्ठीय पश्च सतह पर प्राच्छद बना होता है। जब पद सिकोड़ा जाता है तो प्रच्छद कवच के मुँह को बन्द कर लेता है। पद में एक पाद श्लेष्मा-ग्रंथि होती है जो संचलन के दौरान एक श्लेष्मा-पथ बनाती जाती है। पद के अग्र सिरे से पश्च सिरे की ओर लहरा कर चलती हुई संकुचन तरंगें चलने की मुख्य शक्ति प्रदान करती हैं।

शीर्ष के ऊपर एक **आंतरांग संहति** होती है जिसमें मुख्य अंग होते हैं, यह कवच के सारे चक्रों में भरी होती और कवच के अनुरूप सर्पिल रूप में कुण्डलित होती है। आंतरांग संहति में मरोड़ (torsion) की घटना पाई जाती है जो कुण्डलित होने से पृथक् चीज़ है।
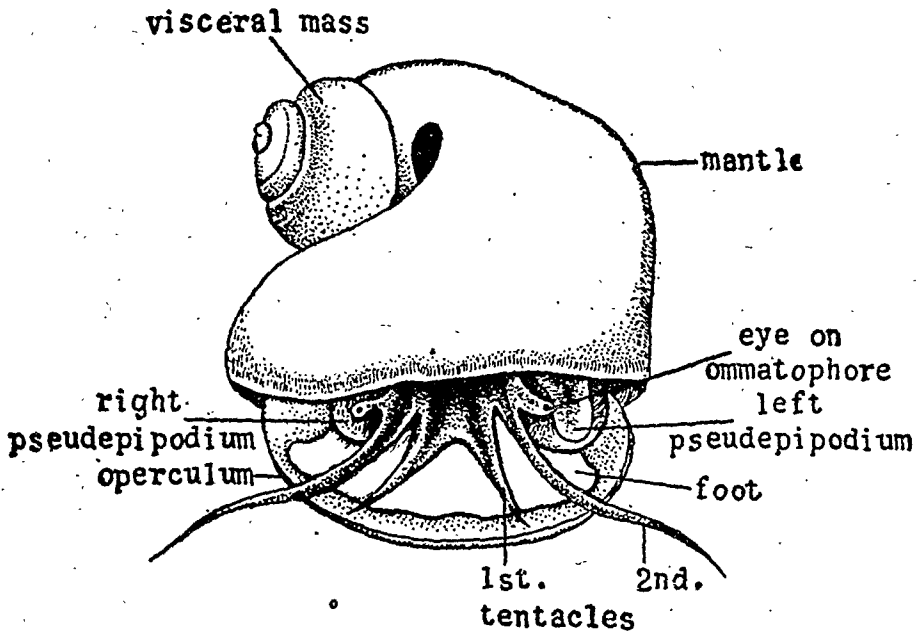
चित्र 471. कवच हटा देने के बाद शरीर।

Visceral mass, आंतरांग संहति; mantle, प्रावार; eye on ommatophore, नेत्रधर के ऊपर बनी आँख; left pseudepipodium, बायां कूटअधिपाद; foot, पद; tentacles, स्पर्शक; operculum, प्रच्छद; right pseudepipodium, दाहिना कूटअधिपाद।

प्रावार—प्रावार आंतरांग संहति को ढके रहता है, और जब जंतु सिकोड़ लिया जाता है तब यह उसके ऊपर एक हुड बना लेता है। प्रावार का सीमांत मोटा होता है तथा उसमें कवच स्राव करने वाली ग्रंथियाँ होती हैं, मोटे हो गए सीमांत के ऊपर एक **अधिसीमांत खाँच** (supra-marginal groove) होती है। प्रावार में दो मांसल पालियाँ भी होती हैं जिन्हें **न्यूकल पालियाँ** (nuchal lobes) अथवा **कूट अधिपाद** (pseudepipodium) कहते हैं जो शीर्ष के हर पार्श्व में जुड़े होते हैं। बायाँ कूट अधिपाद एक लम्बा नलिकाकार **श्वसन साइफ़न** बना लेता है जो वायु-श्वसन में काम आता है तथा जिसमें से होकर श्वसन जलधारा भी भीतर को जाती है। दाहिना कूट अधिपाद कम विकसित होता तथा यह कोई नियमित नलिका के रूप में नहीं होता है, इसमें से श्वसन जलधारा बाहर को निकल जाती है। अग्र भाग में प्रावार तथा शरीर के बीच में एक बड़ी गुहा होती है, यह **प्रावार गुहा** होती है जो मरोड़ प्रक्रिया के द्वारा आगे की ओर खिसक गई है। इस प्रावार-गुहा में अनेक अंग होते हैं तथा

इसमें को शीर्ष सिकोड़ लिया जा सकता है। दाहिने कूट अधिपाद के पास एक सुव्यक्त वड़ा-सा कटक अथवा **एपिटीनिया** (epitaenia) होता है जो पीछे को चलता हुआ [प्रावार-गुहा के अन्त तक पहुँच जाता है, यह प्रावार-गुहा को एक **दाहिनी गिल-गुहा**
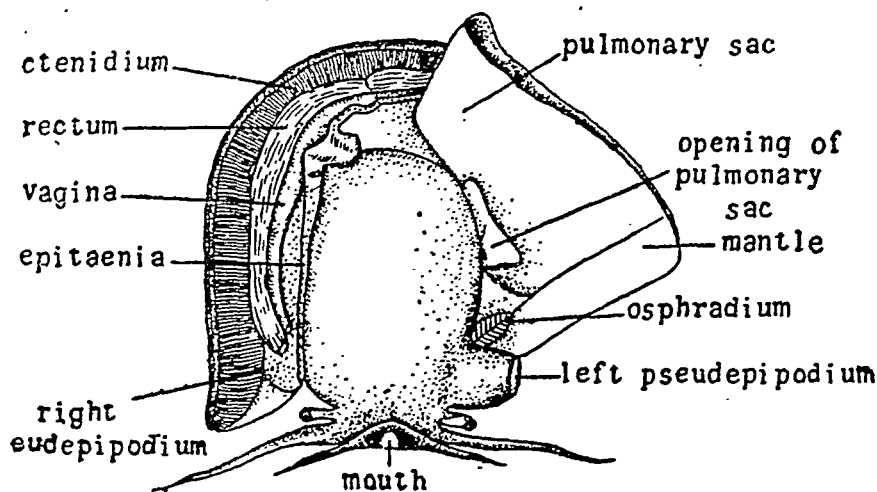
चित्र 472. प्रावार काट कर प्रावार-गुहा दर्शाई गई है।
Pulmonary sac, फुपफुस कोश; opening of pulmonary sac, फुपफुस-कोश का छिद्र; mantle प्रावार; osphradium, जलेक्षिका; left pseudepipodium, बायाँ कूट अधिपाद; mouth, मुख; right pseudepipodium, दायाँ कूट अधिपाद; epitaenia, एपिटीनिया; vagina, योनि; rectum, मलाशय; ctenidium, कंकत।
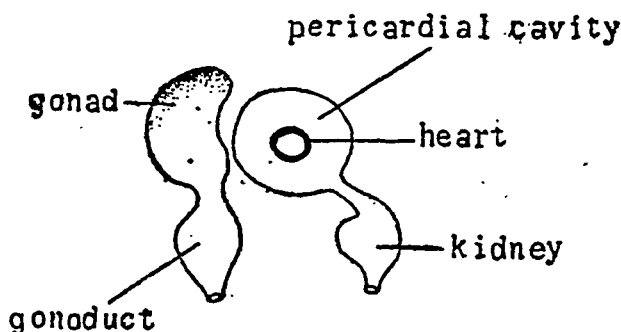
चित्र 473. **पाइला** की सीलोमी गुहाएँ
Gonad, गोनड; gonoduct, जननवाहिनी; pericardial cavity, परिहृद् गुहा; heart, हृदय; kidney, वृक्क।

तथा एक **बाईं फुपफुस-गुहा** में विभाजित कर देता है। फुपफुस-गुहा में प्रावार में एक **फेफड़ा** अथवा फुपफुस कोश बना होता है। गिल-गुहा में एक अकेला गिल अथवा कंकत, मलाशय और गुदा तथा जनन-छिद्र बने होते हैं। बाएँ कूट अधिपाद के समीप एक माँसल **जलेक्षिका** (osphradium) होती है जो एक प्रतिरूपी मोलस्क संवेदी अंग होती है।

सीलोम ह्रासित होकर परिहृद्, वृक्क तथा गोनड की अयुग्मित गुहाओं के रूप में रह जाती है। वृक्क- एवं परिहृद् गुहाएँ एक-दूसरे में खुली रहती हैं लेकिन गोनड की गुहा जुड़ी हुई नहीं होती।

पाचन-तंत्र—शीर्ष के प्रोथ पर एक ऊर्ध्वाधर मुख बना होता है जो एक बड़ी **मुख संहति** (buccal mass) अथवा ग्रसिका में को खुलता है जिसमें अनेक-अनेक
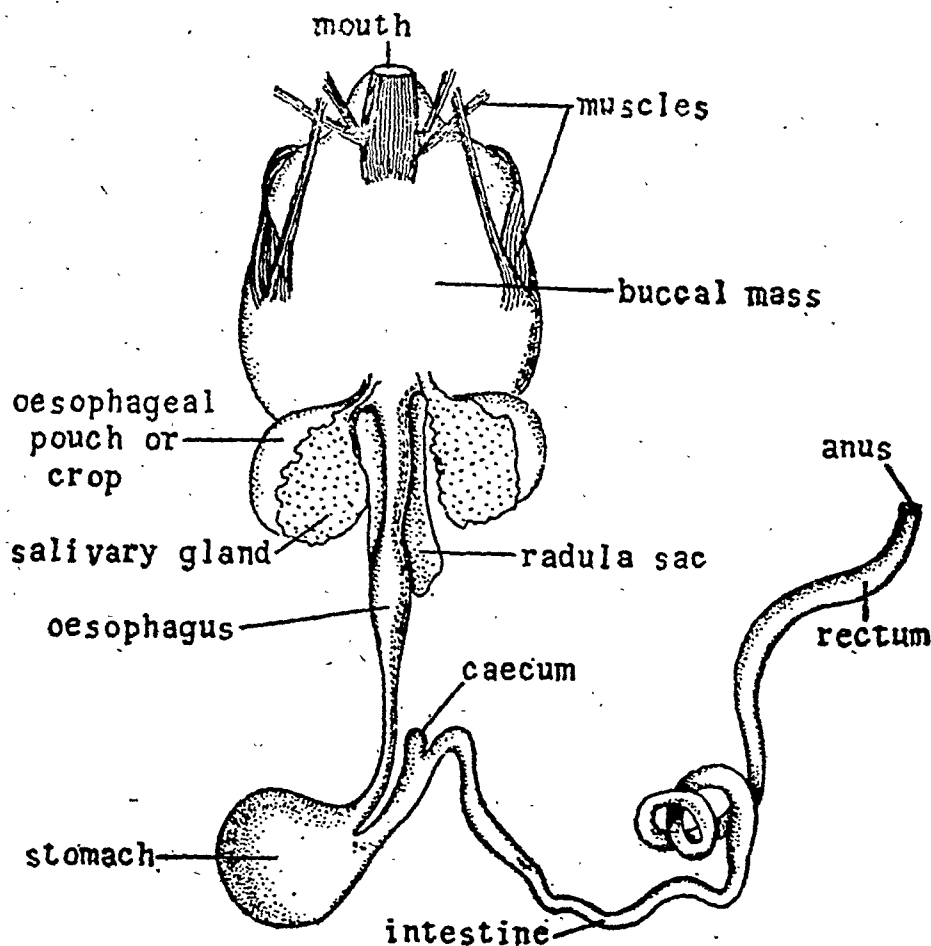
चित्र 474. आहार-नाल।

Mouth, मुख; muscles, पेशियाँ; buccal mass, मुख संहति; radula sac, रडुला-कोश; oesophageal pouch or crop, ग्रसिका कोष्ठ; salivary gland, लार-ग्रंथि; oesophagus, ग्रसिका; stomach, जठर; caecum, अंधनाल; intestine, अंतड़ा; rectum, मलाशय; anu· गुदा।

पेशियों से युक्त मोटी दीवारें होती हैं। मुख-संहति की गुहा का अग्र भाग एक प्रघाण (vestibule) होता है। प्रघाण के पीछे मुख-संहति की छत से लटकते हुए दो जबड़े होते हैं। जबड़ों में पेशियाँ लगी होती हैं और उनके अग्र सीमांतों पर वनस्पति आहार

काटने के वास्ते दाँत-सरीखे प्रवर्ध बने होते हैं। जबड़ों के पीछे बड़ी **मुख-गुहा** होती है। मुख-गुहा के फ़र्श पर एक बड़ा उभार **दन्तधर** (odontophore) होता है, दन्तधर के अगले भाग में एक खाँचयुक्त **उपरेडुला-अंग** (subradular organ) होता है जो आहार काटने में सहायता करता है। दन्तधर में बाह्यकर्षी तथा अन्तःकर्षी पेशियाँ होती हैं और दो जोड़ी कार्टिलेज (उपास्थि) होते हैं जिनमें से एक जोड़ी त्रिभुजाकार **ऊर्ध्व कार्टिलेज** (superior cartilages) होते हैं जो मुख-गुहा में निकले होते हैं और एक जोड़ी बड़े S-आकृति के **पार्श्व कार्टिलेज** (lateral cartilage) होते हैं। दंतधर के ऊपर और पीछे एक थैला-जैसा **रेडुला कोश** (radula sac) होता है जो मुख-गुहा का एक अन्धवर्ध होता है, रेडुला-कोश में **दंतप्रसु** (odontoblasts) नामक कोशिकाओं की अनुप्रस्थ पंक्तियाँ बनी होती हैं। रेडुला-कोश के भीतर एक **रेडुला** (radula) होता है जो मोलस्का की विशेषता है। रेडुला में शृंगीय दाँतों की अनेक अनुप्रस्थ पंक्तियाँ बनी होती हैं, हर पंक्ति में सात दाँत होते हैं जिनमें से दो-दो सीमांतीय तथा एक-एक पार्श्वीय दाँत हर पार्श्व में होता है और एक केन्द्रीय अथवा पिच्छाक्षी दाँत बीच में होता है। दाँत काइटिन के बने होते हैं जो प्रोटीन द्वारा और ज्यादा कड़े हो गये होते हैं, इनमें तेज़ काटने वाले प्रवर्ध बने होते हैं जो एक रेती के समान काम करते और वनस्पति आहार को खुरचते जाते हैं। रेडुला के दाँत सामने की ओर से घिसते जाते हैं और सदैव दन्तप्रसुओं से नए-नए दाँत बनते जाते हैं। मुख-गुहा की छत में, रेडुला के ऊपर एक जोड़ी खाँचयुक्त **मुख-ग्रंथियाँ** (buccal glands) होती हैं जो पाचन में सहायता करती हैं।
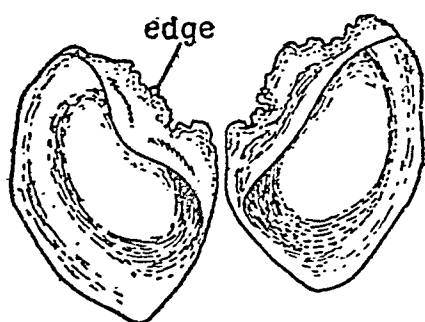
चित्र 475. जबड़े। Edge, सीमांत।
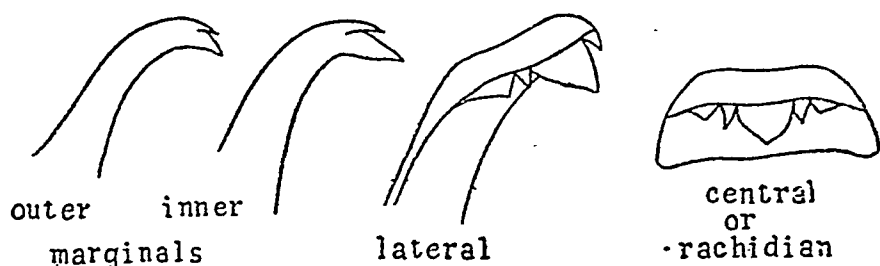
चित्र 476. रेडुला की एक पंक्ति के दाँत।
Outer, inner, marginals, बाहरी, भीतरी सीमांतीय; lateral, पार्श्वीय; central or rachidian, मध्यक अथवा पिच्छाक्षी।

मुख-संहति के पीछे एक जोड़ी **लार-ग्रन्थियाँ** होती हैं, इनकी वाहिनियाँ मुख-गुहा में खुलती हैं, इनके स्राव में श्लेष्मा और स्टार्च का पाचन करने वाला एक एन्जाइम होता है, श्लेष्मा रेडुला को चिकना बनाये रखती है तथा आहार के चलते

जाने में सहायता करती है। मुख-संहति भीतर को एक संकीर्ण **ग्रसिका** में खुलती है। ग्रसिका के प्रारम्भ के समीप से एक जोड़ी गोल सफेद से **ग्रसिका कोष्ठ** (oesophageal pouches) निकलते हैं, ये छोटी-छोटी वाहिनियों द्वारा निकलते हैं और लार-ग्रन्थियों के नीचे पड़े होते हैं; ये ग्रसिका के ही प्रवर्ध हैं और कदाचित् पाचन-एन्ज़ाइमों का स्राव करते हैं। ग्रसिका-कोष्ठ आहार के अस्थायी भण्डार का काम करते हैं तथा पाचन इन्हीं में शुरू हो जाता है। लार-ग्रन्थियों तथा ग्रसिका-कोष्ठों से निकलने वाले एन्ज़ाइमों के द्वारा कुछ कोशिकावाह्य पाचन जठर में सम्पन्न होता है। ग्रसिका एक गहरे लाल रंग के आयताकार **जठर** से जुड़ी होती है, जठर की अवकाशिका U की आकृति की होती है और उसमें एक अनुप्रस्थ कटक होता है। जठर के निचले अथवा निर्गमी सिरे से एक छोटी बैग-जैसी अंधनाल निकली होती है लेकिन इसमें अनेक गैस्ट्रोपोडा में पाया जाने वाला कोई क्रिस्टलीय शर नहीं होता। जठर से एक अंतड़ी निकलती है जो आंतरांग संहति में कुण्डलित होती जाती और मलाशय में जुड़ जाती है। मरोड़ के कारण जठर 180° घूम गया है जिसके फलस्वरूप ग्रसिका
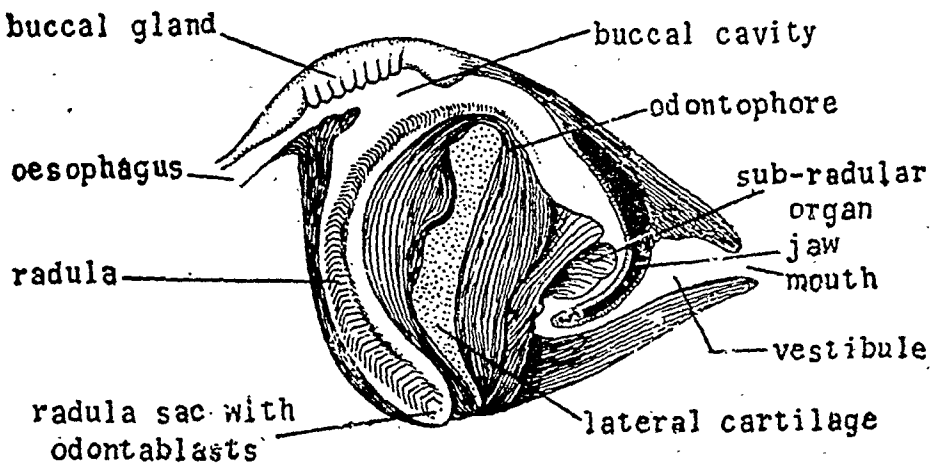
चित्र 477. मुख-संहति का अनुदैर्घ्य उदग्र सेक्शन (L.V.S.)। Mouth, मुख; jaw, जबड़ा; subradular organ, उपरेडुला अंग; odontophore, दन्तधर; buccal cavity, मुख-गुहा; buccal gland, मुख-ग्रन्थि; oesophagus, ग्रसिका; radula, रेडुला; radula sac with odontoblasts, दन्तप्रसुओं से युक्त रेडुला-कोश; lateral cartilage, पार्श्व कार्टिलेज; vestibule, प्रधाण।

जठर में पश्चतः प्रवेश होती है और आमाशय में से अंतड़ी अग्रतः निकलती है। मलाशय प्रावार-गुहा में पहुँच जाता और नीचे की तरफ को चलता जाता है तथा शीर्ष के दाईं ओर गुदा द्वारा खुलता है। मुख-गुहा और ग्रसिका मिलकर स्टोमोडियम (अग्रान्त्र) बनाते हैं तथा मलाशय प्रौक्टोडियम (पश्चांत्र) बनाते हैं, इन दोनों का अस्तर एक्टोडर्म का बना होता है। आहार में नरम जलीय पौधे शामिल होते हैं जो जबड़ों तथा दन्तधर द्वारा काटे जाते हैं और उसके बाद रेडुला आगे-पीछे को

चलता हुआ आहार को छोटे-छोटे कणों में रेतता जाता है। लार-ग्रन्थियों का स्राव आहार के साथ मुख-गुहा में मिल जाता है, यह स्टार्च के पाचन में सहायता करता है। आंतरांग संहति में स्थित एक बड़ी **पाचन-ग्रन्थि** अथवा जिगर होता है, इसकी वाहिनी जठर में खुलती है। पाचन-ग्रन्थि अनेक नलिकाओं की बनी होती है; हर नलिका के अन्तिम भाग को **कूपिका** कहते हैं जो ग्रन्थीय होता है, शेष नलिका सिलियायित होती है। कूपिकाओं में तीन प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं, जो स्रावी अवशोषी तथा कैल्सियमी कोशिकाएँ होती हैं। स्रावक कोशिकाएँ एक भूरा तरल बनाती हैं जिसमें एक एन्ज़ाइम होता है जो पौधों के सेलुलोज़ को घुला देता और उसे एक पल्प में बदल देता है। सेलुलोज़-पल्प अवशोषी कोशिकाओं में पहुँच जाता है जिसमें से एक प्रोटीनलयी एन्ज़ाइम निकलता है; यह एन्ज़ाइम सेलुलोज़ पल्प का अन्तःकोशिक पाचन करता है। पाचन-ग्रन्थि का स्राव विविध प्रकार के आहारों को पचाता है, लेकिन सेलुलोज़ केवल अवशोषी कोशिकाओं में ही पचता है। इस प्रकार कोशिकाबाह्य और अन्तःकोशिक दोनों ही प्रकार का पाचन होता है, कोशिकाबाह्य पाचन का स्थान जठर है और अन्तःकोशिक पाचन तथा अवशोषण का स्थान पाचन-ग्रन्थि है, सभी मोलस्का की यही विशेषता है। पचे भोजन का अवशोषण मुख्यतः पाचन-ग्रन्थि में और कुछ मात्रा में अंतड़ी में होता है।

श्वसन-तन्त्र—पाइला जलस्थलचर है, इसमें **जलीय श्वसन** कंकत के द्वारा और **वायवीय श्वसन** फेफड़े द्वारा होता है। एक कंकत दाहिनी ओर प्रावार से गिल-कक्ष में लटका होता है। कंकत वास्तव में बाईं ओर का गिल होता है लेकिन फेफड़े के द्वारा धक्का दिए जाकर यह दाहिनी ओर को खिसक जाता है। कंकत में एक-दूसरे के समान्तर पड़ी हुई **पटलिकाओं** की एक ही पंक्ति होती है, पटलिकाओं के आधार प्रावार से जुड़े होते हैं और उनके शिखर गिल-कक्ष में को लटके होते हैं। हर पटलिका में अनुप्रस्थ कटक बने होते हैं जिनमें रक्त वाहिकाएँ होती हैं. पटलिकाएँ सिलियायित होती हैं। जलीय श्वसन में एक जलधारा बाएँ कूट अधिपाद में प्रविष्ट होती और प्रावार-गुहा में पहुँच जाती है, यह एपिटीनिया के ऊपर से बहती हुई गिल-कक्ष में पहुँच कर कंकत को तर करती जाती है, उसके बाद जलधारा दाहिने कूट अधिपाद में से होकर बाहर निकल जाती है। कंकत जलधारा में से ऑक्सीजन ले लेता और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ देता है।

बाईं ओर एक **फेफड़ा** अथवा श्वसन कोश होता है। यह प्रावार से बना हुआ एक बड़ा थैला होता है जो प्रावार-गुहा के फुपफुस-कक्ष में लटका रहता है; फेफड़े का एक बड़ा छिद्र होता है, इसकी ऊपरी दीवार वर्णांकित तथा नीचे की दीवार सफेद होती है, दीवारों में रक्त वाहिकाएँ होती हैं, और वे पेशीय होती हैं। फेफड़ा वायवीय श्वसन में दो प्रकार से इस्तेमाल होता है। जब घोंघा पानी की सतह पर आता है तो बायाँ कूट अधिपाद एक नलिका के रूप में जल के ऊपर को निकला होता है और हवा उसमें को खींच ली जाती है, हवा फुपफुस कक्ष में और फिर वहाँ से फेफड़े में पहुँचती है; इसके दौरान एपिटीनिया के द्वारा जो कि प्रावार को ऊपर को दबाती

जाती है गिल-कक्ष बन्द रहता है। जब घोंघा थल पर आता है तो यह हवा को सीधे ही फेफड़े में प्रावार-गुहा के द्वारा ले लेता है, और बाएँ कूट अधिपाद की कोई नलिका नहीं बनती। दोनों प्रकार के वायवीय श्वसन में फुफ्फुस-दीवारों के एकान्तर क्रम में संकुचन और शिथिलन होते रहते हैं, जब पेशियाँ संकुचित होती हैं तो फेफड़े का फ़र्श नीचे को मेहराब बना लेता है जिससे भीतर की गुहा बढ़ जाती और हवा फेफड़े में को खिंच जाती है, पेशियों के शिथिलन होने पर फेफड़े की गुहा छोटी हो जाती और हवा बाहर निकाल दी जाती है, शीर्ष एवं पद की अन्दर-बाहर की गतियों से भी हवा ग्रहण करने की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। फेफड़े में रक्त-वाहिकाएँ हवा से ऑक्सीजन ले लेतीं और कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ देती हैं।
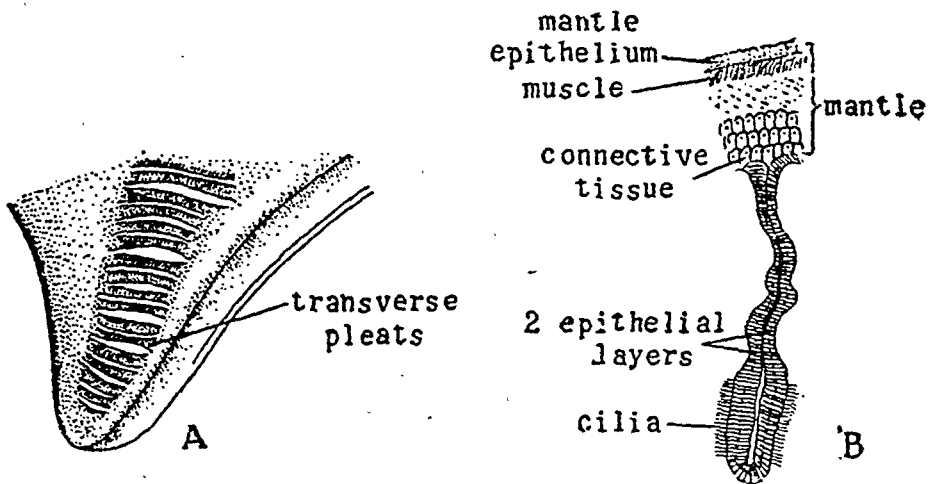
चित्र 478 A—गिल पटलिका, B—गिल पटलिका का अनुप्रस्थ सेक्शन। Transverse pleats, अनुप्रस्थ चुन्नटें; mantle epithelium, प्रावार एपिथीलियम; muscle, पेशी; connective tissue, योजी ऊतक; mantle, प्रावार; epithelial layers, एपिथीलियमी परतें; cilia, सिलिया।

परिसंचरण-तन्त्र—गैस्ट्रोपोड के रक्त में एक श्वसन वर्णक होता है जिसे **हीमोसाएनिन** कहते हैं—यह ताँबे और प्रोटीन का यौगिक होता है, हीमोसाएनिन प्लाज़्मा में घुला होता है और इसके कारण रक्त में हल्का-सा नीला रंग आ जाता है। लेकिन कुछ गैस्ट्रोपोडों में जैसे कि **प्लैनॉर्बिस** (*Planorbis*) में हीमोसाएनिन के स्थान पर हीमोग्लोबिन पाया जाता है। रक्त प्लाज़्मा में ताराकार अमीबाणु होते हैं जो भक्षिकाणु होते हैं, वे अपशिष्ट पदार्थों को दूर करते हैं और उनमें से कुछ में अन्तःकोशिक पाचन भी होता है। फेफड़े के ऊपर एक **परिहृद्** होता है जो सीलोम का ही एक भाग है, परिहृद् के भीतर हृदय पड़ा होता है। हृदय में एक ही अलिंद और एक ही निलय होता है। हृदय की अग्र स्थिति मरोड़ के कारण होती है तथा दाहिने कंकत के लोप हो जाने के कारण दाहिना अलिंद भी समाप्त हो गया है। अलिंद की दीवारें पतली लेकिन निलय की दीवारें पेशियों से युक्त स्पन्जी होती

हैं। अलिंद एक छिद्र द्वारा जिसमें दो अर्धचन्द्राकार **अलिंद-निलय कपाट** होते हैं निलय में को खुलता है।
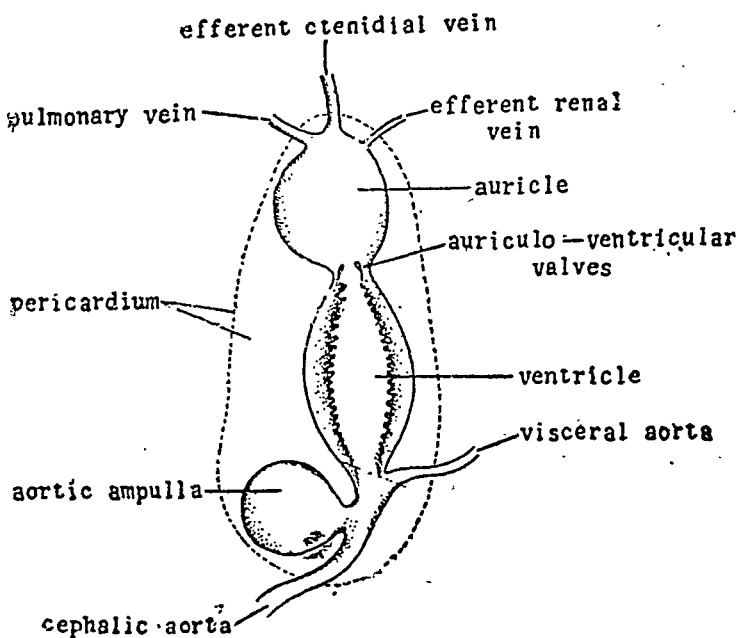
चित्र 479. **पाइला** का हृदय।

Pulmonary vein, फुफ्फुस-शिरा; efferent ctenidial vein, अपवाही कंकत-शिरा; efferent renal vein, अपवाही वृक्क-शिरा; auricle, अलिंद; auriculo-ventricular valves, अलिंद-निलय कपाट; ventricle, निलय; visceral aorta, आँतरांग महाधमनी; cephalic aorta, शीर्ष महाधमनी; aortic ampulla, महाधमनी ऐम्पुला; pericardium, परिहृद्।

रक्त वाहिकाएँ—निलय से एक **महाधमनी** निकलती है जो दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है—एक **शीर्ष महाधमनी** (cephalic aorta) और एक **आंतरांग** महाधमनी (visceral aorta)। शीर्ष महाधमनी में एक बल्ब-जैसी वहिर्वृद्धि होती है जिसे **महाधमनी ऐम्पुला** (aortic ampulla) कहते हैं, यह ऐम्पुला रक्त-परिसंचरण में सहायता करता तथा रक्त के दबाव का नियन्त्रण करता है। शीर्ष महाधमनी से धमनियाँ निकलती हैं जो शीर्ष तथा मुख-संहति में जाती हैं, आंतरांग महाधमनी से निकलने वाली धमनियाँ आंतरांग संहति में जाती हैं। केशिकाएँ न होने के कारण रक्त छोटी-छोटी रिक्तिकाओं में जाता है जहाँ से वह हीमोसील के दो बड़े साइनसों में पहुँच जाता है, ये हैं **परिआंतरांग साइनस** (perivisceral sinus) और **परिआंत्र साइनस** (peri-intestinal sinus)। जलीय श्वसन के दौरान रक्त परिआंतरांग साइनस से कंकत में जाता है जहाँ वह शुद्ध हो जाता है,

उसके बाद एक **अपवाही कंकत-शिरा** (efferent ctenidial vein) के द्वारा रक्त अलिंद में पहुँच जाता है। वायु-श्वसन के दौरान रक्त परिआंतरांग साइनस से फेफड़े में आता है और वहाँ शुद्ध हो जाता है, एक **फुफ्फुस-शिरा** इस रक्त को अलिंद में पहुँचा देती है। परिआंत्र साइनस से रक्त दो मार्ग लेता है, या तो वह इस साइनस से चलकर अग्र वृक्क-कक्ष में पहुँच जाता है जहाँ से यह कंकत में जाता और शुद्ध होकर अपवाही कंकत-शिरा के द्वारा अलिंद में पहुँच जाता है। या फिर परिआंत्र साइनस से रक्त अग्र वृक्क-कक्ष में पहुँचता और फिर पश्च वृक्क-कक्ष (परिआंत्र साइनस से रक्त अग्र वृक्क-कक्ष में न जा कर सीधा पश्च वृक्क-कक्ष में भी जा सकता है); जो भी हो पश्च वृक्क-कक्ष का रक्त एक **अपवाही वृक्क-शिरा** के द्वारा निलय में पहुँच जाता है। इस प्रकार अलिंद में कंकत से अथवा फेफड़े से शुद्ध रक्त पहुँचता है और पश्च वृक्क-कक्ष से अशुद्ध रक्त; यह मिश्रित रक्त निलय में पहुँचता और धमनियों के द्वारा वितरित हो जाता है। तथापि, वृक्क-कक्षों में रक्त में से अपशिष्ट पदार्थ दूर कर दिये जाते हैं।
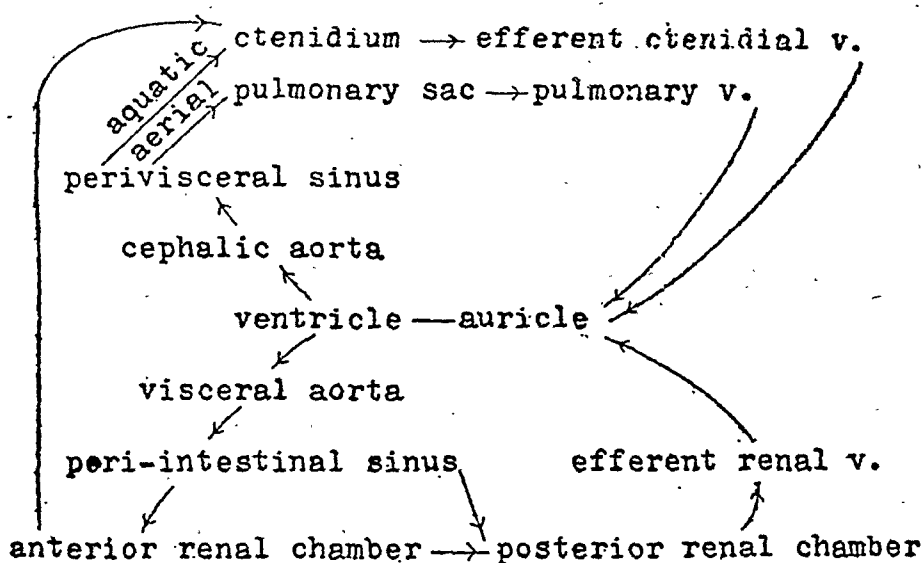
चित्र 480. रक्त-परिसंचरण

उत्सर्गी तंत्र—वृक्क एक ही होता है जो परिहृद् के पीछे स्थित रहता है, यह मोटी दीवार वाला थैला होता है जिसमें भीतर को बहुत ज्यादा वलन बने होते हैं, इसमें एक दाहिना अग्र वृक्क-कक्ष और एक बायाँ पश्च वृक्क-कक्ष होते हैं। अग्र वृक्क-कक्ष में अनुप्रस्थ खाँचें और समान्तर पटलिकाएँ होती हैं, यह लाल-लाल रंग का होता है तथा प्रावार-गुहा में को उभरा रहता है, और एक उत्सर्गी छिद्र के द्वारा जो कि एपिटीनिया के समीप होता है प्रावार-गुहा में को खुलता है; यह कक्ष पश्च वृक्क-कक्ष में को भी खुला होता है। पश्च वृक्क-कक्ष बड़ा और भूरे से रंग का होता है, इसमें

अनेक रक्त वाहिकाएँ होती हैं और इसमें एक बड़ी गुहा होती है जिसमें एक जनन-वाहिनी तथा अंतड़ी की कुण्डलियाँ पड़ी होती हैं, यह एक **वृक्क-परिहृद् छिद्र**
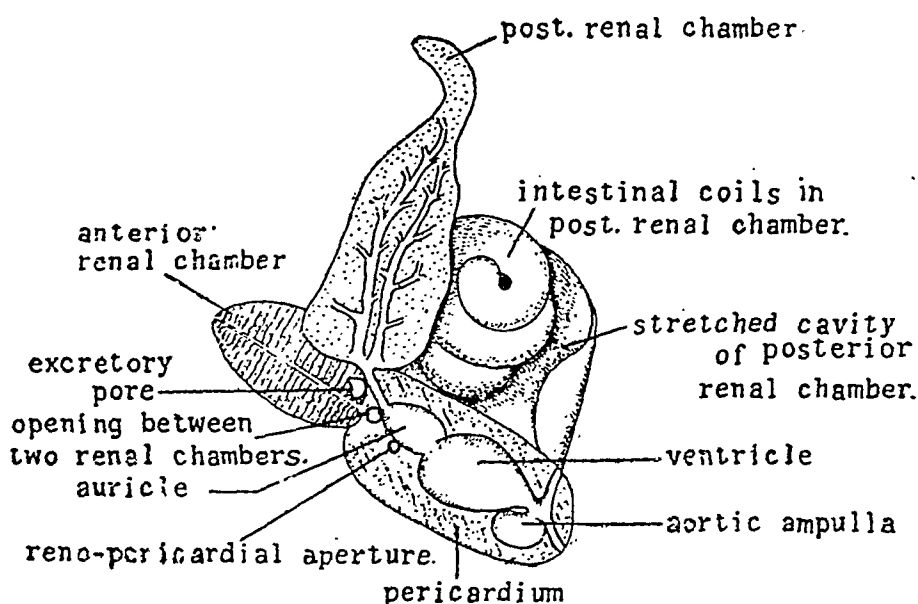
चित्र 481. वृक्क (पश्च वृक्क-कक्ष खोल कर दिखाया गया है।)
Post. renal chamber, पश्च वृक्क-कक्ष; intestinal coils in post renal chamber. पश्च वृक्क-कक्ष में अंतड़ी की कुण्डलियाँ; stretched cavity of posterior renal chamber, पश्च वृक्क-कक्ष की खोली गई गुहा; ventricle, निलय; aortic ampulla, महाधमनी ऐम्पुला; pericardium, परिहृद्; reno-pericardial aperture, वृक्क-परिहृद् छिद्र; auricle, अलिंद; opening between two renal chambers, दो वृक्क-कक्षों के बीच का छिद्र; excretory pore, उत्सर्गी छिद्र; anterior renal chamber, अग्र वृक्क-कक्ष।

(renopericardial aperture) के द्वारा परिहृद् में को खुलता है। वृक्क एक सीलोम-वाहिनी है जो एक सिरे पर सीलोम (परिहृद्) तथा दूसरे सिरे पर बाहर (प्रावार-गुहा) में को खुलती है। वृक्क रक्त में से अपशिष्ट पदार्थ को दूर करते हैं, यह अपशिष्ट प्रावार-गुहा में को छोड़ दिया जाता है। उत्सर्गी पदार्थ में अधिकतर ऐमोनिया, कुछ ऐमोनिया-यौगिक, यूरिया तथा यूरिक अम्ल होते हैं। जल के संरक्षण के वास्ते ऐमोनिया को अपेक्षाकृत घुलनशील यूरिक अम्ल में बदल दिया जाता है। जल संरक्षण की दिशा में होने वाला यह अनुकूलन **पाइला** में विशेष रूप से उल्लेखनीय है, यह प्राणी ऋतुओं के अनुसार जलस्थलचर है, अपनी जलीय प्रावस्था में यह ऐमोनिया

यौगिकों का उत्सर्जन करता है, लेकिन थलीय प्रावस्था में यह यूरिक ग्रम्ल का उत्सर्जन करता है।

ग्रधिकतर गैस्ट्रोपोडा में पाचन-ग्रन्थि का भी उत्सर्जन में हाथ रहता है, क्योंकि इनमें कुछ उत्सर्गी कोशिकाएँ होती हैं जो ग्रपशिष्ट पदार्थों को ले लेतीं ग्रौर उन्हें जठर एवं ग्रंतड़ी के मार्ग से बाहर निकाल देने में सहायता करती हैं।

तंत्रिका-तंत्र—तंत्रिका-तंत्र में दो विशिष्टताएँ पाई जाती हैं, एक तो केवल ग्रांतरांग गैंग्लिया को छोड़कर शेष सभी गैंग्लिया मुख-संहति के पास संकेंद्रित हो जाते हैं, ग्रौर दूसरे ग्रांतरांग लूप मरोड़ के कारण 8 की ग्राकृति ले लेता है। तंत्रिका-तंत्र की ऐंठी हुई दशा एक ग्रादिम लक्षण है क्योंकि ग्रधिकतर गैस्ट्रोपोडों में गैंग्लिया तथा योजियों द्वारा प्रदर्शित द्विपार्श्वीय सममिति परवर्ती रूप में (secondarily) उत्पन्न हुई है।

दो त्रिभुजाकर **प्रमस्तिष्कीय गैंग्लिया** (cerebral ganglia) होते हैं जो मुख-संहति के ग्रगल-बगल एक-एक स्थित होते हैं, एक मोटे **प्रमस्तिष्कीय समयोजी** (cerebral commissure) के द्वारा जो कि मुख-संहति के ऊपर ग्रनुप्रस्थशः चलता जाता हैं, ये दोनों गैंग्लिया जुड़े होते हैं, इसके ग्रलावा एक ग्रौर पतला **लेबियल समयोजी** (labial commissure) होता है जो मुख-संहति के नीचे से गुज़रता है। मुख-संहति ग्रौर ग्रसिका की संधि पर दो **मुख गैंग्लिया** (buccal ganglia) होते हैं जो एक ग्रनुप्रस्थ **मुख समयोजी** (buccal commissure) के द्वारा परस्पर जुड़े होते हैं, ये दोनों पार्श्वों में एक-एक **प्रमस्तिष्क-मुख योजी** (cerebro-buccal connective) के द्वारा प्रमस्तिष्क गैंग्लिया से भी जुड़ जाते हैं, ये योजी मुख-संहति के ऊपर पड़े होते हैं। मुख-संहति के नीचे हर पार्श्व में एक **पार्श्व-पाद गैंग्लियानी संहति** (pleuro-pedal ganglionic mass) होती है जिसमें परस्पर जुड़े हुए एक-एक **पाद एवं पार्श्व गैंग्लियान** होते हैं। पार्श्व-पाद गैंग्लियानी संहति ग्रपनी दिशा वाले प्रमस्तिष्क गैंग्लियान के साथ एक **प्रमस्तिष्क-पार्श्व योजी** (cerebro-pleural connective) तथा एक **प्रमस्तिष्क-पाद योजी** (cerebro-pedal connective) के द्वारा जुड़ी होती है। दोनों पाद-गैंग्लिया पास-पास समान्तर पड़े हुए दो **पाद-समयोजियों** (pedal commissures) द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। ग्रांतरांग संहति के निचले सिरे पर एक **ग्रांतरांग गैंग्लियान** होता है जो दो गैंग्लिया के समेकन से बना होता है। ग्रांतरांग गैंग्लियॉन हर पार्श्व में एक लम्बे **ग्रांतरांग योजी** (visceral connective) के द्वारा पार्श्व-पाद गैंग्लियानी संहति के साथ जुड़ा रहता है। बाएँ ग्रांतरांग योजी के मार्ग में एक **ग्रधि-ग्रांत्र** गैंग्लियॉन (supra-intestinal ganglion) होता है जिसमें से एक पतली **ग्रधि-ग्रांत्र तंत्रिका** निकलकर दाहिनी ग्रोर की पार्श्व-पाद गैंग्लियानी संहति में जाकर मिल जाती है। मोलस्का में विपरीत दिशाग्रों के समान गैंग्लिया के बीच के संयोजनों को समयोजी ग्रौर ग्रसमान गैंग्लिया के बीच के संयोजनों को योजी कहते हैं।
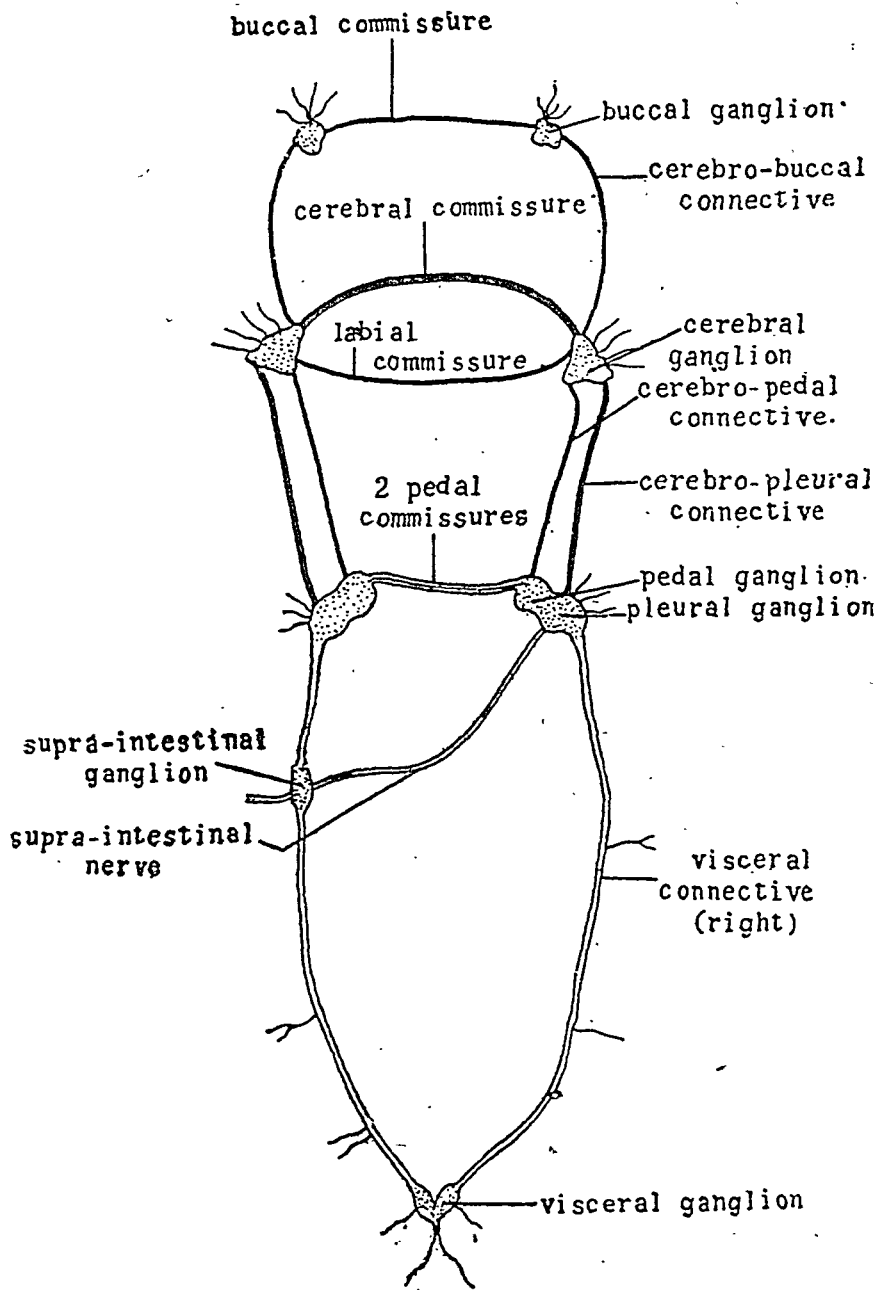
चित्र 482. तंत्रिका-तंत्र (मुख-गैंग्लिया तथा समयोजी को आगे की तरफ को उठा दिया गया है)।

Buccal commissure, मुख-समयोजी; buccal ganglia, मुख गैंग्लिया; cerebro-buccal connective, प्रमस्तिष्क-मुख योजी; cerebral commissure, प्रमस्तिष्क समयोजी; labial commissure, लेबियल समयोजी; cerebral ganglion, प्रमस्तिष्क गैंग्लियान; cerebro-pedal connective, प्रमस्तिष्क-पाद योजी; 2 pedal commissures, 2 पाद समयोजी; cerebro-pleural connective, प्रमस्तिष्क-पार्श्व योजी; pedal ganglion, पाद गैंग्लियान; ploural ganglion, पार्श्व गैंग्लियॉन; supra-intestinal ganglion, अधि-आंत्र गैंग्लियॉन; supra-intestinal nerve, अधि-आंत्र तंत्रिका; visceral connective (right) दाहिना आंतरांग योजी; visceral ganglion, आंतरांग गैंग्लियॉन।

तंत्रिकाएँ—प्रमस्तिष्क गैंग्लियान से निकलने वाली तंत्रिकाएँ शीर्ष, स्पर्शकों तथा आँखों को जाती हैं। मुख-गैंग्लिया से तंत्रिकाएँ मुख-संहति में जाती हैं। पाद-गैंग्लिया से निकलने वाली तंत्रिकाएँ पद में पहुँचती हैं और पार्श्व गैंग्लिया से निकलने वाली तंत्रिकाएँ प्रावार, कंकत तथा साइफ़नों को जाती हैं। आंतरांग से तंत्रिकाएँ अंतड़ी, वृक्क तथा गोनडों को जाती हैं।

संवेदी अंग—1. **जलेक्षिका** बाएँ कूट अधिपाद के पास प्रावार में से लटकी होती है, यह अंडाकार होती है जिसमें 22 से 28 मांसल पर्णक (leaflets) होते हैं जो एक केंद्रीय अक्ष के पार्श्वों पर व्यवस्थित होते हैं। यह एक रसायनग्राही है जो बाएँ कूट अधिपाद में से प्रावार-गुहा में प्रविष्ट होने वाली जलधारा को परखती है और खाए जाने वाले आहार पर भी कुछ वरण (छांट) का प्रभाव रखती है। गैस्ट्रोपोडा की जलेक्षिका का विकास कंकतों के विकास के समांतर हुआ है, आदिम उदाहरणों में हर कंकत के लिए एक जलेक्षिका होती है; प्रोजोब्रैंकों में जिनमें एक कंकत होता है जलेक्षिका भी केवल एक ही होती है; उन गैस्ट्रोपोडों में जिनमें कंकत समाप्त हो चुके हैं, अथवा प्रावार-गुहा ह्रासित होती है, अथवा जो तलप्लावी बन चुके हैं, उनमें जलेक्षिका विलीन हो गई है।
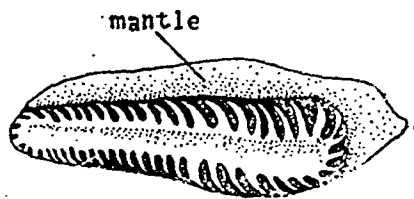
चित्र 483. जलेक्षिका।
Mantle, प्रावार।

2. **संतुलनपुटी**—पद के भीतर हर पाद-गैंग्लियॉन के समीप एक गढ़े में एक-एक संतुलनपुटी पाई जाती है, यह एक गोल कैप्सूल होता है जिसका अस्तर एपिथीलियम कोशिकाओं का बना होता है और जिसे चारों ओर से योजी ऊतक
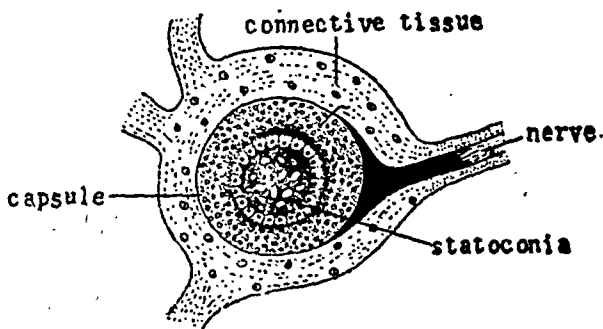
चित्र 484. संतुलनपुटी।

Connective tissue, योजी ऊतक; nerve, तंत्रिका; statoconia, संतुलनकरण; capsule, कैप्सूल।

घेरे रहता है, कैप्सूल की गुहा में छोटे-छोटे **संतुलनकरण** (statoconia) होते हैं। संतुलनपुटियों में पाद एवं प्रमस्तिष्क गैंग्लिया से तंत्रिकाएँ आती हैं, ये संतुलन-अंग होते हैं और घोंघे की स्थिति का नियंत्रण करते हैं।

3. **आँखें**—एक जोड़ी आँखें होती हैं; हर आँख एक नेत्रधर के ऊपर बनी होती है। आँख एक अंडाकार कैप्सूल होती है, इसकी दीवार **रेटिना** (दृष्टिपटल) होती है जो कि वर्णांकित संवेदी कोशिकाओं की बनी होती है, यह आगे की ओर को एक पतली, अवर्णांकित पारदर्शी **कॉर्निया** के रूप में जारी रहती है। ऊपर बना हुआ एपिडर्मिस पारदर्शी होता है; कैप्सूल के भीतर एक स्वच्छंद अंडाकार **लेन्स** होता है जिसके चारों ओर एक बना **काचाभ पिंड** (vitreous body) घेरे रहता है। रेटिना-कोशिकाओं में एक दृक्-तंत्रिका से तंत्रिकायन होता है। आँखें प्रकाश के लिए संवेदी होती हैं।
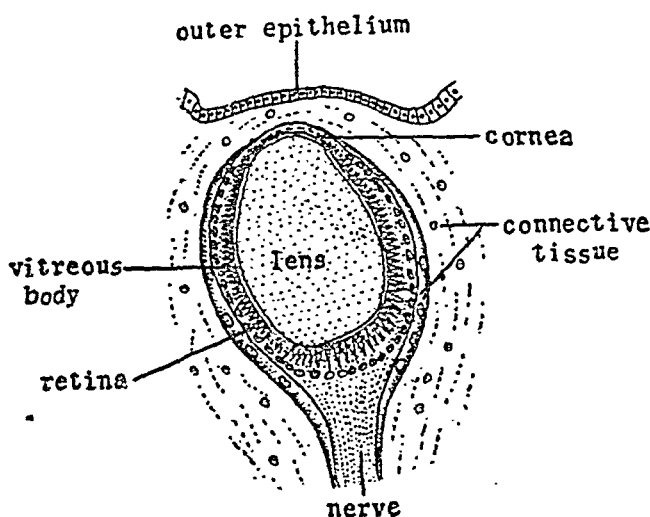
चित्र 485. आँख का खड़ा सेक्शन (V. S.)।

Outer epithelium; बाहरी एपिथीलियम; cornea, कॉर्निया; connective tissue, योजी ऊतक; nerve, तंत्रिका; retina, रेटिना; vitreous body, काचाभ पिंड।

4. **स्पर्श अंग**—स्पर्शकों और पद में खूब संख्या में तंत्रिकाएँ आती हैं, ये दोनों अंग स्पर्श के लिए संवेदी होते हैं, स्पर्शकों में स्पर्शक एवं रसायनग्राही दोनों प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं और कदाचित् ये स्वादग्राही भी होते हैं। पहली जोड़ी स्पर्शक घ्राणीय होते हैं।

जनन-तंत्र—नर-मादा लिंग अलग-अलग होते हैं और देखने में समान होते हैं, लेकिन नर का कवच प्रायः छोटे आकार का होता है। सभी गैस्ट्रोपोडा में एक अकेला गोनड होता है। **नर-अंग**—पाचन-ग्रन्थि के पास स्थित एक सफेद-सा वृषण होता है जो आंतरांग संहति के ऊपरी $2\frac{1}{2}$ से 3 चक्रों में होता है। वृषण में से एक पतली **शुक्रवाहिका** निकलती है जो एक मुद्गराकार **शुक्राशय** से जा मिलती है। उसके बाद शुक्रवाहिका एक चौड़ी और ग्रन्थिल नलिका में खुलती है जो मलाशय की बाईं ओर होती है, और यह नलिका एक वक्र **जनन-पैपिला** में प्रविष्ट हो जाती है जिसमें एक

छिद्र बना होता है। प्रावार का सीमांत एक ग्रन्थीय टोंटी बना लेता है, जिसे **शिश्न-ग्राच्छद** कहते हैं जिसके भीतर एक खांचयुक्त शिश्न पड़ा रहता है. शिश्न में प्रसार-क्षमता पाई जाती है। शिश्न-ग्राच्छद के ग्राधार पर एक ग्रंडाकार **ग्रध:गिल ग्रन्थि** (hypobranchial gland) होती है जो ग्रपना स्राव शिश्न-ग्राच्छद तथा शिश्न पर छोड़ती है। **मादा-ग्रंग**—एक नारंगी रंग का विशाखित ग्रण्डाशय एक
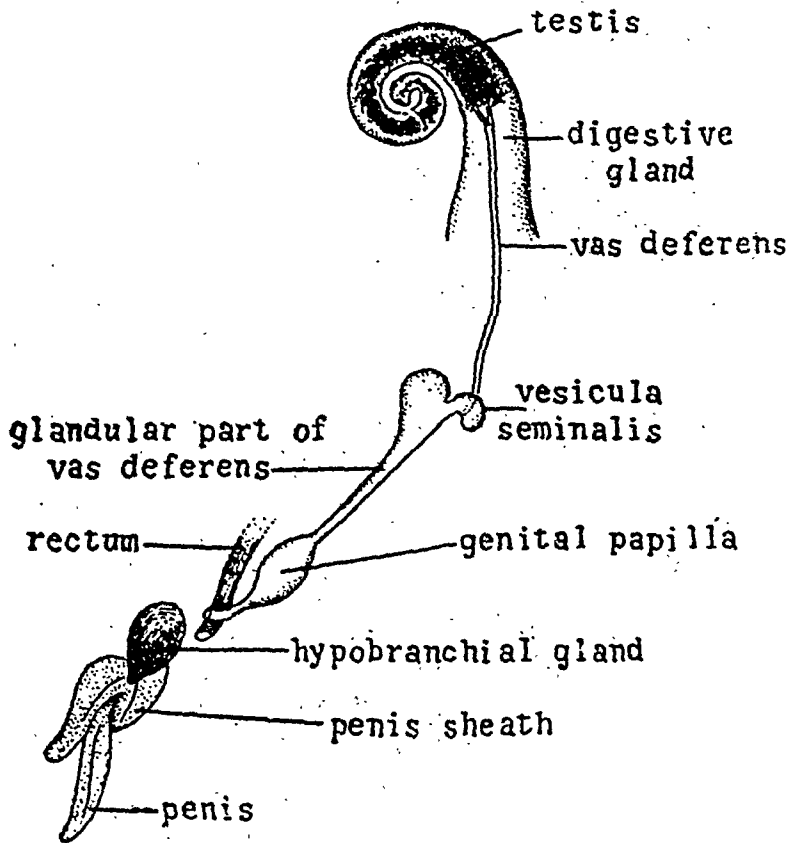
चित्र 486. नर पाइला के जननांग।

Testis, वृषण; digestive gland, पाचन-ग्रन्थि; vas deferens, शुक्रवाहिका; vesicula seminalis, शुक्राशय; glandular part of vas deferens, शुक्रवाहिका का ग्रन्थीय भाग; rectum, मलाशय; genital papilla, जनन-पेपिला; hypobranchial gland, ग्रध:गिल ग्रन्थि; penis sheath, शिश्न-ग्राच्छद; penis, शिश्न।

ग्रपारदर्शी थैले में बंद पड़ा होता है जो ग्रांतरांग संहति के ऊपरी 2 से $2\frac{1}{2}$ चक्रों में पाचन-ग्रन्थि के समीप स्थित रहता है। ग्रण्डाशय से एक पतली **ग्रण्डवाहिनी** निकलती है जो एक सेम की ग्राकृति के **शुक्रग्राही** से ग्राकर मिल जाती है, यह शुक्रग्राही पश्च वृक्क-कक्ष में पड़ा होता है। शुक्रग्राही एक थैले-जैसे **गर्भाशय** से जुड़ जाता है ग्रौर यह गर्भाशय एक नलिकाकर **योनि** में प्रविष्ट हो जाता है। योनि

मलाशय के भीतरी बार्डर के सहारे-सहारे पड़ी होती है और गुदा के समीप एक मादा जनन-छिद्र के द्वारा बाहर को खुल जाती है। मादा में प्रावार के सीमांत पर एक मूलांगी शिश्न होता है।
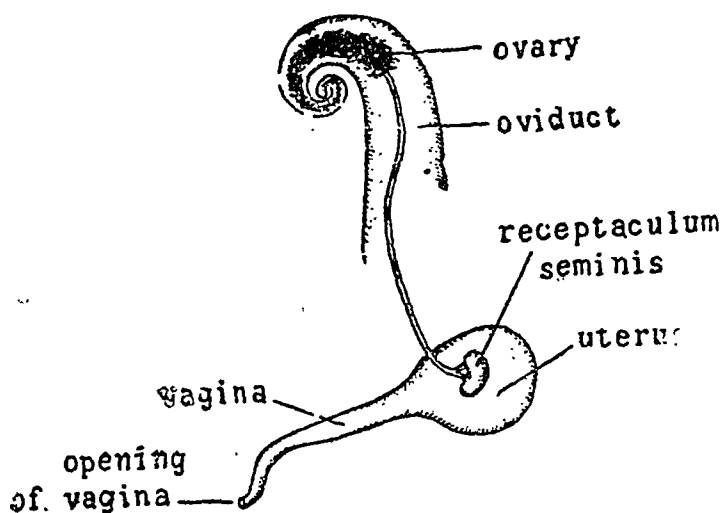
चित्र 487. मादा **पाइला** के जननांग।
Ovary, अण्डाशय; oviduct, अण्डवाहिनी; receptaculum seminis, शुक्रग्राही; uterus, गर्भाशय; vagina, योनि; opening of vagina, योनि-छिद्र।

मैथुन—मैथुन या तो जल में या थल पर होता है, यह तीन घंटे तक चलता है। नर और मादा **पाइला** एक-दूसरे के आमने-सामने से परस्पर साथ आते हैं। नर का शिश्न फैल जाता और अपने आधार पर जनन-पैपिला के साथ जुड़ जाता है। तब शिश्न और उसका आच्छद मादा की प्रावार-गुहा में डाल दिए जाते हैं। शिश्न का अंतिम सिरा मादा जनन-छिद्र में डाल दिया जाता है और शुक्राणु योनि में से होते शुक्रग्राही में पहुँचा दिए जाते हैं। अंडे गर्भाशय में निषेचित होते हैं तथा एक या दो दिन के बाद अंडनिक्षेपण शुरू हो जाता है। निषेचित अंडे 200 से 800 तक के समूहों में तालाबों तथा झीलों के समीप नम मिट्टी में दे दिए जाते हैं।

लार्वा—परिवर्धन के दौरान मोलस्का दो लार्वा अवस्थाओं में से गुजरते हैं, एक **ट्रोकोस्फीयर लार्वा** होता है जो शीघ्र ही एक **वेलिजर लार्वा** में परिवर्धित हो जाता है। ट्रोकोस्फ़ीयर का परिवर्धन वही होता है जैसा पौलीकीट ऐनेलिडा में। प्रारूपिक ट्रोकोस्फीयर **पटेला** में बनता है। मुक्त-तैरने वाला ट्रोकोस्फ़ीयर केवल कुछ आदिम गैस्ट्रोपोडों में ही पाया जाता है जैसे कि **डायोटोकार्डिया** (Diotocardia) वर्ग में, लेकिन अन्य सभी में ट्रोकोस्फ़ीयर अवस्था ह्रासित होती तथा अंडे के भीतर बीतती है। समुद्री गैस्ट्रोपोडों की इससे अधिक विशिष्टता एक मुक्त तैरने वाले वेलिजर लार्वा का पाया जाना है जो अंडे में से स्फोटित होता है। वेलिजर एक रूपांतरित

ट्रोकोस्फीयर है किंतु यह परिवर्धन की अधिक विकसित अवस्था दर्शाता है, इसके अंगों में ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा के अंगों की अपेक्षा उच्चतर परिवर्धन दृष्टिगोचर होता है। इसमें शीर्ष पर एक सिलियायित शिखर-अंग होता है, एक वक्र आहार-नाल होती है, लार्वा-नेफ्रीडिया होते हैं, और एक सिलियायित मुखपूर्वी प्रोटोट्रॉक होता है, लेकिन
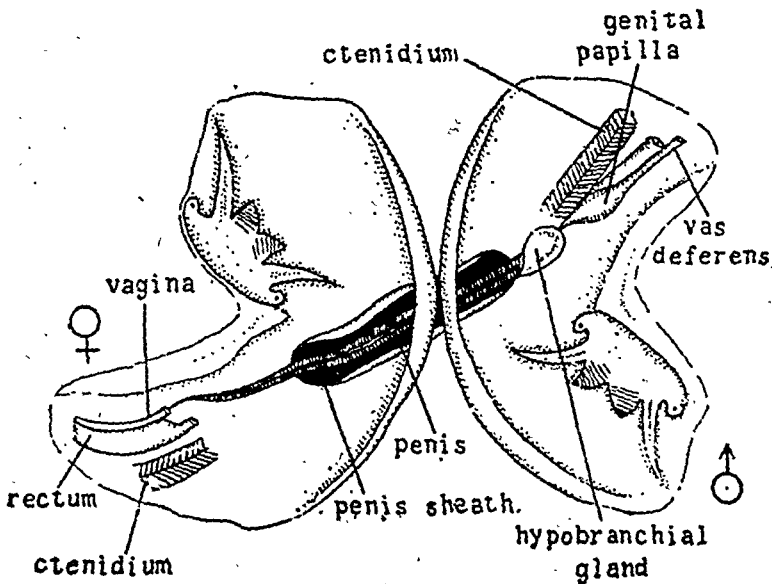
चित्र 488. **पाइला** का मैथुन।

Vagina, योनि; rectum, मलाशय; ctenidium, कंकत; penis sheath, शिश्न-आच्छद; penis, शिश्न; hypobranchial gland, अध:गिल ग्रंथि; vas deferens, शुक्रवाहिका; genital papilla, जनन-पैपिला।

इसमें वे अंग भी होते हैं जो ट्रोकोस्फीयर में नहीं पाए जाते। प्रोटोट्रॉक में एक विशिष्ट तैरने वाला अंग **वीलम** बन जाता है जो शक्तिशाली सिलिया से युक्त एक द्विपालिक वृत्तक होता है, यह प्रोटोट्रॉक के वाहर को होने वाले प्रसार के रूप में वनता है। वीलम एक जलधारा पैदा करता है जो आहार को मुख के भीतर लाती है, और यह स्वच्छंद तैरने वाले वेलिजर के लिए एक चलन अंग का कार्य करता है। वेलिजर की पृष्ठ सतह पर एक भ्रूणीय कवच-ग्रंथि होती है जिससे एक **कवच** का स्राव होता है, शीघ्र ही इस कवच की सरल आकृति समाप्त होकर एक सर्पिल आकृति वन जाती है जो असमान वृद्धि के कारण बन जाती है; लार्वीय प्रतिकर्षी पेशियाँ वन जाती हैं। अधर दिशा में एक **पद** होता है, जो मुख तथा गुदा के बीच में स्थित रहता है। पृष्ठ दिशा पर वीलम और गुदा के वीच में एक्टोडर्म से एक **प्रावार** वन जाता है। मीज़ोडर्म की दो पट्टियाँ बन जाती हैं जो खंड के रूप में विभाजित नहीं होतीं वल्कि कोशिकाओं में टूट जाती हैं, जिनमें से कुछ से पेशियाँ वन जाती हैं। **मरोड़** वेलिजर अवस्था में होता है, कवच और आंतरांग-संहति में शीर्ष और पद के संबंध में 180° का घुमाव आ जाता है, लेकिन आँतरांग कूवड़ का कुंडलित होना प्राय: मरोड़ से पहले होता है।

मरोड़ बहुत द्रुत हो सकता है जबकि वह कुछ ही मिनटों में हो जाता है या यह धीरे-धीरे कई दिनों में पूरा होता है। एक अवस्था आती है जबकि वेलिजर न केवल अपने वीलम के द्वारा तैर ही सकता है वरन् अपने पद द्वारा रेंग भी सकता है। धीरे-धीरे वीलम छोटा होता जाता है।
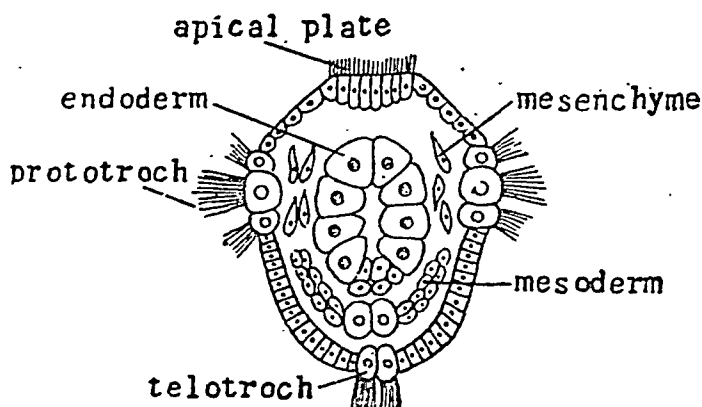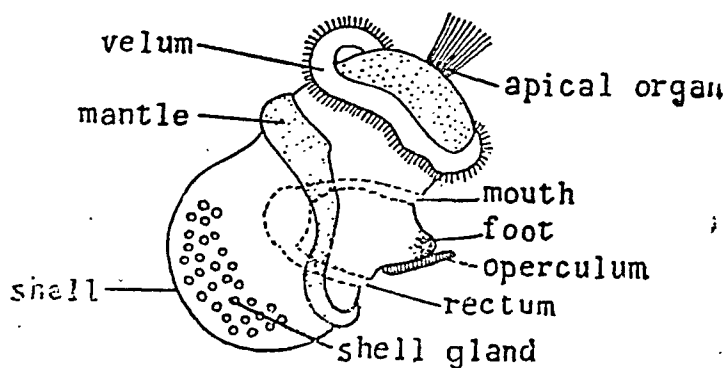
चित्र 489. **पैटेला** का वेलिजर लार्वा। A—प्रारंभिक वेलिजर का खड़ा सेक्शन; B—बाद का वेलिजर।

Apical plate, शिखर प्लेट; endoderm, एंडोडर्म; mesenchyme, मीजेंकाइम; prototroch, प्रोटोट्रॉक; mesoderm, मीज़ोडर्म; telotroch, टीलोट्रॉक; velum, वीलम; mantle, प्रावार; shell, कवच; apical organ, शिखर अंग; mouth, मुख; foot, पद; operculum, आच्छद; rectum, मलाशय; shell gland, कवच-ग्रंथि।

अलवणजलीय और स्थलीय मोलस्का में कोई स्वच्छंद तैरने वाला लार्वा नहीं होता, ट्रोकोस्फ़ीयर तथा वेलिजर दोनों ही अवस्थाएँ अंडे के कवच के भीतर ही बीतती हैं, और अंडे में से एक नन्हें घोंघे का स्फोटन होता है।

फ़ाइलम मोलस्का का वर्गीकरण

मोलस्का में अखंड देह होता है जिसमें एक अग्र शीर्ष, अधर पद, और पृष्ठीय आंतरांग-संहति होती है; ये द्विपार्श्वतः सममित होते हैं हालाँकि ऐंठन अथवा मरोड़ द्वारा सममिति समाप्त हो सकती है। अधिकतर में मुख में एक रेती-जैसा रेडुला होता है, लार-ग्रंथियाँ होती हैं और एक पाचन-ग्रंथि जठर में को खुलती है। एक पृष्ठ हृदय होता है जिसमें एक निलय अथवा एक या दो अलिंद होते हैं। श्वसन अंग कंकत अथवा फेफड़े अथवा प्रावार होते हैं। तंत्रिका-तंत्र में युग्मित प्रमस्तिष्क—, पार्श्व-, पाद-, और आंतरांग गैंग्लिया होते हैं। सीलोम बहुत ह्रासित होता है और इसका प्रतिदर्श परिहृद्, वृक्क एवं गोनड गुहाओं में मिलता है। देह के चारों ओर एक प्रावार होती है जो एक कैल्सियमी कवच से ढकी होती है, हालाँकि कवच अक्सर भीतरी होता अथवा समाप्त हो गया होता है। जनन केवल लैंगिक होता है और एक रूपांतरित ट्रोकोस्फ़ीयर जिसे वेलिजर कहते हैं आमतौर से पाया जाता है।

क्लास 1. **मॉनोप्लैकोफ़ोरा** (Monoplacophora)—ये द्विपार्श्वतः सममित होते हैं जिनमें चौड़ा चपटा पद होता है। कवच एकल और पृष्ठीय होता है; 5 या 6 जोड़ी गिल तथा 5 जोड़ी वृक्क होते हैं। लिंग पृथक् होते हैं, उदाहरणतः **नीओपिलाइना**।

क्लास 2. **ऐम्फ़िन्यूरा** (Amphineura) (अथवा **लोरीकैटा**; Loricata)—देह लंबा; द्विपार्श्वीय सममिति; मुख और गुदा विपरीत सिरों पर; ह्रासित शीर्ष जिस पर स्पर्शक अथवा आँखें नहीं होतीं। पृष्ठ सतह एक मांसल प्रावार से ढकी होती है जिसमें या तो कंटिकाएँ होती हैं या 8 प्लेटों का एक कवच बना होता है। अधर सतह पर एक चपटा पद होता है जिसे चारों ओर से एक खाँच घेरे रहती है और खांच में गिल होते हैं। तंत्रिका-तंत्र द्विपार्श्वतः सममित होता है तथा उसमें गैंग्लिया नहीं होते। ये तमाम मोलस्का में सबसे आदिम होते हैं, ये सभी समुद्री होते हैं, उदाहरणतः **काइटॉन**।

क्लास 3. **गैस्ट्रोपोडा** (Gastropoda)—शीर्ष स्पष्ट होता है जिस पर स्पर्शक और आँखें बनी होती हैं, पद चपटा होता है। कवच एक टुकड़े का बना होता है और इसके भीतर आंतरांग-संहति बंद होती है। कवच सर्पिल रूप में कुंडलित होता है, आंतरांग संहति अक्सर कुँडलित होती है और उसमें मरोड़ पाया जाता है जिससे कि ये प्राणी असममित हो जाते तथा मुख और गुदा दोनों अग्र स्थिति में रहते हैं। वयस्क में प्रावार-गुहा अग्र सिरे पर होती है और शीर्ष के ऊपर खुलती है जबकि लार्वा में यह पश्चीय थी। मुख-गुहा में एक दंतधर होता है, जिसमें काइटिनी दाँतों की पंक्तियों से युक्त एक रेडुला होता है। एक या दो कंकत होते हैं। वृक्क और गोनड एक-एक होते हैं। जीवन-चक्र में समुद्री प्राणियों में ट्रोकोस्फ़ीयर तथा वेलिजर अवस्थाएँ होती हैं। ये समुद्री, अलवणजलीय और स्थलीय होते हैं।

आर्डर (a) **प्रोज़ोब्रैंकिएटा** (Prosobranchiata) (अथवा **स्ट्रैप्टोन्यूरा**, Streptoneura)—कवच और आच्छद होते हैं, इनमें मरोड़ पाया जाता है जिसके

द्वारा आंतरांग लूप एक आठ की आकृति में ऐंठ गया होता है। प्रावार-गुहा अग्रतः खुली होती है, कंकत हृदय के सामने होते हैं और गुदा सामने की ओर खुलती है। ये सब से आदिम गैस्ट्रोपोड होते हैं। प्रोज़ोब्रैंकिएटा से शेष दो आर्डर ओपिस्थोब्रैंकिएटा तथा पल्मोनैटा विकसित हुए हैं।

उप-आर्डर (i) **डायोटोकार्डिया** (Diotocardia) (अथवा ऐस्पिडोब्रैंकिएटा, Aspidobranchiata)—ये आदिम रूप होते हैं जिनमें अलिंद और वृक्क सामान्यतः युग्मित होते हैं, सामान्यतः दो कंकत होते हैं जिनमें गिल-पर्णकों की दो पंक्तियाँ होती हैं। इनमें से अधिकतर समुद्री होते हैं, उदाहरणतः **पॅटेला, ट्रोकस**।

उप-आर्डर (ii) **मॉनोटोकार्डिया** (Monotocardia) (अथवा **पेक्टिनिब्रैंकिएटा**, Pectinibranchiata)—हृदय में एक ही निलय होता है, कंकत अकेला होता है जिसमें गिल-पर्णकों की एक पंक्ति होती है, एक सुनिर्मित पिच्छाकार जलेक्षिका होती है। वृक्क केवल एक होता है। मरोड़ के बाद की दाहिनी दिशा का अलिंद, वृक्क और कंकत विलीन हो चुके हैं। गोनडों की वाहिनियाँ प्रावार-गुहा में बहुत आगे खुलती हैं, नर में एक सुविकसित शिश्न होता है, उदाहरण **पाइला, बक्साइनम, सिप्रीया, कॅरिनेरिया, टॉक्रनेला**।

आर्डर (b) **ओपिस्थोब्रैंकिएटा** (Opisthobranchiata)—ये उभयलिंगी होते हैं, वयस्क में आंतरांग कूवड़ के विमरोड़ (detorsion) की विविध अवस्थाएँ पाई जाती हैं जिससे कि देह के अंग द्विपार्श्वतः सममित हो जाते हैं, प्रावार-गुहा पश्च स्थिति में आ जाती है, द्विपार्श्वीय सममिति होने के बावजूद इनके वृक्क, अलिंद और कंकत अयुग्मित होते हैं। अलिंद प्रायः निलय के पीछे होता है। कवच ह्रासित होता अथवा भीतरी बन जाता अथवा होता ही नहीं है। इनमें एकल कंकत द्वारा जलीय श्वसन होता है, इस कंकत में विलीन हो जाने तथा उसके स्थान पर सहायक श्वसन गिल बने होने की प्रवृत्ति होती है, या फिर देह की सतह द्वारा ही जलीय श्वसन होता है। ये सब समुद्रवासी होते हैं।

उप-आर्डर (i) **टॅक्टिब्रैंकिएटा** (Tectibranchiata)—इनमें प्रायः एक कवच होता है हालाँकि यह ह्रासित हो सकता है या प्रावार द्वारा ढका हो सकता है, प्रावार-गुहा और कंकत विद्यमान होते हैं, इनमें एक जलेक्षिका होती है, उदाहरणतः **ऐप्लीसिया**।

उप-आर्डर (ii) **न्यूडिब्रैंकिएटा** (Nudibranchiata) समुद्री स्लग होते हैं। इनमें एक सम्पूर्ण विमरोड़ हो चुका है। कवच, प्रावार-गुहा और कंकत नहीं होते, जलेक्षिका नहीं होती, श्वसन सामान्य देह-सतह से होता है या परवर्ती गिलों के द्वारा जो सामान्यतः गुदा के चारों ओर होते हैं अथवा पृष्ठ सतह पर अथवा प्रावार के नीचे। इनके शरीर परवर्ती रूप में सममित हो गए हैं, उदाहरणतः **डोरिस, ईओलिस**।

आर्डर (c) **पल्मोनेटा** (Pulmonata) सफलतापूर्वक स्थलीय वातावरण में पहुँच गए हैं। ये उभयलिंगी होते हैं, वयस्कों में मरोड़ पाया जाता है जिसके साथ-साथ गुदा और प्रावार-गुहा की अग्र स्थिति हो जाती है किंतु तंत्रिका-तंत्र सममित बन

जाता है, अलिंद और वृक्क एक-एक होते हैं, इन प्राणियों में कवच होता है लेकिन आच्छद नहीं होता। शीर्ष पर दो जोड़ी स्पर्शक होते हैं। कंकत नहीं होते, श्वसन एक फेफड़े द्वारा होता है जो प्रावार का बना होता है, फेफड़े में एक संकुचनशील छिद्र होता है। उदाहरणतः **ऑन्किडियम, लेवीकौलिस, लाइमेक्स, प्लेनॉबिस।**

क्लास 4. **स्कैफ़ोपोडा** (Scaphopoda)—ये द्विपार्श्वतः सममित होते हैं और एक नलिकाकार कवच होता है, तथा प्रावार दोनों सिरों पर खुला होता है। शीर्ष पर अनेक परिग्राही स्पर्शक होते हैं, एक रेडुला होता है, पद ह्रासित होता है और खोद कर घुसने के काम आता है, कंकत नहीं होते, परिसंचरण-तंत्र मूलांगी होता है। लिंग पृथक् होते हैं, ये मिट्टी में घुसने वाले समुद्री मोलस्क होते हैं, उदाहरणतः **डेन्टेलियम।**

क्लास 5. **लैमेलिब्रैंकिएटा** (Lamellibranchiata) (अथवा पीलेसिपोडा, Pelecypoda)—द्विपार्श्वतः सममित, देह पार्श्वों से संपीडित और एक प्रावार में बंद होता है जिसमें दो बराबर आकार की पालियाँ होती हैं, प्रावार एक द्विकपाटी कवच का स्राव करता है, दोनों कवच-कपाट पृष्ठतः जुड़े होते हैं। शीर्ष और उसके साथ में स्पर्शक, आँखें तथा रेडुला पूरी तरह समाप्त हो चुके हैं, एक फानाकार अधर पद होता है। दो बहुत बड़े कंकत प्रावार-गुहा में पाए जाते हैं, इनके सिलिया आहार एकत्र करने के वास्ते होते हैं। हर पार्श्व के प्रमस्तिष्क एवं पार्श्व गैंग्लिया एक साथ हो जाते हैं। लिंग प्रायः अलग-अलग होते हैं और समुद्री उदाहरणों में ट्रोकोस्फ़ीयर तथा वेलिजर लार्वा होते हैं। इनमें समुद्री, अलवणजलीय तथा स्थलीय प्राणी आते हैं।

आर्डर (a) **प्रोटोब्रैंकिएटा** (Protobranchiata)—कंकत वलित नहीं होते बल्कि पर-सरीखे होते हैं जिनमें बिना दोहरे मुड़े हुए गिल सूत्रों की दो पंक्तियाँ होती हैं। पद में एक चपटा रेंगने वाला तलवा होता है, उदाहरणतः **न्युकुला।**

आर्डर (b) **फ़िलिब्रैंकिएटा** (Filibranchiata)—कंकतों में मुड़कर दोहरे हो गए हुए V की आकृति के गिल-सूत्र होते हैं जो केवल अंतरासिलियरी संधियों द्वारा जुड़े रहते हैं, अंतरासूत्री संधियाँ या तो नहीं होतीं या रक्त-वाहिका रहित होती हैं; उदाहरणतः **मिटिलस, पेक्टेन।**

आर्डर (c) **यूलैमेलिब्रैंकिएटा** (Eulamellibranchiata)—कंकत टोकरी-जैसे होते हैं जिनमें मुड़कर दोहरे हो गए गिल-सूत्र वाहिकायुक्त अंतरासूत्री एवं अन्तरा-पटलिका संधियों द्वारा जुड़े होते हैं, उदाहरणतः **लैमेलिडेन्स, ऐनोडॉन्टा, सॉलेन, एन्सिस, ऑस्ट्रीया, टेरेडो, पिंक्टैडा।**

आर्डर (d) **सेप्टिब्रैंकिएटा** (Septibranchiata)—गिल अपविकसित हो चुके हैं और रूपांतरित होकर एक जोड़ी पेशीय, पम्पनकारी पट बन गये हैं जो हर पार्श्व में अन्तर्वाही और बहिर्वाही साइफ़नों के बीच में पड़े होते हैं और ये अग्र अभिवर्तनी पेशी से लेकर साइफ़नों को पृथक् करने वाले बिन्दु तक फैले होते हैं। प्रावार ही मात्र श्वसन-अंग होता है, उदाहरणतः **पोरोमाया, कस्पिडेरिया।**

क्लास 6. **सिफ़लोपोडा** (Cephalopoda) अथवा **साइफ़ोनोपोडा** (Siphonopoda)—ये द्विपार्श्वतः सममित होते हैं और इनमें सुनिर्मित शीर्ष तथा बड़ी सम्मिश्र आँखें होती हैं जिनका कॉर्निया, लेन्स तथा रेटिना कशेरुकियों की तरह के होते हैं। आँखें खाल से उत्पन्न हुई होती हैं (कशेरुकियों की आँखें मस्तिष्क से बनती हैं)। पद के अग्र भाग से परिग्राही स्पर्शक अथवा भुजाएँ बन जाती हैं जो शीर्ष को घेरती हुई बनी होती हैं, पद के शेष भाग से एक पेशीय कीप अथवा साइफ़न बना होता है जो प्रावार-गुहा में से जल को बाहर निकाल फेंकने के काम आता है, प्रावार भी बहुत ज्यादा पेशीय होता है। मुख में शृंगीय जबड़े और एक रेडुला होता है। कंकत और वृक्क दो-दो या चार-चार होते हैं। कवच बाहरी, भीतरी अथवा अविद्यमान हो सकता है, एक भीतरी कार्टिलेजीय कंकाल होता है। परिवर्धन सीधा होता है। ये सभी समुद्रवासी होते हैं, और इनमें से अधिकतर में तैरने के लिए अच्छी तरह अनुकूलन पाया जाता है।

आर्डर (a) **डाइब्रैंकिएटा** (Dibranchiata)—इनमें चूषकों से युक्त 8 या 10 भुजाएँ होती हैं, कीप एक नलिका बन जाती है। कवच भीतरी होता है जिसे प्रावार ढके रहता है। इनमें दो कंकत, दो वृक्क और दो अलिंद होते हैं, इनमें एक मसि-ग्रन्थि (ink gland) होती है तथा वर्णकधर होते हैं।

उप-आर्डर (i) **डेकापोडा** (Decapoda)—इनमें 10 भुजाएँ होती हैं जिनमें वृन्तयुक्त चूषक बने होते हैं, कवच भीतरी होता है, सीलोम सुविकसित, उदाहरणतः **सीपिया, लोलाइगो, स्पाइरुला**।

उप-आर्डर (ii) **ऑक्टोपोडा** (Octopoda)—इनमें अवृन्त चूषकों से युक्त 8 भुजाएँ होती हैं, भीतरी कवच होता है अथवा नहीं होता, सीलोम ह्रासित, उदाहरणतः **ऑक्टोपस, आर्गोनौटा**।

आर्डर (b) **टेट्राब्रैंकिएटा** (Tetrabranchiata)—कवच बाहरी और कैल्सियमी होता है। पद से, स्पर्शकों से युक्त पालियां तथा दो अर्धांशों के रूप में कीप बनी होती है। चार कंकत होते हैं, चार वृक्क और चार अलिंद। मसि-ग्रन्थि नहीं होती तथा वर्णकधर अविद्यमान होते हैं, उदाहरणतः **नॉटिलस**।

मोलस्का के प्ररूप

1. **काइटॉन** (*Chiton*)—यह समुद्रवासी होता है तथा कवचों और चट्टानों पर चिपका हुआ रहता है, लेकिन यह लिपटता हुआ एक गेंद के रूप में गोल भी हो जा सकता है। पश्चिमी द्वीप समूह में लोग इसे खाने में इस्तेमाल करते हैं। शरीर दीर्घवृत्ताकार होता है जिसके ऊपर पृष्ठतः एक मोटा, मांसल प्रावार चढ़ा होता है और इस प्रावार में कैल्सियमी कंटिकाएँ होती हैं। पृष्ठ दिशा में एक पंक्ति में व्यवस्थित अतिव्यापी प्लेटों का कवच होता है जो अंशतः प्रावार में गड़ी होती है। अधर दिशा में एक बड़ा चपटा पद होता है जिसके द्वारा चलना और चट्टानों पर चिपकना संभव होता है, पद को चारों ओर से घेरती हुई एक प्रावार खाँच अथवा प्रावार-गुहा होती है

जिसमें कंकत होते हैं । पद के अग्र सिरे पर एक छोटा शीर्ष होता है जिसमें रेडुला से युक्त एक मुख होता है, पश्च सिरे पर एक मध्य गुदा प्रावार-खाँच में बनी होती है । प्रावार-खाँच में गोनडों तथा वृक्कों के छिद्र होते हैं । तंत्रिका-तंत्र द्विपार्श्वतः सममित
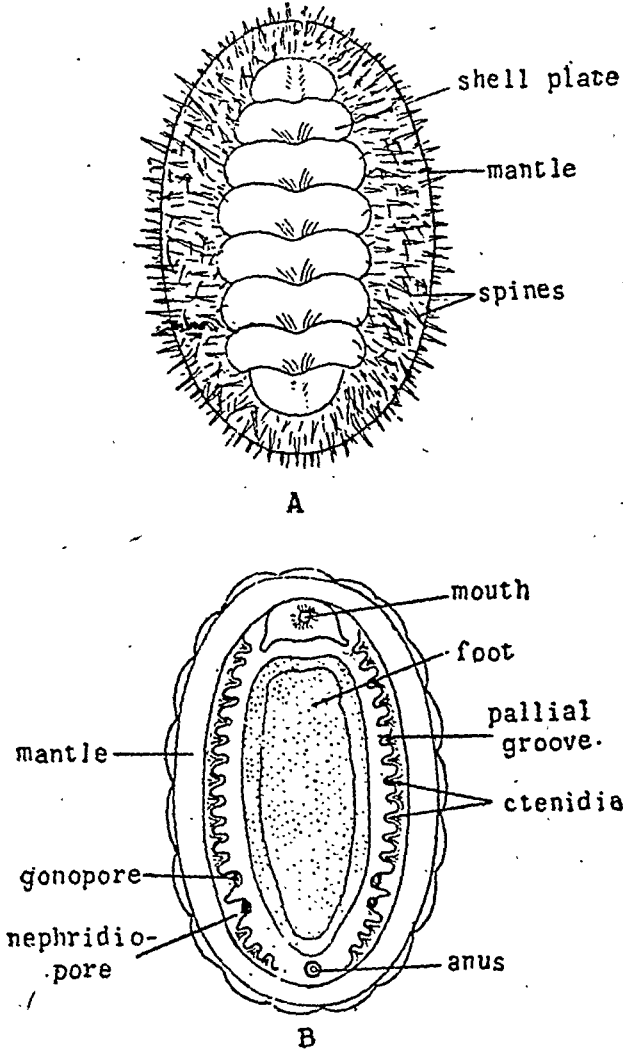
चित्र 490. **काइटॉन** । A—पृष्ठ दृश्य; B—अधर दृश्य ।
Shell plate, कवच-प्लेट; mantle, प्रावार; spines, काँटे; mouth, मुख; foot, पद; pallial groove, प्रावार-खाँच; ctenidia, कंकत; anus, गुदा; gonopore, जनन-छिद्र; nephridiopore, वृक्कछिद्र ।

होता है और उसमें एक परिग्रासिका वलय होता है तथा दो जोड़ी अनुदैर्घ्य तंत्रिका-रज्जुएँ होती हैं, कोई निश्चित गैंग्लिया नहीं होते । काइटॉन शाकाहारी होते हैं जो चट्टानों से शैवालों को खुरच-खुरच कर खाते हैं । ये पृथक-लिंगी होते हैं और संसार

के हर भाग में पाये जाते हैं। इनका आकार $\frac{1}{2}$ इंच से लेकर 8 इंच तक होता है जैसे कि विराट **क्रिप्टोकाइटॉन** (*Cryptochiton*)।

2. **पैटेला** (*Patella*) (लिम्पेट) एक वास्तविक समुद्री लिम्पेट है। यह ज्वार चिह्नों के वीच में खुले समुद्रतट पर पाया जाता है। यह चट्टानी समुद्रतट पर रहने के जीवन के लिए अनुकूलित हो गया है—इन चट्टानों पर यह अपनी अधर सतह के द्वारा कस कर चिपका रहता है। इसमें मरोड़ पाया जाता है लेकिन कवच शंक्वाकार होता है तथा उसमें आच्छद नहीं होता। जन्तु अपने कवच में से कभी वाहर को नहीं आता, पद धरातल पर चिपका रहता है। शीर्ष पर एक जोड़ी स्पर्शक और आँखें होती हैं, आँखें गढ़े-जैसी होती हैं जिनमें वर्णांकित अस्तर वना होता है। पथरीले समुद्रतट पर रेंगने के वास्ते एक वड़ा अधर पद होता है। पद के चारों ओर एक घोड़े की नालरूपी प्रावार पेशी होती है जिसके द्वारा जन्तु चट्टानों से चिपका रहता है। कवच के नीचे एक वर्णांकित प्रावार होता है, प्रावार-गुहा केवल अग्र भाग में होती है, किन्तु एक परवर्ती प्रावार-गुहा प्रावार और पद के चारों ओर घूमती हुई वनी
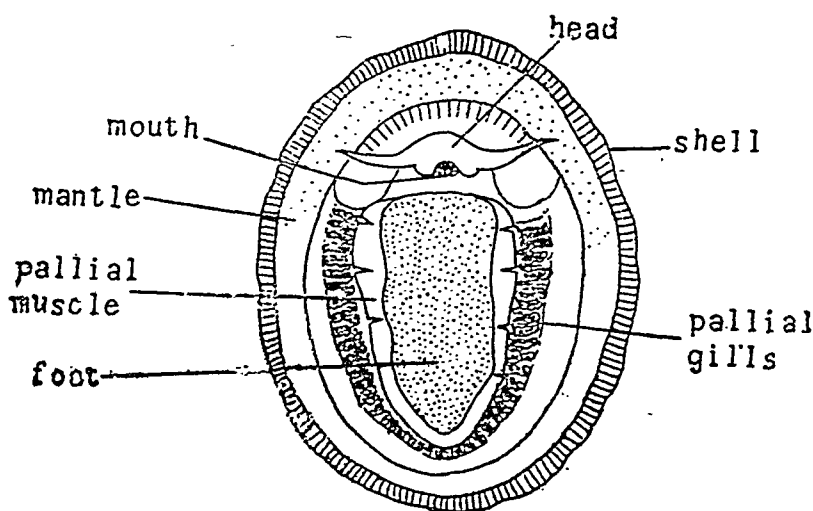
चित्र 491. **पैटेला** (अधर दृश्य)।

Head, शीर्ष; shell, कवच; pallial gills, प्रावार-गिल; mouth, मुख; mantle, प्रावार; pallial muscle, प्रावार पेशी; foot, पद।

होती है; इस गुहा में शृंखलावद्ध रूप में प्रावार के वलन वने होते हैं जिन्हें **प्रावार-गिल** अथवा **द्वितीयक गिल** कहते हैं जो शरीर के हर पार्श्व में प्रावार-गुहा में को निकले होते हैं, वास्तविक मूल कंकत विलीन हो चुके हैं—उनके केवल कुछ अवशेष ही वाकी हैं। अंतर्वाही जलधारा प्रावार-खाँचों में आगे से प्रविष्ट होती तथा वहिर्वाही धारा पीछे से वाहर निकल जाती है। एक लम्वा रेडुला होता है जिनके द्वारा यह लिम्पेट चट्टानों से शेवालों को खुरच लेता है, लेकिन यह आहार की तलाश में वाहर निकल जाता और फिर अपने मूल स्थान पर लौट आता है। आहार-नाल

कुण्डलित होती है जिससे कि गुदा शीर्ष के पीछे और थोड़ी-सी दाहिनी ओर को पड़ी होती है। एक अकेला अलिंद होता है, दो वृक्क होते हैं जिनमें से दाहिना वृक्क बाएँ वृक्क से अधिक बड़ा होता है, इसमें से होकर शुक्राणु भी गुजरते हैं। अंडे एक-एक करके दिए जाते हैं, निषेचन बाहर समुद्र के जल में होता है। एक प्रतिरूपी ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा होता है जो बढ़कर वेलिजर बन जाता है।

3. कैरनिरिया (*Carinaria*)—पृष्ठतः स्थित एक छोटा पारदर्शी कवच होता है, यह शंक्वाकार और शिखर पर कुण्डलित होता है, यह शरीर के केवल थोड़े से भाग को ढके रहता है। शरीर लम्बा और मस्सों से युक्त होता है। शीर्ष सुविकसित होता है जिस पर एक जोड़ी स्पर्शक होते हैं जिनके पीछे दो आँखें होती हैं। अधरतः एक बड़ा पेशीय पद होता है जिसमें एक फ़िन-जैसा अग्रपाद (propodium) अथवा अग्र पालि होती है जिसमें एक चूषक होता है; और एक बड़ा पश्चपाद (postpodium) अथवा पश्च पालि होती है। अग्र पालि तथा चूषक तैरने के काम आते हैं। कवच के नीचे एक प्रावार-गुहा होती है जिसमें एक गुदा खुलती है, एक अकेला कंकत होता है जिसमें एक पंक्ति में गिल-पर्णक बने होते हैं, यह गिल अंशतः कवच
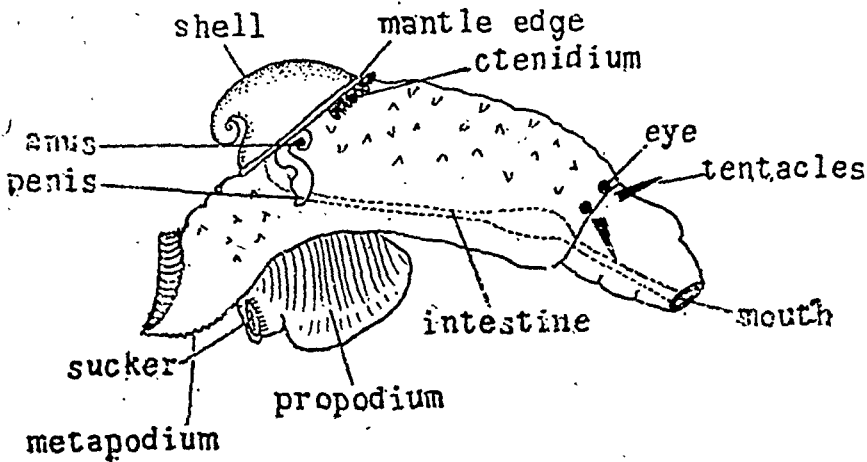
चित्र 492. कैरिनेरिया।

Mouth, मुख; tentacles, स्पर्शक; eye, आँख; ctenidium, कंकत; mantle edge, प्रावार सीमांत; shell, कवच; anus, गुदा; penis, शिश्न; sucker, चूषक; metapodium, पश्चपाद; propodium, अग्रपाद; intestine अंतड़ी।

से बाहर को निकला होता है, एक अकेली पिच्छाकार जलेक्षिका होती है, हृदय में एक अलिंद होता है। नर में सुविकसित शिश्न होता है। जन्तु तलप्लावी होता है और यह ऊपर से नीचे उल्टा होकर अपने संपीडित फ़िन-जैसे पद से तैरता रहता है। यह एक तीव्र तैरने वाला मांसाहारी परभक्षी है जो मेडुसाओं, क्रस्टेशियनों तथा छोटी मछलियों को खाता है।

4. **टर्बिनेला पाइरम** (*Turbinella pyrum*) (शंख)—यह भारत के समुद्र-तट पर उथले पानी में पाया जाता है। इसमें एक भारी कवच होता है जो बीच से मोटा और दोनों किनारों पर नुकीला होता है, एक पतला आच्छद होता है। कवच सर्पिलतः कुण्डलित होता है, सर्पिल-शिखर छोटा होता है, देह-चक्र बड़ा और एक **साइफ़नी नलिका** के रूप में जारी रहता है, देह-चक्र का छिद्र एक लम्बा छिद्र होता है। कभी-कभी यह छिद्र बाईं ओर होता है और इस प्रकार के कवचों को **वामावर्त** (sinistral) कहते हैं, ऐसे शंखों को भारत में बहुत शुभ माना जाता है और उन्हें पूजा में इस्तेमाल किया जाता है। चक्र एक वलित उभार बनी कॉल्युमेला के चारों ओर एक सर्पिल ज़ीने की तरह घूमते जाते हैं। जन्तु में एक बड़ा, चपटा, अधर पद होता है जो चलने-फिरने तथा चिपकने के काम आता है। पद के समीप दाईं ओर कॉल्युमेला-

चित्र 493. **टर्बिनेला पाइरम।**
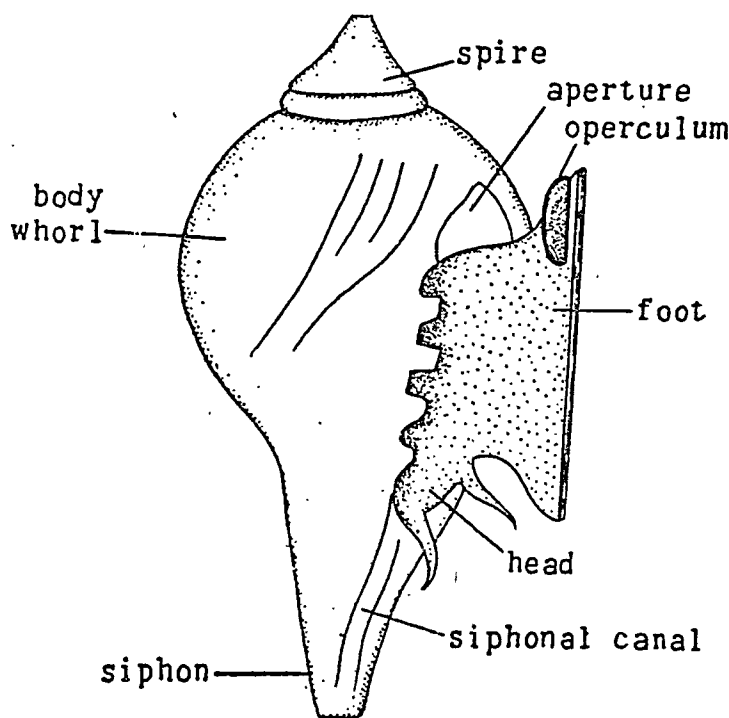
Spire, सर्पिल शिखर; aperture, छिद्र; operculum, आच्छद; foot, पद; head, शीर्ष; siphonal canal, साइफ़नी नलिका; siphon, साइफ़न, body whorl, शरीर-चक्र।

पेशी होती है। अग्र शीर्ष पर एक जोड़ी त्रिभुजाकार स्पर्शक होते हैं जिन पर पार्श्वतः वर्णकित आँखें बनी होती हैं। स्पर्शकों के नीचे एक लम्बी शुण्डिका आगे को निकली होती है जिसके अंतिम सिरे पर एक त्रिभुजाकार मुख होता है। मुख के भीतर एक रेडुला होता है जिसमें हर पंक्ति का केन्द्रीय दाँत त्रिवर्धी (tricuspid) होता है। नर में शिश्न शीर्ष की दाहिनी ओर होता है। पृष्ठतः एक आंतरांग संहति होती है

जो प्रावार से ढकी रहती है। कवच के छिद्र पर प्रावार एक मोटा कॉलर बना लेता है। साइफ़नी नलिका का अस्तर बनाने वाला एक नलिकाकार साइफ़न बना होता है जिसमें से जल प्रावार-गुहा के भीतर को खींचा जाता है। प्रावार में एक अकेला कंकत होता है और उसके समीप ही एक लम्बी जलेक्षिका होती है जिसमें पर्णकों की दो पंक्तियाँ होती हैं।

5. **ऐप्लीसिया** (*Aplysia*) अथवा **टेथिस** (*Tethys*) (समुद्री शशक)—शीर्ष बड़ा होता है जिस पर दो जोड़ी स्पर्शक होते हैं, अगले स्पर्शक शशक के कान
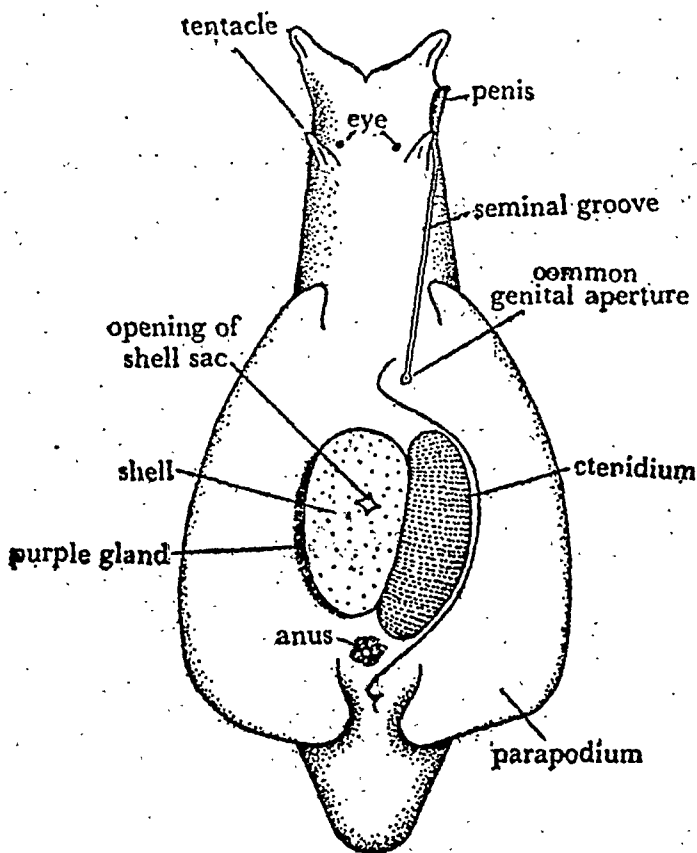
चित्र 494. **ऐप्लीसिया**।

Tentacle, स्पर्शक ; eye, आँख ; penis, शिश्न ; seminal groove, शुक्र खाँच ; common genital aperture, सम्मिलित जनन-छिद्र ; ctenidium, कंकत ; parapodium, परापाद; anus, गुदा ; purple gland, बैंगनी ग्रन्थि ; shell, कवच ; opening of shell sac, कवच-कोश का छिद्र ।

जैसे दिखाई पड़ते हैं। पश्च स्पर्शक छोटे होते हैं, वे गंधग्राही होते हैं तथा हर एक के आधार पर एक आँख होती है। एक लम्बा अधर पद होता है। पद के पार्श्वों से,

पिछले आधे हिस्से में दो ऊपर को उभरे हुए पल्ले अथवा **परापाद** निकले होते हैं जो तैरने में काम आते हैं। प्रावार मुड़कर दोहरा हो जाता है जो छोटे शृंगीय डिस्क-जैसे कवच को लगभग पूरी तरह से ढक लेता है। प्रावार-गुहा दाहिनी ओर को होती है जिसमें गुदा खुलती है और उसमें एक पीछे को रुख किये एक कंकत पड़ा होता है। प्रावार में एककोशिक ग्रन्थियां होती हैं जिनसे जन्तु के छेड़े-छुए जाने पर एक वर्णनी रंग बाहर निकल आता है। यह रेंगता और समुद्री घास पर आहार करता है, इस समुद्री घास को वह क्रॉप के अस्तर में बनी कांटों से युक्त शृंगीय प्लेटों द्वारा चूरा करता है। जब ये बच्चे होते हैं तो लाल रंग के होते हैं और लाल शैवाल के ऊपर रहते पाये जाते हैं लेकिन वयस्कों का रंग जैतूनी हरा हो जाता है और वे हरे शैवालों को खाते हैं। **ऐप्लीसिया** उभयलिंगी होता है, इसमें अंडों और शुक्राणुओं के लिए एक ही वाहिनी और एक ही जनन-छिद्र होता है, किन्तु एक शुक्र-खाँच (seminal groove) शीर्ष की तरफ जाती है जिससे कि केवल पर-निषेचन ही होता है।

ऐप्लीसिया में मरोड़ का पूरा उलट जाना (विमरोड़, detorsion) पाया जाता है जिसमें से कंकत पीछे को रुख किये रहता है; आंतरांग लूप का ऐंठन पूरी तरह खुल जाता है और कवच ह्रासित होता है।

6. **डोरिस** (*Doris*) (समुद्री नींबू)—इसमें विमरोड़ पूरी तरह हो चुका है और प्रावार-गुहा तथा कंकत विलीन हो गये है। शरीर अंडाकार तथा छोटा होता है यह नीचे को दबा-सा होता है लेकिन पृष्ठ सतह उत्तल होती है। शरीर पर एक
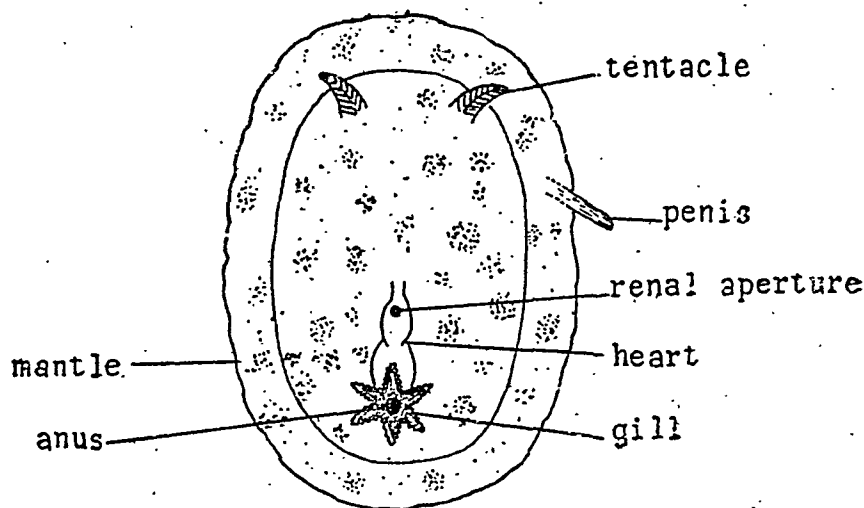
चित्र 495. **डोरिस**

Tentacle, स्पर्शक ; penis, शिश्न ; renal aperture, वृक्क-छिद्र ; heart, हृदय ; gill, गिल; anus, गुदा ; mantle, प्रावार ।

कड़ा वर्णांकित प्रावार ढका होता है जिसमें कैल्सियमी कंटिकाएँ और पृष्ठ-गुलिकाएँ बनी होती हैं। कवच नहीं होता। पद चौड़ा होता है। सामने की ओर एक जोड़ी

छोटे स्पर्शक होते हैं। गुदा मध्य-पृष्ठीय तथा पीछे की ओर होती है, तथा इसके समीप एक हृदय और एक मध्य वृक्क-छिद्र होता है। यह उभयलिंगी होता है, शिश्न और जनन-छिद्र असममित होते तथा दाहिनी ओर पड़े होते हैं, बस यही दो अपवाद हैं अन्यथा पूर्ण द्विपार्श्वीय सममिति दिखाई पड़ती है। कंकत नहीं होता बल्कि गुदा को घेरे हुए **सहायक गिलों** (accessory gills) अथवा सीरेटा (cerata) का एक गुच्छा होता है, ये सिकोड़ लिये जा सकते हैं। यह हर देश में पाया जाता और पपड़ी बनाने वाले स्पंजों पर आहार करता है।

7. **ऑन्किडियम** (*Onchidium*)—शरीर लम्बा और पृष्ठतः उत्तल होता है। एक छोटे शीर्ष पर एक जोड़ी स्पर्शक होते हैं जिनके अन्तिम सिरों पर आँखें होती हैं। एक मोटा प्रावार पीठ को ढके रहता है, इसके ऊपर अनेक मस्से बने होते हैं। प्रावार-गुहा नहीं होती और न ही कंकत होते हैं किन्तु प्रावार एक फेफड़ा बना लेता है जिसके भीतर एक छोटा संकुचनशील छिद्र होता है जिसे **वातमुख** (pneumostome) कहते हैं। यह उभयलिंगी होता है, मादा-छिद्र देह के पश्च सिरे पर होता है लेकिन नर-छिद्र दाहिनी ओर दाहिने स्पर्शक के नीचे होता है। गुदा पश्चतः अन्तस्थ होती है। **ऑन्किडियम** हिंद महासागर में उथले जल में पाया जाता है, यह जलस्थलचर होता है जो एक ऐसा स्थलीय पल्मोनेट है जिसने पुनः समुद्री आवास प्राप्त कर लिया है।
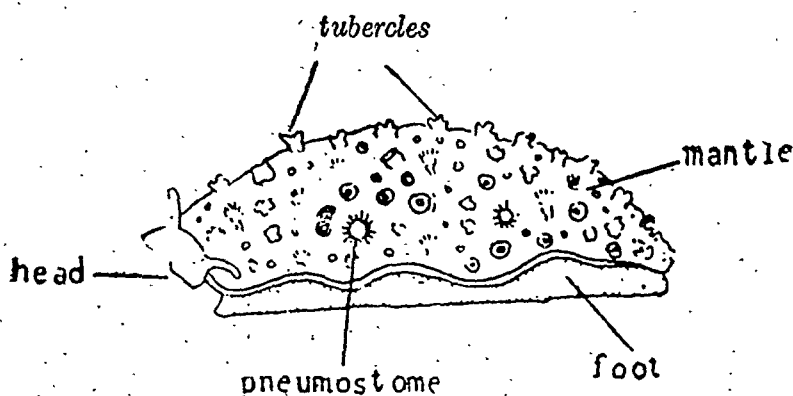
चित्र 496. **ऑन्किडियम**।

Head, शीर्ष ; tubercles, गुलिकाएँ ; mantle, प्रावार ; foot, पद ; pneumostome, वातमुख।

8. **लेवीकौलिस** (*Laevicaullis*) (पुराना नाम *Vaginulus*), एक स्लग—शरीर लम्बा-लम्बा होता है, लम्बाई 5 cm. तथा चौड़ाई 2 cm., और पश्च सिरा गोलाई लिये हुए होता है। रंग धूसर होता है जिसमें मध्य-पृष्ठतः एक रेखा बनी होती है। एक स्पष्ट शीर्ष होता है जिसमें बाहर को निकली हुई एक **मुख-संहति** होती है और इस संहति में एक मुख और एक रेडुला होता है; मुख-संहति नीचे को सिकोड़ ली जा सकती है। शीर्ष पर दो जोड़ी मोटे संकुचनशील स्पर्शक होते हैं,

पहली जोड़ी स्पर्शक ज्यादा बड़े होते हैं और उनके अन्तिम सिरों पर आँखें बनी होती हैं। पल्मोनेटा सफलतापूर्वक स्थलीय वातावरण में पहुँच चुके हैं और थल जीवन के अनुकूलन की दिशा में श्वसन अंगों में एक आमूल परिवर्तन हो चुका है। कंकत विलीन हो गए हैं और अत्यधिक वाहिकायित प्रावार पूरे शरीर को पृष्ठ दिशा पर ढके रहता है, इसमें बहुत छोटी गुलिकाएँ होती हैं, यह एक **फेफड़ा** अथवा फुपफुस कोश बनाता है जो आगे दाहिनी दिशा में पड़ा होता है, फेफड़े से एक पार्श्व वाहिनी निकलती है जो पश्च सिरे के समीप गुदा के ऊपर को स्थित एक छिद्र अथवा **वातमुख** द्वारा बाहर को खुलती है, वातमुख तालबद्ध रूप में सिकुड़ता और फैलता रहता है। अधर दिशा पर एक लम्बा, संकरा, चपटा पट होता है जो एक गहरी खाई द्वारा शरीर से पृथक् होता है; पश्चतः पद प्रावार से भी पीछे को निकला हो सकता है।

यह जंतु उभयलिंगी होता है जिसमें नर जनन-छिद्र दूसरे दाहिने स्पर्शक के नीचे बना होता है, और एक मादा छिद्र दाहिनी ओर शरीर के अधबीच के समीप
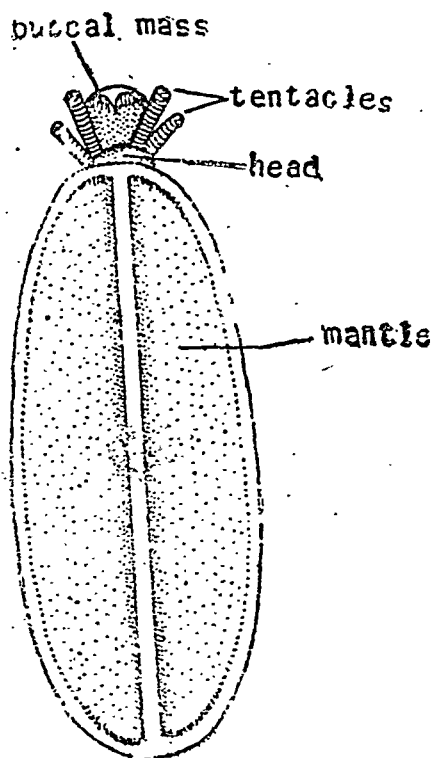
चित्र 497. **लेवीकॉलिस आल्टे।**
Buccal mass, मुख-संहति; tentacles, स्पर्शक; head, शीर्ष; mantle, प्रावार।

प्रावार के नीचे बना होता है। कवच नहीं होता, हालाँकि अधिकतर स्लगों में एक छोटा अवशेषी कवच होता है जो प्रावार के नीचे छिपा रहता है। **लेवीकॉलिस आल्टे**

(*Laevicollis alte*) सारे भारत में नम स्थानों पर पत्थरों के नीचे अथवा जमीन में पाया जाता है। यह रात को वनस्पति का आहार करता और बागों में बहुत नुकसान पहुँचाता है।

9. **डेंटेलियम** (*Dentalium*) (गजदंत कवच)—यह सभी समुद्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। एक नलिकाकार और थोड़ा-सा वक्र कवच होता है जो दोनों सिरों पर खुला होता है। अधिकतर स्पीशीज़ में कवच 2 इंच लंबा होता है लेकिन कुछ फॉसिल स्पीशीज़ में यह 10 इंच लंबा होता है। कवच सफ़ेद अथवा कुछ-कुछ
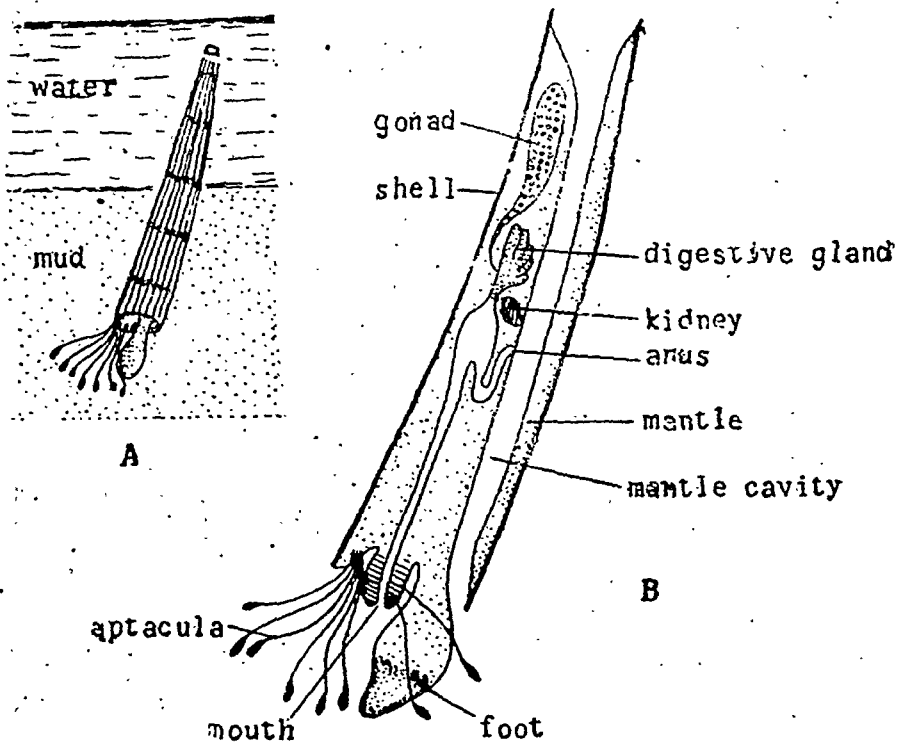
चित्र 498. A—**डेंटेलियम** ; B—भीतरी रचना।

Water, जल; mud, कीचड़; gonad, गोनड; shell, कवच; digestive gland; पाचन-ग्रन्थि; kidney, वृक्क; anus, गुदा; mantle, प्रावार; mantle cavity, प्रावार-गुहा; captacula, कैप्टैक्यूला; mouth, मुख; foot, पद।

पीला-सा होता है, लेकिन पूर्वी द्वीपसमूह में पाई जाने वाली एक स्पीशीज़ में यह एक चटकीले हरे रंग का होता है। कवच के भीतर एक नलिकाकार प्रावार तथा एक पतला शरीर बंद होते हैं। प्रावार-गुहा अधर दिशा में होती और पूरे कवच में से

गुजरती जाती है। प्रावार श्वसनीय होता है तथा कंकत नहीं होते। कवच के बृहत्तर छिद्र में से नुकीला पद बाहर को निकला होता है जो खोदने में काम आता है। प्राणी अंशतः समुद्री कीचड़ में गड़ा रहता है और शिखर पर बना छिद्र रेत की सतह के ऊपर जल में उभरा रहता है। इसी छिद्र से जल भीतर आता और बाहर निकल जाता है। शीर्ष ह्रासित और शुंडिका-सरीखा होता है, जिसमें एक मुख और रेडुला बने होते हैं। शीर्ष के ऊपर से अनेक पतले सिलियायित, संकुचनशील सूत्र होते हैं जिनके अन्तिम सिरे चूषक-जैसे फैले हुए होते हैं, इन्हें **कैप्टैक्यूला** (captacula) कहते हैं, ये संवेदी होते और आहार पकड़ने के काम में आते हैं। आहार में फोरैमिनिफ़ेरा तथा सूक्ष्मदर्शीय जीव शामिल हैं, कैप्टैक्यूला आहार को पकड़ लेते और उसे मुख में ले आते हैं।

10. **पेक्टेन** (*Pecten*) (स्कैलप)—यह एक द्विकपाटी है लेकिन दोनों कवच-कपाट छोटे-बड़े होते हैं, दाहिना कपाट ज्यादा बड़ा और अधिक उत्तल होता है, जंतु इसी कपाट के सहारे पड़ा होता है। कवच-कपाट बहुत चटकीले रंग के होते हैं, इनमें लंबी धारियाँ बनी होती हैं और अरीय रूप में व्यवस्थित उभरी रेखाएँ बनी होती हैं, हर कपाट ऊपर की (हिंज वाली) दिशा में एक पंख के रूप में फैला होता है। दो कवच-कपाटों के बीच में अनुप्रस्थशः फैली हुई एक शक्तिशाली अभिवर्तनी पेशी होती है जो दो भागों की बनी होती है जिनमें ऐच्छिक और अनैच्छिक तंतु होते हैं, यह पेशी पश्च अभिवर्तनी पेशी का प्रतिदर्श है, इसके ऐच्छिक तंतु कवच-कपाटों को तीव्रता से बन्द कर लेते हैं, लेकिन जारी रहने वाला संकुचन तथा बन्द करना अनैच्छिक तंतुओं द्वारा होता है। कवच-कपाटों के अस्तर के रूप में एक प्रावार होता है, प्रावार का सीमाँत मोटा होकर एक वीलम-वलन बनाता है तथा उसमें संवेदी स्पर्शक होते हैं। प्रावार के सीमांत के सहारे एक पंक्ति में जटिल रचना वाली सवृंत आँखें होती हैं जो प्रकाश के लिए संवेदी होती हैं, आँखें नीली होती हैं और हर एक में एक लेन्स, एक कॉर्निया तथा एक रेटिना होती है। दो बड़े बालचन्द्राकार कंकत होते हैं जो समांतर गिल-सूत्रों के बने होते हैं, ये गिल-सूत्र V की आकृति के होते हैं, इनमें ऊनकों के अन्तरापटलिका संयोजन होते हैं, अंतरासूत्री संयोजन नहीं होते बल्कि केवल सिलिया के समूह होते हैं। पद बहुत ह्रासित होता है और चलन सम्बन्धी नहीं होता यह बाहरी कणों को भीतर आने से रोकता है। **पेक्टेन** उभयलिंगी होता है, अंडाशय गुलाबी होता है और उसी से जारी रहता हुआ एक सफेदी लिए हुए वृषण होता है।

पेक्टेन उथले समुद्र में कीचड़ में रहता है, लेकिन अधिकतर द्विपाटियों से भिन्न यह सक्रिय तैरने वाला है, और कीचड़ में नहीं घुसता जाता क्योंकि पद बहुत ह्रासित होता है। प्रायः यह पृष्ठतः पंख की अगल-बगल से पानी के जेट बलपूर्वक निकालता हुआ तैरता है और यह अधर बार्डर को सामने को रखता हुआ बढ़ता जाता है, यह जेट-नोदन (jet-propulsion) की एक मिसाल है। जब जंतु चौंक जाता है तब यह तेजी से अपने कवच-कपाटों को अपनी अभिवर्तनी पेशी के द्वारा खोलता और

बंद करता हुआ तैरता जाता है जिससे कि जल उसकी अधर दिशा से बाहर को निकल जाता है और यह पंखों को आगे को रखता हुआ तैरता जाता है।

A

B
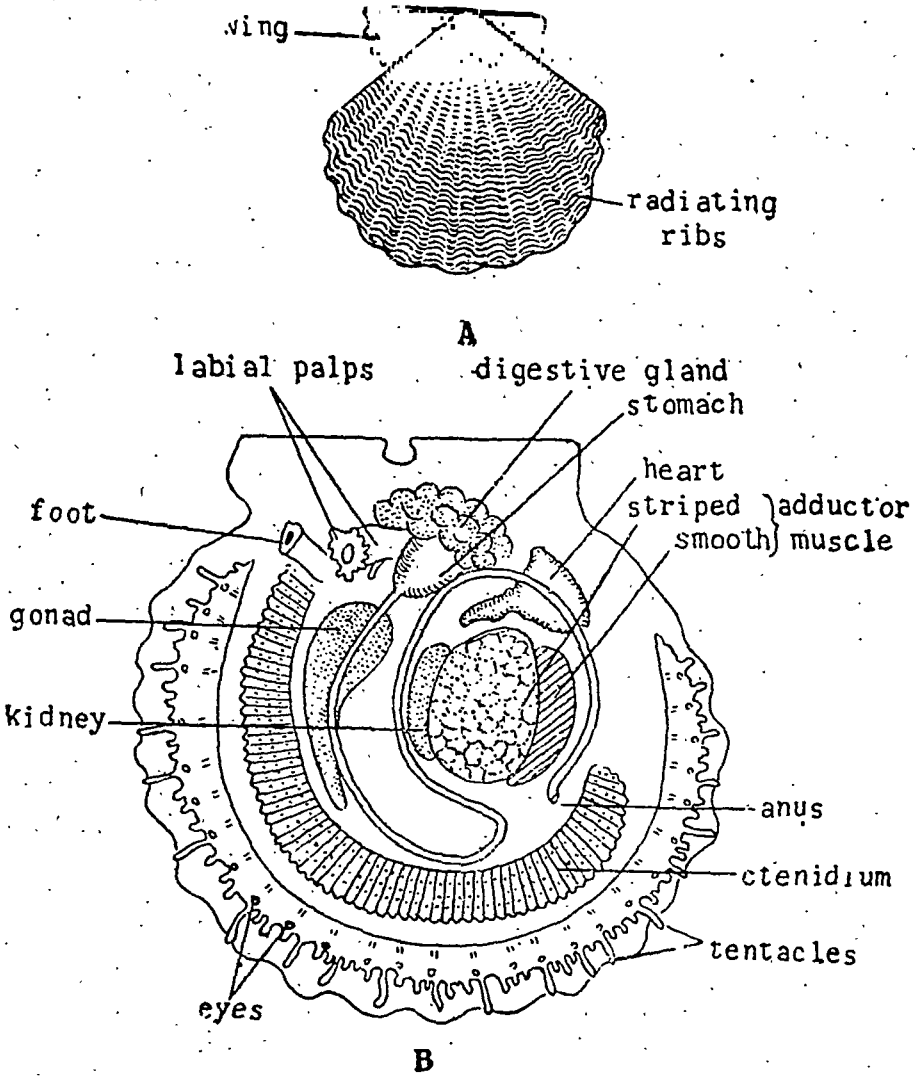
चित्र 499. **पेक्टेन** । A- कवच-कपाट ; B- बायाँ कवच-कपाट और प्रावार-पालि हटा देने के बाद भीतरी संरचना ।
Radiating ribs, अरीय उभरी धारियाँ ; labial palps, लेबियल पैल्प; foot, पद ; gonad, गोनड ; kidney, वृक्क; eyes, आँखें ; tentacles, स्पर्शक ; ctenidium, कंकत; anus, गुदा ; striped, रेखित ; smooth, अरेखित ; adductor muscle, अभिवर्तनी पेशी ; heart, हृदय ; stomach, जठर ; digestive gland, पाचन-ग्रन्थि ।

11. **मिटिलस** (*Mytilus*) (समुद्री-मसेल)—यह विश्व भर में पाई जाने वाली जीनस है जो ज्वार-चिन्हों के बीच में बहुत ज्यादा संख्या में चट्टानों; लकड़ी तथा

समूहों में एक-दूसरे से चिपके रहते हैं। कवच लम्बा, आगे से संकरा और पीछे से चौड़ा होता है, दोनों कवच-कपाट बराबर आकार के होते हैं और पृष्ठीय अग्र भाग में एक हिंज-स्नायु से जुड़े होते हैं, अम्बो भी अग्र और पृष्ठीय होता है। कवच के भीतर दो प्रावार-पालियाँ होती हैं जो समूची पृष्ठ दिशा में जुड़ी होती हैं, पश्चतः वे एक **बहिर्वाही साइफ़न** बनाती हैं, लेकिन अधरतः वे पृथक् होते हैं, और उन दोनों के बीच में एक बड़ी गुहा होती है जिसमें से होकर जल प्रावार-गुहा में प्रविष्ट होता है, कोई वास्तविक अन्तर्वाही साइफ़न नहीं होता। कवच-कपाटों के बीच में एक बड़ी पश्च अभिवर्तनी पेशी होती है और एक छोटी अग्र अभिवर्तनी। प्रावार से लटकते हुए एक जोड़ी बड़े कंकत होते हैं, हर कंकत में दो गिल-प्लेटें होती हैं जिनमें V की आकृति के गिल-सूत्र होते हैं, और इन गिल-सूत्रों के बीच में ऊतकों के अंतरापटलिका संयोजन होते हैं, लेकिन सहलग्न गिल-सूत्रों के बीच में कोई अन्तरासूत्री सयोजन नहीं होते, केवल सिलिया के गुच्छे होते हैं। मुख के हर पार्श्व पर दो लेबियल पैल्प होते हैं। पद छोटा
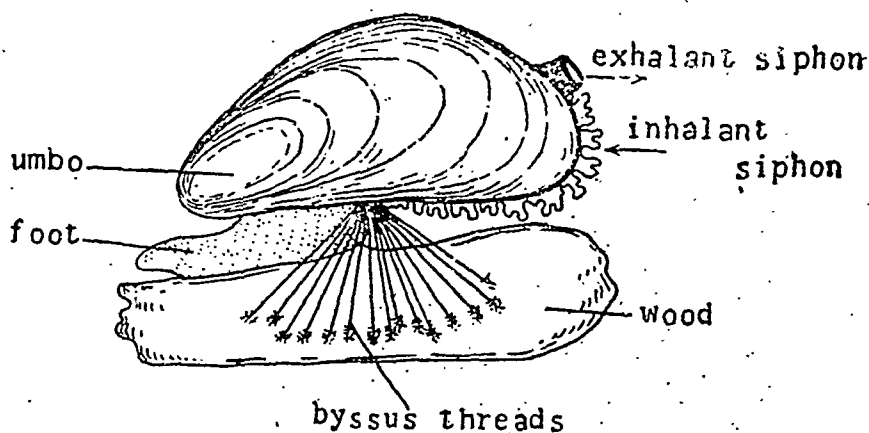
चित्र 500. **मिटिलस** ।

Umbo, अम्बो ; foot, पद ; byssus threads, बिसस-धागे ; wood, लकड़ी ; inhalant siphon, अंतर्वाही साइफ़न ; exhalant siphon, बहिर्वाही साइफ़न ।

और सिलिंडराकार होता है जिसमें उसके सिरे पर एक कटोरी बनी होती है, पद केवल बाल-अवस्था में ही चलने में काम आता है। पद में पश्चतः एक गढ़ा बना होता है जिसमें से शृंगीय **बिसस-धागों** (byssus threads) का एक गुच्छा कवच-कपाटों के बीच में से बाहर को निकला होता है; इन धागों के द्वारा यह मसेल दृढ़तः चिपका रहता है और इस तरह वयस्क प्राणी स्थानबद्ध होते हैं, बिसस-धागे एक ग्रंथि के द्वारा स्रावित होते हैं जो एक पद के ऊपर और पीछे को स्थित रहती है। लिंग अलग-अलग होते हैं, गोनड आंतरांग संहति में पड़े होते हैं लेकिन वे प्रावार तक में पहुँच जाते हैं। एक और विचित्रता एक जोड़ी आँखों का पाया जाना है जो भीतरी गिल-पटलिकाओं के आगे पड़ी होती हैं।

मिटिलस एडुलिस (*Mytilus edulis*)—यूरोप का एक खाया जाने वाला मसेल है, इसमें एक गहरा भूरा कवच होता है; भारतीय समुद्रतट पर पाए जाने वाले **मि० विरिडिस** (*M. viridis*) का कवच चटकीले हरे रंग का होता है।

12. **ऑस्ट्रीया** (*Ostrea*) (मुक्ता, या सीपी)—यह उपोष्णकटिबंधीय अथवा उष्णकटिबंधीय समुद्रों में पायी जाती है। कवच अनियमित गोल स्वरूप का होता है, यह बहुत मोटा और सफ़ेद रंग का होता है, दो कवच-कपाट असमान होते हैं, दाहिना कपाट चपटा तथा बायाँ कपाट बड़ा और उत्तल होता है। अम्बो तथा हिन्ज स्नायु अग्रतः स्थित होते हैं। जन्तु सदैव अपने बाएँ कपाट पर टिका रहता और उसी के द्वारा जमा रहता है जिसके कि यह वयस्क बन जाने पर कभी नहीं चलता-फिरता, बिसस नहीं पाया जाता है। अनेक मुक्ताओं में ऊपरी बायाँ कपाट ज्यादा बड़ा होता है और जन्तु अपने छोटे दाहिने कपाट के द्वारा चिपका रहता है। कवच-कपाटों के बीच में एक अकेली अभिवर्तनी पेशी (पश्चीय) होती है, इसके दो भाग होते हैं—एक रेखित और दूसरा अरेखित तंतुओं वाला, रेखित तंतु कवच-कपाटों को तेजी से बन्द करते हैं और अरेखित तंतुओं में जारी रहने वाला संकुचन होता है जिससे कवच-कपाट बन्द हुए रहते हैं। पद का वयस्क में पूरी तरह लोप हो चुका है। एक जोड़ी कंकत होते हैं जो वक्र आकृति के होते हैं। हृदय मलाशय के अधर में होता है, मलाशय हृदय में से होकर नहीं गुज़रता।
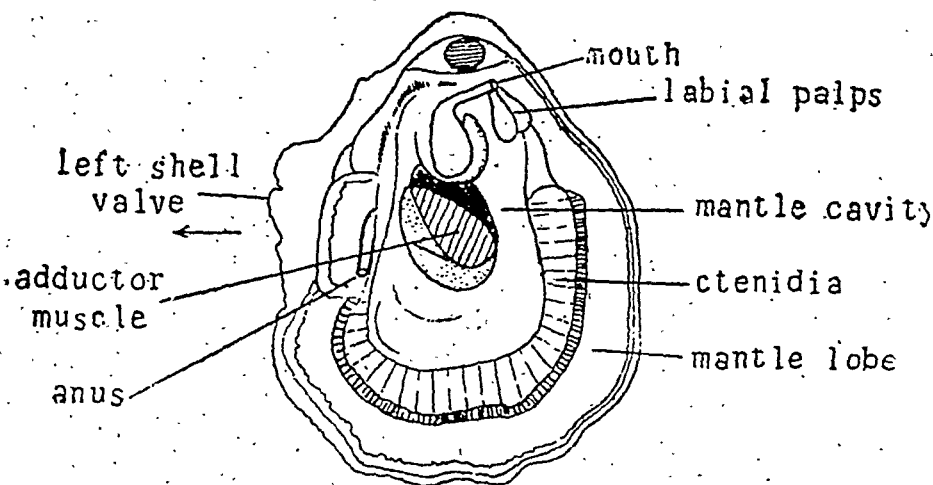
चित्र 501. **ऑस्ट्रीया एडुलिस** (दाहिना कवच-कपाट हटा दिया गया है)। Mouth, मुख; labial palp, लेबियल पैल्प; mantle cavity, प्रावार-गुहा; ctenidia, कंकत; mantle lobe, प्रावार पालि; anus, गुदा; adductor muscle, अभिवर्तनी पेशी; left shell valve, बायाँ कवच वाल्व।

ऑस्ट्रीया एडुलिस (*Ostrea edulis*) दो बातों में विचित्र है, एक तो यह कि एक ही प्राणी नर और मादा दोनों रूप में कार्य करता है, और दूसरे इसके श्वेताणु अंतड़ी में पहुँच जाते और आहार-ग्रहण करके उसे पचाते तथा उसका लाना-ले जाना भी

करते हैं। यह एक खायी जाने वाली सीपी होती है और पकाने के वास्ते यह व्यापारिक रूप में पाली-पोसी और संवर्धित की जाती हैं। इसमें मोती भी बनता है लेकिन वह अन्य मुक्ताओं के मोती की तरह उतना बढ़िया नहीं होता।

पिंक्टाडा मार्गेरिटिफ़ेरा (*Pinctada margaritifera*) एक वास्तविक मोती सीपी है जो हिंद महासागर में पायी जाती है। मोती प्रावार द्वारा उस समय एक रोगजनकी उत्पाद के रूप में बनता है, जब कोई बाहरी कण इसमें आकर जम जाता है।

13. **टेरेडो** (*Teredo*) (नौकृमि)—नौकृमि सारे संसार में पाया जाता है, यह समुद्री पानी में डूबी हर किस्म की लकड़ी में घुस जाता और उसी के भीतर रहने लगता है। शरीर कृमि-जैसा बन गया है। एक गोल-गोल शरीर के अग्र सिरे पर दो बहुत ह्रासित कवच-कपाट होते हैं जिनके सीमांत तेज धारदार काटने वाले
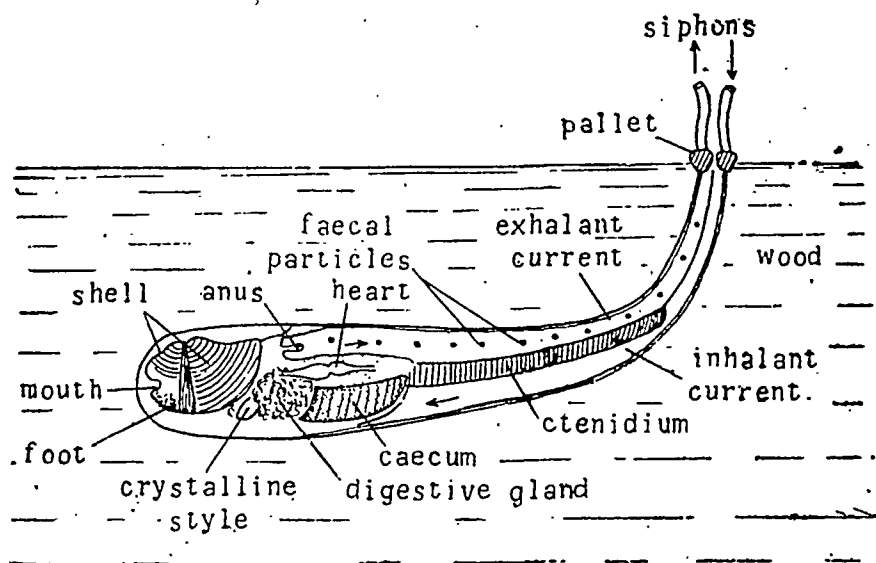
चित्र 502. लकड़ी में **टेरेडो नेवैलिस** (*Teredo navalis*)।
Mouth, मुख; shell, कवच; anus, गुदा; heart, हृदय; faecal particles, विष्ठा-कण; exhalant current वहिर्वाही जलधारा; pallet, ठप्पा; siphon, साइफ़न; wood, लकड़ी; inhalant current, अंतर्वाही जलधारा; ctenidium, कंकत; caecum, अंधनाल; digestive gland, पाचन ग्रंथि; crystalline style क्रिस्टलीय शर; foot, पद।

होते हैं, ये कपाट अभिवर्तनी पेशी द्वारा चलाये जाते हैं जिससे लकड़ी में सूराख किया जाता है, कवच-कपाटों के बीच में मुख होता है तथा उसके नीचे एक बहुत ह्रासित पद होता है। शरीर दो प्रावार-पालियों के बीच में बन्द रहता है और ये पालियाँ अधरतः समेकित होकर एक नलिका बना लेते हैं जिसमें एक जोड़ी लम्बे हो गये कंकत पड़े होते हैं। प्रावार-गुहा पीछे दो साइफ़नों में खुलती है—एक निचला अंतर्वाही

साइफ़न और एक ऊपरी बहिर्वाही साइफ़न। प्रावार से एक स्राव होता है जो लकड़ी में किए गए सूराख़ में एक कैल्सियमी अस्तर बना देता है, और साथ ही प्रावार से दो कैल्सियमी गोलियों अथवा ठप्पों का भी स्राव होता है जो साइफ़नों के सिकोड़ लिए जाने के बाद बिल के सूराख को बन्द कर देते हैं। कंकतों की सिलियरी गति से एक सतत जलधारा बनी रहती है जो प्रावार-गुहा के अंदर जाती और बाहर आती रहती है।

जन्तु लकड़ी में वेधन करने के लिए विशेषित होता है, यह लम्बे-लम्बे बिल बना लेता है, और सुरंग के भीतरी सिरे पर पड़ा रहता है व इसके साइफ़न बाहरी सिरे से जल में को निकले रहते हैं। लार्वा लकड़ी पर आकर टिक जाता है और लकड़ी में घुसना शुरू कर देता है, जैसे-जैसे वयस्क बनता जाता है यह सुरंग को बड़ा करता जाता है। कवच-कपाटों की घूर्णन क्रिया द्वारा होने वाले वेधन से लकड़ी के पोतघाटों तथा जहाज़ों को बहुत ज्यादा क्षति पहुँचती है। वेधन से बनने वाले बुरादे को जन्तु खाता जाता है, यह बुरादा जठर के एक बड़े अंधनाल में रोक लिया जाता है, उसके बाद एक पाचन-ग्रंथि की कोशिकाएँ इसका अंतर्ग्रहण करतीं और इसे पचा लेती हैं। **टेरेडो** में (**पाइला** और **हीलिक्स** की भाँति) एक यह विचित्रता पाई जाती है कि यह लकड़ी के सेलुलोज़ को पचा सकता है।

14. **सॉलेन** (*Solen*) (उस्तरा-मछली, या उस्तरा-सीपी)—कवच लंबा और सिलिंडराकार होता है, कवच-कपाट संकीर्ण और सीधे होते हैं, ये दोनों सिरों पर कुछ खुले-खुले होते हैं, अम्बो चपटे और अग्र सिरे पर अंतस्थ होते हैं, हिंज-स्नायु लंबा और बाहरी होता है, और हर कवच-कपाट पर एक हिंज-दंत होता है। पद लंबा और सिलिंडराकार होता है। पश्च दिशा में प्रावार से छोटे-छोटे बहिर्वाही तथा अंतर्वाही साइफ़न बने होते हैं, दो प्रावार-पालियाँ अधर दिशा में भी समेकित होती हैं केवल एक अग्र पद-छिद्र बाकी रह जाता है जिसमें से पद बाहर को निकल जाता है।
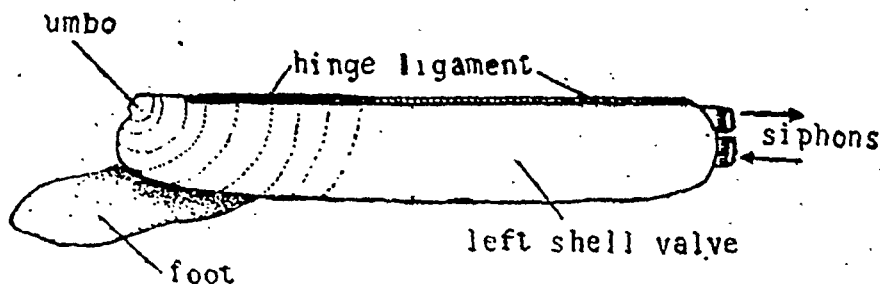
चित्र 503. सॉलेन।

Umbo, अम्बो; hinge ligament, हिंज-स्नायु; siphons, साइफ़न; left shell valve, बायाँ कवच-कपाट; foot, पद।

प्रावार गुहा में लम्बे, संकीर्ण कंकत होते हैं जिनमें वलन पड़ जाने से पटलिकाओं का सतह-क्षेत्रफल बढ़ गया है। रक्त कणिकाओं में हीमोसाएनिन होता है। साइफ़नों में वर्णकित अपवर्तनी (refractive) कोशिकाएँ होती हैं जो प्रकाश के लिए संवेदी होती

हैं। सॉलेन सक्रिय रूप में और तेज़ी से समुद्री कीचड़ में घुसता जाता है, लेकिन यह झटके से पानी में आगे को भी बढ़ सकता है और ऐसा करने में यह अपने पद को भीतर को सिकोड़ता और साइफ़नों से जल को पीछे निकालता जाता है। कुछ भागों में लोग इसे खाते भी हैं।

एक छोटी उस्तरा-सीपी **एन्सिस** (*Ensis*) हिंद महासागर में आम पाई जाती है, इसका कवच लगभग 20 cm. लंबा होता है जिसमें थोड़ा-सा खम होता है, इस खम के कारण पृष्ठ दिशा अवतल और अधर दिशा थोड़ी-सी उत्तल हो जाती है, दाहिने कवच-कपाट में दो हिंज-दंत तथा बाएँ में तीन हिंज-दंत होते हैं; साइफ़न बहुत छोटे होते हैं।

15. **सीपिया** (*Sepia*) (कटल-फ़िश)—**सीपिया** सारे विश्व में उथले समुद्रों में पाया जाता है। शरीर सिलिंडराकार, भूरा-भूरा और सफ़ेद चिन्हों वाला होता है, इसकी लम्बाई 20 cm. होती है। इस जंतु में मोलस्का के अन्य क्लासों की अपेक्षा ज़्यादा उच्च स्तर की संघटना पाई जाती है; इसमें सम्पूर्ण द्विपार्श्व सममिति पायी जाती है। एक **शीर्ष** होता है, जो एक संकीर्ण **गर्दन** के द्वारा एक शील्ड-जैसे **धड़** के साथ जुड़ा होता है, धड़ के हर बाज़ू में एक पेशीय फ़िन होता है। सिफ़ैलोपोडों के विकास में शरीर पृष्ठ-अधर अक्ष में बहुत लम्बा हो गया है जिसके कारण यह अक्ष क्रियात्मक रूप में अग्र-पश्च अक्ष बन गया है क्योंकि चलन की विधि में परिवर्तन आ गया है। अतः शीर्ष देह के अग्र सिरे की ओर होता है, आंतरांग-संहति पश्चीय होती है, और प्रावार-गुहा अधर होती है। धड़ की सतहों को अग्र-पृष्ठीय तथा पृष्ठ-अधरीय कहते हैं।

शीर्ष बड़ा होता है जिस पर केन्द्र में मुख और हर पार्श्व पर एक विशाल आँख होती है, आँख एक ऐसी परिपूर्ण अवस्था में पहुँच गई है जो सारे अकशेरुकियों में अन्यत्र नहीं पाई जाती। मुख को घेरती हुई 10 पेशीय **भुजाएँ** होती हैं जो पाँच जोड़ों में बनी होती हैं, इनमें से आठ भुजाएँ सिरे की ओर पतली होती जाती हैं और इनमें से हर एक की भीतरी सतह पर **चूषकों** की चार अनुदैर्ध्य पंक्तियाँ बनी होती हैं, हर चूषक एक छोटे से वृंत के ऊपर बनी हुई कटोरी होती है, कटोरी के छिद्र में एक क्षेत्रीय परिमा बनी होती है। चूषक निर्वात (वैकुअम) के द्वारा चिपकाने का कार्य करते हैं। पृष्ठ दिशा से गिनते हुए भुजाओं की चौथी जोड़ी जिन्हें स्पर्शक कहते हैं लम्बी तथा संकीर्ण होती हैं, उनमें केवल उनके मोटे अंतस्थ सिरों पर ही चूषक बने होते हैं, इन्हें गढ़ों के भीतर को सिकोड़ लिया जा सकता है। पाँचवीं जोड़ी भुजाओं में से बायीं भुजा नर प्राणी में रूपांतरित अथवा **हेक्टोकोटिलीकृत** (hectocotylized) अर्थात् निषेचनी बन जाती है, **सीपिया** में हेक्टोकोटिलीकृत भुजा के बनने में उसके चूषकों की संख्या कम हो जाती है, यह भुजा शुक्रधरों को अपने में ले लेती और मैथुन के दौरान मादा की प्रावार-गुहा में घुसा दी जाती है। भुजाओं में तन्त्रिकाएँ पाद-गैंग्लिया से आती हैं और ऐसा माना जाता है कि भुजाएँ पद का अंश हैं लेकिन तर्क के आधार पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि भुजाएँ पद का रूपांतरित अंश न

होकर शीर्ष के उपाँग हैं। पश्च-अधर दिशा में शीर्ष के पीछे एक पेशीय कीप होती है जो पद का एक रूपांतरित भाग है, यह एक शक्तिशाली जेट के रूप में प्रावार-गुहा में से जल बाहर की ओर निकालती है और इसी जेट निकालने से जंतु तैरता जाता है।
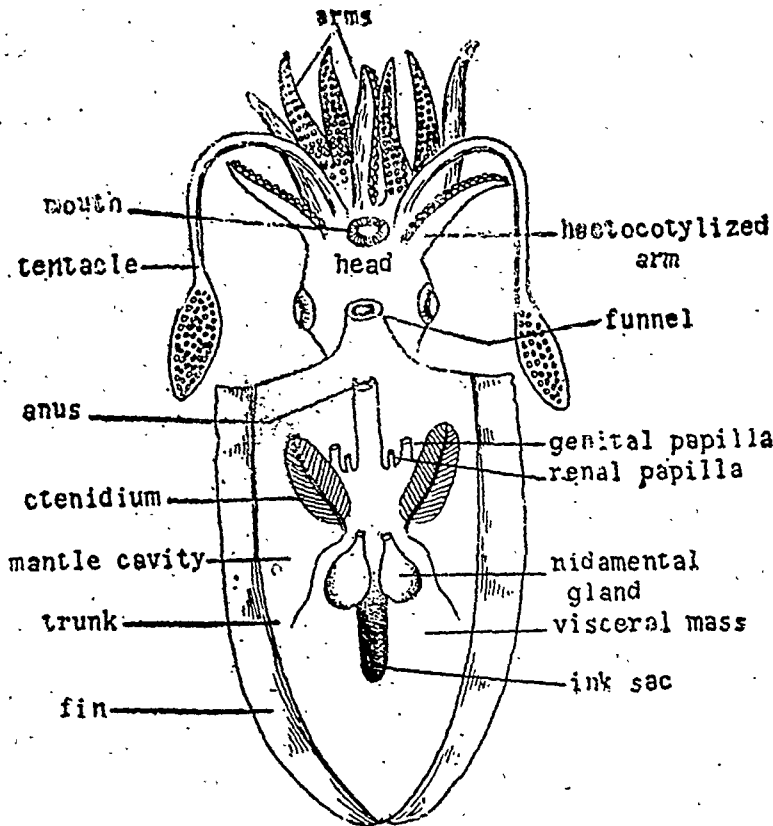
चित्र 504. सीपिया ऑफ़िसिनेलिस (*Sepia officinalis*) (नर)। Arms, भुजाएँ; hectocotylized arm, हेक्टोकोटिलीकृत भुजा; funnel, कीप; genital papilla, जनन-पैपिला; nidamental gland, निडैमैंटल ग्रंथि; visceral mass, आंतरांग संहति; ink sac, मसि-कोश; fin, फ़िन; trunk, धड़; mantle cavity, प्रावार-गुहा; ctenidium, कंकत; anus, गुदा; tentacle, स्पर्शक; mouth, मुख ।

धड़ के ऊपर एक मोटा पेशीय प्रावार चढ़ा होता है जिसमें सामने की ओर एक गोलाई लिए हुए पालि बनी होती है जिसके नीचे शीर्ष अंशतः सिकोड़ा जा सकता है। प्रावार के भीतर पश्च-अधर दिशा में एक बड़ी प्रावार-गुहा होती है। कीप प्रावार-गुहा का निर्गम मार्ग होता है जिसमें से विष्ठा-पदार्थ, श्वसन-धारा, उत्सर्गी एवं जनन अंगों के उत्पाद बाहर को निकल जाते हैं। जल प्रावार-गुहा में से कीप के द्वारा एक जेट के रूप में बलपूर्वक बाहर निकाला जाता है जिससे जंतु उल्टे शीर्ष के विपरीत नुकीले सिरे की ओर से झटके से तैरता जाता है। सामान्य रूप में जंतु

अपने फ़िनों की तरंगित गतियों के द्वारा सामने की ओर को तैरता जाता है। प्रावार-गुहा के भीतर एक जोड़ी पर-सरीखे कंक़त होते हैं। कंकतों के बीच में पड़ी हुई एक मध्य गुदा होती है, गुदा के दोनों पार्श्वों में दो पतली नलिकाएँ होती हैं जिनमें से एक में **उत्सर्गी छिद्र** और दूसरी में **जनन-छिद्र** होते हैं। कंकतों के पीछे एक आंतराँग-संहति होती है।

अग्र-पृष्ठ दिशा के भीतर एक आंतरिक **कवच** होता है जो प्रावार में वन्द रहता है, कवच चपटा पत्ती की आकृति का होता है और वह काइटिन-जैसे तथा कैल्सियमी पदार्थों का वना होता है जिसमें गैस से भरी गुहाएँ होती हैं। कवच **निडैमेंटल ग्रंथियों** (nidamental glands) से वनता है जो प्रावार-गुहा में पड़ी होती है। इसके अलावा एक भीतरी कंकाल कार्टिलेज का वना हुआ भी होता है, यह कंकाल गैंग्लिया की सुरक्षा करता और आँखों तथा भुजाओं के आधारों को सहारा प्रदान करता है। निडैमेंटल ग्रंथियों के पीछे एक **मसि-कोश** (ink sac) होता है जिसमें मिलैनिन वर्णक की वनी हुई एक स्याही होती है, यह स्याही कीप में से एक "धुएँ के वादल" के रूप में वाहर को निकाल दी जाती है जो आक्रमण होने पर जंतु को वच निकल कर भागने में सहायक होता है। प्रावार में **वर्णकधर** होते हैं जो दिखाई न दे सकने के लिए रंग परिवर्तन पैदा करते हैं, वर्णकधरों के संकुचन तथा प्रसार पेशियों द्वारा होते हैं जो तंत्रिका-नियंत्रण में रहते हैं।

इसके आहार में झींगे और श्रिम्प शामिल हैं जिन्हें यह अपने स्पर्शकों से पकड़ लेता और मुँह के पास ले आता है, भुजाएँ शिकार को थामे रहती हैं। मुख में जवड़े-जैसी चोंचें होती हैं जो आहार को काटती हैं। दो जोड़ी लार-ग्रंथियाँ होती हैं, एक जोड़ी से श्लेष्मा और एन्जाइमों का स्राव होता है लेकिन दूसरी जोड़ी रूपांतरित होकर विष-ग्रंथियाँ वन जाती हैं जिसके जहर से शिकार मर जाता है। लिंग अलग-अलग होते हैं और निषेचन मादा की प्रावार-गुहा में होता है जो नर की हेक्टोकोटिलीकृत अर्थात् निषेचनी भुजा से होता है।

16. **लोलाइगो** (*Loligo*) (स्क्विड)—स्क्विड समुद्र के सवसे ज्यादा वहुसंख्यक जन्तु हैं। **लोलाइगो** एक डेकापौड है और शरीर रचना की तफ़सील में **सीपिया** से मिलता-जुलता है, लेकिन शरीर लंम्बा होता, फ़िन त्रिभुजाकार और अंतस्थ होते हैं, ये फ़िन पश्चतः जुड़े होते हैं। शीर्ष वड़ा और दो वड़ी-वड़ी आँखों से युक्त होता है, मुख को चारों ओर से भुजाएँ घेरे रहती हैं। इसकी आठ भुजाओं में चूषकों की केवल अनुदैर्घ्य पंक्तियाँ ही होती हैं, और दो स्पर्शकों में चूषक केवल अन्तिम सिरों पर ही वने होते हैं, ये लम्वे होते हैं किन्तु गढ़ों में को सिकोड़े नहीं जा सकते हैं। हर आँख के पीछे एक **घ्राण किरीटि** (olfactory crest) होती है, मसि-कोश आगे के सिरे पर दोनों कंकतों के वीच में होता है। केवल एक पाचन-ग्रंथि होती है तथा लार-ग्रंथि अकेली और मध्यस्थ होती है। शृंगीय कवच अथवा **कलम** (pen) एक पतली प्लेट होती है, लेकिन यह धड़ के वरावर ही लम्वी होती है। कार्टिलेज का वना एक भीतरी कंकाल होता है जो गर्दन, कीप तथा फ़िनों को सहारा देता है।

लोलाइगो विश्व भर में पाया जाता है, यह 20 cm. लम्बा होता है, शरीर गहरा धूसर और उस पर कुछ-कुछ लाल धब्बे बने होते हैं। यह अपने फ़िनों द्वारा आगे की ओर को तैर सकता है, और कीप में से जल बाहर को निकालते हुए पीछे को भी
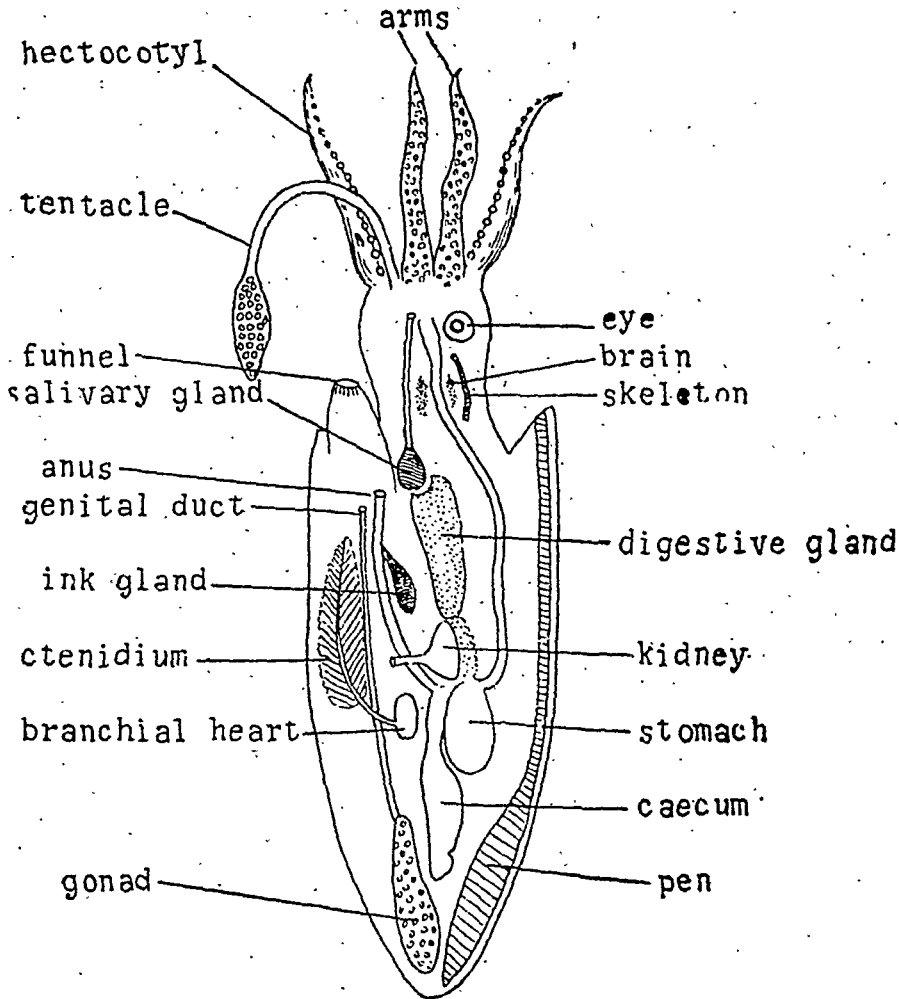
चित्र 505. **लोलाइगो** का खड़ा सेक्शन।
Arms, भुजाएँ; hectocotyl, हेक्टोकोटिल; tentacle, स्पर्शक; funnel, कीप; salivary gland, लार-ग्रंथि; anus, गुदा; genital duct, जनन वाहिनी; ink gland, मसि-ग्रंथि; ctenidium, कंकत; branchial heart, गिल-हृदय; gonad, गोनड; pen, कलम; caecum, अंधनाल; stomach, जठर; kidney. वृक्क; digestive gland, पाचन-ग्रंथि; skeleton, कंकाल; brain, मस्तिष्क; eye, आँख।

तैर सकता है। स्क्विड मछलियों, क्रस्टेशिया तथा अन्य स्क्विडों का आहार करते हैं, ये स्वयं भी बड़ी मछलियों द्वारा खा लिए जाते हैं तथा चीनवासी एवं इटलीवासी इन्हें अपने भोजन में भी इस्तेमाल करते हैं। **आर्किट्यूथिस** (*Architeuthis*) एक विशाल-

काय स्क्विड है जो गहरे समुद्रों में पाया जाता है, यह आकार में सबसे बड़ा अकशेरुकी है, शरीर 18 फुट से ज्यादा लम्बा होता है और इसकी परिधि 12 फुट होती है, स्पर्शक लगभग 35 फुट और अवृंत भुजाएँ 10 फुट होती हैं, स्पर्शकों को मिलाकर जन्तु की लम्बाई 55 फुट तक हो सकती है।

17. **ऑक्टोपस** (*Octopus*) (डेविल-फ़िश)—यह विश्व भर में पाया जाता है और समुद्रों में, सूराखों में, दरारों में तथा पत्थरों के नीचे रहता है। हालांकि अधिकतर सिफ़ैलोपोडा तीव्र और कुशल तैराकी के लिए अनुकूलित होते हैं, मगर **ऑक्टोपस** ने परवर्ती रूप में एक कम सक्रिय तलवासी स्वभाव ग्रहण कर लिया है। विविध स्पीशीज़ कुछ इन्च से लेकर 25 फुट तक के परास के साइज़ में होती हैं। प्रशांत महासागर के तट का **ऑक्टोपस पन्क्टैटस** (*Octopus punctatus*) सबसे बड़ी स्पीशीज़ है, इसके देह की लम्बाई लगभग 1 फुट होती है और हर भुजा 16 फुट लम्बी होती है। शरीर अंडाकार और गोलाई लिये हुए होता है लेकिन कोई कवच नहीं होता, हालांकि एक जोड़ी अवशेष पाए जाते हैं जिन पर पेशियाँ जुड़ी होती हैं, शीर्ष बहुत बड़ा और उस पर दो बड़ी आंखें होती हैं, शीर्ष के सामने आठ लम्बी भुजाएँ होती हैं जिनके आधारी भागों के बीच में जोड़ने वाली झिल्ली बनी होती है, सभी भुजाएँ बराबर लम्बाई की
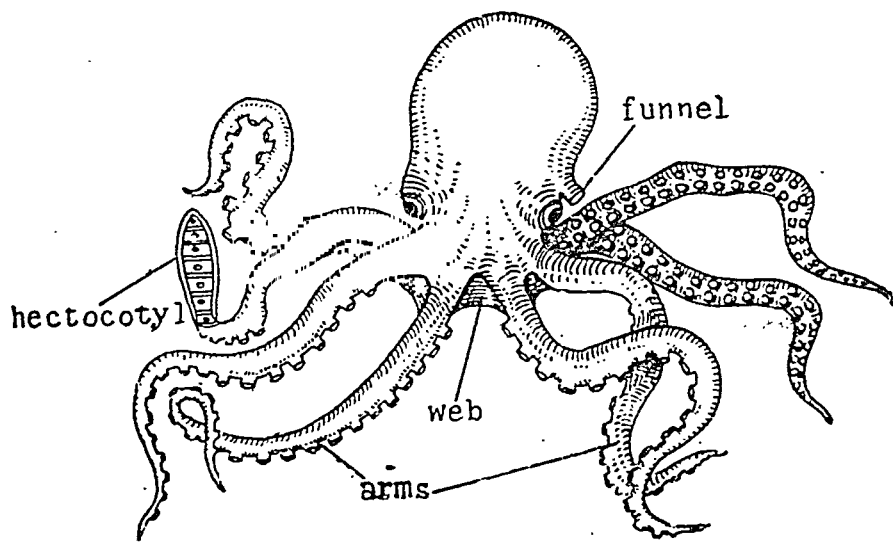
चित्र 506. **ऑक्टोपस** (नर)।
Funnel, कीप; web, झिल्ली; arms, बाहु; hectocotyl, हेक्टोकोटाइल।

होती हैं तथा हर एक में अवृंत चूषकों की दो-दो अनुदैर्ध्य पंक्तियाँ होती हैं तथा इन चूषकों में शृंगीय परिमा नहीं होती। प्राणी अपने शिकार को भुजाओं से पकड़ता है, और इन भुजाओं के सहारे वह रेंग भी सकता है। भुजाओं के आधारों के बीच में एक मुख होता है जिसमें दो शक्तिशाली **चोंच** होती हैं जिनके द्वारा यह शिकार को काटता है, विषैली लार शिकार में पहुँच कर तुरन्त उसे मार देती है। दो जोड़ी लार-

ग्रंथियाँ होती हैं जिनमें से एक जोड़ी विष-ग्रंथियों के रूप में बदल जाती हैं। आहार में मछलियाँ, घोंघे तथा केकड़े शामिल हैं जिनके वास्ते जन्तु घात लगाए बैठा रहता है, हालाँकि यह आहार की तलाश में रात को भी निकल पड़ता है। एक सुविकसित रेडुला होता है। प्रावार शरीर को ढके रहता है और उसके सीमांत देह और शरीर की पृष्ठ एवं पार्श्व दिशाओं में समेकित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रावार-गुहा का छिद्र छोटा होता है। पद एक **कीप** बना लेता है जिसमें से पानी का एक जेट प्रावार-गुहा में से बाहर को आता है, और जंतु इस कीप की मदद से पीछे को तैरता है। दो कंकत, दो वृक्क और एक मसि-ग्रंथि होती है। तीसरी दाहिनी भुजा हेक्टोकोटिलिकृत होती है, इसका अन्तिम सिरा चम्मच की आकृति का होता है, यह शुक्रधरों को ले-लेती और अंडों के निषेचन के वास्ते मादा की प्रावार-गुहा में घुसा दी जाती है। **ऑक्टोपस** के प्रावार में वर्णकधर होते हैं जिनके कारण वह अपना रंग बदल सकता है, रंग-परिवर्तन की विधि सिफ़ैलोपोडों में विचित्र होती है, वर्णकधर पेशियों के द्वारा जो कि तंत्रिका-नियंत्रण में होती हैं संकुचित होते अथवा फैलते हैं। शरीर के ऊपर अनेक रंग प्रकाश की लहरों की तरह बहते चले जाते हैं। रंग-परिवर्तन न केवल छद्मावरण के ही लिए होते हैं वरन् उनसे जंतु की भावनाओं की भी अभिव्यक्ति होती है।

18. **आर्गोनौटा** (*Argonauta*) (कागज़ नौटिलस)—यह एक ऐसा डेकापोडा है जिसमें लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है। एक गोल-सा शरीर होता है और बड़ा शीर्ष होता है जिसमें ऊपर दो आँखें होती हैं। पद से एक कीप और 8 लम्बी समाकार भुजाएँ होती हैं, हर भुजा में दो अनुदैर्घ्य पंक्तियों में व्यवस्थित चूषक बने होते हैं। मादा 20 cm. तक लम्बी होती है, इसमें एक बाहरी कागज़-जैसा कवच होता है, यह कवच एक ही समतल में सर्पिल होता है और उसके ऊपर उभरी अरीय रेखाएँ बनी होती हैं। कवच संरक्षी नहीं होता बल्कि अंडों को धारण कर लिए-फिरने के वास्ते होता है। कवच की गुहा एककोष्ठीय होती है; जन्तु अपनी इच्छानुसार कवच को छोड़ कर बाहर निकल आ सकता है। यह कवच मोलस्का के कवचों के समजात नहीं है क्योंकि इसका स्राव प्रावार से नहीं होता वरन् एक जोड़ी ऊपरी भुजाओं से होता है जिनमें अन्तिम सिरे बड़े, डिस्क-जैसे फैले किन्तु चपटे होते हैं, दो भुजाएँ कवच की बाहरी सतह पर लगी होकर उसे सहारा दिये रहती हैं, संयोजित रखने के वास्ते पेशियाँ नहीं होतीं।

नर 2.5 cm. होता है और उसमें कवच नहीं होता, इसकी बाईं तीसरी भुजा हेक्टोकोटिलीकृत होती है; प्रजनन काल के पूर्व यह एक कोश में बंद रहती है और फिर बाद में यह कोश फूट जाता तथा भुजा मुक्त हो जाती है, यह भुजा शेष भुजाओं से ज्यादा लम्बी होती है, इसके समीपस्थ भाग में चूषक बने होते हैं लेकिन दूरस्थ भाग एक पतला होता जाता हुआ सूत्र होता है। मैथुन के दौरान समूची हेक्टोकोटिली-कृत भुजा टूट कर अलग हो जाती और मादा की प्रावार-गुहा में छोड़ दी जाती है जिससे शुक्रधरों का स्थानान्तरण होता है, बाद में एक नई भुजा का पुनरुद्भवन हो जाता है।

आर्गोनौटा पैसिफ़िका (*Argonauta pacifica*) प्रशांत एवं हिंद महासागर के गर्म भागों में पाया जाता है, तथा **आ० आर्गो** (*A. argo*) अटलाँटिक महासागर में पाया जाता है।
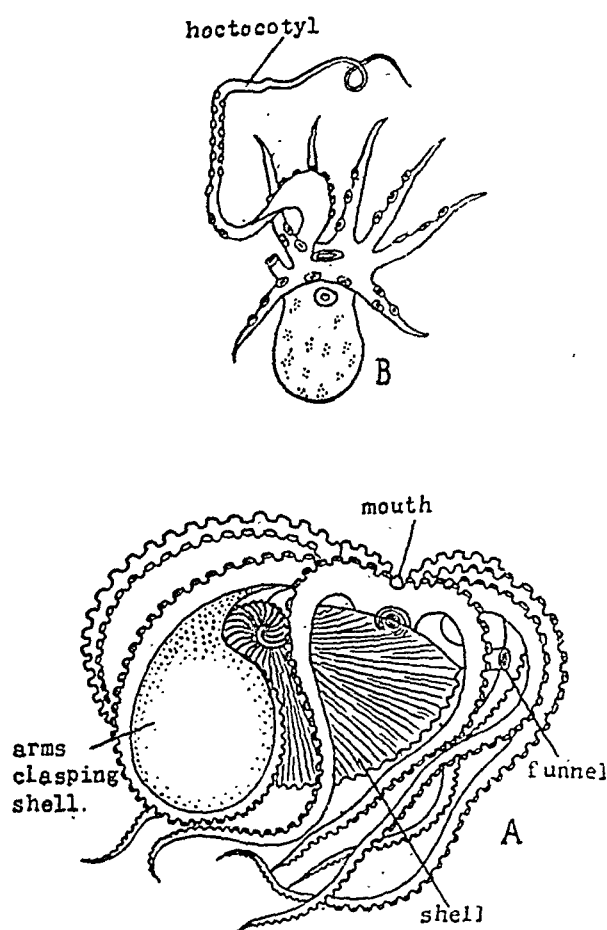
चित्र 507. **आर्गोनौटा आर्गो** । A- -मादा; B—नर ।
Hectocotyl, हेक्टोकोटाइल; mouth, मुख; funnel, कीप; shell, कवच; arms clasping shell, कवच को थामे हुए भुजाएँ ।

19. **नौटिलस** (*Nautilus*) (मुक्ताभ नौटिलस)—**नौटिलस** एक आदिम सिफ़ैलोपोड है, बाहरी और कक्षयुक्त कवच सिफ़ैलोपोडों का यह एकमात्र जीवित प्रतिनिधि है, यही लक्षण है जिसमें यह इसी क्लास के अन्य सदस्यों से भिन्न होता है। इसका तैरना उन विलुप्त सिफ़ैलोपोडों का प्रतिरूपी तैरना है जो केंब्रियन और क्रीटेशियस युगों में विपुलता से पाये जाते थे पर उसके बाद मीज़ोज़ोइक में विलुप्त हो गए। सिफ़ैलोपोडा एक समाप्त होता जा रहा वर्ग है क्योंकि आज इसमें केवल 400 जीवित स्पीशीज़ पाई जाती हैं जबकि 10,000 से ज्यादा फ़ॉसिल प्ररूप पाये जा चुके हैं।

नौटिलस पौम्पिलस (*Nautilus pompilus*) रात्रिचर और यूथचारी है, यह प्रशांत तथा हिंद महासागर के गहरे भागों में पाया जाता है, यह आदिम और प्राचीन सिफ़ैलोपोड है। इसमें एक बाहरी कैल्सियमी कवच होता है जिसका व्यास 25 cm. तक होता है। कवच में एक बाहरी परत कैल्सियम कार्बोनेट के प्रिज्मों की होती है जो एक जैव मैट्रिक्स में पड़े होते हैं, तथा एक भीतरी परत मुक्ताभ परत की होती है। कवच की बाहरी सतह मोती-जैसे रंग की हो सकती है अथवा सफ़ेद पट्टियों से युक्त भूरी हो सकती है। यह एक ही समतल में सर्पिल रूप में कुण्डलित रहता है और अवतल पटों के द्वारा अनेक कक्षों में विभाजित रहता है, कक्ष जंतु की आकार-वृद्धि की अवस्थाओं को दर्शाते हैं, जैसे-जैसे जंतु बढ़ता जाता है वैसे-वैसे यह एक अधिक बड़े कक्ष में पहुँचता जाता है जिसे यह पीछे से एक नये पट द्वारा बन्द कर लेता है;
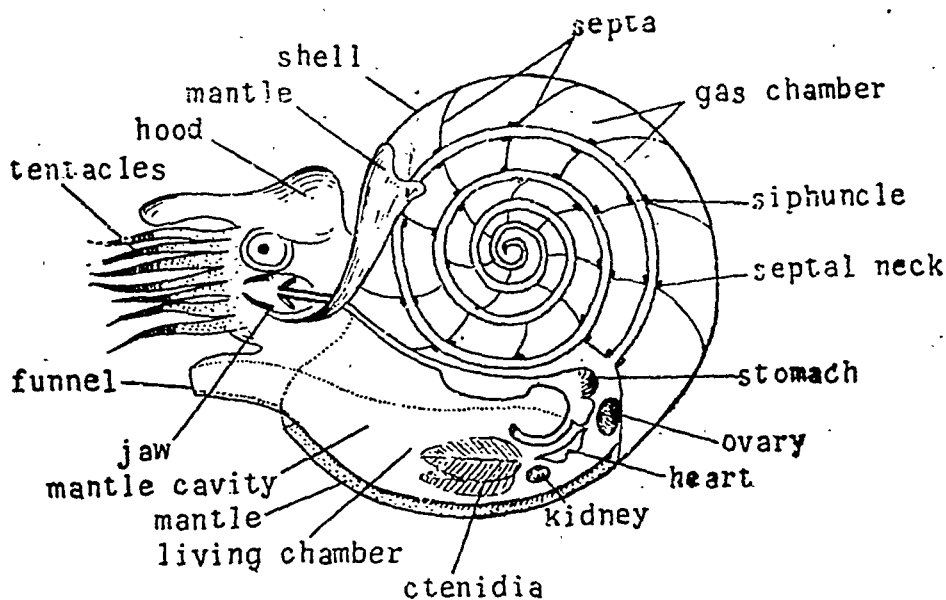
चित्र 508. **नौटिलस पौम्पिलस**।

Tentacles, स्पर्शक; hood, हुड; mantle, प्रावार; shell, **कवच**; septa, पट; gas chamber, गैस-कक्ष; siphuncle, साइफ़न्कल; septal neck, पट-गर्दन; stomach, जठर; ovary, अंडाशय; heart, हृदय; kidney, वृक्क; ctenidia, कंकत; living chamber, जीव कक्ष; mantle, प्रावार; mantle cavity, प्रावार-गुहा; jaw जबड़ा; funnel, कीप।

अन्तिम जीवयुक्त कक्ष सबसे बड़ा होता है जिसमें प्राणी पड़ा रहता है, शेष कक्षों में गैस भरी होती है जो भारी कवचों को उत्प्लावी बना देती है। आंतरांग प्रदेश एक नलिका के रूप में लम्बा हो गया होता है जिसे **साइफ़न्कल** (siphuncle) कहते हैं, यह साइफ़न्कल पटों में से सूराख करता हुआ और तमाम कक्षों में से गुज़रता हुआ शिखर तक पहुँच जाता है। यह साइफ़न्कल खाली कक्षों में गैस का स्राव करता है।

जन्तु के शरीर में एक शीर्ष और एक धड़ होता है। बड़ा शीर्ष शंक्वाकार होता है, इसमें गढ़ों के रूप में दो सरल आँखें होती हैं जिनमें लेन्स नहीं होता, तथा एक मुख होता है जिसमें एक जोड़ी विशाल जबड़े होते हैं। मुख को घेरती हुई 42 भुजाएँ दो घेरों में बनी होती हैं। भुजाओं में चूषक नहीं होते लेकिन हर एक भुजा में त्रिभुजाकार अन्तःकर्षी स्पर्शकों की झालरें-सी बनी होती हैं। दो मोटी हो गई भुजाएँ संयुक्त होकर एक हुड (hood) बनाती हैं जिसके नीचे शीर्ष और भुजाएँ सिकोड़ ली जा सकती हैं। उस समय जबकि जन्तु कवच के जीव-कक्ष में सिकोड़ लिया जाता है तब हुड एक आच्छद की तरह काम करता है। धड़ एक गोल थैले की तरह होता है। शीर्ष की पश्च दिशा पर एक कीप होती है जो सम्पूर्ण नलिका नहीं होती बल्कि निकटतः परस्पर मिली हुई दो पालियों की बनी होती है। तैरने के लिए जल बलपूर्वक कीप में से निकाला जाता है तथा दिशा-मोड़ के लिये कीप की अगल-बगल गतियाँ होती हैं। कार्टिलेज का बना एक भीतरी कंकाल होता है। पतला प्रावार कवच का अस्तर बनाता है और देह को घेरे रहता है, यह शीर्ष के चारों ओर एक मुक्त पल्ला भी बनाता है जो हुड के पीछे कवच से चिपका होता है। प्रावार-गुहा में चार कंकत, एक जोड़ी जलेक्षिकाएँ तथा बीच में पड़ी हुई एक गुदा होती है। चार वृक्क होते हैं लेकिन मसिकोश अथवा वर्णकधर नहीं होते।

मादा में मुख के समीप दो पार्श्व पालियाँ होती हैं, जिनमें से हर एक के ऊपर 12 स्पर्शक होते हैं। नर में दाहिनी अथवा बाईं ओर के चार स्पर्शक मिलकर एक **स्पैडिक्स** (spadix) बनाते हैं जो हेक्टोकोटिलीकृत भुजा का प्रतिदर्श है और उससे विपरीत दिशा के चार स्पर्शकों को प्रतिस्पैडिक्स कह देते हैं। **नौटिलस** अक्सर तली के ऊपर अपने स्पर्शकों पर टिके हुए बैठा रहा करता है, यह कीप में से जल को बाहर फेंकता हुआ तेजी से तैर भी सकता है, इन दोनों ही क्रियाओं में गैस कवच को सीधा खड़ा किए रखती है।

मोलस्का पर टिप्पणियाँ

सामान्य विवरण—मोलस्का प्रायः जलीय होते हैं, जो अधिकतर समुद्र में रहते हैं, कुछ अलवणजलीय होते हैं और अनेक स्थलीय होते हैं जिन्हें प्रायः एक नम वातावरण की आवश्यकता होती है। विभिन्न क्लासों में विभिन्न विकासीय प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। लेकिन हाल ही में जापान के समीप **तमानोवैल्वा** (*Tamanovalva*) की खोज हुई है जो हो सकता है गैस्ट्रोपोडा तथा पीलेसिपोडा के बीच की विलुप्त कड़ी हो, क्योंकि इस जानवर के शीर्ष तथा पद एक घोंघे की तरह होते हैं किन्तु कवच दो छोटे-बड़े कपाटों का बना होता है, और इसका परिवर्धन शुरू में तो गैस्ट्रोपोडा की तरह होता है लेकिन शीघ्र ही यह एक द्विकपाटी के रूप में बदल जाता है। पीलैसिपोडा में रेडुला नहीं होता तथा वे सूक्ष्म जलीय जीवों का आहार करते हैं, लेकिन अधिकतर मोलस्का में एक रेडुला होता है तथा वे वनस्पति एवं जन्तु पदार्थों पर आहार करते हैं। अनेक गैस्ट्रोपोडा और तमाम सिफ़ैलोपोडा परभक्षी जीव-जन्तु होते हैं; सिफ़ैलोपोडा ज्यादा क्रियाशील और शक्तिशाली होते हैं। वे सामान्यतः मांसभक्षी

होते हैं। सिफ़ैलोपोडा शेष मोलस्का से अलग-थलग जान पड़ते हैं। मोलस्का में रूप और संरचना में भारी विविधता पाई जाती है, उनमें से अधिकांश में एक पृष्ठीय आंतरांग कूबड़, अग्र शीर्ष तथा एक अधर पद बना होता है। लेकिन 1952 में मेक्सिको के पास हुई **निओपिलाइना** (*Neopilina*) (क्लास मॉनोप्लैकोफ़ोरा) (Monoplacophora) की खोज ने मोलस्का देह-योजना सम्बन्धी विचारधाराओं में फेर-बदल कर दिया है, क्योंकि इस प्राणी में पाँच जोड़ी कंकत होते हैं और कुछ आन्तरिक अंग (अलिंदों, वृक्कों तथा सीलोमी कोशों में से हर एक की पाँच-पाँच जोड़ियाँ) सारे शरीर में क्रमानुसार पुनरावर्तित होते जाते हैं, यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे एक सुस्पष्ट भीतरी मेटामेरिज्म (वि ंडता) की ओर संकेत मिलता है।

शीर्ष—ऐम्फ़िन्यूरा में शीर्ष स्पष्टतः पृथक् नहीं होता और इसमें आँखें अथवा स्पर्शक नहीं बने होते; लैमेलिब्रैंकिएटा में रेडुला, स्पर्शक तथा ग्रसनी समेत शीर्ष अविद्यमान होता है और मुख आंतरांग संहति के सामने वाले किनारे पर बना होता है। अन्य में एक सुविकसित शीर्ष होता है जिस पर आँखें और स्पर्शक बने होते हैं, तथा जिसके भीतर एक रेडुला तथा ग्रसनी होती है। रेडुला एक लम्बी संकरी पट्टी होती है जिस पर बहुसंख्यक शृंगीय दाँत अनेक अनुप्रस्थ पंक्तियों में बने होते हैं। रेडुला आहार को चीर कर तथा खुरच कर छोटे-छोटे टुकड़े बना देता है।

पद – आदिम उदाहरणों में पद एक अधर रेंगने वाला पद था, जैसे **काइटॉन** में, जिसमें यह पद चपटा और चौड़ा होता है, यह न केवल रेंगने में ही इस्तेमाल होता है बल्कि चिपकने के लिए यह एक चूषक का भी काम करता है। अधिकतर लैमेलिब्रैं-किएटा में इसका चपटा तलवा समाप्त हो चुका है और यह फानाकार बन गया है जो इसे रेत में धीमी हल-सरीखी गति प्रदान करता है, कुछ में एक बिसस-ग्रन्थि होती है जो चिपकने के वास्ते धागों का स्राव करती है, कुछ अन्य में यह मुड़ जाता और एक कूदने वाला अंग जैसा कार्य करता है। गैस्ट्रोपोडा में पद सामान्यतः लंबा होता है जिसमें एक चपटी अधर सतह बनी होती है लेकिन प्रतिरूपी उदाहरणों में (जैसे **कैरिनेरिया** में) इसके तीन भाग बन जाते हैं—एक बीच का **मध्यपाद** जो सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, एक अगला **अग्रपाद** और एक पिछला **पश्चपाद** जिस पर अक्सर एक आच्छद बना होता है। कुछ प्राणियों (**ऐप्लीसिया**) में पद में एक जोड़ी पार्श्व फ़िन बन जाते हैं जो फ़िन की तरह कार्य करते हैं, या हो सकता है कि यह एक तरण-अंग की तरह काम करने के लिए रूपांतरित हो जाये (**कैरिनेरिया**)। स्कैफ़ोपोडा में पद रूपाँतरित होकर एक संकीर्ण शंक्वाकार मिट्टी में घुसते जाने वाला अंग बन जाता है। सिफ़ैलोपोडा में कदाचित् पद के रूपाँतरण से ही अनेक भुजाएं बनी हैं जो मुख को घेरे रहती हैं और आहार पकड़ने का कार्य करती हैं और पद का कीप में तो निश्चय ही रूपांतरण हुआ है जो जल में चलन का कार्य करती है।

प्रावार—प्रावार एक प्रकार से त्वचा ही है जो केवल पद को छोड़ कर अधिकांश शरीर को ढके रहती है, इससे कवच का स्राव होता है और यही जंतु की आकृति का भी निर्धारण करता है। ऐम्फ़िन्यूरा में प्रावार शरीर को पृष्ठ-अधर दिशा

में ढके रहता है और प्रावार-गुहा एक अवर पद के चारों ओर फैली रहती है, तथा कंकतों की अनेक जोड़ियाँ उत्पन्न हो गई हैं । लैमेलिब्रैंकिएटा में देह पार्श्वतः चपटा हो जाने से प्रावार दाहिनी और बायीं पालियों में विभाजित हो गया है, यह दो साइफनों में भी लंबा हो गया है जिनमें से जल प्रावार-गुहा के भीतर पहुँचता है और
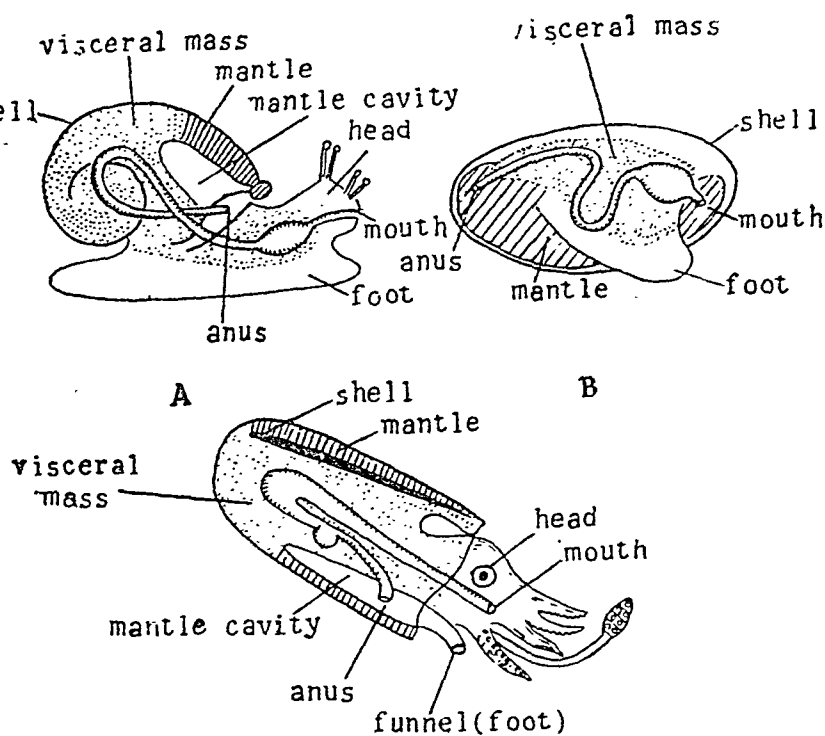
चित्र 509. मोलस्का प्रकार । A-गैस्ट्रोपोड; B-पीलेसिपोडा; C-सिफैलोपोड । Shell, कवच; visceral mass, आंतरांग-संहति; mantle, प्रावार; mantle cavity, प्रावार-गुहा; head, शीर्ष; mouth, मुख; foot पद; anus, गुदा; funnel (foot), कीप (पद) ।

बाहर निकलता है । कंकत, जो इस बड़ी हो गई प्रावार-गुहा में पड़े होते हैं, आहार एकत्रीकरण के वास्ते विशाल अंग बन गये हैं । अन्य क्लासों में प्रावार एक अकेला वलन होता है जो आँतरांग-संहति को एक हुड की तरह ढके रहता है और यह एक प्रावार-गुहा को बंद किये रहता है जिसमें कंकत पड़े रहते हैं तथा गुदा एवं वृक्क-छिद्र इसमें को खुलते हैं । अनेक गैस्ट्रोपोडा में प्रावार एक अयुग्मित साइफन बनाता है, हालाँकि कुछ उदाहरणों में प्रावार मौजूद नहीं होता फिर भी प्रावार-गुहा अग्र स्थिति में आ गई है । पल्मोनेट गैस्ट्रोपोडा में प्रावार एक फेफड़ा बनाता है जो एक वातमुख द्वारा बाहर को खुलता है । स्कैफोपोडा में प्रावार पालियाँ अधरतः समेकित हो जाती हैं और एक अविच्छिन्न नलिका बनाती हैं । सिफ़ैलोपोडा में प्रावार सुविकसित और पेशीय होता है, यह एक प्रावार-गुहा को बंद किये रहता है तथा पश्च स्थिति में

रहता है, इसमें कंकत होते हैं और यह चलन में महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह जल को एक कीप में से बलपूर्वक बाहर निकालता है। प्रावार-गुहा कंकतों की सुरक्षा करती और उनमें कूड़ा-कचरा अट जाने से रोकती है, द्विकपाटियों में तथा कुछ गैस्ट्रोपोडों में यह एक जटिल सिलियरी अशन क्रियाविधि प्रदान करता है, जबकि सिफ़ैलोपोडा में यह चलन का मुख्य अंग बन गया है ।

प्रावार अपने भीतर एक **आंतरांग-संहति** बंद किये रहता है जो देह का अधिकांश होती है, तथा आंतरांग इसी संहति के भीतर ठसा-ठस पैक किये रहते हैं। गैस्ट्रोपोडा में असमान वृद्धि के कारण आंतरांग-संहति कुण्डलित रहती है और यह शेष शरीर के ऊपर 180° घूम गई है। सिफ़ैलोपोडा में भी असमान वृद्धि होती है लेकिन ये एक समतल सर्पिल में कुण्डलित होते हैं और उनमें मरोड़ नहीं होता।

कवच—कवच का निर्माण वेलिजर लार्वा के प्रावार से होता है और उस कवच को **प्राक्शंख** (protoconch) कहते हैं जो वयस्क में कवच के शिखर पर बना हुआ सबसे छोटा चक्र होता है, शेष कवच प्रावार के सीमान्त से होने वाले स्राव से बना होता है। कवच प्रावार की आकृति ले लेता है; यह एक-कपाटी हो सकता है अथवा द्विकपाटी, शंखाकार या सर्पिलतः कुण्डलित। इसमें कॉन्कियोलिन या कॉन्किन का एक जैव आधार होता है जिसके साथ-साथ कैल्सियम कार्बोनेट होता है। इसमें तीन परतें होती हैं, एक पतली बाहरी शृंगीय परिकवच जो कॉन्कियोलिन नामक कार्बनिक पदार्थ का बना होता है, एक मोटी बीच की प्रिज़्मीय परत चूने और कॉन्कियोलिन की बनी होती है और एक भीतरी मुक्ताभ परत होती है जिसका अधिकांश कैल्सियम कार्बोनेट का बना होता है; पहली दोनों परतों का स्राव प्रावार के सीमान्त से होता है तथा मुक्ताभ परत का स्राव समूचे प्रावार से। मोतियों का निर्माण प्रावार के बाहरी एपिथीलियम से रोग-जनकी उत्पादों के रूप में होता है। ऐम्फ़िन्यूरा में सामान्यतः एक पंक्ति में बने आठ टुकड़ों का एक पृष्ठीय कवच पाया जाता है, गैस्ट्रोपोडा में एक ही टुकड़े का बना शंखाकार अथवा सर्पिलतः कुण्डलित कवच होता है जिसमें आच्छद हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। लैमेलिब्रैंकिएटों में दो बराबर के अथवा छोटे-बड़े कपाटों का कवच होता है। सिफ़ैलोपोडों में आदिम प्राणियों में एक बाहरी कवच होता है जिसमें कक्षों में गैस भरी होकर वह उत्प्लावी बन जाता है, **स्पाइरुला** (*Spirula*) में एक भीतरी सर्पिल कवच होता है, लेकिन इस कवच के समाप्त हो जाने की प्रवृत्ति होती है जिससे सिफ़ैलोपोडा कुशल तैराक हो गये हैं और उनमें परभक्षी आदतें बन गई हैं ।

सममिति—मोलस्का प्ररूपतः द्विपार्श्वीय सममिति वाले जन्तु होते हैं लेकिन गैस्ट्रोपोडा में कुण्डलीकरण तथा मरोड़ की दो प्रक्रियाओं के कारण यह सममिति समाप्त हो गई है। इनमें ऐसी प्रवृत्ति होती है कि पाचन और अवशोषण एक पृष्ठीय पाचन-ग्रन्थि अथवा जिगर में ही सीमित रहे, जिगर में वृद्धि होती जाती है और एक प्रवर्ध बन जाता है जो इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि बोझ से यह एक तरफ को गिर जाता और आहार-नाल को कुण्डलित करके एक आंतरांग-कूबड़ बना देता है। आंतरांग

कूवड़ में एक पार्श्व की अपेक्षा दूसरे पार्श्व में ज्यादा तीव्रता से वृद्धि होती जाती है जिससे कि यह ऐंठ कर एक संहत सर्पिल बना लेता है जिसका रुख पीछे को रहता है ताकि जन्तु का सन्तुलन बना रहे, कवच भी कुण्डलित रहता है। इस सर्पिल कुण्डलीकरण को गलती से आंतरांग-संहति का मरोड़ भी समझा जा सकता है जो एक अलग ही प्रक्रिया है, लेकिन यह कुण्डलीकरण मरोड़ से पहले विकसित हुआ था।

शीर्ष के पीछे आंतरांग-कूवड़ में ये सब आते हैं, आंतरांग-संहति, प्रावार, प्रावार-गुहा और पद। यह शेष शरीर पर 180° का कोण बनाकर वामावर्त रूप में घूम जाता है, इस घूमने में उस एक असममित प्रतिकर्षी पेशी का संकुचन कार्य करता है जो लार्वाई कवच की दाहिनी दिशा से निकलती है, फिर देह के ऊपर से गुजरती हुई शीर्ष के बाएँ पार्श्व में आकर निवेशित होती है। इस घूम जाने को **मरोड़** कहते हैं जो कुण्डलीकरण से पृथक् है और एक कहीं ज्यादा आमूल परिवर्तन है, यह आंतरांग-कूवड़ के कुण्डलीकरण के बाद होता है। मरोड़ में शरीर का केवल एक संकरा भाग और उसमें से गुजरने वाले अंग ही मरोड़ित होते हैं, यह वह छोटा भाग होता है जो आंतरांग-कूवड़ तथा शेष शरीर के बीच में होता है। मरोड़ के कारण प्रावार-गुहा और उसके अंगों का दिशास्थापन बदल जाता है, तथा बायीं ओर के अंगों में ह्रासित हो जाने अथवा यहाँ तक कि पूरी तरह समाप्त हो जाने की प्रवृत्ति होती है।

मरोड़ के पहले प्रावार-गुहा पश्चतः खुलती है, कंकत पीछे को रुख किए रहते हैं, अलिंद निलय के पीछे होते हैं, तन्त्रिका-तन्त्र द्विपार्श्वतः सममित होता है और मुख तथा गुदा विपरीत सिरों पर होते हैं। मरोड़ के बाद प्रावार-गुहा सामने की ओर ठीक शीर्ष के पीछे खुलती है, कंकत सामने की ओर आ जाते तथा उनका रुख आगे को रहता है; दाहिना कंकत बायीं ओर आ जाता है और बायाँ कंकत दाहिनी ओर, अलिंद निलय के अग्रतः आ जाते हैं, दाहिना अलिंद बाईं ओर आ जाता है और बायाँ अलिंद दाहिनी ओर, तन्त्रिका-तन्त्र में 8 की आकृति में मरोड़ आ जाता है जो उन दो लम्बे तन्त्रिका संयोजियों के एक-दूसरे को ऊपर से काटते हुए चलने से बन जाता है जो आन्तरांग में चलते जाते हैं, तथा पाचन-तन्त्र U-की आकृति का बन जाता है जिससे गुदा आगे की ओर मुख के समीप आ जाती है। मरोड़ की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सामान्यतः कुछ ही मिनट का समय लगता है।

आदिम गैस्ट्रोपोडा में दो कंकत, अलिंद, और दो वृक्क होते हैं, लेकिन अधिक विशेषित प्ररूपों में वास्तविक बायाँ किन्तु स्थानतः दाहिना कंकत, दाहिना अलिंद और दाहिना वृक्क बनने से रह जाते हैं; दाहिनी ओर के अंगों का यह अभाव मरोड़ का परिणाम है। अलिंदों की संख्या का विद्यमान कंकतों की संख्या से सीधा सम्बन्ध है, और एक कंकत की हानि हो जाने से केवल एक ही अलिंद शेष रह जाता है। यह स्पष्ट नहीं है कि मरोड़ जन्तु के वास्ते लाभकर है अथवा नहीं या कि इसका कोई क्रमविकासीय महत्त्व भी है, लेकिन यह गैस्ट्रोपोडों के भ्रूण-परिवर्धन के दौरान होता है, लार्वा पहले द्विपार्श्वतः सममित होता है, उसके बाद एकदम अचानक उसमें मरोड़ आ जाता है।

कुछ उदाहरणों में आंतरांग-कूवड़ के कुण्डलित हो जाने के बाद मरोड़ केवल
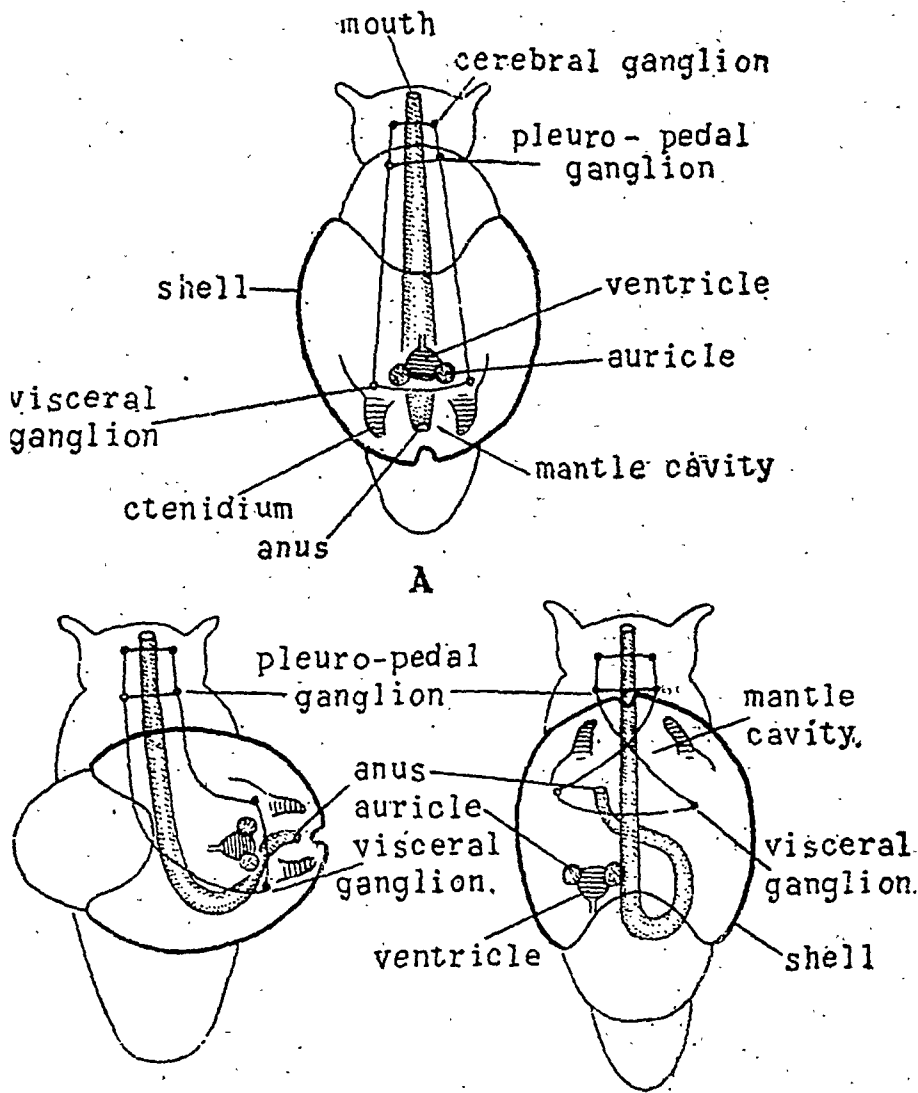
चित्र 510. गैस्ट्रोपोडा में मरोड़ । A—मरोड़ से पूर्व; B—90° का मरोड़, C—180° का मरोड़ ।

Mouth, मुख; cerebral ganglion, प्रमस्तिष्क गैंग्लियॉन; pleuro-pedal ganglion, पार्श्व-पाद गैंग्लियान; shell, कवच; ventricle, निलय; auricle, अलिंद; mantle cavity, प्रावार-गुहा; anus, गुदा; ctenidium, कंकत; visceral ganglion, आंतरांग गैंग्लियॉन ।

90° में घूर्णन के द्वारा होता है जिसके फलस्वरूप कंकत और गुदा पार्श्वतः रख किए होते हैं ।

विमरोड़—कुछ उदाहरणों में मरोड़ द्वारा आने वाले परिवर्तन कुछ हद तक फिर से उलट जाते हैं, जबकि अन्य में जैसे कि **ऐप्लीसिया** में मरोड़ का पूरी तरह उलट जाना अर्थात् खुल जाना हो जाता है जिसे विमरोड़ कहते हैं। यह विमरोड़ तब होता है जब कवच समाप्त हो जाता अथवा बहुत ज्यादा ह्रासित हो जाता है। कंकत अपने बन्द करने वाले कोश से मुक्त होकर फिर से पश्च दिशा में आ जाते हैं, अब उनके आगे रहने वाली स्थिति का लाभ समाप्त हो जाता है और आंतरांग-कूबड़ का ऐंठन पूरी तरह खुल जाता है।

सिफ़ैलोपोडों में शरीर पृष्ठ-अधर अक्ष में बहुत ज्यादा लम्बा हो गया होता है, चलन की विधि में परिवर्तन के फलस्वरूप यह अक्ष क्रियात्मक अग्र-पश्च अक्ष बन जाता है, शरीर के अग्र सिरे पर स्पर्शकों का एक चक्र होता है तथा आंतरांग-कूबड़ पश्चीय होता है, मूल प्रावार-गुहा अब अधरीय हो गई है।

श्वसन-अंग—मोलस्का अधिकतर जलीय होते और गिलों अथवा कंकतों के द्वारा श्वसन करते हैं। कंकतों की सतह पर जल-प्रवाह की दिशा उनके भीतर रक्त-प्रावार की दिशा के विपरीत होती है, यह **प्रतिप्रवाह** (counterflow) रक्त के अच्छी तरह ऑक्सीजनित होने को सुनिश्चित कर देता है। अधिकतर मोलस्का में सामान्यत: एक जोड़ी पिच्छाकार कंकत होते हैं जिनमें एक अक्ष पर उसके हर एक पार्श्व में पत्ती-जैसे गिल-सूत्रों की एक-एक पंक्ति बनी होती है। कंकतों के समीप दो जलेक्षिकाएँ होती हैं, जो अन्दर आती जाने वाली जलधारा को परखती जाती हैं। अनेक गैस्ट्रोपोडा में एक सरल अयुग्मित कंकत और केवल एक ही जलेक्षिका होती है,
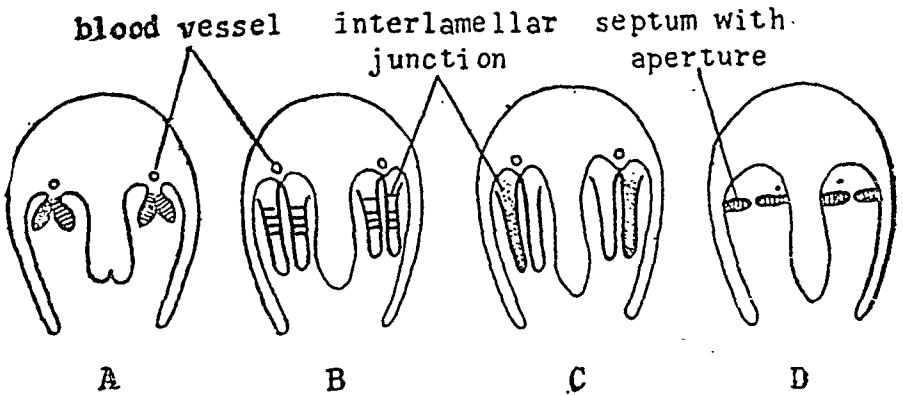
चित्र 511. लैमेलिब्रैंकिएटा का खड़ा सेक्शन जिसमें गिल दिखाए गए हैं। A—प्रोटोब्रैंक (प्राक्गिल); B—फिलिब्रैंक (सूत्रगिल); C—यूलैमेलिब्रैंक (सुपटलगिल); D—सेप्टिब्रैंक (पटगिल)।
Blood vessel, रक्त वाहिका; interlamellar junction, अन्तरापटलिका संयोजन; septum with aperture, छिद्रयुक्त पट।

हालाँकि स्थलीय घोंघों में कंकत समाप्त हो जाता है और प्रावार एक फेफड़ा बनाकर श्वसन-कार्य अपने ऊपर ले लेता है। लैमेलिब्रैंकिएटा में बड़े कंकत युग्मित होते हैं; वे

न केवल श्वसनीय होते हैं वरन् पोषण में और प्रजनन-कोष्ठों के रूप में उनका बहुत महत्त्व होता है। कंकतों में अधिकाधिक बड़े और सम्मिश्र ठोस अंग के रूप में बनते जाने की प्रवृत्ति होती है। प्रोटोब्रैंकिएटा में जैसे **न्यूकुला** (*Nucula*) में गिल-सूत्र छोटे चपटे और एक-दूसरे से मुक्त रहते हैं, वे एक अक्ष के विपरीत पार्श्वों पर दो पंक्तियाँ बनाते हैं। फिलिब्रैंकिएटा में, जैसे **मिटिलस** में, गिल-सूत्र चपटे और समान्तर पड़े हुए होते हैं, ये बहुत ज्यादा लंबे हो गये होते हैं जिससे कि वे ऊपर की ओर को मुड़ कर एक अवरोही तथा एक आरोही शाखा बना लेते हैं; पास वाले सूत्र अलग-अलग होते हैं और अन्तरासिलियरी संयोजनों द्वारा जुड़े रहते हैं, ये संयोजन दृढ़ सिलिया की डिस्कों के बने होते हैं जिनसे सिलिया परस्पर बँधे-उलझे होते हैं, वास्तविक अन्तरासूत्री संयोजन नहीं होते; सूत्र की दो शाखाएँ भी योजी ऊतक के बने कुछेक कोमल, अ-वाहिकीय अन्तरापटलिका संयोजनों द्वारा जुड़ी होती हैं। यूलैमेलिब्रैंकिएटा में जैसे कि **लैमेलिडेंस** में, गिल-सूत्र समान्तर होते हैं, वे लम्बे होते और ऊपर की ओर को मुड़ गये हुए होते हैं जिससे अवरोही तथा आरोही शाखाएँ बन जाती हैं, पास वाले सूत्र वाहिकाओं से युक्त अन्तरासूत्री संयोजनों द्वारा पूरी तरह जुड़े होते हैं, ये संयोजन ऊतकों की छड़ों के बने होते हैं, सूत्र की दो शाखाएँ वाहिकायुक्त तथा सम्पूर्ण अंतरापटलिकीय संयोजनों द्वारा जुड़ी होती हैं। सेप्टिब्रैंकिएटा एक अलग-थलग वर्ग है और उनकी जीवन-विधि के कारण कंकत अपविकसित हो गए हैं तथा इनका प्रतिदर्श केवल उन क्षैतिज छिद्रिल पेशीय पटों द्वारा मिलता है जो अन्तर्वाही कक्ष को बहिर्वाही कक्ष से पृथक् करते हैं, पट ऊपर नीचे चलते हैं तथा जल को बलपूर्वक अन्तर्वाही कक्ष में को तथा बहिर्वाही अथवा अधिगिल कक्ष में से बाहर को निकालते हैं। श्वसन का कार्य-भार पूरी तरह प्रावार ने ले लिया है। सिफ़ैलोपोडा में सरल पिच्छाकार कंकत होते हैं जिसमें एक केन्द्रीय अक्ष होता है जिस पर हर पार्श्व में पत्ती-जैसी कोमल पटलिकाओं की एक पंक्ति होती है, इन पर सिलिया नहीं होते, और जल का अन्दर-बाहर को पम्प किया जाना पेशीय प्रावार के द्वारा होता है। डाइब्रैंकिएटा में दो कंकत होते हैं जबकि टेट्राब्रैंकिएटा में चार कंकत होते हैं। केवल **नौटिलस** को छोड़कर शेष सिफ़ैलोपोडा में जलेक्षिका नहीं होती।

आर्थिक महत्त्व—कुछ मोलस्का परोक्ष रूप में मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं जबकि उनमें से अधिकतर लाभ पहुँचाने वाले हैं। हानिकर मोलस्कों में स्लग तथा नौ-कृमि आते हैं। स्लग बगीचों और खेती को नुकसान पहुँचाते हैं, वे न केवल पत्तियाँ ही खाते हैं बल्कि जड़ों और तनों को काट-काटकर पेड़ों को बरबाद भी करते हैं। नौ-कृमि **टेरेडो** जल में डूबी हुई लकड़ी की चीजों में सूराख करता जाता है, यह जहाज के घाटों, पोतघाटों और नौकाओं को भारी क्षति पहुँचाता है। लेकिन संसार के विभिन्न भागों में मोलस्का मानव आहार का एक बहुत बड़ा साधन होते हैं; चीन, जापान, मलय, यूरोप और अमेरिका में लाखों मन क्लैम, सीपियाँ, स्कैलप और मसेल, खाए जाते हैं, ऑयस्टर (समुद्री सीपियाँ) एक स्वादिष्ट भोजन माने जाते हैं। अन्य

द्विकपाटी, ऑक्टोपस तथा कटल-फिश यूरोप में बहुत बड़ी मात्रा में भोजन प्रदान करते हैं। अलवणजलीय मसेल के कवच (सीप) संसार के सभी भागों में सीप के बटन बनाने के उद्योग में काम में लाए जाते हैं, ये इन कवचों की मुक्ताभ परतों से बनाए जाते हैं, अन्य हर प्रकार के बटनों पर धुलाई का असर पड़ता है लेकिन इन सीप के बटनों पर कोई असर नहीं पड़ता। अमेरिका में ऑयस्टरों के कवच तारकोल के साथ मिला कर सड़कें बनाने में इस्तेमाल किए जाते हैं और इन कवचों से मिलने वाला चूना मुर्गी की खुराक में इस्तेमाल होता है ताकि उनके अन्दर अण्ड-कवच ठीक से बन सकें। इनका यह चूना इमारतों के बनाने में भी इस्तेमाल होता है। संसार के सभी भागों में मोलस्कों के कवच जेवर आदि बनाने में काम आते हैं, कुछ भागों में **सिप्रिया** (*Cypraea*) (कौड़ी) के कवच मुद्रा और आभूषणों के रूप में काम में आते हैं। अनेक अलवणजलीय क्लैमों और समुद्री ऑयस्टरों (सीपियों) में मोती बनते हैं लेकिन सबसे मूल्यवान प्राकृतिक मोती **पिक्टाडा मार्गेरिटिफ़ेरा** तथा **पिक्टाडा मर्टेसाई** नामक मुक्ता-सीपियों से प्राप्त होते हैं, ये सीपियाँ हिन्द और प्रशान्त महासागरों के उष्णतर भागों में चीन, भारत, लंका और जापान के तटों के सहारे-सहारे पाई जाती हैं। मोती तब बनता है जब कोई छोटी बाहरी वस्तु जैसे कि बालू का कोई कण अथवा कोई एक परजीवी कवच तथा प्रावार के बीच में स्थान ले लेता है। बाहरी वस्तु को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर प्रावार द्वारा मुक्ताभ पदार्थ की संकेंद्री परतें जमाई जाती रहती हैं और इस प्रकार मोती बन जाता है। लेकिन मोती अधिकांश पीलेसिपोडों में बनते रहते हैं जिनमें अलवणजलीय क्लैम भी शामिल हैं। जापान में मोती-संवर्धन कृत्रिम रूप से भी किया जाता है—वे हाथ से एक छोटा ठोस अथवा तरल उत्तेजक सीपी के प्रावार के नीचे रख देते हैं, उससे बनने वाला एक वर्ष की आयु का मोती फिर वहाँ से निकालकर एक अन्य सीपी में रख दिया जाता है, प्रतिरोपण के तीन वर्ष बाद एक अच्छे साइज़ का मोती बन जाता है।

o

12

फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा
(PHYLUM ECHINODERMATA)

सभी इकाइनोडर्मेटा सिर्फ समुद्र में ही पाए जाते हैं। ये तट पर रहते हैं, मगर अधिकतर समुद्र के तल में पाये जाते हैं। ये सीलोमी जन्तु होते हैं जिनमें पंचतयी (pentamerous) अरीय सममिति पाई जाती है, अर्थात् शरीर को एक केंद्रीय अक्ष के चारों ओर व्यवस्थित पाँच भागों में बाँटा जा सकता है किंतु लार्वा द्विपार्श्वतः सममित होता है। शीर्ष नहीं होता। इनमें मीजोडर्म से प्राप्त कैल्सियमी **अस्थिकाओं** (ossicle) का बना एक अंतःकंकाल होता है, साथ ही बाह्य शूल (spines) भी होते हैं जो या तो गतिशील हो सकते हैं या स्थिर। एक बड़ी सिलियायित आँत्रसीलोम होती है जो परिआँतरांग गुहा तथा अनेक जटिल तंत्रों के रूप में बनी होती है; इनमें से एक तंत्र **जल-वाही तंत्र** (water vascular system) होता है जिसमें से कोमल **नाल-पद** (tube feet) निकले होते हैं। श्वसन-अंग सूक्ष्म गिल होते हैं जो सीलोम में से बाहर को उभरे रहते हैं। कोई निश्चित रक्त-वाही तंत्र नहीं होता, यह केवल रिक्तिका ऊतक (lacunar tissue) के रूप में प्रतिदर्शित होता है, कोई निश्चित उत्सर्गी अंग नहीं होते। तंत्रिका-तंत्र मुख के चारों ओर एक वलय बना लेता है जिसमें से तंत्रिकाएँ निकल कर अरीय रूप में चलती जाती हैं, यही मुख्य तंत्रिका-तंत्र है और एक्टोडर्म के सम्पर्क में रहता है, इसके अतिरिक्त एक गहरा तंत्रिका-तंत्र होता है जो मीजोडर्म में पड़ा होता है। लिंग प्रायः अलग-अलग होते हैं लेकिन मैथुन नहीं होता, गोनड अपने उत्पाद बाहर को विसर्जित करते हैं तथा निषेचन समुद्र-जल में होता है। इकाइनोडर्मेटा में परजीवी प्राणी नहीं होते। इनमें पुनरुद्भवन की बहुत ज्यादा क्षमता पाई जाती है।

इकाइनोडर्मेटा का विश्वव्यापी वितरण पाया जाता है और इस फाइलम में लगभग 5300 स्पीशीज़ पाई जाती हैं तथा अनेक की संख्या में फॉसिल प्राणी पाये गए हैं। यह फ़ाइलम पाँच क्लासों में विभाजित किया जाता है, ऐस्टेरॉयडिया (Asteroidea) अथवा स्टारफिश, ओफियूरॉयडिया (Ophiuroidea) अथवा ब्रिटल-स्टार, इकाइनॉयडिया (Echinoidea) अथवा समुद्री अर्चिन, होलोथ्यूरॉयडिया

(Holothuroidea) अथवा समुद्री-खीरे, और क्रिनॉयडिया (Crinoidea) अथवा समुद्री-लिली।

पेंटासेरस (*Pentaceros*) (स्टारफिश)

क्लास **ऐस्टेरॉयडिया** में वे इकाइनोडर्म आते हैं जिन्हें प्राय: स्टारफिश अथवा समुद्री-तारे कहते हैं। ये मुक्त विचरण करते, इनमें अरीय सममिति होती, तथा ये पट्तयी जंतु होते हैं जिनमें एक केन्द्रीय डिस्क को घेरती हुई पाँच भुजाएँ बनी होती हैं। ये चट्टानों तथा कदचों के ऊपर रेंगते अथवा समुद्र की तली पर रहते हैं।

पेंटासेरस को एक पृथक् जीनस नहीं माना जाता, बल्कि अब इसे **ओरिऐस्टर** (*Oreaster*) जीनस में ही शामिल किया जाता है। यह सामान्यत: हिन्द-प्रशांत महासागर तथा पश्चिमी द्वीपसमूह के चारों ओर पाई जाती है। बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में यह सीपियों को खाती रहती है और इस तरह मोती-उद्योग को यह भारी नुकसान पहुँचाती है। इसका व्यास लगभग 25 cm. होता है, देह बहुत मोटा और नियमित तारा-रूपी होता है। इसमें एक केन्द्रीय **डिस्क** होती है जिसमें सिरों पर पतली होती जाती हुई पाँच **भुजाएँ** अथवा अरें बनी होती है। ये भुजाएँ केन्द्रीय डिस्क से स्पष्ट रूप में सुसीमित नजर नहीं आतीं, डिस्क बड़ी होती है और भुजाएँ छोटी तथा चौड़े आधारों वाली होती हैं; इस आकृति को ताराकार (stellate) कहते हैं। भुजाओं के अक्षों को **अरें** (radii) कहते हैं, इनके बीच की जगहों को **अंतरा अरें** (interradii) कहते हैं। जन्तु की त्वचा कड़ी होती है, उसमें अनेक कैल्सियमी प्लेटें अथवा **अस्थिकाएँ** होती हैं, इकाइनोडर्मों में यह क्षमता है कि वे समुद्री जल से कैल्सियम कार्बोनेट लेकर अस्थिकाओं का कंकाल बना सकते हैं। दोनों प्रधान सतहें वास्तव में पार्श्वीय होती हैं, लेकिन ऊपरी सतह को **अपमुखी** (aboral) तथा निचली को **मुखी** (oral) कहते हैं, अपमुखी सतह उत्तल होती है और मुखी सतह चपटी।

मुखी सतह—मुखी सतह के केन्द्र में एक पँच-मुखी छिद्र **अरमुख** (actinostome) होता है जो एक मुख को घेरे रहता है, और इस मुख के चारों ओर एक झिल्लीदार **परिमुख** (peristome) होता है। अरमुख से अरीय रूप में निकली हुई भुजाओं में को चलती जाती हुई पाँच संकरी **वीथि खाँचें** बनी होती हैं, इनमें से हर एक खाँच का किनारा बनाते हुए उसके हर पार्श्व में गतिशील वीथि शूकों की दो-दो पंक्तियाँ होती हैं, शूल सुरक्षाकारी होते हैं तथा वीथि खाँचों के ऊपर आकर उसे बन्द कर लेते हैं। वीथि खाँच के प्रत्येक पार्श्व में पतले **नाल-पदों** (tube-feet, podia) की पंक्ति होती है, ये नालपद नलिकाकार होते हैं और इनके अन्तिम सिरे चूषक-जैसे होते हैं, नालपद फैल सकते और चलने के वास्ते अध:स्तर पर जमाए जा सकते हैं। हर वीथि खाँच के अन्त पर एक चटकीली लाल **आँख** होती है जो अनेक नेत्रकों की बनी होती है। आँख के ऊपर एक छोटा असंकुचनशील **संवेदी स्पर्शक** (sensory tentacle) होता है जो घ्राणीय होता है, यह एक रूपांतरित्त नालपद होता है, जिसमें ऐम्पुला नहीं होता।

अपमुख सतह—यह पीले से लेकर लाल-भूरे रंग की होती है और उस पर अनेक मोटे-मोटे शूल अनियमित पंक्तियों में बने होते हैं, सीमांतों में बड़े शूल होते हैं,
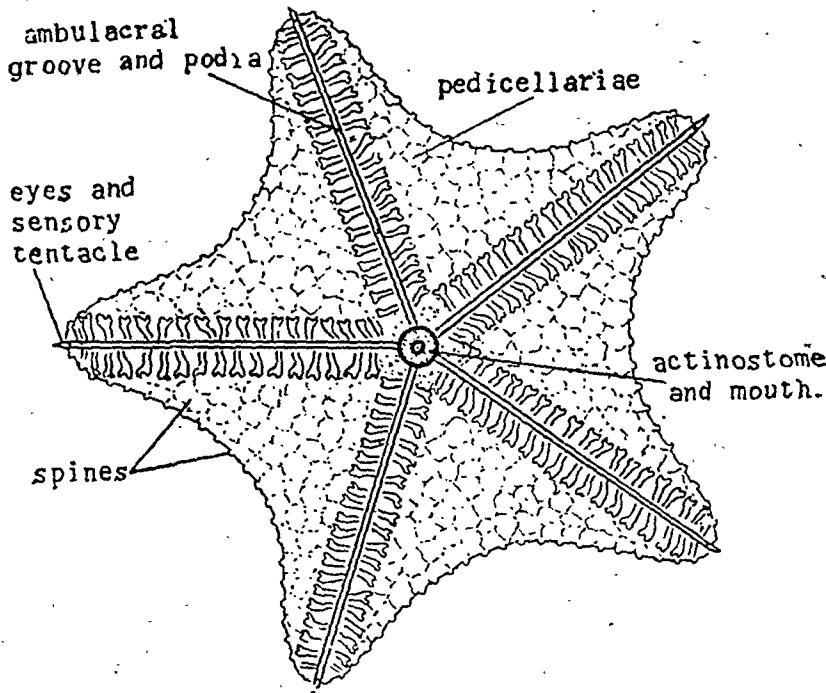
चित्र 512. **ओरिऐस्टर—मुखी सतह**

Ambulacral groove, वीथि खाँच; podia, नाल-पद; eyes and sensory tentacles, आँखें तथा संवेदी स्पर्शक; spine शूल; actinostome and mouth, अरमुख और मुख; pedicellariae, पेडिसेलेरिया।

सभी शूल अस्थिकाओं पर टिके होते हैं। शूलों के बीच-बीच में कोमल **पैप्यूला** (papulae) (गिल अथवा चर्मीया ब्रैंकिया) होते हैं जो अकेले-अकेले बाहर को उभरे होते हैं, ऊतक-रचना की दृष्टि से ये पतली हो गई देह-भित्ति के बने होते हैं और इनकी गुहाएँ सीलोम के साथ जारी रहती हैं। ये संकुचनशील होते हैं तथा श्वसन एवं उत्सर्जन का कार्य करते हैं। पैप्यूला केवल अपमुखी सतह पर ही होते हैं। केन्द्र में एक सूक्ष्म गुदा होती है गुदा के समीप दो भुजाओं के बीच में चपटी हल्के से रंग की **मैड्रेपोराइट** (madreporite) नामक एक प्लेट होती है जो असममित रूप में पड़ी होती है। पैप्यूलाओं के समीप और शूलों के इर्द-गिर्द मुखी तथा अपमुखी दोनों सतहों पर दो प्रकार की **पेडिसेलेरिया** (pedicellariae) होती हैं—या तो **सवृंत** या **अवृंत**। सवृंत पेडिसेलेरिया भी दो प्रकार की हो सकती हैं—सीधे जबड़ों से युक्त चिमटी-जैसी अथवा एक-दूसरे को काटते हुए जबड़ों से युक्त कैंची-जैसी। **सवृंत पेडिसेलेरिया** कैल्सियमी होती हैं तथा 3 अंशों की बनी होती हैं, एक आधारक अथवा **बेसिलर** (basilar) अंश होता है जो अविद्यमान भी हो सकता है और दो **जबड़े** (jaws) होते हैं; कुछ में जबड़े बेसिलर अंश पर टिके होते और उसी से संधिस्थ रहते

हैं, सीधे चिमटी प्रकार में जबड़े एक चिमटे की तरह एक सीधी रेखा में मिलते हुए होते हैं, जबकि काटती हुई कैंची प्रकार में वक्र आधार होते हैं, जो अतिव्याप्त होते
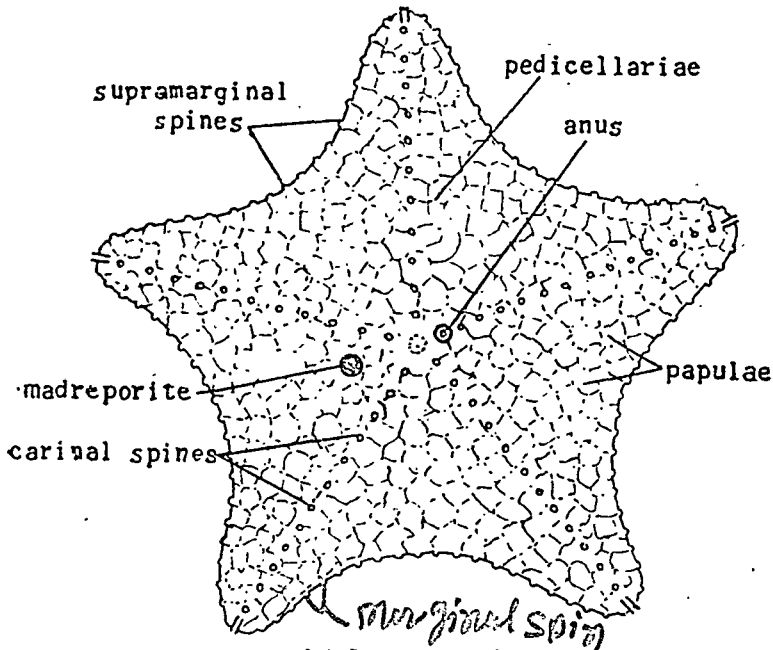
चित्र 513. ओरिएस्टर–अपमुखी सतह।
Supramarginal spines, अधिसीमांतीय शूल; pedicellariae. पेडिसेलेरिया; anus, गुदा; papulae, पैप्यूला, carinal spines, नौतल शूल, madreporite, मैड्रैपोराइट।

तथा बेसिलर अंश के प्रत्येक पार्श्व में बने होते हैं, वे आधार पर एक-दूसरे को एक कैंची की तरह काटते हुए होते हैं, दोनों प्रकार में जबड़े एक चिमटी की तरह तीन जोड़ी पेशियों के द्वारा चलाये जाते हैं—दो जोड़ी **अभिवर्तनी** पेशियाँ जबड़ों को बन्द करती और एक जोड़ी **अपवर्तनी** पेशियाँ उन्हें खोलती हैं। दूसरे प्रकार की पेडिसेलेरिया अवृंत होती हैं, ये दो या दो से अधिक छोटे गतिशील शूलों की बनी होती हैं जो एक ही अथवा सहलग्न अस्थिकाओं पर स्थित होती हैं, दोनों शूल एक-दूसरे के सम्मुख आते और अभिवर्तनी तथा अपवर्तनी पेशियों के द्वारा संडसी जैसे कार्य करते हैं। एक अन्य प्रकार की अवृंत पेडिसेलेरिया होती हैं जिन्हें **द्विकपाटी कूपिकीय पेडिसेलेरिया** (bivalved alveolar pedicellariae) कहते हैं, ये कैल्सियमी होती हैं और इनमें दो जबड़े होते हैं जो सीपियों के कपाटों की तरह क्षैतिजशः लम्बे हो गये होते हैं, ये जबड़े देह-भित्ति में भीतर को एक अंतःकंकालीय गढ़े अथवा कूपिका (alveolus) में नीचे बैठे हुए होते हैं, पेशियाँ जबड़े से चलती हुई अस्थिकाओं तक जाती हैं, ये पेशियाँ जबड़ों को खोलती और बन्द करती हैं, दोनों प्रकार की पेडिसेलेरिया फैलाई जा सकती तथा सिकोड़ी जा सकती हैं, ये बाह्य पदार्थों को हटाती जाती और देह की सतह को साफ रखती हैं, ये पैप्यूलाओं की सुरक्षा करतीं तथा

आक्रामक अंगों के रूप में कार्य करती हैं। **ओरिएस्टर** में अधिकतर द्विकपाटी कूपिकीय पेडिसेलेरिया होती हैं।
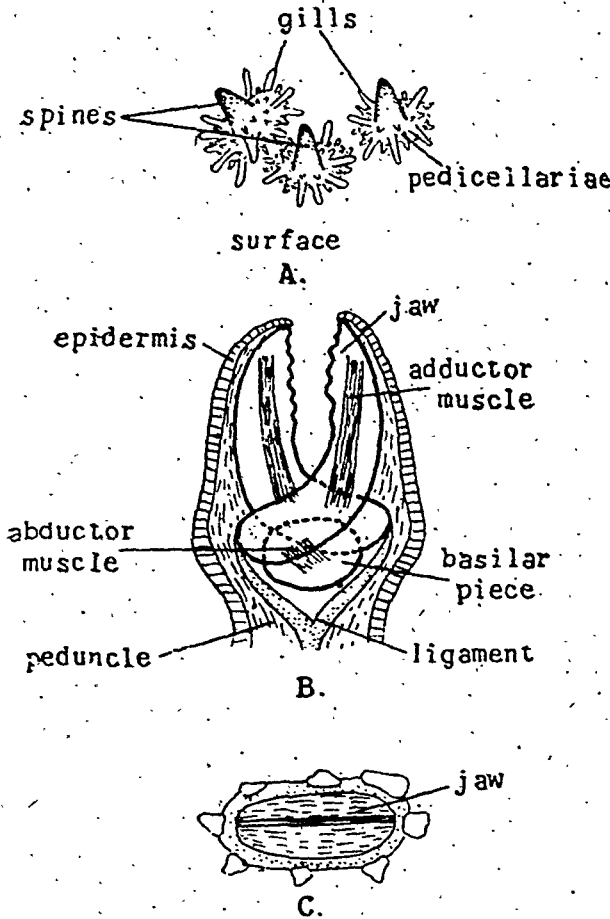
चित्र 514. विभिन्न पेडिसेलेरिया। A-सतही दृश्य, B-सवृंत पेडिसेलेरिया C-अवृंत द्विकपाटी पेडिसेलेरिया।

Gills, गिल; spines, शूल; pedicellaria, पेडिसेलेरिया; surface, सतह; epidermis, एपिडर्मिस; jaw, जबड़ा; adductor muscle, अभिवर्तनी पेशी; basilar, बेसिलर अंश; ligament, स्नायु; peduncle, वृंत; abductor muscle, अपवर्तनी पेशी।

देह-भित्ति—बाहर की ओर एक दोहरी-परत वाला किन्तु कोमल **क्यूटिकल** होता है जिसके नीचे सिलियायित स्तम्भाकार कोशिकाओं का बना एपिडर्मिस होता है। क्यूटिकल तथा एपिडर्मिस ये दोनों मिलकर शूलों, पेडिसेलेरिया पैप्यूलाओं तथा नाल-पदों को ढके रहते हैं लेकिन शूलों के ऊपर से एपिडर्मिस घिस कर समाप्त हो जाता है। एपिडर्मिस में ये सब रचनाएँ पाई जाती हैं: **तंत्रिका-संवेदी** कोशिकाएँ, बाहरी रंग को जन्म देने वाली वर्णक कणिकाएँ, दो प्रकार की ग्रंथिकोशिकाएँ एक तो श्लेष्मा के संरक्षी आवरण का स्राव करने वाली **श्लेष्मा ग्रंथियाँ**, और दूसरी **मूसाकार ग्रंथियाँ** (muriform glands) होती हैं जिनसे जंतुओं को छुए-छेड़े जाने

पर जिलेटिनी स्राव निकलता है। देह के ऊपर गिरते रहने वाला अपरद श्लेष्मा में फंस जाता है और फिर एपिडर्मिसी सिलिया के द्वारा बहाकर दूर कर दिया जाता है।
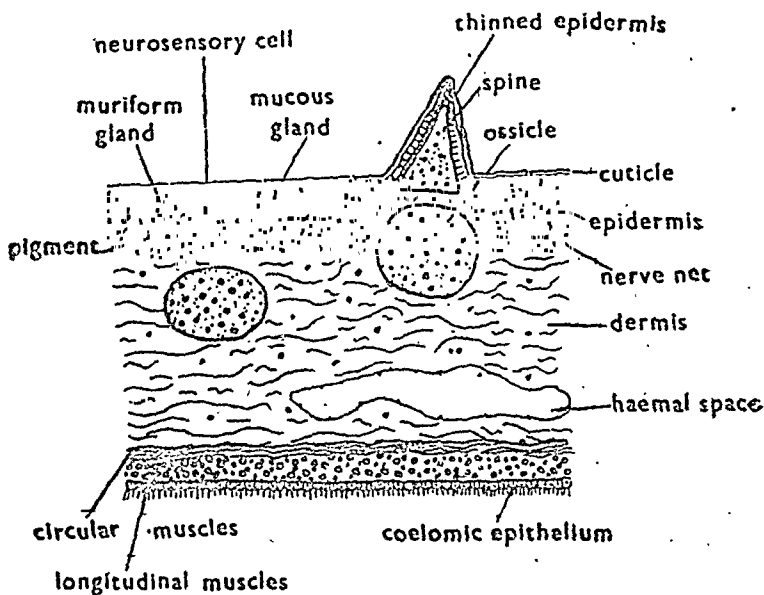
चित्र 515. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन।
Pigment, वर्णक; muriform gland, मूसाकार ग्रंथि; neurosensory cell, तंत्रिका-संवेदी कोशिका; mucous gland, श्लेष्मा-ग्रंथि; thinned epidermis, पतला हो गया एपिडर्मिस; spine, शूल; ossicle, अस्थिका; cuticle, क्यूटिकल; epidermis, एपिडर्मिस; nerve net, तंत्रिका-जाल; dermis, डर्मिस; haemal space, रुधिर गुहा; coelomic epithelium, सीलोमी एपिथीलियम; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियाँ; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ।

एपिडर्मिस के नीचे एक **तंत्रिका-जाल** होता है जो तंत्रिका कोशिकाओं की एक परत तथा तंत्रिका-तंतुओं का बना होता है। तंत्रिका-संवेदी कोशिकाओं से आने वाले तंतु तंत्रिका-जाल में आ मिलते हैं। तंत्रिका-परत अथवा तंत्रिका-जाल के नीचे एक कोमल **आधारक-झिल्ली** बनी होती है और उस झिल्ली के नीचे मीज़ोडर्म का बना और तंतुकी योजी ऊतक की संरचना वाला एक **डर्मिस** होता है। डर्मिस में पड़ी हुई और उसी से स्रावित हुई कैल्सियमी अस्थिकाएँ होती हैं जो एक मीज़ोडर्मी अंतःकंकाल बनाती हैं (अन्य अकशेरुकियों में यदि कोई अंतःकंकाल हुआ भी तो वह एक्टोडर्मीय होता है)। ऐस्टेरॉयडों की अस्थिकाएँ अलग-थलग होती हैं, लेकिन वे इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि वे एक जालिका-रचना बना लेती हैं जिसमें वे योजी ऊतक द्वारा परस्पर बंधी रहती हैं। समूची जालिका-रचना लचीली होती है और देह की आकृति को विशिष्ट पेशियों द्वारा बदला जा सकता है। बाह्य शूल अस्थिकाओं पर टिके रहते हैं।

डर्मिस में **परिरुधिर गुहाएँ** (perihaemal spaces) भी होती हैं। डर्मिस के नीचे एक परत **वृत्ताकार पेशी-तंतुओं** की होती है और फिर उसके नीचे एक परत **अनुदैर्घ्य पेशी-तंतुओं** की होती है, ये दोनों पेशी परतें ऐच्छिक होती हैं, ये पतली और अल्प-विकसित होती हैं, लेकिन अनुदैर्घ्य पेशियाँ अपमुख दिशा में अधिक विकसित होती हैं और वे भुजाओं को मोड़ने का कार्य करती हैं। पेशियों का अस्तर बनाते हुए पेरिटोनियम अथवा **भित्तीय सीलोमी एपिथीलियम** होता है जिसमें सिलिया होते हैं।

सीलोम—डिस्क में तथा भुजाओं में जिनमें प्रधान आंतरांग अंग होते हैं एक बड़ी परिआंतरांग सीलोम होती है। इकाइनोडर्मों की सीलोम आंत्रसीलोम होती है—वह आंत्र में से निकलने वाली बहिर्वृद्धियों के रूप में बनी होती है। सीलोम में एक सीलोमी तरल होता है जिसमें समुद्री पानी की तरह का लवण सांद्रण पाया जाता है, लेकिन यह कम क्षारीय होता है; सीलोमी तरल में अमीबीय कणिकाएँ अथवा **अमीबाणु** पाये जाते हैं जो सीलोमी एपिथीलियम से उत्पन्न हुए होते हैं, ये भक्षिकोशिक होते हैं तथा पैप्यूलाओं में से उत्सर्गी पदार्थ को बाहर निकालते हैं (इकाइनोडर्मों में कोई विशिष्ट उत्सर्गी अंग नहीं होते), कुछ अमीबाणुओं में श्वसन-वर्णक होता है और वे श्वसन तथा परिसंचरण में सहायता करते हैं। सीलोम का अस्तर बनाने वाला भित्तीय पेरिटोनियम सिलियायुक्त होता है, सिलिया के स्पंदन से सीलोमी एपिथीलियम का परिसंचरण होता है। सामान्य रूप में परिसंचरण धारा अपमुखी दीवार के सहारे-सहारे बाहर की ओर को और पार्श्व भित्तियों के सहारे-सहारे डिस्क की ओर को बहती है।

सीलोम से एक वीथि-तंत्र (ambulacral system), एक अक्षीय साइनस, परिरुधिर बहु साइनस, तथा गोनडों को समेटे रहने वाले साइनस भी बनते हैं।

पाचन-तंत्र—आहार-नाल अक्षीय होती है जिसमें से अनेक अंधवर्ध निकले होते हैं। आहार-नाल का मुख्य भाग डिस्क में पड़ा होता है लेकिन उसके अंधवर्ध हर भुजा में को फैले होते हैं। मुख सतह पर **अरमुख** एक मुख में को खुलता है जो एक दृढ़ वृत्ताकार **परिमुख झिल्ली** के केन्द्र में स्थित रहता है; इस मुख में अरीय तंतु तथा संवरणी पेशियाँ होती हैं। मुख ऊपर को एक छोटी, चौड़ी ग्रसिका में को खुलता है जो एक विशाल पाँच-पालियों वाले **आगम-जठर** में को खुलती है, इस आगम-जठर की दीवारें पतली और वलन पड़ी हुई होती हैं तथा योजी ऊतक एवं पेशियों की बनी पाँच जोड़ी आन्त्रयोजनियाँ जिन्हें **जठर-स्नायु** भी कहते हैं इस आगम-जठर को स्थान पर साधे रहती हैं। एक जोड़ी जठर-स्नायु आगम-जठर को हर भुजा में बने एक वीथि-कटक की अस्थिकाओं से जोड़े रखते हैं। आगम-जठर में ग्रंथि कोशिकाएँ होती हैं जो श्लेष्मा का स्राव करती हैं, यह आगम-जठर सीलोमी तरल के दबाव के कारण पलट कर बाहर भी आ सकता है और फिर यह आहार के चारों ओर लिपट कर पुनः शरीर के भीतर सिकोड़ लिया जाता है। आगम-जठर के ऊपर एक-एक लघुतर, चपटा और पंचभुजीय **निर्गम-जठर** होता है जिसमें से दस लम्बे ग्रंथीय **निर्गम-जठरीय अंधनाल** बने होते हैं—हर भुजा में दो-दो। निर्गम-जठर का प्रत्येक कोण अरीयतः एक वाहिका

के रूप में बढ़ गया होता है जो दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है, और इनमें से हर शाखा एक निर्गम-जठरीय अंधनाल में को चलती जाती है। निर्गम-जठरीय अंधनाल में शाखा के हर पार्श्व में हरे से रंग की ग्रंथि-पालियों अथवा ग्रंथि-कोष्ठों की अनुदैर्घ्य शृंखलाएँ बनी होती हैं। दोनों सहलग्नी निर्गम-जठरीय अंधनालें हर भुजा के अंत तक चलती जाती हैं, और हर अन्धनाल अपमुख दीवार से दो अनुदैर्घ्य आंत्र-योजनियों के द्वारा लटकी रहती है। जठर-निर्गमी अन्धनालें पाचन-ग्रंथियाँ होती हैं, उनसे एक तरल निकलता है जो कशेरुकियों के अग्न्याशय रस जैसा होता है, यह तरल प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेटों तथा वसाओं का पाचन करता है, अन्धनालें पोषण का भण्डार भी बना कर रखती हैं। जठर-निर्गमी अंधनालों में चार प्रकार की कशाभयुक्त एपिथीलियम कोशिकाओं का अस्तर बना होता है जो इस प्रकार है: धारा-उत्पादक कोशिकाएँ, एन्जाइम-उत्पादक कणिकीय स्रावक कोशिकाएँ, श्लेष्मा कोशिकाएँ, तथा भण्डार कोशिकाएँ। धारा-उत्पादक कोशिकाएँ जठर-निर्गमी अन्धनालों की वाहिनियों
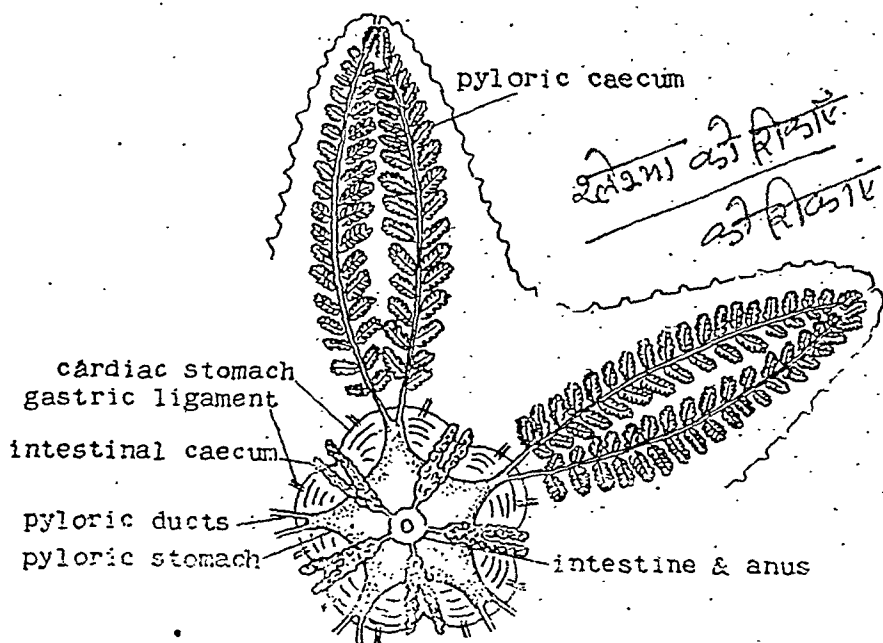
चित्र 516. पाचन-तंत्र—अपमुख दृश्य।
Pyloric caecum, जठर-निर्गमी अन्धनाल; intestine and anus, अंतड़ी और गुदा; pyloric stomach, निर्गमी-जठर; pyloric ducts, जठर-निर्गमी वाहिनियाँ; intestinal caecum, आंत्र अंधनाल; gastric ligament, जठर स्नायु; cardiac stomach, आगम जठर।

में इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि वे भीतर आने वाली तथा बाहर जाने वाली दोनों ही तरल-धाराओं को जन्म देती हैं। भण्डार कोशिकाओं में उनके दूरस्थ भागों में हरा वर्णक होता है, ये कोशिकाएँ सुरक्षित आहार को ग्लाइकोजन के रूप में भण्डार बना

कर रखती हैं । निर्गम-जठर के ऊपर एक बहुत छोटी, चौड़ी पाँच-पार्श्वों वाली अंतड़ी होती है जिसमें से अन्तरा-अरीय समतलों में भूरे रंग की **आंत्र-अंधनालों** की पाँच वाहिनियाँ निकलती हैं, ये आंत्र-अन्धनालें युग्मित होती हैं और डिस्क के भीतर भुजाओं के बीच में निर्गमी जठर के ऊपर पड़ी होती हैं, इनमें छोटे-छोटे थैली-जैसे अंधवर्ध बने होते हैं जिनमें से एक भूरे तरल का स्राव होता है जो कदाचित् उत्सर्गी होता है। अंतड़ी के ऊपर एक छोटा शंक्वाकार मलाशय होता है जो अपमुख पर एक गुदा द्वारा खुलता है । आहार-नाल बहुत छोटी होती है और मुख दिशा से अपमुख दिशा में को चलती जाती है; समूचे पाचन-पथ में एपिथीलियम कोशिकाओं के अस्तर में बने कशाभों द्वारा शक्तिशाली धाराएँ पैदा होती हैं । ऊतक-संरचना की दृष्टि से आहार-नाल देह-भित्ति से मिलती-जुलती होती है ।
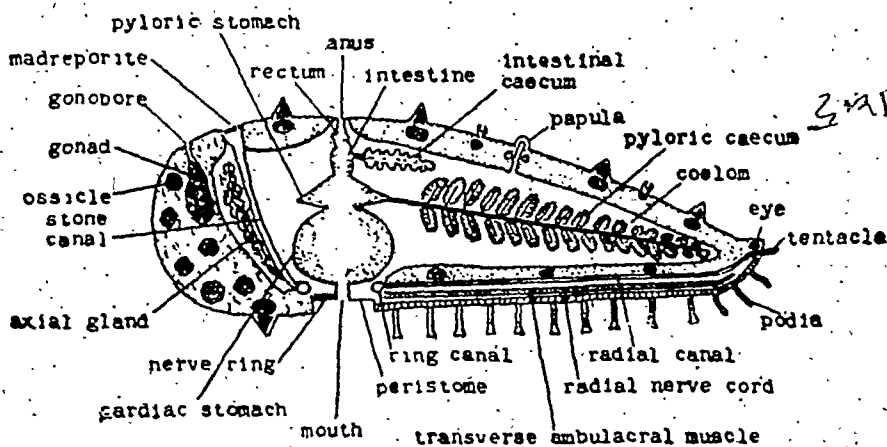
चित्र 517. अर और मैड्रेपोराइट के अन्तर-अर से लिया गया खड़ा सेक्शन (V.S.) ।

Anus, गुदा; intestine, अंतड़ी; intestinal caecum, आंत्र अन्धनाल; papula, पैप्यूला; pyloric caecum, निर्गमी अन्धनाल; coelom, सीलोम; eye, नेत्र; tentacle, स्पर्शक; podia, नालपद; radial canal, अरीय नलिका; radial nerve cord, अरीय तंत्रिका-रज्जु; transverse ambulacral muscle, अनुप्रस्थ वीथि पेशी; ring canal, वलय नलिका; peristome, परिमुख; mouth, मुख; cardiac stomach, आगम जठर; nerve ring, तंत्रिका वलय; axial gland, अक्षीय ग्रन्थि; stone canal, अश्म नलिका; ossicle, अस्थिका; gonad, गोनड; gonopore, जनन-छिद्र; madreporite, मैड्रेपोराइट; pyloric stomach, निर्गमी जठर ।

इसका आहार ऐसे जंतुओं का होता है जो पकड़े जा सकते हैं, यह अधिकतर क्रस्टेशियनों, मोलस्कों, मछलियों तथा मृत जंतुओं के शरीर तक का भोजन करती है । छोटे जंतु निगल लिए जाते हैं लेकिन ज्यादा बड़े जानवरों को नालपद पकड़ लेते तथा भुजाएँ आहार्य-जंतु के ऊपर मुड़ जाती हैं; सीपियों को भुजाओं द्वारा पकड़

लिया जाता और उनके कवचों को नालपद खोल लेते हैं, जठर उलट कर बाहर आ जाता है किन्तु वह जठर-स्नायुओं द्वारा जुड़ा रहता है; फिर वह शिकार के नरम भागों को भीतर लपेट लेता है। जठर बहुत ही छोटे-छोटे विदरों में से गुज़र सकता है, यहाँ तक कि मोलस्क के कस कर बन्द कवच-कपाटों के बीच में से भी होकर अन्दर को जा सकता है। आहार के नरम भागों पर श्लेष्मा एवं निर्गमी जठर-अन्ध-नालों के रसों द्वारा क्रिया होती है। श्लेष्मा का स्राव आगमी-जठर से होता है जब कि प्रोटिएज़, ऐमाइलेज़ और लाइपेज़ का स्राव जठर-निर्गमी अंधनालों से होता है। शरीर के बाहर धीरे-धीरे कोशिकाबाह्य पाचन होता है और अंशतः पचा हुआ अर्ध-तरल पदार्थ उस समय भीतर ले लिया जाता है जबकि जठर को भीतर सिकोड़ लिया जाता है, शेष पाचन जठर और जठर-निर्गमी अन्धनालों के भीतर पूर्णतः अंतःकोशिक रूप में होता है। जठर-निर्गमी अन्धनालें कदाचित् अवशोषण का प्रथम स्थान होती हैं। अधिशेष पचा भोजन जठर-निर्गमी अंधनालों की संचीय कोशिकाओं में सुरक्षित भर लिया जाता है। बिना पचा हुआ भाग मुख के द्वारा बाहर निकाल फेंक दिया जाता है, गुदा के द्वारा बहुत ही कम निकाला जाता है।

वीथि-(Ambulacral) अथवा **जलवाही-तन्त्र** (water vascular system) इकानोडर्मों का सबसे अधिक विभेदक लक्षण होता है। यह तन्त्र अन्य किसी भी प्राणि-वर्ग में नहीं पाया जाता। ऐस्टेरॉयडों में जल-वाही तन्त्र के द्वारा चलन-गति सम्भव होती है जिसमें यह तन्त्र द्रवस्थैतिक रूप में चालित नालपदों को तरल पहुँचाता है, हालाँकि इसका मूल कार्य कदाचित् आहार-ग्रहण से सम्बन्धित था। वीथि-तन्त्र सीलोम का एक विशेषित भाग है। अपमुख सतह पर डिस्क के ऊपर एक
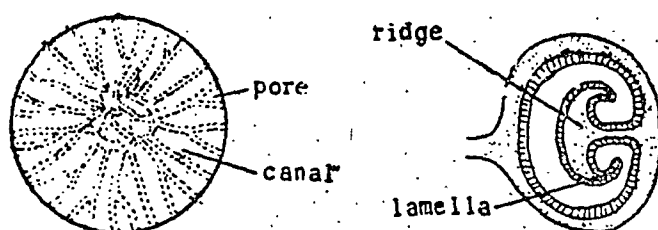
चित्र 518. A—मैड्रेपोराइट; B—अश्म-नलिका का अनुप्रस्थ सेक्शन।
Pore, छिद्र; canal, नलिका; ridge, कटक; lamella, पटलिका।

हल्के से रंग का वृत्ताकार **मैड्रेपोराइट** होता है। इसके ऊपर एक सिलियायित एपिथीलियम होता है; यह मैड्रेपोराइट लगभग 200 छिद्रों तथा छिद्र-नलिकाओं से युक्त एक चलनी होती है और ये छिद्र तथा छिद्र-नलिकाएँ नीचे एक छोटे थैली-जैसे **ऐम्पुला** में को खुलती हैं जो मैड्रेपोराइट के नीचे बना होता है। ऐम्पुला एक S-की आकृति की **मैड्रेपोरिक** अथवा **अश्म-नलिका** (stone canal) में को खुलता है। अश्म-नलिका की दीवार में कैल्सिकृत छल्ले बने होते हैं और इसमें ऊँची सिलियायित कोशिकाओं का अस्तर बना होता है। इस अश्म-नलिका की अवकाशिका में एक

कटक होता है जिसमें दो सर्पिलतः लिपटी हुई पटलिकाएँ होती हैं, इन पटलिकाओं के द्वारा परिसंचरण सुनिश्चित हो जाता है। अश्म-नलिका नीचे मुखी सतह की ओर
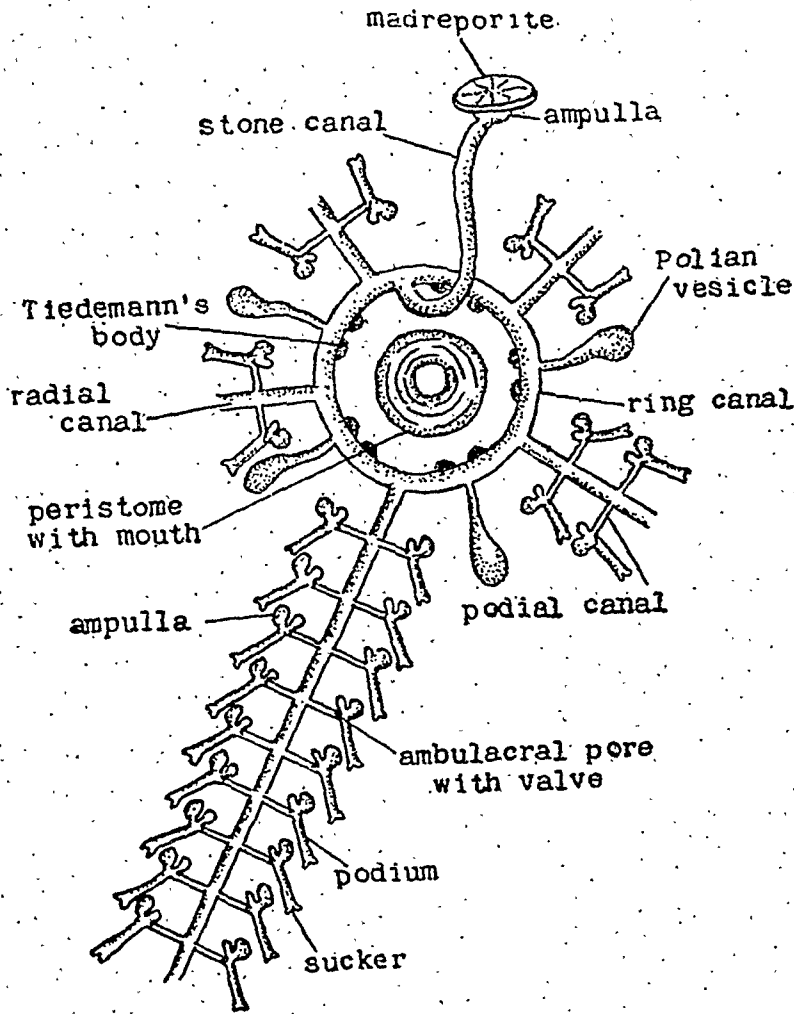
चित्र 519. वीथि-तन्त्र।

Madreporite, मैड्रेपोराइट; ampulla, ऐम्पुला; polian vesicle, पोलियन आशय; ring canal, वलय नलिका; podial canal, नालपद नलिका; ambulacral pore with valve, कपाट से युक्त वीथि-छिद्र; podium, नालपद; sucker, चूषक; ampulla, ऐम्पुला; peristome with mouth, मुख से युक्त परिमुख; radial canal, अरीय नलिका; Tiedemann's body, टिडेमान-पिंड; stone canal, अश्म-नलिका।

को चलती जाती है और एक पाँच भुजा वाली **वलय-नलिका** (ring canal) में को खुलती है। वलय-नलिका में से चार **पोलियन** आशय (polian vesicles) निकलते हैं, हर अन्तरा-अर में एक-एक, केवल मैड्रीपोरिक अन्तरा-अर छूट जाती है। ये आशय पतली दीवार वाले थैले होते हैं जिनमें लम्बी गर्दनें होती हैं और वे तरलों के आगार

होते हैं। वलय नलिका की भीतरी दिशा में जुड़े हुए 10 छोटे-छोटे ग्रन्थि-समान **टिडेमान-पिंड** (Tiedemann's bodies) होते हैं, ये खोखले होते और इनमें भीतर से वलन पड़े होते हैं। कभी-कभी कुछ स्पीशीज़ में इनमें से एक पिंड अविद्यमान होता है और 9 पिंड रह जाते हैं, जबकि कुछ में आठ ही हो सकते हैं। टिडेमान-पिंडों के कार्य के बारे में जानकारी नहीं है, कुछ लोगों का यह दावा कि ये लिम्फ-ग्रन्थियाँ हैं और अमीबाणुओं का उत्पादन करते हैं बेबुनियाद है। वलय नलिका से पाँच **अरीय नालें** निकलती हैं, वे पाँचों भुजाओं के अन्तिम सिरों तक पहुँचती हैं जहाँ वे अन्तस्थ स्पर्शक की अवकाशिका में समाप्त हो जाती हैं। हर अरीय नलिका में उसके दोनों पार्श्वों में **पाद-नलिकाओं** की एक-एक पंक्ति होती है, हर पाद-नलिका एक **नालपद** से आकर जुड़ जाती है; हर नालपद में उससे जुड़े हुए दो थैली-जैसे पेशीय **ऐम्पुला** होते हैं। नालपद वीथि-खाँच के हर पार्श्व में एक-एक रेखीय श्रृंखला में व्यवस्थित होते हैं। हर नालपद के बाहर-बाहर उसी तरह का सिलियायित एपिथीलियम होता है जैसा कि देह-भित्ति का, और भीतरी अस्तर सीलोमी एपिथीलियम का बना होता है; इन दोनों परतों के बीच में अनुदैर्घ्य पेशी-तन्तु तथा योजी ऊतक होते हैं, वृत्ताकार पेशी-तन्तु नालपदों में नहीं होते। हर ऐम्पुला एक छोटा-सा पेशीय थैला होता है, इसकी दीवार वृत्ताकार और अनुदैर्घ्य पेशी-तन्तुओं तथा योजी ऊतक की बनी होती है, और इसकी भीतरी तथा बाहरी सतहें सीलोमी एपिथीलियम से ढकी होती हैं। हर पाद-नलिका और उसके नालपद के बीच में एक **वीथि-छिद्र** (ambulacral pore) होता है जिस पर एक वाल्व भी बना रहता है। नालपद देह से बाहर को उभरे रहते हैं और वीथि-खाँच के हर पार्श्व में उनकी एक-एक पंक्ति बनी होती है, हर नालपद के अन्त में एक चूषक होता है, बस कुछ थोड़े से अन्तिम नालपद ऐसे होते हैं जिनमें चूषक नहीं होते और वे संवेदी होते हैं। समूचे वीथि-तन्त्र में सिलियायित कोशिकाओं का अस्तर बना होता है।

वीथि-तन्त्र के सिलिया के स्पन्दन से समुद्र-जल मैड्रेपोराइट में से भीतर को प्रविष्ट होता है, और फिर विभिन्न नलिकाओं में से होता हुआ यह नालपदों और उनके ऐम्पुलाओं में को पहुंच जाता है। पेशीय ऐम्पुला अधिक समुद्री-जल को नालपदों में को धक्का देकर उन्हें फैला देते हैं, तब नालपद अपने चूषकों द्वारा अधःस्तर पर जमा दिए जाते हैं। जब नालपद अधःस्तर के सम्पर्क में आता है तो चूषक का केन्द्र भीतर को सिकोड़ा जाता है जिससे चिपके रहने के वास्ते एक निर्वात बन जाता है। नालपद के अन्तिम सिरे से एक चिपकने वाला स्राव भी निकलता है। अधःस्तर से चिपक जाने के बाद नालपद की अनुदैर्घ्य पेशियाँ सिकुड़ती हैं जिसके कारण नालपद छोटे हो जाते और उनका जल ऐम्पुलाओं में को पहुँच जाता है। सारे नालपद एक साथ सिकुड़ते और स्टारफिश को आगे को खींच लेते हैं। नालपदों की क्रिया भली-भांति समन्वित होती है। फिर चूषक शिथिल हो जाते हैं, नालपद छूट जाते हैं और पुनः ऐम्पुलाओं द्वारा उनमें जल पम्प किए जाने के कारण वे आगे को फैलते और वे दोबारा नीचे जम जाते तथा दोबारा सिकुड़ते हैं, इस प्रकार चलन-

गति उत्पन्न होती है। जब समुद्र-जल ऐम्पुलाओं द्वारा नालपदों में को पहुँचाया जाता है तब वे द्रवस्थैतिक दबाव के द्वारा लम्बे हो जाते हैं लेकिन पार्श्वों में नहीं फैलते। वीथि-छिद्रों पर बने हुए वाल्व समुद्री-जल को उल्टा अरीय नलिकाओं में पम्पित होने से रोकते हैं। जब नालपदों की अनुदैर्ध्य पेशियाँ संकुचित होती हैं तो समुद्री-जल ऐम्पुलाओं में को लौट आता है। चलने के दौरान एक या दो भुजाएँ सदा आगे की ओर को रहती हैं, और सभी भुजाओं के नालपद एक ही दिशा में गति करते हैं। यदि तमाम नालपद एक साथ संकुचित हो जाते हैं तो समुद्री-जल मैड्रेपोराइट में से बाहर को निकलता है जो इस प्रकार एक सुरक्षा-वाल्व जैसा कार्य करता है।

अक्षीय-सम्मिश्र (Axial complex)—अक्षीय-सम्मिश्र तीन भागों का बना होता है, एक **अक्षीय साइनस** जो एक सीलोमी गुहा होती है, एक अश्म-नलिका, एक **अक्षीय ग्रन्थि**; अश्म-नलिका तथा अक्षीय ग्रन्थि अक्षीय साइनस में बन्द होती हैं। मुख की ओर अक्षीय साइनस एक वृत्ताकार **अधःतन्त्रिका वलय साइनस** (hyponeural ring sinus) में को खुलता है जिसमें से एक **अरीय अधः तन्त्रिका साइनस** (radial hyponeural sinus) प्रत्येक भुजा में को जाता है। अपमुखतः यह अक्षीय साइनस एक पंचभुजीय **अपमुख** अथवा **जनन-साइनस** में को खुलता है जिसमें से पाँच जोड़ी **जननांगी शाखाएँ** (genital branches) निकलती हैं जिनमें गोनड बन्द रहते हैं। उससे और अधिक अपमुखतः यह अक्षीय साइनस अश्म-नलिका के ऐम्पुला में को खुलता है जो मैड्रेपोराइट के नीचे पड़ा रहता है और उसमें को खुलता होता है।

अक्षीय ग्रन्थि एक गहरे रंग का लम्बा स्पन्जी पिंड होती है जो अनेक गुहाओं तथा सीलोम कोशिकाओं से युक्त एक योजी ऊतक की बनी होती है। इसमें से एक अपमुखी प्रसार **शीर्ष प्रवर्ध** (head process) निकला होता है जो **पृष्ठ कोश** (dorsal sac) नामक एक सीलोमी गुहा के भीतर पड़ा रहता है। पृष्ठ कोश संकुचनशील होता है, यह मैड्रेपोराइट के नीचे पड़ा होता है। अक्षीय ग्रन्थि के कार्य के बारे में जानकारी नहीं है। अक्षीय साइनस के साथ-साथ जननांगी साइनस एवं अधः तंत्रिका वलय साइनस व उन सब की शाखाएँ सीलोम के भाग होती हैं तथा उनमें सिलियायित एपिथीलियम का अस्तर बना होता है; इन सब को एक-साथ मिलाकर प्रायः **परिरुधिर तन्त्र** (perihaemal system) कहते हैं क्योंकि उनके भीतर वाही अथवा रुधिर तन्त्र बन्द होता है।

वाही तन्त्र (Vascular system)—वाही तन्त्र को **रुधिर तंत्र** (haemal system) अथवा **रुधिर रिक्तिका तंत्र** (blood lacunar system) भी कहते हैं; यह एक विचित्र प्रकार का परिसंचरण-तंत्र होता है जिसकी प्रकृति अन्य जन्तुओं की हीमोसील जैसी होती है, क्योंकि ये दोनों ही ब्लास्टोसील से व्युत्पन्न होते हैं। यह तन्त्र एक-दूसरे में खुलती हुई गुहाओं का बना होता है जिसमें कोई एपिथिलियमी अस्तर नहीं होता, और तो और ये नलिकाएँ परिरुधिर तन्त्र की सीलोमी गुहाओं में बन्द रहती हैं; नलिकाओं में सीलोमकोशिकाओं से युक्त एक सीलोमी तरल भरा होता है। ये

नलिकाएँ रक्तवाहिकाएँ नहीं होतीं वरन् सीलोम कोशिकाओं के द्वारा वे पचे हुए भोजन को अपने में वितरित करती हैं।
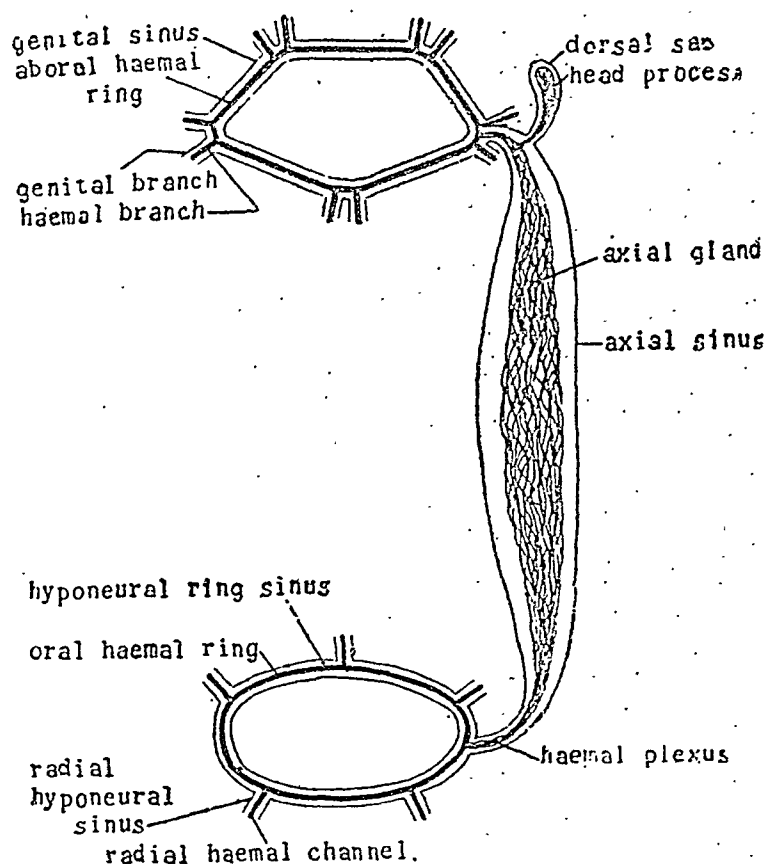
चित्र 520. रुधिर-तन्त्र के साथ-साथ अक्षीय सम्मिश्र।
Genital sinus, जननांगी साइनस; aboral haemal ring, अपमुख रुधिर वलय; dorsal sac, पृष्ठ कोश; head process, शीर्ष प्रवर्ध, axial gland, अक्षीय ग्रन्थि; axial sinus, अक्षीय साइनस; hyponeural ring sinus, अध: तन्त्रिका वलय साइनस; oral haemal ring, मुखीय रुधिर वलय; haemal plexus, रुधिर जालक; radial haemal channel, अरीय रुधिर नलिका; radial hyponeural sinus, अरीय अध:तन्त्रिका साइनस।

वाही-तन्त्र का केन्द्र अक्षीय ग्रन्थि होती है जिसके साथ **रुधिर जालक** के द्वारा एक **मुखीय रुधिर वलय** जुड़ा होता है जो अध:तन्त्रिका वलय साइनस के भीतर पड़ा होता है। मुखीय रुधिर वलय से पाँच **अरीय रुधिर नलिकाएँ** निकलती हैं जो अरीय अध:तन्त्रिका साइनसों के भीतर पड़ी रहती और भुजाओं में को जाती हैं। अपमुखत: अक्षीय ग्रन्थि एक पंचभुजी **अपमुख रुधिर वलय** (aboral haemal ring) में को खुलती

है जो जननांगी साइनस के भीतर पड़ा होता है। अपमुखी रुधिर वलय से पाँच जोड़ी **रुधिर शाखाएँ** (haemal branches) निकलती हैं जो जननांगी शाखाओं के भीतर पड़ी होती हैं और वे गोनडों तक जाती हैं।

अक्षीय ग्रंथि वाही-तंत्र का केन्द्र होती है और उसे प्रायः हृदय माना जाता है, वाही-तन्त्र के भीतर के सीलोमी तरल में धीमा परिसंचरण होता रहता है, प्रधान परिसंचरण सीलोमी गुहाओं के सिलिया द्वारा सम्पन्न होता है।

stone canal

axial sinus

axial gland

चित्र 521. अक्षीय सम्मिश्र का अनुप्रस्थ सेक्शन। Stone canal, अश्म-नलिका; axial sinus, अक्षीय साइनस; axial gland, अक्षीय ग्रन्थि।
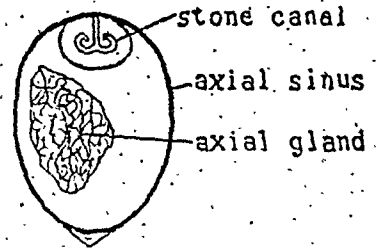
उत्सर्जन—इकाइनोडर्मों में कोई निश्चित उत्सर्गी अंग नहीं होते। अमीबाणु शरीर में से अपशिष्ट पदार्थों को ले लेते और पैप्युलाओं में पहुँच जाते हैं जहाँ वे दूरस्थ सिरों पर एकत्रित हो जाते हैं, तब पैप्यूलाओं के सिरे टूट कर अलग हो जाते और अपशिष्ट से लदे अमीबाणु बाहर की ओर विसर्जित हो जाते हैं। कदाचित् आंत्र-अंधनालें भी उत्सर्गी होती हैं। नाइट्रोजनी अपशिष्ट में अधिकांश ऐमोनिया यौगिकों, यूरिया तथा क्रीऐटिनीन का होता है; लेकिन इसमें यूरेट लगभग नहीं होते।

श्वसन—श्वसन गिलों अथवा पैप्यूलाओं द्वारा सम्पन्न होता है तथा साथ ही नालपदों द्वारा भी होता है। इन सबकी दीवारें पतली होती हैं और इनकी गुहाएँ सीलोम के साथ जारी रहती हैं। इस तरह सीलोमी तरल पर बाहरी जल का प्रभाव पड़ता और गैस-विनिमय होता है।

तंत्रिका-तंत्र—इकाइनोडर्मों का तंत्रिका-तंत्र अगैंग्लियानित होता है, ऐस्टेरॉयडों में यह 3 परस्पर-संबंधित तंत्रों का बना होता है।

1 तंत्रिका-तंत्र का मुख्य भाग एपिडर्मिस के नीचे बना हुआ एक **मुख-तंत्र** (oral system) होता है। यह एक तंत्रिका-वलय, अरीय तंत्रिकाओं और एक अधःएपिडर्मिसी तंत्र का बना होता है। इसमें एक पंचभुजीय परिमुखीय **तंत्रिका वलय** (nerve ring) होता है जो परिमुख झिल्ली में पड़ा होता है, इस तंत्रिका-वलय से पाँच **अरीय तंत्रिका रज्जुएं** (radial nerve cords) निकलती हैं, प्रत्येक रज्जु तंत्रिका ऊतक का बना एक मोटा V की आकृति का कटक होता है जो वीथि-खाँच के ऊपर से चलता जाता है और अन्तस्थ स्पर्शक पर समाप्त हो जाता है। अरीय तंत्रिका-रज्जुओं में द्विध्रुवी तथा बहुध्रुवी गैंग्लियॉन-कोशिकाएँ होती हैं, ये देह-भित्ति की तंत्रिका-परत के साथ जारी रहती हैं, इनमें से तंत्रिकाएँ निकल कर तमाम देह-भित्ति उपांगों को जाती हैं। अधःएपिडर्मिसी तंत्रिका परत एक जालक के रूप में होती है, जो समूचे एपिडर्मिस के नीचे एक तंत्रिका-परत अथवा **तंत्रिका-जाल**

(nerve net) बनाती है, यह तंत्रिका-जाल हर नालपद के नीचे एक तंत्रिका-वलय के रूप में मोटा हो जाता है।
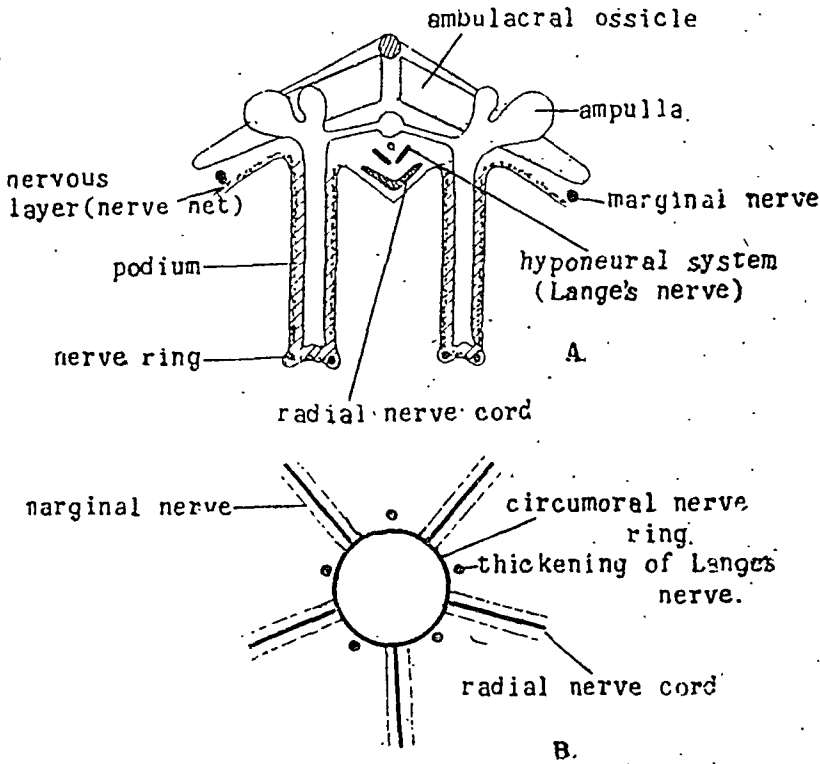
चित्र 522. तंत्रिका-तंत्र। A. सेक्शन में; B. मुखीय दृश्य। Ambulacral ossicle, वीथि-अस्थिका; ampulla, ऐम्पुला; marginal nerve, सीमाँतीय तंत्रिका; hyponeural system (Lange's nerve), अधः तंत्रिका तंत्र (लाँगे-तंत्रिका); radial nerve cord, अरीय तंत्रिका रज्जु; nerve ring, तंत्रिका-वलय; podium, नालपद; nervous layer (nerve net), तंत्रिका परत (तंत्रिका-जाल); marginal nerve, सीमांतीय तंत्रिका; circum-oral nerve ring, परिमुख तंत्रिका वलय; thickening of Lange's nerve, लाँगे-तंत्रिका का स्थूलन; radial nerve cord, अरीय तंत्रिका-रज्जु।

2. वीथि-खाँचों के बाहरी सीमाँतों के सहारे-सहारे हर भुजा में अधः एपिडर्मिसी तंत्रिका जाल मोटा होकर दो **सीमाँतीय तंत्रिकाएँ** (marginal nerves) अथवा अभिअरीय तंत्रिकाएँ बनाता है। सीमाँतीय तंत्रिकाएँ प्रेरक (चालक) होती हैं, वे भुजा की पूरी लम्बाई में चलती जाती हैं और उनसे निकली हुई तंत्रिकाएँ अस्थिकाओं, देह की पेशियों, नालपदों तथा सीलोमी एपीथिलियम में को जाती हैं।

3. अधः **तंत्रिका-तंत्र** अथवा **लाँगे-तंत्रिका** एक तंत्रिकीय परत होती है जो गहरी पड़ी होती और प्रधानतः प्रेरक होती है, यह हर भुजा में अरीय तंत्रिका-रज्जु

के ऊपर पड़ी हुई तंत्रिका-ऊतक की एक प्लेट की बनी होती है। लांगे-तंत्रिकाएँ प्रधान तंत्रिका वलय के ऊपर पाँच अंतरा-अरीय स्थूलन भी बनाती हैं, वे भुजाओं की पेशियों में को तंत्रिकाएँ भेजती हैं।

तंत्रिका-वलय तथा अरीय तंत्रिका रज्जुएँ एक संवेदी मध्यस्थ तंत्र बनाती हैं, तंत्रिका जाल, सीमांतीय एवं लांगे तंत्रिकाएँ पेशियों का तंत्रिकायन करती हैं और प्रेरक होती हैं। संवेदी और प्रेरक तंत्रों के बीच में अनेक अंतर्ग्रंथनी (सिनैप्सी) संयोजन बने होते हैं।

संवेदी अंग—इकाइनोडर्मों में संवेदी अंग अच्छी तरह विकसित नहीं होते।

1. **तंत्रिका संवेदी** कोशिकाएँ एपिडर्मिस में, नालपदों के चूषकों पर और विशेषतः अंतःस्थ स्पर्शकों पर प्रचुर संख्या में पाई जाती हैं, ये कोशिकाएँ स्पर्श और रसायन उद्दीपनों के वास्ते संवेदनशील होती हैं। 2. हर अंतःस्थ स्पर्शक के नीचे एक **आँख** अथवा **दृष्टि-गद्दी** होती है जिसमें एपिडर्मिस के अनेक प्याली की आकृति के स्थूलन पाए जाते हैं, प्याली की कोशिकाओं में एक लाल वर्णक होता है, कोशिकाओं के बीच-बीच में फैली हुई रेटिना-कोशिकाएँ होती हैं जिनमें से निकले हुए तंत्रिका-तंतु अरीय तंत्रिका-रज्जु में पहुँचते हैं। हर प्याली के ऊपर पारदर्शी क्यूटिकल चढ़ा होता है और उसमें भीतर एक लेन्स बना हो सकता है। आँखें प्रकाश के लिये संवेदी होती हैं।

जनन-तंत्र—लिंग अलग-अलग होते हैं लेकिन बाहर से पृथक्-पृथक् नहीं पहचाने जा सकते। लेकिन ऐसा कहा गया है कि हिन्द महासागर की **ओरिएस्टर नोडोसस** (*Oreaster nodosus*) में नर-मादा के रंग में अन्तर होता है तथा मादा की डिस्क अधिक मेहराब बनाती हुई होती है। 10 गोनड (वृषण अथवा अंडाशय) होते हैं जिनमें से हर भुजा के समीपस्थ भाग के सीलोम में एक-एक जोड़ी गोनड पड़े होते हैं। गोनड छोटी-छोटी नलिकाओं के अंगूरों के गुच्छों के समान दिखाई पड़ते हैं, हर एक गोनड अपमुख सतह पर अंतराअर समतल में बने एक चलनी-जैसे मैड्रेपोराइट पर खुलता है। वृषण धूसर होते हैं लेकिन अंडाशय नारंगी रंग के होते हैं, प्रजनन काल में गोनड बहुत ज्यादा बड़े हो जाते हैं, लेकिन अंडे दे चुकने के बाद वे घटकर छोटे-छोटे समूह से रह जाते हैं। न मैथुन अंग होते हैं और न ही किसी प्रकार की सहायक ग्रंथियाँ। लैंगिक कोशिकाएँ सीधी जल में बाहर छोड़ दी जाती हैं और वहीं निषेचन होता है। प्रायः हर वर्ष एक ही प्रजनन काल होता है, एक मादा स्टारफ़िश 2,500,000 तक अंडे दे सकती है।

यह दावा कि लैंगिक कोशिकाएँ, अक्षीय ग्रन्थि में बनती है और उसके बाद गोनडों में पहुँच जाती हैं सरासर गलत है। तथापि, गोनडों की आद्य जनन-कोशिकाएँ अक्षीय सम्मिश्र के समीप सीलोम की दीवार में से उत्पन्न होती हैं।

परिवर्धन—निषेचित अंडे में पूर्णभंजी तथा समान विदलन होता है, यह विदलन कशेरुकियों की तरह अरीय होता है, **अरीय विदलन** में विदलन-समतलों के अक्ष जीव-ध्रुव और वर्धी ध्रुवों को जोड़ने वाले अक्ष के या तो समान्तर होते हैं

या उसके साथ समकोण बनाते हैं; विदलन के द्वारा बनने वाले ब्लास्टोमीयर सदैव एक-दूसरे से ठीक ऊपर अथवा नीचे होते हैं। ब्लास्टोमीयरों की नियति निश्चित नहीं होती, यदि 4-कोशिका अवस्था पर ब्लास्टोमीयरों को अलग-अलग कर दिया जाये तो उनमें से हर एक से एक-एक लार्वा बन जाता है, इस प्रकार की अनिश्चित नियति वाले ब्लास्टोमीयरों के निर्माण को **अनिर्धारित विदलन** (indeterminate cleavage) कहते हैं। विदलन से एक ब्लास्टुला बन जाता है जिसमें ब्लास्टोसील होती है। ब्लास्टुला की कोशिकाएँ सिलियायित होती हैं। अंतर्वलन होकर एक दो-परत वाला गैस्ट्रुला बन जाता है; इस गैस्ट्रुला में एक आद्यांत्र-गुहा तथा एक ब्लास्टोपोर होता है। मीजोडर्म की उत्पत्ति दो स्रोतों से होती है एक तो उन
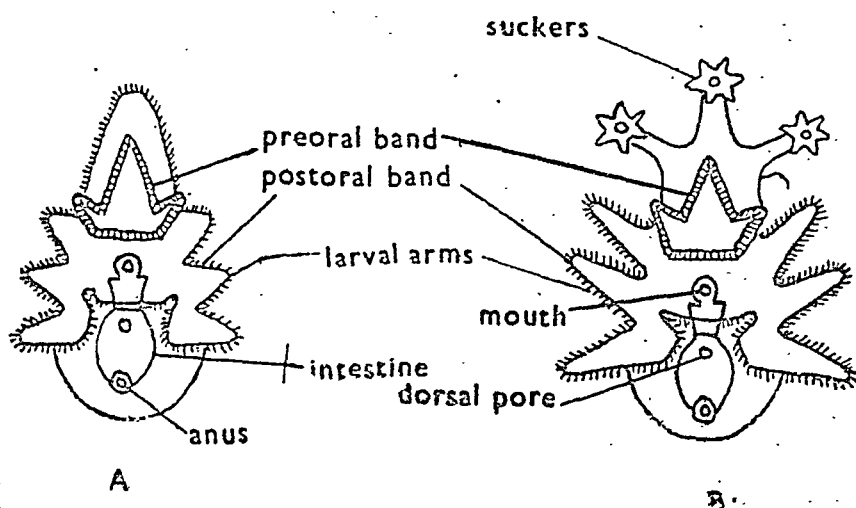
चित्र 523. स्टारफिशों के लार्वा। A. बाइपिनेरिया; B. ब्रेकियोलेरिया। Pre-oral band, मुखपूर्व पट्टी; post-oral band, मुखपश्चीय पट्टी; larval arms, लार्वा भुजाएँ; intestine, अंतड़ी; anus, गुदा; suckers, चूषक; mouth, मुख; dorsal pore, पृष्ठ-छिद्र।

मीजेन्काइम कोशिकाओं से जो एंडोडर्म में से ब्लास्टोसील में को चली जाती हैं, और दूसरे आद्यांत्र की वहिर्वृद्धियों के रूप में जिससे अग्र सिरे पर सीलोमी कोष्ठ बन जाते हैं; ये कोष्ठ सीलोम तथा जल-वाही तंत्र के मूलाँगों को जन्म देते हैं। आद्यांत्र से प्रफलन होकर कुछ मीज़ेंकाइम ब्लास्टोसील में पहुँच जाता है, मीज़ेंकाइम से दो पार्श्व सीलोमी कोष्ठ बन जाते हैं जो आद्यांत्र से पृथक् हो जाते हैं। इन कोष्ठों की गुहाएँ भावी सीलोम की प्रतिदर्श होती हैं तथा सीलोमी कोष्ठों की निर्माणकारी कोशिकाएँ मीज़ोडर्म बन जाती हैं। इस प्रकार मीज़ोडर्म आंत्रसीलोमी उद्भव वाला होता है क्योंकि यह आद्यांत्र के वहिर्वलन अथवा कोष्ठ बन जाने से उत्पन्न होता है और यह गैस्ट्रुला बन जाने के बाद ही प्रकट होता है। दोनों में से हर एक सीलोमी कोष्ठ में से उसी दिशा में सीलोमी आशय निकलते हैं जो एक-दूसरे के पीछे

व्यवस्थित रहते हैं और उन्हें क्रमशः **अक्षसीलोम** (axocoel), **जलसीलोम** (hydrocoel) तथा **कायसीलोम** (somatocoel) कहते हैं। दोनों अक्षसीलोम पृष्ठतः एक **जलछिद्र** (hydropore) के द्वारा बाहर को खुलते हैं। ब्लास्टोपोर गुदा बन जाता है, और एक मुख अग्रांत्र में से बन जाता है। यह अग्रांत्र भाग आद्यांत्र से व्युत्पन्न आहार-नाल में जा मिलता है। लार्वा की भावी अधर सतह अवतल हो जाती है। लार्वा द्विपार्श्वतः सममित होता है, यह अब तैरने लगता और आहार करने लगता है। वे सिलिया जो अब तक समान रूप में सारे लार्वा पर बने होते थे केवल अधर सतह पर एक अनुदैर्घ्य पट्टी को छोड़ कर अब विलीन हो जाते हैं, इस सिलियायित पट्टी के सिलिया अधिक बड़े और अधिक बहुसंख्यक बन जाते हैं। लार्वा में एक पृष्ठ-छिद्र अथवा जल-वाही तंत्र का जल-छिद्र होता है। इस आधारभूत लार्वा से इकाइनोडर्मेटा के विभिन्न प्रकार के लार्वा बनते हैं।

ऐस्टेरॉयडिया में आधारभूत लार्वा बढ़ कर एक **बाइपिनेरिया** (bipinnaria) लार्वा बन जाता है। मुखपूर्व प्रदेश बड़ा हो जाता है; सिलियायित पट्टी तेजी से बढ़ती जाती और वलनयुक्त बन जाती है; इससे दो सिलियायित पट्टियाँ बन जाती हैं—एक छोटी **मुखपूर्वी सिलियायित पट्टी** (preoral ciliated band) तथा एक उससे बड़ी **मुखपश्चीय सिलियायित पट्टी** (postoral ciliated band); परिधि पर तीन जोड़ी सममित **लार्वा भुजाएँ** (larva arms) बन जाती हैं, ये सिलियाग्रित पट्टियों का प्रसार कर देती हैं। अब इस लार्वा को बाइपिनेरिया कहते हैं। बाइपिनेरिया लार्वा द्विपार्श्वतः सममित और स्वच्छन्द तैरने वाला होता है, अब इसके बाद **ब्रैकियोलेरिया लार्वा** (brachiolaria larva) आता है जिसमें लार्वा भुजाएँ लम्बी हो जाती हैं और मुखपूर्वी प्रदेश में से तीन बहिर्वृद्धियाँ निकल आती हैं जो **बद्धकारी प्रवर्ध** बन जाते हैं—इन प्रवर्धों पर सिलिया न बने होकर चूषक बने होते हैं। 6 सप्ताह के बाद ब्रैकियोलेरिया लार्वा तली में बैठता जाता है और अपने बद्धकारी प्रवर्धों तथा चूषकों के द्वारा स्थानबद्ध हो जाता है।

कायांतरण—ब्रैकियोलेरिया में कायांतरण होता है जिसके द्वारा वह वयस्क नहीं बन जाता बल्कि उस लार्वा की एक दिशा में वयस्क एक नई रचना के रूप में बन जाता है। लार्वा की यह दिशा उसकी पश्च दिशा होती है जो बड़ी हो जाती और बाईं ओर को झुक जाती है, इस भाग के दाहिने पार्श्व में पाँच पालियाँ प्रकट हो जाती हैं, ये वयस्क भुजाओं के मूलांग होते हैं। सममिति में परिवर्तन आ जाता है जिसमें जन्तु में 90 अंश का दक्षिणावर्त घूर्णन हो जाता है जिसके फलस्वरूप दाहिना पार्श्व जिसमें भुजा-मूलांग होते हैं भावी स्टारफिश की ऊपरी अपमुखी सतह बन जाती है और बायां पार्श्व निचली मुख सतह बन जाता है; मुख बाईं ओर को खिसक कर मुख-सतह पर आ जाता है। लार्वा भुजाएँ तथा सिलियायित पट्टियाँ विलीन हो जाती हैं, केवल लार्वाई आहार-नाल तथा जल-वाही तंत्र शेष रह जाते हैं। भुजाओं में कंकालीय तत्व बन जाते हैं। हर भुजा में सीलोम में से दो जोड़ी

वहिर्वृद्धियाँ निकल कर चिपकाने वाले नालपद वन जाती हैं। एक भीतरी जटिल पुनर्गठन होता जाता है और एक अरीयतः सममित स्टारफिश वन जाती है।

भुजा का अनुप्रस्थ सेक्शन (T. S.)—भुजा के ऊपर चारों ओर एक पतला दो-स्तरी क्यूटिकल चढ़ा होता है जिसके नीचे एक सिलियायित एपिडर्मिस और फिर उसके नीचे एक मोटा एपिडर्मिस होता है जिसमें अनेक परिरुधिर गुहाएँ तथा अस्थि-

चित्र 524. स्टारफ़िश की भुजा का अनुप्रस्थ सेक्शन। a- अरीय तंत्रिका-रज्जु ; b- लांगे-तंत्रिका ; c- सीमांतीय तंत्रिका ; d- नालपद तंत्रिका-वलय ; 1- शीर्षस्थ अनुदैर्घ्य पेशी ; 2-ऊर्ध्व अनुप्रस्थ वीथि-पेशी ; 3- निम्न अनुप्रस्थ वीथि-पेशी ; 4- अनुदैर्घ्य वीथि-पेशी ; 5- पार्श्व अनुप्रस्थ वीथि-पेशी।
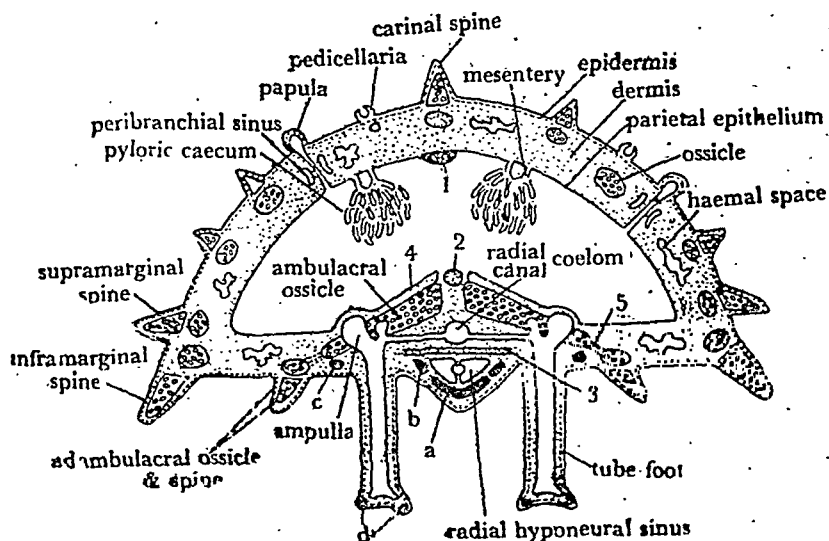
Carinal spine, नौतल शूल ; mesentery, आंत्रयोजनी ; epidermis, एपिडर्मिस; dermis डर्मिस; parietal epithelium पार्श्व एपिथीलियम; ossicle, अस्थिका; haemal space, रुधिर गुहा; tubefoot, नालपद; radial hyponeural sinus, अरीय अधःतंत्रिका साइनस; ampulla, ऐम्पुला; adambulacral ossicle & spine, अभिवीथि अस्थिका एवं शूल; supra marginal spine, ऊर्ध्व सीमांतीय शूल; pyloric caecum, निर्गमी अंधनाल; peribranchial sinus, परिगिल साइनस; papula, पैप्यूला; pedicellaria, पेडिसेलेरिया; ambulacral ossicle, वीथि-अस्थिका; radial canal, अरीय नाल; coelom, सीलोम।

काएँ होती हैं। वाहर को उभरे हुए शूलों, पेडिसेलेरियाओं तथा पैप्यूलाओं पर एपिडर्मिस और डर्मिस पतले हो जाते हैं लेकिन शूलों के ऊपर से वे घिस-घिस कर साफ हो जाते हैं। अपमुख सतह एक मोटी उत्तल मेहराब होती है तथा मुख सतह उल्टे

V की तरह होती है जिसकी दोनों शाखाओं के बीच में एक वीथि-खाँच होती है। भुजा के भीतर एक परिआंतरांग सीलोम होती है।

अपमुख भित्ति में अनेक, अनियमित आकार की, गवाक्षों से युक्त अस्थिकाएँ होती हैं जो कैल्सियमी होती हैं, कुछ अस्थिकाओं पर प्रवर्धी शूल टिके रहते हैं। अपमुख सतह से डर्मिसी पैप्यूला उभरे रहते हैं, सीलोम इन पैप्यूलाओं में को जारी रहती है। शूलों के बीच-बीच में और उनसे जुड़ी हुई अनेक **पेडिसेलेरिया** होती हैं। भुजा के हर पार्श्व सीमांत पर दो बड़े शूल होते हैं—एक तो **अधिसीमांतीय शूल** और दूसरा उसके नीचे बना हुआ **अधःसीमांतीय शूल**। मध्य-पृष्ठतः भुजा में एक बड़ा **नौतल शूल** (carinal spine) होता है।

मुख-सतह पर वीथि-खाँच को दो वीथि-अस्थिकाओं का आलंब प्रदान होता है, ये दोनों अस्थिकाएँ खाँच के शिखर पर मिलती हैं, वीथि-खाँच के हर एक अन्तिम सिरे पर एक **अभिवीथि-अस्थिका** (adambulacral ossicle) तथा शूल होता है। हर भुजा की मुखीय सतह में वीथि-अस्थिकाओं के दो स्तम्भ बन जाते हैं, तथा हर पार्श्व में एक-एक स्तम्भ अभिवीथि-अस्थिकाओं का होता है। अभिवीथि-अस्थिका अधःस्तर को छू सकती है या भीतर को मुड़कर वीथि-खांच की सुरक्षा कर सकती है। वीथि-खाँच के ऊपर एक **अरीय नलिका** चलती जाती है जो हर पार्श्व में एक पाद-शाखा के द्वारा दो ऐम्पुलाओं तथा एक नालपद से जुड़ी होती है। अरीय नलिका के नीचे एक **अरीय अधःतंत्रिका साइनस** होता है जिसके भीतर एक **अरीय रुधिर नलिका** होती है।

पेशियाँ—मध्य अपमुख सतह पर देह-भित्ति के नीचे एक **शिखरीय अनुदैर्घ्य पेशी** होती है जो भुजा को फैलाती है। वीथि-अस्थिकाओं की हर जोड़ी में एक ऊपरी और एक निचली अनुप्रस्थ वीथि-पेशी होती है, ऊपरी अथवा **ऊर्ध्व अनुप्रस्थ वीथि पेशी** (superior transverse ambulacral muscle) वीथि-खाँच को चौड़ा करती और निचली अथवा **निम्न-अनुप्रस्थ वीथि-पेशी** (inferior transverse ambulacral muscle) वीथि-खांच को संकरा करती है। हर पार्श्व की दो सहलग्न वीथि-अस्थिकाओं के बीच में एक **अनुदैर्घ्य वीथि-पेशी** होती है जो भुजा एवं वीथि-खाँच को छोटा करती है। हर वीथि-अस्थिका का बाहरी सिरा एक **पार्श्व अनुप्रस्थ वीथि-पेशी** द्वारा अभिवीथि-अस्थिका से जुड़ा रहता है, यह पेशी वीथि-खाँच को चौड़ा करती है।

तंत्रिकाएँ—वीथि-खाँच के मध्य में एक **अरीय तंत्रिका-रज्जु** होती है जो V की आकृति की होती है। अरीय तंत्रिका-रज्जु के ऊपर दो लांगे-तंत्रिकाएँ होती हैं। हर वीथि-अस्थिका के बाहरी सिरे के समीप एक **सीमांतीय तंत्रिका** होती है। हर नालपद में एक **तंत्रिका-वलय** होता है।

भुजा के परिआंतरांग सीलोम के भीतर एक जोड़ी **निर्गमी अंधनाल** होते हैं, प्रत्येक अंधनाल दो **अनुदैर्घ्य आंत्रयोजनियों** के द्वारा अपमुख सतह से लटका रहता

है। यदि सेक्शन भुजा के आधार पर से गुजरता है तो उनमें परिआंतरांग सीलोम में एक जोड़ी गोनड भी होंगे जो अपनी वाहिनियों के द्वारा देह-भित्ति से जुड़े होते हैं ।

फ़ाइलम इकाइनोडर्मेटा का वर्गीकरण

सभी इकाइनोडर्मेटा समुद्री होते हैं जिनमें वयस्क में अरीय सममिति पाई जाती है हालाँकि उनके लार्वा-रूपों में द्विपार्श्वीय सममिति होती है, वयस्कों के कायांतरण के दौरान अरीय सममिति आ जाती है जिससे कि लार्वा की दाहिनी दिशा वयस्क की अपमुख अथवा अभिवीथि सतह बन जाती है और बाईं दिशा मुखीय अथवा वीथि सतह बन जाती है । ये सीलोमी जंतु होते हैं जिनमें सीलोम से ये सब भाग बन जाते हैं, परिआंतरांग गुहा, वीथि-तंत्र तथा अक्षीय सम्मिश्र जिसके भीतर एक रुधिर-तंत्र एवं गोनड होते हैं लेकिन इकाइनोडर्मेटा अन्य सभी सीलोमी जंतुओं से भिन्न होते हैं। अस्थिकाओं का एक अंतःकंकाल होता है जिसके अतिरिक्त शूलों का बना एक बाह्यकंकाल भी हो सकता है। कोई निश्चित उत्सर्गी अंग नहीं होते, वाही-तंत्र एक विचित्र रिक्तिका-ऊतक का बना होता है। इनमें पुनरुद्भवन की अपार क्षमता पाई जाती है ।

उपफ़ाइलम 1. **एल्यूथेरोजोआ** (Eleutherozoa)—ये मुक्तजीवी होते हैं और वृंत नहीं होता, ये मुख सतह को नीचे रखते हुए चलते हैं या एक बाजू पर पड़े होते हैं, वीथि-तंत्र नियमतः चलन के लिए होता है; गुदा यदि हुई हो अपमुखी होती है।

क्लास 1. **ऐस्टेरॉयडिया** (Asteroidea)—ये चपटी स्टारफ़िशें होती हैं जिनमें एक केन्द्रीय डिस्क और प्रायः पाँच भुजाएँ होती हैं, भुजाएं डिस्क से सुसीमित नहीं होतीं। निचली मुख सतह पर एक मुख होता है और खुले प्रकार की वीथि-खाँचें होती हैं, ऊपरी अपमुख सतह पर एक गुदा और एक मैड्रेपोराइट बना होता है । आहार-नाल के अंधवर्ध भुजाओं में को फैले होते हैं। नालपदों में प्रायः चूषक होते हैं और वे प्रतिकर्षी एवं चलनीय होते हैं। पेडिसेलेरिया विद्यमान होती हैं । ये प्राणी मांसभक्षी होते हैं।

आर्डर (a) फैनेरोजोनिया (Phanerozonia)—डिस्क बड़ी होती है, भुजाएँ छोटी और चौड़े अधर वाली होती हैं, भुजाओं के किनारों पर सुव्यक्त ऊर्ध्वसीमांतीय तथा निम्नसीमांतीय शूल होते हैं, पैप्यूला केवल अपमुख सतह पर होते हैं, पेडिसेलेरिया अवृंत अथवा कूपिकीय होती है, नालपद दो पंक्तियों में होते हैं और उनमें चूषक भी बने हो सकते हैं और नहीं भी। उदाहरणतः **ओरिऐस्टर, ऐस्ट्रोपेक्टेन** ।

आर्डर (b) **फार्सिपुलेटा** (Forcipulata)—डिस्क छोटी, भुजाएँ लंबी, भुजाओं में कोई सुस्पष्ट सीमांतीय शूल नहीं होते, पैप्यूला दोनों सतहों पर होते हैं, पेडिसेलेरिया सवृंत, नालपद 2 या 4 पंक्तियों में और चूषकों से युक्त; उदाहरणतः **ऐस्टीरियास** ।

क्लास 2. **ओफ़ियूरॉयडिया** (Ophiuroidea)—ये चपटी ब्रिटल-स्टार होती है, जिनमें एक छोटी डिस्क और पाँच स्पष्टतः सुसीमांकित पतली एवं संधिस्थ भुजाएँ होती हैं, आहार नलिका के अंधवर्ध भुजाओं में को नहीं फैले होते। मुख और मैड्रेपोराइट मुख सतह पर होते हैं, गुदा और पेडिसेलेरिया नहीं होतीं। वीथि-खाँचें ढकी होती हैं, हर भुजा में बिना चूषकों वाले नालपदों की दो पंक्तियाँ होती हैं, ये नालपद संवेदी और अशनी होते हैं।

आर्डर (a) **ओफ़ियूरी** (Ophiurae) प्रतिरूपी ब्रिटल-स्टार होती हैं; देह के ऊपर स्पष्ट शील्ड बनी होती हैं। भुजाएँ अविशाखित और अस्थिकाएँ प्रवर्धों तथा गढ़ों द्वारा संधिस्थ रहती हैं, भुजाएँ वस्तुओं पर लिपट नहीं सकतीं; उदाहरणतः **ओफ़ियोथ्रिक्स**।

आर्डर (b) **यूरिएली** (Euryalae)—देह नग्न अथवा मोटी दानेदार त्वचा से ढका हुआ, लंबी भुजाएँ सरल अथवा विशाखित, भुजा-अस्थिकाएँ रेत-घड़ी की आकृति की प्रवर्ध होती हैं, भुजाएँ वस्तुओं में चारों ओर लिपट सकती हैं, उदाहरणतः **गार्गोनोसेफ़ेलस**।

क्लास 3. **इकाइनॉयडिया** (Echinoidea)—इनका शरीर गोलाकार अथवा डिस्क-जैसा होता है जो पास-पास सटी हुई अस्थिकाओं से बने एक कारोना अथवा चोल में बंद रहता है, अस्थिकाओं पर शूल बने होते हैं। भुजाएँ नहीं होतीं, शरीर में वीथि तथा अंतरावीथि क्षेत्र होते हैं, वीथि-खाँचें ढकी हुई होती हैं, नालपदों में चूषक होते हैं। मुख निचले ध्रुव पर होता है, गुदा और मैड्रेपोराइट ऊपरी ध्रुव पर, इनमें जटिल पेडिसेलेरिया होती हैं।

आर्डर (a) **रेगुलेरिया** (Regularia) (अथवा ऐंडोसाइक्लिका, Endocyclica)—शरीर गोलाकार जिसमें हर अंतरावीथि क्षेत्र में प्लेटों की दो पंक्तियाँ होती हैं, भुजाएँ नहीं होतीं, मुख और गुदा विपरीत ध्रुवों पर होते हैं, मुख केन्द्रीय होता है और उसके साथ-साथ एक सुविकसित अरस्तू-लालटेन (Aristotle's lantern) होती है, उदाहरणतः **इकाइनस, साल्मेसिस**।

आर्डर (b) **स्पैटेंजॉयडिया** (Spatangoidea) (अथवा एक्सोसाइक्लिका, Exocyclica)—शरीर अनियमित, हृदयाकार चोल, तीन अग्र वीथियाँ दो पश्च वीथियों से छोटी होती हैं, वीथियों के पृष्ठीय भाग दलाभ (petaloid) होते हैं, गुदा और प्रायः मुख भी केन्द्रबाह्य (excentric) होते हैं, गिल नहीं होते, लालटेन अविद्यमान, उदाहरणतः **इकाइनोकार्डियम**।

आर्डर (c) **क्लाइपिएस्ट्रॉयडा** (Clypeasteroida)—चपटा शरीर, मोटे कवच, और छोटे शूलों से युक्त, मुख केंद्रीय, गुदा केन्द्रबाह्य और शिखर-क्षेत्र के बाहर, अपमुख वीथि-क्षेत्र दलाभ, गिल अविद्यमान। ये केक-अर्चिन होते हैं, जैसे **क्लाइपिऐस्टर**।

क्लास 4. **होलोथ्यूरॉयडिया** (Holothuroidea)—शरीर लंबा और सिलिंडराकार जिसमें मुख और गुदा विपरीत सिरों पर होते हैं। देह-भित्ति चर्मीय तथा सूक्ष्म अस्थिकाओं अथवा कंटिकाओं से युक्त लेकिन शूल अथवा पेडिसेलेरिया नहीं होते। वीथि-खाँचें भरी हुई होती हैं, पाँच पंक्तियों में ह्रासित नालपद होते हैं जिनमें चूषक वने होते हैं, कुछ नालपद मुख के चारों ओर प्रतिकर्षी स्पर्शकों का रूप ले लेते हैं। भुजाएँ नहीं होतीं, मैड्रेपोराइट भीतरी होता है अथवा नहीं होता।

आर्डर (a) **ऐस्पिडोकाइरोटी** (Aspidochirotae)—स्पर्शक शील्ड की आकृति के और ऐम्पुलाओं से युक्त, मुखीय प्रतिकर्षी पेशियाँ नहीं होतीं, धड़ पर बहुसंख्यक नालपद, मैड्रेपोराइट भीतरी, श्वसन वृक्ष होते हैं, उदाहरणतः **होलोथ्यूरॉयडिया**।

आर्डर (b) **डेंड्रोकाइरोटी** (Dendrochirotae)—स्पर्शक विशाखित और वृक्षसम जिनमें ऐम्पुला नहीं होते, धड़ पर बहुसंख्यक नालपद, मुखीय प्रतिकर्षी पेशियाँ विद्यमान, मैड्रेपोराइट भीतरी और श्वसन वृक्ष होते हैं, उदाहरणतः **थायोने, कुकुमैरिया**।

उपफ़ाइलम II. **पेल्मैटोज़ोआ** (Pelmatozoa)—अधिकतर विलुप्त, जीवित उदाहरण या तो आजन्म या केवल प्रारंभिक जीवन में ही स्थानबद्ध होते हैं, ये अपमुख सतह पर बने एक वृंत के द्वारा चिपके रहते हैं, ऊपरी मुख सतह पर मुख और गुदा दोनों ही होते हैं। आँतरांग एक कैल्सियमी चोल में बंद होते हैं, नालपद तथा वीथि-खाँचें आहार प्राप्ति के लिए।

क्लास 1. **क्रिनॉयडिया** (Crinoidea)—ये कम-से-कम जीवन के कुछ अंश में स्थानबद्ध होती हैं। इनमें कैल्सियमी प्लेटों की एक डिस्क होती है जिसमें से पाँच स्पष्टतः सुसीमांकित भुजाएँ निकली होती हैं, भुजाओं में संधिस्थ कैल्सियमी प्लेटों का एक कंकाल होता है—ये प्लेटें कशेरुकों के समान होती है। हर भुजा द्विशाखित हो जाती और उसमें पतली पार्श्व शाखाएँ होती हैं। हर वीथि-खांच में जो कि खुली होती है रूपाँतरित सिलियायित नालपदों की दो या चार पंक्तियाँ होती हैं, इन नालपदों में चूषक वने होते हैं। सीलोम तथा विभिन्न अंग भुजाओं में को फैले होते है; शूल, पेडिसेलेरिया तथा मैड्रेपोराइट ये सब अविद्यमान होते हैं।

आर्डर (a) **आर्टिकुलैटा** (Articulata)—विलुप्त तथा जीवित क्रिनॉयड होते हैं, डिस्क पंचतयी होती है, निचली भुजा-अस्थिकाएँ मिल कर केलिक्स बनाती हैं, टेग्मेन चर्मीय होता है, मुख और वीथि खुली हुई, भुजाएँ विशाखित जिनमें पिच्छिकाएँ वनी होती हैं, उदाहरणतः **एंटेडॉन** (*Antedon*)।

इकाइनोडर्मेटा के प्ररूप

1. **ओफ़ियोथ्रिक्स** (*Ophiothrix*) (ब्रिटल-स्टार)—इसमें एक छोटी गोल डिस्क होती है जिसमें निचली सतह से पाँच पतली सुसीमांकित भुजाएँ निकली होती हैं। भुजाओं में एक संकरी सीलोमी नलिका होती है लेकिन आहार-नाल के अंधवर्ध

नहीं फैले होते, ये भुजाएँ संधिस्थ दिखाई पड़ती हैं क्योंकि इनमें अस्थिकाओं से बनी तथा चार अनुदैर्घ्य पंक्तियों में व्यवस्थित **कंकाली प्लेटों** का आलंब प्रदान होता है। भुजा में शूलों से युक्त सीमांतीय प्लेटों की दो पंक्तियाँ होती हैं, एक पंक्ति अपमुखी पृष्ठीय प्लेटों की, तथा एक पंक्ति मुखीय अथवा अधर प्लेटों की होती है जिनमें नालपद बने होते हैं। भुजा की सीमांतीय प्लेटों पर शूल बने होते हैं जिनसे पकड़ अच्छी बन जाती है। पैप्यूला और पेडिसेलेरिया अविद्यमान होते हैं। भुजाओं में अस्थिकाएँ विशेषित होती हैं, वे ठोस सिलिंडराकार "कशेरुकाएँ" बनाते हैं जो एक रेखा में व्यवस्थित होती हैं तथा जिनके द्वारा भुजाओं का मुड़ना संभव बनता है। वीथि-खाँचें अस्थिकाओं द्वारा भरी होती हैं, नालपद छोटे और विना चूषकों वाले
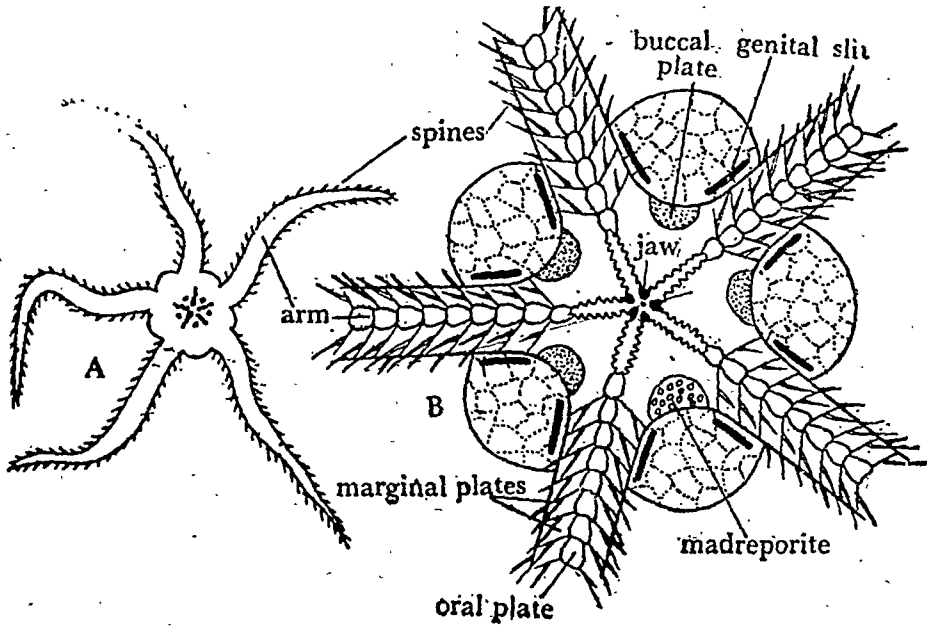
चित्र 525. A—**ओफ़ियोथ्रिक्स** (*Ophiothrix*); B—मुख सतह। Spines, शूल; buccal plate, मुख-प्लेट; genital slit, जनन-झिरी; jaw, जबड़ा; madreporite, मैड्रेपोराइट; oral plate, मुख प्लेट; marginal plates, सीमांतीय प्लेटें; arm, भुजा।

होते हैं तथा ऐम्पुला भी नहीं होते, ये नालपद चलनीय नहीं होते तथा भुजाओं की अधर प्लेटों पर होते हैं। मुख सतह पर एक मुख होता है जिसमें शूल बने होते हैं जो दाँतों के समान कार्य करते हैं। आहार-नाल एक थैली की तरह होती है तथा गुदा नहीं होती। मुख सतह पर 5 जोड़ी झिरी होती हैं जो एक-एक **श्वसन कोश** में को खुलती हैं, इनमें को जल अंदर-बाहर पम्प किया जाता रहता है। गोनड भी इन्हीं झिरियों में को खुलते हैं, और इसलिए झिरियों को **जनन-झिरी** (genital slits) कहते हैं जो हर भुजा के आधार के हर पार्श्व में बनी होती हैं। मुखतः डिस्क में 5 सुस्पष्ट **अंतरा-अरीय मुख प्लेटें** अथवा मुखशील्ड होती हैं जो अस्थिकाओं से बनी हुई होती हैं,

इसमें से एक मुख प्लेट रूपांतरित होकर मैड्रेपोराइट बन जाती है। अपमुखतः डिस्क के ऊपर कड़ा त्वचावरण होता है जिसमें छोटी-छोटी कैल्सियमी अस्थिकाएँ होती हैं।

ब्रिटल-स्टार वस्तुओं को अपनी भुजाओं से खींचते-धक्का देते हुए चलती जाती हैं, ये अपनी भुजाओं की सर्प-जैसी गतियों के द्वारा तैर भी लेती हैं। ये रात को सक्रिय रहती हैं और क्रस्टेशियनों तथा मोलस्कों को अपनी भुजाओं से पकड़-पकड़ कर खाती हैं। कुछ स्पीशीज़ अपने नालपदों द्वारा मिट्टी को अपने मुख में ठूंसती जाती हैं। ये प्राणी मछलियों का आहार होते हैं और उथले समुद्रों में पाए जाते हैं।

2. इकाइनस (*Echinus*)—शरीर गोलाकार होता है, भुजाएँ नहीं होतीं, शरीर पर लंबे नुकीले गतिशील शूल होते हैं, शूलों के बीच-बीच में 3 जबड़ों वाली पेडिसेलेरिया होती हैं जो छद्मावरण के लिए अपतृणों को पकड़े रहती हैं। शरीर
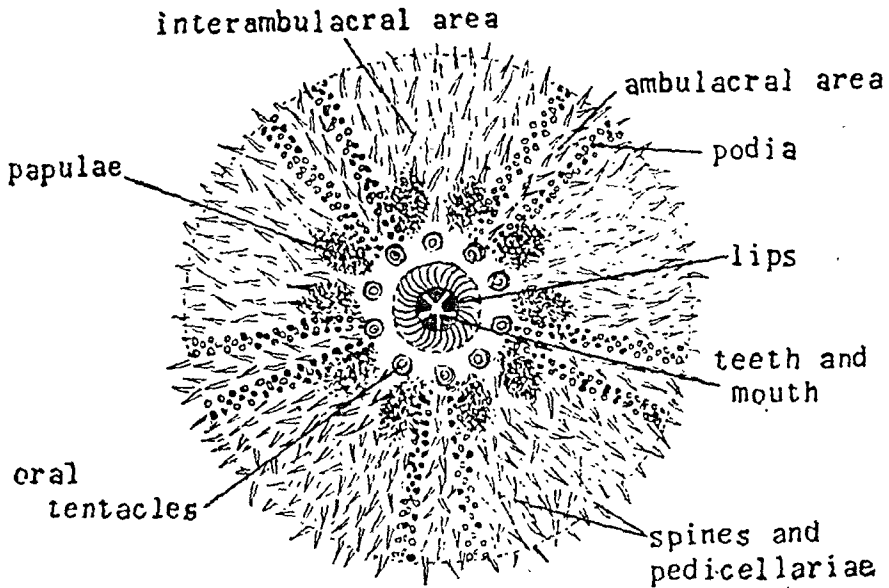
चित्र 526. इकाइनस (मुख दृश्य)।

Papulae, पैप्यूला; interambulacral area, अंतरावीथि क्षेत्र; ambulacral area, वीथि क्षेत्र; podia, नालपद; lips, होंठ; teeth and mouth, दाँत और मुख; spines & pedicellariae, शूल और पेडिसेलेरिया; oral tentacles, मुख-स्पर्शक।

की अपमुख दिशा और अधिक उत्तल होती है और मुख दिशा कुछ-कुछ चपटी होती है। शूलों को हटा देने के बाद शरीर एक कवच अथवा **कॉरोना** (corona) में बंद दिखाई पड़ता है, यह पूरी तरह सटी हुई प्लेट-जैसी अस्थिकाओं के समेकन से बनता है जो एक कोमल एपिडर्मिस के नीचे पड़ी होती हैं। मुख-ध्रुव से अपमुख-ध्रुव तक चलते हुए शरीर पाँच वीथि तथा पाँच अंतरावीथि क्षेत्रों में विभाजित रहता है, ऐसे

हर क्षेत्र में अस्थिकाओं की दो रेखांशिक (meridional) पंक्तियाँ होती हैं, इन अस्थिकाओं पर शूल के वास्ते गुलिकाएँ बनी होती हैं, वीथि-क्षेत्रों की अस्थिकाएँ वीथि-खांचों को ढके रहती हैं। गतिशील शूल वीथि एवं अंतरावीथि दोनों क्षेत्रों में सममित पंक्तियों में व्यवस्थित रहते हैं। शूल ध्रुवों की अपेक्षा विषुवत्-रेखा अर्थात् मध्य रेखा पर ज्यादा लंबे होते हैं। वीथि-क्षेत्रों के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक चलती जाती हुई नालपदों की 10 पंक्तियाँ होती हैं—इन नालपदों में चूषक बने होते हैं, इन वीथि-क्षेत्रों की अस्थिकाओं में नालपदों के वास्ते छिद्र बने होते हैं। दोनों ध्रुवों पर चर्मीय क्षेत्र होते हैं, मुख-ध्रुव पर एक **परिमुख** होता है जिसका सीमान्त मोटा होकर मुख के चारों ओर होंठ बना लेता है, मुख में पांच दाँत स्थित रहते हैं। एक विशद चबाने
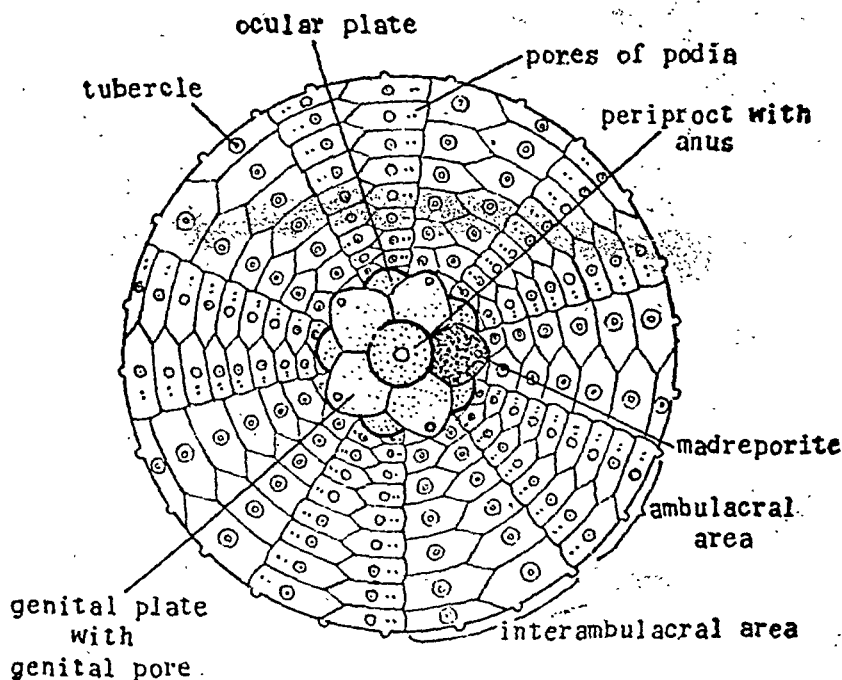
चित्र 527. **इकाइनस** का कॉरोना जिसके शूल निकाल दिए गए हैं (अपमुख दृश्य)।

Ocular plate, अक्षि-प्लेट; pores of podia, नालपदों के छिद्र; periproct with anus, गुदा से युक्त परिगुद; madreporite, मैड्रेपोराइट; ambulacral area, वीथि-क्षेत्र; interambulacral area, अंतरावीथि-क्षेत्र; genital plate with genital pore, जनन-छिद्र से युक्त जनन-प्लेट; tubercle, गुलिका।

वाली यांत्रिकी होती है जिसे **अरस्तू-लालटेन** (Aristotle's lantern) कहते हैं। इस "लालटेन" में 20 टुकड़े होते हैं जो पेशियों तथा स्नायुओं द्वारा एक-दूसरे से बहुत जटिलता के साथ जुड़े होते हैं। इसमें 5 शक्तिशाली दाँत मुख में होते हैं जो पपड़ी बनाने वाले जानवरों को खुरचने में काम आते हैं। परिमुख के चारों ओर 10 मोटे

रूपांतरित नालपद होते हैं जिन्हें **मुख-स्पर्शक** कहते हैं, और गुच्छेदार डर्मिसी पैप्यूलाओं के 10 समूह बने होते हैं। अपमुख ध्रुव पर एक केंद्रीय प्लेट **परिगुद** (periproct) होती है जिसमें गुदा बनी होती है, यह गुदा प्रायः केन्द्र पर होती है किंतु कभी-कभी केन्द्र के बाहर को हटी होती है। परिगुद के चारों ओर और उससे सटी हुई पाँच **जनन-प्लेटें** (genital plates) पड़ी होती हैं—हर अंतरा अर में एक-एक और हर प्लेट में एक-एक जनन-वाहिनी छिद्र होता है, इसके अलावा एक जनन-प्लेट में मैड्रेपोराइट भी होता है। जनन-प्लेटों के बीच-बीच में किंतु उनसे बाहर 5 **अक्षि-प्लेटें** (ocular plates) होती हैं—हर अर में एक-एक, और इनमें से प्रत्येक में प्रकाश के लिए संवेदी एक-एक अंतस्थ स्पर्शक होता है।

इकाइनस प्रशांत और अटलांटिक महासागरों की पथरीली तली में दूर-दूर तक पाया जाता है। यह अपने निचले शूलों के द्वारा धीरे-धीरे चलता जाता है, और नालपदों की सहायता से चढ़ भी लेता है। दाँत शैवालों को खाने के काम आते हैं।

3. **होलोथ्यूरिया** (*Holothuria*) (समुद्री खीरा)—दोनों ध्रुवों के बीच का अक्ष बहुत ज्यादा लम्बा हो गया होता है जिसके फलस्वरूप शरीर मुख-गुदा अक्ष में लम्बा खिचता जाता हुआ बड़ा हो जाता है और मुख तथा गुदा विपरीत ध्रुवों पर बने होते हैं। शरीर में एक मामूली-सी द्विपार्श्वीय सममिति पाई जाती है लेकिन भीतरी अंग अरीय होते हैं। देह-भित्ति चर्मीय होती है और उसमें सूक्ष्म अस्थिकाओं का कंकाल होता है किन्तु शूल अथवा पेडिसेलेरिया नहीं होते। **मैड्रेपोराइट** भीतरी हो गया होता है तथा उसके समीप एक अकेला गोनड होता है, शेष गोनड समाप्त हो गए हैं। बड़े मुख के समीप कुछ नालपद रूपाँतरित होकर अनेक स्पर्शक बन जाते हैं, हर स्पर्शक में छोटी-छोटी शाखाओं का एक अन्तस्थ घेरा बना होता है और ये शाखाएँ पुनः विशाखित हुई होती हैं। स्पर्शक स्पर्श-संवेदी होते हैं तथा आहार पकड़ने में कार्य करते हैं, ये अत्यधिक प्रतिकर्षी होते हैं, मुख तथा स्पर्शक दोनों ही देह-भित्ति में को पूरी तरह सिकोड़ लिए जा सकते हैं। **होलोथ्यूरिया** अपने स्पर्शकों के द्वारा आहार-कणों से युक्त रेत को मुँह के भीतर धकेलता रहता है। शरीर पर लम्बाई में पाँच वीथि-क्षेत्र बने होते हैं तथा पाँच अंतरावीथि-क्षेत्र बने होते हैं, हर वीथि-क्षेत्र मे नालपदों की एक-एक दोहरी पंक्ति होती है किन्तु कुछ नालपद अंतरावीथि-क्षेत्र में भी पहुँच जाते हैं। जमीन पर पड़े रहते समय जंतु में एक चपटी निचली सतह होती है जिसमें चूषकों से युक्त नालपदों की तीन दोहरी पंक्तियाँ होती हैं, इनको कुल मिला कर **त्रिभुजिका** (trivium) कहते हैं और ये चलनीय होते हैं, लेकिन चलन-गति केवल धीमी रेंगने की गति ही होती है। ऊपरी दिशा मे नालपदों की दो दोहरी लम्बाई मे बनी पंक्तियाँ होती हैं जिन्हें **द्विभुजिका** (bivium) कहते हैं। ये नालपद बहुत ज्यादा ह्रासित होते हैं, इनके चूपक समाप्त हो चुके हैं तथा ये स्पर्शीय एवं श्वसनीय बन गए हैं। सीलोम में दो लम्बी विशाखित नलिकाएं होती हैं जिन्हें **श्वसन-वृक्ष** (respiratory trees) कहते हैं, ये श्वसन-वृक्ष

मलाशय में को खुलते हैं, अवस्कर के संकुचन जल को श्वसन-वृक्षों में को पम्प करते हैं और ये वृक्ष ऑक्सीजन को अंगों तक पहुँचाते हैं। श्वसन-वृक्षों की निचली शाखाएँ बन्द नलिकाओं का रूप ले लेती हैं जिन्हें **कुवीरियन अंग** (Cuverian organs) कहते हैं—इनसे एक चिपकाने वाला पदार्थ निकलता है। प्राणी पर आक्रमण होने
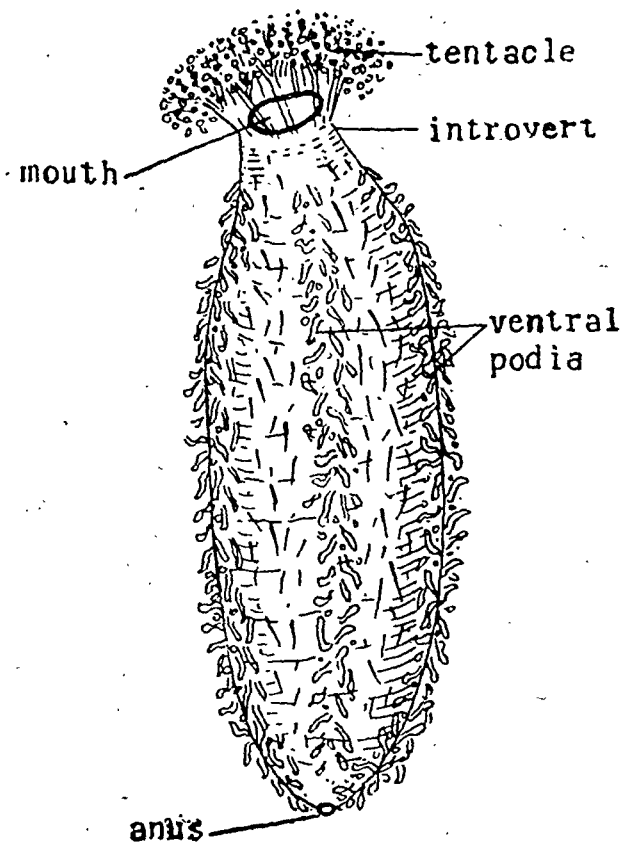
चित्र 528. होलोथ्यूरिया (निचली सतह)।
Tentacle, स्पर्शक; mouth, मुख; introvert, अंतरावर्त; ventral podia, अधर नालपद; anus, गुदा।

पर अथवा उसे छुये-छेड़े जाने पर ये कुवीरियन अंग और कभी-कभी उनके साथ में आँतराँग भी बाहर निकाल फेंक दिए जाते हैं और शत्रु चिपकदार धागों में उलझ जाता है, खोये हुए अंग दो या तीन सप्ताह में दोबारा से बन जाते हैं।

होलोथ्यूरिया सभी समुद्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। यह अंशतः अपने निचले नालपदों से और अंशतः पेशीय देह-भित्ति के द्वारा चलता है। चीन और जापान के लोग समुद्री-खीरों को खाते हैं।

4. **एंटेडॉन** (*Antedon*) (फेदर-स्टार)—इनमें एक छोटी कप-जैसी आकृति की डिस्क अथवा एक किरीट (crown) होता है, किरीट में एक निचली कप-जैसी अपमुख सतह होती है जिसे **केलिक्स** कहते हैं और जिस पर सुविकसित अस्थिकाएँ

बनी होती हैं। किरीट की ऊपरी मुख-सतह को **टेग्मेन** कहते हैं और इसके ऊपर सूक्ष्म कैल्सियमी प्लेटों से युक्त चर्मीय त्वचा का आवरण चढ़ा होता है। निचली
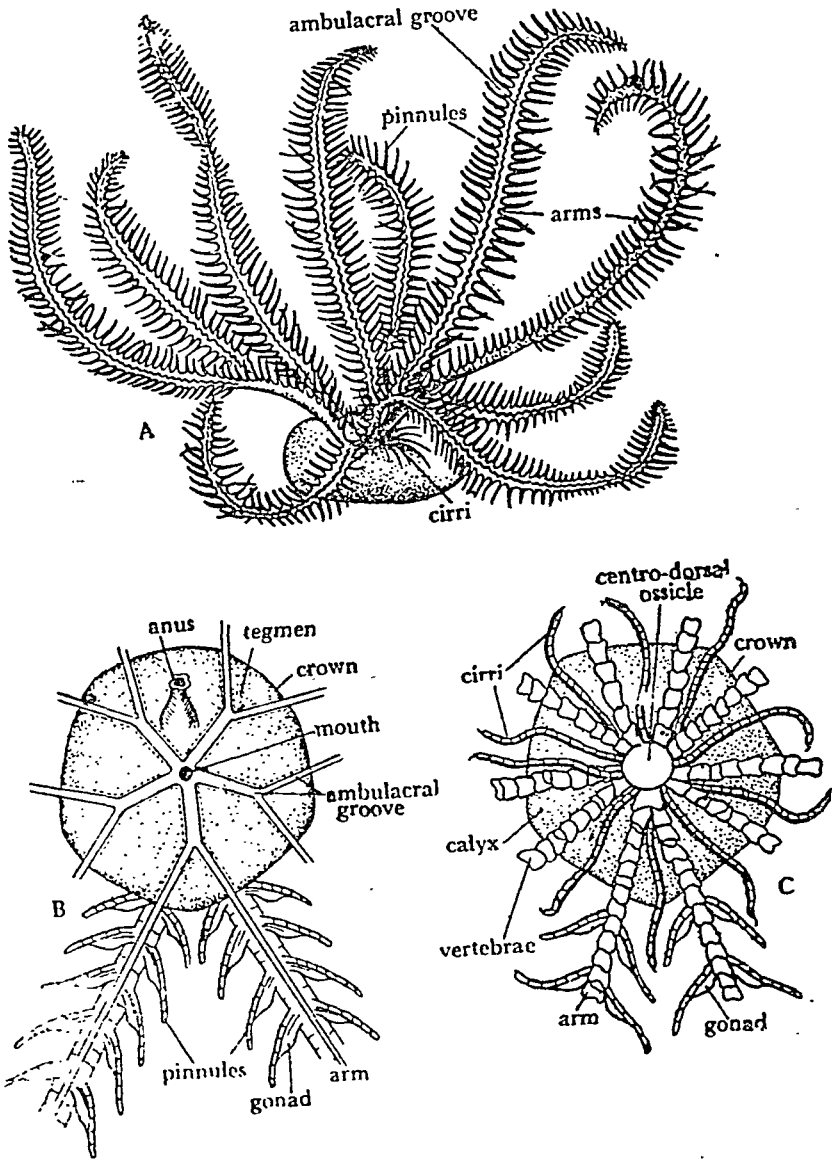
चित्र 529. A–**ऐंटेडॉन**; B–किरीट का मुख दृश्य; C–अपमुख दृश्य। Ambulacral groove, वीथि-खाँच; pinnules, पिच्छिकाएँ; arms, भुजाएँ; cirri, सिरस; anus, गुदा; tegmen, टेग्मेन; crown, किरीट; mouth, मुख; gonad, गोनड; centro-dorsal ossicle, केन्द्र-पृष्ठ अस्थिका; calyx, केलिक्स; vertebrae कशेरुकाएँ।

अपमुख सतह अथवा केलिक्स में एक **केन्द्र-पृष्ठ अस्थिका** (centro-dorsal ossicle) होती है जो एक वृंत की ठूंठ होती है, इस अस्थिका के चारों ओर अनेक पतले-पतले

संधिस्थ **सिरस** (cirri) होते हैं जिनमें हर एक के सिरे पर एक हुक वाला नखर होता है। केन्द्र-पृष्ठ अस्थिका के सीमान्तों से पाँच पतली भुजाएँ निकलती हैं जो द्विशाखित हो जाती हैं और हर शाखा में उसके अगल-बगल पतली संधिस्थ **पिच्छिकाओं** (pinnules) की एक-एक पंक्ति बनी होती है। पिच्छिकाओं पर उनके आधारों पर गोनड बने होते हैं (या तो वृषण या अंडाशय)। भुजाओं को कशेरुक जैसी प्लेटों के कंकाल का आलम्ब मिला होता है। अन्य इकाइनोडर्मों के विपरीत इसकी मुख सतह ऊपर की ओर को होती हैं; यह ऊपरी सतह अथवा टेग्मेन में एक पैपिला पर बनी केन्द्रबाह्य गुदा होती है तथा एक केन्द्रीय मुख होता है। मुख से अरीय रूप में निकली हुई पाँच वीथि-खांचें होती हैं, वे द्विशाखित हो जाती और प्रत्येक भुजा की दोनों शाखाओं में चली जाती हैं; और उनमें एक-एक शाखा हर पिच्छिका में भी चली जाती है। वीथि-खांचें खुली और सिलियायित होती हैं. खांचों के सहारे चूषकों से रहित उंगली-जैसे नालपदों की दो पंक्तियाँ होती हैं। नालपद भी सिलियायित होते हैं। सिलिया के द्वारा एक धारा उत्पन्न होती है जो जैव अपरद से बने आहार-कणों को खांचों के सहारे-सहारे मुख तक ले जाती है। नालपद श्वसनीय भी होते हैं तथा मुख के चारों ओर वाले नालपद संवेदी होते हैं। शूल, पेडिसेलेरिया तथा मैड्रेपोराइट नहीं होते।

एँटेडॉन उथले समुद्रों में सभी जगह पाई जाती है और हिन्द प्रशांत महासागर में बहुत आम होती है। बच्चे एक वृंत के द्वारा स्थानबद्ध हो जाते हैं और यह वृंत अपमुख सतह पर केन्द्र-पृष्ठ अस्थिका से निकला होता है, लेकिन वयस्क प्राणी वृंत से टूटकर अलग हो जाता है और अपनी भुजा की सहायता से तैरता जाता है हालाँकि सामान्यतः यह निष्क्रिय होता है, यह अपने सिरसों के द्वारा चट्टानों से अस्थायी तौर पर चिपक जाता है, यह अपनी भुजाओं के सिरों के सहारे-सहारे रेंग भी लेता है। इस क्लास के अन्य सदस्य जिन्हें **समुद्री-लिली** कहते हैं वृंतयुक्त होते हैं तथा वे गहरे समुद्रों में स्थायी तौर पर **स्थानबद्ध** रहते हैं। समुद्री-लिलियों तथा फ़ैदर-स्टारों में पुनरुद्भवन की अपार क्षमता पाई जाती है, वे खोई हुई पिच्छिकाओं, सिरसों तथा, और तो और, अपने किरीट के पाँचवें हिस्से तक का **पुनरुद्भवन** कर सकते हैं।

इकाइनोडर्मेटा पर टिप्पणियाँ

इकाइनोडर्मेटा समुद्री जन्तुओं का एक सुसीमित तथा सफल वर्ग है, जो पेलियोजोइक से चलता चला आ रहा है। ये सभी समुद्रों की तली में धीमे-धीमे रेंगते हुए चलते रहते हैं, हालाँकि कुछेक तैर भी सकते हैं। इनमें स्वरूप और स्वभाव की अपार विविधता पाई जाती है, और कुल मिला कर एक विचित्र वर्ग हैं। शरीर 10 मुख्य विभाजनों का बना होता है जो एक प्रधान अक्ष से अरीय रूप में निकले होते हैं, ये विभाजन हैं-- पाँच **अरें** तथा पाँच **अंतरा अरें**। जिस सतह पर मुख होता है उसे **मुख सतह** अथवा वीथि-सतह कहते हैं और उससे विपरीत सतह को **अपमुख सतह** अथवा अभिवीथि-सतह कहते हैं। नालपद वीथि-सतह में अरीय दलों

के रूप में निकले होते हैं और इन अरीय दलों को **वीथियाँ** कहते हैं। ऐल्टेरॉयडिया तथा क्रिनॉयडिया में हर वीथि के नालपद एक वीथि-खाँच के प्रत्येक पार्श्व में से बाहर को निकले होते हैं। इस वीथि-खाँच के तल में एक अरीय तंत्रिका-रज्जु पड़ी होती है, लेकिन अन्य क्लासों में वीथि-खाँच बन्द होती है, जिससे कि तंत्रिका-रज्जु को बन्द करती हुई एक **अधितंत्रिका नाल** बन जाती है। देह का प्रधान अक्ष इन दो सतहों के बीच में से होकर गुजरता है। इसी अक्ष की लम्बाई पर शरीर की आकृति निर्भर होती है। स्टारफ़िशों में यह अक्ष छोटा होता है और अपमुख-सतह नीचे को होती है; अन्य में अक्ष लम्बा होता है, समुद्री खीरों में मुख से युक्त मुख-सतह अग्रीय होती है और जंतु अपने प्रधान अक्ष को जमीन के समान्तर रखता हुआ पड़ा रहता है, समुद्री-लिलियों में मुख सतह सबसे ऊपर की ओर होती है। ऐस्टेरॉयडिया, ओफ़ियुरॉयडिया तथा क्रिनॉयडिया में शरीर अरों की दिशाओं में भुजाओं के रूप में लम्बा हो गया होता है और वीथि एवं अभिवीथि सतहें असमान होती हैं किन्तु होलोथ्यूरॉयडिया तथा इकाइनॉयडिया में वीथि सतह संहत शरीर के अधिकतर भाग पर फैली होती है, केवल एक छोटा-सा अपमुख क्षेत्र जो कि मुख के विपरीत होता है बचा रह जाता है।

अनेक इकाइनोडर्मेटा में **आत्म-विकलन** (self-mutilation) अथवा **स्वविच्छेदन** (autotomy) की क्षमता पाई जाती है जिसमें वे पकड़ लिए जाने पर अपनी भुजाओं को तोड़ डाल सकते अथवा अपने भीतरी अंगों को बाहर निकाल फेंक सकते हैं, यह लक्षण और इसी के साथ-साथ पुनरुद्भवन की क्षमता अनेक ओफ़ियूरॉयडों, कुछ ऐस्टेरॉयडों, कुछ होलोथ्यूरॉयडों तथा कुछ क्रिनॉयडों में सबसे ज्यादा मात्रा में पाई जाती है, लेकिन यह इकाइनॉयडिया में नहीं पाई जाती।

इकाइनोडर्मेटा अन्य सभी सीलोमी जन्तुओं में से मुख्यतः अपनी **अरीय सममिति** के कारण भिन्न होते हैं। यह सममिति द्विपार्श्वीय सममिति से परवर्ती रूप में उत्पन्न हुई होती है और इसके कारण उनके तमाम तंत्रों में तरोड़-मरोड़ आ जाता है। कुछ रचनाएँ द्विपार्श्वीय होती हैं, लेकिन बाहर से तथा भीतर से सममिति कभी भी सर्व सम्पूर्ण नहीं होती क्योंकि मैड्रेपोराइट अथवा गुदा अथवा जनन-छिद्र एक अन्तरा-अर को शेष अन्तरा-अरों से भिन्न बना देते हैं।

कंकाल—मीज़ोडर्म से डर्मिस में पड़ी हुई अस्थिकाओं का कंकाल बनता है; ये अस्थिकाएँ थोड़ी और छितराई हुई हो सकती हैं ताकि देह-भित्ति को एक चर्मीय गठन प्राप्त होता है अथवा वे पेशियों के द्वारा जुड़कर एक निश्चित कंकाल बना लेती हैं, या वे कसकर सटी-सटी जुड़ी होकर एक कवच बना लेती हैं। कुछ अस्थिकाएँ प्रायः शूलों के रूप में बाहर को निकली होती हैं जिनके ऊपर का एपिडर्मिस समाप्त हो जाता है। दो या तीन शूल इस तरह व्यवस्थित हो सकते हैं कि वे संडसी-जैसा कार्य करें, इनसे विविध प्रकार की **पेडिसेलेरिया** बनती हैं जो केवल ऐस्टेरॉयडिया तथा इकाइनॉयडिया में ही पाई जाती हैं। आदिम कंकाल में प्लेटों की दो शृंखलाएँ हुआ करती थीं जो मुख और शिखर-तन्त्र बनाती थीं, लेकिन आजकल के इकाइनो-

डर्मेटा में शिखर-प्लेटें अविद्यमान, अथवा ह्रासित, अथवा सहायक प्लेटों द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती हैं जैसे कि समुद्री-अर्चिनों का किरीट। मुख-तंत्र में मुख के चारों ओर पाँच प्लेटें होती हैं, यह केवल क्रिनॉयडिया में ही पूर्ण विकसित होता है जिसमें एक केलिक्स बन जाता है। चूना न केवल कंकाल में ही जमा होता जाता है वरन् देह के किसी भी अंग में पाया जा सकता है।

सीलोम—सीलोम उन युग्मित कोष्ठों से बनता है जो भ्रूणीय आद्यांत्र की पार्श्व बहिर्वृद्धियों के रूप में निकलते हैं, इस प्रकार सीलोम आंत्रसीलोमी होता है। कोष्ठों में संकुचन होकर एक अग्र और एक पश्च थैला बन जाता है। पश्च थला बढ़ता जाता और सीलोमी गुहाएँ बना लेता है तथा अग्र थैले एक जल-वाही तंत्र के मूलाँग बन जाते हैं, इन थैलों को **हाइड्रोसील थैले** कहते हैं। बाएँ हाइड्रोसील थैले में एक अश्मनलिका बन जाती है जो देह-भित्ति के साथ संबंध बनाए रखती है, दाहिनी ओर का हाइड्रोसील थैला विलुप्त हो जाता है किन्तु हाल के प्रमाणों से पता चलता है कि दाहिने हाइड्रोसील थैले का प्रतिदर्श अक्षीय साइनस के पृष्ठीय थैले के रूप में है। इस प्रकार समूचा **जल-वाही तंत्र** बाएँ हाइड्रोसील से बनता है, और इसके भागों में एक अरीय व्यवस्था आ जाती है।

जल-वाही तन्त्र के अलावा सीलोमी गुहाओं से ये भाग बनते हैं—एक **परिआँतरांग गुहा** जिसमें प्रधान आँतरांग होता है, एक **परिरुधिर तन्त्र** जिसमें एक वाही-तन्त्र बन्द रहता है, और उसी का **अपमुख साइनस** प्रसार जिसमें गोनड बन्द रहते हैं, तथा एक **अक्षीय साइनस** जिसका अलग-अलग क्लास में अलग-अलग मात्रा में विकास हुआ होता है, लेकिन इसमें एक छिद्र होता है जो मैड्रेपोराइट बनाता है।

सम्बन्ध—मुक्त एल्यूथेरोज़ोआ चिपके रहने वाले पेलमैटोज़ोआ-पूर्वजों से उत्पन्न हुए हैं। इकाइनोडर्मेटा का अन्य किसी भी अकशेरुकी से निकट सम्बन्ध नहीं पाया जाता, सिर्फ़ हेमिकॉर्डेटा (Hemichordata) तथा पोगोनोफ़ोरा (Pogonophora) ही ऐसे दो वर्ग हैं जिनमें सम्बन्ध पाया जाता है। इन तीनों फ़ाइलमों में अनेक लक्षण समान रूप में पाए जाते हैं; इन लक्षणों में ये शामिल हैं: सीलोम का आँत्रसीलोमी विधि से बनना, भावी गुदा के स्थान पर ब्लास्टोपोर का कायम बना रहना, किसी न किसी अवस्था पर डिप्ल्यूरुला-जैसे लार्वा का पाया जाना, और एक हृदय-आशय का पाया जाना जो दाहिने अग्र सीलोम का प्रतिदर्श हो सकता है। कुछ इकाइनोडर्मों के लार्वा (होलोथ्यूरियनों का **ऑरिकुलैरिया** लार्वा) सैकोग्लॉसस (*Saccoglossus*) के **टॉर्नेरिया** लार्वा के बहुत समान होते हैं। लेकिन निम्नलिखित कारणों के आधार पर वे हेमिकॉर्डेटों के बहुत निकट सम्बन्ध वाले होते हैं: 1. मीज़ोडर्म की उत्पत्ति ब्लास्टोपोर के ओष्ठों के चारों ओर की कोशिकाओं से होती है। 2. इनमें एक मीज़ोडर्मी अंतःकंकाल होता है, जबकि अकशेरुकियों में ऐक्टोडर्मी बाह्यकंकाल होता है। 3. कॉर्डेटों की तरह ब्लास्टोपोर से वयस्क की गुदा बनती है, अकशेरुकियों (ऐनेलिडों, मोलस्कों) में ब्लास्टोपोर का मुख बन जाता है। 4. मुख एक नई रचना के रूप में एक्टोडर्मी

स्टोमोडियम से बनता है जैसे कि कॉर्डेटों में। 5. सीलोम आद्यांत्र के युग्मित पार्श्व अंधवर्धो से बनता है और आन्त्रसीलोमी होता है।

इकाइनोडर्मेटा और हेमिकॉर्डेटा में जो अनेक समानताएँ मिलती हैं वे न तो आकस्मिक हैं और न ही समाभिरूप विकास (convergent evolution) के कारण हैं, वल्कि इसलिए हैं क्योंकि दोनों फ़ाइलम सम्बन्धित हैं और दोनों ही किसी समान पूर्वज से उत्पन्न हुए है। हेमिकॉर्डेटा इस समान पूर्वज के अधिक निकट हैं, जबकि इकाइनोडर्म दूर चले गये हैं क्योंकि वे पूर्वज प्रकार की अन्धशाखा के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

13

फ़ाइलम हेमिकॉर्डेटा
(PHYLUM HEMICHORDATA)

हेमिकॉर्डेटा अथवा ऐडेलोकॉर्डेटा जीभ-कृमि होते हैं जो बहुत अरसे से फ़ाइलम कॉर्डेटा के एक उपफ़ाइलम अथवा क्लास के रूप में निम्नतर कॉर्डेटा अथवा प्रोटोकॉर्डेटा के अंतर्गत रखे जाते रहे हैं, किन्तु अब इन्हें अकशेरुकियों का एक स्वतंत्र फ़ाइलम बना कर रखा जाता है क्योंकि कॉर्डेटों के साथ इनके परिकल्पित संबंधों के बारे में अब संदेह किया जाने लगा है। हेमिकॉर्डेटा एक छोटा-सा वर्ग है जिसमें समुद्री, एकचारी अथवा कॉलोनीय कृमि-जैसे आंत्रसीलोमी जंतु आते हैं जिनमें से अधिकतर नलिकाओं में रहने वाले होते हैं। इनका नर्म और भंगुर शरीर इन्हें संग्रह के लिए पकड़ते समय टूट-टूट जाता है। शरीर और आंत्रसील प्रकार का सीलोम तीन असमान भागों में बँटा होता है **शुंडिका, कॉलर** और **धड़**। अधिकतर उदाहरणों में गिल-छिद्रों की एक से अनेक जोड़ियाँ होती हैं और वे भीतर ग्रसनी में से बाहर को खुलते हैं। तंत्रिका-तंत्र तंत्रिका-कोशिकाओं तथा तंतुओं का एक जाल होता है जो शरीर की सतह पर एपिडर्मिस में गड़ा हुआ पाया जाता है। इनमें कोई हड्डी-ऊतक नहीं होता बल्कि मुखपूर्वी प्रदेश में एक मुखीय अंधनाल होता है जिसे अक्सर नोटोकॉर्ड (पृष्ठ-रज्जु) मान लिया जाता है। पूँछ नहीं होती। परिवर्धन कुछ में सीधा होता है लेकिन कुछ अन्य में एक टॉर्नेरिया लार्वा पाया जाता है। इस फाइलम में 100 स्पीशीज़ पाई जाती हैं, इसके अंतर्गत तीन जीवित क्लास आते हैं, 1. एन्टेरॉप्न्यूस्टा (Enteropneusta), 2. टेरोब्रैंकिएटा (Pterobranchiata), 3. प्लैंक्टोस्फ़ीरॉयडिया (Planctosphaeroidea)।

बैलैनोग्लॉसस (*Balanoglossus*)
(एकॉर्न कृमि)

बैलैनोग्लॉसस क्लास **एंटेरॉप्न्यूस्टा** में आता है जिसमें एक सीधी पाचन नलिका होती है। मुख और गुदा शरीर के विपरीत सिरे पर बने होते हैं, इनमें बहुसंख्यक गिल-छिद्र होते हैं लेकिन कोई भुजाएँ नहीं होतीं। ये मिट्टी में खोदकर रहने वाले जंतु हैं और इनका आकार 2 cm. से 50 cm. के भीतर पाया जाता है।

बाह्य लक्षण—**बैलैनोग्लॉसस** उष्ण और शीतोष्ण महासागरों के तट के सहारे-सहारे उथले जल में ज्वार-चिह्नों के बीच में पाया जाता है। इनकी करीब 20 स्पीशीज़ हैं, ये लगभग 30 cm. लंबी होती हैं हालाँकि ब्राज़ील की एक स्पीशीज़ 2 मीटर तक लंबी होती है। ऐंटेरॉप्न्यूस्टा नलिकावासी प्राणी होते हैं जो रेतीली तली में U-की आकृति के बिल बनाते हैं, इस नलिका की दीवारों का अस्तर जंतु के
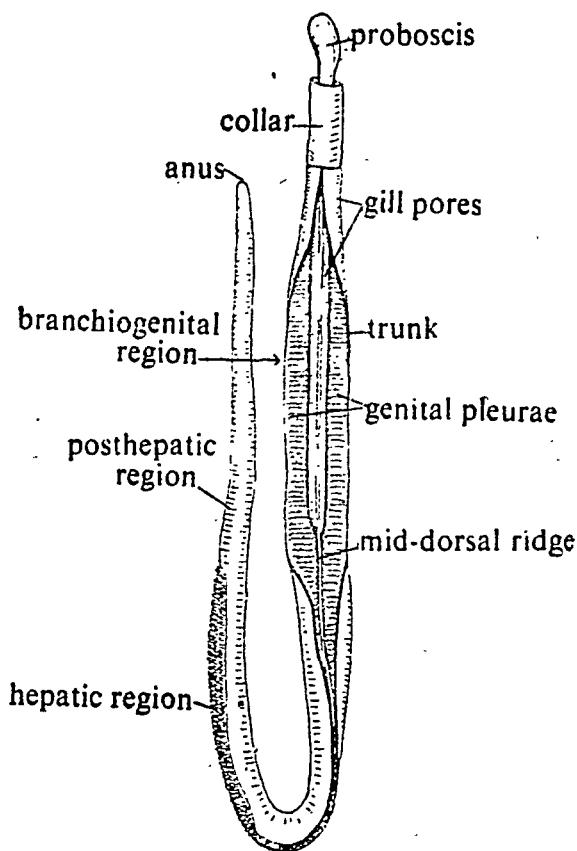
चित्र 530. **बैलैनोग्लॉसस ऑरेंशिऐकस** (*Balanoglossus aurantiacus*) (पृष्ठ दृश्य)

Proboscis, शुण्डिका; collar, कॉलर; anus, गुदा; gill pores, गिल-छिद्र; branchiogenital region, गिल-जनन प्रदेश; trunk, धड़; genital pleurae, जनन-पार्श्विकाएँ; mid-dorsal ridge, मध्य पृष्ठ कटक; post-hepatic region, यकृतपश्चीय प्रदेश; hepatic region, यकृत-प्रदेश।

शरीर से स्रावित श्लेष्मा का बना होता है। बिल दोनों सिरों पर खुले होते हैं, और केंचुए की टट्टी की तरह इसकी विष्ठा भी सर्पिल कुण्डलियों के रूप में होती है जो बिल के पिछले छिद्र पर देखी जा सकती है। अधिकतर उदाहरण हल्के बादामी से रंग के होते हैं, हालाँकि कभी-कभी कुछ-कुछ लाल झलक भी पाई जा सकती है, अनेक

स्पीशीज़ अपनी श्लेष्मा के द्वारा जीवदीप्त होती हैं। इनमें से एक अप्रिय गंध निकलती है।

शरीर सिलिंडराकार होता है, जिसमें पूरी सतह पर खूब अधिक सिलिया बने होते हैं तथा श्लेष्मा ढकी रहती है। यह द्विपार्श्वतः सममित होता और तीन प्रदेशों में विभाजित रहता है। एक गोल अथवा शंक्वाकार **शुण्डिका** होती है जिसे प्रोटोसोम भी कहते हैं, यह भाग मुखपूर्वी होता है, यह पीछे को एक छोटी संकीर्ण गर्दन अथवा **शुण्डिका वृंत** (proboscis stalk) में जाती रहती है। दो शुण्डिका-छिद्र होते हैं जिनमें से जल भीतर प्रविष्ट होकर शुण्डिका के सीलोम में पहुँच जाता है। दूसरा प्रदेश एक छोटा, चौड़ा पेशीय **कॉलर** अथवा मीज़ोसोम होता है जो आगे गर्दन के ऊपर को फैला हुआ होता है। मुख अधर दिशा में शुण्डिका वृंत तथा कॉलर के बीच में खुलता है। एक जोड़ी **कॉलर छिद्र** कॉलर गुहाओं में से पहले गिल-कोष्ठ में को खुलते हैं। मिट्टी में घुसने में शुण्डिका तथा कॉलर दोनों ही इस्तेमाल किए जाते हैं, इनकी सीलोमी गुहाएँ समुद्री-जल से भरी होकर फूल जाती हैं—यह जल उनमें सिलिया की क्रिया के द्वारा उन्हीं कॉलर छिद्रों में होता हुआ भीतर जाता है, उसके बाद देह-पेशियाँ संकुचित होती हैं जिससे पहले तो शुण्डिका और फिर कॉलर मिट्टी में घुस जाते हैं जहाँ वे फूल जाते हैं और धड़ भीतर को खींच लिया जाता है। देह का तीसरा भाग **धड़** (मेटासोम) होता है जो लंबा हो गया पिछला भाग होता है, यह कुछ-कुछ चपटा और सतह पर वलयित होता है, इस पर एक मध्यपृष्ठ और एक मध्य-अधर कटक होता है। धड़ तीन भागों में विभाजित होता है, एक अग्र गिल-जनन प्रदेश (branchiogenital region), एक बीच का यकृत-प्रदेश (hepatic region) और एक पश्चीय उदरीय अथवा यकृत-पश्चीय (posthepatic) प्रदेश होता है। गिल जनन-प्रदेश में हर पार्श्व पर छोटे-छोटे **गिल-छिद्रों** की लंबाई में एक पंक्ति बनी होती है, इन गिल-छिद्रों में गिल नहीं होते अतः वे ग्रसनी-छिद्र होते हैं। कुछ हेमिकॉर्डेटा में जैसे **बैलैनोग्लॉसस** में गिल-छिद्रों के समीप गिल-जनन प्रदेश के पार्श्व भागों से पतले पत्ती-जैसे **जनन-पंख** (genital wings) अथवा **जनन-पार्श्विकाएँ** (genital pleurae) होती हैं जो वक्र और वलनयुक्त होती हैं, गोनड जनन-पार्श्विकाओं में पड़े रहते हैं और सतह पर खुलते हैं। यकृत-प्रदेश की बाहरी सतह पर कुछ अनियमित उभार बने होते हैं जो अंतड़ी के **यकृत अंधनालों** (hepatic caeca) के निकले होने से बनने वाले कोशों के कारण होते हैं। उदर प्रदेश धीरे-धीरे सिरे की तरफ पतला होता जाता और उसमें एक अंतस्थ गुदा होती है।

देह-भित्ति—लंबे सिलियायित एपिथीलियम का बना हुआ एक कोशिका मोटाई वाला एपिडर्मिस होता है। एपिडर्मिस में बहुसंख्यक जालकित (reticulate) एवं चषक (goblet) ग्रंथि-कोशिकाएँ होती हैं। ग्रंथि-कोशिकाएँ कॉलर में अधिक प्रचुर होती हैं। ग्रंथि-कोशिकाओं से श्लेष्मा का स्राव होता है जो जंतु को पूरी तरह ढके रहती और बिल का अस्तर बनाती है। श्लेष्मा में बहुत ही अप्रिय गंध होती है। डर्मिस नहीं होता। एपिडर्मिस के नीचे तंत्रिका-कोशिकाओं एवं तंतुओं की एक तंत्रिका-

परत होती है जो एपिडर्मिसी कोशिकाओं से निकट सम्पर्क बनाते हुए एक जाल बनाते हैं। तंत्रिका-जाल के नीचे एक आधारक झिल्ली होती है जिसके नीचे फिर कम विकसित पेशियाँ होती हैं। शुण्डिका तथा कॉलर में एक बाहरी परत वृत्ताकार पेशियों
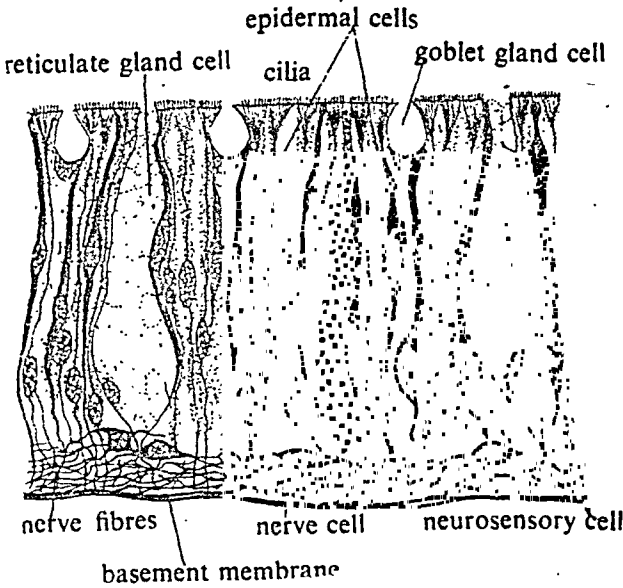
चित्र 531. देह-भित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन।

Reticulate gland cell, जालिका ग्रंथि-कोशिका; cilia, सिलिया; epidermal cells, एपिडर्मिसी कोशिकाएँ; goblet gland cells, चषक ग्रंथि-कोशिकाएँ; nerve fibres, तंत्रिका-तंतु; basement membrane, आधारक झिल्ली; nerve cell, तंत्रिका-कोशिका; neurosensory cell, तंत्रिका-संवेदी कोशिका।

की और एक भीतरी परत अनुदैर्घ्य पेशियों की होती है। धड़ में केवल अनुदैर्घ्य पेशियों की ही परत पाई जाती है।

सीलोम—सीलोम आंत्रसीली होता है जो कि आंत्र की बहिर्वृद्धियों से बना होता है। देह के तीन प्रदेशों के अनुरूप सीलोम भी तीन भागों में विभाजित होता है जो पटों द्वारा एक-दूसरे से पूरी तरह पृथक् होते हैं। सीलोम का अस्तर सीलोमी एपिथिलियम अथवा पेरिटोनियम का बना होता है। लेकिन एंटेरॉप्न्यूस्टा इस बात में विचित्र होते हैं कि इनके सीलोमी एपिथीलियम में योजी ऊतक और पेशी-तंतु होते हैं जो मूल सीलोमी गुहाओं को काफ़ी ज्यादा भरे रहते हैं, और एक स्पष्ट पेरिटोनियमी अस्तर विलीन हो चुका है, इसके अलावा सीलोमी पेशीन्यास के स्थान पर देह-भित्ति पेशियाँ बन जाती हैं। सीलोम के तीन भाग इस प्रकार होते हैं : एक अयुग्मित शुंडिका सीलोम, एक जोड़ी कॉलर सीलोम, और एक जोड़ी धड़ सीलोम। **शुंडिका-सीलोम** अथवा शीर्ष-गुहा या प्रोटोसील शुंडिका में अकेली गुहा होती है जो अधिकतर

पेशियों और योजी ऊतक से भरी होती है, मुख अंधवर्ध, ग्लोमेरुलस और हृदय-उसमें को निकले होते हैं, और यह एक मध्य-पृष्ठ **शुण्डिका छिद्र** के द्वारा बाहर को खुलता है। **कॉलर सीलोम** अथवा मीज़ोसील में कॉलर में अगल-बगल पड़ी हुई दो गुहाएँ होती हैं जो आंत्रयोजनियों द्वारा एक-दूसरे से पृथक् रहती हैं। प्रत्येक सीलोम एक **कॉलर-छिद्र** के द्वारा बाहर को खुलता है, और यह एक छिद्र नलिका के द्वारा अपनी ही दिशा के प्रथम गिल-कोश में को भी खुलता है। **धड़ सीलोम** अथवा मेटासील में दो गुहाएँ होती हैं जो पृष्ठ और अधर आँत्रयोजनियों द्वारा पृथक् रहती हैं, इनमें छिद्र नहीं होते
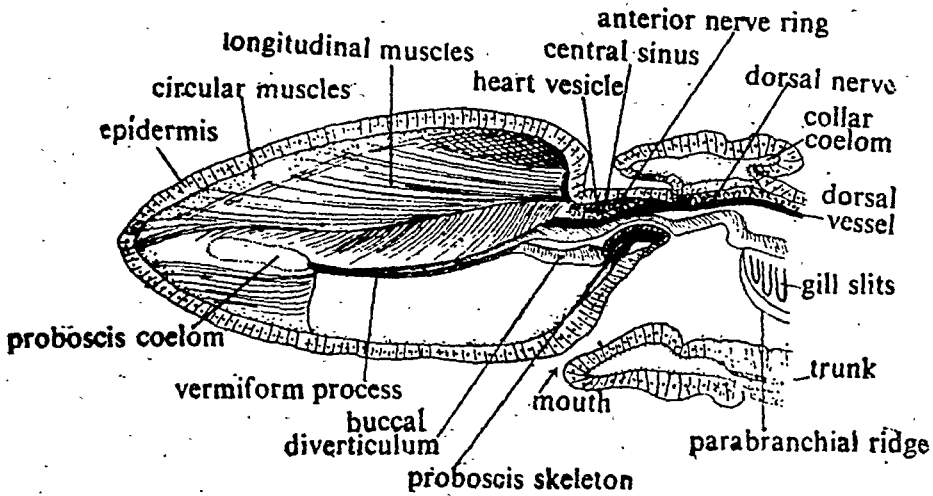
चित्र 532. **शाइज़ोकार्डियम** (*Schizocardium*) का समिमितार्धी (लम्बाई में बीच से खड़ा) सेक्शन।

Epiderims, एपिडर्मिस; circular muscles, वृत्ताकार पेशियाँ; longitudinal muscles, अनुदैर्घ्य पेशियां; heart vesicle, हृद्-आशय; central sinus, केन्द्रीय साइनस; anterior nerve ring, अग्र तंत्रिका वलय; dorsal nerve, पृष्ठ तंत्रिका; collar coelom, कॉलर सीलोम; dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; gill slits, गिल-छिद्र; trunk, धड़; parabranchial ridge, परागिल कटक; mouth, मुख; proboscis skeleton, शुण्डिका कंकाल; buccal diverticulum, मुख अंधवर्ध; vermiform process, कृमिसम प्रवर्ध; proboscis coelom, शुण्डिका-सीलोम।

और इनमें अमीबीय सीलोम कोशिकाओं से युक्त सीलोमी तरल भरा रहता है। शुण्डिका और कॉलर सीलोमों में उनके छिद्रों के द्वारा जल आकर भर जाता है। हेमिकॉर्डेटा का सीलोम जैसा कि सिफ़ैलोकॉर्डेटा तथा इकाइनोडर्मेटा में होता है, आद्यांत्र के कोष्ठों से निकलता है जो तीन भाग बनाते हैं।

कंकाल—कोई निश्चित अंतःकंकाल नहीं होता लेकिन आलम्ब प्रदान करने की प्रकृति वाली चार दृढ़ रचनाएँ होती हैं—मुख अन्धवर्ध, शुंडिका-कंकाल, गिल-कंकाल, और एक पुच्छांतरज्जु (pygochord)। 1. **मुख-अंधवर्ध** (buccal diverticulum)
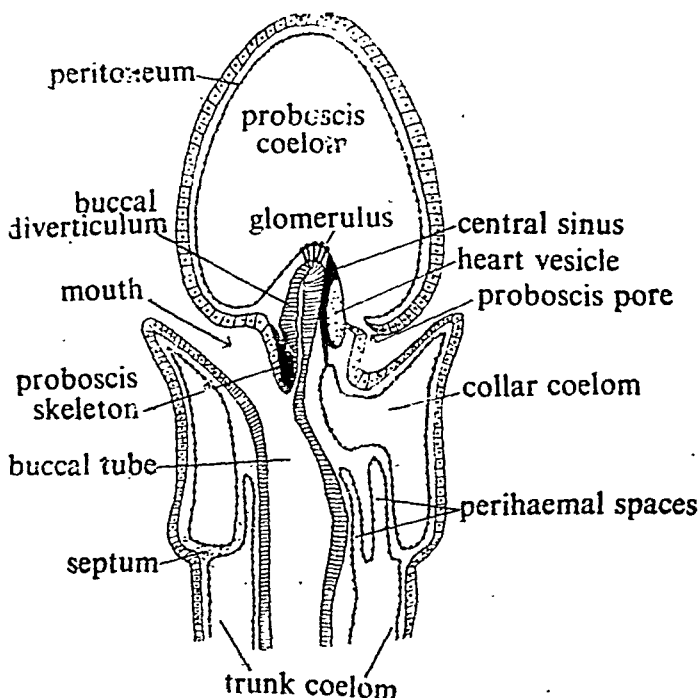
चित्र 533. ऐटेरॉप्न्यूस्ट की सीलोमी गुहाएँ।

Peritoneum, पेरिटोनियम; proboscis coelom, शुंडिका-सीलोम; buccal diverticulum, मुख-अंधवर्ध; glomerulus, ग्लोमेरुलस; central sinus, केन्द्रीय साइनस; mouth, मुख; heart vesicle, हृदय आशय; proboscis pore, शुंडिका-छिद्र; collar coelom, कॉलर-सीलोम; proboscis skeleton, शुंडिका-कंकाल; buccal tube, मुख-नलिका; septum, पट; perihaemal spaces, परिरुधिर गुहाएँ; trunk coelom, धड़-सीलोम।

एक खोखली मुखपूर्वी वहिर्वृद्धि होती है जो मुखगुहा की छत से शुंडिका में को फैली होती है, इसे बहुत समय तक नोटोकॉर्ड (पृष्ठ-रज्जु) अथवा मुख-रज्जु यह मान कर कहा जाता रहा है कि यह रचना कॉर्डेटों के नोटोकॉर्ड के अग्र भाग का प्रतिदर्श है। मुख-अंधवर्ध कुछ एंटेरॉप्न्यूस्टों में एक पतले **कृमिरूप प्रवर्ध** (vermiform process) अथवा **एपेंडिक्स** के रूप में आगे को फैला होता है। मुख अंधवर्ध कॉर्डेट के नोटोकॉर्ड का न तो समजात ही है और न ही समवृत्ति। ऊतक-रचना की दृष्टि से यह मुख-गुहा की दीवार के एकसमान है, प्रकटतः यह आहार-नाल के मुखपूर्वी प्रसार के अतिरिक्त
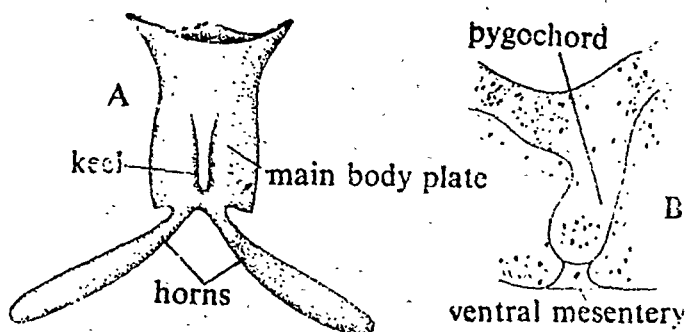
चित्र 534. A—शुँडिका-कंकाल ; B—पुच्छांत-रज्जु ।
Keel, नौतल; main body plate, प्रधान देह-प्लेट; horns, शृंग; pygochord, पुच्छांत-रज्जु; ventral mesentery, अधर आंत्रयोजनी ।

और कुछ नहीं । 2. **शुण्डिका-कंकाल** (proboscis skeleton) अथवा न्यूकल-कंकाल आधारक झिल्ली से बना होता है जो मोटी होकर एक पटलिकित प्लेट बना लेती है और इस प्लेट में से दो पतले शृंग अथवा कार्नु निकल आते हैं, प्लेट में प्रायः एक मध्यअधर नौतल बना होता है । शुँडिका-कंकाल शुंडिका-वृंत में पड़ा होता है और इसके सींग मुख-गुहा की छत में को फैले होते हैं । 3. **गिल-कंकाल** (branchial skeleton)—V की आकृति के गिल-छिद्रों की दीवारों में कंकाली छड़ों का आलम्ब बना होता है, इन छड़ों को प्राथमिक तथा द्वितीयक गिल-छड़ें कहते हैं जो आधारक झिल्ली के स्थूलन से बन जाती हैं । 4. **पुच्छांत-रज्जु** (pygochord)—एक अनुदैर्घ्य छड़-जैसी रचना होती है जो अंतड़ी की अधर दिशा से देह-भित्ति तक फैली होती है, इसके कार्य की जानकारी नहीं है लेकिन हो सकता है कि यह नरम उदरीय भाग को आलम्ब प्रदान करता हो ।

पाचन-तंत्र—अधर दिशा पर कॉलर और शुण्डिका-वृंत के बीच में एक गोल मुख होता है जो सदैव खुला रहता है । मुख एक सीधी चौड़ी आहार-नली में को खुलता है, यह नली देह के अन्तिम पश्च सिरे पर स्थित गुदा द्वारा बाहर को खुलती है । आहार-नाल की दीवार एपिथीलियमी कोशिकाओं की बनी होती है जिनमें भीतर की तरफ़ सिलिया बने होते हैं, पेशी परतें नहीं होतीं । आहार-नाल का इन भागों में विभाजन हो सकता है : मुख-गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका तथा अंतड़ी । मुख कॉलर के भीतर की मुख-गुहा में को खुलता है, इस गुहा का अस्तर सिलियायित तथा ग्रंथि-कोशिकाओं का बना होता है । मुख-गुहा की छत **ग्रसनी** में को खुलती है जो धड़ के अग्र भाग में पड़ी रहती है । ग्रसनी में एक पृष्ठीय गिल-भाग होता है जिसमें गिल-छिद्र होते हैं और एक अधर नाली होती है जो आहार-मार्ग का कार्य करती है । इसके पृष्ठ और अधर भाग हर पार्श्व पर एक गहरे अनुदैर्घ्य संकुचन के द्वारा पृथक् हुए होते हैं, इन संकुचनों के भीतर की ओर हर पार्श्व पर एक परागिल कटक होता है जो ग्रसनी की अवकाशिका में को फैला होता है । अन्तिम गिल-छिद्र के पीछे एक **ग्रसिका** होती है जिसमें कुछ उदाहरणों (**सैकोग्लॉसस**) में पृष्ठ छिद्रों की अनेक जोड़ियाँ होती हैं जो
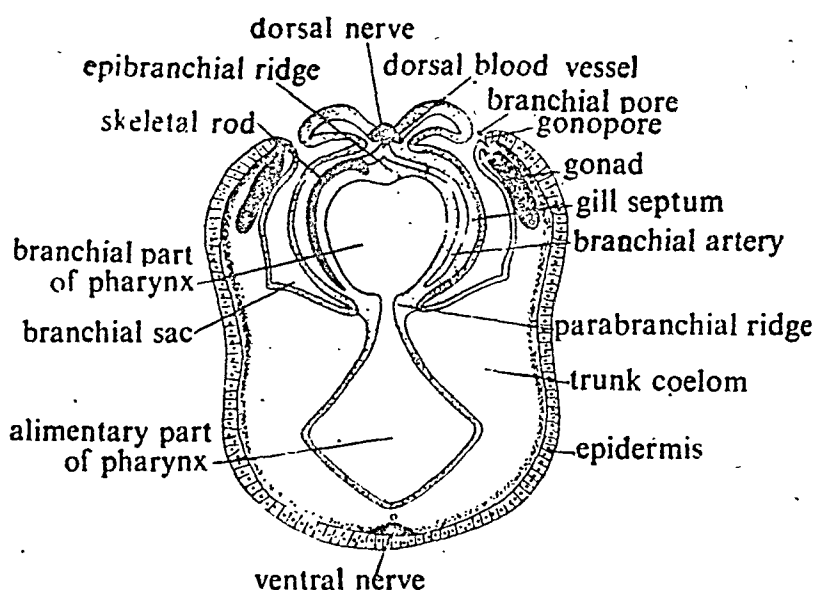
चित्र 535. **बैलैनोग्लॉसस** का ग्रसनी से गुजरता हुआ सेक्शन।

Epibranchial ridge, अधिगिल कटक; dorsal nerve, पृष्ठ-तंत्रिका; dorsal blood vessel, पृष्ठ रुधिर वाहिका; branchial pore, गिल-छिद्र; gonopore, जनन-छिद्र; gonad, गोनड; gill septum, गिल-पट; branchial artery, गिल धमनी; parabranchial ridge, परागिल कटक; trunk coelom, धड़ सीलोम; epidermis, एपिडर्मिस; ventral nerve, अधर तंत्रिका; alimentary part of pharynx, ग्रसनी का आहार-नालीय भाग; branchial sac, गिल-कोश; branchial part of pharynx, ग्रसनी का गिल भाग; skeleton rod, कंकाल छड़।

कदाचित् गिल-छिद्रों के अवशेष हैं। ग्रसिका के पीछे **अंतड़ी** होती है जिसमें एक अगला यकृत-प्रदेश और एक पिछला अंतड़ी प्रदेश होता है। यकृत-प्रदेश में अन्तड़ी की पृष्ठ दीवार से बहुसंख्यक सुव्यक्त थैलियाँ बनी होती हैं जिन्हें **यकृत-अन्धनालें** (hepatic caeca) बनी होती हैं जो देह-भित्ति को बाहर की ओर धकेल देते हैं और इस तरह बाहर से दिखाई पड़ते रहते हैं। पश्चीय अन्तड़ी प्रदेश सीधा चलता जाता और अन्तस्थ गुदा पर खुल जाता है जिसमें अक्सर संवरणी पेशियाँ होती हैं।

बिल न बनाने वाले हेमिकॉर्डेटा सिलियरी अशन करने वाले नहीं होते लेकिन **बैलैनोग्लोसस** मिट्टी में घुसते जाते समय अपने मुँह में मिट्टी और जल के साथ-साथ जैव आहार को भी ले जाता है। यह कार्य गिल-छिद्रों के सिलिया द्वारा उत्पन्न होने वाली सिलियरी धाराओं के द्वारा होता है। आहार-नाल के भीतरी सिलिया पीछे की दिशा में चलने वाली धाराएँ पैदा करते हैं जिससे आहार चलता जाता है। ग्रसिका

की ग्रंथि-कोशिकाओं से एन्जाइम बनते हैं। शुण्डिका से स्रावित श्लेष्मा में ऐमाइलेज़ होता है जो आहार के साथ-साथ खा लिया जाता है। ऐसा भी कहा गया है कि यकृत अन्धनालों से ऐमाइलेज, माल्टेज, लाइपेज़ तथा एक दुर्बल प्रोटिएज़ का स्राव होता है। एन्जाइमों से कीचड़ में मौजूद जैव-पदार्थ का पाचन हो जाता है और कीचड़ भारी मात्राओं में गुदा में से होकर बाहर को निकाल दी जाती है जो बिल के पिछले सिरे पर बीट का ढेर बना देती है। हालाँकि बिलकारी एंटेरॉप्न्यूस्ट कीचड़ खाते हैं जिसमें से जैव-पदार्थ पचा लिया जाता है, अबिलकारी स्पीशीज़ में सिलियरी अशन होता है। शुण्डिका की सतह की श्लेष्मा में अपरद फंस जाता है और शक्तिशाली सिलियरी धाराएँ इस श्लेष्मा को कॉलर तक ले जाती हैं. कॉलर के अग्र सिरे के सिलिया या तो कणों को अस्वीकार कर देते हैं या उनको अधरतः मुख में को पहुँचा देते हैं।

गिल-उपकरण ग्रसनी के गिल भाग की दीवार में पड़ा होता है, इसमें हर पार्श्व में U की आकृति के गिल-छिद्रों की एक शृंखला होती है जो ग्रसनी की दीवार को फोड़ते हैं। गिल-छिद्रों की दो पंक्तियों के बीच की ग्रसनी की संकीर्ण पृष्ठ दीवार को **अधिगिल कटक** (epibranchial ridge) कहते हैं। हर गिल-छिद्र की दोनों शाखाएँ ऊपर को मुंह किए रहती हैं, और एक गिल-छिद्र की दोनों शाखाओं के बीच की ग्रसनी-दीवार **द्वितीयक गिल छड़** (secondary gill bar) अथवा जीभ-छड़ (tongue bar) होती है जिसमें सीलोम का एक भाग होता है। क्रमिक गिल-छिद्रों के बीच-बीच में ग्रसनी दीवार एक **पट** अथवा **प्राथमिक गिल छड़** (primary gill bar) बनाती है जो ठोस होती है और उनमें सीलोम नहीं होता। प्राथमिक और द्वितीयक छड़ें अधिकतर
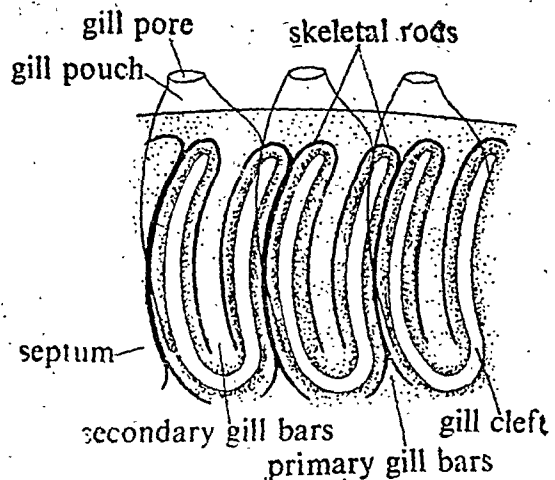
चित्र 536. ग्रसनी दीवार का एक अंश। Gill pouch, गिल कोष्ठ; gill pore, गिल-छिद्र; skeletal rods, कंकाल शलाकाएँ; gill cleft, गिल-दरार; primary gill bars, प्राथमिक गिल-छड़ें; secondary gill bars, द्वितीयक गिल-छड़ें; septum, पट।

एंटेरॉप्न्यूस्टा में साइनेप्टिकुला नामक अनुप्रस्थ संयोजनों द्वारा जुड़ी रहती हैं, इन एंटेरॉप्न्यूस्टा में **बैलैनोग्लॉसस** भी शामिल है। प्राथमिक और द्वितीयक गिल-छड़ों को **कंकाल-शलाकाओं** (skeletal bars) का बल मिला होता है—ये छड़ें आधारक झिल्ली के स्थूलन से बनी होती हैं। हर कंकाल शलाका U की आकृति की होती है, इस शलाका की एक भुजा प्राथमिक गिल छड़ में होती है और दूसरी शाखा जीभ-छड़

में। इस प्रकार हर प्राथमिक और द्वितीयक गिल-छड़ में पड़ोसी कंकाल शलाकाओं की दो भुजाएँ होती हैं, प्राथमिक गिल-छड़ की दोनों भुजाएँ परस्पर समेकित हो जाती हैं, इस समेकन के फलस्वरूप M की आकृति की कंकाल शलाकाएँ बन जाती हैं। कंकाल शलाकाओं की शाखाएँ साइनैप्टिकुलाओं को भी बल प्रदान करती हैं। प्रत्येक
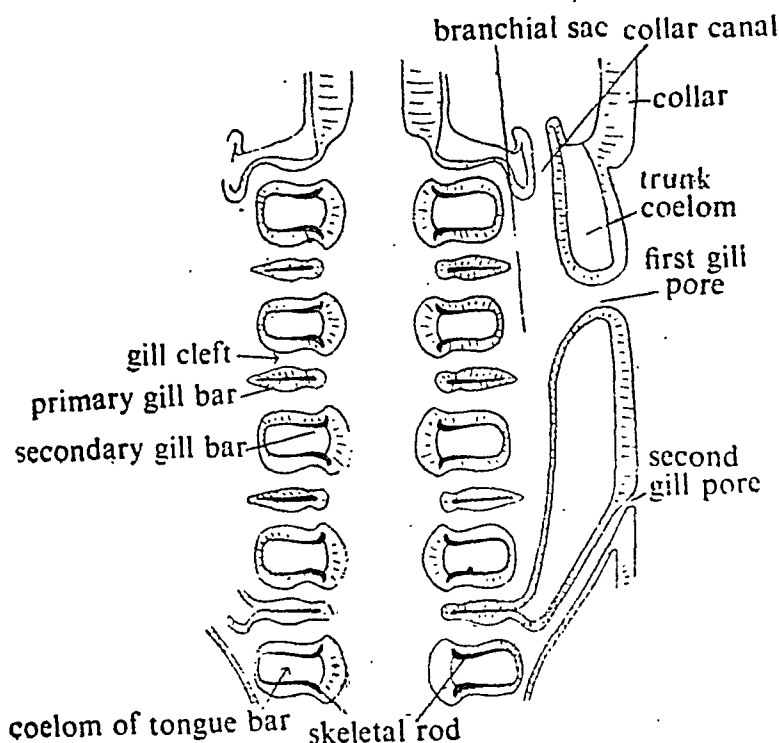
चित्र 537. गिल-प्रदेश का अग्रभाग का अनुदैर्घ्य सेक्शन (L.S.)। Branchial sac, गिल कोश; collar canal, कॉलर नलिका; collar, नलिका; trunk coelom, धड़ सीलोम; first gill pore, प्रथम गिल-छिद्र; second gill pore, दूसरा गिल-छिद्र; skeletal rod, कंकाल शलाका; coelom of tongue bar, जीभ-छड़ का सीलोम; secondary gill bar, द्वितीयक गिल-छड़; primary gill bar, प्राथमिक गिल-छड़; gill cleft, गिल-दरार।

गिल-दरार ग्रसनी से चलकर एक बड़े से थैले में को खुलती है जिसे **गिल-कोष्ठ** अथवा **गिल-थैला** कहते हैं, यह कोष्ठ ग्रसनी की दीवार तथा देह-भित्ति के बीच में पड़ा होता है। हर गिल-कोष्ठ एक **गिल-छिद्र** के द्वारा बाहर को खुलता है। अलग-अलग स्पीशीज़ में गिल-छिद्रों की संख्या अलग-अलग होती है। गिल-छिद्रों की स्थिति मध्य-पृष्ठ रेखा के प्रत्येक पार्श्व पर एक खाँच में बनी होती है और इस प्रकार उनकी दो रेखीय शृंखलाएँ बन जाती हैं।

ग्रसनी और गिल-दरारों के अस्तर में सिलियायित कोशिकाएँ होती हैं, लेकिन गिल-कोष्ठों के अस्तर में चपटी असिलियायित कोशिकाएँ होती हैं। गिल-उपकरण के सिलिया द्वारा एक जलधारा उत्पन्न होती है जो मुख में प्रवेश करके ग्रसनी में पहुँचती और फिर गिल-दरारों में से होकर गिल-कोश में जाती है जहाँ से जल गिल-छिद्रों में से होकर बाहर निकल जाता है। श्लेष्मा में फंस जाने वाले आहार-कण इसी जलधारा के साथ आते हैं किंतु इस धारा का मुख्य कार्य श्वसनीय जान पड़ता है क्योंकि ग्रसनी की दीवार में अधर वाहिका से आने वाले रक्त साइनसों का एक जाल बना होता है, रक्त और जलधारा के बीच में गैस-विनिमय होता है।

परिसंचरण-तंत्र—रक्त रंगविहीन होता है और उसमें कणिकाएँ नहीं होतीं, इसमें कुछ थोड़ी-सी पृथक् हो गई एंडोथीलियमी कोशिकाएँ होती हैं। एक **पृष्ठ-वाहिका** होती है जो आहार-नाल के ऊपर आंत्रयोजनी में से मध्य-पृष्ठ दिशा में चलती जाती है, यह गुदा के समीप शुरू होती और आगे की ओर चलती जाती है। पृष्ठ-वाहिका
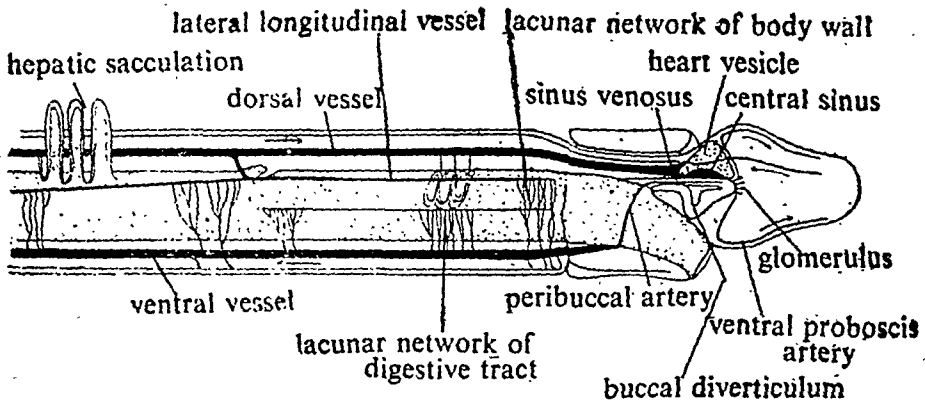
चित्र 538. परिसंचरण-तंत्र।

Hepatic sacculation, यकृत कोष्ठायन; dorsal vessel, पृष्ठ वाहिका; lateral longitudinal vessel, पार्श्व अनुदैर्घ्य वाहिका; lacunar network of bodywall, देह-भित्ति का रिक्तिका-जाल; sinus venosus, शिरा-कोटर; heart-vesicle, हृदय-आशय; central sinus, केन्द्रीय आशय; glomerulus, ग्लोमेरुलस; ventral proboscis artery, अधर शुण्डिका धमनी; buccal diverticulum, मुख-अंधनाल; peribuccal artery, परिमुख धमनी; lacunar network of digestive tract, पाचन-पथ तथा रिक्तिका-जाल; ventral vessel, अधर वाहिका।

का कार्य आहार-नाल तथा देह-भित्ति से रक्त एकत्रित करना होता है। शुण्डिका के पश्च भाग में पृष्ठ-वाहिका एक **केन्द्रीय साइनस** अथवा **हृदय** नामक संकुचनशील गुहा में आ मिलती है। हृदय के तुरन्त ऊपर पड़ा हुआ एक **हृदय आशय** (heart vesicle) अथवा **परिहृद्** होता है जिसकी निचली दीवार संकुचनशील होती है और केन्द्रीय साइनस से रक्त का प्रवाह पैदा करती है। हृदय-आशय के हर पार्श्व में नलिकाकार

प्रवर्ध शुंडिका-सीलोम में को निकले होते हैं और एक अंग **ग्लोमेरुलस** (glomerulus) का निर्माण करते हैं । केन्द्रीय साइनस में से रक्त ग्लोमेरुलस में धारण किए हुए एक जालक में पहुँच जाता है—यह ग्लोमेरुलस रक्त में से अपशिष्ट पदार्थों को निकाल लेता है । ग्लोमेरुलस में से रक्त दो छोटी परिमुख वाहिकाओं में को पहुँचता है जो मुख-गुहा के हर पार्श्व से एक-एक गुज़रती हुई नीचे को चली जाती हैं, उसके बाद वे जुड़ कर एक **अधर-वाहिका** बनाती हैं जो आहार-नलिका के नीचे से अधर-आंत्र-योजनी में से होती हुई पीछे को चलती जाती है । अधर-वाहिका रिक्तिका-जालकों के द्वारा रक्त को देह-भित्ति तथा आहार नलिका में सप्लाई करती है और इसी सप्लाई में गिल-दरारों के बीच में स्थित गिल-छड़ों में होने वाली सप्लाई भी शामिल है । इन जालकों में से रक्त पृष्ठ-वाहिका में पहुँच जाता है ।

पृष्ठ एवं अधर वाहिकाओं की दीवारें एंडोथीलियमी कोशिकाओं की बनी होती हैं और सकुंचनशील होती हैं । पृष्ठ-वाहिका में रक्त आगे की ओर को और अधर-वाहिका में पीछे की ओर को चलता है । रक्त का वायवीकरण कदाचित् गिल-उपकरण में होता है हालाँकि कोई श्वसन वर्णक नहीं होता ।

उत्सर्गी-तंत्र—मुख अंधवर्ध के समीप सिरों पर बन्द नलिकाकार प्रवर्ध निकले होते हैं जो एक **शुण्डिका-ग्रंथि** अथवा **ग्लोमेरुलस** बनाते हैं । ग्लोमेरुलस में एक रक्त जालक होता है और यह रक्त में से उत्सर्गी पदार्थ हटाता जाता है—इन पदार्थों में यूरिया और यूरिक अम्ल आते हैं । ये अपशिष्ट पदार्थ शुण्डिका-सीलोम में को डाल दिए जाते हैं जहाँ से वे शुण्डिका-छिद्र में से होकर बाहर निकल जाते हैं । ऐसा भी कहा गया है कि शुण्डिका-सीलोम की पेरिटोनियमी कोशिकाओं तथा कॉलर की कुछ कोशिकाओं में पीला अथवा भूरा उत्सर्गी पदार्थ भरा होता है ।

तंत्रिका-तंत्र में तंत्रिका-तंतुओं का बना हुआ एक आदिम तंत्रिका-जालक होता है जो देह-भित्ति की आधारक झिल्ली के बाहर को स्थित रहता है; इस जालक में द्विध्रुवी तथा बहुध्रुवी तंत्रिका-कोशिकाएँ होती हैं । एपिडर्मिस की कोशिकाओं के धागे-जैसे प्रवर्ध इस तंत्रिका-जाल में योग पहुँचाते हैं, धड़ की मध्य-पृष्ठीय और मध्य-अधर रेखाओं के सहारे-सहारे तंत्रिका-जाल मोटा होकर कॉलर में एक **तंत्रिका-वलय** बनाता है जो दो तंत्रिका-रज्जुओं से जुड़ जाता है । पृष्ठ तंत्रिका-रज्जु आगे बढ़ती हुई कॉलर में पहुँच जाती है जहाँ वह एपिडर्मिस में से बाहर आ जाती, मुख-गुहा के ऊपर कॉलर-सीलोम में से चलती और यहाँ पर यह कुछ मोटी हो जा कर एक नलिकाकार **कॉलर-रज्जु** अथवा तंत्रिका नलिका के रूप में अंतर्वलित हो जाती है जो दोनों सिरों पर खुली होती है ।

संवेदी अंग अच्छी तरह विकसित नहीं होते । एपिडर्मिस में बहुसंख्यक **तन्त्रिका-संवेदी कोशिकाएँ** होती हैं जो तन्त्रिका-जाल से संयोजित रहती हैं, ये शुण्डिका के ऊपर अधिक संख्या में होती हैं । ऐसा कहा गया है कि कुछ स्पीशीज में थोड़ी-सी तन्त्रिका-संवेदी कोशिकाएँ प्रकाश के प्रति संवेदी **प्रकाशग्राही** बनाती हैं । शुण्डिका के आधार की अधर दिशा पर U की आकृति का एक गढ़ा होता है जिसे **मुखपूर्वी**

सिलियरी अंग (preoral ciliary organ) कहते हैं। इस अंग में तन्त्रिका-जाल से जुड़ी हुई सिलियायित कोशिकाएँ होती हैं, यह एक रसायनग्राही होता है।

जनन—1. **बेलेनोग्लॉसस** में पुनरुद्भवन की भारी क्षमता पाई जाती है, पश्च सिरे पर छोटे-छोटे टुकड़े टूट कर अलग हो जाते हैं, जिनमें से हर एक टुकड़ा एक पूरा प्राणी बन जाता है। जन्तु के अन्य टूटे हुए टुकड़ों में भी पुनरुद्भवन होकर नए प्राणी बन जाते हैं।

2. लिंग अलग-अलग होते हैं, गोनड एक या अधिक अनुदैर्घ्य पंक्तियों में आधार-नाल के हर पार्श्व में जनन पार्श्विकाओं के भीतर पड़े होते हैं। गोनड सीलोमी दीवार से बनते हैं हालाँकि वयस्क में इनका सीलोम से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। हर गोनड एक थैला होता है जिसमें से एक छोटी-सी वाहिनिका निकल कर गिल-छिद्र के समीप स्थित जनन-छिद्र के द्वारा बाहर को खुलती है। परिपक्व अण्डे और शुक्राणु बिलों में छोड़ दिये जाते हैं जहाँ निषेचन होता है। अधिकतर स्पीशीज़ में अण्डे छोटे और बहुत ही कम पीतक वाले होते हैं, इनमें एक परोक्ष परिवर्धन पाया जाता है जिसमें एक तलप्लावी लार्वा होता है और इस लार्वा को टॉर्नेरिया (tornaria) कहते हैं जिसमें कायान्तरण होता है। लेकिन कुछ स्पीशीज़ में अण्डे बड़े और बहुत ज्यादा मात्रा में पीतक से युक्त होते हैं, इस स्थिति में परिवर्धन सीधा होता है और कोई लार्वा अवस्था नहीं होती।

परिवर्धन—प्रारम्भिक परिवर्धन इकाइनोडर्मों के परिवर्धन जैसा होता है। विदलन पूर्णभंजी होता है और लगभग समान होता है, इस विदलन से एकल-परत वाला **सीनोब्लास्टुला** (coenoblastula) बन जाता है जिसमें अन्तर्वलन होकर एक दोहरी-परत वाला गैस्ट्रुला बन जाता है। गैस्ट्रुला का ब्लास्टोपोर बन्द हो जाता है तथा अन्तर्वलन-गुहा अथवा आद्यांत्र में विभाजन होकर एक अग्र शुण्डिका-सीलोम और एक पश्च आहार-नलिका बन जाती है। मुख और गुदा अन्तर्वलनों के द्वारा बन जाते हैं, गुदा उस स्थान पर बनती है जहाँ पर ब्लास्टोपोर हुआ करता था। एक मुक्त तैरने वाले लार्वा का स्फोटन होता है जिस पर सब तरफ सिलिया बने होते हैं। इस लार्वा में एक एपिडर्मिसी स्थूलन के ऊपर टिके हुए अधिक बड़े सिलिया का एक शिखर-गुच्छा बना होता है। शीघ्र ही शरीर के सिलिया तथा शिखर-गुच्छ विलीन हो जाते हैं और सिलिया की एक संकीर्ण पट्टी बन जाती है जो मुख के आगे से चलती जाती है जहाँ पर इसे मुख-पूर्वी लूप कहते हैं, फिर देह के पार्श्वों से होती हुई पीछे को गुदा के सामने से चलती जाती है। इस लार्वा को अब **टॉर्नेरिया लार्वा** कहते हैं। इसमें एक वक्र आहार-नलिका होती है जिसमें एक अग्रांत्र, जठर, और पश्चांत्र के रूप में विभाजन होता है, मुख एक पार्श्व में तथा गुदा पश्च सिरे पर होती है। इसकी सिलिया-पट्टी अधिक विस्तृत हो जाती और एक अशन-धारा पैदा करती है जो मुख में को पहुँचती रहती है। एक दूसरी अधिक बड़े सिलिया की पट्टी पश्च सिरे के चारों ओर बन जाती है, इसे **टीलोट्रॉक** (telotroch) कहते हैं जो प्रधान चलन-अंग का कार्य करता है। **सिलियरी अंग** नामक एक सिलिया का गुच्छा शिखर एपिडर्मिसी

प्लेट अथवा स्थूलन के ऊपर बन जाता है और उसी के निकट एक जोड़ी छोटे वर्णकित दृष्टि-बिन्दु प्रकट हो जाते हैं।
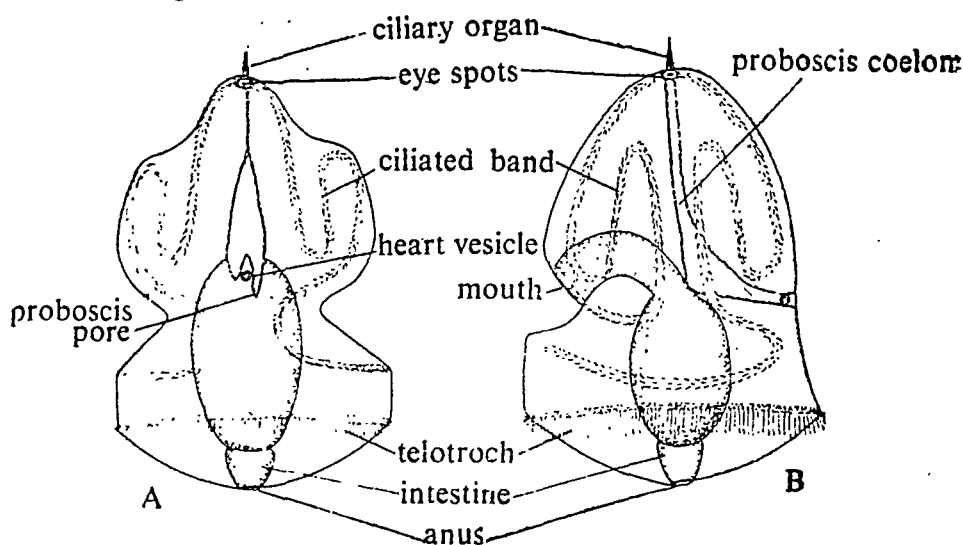
चित्र 539. टॉर्नेरिया लार्वा A- पृष्ठ दृश्य; B- पार्श्व दृश्य।
Ciliary organ, सिलियरी अंग; eye spots, दृष्टि-बिन्दु; ciliated band, सिलियायित पट्टी; heart vesicle, हृदय आशय; mouth, मुख; telotroch, टीलोट्रॉक; intestine, अंतड़ी; anus, गुदा; proboscis pore, शुण्डिका-छिद्र; proboscis coelom, शुण्डिका सीलोम।

टॉर्नेरिया लार्वा और होलोथ्यूरियन इकाइनोडर्मेटा के **औरीकुलैरिया** लार्वा के बीच निकट समानता पाई जाती है। मुक्त-तैरने वाले जीवन के बाद टार्नेरिया लार्वा नीचे बैठ जाता है और उसमें कायांतरण होता है। देह के तीन भाग शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं तथा सिलियरी पट्टियाँ विलीन हो जाती हैं। शरीर और अधिक लम्बा होकर यह एक कृमि-जैसा वयस्क बन जाता है और इसमें मूल सममिति बनी रहती है। आशय जो कि इकाइनोडर्मों में मैड्रेपोरिक आशय बन जाता है **बैलैनोग्लॉसस** में हृदय आशय बन जाता है।

हेमिकॉर्डेटा का वर्गीकरण

फ़ाइलम हेमिकॉर्डेटा में विचित्र समुद्री कृमि-जैसे जन्तु आते हैं जिनका शरीर भंगुर होता है। ये इकाइनोडर्मेटा तथा कॉर्डेटा के साथ सम्बन्ध दर्शाते हैं। इनमें विखण्डशः खण्डीभवन नहीं होता और इनका शरीर तीन प्रदेशों में विभाजित होता है: एक मुखपूर्वी शुण्डिका, एक कॉलर तथा एक धड़। इनमें वयस्क में सीलोम के तीन प्राथमिक खंड होते हैं जो देह-प्रदेशों के अनुरूप होते हैं। इनमें पूँछ नहीं होती, एट्रियम नहीं होता और अस्थि-ऊतक का अभाव होता है। केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र पृष्ठ और अधर दोनों दिशाओं में होता है, यह तन्त्र अंशतः अथवा पूर्णतः देह की सतह पर एपिडर्मिस में गड़ा हुआ होता है। इनमें सामान्यतः एक से लेकर अनेक जोड़ी गिल-

दरारें पाई जाती हैं। आहार-नाल से निकली हुई एक बहिर्वृद्धि जिसे मुख-अन्धवर्ध कहते हैं मुखपूर्व प्रदेश में पाया जाता है, इसे पहले नोटोकॉर्ड (पृष्ठरज्जु) माना जाता था।

क्लास 1. **एंटेरॉप्न्यूस्टा** (Enteropneusta) एकचर मुक्त-जीवी, बिलकारी कृमि-जैसे जन्तु होते हैं, जो आकार में साधारण से काफी ज्यादा लम्बाई तक के हो सकते हैं। इनमें अनेक गिल-दरारें होती हैं और आहार-नलिका सीधी होती है लेकिन इनमें स्पर्शकयुक्त भुजाएँ नहीं होतीं, उदाहरणतः **बैलेनोग्लॉसस, सैकोग्लॉसस (डॉलिकोग्लौसस), हैरिमैनिया।**

क्लास 2. **टेरोब्रैंकिएटा** (Pterobranchiata) स्थानबद्ध, समुद्री हेमिकॉर्डेटा होते हैं जो छोटे आकार के होते हैं, ये बहुत ज्यादा गहराई पर समुच्चय अथवा कॉलोनियाँ बनाकर नलिकाओं में बन्द रहते हैं, ये नलिकाएँ उनकी शुण्डिका से स्रावित हुई होती हैं। गिल-दरारें थोड़ी होती हैं या होती ही नहीं, आहार-नाल U की आकृति की होती है तथा मुख एवं गुदा अग्र सिरे के समीप होते हैं, कॉलर पर दो या अधिक स्पर्शकयुक्त भुजाएँ होती हैं; उदाहरणतः **सिफ़ैलोडिस्कस, रैब्डोप्ल्यूरा।**

क्लास 3. **प्लैंक्टोस्फीरॉयडिया** (Planctosphaeroidea) की जानकारी केवल एक पारदर्शी तलप्लावी लार्वा के रूप में है जो टॉर्नेरिया लार्वा से सम्बन्धित होता है, इस लार्वा में सतह पर विशाखित सिलियायित पट्टियाँ होती हैं, आहार-नाल U की आकृति की होती है। वयस्क की जानकारी अभी तक नहीं है।

क्लास 4. **ग्रैप्टोलिटा** (Graptolita) विलुप्त कॉलोनीय हेमिकॉर्डेटा हैं जो मुख्यतः अपनी नलिकाओं की फ़ॉसिल रचनाओं के ही रूप में ज्ञात हैं। इनमें से ही हर नलिका में एक जीवक (जूऑयड) रहा करता था। ये ऑर्डोवीशियन तथा साइल्यूरियन कालों में प्रचुरता के साथ पाये जाते थे, उदाहरणतः **डेंड्रोग्रैप्टस।**

1. **सिफैलोडिस्कस** (*Cephalodiscus*) के प्राणी अथवा जूऑयड एक साथ बड़े-बड़े समुच्चय बना कर समुद्र की तली में वस्तुओं पर चिपके पड़े रहते हैं, ये उष्णकटिबन्धीय और शीतोष्ण महासागरों में पाये जाते हैं। जूऑयड अलग-अलग नलिकाओं में रहते हैं और ये नलिकाएँ एक सम्मिलित मैट्रिक्स **सीनेसियम** (coenecium) में गड़ी रहती हैं किन्तु विविध जूऑयड एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहते हैं।

सिफैलोडिस्कस के एक जूऑयड की सामान्य संरचना **बैलेनोग्लॉसस** के समान होती है। शरीर में एक शुण्डिका होती है तथा एक कॉलर और धड़ होता है, यह शरीर एक खोखले पेशीय वृन्त के ऊपर टिका रहता है। शुण्डिका एक अधरतः मुड़ी हुई डिस्क होती है, कॉलर पर अनेक खोखली विशाखित भुजाएँ दो पंक्तियों में बनी होती हैं, उन पर स्पर्शक बने होते हैं और उन्हें स्पर्शकयुक्त भुजाएँ कहा जाता है, भुजाओं पर सिलिया होते हैं जो आहार से लदी जलधारा को मुख में पहुँचाते हैं। धड़ एक फूला हुआ थैला होता है जिसमें U की आकृति की आहार-नाल होती है जिसमें एक अधर मुख और एक पृष्ठ गुदा होती है। धड़ के अगले भाग में एक ही जोड़ी

गिल-दरारें होती हैं। नर-मादा अलग-अलग होते हैं, इनमें से हर एक में पृथक्-पृथक् जनन-छिद्रों द्वारा खुलने वाले एक ही जोड़ी गोनड होते हैं और ये जनन-छिद्र धड़ के अग्र भाग पर पृष्ठ दिशा में होते हैं। निषेचन और बिना लार्वा-अवस्था वाला सीधा
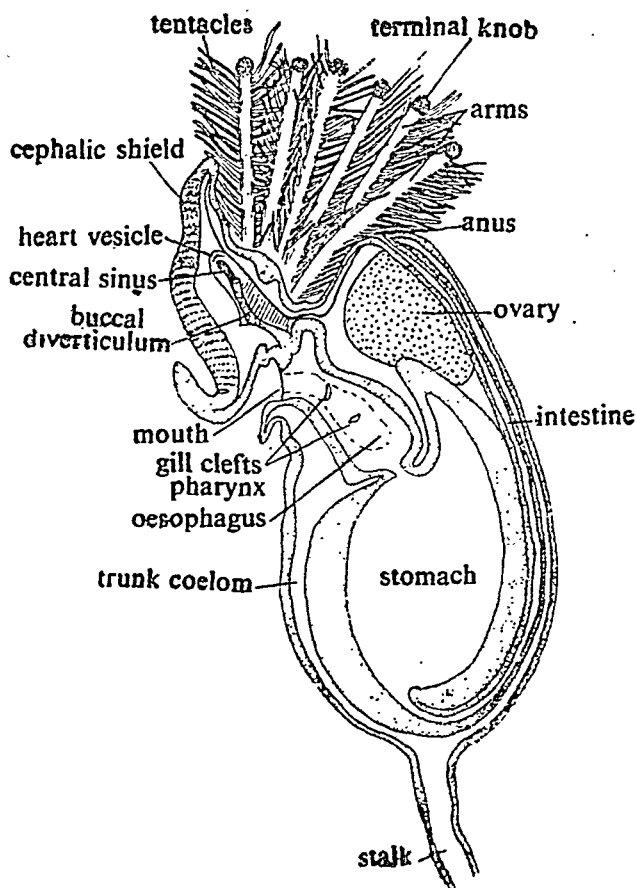
चित्र 540. सिफ़ैलोडिस्कस का समिताधीं सेक्शन (Sagittal section)। Tentacles, स्पर्शक; cephalic shield, शीर्ष-शील्ड; terminal knob, अन्तस्थ घुण्डी; arms, भुजाएँ; anus, गुदा; heart vesicle, हृदय आशय; central sinus, केन्द्रीय साइनस; buccal diverticulum, मुख अन्धवर्ध; ovary, अण्डाशय; intestine, अंतड़ी; mouth, मुख; gill-cleft, गिल-दरारें (ग्रसनी); oesophagus, ग्रसिका; trunk coelom, धड़ सीलोम; stalk, वृन्त।

परिवर्धन--ये दोनों ही सीनेसियम् में होते हैं। मूल प्राणी लैंगिक रूप से पैदा होता है, इसके धड़ पर एक वृन्त होता है जिसके ऊपर मुकुल होते हैं, ये मुकुल स्वतन्त्र हो जाते और उनमें से हर एक मुकुल एक जूऑयड बनाता हुआ अपनी नलिका का स्राव कर लेता है।
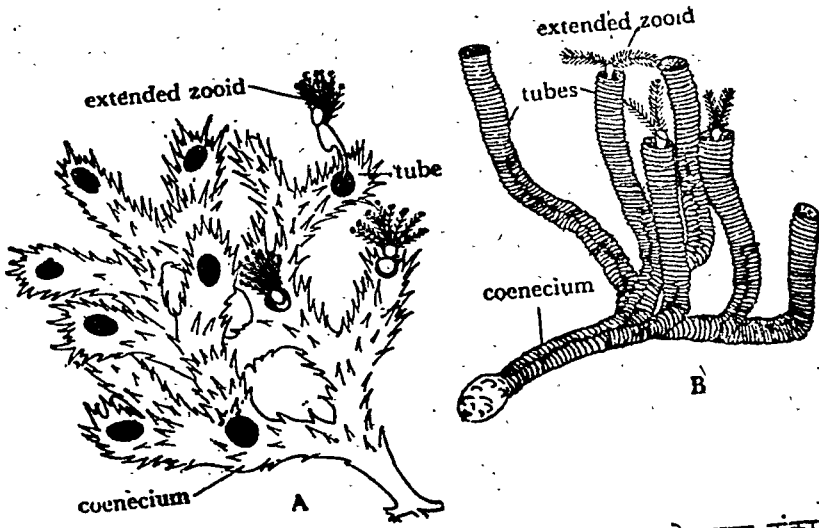
चित्र 541. A- **सिफ़ैलोडिस्कस**; B- **रैब्डोप्ल्यूरा**, अपने-अपने बाह्य कंकालों में।
Extended zooid, फैला हुआ ज़ूऑयड; tube, नलिका; coenecium, सीनेसियम।
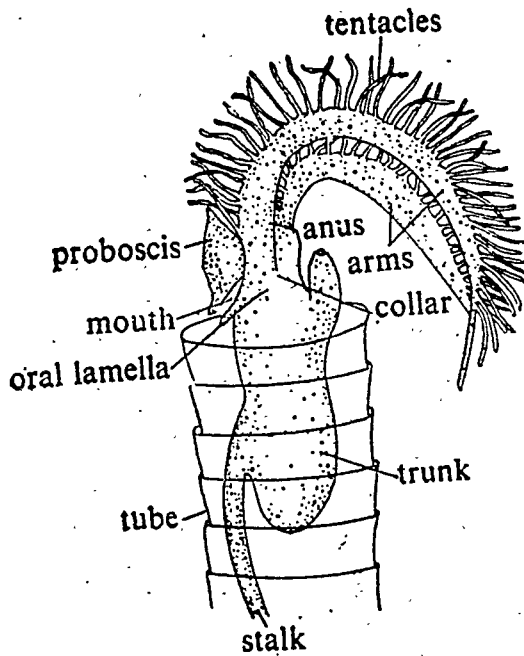
चित्र 542. **रैब्डोप्ल्यूरा** कॉलोनी का एक प्राणी।
Tentacles, स्पर्शक; proboscis, शुण्डिका; mouth, मुख; oral lamella, मुख पटलिका; tube, नलिका; stalk, वृंत; trunk, धड़; collar, कॉलर; anus, गुदा; arms, भुजाएँ।

2. रैब्डोप्ल्यूरा (*Rhabdopleura*) एक वास्तविक कॉलोनीय प्राणी है; कॉलोनियाँ पत्थरों, मूंगों और स्थानबद्ध समुद्री जन्तुओं के ऊपर चिपकी रहती हैं तथा ये अधिकतर उत्तर अटलांटिक में पाई जाती हैं। कॉलोनी में एक पतली क्षैतिज विशाखित नलिका होती है जिसे सीनेसियम कहते हैं, इसमें से फिर और आगे छोटी-छोटी सीधी खड़ी नलिकाएँ निकलती हैं जिनमें से हर एक में एक ज़ूऑयड होता है। ज़ूऑयड बहुत छोटा होता है, उसकी सामान्य संरचना एंटेरॉप्न्यूस्ट के जैसी होती है जिसमें शुंडिका, कॉलर और धड़ होते हैं, धड़ से जुड़ा हुआ एक वृंत होता है। कॉलर के उपर एक जोड़ी खोखली विशाखित भुजाएँ होती हैं जिन पर प्राणी के वास्ते आहार एकत्रित करने वाले सिलिया बने होते हैं। आहार-नाल U की आकृति की होती है जिसके फलस्वरूप गुदा मुख के निकट पड़ी रहती है। गिल-दरारें नहीं होतीं और ग्लोमेरुलस का अभाव होता है।

नर-मादा अलग-अलग होते हैं, हर लिंग में केवल एक ही गोनड होता है जिसका जनन-छिद्र दाहिनी ओर होता है। बड़े अंडे दिये जाते हैं जिनमें पीतक (योक) भरा रहता है। एक मूल प्राणी लैंगिक विधि से पैदा होता है, उसके धड़ पर एक वृंत होता है जिसके ऊपर मुकुल बने होते हैं, मुकुल स्वतंत्र नहीं हो जाते और हर एक से एक ज़ूऑयड बन जाता है। हर ज़ूऑयड अपनी-अपनी छल्लेदार खड़ी नलिका अर्थात् आवरण का स्राव करता है, और यह नलिका एक-एक छल्ला करके बनती जाती है। हर नलिका के क्षैतिज भाग में एक काला स्टोलन होता है जो विभिन्न ज़ूऑयडों को जनक प्राणी से जोड़े रखता है जिसके फलस्वरूप जुड़े-जुड़े ज़ूऑयडों की एक कॉलोनी बन जाती है।

हेमिकार्डेटा पर टिप्पणियाँ

हेमिकॉर्डेटा के दो बड़े क्लासों में से टेरोब्रैंकिएटा अधिक आदिम हैं, इनकी भुजाओं और स्पर्शकों को एक आदिम लक्षण का प्रतिदर्श माना जाता है जो एंटेरॉप्न्यूस्टा में समाप्त हो चुका है। हेमिकॉर्डेटा प्राणी प्रोटोकॉर्डेटा (निम्नतर कॉर्डेटा) की अपेक्षा अकशेरुकियों से ज्यादा मिलते-जुलते हैं, इन्हीं प्रोटोकॉर्डेटा के साथ इन्हें बहुत काल तक वर्गीकृत किया जाता रहा है। इनके जाति-वृत्तीय सम्बन्ध स्थापित करने में इन्हें ऐनेलिडा, इकाइनोडर्मेटा और कॉर्डेटा के साथ जोड़ा जाता रहा है। ऐनेलिडा से इनकी मुख्य समानताएँ इस प्रकार हैं: 1. सामान्य देह-आकृति तथा नलिकावासी प्राणियों का मिट्टी में घुसते जाने का स्वभाव दोनों में एक-सा होता है और बिल बनाते जाने में मिट्टी खाई जाती रहती है, यह मिट्टी गुदा में से बीट की तरह निकलती जाती है। 2. अधिकतर हेमिकॉर्डेटाओं का वाही-तन्त्र ऐनेलिडों में वाही-तन्त्र के समान होता है जिसमें रक्त आगे की ओर को पृष्ठ-वाहिका में और पीछे की ओर को अधर वाहिकाओं में चलता जाता है। 3. हेमिकॉर्डेट का टॉर्नेरिया लार्वा पॉलीकीट कृमियों का रूपांतरित ट्रोकोस्फ़ीयर लार्वा जैसा दिखाई पड़ता है। लेकिन इन दोनों

वर्गों के बीच पाए जाने वाले अन्तर इतने बड़े हैं कि इन दोनों के बीच जाति-वृत्तीय सम्बन्ध नहीं हो सकते।

इकाइनोडर्मेटा से निकटताएँ—वयस्क हेमिकॉर्डेट और वयस्क इकाइनोडर्म एक दूसरे से इतने विभिन्न होते हैं कि उनमें कोई सम्बन्ध समझना कठिन है, इन दोनों में एकमात्र संरचना-सम्बन्धी समानता उनका तंत्रिका-तंत्र है जो दोनों मामलों में एक तंत्रिका-जाल के रूप में होता है और यह तंत्रिका-जाल दोनों ही में सतह के समीप एपिडर्मिस में गड़ा हुआ रहता है। लेकिन भ्रूण-विज्ञान के प्रमाण के आधार पर इन दोनों फ़ाइलमों में एक बहुत ज्यादा निकटता का सम्बन्ध है, दोनों फ़ाइलमों में गैस्ट्रूला एवं सीलोम की निर्माण-विधि बहुत समान है और अनेक वर्षों तक टॉर्नेरिया लार्वा को इकाइनोडर्म का लार्वा माना जाता रहा था। टॉर्नेरिया लार्वा ऐस्टेरॉयडिया के **औरिकुलैरिया** लार्वा से और विशेषकर **बाइपिन्नेरिया** से बहुत ज्यादा विलक्षण समानता दर्शाता है, यह समानता निम्नलिखित तफ़सीलों में और भी ज्यादा प्रकट होती है। 1. दोनों में सिलियायित पट्टी एक समान होती है और टॉर्नेरिया तथा औरिकुलेरिया एवं बाइपिन्नेरिया में यह पट्टी एक ही मार्ग में चलती जाती है, हालाँकि टॉर्नेरिया का टेलोट्रॉक एवं उसके दृष्टि-बिन्दु इकाइनोडर्म लार्वाओं में अविद्यमान होते हैं। 2. हेमिकॉर्डेट तथा इकाइनोडर्म लार्वाओं दोनों ही में आहार-नाल की आकृति एक ही सी होती है और वही विभाजन अग्रांत्र, जठर तथा अंतड़ी होते हैं। 3. दोनों वर्गों में ब्लास्टोपोर गुदा बन जाता है। 4. विदलन तथा गैस्ट्रूला-निर्माण दोनों ही में एक ही प्रकार के होते हैं। 5. सबसे बड़ी और सबसे अधिक सन्तोषप्रद समानता सीलोमी गुहाओं के निर्माण एवं उनकी व्यवस्था में होती है। दोनों ही में सीलोम आँत्रसीलोमी प्रकार का होता है, और यह तीन अग्र-पश्च भागों में विभाजित हो जाता है जिन्हें हेमिकॉर्डेटा में शुण्डिका-सीलोम (प्रोटोसील), कॉलर-सीलोम (मीज़ोसील), तथा धड़ सीलोम (मेटासील) कहते हैं, जबकि इकाइनोडर्मेटा में ये भाग ऐक्सोसील, हाइड्रोसील तथा सोमैटोसील होते हैं। इसके अतिरिक्त हेमिकॉर्डेटों के शुण्डिका-सीलोम और कॉलर-सीलोम बाहर की ओर छोटी जलछिद्री नलिकाओं द्वारा खुलते हैं जैसा कि इकाइनोडर्मों में हाइडोसील में होता है। 6. हेमिकॉर्डेटों के हृदय-आशय का शुण्डिका-सीलोम से सम्बन्ध है और यह इकाइनोडर्म लार्वाओं के मैड्रेपोरिक आशय के समजात है और ये दोनों ही रचनाएँ हेमिकॉर्डेटों के ग्लोमेरुलस से तथा इकाइनोडर्मों की अक्षीय ग्रन्थि से जुड़ी होती हैं जो वाही एवं उत्सर्गी दोनों ही क्रियाएँ करती हैं।

हेमिकॉर्डेटों तथा इकाइनोडर्मों के बीच पाई जाने वाली अनेक भ्रूण-समानताएँ कदाचित् आकस्मिक नहीं हो सकतीं और न ही समाभिरूप विकास के कारण हो सकती हैं। एक ही तर्कपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों वर्ग एक-दूसरे के निकट सम्बन्ध वाले हैं तथा दोनों एक ही समान पूर्वज से उत्पन्न हुए हैं। इकाइनोडर्म अपने पूर्वज प्रकार से बहुत दूर चले गये हैं जबकि हेमिकॉर्डेटा उसके अधिक निकट बने हुए हैं। समान पूर्वज ने एक अन्ध पार्श्व-शाखा के रूप में इकाइनोडर्मों को जन्म दिया जबकि प्रधान विकास-रेखा से हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा पैदा हुए।

कार्डेटा से निकटताएँ—1885 में बेटसन ने हेमिकॉर्डेटा को फ़ाइलम कॉर्डेटा में शामिल किया, उस समय से हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा के बीच में एक गहरा निकट सम्बन्ध माना जाता रहा है। आज भी अधिकतर पुस्तकों में यही व्यवस्था बनी हुई है। हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा का जाति-वृत्तीय सम्बन्ध दोनों वर्गों में तीन मूलभूत कॉर्डेट लक्षणों की कल्पित विद्यमानता के आधार पर कहा जाता है, ये तीन लक्षण इस प्रकार हैं : नोटोकॉर्ड, केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र, और गिल-दरारें।

हेमिकॉर्डेटा के मुख-अंधवर्ध अथवा स्टोमोकॉर्ड (मुख-रज्जु) को बेटसन के समय से नोटोकॉर्ड के तुल्य माना जाता रहा है। हेमिकॉर्डेटा के आधुनिक अध्येता इस विचारधारा को स्वीकार नहीं करते और उन्होंने अनेक आपत्तियाँ प्रकट की हैं। 1. मुख-अंधवर्ध मुख-गुहा की अग्र दीवार की एक खोखली वहिर्वृद्धि है और यह निश्चित नहीं है कि यह एंडोडर्मी उद्भव की है अथवा एक्टोडर्मी उद्भव की; जबकि नोटोकॉर्ड आद्यांत्र की छत में से बनी हुई एक ठोस शलाका होती है। 2. मुख-अंधवर्ध सामान्यतः साधारण एपिथीलियम कोशिकाओं का बना होता है जबकि कशेरुकियों का नोटोकॉर्ड बड़ी रिक्तिकायुक्त कोशिकाओं का होता है। 3. मुख अंधवर्ध के चारों ओर उस प्रकार का कोई ढके रहने वाला आवरण नहीं होता जैसा कि नोटोकॉर्ड के चारों ओर पाया जाता है। 4. मुख-अंधवर्ध पृष्ठीय रक्त वाहिका की अधर दिशा में पड़ा होता है जबकि कशेरुकी का नोटोकॉर्ड सदैव प्रधान पृष्ठ रक्त वाहिका की पृष्ठ दिशा में होता है। 5. मुख अंधवर्ध छोटा और शुंडिका तक ही सीमित होता है जब कि नोटोकॉर्ड काफी दूर पीछे तक चला गया होता है। अतः यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हेमिकॉर्डेटाओं में नोटोकॉर्ड का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है।

हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा के तंत्रिका-तंत्र में कुछ विशिष्ट समानताएँ पाई जाती हैं, जैसे उसकी स्थिति, पृष्ठ तंत्रिका-रज्जु का पृष्ठ एपिडर्मिस से निर्माण होना, और एक खोखली कॉलर-रज्जु का पाया जाना जिसमें प्रायः एक तंत्रिका-छिद्र होता है और जो कशेरुकियों की तंत्रिका-रज्जु के समान मानी जा सकती है। लेकिन कुछ बड़े अन्तर भी पाये जाते हैं जैसे कि एपिडर्मिस के साथ सम्पर्क बनाए हुए इसकी सतही स्थिति का होना, एक मुख्य अधर तंत्रिका-रज्जु का पाया जाना और एक परिआंत्र तंत्रिका वलय का पाया जाना, इन लक्षणों में तंत्रिका तंत्र स्पष्टतः अकशेरुकीय है। अतः हेमिकॉर्डेटा के तंत्रिका-तंत्र का अकशेरुकीय लक्षणों वाला पहलू कॉर्डेटा लक्षणों वाले पहलू से अधिक भारी है।

हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा के बीच की मुख्य योजक कड़ी उनकी ग्रसनी एवं गिल-दरारें हैं। गिल-उपकरण की तफ़सीलें जिनमें जीभ-छड़ें M की आकृति की कंकाल-शलाकाएँ और साइनैप्टिकुला आते हैं **ऐम्फिऑक्सस** की इन्हीं रचनाओं के ठीक समान होती हैं। लेकिन हेमिकॉर्डेटाओं की ग्रसनी में एंडोस्टाइल तथा अधिगिल खाँच (epibranchial groove) नहीं होते हैं। ये समानताएँ केवल सम्मिलित पूर्वजता के ही कारण हो सकती हैं, और हेमिकॉर्डेटा तथा कॉर्डेटा के जाति-वृत्तीय सम्बन्धों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

लेकिन केवल कुछ ही समानताओं के आधार पर हेमिकॉर्डेटाओं को फ़ाइलम कॉर्डेटा में शामिल करना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता जबकि इन समानताओं की तुलना में महत्त्वपूर्ण अन्तर अधिक है। मुख्य अन्तर इस प्रकार हैं : 1. कार्डेटों में देह और सीलोमी प्रदेश हेमिकॉर्डेटा के इन्हीं प्रदेशों के अनुरूप नहीं होते। 2. हेमिकॉर्डेटा के वाही और तंत्रिका-तंत्र अकशेरुकियों के इन्हीं तंत्रों के समान नहीं होते। 3. हेमिकॉर्डेटा में गुदापश्चीय पूंछ नहीं पाई जाती। 4. कॉर्डेट विखंडशः खंडित प्राणी होते हैं, यह विखंडता पेशीय, तंत्रिका-वाही और उत्सर्गी तंत्रों में स्पष्टतः नजर आती है जबकि हेमिकॉर्डेटा में विखंडता का पूर्ण अभाव होता है। 5. हेमिकार्डेटा अपनी रचना और आकारिकी में निश्चय ही अकशेरुकी हैं, वे कॉर्डेटों की अपेक्षा इकाइनोडर्मों के अधिक निकट हैं। यह सबसे अधिक तर्कपूर्ण जान पड़ता है कि इन्हें अकशेरुकियों के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र फाइलम के रूप में रखा जाए जो एक पूर्वज मूल से उत्पन्न हुआ है, एक ऐसे मूल से जिससे एक दिशा में इकाइनोडर्म निकले और दूसरी में हेमिकॉर्डेट तथा कॉर्डेट।

पारिभाषिक शब्दावली

अंग	organ
अंगक	organelle
अंडकोशिका	oocyte
अंडजनन	oogenesis
अंडपुटक	ootheca
अंडपुटी	oocyst
अंडाशय	ovary
अंडाशयक	ovariole
अंतर्वलन	invagination
अंतराअर	interradius
अंतराकोशिक	intercellular
अंतराल कोशिकाएँ	interstitial cells
अंतरावस्था	interphase
अंतःकंकाल	endoskeleton
अंतःकर्षी	retractile
अंतःगुहा	endocoel
अंतःपरजीवी	endoparasite
अंतःपादांश	endopodite
अंतःस्थ पिड	inclusions
अंधवर्ध	diverticulum
अंधनाल	caecum
अंशयुग्मक	merogamete
अक्ष	axis
अक्षपाद	axopod
अकशेरुकी	invertebrate
अकोशिकीय	acellular
अगुणित	haploid
अग्न्याशय	pancreas
अग्र	anterior
अग्रवक्ष	prothorax
अग्रांत्र	foregut, stomodaeum
अधर	ventral

आधारीय	basal
अधिपरासारी	hypertonic
अधोछत्र	subumbrella
अधःस्तर	substratum
अध्यारोप	superposition
अनिषेकजनन	parthenogenesis
अनिर्धारित	indeterminate
अनुकूलन	adaptation
अनुचलन	taxis
अनुदैर्घ्य	longitudinal
अनुप्रस्थ	transverse
अनुवातिका	tracheole
अपरद	detritus
अपवाही	exhalant, efferent
अपविकास	degeneration
अभिवर्तनी	adductor
अभिवाही	afferent
अमीबीय	amoeboid
अयुग्मकजनन	agamogony
अरमुख	actinostome
अरीय	radial
अरेखित	unstriped
अलिंद	auricle
अलैंगिक	asexual
अश्मकोशिका	lithocyte
असमतापी	cold-blooded
असमयुग्मन	anisogamy
असमसूत्रण	amitosis
आंतरकोशिक	intracellular
आंतरांग-	visceral-
आंत्रयोजनी	mesentery
आकारिकी	morphology

आक्सीकरण	oxidation
आगार	reservoir
आदिपादांश	protopodite
आदिम	primitive
आद्यांत्र	archenteron
आलंब	support
आशय	vesicle
आसंजक	adhesive
ऑस्कुलम	osculum
आहारक	feeder
उत्सर्जन	excretion
उदर	abdomen
उद्भव	origin
उप-	sub-
उपचय	anabolism
उपजीनस	subgenus
उपांग	appendage
उपास्थि	cartilage
उभयलिंगता	hermaphroditism
ऊतक	tissue
ऊतकविकास	histogenesis
ऊर्जा	energy
एकचर	solitary
एकपीढ़ीय	monogenetic
एकांतरण	alternation
कंकत	ctenidium
कंकतिका	pectine
कंकाल	skeleton
कंटिकाएँ	spicules
कटक	ridge
कणिकाणु	granulocyte
कलशिका	ampulla
कल्प	period
कवक	fungus
कशाभ	flagellum
कशेरुकी	vertebrate
काचाभ	vitreous, hyaline
कायांतरण	metamorphosis
कायिक	somatic
कीप	funnel
कुटकी	mite
कूट-	pseudo-, false
केन्द्रक	nucleus
केन्द्रिका	nucleolus
कोशिकागुदा	cytopyge
कोशिकाग्रसनी	cytopharynx
कोशिका वंशक्रम	cell lineage
कोशिपायन	pinocytosis
कोशिका-भित्ति	cell-wall
कोष्ठ, थैला	pouch, sac
खंड	segment
खंडशःजनन	strobilation
गतिशीलता	motility
गर्भाशय	uterus
गर्तिका	socket
गुदा	anus
गुरु-	mega-, macro-
गुलिका	tubercle
गुहा	cavity
ग्रंथि	gland
ग्रसनी	pharynx
ग्रसिका	gullet
छत्र	umbrella
चयापचय	metabolism
चूषण	sucking
चूषक	sucker
छिद्र-कोशिका	porocyte
जठर	stomach
जठर-संवाहक	gastro-vascular
जठरनिर्गमी	pyloric
जठरागमी	cardiac
जनन	reproduction

जननवाहिनी	gonoduct
जल-संवाहक	water-vascular
जलेक्षिका	osphradium
जाति-इतिहास	phylogeny
जीव (जीवधारी)	organism
तंतु	fibre
तंत्रिका	nerve
तंत्रिका-जाल	nerve-net
तंत्रिका-वलय	nerve-ring
ताप-अनुचलन	thermotaxis
दीर्णसीलोम	schizocoel
द्विगुणित	diploid
द्विपार्श्वीय	bilateral
द्विरूपता	dimorphism
द्विविभाजन	binary fission
देहखंड	proglottid
द्रवस्थैतिक	hydrostatic
धूमन	fumigation
ध्रुवता	polarity
नाल	canal, tube
नालपाद	tubefoot
निर्मोचन	ecdysis
निलय	ventricle
नेत्रक	ocellus
नेत्रांशक	ommatidium
पट	septum
पटलिका	lamella
परजीविता	parasitism
परजीवी	parasite
परपोषी	host
परि-	peri-
परिपक्वन	maturation
परिभित्ति	circumvallation
परिमुख	peristome
परिमुखंड	peristomium
परिवर्धन	development
पक्षाभ	alar
पश्च-	meta, posterior
पश्चवक्ष	metathorax
पाचन	digestion
पाद	foot, pedal
पार्श्व	lateral
पालि	lobe
पिच्छाकार	plumose
पिच्छाक्ष	rachis
पीतक	yolk
पुच्छपाद	uropod
पुटी	cyst
पुटीस्फुटन	excystment
पुनरावर्तन	recapitulation
पुनरुद्भवन	regeneration
पुरोजठर	proventriculus
पुरोमुख	prostomium
पूर्णकीट	imago
पूर्णभंजी	holoblastic
पूर्णयुग्मन	hologamy
पृष्ठ	dorsal
पेशी	muscle
पोषण	nutrition
प्रकाशग्राही	photoreceptor
प्रघाण	vestibule
प्रच्छद	operculum
प्रतिपिंड	antibody
प्रतिरक्षा	immunity
प्रवाल	coral
प्रावार	mantle
प्राणिपोषी	zootrophic
प्लवक	plankton
बहिःकर्षी	protractor
बहिःपादांश	exopodite
बहुभ्रूणता	polyembryony
बहुरूपता	polymorphism

बाह्यकंकाल	exoskeleton
बाह्यपरजीवी	ectoparasite
बीजाणु	spore
भक्षकाणु	phagocyte
भ्रूण	embryo
भ्रूण-विज्ञान	embryology
मध्यांत्र	mesenteron
मनकाकार	moniliform
मलाशय	rectum
मसीकोश	ink sac
मस्तिष्क	brain
मुकुलन	budding
मुख-	oral-
मूलांग	rudiment
मेखला	girdle
मैथुन	copulation
यांत्रिक	mechanical
यकृत	liver
युग्मक	gamete
युग्मकजनन	gametogenesis
युग्मनज	zygote
योनि	vagina
योजी	connective
रज्जु	cord
रसायन अनुचलन	chemotaxis
रसायनग्राही	chemoreceptors
रिक्तिका	vacuole
रूपान्तरण	modification
लघु-	micro-
लघुयुग्मक	microgamete
लघुरंध्र, लघुद्वार	micropyle
लार-ग्रंथि	salivary-gland
लाही	aphid
लैंगिक	sexual
लौ-कोशिका	flame cell
वर्गीकरण	classification
वर्धी	vegetative
वयन	spinning
वातिका	trachea
विखंड	metamere
विदलन	cleavage
विभेदीकरण	differentiation
विवर्ध	appendix
विसर्पण	gliding
विषम-	hetero-
विष्ठा	faeces
वीथि-	ambulacral
वीथि खांच	ambulacral groove
वृक्क	kidney
वृंत	peduncle
वृद्धि	growth
वृषण	testis
वेधन	penetration
वेलापवर्ती	pelagic
शंकु	cone
शबल	mosaic
शर	style
शिखाग्र	apical
शिरोभवन	cephalization
शिश्न	penis
शुक्राणु	sperm
शुक्राणुजनन	spermatogenesis
शुक्रग्राही	spermatheca, receptaculum seminalis
शुक्रवाहिका	vas deferens
शूक	style
शूकिका	stylet
शैवाल	algae
श्वसन	respiration
श्वासनली	trachea
श्वासरंध्र	spiracle
संघटन	organization

संचलन	locomotion	समुदाय	community.
संलयन	syngamy	समेकन	fusion
संवरणी	sphincter	सहजीविता	symbiosis
संवास	niche	सहरागी	symphile
संसेचन	impregnation	सुप्तावस्था	dormant
संवेदी	sensory	स्तनधारी	mammal
स्पर्शक	tentacle	स्त्रीपूर्वी	protogynous
स्फुरदीप्ति	phosphorescence	स्थानबद्ध	sessile
स्फोटन	hatching	स्थानिक	epidemic
समजातता	homology	स्नायु	ligament
सम-	iso-	ह्रास	reduction
सममिति	symmetry	हन्वाधार	gnathobase
समयोजी	commissure		

अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली एवं अनुक्रमणिका

A

B

C

D

F

G

H

I

J

K

L

N

O

P

Q

R

S

T

U

V